卐 श्री शङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः 卐

॥ सकलागमरहस्यवेदिपरमज्योतिर्विच्छ्रीमद्विजयदानसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ॥

नानावृत्तिविभूषिताः

चत्वारः प्राचीनाः कर्मग्रन्थाः

तथा

प्राकृतभाषागाथाबद्धटिप्पनक-यन्त्रकादिना-ऽलङ्कृतः

सप्ततिकाभिधः षष्ठः कर्मग्रन्थः

तथा

प्राकृतभाषानिबद्धटिप्पनक-वृत्तिभ्यां विराजितं

सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणम्

तथा

परिशिष्टद्वयम्

卐

यन्त्र-टिप्पणकादिना समलङ्कृत्य सम्पादकः संशोधकश्च

प्रवचनकौशल्याधार-सिद्धान्तमहोदधि-सुविशालगच्छाधिपति-परमशासनप्रभावक-

कर्मसाहित्यनिष्णात-परमपूज्य-स्वर्गताचार्यदेवेश-श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वर-

विनीताऽन्तेवासि-निःस्पृहतासलिलनिधि-परमगीतार्थ-परम-

पूज्या-ऽऽचार्यदेव-श्रीमद्विजयहीरसूरीश्वर-

विनेयरत्नमुनि-श्रीललितशेखरविजय-

शिष्यरत्न-मुनि-श्रीराजशेखरविजय-

शिष्यः-

मुनि-श्रीवीरशेखरविजयः

प्रकाशिका-भारतीय-प्राच्य-तत्त्व-प्रकाशन-समितिः, पिन्डवाड़ा (राज०)

प्रथम आवृत्तिः-
प्रति- २५०+२५

राजसंस्करण-४०) रु०
राजाधिराज „ -५०) रु०

वीर सवत २५००
विक्रम सवत २०३०

✻ प्राप्तिस्थान ✻

भारतिय-प्राच्यतत्त्व प्रकाशन-समिति
C/o रमणलाल लालचंद
१३५/१३७ झवेरी बाजार, बम्बई २

•

भारतीय प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
C/o शा समरथमल रायचंदज
पिंडवाड़ा, (राज०)
स्टे० सिरोही रोड (W. R.)

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
शा. रमणलाल वजेचन्द,
C/o दिलीपकुमार रमणलाल,
मस्कती मार्केट,
अहमदाबाद २.

•

मुद्रक—
ज्ञानोदय प्रिंटिंग प्रेस, पिंडवाड़ा

CHATVARAH PRACHINAH KARMA-GRANTHAH

And

Saptatikabhidhah Sastha Karmagranthah

And

Suksmaarth Vicharsar Prakaranam

With

Different Commentaries



Editted by

Muni shri Virashekharvijay

Published by

Bharatiya Prachya-Tattva Prakashan Samiti, Pindwara

(Rajasthan) (India)

First Edition
Copies 250+25

DELUXE EDITION RS. 40
SUPER DELUXE ,, RS. 50

A. D. 1974

AVAILABLE FROM :

1. BHARATIYA PRACHYA TATTVA PRAKASHAN SAMITI.
C/o .Shah Ramanlal Lalchand,
135/137 Zaveri Bazzar
BOMBAY-2.
(INDIA)



2. BHARATIYA PRACHYA TATTVA PRAKASHAN SAMITI.
C/o. Shah Samarathmal Raychandji,
PINDWARA, (Rajasthan)
St. Sirohi Road (W. R.)
(INDIA)



3. BHARATIYA PRACHYA TATTVA PRAKASHAN SAMITI
Shah Ramanlal Vajechand,
C/o Dilipkumar Ramanlal,
Maskati Market,
AHMEDABAD-2.
(INDIA)



Printed by :
Gyanodaya Printing Press
PINDWARA. (Raj.)
St. Sirohi Road, (W.R.)
(INDIA)

શ્રીપાલનગરમણ્ડન ભૂગર્ભગૃહ મૂળનાયક

શ્રીમુનિસુવ્રતસ્વામી ભગવાન



આ ગ્રન્થરત્નના પ્રકાશનમાં દ્રવ્યસહાયકોએ જે શ્રીપાલનગરના નિર્માણમાં ભાગ લીધો છે, તે જીનપ્રસાદમાં ભૂગર્ભગૃહના મૂળનાયક તરીકે બિરાજમાન પરમદર્શનીય પ્રશાંત જીનબિંબ

શ્રીપાલ નગરમણ્ડન મૂળનાયક

શ્રી આદીશ્વર ભગવાન



આ ગ્રન્થરત્નના પ્રકાશનમાં દ્રવ્યસહાયકોએ જે શ્રીપાલ નગરના જીનમંદિરના નિર્માણ ભાગ લીધો છે, તે જીનપ્રસાદમાં મૂળનાયક તરીકે બિરાજમાન પરમદર્શનીય પ્રશાંત જીનબિંબ

सकलागाम रहस्यवेदि—सूरिपुरन्दर—बहुश्रुतगीतार्थ—परज्योतिर्विद परमगुरुदेव

8067.



परमपूज्य आचार्यदेवेश श्रीमद्‌विजयदानसूरीश्वरजी महाराजा

श्रीमत्पूर्वाचार्यकृतव्याख्यया श्रीमत्परमानन्दसूरिविरचितवृत्त्या च समेतः
श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्गर्गमहर्षिविरचितः

कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः

श्वेतपटाचार्यश्रीमद्गोविन्दगणिगुम्फितटीकया समलङ्कृतः

कर्मस्तवाख्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः

श्रीमद्धरिभद्रसूरिविरचितव्याख्योपेतः

बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः

श्रीहरिभद्रसूरिविरचितविवृत्या श्रीमन्मलयगिरिसूरिविरचितवृत्त्या श्रीमद्यशोभद्रसूरीश्वरप्रणीतटीकया
श्रीमद्रामदेवगणिविसूत्रविवरणेन च विभूषितः श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवनिर्मितः

षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः

श्रीमद् रामदेवगणिकृतप्राकृतभाषागाथानिबद्धटिप्पनकेन विराजितः

सप्ततिकाभिधः षष्ठः कर्मग्रन्थः

श्रीमद्रामदेवगणिविहितप्राकृतभाषाटिप्पन–वृत्तिभ्यां शोभितं
श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीतं

सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणम्

प्रथमं परिशिष्टम्

षडशीतिप्रकरणसत्कैकादशयन्त्रकलक्षणम्

द्वितीयं परिशिष्टम्

प्राचीनकर्मग्रन्थषट्कसत्कमूलगाथा-द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठकर्मग्रन्थभाष्यगाथा-
सप्ततिकासारगाथा-सूक्ष्मार्थविचारसारमूल-भाष्यगाथात्मकम्

---

* प्रकाशकीय निवेदन *

यह सूचित करते हुए हमें अत्यन्त आनंद हो रहा है कि अल्प समय में परमपूज्य सिद्धांत-महोदधि कर्मसाहित्य निष्णात स्वर्गताचार्यदेवेश श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा की परम पावनी निश्रा में उनकी ही परमकृपा दृष्टि से संकलित किया हुआ और श्लोकबद्ध प्राकृत भाषा में रचे हुए मूलग्रन्थ तथा संस्कृत भाषा में रचे हुये टीका ग्रन्थ रूप लाखोश्लोक प्रमाण कर्म साहित्य का सर्जन हो चुका है, और भी सर्जन चालु है जिनके वोल्युम (महाग्रन्थ) ६ ग्रन्थरत्न हमारी संस्था द्वारा आपके कर कमलों में पहुंच चुके हैं और ग्रन्थों का मुद्रण कार्य चालु है। जिसे यथा समय आप प्राप्त कर सकेंगे। इसके अलावा इस कर्मसाहित्य विषयक मुनिचन्द्रसूरि विरचित टिप्पनक से युक्त पूर्वाचार्य-कृत चूर्णि और उदयप्रभसूरि विहित टिप्पनक इन दोनों से विभूषित किया हुआ ऐसा पूर्वधर वाचक श्रीशिवशर्मसूरिप्रणीत "बन्धशतकम्" नाम का प्राचीन ग्रन्थरत्न भी इस समिति द्वारा प्रकाशित किया गया है। उसी तरह पूर्वाचार्य कृत मूल टीका सहित "चत्वार: प्राचीना: कर्मग्रन्था." नाम का प्राचीन ग्रन्थरत्न हमारी संस्था द्वारा प्रकाशित हो चूका है। ठीक उसी तरह प्रस्तुत ग्रन्थरत्न भी प्रकाशित हो रहा है।

इनमें प्राचीन ४ कर्मग्रन्थों पैकी प्रथम कर्मग्रन्थ परमपूज्य गर्गमहर्षि विरचित १६८ गाथा प्रमाण है। उनमें एक पूर्वाचार्यकृत और दूसरी पूज्य परमानन्दसूरि रचित टीकायें हैं। दूसरा कर्मग्रन्थ प्राचीनाचार्यविहित ५५ आर्या प्रमाण है। उसमें श्रीमद् गोविन्दगणि रचित टीका है। तीसरा कर्मग्रन्थ जिसके रचयिता का नाम का उल्लेख नहीं मिलता है वह पूर्वकालीन महर्षि ने रचा हुआ ५४ गाथा प्रमाण है। उस में श्रीमद् हरिभद्रसूरि म. ने टीका लिखी हुई है। चतुर्थ कर्मग्रन्थ को श्रीमद् जिनवल्लभगणि ने ८६ आर्या में बनाया है उस पर की हुई ४ टीकायें यहां दी गई है। श्री हरिभद्रसूरिकृत टीका और श्री मलयगिरिसूरि विहित टीका दोनों साथ में दी गई है। बाद में तीसरी श्रीयशोभद्रसूरि प्रणीतवृत्ति ली गयी है। अंत में श्री रामदेवगणि की चौथी टीका जो प्राकृत भाषा में है वह दी गई है। प्राचीनाचार्यरचित सप्ततिकाख्य षष्ठ कर्मग्रन्थ ७२ गाथा प्रमाण है। उनमें रामदेवगणिकृत विभिन्नप्रकार की दो टिप्पणी प्राकृतभाषा में श्लोकबद्ध है। श्रीमद् जिनवल्लभगणि प्रणीत सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरण १५१ गाथा प्रमाण है। उनमें प्रथम रामदेवगणिकृत टिप्पणी और दूसरी वृत्ति है। दोनों प्राकृत भाषा में गद्य में निबद्ध है। इसमें चतुर्थ कर्मग्रन्थ की दो टीका तक के ५ कर्मग्रन्थों के पृष्ठ क्रमांक एक साथ में दिये है। जिन में प्रथम कर्मग्रन्थ के पृष्ठ १ से ८९ तक दूसरे कर्मग्रन्थ के पृष्ठ ८९ से १२६ तक, तीसरे कर्मग्रन्थ के पृष्ठ १२७ से १५३ तक तथा चतुर्थ कर्मग्रन्थ के १५४ से २६२ तक है। बादमें तीसरी श्री यशोभद्रसूरि कृत टीका युक्त चतुर्थ कर्मग्रन्थ के १ से ५८ बाद श्री रामदेवगणि विहित प्राकृतवृत्ति साहित्य चतुर्थ कर्मग्रन्थ के १ से ३५ पृष्ठ है बादमें टिप्पणसहित सप्ततिकाग्रन्थ के १ से ८४ पेज है, उनके बादमें सूक्ष्मार्थविचारसार टिप्पण के १ से ५८ पेज है अंत में सूक्ष्मार्थविचारसार प्रकरणवृत्ति के १ से ४८ पेज है इन में से अन्तिम चतुर्थ कर्मग्रन्थ की दो टीकाओं को छोडकर प्राचीन चारों कर्मग्रन्थ पहले मुद्रित हो चूकने पर भी ग्रन्थ के पृष्ट जीर्ण हो जाने से और इनकी जेसलमेर के भंडार की हस्त लिखित प्रत के साथ में मिलान की हुई प्रत मिलने से तथा श्रीमद्यशोभद्रसूरि कृत टीक युक्त और श्री रामदेवगणिकृत टीकायुक्त चतुर्थ कर्मग्रन्थ और रामदेवगणिकृत टिप्पणक युक्त सप्ततिकाख्य षष्ठ कर्मग्रन्थ तथा रामदेवगणिरचित टिप्पणक और वृत्ति सहित सूक्ष्मार्थविचारसार-प्रकरण मुद्रित नहीं होने से तथा उनकी हस्तलिखित प्रत एवं प्रेस कॉपियां भी मिलने से इन प्राचीन चार कर्मग्रन्थों आदि का मुद्रण आवश्यक बन गया था।

संपादन-संशोधन :–

परमपूज्य सिद्धान्तमहोदधि कर्मसाहित्य निष्णात सुविशालगच्छाधिपति स्वर्गत आचार्यदेवेश श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराज साहेब के शिष्यरत्न परमपूज्य गीतार्थ निःस्पृहतानीरधि आचार्यदेवेश श्रीमद् विजयहीरसूरीश्वर म सा. के शिष्यरत्न प. पू. मुनिराज श्री ललितशेखरविजयजी म. सा. के शिष्यरत्न प. पू. मुनिराज श्री राजशेखरविजयजी म. सा के शिष्यरत्न प. पू. मुनिराज श्री वीरशेखरविजयजी म. सा. ने कर्मसाहित्य के नव निर्माण के विराट कार्य को करते हुए भी अपने अमूल्य समय का भोग देकर इस प्राचीन चार कर्मग्रन्थों और सप्ततिकाटिप्पणक तथा सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरण का संशोधन कर, हस्तलिखित प्रत्यादि के साथ मिलानादि करके यन्त्र-टिप्पणादि बनवा का संपादन किया है।

संपादन-पद्धति :–

मूलग्रन्थ–टीकाग्रन्थ–साक्षिग्रन्थ–प्रतीक–टिप्पणी आदि के लिये विभिन्न छोटे बड़े-खुले व गहरे एवं विविध प्रकार के टाइप पसंद कर अभ्यास कर्ताओं की अनुकूलता बनाए रखने का ठीक प्रयत्न किया है. जैसे मूल ग्रन्थ २० पोईन्ट ब्लेक टाईपों में, टीकाग्रन्थ १६ पोईन्ट सामान्य टाईप में, प्रतीक १६ पोईन्ट ब्लेक टाइप में टिप्पणी १२ पोईन्ट चालु टाईप में, साक्षिग्रन्थ १६ पोईन्ट ब्लेक टाईप में, चतुर्थग्रन्थ की अंतिम दो टीकाग्रन्थ के और सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरण की टिप्पण तथा वृत्तिग्रन्थ के साक्षिग्रन्थ १२ पोईन्ट सामान्य टाईप में, दूसरे परिशिष्ट में छ कर्मग्रन्थ की मूलगाथाएँ और कर्मस्तव–षडशीति–शतक–सप्ततिका प्रकरण की भाष्यगाथाएँ तथा सप्ततिकासार की गाथा और सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरण की मूल गाथा तथा भाष्यगाथा १६ पोईन्ट सामान्य टाईप में, विषयानुक्रम और शुद्धिपत्रक १२ पोईन्ट सामान्य टाईप में रखे हैं।

शुद्धिपत्रक में सहायक :–

ग्रन्थमुद्रित हो जाने के बाद में भी अनाभोग मुद्रणदोषादि के कारण रही हुयी अशुद्धियों के समार्जन के लिये शुद्धिपत्रक में प. पू. स्व. आचार्यदेव के शिष्यरत्न प. पू. आगमप्रज्ञ आचार्यदेव श्रीमद् विजयजम्बूसूरिश्वरजी म. सा. तथा प. पू. वीरशेखरविजयजी म. सा. और जैन श्रेयस्कर मंडल पाठशाला मेहसाणा के अध्यापक सुश्रावक श्रीयुत पुखराजभाई ने श्रीयुत वसंतभाई आदि द्वारा सहयोग दिया है यह शुद्धिपत्रक ग्रन्थ के अंत में दिया गया है। तदनुसार ग्रन्थ सुधार कर पढ़ने का ध्यान रखने की ज्ञान-पिपासु वाचकों से हार्दिक अपील है।

कृतज्ञता प्रदर्शन :–

अंत में सबसे पहले स्व. परम गुरुदेव सिद्धान्तमहोदधि कर्मसाहित्य निष्णात आचार्यदेवेश श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी म. सा. का जितना उपकार और आभार माने उतना कम है। क्योंकि उनकी ही परमकृपा और प्रभाव से इस समिति का उत्थान और कर्मसाहित्य का विशाल सर्जन हो सका है। साहित्य की इस इमारत की नींव की ईंट तो आप ही हैं।

साथ में हस्तलिखित प्रतियां आदि के साथ में मिलाकर टिप्पणियां बनाकर, षडशीति प्रकरण के सब पदार्थों के ग्यारह (११) यन्त्रों बनाकर उनका प्रथम परिशिष्ट और टिप्पणियुक्त पांचों प्राचीन कर्मग्रन्थ तथा सप्ततिकानाम के षष्ठ कर्मग्रन्थ की मूलगाथा. द्वितीय–चतुर्थ पञ्चम षष्ठ कर्मग्रन्थ की भाष्यगाथा तथा सप्ततिकासार की गाथा और सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरण की मूलगाथा तथा भाष्य गाथा का दूसरा परिशिष्ट बनवाकर तो-तोड़ परिश्रम से जिन्होंने इस ग्रन्थरत्न का संपादन किया है वह पूज्य मुनिराजश्री वीरशेखरविजयजी म सा के अवर्णनीय उपकार के हम चिर ऋणी हैं।

इस ग्रन्थ के शुद्धिपत्रक के सहायक प. पू. आगमप्रज्ञ आचार्यदेव श्रीमद् विजयजम्बूसूरीश्वरजी म सा. तथा प. पू. मु. वीरशेखरविजयजी म. सा. और महेसाणा के प्राध्यापक पुखराजभाई तथा वसंतभाई आदि का हार्दिक आभार मानते हैं।

जेसलमेर की प्रति के साथ मिलाई हुओ प्राचीन चार कर्मग्रन्थ की प्रति को जिन्होंने इस कार्य के लिये भेजी वह पू. आगमप्रभाकर मुनिराजश्री पुण्यविजयजी म. सा. का हार्दिक उपकार एवं आभार मानते हुवे हमें बडा गर्व और आनन्द होता है। यशोभद्रसूरि कृत टीका से युक्त षडशीति प्रकरण की हस्तलिखित प्रत को जिन्होंने वडौदा के 'प्रवर्तक श्री कांतिविजयजी शास्त्रसंग्रह" नाम के इन ज्ञान भण्डार में से कोशिश कर भिजवायी वह पू. मुनिराजश्री भुवनचन्द्रविजयजी म. सा. का और इस ज्ञान भण्डार के कार्यवाहकों का, श्री यशोभद्रसूरिकृत टीका से युक्त और श्री रामदेवगणिविहित टीका से युक्त षडशीति प्रकरण की दो प्रेस कॉपियां तथा श्रीरामदेवगणि की बनवायी हुओ सप्ततिकाटिप्पणी और सूक्ष्मार्थविचारसार टिप्पणी की प्रेस कापीयां डभोई के "श्री जम्बूस्वामि जैन मुक्ताबाई आगममंदिर" नाम ज्ञान भण्डार के लिए तैयार की हुओ जिन्हों ने इस कार्य के लिये भीजवायी उन पूज्य आगमप्रज्ञ आचार्यदेव श्रीमद् विजयजम्बूसूरि. म सा. का हृदय पूर्वक उपकार और आभार मानते हैं। प्राचीन छः कर्मग्रन्थ की मूलगाथा एवं द्वितीय-चतुर्थादि प्राचीन कर्मग्रन्थ की भाष्यगाथा-सूक्ष्मार्थसारप्रकरण की मूलगाथा हस्तलिखितप्रत को इस कार्य के लिये भेजने वाले लालभाई दलपतभाई विद्यामंदिर के कार्यवाहकों का तथा श्रीरामदेवगणि की ही रची हुओ विभिन्नप्रकार की टिप्पणि की हस्तलिखित प्रत और सूक्ष्मार्थविचारसार प्रकरणवृत्ति की फोटोकोपी के लिए सुविधा करवानेवाले भोजक अमृतलालभाई का एवं इन सब प्रत्यादिकी प्राप्ति करवाने में सहाय करने वाले पू. मुनिराजश्री जयघोषविजयजी म. सा. तथा पू. मुनिराजश्री धर्मानन्दविजयजी म. सा. का भी हार्दिक उपकार मानते हैं। वडौदा भण्डार की हस्तलिखित प्रति पर से केवल श्रुतभक्ति से प्रेरित होकर प्रेस कोपी की नकल बनाने वाले मंडवाडिया निवासी श्रीमान् खेमचंद मूलचंदजी का आभार मानते हैं। डभोई के भण्डार के लिये तैयार की हुओ रामदेवगणि कृत टीका से युक्त षडशीति प्रकरण प्रेस कॉपी की नकल करने कराने वाले बैलंदर निवासी सद्गृहस्थों का भी हम आभार मानते हैं। 'प्रूफ रीडींग' सहायक महेसाणा वाले मास्टर चम्पकलाल का तथा मुद्रण कार्य को आत्मीयता तथा तेजी से करने वाले ज्ञानोदय प्रिन्टींग प्रेस - पिंडवाडा के व्यवस्थापक ब्यावर निवासी श्रीमान फतहचन्दजी जैन (हालावाले) एवं उनके सहयोगी कर्मचारीगण की निष्ठा एवं तत्परता के कारण उनकी स्मृति सदा सराहनीय बनी रहेगी।

द्रव्य सहायक :—

सूचित करते अत्यन्त हर्ष होता है कि इस ग्रन्थरत्न के मुद्रण-व्यय में ५०००) पाटी जैन उपाश्रय सावडी के साधारण खाते में सावडी निवासी शा पुखराजजी हीराचंदजी ने अर्पण कर वहाँ के ज्ञान खाते से यह रकम हमारी संस्था को अर्पण करवाई तथा ५०००) पिंडवाडा निवासी शा लालचन्दजी छगनलालजी ने अर्पण कर श्रुत-भक्ति का अपूर्व लाभ लिया।

इन दोनों द्रव्य-सहायकों ने स्व. पुण्यानुभाव से विपुल लक्ष्मी उपार्जित की और धर्म क्षेत्र में भी ठीक प्रमाण से व्यय कर उसे सार्थक की है। जैसे पुखराजजी ने प्रसिद्ध-तीर्थ राणकपुर में परमपूज्य

आ ग्रंथना द्रव्य सहायको
सुश्रावक पुखराजजी हीराचंदजी
तथा सुश्रावक लालचंदजी छगनलालजी



स्व. शाह छगनलालजी रुपचंदजी

आराध्यपाद आचार्यदेव श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराज साहब की निश्रा में ओली की आराधना करवाई, उसमें अपने द्रव्य का सद्व्यय किया वैसे ही लालचन्दजी ने भी वामणवाडजी तीर्थ में पू. आ. श्रीमद्विजयजम्बूसूरीश्वर म. सा. की निश्रा में ओली की आराधना करवाई और पिंडवाडा में बावन-जिनालय की प्रतिष्ठा अवसर पर भी अच्छा सद्व्यय किया तथा मन्दिर के पृष्ठ भाग में श्री प्रेमसूरीश्वरजी गुरुमंदिर वाले उपाश्रय के निर्माण में भाग लिया और गुरु मूर्ति की प्रतिष्ठा का लाभ भी स्वयं ने लिया।

इस उपरांत भी यह दोनों महानुभाव तन मन धन से संघ और शासन की उपासना करते रहते हैं जैसे कि बम्बई वालकेश्वर विभाग में श्रीपालनगर के मन्दिर और उपाश्रय के निर्माण में काफी सहकार दिया है और वहां स्तम्भ रूप बने हैं।

श्री हुकमीचंदजी कोल्हापुर वालो ने अपने स्व० पिताजी श्री छुंगाजी की पुण्य स्मृति में इस ग्रन्थ के मुद्रण-व्यय में रु ५०००) की द्रव्य सहाय करके अपूर्व श्रुत भक्ति की है।

श्री छुंगाजी का जन्म विक्रम संवत १९१९ में राजस्थान-सिरोही जिले के फुंगणी गांव में हुआ था। व्यवसाय का प्रारम्भ महाराष्ट्र में कोल्हापुर जिले के वडगांव में कपडे की दुकान से हुआ। आर्थिक स्थिति सामान्य होने पर भी नीतिमत्ता असामान्य थी। क्षमा-परोपकार-सहनशीलतादि सात्त्विक गुणों से जीवन एक सुश्रावक के उचित था। सामायिक प्रतिक्रमण पूजा पच्चक्खानादि नित्य कृत्यों में तथा श्री संघ के कार्यों में सदैव अप्रमत्त और उत्साही रहते थे। फलतः विक्रम सं० १९८० में मुनि भगवंतों की निश्रा में अनशन की भावना के साथ सर्व-संग का त्यागकर दिवंगत हुए।

हुकमीचंदजी के परिवार में धर्म संपन्नता आचारशीलता और नीतिमत्ता का जो उत्कर्ष है उसका श्रेयः स्व० छुंगाजी को ही है।

इनका यह दानादि धर्म उत्तरोत्तर वृद्धि को पाता रहे और भाव-धर्म का स्वरूप लेकर मोक्षदायक बने यही शुभेच्छा।

निकट भविष्य में और अधिक ग्रन्थों के प्रकाशन की आशा में।

भवदीय-

(i) पिंडवाडा
स्टे. सिरोहीरोड (राजस्थान)
(i) १३५/१३७ जौहरी बाजार
बम्बई-२

शा. समरथमल रायचन्दजी (मंत्री)
शा. लालचन्द छगनलालजी(मंत्री)
भारतीय प्राच्य-तत्त्व प्रकाशन समिति

अर्घ्याञ्जलि

****

जिन्होंने भवरूपी सागर से मुझे बाहर निकल कर चारित्ररूप नौका पर चढाया और
दीक्षा दिन से लेकर बारह वर्ष तक आपने सानिध्य में रख कर ग्रहणशिक्षा और
आसेवनशिक्षा के साथ साथ ही संस्कृत-प्राकृतव्याकरण न्याय दर्शन काव्य कोश छन्द
अलङ्कार प्रकरण छेद आगमादि विविध विषयक ग्रन्थों के अभ्यास द्वारा अमृतपान
करवाया। जिन्होंकी सतत सत्प्रेरणा और परम कृपा से ही महागंभीर और
अतिभगीरथ ऐसे कर्मसाहित्य के नवनिर्माण में आज तेरह तेरह वर्ष तक
लगातार प्रयत्नशील रहा हुं और भी ऐसे नवसर्जनादि अनेक कार्यों में
व्यस्त रहने पर भी जिस पुण्यपुरुष की अमीदृष्टि से ही इस
ग्रन्थरत्न की सम्पादनता में भी सफलता पा रहा हुं। उन
कर्मसाहित्य के सूत्रधार सिद्धान्तमहोदधि सच्चारित्रचूडामणि
परमशासनप्रभावक सुविशालगच्छाधिपति परमाराध्यापाद
स्वर्गीय आचार्यदेवेश—

श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा

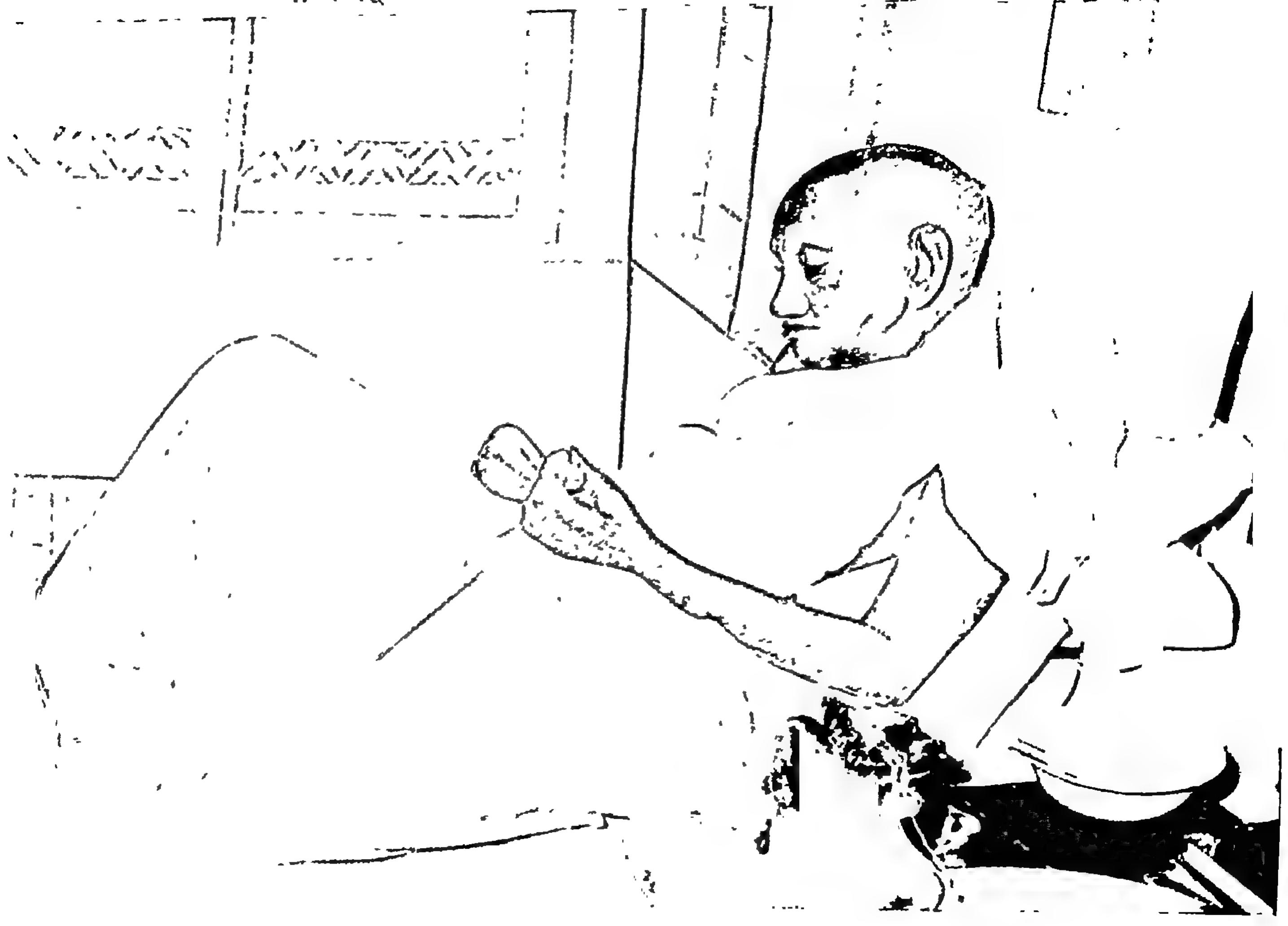
की परमपावनी स्मृति में

भवदीय कृपैकाभिलाषी
मुनि वीरशेखर विजय

આ ગ્રન્થમંજનના પ્રેરક, માર્ગદર્શક અને સંશોધક

સિદ્ધાન્તમહોદધિ, કર્મશાસ્ત્રનિષ્ણાત, સુવિશાલગચ્છાધિપતિ, સકલ સંઘકૌશલ્યાધાર.

સ્વ. પરમપૂજ્ય આચાર્યદેવ શ્રીમદ્ વિજયપ્રેમસૂરીશ્વરજી મહારાજા



नानावृत्तिविभूषिताः

चत्वारः प्राचीनाः कर्मग्रन्थाः

तथा

प्राकृतभाषागाथाबद्धटिप्पनक–यन्त्रकादिना-ऽलङ्कृतः

सप्ततिकाभिधः षष्ठः कर्मग्रन्थः

तथा

प्राकृतभाषानिबद्धटिप्पनक–वृत्तिभ्यां विराजितं

सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणम्

तथा

परिशिष्टद्वयम्

❋ विषयानुक्रमः ❋

कर्मविपाकसंज्ञकः प्रथमः कर्मग्रन्थः

આ ગ્રન્થમાં દ્રવ્યસહાયક



શાહ હુકમચંદજી ડુંગાજી રાઠોડ (કુગણી)
(કોલાપુર)

कर्मस्तवाख्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः

बन्धस्वामित्वाभिधस्तृतीयः कर्मग्रन्थः

षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः

सप्ततिकाभिधानः षष्ठः कर्मग्रन्थः

सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणम्

प्रथमं परिशिष्टम्

द्वितीयं परिशिष्टम्

ॐ ह्रीँ अर्हँ श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः

।। न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ।।

सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ।

सिद्धान्तमहोदधिश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ।

श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्गर्गमहर्षिविरचितः

कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः ।

पूर्वाचार्यकृतव्याख्यया श्रीमत्परमानन्दसूरिविरचितवृत्त्या च समेतः ।

(पूर्वाचार्यकृतव्याख्या)

।। नमः सिद्धेभ्यः ।।

रागादिवर्गहन्तारं, प्रणेतारं *सदागमम् ।
प्रणौमि शिरसा देवं, वीरं श्रीजिनसत्तमम् ।। १ ।।
स्तौमि देवीं सदा भक्त्या, जिनाऽऽस्याम्बुजवासिनीम् ।
यत्प्रसादाद्वरं काव्यं, कवीनां जायतेऽमलम् ।। २ ।।
[1]कः शक्तो विवरीतुं स्यात्, सूत्रं जिनमतेऽखिलम् ।
अनन्त[2]गम[3]पर्यायं, मतेर्मान्द्याच्च [4]बालिशः ।। ३ ।।
गुरुपादप्रसादेन, तथाऽपि जडबुद्धिना ।
क्रियते विवरणं किञ्चिद्, विपाके कर्मसंज्ञके ।। ४ ।।
दोषान्मुक्त्वा वचो ग्राह्यं, मदीयं कृतिभिः सदा ।
सतामभ्यर्थना येन, न (यन्न) कदाचिन्निष्फला भवेत् ।।५।।

तत्रेष्टदेवतास्तवाभिधायिकां प्रेक्षापूर्वकारिप्रवृत्त्यर्थं विघ्नविनायकोपशान्तये शिष्टसमयप्रतिपालनाय च प्रयोजनाभिधेयसंबन्धगर्भां सूत्रकार आद्यामिमां गाथामाह—

* "सदागमे" इति जे० । १ "विवरीतुं समर्थः स्यात्कः सूत्रं जिनमतेऽखिलम्" जे० । २ "गमाः सदृशपाठाः, पर्यायाः नवपुराणादयः" जे० टिप्पणी । ३ °पर्यायान्मते० जे० । ४-"सुबालिशः" इत्यपि ।।

प्रथमं परिशिष्टम्

द्वितीयं परिशिष्टम्

ननु गमेर्गत्यर्थत्वात्कथमभावार्थः स्यात्? उच्यते, विअपपूर्वो गमिः स्वभावात् अनेकार्थत्वाद्वा धातूनामभावार्थोऽपि दृष्टः । तथा-'**कर्मगतिकुशलं**' इति कर्मणां गतिः परिच्छित्तिः, तत्परिणामो वा कर्मगतिः, तत्र कुशलो निपुणः सर्वथा तत्परिच्छेदकः । तं नत्वा वक्ष्ये '**कर्मविपाकं**' कर्मणां विपाकोऽनुभवः कर्मविपाकस्तम् । कथंभूतम्? '**गुरूपदिष्टं**' गुरुभिरुपदिष्टो गुरूपदिष्टो गुरुकथितस्तम् । कथं वक्ष्ये? '**समासेन**' संक्षेपेण, इति गाथाऽक्षरार्थः । भावार्थस्त्वयम्—व्यपगतकर्मकलङ्कम्, इत्यनेनापायापगमातिशय उक्तः । वीरं नत्वा, इत्यनेन स्तोतव्यसंपत्पूर्वको नमस्कारोऽभिहितः । कर्मगतिकुशलम्, अनेन तु स्तोतव्यस्यैव ज्ञानातिशयः प्रतिपादितः । कर्मविपाकम्, इत्यनेन त्वभिधेयम् । गुरूपदिष्टम्, पुनरनेनावयवेन शास्त्रस्य पारतन्त्र्यमाह गुरुपर्वक्रमलक्षणसंबन्धकम् । समासेन, इत्यनेन पुनः पदेन प्रयोजनाभिधानम्, '**व्यासाभिधानात्समासाभिधानं प्रयोजनम्**' इत्युक्तेः । कर्मविपाकार्थोऽभिधेयः । अभिधानं तु इदमेव प्रकरणम् । अभिधानाभिधेयलक्षणश्च संबन्धः । इति गाथाभावार्थः ३ । पदविग्रहस्तु पदार्थं दर्शयद्भिर्दर्शित एव ४ । वीरमित्यनेनैव स्तोतव्यसंपदोऽभिहितत्वात् किमर्थं शेषपदोपन्यासः? इति चालना ५ । प्रत्यवस्थानमाह—वीर इत्येतावन्मात्रे कृते [1]नानाविधवीरप्रसङ्गः स्यात् । तद्व्यु दासार्थं व्यपगतकर्मकलङ्कमित्याह, तर्हि व्यपगतकर्मकलङ्कमित्येतदेवास्तु किं शेषपदैः? इत्यत्राह—कैश्चिद्व्यपगतकर्मकलङ्कोऽप्यसर्वज्ञ इष्यते किञ्चिज्ज्ञत्वात्, तद्व्यवच्छेदार्थं कर्मगतिकुशलं सर्वज्ञत्वाभिधायकं पदमाह, तेन भाववीरं अशेषकल्म[2]षध्वान्तरहितं सर्वज्ञं सर्वदर्शिनमित्यभिहितं भवति । ननु किमन्यैः कर्ममिपाको नाभिहितः येनाभिधीयते भवता कर्मविपाकः? इत्यत्रोच्यते उक्तोऽन्यैः, किन्तु व्यासेन, अत्र तु समासेन । इति गाथासमुदायार्थः ॥ १ ॥

क्रियत इति कर्म, इमां व्युत्पत्तिमाश्रित्य कर्मशब्दप्रवृत्तिः, जीवस्य च कर्मणा सार्द्धं[3]मनादिसंयोगोऽभिधीयते तत्कथमिदमविरोधि? इत्याह—

(पारमा०) तत्र '**वीरमिति**' विशेष्यम् । तं '**नत्वा कर्मविपाकं वक्ष्ये**' इति संबन्धः । शेषतीर्थकृतामपि भावमङ्गलत्वे साधारणे सत्यासन्नोपकारित्वादस्य नमस्कारः । कीदृशं वीरम्? कर्माण्येव जीवचन्द्रमसः स्वभावशुद्धस्य कलुषत्वापादनेन कलङ्कः, स व्यपगतोऽस्येति व्यपगतकर्मकलङ्कः । एतेन घातिकर्मविलयनप्रतिपादनेन भगवतः स्वस्वरूपापत्तिरुक्ता, अत एव '**कर्मगतिकुशलमिति**' विशेषणं सुघटम् । कर्मणां गतिः परिणतिः, तत्र कुशलं विज्ञम् । नहि विमलकेवलं विना कोऽपि कर्मगतिं परिच्छेत्तुमलम् । यदुक्तम्—"**जीवाण गई कम्माण परिणई पुग्गलाण परियट्टो । मुत्तूण जिणं तह जिण-मयं च को जाणिउं तरइ**" ? ॥१॥ एवं च शास्त्रादौ भावमङ्गलं नमस्कारं कुर्वता व्याख्याङ्गान्यपि सूचितानि । तथाहि—

१ नामादिवी॰प्रसङ्गः जे० । २ ॰पसङ्गरहितं जे० । ३ मनादिः सं० जे० ।

(श्रीमत्परमानन्दसूरिविरचितवृत्तिः)

निःशेषकर्मोदयमेघजालमुक्तो दिनाधीश इवोग्रतेजाः ।
प्रदर्शिताशेषपदार्थसार्थो, मुदेऽस्तु नः श्रीजिनवर्द्धमानः ॥१॥

इह हि सन्तः संसारसागरतरणतरणिकल्पं जिनशासनमवाप्य सकलजन्मजीवितसारं परोपकारं मन्यन्ते । स च संसारिणां सकलामङ्गलनिलयकर्मस्वरूपनिरूपणात्तदुन्मूलनप्रवृत्तानां सिद्धो भवतीत्यतस्तत्स्वरूपनिरूपणप्रवणं प्रकरणं चिकीर्षुर्गर्गमहर्षिर्मङ्गलाभिधेयसंबन्धाभिधानबन्धुरां गाथामाह—

ववगयकम्मकलंकं वीरं नमिऊण कम्मगइकुसलं ।
[1]वोच्छं कम्मविवागं, गुरुवइट्ठं समासेणं ॥१॥

(पू०) अस्या व्याख्या–सा च संहितादिक्रमेण–"**संहिता च पदं चैव, पदार्थः पदविग्रहः । चालना प्रत्यवस्थानं, व्याख्या तन्त्रस्य षड्विधा**" ॥ १ ॥ तत्रास्खलितपदोच्चारणं संहिता । सा चेयम्–**व्यपगतकर्मकलङ्कं, वीरं नत्वा कर्मगतिकुशलं । वक्ष्ये कर्मविपाकं, गुरूपदिष्टं समासेन** ।१। पदानि पुनः सैव संहिता विच्छेदेनोच्चार्यमाणा २ । पदार्थस्त्वयम्–**वीरं नत्वा वक्ष्ये कर्मविपाकम्**. इति क्रियाकारकसंबन्धः । विराजनाद्वीरः । विपूर्वस्य '**राजृ दीप्तौ**' इत्यस्य धातोः औणादिडप्रत्ययान्तस्य "**अन्येषामपि**" इति दीर्घत्वे वीर इति रूपम् । तस्यार्थः-विराजते शोभते प्रकाशते वा वीरः । '**शूर वीर विक्रान्तौ**' इत्यस्य वा । तत्रार्थः–महाविक्रान्तो[2]ऽपरवादिशत्रुजयात्, परीषहाद्यक्षोभ्यत्वाद्वा । '**ईर गतिप्रेरणयोः**' इत्यस्य वा विपूर्वस्याच्प्रत्यये रूपम् । तस्य पुनरयमर्थः–विशेषेण ईरयति कर्म गमयति याति वा शिवमिति कृत्वा वीरः, गौणं नाम भगवतः । अर्थव्युत्पत्त्यनुसारेणान्येऽप्यर्थाः सन्ति, अतस्तेऽप्यवबोद्धव्याः । तथा चोक्तम्–"**विदारयति यत्कर्म, तपसा च विराजते । तपोवीर्येण युक्तश्च, तस्माद्वीर इति स्मृतः** ॥१॥" "[3]**णम् प्रह्वत्वे शब्दे [च]**' इत्यस्य धातोः क्त्वान्तस्य नत्वेति रूपम् । '**नत्वा**' प्रणम्य "**[4]वोच्छं**" वक्ष्ये अभिधास्ये, किं भूतं वीरम् ? इत्याह–**व्यपगतकर्मकलङ्कं**' वि-अप-पूर्वस्य गमेः क्तान्तस्य व्यपगतमिति रूपम् । कर्मैव कलङ्कं कर्मकलङ्कम् । यदा प्रथमातत्पुरुषस्तदाऽयमर्थः–कलङ्कं दूषणं जीवस्वभावस्य कर्मैवाशुभपरिणामपरिणतं कलङ्कं कर्मकलङ्कम् । विशब्दो विशेषार्थः, अपशब्दोऽभावार्थः, विशेषेणापगतं कर्मकलङ्कं यस्यासौ व्यपगतकर्मकलङ्कोऽन्यपदार्थः, अतस्तम् । यदा पुनर्द्वन्द्वः, कर्म च कलङ्कं च कर्मकलङ्के, तदा कर्म ज्ञानावरणीयादि प्रतीतं, कलङ्कं बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नम् । तत्र बाह्यमकीर्त्यादि, आभ्यन्तरमशुभाध्यवसायादि । ते [विशेषेण] अपगते अतीते यस्यासौ व्यपगतकर्मकलङ्कः, अतस्तम् ।

१ वोच्छं जे० । २ ० न्तः परवादिशत्रु० जे० । ३ णम प्रह्वत्वे शब्दे अस्य धातोः जे० । ४ वोच्छं जे० ।

ननु गमेर्गत्यर्थत्वात्कथमभावार्थः स्यात् ? उच्यते, विअपपूर्वो गमिः स्वभावात् अनेकार्थत्वाद्वा धातूनामभावार्थोऽपि दृष्टः । तथा–'**कर्मगतिकुशलं**' इति कर्मणां गतिः परिच्छित्तिः, तत्परिणामो वा कर्मगतिः, तत्र कुशलो निपुणः सर्वथा तत्परिच्छेदकः । तं नत्वा वक्ष्ये '**कर्मविपाकं**' कर्मणां विपाकोऽनुभवः कर्मविपाकस्तम् । कथंभूतम् ? '**गुरूपदिष्टं**' गुरुभिरुपदिष्टो गुरूपदिष्टो गुरुकथितस्तम् । कथं वक्ष्ये ? '**समासेन**' संक्षेपेण, इति गाथाऽक्षरार्थः । भावार्थस्त्वयम्–व्यपगतकर्मकलङ्ककम्, इत्यनेनापायापगमातिशय उक्तः । वीरं नत्वा, इत्यनेन स्तोतव्यसंपत्पूर्वको नमस्कारोऽभिहितः । कर्मगतिकुशलम्, अनेन तु स्तोतव्यस्यैव ज्ञानातिशयः प्रतिपादितः । कर्मविपाकम्, इत्यनेन त्वभिधेयम् । गुरूपदिष्टम्, पुनरनेनावयवेन शास्त्रस्य पारतन्त्र्यमाह गुरुपर्वक्रमलक्षणसंबन्धकम् । समासेन, इत्यनेन पुनः पदेन प्रयोजनाभिधानम्, '**व्यासाभिधानात्समासाभिधानं प्रयोजनम्**' इत्युक्तेः । कर्मविपाकार्थोऽभिधेयः । अभिधानं तु इदमेव प्रकरणम् । अभिधानाभिधेयलक्षणश्च संबन्धः । इति गाथाभावार्थः ३ । पदविग्रहस्तु पदार्थं दर्शयद्भिर्दर्शित एव ४ । वीरमित्यनेनैव स्तोतव्यसंपदोऽभिहितत्वात् किमर्थं शेषपदोपन्यासः ? इति चालना ५ । प्रत्यवस्थानमाह–वीर इत्येतावन्मात्रे कृते [1]नानाविधवीरप्रसङ्गः स्यात् । तद्व्यु दासार्थं व्यपगतकर्मकलङ्कमित्याह, तर्हि व्यपगतकर्मकलङ्कमित्येतदेवास्तु किं शेषपदैः ? इत्यत्राह– कैश्चिद्व्यपगतकर्मकलङ्कोऽप्यसर्वज्ञ इष्यते किञ्चिज्ज्ञत्वात्, तद्व्यवच्छेदार्थं कर्मगतिकुशलं सर्वज्ञत्वाभिधायकं पदमाह, तेन भाववीरं अशेषकल्म[2]षध्वान्तरहितं सर्वज्ञं सर्वदर्शिनमित्यभिहितं भवति । ननु किमन्यैः कर्मविपाको नाभिहितः येनाभिधीयते भवता कर्मविपाकः ? इत्यत्रोच्यते उक्तोऽन्यैः, किन्तु व्यासेन, अत्र तु समासेन । इति गाथासमुदायार्थः ॥ १ ॥

क्रियत इति कर्म, इमां व्युत्पत्तिमाश्रित्य कर्मशब्दप्रवृत्तिः, जीवस्य च कर्मणा सार्द्धं[3]मनादिसंयोगोऽभिधीयते तत्कथमिदमविरोधि ? इत्याह—

(पारमा०) तत्र '**वीरमिति**' विशेष्यम् । तं '**नत्वा कर्मविपाकं वक्ष्ये**' इति संबन्धः । शेषतीर्थकृतामपि भावमङ्गलत्वे साधारणे सत्यासन्नोपकारित्वादस्य नमस्कारः । कीदृशं वीरम् ? कर्माण्येव जीवचन्द्रमसः स्वभावशुद्धस्य कलुषत्वापादनेन कलङ्कः, स व्यपगतोऽस्येति व्यपगतकर्मकलङ्कः । एतेन घातिकर्मविलयनप्रतिपादनेन भगवतः स्वस्वरूपापत्तिरुक्ता, अत एव '**कर्मगतिकुशलमिति**' विशेषणं सुघटम् । कर्मणां गतिः परिणतिः, तत्र कुशलं विज्ञम् । नहि विमलकेवलं विना कोऽपि कर्मगतिं परिच्छेत्तुमलम् । यदुक्तम्–"**जीवाण गई कम्माण परिणई पुग्गलाण परियट्टो । मुत्तूण जिणं तह जिण-मयं च को जाणिउं तरइ**" ? ॥१॥ एवं च शास्त्रादौ भावमङ्गलं नमस्कारं कुर्वता व्याख्याङ्गान्यपि सूचितानि । तथाहि–

---

१ नामादिवीरप्रसङ्गः जे० । २ °षसङ्करहितं जे० । ३ मनादिः सं० जे० ।

(श्रीमत्परमानन्दसूरिविरचितवृत्तिः)

निःशेषकर्मोदयमेघजालमुक्तौ दिनाधीश इवोग्रतेजाः ।

प्रदर्शिताशेषपदार्थसार्थो, मुदेऽस्तु नः श्रीजिनवर्द्धमानः ॥१॥

इह हि सन्तः संसारसागरतरणतरणिकल्पं जिनशासनमवाप्य सकलजन्मजीवितसारं परोपकारं मन्यन्ते । स च संसारिणां सकलामङ्गलनिलयकर्मस्वरूपनिरूपणात्तदुन्मूलनप्रवृत्तानां सिद्धो भवतीत्यतस्तत्स्वरूपनिरूपणप्रवणं प्रकरणं चिकीर्षुर्गर्गमहर्षिर्मङ्गलाभिधेयसंबन्धाभिधानबन्धुरां गाथामाह—

ववगयकम्मकलंकं वीरं नमिऊण कम्मगइकुसलं ।
[1]वोच्छं कम्मविवागं, गुरूवइट्ठं समासेणं ॥१॥

(पू०) अस्या व्याख्या—सा च संहितादिक्रमेण—"**संहिता च पदं चैव, पदार्थः पदविग्रहः । चालना प्रत्यवस्थानं, व्याख्या तन्त्रस्य षड्विधा**" ॥ १ ॥ तत्रास्खलितपदोच्चारणं संहिता । सा चेयम्—**व्यपगतकर्मकलङ्कं वीरं नत्वा कर्मगतिकुशलं । वक्ष्ये कर्मविपाकं, गुरूपदिष्टं समासेन** ।१। पदानि पुनः सैव संहिता विच्छेदेनोच्चार्यमाणा २ । पदार्थस्त्वयम्-**वीरं नत्वा वक्ष्ये कर्मविपाकम्** . इति क्रियाकारकसंबन्धः । दिराजनाद्वीरः । विपूर्वस्य '**राजृ दीप्तौ**' इत्यस्य धातोः औणादिडप्रत्ययान्तस्य "**अन्येषामपि**" इति दीर्घत्वे वीर इति रूपम् । तस्यार्थः-विराजते शोभते प्रकाशते वा वीरः । '**शूर वीर विक्रान्तौ**" इत्यस्य वा । तत्रार्थः—महाविक्रान्तो[2]ऽपरवादिशत्रुजयात्, परीषहाद्यक्षोभ्यत्वाद्वा । **ईर गतिप्रेरणयोः**' इत्यस्य वा विपूर्वस्याच्प्रत्यये रूपम् । तस्य पुनरयमर्थः-विशेषेण ईरयति कर्म गमयति याति वा शिवमिति कृत्वा वीरः, गौणं नाम भगवतः । अर्थव्युत्पत्त्यनुसारेणान्येऽप्यर्थाः सन्ति, अतस्तेऽप्यवबोद्धव्याः । तथा चोक्तम्—"**विदारयति यत्कर्म, तपसा च विराजते । तपोवीर्येण युक्तश्च, तस्माद्वीर इति स्मृतः** ॥१॥" '[3]**णमु प्रह्वत्वे शब्दे [च]**' इत्यस्य धातोः क्त्वान्तस्य नत्वेति रूपम् । '**नत्वा**' प्रणम्य "**वोच्छं**" वक्ष्ये अभिधास्ये, किं भूतं वीरम्? इत्याह—**व्यपगतकर्मकलङ्कं**' वि-अप-पूर्वस्य गमेः क्तान्तस्य व्यपगतमिति रूपम् । कर्मैव कलङ्कं कर्मकलङ्कम् । यदा प्रथमातत्पुरुषस्तदाऽयमर्थः—कलङ्कं दूषणं जीवस्वभावस्य कर्मैवाशुभपरिणामपरिणतं कलङ्कं कर्मकलङ्कम् । विशब्दो विशेषार्थः, अपशब्दोऽभावार्थः, विशेषेणापगतं कर्मकलङ्कं यस्यासौ व्यपगतकर्मकलङ्कोऽन्यपदार्थः, अतस्तम् । यदा पुनर्द्वन्द्वः, कर्म च कलङ्कं च कर्मकलङ्के, तदा कर्म ज्ञानावरणीयादि प्रतीतं, कलङ्कं बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नम् । तत्र बाह्यमकीर्त्यादि, आभ्यन्तरमशुभाध्यवसायादि । ते [विशेषेण] अपगते अतीते यस्यासौ व्यपगतकर्मकलङ्कः, अतस्तम् ।

---

१ वोच्छं जे० । २ ० न्तः कषायशत्रु० जे० । ३ णम प्रह्वत्वे शब्दे अस्य धातोः जे० । ४ वोच्छं जे० ।

ननु गमेर्गत्यर्थत्वात्कथमभावार्थः स्यात् ? उच्यते, विअपपूर्वो गमिः स्वभावात् अनेकार्थत्वाद्वा धातूनामभावार्थोऽपि दृष्टः । तथा–'**कर्मगतिकुशलं**' इति कर्मणां गतिः परिच्छित्तिः, तत्परिणामो वा कर्मगतिः, तत्र कुशलो निपुणः सर्वथा तत्परिच्छेदकः । तं नत्वा वक्ष्ये '**कर्मविपाकं**' कर्मणां विपाकोऽनुभवः कर्मविपाकस्तम् । कथंभूतम् ? '**गुरूपदिष्टं**' गुरुभिरुपदिष्टो गुरूपदिष्टो गुरुकथितस्तम् । कथं वक्ष्ये ? '**समासेन**' संक्षेपेण, इति गाथाऽक्षरार्थः । भावार्थस्त्वयम्–व्यपगतकर्मकलङ्ककम्, इत्यनेनापायापगमातिशय उक्तः । वीरं नत्वा, इत्यनेन स्तोतव्यसंपत्पूर्वको नमस्कारोऽभिहितः । कर्मगतिकुशलम्, अनेन तु स्तोतव्यस्यैव ज्ञानातिशयः प्रतिपादितः । कर्मविपाकम्, इत्यनेन त्वभिधेयम् । गुरूपदिष्टम्, पुनरनेनावयवेन शास्त्रस्य पारतन्त्र्यमाह गुरुपर्वक्रमलक्षणसंबन्धकम् । समासेन, इत्यनेन पुनः पदेन प्रयोजनाभिधानम्, '**व्यासाभिधानात्समासाभिधानं प्रयोजनम्**' इत्युक्तेः । कर्मविपाकार्थोऽभिधेयः । अभिधानं तु इदमेव प्रकरणम् । अभिधानाभिधेयलक्षणश्च संबन्धः । इति गाथाभावार्थः ३ । पदविग्रहस्तु पदार्थं दर्शयद्भिर्दर्शित एव ४ । वीरमित्यनेनैव स्तोतव्यसंपदोऽभिहितत्वात् किमर्थं शेषपदोपन्यासः ? इति चालना ५ । प्रत्यवस्थानमाह–वीर इत्येतावन्मात्रे कृते [1]नानाविधवीरप्रसङ्गः स्यात् । तद्व्यु दासार्थं व्यपगतकर्मकलङ्कमित्याह, तर्हि व्यपगतकर्मकलङ्कमित्येतदेवास्तु किं शेषपदैः ? इत्यत्राह–कैश्चिद्व्यपगतकर्मकलङ्कोऽप्यसर्वज्ञ इष्यते किञ्चिज्ज्ञत्वात्, तद्व्यवच्छेदार्थं कर्मगतिकुशलं सर्वज्ञत्वाभिधायकं पदमाह, तेन भाववीरं अशेषकल्म[2]षध्वान्तरहितं सर्वज्ञं सर्वदर्शिनमित्यभिहितं भवति । ननु किमन्यैः कर्ममिपाको नाभिहितः येनाभिधीयते भवता कर्मविपाकः ? इत्यत्रोच्यते उक्तोऽन्यैः, किन्तु व्यासेन, अत्र तु समासेन । इति गाथासमुदायार्थः ॥ १ ॥

क्रियत इति कर्म, इमां व्युत्पत्तिमाश्रित्य कर्मशब्दप्रवृत्तिः, जीवस्य च कर्मणा सार्द्धं[3]मनादिसंयोगोऽभिधीयते तत्कथमिदमविरोधि ? इत्याह—

(पारमा०) तत्र '**वीरमिति**' विशेष्यम् । तं '**नत्वा कर्मविपाकं वक्ष्ये**' इति संबन्धः । शेषतीर्थकृतामपि भावमङ्गलत्वे साधारणे सत्यासन्नोपकारित्वादस्य नमस्कारः । कीदृशं वीरम् ? कर्मण्येव जीवचन्द्रमसः स्वभावशुद्धस्य कलुषत्वापादनेन कलङ्कः, स व्यपगतोऽस्येति व्यपगतकर्मकलङ्कः । एतेन घातिकर्मविलयनप्रतिपादनेन भगवतः स्वस्वरूपापत्तिरुक्ता, अत एव '**कर्मगतिकुशलमिति**' विशेषणं सुघटम् । कर्मणां गतिः परिणतिः, तत्र कुशलं विज्ञम् । नहि विमलकेवलं विना कोऽपि कर्मगतिं परिच्छेत्तुमलम् । यदुक्तम्–"**जीवाण गई कम्माण परिणई पुग्गलाण परियट्टो । मुत्तूण जिणं तह जिण-मयं च को जाणिउं तरइ**" ? ॥१॥ एवं च शास्त्रादौ भावमङ्गलं नमस्कारं कुर्वता व्याख्याङ्गान्यपि सूचितानि । तथाहि–

---

१ नामादिवी°प्रसङ्गः जे० । २ °षसङ्करहितं जे० । ३ मनादिः सं० जे० ।

कर्मविपाकं वक्ष्ये, इत्यनेनाभिधेयाभिधानम् । गुरूपदिष्टम्, इत्यनेन गुरुपर्वक्रमलक्षणसंबन्धाभिधायिना स्वमनीषिकापरिहारोपदर्शनम् । यथा सुधर्मस्वामिना जम्बूस्वामिनः । इत्यादिक्रमेण यावन्मद्गुरुणा ममोपदिष्टं, न तु स्वबुद्धिवैभवोद्भावितमिति । 'समासेन' संक्षेपेण, इत्यनेन संक्षेपरुचिश्रोतृप्रवर्तनम् । नमस्कारश्च चतुरतिशयोपेतस्य भवति, ते चेत्थमत्र भावनीयाः । तथाहि–आद्यपदेनापायागमातिशयः प्रतिपादितः । अपायभूतानि हि घातिकर्माणि, तत्प्रक्षये च ज्ञानातिशयोऽवश्यंभावी, स च कर्मगतिकुशलं, इत्यनेनोक्तः । तद्वतश्च प्रायेण वचनातिशयः स्फुट एव । एतदुपेतश्च भवत्येव देवदानवमानवमाननीयः, इति वचनातिशयपूजातिशयावाक्षिप्तौ, इति चतुरतिशयोपेतत्वम् । इति गाथार्थः ॥१॥

'कर्मविपाकं वक्ष्ये' इत्युक्तम्, अतः कर्मणः शब्दव्युत्पत्तिप्रतिपादनपुरःसरं स्वरूपं निरूपयति–

[1]कीरइ जएण जिएणं, मिच्छत्ताईहिँ चउगइगएणं ।
तेणिह भण्णइ कम्मं अणाइयं तं पवाहेणं ॥२॥

(पू०) अस्या व्याख्या–'क्रियते' निष्पाद्यते 'यतः' यस्मात्कारणात् 'जीवेन' प्राणिना, कैः ? 'मिथ्यात्वादिभिः' मिथ्यात्वमादिर्येषां ते मिथ्यात्वादयः । तत्र मिथ्यात्वमतत्त्वेषु तत्त्वाभिनिवेशः । आदिशब्दादविरतिप्रमादकषायाज्ञानादयो गृह्यन्ते । क (केन) क्रियते ? 'चतुर्गतिगतेन' नारकतिर्यङ्नरामरभवान्तर्गतेन, 'तेन' कारणेन 'इह' प्रवचने लोके वा 'भण्यते' उच्यते कर्म । न विद्यते आदिर्यस्य तदनादि, अनाद्येवानादिकम् । स्वार्थे कः । 'प्रवाहेण' सन्तत्या एकभवापेक्षया सादि, प्रवाहापेक्षया पुनरनादि । यदि प्रवाहापेक्षयाऽपि सादि स्यात्तदा जीवानां पूर्वं कर्मवियुक्तत्वमासीत्, पश्चादकर्मकस्य जीवस्य कर्मणा सह संयोगः सञ्जातः, एवं च सति मुक्तानामपि कर्मयोगः स्यात्, अकर्मकत्वा[2]विशेषत्वात्ततश्च मुक्ता अमुक्ताः स्युः । न चेदं कस्यचिदिष्टम्, इष्टौ वा प्रत्यक्षागमविरोधस्तस्मात्स्थितमेतत्–अनादिर्जीवस्य कर्मणा सह संयोगः । नन्वनादिसंयोगे कथं वियोगः कर्मणा जीवस्य स ? उच्यते, अनादिसंयोगेऽपि वियोगो दृष्टः, सुवर्णोपलवत् । तथाहि–सुवर्णे पाषाणानां यद्यप्य[3]नादिः संयोगस्तथाऽपि तथाविधनरे(रसे)न्द्रादिसद्भावे धमनादिना किट्टवियोगो दृष्टः । एवं जीवस्याप्यनादिकर्मयोगयुक्तस्य ज्ञानदर्शनचारित्रध्यानानलादिभिर्वियोगः सिद्धः । इति गाथार्थः ॥२॥

प्रागभिहितस्यैव कर्मणः स्वरूपभेदा[4]नाह–

(पारमा०) 'क्रियते' निष्पाद्यते 'यतः' यस्मात् 'जीवेन' प्राणिना 'मिथ्यात्वादिभिः' मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगैः 'चतुर्गतिगतेन' नारकतिर्यग्नरामरस्थेन । 'तेन'

---

१ कीरइ गाहा अस्य व्या० जे० । २ विशेषात्ततश्च जे० । ३ प्यनादिसंयोग जे० । ४ भेदमाह– ।

कारणेन 'इह' ग्रन्थे प्रवचने वा कर्म भण्यते । ननु क्रियत इति कर्म, इत्यनया व्युत्पत्त्या सादित्वापत्तिः, ततश्चायमर्थः प्रसजति—यदुत सर्वेऽपि जीवाः पूर्वमकर्माणः सन्तः पश्चात्कर्मणा युज्यन्ते, अकर्मणां च कर्मयोगे मुक्तानामपि कर्मयोगः प्राप्नोत्यकर्मत्वाविशेषात्, ततो मुक्ता अप्यमुक्ताः स्युः, इत्युक्तमनादि तत् । नन्वनादित्वेऽङ्गीक्रियमाणे पारिणामिकजीवत्वस्येव वियोगो न प्राप्नोति, इत्यत उक्तम्—'प्रवाहेण' सन्तत्या पितृ (पुत्र) संतानवत् । अनादिरपि पितृपुत्रसंतानो व्यवच्छिद्यमानो दृष्टः । तथा च[1] सति प्राक्कृतं निर्जरयति विपाकोदयादिभिः, नवीनं चार्जयति मिथ्यात्वादिभिः । इति गाथार्थः ॥२॥

संप्रति मुकुलितस्यैव कर्मणश्चातूरूप्यमाह—

[2]तस्स उ चउरो भेया, पगईमाईउ हुंति नायव्वा ।
मोयगदिट्ठंतेणं, पगईभेओ इमो होइ[3] ॥३॥

(पू०) व्याख्या—'तस्य तु' पुनः कर्मणः प्राक्प्रतिपादितस्य चत्वारो भेदाः सामान्येन । के ते ? इत्याह—'प्रकृत्यादयः' प्रकृतिरादौ येषां ते प्रकृत्यादयः, आदिशब्दात्स्थित्यनुभागप्रदेशबन्धा गृह्यन्ते । भवन्ति 'ज्ञातव्याः' अवबोद्धव्याः 'मोदकदृष्टान्तेन' लड्डुकोदाहरणेन, [4]तथाहि—लड्डुकस्य प्रकृतिः कणिकागुडादयः १, स्थितिः सप्ताहपक्षादिका २, अनुभाग इयता भागेन कणिका, इयद्भागेन गुडः, इयच्च घृतं, शुण्ठ्यादि चैतत्परिमाणम् ३, प्रदेशो रसवीर्यविपाकः ४ । एवं कर्मणोऽपि, प्रकरणं प्रकृतिः प्रकृष्टा वा कृतिः प्रकृतिर्ज्ञानावरणीयादिलक्षणा १ । स्थीयतेऽनयेति स्थितिरुत्कृष्टाद्या २ । अनुरूपो भागः अनुभागः कर्मणामेव विभागेनानुभवनम् ३ । प्रकृष्टो देशः प्रदेशः, तेनानुभवः प्रदेशानुभवो जीवप्रदेशैः कर्मपुद्गलानामनुभवनम् । अयं लड्डुकदृष्टान्तार्थः, अनेन प्रकृतिभेदः 'इमो' अयं वक्ष्यमाणलक्षणः 'शृणुत' आकर्णयत यूयम् । तस्येति पाठान्तरं वा, तत्र 'तस्य' कर्मणः, शेषं पूर्ववत् । इति गाथार्थः ॥३॥

स च मूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतिभेदात् द्विधा, अत आह—

(पारमा०) 'तस्य' पुनः कर्मणश्चत्वारो 'भेदाः' प्रकाराः प्रकृत्यादयः, मकारोऽलाक्षणिकः, प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशलक्षणा भवन्ति ज्ञातव्याः । केन पुनर्निदर्शनेन ? इत्याह—'मोदकदृष्टान्तेन' तथाहि—वातापहारिद्रव्यजन्मा मोदकः प्रकृत्या वातमपहरति, पित्तापहर्तृद्रव्यनिष्पन्नः पित्तम्, श्लेष्मापनायकद्रव्यकृतः श्लेष्माणमिति । स्थित्या तु स एव कश्चिद्दिनमेकमवतिष्ठते, अन्यस्तु दिनद्वयम्, इतरस्तु दिनत्रयम्, यावन्मासादिकमपि कश्चिदवतिष्ठते, ततः परं विनश्यतीति । अनुभागेनापि स्निग्धमधुरत्वलक्षणेन स एव कश्चिदेकगुणानुभागः, अपरस्तु द्विगुणानुभागः, अन्यस्तु त्रिगुणानुभाग इत्यादि । प्रदेशाः कणिकादिद्रव्यरूपाः, तैः स एव

१ "पि" इत्यपि । २ तस्स उ गाहा । तस्य पुनःकर्मणः जे० । ३ व्याख्याकारेण तु "इमो सुणह" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । ४ यथाहि जे० ।

कश्चिदेकप्रसृतिमानः, अपरस्तु द्व्यादिप्रसृतिमान इति । एवं कर्मापि ज्ञानावारकादिपुद्गलैः प्रकृत्या किञ्चिज्ज्ञानमावृणोति, किञ्चिद्दर्शनं किञ्चित्सुखदुःखानुभवं जनयतीत्यादि । स्थित्या तु तदेव किञ्चित्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिकालावस्थायि भवति । अनुभागतस्तु तदेव एकस्थानिकद्विस्थानिकत्रिस्थानिकचतुःस्थानिकमन्दतीव्रतीव्रतरतीव्रतमरसयुक्तम् । प्रदेशतस्तु तदेवाल्पबहुप्रदेशनिष्पन्नमिति । यदाह—'**स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्तः, स्थितिः कालावधारणम् । अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसञ्चयः ॥१॥**" इति । संप्रति प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानामाद्यभेदप्रदर्शनार्थमाह—प्रकृतिभेद एष वक्ष्यमाणो भवति । अयमभिप्रायः—अस्मिन् ग्रन्थे प्रकृतिप्ररूपणैव करिष्यते । इति गाथार्थः ॥३॥

संप्रति मूलोत्तरप्रकृतिसंख्यामाह—

मूलपयडीउ[1] अट्ठ उ, उत्तरपयडीण अट्ठवन्नसयं ।
तासिं सभावभेया, हुंति हु भेया इमे सुणह ॥ ४ ॥

(पू०) व्याख्या—मूले प्रकृतयो 'मूलप्रकृतयः' प्रथमा इत्यर्थः । मूलभूता वा प्रकृतयो मूलप्रकृतय आद्या इत्यर्थः । '**अष्ट तु**' अष्टैव, न तु नव, नापि सप्त, तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् । उत्तराः प्रकृतय उत्तरप्रकृतयः, तासामुत्तरप्रकृतीनां पुनरष्टपञ्चाशदधिकं शतम्, पूर्वतनतुशब्दस्यैव विशेषणार्थत्वात् । विशेषणार्थत्वं चानेकार्थत्वादव्ययानाम् । '**तासां**' प्रकृतीनां '**स्वभावभेदात्**' धर्मभेदाद्भवन्त्येव भेदाः '**इमे**' एते । हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । तांश्च वक्ष्यमाणलक्षणान् '**शृणुत**' आकर्णयत यूयम् । इति गाथार्थः ॥४॥

प्रागभिहितमूलप्रकृतिभेदानाह पढममित्यादिगाथाद्वयेन[2] —

(पारमा०) मूलप्रकृतयोऽष्टौ, उत्तरप्रकृतीनां चाष्टापञ्चाशं शतं भवति । संप्रति भेदसमर्थिकां युक्तिं प्रतिपादयंस्तानेवाह—'**तासां**' मूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतीनां '**स्वभावभेदात्**' स्वरूपवैचित्र्याद्भवन्ति '**भेदाः**'प्रकाराः '**एते**' अनन्तरग्रन्थेन विवक्षिताः शृणुतेति विलम्बपरिहारार्थम् । इति गाथार्थः ॥ ४ ॥

वचसः क्रमवर्तित्वात्प्रथमं मूलप्रकृतीः प्रतिपादयति—

पढमं नाणावरणं बीयं पुण दंसणस्स आवरणं ।
तइयं च वेयणीयं, तहा चउत्थं च[3] मोहणीयं ॥५॥
आऊ नामं गोयं, अट्ठमयं अंतराइयं होइ ।
मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ कित्तेमि ॥ ६ ॥

---

१ उ गाहा । मूले जे० । २ °न प्रथमम् आद्य' जे० । ३ व्याख्याकारेण "तु" पाठमनुसृत्य व्याख्यातम् ।

(पू०) व्याख्या-'**प्रथमं**' आद्यं '**ज्ञानावरणं**' ज्ञानस्य मतिज्ञानादेरावरणमाच्छादनं क्रियते येन कर्मणा तज्ज्ञानावरणम्, द्वितीयं पुनः '**दर्शनस्यावरणं**' चक्षुर्दर्शनादेः स्वरूपतिरोधायकम्। तृतीयं च '**वेदनीयं**' वेद्यते येन सातासातस्वरूपं कर्मणा तद् वेदनीयं भवति। चतुर्थं तु मोहनीयमेव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्। मोहयतीति कृत्वा मोहनीयम्। इति गाथार्थः ॥ ५ ॥ आयुःकर्म पञ्चमं जीवस्य चतुर्गतिभवस्थितिकारणम्। जीवमनेकरूपैरुच्चावचैर्नामयतीति कृत्वा नाम, तच्च षष्ठम्। गां वाचं त्रायतीति गोत्रम्, उच्चैर्गोत्रादिभेदभिन्नं सप्तमम्। अष्टमकमन्तरायिकं भवति। अन्तरायं दानादिविघ्नहेतुः कर्म, अन्तराये भवं अन्तरायिकम्। अन्तरायस्वरूपं वाऽन्तरायिकं दानलाभादिभेदभिन्नम्। '**मूलप्रकृतयः**' आद्यप्रकृतयः '**एताः**' उक्तलक्षणाः। '**उत्तरप्रकृतयः**' तासामेव मूलप्रकृतीनां भेदान्तराणि किञ्चिद्विशेषकृतानि। ताश्च '**कीर्तयामि**' संशब्दयामि। इति गाथाद्वयार्थः ॥ ६ ॥

उक्ता मूलप्रकृतिभेदाः, साम्प्रतमुत्तरप्रकृतिभेदानाह गाथाद्वयेन—

(पारमा०) प्रथमं '**ज्ञानावरणं**' ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति ज्ञानं सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मको बोधः, आव्रियतेऽनेनेत्यावरणम्, मिथ्यात्वादिसचिवजीवव्यापाराहृतकर्मवर्गणान्तःपाती विशिष्टपुद्गलसमूहः। ज्ञानस्यावरणं ज्ञानावरणम् १। द्वितीयं पुनः '**दर्शनस्यावरणम्**' दृश्यतेऽनेनेति दर्शनं सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यग्रहणात्मको बोधः, तस्यावरणं दर्शनावरणम् २। तृतीयं च '**वेदनीयं**' वेद्यते आह्लादादिरूपेणानुभूयते यत्तद् वेदनीयम्। यद्यपि च सर्वं कर्म वेद्यते तथाऽपि पङ्कजादिशब्दवत् वेदनीयशब्दस्य रूढिविषयत्वात्सातासातरूपमेव कर्म वेदनीयम्, इत्युच्यते, न शेषम् ३। तथा चतुर्थं च '**मोहनीयं**' मोहयति सदसद्विवेकविकलं करोत्यात्मानमिति प्रवचनीयादित्वात्कर्तर्यनीयः ४ ॥५॥ '**आयुः**' अर्थात्पञ्चमम्, एति गच्छति प्रतिबन्धकतां नारकादिकुगतेर्निष्क्रमितुमनसो जन्तोरित्यायुः। यद्वा एति गच्छति गत्यन्तरमनेनेत्यायुः ५। '**नाम**' अर्थात् षष्ठम्, नामयति गत्यादिपर्यायानुभवनं प्रति प्रवणयति जीवमिति नाम ६। '**गोत्रं**' अर्थात्सप्तमम्, गूयते शब्द्यते उच्चावचैः शब्दैरात्मा यस्मात्तद् गोत्रम् ७ अष्टमकमन्तरायकं कर्म भवति। जीवं दानादिकं चान्तरा एति, न जीवस्य दानादिकं कर्तुं ददातीत्यन्तरायम्, अन्तरायमेवान्तरायकम्। आर्षत्वाद् यकारस्यैकारः ८। मूलप्रकृतय एताः। अत्र च ज्ञानदर्शनरूपोऽयमात्मेत्यन्तरङ्गत्वादादावेव तदावरणोपादानम्। समानेऽपि चैतदन्तरङ्गत्वे ज्ञानोपयोगे एव सर्वलब्धीनामवाप्तिः। यदुक्तम्—"सव्वाओ लद्धीओ सागरोवउत्तस्स।" इति। अतो ज्ञानस्य प्राधान्यमिति तदावरणस्य प्रथमतः। तदनु दर्शनावरणस्य। ततः केवलिनोऽप्येकविधबन्धकस्य सातबन्धोऽस्तीति व्यापित्वाद् वेदनीयस्य। ततोऽपि प्रायः संसारिणामिष्टानिष्टापत्तितो रागद्वेषौ, तद्रूपं च मोहनी-

कश्चिदेकप्रसृतिमानः, अपरस्तु द्व्यादिप्रसृतिमान इति । एवं कर्मापि ज्ञानावारकादिपुद्गलैः प्रकृत्या किञ्चिज्ज्ञानमावृणोति, किञ्चिद्दर्शनं किञ्चित्सुखदुःखानुभवं जनयतीत्यादि । स्थित्या तु तदेव किञ्चित्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिकालावस्थायि भवति । अनुभागतस्तु तदेव एकस्थानिकद्विस्थानिकत्रिस्थानिकचतुःस्थानिकमन्दतीव्रतीव्रतरतीव्रतमरसयुक्तम् । प्रदेशतस्तु तदेवाल्पबहुप्रदेशनिष्पन्नमिति । यदाह—'**स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्तः, स्थितिः कालावधारणम् । अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसञ्चयः ॥१॥**' इति । संप्रति प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानामाद्यभेदप्रदर्शनार्थमाह—प्रकृतिभेद एष वक्ष्यमाणो भवति । अयमभिप्रायः—अस्मिन् ग्रन्थे प्रकृतिप्ररूपणैव करिष्यते । इति गाथार्थः ॥३॥

संप्रति मूलोत्तरप्रकृतिसंख्यामाह—

मूलपयडीउ[1] अट्ठ उ, उत्तरपयडीण अट्ठवन्नसयं ।
तासिं सभावभेया, हुंति हु भेया इमे सुणह ॥ ४ ॥

(पू०) व्याख्या—मूले प्रकृतयो 'मूलप्रकृतयः' प्रथमा इत्यर्थः । मूलभूता वा प्रकृतयो मूलप्रकृतय आद्या इत्यर्थः । '**अष्ट तु**' अष्टैव, न तु नव, नापि सप्त, तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् । उत्तराः प्रकृतय उत्तरप्रकृतयः, तासामुत्तरप्रकृतीनां पुनरष्टपञ्चाशदधिकं शतम्, पूर्वतनतुशब्दस्यैव विशेषणार्थत्वात् । विशेषणार्थत्वं चानेकार्थत्वादव्ययानाम् । '**तासां**' प्रकृतीनां '**स्वभावभेदात्**' धर्मभेदाद्भवन्त्येव भेदाः '**इमे**' एते । हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । तांश्च वक्ष्यमाणलक्षणान् '**शृणुत**' आकर्णयत यूयम् । इति गाथार्थः ॥४॥

प्रागभिहितमूलप्रकृतिभेदानाह पढममित्यादिगाथाद्वयेन[2] —

(पारमा०) मूलप्रकृतयोऽष्टौ, उत्तरप्रकृतीनां चाष्टापञ्चाशं शतं भवति । संप्रति भेदसमर्थिकां युक्तिं प्रतिपादयंस्तानेवाह—'**तासां**' मूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतीनां '**स्वभावभेदात्**' स्वरूपवैचित्र्याद्भवन्ति '**भेदाः**'प्रकाराः '**एते**' अनन्तरग्रन्थेन विवक्षिताः शृणुतेति विलम्बपरिहारार्थम् । इति गाथार्थः ॥ ४ ॥

वचसः क्रमवर्तित्वात्प्रथमं मूलप्रकृतीः प्रतिपादयति—

पढमं नाणावरणं बीयं पुण दंसणस्स आवरणं ।
तइयं च वेयणीयं, तहा चउत्थं च[3] मोहणीयं ॥५॥
आऊ नामं गोयं, अट्ठमयं अंतराइयं होइ ।
मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ कित्तेमि ॥ ६ ॥

---

१ उ गाहा । मूले जे० । २ °न प्रथमम् आद्यं जे० । ३ व्याख्याकारेण "तु" पाठमनुसृत्य व्याख्यातम् ।

(पू०) व्याख्या–'प्रथमं' आद्यं 'ज्ञानावरणं' ज्ञानस्य मतिज्ञानादेरावरणमाच्छादनं क्रियते येन कर्मणा तज्ज्ञानावरणम्, द्वितीयं पुनः 'दर्शनस्यावरणं' चक्षुर्दर्शनादेः स्वरूपतिरोधायकम्। तृतीयं च 'वेदनीयं' वेद्यते येन सातासातस्वरूपं कर्मणा तद् वेदनीयं भवति। चतुर्थं तु मोहनीयमेव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्। मोहयतीति कृत्वा मोहनीयम्। इति गाथार्थः ॥ ५ ॥ आयुःकर्म पञ्चमं जीवस्य चतुर्गतिभवस्थितिकारणम्। जीवमनेकरूपैरुच्चावचैर्नामयतीति कृत्वा नाम, तच्च षष्ठम्। गां वाचं त्रायतीति गोत्रम्, उच्चैर्गोत्रादिभेदभिन्नं सप्तमम्। अष्टमकमन्तरायिकं भवति। अन्तरायं दानादिविघ्नहेतुः कर्म, अन्तराये भवं अन्तरायिकम्। अन्तरायस्वरूपं वाऽन्तरायिकं दानलाभादिभेदभिन्नम्। 'मूलप्रकृतयः' आद्यप्रकृतयः 'एताः' उक्तलक्षणाः। 'उत्तरप्रकृतयः' तासामेव मूलप्रकृतीनां भेदान्तराणि किञ्चिद्विशेषकृतानि। ताश्च 'कीर्तयामि' संशब्दयामि। इति गाथाद्वयार्थः ॥ ६ ॥

उक्ता मूलप्रकृतिभेदाः, साम्प्रतमुत्तरप्रकृतिभेदानाह गाथाद्वयेन—

(परमा०) प्रथमं 'ज्ञानावरणं' ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति ज्ञानं सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मको बोधः, आव्रियतेऽनेनेत्यावरणम्, मिथ्यात्वादिसचिवजीवव्यापाराहृतकर्मवर्गणान्तःपाती विशिष्टपुद्गलसमूहः। ज्ञानस्यावरणं ज्ञानावरणम् १। द्वितीयं पुनः 'दर्शनस्यावरणम्' दृश्यतेऽनेनेति दर्शनं सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यग्रहणात्मको बोधः, तस्यावरणं दर्शनावरणम् २। तृतीयं च 'वेदनीयं' वेद्यते आह्लादादिरूपेणानुभूयते यत्तद् वेदनीयम्। यद्यपि च सर्वं कर्म वेद्यते तथाऽपि पङ्कजादिशब्दवत् वेदनीयशब्दस्य रूढिविषयत्वात्सातासातरूपमेव कर्म वेदनीयम्, इत्युच्यते, न शेषम् ३। तथा चतुर्थं च 'मोहनीयं' मोहयति सदसद्विवेकविकलं करोत्यात्मानमिति प्रवचनीयादित्वात्कर्तर्यनीयः ४ ॥५॥ 'आयुः' अर्थात्पञ्चमम्, एति गच्छति प्रतिबन्धकतां नारकादिकुगतेर्निष्क्रमितुमनसो जन्तोरित्यायुः। यद्वा एति गच्छति गत्यन्तरमनेनेत्यायुः ५। 'नाम' अर्थात् षष्ठम्, नामयति गत्यादिपर्यायानुभवनं प्रति प्रवणयति जीवमिति नाम ६। 'गोत्रं' अर्थात्सप्तमम्, गूयते शब्दयते उच्चावचैः शब्दैरात्मा यस्मात्तद् गोत्रम् ७ अष्टमकमन्तरायकं कर्म भवति। जीवं दानादिकं चान्तरा एति, न जीवस्य दानादिकं कर्तुं ददातीत्यन्तरायम्, अन्तरायमेवान्तरायकम्। आर्षत्वाद् यकारस्येकारः ८। मूलप्रकृतय एताः। अत्र च ज्ञानदर्शनरूपोऽयमात्मेत्यन्तरङ्गत्वादादावेव तदावरणोपादानम्। समानेऽपि चैतदन्तरङ्गत्वे ज्ञानोपयोगे एव सर्वलब्धीनामवाप्तिः। यदुक्तम्–"सव्वाओ लद्धीओ सागरोवउत्तस्स।" इति। अतो ज्ञानस्य प्राधान्यमिति तदावरणस्य प्रथमतः। तदनु दर्शनावरणस्य। ततः केवलिनोऽप्येकविधबन्धकस्य सातबन्धोऽस्तीति व्यापित्वाद् वेदनीयस्य। ततोऽपि प्रायः संसारिणामिष्टानिष्टापत्तितो रागद्वेषौ, तद्रूपं च मोहनी-

यमिति तस्य । तनर्थं तत्प्रकर्षापकर्षभावित्वादायुर्बन्धनिबन्धनानां महारम्भपरिग्रहत्वादीनाम्, तदुक्तं चायुष्कमिति तस्य । तदुदयश्च गत्यादिनामोदयाविनाभावी यतो नाम्नः । ततोऽपि च नरकगत्यादिनामोदयसद्भावेऽवश्य गोत्रकर्मोदय इति गोत्रस्य । तस्माच्चोच्चनीचभेदभिन्नात्प्रायो दानादिलब्धिभावाभावौ, तयोश्चान्तरायक्षयोदयावन्तरङ्गहेतू, इति तदनन्तरमन्तरायस्येति । उत्तरप्रकृतिप्रस्तावनायाह—उत्तरप्रकृतीः कीर्तयामि ॥६॥

ताश्चेमाः—

[1]पञ्चविह नाणवरणं, नव भेया दंसणस्स दो वेए।
अट्ठावीसं मोहे, चत्तारि य आउए हुंति ॥७॥
नामे तिउत्तरसयं, दो गोए अंतराइए पंच ।
एएसि भेयाणं, होइ[2] विवागो इमो सुणह ॥८॥

(पू०) व्याख्या—'पचविधं' पञ्चप्रकारं 'ज्ञानावरणं' कर्म ज्ञानस्वरूपतिरोधायकम् । 'नव भेदाः' नव प्रकाराः 'दर्शनस्य' दर्शनावरणकर्मणः । 'द्वौ भेदौ 'वेदे' वेदनीयकर्मणि । अष्टाविंशतिभेदाः 'मोहे' मोहनीयकर्मणि । चत्वारश्च' 'आयुष्के' [3]आयुष्ककर्मणि 'भवन्ति' जायन्ते 'भेदाः' विशेषाः । लुप्तानुस्वाराकारे प्रथमे द्वे पदे आर्षत्वात्प्राकृतत्वाद्वा । ज्ञानस्य वरणं ज्ञानवरणम्, इति पाठान्तरं [4]वा । एतावत्पाठे सुस्थमेव । इति प्रथमगाथार्थः ॥७॥ द्वितीयगाथामाह [5]—'नामे' नामकर्मणि 'त्र्युत्तरं शतं' त्र्यधिकं शतं भेदानामिति गम्यते । द्वौ भेदौ गोत्रे, अन्तरायिके पञ्च भेदाः । 'एतेषां भेदानां' सर्वेषामपि विशेषाणां 'भवन्ति' जायन्ते हुः पादपूरणे, भेदाः' विशेषाः सामान्य स्वरूपविशेषस्वरूपनिर्दिष्टाः 'इमे' एते 'शृणुत' आकर्णयत यूयम् । इति गाथाद्वयार्थः ॥८॥

दृष्टान्तद्वारेणैतेषामेव सामान्यविशेषभेदानां स्वरूपं स्फुटीकुर्वन्नाह—

(पारमा०) पञ्चविधज्ञानावरणं, आर्षत्वादाकारलोपः । 'वरण' इत्यस्य वाऽऽवरणार्थता । यथा गुरुत्वरणकमेव तम इत्यत्र । एवमग्रेऽप्यवगन्तव्यम् । नव भेदा दर्शनस्य । द्वौ वेदनीये । अष्टाविंशतिर्मोहे । चत्वारश्चायुषि भवन्ति ॥७॥ नामकर्मणि त्र्युत्तरं शतम् । द्वौ गोत्रे । अन्तरायके पञ्च । एतेषां भेदानां भवति विपाकः 'एषः' अनन्तरगाथया वक्ष्यमाणः । इति गाथाद्वयार्थः ॥ ८ ॥

प्रतिज्ञातमाह—

---

१ पंचविहं गाहा । पञ्चविधं जे० । २ व्याख्याकारेण तु "हुंति हु भेया इमे सुणह" इत्येतत्पाठानुसारेण व्याख्यानम् । ३ आयुष्कर्मणि जे० । ४ वा तरिमम् पाठे जे० । ५ ०ह—नामे० गाहा । नामे नामकर्मणि जे० । ६ ०त्र्यधिकोपं ५ । पढ० गाहा । पटः जे० ।

पडपडिहारसिमज्ज-हडिचित्तकुलालभंडगारीणं ।
जह एएसिं भावा [1]कम्माण वि जाण तह [2]चेव ॥९॥

(पू०)व्याख्या–पटः=शाटकः, प्रतीहारो=राजदौवारिकः, असिः=खड्गम् , मद्य=मागधः, हडिः [3]पोढकः, चित्रं=चित्रकर्म चित्रकरो वेति, कुलालः=कुम्भकारः, भाण्डागारिको=भाण्डागारे नियुक्तः। पटश्च प्रतीहारश्चासिश्च मद्यं च–मद्यशब्दस्या-ऽऽकारोऽलाक्षणिकः प्राकृतत्वात् , हडिश्च[4] चित्रं च कुलालश्च भाण्डागारी च द्वन्द्वः (एषां द्वन्द्वस्तेषां)। यथा एतेषां 'भावाः' स्वरूपाणि गर्भार्थाः कर्मणां 'तथा' तेनैव प्रकारेण 'मन्तव्याः'ज्ञातव्याः स्वरूपभेदाः। इति गाथार्थः॥९॥

पटादिदृष्टान्तानेव प्रकटयन्नाह–

(पारमा०) पटप्रतीहारअसिमद्यहडिचित्रमिति सूचनात्सूत्रस्य चित्रकरोऽभिधीयते, कुलाल-भाण्डागारिकाणाम् । यथा एतेषां 'भावाः' आवारकादिस्वरूपाणि कर्मणामपि जानीहि तथा चैव । इति गाथार्थः ॥ ९ ॥

संप्रति ज्ञानावरणस्य पटौपम्यं भावयति–

सरउग्गयससिनिम्मल-यरस्स जीवस्स छायणं जमिह ।
नाणावरणं कम्मं, पडोवमं होइ एवं तु ॥१०॥

(पू०) व्याख्या–शरदि उद्गतः शरदुद्गतः, स चासौ शशी च शरदुद्गतशशी, तस्मान्निर्मल-तरः तस्य, 'जीवस्य' प्राणिनः 'छादनं' स्वभावतिरस्करणं यद् 'इह' लोके तदिह ज्ञानावरणं कर्म भण्यते, तच्च 'पटोपमं' भवति जीवस्य पटतुल्यम्। इति गाथार्थः ॥ १० ॥

ज्ञानावरणस्य पटोपमामभिधाय साम्प्रतं यथा तज्जीवस्य [5]च्छादनं भवति तथा दृष्टान्तेनाह–

(पारमा०) शरदुद्गतशशिनिर्मलतरस्य 'जीवस्य च्छादनं'जीवस्वभावस्य नैर्मल्यस्य तिरोधायकं यत्तद् 'इह' लोके ज्ञानावरणं कर्म पटोपमं भवति । 'एवं' वक्ष्यमाणरीत्या । 'तुः' पुनरर्थे । इति गाथार्थः ॥ १० ॥

ज्ञानावरणस्य पटौपम्यमुक्तम्। सम्प्रति पटस्यावारकत्वमभिधाय ज्ञानावरणे योजयति–

जह निम्मलावि चक्खू, पडेण केणावि छाइया संती ।
मंदं मंदतरागं, पिच्छइ सा निम्मला जइवि ॥११॥
तह मइसुयनाणाणं, ओहीमणकेवलाण आवरणं ।
जीवं निम्मलरूवं, आवरइ इमेहि भेएहि ॥१२॥

---

१ व्याख्याकारेण तु–"कम्माणं तह मुणेयव्वा" इत्येतत्पाठानुसारेण व्याख्यातम् । २ 'भावा' इत्यपि क्वचित् । ३ खोटकः, जे० । ४ हडिश्च जे० । ५ च्छादकं जे० ।

(पू०) व्याख्या—यथा '**निर्मलाऽपि**' काचकामलादिदोषरहिताऽपि '**चक्षुः**' दृष्टिः '**पटेन**' वस्त्रेण '**केनापि**' अनिर्दिष्टनाम्ना '**आदिना**' स्थगिता सती मन्दं मन्दतरं पश्यति आवारकविशेषात्। सा निर्मला यद्यपि स्वभावेन । इति गाथार्थः ॥ ११ ॥ उक्तो दृष्टान्तः, दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

तथा मतिश्रुतज्ञानावरणं अवधिमनःकेवलानामावरणं यत्तज्जीवं '**निर्मलरूपं**' शुद्धस्वरूपम् '**आवृणोति**' छादयति '**एभिर्भेदैः**' वक्ष्यमाणलक्षणैः । इति गाथार्थः ॥ १२ ॥

मतिज्ञानभेदनिदर्शनद्वारेणावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) यथा निर्मलमपि चक्षुः पटेन '**केनापि**' मसृणमसृणतरादिना छादितं सत् मन्दं '**मन्दतरकं**' मन्दतरमेव मन्दतरकं पश्यति '**तन्निर्मलं यद्यपि**' चक्षुर्हि स्वभावनिर्मलमपि मसृणपटेनाच्छादितं मन्दं पश्यति मसृणतरेण तु मन्दतरमिति । चक्षुःशब्दस्य प्राकृतत्वात्स्त्रीत्वम् ॥ ११ ॥ तथा मतिश्रुतज्ञानयोर्द्विवचनस्य बहुवचनं प्राकृतत्वात् । अवधिमनःकेवलानां मनःशब्देन मनःपर्यवमुच्यते, सूचनात्सूत्रस्य, मतिश्रुतज्ञानयोरवधिमनःपर्यवकेवलानां चावरणं तथेति । कोऽर्थः ? यथा यथा मतिज्ञानावरणादीनां निचितत्वं तथा तथा पटावृतचक्षुष इवाल्पज्ञानं जीवस्य । एतदेवाह—जीवं '**निर्मलरूपं**' अकलुषस्वभावमावृणोति '**एभिर्भेदैः**' अभिधास्यमानैः । मत्यादिव्युत्पत्तिस्तु व्याख्यानावसरे निरूपयिष्यते । इति गाथाद्वयार्थः ॥ १२ ॥

सम्प्रति मतिज्ञानावरणं सप्रभेदमाह—

अट्ठावीसइभेयं, मइनाणं इत्थ वण्णियं समए ।
तं आवरेइ जं तं, मइआवरणं हवइ पढमं ॥१३॥

(पू०) व्याख्या—अष्टाविंशतिभेदं मतिज्ञानं संख्यया '**अत्र**' लोके '**वर्णितं**' कथितं '**समये**' सिद्धान्ते तद् '**आवृणोति**' छादयति यत्तन्मत्यावरणं भवति '**प्रथमं**' आद्यम् । इति गाथासमासार्थः । भावार्थस्त्वयम्–यदुक्तमष्टाविंशतिभेदं मतिज्ञानं तत्कथं स्यात् ? उच्यते—आगमानुसारेण—व्यञ्जनावग्रहः, अर्थावग्रहश्च । तत्र व्यज्यन्ते व्यक्तीक्रियन्ते एभिरर्थाः व्यञ्जनानीन्द्रियाणि तैरवग्रहणमवग्रहः[1] सामयिकः, सामान्यार्थपरिच्छेदः व्यञ्जनावग्रहः । स च चतुर्विधो "**नयनमनो**[2]**वर्ज्यम्**" इति वचनात् । तथाहि—न चक्षुषाऽर्थो व्यज्यते=गम्यते=प्राप्यते, अप्राप्यकारित्वाच्चक्षुषः । किन्तु योग्यदेशस्थमेव चक्षुर्योग्यदेशस्थमर्थं गृह्णाति साक्षात्करोति, न पुनः [3]प्राप्य गृह्णाति । प्राप्यग्रहणे चक्षुषः स्फोटादिरनिन्द्रियं चाधिष्ठानं स्यात् । तथा मनोऽप्येवमेव द्रष्टव्यम् , तस्याप्यप्राप्यकारित्वात् । अर्थस्यावग्रहणमवग्रहोऽर्थपरिच्छेदः । सोऽपि सामयिक एव । स च षड्विधः, इन्द्रियपञ्चकेन मनसा चार्थग्रहणात् । तदुत्तरकालभाविनी ईहा, ईहनमीहा—चेष्टा कायवाङ्मनोलक्षणा । सा तु मौहूर्तिकी षड्विधा । तदनन्तरमपायो निश्चयः । सोऽपि षड्विध

१ इह एकसामयिकः, जे० । २ ०वर्जम् । ३ प्राप्यं जे० । तस्याप्राप्या० जे० ।

एव मौहूर्तिकः । ततो धारणा, [1]स्मृतिः कालान्तरेऽर्थस्मरणरूपा अर्थाविच्युतिर्वा, साऽपि षड्विधा, असंख्यकालिकी संख्येयकालिकी वा । एवं सर्वेऽपि मिलिताश्चतुर्विंशतिभेदा[2] व्यञ्जनावग्रहचतुर्भेदसहिता अष्टाविंशतिर्भेदा मतिज्ञानस्य जायन्ते । एतच्चाष्टाविंशतिभेदभिन्नं मतिज्ञानं येन कर्मणा छाद्यते स्वकार्यजननं प्रति अकिञ्चित्करं क्रियते तन्मतिज्ञानावरणम् । इति गाथाभावार्थः ॥१३॥

उक्तं मतिज्ञानावरणम् । श्रुतज्ञानावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) **'मन ज्ञाने'** मननं मतिः । यद्वा मन्यते इन्द्रियमनोद्वारेण नियतं वस्तु परिच्छिद्यतेऽनयेति मतिः, योग्यदेशावस्थितवस्तुविषय इन्द्रियमनोनिमित्तोऽवगमविशेषः । मतिश्चासौ ज्ञानं च मतिज्ञानम् । तच्चाष्टाविंशतिभेदम् **'अत्र'** जैने समये वर्णितम् । तद्यथा—अवग्रह-ईहाऽपायो धारणा च । तत्रावग्रहो द्विधा, व्यञ्जनावग्रहोऽर्थावग्रहश्च । तत्र व्यञ्जनावग्रहश्चक्षुर्मनोवर्जेन्द्रियाणां स्वविषयद्रव्यैः सह संबन्धः, ततश्चतुर्धा नयनमनसोरप्राप्यकारित्वेन विषयसंबन्धाभावादस्य चेन्द्रियविषययोः संबन्धग्राहकत्वादिति भावः । अर्थावग्रहः, किमपीदमित्यव्यक्तं ज्ञानम् । स च मनःसहितेन्द्रियपञ्चकजन्यत्वात्षोढा । अवगृहीतस्यैव वस्तुनोऽपि किमयं भवेत् ? स्थाणुः पुरुषो वा ?, इत्यादिवस्तुधर्मान्वेषणात्मको वितर्क ईहा । साऽपि मनःषष्ठेन्द्रियपञ्चकजन्या इत्यतः षोढैव वस्तुनः स्थाणुरेवायं न पुरुषः, इति निश्चयात्मको बोधोऽपायः । अयमपि पूर्ववत्षोढैव । निश्चितस्यैवाविच्युतवासनात्मकं स्मरणं धारणा । साऽप्युक्तरीत्या षोढैव । तदेवमर्थावग्रहादीनां चतुर्णां प्रत्येकं षड्विधत्वाच्चतुर्विंशतिः । ततश्च व्यञ्जनावग्रहभेदचतुष्टयेन सहाष्टाविंशतिविधं मतिज्ञानम् । तथा चागमः—**"पंचहि वि इंदिएहिं, मणसा अत्थोग्गहो मुणेयव्वो । चक्खिंदिय[3]मणरहियं, वंजणमीहाइयं छद्धा"** ॥१॥ इति तदेवमष्टाविंशतिभेदं मतिज्ञानमावृणोति यत्कर्म तदष्टाविंशतिभेदमपि सामान्येन मतिज्ञानावरणं भवति **'प्रथमं'** आद्यम् । इति गाथार्थः ॥१३॥

अधुना श्रुतज्ञानावरणमाह—

चोद्दसभेएसु गयं, सुयनाणं इत्थ वण्णियं समए ।
तस्सावरणं जं पुण, सुयआवरणं हवइ बीयं ॥१४॥

(पू०) व्याख्या—चतुर्भिरधिका दश चतुर्दश, ते च ते भेदाश्च चतुर्दशभेदाः, तेषु **'गत'** स्थितं **'श्रुतज्ञानं'** प्रतीतं **'अत्र'** कर्मव्याख्याप्रस्तावे **'वर्णितं'** प्रतिपादितम् **'समये'** सिद्धान्ते, **'तस्य'** श्रुतज्ञानस्य **'आवरणं'** छादनं यत्पुनः तच्छ्रुतावरणं भवति द्वितीयमिति गाथाक्षरार्थः । भावार्थस्त्वयम्—श्रुतज्ञानं चतुर्दशविधं प्रतिपादितं तद्यथा भवति तथा दर्श्यते श्रुतानुसारेण—अक्षररूपं श्रुतमक्षरश्रुतम् १ । तत्प्रतिपक्षोऽनक्षरश्रुतं उच्छ्वसितादि २ । संज्ञिनो

१ श्रुतिः जे० । २ तिभेदा जे० । ३ 'मणवज्जं' इत्यपि ।

(पू०) व्याख्या—यथा 'निर्मलाऽपि' काचकामलादिदोषरहिताऽपि 'चक्षुः' दृष्टिः 'पटेन' वस्त्रेण 'केनापि' अनिर्दिष्टनाम्ना 'छादिता' स्थगिता सती मन्दं मन्दतरं पश्यति आवारकविशेषात् । सा निर्मला यद्यपि स्वभावेन । इति गाथार्थः ॥ ११ ॥ उक्तो दृष्टान्तः, दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

तथा मतिश्रुतज्ञानावरणं अवधिमनःकेवलानामावरणं यत्तज्जीवं 'निर्मलरूपं' शुद्धस्वरूपम् 'आवृणोति' छादयति 'एभिर्भेदैः' वक्ष्यमाणलक्षणैः । इति गाथार्थः ॥ १२ ॥

मतिज्ञानभेदनिदर्शनद्वारेणावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) यथा निर्मलमपि चक्षुः पटेन 'केनापि' मसृणममृणतरादिना छादितं सत् मन्दं 'मन्दतरकं' मन्दतरमेव मन्दतरकं पश्यति 'तन्निर्मलं यद्यपि' चक्षुर्हि स्वभावनिर्मलमपि मसृणपटेनाच्छादितं मन्दं पश्यति मसृणतरेण तु मन्दतरमिति । चक्षुःशब्दस्य प्राकृतत्वात्स्त्रीत्वम् ॥ ११ ॥ तथा मतिश्रुतज्ञानयोर्द्विवचनस्य बहुवचनं प्राकृतत्वात् । अवधिमनःकेवलानां मनःशब्देन मनःपर्यवमुच्यते, सूचनात्सूत्रस्य, मतिश्रुतज्ञानयोरवधिमनःपर्यवकेवलानां चावरणं तथेति । कोऽर्थः ? यथा यथा मतिज्ञानावरणादीनां निचितत्वं तथा तथा पटावृतचक्षुष इवाल्पज्ञानं जीवस्य । एतदेवाह—जीवं 'निर्मलरूपं' अकलुषस्वभावमावृणोति 'एभिर्भेदैः' अभिधास्यमानैः । मत्यादिव्युत्पत्तिस्तु व्याख्यानावसरे निरूपयिष्यते । इति गाथाद्वयार्थः ॥ १२ ॥

सम्प्रति मतिज्ञानावरणं सप्रभेदमाह—

अट्ठावीसइभेयं, मइनाणं इत्थ वण्णियं समए ।
तं आवरेइ जं तं, मइआवरणं हवइ पढमं ॥१३॥

(पू०) व्याख्या—अष्टाविंशतिभेदं मतिज्ञानं संख्यया 'अत्र' लोके 'वर्णितं' कथितं 'समये' सिद्धान्ते तद् 'आवृणोति' छादयति यत्तन्मत्यावरणं भवति 'प्रथमं' आद्यम् । इति गाथासमासार्थः । भावार्थस्त्वयम्-यदुक्तमष्टाविंशतिभेदं मतिज्ञानं तत्कथं स्यात् ? उच्यते—आगमानुसारेण—व्यञ्जनावग्रहः, अर्थावग्रहश्च । तत्र व्यज्यन्ते व्यक्तीक्रियन्ते एभिरर्थाः व्यञ्जनानीन्द्रियाणि तैरवग्रहणमवग्रहः[1] सामयिकः, सामान्यार्थपरिच्छेदः व्यञ्जनावग्रहः । स च चतुर्विधो "नयनमनो[2]वर्ज्यम्" इति वचनात् । तथाहि—न चक्षुषाऽर्थो व्यज्यते=गम्यते=प्राप्यते, अप्राप्यकारित्वाच्चक्षुषः । किन्तु योग्यदेशस्थमेव चक्षुर्योग्यदेशस्थमर्थं गृह्णाति साक्षात्करोति, न पुनः [3]प्राप्य गृह्णाति । प्राप्यग्रहणे चक्षुषः स्फोटादिरनिन्द्रियं चाधिष्ठानं स्यात् । तथा मनोऽप्येवमेव द्रष्टव्यम् , तस्याप्यप्राप्यकारित्वात् । अर्थस्यावग्रहणमवग्रहोऽर्थपरिच्छेदः । सोऽपि सामयिक एव । स च षड्विधः, इन्द्रियपञ्चकेन मनसा चार्थग्रहणात् । तदुत्तरकालभाविनी ईहा, ईहनमीहा—चेष्टा कायवाङ्मनोलक्षणा । सा तु मौहूर्तिकी षड्विधा । तदनन्तरमपायो निश्चयः । सोऽपि षड्विध

१ ह्रः एकसामयिकः, जे० । २ ०वर्जम् । ३ प्राप्यं जे० । तस्याप्राप्या० जे० ।

(पू०) व्याख्या—अनुगमनशीलोऽनुगामी, वर्द्धनशीलो वर्द्धमानः, वर्द्धमान एव वर्द्धमानकः, स्वार्थे कः । अनुगामी च वर्द्धमानकश्चानुगामिवर्द्धमानकौ, तौ च तौ भेदौ चानुगामिवर्द्धमानकभेदौ, तौ आदिर्येषां भेदानां तेऽनुगामिवर्द्धमानकभेदादयः, तेषु 'वर्णितः' कथितः 'इह' प्रवचने व्याख्याप्रस्तावे वा । अनुस्वारः प्राकृतत्वात् । 'अवधिः' मर्यादापरिच्छेदलक्षणस्तं 'आवृणोति' छादयति यदपि च कर्म 'अवध्यावरणकं तदपि' अवध्याच्छादकं तदपि ज्ञातव्यमित्यध्याहारः । इति गाथार्थः ॥१५॥

उक्तमवधिज्ञानावरणम् । मनःपर्यवज्ञानावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) अवशब्दोऽधःशब्दार्थः । अव=अधोऽधो विस्तृतं वस्तु धीयते परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः । यद्वाऽवधि=र्मर्यादा रूपिद्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा, तदुपलक्षितं ज्ञानमप्यवधिः । स च अनुगामिवर्द्धमानकभेदादिषु, इति तृतीयार्थे सप्तमी । ततश्चानुगामिवर्द्धमानकभेदादिभिः 'वर्णितः' प्रतिपादितः इहेति पूर्ववत् । तदावृणोति यत्कर्म तद् 'अवध्यावरणम्' अवधिज्ञानावरणमिति जानीहि । इति गाथार्थः ॥१७॥

मनःपर्यवज्ञानावरणमाह—

रिउमइविउलमईहिं[1], मणपज्जवनाणवण्णणं[2] समए ।
तं आवरियं जेणं, [3]तंपि हु मणपज्जवावरणं ॥१६॥

(पू०) व्याख्या—ऋज्वी मतिर्यस्मिन् तदृजुमति, विपुला मतिर्यस्मिन् तद्विपुलमति । ऋजुमति च विपुलमति च ऋजुमतिविपुलमतिनी ताभ्यां, 'मनःपर्यवज्ञानवर्णनं' मनोगतभावपरिच्छेदकथनं 'समये' सिद्धान्ते प्रतिपादितं 'तदावृतं येन' तदाच्छादितं येन तदपि 'हुः' पादपूरणे, [4]'मनःपर्यवावरणं' मनोगतभाव[5]परिच्छेदकाच्छादकं जानीहि [इति] क्रियाध्याहारः । इति गाथार्थः ॥१६॥

अभिहितं मनःपर्यवज्ञानावरणम् । केवलज्ञानावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) पर्यवति=समन्तादवगच्छतीति पर्यवम् । मनसः पर्यवं मनःपर्यवम्; तच्च तज्ज्ञानं च मनःपर्यवज्ञानम्, तस्य वर्णनं=प्रकाशकत्वादिगुणकथनं मनःपर्यवज्ञानवर्णनम्, ऋज्वी मतिरस्येति ऋजुमतिः, विपुला मतिरस्येति विपुलमतिः, ताभ्यां ऋजुमतिविपुलमतिभ्यां कृत्वा 'समये' सिद्धान्ते क्रियत इति शेषः । यत उक्तं मनःपर्यवज्ञानप्ररूपणायाम्—"तं दुविहं तंजहा—उज्जुमई विउलमई अ" इत्यादि । अशेषविशेषास्तु नन्दितः एवावसेयाः, संक्षेपमात्रत्वादस्येति । तदावृतं येन कर्मणा तज्जानीहि मनःपर्यवज्ञानावरणम् । इति गाथार्थः ॥१॥

१ "ईहि य" इत्यपि पाठः । २ "०वण्णियं" इत्यपि पाठः । ३ 'तं पुण' इत्यपि ४ नःपर्यवज्ञानावरणं- जे० ५ परिच्छेदाच्छादकं जे० ।

मनोयुक्तस्य श्रुतं संज्ञिश्रुतम् ३। तद्विपरीतमसंज्ञिश्रुतम् ४। सम्यग=ऽविपरीतं श्रुतं सम्यक्श्रुतम्, सम्यग्दृष्टेर्वा यच्छ्रुतं तत्सम्यक्श्रुतम् ५ । तद्विपरीतं मिथ्याश्रुतम् ६ । सादि, आदियुक्तं श्रुतं सादिश्रुतम्, । [1]अनादिश्रुतं, अविद्यमानादि श्रुतमनादिश्रुतम् ८ । सह पर्यवसानेन वर्तते यत्त-त्सपर्यवसितम् ९। तद्विपरीतं त्वपर्यवसितम् १० । गमाः सदृशपाठविशेषाः, ते विद्यन्ते यस्य तत्र वा भवं तद्गमिकम् ११ । तत्प्रतिपक्षस्त्वगमिकम् १२ । अङ्गप्रविष्टं अङ्गश्रुतम् १३ । तद्विपरीतं त्वनङ्गश्रुतम् १४ । एवंभूतमिदं श्रुतज्ञानमावृणोति=च्छादयति यज्ज्ञानं तच्छ्रुतज्ञानावरणम् । इति गाथाभावार्थः ॥१४॥

अवधिज्ञानावरणस्वरूपभेदानाह—

(पारमा०) श्रवणं श्रुतम्, अभिलापप्लावितार्थग्रहणहेतुरुपलब्धिविशेषः । एवमाकारं वस्तु घटशब्दाभिलाप्यं जलधारणाद्यर्थक्रियासमर्थम्, इत्यादिरूपतया प्रधानीकृतत्रिकालसाधारण-समानपरिणामः शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी इन्द्रियमनोनिमित्तोऽवगमविशेष इत्यर्थः । श्रुतं च तज्ज्ञानं च श्रुतज्ञानं चतुर्दशभेदेषु गतम्, इति द्वितीयार्थे सप्तमी । ततश्चतुर्दशभेदान् प्राप्तं चतुर्दशभेदमिति यावत् । ते चामी–अक्षरश्रुतं, अक्षरश्रवणदर्शनादेरर्थप्रतीतिः १ । अनक्षरश्रुतं, सेण्टितादिश्रवणान्मामाह्वयतीत्यादिरूपाभिप्रायपरिज्ञानम् २ । समनस्कस्य मनोयुक्तेन्द्रिय-जमुक्तरूपं श्रुतं संज्ञिश्रुतम् ३ । तदेवामनस्कस्य मनोरहितेन्द्रियजमसंज्ञिश्रुतम् ४ । सम्यग्दृष्टे-र्जिनप्रणीतमितरद्वा श्रुतं यथास्वरूपागमात् सम्यक्श्रुतम् ५ । तदेव मिथ्यादृष्टेरन्यथावगमा-न्मिथ्याश्रुतम् ६ । सादिश्रुतं, ज्ञानात्मकं सम्यग्दृष्टेरज्ञानात्मकं वा सम्यक्त्वच्युतस्य मिथ्यादृष्टेः ७ पूर्वमलब्धसम्यक्त्वस्य तु तदेवानादिश्रुतम् । ८ सपर्यवसितं भव्यानां केवलोत्पत्तौ ध्रुवं पर्यवसा-नात् ९ । अपर्यवसितमभव्यानां केवलोत्पादाभावात् १० । अर्थभेदे सदृशालापकं गमिकम् ११ । इतरदगमिकम् १२ । अङ्गप्रविष्टमाचाराद्यङ्गानि १३ । अनङ्गप्रविष्टं, शेषं प्रकीर्णकादि १४ । एवं चतुर्दशभेदं श्रुतज्ञानम् 'अत्र' जैनसमये 'वर्णितं' कथितम् । स चायम्–"**अक्खरसन्नी सम्मं, साईयं खलु सपज्जवसियं च । गमियं अंगपविट्ठं, सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥१॥**" इति । तस्यावरणं यत्पुनस्तत् '**श्रुतज्ञानावरणम्**' इति श्रुतज्ञानावरणं भवति द्वितीयम् । इति गाथार्थः ॥१४॥

इदानीमवधिज्ञानावरणमाह—

अणुगामिवड्ढमाणय-भेयाइसु वण्णिओ इहं ओही ।
तं आवरेइ [2]जं तं, अवहीआवरणयं जाण ॥१५॥

---

१ अनादि, अविद्य० जे० । २ "जं पि य ओहीआवरणयं तं पि" इत्येतत्पाठमनुसृत्य व्याख्याकारेण व्याख्यातम् ।

दंसणसीले जीवे, दंसणघायं करेइ जं कम्मं ।
तं पडिहारसमाणं दंसणवरणं भवे बीयं ॥१९॥

व्याख्या—[1]'दर्शनशीले' दर्शनस्वभावे 'जीवे' प्राणिनि 'दर्शनघातं' दर्शनहननं 'करोति' विदधाति 'यत्' कर्म तत् [2]'प्रतीहारसमानं' प्रतीहारतुल्यं [3]'दर्शनावरणं' दर्शनच्छादनं 'भवति' जायते जीवस्य । इति गाथार्थः ॥१९॥

[4]दृष्टान्तमाह—

(पारमा०) दर्शनं शीलं स्वभावो यस्य स तथा 'दर्शनशीले' इति षष्ठीसप्तम्योरर्थं प्रत्यभेदाद्दर्शनशीलस्य जीवस्येत्यर्थः । एवमन्यत्रापि भावनीयम् । दर्शनघातं करोति यत्कर्म तत्प्रतीहारसमानं दर्शनावरणं भवेद् द्वितीयम् । इति गाथार्थः ॥१९॥

प्रतीहारसाम्यं च तद्धर्मावगमे सुज्ञानम्, अतस्तत्स्वरूपं दृष्टान्तेनाह—

जह रण्णो पडिहारो अणभिप्पेयस्स सो उ लोयस्स ।
रण्णो तहि दरिसावं न देइ दट्ठु पि कामस्स ॥२०॥

व्याख्या—यथा 'राज्ञः' भूपतेः 'प्रतीहारः' राजदौवारिकः 'अनभिप्रेतस्य' अनभीष्टस्य 'स तु' स एव दौवारिको लोकस्य' प्राणिसमूहस्य 'राज्ञः' भूभृतः 'तत्र' तस्मिन् स्थाने 'दर्शनं' राज्ञो निरीक्षणं 'न ददाति' न प्रयच्छति 'द्रष्टुकामस्याऽपि' दर्शनाभिलाषिणोऽपि । राजा ह्येवं मन्यते यद्यह[5]मेतं लोकं पश्यामि, लोकोऽप्येवमिच्छति यदि राज्ञा सह दर्शनं भवति तदा शोभनं भवति, निषेधकेन तथाऽपि प्रतीहारवैगुण्येन तद्दर्शनं न सम्पद्यते । इति गाथार्थः ॥२०॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथेति दृष्टान्तोपन्यासे सशब्दोऽग्रेतनोऽत्र योज्यते । ततो यथा स प्रसिद्धो राज्ञः प्रतीहारोऽनभिप्रेतस्य लोकस्य 'तुः' एवकारार्थे भिन्नक्रमश्च योक्ष्यते 'राज्ञः' प्रतीतस्य 'तत्र' राजकुलादौ 'दर्शावं' दर्शनं दर्शः, अवनभावो दर्शे आवो दर्शावो दर्शनप्रतीतिः, तां न ददात्येव द्रष्टुकामस्यापि राज्ञः राजा ह्येवं चिन्तयति यद्यहमेनं जनं निरन्तरमेवावलोकये । प्रतीहारस्त्वभिमरादिभयमुत्प्रेक्ष्यान्तरायीभवति । इति गाथार्थः ॥२०॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

---

१ "दर्शनशीलो दर्शनस्वभावो जीवः प्राणी" इत्यपि पाठः । २ "प्रतीहारो दौवारिकस्तस्य समानं दर्शनावरणं, द्वितीयं भवति" इत्येवंरूपोऽपि पाठो दृश्यते । ३ दर्शनवरणं दर्शनाच्छादनं जे० । ४ "अमुमेवार्थं भावयति—" इत्यपि ॥ ५ ०मेनं जे० ।

केवलज्ञानावरणमाह—

लोयालोयगएसुं, भावेसु जं गयं महाविमलं ।
तं आवरियं जेणं, केवलआवरणयं तं पि ॥१७॥

व्याख्या—लोकश्चतुर्दशरज्ज्वात्मको धर्मास्तिकायादियुक्तः, अलोकस्तु धर्मास्तिकायादिवियुक्तः लोकश्चालोकश्च लोकालोकौ, तयोर्गता लोकालोकगताः, तेषु 'भावेषु' पदार्थेषु 'यद्गतं' यदाश्रितं, महच्च तद्विमलं च '**महाविमलं**' बृहदमलं तद् 'आवृतं' स्थगितं '**येन**' कर्मणा [1]'**केवलावरणकं तदपि**' केवलाच्छादकं तदपि मन्तव्यमिति क्रियाध्याहारः । इति गाथार्थः ॥१७॥

मतिज्ञानाद्यावरणं निगमयन् दर्शनावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) लोकालोकगतेषु '**भावेषु**' जीवाजीवादिषु '**यद्गतं**' स्थितं अनन्तत्वात् । ननु चालोके किमनेन गतेन ? तत्र जीवाजीवादिपरिच्छेद्याभावात्, नैवम्, अजीवस्यालोकाकाशस्य विद्यमानत्वात् । तथा चोक्तम्—"**लोकालोकव्यापकमाकाशम्**" इति । "**महाविमलं**' अतिशुद्धं तदावरणमलकलङ्कापगमात्, तत्केवलज्ञानं '**आवृतं**' आच्छादितं '**येन**' कर्मणा तत्पुनः '**केवलावरणम्**' सूचकत्वात्सूत्रस्य केवलज्ञानावरणम् । इति गाथार्थः ॥१७॥

ज्ञानावरणं निगमयन् दर्शनावरणप्रस्तावनामाह—

एवं पंचवियप्पं, नाणावरणं समासओ भणियं ।
बीयं दंसणवरणं, नवभेयं भण्णए सुणह ॥१८॥

(पू०) व्याख्या—'एवं' उक्तप्रकारेण '**पञ्चविकल्पं**' पञ्चप्रकारं ज्ञानावरणं कर्म '**समासतः**' संक्षेपतो '**भणितं**' प्रतिपादितम् । द्वितीयं दर्शनावरणं कर्म, तच्च '**नवभेदं**' नवप्रकारं '**भण्यते**' उच्यते, '**शृणुत**' आकर्णयत यूयम् । इति गाथार्थः ॥१८॥

दर्शनावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) '**एवं**' उक्तप्रकारेण '**पञ्चविकल्पं**' पञ्चभेदं ज्ञानावरणं कर्म '**समासतः**' संक्षेपतो '**भणितं**' प्रतिपादितम् । द्वितीयं दर्शनावरणं '**नवभेदं**' नवप्रकारं भण्यते, शृणुत । इति गाथार्थः ॥१८॥

संप्रति दर्शनावरणस्य पूर्वोद्दिष्टं प्रतीहारसाम्यमाह—

---

[1] परमानन्दसूरीणा तु—'तं तु' इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् ॥ २ केवलज्ञानावरणकं' जे० ।

दंसणसीले जीवे, दंसणघायं करेइ जं कम्मं ।
तं पडिहारसमाणं, दंसणवरणं भवे बीयं ॥१९॥

व्याख्या—[1]'**दर्शनशीले**' दर्शनस्वभावे '**जीवे**' प्राणिनि '**दर्शनघातं**' दर्शनहननं '**करोति**' विदधाति '**यत्**' कर्म तत् [2]'**प्रतीहारसमानं**' प्रतीहारतुल्यं [3]'**दर्शनावरणं**' दर्शनच्छादनं '**भवति**' जायते जीवस्य । इति गाथार्थः ॥१९॥

[4]दृष्टान्तमाह—

(पारमा०) दर्शनं शीलं स्वभावो यस्य स तथा '**दर्शनशील**' इति षष्ठीसप्तम्योरर्थं प्रत्यभेदाद्दर्शनशीलस्य जीवस्येत्यर्थः । एवमन्यत्रापि भावनीयम् । दर्शनघातं करोति यत्कर्म तत्प्रतीहारसमानं दर्शनावरणं भवेद् द्वितीयम् । इति गाथार्थः ॥१९॥

प्रतीहारसाम्यं च तद्धर्मावगमे सुज्ञानम्, अतस्तत्स्वरूपं दृष्टान्तेनाह—

जह रण्णो पडिहारो, अणभिप्पेयस्स सो उ लोयस्स ।
रण्णो तहि दरिसावं, न देइ दट्ठुं पि कामस्स ॥२०॥

व्याख्या—यथा '**राज्ञः**' भूपतेः '**प्रतीहारः**' राजदौवारिकः '**अनभिप्रेतस्य**' अनभीष्टस्य '**स तु**' स एव दौवारिको लोकस्य' प्राणिसमूहस्य '**राज्ञः**' भूभृतः '**तत्र**' तस्मिन् स्थाने '**दर्शनं**' राज्ञो निरीक्षणं '**न ददाति**' न प्रयच्छति '**द्रष्टुकामस्याऽपि**' दर्शनाभिलाषिणोऽपि । राजा ह्येवं मन्यते यद्यह[5]मेतं लोकं पश्यामि, लोकोऽप्येवमिच्छति यदि राज्ञा सह दर्शनं भवति तदा शोभनं भवति, निषेधकेन तथाऽपि प्रतीहारवैगुण्येन तद्दर्शनं न सम्पद्यते । इति गाथार्थः ॥२०॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथेति दृष्टान्तोपन्यासे सशब्दोऽग्रेतनोऽत्र योज्यते । ततो यथा स प्रसिद्धो राज्ञः प्रतीहारोऽनभिप्रेतस्य लोकस्य '**तुः**' एवकारार्थे भिन्नक्रमश्च योक्ष्यते '**राज्ञः**' प्रतीतस्य '**तत्र**' राजकुलादौ '**दर्शावं**' दर्शनं दर्शः, अवनमावो दर्शे आवो दर्शावो दर्शनप्रतीतिः, तां न ददात्येव द्रष्टुकामस्यापि राज्ञः राजा ह्येवं चिन्तयति यद्यहमेनं जनं निरन्तरमेवावलोकये । प्रतीहारस्त्वभिमरादिभयसम्भाव्यान्तरायीभवति । इति गाथार्थः ॥२०॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

---

१ "दर्शनशीलो दर्शनस्वभावो जीवः प्राणी" इत्यपि पाठः । २ "प्रतीहारो दौवारिकस्तस्य समानं दर्शनावरणं, द्वितीय भवति" इत्येवंरूपोऽपि पाठो दृश्यते । ३ दर्शनवरणं दर्शनाच्छादनं जे० । ४ "अमुमेवार्थं भावयति—" इत्यपि ॥ ५ ०मेनं जे० ।

जह राया तह जीवो, पडिहारसमं तु दंसणावरणं ।
तेणिह विबंधएणं, न पिच्छए सो घडाईयं ॥२१॥

व्याख्या—यथा राजा तथा जीवः '**प्रतीहारसमं तु**' प्रतीहारतुल्यं तु दर्शनावरणं कर्म '**तेन**' दर्शनावरणेन '**इह**' लोके '**विबन्धकेन**' [प्रतिकूलेन] '**न प्रेक्षते**' न पश्यति स घटादिकं लोकरूपम् । आदिशब्दाज्जीवादितत्त्वम् । इति सूत्रार्थः ॥२१॥

दर्शनावरणीयस्य भेदानाह—

(पारमा०) यथा राजा तथा जीवः, राजस्थानीयो जीव इत्यर्थः । प्रतीहारसमं दर्शनावरणं कर्म तेन '**इह**' संसारे '**विबन्धकेन**' अननुकूलेन न प्रेक्षते '**सः**' जीवो घटादिकम् । अयमाशयः—यथा राजा प्रतीहारेणाऽननुकूलेन दिदृक्षितमपि लोकं न पश्यति, तथा राजस्थानीयो जीवः प्रतीहारस्थानीयेन दर्शनावरणेनाऽननुकूलेन लोकस्थानीयं घटपटादिवस्तु न पश्यति । इति गाथार्थः ॥२१॥

उक्तः पूर्वोद्दिष्टः प्रतीहारदृष्टान्तः, दर्शनावरणस्य सम्प्रति नवविधत्वं गाथापूर्वार्द्धेनाह—

निद्दापणगं तत्थ उ, चउ भेया दंसणस्स आवरणे ।

(पू०) व्याख्या—निद्रापञ्चकं, '**तत्र तु**' दर्शनावरणे चत्वारो भेदाः, दर्शनस्य संबन्धिनि '**आवरणे**' छादने ॥

दर्शनावरणभेदानभिधाय निद्रादिलक्षणमाह—

(पारमा०) '**निद्रापञ्चकम्**' निद्रा—निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानर्द्धिलक्षणम् । '**तत्र**' दर्शनावरणकर्मणि '**चत्वारो भेदाः**' चक्षुर्दर्शनावरण-अचक्षुर्दर्शनावरण-अवधिदर्शनावरणकेवलदर्शनावरणलक्षणाः, दृश्यतेऽनेनेति दर्शनं तस्य आवरण इति दर्शनावरणकर्मणो भेदानभिधाय सार्द्धगाथाद्वयेन निद्रापञ्चकं तावद्व्याचष्टे—

सुहपडिबोहो निद्दा, बीया पुण [1]निद्दनिद्दा य ॥२२॥
सा दुक्खबोहणीया, पयला पुण जा ठियस्स उद्धाइ ।
पयलापयल चउत्थी तीए उदओ उ चंकमणे ॥२३॥
थीणद्धी पुण दिणचिं-तियस्स अत्थस्स साहणी पायं ।
सा संकिलिट्ठकम्मस्स उदयओ होइ नियमेणं ॥२४॥

१ "निद्दनिद्दत्ति" इत्यपि पाठः ।

व्याख्या–'**सुखप्रतिबोधो निद्रा**' प्रसुप्तः सन् सुखेनैव यस्यां प्रबोधं गच्छति सा निद्रा। द्वितीया पुनर्निद्रानिद्रा च भवति ज्ञातव्या। इति गाथार्थः ॥२२॥ द्वितीयनिद्रालक्षणमाह–तस्या उदये दुःखेन बोध्यते प्रसुप्तः सन्। प्रकर्षेण चलनं यस्यां सा '**प्रचला**' सा पुनः का? या '**स्थितस्य**' अवस्थितस्यावस्थितवतः '**उद्भवति**' उद्गच्छति उत्पद्यते उद्भवतीत्यर्थः। प्रचलाप्रचला चतुर्थी निद्रा, तस्याश्चोदयः '**चङ्क्रमणे**' गमने भवति, यस्या [1]उदयेन पुनः पुनः प्रचलनं भवति, सा च प्रचलाप्रचलोच्यते। इति गाथार्थः ॥२३॥ स्त्यानर्द्धिस्वरूपमाह–[2]स्त्यानं कठिनीभूतमृद्धि चित्तं यस्यां सा '**स्त्यानर्द्धिः**' सा पुनः '**दिनचिन्तितस्य**' दिवसध्यातस्य '**अर्थस्य**' प्रयोजनस्य '**साधनी**' निष्पादनी '**प्रायः**' बाहुल्येन। अनुस्वारः प्राकृतत्वात्। सा संक्लिष्टस्याशुभस्य कर्मणः '**उदयतः**' प्रादुर्भावात् '**भवति**' जायते '**नियमेन**' अवश्यंतया। इति गाथार्थः ॥२४॥

निद्रापञ्चकं निगमयन् चक्षुर्दर्शनाद्यावरणस्वरूपमाह–

(पारमा०) सुखेन प्रतिबोधो जागरणं यस्मिन् स्वापे स सुखप्रतिबोधः=नखच्छोटिकामात्रेण जागरणं, स च निद्रा=नितरां द्राति=कुत्सितत्वं=अविस्पष्टत्वं गच्छति चैतन्यमनयेति। द्वितीया पुनर्निद्रा निद्रातोऽतिशायिनी निद्रा निद्रानिद्रा। मयूरव्यंसकादित्वान्मध्यपदलोपी समासः ॥२२॥ दुःखेन घोलनादिभिर्बोध्यते यस्यां सा दुःखबोधनीया। अत एव सुखप्रतिबोधनिद्रातोऽतिशायित्वम्। प्रचलति घूर्णतेऽस्यामिति '**प्रचला**' पुनर्या '**स्थितस्य**' उपविष्टस्य ऊर्द्ध्वस्थस्य वा '**उद्भवति**' प्राबल्येनायाति न तु गतिमतः। प्रचलातोऽतिशायिनी प्रचला प्रचलाप्रचला चतुर्थी, तस्या उदयश्चङ्क्रमणे। अत एव स्थानस्थितस्वप्तृभवप्रचलातोऽतिशायित्वम् ॥२३॥ स्त्याना पिण्डीभूता ऋद्धिः आत्मनः शक्तिरूपा यस्यां स्वापावस्थायां सा '**स्त्यानर्द्धिः**' सा च पुनर्दिनचिन्तितस्या-ऽर्थस्य साधनी प्रायः। श्रूयते च सिद्धान्ते–यथा कोऽपि क्षुल्लको दिवा द्विरदखलीकृतस्तस्मिन् बद्धाभिनिवेशो रजन्यां स्त्यानर्द्ध्युदयावेशादुत्थाय तद्दन्तमुशलयुगलमुत्पाट्योपाश्रयद्वारि विहाय पुनः सुप्त इत्यादि। सा संक्लिष्टकर्मण उदयाद्भवति '**नियमेन**' अवश्यं, ततो नरकगमनात्। इति सार्द्धगाथाद्वयार्थः ॥२४॥

निद्रापञ्चकं निगमयन् चक्षुर्दर्शनावरणमाह–

निद्दापणगं एयं, चक्खू आवरइ चक्खुआवरणं।
सेसिंदियआवरणं, होइ अचक्खुस्स आवरणं ॥२५॥

---

१ उदये पुनः। २ स्त्याना कठिनीभूतचैतन्यऋद्धिर्यस्यां सा जे०।

व्याख्या—निद्रापञ्चकमेतदुक्तस्वरूपम्। चक्षुष आवरणं चक्षुरावरणं, चक्षुर्दर्शनावरणमिति दर्शनशब्दोऽत्र द्रष्टव्यः, यत्कर्म चक्षुर्दर्शनं छादयति तच्चक्षुरावरणमुच्यते। शेषेन्द्रियाणामावरणं शेषेन्द्रियावरणम्, अतस्तेषां घ्राणरसनस्पर्शनश्रवणमनसामावरणं छादनं भवत्यचक्षुषः 'आवरणं' स्थगनम्। इति गाथार्थः ॥२५॥

उक्तं चक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणम्। साम्प्रतमवधिदर्शनावरणस्वरूपमाह—

(पारमा०) निद्रापञ्चकमेतत् पूर्वोक्तम्। एतच्च सूत्रकृता क्रमेण नोक्तम्। क्रमश्चैवम्—निद्रा प्रचला निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानर्द्धिरिति। यथोत्तरं विपाकाधिक्यात्॥ तथा च सति स्त्यानर्द्धित्रिकमित्युरते स्त्यानर्द्धिमहचरितं निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानर्द्धिलक्षणं प्रबलविपाकं निद्रात्रिकं परिगृह्यते। आगमेऽप्येवमेवासां क्रमः। तथाहि—"**निद्दा तहेव पयला निद्दानिद्दा य पयलपयला य। तत्तो य थीणगिद्धी, उ पंचमा होइ नायव्वा ॥१॥**" अत्र तूत्क्रमाभिधानमनानुपूर्व्यपि व्याख्याङ्गमिति न दोषः। चक्षुरिति चक्षुर्दर्शनं, तद् 'आवृणोति' आच्छादयतीति चक्षुर्दर्शनावरणम्। शेषेन्द्रियमिति शेषेन्द्रियदर्शनम्। शेषाणि स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रमनांसि तेषामावरणं भवति '**अचक्षुरावरणं**' अचक्षुर्दर्शनावरणम्। इति गाथार्थः ॥२५॥

अवधिदर्शनावरणकेवलदर्शनावरणे व्याचिख्यासुराह—

सामन्नुवओगं जं, वरेइ तं ओहिदंसणावरणं।
केवलसामन्नं जं, वरेइ तं केवलस्स भवे ॥२६॥

व्याख्या—उपयुज्यतेऽसावित्युपयोगः, सामान्यश्चासावुपयोगश्च सामान्योपयोगोऽवधेरिति गम्यते। तं '**सामान्योपयोगं**' सामान्यपरिच्छेदं यद् '**वृणोति**' छादयति कर्म तद् '**अवधिदर्शनावरणं**' अवधिसामान्यावबोधावरणं भवेदिति संबन्धः। '**केवलसामान्यं**' केवलदर्शनं '**वृणोति**' छादयति यत्कर्म तत् '**केवलस्य**' केवलदर्शनस्यावरणं '**भवेत्**' भवति जायते। इति गाथार्थः ॥२६॥

उक्तं द्वितीयकर्म, तृतीयमाह—

(पारमा०) सामान्यमविशेषग्राहि रूपिद्रव्याणामिति गम्यते, रूपिद्रव्यसामान्यमित्यर्थः। तस्योपयोगो रूपिद्रव्यसामान्यग्रहणमिति यावत्। तत् कर्मभूतं यदावृणोति तदवधिदर्शनावरणम्। केवलस्यक्तरूपस्यो सामान्यं सकलजगद्भाविवस्तुस्तोमग्रहणरूपं केवलदर्शनमित्यर्थः। यद् 'वृणोति' आच्छादयति तत् 'केवलस्य' इति केवलदर्शनस्य भवेदावरणमिति संबन्धः। इति गाथार्थः ॥२६॥

---

१ •सस्पर्शश्रव० जे०।

अवधि-केवलदर्शनावरणस्वरूपं वेदनीयद्वयस्वरूपञ्च ।

दर्शनावरणं निगमयन् वेदनीयप्रस्तावनायाह—

भणियं दंसणवरणं, तइयं कम्मं तु होइ वेयणियं ।
तं असिधारासरिसं जह होइ तहा निसामेह ॥२७॥

व्याख्या '**भणितं**' उक्तं '**दर्शनावरणं**' कर्म । तृतीयं कर्म '**तु**' पुनः '**भवति**' जायते वेदनीयं तत् '**असिधारासदृशं**' खड्गधारातुल्यं '**यथा**' येन प्रकारेण भवति '**तथा**' तेन प्रकारेण '**निशामयत**' आकर्णयत यूयम् । इति गाथार्थः ॥२७॥ दृष्टान्तेन स्वरूपं प्रकटयन्नाह-

(पारमा०) भणितं दर्शनावरणं द्वितीयं कर्मेत्यर्थाद्गम्यते । तृतीयं कर्म पुनर्भवति वेदनीयं तदसिधारासदृशं यथा भवति तथा निशमयत । इति गाथार्थः ॥२८॥

महुलित्तनिसियकरवा-लधारजीहाइ [1]जारिसं लिहणं ।
तारिसयं वेयणियं सुहदुहउप्पायगं मुणह ॥२८॥

व्याख्या—मधुना लिप्तं मधुलिप्तं, तच्चतन्नि[2]शितकरवालं च मधुलिप्तनिशितकरवालम्, तस्य धारा मधुलिप्तनिशितकरवालधारा तस्याः जिह्वया यादृशं [3]लेहनं, य इव दृश्यते [4]यादृशः श-भन्त उपमानभूतः, तल्लेहनमास्वादनं, स इव दृश्यते तादृशः, तादृश एव तादृशकः कभन्तः । अतस्तद् '**वेदनीय**' कर्म वेदनस्वरूपं सुखदुःखोत्पादकं[5] '**मुणह**' जानीत । '**लिप्तं**' दिग्धं '**निशितं**' तीक्ष्णम् । इति गाथार्थः ॥२८॥

वेदनीयस्य दृष्टान्तद्वारेण स्वरूपमाह—

(पारमा०) मधुना-क्षौद्रभ्रामरादिना लिप्तः=उपदिग्धो निशितः=तीक्ष्णः, स चासौ करवालश्च मधुलिप्तनिशितकरवालः, तद्धाराया जिह्वया यादृशं लेहनं तादृशं '**वेदनीयं**' सुख-दुःखोत्पादकं जानीत । '**ज्ञो जाणमुणौ**' (८-३-७) इति प्राकृते आदेशविधानात् '**मुणह**' इति सिद्ध्यति । इति गाथार्थः ॥२८॥

सुखदुःखोत्पादकत्वमेव भावयति—

महुआसायणसरिसो, सायावेयस्स होइ हु विवागो ।
जं असिणा तहि छिज्जइ, सो उ विवागो असायस्स ॥२९॥

व्याख्या—मधु भ्रमरीरसः शर्करादि वा, तस्यास्वादनं लेहनं, तेन सदृशस्तेन तुल्यः '**सायावेयस्स**' सातावेदनीयस्यैव सुखानुभवरूपस्य भवति '**विपाकः**' अनुभवः । हुशब्दस्यै-

---

१ व्याख्याकारेण-"जारिसयलिहणम्" इत्येतत्पाठानुसारेण व्याख्यातम् ॥ 'जारिसं लेहणं इत्यपि पाठो दृश्यते । २ "तेजितम्" जे० टिप्पणी । ३-६ लिहनं (?) जे० । ४ यादृशं तदुपमानभूतं तस्मि (तल्ले?) हनं जे० । ५ मन्यीत जा० जे० ।

चकारार्थत्वात् । उक्तं सातवेदनीयस्वरूपम् । असातवेदनीयस्वरूपमाह—यच्च 'असिना' खड्गेन 'छिद्यते' द्विधाक्रियते सः 'तु' पुनः 'विपाकः' अनुभवः [1]'असातवेदनीयस्यैव' असुखानुभवस्यैव । इति गाथार्थः ॥२६॥

निगमनपूर्वकं गतिचतुष्के सुखदुःखमतिदिशन्नाह—

(पारमा०) 'मध्वास्वादनसदृशः' मधुलिप्तनिशितनिस्त्रिंशधाराऽवलेहने यत् प्रथमतो मधुररससंवेदनं तत्सदृशः सातवेदनीयस्य भवति विपाकः । 'हुः' निश्चये । यदसिना तत्र छिद्यते स पुनर्विपाकः 'असातस्य' भीमो भीमसेन इतिवदसातवेदनीयस्य । इति गाथार्थः ॥२६॥

सम्प्रति चतुर्गतिविषयत्वं नियतगतिव्यवस्थया प्रस्तौति—

एयं सुहदुक्खकरं, चउगइमावन्नयाण जीवाणं ।
सामन्नेणं भणिमो, सुहदुक्खं दुसु दुसु गईसु ॥३०॥

व्याख्या—'एवं' उक्तनीत्या 'सुखदुःखकरं' सुखदुःखोत्पादकं, केषाम् ? इत्याह—'चतुर्गत्यापन्नानां' चतुर्गत्यवस्थितानां 'जीवानां' प्राणिनां सामान्येन 'भणिमो' भणामः । किं तत् ? इत्याह—सुखदुःखं द्वयोर्द्वयोर्गत्योः । इति गाथार्थः ॥३०॥

सातावेदनीयाद्यनुभवं गतिद्वये निदर्शयन्नाह—

(पारमा०) 'एतद्' वेदनीयं सुखदुःखकरं चतुर्गत्यापन्नानां 'जीवानां' नारकतिर्यङ्नगमरस्थानां सामान्येन भणामः 'सुखदुःखं द्वयोर्द्वयोर्गत्योः' सुखं द्वयोर्देवमनुजगत्योः, दुःखं द्वयोर्नरकतिर्यग्गत्योः । इति गाथार्थः ॥३०॥

एतदेवाह—

देवेसु य मणुएसु य, तत्थ विसिट्ठेसु कामभोगेसु ।
जं [2]उवभुंजइ जीवो, सो उ विवागो [3]उ सायस्स ॥३१॥

व्याख्या—'देवेषु च' अमरेषु 'मनुष्येषु च' पुरुषेषु च 'तत्र' तयोर्विशिष्टेषु 'कामभोगेषु' काम्यन्त इति कामा इच्छाकामा मदनकामाः, भुज्यन्त इति भोगा भवनविलयादयः यत्तत्सुखं 'भुनक्ति' अनुभवति 'जीवः' प्राणी, सः 'तु' पुनर्विपाकः 'सातस्य' सातवेदनीयस्य । ननु नरामरगत्योः किं सातोदय एव ? नारकतिर्यग्गत्योश्चासातोदय एव ? येन भवद्भिर्दर्श्यते गतिद्वये गतिद्वये सातासातोदयः पृथक् पृथक्, उच्यते—प्रायोवृत्तिमाश्रित्येदमुक्तम् । अन्यथा तु

---

१ असातवे० जे० । २ 'वं भु' इत्येतदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम् । 'तर्हि भु' इत्यपि पाठः, एवमग्रेतनगाथायामपि । ३ 'अ सा०' इत्यपि पाठः ॥

यथा नरामरगतौ सातोदयोऽस्ति तथा-ऽसातोदयोऽपीति प्राधान्यान्नोक्तस्तथा नारकतिर्यग्गतौ सातोदयः। इति गाथार्थः ॥३१॥

नारकतिर्यग्गत्योर्दुःखस्वरूपमाह—

(पारमा०) 'देवेषु मनुष्येषु च' इति देवमनुजगत्योः, 'तत्थ विसिट्ठेसु कामभोगेसु' इति अत्र द्वितीयार्थे सप्तमी। विशिष्टान् 'कामान्' शब्दरूपलक्षणान्, 'भोगान्' गन्धरसस्पर्शलक्षणान्. यदागमः—"कइविहा णं भंते! कामा पन्नत्ता? गोयमा! दुविहा कामा पन्नत्ता, सद्दा रूवा य। कइविहा णं भंते! भोगा पन्नत्ता? गोयमा! तिविहा भोगा पन्नता, तंजहा—गंधा रसा फासा य" इति। यदुपभुङ्क्ते जीवः, स तु विपाकः सातस्यैव। देवेषु च मनुजेषु च, इत्यत्र चकारावनुक्तसमुच्चये तेन नरकेष्वपि नारकाणां जिनजन्ममहादौ, तिर्यक्ष्वपि पट्टहस्त्यादीनां सुखसंवेदनं सातविपाकः। इति गाथार्थः ॥३१॥

नरकतिर्यग्गत्योरसातमाह—

[1]नरएसु य तिरिएसु य, तेसु य दुक्खाइं णेगरूवाइं।
जं उवभुंजइ जीवो, सो उ विवागो असायस्स ॥३२॥

व्याख्या—नरान् कायन्ति शब्दयन्ति नरकास्तेषु, तथा तिरश्चीनमञ्चन्ति गच्छन्ति=तिर्यञ्चस्तेषु च, 'दुःखानि' [2]असातवेदनीयानि 'अनेकरूपाणि' नानारूपाणि यत्तद्भुनक्ति जीवः, सः 'तु' पुनः 'विपाकः' अनुभवः 'असातस्य' दुःखस्य। इति गाथार्थः ॥३२॥

मोहनीययुक्तस्य जीवस्य विपरीतस्वरूपं दृष्टान्तेन प्रकटयन्नाह—

(पारमा०) 'नरकेषु' नरकगतौ 'तिर्यक्षु' तिर्यग्गतौ 'तेसु य' इति न केवलं नरकगतितिर्यग्गत्योः 'तयोश्च' देवमनुजगत्योर्दुःखान्यनेकरूपाणि यदुपभुङ्क्ते आभियोग्यदारिद्र्यादि जीवः, स तु विपाकोऽसातस्य। इति गाथार्थः, ॥३२॥

वेदनीयं निगमयन् मोहनीयप्रस्तावनामाह—

[3]एयमिह वेयणीयं, चउत्थकम्मं तु होइ मोहणियं।
तं मज्जपाणसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥३३॥

व्याख्या—एतदस्मिन वेदनीयमुक्तम्। चतुर्थं कर्म पुनर्भवति मोहनीयं, तन्मद्यपानसदृशं यथा भवति तथा [4]निशमयत। इति गाथार्थः ॥३३॥

---

१ 'तिरिएसु य नरएसु य तेसिं दुक्खाइं' इत्यपि पाठो दृश्यते। २ असातावे० जे०। ३ एयमिह० सटीकेयं गाथा जे० प्रतौ नास्ति। ४ निशामयत जि० ॥

वक्रारार्थत्वात् । उक्तं सातवेदनीयस्वरूपम् । असातवेदनीयस्वरूपमाह—यच्च 'असिना' खड्गेन 'छिद्यते' द्विधाक्रियते सः 'तु' पुनः 'विपाकः' अनुभवः [1]'असातवेदनीयस्यैव' असुखानुभवस्यैव । इति गाथार्थः ॥२९॥

निगमनपूर्वकं गतिचतुष्के सुखदुःखमतिदिशन्नाह—

(पारमा०) '**मध्वास्वादनसदृशः**' मधुलिप्तनिशितनिस्त्रिंशधाराऽवलेहने यत् प्रथमतो मधुररससंवेदनं तत्सदृशः सातवेदनीयस्य भवति विपाकः । 'हु:' निश्चये । यदसिना तत्र छिद्यते स पुनर्विपाकः '**असातस्य**' भीमो भीमसेन इतिवदसातवेदनीयस्य । इति गाथार्थः ॥२९॥

सम्प्रति चतुर्गतिविषयत्वं नियतगतिव्यवस्थया प्रस्तौति—

एयं सुहदुक्खकरं, चउगइमावन्नयाण जीवाणं ।
सामन्नेणं भणिमो, सुहदुक्खं दुसु दुसु गईसु ॥३०॥

व्याख्या—'**एवं**' उक्तनीत्या '**सुखदुःखकरं**' सुखदुःखोत्पादकं, केषाम् ? इत्याह—'**चतुर्गत्यापन्नानां**' चतुर्गत्यवस्थितानां '**जीवानां**' प्राणिनां सामान्येन '**भणिमो**' भणामः । किं तत् ? इत्याह—सुखदुःखं द्वयोर्द्वयोर्गत्योः । इति गाथार्थः ॥३०॥

सातावेदनीयानुभवं गतिद्वये निदर्शयन्नाह—

(पारमा०) '**एतद्**' वेदनीयं सुखदुःखकरं चतुर्गत्यापन्नानां '**जीवानां**' नारकतिर्यङ्नरामरस्थानां सामान्येन भणामः '**सुखदुःखं द्वयोर्द्वयोर्गत्योः**' सुखं द्वयोर्देवमनुजगत्योः, दुःखं द्वयोर्नरकतिर्यग्गत्योः । इति गाथार्थः ॥३०॥

एतदेवाह—

देवेसु य मणुएसु य, तत्थ विसिट्ठेसु कामभोगेसु ।
जं [2]उवभुंजइ जीवो, सो उ विवागो [3]उ सायस्स ॥३१॥

व्याख्या—'**देवेषु च**' अमरेषु '**मनुष्येषु च**' पुरुषेषु च '**तत्र**' तयोर्विशिष्टेषु '**कामभोगेषु**' काम्यन्त इति कामा इच्छाकामा मदनकामाः, भुज्यन्त इति भोगा भवनविलयादयः यत्तत्सुखं '**भुनक्ति**' अनुभवति '**जीवः**' प्राणी, सः '**तु**' पुनर्विपाकः '**सातस्य**' सातवेदनीयस्य । ननु नरामरगत्योः किं सातोदय एव ? नारकतिर्यग्गत्योश्चासातोदय एव ? येन भवद्भिर्दर्श्यते गतिद्वये गतिद्वये सातासातोदयः पृथक् पृथक्, उच्यते—प्रायोवृत्तिमाश्रित्येदमुक्तम् । अन्यथा तु

१ असातावे० जे० । २ 'तं भुं' इत्येतदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम्, 'तहिं भुं' इत्यपि पाठः, एवमग्रेतनगाथायामपि । ३ 'अ सा०' इत्यपि पाठः ॥

यथा नरामरगतौ सातोदयोऽस्ति तथा-ऽसातोदयोऽपीति प्रधान्याच्चोक्तस्तथा नारकतिर्यग्गतौ सातोदयः। इति गाथार्थः ॥३१॥

नारकतिर्यग्गत्योर्दुःखस्वरूपमाह—

(पारमा०) 'देवेसु मनुष्येषु च' इति देवमनुजगत्योः, 'तत्थ विसिट्ठेसु काम-भोगेसु' इति अत्र द्वितीयार्थे सप्तमी। विशिष्टान् 'कामान्' शब्दरूपलक्षणान्, 'भोगान्' गन्धरसस्पर्शलक्षणान्, यदागमः—"कइविहा णं भंते! कामा पन्नत्ता? गोयमा! दुविहा कामा पन्नत्ता, सद्दा रूवा य। कइविहा णं भंते! भोगा पन्नत्ता? गोयमा! तिविहा भोगा पन्नता, तंजहा-गंधा रसा फासा य" इति। यदुपभुङ्क्ते जीवः, स तु विपाकः सातस्यैव। देवेषु च मनुजेषु च, इत्यत्र चकारावनुक्तसमुच्चये तेन नरकेष्वपि नारकाणां जिनजन्ममहादौ, तिर्यक्ष्वपि पट्टहस्त्यादीनां सुखसंवेदनं सातविपाकः। इति गाथार्थः ॥३१॥

नरकतिर्यग्गत्योरसातमाह—

[1]नरएसु य तिरिएसु य, तेसु य दुक्खाइं णेगरूवाइं।
जं उवभुंजइ जीवो, सो उ विवागो असायस्स ॥३२॥

व्याख्या—नरान् कायन्ति शब्दयन्ति नरकास्तेषु,तथा तिरश्चीनमञ्चन्ति गच्छन्ति=तिर्यञ्चस्तेषु च, 'दुःखानि' [2]असातवेदनीयानि 'अनेकरूपाणि' नानारूपाणि यत्तद्भुनक्ति जीवः, सः 'तु' पुनः 'विपाकः' अनुभवः 'असातस्य' दुःखस्य। इति गाथार्थः ॥३२॥

मोहनीययुक्तस्य जीवस्य विपरीतस्वरूपं दृष्टान्तेन प्रकटयन्नाह—

(पारमा०) 'नरकेषु' नरकगतौ 'तिर्यक्षु' तिर्यग्गतौ 'तेसु य' इति न केवलं नरकगति-तिर्यग्गत्योः 'तयोश्च' देवमनुजगत्योर्दुःखान्यनेकरूपाणि यदुपभुङ्क्ते आभियोग्यदारिद्र्यादि जीवः, स तु विपाकोऽसातस्य। इति गाथार्थः, ॥३२॥

वेदनीयं निगमयन् मोहनीयप्रस्तावनामाह—

[3]एयमिह वेयणीयं, चउत्थकम्मं तु होइ मोहणियं।
तं मज्जपाणसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥३३॥

व्याख्या—एतदस्मिन वेदनीयमुक्तम्। चतुर्थं कर्म पुनर्भवति मोहनीयं, तन्मद्यपानसदृशं यथा भवति तथा [4]निशमयत। इति गाथार्थः ॥३३॥

---

१ 'तिरिएसुय नरएसु य तेसिं दुक्खाइं' इत्यपि पाठो दृश्यते। २ असाताथे० जे०। ३ एयमिह० सटीकेयं गाथा जे० प्रतौ नास्ति। ४ निशामयत जि० ॥

(पारमा०) **एतत्** सातासातरूपं '**इह**' प्रवचने वेदनीयमुच्यत इति गम्यते, चतुर्थकर्म भवति मोहनीयं तन्मद्यपानसदृशं यथा भवति तथा निशमयत । इति गाथार्थः ॥३३॥

जह मज्जपाणमूढो, लोए पुरिसो परव्वसो होइ ।
तह मोहेण वि मूढो, जीवो वि परव्वसो होइ ॥३४॥

व्याख्या—यथा '**मद्यपानमूढः**' मद्य=मासवविशेषः, तस्य पानं=[1]घुटनं तेन मूढो=मोहितो व्याप्तो '**लोके**' मनुष्यलोके '**पुरुषः**' मनुष्यः '**परवशः**' परायत्तो, वकारस्य प्राकृतत्वाद् रुत्वम्, '**भवति**' जायते '**तथा**' तेनैव प्रकारेण मोहेनापि '**मूढः**' छादितस्वरूपः '**जीवः**' प्राणी '**परवशः**' आत्मानायत्तः '**भवति**' संपद्यते । इति गाथार्थः ॥३४॥

मोहनीयस्वरूपं सभेदमाह—

(पारमा०) यथा '**मद्यपानमूढः**' मद्यपानेन नष्टचेतनो लोके पुरुषः '**परवशः**' परायत्तो भवति तथा मोहेनापि मूढो जीवोऽपि परवशो भवति इति गाथार्थः ॥३४॥

संप्रति शब्दार्थकथनपूर्वकं मोहनीयस्य द्वैविध्यं तावदाह—

मोहेइ मोहणीयं, तंपि समासेण भणए दुविहं ।
दंसणमोहं पढमं चरित्तमोहं भवे बीयं ॥३५॥

व्याख्या='**मुह वैचित्ये**' '**मोहयति**' वैचित्यमुत्पादयत्यात्मन इतिकृत्वा मोहनीयम् । तदपि '**समासेन**' संक्षेपेण भवति '**द्विविधं**' द्विप्रकारम् । द्वैविध्यमेवाह—दर्शनमोहं '**प्रथमं**' आद्यम्, चरित्रमोहं भवेत् '**द्वितीयं**' अप्रथमम् । इति गाथार्थः ॥३५॥

प्रथमस्वरूपमाह—

(पारमा०) '**मोहयति**' वैचित्यमापादयतीति मोहनीयम् । तदपि '**समासेन**' संक्षेपेण '**भण्यते**' प्रतिपाद्यते द्विविधम् । दृश्यते यथावदलोक्यते वस्त्वनेनेति दर्शनम्, तन्मोहयति मूढतां नयति यत्कर्म तद्दर्शनमोहं प्रथमम् । चर्यते तदिति चरित्रम्, तन्मोहयति यत्कर्म तच्चरित्रमोहं द्वितीयम् । इति गाथार्थः ॥३५॥

संक्षेपतो मोहनीयस्य द्वैविध्यमभिधाय प्रथमं दर्शनमोहनीयभेदानाह—

दंसणमोहं तिविहं, सम्मं मीसं च तह य मिच्छत्तं ।
सुद्धं अद्धविसुद्धं, अविसुद्धं तं जहाकमसो ॥३६॥

---

[1] घोट्टनं जे० घुण्टनं जि० । [2] व्याख्याकारेण तु "होइ दुविहं तु" इत्यपि पाठः, तदनुसारेण व्याख्यानम् ।

व्याख्या—'दृशिर् प्रेक्षणे' दृष्टिर्दर्शनं यथाऽवस्थितवस्तुपरिच्छेदः, तन्मोहयति यत्कर्म येन कर्मणाऽन्यथास्थितं वस्तु अन्यथा परिच्छिद्यते तद्दर्शनमोहम् । तच्च त्रिविधम्, '**सम्मं मीसं च तह य मिच्छत्तं**' सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं तथा मिथ्यात्वं चेति । चस्य पदतः संबन्धः । शुद्धं अर्द्धविशुद्धं [1]अविशुद्धं चेति । तत्र मिथ्यात्वपुद्गला एव शोधिताः कारणाभावे विकाराजनकत्वेन शुद्धाः सम्यक्त्वमुच्यते १ । तथा त एवार्द्धविशुद्धाः स्वरूपतः किञ्चिद्विकारजनकत्वेन अर्द्धविशुद्धं सम्यग्मिथ्यात्वमुच्यते २ । त एव मिथ्यात्वपुद्गला अतत्त्वेषु तत्त्वाभिनिवेशरूपाः अविशुद्धं मिथ्यात्वमुच्यते, विषविकारतुल्यमिति तात्पर्यम् ३ '**यथाक्रमशो**' यथा परिपाट्या [2]वक्ष्यते । इति गाथार्थः ॥३६॥

हेतुद्वारेण सम्यक्त्वस्वरूपं समर्थयन्नाह—

(पारमा०) दर्शनमोहं त्रिविधम् । '**सम्यग्**' इति सम्यक्त्वम्, सम्यगित्येतस्य भावः सम्यक्त्वम्, इत्यतो '**मिश्रं**' सम्यग्मिथ्यात्वम् । तथा मिथ्यात्वं च, शुद्धं अर्द्धविशुद्धं अविशुद्धम्, '**तद्यथाक्रमशः**' इति सम्यक्त्वं शुद्धं, मिश्रमर्द्धविशुद्धं, मिथ्यात्वमविशुद्धम् । इति गाथार्थः ॥३६॥

सम्यक्त्वस्वरूपमाह—

केवलनाणुवलद्धे, जीवाइपयत्थ सद्दहे जेणं ।
तं सम्मत्तं कम्मं, सिवसुहसंपत्तिपरिणामं ॥३७॥

व्याख्या—केवलमसहायं ज्ञानं केवलज्ञानम्, तेनोपलब्धा ज्ञातास्तीर्थकृद्भिर्ये जीवादिपदार्थाः तानागमान्निसर्गाद्वा विज्ञाय '**श्रद्दधीत**' प्रतिपद्येत '**येन**' कर्मणा हेतुभूतेन तत्सम्यक्त्वं कर्म यथाऽवस्थितवस्तुपरिच्छेदात्मकं प्रतिपत्तिरूपं सम्यग्दर्शनमित्यर्थः । शिवं निरुपद्रवस्थानं मोक्षः तस्मिन् सुखं परमानन्दरूपं तस्य संप्राप्तिरवाप्तिः सा परिणामो यस्य तत् शिवसुखसंप्राप्तिपरिणामम् । इति गाथार्थः ॥३७॥

मिश्रस्वरूपमाह—

(पारमा०) केवलज्ञानेनोपलब्धानधिगतानर्थान् । केवलिभिर्जीवादिपदार्थान् जीवाजीवपुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षलक्षणान् श्रद्दधीत '**येन**' कर्मणा हेतुभूतेन तत्सम्यक्त्वं कर्म । विशेषणद्वारेणैतत्फलमाह—'**शिवसुखसंप्राप्तिपरिणामं**' शिवसुखसंप्राप्तिः परिणामः परिणतिर्यस्य । इति गाथार्थः ॥३७॥

मिश्रमाह—

---

१ अविशुद्धं मिथ्यात्वपुद्गला एव शो० जे० जि० । २ वक्ष्ये इति जे० ।

रागं नवि जिणधम्मे [1]नवि दोसं जाइ जस्स उदएणं ।
सो मीसस्स विवागो, अंतमुहुत्तं [2]भवे कालं ॥३८॥

व्याख्या—'**रागं**' प्रीतिलक्षणं '**नापि**' नैव, अपिशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, '**जिनधर्मे**' तीर्थकृद्धर्मे '**न च**' नैव '**द्वेषं**' अप्रीतिलक्षणं '**याति**' गच्छति '**यस्य**' कर्मणः '**उदयेन**' प्रादुर्भावेन, स मिश्रस्य '**विपाकः**' अनुभव उदयो वा । स च भवन् कियन्तं कालं यावद्भवति ? अत आह—अन्तर्मुहूर्तमात्रं कालं मुहूर्तस्यान्तः=द्विघटिको मुहूर्तस्तस्य मध्यः । इति गाथार्थः ॥३८॥

मिथ्यात्वस्वरूपमाह—

(पादमा०) '**रागं**' नापि प्रीतिलक्षणं जिनधर्मे नापि '**द्वेषं**' अप्रीतिलक्षणं गच्छति, किन्तु मध्यस्थपरिणामः '**यस्य**' कर्मण उदयेन भवति स मिश्रस्य '**विपाकः**' उदयः '**अन्तर्मुहूर्तं भवेत्कालं**' किञ्चिन्न्यूनघटिकाद्वयलक्षणम्, तत ऊर्ध्वमवश्यं मिथ्यात्वे वा गमनात् । इति गाथार्थः ॥३८॥

मिथ्यात्वमाह—

[3]जिणधम्मंमि पओसं, वहइ य हियएण जस्स उदएणं ।
तं मिच्छत्तं कम्मं, संकिट्ठो तस्स उ विवागो ॥३९॥

व्याख्या—'**जिनधर्मस्य**' वीतरागधर्मस्य '**प्रद्वेषं**' मत्सरं '**वहति च**' याति च '**हृदयेन**' चेतसा, करोतीत्यर्थः '**यस्य**' कर्मणः 'उदये' विपाकानुभवे । चकाराच्च केवलं हृदि प्रद्वेषं वहति, तदुदयजनितं कार्यं चावर्णवादादि शासनस्य विधत्ते, '**तन्मिथ्यात्वं कर्म**' मिथ्याऽलीकं विपरीतं वा तत्त्वपरिज्ञानं यस्मिन् तन्मिथ्यात्वं, '**संक्लिष्टः**' अशुभतरः, तुशब्दस्य पुनःशब्दार्थत्वात्तस्य पुनः '**विपाकः**' अनुभव उदयो वा । तदुदयेऽवश्यमशुभरूपस्य कर्मणो बन्धो भवति । इति गाथार्थः ॥३९॥

उक्तं दर्शनमोहम्, साम्प्रतं चारित्रमोहमाह—

(पादमा०) जिनधर्मे प्रद्वेषं वहति हृदयेन '**यस्य**' कर्मणः '**उदयेन**' विपाकवेदनेन । चकाराच्च केवलं हृदि प्रद्वेषं धारयति तत्फलमपि चावर्णवादादि करोति, तन्मिथ्यात्वं कर्म, संक्लिष्टस्तस्य पुनर्विपाकः, नरकादिप्रापकत्वात् । इति गाथार्थः ॥३९॥

दर्शनमोहनीयं त्रिविधमप्युक्त्वा चारित्रमोहनीयं गाथाऽऽद्यदलेनाह—

---

१ व्याख्याकारेण तु—"न य" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । २ 'हवइ कालं' इत्यपि पाठः । ३ 'जिणधम्मम्मि पओसं वहइ उदएण जस्स कम्मस्स' । इत्यपि पाठः ।

जं पि य चरित्तमोहं, [1]तं पि हु दुविहं समासओ होइ ।
सोलस जाण कसाया, नव भेया नोकसायाणं ॥४०॥

व्याख्या—यदपि च चरित्रमोहं यदिति प्रागभिहितं चरित्रमोहं, अपिशब्दः संभावने समुच्चये वा, 'चः' पादपूरणे, [2]चरेरित्रनप्रत्ययान्तस्य चरित्रमिति रूपम् । [3]निरुक्तं तु चितस्य कर्मणो रिक्तीकरणाच्चरित्रं व्रतं नियमो [4]वाऽर्थः, तदपि '**समासेन**' संक्षेपेण द्विविधं '**भणितं**' प्रतिपादितम् । तुशब्दान्न केवलं मोहनीयं, चरित्रमपि द्विप्रकारमेव । षोडश '**जानीहि**' विद्धि '**कषायान्**' क्रोधमानमायालोभान् प्रत्येकं चतुर्विकल्पान् । ते चामी—"**जलरेणुपुढविपव्वयराईसरिसो चउव्विहो कोहो । तिणिसलयाकट्ठट्ठियसेलत्थंभोवमो माणो ॥१॥ मायावलेहिगोमुत्तिमिंढसिंगघणवंसमूलसमा । [5]लोहो हलिद्दखंजणकद्दमकिमिराग सारिच्छो ॥२॥ पक्खचउमासवच्छरजावज्जीवाणुगामिणो कमसो । देवनरतिरियनारयगइसाहणहेयवो भणिया ॥३॥**" इति । षट् च दश च षोडश, षस्य उत्वं दस्य डत्वं निपातनात्, षडधिका दश षोडश, कषो=भवस्तस्यायो=लाभो येषु सत्सु तान् । तथा नव '**भेदाः**' विशेषा नोकषायाणाम् । कषाया [6]नो भवन्ति नोकषायाः, प्रतिषेधवाचको नोशब्दः, वेदत्रयहास्यादिरूपाः, तानिमान् स्त्रीपुंनपुंसकवेदहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सादीन् । इति गाथार्थः ॥४०॥

षोडशकषायभेदानाह—

(पारमा०) यदपि च चरित्रमोहं तदपि द्विविधं, न केवलं मोहनीयं दर्शनमोहनीयचरित्रमोहनीयभेदाद् द्विविधम् । चरित्रमोहनीयमपि हुशब्दस्यैवकारार्थत्वाद् द्विविधमेव समासतो भवति, कषायनोकषायभेदात् । तांश्चोत्तरार्द्धेनाह—'**षोडश**' षोडशसंख्यापरिच्छिन्नान् जानीहि, क्रोधमानमायालोभानां चतुर्णामपि प्रत्येकं चतुर्विधत्वात् । कृष्यन्ते=हिंस्यन्ते परस्परं प्राणिनोऽस्मिन्निति कषः=संसारः, तं अयन्ते=गच्छन्ति जन्तव एभिरिति कषायास्तान्, नव भेदान् नोकषायाणां वेदत्रयहास्यादिषट्कलक्षणान्, जानीहीति अत्रापि संबध्यते । इति गाथार्थः ॥४०॥

कषायाणामोद्देशेनाह—

कोहो माणो माया, लोभो चउरोवि हुंति चउभेया ।
अणअप्पच्चक्खाणा, पच्चक्खाणा य संजलणा ॥४१॥

---

१ "तंपि समासेण होइ दुविहं तु" इत्यपि पाठो दृश्यते, व्याख्याकारेण तु "तंपि समासेण दुविहं भणियं तु" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम्, अत्र 'दुविह' इति पदं प्राकृतत्वाल्लुप्तविभक्तिकं ज्ञेयम् । २ चरेरित्रचप्रत्य० जे० । ३ "पदभञ्जकं" जे० टिप्पणी । ४ ० मो वेत्यर्थः, तदपि जे० । ५ लोभो जे० । ६ न जे० ।

व्याख्या–'क्रोधः' असहनरूपः, 'मानः' स्तम्भरूपः, 'माया' कुटिलस्वभावा, [1]'लोभः' सञ्चयशीलता, चत्वारोऽपि 'भवन्ति' जायन्ते 'चतुर्भेदाः' चतुर्विकल्पाः । 'अण' इति अनन्तानुबन्धिनश्चत्वारः, अनन्त=आसंसारं यावत् अनुबन्धः=प्रवाहो येषां तेऽनन्तानुबन्धिनः । अप्रत्याख्यानाश्चत्वारः–न विद्यते देशसर्वनिषेधरूपं प्रत्याख्यानं येषामुदये तेऽप्रत्याख्यानाः, प्रसज्यनञ्समासस्य निषेधमात्रत्वात् । प्रत्याख्यानाश्चेति प्रत्याख्यानावरणा गृह्यन्ते, यथा सत्यभामा भामेति, आङ्मर्यादायाम् । प्रत्याख्यानमा मर्यादया वृण्वन्ति=च्छादयन्ति येषामुदये सर्वप्रत्याख्यानं न भवति देशतस्तु भवति ते प्रत्याख्यानावरणाश्चत्वारः । [2]संज्वलयन्ति यत्किंचिदेव स्वल्पमपि दुर्वचनादिकमासाद्योदयं यान्ति [3]उपशाम्यन्ति च संज्वलनाश्चत्वारः । इति गाथार्थः ॥४१॥

अनन्तानुबन्ध्युदये फलाभावप्रदर्शनायाह—

(पारमा०) क्रोधो मानो माया लोभश्चत्वारोऽपि प्रत्येकं चतुर्भेदा भवन्ति । कथम् ? 'अण' इति अनन्तानुबन्धिनः, तत्रानन्तं संसारमनुबध्नन्तीत्येवंशीला अनन्तानुबन्धिनः । तथा 'अप्रत्याख्यानाः' प्रत्याख्यानं च द्विधा, देशविरतिसर्वविरतिभेदात् । तत्र देशविरतिः सर्वविरत्यपेक्षयाऽल्पं प्रत्याख्यानम् , ततश्च न विद्यतेऽल्पमपि प्रत्याख्यानं यदुदयात्ते तथा । यत उक्तम्–"नाल्पमप्युत्सहेद्येषां, प्रत्याख्यातुमिहोदयात् । अप्रत्याख्यानसंज्ञाऽतो द्वितीयेषु निवेशिता ॥१॥" अथवाऽल्पं प्रत्याख्यानमप्रत्याख्यानम् , तदप्यावृण्वन्तीत्यप्रत्याख्यानावरणा अप्येते तदाह–'आवृण्वन्ति प्रत्याख्यानं स्वल्पमपि येन जीवस्य । तेनाऽप्रत्याख्यानावरणास्ते नञिह सोऽल्पार्थः ॥१॥' 'प्रत्याख्यानाः' इति प्रत्याख्यानावरणाः, प्रत्याख्यानं सर्वविरतिरूपमावृण्वन्तीति, बहुलवचनात्कर्तर्यनट् । तथा 'संज्वलनाः' सं ईषत्परीषहोपसर्गसंसर्गे चारित्रिणमपि ज्वलयन्तीतिकृत्वा । इति गाथार्थः ॥४१॥

सम्प्रत्याद्यान् विशेषेणाह—

कोहो माणो माया लोभो पढमा[4] अणंतबंधीउ ।
एयाणुदए जीवो इह सम्मत्तं न पावेइ ॥४२॥

व्याख्या–क्रोधमानमायालोभा उक्तस्वरूपाः 'प्रथमास्तु' आद्यास्तु पर्वतराजिशैलस्तम्भघनवंशकुडङ्गिकृमिरागाः 'अनन्तानुबन्धिनः' अनन्तं=संसारं कर्म वा बध्नन्तीत्येवंशीला अनन्तबन्धिनः । 'अनन्तानुबन्धिनः' इति वा पाठो द्रष्टव्यो व्याख्यायाम् । सा चैवम्-अनन्तः=अनन्तकालं यावत् , अनुबन्धः=श्चित्तस्याशुभोऽनुशयः प्रवाहोऽनन्तकालेनापि पश्चान्निवृत्तिर्न भवति,

१ 'लोभः' अतिसञ्चय० जे० । २ सञ्ज्वलन्ति जे० । ३ उपशमन्ति जे० । ४ व्याख्याकारेण तु "पढमा अणंतबंधी उ" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् ॥

तमनुबन्धन्तीत्येवंशीला अन्तानुबन्धिनः । सूत्रे तु प्राकृतत्वाद्गाथाभङ्गभयाच्चैवं पाठः । तुशब्दस्तु प्रथमेत्यत्र पुनःशब्दार्थः । 'एयाणं' इत्यत्र चार्थात्संबन्धनीयः । अनन्तानुबन्धिनां क्रोधमानमायालोभानां 'उदये' अनुभवे 'इह' मनुष्यलोके सम्यक्त्वं 'न प्राप्नोति' नासादयति । इति गाथार्थः ॥४२॥

तेषां चोदयो गुणस्थानकेषु कियद्दूरं यावद्भवति ? इत्याह—

(पारमा०) क्रोधो मानो माया लोभः प्रथमाः, 'अणंतबंधोउ' इति, आर्षत्वादनन्तानुबन्धिनः । एतेषामुदये जीवः 'इह' संसारे 'सम्यक्त्वं' उक्तस्वरूपं न प्राप्नोति । इति गाथार्थः ॥४२॥

सम्प्रति येषु गुणस्थानेष्वेषामुदयो येषु च न इत्येतदाह—

जं परिणामो किट्ठो मिच्छाओ जाव सासणो ताव ।
सम्मामिच्छाईसुं, एसिं उदओ [1]अओ नत्थि ॥४३॥

व्याख्या–'यत्' यस्मात्कारणात् 'परिणामः' अध्यवसायः 'क्लिष्टः' अशुभतमः 'मिथ्यात्वात्' मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकात्सकाशाद्यावत्सास्वादनः, सहास्वादनेन वर्तते सास्वादनः, सम्यक्त्व[2]मास्वाद्य पुनर्भवति अन्तर्मुहूर्तमात्रकालात् सास्वादनगुणस्थानकं यावत्ताव[3]त्क्लिष्टपरिणामोऽनुवर्तते। ननु 'मिथ्यात्वात्' इति पञ्चम्यैवावध्यर्थौ लभ्यते तत्किमर्थं यावत्तावच्छब्दयोर्द्वयोरुपादानमिति ?, उच्यते–[4]सापेक्षतया यावत्तावतोरुपादानमविरुद्धम्, अथवा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकमवधिमवधिमत्सास्वादनगुणस्थानकम्, अवधिमत एव यावच्छब्दोऽवधिमत्त्वाभिव्याप्तिप्रदर्शकः तावच्छन्दस्तु तस्यैवावधिमतः पर्यन्तप्रदर्शकः, [5]संबन्धशब्दो वा, मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकात्सकाशात्सास्वादनगुणस्थानकं यावद्भवति, न परतो भवति क्लिष्टाध्यवसायः, तत एव निवर्तते इति तात्पर्यार्थः । ननु कथमिदमवसीयते ? इत्यत आह–'सम्यग्मिथ्यात्वादिषु' सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकेषु, आदिशब्दादविरतादिगुणस्थानकेषु च 'एतेषां' अनन्तानुबन्धिनां उदयः, अनुभवः 'यतः' यस्मात्कारणात् 'नास्ति' न विद्यते इति युक्तिः । इति गाथार्थः ॥४३॥

द्वितीयकषायोदये विरत्यभावमाह—

(पारमा०) एतद्व्याख्या च गुणस्थानात्सुज्ञाना इति गुणस्थाननामस्वरूपप्ररूपणाय शास्त्रान्तरश्लोकाः । तथाहि–"मिथ्यादृष्टिः १ सास्वादन २–सम्यग्मिथ्यादृशावपि ३ । अविरतसम्यग्दृष्टिः ४, विरताविरतोऽपि च ५ ॥१॥ प्रमत्तश्चा ६ ऽप्रमत्तश्च ७, निवृत्ति-

१ व्याख्याकारेण तु "जओ" इत्येतत्पाठानुसारेण व्याख्यातम् जे० । २ "मासाद्य" जे० । ३ त्क्लिष्टः परि० जे० । ४ नोल्लिख्या यावत्ता० जे० । ५ सम्बन्धिशब्दो जे० ।

बादरस्ततः ८ । अनिवृत्तिबादर ९ श्चा-ऽथ सूक्ष्मसंपरायकः १० ॥२॥ ततः प्रशान्त-मोहश्च ११ क्षीणमोहश्च १२ योगवान् १३ । अयोगवानिति १४ गुण-स्थानानि स्युश्चतुर्दश ॥३॥ मिथ्यादृष्टिर्भवेन्मिथ्या-दर्शनस्योदये सति । गुणस्थानत्वमेतस्य, भद्रकत्वाद्यपेक्षया १ ॥४॥ मिथ्यात्वस्यानुदयेऽनन्तानुबन्ध्युदये सति । सास्वाद-नसम्यग्दृष्टिः, स्यादुत्कर्षात्षडावली २ ॥५॥ सम्यक्त्वमिथ्यात्वयोगात्, मुहूर्तं मिश्रदर्शनः ३ । अविरतसम्यग्दृष्टिरप्रत्याख्यानकोदये ४ ॥६॥ विरताविरतस्तु स्यात्, प्रत्याख्यानोदये सति ५ । प्रमत्तसंयतः प्राप्तसंयमो य प्रमाद्यति ६ ।७॥ सोऽप्रमत्तसंयतो यः, संयमे न प्रमाद्यति ७ । उभावपि परावृत्त्या, स्यातामान्त-र्मौहूर्तिकौ ॥८॥ कर्मणां स्थितिघातादो-नपूर्वान् कुरुते यतः । तस्मादपूर्वकरणः, क्षपकः शमकश्च सः ॥९॥ यद्बादरकषायाणां, प्रविष्टानामिमं मिथः । परिणामा निवर्तन्ते निवृत्तिबादरोऽपि तत् ८ ॥१०॥ परिणामा निवर्तन्ते, मिथो यत्र न यत्ततः । अनिवृत्तिबादरः स्यात्, क्षपकः शमकश्च सः ९ ॥११॥ लोभाभिधः संपरायः, सूक्ष्मकिट्टीकृतो यतः । स सूक्ष्मसंपरायः स्यात्, क्षपकः शमकोऽपि च १० ॥१२॥ अथोपशान्तमोहः स्यात्, मोहस्योपशमे सति ११ मोहस्य तु क्षये जाते, क्षीणमोहं प्रचक्षते १२ ॥१३॥ सयोगिकेवली घाति-क्षयादुत्पन्नकेवलः १३ । योगानां तु क्षये जाते, स एवायोगिकेवली १४ ॥१४॥" प्रतिपादितानि प्रस्तुतोपयोगीनि गुणस्थानानि । सम्प्रति सूत्रं व्याख्यायते—'यत्' यस्मात् परिणामः क्लिष्टो 'मिथ्यात्वात्' मिथ्यादृष्टिगुणस्थानाद्यावत्सास्वादनस्तावत् । अतः सास्वादनगुणस्थानेऽनन्तानुबन्धिनो व्यवच्छिन्नाः । सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादिष्वेषामुदयोऽतः क्लिष्टपरिणामाभावान्नास्ति । इति गाथार्थः ॥४३॥

द्वितीयकषायानाह—

कोहो माणो माया, लोभो बीया अपच्चखाणा उ ।
एयाणुदए जीवो, विरयाविरइं न पावेइ ॥४४॥

व्याख्या—क्रोधमानमायलोभा द्वितीयाः पृथ्वीराजिअस्थिमेषशृङ्गकर्दमतुल्याः 'अप्रत्याख्यानास्तु' सर्वथा विरत्यभावस्वरूपाः । तुशब्दः पुनःशब्दार्थः एतेषामित्यत्र संबन्धनीयः । एतेषां पुनः उदये विपाके 'जीवः' प्राणी 'विरताविरतिं' देशविरतिं न प्राप्नोति, सम्यक्त्वं तु प्राप्नोति योग्यतायाम् । इति गाथार्थः ॥४४॥

एतेषामुदये किमितिकृत्वा विरताविरतिं न प्राप्नोति ? इत्याह—

(पारमा०) क्रोधादयो द्वितीया अप्रत्याख्यानाः, उच्यन्ते इत्यध्याहारः । एषामुदये जीवो देशविरतिं न प्राप्नोति । इति गाथार्थः ॥४४॥

एषां च यत्पर्यन्तेषु गुणस्थानेषूदयस्तदाह—

एसिं [1]जाण विवागो, मिच्छाओ जाव अविरओ ताव ।
परओ देसजयाइसु, नत्थि विवागो चउण्हं पि ॥४५॥

व्याख्या—'एतेषां' अप्रत्याख्यानकषायाणां '**येन**' कारणेन '**विपाकः**' उदयः, '**मिच्छाओ जाव अविरओ ताव**' मिथ्यात्वात्सकाशाद्यावदविर[2]तगुणस्थानकं तावदुदय इति हृदयम् '**परओ देसजयाइसु**' परतो देशयत्यादिषु विरताविरतादिषु '**नास्ति विपाको**' न विद्यते अनुभवश्चतुर्णामपि द्वितीयाप्रत्याख्यानकषायाणां येन कारणेन । इति गाथार्थः ॥४५॥

तृतीयकषायोदये सर्वविरत्यभावमाह—

(पारमा०) '**एषां**' अप्रत्याख्यानानां विपाको '**मिथ्यात्वात्**' मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकाद्यावत् '**अविरतः**' अविरतसम्यग्दृष्टिस्तावत्, इतेरध्याहारादिति जानीहि । परतो '**देशयतादिषु**' विरताविरतादिषु नास्ति विपाकश्चतुर्णामपि । इति गाथार्थः ॥४५॥

तृतीयानाह—

[3]कोहो माणो माया, लोभो तइया उ पच्चक्खाणा उ ।
एयाणुदए जीवो, पावेइ न सव्वविरइं तु ॥४६॥

व्याख्या—क्रोधमानमायालोभाः '**तृतीयास्तु**' तृतीयाः पुना रेणुरेखाकाष्ठगोमूत्रिकाखञ्जनसदृशाः '**प्रत्याख्यानास्तु**' प्रत्याख्यानावरणा एव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । एतेषां '**उदये**' विपाके '**प्राप्नोति**' आसादयति, न '**सर्वविरतिं तु**' संयतत्वमेव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, देशयतित्वं पुनः प्राप्नोति । इति गाथार्थः ॥४६॥

किमितिकृत्वा सर्वविरतिं न प्राप्नोति ? इत्याह—

(पारमा०) क्रोधादयस्तृतीयाः '**प्रत्याख्यानाः**' इति प्रत्याख्यानावरणाः, उच्यन्त इति शेषः । एतेषामुदये जीवः पुनः सर्वविरतिं न प्राप्नोति । इति गाथार्थः ॥४६॥

[3]एषामुदयावधिभूमिमाह—

---

१ व्याख्याकारेण तु "जेण" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । एवमग्रेऽपि ज्ञेयम् ॥ २ तस्साव-द्ग्रन्थ जे० ३ "एषामुदयभूमिमाह" इत्यपि ॥

एसिं जाण विवागो, मिच्छाओ जाव विरयविरओ उ।
परओ पमत्तमाइसु, नत्थि विवागो चउण्हं पि ॥४७॥

व्याख्या–'एतेषां' प्रागुक्ततृतीयकषायाणां 'येन' कारणेन 'विपाकः' उदयोऽनुभवो मिथ्यात्वात्सकाशाद्यावद् 'विरताविरतस्तु' तुशब्दस्यैवकारार्थत्वाद्विरताविरतगुणस्थानकमेव यावदुदयः। 'परतः' अग्रतः प्रमत्तमादिर्येषां गुणस्थानकानां तानि प्रमत्तादीनि प्रमत्तसंयतगुणस्थानकम्, आदिशब्दादप्रमत्तादिसंयतगुणस्थानकानि गृह्यन्ते, [तेषु] नास्ति 'विपाकः' अनुभवश्चतुर्णामपि यावत्येव गुणस्थानके तेषामुदयस्तावत्येव ते सर्वविरतेर्निबन्धका नोत्तरत्र, भवत्येवात्र सर्वविरतिः, प्राक् पुनः कषायोदयो विबन्धकोऽस्तीत्यनेन कारणेन सर्वविरत्यभावः। इति गाथार्थः ॥४७॥

चरमकषायानाह—

(पारमा०) एषां प्रत्याख्यानरणानां विपाको मिथ्यात्वाद् यावद्विरताविरतस्तावदेवेति जानीहि, परतः प्रमत्तादिषु चतुर्णामपि नास्ति विपाकः। इति गाथार्थः ॥४७॥

चतुर्थकषायानाह—

कोहो माणो माया, लोभो चरिमा उ हुंति संजलणा।
एयाणुदए जीवो, न लहइ अहखायचारित्तं ॥४८॥

व्याख्या–क्रोधमानमायालोभाः 'चरमास्तु' पुनः पश्चिमाः 'भवन्ति' जायन्ते 'संज्वलनाः' प्रागभिहिताः। एतेषां 'उदये' विपाकानु[1]भवे 'जीवः' सत्त्वः 'न लभ्यते' न प्राप्नोति, यथैवाख्यातं कथितं यथाख्यातम्, तच्च तच्चारित्रं च। इति गाथार्थः ॥४८॥

किमितिकृत्वा न लभते ? इत्याह—

(पारमा०) क्रोधादयश्चरमाश्चत्वारो भवन्ति 'संज्वलनाः' संज्वलनाभिधानाः। एषामुदये जीवो न लभते यथाख्यातचारित्रम्। इति गाथार्थः ॥४८॥

एतदुदयावधिमाह—

एसिं जाण विवागो, मिच्छाओ जाव बायरो तिण्हं।
लोभस्स जाव सुहुमो, होइ विवागो न परओ उ ॥४९॥

व्याख्या–'एतेषां' उक्तस्वरूपकषायाणां 'येन' कारणेन 'विपाकः' उदयो मिथ्यात्वात्सकाशाद्बादरगुणस्थानकं 'तिण्हं' त्रयाणां जलरेखातिनिशवृक्षलताअवलेखिधनुर्लिखनरूपाणां,

---

[1] भवने जे.

'लोभाय' पुनर्हरिद्रारागतुल्यस्य यावत्सूक्ष्मःसंपरायो लोभो यस्मिन् गुणस्थानके तत्सूक्ष्मसंपरायं तस्मिन्, 'भवति' जायते 'विपाकः' उदयः, न परस्मिन्नुपशान्तमोहादौ। इति गाथार्थः ॥४९॥

साम्प्रतं नोकषायानाह—

(पारमा०) एषां संज्वलनानां 'त्रयाणां' क्रोधमानमायालक्षणानां विपाको मिथ्यात्वाद्यावद्बादरोऽनिवृत्तिबादर इति जानीहि, न परतः, इत्यत्रापि संबध्यते। 'लोभस्य' चतुर्थसंज्वलनस्य यावत्, 'सूक्ष्मः' सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानं तावद्विपाको भवति, न परतः पुनः प्रशान्तमोहादिषु। इति गाथार्थः ॥४९॥

उक्ताः कषायाः। सम्प्रति नोकषायप्रतिपादनायाह—

नव नोकसाय भणिमो, वेया तिन्नेव हासछक्कं च।
इत्थीपुरिसनपुंसग, तेसि सरूवं इमं होइ ॥५०॥

व्याख्या—नव सङ्ख्यया नोकषायाः पूर्वोक्तस्वरूपाः तान्, 'भणिमो' इति प्रतिपादयामः। वेदास्त्रय उक्तलक्षणाः, हास्यषट्कं च। तत्र तावद् वेदाः स्त्रीपुंनपुंसकरूपाः, तेषां च स्वरूपं 'इमं' वक्ष्यमाणलक्षणं 'भवति' विज्ञेयम्। इति गाथार्थः ॥५०॥

'यथोद्देशस्तथा निर्देशः' इति न्यायात् स्त्रीवेदं लक्षणपूर्वकं दृष्टान्तपुरस्सरमाह—

(पारमा०) कषायसहचरिता नोकषायाः, नोशब्दोऽत्र सहचारवाची, कषायसहचरितत्वं च कषायैः सह सर्वदा वर्तमानत्वात्। ते च नव, तान् भणामः, वेदत्रयं हास्यादिषट्कं च। तत्र वेदत्रिकमाह-स्त्रीपुरुषनपुंसकेति स्त्रीवेदः पुरुषवेदो नपुंसकवेदश्च। तेषां स्वरूपमिदं वक्ष्यमाणं भवति। इति गाथार्थः ॥५०॥

तत्र स्त्रीवेदमाह—

पुरिसं पइ अहिलासो, उदएणं होइ जस्स कम्मस्स।
सो फुंफुमदाहसमो, इत्थीवेयस्स उ विवागो ॥५१॥

व्याख्या—'पुरुषं प्रति' पुरुषमङ्गीकृत्य 'अभिलाषः' इच्छाविशेषः, यथाहं पुरुषं सेवया-मीत्येवंरूपः, 'उदयेन' विपाकेन यस्य 'भवति' जायते 'कर्मणः' मोहनीयविशेषस्य, 'सः' अभिलाषः फुम्फुमाया दाहः फुम्फुमादाहः तेन समः-तेन तुल्यः कारीषदाहसदृशः, यथा यथा चाल्यते तथा तथा ज्वलति दहति च। एवमत्रापि यथा यथा संस्पृश्यते पुरुषेण तथा तथाऽस्या अधिकतरोऽभिलाषो जायते। अभुज्यमानायां तु छन्नकारीषदाहतुल्योऽभिलाषो मन्द इत्यर्थः। 'स्त्रीवेदस्य तु' योषिद्वेदस्यैवायं 'विपाकः' अनुभवः। इति गाथार्थः ॥५१॥ पुरुषवेदस्वरूपमाह—

एर्सिं जाण विवागो, मिच्छाओ जाव विरयविरओ उ।
परओ पमत्तमाइसु, नत्थि विवागो चउण्ह पि ॥४७॥

व्याख्या–'एतेषां' प्रागुक्ततृतीयकषायाणां 'येन' कारणेन 'विपाकः' उदयोऽनुभवो मिथ्यात्वात्सकाशाद्यावद् 'विरताविरतस्तु' तुशब्दस्यैवकारार्थत्वाद्विरताविरतगुणस्थानकमेव यावदुदयः । 'परतः' अग्रतः प्रमत्तमादिर्येषां गुणस्थानकानां तानि प्रमत्तादीनि प्रमत्तसंयतगुणस्थानकम् , आदिशब्दादप्रमत्तादिसंयतगुणस्थानकानि गृह्यन्ते, [तेषु] नास्ति 'विपाकः' अनुभवश्चतुर्णामपि यावत्येव गुणस्थानके तेषामुदयस्तावत्येव ते सर्वविरतेर्विबन्धका नोत्तरत्र, भवत्येवात्र सर्वविरतिः, प्राक् पुनः कषायोदयो विबन्धकोऽस्तीत्यनेन कारणेन सर्वविरत्यभावः । इति गाथार्थः ॥४७॥

चरमकषायानाह—

(पारमा०) एषां प्रत्याख्यानरणानां विपाको मिथ्यात्वाद् यावद्विरताविरतस्तावदेवेति जानीहि, परतः प्रमत्तादिषु चतुर्णामपि नास्ति विपाकः । इति गाथार्थः ॥४७॥

चतुर्थकषायानाह—

कोहो माणो माया, लोभो चरिमा उ हुंति संजलणा ।
एयाणुदए जीवो, न लहइ अहखायचारित्तं ॥४८॥

व्याख्या–क्रोधमानमायालोभाः 'चरमास्तु' पुनः पश्चिमाः'भवन्ति' जायन्ते 'संज्वलनाः' प्रागभिहिताः । एतेषां 'उदये' विपाकात्तु [1]भवे 'जीवः'सत्त्वः 'न लभ्यते' न प्राप्नोति, यथैवाख्यातं कथितं यथाख्यातम् , तच्च तच्चारित्रं च । इति गाथार्थः ॥४८॥

किमिनिकृत्वा न लभते ? इत्याह—

(पारमा०) क्रोधादयश्चरमाश्चत्वारो भवन्ति 'संज्वलनाः' संज्वलनाभिधानाः । एषामुदये जीवो न लभते यथाख्यातचारित्रम् । इति गाथार्थः ॥४८॥

एतदुदयावधिमाह—

एसिं जाण विवागो, मिच्छाओ जाव बायरो तिण्हं ।
लोभस्स जाव सुहुमो, होइ विवागो न परओ उ ॥४९॥

व्याख्या–'एतेषां' उक्तस्वरूपकषायाणां 'येन' कारणेन 'विपाकः' उदयो मिथ्यात्वात्सकाशाद्यावद्बादरगुणस्थानकं 'तिण्हं' त्रयाणां जलरेखातिनिशवृक्षलताअवलेहिघनुलिखनरूपाणां,

[1] भवने जे.

'लोभस्य' पुनर्हरिद्रारागतुल्यस्य यावत्सूक्ष्मःसंपरायो लोभो यस्मिन् गुणस्थानके तत्सूक्ष्मसंपरायं तस्मिन्, 'भवति' जायते 'विपाकः' उदयः, न परस्मिन्नुपशान्तमोहादौ। इति गाथार्थः ॥४९॥

साम्प्रतं नोकषायानाह—

(पारमा०) एषां संज्वलनानां 'त्रयाणां' क्रोधमानमायालक्षणानां विपाको मिथ्यात्वाद्यावद्बादरोऽनिवृत्तिबादर इति जानीहि, न परतः, इत्यत्रापि संबध्यते। 'लोभस्य' चतुर्थसंज्वलनस्य यावत्, 'सूक्ष्मः' सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानं तावद्विपाको भवति, न परतः पुनः प्रशान्तमोहादिषु। इति गाथार्थः ॥४९॥

उक्ताः कषायाः। सम्प्रति नोकषायप्रतिपादनायाह—

नव नोकसाय भणिमो, वेया तिन्नेव हासछक्कं च।
इत्थीपुरिसनपुंसग, तेसि सरूवं इमं होइ ॥५०॥

व्याख्या—नव सङ्ख्यया नोकषायाः पूर्वोक्तस्वरूपाः तान्, 'भणिमो' इति प्रतिपादयामः। वेदास्त्रय उक्तलक्षणाः, हास्यषट्कं च। तत्र तावद् वेदाः स्त्रीपुंनपुंसकरूपाः, तेषां च स्वरूपं 'इमं' वक्ष्यमाणलक्षणं 'भवति' विज्ञेयम्। इति गाथार्थः ॥५०॥

'यथोद्देशस्तथा निर्देशः' इति न्यायात् स्त्रीवेदं लक्षणपूर्वकं दृष्टान्तपुरस्सरमाह—

(पारमा०) कषायसहचरिता नोकषायाः, नोशब्दोऽत्र सहचारवाची, कषायसहचरितत्वं च कषायैः सह सर्वदा वर्तमानत्वात्। ते च नव, तान् भणामः, वेदत्रयं हास्यादिषट्कं च। तत्र वेदत्रिकमाह-स्त्रीपुरुषनपुंसकेति स्त्रीवेदः पुरुषवेदो नपुंसकवेदश्च। तेषां स्वरूपमिदं वक्ष्यमाणं भवति। इति गाथार्थः ॥५०॥

तत्र स्त्रीवेदमाह—

पुरिसं पइ अहिलासो, उदएणं होइ जस्स कम्मस्स।
सो फुंफुमदाहसमो, इत्थीवेयस्स उ विवागो ॥५१॥

व्याख्या—'पुरुषं प्रति' पुरुषमङ्गीकृत्य 'अभिलाषः' इच्छाविशेषः, यथाहं पुरुषं सेवयामीत्येवंरूपः, 'उदयेन' विपाकेन यस्य 'भवति' जायते 'कर्मणः' मोहनीयविशेषस्य, 'सः' अभिलाषः फुम्फुमाया दाहः फुम्फुमादाहः तेन समः-तेन तुल्यः कारीषदाहसदृशः, यथा यथा चाल्यते तथा तथा ज्वलति दहति च। एवमबलापि यथा यथा संस्पृश्यते पुरुषेण तथा तथाऽस्या अधिकतरोऽभिलाषो जायते। असुज्यमानायां तु छन्नकारीषदाहतुल्योऽभिलाषो मन्द इत्यर्थः। 'स्त्रीवेदस्य तु' योषिद्वेदस्यैवायं 'विपाकः' अनुभवः। इति गाथार्थः ॥५१॥ पुरुषवेदस्वरूपमाह—

(पारमा०) पुरुषं प्रत्यमिलाषः स्त्रिया यस्य कर्मण उदयेन भवति, पित्तोदये मधुराभिलाषवत्, स करीषाग्निदाहसमः स्त्रीवेदस्य विपाकः । इति गाथार्थः ॥५१॥

पुरुषवेदमाह—

इत्थीए पुण उवरिं, [1]जस्सिह उदएण [2]रागउप्पज्जे ।
सो तणदाहसमाणो, होइ विवागो [3]पुरिसवेए ॥५२॥

(पू०) व्याख्या—'**स्त्रियः पुनरुपरि**' स्त्रीमङ्गीकृत्य, पुरुषस्येति सामर्थ्याल्लभ्यते गाथायामनुपात्तमपि, उत्पद्यते इति क्रियोपादानात् । नहि कर्तारमन्तरेण क्रिया संभवति, [4]क्रियाऽप्युपात्ता सामर्थ्यात्कर्तारमाक्षिपति कर्म च, कर्म चोपात्तं कर्तारं क्रियां चाक्षिपति, न कर्तृव्यतिरेकेण क्रिया संभवति नापि कर्म विना क्रिया, इति सामर्थ्यादेकस्मिन्नुक्ते इतरयोर्ग्रहणम् । '**यस्य**' कर्मणो मोहनीयविशेषस्योदयेनैव '**रागः**' अभिष्वङ्गलक्षणः स्त्रीं सेवयामीत्येवंरूपः '**उत्पद्येत**' जायेत, स तृणदाहसमानः, यथा तृणानां दाहे ज्वलनं झटिति विध्यापनं च भवति, एवं पुंवेदोदये स्त्र्यासेवनं प्रत्यऽभिलाषो भवति, निवर्तते च, तत्सेवने शीघ्रं '**भवति**' संजायते '**विपाकः**' अनुभवः '**पुंवेद एष**' पुरुषवेद एव । इति गाथार्थः॥५२॥ नपुंसकवेदस्वरूपमाह—

(पारमा०) स्त्रिया उपरि पुनर्यस्येह कर्मण उदयेन राग उत्पद्यते, श्लेष्मोदयेऽम्लाभिलाषवत्, स तृणदाहसमानो भवति विपाकः '**पुरुषवेदे**' पुरुषवेदस्य । इति गाथार्थः ॥५२॥ नपुंसकवेदमाह—

इत्थीपुरिसाणुवरिं, [6]जस्सिह उदएण [7]राग उप्पज्जे ।
नगरमहादाहसमो, [8]सो उ विवागो [9]अपुमवेए ॥५३॥

व्याख्या—स्त्री च पुरुषश्च स्त्रीपुरुषौ प्रतीतौ तयोरुपरि '**यस्य**' मोहनीयविशेषस्य '**उदयेन**' विपाकेन रागः '**उत्पद्येतैव**' जायेतैव । किंभूतोऽसौ ? इत्याह—**नगरमहादाहसमः**' नगरस्य महादाहो नगरमहादाहः तेन समस्तुल्यः, यथा नगरं दह्यमानं महता कालेन दह्यते विध्याति च महतैव । एवं नपुंसकवेदोदयेऽपि स्त्रीपुरुषयोः सेवनं प्रत्यभिलाषातिरेको महताऽपि कालेन न निवर्तते नापि सेवने तृप्तिः '**जानीहि**' अवबुध्यस्व '**विपाकः**' अनुभवः '**अपुंवेदे**'

१-६ "जस्सुदएणं तु" इत्यपि पाठः, तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम् । २-७ "रागमुप्पज्जे" इत्यपि पाठः । ३ व्याख्याकारेण तु ""सो उ पुमवेए" इति पाठमनुसृत्य व्याख्यानम् । ४ क्रियाद्युपात्ता सामर्थ्यात्० ने० । ५ 'उत्पद्यते' जायते । ८ "होइ" इत्यपि पाठः । व्याख्याकारेण तु—"जाण विवागो" इत्येतत्पाठानुसारेण व्याख्यानम । ९ "नपुंसम्म" इत्यपि पाठः ।

नपुंसकवेदस्य। अपुंवेदग्रहणेनात्र नपुंसकवेदो गृह्यते न स्त्रीवेदः, तत्स्वरूपस्य प्रागभिहितत्वात्। इति गाथार्थः ॥५३॥ कियद्दूरमेते गुणस्थानकेषु गच्छन्ति ? इत्याह—

(पारमा०) स्त्रीपुरुषयोरुपरि यस्येह कर्मण उदयेन राग उत्पद्यते, पित्तश्लेष्मोदये मार्जिताभिलाषवत्, नगरमहादाहसमः पुनर्विपाकः 'अपुंवेदे' नपुंसकवेदस्य। इति गाथार्थः ॥५३॥

गुणस्थानेष्वेतद्विपाकवेदनाय हास्यादिषट्कोद्देशाय चाह—

[1]तिण्ह वि होइ विवागो, मिच्छाओ जाव बायरो ताव।
हासरईअरइभयं, सोगदुगंछा [2]उ अह भणिमो ॥५४॥

व्याख्या—त्रयाणामपि **'भवति'** जायते **'विपाकः'** अनुभवो मिथ्यात्वात्सकाशाद्यावद्बादरगुणस्थानकं तावदनुवृत्तिः, परतो नास्त्यनुवृत्तिः। उक्तं वेदत्रिकम्, हास्यादिषट्कमाह— **'हास्यरत्यरतिभयं'** हास्यं च रतिश्चारतिश्च भयं च द्वन्द्वैकवद्भावादेकत्वम्। शोकजुगुप्से च **'अथ'** अनन्तरं **'भणामः'** प्रतिपादयामः। इति गाथार्थः ॥५४॥

हास्यस्वरूपमाह—

(पारमा०) त्रयाणामपि स्त्रीवेदपुरुषवेदनपुंसकवेदानां विपाको भवति मिथ्यात्वाद् यावद्बादरोऽनिवृत्तिबादरस्तावत्। न परतः। हास्यरत्यरतिभयमिति समाहारः। शोकजुगुप्से अथ भणामः। इति गाथार्थः ॥५४॥

तत्र हास्यमोहनीयमाह—

सनिमित्तऽनिमित्तं वा, जं हासं होइ [3]इत्थ जीवस्स।
सो हासमोहणीयस्स होइ कम्मस्स उ विवागो ॥५५॥

व्याख्या—सह निमित्तेन वर्तत इति सनिमित्तं सकारणं, न विद्यते निमित्तं कारणं यस्मिन् तदनिमित्तम्, तद्वा **'यद्धास्यं'** मुखविकासलक्षणमट्टट्टहासरूपं वा **'भवति'** जायते **'अत्र'** संसारे **'जीवस्य'** प्राणिनः, सः **'हास्यमोहनीयस्यैव'** मुखविकासलक्षणस्याट्टट्टहासरूपस्य वा भवति कर्मणस्तु **'विपाकः'** अनुभवनम्। स इति विपाकापेक्षया पुंल्लिङ्गनिर्देशः। इति गाथार्थः ॥५५॥ रतिमोहनीयस्वरूपमाह—

(पारमा०) सनिमित्तं दर्शनभाषणश्रवणरूपबाह्यकारणापेक्षं, अनिमित्तं बाह्यहेतुमन्तरेण किमप्यन्तःस्मृतवतो यद्धास्यं भवति। यदुक्तं श्रीस्थानाङ्गे—"**चउहिं ठाणेहिं हासुप्पत्ती**

---

१ "तिण्हवि जाण विवागो" इत्यपि पाठः। २ "य" इत्यपि पाठः। ३ "एत्थ" इत्यपि पाठः।

सिआ । तंजहा–पासित्ता, भासित्ता, सुणित्ता, संभरित्ता" इति । अत्र संसारे जीवस्य स हास्यमोहनीयस्य कर्मणो भवति विपाकः । इति गाथार्थः ॥५५॥

रतिमोहनीयमाह—

सच्चित्ताचित्तेसु य, बाहिरदव्वेसु जस्स उदएणं ।
होइ रई रइमोहे, [1]सो उ विवागो वियाणाहि ॥५६॥

(पू०) व्याख्या–सचित्ताश्चाचित्ताश्च–सचित्ताश्चाचित्ताः कलत्रगृहादयः तेषु च, 'बाह्यद्रव्येषु' आत्मव्यतिरिक्तेषु, 'यस्य' मोहनीयविशेषस्य 'उदयेन' विपाकेन भवति 'रतिः' प्रीतिः, । ('रतिमोहे') रतिमोहनीयस्यैव कर्मणस्तं विपाकं 'विजानीहि' अवबुध्यस्व । इति गाथार्थः ॥५६॥

अरतिमोहनीयमाह—

(पारमा०) सचित्तेषु देहकलत्रादिषु, अचित्तेषु कनकादिषु, चकारान्मिश्रेष्वलङ्कृतस्त्र्यादिषु, बाह्यशब्देनान्तरसम्यक्त्वादीनां व्युदासेन द्रव्येषु यस्य कर्मण उदयेन रतिर्भवति रतिमोहे । स 'तु' पुनर्विपाक इति विजानीहि । इति गाथार्थः ॥५६॥

अरतिमोहनीयमाह—

सच्चित्ताचित्तेसु य, बाहिरदव्वेसु जस्स उदएणं ।
अरई होइ हु जीवे, सो उ विवागो अरइमोहे ॥५७॥

(पू०) व्याख्या- 'सचित्ताचित्तेषु च' स्त्र्यादिवेश्मादिष्वशोभनेषु च 'बाह्यद्रव्येषु' आत्मनः पृथग्भूतेषु 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन अरतिः 'भवति' जायते रणरणकरूपा 'जीवे' जीवस्य स 'तु' पुनः 'विपाकः' अनुभवः 'अरतिमोहे' रणरणक[2]रूपे, मोहस्यैव नान्यस्य । सर्वत्र षष्ठ्यर्थे सप्तमी प्राकृतत्वात् । इति गाथार्थः ॥५७॥

भयस्वरूपमाह—

(पारमा०) 'सचित्ताचित्तेषु' उक्तस्वरूपेषु बाह्यद्रव्येषु यस्य कर्मण उदयेनारतिर्भवति जीवे, स 'तु' पुनर्विपाकोऽरतिमोहे । इति गाथार्थः ॥५७॥

भयमोहनीयमाह—

भयवज्जियम्मि जीवे, जस्सिह उदएण [3]हुंति कम्मस्स ।
सत्तवि भयठाणाइं, भयमोहे सो विवागो उ ॥५८॥

---

१ व्याख्याकारेण तु–"तं तु विवागं" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । २ रूपमोहस्यैव जे० ।
३ "होइ" इत्यपि पाठः ।

(पू०) व्याख्या—'भयवर्जिते' भयरहिते 'जीवे' प्राणिनि यस्य 'कर्मणः' मोहनीयविशेषस्योदयेन 'भवन्ति' जायन्ते 'सप्तापि भयस्थानानि' इहपरलोकादानाकस्मादाजीवमरणाश्लाघारूपाणि। तत्रेहलोकभयं मनुष्यो मनुष्याद्बिभेति १। परलोकभयं मनुष्यो गवादेर्नरकादेर्वा बिभेति २। आदानं ग्रहणं तस्माद्भयमादानभयम्, अस्माकमयं राजादिर्धनादि ग्रहीष्यते, ३। अकस्माद्भयमिदं धवलगृहादि ममोपरि निपतिष्यतीत्येवंरूपम् ४। आजीविकाभयं दुष्कालादौ पतिते कथं वयं जीविष्यामः ? ५। मरणभयं मरिष्यामो वयमित्येवं हृदयकम्परूपम् ६। अश्लाघाभयं ममावर्णवादं लोकः करिष्यतीत्येवंरूपम् ७। भयरूपं मोहं भयमोहं तस्य सः 'तु' पुनः 'विपाकः' अनुभवः तुरेवकारार्थो वा। इति गाथार्थः ॥५८॥

शोकमोहनीयमाह—

(पारमा०) भयवर्जिते जीवे यस्य कर्मण इहोदयेन भवन्ति सप्तापि भयस्थानानि, भयमोहे स पुनर्विपाकः। भयस्थानानि च इहलोकपरलोकादानाकस्मादाजीवमरणाश्लाघारूपाणि। तत्र मनुष्यस्य मनुष्याद्भयमितीहलोकभयम् १। मनुष्यस्य महिषादेर्नरकादेर्वा भयं परलोकभयम् २। मम सकाशादयमिदमादास्यतीति भयमादानभयम् ३। उपविष्टस्य सुप्तस्य वा मत्तमातङ्गादिनिमित्तमन्तरेण भयमकस्माद्भयम् ४। धान्यहीनस्य दुष्कालपतनाद्याकर्णनाद्भयमाजीविकाभयम् ५। नैमित्तिकादिना मरिष्यसि त्वमधुनेत्यादिकथिते भयं मरणभयम् ६। अकार्यप्रकरणोन्मुखस्य [1]विवचनायां जनापवादमुत्प्रेक्ष्य भयमश्लाघाभयम्। इति गाथार्थः ॥५८॥ शोकमोहनीयमाह—

सोगरहियम्मि जीवे, [2]जस्सिह उदएण होइ कम्मस्स।
अक्कंदणाइ[3]सोगो, तं [4]जाणह सोगमोहणियं ॥५९॥

(पू०) व्याख्या—'शोकरहिते' व्यपगतशोके 'जीवे' प्राणिनि स्वभावेन यस्य 'तु' पुनर्मोहस्य 'उदयेन' विपाकेन 'भवति' जायते कर्मणः, किम्? इत्याह—'आक्रन्दनादिशोकः' आक्रन्दनमादिर्यस्य शोकस्य तदाक्रन्दनादिशोकः। आक्रन्दनं सशब्दं सदुःखं सताडनं प्रलपनम्। आदिशब्दादुरोऽभिघातादि, तत् 'जानीहि' अवबुध्यस्व शोकमोहनीयम् इति गाथार्थः ॥५९॥ जुगुप्सामोहनीयमाह—

(पारमा०) शोकरहिते जीवे यस्य कर्मण उदयादिहाक्रन्दनादि, आदिशब्दादुरस्ताडन-

---

१ "विवेचनायाम्" इत्यपि। २ "व्याख्याकारेण तु—"जस्स उ उदएण" इत्येतत्पाठानुसारेण व्याख्यातम्। ३ "सोगं" इत्यपि पाठः। ४ "जाणसु" इत्यपि पाठः।

भूपीठलुठनादिशोको भवति, तज्जानीहि शोकमोहनीयम्। इति गाथार्थः ॥५९॥ जुगुप्सा-मोहनीयमाह—

दुग्गंधमलिणगेसु य, [1]अब्भिंतरबाहिरेसु दव्वेसु।
जेण विलीयं जीवे, उप्पज्जइ सा [2]दुगुंछा उ ॥६०॥

(पू०) व्याख्या–दुर्गन्धाश्च मलिनाश्च दुर्गन्धमलिनाः, दुर्गन्धमलिना एव दुर्गन्ध-मलिनकाः, स्वार्थे कन्। दुर्गन्धा विरूपगन्धाः मलिना रेणुगुण्डिताः तेषु च, सहाभ्यन्तर-बाह्यैर्वर्तन्त इति साभ्यन्तरबाह्यानि, तेषु च, द्रवन्ति क्षरन्ति च तान् तान् पर्यायानिति-द्रव्याणि (तेषु), आभ्यन्तराणि रसासृगादीनि, बाह्यान्यशुच्यादीनि, चकारादपरेषु च तथाविध-द्रव्येषु 'येन' कर्मणा 'व्यलीकं' चित्तस्यान्यथात्वं जीवे' जीवस्य 'उत्पद्यते' जायते **'सा जुगुप्सा'** सैव जुगुप्सामोहनीयं, नान्या। इति गाथार्थः ॥६०॥

कियद्दूरं हास्यादीनामनुवृत्तिर्भवति ? इत्याह—

(पारमा०) दुर्गन्धमलिनकेष्वाभ्यन्तरबाह्येषु द्रव्येषु, आभ्यन्तराणि रसासृगादीनि, बाह्या-न्यशुच्यादीनि, तेषु येन कर्मणा व्यलीकं मुखमोटननासाकुञ्चनादिकं जीवस्योत्पद्यते सा जुगु-[3]प्सा। इति गाथार्थः ॥६०॥

हास्यादिषट्कस्य गुणस्थानकेषूदयमाह—

[4]छण्ह वि होइ विवागो, मिच्छाओ जा अपुव्वकरणस्स।
चरमसमउत्ति परओ, नत्थि विवागो [5]उ छण्हंपि ॥६१॥

व्याख्या–**'षण्णामपि'** हास्यादीनां **'येन'** कारणेन **'विपाकः'** उदयो **'मिथ्यात्वात्'** उक्तस्वरूपात्सकाशाद्यावत् **'अपूर्वकरणस्य'** निवृत्तिबादरगुणस्थानकस्या[6]प्राप्तपूर्वकस्य करणस्य वा **'चरमसमयः'** अपश्चिमसमयः, **'इतिः'** समाप्तौ। **'परतः'** अग्रतो **'नास्ति'** न विद्यते **'विपाकस्तु'** अनुभवस्तु **'षण्णामपि'** हास्यादीनाम्। इति गाथार्थः ॥६१॥

उक्तं मोहनीयम्, आयुष्कमाह—

(पारमा०) षण्णामपि भवति 'विपाकः' उदयो मिथ्यात्वाद्यावदपूर्वकरणस्य चरमसमय इति। परतोऽनिवृत्तिबादरतोऽनिवृत्तिबादरादिषु पुनर्नास्ति विपाकः षण्णामपि। इति गाथार्थः ।६१॥

अथ मोहनीयं निगमयन्नायुष्कर्मप्रस्तावनामाह—

---

१ व्याख्याकारेण तु "सब्भिंतरया–" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम्। २ "दुगंछा उ" इत्यपि पाठः जे०। ३ ०प्सा' तदे(दे?)व जुगुप्सामो० जे०। ४ "छण्हवि जाण" इत्यपि पाठः। व्याख्या-कारेण तु–"जेण" इत्येतत्पाठानुसारे व्याख्यातम्। ५ "य" इत्यपि पाठः। ६ प्राप्तिपूर्वस्य जे०।

भणिओ मोहविवागो आउयकम्मं तु पंचमं भणिमो।
तं होइ[1] चउपयारं, नरतिरिमणुदेवभेएहिं ॥६२॥

व्याख्या–'भणितः' प्रतिपादितः [2]'मोहविपाकः' मोहनीयोदयः। 'आयुष्कर्म तु' उक्तस्वरूपं 'पञ्चम' संख्यया 'भणिमो' इति प्रतिपादयामः साम्प्रतम्। 'तदपि' आयुष्कर्मचतुष्प्रकारमेव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, कथम्? इत्याह–'नरतिरिमणुदेवभेदैः' नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवभेदरूपमायुः। नरशब्देन नरकायुर्गृह्यते। मनुष्येति पृथगुपा[3]दा(ना?)न्नरकेति नोक्तं गाथाभङ्गभयात्। इति गाथार्थः ॥६२॥

ननु किमायुः सुखदुःखे प्रयच्छति? उत न? इत्याह—

(पारमा०) भणितो मोहविपाकः। आयुष्कर्म पञ्चमं भणामः। तद्भवति चतुष्प्रकारं, नरेति नरकायुः, उत्तरत्र मनुष्यायुषः पृथगुपादानात्तस्यैव सूचकत्वाच्च। तिरित्ति तिर्यगायुः, मन्विति मनुष्यायुर्देवायुश्च भेदैः प्रकारैः इति गाथार्थः ॥६२॥

सामान्येनायुस्स्वरूपं प्रतिपादयति—

दुक्खं न देइ आउं, [4]नेव सुहं देइ चउसुवि गईसु।
दुक्खसुहाणाहारं, धरेइ देहट्ठियं जीवं ॥६३॥

(पू०) व्याख्या–'दुक्खं' असातावेदनीयं 'न ददाति' न प्रयच्छति 'आयुः' कर्म, तर्हि सुखं दास्यति? इत्याह-'नैव सुखं ददाति' न प्रयच्छति। 'चतसृष्वपि गतिषु' नारकतिर्यग्नरामरलक्षणासु दुःखसुखयोः 'आधारं' आश्रयं 'धारयति' अवस्थापयति 'देहस्थितं' शरीराश्रितं 'जीवं' प्राणिनम्। इति गाथार्थः ॥ ६३ ॥

[5]नरकायुष्कस्वरूपमाह—

(पारमा०) 'दुखं' असातं न ददाति 'आयुः' कर्म नैव च सुखं, सुखदुःखदाने सातासातरूपस्य वेदनीयस्यैव समर्थत्वात्। आयुस्तु दुःखसुखाधारभूतं जीवं देहस्थितं धारयति, एतावत एव सामर्थ्यस्य सद्भावात्। इति गाथार्थः ॥६३॥

सम्प्रति नरकायुः प्रतिपादयन् हडिदृष्टान्तं भावयति—

जं नेरइयं नारयभवम्मि तहिं धरइ उव्वियंतंपि।
जाणसु तं निरयाउं, हडिसरिसो तस्स उ विवागो ॥६४॥

---

१ व्याख्याकारेण तु "तंपि हु चउप्पयारं" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम्। २ मोहनीयविपाकः जे०। ३ ० दानान्नारकेति जे०। ४ "न पि य" इत्यपि पाठः। ५ नारका जे०।

(पू०) व्याख्या–'यत्' यस्मात् 'नारकिकं' नरकोत्पन्नप्राणिनं 'नारकभवे' नारकाणां भवो नारकभवो नारकोत्पत्तिस्थानं तस्मिन् , 'तं' नारकं 'धारयति' अत्रस्थापयति [1]'उद्विजन्तमपि' चेतस्युद्वेगं कुर्वाणमपि 'जानीहि' विद्धि, तत् 'नरकायुः' नरकेषु प्राणिनोऽवस्थितिरूपम् । [2]हडिः, प्रतीता तया सदृशस्तुल्यस्तत्तुल्यः, 'तस्य तु' पुनर्नारकायुष्कस्य 'विपाकः' अनुभवः । यथा हि राज्ञा [3]हडौ क्षिप्तश्चौरादिर्हृदयेनोद्वेगं कुर्वन्नपि तया ध्रियते विवक्षितकालं यावत् , तस्या विघटनाभावे न निर्गच्छति तथा नरकादावपि । इति गाथार्थः ॥६४॥

उक्तं नरकायुष्कम् , तिर्यगादीना[4]मतिदेशमाह—

(पारमा०) 'यत्' कर्म नैरयिकं निरयोत्पन्नजीवं नारकभवे तस्मिन् धारयति उद्विजन्तमपि तत्कर्म निरयायुर्जानीहि । निष्क्रान्ता अयाद् इष्टफलदैवात्तत्रोत्पन्नानां सातवेदनाभावेनेति निरयाः । हडिसदृशस्तस्य तु विपाकः, यथा चौरादिस्तलवरादिना हडिक्षिप्तो गन्तुमना अपि तया धार्यते तथा जीवोऽपि नरकादिदुर्गतेर्निष्क्रमितुमना अपि नरकाद्यायुषा हडिसदृशेन धार्यते । इति गाथार्थः ॥६४॥

नरकायुरुक्त्वा तिर्यगायुष्कादीनामतिदेशमाह—

एवं तिरियं मणुयं देवं तिरियाइएसु भावेसु ।
जं धरइ तब्भवगयं, तं तेसिं आउयं भणियं ॥६५॥

व्याख्या–'एवं' उक्तेनैव प्रकारेण 'तिर्यञ्चं' गवादिकं 'मनुष्यं' पुरुषादिकं 'देवं' भवनपत्यादिकं 'तिर्यगादिषु भावेषु' भवानुभूतिलक्षणेषु यद् 'धारयति' अवस्थापयति, तेषां भवस्तद्भवस्तद्गतं नारकादिभवगतं 'तद्' आयुः 'तेषां' तिर्यङ्मनुष्यदेवानामायुष्कं भणितम् । तिर्यग्भवे तिर्यगायुष्कं, मनुष्यभवे मनुष्यायुष्कं, देवभवे देवायुष्कं 'भणितं' प्रतिपादितम् । इति गाथार्थः ॥६५॥

उक्तमायुष्कर्म, षष्ठं नामाह—

(पारमा०) 'एवं' उक्तप्रकारेण 'तिर्यञ्चं' 'गवादिकं' मनुष्यं पुरुषादिकं 'देवं' भवनपत्यादिकं 'तिर्यगादिषु भावेषु' भवानुभूतिलक्षणेषु 'यत्' धारयति तद्भवगतम् , तेषां तिर्यगादीनां भवः तत्र स्थितं तत्तेषां तिर्यगादीनामायुरुक्तम् । इति गाथार्थः ॥६५॥

आयुर्निगमयन् नामप्रस्तावनामाह—

भणियं आउयकम्मं, छट्ठं, कम्मं तु [5]भण्णए नामं ।

---

१ उद्विजमानमपि चे० जे० । २ हडिः जे० । ३ हडौ जे० । ४ °मप्यतिदेश° जे० । ५ "मण्णए" इत्यपि पाठः ।

तं चित्तगरसमाणं, [1]जह होइ तहा निसामेह ॥६६॥

(पू०) व्याख्या—'भणितं' प्रतिपादितमायुष्कर्म । षष्ठं नाम कर्म भण्यते । नामदृष्टान्तमाह - तत् 'चित्रकरसमानं' चित्रकरसदृशं 'अनेकरूपं' नानारूपं ' [2]'जीवं' इति प्राणिनं 'करोति' निर्वर्तयति । इति गाथार्थः ॥६६॥

दृष्टान्तमेव व्यक्तीकुर्वन्नाह—

(पारमा०) भणितमायुष्कर्म, षष्ठं कर्म पुनर्नाम भण्यते । तच्चित्रकरसमानं यथा भवति तथा निशमयत । इति गाथार्थः ॥६६॥

प्रतिज्ञातमाह—

जह चित्तयरो निउणो, अणेगरूवाइं कुणइ रूवाइं ।
सोहणमसोहणाइं, [3]चोक्खाचोक्खेहि वण्णेहिं ॥६७॥

व्याख्या—यथेति दृष्टान्तार्थः । 'चित्रकरः' [4]विज्ञानिकः 'निपुणः' नैपुण्ययुक्तः 'अनेकरूपाणि' बहुरूपाणि 'करोति' विदधाति 'रूपाणि' प्रतिबिम्बानिः । तान्येवाह-'शोभनानि' सुरूपाणि 'अशोभनानि' विरूपाणि, चोक्षाः निर्मला अचोक्षाः अशुद्धा अनिर्मलास्तैर्वर्णकैर्हरितालादिभिः । इति गाथार्थः ॥६७॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथा चित्रकरो 'निपुणः' स्वकर्मणि प्रवीणः 'अनेकरूपाणि' [5]नानाप्रकाराणि 'रूपाणि' हस्त्यश्वादीनि करोति 'शोभनाशोभनानि' रम्यारम्याणि '[6]चोक्षाचोक्षैः' विशदाविशदैः 'वर्णैः' हरितालादिभिः । इति गाथार्थः ॥६७॥

दार्ष्टान्तिके योजयति—

तह नामंपि य कम्मं, अणेगरूवाइं कुणइ जीवस्स ।
सोहणमसोहणाइं, इट्ठाणिट्ठाइं लोयस्स ॥६८॥

व्याख्या—'तथा' तेनैव प्रकारेण नामापि कर्म 'अनेकरूपाणि' नानारूपाणि ऋजुकुब्जवामनादिलक्षणानि 'करोति' निर्वर्तयति 'जीवस्य' आत्मनः, अनेकरूपाण्येवाह—शोभनानि सुरूपाणि, अशोभनानि विरूपाणि, किंभूतानि च तानि ? इत्याह—'इष्टानिष्टानि' , अभिमतानभिमतानि 'लोकस्य' प्राणिसमूहस्य । सर्वत्रानुस्वारोऽलाक्षणिकः प्राकृतत्वाद्द्रष्टव्यः । इति गाथार्थः ॥६८॥

---

१ "अणेगरूवं जियं कुणइ" इत्यपिपाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम् । २ जियमिति प्रा० जे० ३"चुक्खमचोक्खेहि" इत्यपि पाठः । । ४ "वैज्ञानिकः" इत्यपि पाठः ५ "नानाकाराणि" इत्यपि पाठः । ६ "चुक्षा चुक्षैः" इत्यपि पाठः । ७ ०नि लोकस्य अभिमता जे० ।

(पू०) व्याख्या–'यत्' यस्मात् 'नारकिकं' नरकोत्पन्नप्राणिनं 'नारकभवे' नारकाणां भवो नारकभवो नारकोत्पत्तिस्थानं तस्मिन् , 'तं' नारकं 'धारयति' अवस्थापयति '[1]उद्विजन्तमपि' चेतस्युद्वेगं कुर्वाणमपि 'जानीहि' विद्धि, तत् 'नरकायुः' नरकेषु प्राणिनोऽवस्थितिरूपम् । [2]हडिः, प्रतीता तया सदृशस्तुल्यरतत्तुल्यः, 'तस्य तु' पुनर्नारकायुष्कस्य 'विपाकः' अनुभवः । यथा हि राज्ञा [3]हडौ क्षिप्तश्चौगदिर्हृदयेनोद्वगं कुर्वन्नपि तया ध्रियते विवक्षितकालं यावत् , तस्या विघटनाभावे न निर्गच्छति तथा नरकादावपि । इति गाथार्थः ॥६४॥

उक्तं नरकायुष्कम् , तिर्यगादीना [4]मतिदेशमाह––

(पारमा०) 'यत्' कर्म नैरयिकं निरयोत्पन्नजीवं नारकभवे तस्मिन् धारयति उद्विजन्तमपि तत्कर्म निरयायुर्जानीहि । निष्क्रान्ता अयाद् इष्टफलदैवात्तत्रोत्पन्नानां सातवेदनाभावेनेति निरयाः । हडिसदृशस्तस्य तु विपाकः, यथा चौरादिस्तलवरादिना हडिक्षिप्तो गन्तुमना अपि तया धार्यते तथा जीवोऽपि नरकादिदुर्गतेर्निष्क्रमितुमना अपि नरकाद्यायुषा हडिसदृशेन धार्यते । इति गाथार्थः ॥६४॥

नरकायुरुक्त्वा तिर्यगायुष्कादीनामतिदेशमाह––

एवं तिरियं मणुयं देवं तिरियाइएसु भावेसु ।
जं धरइ तब्भवगयं, तं तेसिं आउयं भणियं ॥६५॥

व्याख्या–'एवं' उक्तेनैव प्रकारेण 'तिर्यञ्चं' गवादिकं 'मनुष्यं' पुरुषादिकं 'देवं' भवनपत्यादिकं 'तिर्यगादिषु भावेषु' भवानुभूतिलक्षणेषु यद् 'धारयति' अवस्थापयति, तेषां भवस्तद्भवस्तद्गतं नारकादिभवगतं 'तद्' आयुः 'तेषां' तिर्यङ्मनुष्यदेवानामायुष्कं भणितम् । तिर्यग्भवे तिर्यगायुष्कं, मनुष्यभवे मनुष्यायुष्कं, देवभवे देवायुष्कं 'भणितं' प्रतिपादितम् । इति गाथार्थः ॥६५॥

उक्तमायुष्कर्म, षष्ठं नामाह––

(पारमा०) 'एवं' उक्तप्रकारेण 'तिर्यञ्चं' 'गवादिकं' मनुष्यं पुरुषादिकं 'देवं' भवनपत्यादिकं 'तिर्यगादिषु भावेषु' भवानुभूतिलक्षणेषु 'यत्' धारयति तद्भवगतम् , तेषां तिर्यगादीनां भवः तत्र स्थितं तत्तेषां तिर्यगादीनामायुरुक्तम् । इति गाथार्थः ॥६५॥

आयुर्निगमयन् नामप्रस्तावनामाह––

भणियं आउयकम्मं, छट्ठं, कम्मं तु [5]भण्णए नामं ।

---

१ उद्विजमानमपि चे० जे० । २ हडिः जे० । ३ हडौ जे० । ४ °मप्यतिदेश° जे० । ५ "भण्णइं" इत्यपि पाठः ।

तं चित्तगरसमाणं, 'जह होइ तहा निसामेह ॥६६॥

(पू०) व्याख्या–'भणितं' प्रतिपादितमायुष्कर्म। षष्ठं नाम कर्म भण्यते। नामदृष्टान्तमाह - तत् 'चित्रकरसमानं' चित्रकरसदृशं 'अनेकरूपं' नानारूपं 'जीवं' इति प्राणिनं 'करोति' निर्वर्तयति। इति गाथार्थः ॥६६॥

दृष्टान्तमेव व्यक्तीकुर्वन्नाह—

(पारमा०) भणितमायुष्कर्म, षष्ठं कर्म पुनर्नाम भण्यते। तच्चित्रकरसमानं यथा भवति तथा निशमयत। इति गाथार्थः ॥६६॥

प्रतिज्ञातमाह—

जह चित्तयरो निउणो, अणेगरूवाइं कुणइ रूवाइं।
सोहणमसोहणाइं, 'चोक्खाचोक्खेहि वण्णेहिं ॥६७॥

व्याख्या–यथेति दृष्टान्तार्थः। 'चित्रकरः' 'विज्ञानिकः 'निपुणः' नैपुण्ययुक्तः 'अनेकरूपाणि' बहुरूपाणि 'करोति' विदधाति 'रूपाणि' प्रतिबिम्बानि। तान्येवाह-'शोभनानि' सुरूपाणि 'अशोभनानि' विरूपाणि, चोक्षाः निर्मला अचोक्षाः अशुद्धा अनिर्मलास्तैर्वर्णकैर्हरितालादिभिः। इति गाथार्थः ॥६७॥

दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथा चित्रकरो 'निपुणः' स्वकर्मणि प्रवीणः 'अनेकरूपाणि' 'नानाप्रकाराणि 'रूपाणि' हस्त्यश्वादीनि करोति 'शोभनाशोभनानि' रम्यारम्याणि '"चोक्षाचोक्षैः' विशदाविशदैः 'वर्णैः' हरितालादिभिः। इति गाथार्थः ॥६७॥

दार्ष्टान्तिके योजयति—

तह नामंपि य कम्मं, अणेगरूवाइं कुणइ जीवस्स।
सोहणमसोहणाइं, इट्ठाणिट्ठाइं लोयस्स ॥६८॥

व्याख्या–'तथा' तेनैव प्रकारेण नामापि कर्म 'अनेकरूपाणि' नानारूपाणि ऋजुकुब्जवामनादिलक्षणानि 'करोति' निर्वर्तयति 'जीवस्य' आत्मनः, अनेकरूपाण्येवाह–शोभनानि सुरूपाणि, अशोभनानि विरूपाणि, किंभूतानि च तानि ? इत्याह–'इष्टानिष्टानि' 'अभिमतानभिमतानि 'लोकस्य' प्राणिसमूहस्य। सर्वत्रानुस्वारोऽलाक्षणिकः प्राकृतत्वाद्द्रष्टव्यः। इति गाथार्थः ॥६८॥

---

१ "अणेगरूवं जियं कुणइ" इत्यपिपाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम्। २ जियमिति प्रा० जे० ३"चुक्खमचोक्खेहिं" इत्यपि पाठः।। ४ "वैज्ञानिकः" इत्यपि पाठः ५ "नानाकाराणि" इत्यपि पाठः। ६ "चुक्षा चुक्षैः" इत्यपि पाठः। ७ ०नि लोकस्य अभिमता जे०।

नाम्नो [1]निरुक्तेन शब्दं व्युत्पादयंस्तस्यैव भेदानाह—

(पारमा०) तथा नामकर्मापि जीवस्य **'अनेकानि'** बहूनि रूपाणि **'शोभनाशोभनानि'** शुभाशुभानि, अत एव लोकस्येष्टानिष्टानि करोति । अयमाशयः—शुभान्यपि बहुभेदानि अशुभान्यपि बहुभेदान्येव । एतेन सामान्यतः शुभाशुभभेदाद् द्विविधमपि नाम भवतीत्य गन्तव्यम् । यदागमः—"**नामं कम्मं दुविहं, सुहमसुहं च अहिय । सुहस्स उ बहू भेगा, एमेव असुहस्सवि ॥१॥**" इति गाथार्थः ॥६८॥ नामकर्मणो व्युत्पत्तिपूर्वकं भेदोपक्षेपमाह—

गइयाइएसु[2] जीवं[3] नामइ भेएसु जं तओ नामं ।

तस्स [4]उ बायालीसं[5] भेया अहवावि सत्तट्ठी ॥६९॥

(पू०) व्याख्या—गतिरादिर्येषां ते गत्यादयः, गतिर्नरकगत्यादिका आदिशब्दाज्जात्यादयो गृह्यन्ते तेषु च, [2]'जिय' प्राणिनं, 'च:' पादपूरणे, नामयति **'भेदेषु'** विशेषेषु **'यद्'** यस्मात्कारणात **'ततः'** तस्मादन्वर्थबलान्नाम उच्यते, **तस्य तु'** पुनर्नाम्नः कर्मणो द्विचत्वारिंशद् **'भेदाः'** विशेषाः संख्यया, अथवेति पक्षान्तरसूचकः । पक्षान्तरमाश्रित्य सप्तषष्टिरपि भवन्ति भेदाः । इति गाथार्थः ॥६९॥

नाम्न एवोत्तरभेदानाह—

(पारमा०) **'गत्यादिषु'** वक्ष्यमाणेषु भेदेषु **'जीव'** प्राणिनं **'नामयति'** तत्तत्पर्यायानुभवनं प्रति प्रवणयति **'यद्'** यस्मात् **'ततः'** तस्मान्नामेत्युच्यते । तस्य पुनर्द्विचत्वारिंशद्भेदाः, अथवाऽपि सप्तषष्टिः ॥६९॥

अहवावि हु तेणउई,[6] भेया पयडीण [6]हुंति नामस्स ।

अहवा तिउत्तरसयं, सव्वेवि जहकमं भणिमो ॥७०॥

(पू०) व्याख्या—**'अथवा'** इति पक्षान्तरार्थ एव **'अपिः'** संभावने समुच्चये वा । **'हुः'** पादपूरणे । पक्षान्तरमङ्गीकृत्य **'त्रिनवतिरपि संभाव्यते'** त्रिभिरधिका नवतिः, त्रिनवतिः, साऽपि संभवति । **'भेदाः'** विशेषाः **'प्रकृतीनां'** कर्मप्रकृतीनां **'भवन्ति'** जायन्ते, कस्य ? **'नाम्नः'** कर्मणोऽथवा **'त्र्युत्तरशतं'** त्रिभि[7]रुत्तरं शतं त्र्युत्तरशतं भवति, भेदानामिति शेषः, नाम्न एव । यद्येवं ततः किम् ? इत्याह—सर्वेऽप्येते प्रागभिहिता भेदाः **'यथाक्रमं'** यथापरिपाट्या **'भणामः'** प्रतिपादयामः । इति गाथार्थः ॥७०॥

---

१ 'पदभञ्जनेन०' जे० टिप्पणी । २ व्याख्याकारेण तु "सु य जियं" इतिपाठानुसारेण व्याख्यातम् ३ "य" इत्यपि पाठः । ४ 'जीवं' जे० । ५—"इयि" इति व्याख्याकाराः । ६ "होंति" इत्यपि पाठः । ७ 'अभिर' जे० टिप्पणी ।

'**यथोद्देशस्तथा निर्देशः**' इति न्यायान्नाम्नः प्रकृतभेदानाह—

(पारमा०) अथवाऽपि त्रिनवतिर्भेदाः । अथवा त्र्युत्तरशतं नाम्नः प्रकृतीनां भवति । सर्वानपि द्विचत्वारिंशत्सप्तषष्टित्रिनवतित्र्युत्तरशतलक्षणान् यथाक्रमं भणामः, भेदानिति योज्यम् । इति गाथार्थः ॥७०॥

तत्र द्विचत्वारिंशतमाह—

पढमा बायालीसा, गइजाइसरीरअंगुवंगे य ।
बंधणसंघायणसंघयणसंठाणनामं च ॥ ७१ ॥
तह वण्णगंधरसफासनामअगुरुलहुयं च बोद्धव्वं ।
उवघायपराघायाणुपुव्विउस्सासनामं च ॥ ७२ ॥
आयावुज्जोयविहायगई तसथावराभिहाणं च ।
बायरसुहुमं पज्जत्तापज्जत्तं च नायव्व ॥ ७३ ॥
पत्तेयं साहारण,थिरमथिर[1]सुभासुभं च नायव्वं ।
[2]सूभगदूभगनामं, सूसर तह दूसरं चेव ॥ ७४ ॥
आइज्जमणाइज्जं, जसकित्तीनाममजसकित्ती य ।
निम्माणं तित्थयरं, भेयाणवि हुंति मे भेया ॥ ७५ ॥

(पू०) व्याख्या—'**प्रथमा**' आद्या उद्देशापेक्षया द्विचत्वारिंशदवगन्तव्याः, काः ? इत्याह-गत्यादिकाः । गम्यतेऽस्यामिति गतिर्गमनं वा, गतिर्नरकादिका, जातिपक्षसमाश्रयणात्सर्वत्रैकत्वं द्रष्टव्यम्, यस्योदये नारकतिर्यङ्नरामरलक्षणा गतिर्भवति जीवस्य तद्गतिनाम उच्यते १ । जायते जन्यते वा जातिरेकेन्द्रियादिका, यदुदये एकेन्द्रियादिकत्वं भवति जीवस्य तदेकेन्द्रिय-(यादिजाति) नाम भवति ज्ञातव्यम् २ । शीर्यत इति शरीरमौदारिकादि, यस्य कर्मण उदये औदारिकादिशरीरं संपद्यते देहिनां तच्छरीर[3]नामावबोद्धव्यं ज्ञातव्यमिति सर्वत्र क्रिया ३ । अङ्गानि शिरःप्रभृतीनि, उपाङ्गान्यङ्गुल्यादीनि, यस्य कर्मण उदये सर्वाण्येवाङ्गोपाङ्गानि निष्पद्यन्ते तदङ्गोपाङ्गनाम च ज्ञातव्यम् ४ । बध्यत इति बन्धनमौदारिकबन्ध[4]नादि, तद्येन कर्मणा क्रियते तदौदारिक(कादि)बन्धनं नाम भवति ज्ञातव्यमिति क्रियाध्याहारः क्रियाऽभावे ५ । संघा-

---

१ "सुहासुहं" इत्यपि पाठः २ "सूहगदूहग०" इत्यपि पाठः । ३ नाम च बो० जे० । ४ ०नादिना येन कर्मणा जे० ।

नाम्नो [1]निरुक्तेन शब्दं व्युत्पादयंस्तस्यैव भेदानाह—

(पारमा०) तथा नामकर्मापि जीवस्य **'अनेकानि'** बहूनि रूपाणि **'शोभनाशोभनानि'** शुभाशुभानि, अत एव लोकस्येष्टानिष्टानि करोति । अयमाशयः—शुभान्यपि बहुभेदानि अशुभान्यपि बहुभेदान्येव । एतेन सामान्यतः शुभाशुभभेदाद् द्विविधमपि नाम भवतीत्य गन्तव्यम् । यदागमः—"**नामं कम्मं दुविहं, सुहमसुहं च अहिय । सुहस्स उ बहू भेया, एमेव असुहस्सवि** ॥१॥" इति गाथार्थः ॥६८॥ नामकर्मणो व्युत्पत्तिपूर्वकं भेदोपक्षेपमाह—

गइयाइएसु[2] जीवं नामइ भेएसु जं तओ नामं ।
तस्स [3]उ बायालीसं भेया अहवावि सत्तट्ठी ॥६९॥

(पू०) व्याख्या—गतिरादिर्येषां ते गत्यादयः, गतिर्नरकगत्यादिका आदिशब्दाज्जात्यादयो गृह्यन्ते तेषु च, [4]'जिय' प्राणिनं, 'चः' पादपूरणे, नामयति **'भेदेषु'** विशेषेषु **'यद्'** यस्मात्कारणात **'ततः'** तस्मादन्वर्थबलान्नाम उच्यते, **तस्य तु'** पुनर्नाम्नः कर्मणो द्विचत्वारिंशद् **'भेदाः'** विशेषाः संख्यया, अथवेति पक्षान्तरसंसूचकः । पक्षान्तरमाश्रित्य सप्तषष्टिरपि भवन्ति भेदाः । इति गाथार्थः ॥६९॥

नाम्न एवोत्तरभेदानाह—

(पारमा०) **'गत्यादिषु'** वक्ष्यमाणेषु भेदेषु **'जीव'** प्राणिनं **'नामयति'** तत्तत्पर्यायानुभवनं प्रति प्रवणयति **'यद्'** यस्मात् **'ततः'** तस्मान्नामेत्युच्यते । तस्य पुनर्द्विचत्वारिंशद्भेदाः, अथवाऽपि सप्तषष्टिः ॥६९॥

अहवावि हु तेणउई,[5] भेया पयडीण [6]हुंति नामस्स ।
अहवा तिउत्तरसयं, सव्वेवि जहक्कमं भणिमो ॥७०॥

(पू०) व्याख्या—**'अथवा'** इति पक्षान्तरार्थ एव **'अपिः'** संभावने समुच्चये वा । **'हुः'** पादपूरणे । पक्षान्तरमङ्गीकृत्य **'त्रिनवतिरपि संभाव्यते'** त्रिभिरधिका नवतिः, त्रिनवतिः, साऽपि संभवति । **'भेदाः'** विशेषाः **'प्रकृतीनां'** कर्मप्रकृतीनां **'भवन्ति'** जायन्ते, कस्य ? **'नाम्नः'** कर्मणोऽथवा **'त्र्युत्तरशतं'** त्रिभि[7]रुत्तरं शतं त्र्युत्तरशतं भवति, भेदानामिति शेषः, नाम्न एव । यद्येवं ततः किम् ? इत्याह—सर्वेऽप्येते प्रागभिहिता भेदाः **'यथाक्रमं'** यथापरिपाट्या **'भणामः** प्रतिपादयामः । इति गाथार्थः ॥७०॥

---

१ 'दर्शनमङ्गलेन०' जे० टिप्पणी । २ व्याख्याकारेण तु "सु य जियं" इतिपाठानुसारेण व्याख्यातम् ३ "य" इत्यपि पाठः । ४ 'जीवं' जे० । ५—"इयि" इति व्याख्याकाराः । ६ "होंति" इत्यपि पाठः । ७ 'अधिकं' जे० टिप्पणी ।

र्याप्तनाम किम्? यस्योदये स्वपर्याप्तिभिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रवोद्धव्यम् २६ । इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येकजीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्प्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७ । साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, [1]यदवाप्तावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽऽलक्षादेः शरीरम् २८ । स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तत्स्थिरनाम २९ । न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३० । शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रभृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१ । अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति कृत्वाऽशुभनामोच्यते, 'ज्ञातव्य' [2]मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, [3]यस्योदये सौभाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तत्सौभाग्यनाम ३३ । 'दुभगमिति' दुर्भगस्य भावो दौर्भाग्यं, यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनोद्वेगकारी तद्दुर्भगनाम ३४ । [4]'सूसरं' इति शोभनः स्वरो यस्य तत्सुस्वरनाम, यदुदयाज्जीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्भवति ३५ । 'दूसरं' इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्य[5]स्मात्तद्दुःस्वरनाम, यदुदयाज्जीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६ । इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम्? यदुदयाज्जीवः सर्वस्यादेयो भवति ग्राह्यवाक्यो भवति तदादेयनाम ३७ । न आदेयमनादेयं, यदुदयाज्जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्यवाक्यो भवति, सर्वोऽप्यवज्ञां विधत्ते तदनादेयनाम ३८ । यशश्च कीर्त्तिश्च यशःकीर्त्ती, तल्लक्षणं नाम यशःकीर्त्तिनाम, यशसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यशःकीर्त्तिः । 'दानपुण्यफला कीर्त्तिः,' 'पराक्रमकृतं यशः' इतिवचनात्, यदुदयाद्यशःकीर्तिर्भवति जीवस्य तद्यशःकीर्त्तिनाम ३९ । अयशःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाज्जीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तदयशःकीर्त्तिनाम ४० । 'निम्माणं' इति निर्माणनाम, यदुदयाज्जीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विधत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिबन्धनं नाम तन्निर्माणनाम सूत्रधारसदृशम् ४१ । तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वविद्भवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्तत्तीर्थकरनाम ४२ । एते प्रथमा द्विचत्वारिंशतो 'भेदाः' विशेषाः, 'भेदानामपि' विशेषाणामपि 'भवन्ति' जायन्ते 'इमे' वक्ष्यमाणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशद्, इदानीं सप्तषष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते । गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गोपाङ्गानि ४ च । बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति । नामशब्दस्य गत्या-

1 यदा व्याप्तौ जे० । 2 "मवबोद्धव्य० जे० । 3 यदुदयात् सौ० जे० । 4 सूसरमिति शो० जे० । 5 र्यस्य मद्द्० जे० ।

त्यते येन तत्संधातननाम, यथा कञ्चुके पृथग्भूतानि खण्डानि संघात्यन्ते सीवकेन, तथा शरीरेऽपि येन कर्मणा बाहुकलाचीप्रभृतीनां [1]संघातनसंयोगः क्रियते तत्संघातननाम ६। संहननं शरीरसामर्थ्यलक्षणम्, यदुदये जीवस्य वज्रर्षभनाराचा[2]दिर्भवति तत्संहनननाम ७। संस्थीयते येन कर्मणाऽऽकारविशेषेण तत्संस्थाननाम, यस्य कर्मण उदये समचतुरस्रादिकं संस्थानं भवति जीवस्य, तच्च ज्ञातव्यम् ८। इति गाथार्थः ॥७१॥ तथाशब्दः समुच्चयार्थः। वर्णनं वर्णो [3]वरणाद्वा (?) वर्णः शुक्लादिः, यदुदये शुक्लपीतरक्तनीलकृष्णवर्णः प्राणी भवति तद्वर्णनाम ९। गन्ध्यत इति गन्धो दुर्गन्धादिः, यदुदये सुगन्धदुर्गन्धगन्धः प्राणी भवति तद्गन्धनाम १०। रस्यत इति रसः, यस्य कर्मण उदये तिक्तकटुकषायाम्लमधुररससंयुक्तं शरीरं भवति प्राणिनां तद्रसनाम ११। स्पृश्यत इति स्पर्शः, स चाष्टधा [4]सुकुमारादिः, स यदुदयात्प्राणिनो भवति तत्स्पर्शनामावगन्तव्यमिति १२। अगुरुलघु च बोद्धव्यम्, यस्य कर्मण उदये न गुरु नापि लघु शरीरं जीवस्य तदगुरुलघुनाम 'बोद्धव्यं' ज्ञातव्यम् १३। उपहन्यते येन कर्मणा तदुपघातनाम, यदुदये जीवस्य स्वावयवेन परेण वा व्याघातो भवति १४। परानाहन्ति पराघातनाम यस्य कर्मण उदये आत्मावयवैः परं हन्ति १५। आनुपूर्वी नरकादिका, यदुदये जीवो नरकादौ गच्छति, नरकादिनयने कारणं रज्जुवद्वृषभस्य १६। उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तस्य नाम उच्छ्वासनाम, यदुदयाज्जीवस्योच्छ्वासनिःश्वासौ भवतस्तच्च ज्ञातव्यम् १७। इति गाथार्थः ॥ ७२ ॥ आतपनमातपस्तल्लक्षणं नामातपनाम, यथाऽऽदित्य आतपनामोदये तपति, एवमन्येऽपि प्राणिन आतपनामकर्मोदये तपन्ति, तेनातपनामोच्यते १८। उद्द्योतनमुद्द्योतस्तदुपलक्षितं नाम उद्द्योतनाम, यथा खद्योतक उद्द्योतयति उद्द्योतनामोदये, एवमन्योऽपि प्राणी यस्य कर्मण उदये उद्द्योतयति तत्कर्म तस्योद्द्योतनामोच्यते १९ [5]विहायसा गम्यते यया प्राणिभिः सा विहायोगतिः, यदुदये प्राणी आकाशगामी भवति तद्विहायोगतिनाम २०। न केवलमातपोद्द्योते अवगन्तव्ये, विहायोगति[6]श्चावबोद्धव्या। त्रसस्थावराभिधानं च, त्रस्यत इति त्रसः त्रस इत्यभिधानमाह्वानं यस्य नाम्नः कर्मणस्तत्त्रसाभिधानं, यदुदये जीवस्त्रसो भवति २१। स्थावर इत्यभिधानं नाम यस्य तत्स्थावराभिधानं, यदुदये जीवस्य स्थावरत्वं भवति २२। बादरः स्थूलस्तल्लक्षणं नाम बादरनाम, यदुदये जीवो बादरपरिणामपरिणतो भवति २३। सूक्ष्मो लघुरणुमात्रो यस्य कर्मण उदये जीवः सूक्ष्मपरिणामपरिणतो भवति तत्सूक्ष्मनाम २४। पर्याप्तं चापर्याप्तं च पर्याप्तापर्याप्तं तत्प्रसर्गं नाम, यदुदये जीवः स्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तः परिपूर्णो भवति तत्पर्याप्तनाम २५। अप-

१ संघातनं सं० जे०। २ ०दि भवति जे०। ३ वर्णनाद्वा जे०। ४ सुकुमालादिः। ५ 'आकाशेन जे० टिप्पणी। ६ श्चावद्रष्टव्या जे०।

र्याप्तनाम किम् ? यस्योदये स्वपर्याप्तिभिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रबोद्धव्यम् २६ । इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येकजीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्प्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७ । साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, [1]यद्वाप्तावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽल्लक्षादेः शरीरम् २८ । स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तत्स्थिरनाम २९ । न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३० । शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रभृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१ । अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति कृत्वाऽशुभनामोच्यते, **'ज्ञातव्य'** [2]मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, [3]यस्योदये सौभाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तत्सौभाग्यनाम ३३ । **'दुभगमिति'** दुर्भगस्य भावो दौर्भाग्यं, यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनोद्वेगकारी तद्दुर्भगनाम ३४ । [4]**'सूसर'** इति शोभनः स्वरो यस्य तत्सुस्वरनाम, यदुदयाज्जीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्भवति ३५ । **'दूसरं'** इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्य[5]स्मात्तद्दुःस्वरनाम, यदुदयाज्जीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६ । इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम् ? यदुदयाज्जीवः सर्वस्यादेयो भवति ग्राह्यवाक्यो भवति तदादेयनाम ३७ । न आदेयमनादेयं, यदुदयाज्जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्यवाक्यो भवति, सर्वोऽप्यवज्ञां विधत्ते तदनादेयनाम ३८ । यशश्च कीर्त्तिश्च यशःकीर्त्ती, तल्लक्षणं नाम यशःकीर्त्तिनाम, यशसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यशःकीर्त्तिः । **'दानपुण्यफला कीर्त्तिः,'** **'पराक्रमकृतं यशः'** इतिवचनात्, यदुदयाद्यशःकीर्तिर्भवति जीवस्य तद्यशःकीर्त्तिनाम ३९ । अयशःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाज्जीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तदयशःकीर्त्तिनाम ४० । **'निम्माणं'** इति निर्माणनाम, यदुदयाज्जीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विधत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिबन्धनं नाम तन्निर्माणनाम सूत्रधारसदृशम् ४१ । तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वविद्भवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्तत्तीर्थकरनाम ४२ । एते प्रथमा द्विचत्वारिंशतो **'भेदाः'** विशेषाः, **'भेदानामपि'** विशेषाणामपि **'भवन्ति'** जायन्ते **'इमे'** वक्ष्यमाणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशद्, इदानीं सप्तषष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते । गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गोपाङ्गनि ४ च । बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति । नामशब्दस्य गत्या-

---

१ यदा व्याप्तौ जे० । २ °मवबोद्धव्य० जे० । ३ यदुदयात् सौ० जे० । ४ सूसरमिति शो० जे० । ५ यस्य तद्० जे० ।

त्यते येन तत्संघातननाम, यथा कञ्चुके पृथग्भूतानि खण्डानि संघात्यन्ते सीवकेन, तथा शरीरेऽपि येन कर्मणा बाहुकलाचीप्रभृतीनां [1]संघातनसंयोगः क्रियते तत्संघातननाम ६ । संहननं शरीरसामर्थ्यलक्षणम्, यदुदये जीवस्य वज्रर्षभनाराचा[2]दिर्भवति तत्संहनननाम ७ । संस्थीयते येन कर्मणाऽऽकारविशेषेण तत्संस्थाननाम, यस्य कर्मण उदये समचतुरस्रादिकं संस्थानं भवति जीवस्य, तच्च ज्ञातव्यम् ८ । इति गाथार्थः ॥७१॥ तथाशब्दः समुच्चयार्थः । वर्णनं वर्णो [3]वरणाद्वा (?) वर्णः शुक्लादिः, यदुदये शुक्लपीतरक्तनीलकृष्णवर्णः प्राणी भवति तद्वर्णनाम ९ । गन्ध्यत इति गन्धो दुर्गन्धादिः, यदुदये सुगन्धदुर्गन्धगन्धः प्राणी भवति तद्गन्धनाम १० । रस्यत इति रसः, यस्य कर्मण उदये तिक्तकटुकषायाम्लमधुररससंयुक्तं शरीरं भवति प्राणिनां तद्रसनाम ११ । स्पृश्यत इति स्पर्शः, स चाष्टधा [4]सुकुमारादिः, स यदुदयात्प्राणिनो भवति तत्स्पर्शनामावगन्तव्यमिति १२ । अगुरुलघु च बोद्धव्यम्, यस्य कर्मण उदये न गुरु नापि लघु शरीरं जीवस्य तदगुरुलघुनाम 'बोद्धव्यं' ज्ञातव्यम् १३ । उपहन्यते येन कर्मणा तदुपघातनाम, यदुदये जीवस्य स्वावयवेन परेण वा व्याघातो भवति १४ । परानाहन्ति पराघातनाम यस्य कर्मण उदये आत्मावयवैः परं हन्ति १५ । आनुपूर्वी नरकादिका, यदुदये जीवो नरकादौ गच्छति, नरकादिनयने कारणं रज्जुवद्वृषभस्य १६ । उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तस्य नाम उच्छ्वासनाम, यदुदयाज्जीवस्योच्छ्वासनिःश्वासौ भवतस्तच्च ज्ञातव्यम् १७ । इति गाथार्थः ॥ ७२ ॥ आतपनमातपस्तल्लक्षणं नामातपनाम, यथाऽऽदित्य आतपनामोदये तपति, एवमन्येऽपि प्राणिन आतपनामकर्मोदये तपन्ति, तेनातपनामोच्यते १८ । उद्द्योतनमुद्द्योतस्तदुपलक्षितं नाम उद्द्योतनाम, यथा खद्योतक उद्द्योतयति उद्द्योतनामोदये, एवमन्योऽपि प्राणी यस्य कर्मण उदये उद्द्योतयति तत्कर्म तस्योद्द्योतनामोच्यते १९ [5]विहायसा गम्यते यया प्राणिभिः सा विहायोगतिः, यदुदये प्राणी आकाशगामी भवति तद्विहायोगतिनाम २० । न केवलमातपोद्द्योते अवगन्तव्ये, विहायोगति[6]श्चावबोद्धव्या । त्रसस्थावराभिधानं च, त्रस्यत इति त्रसः त्रस इत्यभिधानमाह्वानं यस्य नाम्नः कर्मणस्तत्त्रसाभिधानं, यदुदये जीवस्त्रसो भवति २१ । स्थावर इत्यभिधानं नाम यस्य तत्स्थावराभिधानं, यदुदये जीवस्य स्थावरत्वं भवति २२ । बादरः स्थूलस्तल्लक्षणं नाम बादरनाम, यदुदये जीवो बादरपरिणामपरिणतो भवति २३ । सूक्ष्मो लघुरणुमात्रो यस्य कर्मण उदये जीवः सूक्ष्मपरिणामपरिणतो भवति तत्सूक्ष्मनाम २४ । पर्याप्तं चापर्याप्तं च पर्याप्तापर्याप्तं तल्लक्षणं नाम, यदुदये जीवः स्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तः परिपूर्णो भवति तत्पर्याप्तनाम २५ । अप-

---

१ संघातनं सं० जे० । २ ०दि भवति जे० । ३ वर्णनाद्वा जे० । ४ सुकुमालादिः । ५ 'आकाशेन जे० टिप्पणी । ६ श्चावद्रष्टव्या जे० ।

र्याप्तनाम किम् ? यस्योदये स्वपर्याप्तिभिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रबोद्धव्यम् २६ । इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येकजीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्प्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७ । साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, [1]यदवाप्तावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽऽलक्षादेः शरीरम् ३८ । स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तत्स्थिरनाम २९ । न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३० । शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रभृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१ । अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति कृत्वाऽशुभनामोच्यते, **'ज्ञातव्य'** [2]मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, [3]यस्योदये सौभाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तत्सौभाग्यनाम ३३ । **'दुभगमिति'** दुर्भगस्य भावो दौर्भाग्यं, यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनोद्वेगकारी तद्दुर्भगनाम ३४ । [4]**'सूसरं'** इति शोभनः स्वरो यस्य तत्सुस्वरनाम, यदुदयाज्जीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्भवति ३५ । **'दूसरं'** इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्य[5]स्मात्तद्दुःस्वरनाम, यदुदयाज्जीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६ । इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम् ? यदुदयाज्जीवः सर्वस्यादेयो भवति ग्राह्यवाक्यो भवति तदादेयनाम ३७ । न आदेयमनादेयं, यदुदया जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्यवाक्यो भवति, सर्वोऽप्यवज्ञां विधत्ते तदनादेयनाम ३८ । यशश्च कीर्त्तिश्च यशःकीर्त्ती, तल्लक्षणं नाम यशःकीर्त्तिनाम, यशसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यशःकीर्त्तिः । **'दानपुण्यफला कीर्त्तिः,' 'पराक्रमकृतं यशः'** इतिवचनात्, यदुदयाद्यशःकीर्तिर्भवति जीवस्य तद्यशःकीर्त्तिनाम ३९ । अयशःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाज्जीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तदयशःकीर्त्तिनाम ४० । **'निम्माणं'** इति निर्माणनाम, यदुदयाज्जीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विधत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिबन्धनं नाम तन्निर्माणनाम सूत्रधारसदृशम् ४१ । तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वविद्भवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्तत्तीर्थकरनाम ४२ । एते प्रथमा द्विचत्वारिंशतो **'भेदाः'** विशेषाः, **'भेदानामपि'** विशेषाणामपि **'भवन्ति'** जायन्ते **'इमे'** वक्ष्यमाणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशद्, इदानीं सप्तषष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते । गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गोपाङ्गानि ४ च । बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति । नामशब्दस्य गत्या-

१ यदा व्याप्तौ जे० । २ "मवबोद्धव्य० जे० । ३ यदुदयात् सौ० जे० । ४ सूसरमिति शो० जे० । ५ यस्य तद्० जे० ।

त्यते येन तत्संघातननाम, यथा कञ्चुके पृथग्भूतानि खण्डानि संघात्यन्ते सीवकेन, तथा शरीरेऽपि येन कर्मणा बाहुकलाचीप्रभृतीनां [1]संघातनसंयोगः क्रियते तत्संघातननाम ६। संहननं शरीरसामर्थ्यलक्षणम्, यदुदये जीवस्य वज्रर्षभनाराचा[2]दिर्भवति तत्संहनननाम ७। संस्थीयते येन कर्मणाऽऽकारविशेषेण तत्संस्थाननाम, यस्य कर्मण उदये समचतुरस्रादिकं संस्थानं भवति जीवस्य, तच्च ज्ञातव्यम् ८। इति गाथार्थः ॥७१॥ तथाशब्दः समुच्चयार्थः। वर्णनं वर्णो [3]वरणाद्वा (?) वर्णः शुक्लादिः, यदुदये शुक्लपीतरक्तनीलकृष्णवर्णः प्राणी भवति तद्वर्णनाम ९। गन्ध्यत इति गन्धो दुर्गन्धादिः, यदुदये सुगन्धदुर्गन्धगन्धः प्राणी भवति तद्गन्धनाम १०। रस्यत इति रसः, यस्य कर्मण उदये तिक्तकटुकषायाम्लमधुररससंयुक्तं शरीरं भवति प्राणिनां तद्रसनाम ११। स्पृश्यत इति स्पर्शः, स चाष्टधा [4]सुकुमारादिः, स यदुदयात्प्राणिनो भवति तत्स्पर्शनामावगन्तव्यमिति १२। अगुरुलघु च बोद्धव्यम्, यस्य कर्मण उदये न गुरु नापि लघु शरीरं जीवस्य तदगुरुलघुनाम 'बोद्धव्यं' ज्ञातव्यम् १३। उपहन्यते येन कर्मणा तदुपघाननाम, यदुदये जीवस्य स्वावयवेन परेण वा व्याघातो भवति १४। परानाहन्ति पराघातनाम यस्य कर्मण उदये आत्मावयवैः परं हन्ति १५। आनुपूर्वी नरकादिका, यदुदये जीवो नरकादौ गच्छति, नरकादिनयने कारणं रज्जुवद्वृषभस्य १६। उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तस्य नाम उच्छ्वासनाम, यदुदयाज्जीवस्योच्छ्वासनिःश्वासौ भवतस्तच्च ज्ञातव्यम् १७। इति गाथार्थः ॥ ७२ ॥ आतपनमातपस्तल्लक्षणं नामातपनाम, यथाऽऽदित्य आतपनामोदये तपति, एवमन्येऽपि प्राणिन आतपनामकर्मोदये तपन्ति, तेनातपनामोच्यते १८। उद्द्योतनमुद्द्योतस्तदुपलक्षितं नाम उद्द्योतनाम, यथा खद्योतक उद्द्योतयति उद्द्योतनामोदये, एवमन्योऽपि प्राणी यस्य कर्मण उदये उद्द्योतयति तत्कर्म तस्योद्द्योतनामोच्यते १९ [5]विहायसा गम्यते यया प्राणिभिः सा विहायोगतिः, यदुदये प्राणी आकाशगामी भवति तद्विहायोगतिनाम २०। न केवलमातपोद्द्योते अवगन्तव्ये, विहायोगति[6]श्चावबोद्धव्या। त्रसस्थावराभिधानं च, त्रस्यत इति त्रसः त्रस इत्यभिधानमाह्वानं यस्य नाम्नः कर्मणस्तत्त्रसाभिधानं, यदुदये जीवस्त्रसो भवति २१। स्थावर इत्यभिधानं नाम यस्य तत्स्थावराभिधानं, यदुदये जीवस्य स्थावरत्वं भवति २२। बादरः स्थूलस्तल्लक्षणं नाम बादरनाम, यदुदये जीवो बादरपरिणामपरिणतो भवति २३। सूक्ष्मो लघुरणुमात्रो यस्य कर्मण उदये जीवः सूक्ष्मपरिणामपरिणतो भवति तत्सूक्ष्मनाम २४। पर्याप्तं चापर्याप्तं च पर्याप्तापर्याप्तं तल्लक्षणं नाम, यदुदये जीवः स्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तः परिपूर्णो भवति तत्पर्याप्तनाम २५। अप-

---

१ संघाननं जं० जे०। २ ०दि भवति जे०। ३ वर्णनाद्वा जे०। ४ सुकुमालादिः। ५ 'आकाशेन जे० टिप्पणी। ६ श्चावद्रष्टव्या जे०।

र्याप्तनाम किम् ? यस्योदये स्वपर्याप्तिभिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रबोद्धव्यम् २६ । इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येकजीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्प्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७ । साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, [1]यद्वाप्तावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽल्लक्षादेः शरीरम् २८ । स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तत्स्थिरनाम २९ । न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३० । शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रभृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१ । अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति कृत्वाऽशुभनामोच्यते, **'ज्ञातव्य'** [2]मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, [3]यस्योदये सौभाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तत्सौभाग्यनाम ३३ । **'दुभगमिति'** दुर्भगस्य भावो दौर्भाग्यं, यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनोद्वेगकारी तद्दुर्भगनाम ३४ । [4]**'सूसरं'** इति शोभनः स्वरो यस्य तत्सुस्वरनाम, यदुदयाज्जीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्भवति ३५ । **'दूसरं'** इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्य[5]स्मात्तद्दुःस्वरनाम, यदुदयाज्जीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६ । इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम् ? यदुदयाज्जीवः सर्वस्यादेयो भवति ग्राह्यवाक्यो भवति तदादेयनाम ३७ । न आदेयमनादेयं, यदुदयाज्जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्यवाक्यो भवति, सर्वोऽप्यवज्ञां विधत्ते तदनादेयनाम ३८ । यशश्च कीर्त्तिश्च यशःकीर्त्ती, तल्लक्षणं नाम यशःकीर्त्तिनाम, यशसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यशःकीर्त्तिः । **'दानपुण्यफला कीर्त्तिः,' 'पराक्रमकृतं यशः'** इतिवचनात्, यदुदयाद्यशःकीर्तिर्भवति जीवस्य तद्यशःकीर्त्तिनाम ३९ । अयशःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाज्जीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तदयशःकीर्त्तिनाम ४० । **'निम्माणं'** इति निर्माणनाम, यदुदयाज्जीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विधत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिबन्धनं नाम तन्निर्माणनाम सूत्रधारसदृशम् ४१ । तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वविद्भवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्तत्तीर्थकरनाम ४२ । एते प्रथमा द्विचत्वारिंशतो **'भेदाः'** विशेषाः, **'भेदानामपि'** विशेषाणामपि **'भवन्ति'** जायन्ते **'इमे'** वक्ष्यमाणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशत्, इदानीं सप्तषष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते । गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गोपाङ्गानि ४ च । बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति । नामशब्दस्य गत्या-

---

1 यदा व्याप्तौ जे० । 2 "मवबोद्धव्य० जे० । 3 यदुदयात् सौ० जे० । 4 सूसरमिति शो० जे० । 5 यस्य तद्० जे० ।

त्यते येन तत्संघातननाम, यथा कञ्चुके पृथग्भूतानि खण्डानि संघात्यन्ते सीवकेन, तथा शरीरेऽपि येन कर्मणा बाहुकलाचीप्रभृतीनां [1]संघातनसंयोगः क्रियते तत्संघातननाम ६। संहननं शरीरसामर्थ्यलक्षणम्, यदुदये जीवस्य वज्रर्षभनाराचा[2]दिर्भवति तत्संहनननाम ७। संस्थीयते येन कर्मणाऽऽकारविशेषेण तत्संस्थाननाम, यस्य कर्मण उदये समचतुरस्रादिकं संस्थानं भवति जीवस्य, तच्च ज्ञातव्यम् ८। इति गाथार्थः ॥७१॥ तथाशब्दः समुच्चयार्थः। वर्णनं वर्णो [3]वरणाद्वा (?) वर्णः शुक्लादिः, यदुदये शुक्लपीतरक्तनीलकृष्णवर्णः प्राणी भवति तद्वर्णनाम ९। गन्ध्यत इति गन्धो दुर्गन्धादिः, यदुदये सुगन्धदुर्गन्धगन्धः प्राणी भवति तद्गन्धनाम १०। रस्यत इति रसः, यस्य कर्मण उदये तिक्तकटुकषायाम्लमधुररससंयुक्तं शरीरं भवति प्राणिनां तद्रसनाम ११। स्पृश्यत इति स्पर्शः, स चाष्टधा [4]सुकुमारादिः, स यदुदयात्प्राणिनो भवति तत्स्पर्शनामावगन्तव्यमिति १२। अगुरुलघु च बोद्धव्यम्, यस्य कर्मण उदये न गुरु नापि लघु शरीरं जीवस्य तदगुरुलघुनाम 'बोद्धव्यं' ज्ञातव्यम् १३। उपहन्यते येन कर्मणा तदुपघातनाम, यदुदये जीवस्य स्वावयवेन परेण वा व्याघातो भवति १४। परानाहन्ति पराघातनाम यस्य कर्मण उदये आत्मावयवैः परं हन्ति १५। आनुपूर्वी नरकादिका, यदुदये जीवो नरकादौ गच्छति, नरकादिनयने कारणं रज्जुवद्वृषभस्य १६। उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तस्य नाम उच्छ्वासनाम, यदुदयाज्जीवस्योच्छ्वासनिःश्वासौ भवतस्तच्च ज्ञातव्यम् १७। इति गाथार्थः ॥ ७२ ॥ आतपनमातपस्तल्लक्षणं नामातपनाम, यथाऽऽदित्य आतपनामोदये तपति, एवमन्येऽपि प्राणिन आतपनामकर्मोदये तपन्ति, तेनातपनामोच्यते १८। उद्द्योतनमुद्द्योतस्तदुपलक्षितं नाम उद्द्योतनाम, यथा खद्योतक उद्द्योतयति उद्द्योतनामोदये, एवमन्योऽपि प्राणी यस्य कर्मण उदये उद्द्योतयति तत्कर्म तस्योद्द्योतनामोच्यते १९ [5]विहायसा गम्यते यया प्राणिभिः सा विहायोगतिः, यदुदये प्राणी आकाशगामी भवति तद्विहायोगतिनाम २०। न केवलमातपोद्द्योते अवगन्तव्ये, विहायोगति[6]श्चावबोद्धव्या। त्रसस्थावराभिधानं च, त्रस्यत इति त्रसः त्रस इत्यभिधानमाह्वानं यस्य नाम्नः कर्मणस्तत्त्रसाभिधानं, यदुदये जीवस्त्रसो भवति २१। स्थावर इत्यभिधानं नाम यस्य तत्स्थावराभिधानं, यदुदये जीवस्य स्थावरत्वं भवति २२। बादरः स्थूलस्तल्लक्षणं नाम बादरनाम, यदुदये जीवो बादरपरिणामपरिणतो भवति २३। सूक्ष्मो लघुरणुमात्रो यस्य कर्मण उदये जीवः सूक्ष्मपरिणामपरिणतो भवति तत्सूक्ष्मनाम २४। पर्याप्तं चापर्याप्तं च पर्याप्तापर्याप्तं तल्लक्षणं नाम, यदुदये जीवः स्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तः परिपूर्णो भवति तत्पर्याप्तनाम २५। अप-

१ संघातनं सं० जे०। २ ०दि भवति जे०। ३ वर्णनाद्वा जे०। ४ सुकुमालादिः। ५ 'आकाशेन जे० टिप्पणी। ६ श्चावद्रष्टव्या जे०।

र्याप्तनाम किम्? यस्योदये स्वपर्याप्तिभिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रबोद्धव्यम् २६। इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येक-जीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्प्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७। साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, [1]यदवाप्तावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽल्लक्षादेः शरीरम् २८। स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तत्स्थिरनाम २९। न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३०। शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रभृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१। अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति कृत्वाऽशुभनामोच्यते, **'ज्ञातव्य'** [2]मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, [3]यस्योदये सौभाग्य-युक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तत्सौभाग्यनाम ३३। **'दुभगमिति'** दुर्भगस्य भावो दौर्भाग्यं, यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनोद्वेगकारी तद्दुर्भगनाम ३४। [4]**'सूसरं'** इति शोभनः स्वरो यस्य तत्सुस्वरनाम, यदुदयाज्जीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्भवति ३५। **'दूसरं'** इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्य[5]स्मात्तद्दुःस्वरनाम, यदुदयाज्जीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६। इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम्? यदुदया-ज्जीवः सर्वस्यादेयो भवति ग्राह्यवाक्यो भवति तदादेयनाम ३७। न आदेयमनादेयं, यदुदया जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्यवाक्यो भवति, सर्वोऽप्यवज्ञां विधत्ते तदनादेयनाम ३८। यशश्च कीर्त्तिश्च यशःकीर्त्ती, तल्लक्षणं नाम यशःकीर्त्तिनाम, यशसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यशःकीर्त्तिः। **'दानपुण्यफला कीर्त्तिः,' 'पराक्रमकृतं यशः'** इतिवचनात्, यदुदयाद्यशःकीर्तिर्भवति जीवस्य तद्यशःकीर्त्तिनाम ३९। अयशःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाज्जीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तदयशःकीर्त्तिनाम ४०। **'निम्माणं'** इति निर्माणनाम, यदुदयाज्जीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विधत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिबन्धनं नाम तन्निर्माणनाम सूत्रधारसदृशम् ४१। तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वविद्भवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्तत्तीर्थकरनाम ४२। एते प्रथमा द्विच-त्वारिंशतो **'भेदाः'** विशेषाः, **'भेदानामपि'** विशेषाणामपि **'भवन्ति'** जायन्ते **'इमे'** वक्ष्य-माणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशद्, इदानीं सप्तषष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते। गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गो-पाङ्गानि ४ च। बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति। नामशब्दस्य गत्या-

---

१ यदा व्याप्तौ जे०। २ °मवबोद्धव्य० जे०। ३ यदुदयात् सौ० जे०। ४ सूसरमिति शो० जे०। ५ र्यस्य नद्द्० जे०।

त्यते येन तत्संघातननाम, यथा कञ्चुके पृथग्भूतानि खण्डानि संघात्यन्ते सीवकेन, तथा शरीरेऽपि येने कर्मणा बाहुकलाचीप्रभृतीनां [1]संघातनसंयोगः क्रियते तत्संघातननाम ६। संहननं शरीरसामर्थ्यलक्षणम्, यदुदये जीवस्य वज्रर्षभनाराचा[2]दिर्भवति तत्संहनननाम ७। संस्थीयते येन कर्मणाऽऽकारविशेषेण तत्संस्थाननाम, यस्य कर्मण उदये समचतुरस्रादिकं संस्थानं भवति जीवस्य, तच्च ज्ञातव्यम् ८। इति गाथार्थः ॥७१॥ तथाशब्दः समुच्चयार्थः। वर्णनं वर्णो [3]वरणाद्वा (?) वर्णः शुक्लादिः, यदुदये शुक्लपीतरक्तनीलकृष्णवर्णः प्राणी भवति तद्वर्णनाम ९। गन्ध्यत इति गन्धो दुर्गन्धादिः, यदुदये सुगन्धदुर्गन्धगन्धः प्राणी भवति तद्गन्धनाम १०। रस्यत इति रसः, यस्य कर्मण उदये तिक्तकटुकषायाम्लमधुररससंयुक्तं शरीरं भवति प्राणिनां तद्रसनाम ११। स्पृश्यत इति स्पर्शः, स चाष्टधा [4]सुकुमारादिः, स यदुदयात्प्राणिनो भवति तत्स्पर्शनामावगन्तव्यमिति १२। अगुरुलघु च बोद्धव्यम्, यस्य कर्मण उदये न गुरु नापि लघु शरीरं जीवस्य तदगुरुलघुनाम 'बोद्धव्यं' ज्ञातव्यम् १३। उपहन्यते येन कर्मणा तदुपघाननाम, यदुदये जीवस्य स्वावयवेन परेण वा व्याघातो भवति १४। परानाहन्ति पराघातनाम यस्य कर्मण उदये आत्मावयवैः परं हन्ति १५। आनुपूर्वी नरकादिका, यदुदये जीवो नरकादौ गच्छति, नरकादिनयने कारणं रज्जुवद्वृषभस्य १६। उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तस्य नाम उच्छ्वासनाम, यदुदयाज्जीवस्योच्छ्वासनिःश्वासौ भवतस्तच्च ज्ञातव्यम् १७। इति गाथार्थः ॥७२॥ आतपनमातपस्तल्लक्षणं नामातपनाम, यथाऽऽदित्य आतपनामोदये तपति, एवमन्येऽपि प्राणिन आतपनामकर्मोदये तपन्ति, तेनातपनामोच्यते १८। उद्द्योतनमुद्द्योतस्तदुपलक्षितं नाम उद्द्योतनाम, यथा खद्योतक उद्द्योतयति उद्द्योतनामोदये, एवमन्योऽपि प्राणी यस्य कर्मण उदये उद्द्योतयति तत्कर्म तस्योद्द्योतनामोच्यते १९ [5]विहायसा गम्यते यया प्राणिभिः सा विहायोगतिः, यदुदये प्राणी आकाशगामी भवति तद्विहायोगतिनाम २०। न केवलमातपोद्द्योते अवगन्तव्ये, विहायोगति[6]श्चावबोद्धव्या। त्रसस्थावराभिधानं च, त्रस्यत इति त्रसः त्रस इत्यभिधानमाह्वानं यस्य नाम्नः कर्मणस्तत्त्रसाभिधानं, यदुदये जीवस्त्रसो भवति २१। स्थावर इत्यभिधानं नाम यस्य तत्स्थावराभिधानं, यदुदये जीवस्य स्थावरत्वं भवति २२। बादरः स्थूलस्तल्लक्षणं नाम बादरनाम, यदुदये जीवो बादरपरिणामपरिणतो भवति २३। सूक्ष्मो लघुरणुमात्रो यस्य कर्मण उदये जीवः सूक्ष्मपरिणामपरिणतो भवति तत्सूक्ष्मनाम २४। पर्याप्तं चापर्याप्तं च पर्याप्तापर्याप्तं तल्लक्षणं नाम, यदुदये जीवः स्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तः परिपूर्णो भवति तत्पर्याप्तनाम २५। अप-

---

१ संघाननं सं० जे०। २ ०दि भवति जे०। ३ वर्णनाद्वा जे०। ४ सुकुमालादिः। ५ 'आकाशेन जे० टिप्पणी। ६ श्चावबोद्धव्या जे०।

र्याप्तनाम किम् ? यस्योदये स्वपर्याप्तिभिरपरिपूर्णो भवति, न्यून एव कालं करोति, तदपर्याप्तनाम च ज्ञातव्यमत्रबोद्धव्यम् २६ । इति गाथार्थः ॥७३॥ एकं एकं प्रति प्रत्येकं, यस्योदये प्रत्येकजीवो भवति पृथग्जीवो भवति तत्प्रत्येकनाम, यथा वृक्षादीनां पत्रपुष्पादि २७ । साधारणं तुल्यं नाम साधारणनाम, [1]यद्वाशावनेकजीवानामेकं शरीरं यथाऽऽलक्षादेः शरीरम् २८ । स्थिरमचलं, स्थिरं च तन्नाम च स्थिरनाम, यस्योदये जीवानां दन्तादयोऽवयवाः स्थिरा भवन्ति तत्स्थिरनाम २९ । न स्थिरमस्थिरं, यदुदये जीवस्यास्थिरा ग्रीवादयो भवन्ति तदस्थिरनाम ३० । शुभं प्रशस्तं तल्लक्षणं नाम शुभनाम, यदुदये जीवस्य शुभाः शिरःप्रभृतयोऽवयवास्तच्छुभनाम ३१ । अशुभमप्रशस्तं, तदुदये जीवस्य पादादयोऽशुभावयवा भवन्तीति कृत्वाऽशुभनामोच्यते, **'ज्ञातव्य'** [2]मिदं बोद्धव्यमिति ३२ सुभगमिति सुभगस्य भावः सौभाग्यं, [3]यस्योदये सौभाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनानन्दकारी जीवस्तत्सौभाग्यनाम ३३ । **'दुभगमिति'** दुर्भगस्य भावो दौर्भाग्यं, यस्योदये जीवो दौर्भाग्ययुक्तो भवति सर्वजनमनोनयनोद्वेगकारी तद्दुर्भगनाम ३४ । [4]**'सूसरं'** इति शोभनः स्वरो यस्य तत्सुस्वरनाम, यदुदयाज्जीवस्य मधुरो गम्भीरः श्रव्यो ध्वनिर्भवति ३५ । **'दूसरं'** इति दुष्टः स्वरो ध्वनिर्य[5]स्मात्तद्दुःस्वरनाम, यदुदयाज्जीवः काकस्वरः श्रुत्यसुखदो भवति तच्च ज्ञातव्यम् ३६ । इति गाथार्थः ॥७४॥ आदेयनाम किम् ? यदुदयाज्जीवः सर्वस्यादेयो भवति ग्राह्यवाक्यो भवति तदादेयनाम ३७ । न आदेयमनादेयं, यदुदयाज्जीवोऽनादेयो भवति अग्राह्यवाक्यो भवति, सर्वोऽप्यवज्ञां विधत्ते तदनादेयनाम ३८ । यशश्च कीर्त्तिश्च यशःकीर्त्ती, तल्लक्षणं नाम यशःकीर्त्तिनाम, यशसा उपलक्षिता वा कीर्त्तिर्यशःकीर्त्तिः । **'दानपुण्यफला कीर्त्तिः,'** **'पराक्रमकृतं यशः'** इतिवचनात्, यदुदयाद्यशःकीर्त्तिर्भवति जीवस्य तद्यशःकीर्त्तिनाम ३९ । अयशःप्रधाना कीर्त्तिः, यदुदयाज्जीवस्य लोका अवर्णवादादीन् गृह्णन्ति तदयशःकीर्त्तिनाम ४० । **'निम्माणं'** इति निर्माणनाम, यदुदयाज्जीवः स्वाङ्गावयवानां नियमनं विधत्ते नासिकादयो नासिकादिस्थान एव, नान्यत्र, इत्येवंभूतव्यवस्थानिबन्धनं नाम तन्निर्माणनाम सूत्रधारसदृशम् ४१ । तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं यदुदये सुरासुरनरेन्द्रनिवहैः पूज्यः सर्वविद्भवति, तीर्थं च भावरूपं यदुदयात्प्रवर्तयति जीवस्तत्तीर्थकरनाम ४२ । एते प्रथमा द्विचत्वारिंशतो **'भेदाः'** विशेषाः, **'भेदानामपि'** विशेषाणामपि **'भवन्ति'** जायन्ते **'इमे'** वक्ष्यमाणलक्षणा भेदाः इति गाथार्थः ॥७५॥

उक्ता द्विचत्वारिंशद्, इदानीं सप्तषष्टिमाह—

(पारमा०) प्रथमा द्विचत्वारिंशदियं भवतीति गम्यते । गति १ जाति २ शरीर ३ अङ्गोपाङ्गानि ४ च । बन्धन ५ सङ्घातन ६ संहनन ७ संस्थाननाम ८ चेति । नामशब्दस्य गत्या-

---

१ यदा व्याप्तौ जे० । २ "भवबोद्धव्य० जे० । ३ यदुदयात् सौ० जे० । ४ सूसरमिति शो० जे० । ५ येस्य तद्० जे० ।

दिभिः प्रत्येकं योगः ॥७१॥ तथा वर्ण ९ गन्ध १० रस ११ स्पर्शनाम १२, इत्यत्रापि वर्णादिभिर्योज्यम् । अगुरुलघुकं च बोद्धव्यम् १३ । उपघात १४ पराघात १५ आनुपूर्वी १६ उच्छ्वासनाम १७ च, इत्यगुरुलघ्वादिभिर्योज्यं आतपादिभिश्च ॥७२॥ आतप १८ उद्योत १९ विहायोगतयः २० त्रसं २१ स्थावरा २२ऽभिधानं च । त्रसं च स्थावरं च त्रसस्थावरम्, इत्यादौ द्वन्द्वनिर्देशः । त्रसस्थावरादीनां यशःकीर्त्त्ययशःकीर्त्तिपर्यन्तानां सेतरत्वं ज्ञापयति । ततश्चैते त्रसादयः सेतरत्वात्त्रसादिविंशतिरिति संज्ञां लभन्ते । इति तयोरभिधानं नाम त्रसनाम स्थावरनाम च । बादर २३ सूक्ष्म २४ पर्याप्ता २५ऽपर्याप्त २६ च ज्ञातव्यम् ॥७३॥ **'पत्तेयं साहरणत्ति'** प्रत्येकं २७ साधारणं २८ । **'थिरमथिरत्ति'** स्थिरा २९ऽस्थिरं ३० शुभा ३१ऽशुभं च ज्ञातव्यम् । सुभग ३३ दुर्भगनाम ३४ इति पूर्ववद्बादरादिभिर्योज्यम् । **'सूसर तह दूसरंति'** तथा सुस्वरं ३५ दुःस्वरं ३६ चैव ॥७४॥ **'आइज्जमणाइज्जंति'** आदेया ३७ ऽनादेयं ३८ **"जसकित्तीनाममजसकीत्तो यत्ति"** यशःकीर्त्तिनामा ३९ऽयशःकीर्त्तिनाम ४० चेति सुस्वरादिभिर्निर्माणादिभिर्योज्यम् । अनुस्वारलोपागमव्यत्ययादिकं प्राकृतत्वादवसेयम् । निर्माणं ४१ तीर्थकरम् ४२ । इति द्विचत्वारिंशद्भेदाः । उत्तरभेदप्रस्तावनामाह—भेदानामपि द्विचत्वारिंशद्रूपाणां भवन्तीमे भेदाः सप्तषष्टित्रिनवतिन्युत्तरशतलक्षणा इति गाथापञ्चकार्थः ॥७५॥

तत्र सप्तषष्टिमाह—

गइ होइ [1]चउब्भेया, जाईवि य पंचहा मुणेयव्वा ।
पंच य हुंति सरीरा, अंगोवंगाइं [2]तिन्नेव ॥७६॥

(पू०) व्याख्या—गतिः **'भवति'** जायते **'चतुर्भेदा'** चतुष्प्रकारा नारक १ तिर्यङ् २ नरा ३ऽमर ४ लक्षणा । जातिरपि च पञ्चधा **'मन्तव्या'** ज्ञातव्या एकेन्द्रिय १ द्वि २ त्रि ३ चतु ४ ष्पञ्चेन्द्रिय ५ रूपा । न केवलमेकविधा जातिः पञ्चविधाऽपि इत्यपिशब्दार्थः । **'चः'** पूर्वया गत्या सह समुच्चयार्थः । पञ्च च भवन्ति शरीराणि औदारिक १ वैक्रिया २ऽऽहारक ३ तैजस ४ कार्मण ५ लक्षणानि **'भवन्ति'** जायन्ते । अङ्गोपाङ्गानि त्रीण्येव भवन्ति औदारिक १ वैक्रिया २ऽऽहारका ३ऽङ्गोपाङ्गरूपाणि, तैजसकार्मणयोरङ्गोपाङ्गाभावादित्यवधारणम् । इति गाथार्थः ॥७६॥

उक्ता गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्ग[3]विभागाः, साम्प्रतं संहननादिभेदानाह—

(पारमा०) गतिर्भवति चतुर्भेदा ४ नरकगत्यादिभेदात् । जातिरपि च पञ्चधा ९ एकेन्द्रियजात्यादिभेदाज् ज्ञातव्या । पञ्च च भवन्ति शरीराणि १४ औदारिकादिभेदात् । अङ्गोपाङ्गानि त्रीण्येव १७, न तु पञ्चाप्याद्यशरीरत्रय एव तद्भावात् ॥७६॥

---

१ "चउपयाग" इत्यपि पाठः २ "तिण्णेव" इत्यपि पाठ । ३ ०भेदाः साम्प्रतं संघयणादिभे० जे० ।

छस्संघयणा जाणसु, संठाणावि य [1]हवंति छच्चेव ।
वण्णाईण चउक्कं, अगुरुलहुवघायपरघायं ॥७७॥

(पू०) व्याख्या–षट् [2]संहननानि 'जानीहि' विद्धि वज्रर्षभनाराच १ ऋषभनाराच २ नाराचा ३ऽर्द्धनाराच ४ कीलिका ५ छेवट्ठ (सेवार्त्त) ६ रूपाणि । संस्थानान्यपि च तथैव षड्वेव यथा [3]संहननानि,–समचतुरस्र १ न्यग्रोधमण्ड[4]ल२ सादि ३ वामन ४ कुब्ज ५ हुण्ड ६ रूपाणि । वर्ण आदिर्येषां ते वर्णादयः तेषां, चतुष्कं वर्ण १ गन्ध २ रस ३ स्पर्श ४ लक्षणम् । [5]अगुरु च लघु च अगुरुलघुनाम भवति ज्ञातव्यम् । उपघातश्च पराघातश्चोपघातपराघातं भवति ज्ञातव्यम् । इति गाथार्थः ॥७७॥ उक्ताः संहननादयः आनुपूर्व्यादीनाह—

(पारमा०) षट् संहननानि २३ वज्रर्षभनाराचादीनि जानीहि । संस्थानान्यपि च २९ समचतुरस्रादीनि भवन्ति षड्वेव 'वर्णादीनां' वर्णगन्धरसस्पर्शानां चतुष्कं ३३, अवान्तरभेदाविवक्षणात् । अगुरुलघु ३४ उपघातं ३५ परघातम् ३६ ॥७७॥

अणुपुव्वी चउभेया, ऊसासं आयवं च उज्जोयं ।
सुहअसुहविहायगई, तसाइवीसं च निम्माणं ॥७८॥

(पू०) व्याख्या–'अणुपुव्वीति' आनुपूर्वी 'चतुर्भेदा' चतुष्प्रकारा नरकानुपूर्वी १ तिर्यगानुपूर्वी २ मनुष्यानुपूर्वी ३ देवानुपूर्वी ४ लक्षणा 'उच्छ्वासं' उच्छ्वासनाम, 'आतपं च' आतपनाम, 'उद्द्योतं' उद्द्योतनाम, शुभाशुभविहायोगती, शुभा=प्रशस्ता, अशुभा=अप्रशस्ता । त्रसनाम [6]आदौ येषां तत्त्रसादिविंशतिः, निर्माणमिति । आनुपूर्वीत्याकारो ह्रस्वः सूत्रे गाथाभङ्गभयात् प्राकृतत्वाच्च । इति गाथार्थः ॥७८॥

उक्ता आनुपूर्व्यादयः, तीर्थकरयुक्तां सप्तषष्टियोजनामाह—

(पारमा०) आनुपूर्वी ४० चतुर्भेदा, नरकानुपूर्व्यादिभेदात् । उच्छ्वासं ४१ आतपं ४२ उद्द्योतं ४३ शुभाशुभविहायोगतिः ४५ त्रसादिर्विंशतिश्च प्राङ् निरूपिता ६५ निर्माणम् ६६॥७८॥

[7]तित्थयरेण य सहिया, सत्तट्ठी एव हुंति पयडीओ ।
सम्मामीसेहि विणा, तेवन्ना सेसकम्माणं ॥७९॥

(पू०) व्याख्या–तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं, तल्लक्षणं नाम तीर्थकरनाम, तेन सहिता सप्तभिरधिका षष्टिः सप्तषष्टिः ६७ । एवमुक्तनीत्या, एवेति लुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात् ।

---

१ व्याख्याकारेण तु "तहेव" इति पाठानुसारेण व्याख्या कृता ॥ २-३ संघयनानि जे० । ४ ल शक्ति या ०। ५ अगुरुनाम भवति ज्ञा० (?) जे० । ६ आदौ यस्य तत् त्रसादिविंशतितमं निर्मा० जे० । ७ "...ण सहिया" इत्यपि पाठः ।

दिभिः प्रत्येकं योगः ॥७१॥ तथा वर्ण ९ गन्ध १० रस ११ स्पर्शनाम १२, इत्यत्रापि वर्णादिभिर्योज्यम् । अगुरुलघुकं च बोद्धव्यम् १३ । उपघात १४ पराघात १५ आनुपूर्वी १६ उच्छ्वासनाम १७ च, इत्यगुरुलघ्वादिभिर्योज्यं आतपादिभिश्च ॥७२॥ आतप १८ उद्योत १९ विहायोगतयः २० त्रसं २१ स्थावरा २२ऽभिधानं च । त्रसं च स्थावरं च त्रसस्थावरम्, इत्यादौ द्वन्द्वनिर्देशः । त्रसस्थावरादीनां यशःकीर्त्त्ययशःकीर्त्तिपर्यन्तानां सेतरत्वं ज्ञापयति । ततश्चैते त्रसादयः सेतरत्वात्त्रसादिविंशतिरिति संज्ञां लभन्ते । इति तयोरभिधानं नाम त्रसनाम स्थावरनाम च । बादर २३ सूक्ष्म २४ पर्याप्ता २५ऽपर्याप्तं २६ च ज्ञातव्यम् ॥७३॥ **'पत्तेयं साहरणत्ति'** प्रत्येकं २७ साधारणं २८ । **'थिरमथिरत्ति'** स्थिरा २९ऽस्थिरं ३० शुभा ३१ऽशुभं च ज्ञातव्यम् । सुभग ३३ दुर्भगनाम ३४ इति पूर्ववद्बादरादिभिर्योज्यम् । **'सूसर तह दूसरंति'** तथा सुस्वरं ३५ दुःस्वरं ३६ चैव ॥७४॥ **'आइज्जमणाइज्जंति'** आदेया ३७ ऽनादेयं ३८ **"जसकित्तीनाममजसकीत्तो यत्ति"** यशःकीर्त्तिनामा ३९ऽयशःकीर्त्तिनाम ४० चेति सुस्वरादिभिर्निर्माणादिभिर्योज्यम् । अनुस्वारलोपागमव्यत्ययादिकं प्राकृतत्वादवसेयम् । निर्माणं ४१ तीर्थकरम् ४२ । इति द्विचत्वारिंशद्भेदाः । उत्तरभेदप्रस्तावनामाह—भेदानामपि द्विचत्वारिंशद्रूपाणां भवन्तीमे भेदाः सप्तषष्टित्रिनवतित्र्युत्तरशतलक्षणा इति गाथापञ्चकार्थः ॥७५॥

तत्र सप्तषष्टिमाह—

गइ होइ [1]चउब्भेया, जाईवि य पंचहा मुणेयव्वा ।
पंच य हुंति सरीरा, अंगोवंगाइं [2]तिन्नेव ॥७६॥

(पू०) व्याख्या—गतिः **'भवति'** जायते **'चतुर्भेदा'** चतुष्प्रकारा नारक १ तिर्यङ् २ नरा ३ऽमर ४ लक्षणा । जातिरपि च पञ्चधा **'मन्तव्या'** ज्ञातव्या एकेन्द्रिय १ द्वि २ त्रि ३ चतु ४ प्पञ्चेन्द्रिय ५ रूपा । न केवलमेकविधा जातिः पञ्चविधाऽपि इत्यपिशब्दार्थः । **'च:'** पूर्वया गत्या सह समुच्चयार्थः । पञ्च च भवन्ति शरीराणि औदारिक १ वैक्रिया २ऽऽहारक ३ तैजस ४ कार्मण ५ लक्षणानि **'भवन्ति'** जायन्ते । अङ्गोपाङ्गानि त्रीण्येव भवन्ति औदारिक १ वैक्रिया २ऽऽहारका ३ऽङ्गोपाङ्गरूपाणि, तैजसकार्मणयोरङ्गोपाङ्गाभावादित्यवधारणम् । इति गाथार्थः ॥७६॥

उक्ता गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्ग[3]विभागाः, साम्प्रतं संहननादिभेदानाह—

(पारमा०) गतिर्भवति चतुर्भेदा ४ नरकगत्यादिभेदात् । जातिरपि च पञ्चधा ९ एकेन्द्रियजात्यादिभेदाज् ज्ञातव्या । पञ्च च भवन्ति शरीराणि १४ औदारिकादिभेदात् । अङ्गोपाङ्गानि त्रीण्येव १७, न तु पञ्चाप्याद्यशरीरत्रय एव तद्भावात् ॥७६॥

---

१ "चउपयाग" इत्यपि पाठः २ "तिण्णेव" इत्यपि पाठ । ३ ०भेदाः साम्प्रतं । [illegible]मे० जे०

छस्संघयणा जाणसु, संठाणावि य [1]हवंति छच्चेव ।
वण्णाईण चउक्कं, अगुरुलहुवघायपरघायं ॥७७॥

(पू०) व्याख्या—षट् [2]संहननानि 'जानीहि' विद्धि वज्रर्षभनाराच १ ऋषभनाराच २ नाराचा ३ऽर्द्धनाराच ४ कीलिका ५ छेवट्ठ (सेवार्त्त) ६ रूपाणि । संस्थानान्यपि च तथैव षडेव यथा [3]संहननानि,—समचतुरस्र १ न्यग्रोधमण्ड[4]ल२ सादि ३ वामन ४ कुब्ज ५ हुण्ड ६ रूपाणि । वर्ण आदिर्येषां ते वर्णादयः तेषां, चतुष्कं वर्ण १ गन्ध २ रस ३ स्पर्श ४ लक्षणम् । [5]अगुरु च लघु च अगुरुलघुनाम भवति ज्ञातव्यम् । उपघातश्च पराघातश्चोपघातपराघातं भवति ज्ञातव्यम् । इति गाथार्थः ॥७७॥ उक्ताः संहननादयः आनुपूर्व्यादीनाह—

(पारमा०) षट् संहननानि २३ वज्रर्षभनाराचादीनि जानीहि । संस्थानान्यपि च २९ समचतुरस्रादीनि भवन्ति षडेव 'वर्णादीनां' वर्णगन्धरसस्पर्शानां चतुष्कं ३३, अवान्तरभेदाविवक्षणात् । अगुरुलघु ३४ उपघातं ३५ परघातम् ३६ ॥७७॥

अणुपुव्वी चउभेया, ऊसासं आयवं च उज्जोयं ।
सुहअसुहविहायगई, तसाइवीसं च निम्माणं ॥७८॥

(पू०) व्याख्या—'अणुपुव्वीति' आनुपूर्वी 'चतुर्भेदा' चतुष्प्रकारा नरकानुपूर्वी १ तिर्यगानुपूर्वी २ मनुष्यानुपूर्वी ३ देवानुपूर्वी ४ लक्षणा 'उच्छ्वासं' उच्छ्वासनाम, 'आतपं च' आतपनाम, 'उद्द्योतं' उद्द्योतनाम, शुभाशुभविहायोगती, शुभा=प्रशस्ता, अशुभा=अप्रशस्ता । त्रसनाम [6]आदौ येषां तत्त्रसादिर्विंशतिः, निर्माणमिति । आनुपूर्वीत्याकारो ह्रस्वः सूत्रे गाथाभङ्गभयात् प्राकृतत्वाच्च । इति गाथार्थः ॥७८॥

उक्ता आनुपूर्व्यादयः, तीर्थकरयुक्तां सप्तषष्टियोजनामाह—

(पारमा०) आनुपूर्वी ४० चतुर्भेदा, नरकानुपूर्व्यादिभेदात् । उच्छ्वासं ४१ आतपं ४२ उद्द्योतं ४३ शुभाशुभविहायोगतिः ४५ त्रसादिर्विंशतिश्च प्राक् निरूपिता ६५ निर्माणम् ६६॥७८॥

[7]तित्थयरेण य सहिया, सत्तट्ठी एव हुंति पयडीओ ।
सम्मामीसेहि विणा, तेवन्ना सेसकम्माणं ॥७९॥

(पू०) व्याख्या—तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं, तल्लक्षणं नाम तीर्थकरनाम, तेन सहिता सप्तभिरधिका षष्टिः सप्तषष्टिः ६७ । एवमुक्तनीत्या, एवेति लुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात् ।

---

[1] व्याख्याकारेण तु "तहेव" इति पाठानुसारेण व्याख्या कृता॥ २-३ संघयनानि जे०। ४ ल शक्ति वा (?) जे०। ५ अगुरुनाम भवति ज्ञा० (?) जे०। ६ आदौ यस्य तत् त्रसादिविंशतितमं निर्मा० जे०। ७ तित्थयरेणं सहिया" इत्यपि पाठः।

दिभिः प्रत्येकं योगः ॥७१॥ तथा वर्ण ९ गन्ध १० रस ११ स्पर्शनाम १२, इत्यत्रापि वर्णादिभिर्योज्यम् । अगुरुलघुकं च बोद्धव्यम् १३ । उपघात १४ पराघात १५ आनुपूर्वी १६ उच्छ्वासनाम १७ च, इत्यगुरुलघ्वादिभिर्योज्यं. आतपादिभिश्च ॥७२॥ आतप १८ उद्योत १९ विहायोगतयः २० त्रसं २१ स्थावरा २२ऽभिधानं च । त्रसं च स्थावरं च त्रसस्थावरम् , इत्यादौ द्वन्द्वनिर्देशः । त्रसस्थावरादीनां यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिपर्यन्तानां सेतरत्वं ज्ञापयति । ततश्चैते त्रसादयः सेतरत्वात्त्रसादिविंशतिरिति संज्ञां लभन्ते । इति तयोरभिधानं नाम त्रसनाम स्थावरनाम च । बादर २३ सूक्ष्म २४ पर्याप्ता २५ऽपर्याप्तं २६ च ज्ञातव्यम् ॥७३॥ **'पत्तेयं साहरणत्ति'** प्रत्येकं २७ साधारणं २८। **'थिरमथिरत्ति'** स्थिरा २९ऽस्थिरं ३० शुभा ३१ऽशुभं च ज्ञातव्यम् । सुभग ३३ दुर्भगनाम ३४ इति पूर्ववद्बादरादिभिर्योज्यम् । **'सूसर तह दूसरंति'** तथा सुस्वरं ३५ दुःस्वरं ३६ चैव ॥७४॥ **'आइज्जमणाइज्जंति'** आदेया ३७ ऽनादेयं ३८ **"जसकित्तीनाममजसकीत्ती यत्ति"** यशःकीर्त्तिनामा ३९ऽयशःकीर्त्तिनाम ४० चेति सुस्वरादिभिर्निर्माणादिभिर्योज्यम् । अनुस्वारलोपागमव्यत्ययादिकं प्राकृतत्वादवसेयम् । निर्माणं ४१ तीर्थंकरम् ४२ । इति द्विचत्वारिंशद्भेदाः । उत्तरभेदप्रस्तावनामाह—भेदानामपि द्विचत्वारिंशद्रूपाणां भवन्तीमे भेदाः सप्तषष्टित्रिनवतित्र्युत्तरशतलक्षणा इति गाथापञ्चकार्थः ॥७५॥

तत्र सप्तषष्टिमाह—

गइ होइ [1]चउभेया, जाईवि य पंचहा मुणेयव्वा ।
पंच य हुंति सरीरा, अंगोवंगाइं [2]तिन्नेव ॥७६॥

(पू०) व्याख्या—गतिः **'भवत्ति'** जायते **'चतुर्भेदा'** चतुष्प्रकारा नारक १ तिर्यङ् २ नरा ३ऽमर ४ लक्षणा । जातिरपि च पञ्चधा **'मन्तव्या'** ज्ञातव्या एकेन्द्रिय १ द्वि २ त्रि ३ चतु ४ प्पञ्चेन्द्रिय ५ रूपा । न केवलमेकविधा जातिः पञ्चविधाऽपि इत्यपिशब्दार्थः । **'चः'** पूर्वया गत्या सह समुच्चयार्थः । पञ्च च भवन्ति शरीराणि औदारिक १ वैक्रिया २ऽऽहारक ३ तैजस ४ कार्मण ५ लक्षणानि **'भवन्ति'** जायन्ते । अङ्गोपाङ्गानि त्रीण्येव भवन्ति औदारिक १ वैक्रिया २ऽऽहारका ३ऽङ्गोपाङ्गरूपाणि, तैजसकार्मणयोरङ्गोपाङ्गाभावादित्यवधारणम् । इति गाथार्थः ॥७६॥

उक्ता गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्ग[3]विभागाः, साम्प्रतं संहननादिभेदानाह—

(पारमा०) गतिर्भवति चतुर्भेदा ४ नरकगत्यादिभेदात् । जातिरपि च पञ्चधा ९ एकेन्द्रियजात्यादिभेदाज् ज्ञातव्या । पञ्च च भवन्ति शरीराणि १४ औदारिकादिभेदात् । अङ्गोपाङ्गानि त्रीण्येव १७, न तु पञ्चाप्याद्यशरीरत्रय एव तद्भावात् ॥७६॥

---

१ "चउपयार" इत्यपि पाठः २ "तिण्णेव" इत्यपि पाठ । ३ ०भेदाः साम्प्रतं संघयणादिभे० जे० ।

छस्संघयणा जाणसु, संठाणावि य [1]हवंति छच्चेव ।
वण्णाईण चउक्कं, अगुरुलहुवघायपरघायं ॥७७॥

(पू०) व्याख्या—षट् [2]संहननानि 'जानीहि' विद्धि वज्रर्षभनाराच १ ऋषभनाराच २ नाराचा ३ऽर्द्धनाराच ४ कीलिका ५ छेवट्ठ (सेवार्त्त) ६ रूपाणि । संस्थानान्यपि च तथैव षडेव यथा [3]संहननानि,—समचतुरस्र १ न्यग्रोधमण्ड[4]ल२ सादि ३ वामन ४ कुब्ज ५ हुण्ड ६ रूपाणि । वर्ण आदिर्येषां ते वर्णादयः तेषां, चतुष्कं वर्ण १ गन्ध २ रस ३ स्पर्श ४ लक्षणम् । [5]अगुरु च लघु च अगुरुलघुनाम भवति ज्ञातव्यम् । उपघातश्च पराघातश्चोपघातपराघातं भवति ज्ञातव्यम् । इति गाथार्थः ॥७७॥ उक्ताः संहननादयः आनुपूर्व्यादीनाह—

(पारमा०) षट् संहननानि २३ वज्रर्षभनाराचादीनि जानीहि । संस्थानान्यपि च २९ समचतुरस्रादीनि भवन्ति षडेव 'वर्णादीनां' वर्णगन्धरसस्पर्शानां चतुष्कं ३३, अवान्तरभेदाविवक्षणात् । अगुरुलघु ३४ उपघातं ३५ परघातम् ३६ ॥७७॥

अणुपुव्वी चउभेया, ऊसासं आयवं च उज्जोयं ।
सुहअसुहविहायगई, तसाइवीसं च निम्माणं ॥७८॥

(पू०) व्याख्या—'अणुपुव्वीति' आनुपूर्वी 'चतुर्भेदा' चतुष्प्रकारा नरकानुपूर्वी १ तिर्यगानुपूर्वी २ मनुष्यानुपूर्वी ३ देवानुपूर्वी ४ लक्षणा 'उच्छ्वासं' उच्छ्वासनाम, 'आतपं च' आतपनाम, 'उद्द्योतं' उद्द्योतनाम, शुभाशुभविहायोगती, शुभा=प्रशस्ता, अशुभा=अप्रशस्ता । त्रसनाम [6]आदौ येषां तत्त्रसादिविंशतिः, निर्माणमिति । आनुपूर्वीत्याकारो ह्रस्वः सूत्रे गाथाभङ्गभयात् प्राकृतत्वाच्च । इति गाथार्थः ॥७८॥

उक्ता आनुपूर्व्यादयः, तीर्थकरयुक्तां सप्तषष्टियोजनामाह—

(पारमा०) आनुपूर्वी ४० चतुर्भेदा, नरकानुपूर्व्यादिभेदात् । उच्छ्वासं ४१ आतपं ४२ उद्द्योतं ४३ शुभाशुभविहायोगतिः ४५ त्रसादिविंशतिश्च प्राङ् निरूपिता ६५ निर्माणम् ६६॥७८॥

[7]तित्थयरेण य सहिया, सत्तट्ठी एव हुंति पयडीओ ।
सम्मामीसेहि विणा, तेवन्ना सेसकम्माणं ॥७९॥

(पू०) व्याख्या—तीर्थकरणशीलं तीर्थकरं, तल्लक्षणं नाम तीर्थकरनाम, तेन सहिता सप्तभिरधिका षष्टिः सप्तषष्टिः ६७ । एवमुक्तनीत्या, एवेति लुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात् ।

---

१ व्याख्याकारेण तु "तहेव" इति पाठानुसारेण व्याख्या कृता॥ २-३ संघयनानि जे०। ४ ल शब्दिव षा (?) जे०। ५ अगुरुनाम भवति ज्ञा० (?) जे०। ६ आदौ यस्य तत् त्रसादिविंशतितमं निर्मा० जे०। ७ तित्थयरेणं सहिया" इत्यपि पाठः।

'भवन्ति' जायन्ते 'प्रकृतयः' उत्तरविशेषाः 'सम्यग्मिश्राभ्यां विना' सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वाभ्यां विना त्रिभिरधिका पञ्चाशत्त्रिपञ्चाशत् 'शेषकर्मणां' ज्ञानावरणाद्यन्तरायपर्यन्तानाम् । इति गाथार्थः ॥७९॥

उक्ताः सप्तषष्टिभेदाः, इदानीमेककालं जीवस्य प्रकृतिबन्धसंख्यामाह—

(पारमा०) तीर्थकरेण च सहिता ६७ सप्तषष्टिः, एवं भवन्ति प्रकृतयः । सम्प्रति सप्तषष्टेर्बन्धोपयोगित्वं प्रतिपिपादयिषुर्बन्धप्रायोग्याः शेषकर्मप्रकृतीरपि प्रसङ्गत आह—सम्यग्मिश्राभ्यां विना त्रिपञ्चाशच्छेषकर्मणाम् । तथाहि—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकसंहतौ चतुर्दश वेदनीयद्विकसंकलने षोडश । सम्यक्त्वमिश्रे बन्धे नायात इति तद्वर्जितमोहनीयषड्विंशतिक्षेपे द्विचत्वारिंशत् । आयुष्कचतुष्टयमीलने षट्चत्वारिंशत् । गोत्रद्वयसंहतावष्टचत्वारिंशत् । अन्तरायपञ्चकयुक्तौ यथोक्ता त्रिपञ्चाशत् । इति सप्तषष्टिप्रतिपादकगाथाचतुष्टयस्यार्थः ॥७९॥

एतन्मीलने यद्भवति तदाह—

एवं विसुत्तरसयं, [1]बंधे पयडीण होइ नायव्वं ।
बंधणसंघाया वि य, सरीरगहणेण इह गहिया ॥८०॥

(पू०) व्याख्या 'एवं' उक्तनीत्या 'विंशत्युत्तरं शतं' विंशतिरुत्तरा यस्मिन् तद्विंशत्युत्तरं तच्च तत् शतं च विंशत्युत्तरशतं बन्धनरूपाः प्रकृतयो बन्धनप्रकृतयः तासां भवति ज्ञातव्यम् एकस्य जीवस्य सामान्ये नैकदा यद्युत्कृष्टो बन्धो भवति तदा विंशत्युत्तरशतिको भवति नाधिको बन्धः । ननु सप्तषष्टिभेदमध्ये बन्धनसंघातभेदौ नोक्तौ तयोर्ग्रहणम् ?, इत्याह-बन्धनसंघातावपि च शरीरग्रहणेन 'इह' पक्षान्तरगृहीतौ तदन्तर्गतत्वात्तयोः । इति गाथार्थः ॥८०॥ उक्ता सप्तषष्टिः, इदानीं त्रिनवतिमाह—

(पारमा०) एवं सप्तषष्टेस्त्रिपञ्चाशतश्च मीलने विंशत्युत्तरं शतं प्रकृतीनां बन्धे ज्ञातव्यं भवति । ननु सप्तषष्टिभेदमध्ये बन्धनसंघातौ नोक्तौ तत्कथं तयोर्ग्रहणम् ?, इत्याह—बन्धनसंघातावपि शरीरग्रहणेनेह सप्तषष्टिपक्षे गृहीतौ । औदारिकशरीरनामग्रहणेन औदारिकबन्धनसंघातनाम्नी, वैक्रियशरीरनामग्रहणेन वैक्रियबन्धनसंघातनाम्नी, इत्यादि । इति गाथार्थः ॥८०॥

उक्तं प्रसङ्गागतं बन्धोपयोगि विंशत्युत्तरं प्रकृतिशतं, सम्प्रति त्रिनवतिमाह—

बंधणभेया पंच उ, संघाया वि य हवंति पंचेव ।
पण वण्णा दो गंधा, पंच रसा अट्ठ फासा य ॥८१॥

---

१ व्याख्याकारेण तु "बन्धणपयडीण" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् ।

(पू०) व्याख्या—बन्धनं पूर्वोक्तं तस्य भेदा विशेषाः पञ्च, 'तु:' पुनः, संघाता अपि च 'भवन्ति' जायन्ते पञ्चैवोक्तलक्षणाः । पञ्च वर्णाः प्रतीताः । द्वौ गन्धौ सुगन्धदुर्गन्धौ । पञ्च रसा व्याख्यातार्थाः । अष्टौ स्पर्शा वक्ष्यमाणाः । इति गाथार्थः ॥८१॥

सर्वसंख्याप्रक्षेपार्थमाह—

(पारमा०) औदारिकादिभेदाद्बन्धनभेदाः पञ्च । संघाता अपि पञ्चैव भवन्ति, औदारिकादिभेदादेवेत्येताभ्यां दश । पञ्च वर्णाः, कृष्णादिभेदात् । द्वौ गन्धौ सुरभिदुरभिश्च । पञ्च रसास्तिक्ताद्याः । अष्ट स्पर्शा गुर्वाद्याः । एवमेता विंशतिः प्रकृतयः । एतासां च मध्याच्चतुष्कं वर्णगन्धरसस्पर्शानां चतुर्णां सप्तषष्टिपक्षे सामान्यतो गृहीतानामत्र विशेषोपादानादपगतानां स्थानपूरणे गतमिति शेषाः षोडश ॥८१॥

दस सोलस छव्वीसा, एया मेलेहिं सत्तसट्ठीए ।
तेणउई होइ तओ, बंधणभेया उ पन्नरस ॥८२॥

(पू०) व्याख्या—दश बन्धनसंघातभेदाः, षोडश वर्णगन्धरसस्पर्शाः, सर्वेऽपि मिलिताः षड्विंशतिः' षड्भिरधिका विंशतिः षड्विंशतिः । ननु कथमेते वर्णादयः षोडश भवन्ति गण्यमाना विंशतिः ? इति उच्यते—सप्तषष्टिभेदेषु 'वर्णादीनां चतुष्कं' अनेनावयवेन चत्वारो भेदाः प्रतिपादिताः, तेष्वपनीतेषु वर्णगन्धरसस्पर्शविंशतिभेदानां मध्यात्षोडश एव भवन्ति, अत एतान् 'मीलय' एकीकुरु सप्तषष्ट्यां, त्रिभिरधिका नवतिस्त्रिनवतिः 'भवति' जायते । तत उक्ता त्रिनवतिः, बन्धभेदास्तु पुनः पञ्चदश वक्ष्यमाणलक्षणाः । इति गाथार्थः ॥८२॥ ग्रं० ५३५॥

त्र्युत्तरशतमाह—

(पारमा०) तथा च दश पूर्वार्द्धोक्ताः, एताश्च षोडश, उभयमीलने च षड्विंशतिप्रकृतयः, एता मीलय सप्तषष्टौ, ततस्त्रिनवतिर्भवति । इति पादोनगाथाद्वयार्थः । सम्प्रति त्र्युत्तरशतमाह—बन्धनभेदाः पुनः पञ्चदश परस्परसंयोगाद्भवति ॥८२॥

सव्वेहि वि छूढेहिं, तिगअहिगसयं तु होइ नामस्स ।
एएसिं तु विवागं, वुच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥८३॥

(पू०) व्याख्या—सर्वैरपि क्षिप्तैः सप्तषष्टिमध्ये षड्विंशतिभिस्त्रिनवतिमध्ये बन्धनभेदैर्दशभिः प्रवेशितैस्त्रिकेनाधिकं शतं त्रिकाधिकशतं, [1]न न्यूनाधिकमित्यर्थः, नाम्नः कर्मणः । ननु बन्धनभेदाः पञ्चदश, तत्प्रतिक्षेपे त्रिनवतौ कथं त्र्युत्तरशतम् ? इति, उच्यते—बन्धनभेदा दशैव,

१ न न्यूनाधिकं ० जे० ।

पञ्चानां सप्तषष्टिमध्ये प्रक्षेपात् । एतेषां तु पुनः सर्वेषां [1]चतुर्विध्योक्तानां 'विपाकं' अनुभवरूपं '[2]वुच्छामि' वक्ष्यामि, 'यथानुपूर्व्याः' यथापरिपाट्या । इति गाथार्थः ॥८३॥

नारकादिगतिसंख्या [3]यतश्चैवं भवति तदाह—

(पारमा०) सर्वैरपि क्षिप्तैर्बन्धनभेदैरिति. अयं भावः—एषां मध्यादौदारिकादिबन्धनपञ्चकस्य त्रिनवतिपक्षोपात्तस्य शेषैर्दशभिरपि क्षिप्तैस्त्र्युत्तरं शतं भवति नाम्नः प्रकृतीनामिति गम्यम् । विपाकभणनं प्रस्तौति-'एतेषां' द्विचत्वारिंशत्सप्तषष्टित्रिनवतित्र्युत्तरशतानां पुनर्विपाकं वक्ष्ये 'यथानुपूर्व्या' क्रमानतिक्रमेण । इति सपादगाथार्थः ॥८३॥

प्रतिज्ञातमाह—

नारयतिरियनरामर-गइभेया चउविहा गई होइ ।
एसा खलु ओदइए, होइ हु भावे जओ आह ॥८४॥

(पू०) व्याख्या—नारकतिर्यङ्नरामरगतिभेदाद्विशेषाच्चतुर्विधा गतिर्भवति । 'एषा' प्रागुक्ता 'खलु' निश्चयेन, कस्मिन् भावे भवति ?, इति आह-औदायिके भावे भवति, न क्षायिकादौ । हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । यत आह सूत्रकार एव । इति गाथार्थः ॥८४॥

नरकगतिस्वरूपमाह—

(पारमा०) नारकतिर्यङ्नरामरगतिभेदाच्चतुर्विधा गम्यते=प्राप्यते तथाविधकर्मसचिवैरिति गतिर्भवति । एषा 'खलु' निश्चितमौदयिके भावे भवति । यत आहेतिपदमुदारोक्त्या कर्तृनिर्देशमन्तरेणोपात्तं यत्र कुत्रचिद्विश्रान्त्यभावात्तीर्थकृतमाक्षिपति । इति गाथार्थः ॥८४॥

किमाह ? इति चेदुच्यते—

जीए उदएण जीवो, नेरइओ होइ नरयपुढवीए ।
सा भणिया नरयगई, सेसगईओ वि एमेव ॥८५॥

(पू०) व्याख्या—'यस्याः' नरकगतेः 'उदयेन' प्रादुर्भावेन 'जीवः' प्राणी नारकिको 'भवति' संपद्यते, क्व ? 'नरक[4]पृथ्व्यां' प्रतीतायाम् । सा 'भणिता' प्रतिपादिता नरकगतिः शेषगतयोऽपि' तिर्यङ्नरामरलक्षणा अपि 'एवमेव' उक्तन्यायेन । इति गाथार्थः ॥८५॥ उक्ता गतिः, एकेन्द्रियादिजातिमाह—

(पारमा०) यस्या गतेरुदयेन जीवो नैरयिको भवति नरकपृथिव्यां, सा भणिता नरकगतिः शेषगतयोऽप्येवमेवेति । अयमाशयः—यस्या उदयेन तिर्यङ् भवति सा तिर्यग्गतिः ।

---

१ °यानुपूर्व्योक्तानां वि° जे० २ वोच्छामि जे० । ३ यतश्चेयं म० जे० । ४ °पृथिव्यां° जे० ।

यदुदयान्मनुष्यः सा मनुष्यगतिः । यदुदयाच्च देवः सा देवगतिरिति । ननु भवद्भिरित्युक्तं यदुताह तीर्थकृत्, इदं तु सूत्रकृता स्वयमेवोक्तमिति, नैवम्, तस्यायमाशयः-सर्वोऽपि जिनागमोऽर्थतो जिनप्रणीतः, ततस्तदागमोद्धृतत्वादिदमपि तदुक्तमेवेत्यदोषः । इति गाथार्थः ॥८५॥

जातिनामाह—

इगदुगतिगचउरिंदिय-जाई पंचिंदियाण पंचमिया ।
खयउवसमिए भावे, हुंति हु [1]एया जओ आह ॥८६॥

(पू०) व्याख्या-एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिः । जातिशब्दस्य प्रत्येकं संबन्धः । चतस्रो जातयः । पञ्चेन्द्रियाणां पञ्चमिका जातिरुक्तलक्षणा । पञ्चप्रकाराऽपीयं कस्मिन् भावे भवति?, इत्याह-क्षायोपशमिकभावे । क्षयश्च केषांचित्कर्मणाम्, उपशमश्च कर्मणामेव क्षयोपशमः, तेन निर्वृत्तः ठक् (**तेन निवृत्तं पा० ५-१-७१**) क्षायोपशमिकः, आदिवृद्धीकादेशौ, भावशब्दस्य विशेषणम् । क्षायोपशमिक एव भावे **'भवन्ति'** जायन्ते **'भेदाः'** विशेषाः । हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । यत आह सूत्रकारः । इति गाथार्थः ॥८६॥

(पारमा०) एकेन्द्रियादीनामेकेन्द्रियत्वादिसमानपरिणतिलक्षणमेकेन्द्रियादिशब्दव्यपदेशभाक् यत् सामान्यं सा जातिः एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिः, एकेन्द्रियजातिः द्वीन्द्रियजातिः, त्रीन्द्रियजातिः, चतुरिन्द्रियजातिः । जातिरित्यस्यात्रापि योगात्पञ्चेन्द्रियाणां जातिः पञ्चमिका । क्षायोपशमिके भावे भवन्त्येताः । यत आह-**क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि तन्निमित्ता च जातिः** इति गाथार्थः ॥८६॥

एगिंदिएसु जीवो, जस्सिह उदएण [2]होइ कम्मस्स ।
सा एगिंदियजाई, [3]जाईओ एव [4]सेसा उ ॥८७॥

(पू०) व्याख्या-एकमिन्द्रियं स्पर्शनलक्षणं येषां ते एकेन्द्रियास्तेषु च, जीवतीति जीवो यस्य कर्मणाः "उदयेन" प्रादुर्भावेन **'याति'** गच्छति एकेन्द्रियेषु सा **'एकेन्द्रियजातिः'** एकेन्द्रियनाम तत् । "जातयः" द्वीन्द्रियादिजातयः एवेति लुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात् । एवं शेषा अपि द्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियलक्षणा यदुदयेन द्वीन्द्रियादिषूत्पद्यते सा द्वीन्द्रियादिजातिरुच्यते । इति गाथार्थः ॥८७॥ उक्ता एकेन्द्रियादिजातिः, शरीराण्याह—

(पारमा०) **'एकेन्द्रियेषु'** पृथिव्यादिषु **'जीवः'** प्राणी **'यस्य'** एकेन्द्रियव्यपदेशहेतोः कर्मण इहोदयेन भवति, सा **एकेन्द्रियजातिः** । जातय एवं शेषा अपि । ननु इह यस्य कर्मण

---

१ विहा इत्यपि पाठः । २ "भेया इति व्याख्याकारः । ३ व्याख्याकारेण तु "जाइ" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । ४ व्याख्याकारेण तु "सेसावि" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् ।

पञ्चानां सप्तषष्टिमध्ये प्रक्षेपात् । एतेषां तु पुनः सर्वेषां [1]चतुर्विध्योक्तानां 'विपाकं' अनुभवरूपं '[2]वुच्छामि' वक्ष्यामि, 'यथानुपूर्व्याः' यथापरिपाट्या । इति गाथार्थः ॥८३॥

नारकादिगतिसंख्या [3]यतश्चैवं भवति तदाह—

(पारमा०) सर्वैरपि क्षिप्तैर्बन्धनभेदैरिति. अयं भावः—एषां मध्यादौदारिकादिबन्धनपञ्च-कस्य त्रिनवतिपक्षोपात्तस्य शेषैर्दशभिरपि क्षिप्तैस्त्र्युत्तरं शतं भवति नाम्नः प्रकृतीनामिति गम्यम्। विपाकभणनं प्रस्तौति-'एतेषां' द्विचत्वारिंशत्सप्तषष्टित्रिनवतित्र्युत्तरशतानां पुनर्विपाकं वक्ष्ये 'यथानुपूर्व्या' क्रमानतिक्रमेण । इति सपादगाथार्थः ॥८३॥

प्रतिज्ञातमाह—

नारयतिरियनरामर-गइभेया चउविहा गई होइ ।
एसा खलु ओदइए होइ हु भावे जओ आह ॥८४॥

(पू०) व्याख्या—नारकतिर्यङ्नरामरगतिभेदाद्विशेषाच्चतुर्विधा गतिर्भवति । 'एषा' प्रागुक्ता 'खलु' निश्चयेन, कस्मिन् भावे भवति ?, इति आह-औदायिके भावे भवति, न क्षायिकादौ । हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । यत आह सूत्रकार एव । इति गाथार्थः ॥८४॥

नरकगतिस्वरूपमाह—

(पारमा०) नारकतिर्यङ्नरामरगतिभेदाच्चतुर्विधा गम्यते=प्राप्यते तथाविधकर्मसचिवैरिति गतिर्भवति । एषा 'खलु' निश्चितमौदयिके भावे भवति । यत आहेतिपदमुदारोक्त्या कर्तृनिर्देश-मन्तरेणोपात्तं यत्र कुत्रचिद्विश्रान्त्यभावात्तीर्थकृतमाक्षिपति । इति गाथार्थः ॥८४॥

किमाह ? इति चेदुच्यते—

जीए उदएण जीवो, नेरइओ होइ नरयपुढवीए ।
सा भणिया नरयगई, सेसगईओ वि एमेव ॥८५॥

(पू०) व्याख्या—'यस्याः' नरकगतेः 'उदयेन' प्रादुर्भावेन 'जीवः' प्राणी नारकिको 'भवति' संपद्यते, क्व ? 'नरक[4]पृथ्व्यां' प्रतीतायाम् । सा 'भणिता' प्रतिपादिता नरकगतिः शेषगतयो-ऽपि' तिर्यङ्नरामरलक्षणा अपि 'एवमेव' उक्तन्यायेन । इति गाथार्थः ॥८५॥ उक्ता गतिः, एकेन्द्रियादिजातिमाह—

(पारमा०) यस्या गतेरुदयेन जीवो नैरयिको भवति नरकपृथिव्यां, सा भणिता नरक-गतिः शेषगतयोऽप्येवमेवेति । अयमाशयः—यस्या उदयेन तिर्यङ् भवति सा तिर्यग्गतिः ।

---

[1] °चानुपूर्व्योक्तानां वि० जे० । [2] वोच्छामि जे० । [3] यतश्चेयं म० जे० । [4] °पृथिव्यां° जे० ।

ओरालियं सरीरं उदएणं होइ जस्स कम्मस्स ।
तं ओरालियनामं, सेससरीरा वि एमेव ॥८९॥

(पू०) व्याख्या–औदारिकं शरीरं प्रतिपादितम्–'उदयेन' विपाकेन यस्य भवति कर्मणस्तदौदारिकशरीरनाम । 'शेषशरीराण्यपि' वैक्रियादिशरीराण्यप्येवमेव । यथौदारिकं शरीरमुदयेन यस्य कर्मणो भवति तदौदारिकनाम, तथा वैक्रियाशरीराद्यपि यस्य कर्मण उदयेन भवति तद्वैक्रियादिशरीरनाम । एवमेव शब्दार्थः । इति गाथार्थः ॥८९॥

उक्तानि शरीराणि, अङ्गोपाङ्गान्याह—

(पारमा०) औदारिकं शरीरं यस्य कर्मण उदयेन भवति तदौदारिकनाम । इदमुक्तं भवति–यदुदयवशादौदारिकशरीरप्रायोग्यान् पुद्गलानादाय औदारिकशरीररूपतया परिणमय्य च जीवः स्वप्रदेशैः सहान्योऽन्यानुगमरूपतया संबन्धयति तदौदारिकनाम । शेषशरीराण्यप्येवमेवेति शेषशरीरनामस्वपीयं भावना कार्या । इति गाथार्थः ॥८९॥

अङ्गोपाङ्गनामाह—

अंगोवंगविभागो, [1]उदएणं होइ जस्स कम्मस्स ।
तं अंगवंगनामं, तस्स विवागो इमो होइ ॥९०॥

(पू०) व्याख्या–अङ्गोपाङ्गविभागो विशेषः 'उदयेन' विपाकेन यस्य भवति कर्मणस्तदङ्गोपाङ्गनामोच्यते । 'तस्य' अङ्गोपाङ्गनाम्नः 'विपाकः' अनुभवः 'अयं' (एषः) वक्ष्यमाणलक्षणो भवति । इति गाथार्थः ॥९०॥

(पारमा०) अङ्गानि च उपाङ्गानि च अङ्गोपाङ्गानि, अङ्गोपाङ्गानि च अङ्गोपाङ्गानि च अङ्गोपाङ्गानि, 'स्यादावसंख्येयः' (सि० ३-१-११९) इत्येकशेषः, तेषां विभागः पृथक्त्वं यस्य कर्मण उदयेन भवति तदङ्गोपाङ्गनाम, तस्य विपाक एष पृथक्त्वभवनलक्षण उक्तरूपो भवति । इति गाथार्थः ॥९०॥

अधुनाऽङ्गानि उपाङ्गानि अङ्गोपाङ्गानि च यान्युच्यन्ते तान्याह—

सीसमुरोयरपिट्ठी, दो बाहू ऊरुआ य अट्ठंगा ।
अंगुलिमाइ उवंगाइं, अंगोवंगाइं सेसाइं ॥९१॥

---

१ "उदएणं जस्स होइ कम्मस्स" इत्यपि पाठः जे० ।

उदयादेकेन्द्रियो भवति सा एकेन्द्रियजातिरित्युक्तम्, पूर्वं तु एकद्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियजातयः क्षायोपशमिके भावे भवन्तीति तत्कथमेतत्? इति, उच्यते—कारणकारणस्यापि कारणत्वविवक्षया क्षायोपशमिकभावे जातीनां भणनम्। तथाहि—क्षायोपशमिकभावेनेन्द्रियं जन्यते, तन्निमित्ता च व्यपदेशहेतुरौदयिकी जातिरिति, तर्हि जातिनाम किमर्थम्, एकेन्द्रियाद्यावरणक्षयोपशमे एकेन्द्रियादिव्यपदेशं प्राप्स्यति? इति सत्यम्, एकेन्द्रियावरणक्षयोपशमे एकेन्द्रियोऽयमिति व्यपदेशः स्यात्, परं नियमो न स्यात्, यदुत स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशम एवैकेन्द्रियः। स्पर्शनरसनावरणक्षयोपशम एव द्वीन्द्रियः। स्पर्शनरसनघ्राणावरणक्षयोपशम एव त्रीन्द्रियः। स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरावरणक्षयोपशम एव चतुरिन्द्रियः। स्पर्शनरसघ्राणचक्षुःश्रोत्रावरणक्षयोपशमे तु पञ्चेन्द्रियोऽयम्। इति गाथार्थः ॥८७॥ शरीराण्याह—

ओरालियवेउव्विय—आहारगतेयकम्मए [1]चेव।
एवं पंच सरीरा, तेसि विवागो इमो होइ ॥८८॥

(पू०) व्याख्या—औदारिकं च वैक्रियं चाहारकं च तैजसं च कार्मणं चेति द्वन्द्वः, औदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणानि च 'एवं' उक्तनीत्या पञ्चैव शरीराणि भवन्तीति शेषः। '**तेषां च**' शरीराणां च '[2]**विपाकं**' अनुभवं '**इमं**' वक्ष्यमाणलक्षणं '**शृणुत**' आकर्णयत यूयम्। इति गाथार्थः ॥८८॥

औदारिकस्वरूपमाह—

(पारमा०) औदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणानि चैव। तत्रोदारं प्रधानं, प्राधान्यं चास्य तीर्थकरगणधरापेक्षया। ततोऽन्यस्यानुत्तरसुरशरीरस्यापि अनन्तगुणहीनत्वात्। उदारमेवौदारिकं, विनयादित्वादिकणि। विविधा क्रिया विक्रिया, तस्यां भवं वैक्रियम्। तथाहि—तदेकं भूत्वाऽनेकं भवति। अणु भूत्वा महद्भवति। खचरं भूत्वा भूमिचरं भवति। अदृश्यं भूत्वा दृश्यं भवति। अनेकं भूत्वा एकम्, इत्यादि। आह्रियते निर्वर्त्यते चतुर्दशपूर्वविदा तीर्थकरऋद्धिस्फातिदर्शनादिकप्रयोजनोत्पत्तौ सत्यां विशिष्टलब्धिवशादित्याहारकम्, तच्च वैक्रियापेक्षयाऽत्यन्तशुभम्। तेजसा तेजःपुद्गलैर्निर्वृत्तं तैजसं यदाहारपरिणमनस्य तेजोलेश्यानिर्गमनस्य च हेतुः। कर्मणो विकारः कार्मणम्। कर्मपरमाणव आत्मप्रदेशैः सह क्षीरनीरवदन्योऽन्यानुगताः सन्तः कार्मणशरीरम्। इदं च जन्तोर्गत्यन्तरसंक्रान्तौ साधकतमं करणम्। 'एवं' उक्तप्रकारेण पञ्च शरीराणि, तेषां विपाक एव वक्ष्यमाणो भवति। इति गाथार्थः ॥८८॥

---

१ व्याख्याकारेण तु "चेवं। पंचेव सरीरा तेसिं च विवागं इमं सुणह" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम्।
२ विपाकं अनुभवः अयं वक्ष्यमाणलक्षणः शृणुत जे०।

ओरालियं सरीरं, उदएणं होइ जस्स कम्मस्स ।
तं ओरालियनामं, सेससरीरा वि एमेव ॥८९॥

(पू०) व्याख्या–औदारिकं शरीरं प्रतिपादितम्–'**उदयेन**' विपाकेन यस्य भवति कर्मणस्तदौदारिकशरीरनाम । '**शेषशरीराण्यपि**' वैक्रियादिशरीराण्यप्येवमेव । यथौदारिकं शरीरमुदयेन यस्य कर्मणो भवति तदौदारिकनाम, तथा वैक्रियाशरीराद्यपि यस्य कर्मण उदयेन भवति तद्वैक्रियादिशरीरनाम । एवमेव शब्दार्थः । इति गाथार्थः ॥८९॥

उक्तानि शरीराणि, अङ्गोपाङ्गान्याह—

(पारमा०) औदारिकं शरीरं यस्य कर्मण उदयेन भवति तदौदारिकनाम । इदमुक्तं भवति–यदुदयवशादौदारिकशरीरप्रायोग्यान् पुद्गलानादाय औदारिकशरीररूपतया परिणमय्य च जीवः स्वप्रदेशैः सहान्योऽन्यानुगमरूपतया संबन्धयति तदौदारिकनाम । शेषशरीराण्यप्येवमेवेति शेषशरीरनामस्वपीयं भावना कार्या । इति गाथार्थः ॥८९॥

अङ्गोपाङ्गनामाह—

अंगोवंगविभागो, [1]उदएणं होइ जस्स कम्मस्स ।
तं अंगवंगनामं, तस्स विवागो इमो होइ ॥९०॥

(पू०) व्याख्या–अङ्गोपाङ्गविभागो विशेषः '**उदयेन**' विपाकेन यस्य भवति कर्मणस्तदङ्गोपाङ्गनामोच्यते । '**तस्य**' अङ्गोपाङ्गनाम्नः '**विपाकः**' अनुभवः '**अयं**' (एषः) वक्ष्यमाणलक्षणो भवति । इति गाथार्थः ॥९०॥

(पारमा०) अङ्गानि च उपाङ्गानि च अङ्गोपाङ्गानि, अङ्गोपाङ्गनि च अङ्गोपाङ्गानि च अङ्गोपाङ्गानि, '**स्यादावसंख्येयः**' (सि० ३-१-११९) इत्येकशेषः, तेषां विभागः पृथक्त्वं यस्य कर्मण उदयेन भवति तदङ्गोपाङ्गनाम, तस्य विपाक एष पृथक्त्वभवनलक्षण उक्तरूपो भवति । इति गाथार्थः ॥९०॥

अधुनाऽङ्गानि उपाङ्गानि अङ्गोपाङ्गानि च यान्युच्यन्ते तान्याह—

सीसमुरोयरपिट्ठी, दो बाहू ऊरुआ य अट्ठंगा ।
अंगुलिमाइ उवंगाइं, अंगोवंगाइं सेसाइं ॥९१॥

---

१ "उदएणं जस्स होइ कम्मस्स" इत्यपि पाठः जे० ।

(पू०) व्याख्या–शिरो=मस्तकमुरो=वक्षः, उदरं=पोट्टं, पृष्ठिः प्रतीता, द्वौ बाहू प्रतीतौ, 'ऊरू च' ऊरू=जङ्घे, अष्टावङ्गानि । अङ्गुलिरादिर्येषां तान्यङ्गुल्यादीन्युपाङ्गानि, अङ्गोपाङ्गानि, 'शेषाणि' उक्तव्यतिरिक्तानि । इति गाथार्थः ॥९१॥

यथा येषामङ्गोपाङ्गानि भवन्ति येषां च न भवन्ति तत्प्रदर्शयन्नाह—

(पारमा०) शीर्षं उरः उदरं पृष्ठिर्द्वौ बाहू ऊरुके च, अष्टावङ्गानि, 'अङ्गुल्यादीनि' अङ्गुलिभ्रू जिह्वादीन्युपाङ्गानि । 'शेषाणि' तत्प्रत्यवयवभूतानि अङ्गुलिपर्वरेखादीनि अङ्गोपाङ्गानि । इति गाथार्थः ॥९१॥

सम्प्रति त्रैविध्यमाह—

आइल्लाणं तिण्हं, हुंति सरीराण अंगुवंगाइं ।
णो तेयगकम्माणं, बंधणनामं इमं होइ ॥९२॥

(पू०) व्याख्या–'आद्यानां' औदारिकवैक्रियाहारकाणां 'तिण्हं' त्रयाणां 'भवन्ति' जायन्ते शरीराणामङ्गोपाङ्गानि । 'नो' नैव तैजसकार्मणयोः, तत्कारणाभावात् । बन्धननाम पुनः [1]'इदं' वक्ष्यमाणलक्षणं भवति । इति गाथार्थः ॥९२॥

उक्तमङ्गोपाङ्गनाम, बन्धननाम प्राह—

(पारमा०) 'आद्यानां' औदारिकवैक्रियाहारकाणां 'त्रयाणां' शरीरणामङ्गोपाङ्गानि भवन्ति । इदमुक्तं भवति-अङ्गोपाङ्गनाम त्रिधा, औदारिकाङ्गोपाङ्गनामवैक्रियाङ्गोपाङ्गनामआहारकाङ्गोपाङ्गनामभेदात् । तैजसकार्मणयोस्तु नाङ्गोपाङ्गनाम, जीवप्रदेशसंस्थानानुरोधित्वादिति । बन्धननाम प्रस्तौति-बन्धननाम 'इदं' वक्ष्यमाणं पञ्चदशप्रकारं भवति । इति गाथार्थः ॥९२॥

सम्प्रत्यौदारिकबन्धनचतुष्टयमाह—

ओरालियओरालिय, ओरालियतेयबंधणं बीयं ।
ओरालकम्मबंधण, तिण्हवि जोगे चउत्थं तु ॥९३॥

(पू०)व्याख्या–औदारिकौदारिकबन्धनं प्रथमम् । [2]औदारिकपुद्गलानामौदारिकपुद्गलैरेव संबन्धः प्रथमं बन्धनम् । औदारिकाणामेव पुद्गलानां तेजःपुद्गलैर्यः संबन्धो द्वितीयबन्धनमेतत् । औदारिकपुद्गलानामेव कार्मणपुद्गलैर्यत्संबन्धकरणं तत्तृतीयम्, त्रयाणामपि 'योगे' संबन्धे चतुर्थं तु बन्धनं, औदारिकतैजसकार्मणपुद्गलानां पुन[3]र्मीलने चतुर्थं बन्धनम् । इति गाथार्थः ॥९३॥

औदारिकादिबन्धनस्वरूपमाह—

(पारमा०) बध्यतेऽनेनेति बन्धनम् । औदारिकस्यौदारिकेन सह बन्धनं औदारिकौदारिकबन्धनम्, अर्थादाद्यम् । एवमौदारिकतैजसबन्धनं द्वितीयम् । औदारिककार्मणबन्धनमर्थात्तृतीयम् । त्रयाणामप्यौदारिकतैजसकार्मणानां योगे पुनश्चतुर्थम् ॥९३॥ एतदेव व्याचष्टे—

---

१ इमं जे० । २ औदारिकाणां पुद्ग० जे० । ३ र्मीलके जे० ।

ओरालपुग्गला इह, बद्धा जीवेण जे उरालत्ते ।
अन्ने [1]उ वज्झमाणा, ओरालियपुग्गला जे [2]य ॥९४॥

(पू०)व्याख्या–उदाराश्च ते पुद्गलाश्च ते उदारपुद्गलाः 'इह' अस्मिल्लोके 'बद्धाः' गृहीता 'जीवेन' प्राणिना, 'ये' पुद्गलाः क्व ? 'उदारत्वे' उदारभावे । किमुक्तं भवति-यैः पुद्गलैरुत्तरकालमौदारिकं शरीरं निर्वर्तयति जीवः ते जीवेनात्मसात्कृता 'अन्ये च बध्यमानाः' वर्त्तमानकालभाविन एष्यत्कालभाविनश्चौदारिकपुद्गला 'ये तु' य एव बद्धा बध्यमानाश्च त एवौदारिकबन्धनकारणम् । इति गाथार्थः ॥९४॥

औदारिकपुद्गलसंबन्धेन बन्धनमाह–

(पारमा०) औदारिकपुद्गला इह संसारे जीवेन ये औदारिकत्वेन बद्धाः, तथाऽन्ये पुनर्बध्यमाना औदारिकपुद्गला ये च ॥९४॥

तेसिं जं संबंधं [B] अवरोप्पपुरग्गलाणमिह कुणइ ।
तं जउसरिसं जाणसु, ओरालियबंधणं पढमं ॥९५॥

(पू०) व्याख्या–'तेषां' [3]प्राग्बद्धबध्यमानपुद्गलानां 'यत्' कर्म 'संबन्धं' घटनां 'परस्परं' अन्योऽन्यं 'पुद्गलानां' उक्तस्वरूपाणां 'इह' लोके 'करोति' निर्वर्तयति 'तत्' कर्म 'जतुसदृशं' लाक्षातुल्यम् । यथाहि–लाक्षया काष्ठलादिषु दण्डिकाद्यवयवानां पृथग्भूतानां संबन्धः=संयोगः क्रियते, एवमनेनापि कर्मणा पृथग्भूतानां बद्धबध्यमानपुद्गलानां संबन्धः=संयोगः क्रियते इति लाक्षयोपमीयते । 'जानीहि' विद्धि औदारिकबन्धनं 'प्रथमं' आद्यम् । इति गाथार्थः ॥९५॥

उक्तं प्रथमबन्धनम्, द्वितीयादीन्याह—

(पारमा) तेषां बद्धबध्यमानानां पुद्गलानां यत्कर्मान्योऽन्यं संबन्धं करोति तत् 'जतुसदृशं' लाक्षातुल्यमौदारिकबन्धनं प्रथमं जानीहि ॥९५॥

शेषत्रयातिदेशमाह—

एवोरालियतेयग, ओरालियकम्मबंधणं तह य ।
ओरालतेयकम्मग—बंधणनामंपि एमेव ॥ ९६ ॥

(पू०) व्याख्या–'एवं' उक्तप्रकारेण, मकारस्य प्राकृतत्वाल्लोपः, यथौदारिक[4]पुद्गलानां बद्धबध्यमानानां संयोजकं कर्म औदारिकबन्धनमुच्यते, तथौदारिकपुद्गलानां बद्धबध्यमानानां तैजसपुद्गलैर्यत्संबन्धकरणं तदौदारि[5]कतैजसबन्धनं द्वितीयम् । औदारिकपुद्गलानामेव बद्धबध्यमा-

---

[1] 'य" इत्यपि पाठः । [2] "उ" इत्यपि पाठः । एतत्पाठद्वयानुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम् । [B] अवरुपर "इत्यपि पाठः । [3] प्रागुक्तबध्यमान॰ जे० । [4] पुद्गलबद्धबध्यमानसंयो॰ जे० । [5] ०क तेजोबन्धनं जे० ।

नानां कार्मणपुद्गलैः यः संबन्धः, तथा च तत्तृतीयम् । उदारतेजःकर्मपुद्गलानां बन्धनं संयोजनं बन्धननाम एतदप्येवमेव. यथौदारिकपुद्गलानां द्विकसंयोगे तेजःप्रभृतिभिः संयोजकं कर्मौदारिकादिबन्धनं नाम. तथौदारिकतेजःकार्मणपुद्गलानां बद्धबध्यमानानामौदारिकतेजःकार्मणपुद्गलैर्यत्संयोजकं कर्म तद्बन्धनं नाम चतुर्थम् । इति गाथार्थः ॥९६॥

उक्तान्यौदारिकादिबन्धनानि. साम्प्रतं वैक्रियबन्धनान्याह—

(पारमा०) एवं ये औदारिकपुद्गला बद्धाः, ये च तैजसपुद्गला बध्यमानाः, तेषां यत्कर्म संबन्धं विदधाति तदौदारिकतैजसनाम । एवमौदारिकपुद्गला बद्धाः कार्मणपुद्गलाश्च बध्यमानाः, तेषां संबन्धविधायकं यत्कर्म तदौदारिककार्मणनाम । एवमौदारिकपुद्गला बद्धाः, तैजसकार्मणपुद्गलाश्च बध्यमानाः. तेषां संबन्धकारकं कर्म औदारिकतैजसकार्मणनाम । इति गाथाचतुष्टयार्थः ॥९६॥

वैक्रियबन्धनचतुष्टयमाह—

वेउव्वियवेउव्विय, वेउव्वियतेयवंधणं बीयं ।
वेउव्विकम्मवंधण. तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥९७॥

(पू०) व्याख्या—वैक्रियाणां पुद्गलानां वैक्रियैरेव संबन्धः प्रथमं बन्धनम् । वैक्रियपुद्गलानामेव तेजःपुद्गलैर्यत्संबन्धस्तद् द्वितीयं बन्धनम् । वैक्रियपुद्गलानामेव कार्मणपुद्गलैर्यत्संबन्धकं कर्म तत्तृतीयं बन्धनम् । त्रयाणामपि वैक्रियतेजःकार्मणपुद्गलानां 'योगे एव' संबन्धे एव चतुर्थम् । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥९७॥

उक्तवैक्रियबन्धनान्येव व्यक्तीकुर्वन्नाह—

वेउव्विपुग्गला इह, बद्धा जीवेण जे विउव्वित्ते ।
अन्ने य वज्झमाणा. वेउव्वियपुग्गला जे उ ॥९८॥

(पू०) व्याख्या—'वैक्रियपुद्गलाः' वैक्रियशरीरनिर्वर्तनप्रायोग्याः 'इह' लोके 'बद्धाः' गृहीताः 'जीवेन' प्राणिना 'ये' पुद्गलाः 'विउव्वित्ते' वैक्रियभावे, अन्ये च 'बध्यमानाः' आगामिकालभाविनो वैक्रियपुद्गला ये तु इति गाथार्थः ॥९८॥

वैक्रियपुद्गलबन्धनमभिधाय साम्प्रतं संबन्धद्वारेण बन्धनमाह—

तेसिं जं संबन्धं, [2]अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।
तं जउसरिसं जाणसु. वेउव्वियवंधणं पढमं ॥९९॥

---

१ नां कर्मपुद्गलैः जे० । २ अन्नुन्न इत्यपि पाठः ।

(पू०) व्याख्या–'तेषां' प्रागुक्तपुद्गलानां यत् 'संबन्धं' संयोगं 'परस्परं' अन्योऽन्यं पुद्गलानां 'इह' अस्मिन् संसारे 'करोति' निर्वर्तयति 'तत्' कर्म 'जतुसदृशं' लाक्षातुल्यं 'जानीहि' अवबुध्यस्व 'वेउव्वियबन्धणं' [वैक्रियबन्धनं] 'प्रथमं' आद्यम् । इति गाथार्थः ॥९९॥ ॥६०७॥

उक्तं वैक्रियबन्धनं, द्वितीयादीन्याह—

एवं विउव्वितेयग. वेउव्वियकम्मबंधणं तह य ।
वेउव्वितेयकम्मग—बंधणनामंपि एमेव ॥ १०० ॥

(पू०) व्याख्या–एवेति लुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात् , उक्तनीत्या । उक्तनीतिश्चेयम्–यथा वैक्रियपुद्गलानां बद्धबध्यमानानां वैक्रियैरेव यत्संबन्धकरणं तद् वैक्रियवैक्रियबन्धनमुच्यते । तथा वैक्रियपुद्गलानामुक्तस्वरूपाणां तैजसैर्यत्संबन्धकरणं तद्द्वितीयं बन्धनं वैक्रियतेजोलक्षणम् । वैक्रियपुद्गलानामेव कार्मणपुद्गलैर्यद्बन्धनं तथा च तत्तृतीयं वैक्रियकार्मणलक्षणम् । वैक्रियतेजः-कार्मणबन्धननामाप्येवमेव । यथा प्रागुक्ते द्वे बन्धने द्विकसंयोगे तथेदमपि ज्ञातव्यम् । केवलं त्रिकसंयोगे चतुर्थम् इति गाथार्थः ॥१००॥

उक्तानि वैक्रियबन्धनानि, आहारकबन्धनान्याह—

(पारमा०) चतस्रोऽपि स्फुटार्थाः ॥९७॥ ॥९८॥ ॥९९॥ ॥१००॥

आहारकबन्धनचतुष्टयमाह—

आहारगआहारग, [1]आहारगतेयबंधणं बीयं ।
आहारकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥१०१॥

(पू०) व्याख्या–आहारकपुद्गलानामाहारकपुद्गलैरेव यः संबन्धः स प्रथमं बन्धनम् । आहारकपुद्गलानामेव तैजसैर्बन्धनं संबन्धो द्वितीयम् । आहारकपुद्गलानामेव पुद्गलैर्बन्धनं संयोगस्तृतीयम् । त्रयाणामपि योगे आहारकतैजसकार्मणसंबन्धे चतुर्थम् । इति गाथार्थः १०१ ॥

आहारकबन्धनकारणमाह—

आहारपुग्गला इह, आहारत्तेण जे निबद्धा उ ।
अन्ने य बज्झमाणा, आहारगपुग्गला जे उ ॥१०२॥

(पू०) व्याख्या–'आहारपुद्गलाः' आहारकशरीरप्रायोग्याः 'इह' अस्मिन् संसारे 'आहारत्वेन ये निबद्धास्तु' आहारकभावेन ये, क्व ? प्राक् शरीरग्रहणकाले जीवेन गृहीता एव ।

---

[1] 'यद्वा जीवेण आहारतेज०" इत्यपि पाठः ।

नानां कार्मणपुद्गलैः यः संबन्धः, तथा च तत्तृतीयम् । उदारतेजःकर्मपुद्गलानां बन्धनं संयोजनं बन्धननाम एतदप्येवमेव, यथौदारिकपुद्गलानां द्विकसंयोगे तेजःप्रभृतिभिः संयोजकं कर्मौदारिकादिबन्धनं नाम, तथौदारिकतेजःकार्मणपुद्गलानां बद्धबध्यमानानामौदारिकतेजःकार्मणपुद्गलैर्यत्संयोजकं कर्म तद्बन्धनं नाम चतुर्थम् । इति गाथार्थः ॥९६॥

उक्तान्यौदारिकादिबन्धनानि, साम्प्रतं वैक्रियबन्धनान्याह—

(पारमा०) एवं ये औदारिकपुद्गला बद्धाः, ये च तैजसपुद्गला बध्यमानाः, तेषां यत्कर्म संबन्धं विदधाति तदौदारिकतैजसनाम । एवमौदारिकपुद्गला बद्धाः कार्मणपुद्गलाश्च बध्यमानाः, तेषां संबन्धविधायकं यत्कर्म तदौदारिककार्मणनाम । एवमौदारिकपुद्गला बद्धाः, तैजसकार्मणपुद्गलाश्च बध्यमानाः, तेषां संबन्धकारकं कर्म औदारिकतैजसकार्मणनाम । इति गाथाचतुष्टयार्थः ॥९६॥

वैक्रियबन्धनचतुष्टयमाह—

वेउव्वियवेउव्विय, वेउव्वियतेयबंधणं बीयं ।
वेउव्विकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥९७॥

(पू०) व्याख्या—वैक्रियाणां पुद्गलानां वैक्रियैरेव संबन्धः प्रथमं बन्धनम् । वैक्रियपुद्गलानामेव तेजःपुद्गलैर्यत्संबन्धस्तद् द्वितीयं बन्धनम् । वैक्रियपुद्गलानामेव कार्मणपुद्गलैर्यत्संबन्धकं कर्म तत्तृतीयं बन्धनम् । त्रयाणामपि वैक्रियतेजःकार्मणपुद्गलानां 'योगे एव' संबन्धे एव चतुर्थम् । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥९७॥

उक्तवैक्रियबन्धनान्येव व्यक्तीकुर्वन्नाह—

वेउव्विपुग्गला इह, बद्धा जीवेण जे विउव्वित्ते ।
अन्ने य बज्झमाणा, वेउव्वियपुग्गला जे उ ॥९८॥

(पू०) व्याख्या—'वैक्रियपुद्गलाः' वैक्रियशरीरनिर्वर्तनप्रायोग्याः 'इह' लोके 'बद्धाः' गृहीताः 'जीवेन' प्राणिना 'ये' पुद्गलाः 'विउव्वित्ते' वैक्रियभावे, अन्ये च 'बध्यमानाः' आगामिकालभाविनो वैक्रियपुद्गला ये तु इति गाथार्थः ॥९८॥

वैक्रियपुद्गलबन्धनमभिधाय साम्प्रतं संबन्धद्वारेण बन्धनमाह—

तेसिं जं संबन्धं, [2]अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।
तं जउसरिसं जाणसु, वेउव्वियबंधणं पढमं ॥९९॥

---

१ नां कर्मपुद्गलैः जे० । २ अवरुपर इत्यपि पाठः ।

(पू०) व्याख्या–'तेषां' प्रागुक्तपुद्गलानां यत् 'संबन्धं' संयोगं 'परस्परं' अन्योऽन्यं पुद्गलानां 'इह' अस्मिन् संसारे 'करोति' निर्वर्तयति 'तत्' कर्म 'जतुसदृशं' लाक्षातुल्यं 'जानीहि' अवबुध्यस्व 'वेउव्वियबन्धणं' [वैक्रियबन्धनं] 'प्रथमं' आद्यम् । इति गाथार्थः ॥९९॥ ॥६०७॥

उक्तं वैक्रियबन्धनं, द्वितीयादीन्याह—

एवं विउव्वितेयग. वेउव्वियकम्मबंधणं तह य ।
वेउव्वितेयकम्मग—बंधणनामंपि एमेव ॥ १०० ॥

(पू०) व्याख्या–एवेति लुप्तानुस्वारं पदं प्राकृतत्वात्, उक्तनीत्या। उक्तनीतिश्चेयम्–यथा वैक्रियपुद्गलानां बद्धबध्यमानानां वैक्रियैरेव यत्संबन्धकरणं तद् वैक्रियवैक्रियबन्धनमुच्यते । तथा वैक्रियपुद्गलानामुक्तस्वरूपाणां तैजसैर्यत्संबन्धकरणं तद्द्वितीयं बन्धनं वैक्रियतेजोलक्षणम्। वैक्रियपुद्गलानामेव कार्मणपुद्गलैर्यद्बन्धनं तथा च तत्तृतीयं वैक्रियकार्मणलक्षणम् । वैक्रियतेजः-कार्मणबन्धननामाप्येवमेव । यथा प्रागुक्ते द्वे बन्धने द्विकसंयोगे तथेदमपि ज्ञातव्यम् । केवलं त्रिकसंयोगे चतुर्थम् इति गाथार्थः ॥१००॥

उक्तानि वैक्रियबन्धनानि, आहारकबन्धनान्याह—

(पारमा०) चतस्रोऽपि स्फुटार्थाः ॥९७॥ ॥९८॥ ॥९९॥ ॥१००॥

आहारकबन्धनचतुष्टयमाह—

आहारगआहारग. [1]आहारगतेयबंधणं बीयं ।
आहारकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥१०१॥

(पू०) व्याख्या–आहारकपुद्गलानामाहारकपुद्गलैरेव यः संबन्धः स प्रथमं बन्धनम् । आहारकपुद्गलानामेव तैजसैर्बन्धनं संबन्धो द्वितीयम् । आहारकपुद्गलानामेव पुद्गलैर्बन्धनं संयोगस्तृतीयम् । त्रयाणामपि योगे आहारकतैजसकार्मणसंबन्धे चतुर्थम् । इति गाथार्थः १०१ ॥

आहारकबन्धनकारणमाह—

आहारपुग्गला इह, आहारत्तेण जे निबद्धा उ ।
अन्ने य बज्झमाणा, आहारगपुग्गला जे उ ॥१०२॥

(पू०) व्याख्या–'आहारपुद्गलाः' आहारकशरीरप्रायोग्याः 'इह' अस्मिन् संसारे 'आहारत्वेन ये निबद्धास्तु' आहारकभावेन ये, क्व ? प्राक् शरीरग्रहणकाले जीवेन गृहीता एव ।

१ 'वद्धा जीवेण आहारतेज०' इत्यपि पाठः ।

'अन्ये च' उत्तरकालभाविनो 'बध्यमानाः' गृह्यमाणा एवाहारकपुद्गलाः, 'ये तु' य एवा-ऽऽहारकशरीरनिर्वर्तनक्षमाः । इति गाथार्थः ॥१०२॥

आहारकपुद्गलसंबन्धद्वारेण बन्धनमाह—

तेसिं जं संबंधं, 'अवरोप्पर पुग्गलाणमिह कुणइ ।
तं जउसरिसं जाणसु, आहारगबंधणं पढमं ॥१०३॥

(पू०) व्याख्या– तेषां' उक्तस्वरूपाहारकपुद्गलानां 'यत्' कर्म संबन्ध'योग्यं 'परस्परं' अन्योऽन्यं बद्धबध्यमानानां 'इह' अस्मिल्लोके 'करोति' निर्वर्तयति 'तत्' 'जतुसदृशं' लाक्षातुल्यमुक्तन्यायेन 'जानीहि' विद्धि आहारकबन्धनं 'प्रथमं' आद्यम् । इति गाथार्थः ॥१०३॥

उक्तमाहारकबन्धनं प्रथमम्, द्वितीयादीन्याह—

एवाहारगतेयग, आहारगकम्मबंधणं तह य ।
आहारतेयकम्मग—बंधणनामंपि एमेव ॥१०४॥

(पू०) व्याख्या—एवशब्दव्याख्या प्राग्वत् । यथाऽऽहारकपुद्गलानामाहारकपुद्गलैरेवाहारका-हारकबन्धनम्, तथाऽऽहारकतेजःपुद्गलैरेवाहारकतेजोबन्धनं द्रष्टव्यं द्वितीयम् । तथाऽऽहारक-कार्मणबन्धनं च तृतीयम् । आहारक³तैजसकार्मणबन्धननामा-ऽप्येवमेव । यथा-ऽऽहारक⁴बन्धने व्याख्यातं तथा-ऽत्रा-ऽपि द्रष्टव्यम् । इति गाथार्थः ॥१०४॥

उक्तान्याहारकबन्धनानि, तेजोबन्धनान्याह—

(पारमा०) पाठसिद्धा एव ॥१०१॥ १०२॥ १०३॥ १०४॥

सम्प्रति तैजसतैजस-तैजसकार्मण-कार्मणकार्मणबन्धनान्याह—

एवं तेयगतेयग, तेयग ⁵कम्मे य बंधणं तह य ।
⁶कम्मइगंकम्मइगं, बंधणनामं पि ⁷पनरसमं ॥१०५॥

(पू०) व्याख्या—तैजसपुद्गलानां बद्धानां प्राग्बध्यमानानामेष्यत्काले तेजःपुद्गलैरेव यः संबन्धः क्रियते तत्तैजसतैजोबन्धनं प्रथमम् । तेजःपुद्गलानां बद्धबध्यमानानां कार्मणपुद्गलैश्च बन्धनं संबन्धस्तथा च तद्द्वितीयं तेजःकार्मणसंज्ञकं बन्धनम् । कार्मणपुद्गलानामतीतकालबद्धानां भवि-ष्यत्काले च बध्यमानानां कार्मणपुद्गलैरेव यः संबन्धस्तत्कार्मणबन्धनं पञ्च⁸दशम् । औदारिका-

१ "अवरुप्पर पोग्गलाण" इत्यपि पाठः । २ योगं जे० । ३ ०कतेजःकार्मण जे० । ४ बन्धनव्याख्यानं तथाऽत्रापि जे० । ५ "कम्मयगबंधणं" इत्यपि पाठः । ६ "कम्मइयंकम्मइयं" इत्यपि पाठः । ७ "तु पन्नरसं" इत्यपि पाठः । ८ ० दशमम् जे० ।

दिद्विकादिसंयोगे चत्वारि, वैक्रियसंयोगे चत्वारि, तथाऽऽहारकसंयोगे चत्वारि, तैजससंयोगे द्वे, कार्मणसंयोगे चैकम्, सर्वाण्यपि मिलितानि पञ्चदश। इति गाथार्थः ॥१०५॥

उक्तानि बन्धनानि, तदुक्तेर्बन्धननामा [1]प्युक्तमेव, साम्प्रतं संघातनामाह—

(पारमा०) तैजसपुद्गलानां बद्धानां बध्यमानानां च तैजसपुद्गलैः सह संबन्धकारि तैजसतैजसबन्धनम्। तैजसपुद्गलानां बद्धानां बध्यमानकार्मणपुद्गलैः सह संबन्धकारि तैजसकार्मणबन्धनम्। कार्मणपुद्गलानां बद्धानां बध्यमानानां च संबन्धहेतुः कार्मणकार्मणबन्धनं पञ्चदशमिति। एवं चत्वार्यौदारिकबन्धनानि, चत्वारि वैक्रियबन्धनानि, चत्वार्याहारकबन्धनानि, इत्येतानि द्वादश, तैजसतैजस-तैजसकार्मण-कार्मणकार्मणबन्धनत्रयसमन्वितानि पञ्चदशेति। ननु यत्र बन्धनपञ्चकमेवोपादीयते तत्र कथमेतावतां ग्रहः?, उच्यते—तदेवमवगन्तव्यम्, गृहीतगृह्यमाणानामौदारिकपुद्गलानां तैजसकार्मणपुद्गलैश्च सह संबन्धकारि औदारिकबन्धनम्। एवं वैक्रियपुद्गलानां बद्धबध्यमानानां तैजसकार्मणपुद्गलैश्च सह संबन्धकारि वैक्रियबन्धनम्। एवमाहारकपुद्गलानां बद्धबध्यमानानां तैजसकार्मणपुद्गलैश्च सह संबन्धाधायकमाहारकबन्धनम्। एवं त्रिभिर्द्वादश संगृहीतानि। तथा तैजसपुद्गलानां बद्धबध्यमानानां कार्मणपुद्गलैश्च। सह संबन्धहेतुस्तैजसबन्धनम्। एवमनेन चतुर्थेन द्वयसंग्रहः। यदुक्तं शतकबृहच्चूर्णौ बन्धनपञ्चकमणनप्रस्तावे—"**गहियघिप्पमाणाणं पुग्गलाणं अन्नसरीरपुग्गलेहिं वा समं बंधो जस्स उदएणं भवइ तं बंधणनामं**" इति। पञ्चमं तु कार्मणबन्धनमिति बन्धनपञ्चकपक्षेऽपि पञ्चदशसंग्रहः। इति गाथार्थः ॥१०५॥

उक्तं सप्रभेदं बन्धननाम, अधुना संघातनामाह—

संघायनाम[2]महुणा, संघायइ जेण तेण संघायं।
ओरालियसंघायं, वेउव्विय जाव [3]कम्मइगं ॥१०६॥

(पू०) व्याख्या—'**संघायनामं**' इत्यनुस्वारोऽलाक्षणिकः प्राकृतत्वात्, '**अधुना**' साम्प्रतमुच्यते-'**संघातयति**' इति मीलयति वियुतानि द्रव्याण्येकीकरोतीत्यर्थः, '**येन**' कारणेन '**तेन**' कारणेन संघातनाम भण्यते। तत्रौदारिकस्य संघात औदारिकसंघातः तं, जानीहीति क्रिया सर्वत्र। वैक्रियसंघातं, आहारकसंघातं, तैजससंघातं यावत्कार्मणसंघातम्, इति पञ्च संघातनामानि। इति गाथार्थः ॥१०६॥

औदारिकादिसंघातस्वरूपमाह—

---

१. प्युक्तम् सा० जे०। २ "अहुणा" इत्यपि पाठः ३ "कम्मइयं" इत्यपि पाठः।

(पारमा०) संघातनाम 'अधुना' बन्धननामानन्तरं भण्यत इत्यध्याहारः। व्युत्पत्तिमाह- 'संघातयति' पिण्डीकरोति औदारिकादिपुद्गलान् येन तेन हेतुना संघातमुच्यते। तच्च पञ्च-धेत्याह-औदारिकसंघातं, वैक्रियसंघातं, यत्वल्करणादाहारकसंघातं, तैजससंघातं, कार्मणसंघा-तम्। इति गाथार्थः ॥१०६॥ एतद्व्याचष्टे—

ओरालाई जे देहपुग्गला [1]होंति जम्मि ठाणम्मि।
ते [2]ठंति तम्मि ठाणे संघायण[3]कम्मणो उदए ॥१०७॥

(पू०) व्याख्या-औदारिकमादिर्येषां ते औदारिकादयः, आदिशब्दाद्वैक्रियाहारकतैजसकार्म-णपुद्गलपरिग्रहः। ये देहे पुद्गला देहपुद्गलाः 'भवन्ति' जायन्ते यस्मिन् स्थाने ते औदा-रिकादयः पुद्गलास्तस्मिन्नेव स्थाने भवन्ति नापरत्र, संघातनकर्मणः 'उदये' प्रादुर्भावे। अयमत्र भावार्थः-ये औदारिकादिषु शरीरेषु शिरःप्रभृत्यवयवानां निर्वर्तका औदारिकादिपुद्गला ये यस्य स्थानस्य योग्यास्ते तस्मिन्नेव शिरःप्रभृतिस्थानके भवन्ति। न विपर्ययेण यस्य कर्मणः प्रभा-वात्तत्संघातननामकर्मोच्यते। इति गाथार्थः ॥१०७॥

उक्तं संघातनाम, अधुना संहननान्याह—

(पारमा०) औदारिकादयो ये देहपुद्गला यस्मिन् स्थाने भवन्ति ते संघातकर्मण उदयेन तस्मिन् स्थाने तिष्ठन्ति। अयमभिप्रायः-ये औदारिकपुद्गला यत्र योग्यास्तान् तत्र संघातयति यत्कर्म निजोदयात्। यथा शिरोयोग्यान् शिरसि, पादयोग्यान् पादयोः शेषाङ्गयोग्यान् शेषाङ्गेषु, तदौदारिकसंघातनाम। एवं वैक्रियाहारकतैजसकार्मणेष्वपि वाच्यम्, इति गाथार्थः ॥१०७॥

सम्प्रत्यस्थिरचनात्मकस्य संहननस्यावसरः, तच्चौदारिकशरीर एव नान्येषु, तेषामस्थिर-हितत्वात्, तच्च षोढेत्याह—

[4]वज्जरिसहनारायं रिसहं नारायमद्धनारायं।
कीलिय तह छेवट्ठं, तेसि सरूवं इमं होइ ॥१०८॥

(पू०) व्याख्या-वज्रऋषभनाराचं प्रथममाद्यं, द्वितीयं च ऋषभनाराचं, नाराचं तृतीयं, अर्द्ध-नाराचं चतुर्थं, कीलिका पञ्चमं, तथा षष्ठं पुनश्छेवट्ठं (सेवार्त्त) संहननं भवतीति ज्ञातव्यम्। इति गाथार्थः ॥१०८॥

ऋषभादीन् व्याख्यानयन्नाह—

(पारमा०) वज्रऋषभनाराचं ऋषभं इत्युक्ते ऋषभनाराचमिति द्रष्टव्यम्। नाराचं, अर्द्धनाराचं, कीलिका, तथा सेवार्तम्। तेषां स्वरूपमिदं भवति ॥१०८॥

---

१ "हुंति" इत्यपि पाठः। २ "हुंति" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारैर्व्याख्यातम्। ३ "कम्मुणो" इत्यपि पाठः। ४ "वज्जरिसहनारायं पढमं बीअं च रिसहनारायं। नारायमद्धनारायकीलिया तह य छेवट्ठं ॥१०८॥ इत्यपि पाठः, एतत्पाठानुसारेण व्याख्याकारैर्व्याख्यातम्।

तथाहि—

रिसहो [1]य होइ पट्टो, वज्जं पुण कीलिया मुणेयव्वा ।
उभओ [2]मक्कडबंधं, नारायं तं वियाणाहि ॥१०९॥

(पू०) व्याख्या—ऋषभस्त्वागमभाषया दीर्घोऽल्पबाहल्यः, पृथुत्वयुक्तः कपाटादिषु लोहपट्टकाकारः पट्टोऽभिधीयते । वज्रं पुनः कीलिका मन्तव्या, सा च प्रतीता । उभयतो द्वयोरपि पार्श्वयोर्मर्कटबन्धः प्रतीतः, स विद्यते यस्मिन् संहनने तन्नाराचसंहननं 'विजानीहि' अवबुध्यस्व । अयमत्र भावार्थः—यथा हस्तयोरुभयतो मर्कटबन्धेन कलाचीग्रहणे मध्यदेशे लोहपट्टकेन वेष्टयित्वा पट्टबन्धनमध्यदेशे वेधं दत्त्वा कीलिका प्रक्षिप्यते, तस्यां प्रक्षिप्तायां यादृशः सञ्चयो भवत्यचलः कालान्तरस्थायी बलवांस्तथाऽस्थिसञ्चयो यस्मिन् संहनने सति भवति तत्संहननं वज्रऋषभनाराचं भवति । इति गाथार्थः ॥१०९॥

संहननोदयद्वारेण वज्रऋषभनाराचसंज्ञामाह—

(पारमा०) —ऋषभः परिवेष्टनपट्टो भवति । वज्रं कीलिका ज्ञातव्या । उभयतो मर्कटबन्धं नाराचं तद्विजानीहि । अयमर्थः—द्वयोरस्थ्नोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थ्ना परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयभेदि कीलिकापरपर्यायं वज्रनामकमस्थि यत्र भवति तद्वज्रर्षभनाराचम् । यत्पुनः कीलिकारहितं तद् ऋषभनाराचम् । यत्र पुनः कीलिकया ऋषभसंज्ञपट्टेन च रहितो मर्कटबन्धो भवति तन्नाराचम् । यत्र त्वेकपार्श्वे मर्कटबन्धो द्वितीयपार्श्वे च कीलिका भवति तदर्द्धनाराचम् । यत्र त्वस्थीनि कीलिकामात्रबद्धान्येव भवन्ति तत्कीलिका । यत्र तु परस्परं पर्यन्तसंस्पर्शलक्षणां सेवामाश्रितान्यागतान्यस्थीनि भवन्ति स्नेहाभ्यवहारतैलाभ्यङ्गविश्रामणादिरूपां च परिशीलनां नित्यमपेक्षते तत्सेवार्तम् । इति गाथाद्वयभावार्थः ॥१०९॥

एतद्विपाकदर्शनायाह—

जस्सुदएणं जीवे, संघयणं होइ वज्जरिसहं तु ।
तं वज्जरिसहनामं, सेसावि हु एव संघयणा ॥११०॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' अनुभवेन 'जीवे' प्राणिनि 'संहननं' उक्तलक्षणं 'भवति' जायते वज्रऋषभनाराचं' उक्तस्वरूपं, 'तुः' एवकारार्थः, स च व्यवहितः प्राक्संबध्यत उदयेनैवेत्यत्र, तद्वज्रऋषभनाराचनामोच्यते । शेषाण्यपि न केवलमिदं प्रागुक्तम्, 'हुः' पादपूरणे, ऋषभनाराचादीन्यपि इत्यपिशब्दार्थः । 'एवं' उक्तनीत्या, लुप्तानुस्वारः

१ "अ" इत्यपि पाठः । २ "मक्कडबंधो" इत्यपि पाठस्तत्पाठानुसर्त्तारो व्याख्याकाराः ॥

प्राकृतत्वात्, 'संघयणा' [संहननानि] । उक्तनीतिश्चेयम्—वज्रऋषभनाराचसंहननं यस्य कर्मण [1]उदयेन प्रादुर्भवति तद्वज्रऋषभनाराचसंहननं यथोच्यते, तथा ऋषभनाराचनाराचार्द्ध-नाराचकीलिकाछेवट्ठानि यस्य कर्मण उदये भवन्ति तान्यपि तथा ऋषभनाराचनाराचार्द्धनाराचकीलिकाछेवट्ठनामान्यन्वर्थत उच्यन्ते इत्येवशब्दार्थः । इति गाथार्थः ॥११०॥

उक्तानि संहननानि, अधुना संस्थानान्याह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयेन 'जीवे' इति जीवस्य संहननं भवति, 'वज्रर्षभं तु' इति सूचनात् वज्रर्षभनाराचं तद् वज्रर्षभनाराचनाम । शेषाण्यपि संहननानि एवमेव । तुशब्द-स्यैवकारार्थस्यात्र योगात् । इति गाथार्थः ॥११०॥

संस्थाननामाह—

समचउरंसे नग्गोहमंडले साइवामणे खुज्जे ।
हुंडेवि य [2]संठाणे, तेसि सरूवं इमं होइ ॥१११॥
तुल्लं वित्थडबहुलं, उस्सेहबहुं च मडह[3]कोट्ठं च ।
हिट्ठिल्लकायमडहं, सव्वत्थासंठियं हुंडं ॥११२॥

(पू०) व्याख्या—समचतुरस्रं यस्मिन् तत्समचतुरस्रं संस्थानमिति सर्वत्र संबन्धनीयम्, मन्तव्यमिति क्रिया । न्यग्रोधस्येव मण्डलं यस्मिन् तन्न्यग्रोधमण्डलम् । सातिः शक्तिः । तथा वामनकुब्जे प्रतीते । हुण्डमपि च संस्थानं मन्तव्यमिति । तेषां च स्वरूपं 'इमं' वक्ष्यमाणलक्षणम् ॥१११॥

लक्षणमाह—

तुल्यं समपादाङ्गुष्ठाग्रादारभ्य केशान्तं यावत्स्थितमूर्द्ध्वं यत्सूत्रं तावन्मात्रमेव तिर्यक्प्रसारितयोर्भुजयोः प्रमाणसूत्रमेवंभूतं तुल्यं समचतुरस्रसंस्थानमुच्यते । [4]विस्तारो बहुर्यस्मिन् तद्विस्तरबहु, प्राकृतत्वाद्बह्वर्थे लच् । यस्मिन् विस्तारो वटस्येव बहु दैर्घ्ये पुनः स्तोकं [5]तद्विस्तरबहुलं न्यग्रोधमण्डलं संस्थानमुच्यते द्वितीयम् । उत्सेधो बहुर्यस्मिन् तदुत्सेधबहु उच्चैस्त्वयुक्तं च । सातिसंस्थानेनोपमीयते सातिः शक्तिरुच्यते, शक्तिवद्यस्मिन् पुरुषस्य शिरोऽधोबाहुविस्तरस्तोकस्तत्सातिसंस्थानं तृतीयम् । मडहं कोष्ठं यस्मिन् तन्मडहकोष्ठम्, कोष्ठमुदरं तच्च वामनसंस्थानं चतुर्थम् । हेठिल्लकायोऽधःकायः स मडहो यत्र तद् हेठिल्लकायमडहं [6]कुब्जसंस्थानं पञ्चमम् । सर्वत्र शिरःप्रभृत्यङ्गावयवेषु न विद्यते संस्थितिर्यस्मिन्नो[7]लङ्ककव[8]त्सर्वावयवन्यूनं तद् हुण्डसंस्थानं षष्ठम् । इति गाथार्थः ॥११२॥

---

१ उदये भवति त० जे० । २ "संठाणा जीवाणं छ मुणेयव्वा ॥१११॥" इत्यपि पाठः ३ "कुट्ठं" इत्यपि पाठः । ४ विस्तरो जे० । ५ तद्विस्तार० जे० । ६ कुब्जं सं० । ७ लोलल्लुकवत् जे० टिप्पणी । तत्सर्वावयवानां वद् हुण्डमंसं संस्थानं प० जे० ।

कर्मण उदयद्वारेण समचतुरस्रस्वरूपमाह—

(पारमा) तत्र समास्तुल्या यथोक्तप्रमाणाश्चतस्रोऽस्रयश्चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवा यस्य तत्समचतुरस्रम्। समासान्तोऽत्प्रत्ययः। न्यग्रोधवत्परिमण्डलं विस्तरभृरि न्यग्रोधपरिमण्डलम्। यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णावयवोऽधस्तु हीनः, तथा यत्संस्थानं नाभेरुपरि संपूर्णप्रमाणं, अधस्तु न तथा तन्न्यग्रोधपरिमण्डलम्। यत्र नाभेरधः सर्वावयवाः समचतुरस्रलक्षणाऽविसंवादिनः, उपरि तु न तदनुरूपास्तत् [1]सादि उत्सेधवहुसंस्थानं, [2]सादीति शाल्मलीतरुमाचक्षते प्रावचनिकाः। तस्य हि स्कन्धो द्राधीयान्, उपरि तु न तदनुरूपा विशालतेति। तथा यत्र शिरो ग्रीवं हस्तपादादिकं च यथोक्तप्रमाणोपपन्नं कोष्ठं उरउदारादि मडहं लघु तद्वामनसंस्थानम्, कुब्जमित्यन्ये। यत्र तु उरउदरादि यथोक्तप्रमाणोपेतं, अधस्तनकायस्तु पादादिः, उपलक्षणत्वात् शिरोग्रीवादिकं च मडहं लघु भवति तत्कुब्जम्, वामनमित्यन्ये। यत्र सर्वेऽप्यवयवा असंस्थिता यथोक्तप्रमाणहीनास्तत् हुण्डसंस्थानम्। तेषां स्वरूपमिदं तुन्यादिकं भवति। इति गाथार्थः ॥१११॥ ११२॥

एतदुदयमादर्शयति—

जस्सुदएणं जीवे, चउरंसं नाम होइ संठाणं।
तं चउरंसं नामं सेसावि हु एव संठाणा ॥११३॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' अनुभवेन 'जीवे' जीवस्य 'चतुरस्रं' ऊर्द्ध्वाधोवस्थितसूत्रसमं [3]तिर्यक्प्रमाणं चतुरस्रमुच्यते संस्थानं 'भवति' जायते 'नाम' संज्ञा स्फुटं वा 'संस्थानम्' आकारविशेषस्तच्चतुरस्रं नाम। 'शेषाण्यपि' न्यग्रोधमण्डलादीन्यप्येवमेव संस्थानानि द्रष्टव्यानि। 'अपि' समुच्चये, 'हुः' पादपूरणे, समचतुरस्रसंस्थानोक्तन्यायेनेति भावः। इति गाथार्थः ॥११३॥

उक्तं संस्थाननाम, वर्णनामाह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयाच्चतुरस्रं नाम संस्थानं भवति जीवस्य तच्चतुरस्रनाम समचतुरस्रसंस्थाननाम। शेषाण्यपि संस्थानान्येवमेव। इति गाथार्थः ॥११३॥

उक्तं संस्थानम्, सम्प्रति वर्णनाम, तच्च पञ्चधा, तदुदयाच्च यद्भवति तदाह—

[4]किण्हानीलालोहिय, हालिद्दा तह य हुंति [5]सुक्किलया।
जियदेहाणं वण्णा उदएणं वन्नन्नामस्स ॥११४॥

१-२ साचि इत्यपि पाठः। ३ तिर्यक् समानं चतु० जे०। ४ व्याख्याकारेण व्यस्ततया व्याख्यातम्, एवमग्रेऽपि॥ ५ "सुक्का य" इति वृत्त्योः॥

प्राकृतत्वात्, 'संघयणा' [संहननानि] । उक्तनीतिश्चेयम्—वज्रऋषभनाराचसंहननं यस्य कर्मण [1]उदयेन प्रादुर्भवति तद्वज्रऋषभनाराचसंहननं यथोच्यते, तथा ऋषभनाराचनाराचार्द्धनाराचकीलिकाछेवट्ठानि यस्य कर्मण उदये भवन्ति तान्यपि तथा ऋषभनाराचनाराचार्द्धनाराचकीलिकाछेवट्ठनामान्यन्वर्थत उच्यन्ते इत्येवशब्दार्थः । इति गाथार्थः ॥११०॥

उक्तानि संहननानि, अधुना संस्थानान्याह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयेन 'जीवे' इति जीवस्य संहननं भवति, 'वज्रर्षभं तु' इति सूचनात् वज्रर्षभनाराचं तद् वज्रर्षभनाराचनाम । शेषाण्यपि संहननानि एवमेव । तुशब्दस्यैवकारार्थस्यात्र योगात् । इति गाथार्थः ॥११०॥

संस्थाननामाह—

समचउरंसे नग्गोहमंडले साइवामणे खुज्जे ।
हुंडेवि य [2]संठाणे, तेसि सरूवं इमं होइ ॥१११॥
तुल्लं वित्थडबहुलं, उस्सेहबहुं च मडह[3]कोट्ठं च ।
हिट्ठिल्लकायमडहं, सव्वत्थासंठियं हुंडं ॥११२॥

(पू०) व्याख्या—समचतुरस्रं यस्मिन् तत्समचतुरस्रं संस्थानमिति सर्वत्र संबन्धनीयम्, मन्तव्यमिति क्रिया । न्यग्रोधस्येव मण्डलं यस्मिन् तन्न्यग्रोधमण्डलम् । सातिः शक्तिः । तथा वामनकुब्जे प्रतीते । हुण्डमपि च संस्थानं मन्तव्यमिति । तेषां च स्वरूपं 'इमं' वक्ष्यमाणलक्षणम् ॥१११॥

लक्षणमाह—

तुल्यं समपादाङ्गुष्ठाग्रादारभ्य केशान्तं यावत्स्थितमूर्द्ध्वं यत्सूत्रं तावन्मात्रमेव तिर्यक्प्रसारितयोर्भुजयोः प्रमाणसूत्रमेवंभूतं तुल्यं समचतुरस्रसंस्थानमुच्यते । [4]विस्तारो बहुर्यस्मिन् तद्विस्तरबहु, प्राकृतत्वाद्बह्वर्थे लच् । यस्मिन् विस्तारो वटस्येव बहु दैर्घ्ये पुनः स्तोकं [5]तद्विस्तरबहुलं न्यग्रोधमण्डलं संस्थानमुच्यते द्वितीयम् । उत्सेधो बहुर्यस्मिन् तदुत्सेधबहु उच्चैस्त्वयुक्तं च । सातिसंस्थानेनोपमीयते सातिः शक्तिरुच्यते, शक्तिवद्यस्मिन् पुरुषस्य शिरोऽधोबाहुविस्तरस्तोकस्तत्सातिसंस्थानं तृतीयम् । मडहं कोष्ठं यस्मिन् तन्मडहकोष्ठम्, कोष्ठमुदरं तच्च वामनसंस्थानं चतुर्थम् । हेठिल्लकायोऽधःकायः स मडहो यत्र तद् हेठिल्लकायमडहं [6]कुब्जसंस्थानं पञ्चमम् । सर्वत्र शिरःप्रभृत्यङ्गावयवेषु न विद्यते संस्थितिर्यस्मिन्नो[7]लक्कव[?]त्सर्वावयवन्यूनं तद् हुण्डसंस्थानं षष्ठम् । इति गाथार्थः ॥११२॥

१ उदये भवति त० जे० । २ "संठाणा जीवाणं छ कुणेयव्वा ॥१११॥" इत्यपि पाठः ३ "कुट्ठं" इत्यपि पाठः । ४ विस्तरो जे० । ५ तद्विस्तार० जे० । ६ कुब्जं सं० । ७ लोटलक्कुकवत् जे० टिप्पणी । तत्सर्वावयवानां तद् हुण्डसंज्ञं संस्थानं ष० जे० ।

कर्मण उदयद्वारेण समचतुरस्रस्वरूपमाह—

(पारमा) तत्र समास्तुल्या यथोक्तप्रमाणाश्चतस्रोऽस्रयश्चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवा यस्य तत्समचतुरस्रम् । समासान्तोऽत्प्रत्ययः । न्यग्रोधवत्परिमण्डलं विस्तरभूरि न्यग्रोधपरिमण्डलम् । यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णावयवोऽधस्तु हीनः, तथा यत्संस्थानं नाभेरुपरि संपूर्णप्रमाणं, अधस्तु न तथा तन्न्यग्रोधपरिमण्डलम् । यत्र नाभेरधः सर्वावयवाः समचतुरस्रलक्षणाऽविसंवादिनः, उपरि तु न तदनुरूपास्तत् [1]सादि उत्सेधबहुसंस्थानं, [2]सादीति शाल्मलीतरुमाचक्षते प्रावचनिकाः । तस्य हि स्कन्धो द्राघीयान् , उपरि तु न तदनुरूपा विशालतेति । तथा यत्र शिरो ग्रीवं हस्तपादादिकं च यथोक्तप्रमाणोपपन्नं कोष्ठं उरउदारादि मडहं लघु तद्वामनसंस्थानम् , कुब्जमित्यन्ये । यत्र तु उरउदरादि यथोक्तप्रमाणोपेतं, अधस्तनकायस्तु पादादिः, उपलक्षणत्वात् शिरोग्रीवादिकं च मडहं लघु भवति तत्कुब्जम् , वामनमित्यन्ये । यत्र सर्वेऽप्यवयवा असंस्थिता यथोक्तप्रमाणहीनास्तत् हुण्डसंस्थानम् । तेषां स्वरूपमिदं तुल्यादिकं भवति । इति गाथार्थः ॥१११॥ ११२॥

एतदुदयमादर्शयति—

जस्सुदएणं जीवे, चउरंसं नाम होइ संठाणं ।
तं चउरंसं नामं सेसावि हु एव संठाणा ॥११३॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' अनुभवेन 'जीवे' जीवस्य 'चतुरस्रं' ऊर्द्ध्वावस्थितस्त्रसमं [3]तिर्यक्प्रमाणं चतुरस्रमुच्यते संस्थानं 'भवति' जायते 'नाम' संज्ञा स्फुटं वा 'संस्थानम्' आकारविशेषस्तच्चतुरस्रं नाम । 'शेषाण्यपि' न्यग्रोधमण्डलादीन्यप्येवमेव संस्थानानि द्रष्टव्यानि । 'अपि' समुच्चये, 'हुः' पादपूरणे, समचतुरस्रसंस्थानोक्तन्यायेनेति भावः । इति गाथार्थः ॥११३॥

उक्तं संस्थाननाम, वर्णनामाह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयाच्चतुरस्रं नाम संस्थानं भवति जीवस्य तच्चतुरस्रनाम समचतुरस्रसंस्थाननाम । शेषाण्यपि संस्थानान्येवमेव । इति गाथार्थः ॥११३॥

उक्तं संस्थानम् , सम्प्रति वर्णनाम, तच्च पञ्चधा, तदुदयाच्च यद्भवति तदाह—

[4]किण्हानीलालोहिय, हालिद्दा तह य हुंति [5]सुक्किलया ।
जियदेहाणं वण्णा उदएणं वन्ननामस्स ॥११४॥

१-२ साचि इत्यपि पाठः । ३ तिर्यक् समानं चतु० जे० । ४ व्याख्याकारेण व्यस्ततया व्याख्यातम् , गाथायां ऽपि ॥ ५ "सुक्का य" इति वृत्त्योः ॥

(पू०) व्याख्या—कृष्णा नीला लोहिता हारिद्रा तथा भवन्ति शुक्लाश्च **जीवदेहानां** प्राणिशरीराणां '**वर्णाः**' प्रतीताः '**उदयेन**' अनुभवेन '**वर्णनाम्नः**' कर्मणः । इति गाथार्थः ॥११४॥

उक्तं वर्णनाम, गन्धनामाह—

(पारमा०) वर्ण्यतेऽलंक्रियते शरीरमनेनेति वर्णः । तत्र कृष्णनीललोहितहारिद्रशुक्ला जीवदेहानां वर्णा वर्णनाम्न उदयेन भवन्ति । इदमुक्तं भवति—कृष्णवर्णनाम्न उदयात्कृष्णदेहो भवतीति । नीलवर्णनाम्न उदयान्नीलदेह इत्यादि । इति गाथार्थः ॥११४॥ गन्धनाम्नो द्विविधस्यापि विपाकमाह—

गंधेण सुरभिगंधं, अहवा गंधेण दुरभिगंधं तु ।
होइ जियाणं देहं उदएणं गंधनामस्स ॥११५॥

(पू०) व्याख्या—घ्राणेन्द्रियास्वाद्येन '**सुरभिगन्ध**' शोभनगन्धम् । अथवा गन्धेन '**दुरभिगन्धं तु**' दुष्टगन्धमेव '**भवति**' जायते '**जीवानां**' प्राणिनां '**देहः**' शरीरं '**उदयेन**' अनुभवेन '**गन्धनाम्नः**' कर्मणः । इति गाथार्थः ॥११५॥

उक्तं गन्धनाम, रसनाम प्राह—

(पारमा०) गन्ध्यते आघ्रायते इति गन्धः, तन्निबन्धनं नाम गन्धनाम । सुष्ठु रमते सुरभिः, ततश्च गन्धेन सुरभिगन्धम् । अथवा गन्धेन दुरभिगन्धं तु दुष्टं अभि आभिमुख्यं यत्र एवंभूतं जीवानां देहं, सुरभिदुरभिभेदभिन्नस्य गन्धनाम्न उदयेन भवति इति गाथार्थः ॥११५॥

रसनाम प्रतिपादयति—

[3]तित्तकडुया कसाया, अंबिलमहुरा[4] रसावि पंच भवे ।
तेवि हु जियदेहाणं, रसनामुदएण खज्जंता ॥११६॥

(पू०) व्याख्या—तिक्ताश्च कटुकाश्च तिक्तकटुकाः तिक्ताः कटुकाद्याः, कटुकाः शुण्ठ्यादयः, कषाया हरीतक्याद्याः, अम्ला बीजपूरादयः, मधुरा इक्ष्वादयः रसास्तु पञ्चैव भवन्ति, लवणरसः सर्वानुयायित्वान्न पृथगुक्तो ज्ञा(ज्ञा)यते न केवलं [5]रसादयः, तेऽपि '**जीवदेहानामेव**' प्राणिशरीराणामेव '**रसनाम्नः**' कर्मणः '**उदयेन**' अनुभवेन '**स्वाद्यमानाः**' भक्ष्यमाणाः । हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥११६॥

उक्तं रसनाम, साम्प्रतं स्पर्शनामाह—

(पारमा०) तिक्तककटुककषायअम्लमधुरा रसा अपि पञ्च, न केवलं वर्णाः, किं तु रसा अपि पञ्च जीवदेहानां खाद्यमाना रसनाम्नः पञ्चप्रकारस्योदयेन भवेयुः । लवणस्य तु एतदनु-

---

१ "०ण शरीरं" इत्यपि पाठः । २ ०नां शरीरं देहं उ० जे० । ३ "तित्तगकडुयकसाया" इत्यपि पाठः । ४ 'रसा उ' इति व्याख्याकाराः । ५ वर्णादयः जे० ।

यायित्वात् केवलस्यानुपयोगाच्च पृथगुपादानं न कृतम् । इति गाथार्थः ॥११६॥

स्पर्शनाम प्राह—

गुरुलहुमिउकढिणावि य, निद्धा लुक्खा य होंति सीउण्हा ।
जियदेहाणं फासा, उदएणं फासनामस्स ॥११७॥

(पू०) व्याख्या—गुरुश्च लघुश्च मृदुश्च कठिनश्च गुरुलघुमृदुकठिनाः, तेऽपि च, अपिशब्दः समुच्चये 'च' स्वगतानेकभेदसंसूचनार्थः स्निग्धा रूक्षाश्च भवन्तीति प्रत्येकमभिसंबध्यते । शीताश्च उष्णाश्च शीतोष्णाः' [1]**'जीवदेहानां'** प्राणिशरीराणां **'स्पर्शाः'** स्पर्शनेन्द्रियग्राह्या जायन्ते **'उदयेन'** विपाकेन **'स्पर्शनाम्नः'** कर्मणः । तत्र गुरुर्महान् वज्रसीसकादिवत् । लघु अल्पतरं शाल्मलीतूलवत् । मृदुः सुकुमारः पद्मस्पर्शवत् । कठिनो निर्वरः अन्धपाषाणवत् । स्निग्धः सस्नेहो [2]घृतपूरमिन्द्रिकापत्रयोरिव । रूक्षः स्नेहरहितः सुधावत् । शीतः प्रतीत उदकस्येव । उष्णस्त-द्विपरीतोऽग्नेरिव । स्पर्शशब्दः सर्वत्र संबन्धनीयः । इति गाथार्थः ॥११७॥

उक्तं स्पर्शनाम, अगुरुलघुनामाह—

(पारमा०) तत्र गुरुलघ्वादयः प्रायः स्पर्शत्वेन जने न प्रसिद्धा इति तत्स्वरूपनिरूपणा क्रियते । तत्र यतः स्पर्शाद्वस्तूनामधोगमनक्रिया भवति स स्पर्शो गुरुः, यदाह—**'अधोगते-र्गुरुः'** १ । यतो वस्तूनां प्रायः तिर्यगूर्ध्वं च गमनं स स्पर्शो लघुः, यदाह—**''तिर्यगूर्ध्वगते-र्लघुः'** २ । यतो वस्तूनां नमनक्रिया स स्पर्शो मृदुः, यदाह—**'सन्नतेर्मृदुः ३'** । यतो वस्तूनां नमनक्रियाऽभावः स स्पर्शः कठिनः, यदाह—**''प्रायोऽनमनस्य हेतुः कठिनः ४ ।''** चिक्कणत्वपरिणामः स्निग्धः ५ । अचिक्कणत्वपरिणामस्तु रूक्षः ६, यदाह—**''चिक्कणत्वाचिक्क-णत्वे स्निग्धरूक्षौ ५-६ ।''** यतो वस्तूनां काठिन्यापाकौ भवतः स स्पर्शः शीतः, यदाह—**''काठि-न्यापाकयोःशीतः, ७ ।''** यतो वस्तूनां मार्दवविक्लित्ती भवतः स स्पर्श उष्णः, यदाह—**मार्दव-पाकयोरुष्णः ८** । इत्यष्टावपि स्पर्शा जीवदेहानां स्पर्शनाम्नोऽष्टविधस्योदयाद्भवन्ति इति गाथार्थः ॥११७॥

अगुरुलघुनामाह—

गरुयं न होइ देहं, न य लहुयं होइ सव्वजीवाणं ।
होइ हु अगुरुयलहुयं, अगुरुलहुयनामउदएणं ॥११८॥

(पू०) व्याख्या—'गुरुकं' भारयुक्तं **'न भवति'** शिशपादिसारवत् न जायते **'देहं'** शरीरम् । **'न च'** नैव लघुरेव लघुकमेरण्डकाष्ठवद् भवति **'सर्वजीवानां'** सर्वप्राणिनां देहमिति वर्तते,

१ जियदेहानां जे० । २ घृतपूरामण्डिकाप० जे० ।

हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् , भवत्येवागुरुलघुकं शरीरम् । केन ? इत्याह—'अगुरुलघुनाम्नः' कर्मणः 'उदयेन' अनुभवेन । इति गाथार्थः ॥११८॥

उक्तमगुरुलघुनाम, साम्प्रतमुपघातनामाह—

(पारमा०) आत्मापेक्षया सर्वजीवानां देहं न गुरुकं भवति, नापि लघुकं भवति, उपलक्षणत्वान्नापि गुरुलघुकं, किन्तु अगुरुलघुकं भवति । अन्यापेक्षया तु गुरुकं लघुकं गुरुलघुकं वा भवति । यदाह—"अन्नन्नविवक्खाए तिन्निवि संभवंति" इति अगुरुलघुनाम्न उदयात् । इति गाथार्थः ॥११८॥

उपघातनामाह—

अंगावयवो पडिजिब्भिया'इ जो अप्पणो उवग्घायं ।
कुणइ हु देहम्मि ठिओ सो उवघायस्स उ विवागो॥११९॥

(पू०) व्याख्या—अङ्गं शिरःप्रभृति, तस्यावयवो नासिकादि प्रतिजिह्विका च । जिह्वाया उपरि लघ्वी जिह्वा प्रतिजिह्विका । योऽवयवः 'आत्मनस्तु' शरीरस्यैव 'उपघातं' विनाशं करोत्येव, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । 'देहे स्थितः' [2]शरीरावस्थितः स उपघातनाम्न एव कर्मणो 'विपाकः' अनुभवः, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥११९॥ व्याख्यातमुपघातनाम, अधुना पराघातनामाह—

(पारमा०) यः प्रतिजिह्वागलवृन्दाद्यङ्गावयवो 'देहे स्थितः' इति शरीरान्तः पीडाकारित्वेन स्थित आत्मन उपघातं करोति स उपघातस्य विपाक उपघातनामकर्मोदयात् स उपघातकारीति भावः । इति गाथार्थः ॥११९॥

पराघातमाह—

तयविसदंतविसाई, अंगावयवो [3]'य जो उ अन्नेसिं ।
जीवाण कुणइ घायं, सो परघायस्स उ विवागो ॥१२०॥

(पू०) व्याख्या—त्वक् [4]शरीरांशो विषं यस्मिन्नङ्गावयवे स त्वग्विषः, दन्ता विषं यस्यावयवस्यासौ दन्तविषः, त्वग्विषश्च दन्तविषश्च त्वग्विषदन्तविषौ तौ आदिर्यस्यावयवस्य स त्वग्विषदन्तविषादिः, आदिशब्दान्नखविषादिपरिग्रहः । अङ्गस्यावयवोऽङ्गावयवः, 'तु' पुनः 'यस्तु' य एव 'अन्येषां' आत्मव्यतिरिक्तानां 'जीवानां' प्राणिनां 'करोति' विधत्ते 'विघातं' विनाशं सः 'परघातनाम्न एव' कर्मणः 'विपाकः' अनुभवः । इति गाथार्थः ॥१२०॥ उक्तं पराघातनाम, साम्प्रतमानुपूर्व्या विषयमाह—

---

१ "०य जो अत्तणो उवघायं" इत्यपि पाठः । २ शरीरे अव० जे० ३ 'उ' इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारैर्व्याख्यातम ॥ ४ शरीरं मविषं य० जे० ।

(पारमा०) त्वग्विषदन्तविषाद्यङ्गावयवश्च यः पुनरन्येषां जीवानां घातं करोति, चकारादधृष्यमोजो वाक्सौष्ठवं वा नृपसभादिगतस्य सभ्यादीनामपि क्षोभकृत्, प्रतिपक्षप्रतिभाप्रतिघातं च यत्करोति स पराघातस्य विपाकः। इति गाथार्थः ॥१२०॥

द्वित्रिचतुःसामयिकेन विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिगमननिमित्तमानुपूर्वीनामाह—

नारयतिरियनरामर-भवेसु जंतस्स अंतरगईए।
अणुपुव्वीए उदओ, सा चउहा [१]सुणसु जह होइ ॥१२१॥

(पू०) व्याख्या-'नारकतिर्यङ्नरामरभवेषु' प्रतीतेषु 'जंतस्स' गच्छतः सतः 'अन्तरगतौ' अपान्तरालगतौ 'आनुपूर्व्याः' नामकर्मविशेषस्य 'उदयः' विपाकः । सा चानुपूर्वी कियत्प्रकाराः भवन्ति ? इत्येतदाह-'चतुर्द्धा' चतुर्भेदा 'शृणुत' आकर्णयत 'यथा' येन प्रकारेण 'भवति' जायते। इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरकानुपूर्व्या विषयमाह—

(पारमा०) नारकतिर्यङ्नरामरभवेषु गच्छतो जीवस्य 'अन्तरगत्या' अपान्तरालगत्या वक्रगमनरूपयाऽऽनुपूर्व्या उदयः सा चतुर्द्धा शृणु यथा भवति। इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरयाउअस्स उदए नरए वक्केण गच्छमाणस्स ।
नरयाणुपुव्वियाए [२]तहिँ उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२२॥

(पू०) व्याख्या-'नरकायुषः' नरकेऽवस्थितिकारकस्य 'उदये' प्रादुर्भावे 'नरके' प्रतीते 'वक्रेण' कुटिलेन 'गच्छमाणस्स' इति गच्छतः सतः 'नरकानुपूर्व्याः' नरकप्रापणे रज्जुकल्पाया वृषभस्येवाभिमतदेशनयने 'उदयः' अनुभवः 'तत्र' वक्रे। 'अन्यत्र' ऋजुगतौ 'नास्ति' न विद्यते। इति गाथार्थः ॥१२२॥

उक्तो नरकानुपूर्वीविषयः, अधुना तिर्यगाद्यानुपूर्वीविषयमाह—

(पारमा०) नरकायुष उदये 'वक्रेण' कूर्परलाङ्गलगोमूत्रिकाकाररूपेण 'यथाक्रमं' द्वित्रिचतुःसमयप्रमाणेन नरके गच्छतो नरकानुपूर्व्यास्तत्रोदयः । 'अन्यत्र' ऋजुगतौ नास्ति । इति गाथार्थः ॥१२२॥

एवं तिरिमणुदेवे, तेसुवि वक्केण गच्छमाणस्स ।
तेसिमणुपुव्वियाणं, [३]तहिँ उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२३॥

---

१ "सुणह" इत्यपि पाठस्तत्पाठानुगन्तारो व्याख्याकाराः। २ ति, मत आह जे०। ३-४ "उदओ तहिँ" इत्यपि पाठः।

हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् , भवत्येवागुरुलघुकं शरीरम् । केन ? इत्याह–'**अगुरुलघुनाम्नः**' कर्मणः '**उदयेन**' अनुभवेन । इति गाथार्थः ॥११८॥

उक्तमगुरुलघुनाम, साम्प्रतमुपघातनामाह—

(पारमा०) आत्मापेक्षया सर्वजीवानां देहं न गुरुकं भवति, नापि लघुकं भवति, उपलक्षणत्वान्नापि गुरुलघुकं, किन्तु अगुरुलघुकं भवति । अन्यापेक्षया तु गुरुकं लघुकं गुरुलघुकं वा भवति । यदाह–"**अन्नइ।विक्खाए तिन्निवि संभवंति**" इति अगुरुलघुनाम्न उदयात् । इति गाथार्थः ॥११८॥

उपघातनामाह—

अंगावयवो पडिजिब्भियाइ जो अप्पणो उवग्घायं ।
कुणइ हु देहम्मि ठिओ सो उवघायस्स उ विवागो॥११९॥

(पू०) व्याख्या–अङ्गं शिरःप्रभृति, तस्यावयवो नासिकादि प्रतिजिह्विका च । जिह्वाया उपरि लघ्वी जिह्वा प्रतिजिह्विका । योऽवयवः '**आत्मनस्तु**' शरीरस्यैव '**उपघातं**' विनाशं करोत्येव, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । '**देहे स्थितः**' [2]शरीरावस्थितः स उपघातनाम्न एव कर्मणो '**विपाकः**' अनुभवः, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥११९॥ व्याख्यातमुपघातनाम, अधुना पराघातनामाह––

(पारमा०) यः प्रतिजिह्वागलवृन्दाद्यङ्गावयवो '**देहे स्थितः**' इति शरीरान्तः पीडाकारित्वेन स्थित आत्मन उपघातं करोति स उपघातस्य विपाक उपघातनामकर्मोदयात् स उपघातकारीति भावः । इति गाथार्थः ॥११६॥

पराघातमाह—

तयविसदंतविसाई, अंगावयवो [3]य जो उ अन्नेसिं ।
जीवाण कुणइ घायं, सो परघायस्स उ विवागो ॥१२०॥

(पू०) व्याख्या–त्वक् [4]शरीरांशो विषं यस्मिन्नङ्गावयवे स त्वग्विषः, दन्ता विषं यस्यावयवस्यासौ दन्तविषः, त्वग्विषश्च दन्तविषश्च त्वग्विषदन्तविषौ तौ आदिर्यस्यावयवस्य स त्वग्विषदन्तविषादिः, आदिशब्दान्नखविषादिपरिग्रहः । अङ्गस्यावयवोऽङ्गावयवः, '**तु**' पुनः '**यस्तु**' य एव '**अन्येषां**' आत्मव्यतिरिक्तानां '**जीवानां**' प्राणिनां '**करोति**' विधत्ते '**घातं**' विनाशं सः '**परघातनाम्न एव**' कर्मणः '**विपाकः**' अनुभवः । इति गाथार्थः ॥१२०॥ उक्तं पराघातनाम, साम्प्रतमानुपूर्व्या विषयमाह—

---

१ "०य जो अत्तणो उवघायं" इत्यपि पाठः । २ शरीरे अव० जे० ३ 'उ' इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारैर्व्याख्यातम् ॥ ४ शरीरं सविषं य० जे० ।

(पारमा०) त्वग्विषदन्तविषाद्यङ्गावयवश्च यः पुनरन्येषां जीवानां घातं करोति, चकारादधृष्यमोजो वाक्सौष्ठवं वा नृपसभादिगतस्य सभ्यादीनामपि क्षोभकृत्, प्रतिपक्षप्रतिभाप्रतिघातं च यत्करोति स पराघातस्य विपाकः । इति गाथार्थः ॥१२०॥

द्वित्रिचतुःसामयिकेन विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिगमननिमित्तमानुपूर्वीनामाह—

नारयतिरियनरामर-भवेसु जंतस्स अंतरगईए ।
अणुपुव्वीए उदओ, सा चउहा [1]सुणसु जह होइ ॥१२१॥

(पू०) व्याख्या-'नारकतिर्यङ्नरामरभवेषु' प्रतीतेषु 'जंतस्स' गच्छतः सतः 'अन्तरगतौ' अपान्तरालगतौ 'आनुपूर्व्याः' नामकर्मविशेषस्य 'उदयः' विपाकः । सा चानुपूर्वी कियत्प्रकाराः भवति ? इत्येतदाह-'चतुर्द्धा' चतुर्भेदा 'शृणुत' आकर्णयत 'यथा' येन प्रकारेण 'भवति' जायते । इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरकानुपूर्व्या विषयमाह—

(पारमा०) नारकतिर्यङ्नरामरभवेषु गच्छतो जीवस्य 'अन्तरगत्या' अपान्तरालगत्या वक्रगमनरूपयाऽऽनुपूर्व्या उदयः सा चतुर्द्धा शृणु यथा भवति । इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरयाउअस्स उदए नरए वक्केण गच्छमाणस्स ।
नरयाणुपुव्वियाए [2]तहिँ उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२२॥

(पू०) व्याख्या-'नरकायुषः' नरकेऽवस्थितिकारकस्य 'उदये' प्रादुर्भावे 'नरके' प्रतीते 'वक्रेण' कुटिलेन 'गच्छमाणस्स' इति गच्छतः सतः 'नरकानुपूर्व्याः' नरकप्रापणे रज्जुकल्पाया वृषभस्येवाभिमतदेशनयने 'उदयः' अनुभवः 'तत्र' वक्रे । 'अन्यत्र' ऋजुगतौ 'नास्ति' न विद्यते । इति गाथार्थः ॥१२२॥

उक्तो नरकानुपूर्वीविषयः, अधुना तिर्यगाद्यानुपूर्वीविषयमाह—

(पारमा०) नरकायुष उदये 'वक्रेण' कूर्परलाङ्गलगोमूत्रिकाकाररूपेण 'यथाक्रमं' द्वित्रिचतुःसमयप्रमाणेन नरके गच्छतो नरकानुपूर्व्यास्तत्रोदयः । 'अन्यत्र' ऋजुगतौ नास्ति । इति गाथार्थः ॥१२२॥

एवं तिरिमणुदेवे, तेसुवि वक्केण गच्छमाणस्स ।
तेसिमणुपुव्वियाणं, [3]तहिँ उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२३॥

---

१ "सुणह" इत्यपि पाठस्तत्पाठानुगन्तारो व्याख्याकाराः । २ ति, अत आह जे० । ३-४ "उदओ तहिँ" इत्यपि पाठः ।

हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् , भवत्येवागुरुलघुकं शरीरम् । केन ? इत्याह–'अगुरुलघुनाम्नः' कर्मणः 'उदयेन' अनुभवेन । इति गाथार्थः ॥११८॥

उक्तमगुरुलघुनाम, साम्प्रतमुपघातनामाह—

(पारमा०) आत्मापेक्षया सर्वजीवानां देहं न गुरुकं भवति, नापि लघुकं भवति, उपलक्षणत्वान्नापि गुरुलघुकं, किन्तु अगुरुलघुकं भवति । अन्यापेक्षया तु गुरुकं लघुकं गुरुलघुकं वा भवति । यदाह–"अन्नन्नविक्खाए तिन्निवि संभवंति" इति अगुरुलघुनाम्न उदयात् । इति गाथार्थः ॥११८॥

उपघातनामाह––

अंगावयवो पडिजिब्भिया'इ जो अप्पणो उवग्घायं ।
कुणइ हु देहम्मि ठिओ सो उवघायस्स उ विवागो॥११९॥

(पू०) व्याख्या–अङ्गं शिरःप्रभृति, तस्यावयवो नासिकादि प्रतिजिह्विका च । जिह्वाया उपरि लघ्वी जिह्वा प्रतिजिह्विका । योऽवयवः 'आत्मनस्तु' शरीरस्यैव 'उपघातं' विनाशं करोत्येव, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । 'देहे स्थितः' ²शरीरावस्थितः स उपघातनाम्न एव कर्मणो 'विपाकः' अनुभवः, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥११९॥ व्याख्यातमुपघातनाम, अधुना पराघातनामाह––

(पारमा०) यः प्रतिजिह्वागलवृन्दाद्यङ्गावयवो 'देहे स्थितः' इति शरीरान्तः पीडाकारित्वेन स्थित आत्मन उपघातं करोति स उपघातस्य विपाक उपघातनामकर्मोदयात् स उपघातकारीति भावः । इति गाथार्थः ॥११६॥

पराघातमाह—

तयविसदंतविसाई, अंगावयवो ³य जो उ अन्नेसिं ।
जीवाण कुणइ घायं, सो परघायस्स उ विवागो ॥१२०॥

(पू०) व्याख्या–त्वक् ⁴शरीरांशो विषं यस्मिन्नङ्गावयवे स त्वग्विषः, दन्ता विषं यस्यावयवस्यासौ दन्तविषः, त्वग्विषश्च दन्तविषश्च त्वग्विषदन्तविषौ तौ आदिर्यस्यावयवस्य स त्वग्विषदन्तविषादिः, आदिशब्दान्नखविषादिपरिग्रहः । अङ्गस्यावयवोऽङ्गावयवः, 'तु' पुनः 'यस्तु' य एव 'अन्येषां' आत्मव्यतिरिक्तानां 'जीवानां' प्राणिनां 'करोति' विधत्ते 'विघातं' विनाशं सः 'परघातनाम्न एव' कर्मणः 'विपाकः' अनुभवः । इति गाथार्थः ॥१२०॥ उक्तं पराघातनाम, साम्प्रतमानुपूर्व्या विषयमाह—

---

१ "०य जो अत्तणो उवघायं" इत्यपि पाठः । २ शरीरे अव० जे० ३ 'उ' इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारैर्व्याख्यातम् ॥ ४ शरीरं सविषं य० जे० ।

(पारमा०) त्वग्विषदन्तविषाद्यङ्गावयवश्च यः पुनरन्येषां जीवानां घातं करोति, चकारादधृष्यमोजो वाक्सौष्ठवं वा नृपसभादिगतस्य सभ्यादीनामपि क्षोभकृत्, प्रतिपक्षप्रतिभाप्रतिघातं च यत्करोति स पराघातस्य विपाकः। इति गाथार्थः ॥१२०॥

द्वित्रिचतुःसामयिकेन विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिगमननिमित्तमानुपूर्वीनामाह—

नारयतिरियनरामर-भवेसु जंतस्स अंतरगईए।
अणुपुव्वीए उदओ, सा चउहा [1]सुणसु जह होइ ॥१२१॥

(पू०) व्याख्या—'नारकतिर्यङ्नरामरभवेषु' प्रतीतेषु 'जंतस्स' गच्छतः सतः 'अन्तरगतौ' अपान्तरालगतौ 'आनुपूर्व्याः' नामकर्मविशेषस्य 'उदयः' विपाकः। सा चानुपूर्वी कियत्प्रकाराः भवति? इत्येतदाह—'चतुर्द्धा' चतुर्भेदा 'शृणुत' आकर्णयत 'यथा' येन प्रकारेण 'भवति' जायते। इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरकानुपूर्व्या विषयमाह—

(पारमा०) नारकतिर्यङ्नरामरभवेषु गच्छतो जीवस्य 'अन्तरगत्या' अपान्तरालगत्या वक्रगमनरूपयाऽऽनुपूर्व्या उदयः सा चतुर्द्धा शृणु यथा भवति। इति गाथार्थः ॥१२१॥

नरयाउअस्स उदए नरए वक्केण गच्छमाणस्स।
नरयाणुपुव्वियाए [2]तहिँ उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२२॥

(पू०) व्याख्या-'नरकायुषः' नरकेऽवस्थितिकारकस्य 'उदये' प्रादुर्भावे 'नरके' प्रतीते 'वक्रेण' कुटिलेन 'गच्छमाणस्स' इति गच्छतः सतः 'नरकानुपूर्व्याः' नरकप्रापणे रज्जुकल्पाया वृषभस्येवाभिमतदेशनयने 'उदयः' अनुभवः 'तत्र' वक्रे। 'अन्यत्र' ऋजुगतौ 'नास्ति' न विद्यते। इति गाथार्थः ॥१२२॥

उक्तो नरकानुपूर्वीविषयः, अधुना तिर्यगाद्यानुपूर्वीविषयमाह—

(पारमा०) नरकायुष उदये 'वक्रेण' कूर्परलाङ्गलगोमूत्रिकाकाररूपेण 'यथाक्रमं' द्वित्रिचतुःसमयप्रमाणेन नरके गच्छतो नरकानुपूर्व्यास्तत्रोदयः। 'अन्यत्र' ऋजुगतौ नास्ति। इति गाथार्थः ॥१२२॥

एवं तिरिमणुदेवे, तेसुवि वक्केण गच्छमाणस्स।
तेसिमणुपुव्वियाणं, [3]तहिँ उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२३॥

---

१ "सुणह" इत्यपि पाठस्तत्पाठानुगन्तारो व्याख्याकाराः। २ ति, अत आह जे०। ३-४ "उदओ तहिँ" इत्यपि पाठः।

(पू०) व्याख्या–(एवं) उक्तनरकानुपूर्वीन्यायेन तिर्यङ्मनुजदेवान् प्रतीत्यानुपूर्व्या उदयो ज्ञातव्यः, न केवलं नरके, 'तेष्वपि' तिर्यङ्मनुजदेवेष्वपि 'वक्रेण' [1]कौटिल्येन 'गच्छमाणस्स' गच्छतः सतः 'तासामानुपूर्वीणां' तिर्यङ्मनुजदेवानुपूर्वीणां 'तत्र' तिर्यङ्मनुजदेवगतिषु वक्ररूपासु 'उदयः' विपाकः । 'अन्यत्र:' वक्रादन्यत्र 'नास्ति' न विद्यते । इति गाथार्थः ॥१२३॥

उक्तमानुपूर्वीनाम, साम्प्रतमुच्छ्वासनामाह—

(पारमा०) 'एवं तिरिमणुदेवे' इति तिर्यङ्मनुष्यदेवानामेवं नरकानुपूर्वीवदानुपूर्व्यो वाच्याः, न केवलं नरके, 'तेष्वपि' तिर्यङ्मनुष्यदेवेष्वपि वक्रेण गच्छतः, 'तेषामानुपूर्वीणामुदयः' तिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वीणामुदयः 'तत्र' वक्रगतौ । 'अन्यत्र' ऋजुगतौ नास्ति । इति गाथार्थः ॥१२३॥

उच्छ्वासनामाह—

जस्सुदएणं जीवे, निष्फत्ती होइ आणपाणूणं ।
तं ऊसासं नामं, तस्स विवागो सरीरम्मि ॥१२४॥

(पू०) व्याख्या–'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवे' जीवस्य 'निष्पत्तिः' निर्वृत्तिर्भवति 'आनप्राणयोः' उच्छ्वासनिःश्वासयोः, तदुच्छ्वासनाम, उच्यत इति क्रिया । 'तस्य' चोच्छ्वासनाम्नः कर्मणो 'विपाकः' उदयः 'शरीरे' औदारिकादिलक्षणे । इति गाथार्थः ॥१२४॥

उक्तमुच्छ्वासनाम, अधुनाऽऽतपनामाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयेन जीवस्य 'आनपाननिष्पत्तिः' उच्छ्वासनिःश्वासलब्धिरुपजायते तदुच्छ्वासनाम । तस्य विपाकः शरीर इति । अयमभिप्रायः–जीवविपाकित्वेऽप्युच्छ्वासनाम्नो विशिष्ट एव शरीरे उदयः, नापान्तरालगत्यादौ । इति गाथार्थः ॥१२४॥

आतपनामाह—

जस्सुदएणं जीवे, होइ सरीरं तु ताविलं इत्थ ।
सो आयवे विवागो, जह रविबिंबे तहा जाण ॥१२५॥

(पू०) व्याख्या–'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवे' जीवस्य, षष्ठ्यर्थे सप्तमी सर्वत्र द्रष्टव्या, अकारान्तं वा पदं प्राकृतत्वादेकारान्तम् , 'भवति' जायते 'शरीरं' प्रतीतं, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् , 'ताविलमेव' तापयुक्तमेव 'अत्र' अस्मिन् लोके, स आपतनाम्नः कर्मणः 'विपाकः' उदयः, क इव ? इत्याह–यथा रविबिम्बे आतपनामोदयस्तथा विवक्षितशरीरे 'जानीहि' अवबुध्यस्व । इति गाथार्थः ॥१२५॥

---

१ कुटिलेन गच्छमानस्य जे०

ननु यथा रवेः संतापकत्वेनातपनामोदयः प्रतिपाद्यते तथा तेजःकायिकस्यापि संतापकत्वेनातपनामोदयः स्यात् ? [1]इत्याशङ्क्य परिहारार्थमाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयाज्जीवस्य शरीरं तापवदुष्णप्रकाशकारि भवति स आतपस्य विपाकः । यथा 'रविबिम्बे' आदित्यमण्डले पृथ्वीकायिकेषु तथा जानीहि, अन्यत्र तु न भवति । यदयमेवाह शतकबृहच्चूर्णौ–"आयवनामं आइच्चमंडलपुढविकाइएसु चेव" । इति गाथार्थः ॥१२५॥

आतपनामोदयश्च तेजःकायिकेषु न भवति इत्याह—

[2]न भवइ तेयसरीरे, जेण उ तेयस्स उसिणफासस्स ।
होइ हु उदओ नियमा, तह लोहियवण्णनामस्स ॥१२६॥

(पू०) व्याख्या–'किं नवि' इति [3]पोल्लिकया किमिति कृत्वा 'तेजःशरीरे' तेजस्कायिकदेहे आतपनामोदयो नोच्यते ?, इत्याह–'भण्यते' उच्यते 'तेजसः' अग्नेः 'उष्णस्पर्शस्यैव' अशीतस्पर्शस्यैव स्पर्शनाम्नः कर्मण उदयो 'भवति' संपद्यते, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् 'उदयः' विपाकः 'नियमात्' अवश्यंतया न आतपनाम्नः । तथेति समुच्चयार्थः । न केवलमुष्णस्पर्शनाम्न उदयः 'लोहितवर्णनाम्नश्च' रक्तवर्णनाम्नश्चोदयः । इति गाथार्थः ॥१२६॥

उक्तमातपनाम, साम्प्रतमुद्द्योतनामाह—

(पारमा०) न भवति तेजःशरीरे आतपनामकर्मोदय इति संबन्धनीयम् । कथं तर्हि तेषूष्णत्वम् ? [4]इति चेदत्राह–'येन' हेतुना तेजसो नियमादुष्णस्पर्शस्योदय इति, तर्हि प्रकाशकत्वं कथम् ? इत्याह–तथा लोहितवर्णनाम्नश्चोदयो भवति उष्णस्पर्शादुष्णत्वम्, उत्कटलोहितवर्णनामोदयाच्च प्रकाशकत्वम् । इति गाथार्थः ॥१२६॥ उद्द्योतनामाह—

जस्सुदएणं जीवो, अणुसिणदेहेण कुणइ उज्जोयं ।
तं उज्जोयं नामं, जाणसु खज्जोयमाईणं ॥१२७॥

(पू०) व्याख्या–'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवः' प्राणी 'अनुष्णदेहेन' उष्णरहितशरीरेण 'करोति' विधत्ते 'उद्द्योतं' प्रकाशं तत्कर्म उद्द्योतनामकर्म 'जानीहि' अवबुध्यस्व तदुद्द्योतनाम । यथा खद्योतादीनां, आदिशब्दादौषध्यादीनामुद्द्योतनाम । इति गाथार्थः ॥१२७॥

उक्तमुद्द्योतनाम, साम्प्रतं शुभाशुभभेदाद् विहायोगतिमभिधातुकाम आद्यभेदमाह—

---

१ इत्याशङ्कापरि० जे० । २ "किन्न हु" इत्यपि पाठः, व्याख्याकारेण तु "किं नवि तेयसरीरे भण्णइ तेयस्स" इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति ३ पोलिकया जे० ४ "इत्यावेदयन्नाह" इत्यपि ।

(पू०) व्याख्या–(एवं) उक्तनरकानुपूर्वीन्यायेन तिर्यङ्मनुजदेवान् प्रतीत्यानुपूर्व्या उदयो ज्ञातव्यः, न केवलं नरके, '**तेष्वपि**' तिर्यङ्मनुजदेवेष्वपि '**वक्रेण**' [1]कौटिल्येन '**गच्छमाणस्स**' गच्छतः सतः '**तासामानुपूर्वीणां**' तिर्यङ्मनुजदेवानुपूर्वीणां '**तत्र**' तिर्यङ्मनुजदेवगतिषु वक्ररूपासु '**उदयः**' विपाकः । '**अन्यत्रः**' वक्रादन्यत्र '**नास्ति**' न विद्यते । इति गाथार्थः ॥१२३॥

उक्तमानुपूर्वीनाम, साम्प्रतमुच्छ्वासनामाह—

(पारमा०) '**एवं तिरिमणुदेवे**' इति तिर्यङ्मनुष्यदेवानामेवं नरकानुपूर्वीवदानुपूर्व्यो वाच्याः, न केवलं नरके, '**तेष्वपि**' तिर्यङ्मनुष्यदेवेष्वपि वक्रेण गच्छतः, '**तेषामानुपूर्वीणामुदयः**' तिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वीणामुदयः '**तत्र**' वक्रगतौ । '**अन्यत्र**' ऋजुगतौ नास्ति । इति गाथार्थः ॥१२३॥

उच्छ्वासनामाह—

जस्सुदएणं जीवे, निप्फत्ती होइ आणपाणूणं ।
तं ऊसासं नामं, तस्स विवागो सरीरम्मि ॥१२४॥

(पू०) व्याख्या–'**यस्य**' कर्मणः '**उदयेन**' विपाकेन '**जीवे**' जीवस्य '**निष्पत्तिः**' निर्वृत्तिर्भवति '**आनप्राणयोः**' उच्छ्वासनिःश्वासयोः, तदुच्छ्वासनाम, उच्यत इति क्रिया । '**तस्य**' चोच्छ्वासनाम्नः कर्मणो '**विपाकः**' उदयः '**शरीरे**' औदारिकादिलक्षणे । इति गाथार्थः ॥१२४॥

उक्तमुच्छ्वासनाम, अधुनाऽऽतपनामाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयेन जीवस्य '**आनपाननिष्पत्तिः**' उच्छ्वासनिःश्वासलब्धिरुपजायते तदुच्छ्वासनाम । तस्य विपाकः शरीर इति । अयमभिप्रायः—जीवविपाकित्वेऽप्युच्छ्वासनाम्नो विशिष्ट एव शरीरे उदयः, नापान्तरालगत्यादौ । इति गाथार्थः ॥१२४॥

आतपनामाह—

जस्सुदएणं जीवे, होइ सरीरं तु ताविलं इत्थ ।
सो आयवे विवागो, जह रविबिंबे तहा जाण ॥१२५॥

(पू०) व्याख्या–'**यस्य**' कर्मणः '**उदयेन**' विपाकेन '**जीवे**' जीवस्य, षष्ठ्यर्थे सप्तमी सर्वत्र द्रष्टव्या, अकारान्तं वा पदं प्राकृतत्वादेकारान्तम् , '**भवति**' जायते '**शरीरं**' प्रतीतं, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् , '**ताविलमेव**' तापयुक्तमेव '**अत्र**' अस्मिन् लोके, स आपतनाम्नः कर्मणः '**विपाकः**' उदयः, क इव ? इत्याह–यथा रविबिम्बे आतपनामोदयस्तथा विवक्षितशरीरे '**जानीहि**' अवबुध्यस्व । इति गाथार्थः ॥१२५॥

---

१ कुटिलेन गच्छमानस्य जे०

ननु यथा रवेः संतापकत्वेनातपनामोदयः प्रतिपाद्यते तथा तेजःकायिकस्यापि संतापकत्वेनातपनामोदयः स्यात् ? [1]इत्याशङ्क्य परिहारार्थमाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयाज्जीवस्य शरीरं तापवदुष्णप्रकाशकारि भवति स आतपस्य विपाकः। यथा 'रविबिम्बे' आदित्यमण्डले पृथ्वीकायिकेषु तथा जानीहि, अन्यत्र तु न भवति। यदयमेवाह शतकबृहच्चूर्णौ–"आयवनामं आइच्चमंडलपुढविकाइएसु च्चेव"। इति गाथार्थः ॥१२५॥

आतपनामोदयश्च तेजःकायिकेषु न भवति इत्याह—

[2]न भवइ तेयसरीरे, जेण उ तेयस्स उसिणफासस्स।
होइ हु उदओ नियमा, तह लोहियवण्णनामस्स ॥१२६॥

(पू०) व्याख्या–'किं नवि' इति [3]पोल्लिकया किमिति कृत्वा 'तेजःशरीरे' तेजस्कायिकदेहे आतपनामोदयो नोच्यते ?, इत्याह–'भण्यते' उच्यते 'तेजसः' अग्नेः 'उष्णस्पर्शस्यैव' अशीतस्पर्शस्यैव स्पर्शनाम्नः कर्मण उदयो 'भवति' संपद्यते, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् 'उदयः' विपाकः 'नियमात्' अवश्यंतया न आतपनाम्नः। तथेति समुच्चयार्थः। न केवलमुष्णस्पर्शनाम्न उदयः 'लोहितवर्णनाम्नश्च' रक्तवर्णनाम्नश्चोदयः। इति गाथार्थः ॥१२६॥

उक्तमातपनाम, साम्प्रतमुद्द्योतनामाह—

(पारमा०) न भवति तेजःशरीरे आतपनामकर्मोदय इति संबन्धनीयम्। कथं तर्हि तेपूष्णत्वम् ? [4]इति चेदत्राह–'येन' हेतुना तेजसो नियमादुष्णस्पर्शस्योदय इति, तर्हि प्रकाशकत्वं कथम् ? इत्याह–तथा लोहितवर्णनाम्नश्चोदयो भवति उष्णस्पर्शादुष्णत्वम्, उत्कटलोहितवर्णनामोदयाच्च प्रकाशकत्वम्। इति गाथार्थः ॥१२६॥ उद्द्योतनामाह—

जस्सुदएणं जीवो, अणुसिणदेहेण कुणइ उज्जोयं।
तं उज्जोयं नामं, जाणसु खज्जोयमाईणं ॥१२७॥

(पू०) व्याख्या–'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवः' प्राणी 'अनुष्णदेहेन' उष्णरहितशरीरेण 'करोति' विधत्ते 'उद्द्योतं' प्रकाशं तत्कर्म उद्द्योतनामकर्म 'जानीहि' अवबुध्यस्व तदुद्द्योतनाम। यथा खद्योतादीनां, आदिशब्दादौषध्यादीनामुद्द्योतनाम। इति गाथार्थः ॥१२७॥

उक्तमुद्द्योतनाम, साम्प्रतं शुभाशुभभेदाद् विहायोगतिमभिधातुकाम आद्यभेदमाह—

---

१ इत्याशङ्कापरि० जे०। २ "किन्न हु" इत्यपि पाठः, व्याख्याकारेण तु "किं नवि तेयसरीरे भण्णइ" इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति ३ बोल्लिकया जे० ४ "इत्यावेदयन्नाह" इत्यपि।

(पारमा०) यस्योदयाज्जीवः 'अणुसिण' इति लुप्तविभक्तित्वादनुष्णं देहे नोद्द्योतं करोति। यदाह अयमेव शतकवृहच्चूर्णौ-"अणुसिणो पगासो जस्सोदयाओ भवइ तं उज्जोयनामं" इति। तदुद्द्योतनाम जानीहि खद्योतादीनाम्. आदिशब्दाच्चन्द्रग्रहनक्षत्रग्लादीनां परिग्रहः। इति गाथार्थः ॥१२७॥ विहायोगतिमाह—

जस्सुदएणं जीवो, वर[1]वसहगईए गच्छइ गईए।
[2]सा सुहिया विहगगई, हंसाईणं भवे सा उ ॥१२८॥

(पू०) व्याख्या-'यस्याः' शुभविहायोगतेः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवः' सामान्येन प्राणी 'गच्छति' याति गत्या। किंविशिष्टया? इत्याह-'वरवृषभगत्या' वृषभो=बलीवर्दः, वरः=प्रधानः, वरश्चासौ वृषभश्च वरवृषभः तस्य गतिस्तया, वरवृषभस्येव गतिः पुरुषस्य यत्र इत्यभिप्रायः। सा च 'शुभा' प्रशस्ता शुभैव, चशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, विहायोगतिरिति वक्तव्या। [3]'विहाय(ो)गतिनामकर्म' इति पाठः प्राकृत[4]त्वाद्ध(ढ)कारस्याकारलोपे ओलोपे च। सा च केषां भवति? इत्याह-हंसादीनां, आदिशब्दान्मतङ्गजादिपरिग्रहः, 'भवेत्' जायेत। तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्। इति गाथार्थः ॥१२८॥

उक्ता प्रशस्ता गतिः, अप्रशस्तगतिमाह—

(पारमा०) विहायसाऽऽकाशेन गतिर्विहायोगतिः। ननु विहायसः सर्वगतत्वात्तदन्यत्र गतिसंभवाभावाद्विहायोविशेषणमनर्थकम्, नैवम्, विहायोग्रहणं नाम्नः प्रथमप्रकृतिगतितोऽस्या विशेषणार्थम्। ततो यस्य कर्मण उदयाज्जीवो वरवृषभगत्या गच्छति सा शुभैव शुभिका विहायोगतिः। सा तु हंसादीनां आदिशब्दाद्गजवृषभादीनां भवेत्। इति गाथार्थः ॥१२८॥

अशुभविहायोगतिमाह—

जस्सुदएणं जीवो, अमणिट्ठाए [5]उ गच्छइ गईए।
सा असुभा विहगगई, उट्टाईणं भवे सा उ ॥१२९॥

(पू०) व्याख्या-'यस्य' कर्मण 'उदयेन' विपाकेन 'जीवः' प्राणी 'अमणिट्ठाए उ' अमनोज्ञयैव 'गच्छति' याति 'गत्या' पादविहरणादिलक्षणया, सा 'अशुभा' अशोभना विहायोगतिर्नामकर्म, सा च केषां भवति? इत्याह-उष्ट्रादीनां, आदिशब्दाद्रासभादीनां 'भवेत्' जायेत। 'सा तु' सा पुनरुष्ट्रादीनामेव, नान्येषाम्। इति गाथार्थः।

---

१ "०वसभ०" इत्यपि पाठः। २ "सा सुहया" इत्यपि पाठः। "सा य सुहा" इति व्याख्याकाराः। ३ "विहगगतिर्ना०" जे० ।४ ०त्वात् हस्याकारलोपे ढलोपे च। सा जे० । ५ "य" इत्यपि पाठः।

उक्ता द्विधाऽपि विहायोगतिः साम्प्रतं त्रसादिदशकसंज्ञामाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयाज्जीवो, मनस इष्टा-मनइष्टा, न मनइष्टा अमनइष्टा अशुभेत्यर्थः, तया गत्या गच्छति साऽशुभा विहायोगतिः, सा तृष्ट्रादीनां आदिशब्दात्खगदीनां भवेत् । इति गाथार्थः ॥१२९॥

सम्प्रति त्रसादिदशकमाह—

तसबायरपज्जत्तं, पत्तेयथिरं सुभं च सुभगं च ।
सूसरआइज्जजसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥१३०॥

(पू०) व्याख्या—त्रसनाम, नामशब्दस्य प्रत्येकं संबन्धः, बादरं पर्याप्तं प्रत्येकं स्थिरं शुभं च सुभगं च सुस्वरआदेययशः । त्रसादिदशकं 'इदं' उक्तलक्षणं 'भवति' ज्ञातव्यम् । इति गाथार्थः ॥१३०॥

त्रसादिदशक एवापान्तरसंज्ञाद्वयमाह—

(पारमा०) त्रसं १ बादरं २ पर्याप्तं ३ प्रत्येकं ४ स्थिरं ५ शुभं च ६ सुभगं च ७ सुस्वरं ८ आदेयं ९ 'जसं' इति यशःकीर्त्तिः १० । त्रसादिदशकमिदं नामग्रहोपदर्शितं भवति । इति गाथार्थः ॥१३०॥

त्रसादिदशकस्यैव संज्ञाद्वयविभागमाह—

आइम्मि तसचउक्कं, थिराइछक्कं तु उवरिमं होइ ।
थावरदसगं अहुणा, [1]थावरसुहुमं अपज्जत्तं ॥१३१॥
होइ तहा साहारं, अथिरं असुभं च दूभगं चेव ।
दूसरणाइज्जेहिं य अजसेहिं य बीयदसगं तु ॥१३२॥

(पू०) व्याख्या—'आदौ' प्रथमं त्रसचतुष्कं भवति ज्ञातव्यम् । त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकनामानि । स्थिरादिषट्कं तु स्थिरशुभसुभगसुस्वरआदेययशांसि, पुनरुपरिमं षट्कं स्थिरादिषट्कसंज्ञं भवति विज्ञेयम् । उक्तं त्रसादिदशकं संज्ञात्रयं, स्थावरदशकसंज्ञाचतुष्कमधुनोच्यते—इति वाक्यशेषः । स्थावरसूक्ष्मं च साधारणमिति स्थावरनाम सूक्ष्मनाम च साधारणनाम स्थावरदशकान्तर्वर्त्ति विज्ञेयम् । इति गाथार्थः ॥१३१॥ तथा भवत्यपर्याप्तं नाम 'अस्थिरं' अस्थिरनाम 'अशुभं च' अशुभनाम 'दुर्भगं चैव' दुर्भगनामैव, दुःस्वरानादेयनामभ्यामयशःकीर्त्या च सह

१ "थावरसुहुमं च साहारं ॥१३१॥ तह होइ अपज्जत्त" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारैर्व्याख्यातम् । पश्चमेनं पाठं परमानन्दसूरयस्तु अपपाठतया व्याख्यान्ति ॥

(पारमा०) यस्योदयाज्जीवः 'अणुसिण' इति लुप्तविभक्तित्वादनुष्णं देहेनोद्द्योतं करोति । यदाह अयमेव शतकबृहच्चूर्णौ-"अणुसिणा पगासो जस्सोदयाओ भवइ तं उज्जोयनामं" इति । तदुद्द्योतनाम जानीहि खद्योतादीनाम् . आदिशब्दाच्चन्द्रग्रहनक्षत्रग्ला-दीनां परिग्रहः । इति गाथार्थः ॥१२७॥ विहायोगतिमाह—

जस्सुदएणं जीवो, वर[1]वसहगईए गच्छइ गईए ।
[2]सा सुहिया विहगगई, हंसाईणं भवे सा उ ॥१२८॥

(पू०) व्याख्या-'**यस्याः**' शुभविहायोगतेः '**उदयेन**' विपाकेन '**जीवः**' सामान्येन प्राणी '**गच्छति**' याति गत्या । किंविशिष्टया ? इत्याह-'**वरवृषभगत्या**' वृषभो=बलीवर्दः, वरः= प्रधानः, वरश्चासौ वृषभश्च वरवृषभः तस्य गतिस्तया, वरवृषभस्येव गतिः पुरुषस्य यत्र इत्यभि-प्रायः । सा च '**शुभा**' प्रशस्ता शुभैव, चशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, विहायोगतिरिति वक्तव्या । [3]'**विहाय(ो)गतिनामकर्म**' इति पाठः प्राकृत[4]त्वाद्व(द्व)कारस्याकारलोपे ओलोपे च । सा च केषां भवति ? इत्याह-हंसादीनां, आदिशब्दान्मतङ्गजादिपरिग्रहः, '**भवेत्**' जायेत । तुशब्दस्यै-वकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥१२८॥

उक्ता प्रशस्ता गतिः, अप्रशस्तगतिमाह—

(पारमा०) विहायसाऽऽकाशेन गतिर्विहायोगतिः । ननु विहायसः सर्वगतत्वात्तदन्यत्र गतिसंभवाभावाद्विहायोविशेषणमनर्थकम्, नैवम्, विहायोग्रहणं नाम्नः प्रथमप्रकृतिगतितोऽस्या विशेषणार्थम् । ततो यस्य कर्मण उदयाज्जीवो वरवृषभगत्या गच्छति सा शुभैव शुभिका विहा-योगतिः । सा तु हंसादीनां आदिशब्दाद्गजवृषभादीनां भवेत् । इति गाथार्थः ॥१२८॥

अशुभविहायोगतिमाह—

जस्सुदएणं जीवो, अमणिट्ठाए [5]उ गच्छइ गईए ।
सा असुभा विहगगई, उट्टाईणं भवे सा उ ॥१२९॥

(पू०) व्याख्या-'**यस्य**' कर्मण '**उदयेन**' विपाकेन '**जीवः**' प्राणी '**अमणिट्ठाए उ**' अमनोज्ञयैव '**गच्छति**' याति '**गत्या**' पादविहरणादिलक्षणया, सा '**अशुभा**' अशोभना विहायोगतिर्नामकर्म, सा च केषां भवति ? इत्याह-उष्ट्रादीनां, आदिशब्दाद्रासभादीनां '**भवेत्**' जायेत । '**सा तु**' सा पुनरुष्ट्रादीनामेव, नान्येषाम् । इति गाथार्थः ।

---

१ "०वसभ०" इत्यपि पाठः । २ "सा सुहया" इत्यपि पाठः । "सा य सुहा" इति व्याख्याकाराः । ३ "विहगगतिर्ना०" जे० ।४ ०त्वात् हस्याकारलोपे रलोपे च । सा जे० । ५ "य" इत्यपि पाठः ।

उक्ता द्विधाऽपि विहायोगतिः साम्प्रतं त्रसादिदशकसंज्ञामाह—

(पारमा०) यस्य कर्मण उदयाज्जीवो, मनस इष्टा मनइष्टा, न मनइष्टा अमनइष्टा अशुभेत्यर्थः, तया गत्या गच्छति साऽशुभा विहायोगतिः, सा तूष्ट्रादीनां आदिशब्दात्खरादीनां भवेत् । इति गाथार्थः ॥१२९॥

सम्प्रति त्रसादिदशकमाह—

तसबायरपज्जत्तं, पत्तेयथिरं सुभं च सुभगं च ।
सूसरआइज्जजसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥१३०॥

(पू०) व्याख्या—त्रसनाम, नामशब्दस्य प्रत्येकं संबन्धः, बादरं पर्याप्तं प्रत्येकं स्थिरं शुभं च सुभगं च सुस्वरआदेययशः । त्रसादिदशकं 'इदं' उक्तलक्षणं 'भवति' ज्ञातव्यम् । इति गाथार्थः ॥१३०॥

त्रसादिदशक एवापान्तरसंज्ञाद्वयमाह—

(पारमा०) त्रसं १ बादरं २ पर्याप्तं ३ प्रत्येकं ४ स्थिरं ५ शुभं च ६ सुभगं च ७ सुस्वरं ८ आदेयं ९ 'जसं' इति यशःकीर्त्तिः १० । त्रसादिदशकमिदं नामग्रहोपदर्शितं भवति । इति गाथार्थः ॥१३०॥

त्रसादिदशकस्यैव संज्ञाद्वयविभागमाह—

आइम्मि तसचउक्कं, थिराइछक्कं तु उवरिमं होइ ।
थावरदसगं अहुणा, [1]थावरसुहुमं अपज्जत्तं ॥१३१॥
होइ तहा साहारं, अथिरं असुभं च दूभगं चेव ।
दूसरणाइज्जेहिं य अजसेहिं य बीयदसगं तु ॥१३२॥

(पू०) व्याख्या—'आदौ' प्रथमं त्रसचतुष्कं भवति ज्ञातव्यम् । त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकनामानि । स्थिरादिषट्कं तु स्थिरशुभसुभगसुस्वरआदेययशांसि, पुनरुपरिमं षट्कं स्थिरादिषट्कसंज्ञं भवति विज्ञेयम् । उक्तं त्रसादिदशकं संज्ञात्रयं, स्थावरदशकसंज्ञाचतुष्कमधुनोच्यते—इति वाक्यशेषः । स्थावरसूक्ष्मं च साधारणमिति स्थावरनाम सूक्ष्मनाम च साधारणनाम स्थावरदशकान्तर्वर्त्ति विज्ञेयम् । इति गाथार्थः ॥१३१॥ तथा भवत्यपर्याप्तं नाम 'अस्थिरं' अस्थिरनाम 'अशुभं च' अशुभनाम 'दुर्भगं चैव' दुर्भगनामैव, दुःस्वरानादेयनामभ्यामयशःकीर्त्या च सह

१ "थावरसुहुमं च साहारं ॥१३१॥ तह होइ अपज्जत्त" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारैर्व्याख्यातम्, परमेनं पाठं परमानन्दसूरयस्तु अपपाठतया व्याख्यान्ति ॥

द्वितीयदशकं तु पुनरेतैर्नामभेदैर्भवति । दुःस्वरानादेयैः, बहुवचनं प्राकृतत्वात् **"बहुवयणेण दुवयणं"** इत्याद्युक्तेः । **'अजसेहिं य'** अत्र बहुवचनमयशःकीर्त्तेरनेकधा ख्यापनार्थम् । इति गाथार्थः ॥१३२॥

अस्यैव स्थावरदशकस्यान्तर्वर्त्तिसंज्ञात्रयमाह—

(पारमा०) **'आद्ये'** प्रकृतिपिण्डे त्रसचतुष्कमिति संज्ञा भवति **'स्थिरादिषट्कं तु'** स्थिरादिषट्कसंज्ञं तु **'उपरिमं'** प्रकृतिपिण्डरूपं भवति इत्युक्तं प्रकृतिदशकस्य समस्तव्यस्तस्य त्रसदशकत्रसचतुष्कस्थिरादिषट्कलक्षणं संज्ञात्रयम् । द्वितीयं दशकं प्रस्तावनापूर्वमाह—स्थावरदशकमधुनोच्यत इति शेषः । स्थावरं १ सूक्ष्मं २ अपर्याप्तम् ३ ॥१३१॥ **'होइ तहा साहारं'** इति, भवतीत्यग्रे योक्ष्यते । साधारणं साधारणनाम ४ । **"थावरसुहुमं च साहारं ॥ तह होइ अपजत्तं"** इति त्वपपाठः पर्याप्तप्रत्येकयोः सेतरत्वस्योच्छृङ्खलतापत्तेः । अस्थिरं ५ अशुभं ६ च दुर्भगं चैव ७ **'दूसरणाइज्जेहि य'** इति दुःस्वरा ८ नादेयाभ्यां ९, **'अजसेहिं'** य इति अयशःकीर्त्तिनाम १० च द्वितीयदशकं भवति । इति गाथाद्वयार्थः ॥१३२॥

स्थावरदशकस्यापान्तरालसंज्ञात्रयमाह—

आइम्मि थावरचऊ, सुहुमतिगं उवरिमं भवे इत्थ ।
अथिराइछक्कमुवरिं, [1]विवागभेयं अओ भणिमो ॥१३३॥

(पू०) व्याख्या—**'आदौ'** प्रथमं **'स्थावरचतुः'** स्थावरसूक्ष्मसाधारणापर्याप्तनामानि स्थावरचतुष्कसंज्ञं भवति विज्ञेयमिति शेषः । **'सूक्ष्मत्रिकं'** सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं **'उपरिमं'** स्थावरनाम्न ऊर्ध्वं सूक्ष्मसाधारणापर्याप्तनामानि सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं भवेत् **'अत्र'** शासने अस्थिरादिषट्कमुपरि तस्यैव स्थावरदशकस्याद्यं स्थावरचतुष्कं विहाय । अस्थिर १ अशुभ २ दुर्भग ३ दुःस्वर ४ अनादेय ५ अयशांसि ६ षट् अस्थिरादिषट्कमुच्यते । **'विपाक[2]भेदः'** अनुभवभेदः **'एतासां'** नामप्रकृतीनां **'अयं'** वक्ष्यमाणलक्षणो **'भणितः'** प्रतिपादितः । ननु किमर्थमिदं संज्ञाकरणम् ?, उच्यते—शास्त्रे व्यवहारार्थम् । इति गाथार्थः ॥१३३॥

त्रसनाम्न उदयमाह—

(पारमा०) **'आद्ये'** प्रकृतिपिण्डे **'थावरचऊ'** इति स्थावरेणोपलक्षितं चतुष्कं स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तकसाधारणलक्षणं स्थावरचतुष्कसंज्ञमिति गम्यम् । **'सूक्ष्मत्रिकं'** सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं **'उपरिमं'** स्थावरस्य सूक्ष्मअपर्याप्तकसाधारणलक्षणं भवेत् **'अत्र'** स्थावरदशके च **'अस्थिरा-**

---

१ "विवागभेओ इमो होइ" इत्यपि पाठः । व्याख्याकारेण तु "विवागभेओ इमो भणिओ" इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति २ ०भेदश्चानुभवभेदश्चैतासां जे० ।

विषट्कं अस्थिरादिषट्कसंज्ञं उपरि सूक्ष्मत्रिकस्य अस्थिरअशुभदुर्भगदुःस्वरअनादेयअयशःकीर्ति-लक्षणं विपाकभेदम्, अतः संज्ञाचतुष्टयभणनानन्तरं भणामः इति गाथार्थः ॥१३३॥

सम्प्रति सेतरत्वक्रमेण त्रसस्थावरयोर्विपाकमाह—

तसनामुदए जीवो, बेइंदियमाइ जाइ [1]जीवेसु ।
थावरनामुदए [2]पुण पुढवीमाईसु सो जाइ ॥१३४॥

(पू०) व्याख्या–'**त्रसनाम्नः**' कर्मणः '**उदये**' विपाके '**जीवः**' प्राणी '**द्वीन्द्रियादिः** आदिशब्दात्त्रीन्द्रियादयः पञ्चेन्द्रियावसाना गृह्यन्ते, मकारोऽलाक्षणिकः प्राकृतत्वात्, तेषु '**याति**' गच्छति, जीवेषूत्पद्यत इत्यभिप्रायः । '**स्थावरनाम्नः**' कर्मणः '**उदये**' विपाके पुनः '**पृथिव्यादिषु**' आदिशब्दादप्तेजोवायुवनस्पतिषु मकारोऽत्राप्यलाक्षणिकः '**सः**' जीवो '**याति**' उत्पद्यते । इति गाथार्थः ॥१३४॥

उक्तस्त्रसस्थावरनामोदयः, साम्प्रतं बादरसूक्ष्मोदयस्वरूपमाह—

(पारमा०) त्रस्यन्ति उष्णाद्यभितप्ताश्छायाद्यासेवनार्थं स्थानान्तरमिति त्रसाः. तद्विपाकवेद्यं नाम त्रसनाम, तस्योदये जीवो '**द्वीन्द्रियादिजीवेषु**' द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियेषु '**याति**' गच्छति । तद्विपरीतं स्थावरनाम तस्योदये पुनरुष्णाद्यभितापेऽपि तत्स्थानपरिहारा-समर्थेषु '**पृथिव्यादिषु**' पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिषु स जीवो याति । ननु अग्नेरूर्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्यक्पवनमिति कथमनयोः स्थावरत्वमिति ?, सत्यम्, ऊर्ध्वज्वलनं तिर्यक्पवनं चैतयोः स्वाभाविकमेव न तूष्णाद्यभितापे द्वीन्द्रियादीनामिव । तथाहि–अग्नेर्विध्यापकजलधारास्वपि न परिहारबुद्धिर्वायोर्वा विनाशकाभावपीति, तस्मात्स्वाभाविकगमने बुद्धिपूर्वकत्वाभावात्स्थावरत्वं न विरुद्धम् । इति गाथार्थः ॥१३४॥

अधुना बादरसूक्ष्मे आह—

बायरनामुदएणं. बायरकाओ [3]उ होइ सो नियमा ।
सुहुमेण सुहुमकाओ. अंतमुहुत्ताउओ होइ ॥१३५॥

(पू०) व्याख्या–'**बादरनाम्नः**' कर्मणः '**उदयेन**' विपाकेन '**बादरकाय एव**' स्थूलकाय एव '**भवति**' जायते, '**सः**' जीवः '**नियमात्**' अवश्यंतया '**सूक्ष्मेण**' सूक्ष्मनामकर्मोदयेन '**सूक्ष्मकायः**' श्लक्ष्णकायो भवति । स च भवन् कियत्कालायुर्भवति ? इत्याह–'**अन्तर्मुहूर्तायुर्भवति**' मुहूर्तमध्ये कालं करोतीत्यर्थः । इति गाथार्थः ॥१३५॥

---

१ "जाईसु" इत्यपि पाठः । २ "णं" इत्यपि पाठ । ३ "य" इत्यपि पाठः ।

द्वितीयदशकं तु पुनरेतैर्नामभेदैर्भवति । दुःस्वरानादेयैः, बहुवचनं प्राकृतत्वात् **"बहुवयणेण दुवयणं"** इत्याद्युक्तेः । **'अजसेहिं य'** अत्र बहुवचनमयशःकीर्त्तेरनेकधा ख्यापनार्थम् । इति गाथार्थः ॥१३२॥

अस्यैव स्थावरदशकस्यान्तर्वर्त्तिसंज्ञात्रयमाह—

(पारमा०) **'आद्ये'** प्रकृतिपिण्डे त्रसचतुष्कमिति संज्ञा भवति **'स्थिरादिषट्कं तु'** स्थिरादिषट्कसंज्ञं तु **'उपरिमं'** प्रकृतिपिण्डरूपं भवति इत्युक्तं प्रकृतिदशकस्य समस्तव्यस्तस्य त्रसदशकत्रसचतुष्कस्थिरादिषट्कलक्षणं संज्ञात्रयम् । द्वितीयं दशकं प्रस्तावनापूर्वमाह—स्थावरदशकमधुनोच्यत इति शेषः । स्थावरं १ सूक्ष्मं २ अपर्याप्तम् ३ ॥१३१॥ **'होइ तहा साहारं'** इति, भवतीत्यग्रे योक्ष्यते । साधारणं साधारणनाम ४ । **"थावरसुहुमं च साहारं ॥ तह होइ अपजत्तं"** इति त्वपपाठः पर्याप्तप्रत्येकयोः सेतरत्वस्योच्छृङ्खलतापत्तेः । अस्थिरं ५ अशुभं ६ च दुर्भगं चैव ७ **'दूसरणाइज्जेहि य'** इति दुःस्वरा ८ नादेयाभ्यां ९, **'अजसेहिं'** य इति अयशःकीर्त्तिनाम १० च द्वितीयदशकं भवति । इति गाथाद्वयार्थः ॥१३२॥

स्थावरदशकस्यापान्तरालसंज्ञात्रयमाह—

आइम्मि थावरचऊ, सुहुमतिगं उवरिमं भवे इत्थ ।
अथिराइछक्कमुवरिं, [1]विवागभेयं अओ भणिमो ॥१३३॥

(पू०) व्याख्या—**'आदौ'** प्रथमं **'स्थावरचतुः'** स्थावरसूक्ष्मसाधारणापर्याप्तनामानि स्थावरचतुष्कसंज्ञं भवति विज्ञेयमिति शेषः । **'सूक्ष्मत्रिकं'** सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं **'उपरिमं'** स्थावरनाम्न ऊर्ध्वं सूक्ष्मसाधारणापर्याप्तनामानि सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं भवेत् **'अत्र'** शासने अस्थिरादिषट्कमुपरि तस्यैव स्थावरदशकस्याद्यं स्थावरचतुष्कं विहाय । अस्थिर १ अशुभ २ दुर्भग ३ दुःस्वर ४ अनादेय ५ अयशांसि ६ षट् अस्थिरादिषट्कमुच्यते । **'विपाक[2]भेदः'** अनुभवभेदः **'एतासां'** नामप्रकृतीनां **'अयं'** वक्ष्यमाणलक्षणो **'भणितः'** प्रतिपादितः । ननु किमर्थमिदं संज्ञाकरणम् ?, उच्यते—शास्त्रे व्यवहारार्थम् । इति गाथार्थः ॥१३३॥

त्रसनाम्न उदयमाह—

(पारमा०) **'आद्ये'** प्रकृतिपिण्डे **'थावरचऊ'** इति स्थावरेणोपलक्षितं चतुष्कं स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तकसाधारणलक्षणं स्थावरचतुष्कसंज्ञमिति गम्यम् । **'सूक्ष्मत्रिकं'** सूक्ष्मत्रिकसंज्ञं **'उपरिमं'** स्थावरस्य सूक्ष्मअपर्याप्तकसाधारणलक्षणं भवेत् **'अत्र'** स्थावरदशके च **'अस्थिरा-**

---

१ "विवागभेओ इमो होइ" इत्यपि पाठः । व्याख्याकारेण तु "विवागभेओ इमो भणिओ" इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति २ ०भेदश्चानुभवभेदश्चैतासां जे० ।

त्रिषट्कं' अस्थिरादिषट्कसंज्ञं उपरि सूक्ष्मत्रिकस्य अस्थिरअशुभदुर्भगदुःस्वरअनादेयअयशःकीर्तिलक्षणं विपाकभेदम्, अतः संज्ञाचतुष्टयभणनानन्तरं भणामः इति गाथार्थः ॥१३३॥

सम्प्रति सेतरत्वक्रमेण त्रसस्थावरयोर्विपाकमाह—

तसनामुदए जीवो, बेइंदियमाइ जाइ [1]जीवेसु ।
थावरनामुदए [2]पुण पुढवीमाईसु सो जाइ ॥१३४॥

(पू०) व्याख्या–'**त्रसनाम्नः**' कर्मणः '**उदये**' विपाके '**जीवः**' प्राणी '**द्वीन्द्रियादिः** आदिशब्दात्त्रीन्द्रियादयः पञ्चेन्द्रियावसाना गृह्यन्ते, मकारोऽलाक्षणिकः प्राकृतत्वात्, तेषु '**याति**' गच्छति, जीवेषूत्पद्यत इत्यभिप्रायः। '**स्थावरनाम्नः**' कर्मणः '**उदये**' विपाके पुनः '**पृथिव्यादिषु**' आदिशब्दादप्तेजोवायुवनस्पतिषु मकारोऽत्राप्यलाक्षणिकः '**सः**' जीवो '**याति**' उत्पद्यते। इति गाथार्थः ॥१३४॥

उक्तस्त्रसस्थावरनामोदयः, साम्प्रतं बादरसूक्ष्मोदयस्वरूपमाह—

(पारमा०) त्रस्यन्ति उष्णाद्यभितप्ताश्छायाद्यासेवनार्थं स्थानान्तरमिति त्रसाः तद्विपाकवेद्यं नाम त्रसनाम, तस्योदये जीवो '**द्वीन्द्रियादिजीवेषु**' द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियेषु '**याति**' गच्छति। तद्विपरीतं स्थावरनाम तस्योदये पुनरुष्णाद्यभितापेऽपि तत्स्थानपरिहारासमर्थेषु '**पृथिव्यादिषु**' पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिषु स जीवो याति। ननु अग्नेरूर्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्यक्पवनमिति कथमनयोः स्थावरत्वमिति ?, सत्यम्, ऊर्ध्वज्वलनं तिर्यक्पवनं चैतयोः स्वाभाविकमेव न तूष्णाद्यभितापे द्वीन्द्रियादीनामिव। तथाहि–अग्नेर्विध्यापकजलधारास्वपि न परिहारबुद्धिर्वायोर्वा विनाशकाभ्रावपीति, तस्मात्स्वाभाविकगमने बुद्धिपूर्वकत्वाभावात्स्थावरत्वं न विरुद्धम्। इति गाथार्थः ॥१३४॥

अधुना बादरसूक्ष्मे आह—

बायरनामुदएणं, बायरकाओ [3]उ होइ सो नियमा ।
सुहुमेण सुहुमकाओ, अंतमुहुत्ताउओ होइ ॥१३५॥

(पू०) व्याख्या–'**बादरनाम्नः**' कर्मणः '**उदयेन**' विपाकेन '**बादरकाय एव**' स्थूलकाय एव '**भवति**' जायते, '**सः**' जीवः '**नियमात्**' अवश्यंतया '**सूक्ष्मेण**' सूक्ष्मनामकर्मोदयेन '**सूक्ष्मकायः**' श्लक्ष्णकायो भवति। स च भवन् कियत्कालायुर्भवति ? इत्याह–'**अन्तर्मुहूर्तायुर्भवति**' मुहूर्तमध्ये कालं करोतीत्यर्थः। इति गाथार्थः ॥१३५॥

---

१ "जाईसु" इत्यपि पाठः। २ "णं" इत्यपि पाठ। ३ "य" इत्यपि पाठः।

पर्याप्तिसंख्याद्वारेण येषां प्राणिनां यत्परिमाणाः पर्याप्तयो भवन्ति तद्दर्शयितुमाह—

(पारमा०) बादरत्वं यद्वशात्पृथिव्याद्येकैकस्य जन्तुशरीरस्य चक्षुर्ग्राह्यताया अभावेऽपि बहूनां समुदायस्य चक्षुर्ग्राह्यता भवति स परिणामविशेषः, तन्निबन्धनं नाम बादरनाम, तस्योदयाद्बादरकायः स प्राणी नियमेन भवति। तद्विपरीतं सूक्ष्मनाम, यदुदयान्न कदाचिदपि देहिदेहस्य चक्षुर्ग्राह्यता भवति तेन सूक्ष्मकायः, स चान्तर्मुहूर्तायुर्भववर्तीनि प्रसङ्गतोऽभिहितम्। इति गाथार्थः॥

इदानीं पर्याप्तापर्याप्तयोरवसरः, तत्र पर्याप्तनाम यदुदयात्स्वयोग्यपर्याप्तिनिर्वर्तनसमर्थो भवति, अतः पर्याप्तिनिरूपणपूर्वकं तदाह—

आहारसरीरिंदिय-पज्जत्ती आणपाणभासमणे।
चत्तारि पंच छप्पिय, एगिंदियविगलसन्नीणं ॥१३६॥

(पू०) व्याख्या-आहारशरीरइन्द्रियआनप्राणभाषामनःपर्याप्तयः षड् भवन्ति। ताश्च चतस्रः पञ्च षडपि [1]चैकेन्द्रियविकलसंज्ञिनां यथासंख्येन भवन्ति अपिशब्दान्न भवन्ति च, केषांचिदपर्याप्तानामेव कालकरणात्। नन्वेकेन्द्रियादीनां पर्याप्तिसंख्योक्ता, असंज्ञिनां तु पञ्चेन्द्रियसम्मूर्छजानां नोक्ता, तत्कथं तेषां संख्याऽवसीयते? इत्याह-तेषामपि पञ्चैव पर्याप्तयो मनोरहितत्वात्। एतदपि कुतः?, संज्ञिविशेषणान्यथानुपपत्त्या, तदेव सार्थकं भवेत् संज्ञिविशेषणं यदेव संज्ञिन एव षट् पर्याप्तयो नासंज्ञिनः। अन्यथा व्यवच्छेद्याभावात्संज्ञिग्रहणं निरर्थकं स्यात्, तस्मात्संज्ञिग्रहणसामर्थ्यात्पारिशेष्यन्यायाच्चासंज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां पञ्चैव पर्याप्तयो भवन्तीति कृतं प्रसङ्गेन। प्रकृतं प्रस्तुमः। इति गाथार्थः ॥१३६॥

उक्ता पर्याप्तिसंख्या, साम्प्रतं सहेतुकं पर्याप्तिस्वरूपमाह—

(पारमा०) **'आहारसरीरिंदियपज्जत्ति'** आहारपर्याप्तिः शरीरपर्याप्तिरिन्द्रियपर्याप्तिरिति पर्याप्तिशब्दः प्रत्येकं योज्यते। **'आणपाणभासमणे'** इत्यत्रापि तेनानपानपर्याप्तिर्भाषापर्याप्तिर्मनःपर्याप्तिरिति। तत्र यया बाह्यमाहारमादाय खलरसरूपतया परिणमयति साहारपर्याप्तिः। यया रसीभूतमाहारं रसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रलक्षणसप्तधातुरूपतया परिणमयति सा शरीरपर्याप्तिः। यया धातुरूपतया परिणमितमाहारमिन्द्रियरूपतया परिणमयति सा इन्द्रियपर्याप्तिः। यया पुनरुच्छ्वासप्रायोग्यवर्गणादलिकमादायोच्छ्वासरूपतया परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा उच्छ्वासपर्याप्तिः। यया तु भाषाप्रायोग्यवर्गणादलिकं गृहित्वा भाषात्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः। यया पुनर्मनोयोग्यवर्गणादलिकमादाय मनस्त्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः। एताश्च यथाक्रमं चतस्रः पञ्च षट् च एकेन्द्रियविक-

१ एके० जे०।

लेन्द्रियसंज्ञिनां भवन्ति । यत्तु तत्त्वार्थे पर्याप्तीनां पञ्चसंख्यात्वमुक्तं तदिन्द्रियपर्याप्तौ मनःपर्याप्ते-रन्तर्भावात् । यत्पुनरागमे तदेवं, यथा भगवत्याम्–"तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तंजहा–आहारपज्जत्तीए १ सरीरपज्ज-त्तीए २ इंदियपज्जत्तीए ३ आणपाणपज्जत्तीए ४ भासामणपज्जत्तीए ५ ।" इति॥१३६॥

पयासि निप्फत्ती, उदएणं जस्स होइ कम्मस्स ।
तं पज्जत्तं नामं, इयरुदए नत्थि निप्फत्ती ॥१३७॥

(पू०) व्याख्या–'एतासां' पूर्वोक्तपर्याप्तीनां 'निष्पत्तिः' निर्वृत्तिः 'उदयेन' विपाकेन यस्य भवति कर्मणस्तत् 'पर्याप्तं नाम' पर्याप्तिसंज्ञकमुच्यत इति शेषः । 'इतरस्य' अपर्याप्त-नाम्नः 'उदये' विपाके 'नास्ति' न विद्यते 'निष्पत्तिः' निर्वृत्तिः पर्याप्तेरिति गम्यते । इति गाथार्थः ॥१३७॥ उक्तं पर्याप्ति(प्त)नाम, साम्प्रतं प्रत्येकनामाह—

(पारमा०) 'एतासां' प्ररूपितस्वरूपाणां 'निष्पत्तिः' परिसमाप्तिः 'यस्य' कर्मण उद-येन भवति तत्पर्याप्तकनाम । अपर्याप्तकमाह–इतरत् अपर्याप्तकनाम तस्योदये–नास्ति निष्पत्ति-रेतासामित्यत्रापि योज्यम् । इति गाथाद्वयार्थः ॥१३७॥

उक्ते पर्याप्तापर्याप्तकनाम्नी, सम्प्रति प्रत्येकनामाह—

एक्किक्कयम्मि जीवे, इक्किक्कं जस्स होइ उदएणं ।
[1]ओरालाइसरीरं, तं नामं होइ पत्तेयं ॥१३८॥

(पू०) व्याख्या–एकैकस्मिन् 'जीवे' प्राणिनि 'एकैकं' शरीरं भवति, [2]यथा वृक्षादीनां पत्रादिषु जायते 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन, किम्? इत्याह–औदारिकं शरीरं तन्नाम कर्म भवति प्रत्येकसंज्ञकं नाम । इति गाथार्थः ॥१३८॥

उक्तं प्रत्येकनाम, अधुना साधारणनामाह—

(पारमा०) एकैकस्य जीवस्य 'यस्य' कर्मण उदयादेकैकं औदारिकादि, आदिशब्दाद्वै-क्रियमाहारकं वा शरीरं भवति तत्प्रत्येकनाम भवति । इति गाथार्थः ॥१३८॥

साधारणमाह—

जीवाणमणंताणं, इक्कं ओरालियं इह सरीरं ।
हवइ [3]हु, जस्सुदएणं, तं साहारं [4]हवइ नामं ॥१३९॥

---

१ व्याख्याकारेण तु "ओरालियं सरीरं" इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति । २ "यथा शालिमु-द्गयवादिषु" जायते जे० । ३ "य" इत्यनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातं । ४ "भवे" इत्यपि पाठः, तथैव व्याख्याकाराः॥

(पू०) व्याख्या–'जीवानां' प्राणिनां 'अनन्तानां' अपरिमितानां 'एकं' सर्वेषामेव प्राणिनां यथा सूरणादीनामनेकप्राणिनामेकं शरीरं, किम्? 'औदारिकं' प्रतीतं 'इह' अस्मिन् लोके शीर्यत इति शरीरं भवति च यस्योदयेन तत्साधारणं भवेन्नाम नामैव, चशब्दस्यैवकारार्थत्वात्। इति गाथार्थः ॥१३९॥

उक्तं साधारणनाम, अधुना स्थिरनामाह––

(पारमा०) अनन्तानां जीवानामेकमौदारिकं शरीरं 'इह' संसारे देशीकुव्याद्येकनिवासवद्गतानां निश्चितं यस्य कर्मण उदयाद्भवति तत् 'साहारं' साधारणनाम भवति। इति गाथार्थः ॥१३९॥

स्थिरनामाह––

दंतट्ठाइथिराणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं।
निप्फत्ती उ सरीरे, [1]जायइ तं होइ थिरनामं ॥१४०॥

(पू०) व्याख्या–'दन्तास्थ्यादिस्थिराणां' दन्तास्थिनी प्रतीते, आदिशब्दाच्छिरोनासिकादिपरिग्रहः, स्थिराणामचलानां 'अङ्गावयवानां' शरीरावयवानां 'यस्य' नाम्नः कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'निष्पत्तिस्तु शरीरे' निर्वृत्तिस्त्वङ्गे 'जायते' निष्पद्यते तद्भवति स्थिरनाम। इति गाथार्थः ॥१४०॥

उक्तं स्थिरनाम, साम्प्रतमस्थिरनामाह––

(पारमा०) दन्तास्थिप्रभृतिस्थिराणां अङ्गावयवानां 'यस्य' कर्मण उदयान्निष्पत्तिः पुनः शरीरे जायते तत् स्थिरनाम भवति। इति गाथार्थः ॥१४०॥

अस्थिरमाह––

जीहाभमुहाईणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं।
निप्फत्ती उ सरीरे, जायइ तं अथिरनामं तु ॥१४१॥

(पू०) व्याख्या–जिह्वाभ्रूप्रभृतीनां भ्रूजिह्वे प्रतीते, आदिशब्दान्नेत्रकर्णादिपरिग्रहः, 'अङ्गावयवानां' शरीरदेशानां 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'निष्पत्तिस्तु' निर्वृत्तिः पुनः 'शरीरे' देहे 'जायते' निष्पद्यते 'तदस्थिरनाम तु' तदस्थिरनामैव कर्म इति गाथार्थः ॥१४१॥

उक्तमस्थिरनाम, साम्प्रतं शुभनामाह––

(पारमा०) जिह्वाभ्रूप्रभृतीनामङ्गावयवानां 'यस्य' कर्मण उदयान्निष्पत्तिः (पुनः) शरीरे जायते तत् 'अस्थिरनाम तु' तदस्थिरनामकर्मैव। इति गाथार्थः ॥१४१॥

---

१ "जायं" इत्यपि पाठः।

शुभमाह—

सिरमाईण सुहाणं अंगावयवाण जस्स उदएणं।
निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ सुभनामं ॥१४२॥

(पू०) व्याख्या—'शिरःप्रभृतीनां' आदिशब्दाद्वक्षःस्थलादिपरिग्रहः, 'शुभानां' प्रशस्तानां, अङ्गस्यावयवा अङ्गावयवाः, अङ्गशब्देन चात्र शरीरमुच्यते नोदरादि, अस्यामेव गाथायामादौ शिरसोऽङ्गावयवत्वेनाभिधानात् तेषां 'यस्य' नामकर्मण उदयेन 'निष्पत्तिस्तु' निर्वृत्तिरेव 'शरीरे' देहे 'जायते' निष्पद्यते तद्भवति 'शुभनाम' शुभनामसंज्ञकं कर्म । इति गाथार्थः ॥१४२॥

उक्तं शुभनाम, अधुनाऽशुभनामाह—

(पारमा०) शिर आदिर्येषां ते शिरआदयो नाभेरुपर्यवयवास्तेषां शुभानामङ्गावयवानां 'यस्य' कर्मण उदयान्निष्पत्तिः पुनः (शरीरे) जायते तत् शुभनाम भवति । शिरसा हि स्पृष्टस्तुष्यति इति गाथार्थः ॥१४२॥

अशुभमाह—

पायाईअसुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।
निप्फत्ती उ शरीरे, जायइ तं असुभनामं तु ॥१४३॥

(पू०) व्याख्या—पादावादिर्येषामवयवानां पादादिः, आदिशब्दात्पुतादिपरिग्रहः, तेषां "अशुभानां' अशोभनानां 'अङ्गावयवानां' देहदेशानां 'यस्य' पुनः कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'निष्पत्तिस्तु' निर्वृत्तिः तुशब्दः पुनःशब्दार्थः, 'शरीरे' देहे 'जायते' निष्पद्यते 'तदशुभनाम तु' अशुभनामैव । इति गाथार्थः ॥१४३॥

उक्तमशुभनाम, साम्प्रतं सुभगदुर्भगमाह—

(पारमा०) पादावादिर्येषां ते पादादयो नाभेरधोऽवयवाः, तेषामशुभानां 'यस्य' कर्मण उदयान्निष्पत्तिः पुनः शरीरे जायते तदशुभनामैव । पादेन हि स्पृष्टो रुष्यति । ननु प्रणयप्रकुपितप्रणयिनीपादप्रहारेऽपि प्रणयिनस्तोष एवेति कथं न व्यभिचारः ?, उच्यते, तत्तोषस्य मोहनीयनिबन्धनत्वाद्वस्तुस्थितेश्चात्र विचार्यमाणत्वाददोषः । इति गाथार्थः ॥१४३॥

सम्प्रति सुभगदुर्भगनाम्नी आह—

(पू०) व्याख्या–'**जीवानां**' प्राणिनां '**अनन्तानां**' अपरिमितानां '**एकं**' सर्वेषामेव प्राणिनां यथा सूरणादीनामनेकप्राणिनामेकं शरीरं, किम् ? '**औदारिकं**' प्रतीतं '**इह**' अस्मिन् लोके शीर्यत इति शरीरं भवति च यस्योदयेन तत्साधारणं भवेन्नाम नामैव, चशब्दस्यैत्रकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥१३९॥

उक्तं साधारणनाम, अधुना स्थिरनामाह––

(पारमा०) अनन्तानां जीवानामेकमौदारिकं शरीरं '**इह**' संसारे देशीकुव्याद्येकनिवासवद्गतानां निश्चितं यस्य कर्मण उदयाद्भवति तत् '**साहारं**' साधारणनाम भवति । इति गाथार्थः ॥१३९॥

स्थिरनामाह––

दंतट्ठाइथिराणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।
निप्फत्ती उ सरीरे, 'जायइ तं होइ थिरनामं ॥१४०॥

(पू०) व्याख्या–'**दन्तास्थ्यादिस्थिराणां**' दन्तास्थिनी प्रतीते, आदिशब्दाच्छिरोनासिकादिपरिग्रहः, स्थिराणामचलानां '**अङ्गावयवानां**' शरीरावयवानां '**यस्य**' नाम्नः कर्मणः '**उदयेन**' विपाकेन '**निष्पत्तिस्तु शरीरे**' निर्वृत्तिस्त्वङ्गे '**जायते**' निष्पद्यते तद्भवति स्थिरनाम । इति गाथार्थः ॥१४०॥

उक्तं स्थिरनाम, साम्प्रतमस्थिरनामाह––

(पारमा०) दन्तास्थिप्रभृतिस्थिराणां अङ्गावयवानां '**यस्य**' कर्मण उदयान्निष्पत्तिः पुनः शरीरे जायते तत् स्थिरनाम भवति । इति गाथार्थः ॥१४०॥

अस्थिरमाह––

जीहाभमुहाईणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।
निप्फत्ती उ सरीरे, जायइ तं अथिरनामं तु ॥१४१॥

(पू०) व्याख्या–जिह्वाभ्रूप्रसृतीनां भ्रूजिह्वे प्रतीते, आदिशब्दान्नेत्रकर्णादिपरिग्रहः, '**अङ्गावयवानां**' शरीरदेशानां '**यस्य**' कर्मणः '**उदयेन**' विपाकेन '**निष्पत्तिस्तु**' निर्वृत्तिः पुनः '**शरीरे**' देहे '**जायते**' निष्पद्यते '**तदस्थिरनाम तु**' तदस्थिरनामैव कर्म इति गाथार्थः ॥१४१॥

उक्तमस्थिरनाम, साम्प्रतं शुभनामाह––

(पारमा०) जिह्वाभ्रूप्रसृतीनामङ्गावयवानां '**यस्य**' कर्मण उदयान्निष्पत्तिः (पुनः) शरीरे जायते तत् '**अस्थिरनाम तु**' तदस्थिरनामकर्मैव । इति गाथार्थः ॥१४१॥

---

१ "जायं" इत्यपि पाठः ।

शुभमाह—

सिरमाईण सुहाणं अंगावयवाण जस्स उदएणं ।
निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ सुभनामं ॥१४२॥

(पू०) व्याख्या–'**शिरःप्रभृतीनां**' आदिशब्दाद्वक्षःस्थलादिपरिग्रहः, '**शुभानां**' प्रशस्तानां, अङ्गस्यावयवा अङ्गावयवाः, अङ्गशब्देन चात्र शरीरमुच्यते नोदरादि, अस्यामेव गाथायामादौ शिरसोऽङ्गावयवत्वेनाभिधानात् तेषां '**यस्य**' नामकर्मण उदयेन '**निष्पत्तिस्तु**' निर्वृत्तिरेव '**शरीरे**' देहे '**जायते**' निष्पद्यते तद्भवति '**शुभनाम**' शुभनामसंज्ञकं कर्म । इति गाथार्थः ॥१४२॥

उक्तं शुभनाम, अधुनाऽशुभनामाह—

(पारमा०) शिर आदिर्येषां ते शिरआदयो नामेरुपर्यवयवास्तेषां शुभानामङ्गावयवानां '**यस्य**' कर्मण उदयान्निष्पत्तिः पुनः (शरीरे) जायते तत् शुभनाम भवति । शिरसा हि स्पृष्टस्तुष्यति इति गाथार्थः ॥१४२॥

अशुभमाह—

पायाईअसुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।
निप्फत्ती उ शरीरे, जायइ तं असुभनामं तु ॥१४३॥

(पू०) व्याख्या–पादावादिर्येषामवयवानां पादादिः, आदिशब्दात्पुतादिपरिग्रहः, तेषां ''**अशु-भानां**' अशोभनानां '**अङ्गावयवानां**' देहदेशानां '**यस्य**' पुनः कर्मणः '**उदयेन**' विपाकेन '**निष्पत्तिस्तु**' निर्वृत्तिः तुशब्दः पुनःशब्दार्थः, '**शरीरे**' देहे '**जायते**' निष्पद्यते '**तद-शुभनाम तु**' अशुभनामैव । इति गाथार्थः ॥१४३॥

उक्तमशुभनाम, साम्प्रतं सुभगदुर्भगमाह—

(पारमा०) पादावादिर्येषां ते पादादयो नामेरधोऽवयवाः, तेषामशुभानां '**यस्य**' कर्मण उदयान्निष्पत्तिः पुनः शरीरे जायते तदशुभनामैव । पादेन हि स्पृष्टो रुष्यति । ननु प्रणयप्रकुपि-तप्रणयिनीपादप्रहारेऽपि प्रणयिनस्तोष एवेति कथं न व्यभिचारः ?, उच्यते, तत्तोषस्य मोहनी-यनिबन्धनत्वाद्वस्तुस्थितेश्चात्र विचार्यमाणत्वाददोषः । इति गाथार्थः ॥१४३॥

सम्प्रति सुभगदुर्भगनाम्नी आह—

सूभगकम्मुदएणं, [1]हवइ हु जीवो उ सव्वजणइट्ठो ।
[2]दूहगकम्मुदए पुण, दुहओ सो [3]सयललोयस्स ॥१४४॥

(पू०) व्याख्या–सुभगस्य भावः सौभाग्यं तस्य कर्मण उदयेन विपाकेन 'भवत्येव' जायत एव, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् 'जीवस्तु' प्राणी सर्वजनइष्ट एव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, अन्यथा सौभाग्याभावः । 'दूहगकम्मुदएणं' इति दौर्भाग्यकर्मोदयेन विपाकेन 'दुर्भगः' नयनमनसोरुद्वेगकारी 'सकललोकस्य' सर्वप्राणिसमूहस्य । 'दुभगो सो सयललोयस्स' इति पाठान्तरं वा । तत्रापि स एवार्थः । केवलं स दौर्भाग्ययुक्तस्य परामर्शः । इति गाथार्थः ॥१४४॥

उक्तं सुभगदुर्भगनाम, अधुना सुस्वरदुःस्वरनामोच्यते—

(पारमा०) सुभगकर्मोदयाद्भवति निश्चितं जीवः, तुशब्दस्य विशेषणार्थत्वात्, अनुपकारकृदपि सर्वजनस्येष्टो मनःप्रियः । दुर्भगकर्मोदये पुनःशब्दस्य विशेषणार्थत्वात्, उपकारकृदपि 'दुःस्वरः' मनोनयनानामप्रियप्रतिमः स सकललोकस्य भवतीत्यत्रापि योज्यम् । यदाह– "अणुवकएवि बहूणं, होइ पिओ तस्स सुभगनामुदओ । उवगारकारगोवि हु न रुचई दूभगस्सुदए ॥१॥ सुभगुदएवि हु कोई कंची आसज्ज दूभगो जइवि । जायइ तद्दोसाओ, जहा अभव्वाण तित्थयरो ॥२॥" इति गाथार्थः ॥१४४॥

सुस्वरदुस्वरे आह—

सूसरकम्मुदएणं, सूसरसद्दो [4]य होइ इह जीवो ।
दूसरउदए [5]विसरो, जंपंतो होइ जणवेसो ॥१४५॥

(पू०) व्याख्या–सुस्वरं शोभनस्वरं तच तत्कर्म च सुस्वरकर्म तस्योदयेन विपाकेन 'सुस्वरशब्दस्तु" शोभनध्वनिरेव 'भवति' जायते 'इह' अस्मिन् लोके 'जीवः' प्राणी । दुःस्वरनाम्नः पुनरुदये विपाके 'विरसः' इतिविशेषेण गतो रसो माधुर्यलक्षणो यस्य स विरसः श्रुत्यसुखदः 'जल्पन्' वदन् 'भवति' जायते 'जनद्वेष्यः' लोकाप्रीत्युत्पादकः । इति गाथार्थः ॥१४५॥

उक्तं सुस्वरदुःस्वरनाम, साम्प्रतमादेयानादेयनामाह—

(पारमा०) सुस्वरकर्मोदयाद् द्वीन्द्रियादीनां शब्दः स्वरः शोभनः स्वरः सुस्वरः श्रोत्रप्रीतिहेतुः, एवंभूतश्च 'इह' संसारे जीवो भवति । दुःस्वरोदये विस्वरः खरभिन्नहीनदीनस्वरो जल्पन् 'जनद्वेष्यः' अप्रीतिपदं भवति । इति गाथार्थः ॥१४५॥

आदेयानादेये आह—

---

१ "होइ" इत्यपि पाठः । २ दुभगकम्मुदएणं दुभगो सो सव्वलोगस्स इत्यपि पाठः । व्याख्याकारेण तु "दुभगकम्मुदएणं दुब्भगओ सयल०" इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति । ३ "सव्वलोयस्स" इत्यपि पाठः, तथैव जे० । ४ 'च' इति व्याख्याकारः । ५ "विरसो" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति ।

आएज्जकम्मउदए, चिट्ठा जीवाण भासणं जं च ।
तं बहु मन्नइ लोओ, [1]अबहुमयं इयरउदएणं ॥१४६॥

(पू०) व्याख्या–आदेयनाम्नः कर्मणः 'उदये' विपाके 'चेष्टा' शरीरव्यापारलक्षणा जीवानां 'भाषणं यच्च' जल्पनं यच्च 'तत्' सर्वं 'बहु मन्यते' अन्तःप्रीतियुक्तस्तत्तथैव प्रतिपद्यते 'लोकः' जनः । अबहुमतं' अनभिप्रेतं चेष्टाजल्पादिकमितरस्य पुनरनादेयनाम्नः कर्मण उदयेन विपाकेन । इति गाथार्थः ॥१४६॥

उक्तमादेयानादेयनाम, साम्प्रतं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिनामाह–

(पारमा०) आदेयकर्मण उदये 'चेष्टा' उच्छृङ्खलरूपा जीवानां यत् 'भाषणं' असमञ्जसप्रलपनं यच्च तद्बहुमन्यते लोकः इतरदनादेयं, तस्योदये चेष्टा हसितललितादिका भाषणं युक्तियुक्तस्यापि अबहुमतम् । इति गाथार्थः ।

यशःकीर्त्त्ययशःकीर्ती आह—

जस्सुदएणं जीवो, लहइ हु [2]कित्तिं जसं च लोगम्मि ।
तं जसनामं कम्मं, अजसुदए लहइ विवरीयं ॥१४७॥

(पू०) व्याख्या–'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवः' प्राणी 'लभते तु' प्राप्नोत्येव कीर्त्तियशस्तु, एकदिग्गामिनी कीर्त्तिः, सर्वदिग्गामि यशः, अथवा–"दानपुण्यफला कीर्त्तिः, पराक्रमकृतं यशः" । अथवा एकमेवेदं नाम, यशसोपलक्षिता कीर्त्तिर्यशःकीर्त्तिः, कीर्त्तिशब्दस्य पूर्वनिपातः प्राकृतत्वात्, 'लोके' जने तद्यशोनामकर्म यशःकीर्त्तिकर्मेत्यर्थः । अयशःकीर्त्युदये पुनः प्राणी 'लभते' प्राप्नोति, 'विपरीतं' अयशःकीर्त्तिमासादयति । इति गाथार्थः ॥१४७॥

उक्तं यशःकीर्त्त्ययशःकीर्त्तिनाम, अधुना निर्माणनामाह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयाज्जीवो लभते कीर्तिं परलोकगतस्यापि श्लाघनीयतारूपां, यशश्च जीवतः श्लाघतारूपं लोके तद्यशःकीर्त्तिनाम । अथवा यशसा शौण्डीर्यक्रियानुष्ठानस्वाध्यायध्यानादिशोभनार्थालम्बनेन कीर्तनं संशब्दनं यशःकीर्त्तिः । 'अजसुदए' इति अयशःकीर्त्युदये लभते 'विपरीतं' अश्लाघनीयतारूपम् । इति गाथार्थः ॥१४७॥

निर्माणमाह—

देहंगावयवाणं, लिंगागिइ जाइ नियमणं जं च ।
तहिँ सुत्तहारसरिसो, निम्माणे होइ हु विवागो ॥१४८॥

---

१ अवमअइ इयरउदएणं इत्यपि पाठः । २ "कित्तीजसं" इत्यपि पाठः ।

सूभगकम्मुदएणं, [1]हवइ हु जीवो उ सव्वजणइट्ठो ।
[2]दूहगकम्मुदए पुण, दुहओ सो [3]सयललोयस्स ॥१४४॥

(पू०) व्याख्या–सुभगस्य भावः सौभाग्यं तस्य कर्मण उदयेन विपाकेन 'भवत्येव' जायत एव, हुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् 'जीवस्तु' प्राणी सर्वजन इष्ट एव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, अन्यथा सौभाग्याभावः । 'दूहगकम्मुदएणं' इति दौर्भाग्यकर्मोदयेन विपाकेन 'दुर्भगः' नयनमनसोरुद्वेगकारी 'सकललोकस्य' सर्वप्राणिसमूहस्य । 'दुभगो सो सयललोयस्स' इति पाठान्तरं वा । तत्रापि स एवार्थः । केवलं स दौर्भाग्ययुक्तस्य परामर्शः । इति गाथार्थः ॥१४४॥

उक्तं सुभगदुर्भगनाम, अधुना सुस्वरदुःस्वरनामोच्यते—

(पारमा०) सुभगकर्मोदयाद्भवति निश्चितं जीवः, तुशब्दस्य विशेषणार्थत्वात्, अनुपकारकृदपि सर्वजनस्येष्टो मनःप्रियः । दुर्भगकर्मोदये पुनःशब्दस्य विशेषणार्थत्वात्, उपकारकृदपि 'दुःखदः' मनोनयनानामप्रियप्रतिमः स सकललोकस्य भवतीत्यत्रापि योज्यम् । यदाह–
"अणुवकएवि बहूणं, होइ पिओ तस्स सुभगनामुदओ । उवगारकारगोवि हु न रुचई दूभगस्सुदए ॥१॥ सुभगुदएवि हु कोई कंचो आसज्ज दूभगो जइवि । जायइ तद्दोसाओ, जहा अभव्वाण तित्थयरो ॥२॥" इति गाथार्थः ॥१४४॥

सुस्वरदुस्वरे आह—

सूसरकम्मुदएणं, सूसरसद्दो [4]य होइ इह जीवो ।
दूसरउदए [5]विसरो, जंपंतो होइ जणवेसो ॥१४५॥

(पू०) व्याख्या–सुस्वरं शोभनस्वरं तच्च तत्कर्म च सुस्वरकर्म तस्योदयेन विपाकेन 'सुस्वरशब्दस्तु' शोभनध्वनिरेव 'भवति' जायते 'इह' अस्मिन् लोके 'जीवः' प्राणी । दुःस्वरनाम्नः पुनरुदये विपाके 'विरसः' इतिविशेषेण गतो रसो माधुर्यलक्षणो यस्य स विरसः श्रुत्यसुखदः 'जल्पन्' वदन् 'भवति' जायते 'जनद्वेष्यः' लोकाप्रीत्युत्पादकः । इति गाथार्थः ॥१४५॥

उक्तं सुस्वरदुःस्वरनाम, साम्प्रतमादेयानादेयनामाह—

(पारमा०) सुस्वरकर्मोदयाद् द्वीन्द्रियादीनां शब्दः स्वरः शोभनः स्वरः सुस्वरः श्रोत्रप्रीतिहेतुः, एवंभूतश्च 'इह' संसारे जीवो भवति । दुःस्वरोदये विस्वरः खरभिन्नहीनदीनस्वरो जल्पन् 'जनद्वेष्यः' अप्रीतिपदं भवति । इति गाथार्थः ॥१४५॥

आदेयानादेये आह—

---

१ "होइ" इत्यपि पाठः । २ दुभगकम्मुदएणं दुभगो सो सव्वलोगस्स इत्यपि पाठः । व्याख्याकारेण तु "दुभगकम्मुदएणं दुब्भगओ सयल०" इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति । ३ "सव्वलोयस्स" इत्यपि पाठः, तथैव जे० । ४ 'उ' इति व्याख्याकार । ५ "विरसो" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति ।

आएज्जकम्मउदए, चिट्ठा जीवाण भासणं जं च ।
तं बहु मन्नइ लोओ, [1]अबहुमयं इयरउदएणं ॥१४६॥

(पू०) व्याख्या—आदेयनाम्नः कर्मणः 'उदये' विपाके 'चेष्टा' शरीरव्यापारलक्षणा जीवानां 'भाषणं यच्च' जल्पनं यच्च 'तत्' सर्वं 'बहु मन्यते' अन्तःप्रीतियुक्तस्तत्तथैव प्रतिपद्यते 'लोकः' जनः । अबहुमतं' अनभिप्रेतं चेष्टाजल्पादिकमितरस्य पुनरनादेयनाम्नः कर्मण उदयेन विपाकेन । इति गाथार्थः ॥१४६॥

उक्तमादेयानादेयनाम, साम्प्रतं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिनामाह—

(पारमा०) आदेयकर्मण उदये 'चेष्टा' उच्छृङ्खलरूपा जीवानां या 'भाषणं' असमञ्जसप्रलपनं यच्च तद्बहुमन्यते लोकः इतरदनादेयं, तस्योदये चेष्टा हसितललितादिका भाषणं युक्तियुक्त-स्यापि अबहुमतम् । इति गाथार्थः ।

यशःकीर्त्ययशःकीर्ती आह—

जस्सुदएणं जीवो, लहइ हु [2]कित्तिं जसं च लोगम्मि ।
तं जसनामं कम्मं, अजसुदए लहइ विवरीयं ॥१४७॥

(पू०) व्याख्या—'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'जीवः' प्राणी 'लभते तु' प्राप्नोत्येव कीर्त्तियशस्तु, एकदिग्गामिनी कीर्त्तिः, सर्वदिग्गामि यशः, अथवा—"दानपुण्यफला कीर्तिः, पराक्रमकृतं यशः" । अथवा एकमेवेदं नाम, यशसोपलक्षिता कीर्त्तिर्यशःकीर्त्तिः, कीर्त्ति-शब्दस्य पूर्वनिपातः प्राकृतत्वात्, 'लोके' जने तद्यशोनामकर्म यशःकीर्त्तिकर्मेत्यर्थः । अयशः-कीर्त्त्युदये पुनः प्राणी 'लभते' प्राप्नोति, 'विपरीतं' अयशःकीर्त्तिमासादयति । इति गाथार्थः ॥१४७॥

उक्तं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिनाम, अधुना निर्माणनामाह—

(पारमा०) 'यस्य' कर्मण उदयाज्जीवो लभते कीर्तिं परलोकगतस्यापि श्लाघनीयतारूपां, यशश्च जीवतः श्लाघतारूपं लोके तद्यशःकीर्त्तिनाम । अथवा यशसा शौण्डीर्यक्रियानुष्ठानस्वा-ध्यायध्यानादिशोभनार्थालम्बनेन कीर्तनं संशब्दनं यशःकीर्त्तिः । 'अजसुदए' इति अयशः कीर्त्त्युदये लभते 'विपरीतं' अश्लाघनीयतारूपम् । इति गाथार्थः ॥१४७॥

निर्माणमाह—

देहंगावयवाणं, लिंगागिइ जाइ नियमणं जं च ।
तहिँ सुत्तहारसरिसो, निम्माणे होइ हु विवागो ॥१४८॥

---

१ अबहुमअं इयरउदएणं इत्यपि पाठः । २ "कित्तीजसं" इत्यपि पाठः ।

(पू०) व्याख्या- देहं शरीरं तस्याङ्गानि शिरःप्रभृतीनि देहाङ्गानि, देहाङ्गानामवयवाः कर्णनासिकादयस्तेषां 'यन्नियमनं' यो नियमोऽवश्यम्भावो यस्य देहाङ्गस्य येऽवयवास्तैस्तत्र भवितव्यम् । निजाङ्गादीनां नियमनं यच्चेति, निजमात्मीयं, अङ्गमुदरप्रभृति, निजं च तदङ्गं च निजाङ्गं, निजाङ्गमादिर्येषामङ्गानां तानि निजाङ्गादीनि, यच्च तेषां नियमनम् । यस्य मनुष्यशरीरादेर्यानि शिरःप्रभृत्यङ्गानि तैस्तत्रैव भवितव्यम् न पुनर्मनुष्यशरीराङ्गावयवैर्देवादिशरीरादिषु भवितव्यम् । यस्य वा मनुष्यादेर्यच्छरीरं तस्य येऽवयवास्ते तस्मिन्नेव शरीरे भवन्त्यवयवाः । येन शरीराङ्गादिना योऽवयवो जन्यः स तदेवाङ्गं जनयति, नान्यदिति । अयमत्र भावार्थः—देहाङ्गावयवानां इत्यनेनावयवनियम उक्तः, यस्य शिरःप्रभृत्यङ्गस्य योऽवयवो नासिकाकर्णादिः, तेनावयवेन तस्मिन्नेव शिरःप्रभृत्यङ्गे भवितव्यम् । तस्मिन्नप्यङ्गे भवता नासिकादिना नासिकादिस्थान एव भवितव्यम् । निजाङ्गादीनां इत्यनेन [1]त्वङ्गनियम उक्तः, यस्य देहस्य पुरुषादेः संबन्धिनो यच्छिरः-प्रभृत्यङ्गं तेनाङ्गेन तत्रैव देहे भवितव्यम्, नान्यस्मिन्, अथवा यस्याङ्गस्य यो निजोऽवयवः स तेनैव शिरःप्रभृतिनोत्पादयितव्यः, नान्येनोरःप्रभृतिना । अथवाऽन्यथा व्याख्यायते—देहाङ्गावयवानां निजाङ्गादिषु नियमनं यत्, चकाराद्विधानं च, इत्यत्र सप्तम्यर्थे षष्ठी । तेनायमर्थः—देहाङ्गावयवैर्नासिकादिभिर्निजाङ्गादिष्वेव शिरःप्रभृतिषु भवितव्यं स्वस्थान एवेति । कस्यायं विपाकः ? इत्याह—निर्माणनाम्न एवायं 'विपाकः' उदयः 'भवति' जायते हुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् । किंभूतोऽसौ विपाकः ? इत्याह—'तहिं सुत्तहारसरिसो' 'तत्र' निर्माणे यो विपाकः स सूत्रधारसदृशः सूत्रधारो=विज्ञानिकः, तेन तुल्यः । यथा सूत्रधारो देवकुलादौ क्रियमाणे स्तम्भादावङ्गे भद्रकोणरङ्[2]प्रतिहारकादौ च यः कुम्भिकाकलशकादिरवयवो यस्मिन्नेव स्थाने युज्यते (युज्यते) कर्तुं तस्मिन्नेव प्रदेशे विज्ञानिकैः कारयत्यात्मव्यापारेण । इति गाथार्थः ॥१४८॥

उक्तं निर्माणनाम, अधुना तीर्थकरनामाह—

(पारमा०) देहं शरीरं, अङ्गानि शिरउरःप्रभृतीनि, अवयवा अङ्गुल्यादय उपाङ्गादिरूपाः, तेषां नियमनम् । यथा मनुष्यस्य द्वौ हस्तौ द्वौ पादौ इत्यादिनियमः । 'लिङ्गाकृतिजातिनियमनं' लिङ्गाकृत्योर्जातौ जन्मनि नियमनं यच्च । यथा पुरुषस्य श्मश्रुप्रमृतिलिङ्गं, अधृष्यत्वादिका चाकृतिः । स्त्रियश्च स्तनादिकं चिह्नं, अभिगम्यत्वादिका चाकृतिः । तत्र सूत्रधारतुल्यो निर्माणस्य भवति निश्चितं विपाकः । यथा सूत्रधारः शिलाकुट्टकैः कृतानि खरशिलादीनि देवकुलाङ्गानि यथास्थानं निवेशयति । तथा निर्माणमपि अङ्गोपाङ्गनाम्ना निर्मितानि शरीराङ्गादीनि । इति गाथार्थः ॥१४८॥

तीर्थकरनामाह—

---

१ त्ववयवनियम जे० । २ °प्रतिरङ्गकादौ जे० ।

उदए जस्स सुरासुर–नरवइनिवहेहिँ [1]पूइओ होइ ।
तं तित्थयरं नामं, तस्स विवागो उ केवलिणो ॥१४९॥

(पू०) व्याख्या–'उदये' विपाके 'यस्य' कर्मणः सुरा ज्योतिष्कवैमानिकाः, असुरा भवनवासिनः, नरपतयो राजानः, सुराश्चासुराश्च नरपतयश्च सुरासुरनरपतयः तेषां निवहाः संघाताः तैः, 'पूजितः' अर्चितः 'भवति, जायते तदेवंभूतं 'तीर्थकरं' तीर्थकरणशीलं, ताच्छीलि[2]कष्टः, 'नाम' नामकर्म, 'तस्य' तीर्थकरकर्मणो 'विपाकश्च' अनुभवश्च तात्त्विकः केवलिन एव तीर्थकरस्य; नाकेवलिनः तस्य समस्तैः पूजनासंभवात् । इति गाथार्थः ॥१४९॥

व्याख्यातं तीर्थकरनाम, तद्व्याख्यानात्सप्रपञ्चं नामकर्मापि व्याख्यातम् । साम्प्रतं सूत्रकार एव गोत्रप्रतिपादनायाह—

(पारमा०) 'उदये' विपाकानुभवे 'यस्य' कर्मणः, सुरा वैमानिकादयः, असुरा भवनपतिविशेषाः, नरा मनुष्यास्तेषां पतयः सौधर्मेन्द्रचमरसम्राड्राजादयः, तेषां निवहैः पूजितो भवति तत्तीर्थकरनाम, तस्य विपाकः पुनः केवलिनः । तथाहि–भगवन्तस्तीर्थकरास्तीर्थकरनामकर्मोदयाद्देवादिभिरष्टमहाप्रातिहार्यादिविरचनतः पूज्यन्ते, जघन्यतोऽपि कोटिसंख्यैः सेव्यन्ते च । गृहस्थाद्यवस्थायामपि जन्ममहादौ पूज्यन्त एव परं तस्यासन्ततत्वात् केवलोत्पादे च निरन्तरत्वात्तस्य विपाकः केवलिन इत्युक्तम् । इति गाथार्थः ॥१४९॥

अधुना नाम निगमयन् गोत्रप्रस्तावनामाह—

भणियं नामं कम्मं अहुणा गोयं तु सत्तमं भणिमो ।
तंपि कुलालसमाणं, दुविहं जह होइ [3]तह भणिमो ॥१५०॥

(पू०) व्याख्या– 'भणितं' प्रतिपादितं नामकर्म सविस्तरम् । 'अधुना' साम्प्रतं पुनर्गोत्रं तु, तुशब्दः पुनःशब्दार्थ एवशब्दार्थो वा । यदा एवकारार्थस्तदा गोत्रमेव सप्तमं संख्यया 'भणिमो' प्रतिपादयामः । पुनःशब्दार्थ उक्त एव । तदपि कुलालसमानं, तच्छब्दो गोत्रपरामर्शकः, अपिशब्दः संभावने । किं संभावयति ? तदेतद्गोत्रं कुम्भकारतुल्यं वर्तते । किंभूतं तत् ? 'द्विविधं' द्विप्रकारं 'यथा' येन प्रकारेण 'भवति' जायते 'तथा' तेन प्रकारेण 'भणामः' प्रतिपादयामः । इति गाथार्थः ॥१५०॥

अभिहितगोत्रद्वैविध्ये आद्यभेदे दृष्टान्तमाह—

१ "पूइओ लोए" इत्यपि पाठः । २ ०को-ऽस्पू जे० । ३ "तं" इत्यपि पाठः ।

(पारमा०)–'भणितं' अशेषविशेषाख्यानतः प्रतिपादितं नामकर्म षष्ठम् । 'अधुना तु' सम्प्रति पुनः 'गोत्रं' सप्तमं कर्म भणामः । तदपि गोत्रं कुलालसमानं सत् द्विविधं शुभाशुभकरणतो यथा भवति तथा भणामः । इति गाथार्थः ॥१५०॥

सम्प्रति कुलालदृष्टान्तं स्पष्टमाचष्टे—

जह इत्थ कुंभकारो, पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं ।
जं लोयाओ पूयं, पावइ [1]इह पुण्णकलसाई ॥१५१॥

(पू०) व्याख्या–'यथा' येन प्रकारेण 'अत्र' अस्मिन् लोके 'कुम्भकारः' घटकारः 'पृथिव्यां' मृत्तिकायां 'करोति' विधत्ते ईदृशं रूपमतिशयवत् । 'यद्' रूपं 'लोकात्' जनात् पूजां पुष्पचन्दनदध्यक्षतादिभिः 'प्राप्नोति' आसादयति 'इह' 'अस्मिँल्लोके' किं तत् ? इत्याह–पूर्णकलशादि, आदिशब्दादर्घपात्रादि । इति गाथार्थः ॥१५१॥

उक्त उच्चैर्गोत्रदृष्टान्तः, अधुना नीचैर्गोत्रदृष्टान्तमाह—

(पारमा०) यथाऽत्र कुम्भकारः 'पृथिव्याः' मृत्तिकाया ईदृशं रूपं करोति, यत्पूर्णकलशादि मसृणत्वादिगुणरहितमपि लोकात् पूजां प्राप्नोति । लोको हि पूर्णकलशाद्यभिमुखमायान्तमालोक्य शोभनः शकुन इति स्तुवन्नक्षतादिना पूजयतीति ॥१५१॥

भुंभुलमाई अन्नं सो च्चिय पुढवीएँ कुणइ रूवं तु ।
जं लोयाओ निंदं पावइ अकएवि मज्जम्मि ॥१५२॥

(पू०) व्याख्या–भुम्भुलो मद्यस्थानं, आदिशब्दात्कोशकादिपरिग्रहः, मकारोऽलाक्षणिकः प्राकृतत्वात् । भुम्भुला[2]द्यन्यं रूपं स एव कुम्भकारः 'पृथिव्यां' मृत्तिकायां 'करोत्येव' विधत्त एव, 'रूपं तु' उक्तलक्षणम् । यत् 'लोकात्' जनात् 'निन्दां' जुगुप्सां 'प्राप्नोति' आसादयति 'अकृतेऽपि' अस्थापितेऽपि 'मद्ये' आसवे, आस्तां तावत्कृते, कृते तु सुरां निन्दां प्राप्नोति । इति गाथार्थः ॥१५२॥

उक्तो दृष्टान्तः, अधुना दार्ष्टान्तिकमाह—

(पारमा०) 'भुम्भुलं' मद्यभाजनं, 'अन्यत्' पूर्णकलशादिव्यतिरिक्तं स एव कुम्भकारः पृथिव्या रूपं करोति । यन्मसृणत्वादिगुणवदपि लोकान्निन्दां प्राप्नोति, 'अकृतेऽपि' अस्थापितेऽपि मद्ये । तथाहि–शिष्टजनो भुम्भुलादिकं तत्कालनिष्पन्नमपि इतरभाण्डालाभेऽपि महत्यपि प्रयोजने निन्द्यत्वान्न गृह्णात्येव । इति गाथाद्वयार्थः ॥१५२॥

दार्ष्टान्तिकेन योजयति—

---

१ "जह" इत्यपि पाठः । २ ०द्यन्यत् रूपं जे० ।

एव कुलालसमाणं गोयं कम्मं तु [1]होइ जीवस्स ।
उच्चानीयविवागो, जह होइ तहा निसामेह॥१५३॥

(पू०) व्याख्या-'एव' उक्तनीत्या 'कुलालसमानं' कुम्भकारतुल्यं, किम् ? 'गोत्रमेव कर्म' कुलप्रसूतिलक्षणं 'अत्र' प्रक्रमे 'जीवस्य' प्राणिनः। तस्य च गोत्रस्योच्चैर्वर्णकारणं नीचैर्निम्नता विपाकोऽनुभवो 'यथा' येन प्रकारेण 'भवति' जायते 'तथा' तेन प्रकारेण दर्शनायाह-'निशमयत' आकर्णयत यूयम्। इति गाथार्थः ॥१५३॥

उक्तमेवोच्चैर्गोत्रविपाकं प्रदर्शयन्नाह—

(पारमा०)-'एवं' शुभाशुभवस्तुविधानात् कुम्भकारतुल्यं गोत्रं कर्म पुनर्भवति जीवस्योच्चैर्नीचैर्विपाको यथा भवति तथा निशमयत। इति गाथार्थः ॥१५३॥

तत्रोच्चैर्गोत्रविपाकमाह—

[2]अधणी बुद्धिविउत्तो रूवविहूणोवि जस्स उदएणं ।
[3]लोयम्मि लहइ पूयं, उच्चागोयं तयं होइ ॥१५४॥

(पू०) व्याख्या-'अधनः' अविद्यमानधनो बुद्धया वियुक्तो बुद्धिवियुक्तो बुद्धिरहितो, रूपेण विहीनः रूपविहीनः, सोऽपि आस्तां रूपयुक्तो 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'लोके' जने 'लभते' प्राप्नोति 'पूजां' अभ्यर्चनं वस्त्रालङ्कारस्रगादिभिरुच्चैर्गोत्रनामकर्म तद्भवति विज्ञेयम्। इति गाथार्थः ॥१५४॥

उक्त उच्चैर्गोत्रविपाकः, अधुना नीचैर्गोत्रविपाकमाह—

(पारमा०) 'अधनो' धनहीनः 'बुद्धिवियुक्तः' मतिनिर्मुक्तः 'रूपविहीनः' रूपरहितोऽपि 'यस्य' कर्मण उदयेन लोके जातिमात्रादेव पूजां लभते, तदुच्चैर्गोत्रं पूर्णकलशकारिकुम्भकारतुल्यम्। इति गाथार्थः ॥१५४॥

नीचैर्गोत्रविपाकमाह—

[4]सघणो रूवेण जुओ, बुद्धीनिउणोवि जस्स उदएणं ।
[5]लोयम्मि लहइ निन्दं, एयं पुण होइ नीयं तु ॥१५५॥

व्याख्या-'सधनो' विद्यमानधनः 'रूपेण युक्तः' रूपसहितः, बुद्धया निपुणो मतिनि-

---

१ 'इत्थ' इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति। २ व्याख्याकारेण "अधणो" इति पाठानुसारेण व्याख्यातमस्ति। ३-५ "लोगम्मि" इत्यपि पाठः॥ ४ "संघणी" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति।

पुणः, सोऽप्येवंविधो 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'लोके' जने 'लभते' प्राप्नोति 'निन्दां' जुगुप्सां, अकुलीनोऽयं किमस्य गुणैः ? एतत्पुनः कर्म नीचैर्गोत्रं निकृष्टगोत्रं विज्ञेयम् । इति गाथार्थः ॥१५५॥

प्रतिपादितं गोत्रकर्म, अधुना गोत्रनिगमनपूर्वकमन्तरायमाह—

(पारमा०) सधनो रूपेण युक्तो बुद्धिनिपुणोऽपि 'यस्य' कर्मण उदयेन लोके धृतिकापुत्रोऽयमित्यादिनिन्दां लभते । एतत्पुनर्भवति 'नोयं तु' इति नीचैर्गोत्रं क्षुम्भुलककारिकुम्भकारप्रतिमम् । इति गाथार्थः ॥१५५॥

गोत्रं निगमयन्नन्तरायकप्रस्तावनामाह—

'गोयं' भणियं अहुणा, अट्ठमयं 'अंतरायय' होइ ।
तं भंडारियसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥१५६॥

(पू०) व्याख्या-'गोत्रं' सप्तमं कर्म 'भणितं' प्रतिपादितम् । 'अधुना' साम्प्रतं अष्टममेवाष्टमकं, अन्तराये भवमान्तरायिकं कर्म 'भणामः' पतिपादयामः, तत्किंभूतम् ? इत्याह—'भाण्डारिकसदृशं' भाण्डागारनियुक्तपुरुषतुल्यं (यथा भवति) तथैव 'निशमयत' आकर्णयत यूयं कथ्यमानमिति शेषः । इति गाथार्थः ॥१५६॥

अत्रैवार्थे दृष्टान्तमाह अन्वयव्यतिरेकाभ्याम्—

(पारमा०) गोत्रं भणितम्, अधुनाऽष्टमकं अन्तरायकं भवति तद्भाण्डागारिकसदृशं यथा भवति तथा 'निशमयत' शृणुत । इति गाथार्थः ॥१५६॥

प्रतिज्ञातमाह—

जइ राया इह भंडारिएण विणिएण कुणइ [3]दाणाई ।
तेण उ पडिकूलेणं, न कुणइ सो [4]दाणमाईणि ॥१५७॥

(पू०) व्याख्या—यथेति दृष्टान्तार्थः । यथा 'राजा' नरपतिः 'इह' अस्मिँल्लोके 'भाण्डारिकेण' स्वनियोगिकेन 'विनीतेन' स्वायत्तेन 'करोति' विधत्ते दानमादौ येषां तानि दानादीनि, आदिशब्दाद्भोगोपभोगपरिग्रहः 'तेन तु प्रतिकूलेन' तेन पुनर्विबन्धकेन निषेधकेन 'न करोत्येव' न वितरत्येव 'स' राजा दानादि तु, आदिशब्दाद्भोगोपभोगादिपरिग्रहः । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । इति गाथार्थः ॥१५७॥

---

१ "गुत्तं" इत्यपि पाठः । २ "अंतराइयं भणिमो" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातम् । ३ "दाणाइं" इत्यपि पाठः । ४ "दाणमाई उ" इति व्याख्यातारः ।

अभिहितो दृष्टान्तः, अधुना दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथा राजा 'इह' लोके भाण्डागारिकेण विनीतेन दानादीनि करोति । तेन तु प्रतिकूलेन कुतोऽपि वैगुण्यादविधेयेन न करोति स राजा दानादीनि । इति गाथार्थः ॥१५७॥

जह राया तह जीवो, भंडारी जह 'तहंतराय' [2]च ।
तेण उ विबंधएणं न कुणइ सो [3]दाणमाईणि ॥१५८॥

(पू०) व्याख्या—यथा राजा तथा जीवः तत्तुल्यो भाण्डारिको यथा तथाऽन्तरायिकं कर्म भवति भाण्डागारिकसदृशं जायते । अयमत्र भावार्थः—यदा तदन्तरायं क्षयोपशमादनुकूलं भवति जीवस्य तदाऽसौ दानादीनि करोति । 'तेन तु' पुनरन्तरायकर्मणा 'विबन्धकेन' प्रतिकूलेन न करोति स जीवो दानभोगादि आदिशब्दादुपभोगादिपरिग्रहः । इति गाथार्थः ॥१५८॥

तदेवान्तरायं संख्याभेदेन दर्शयति—

(पारमा०) यथा राजा तथा जीवः, यथा भाण्डागारिकस्तथाऽन्तरायं पुनः । 'तेन' त्वन्तरायेण 'विबन्धकेन' प्रतिकूलेन न करोति स जीवो दानादीनि । इति गाथार्थः ॥१५८॥

सम्प्रति पञ्चप्रकारत्वमाह—

तं दाणलाभभोगो—वभोगविरियंतराय [4]पंचमयं ।
एएसिं तु विवागं [5]वोच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥१५९॥

(पू०) व्याख्या—तद् दानं च लाभश्च भोगश्च उपभोगश्च वीर्यं चेति द्वन्द्वः, एतेषामन्तरायं विघ्नः लुप्तानुस्वारमन्तरायपदं प्राकृतत्वात्, 'पञ्चमयं' पञ्चभेदः । दानं त्रिविधम्, ज्ञानदानम्, अभयदानम्, धर्मोपग्रहदानम् । लाभोऽनेकप्रकारः, दायकादादेयप्राप्तिः । भुज्यत इति भोग आहारपुष्पादिः, उप सामीप्येन पुनः पुनर्वा भुज्यते उपभोगः । वीर्यमान्तरः शक्तिविशेषः । अन्तरायशब्दो विघातकः, स च प्रत्येकं संबध्यते । एतेषां पुनः 'विपाकं' अनुभवं 'वोच्छामि' वक्ष्ये 'यथाऽऽनुपूर्व्या' यथापरिपाट्या । इति गाथार्थः ॥१५९॥

दानान्तरायस्य विषयमाह—

(पारमा०) 'तत्' अन्तरायं दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायाः पञ्च प्रकृता अस्मिन् दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायपञ्चमयम् । एतेषां तु दानादीनां विपाकं भणामि 'यथानुपूर्व्या' आनुपूर्व्यनतिक्रमेण । इति गाथार्थः ॥१५६॥

---

१ व्याख्याकारेण तु "तहंतराईय" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । २ "तु" इत्यपि पाठः । ३ व्याख्याकारेण तु "दाणभोगाई" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम् । ४ "पंचविहं" इत्यपि पाठः । ५ "वुच्छामि" इत्यपि पाठः, "भणामि य" इति पाठानुसारेण परमानन्दसूरीभिर्व्याख्यातम् ॥

पुणः, सोऽप्येवंविधो 'यस्य' कर्मणः 'उदयन' विपाकेन 'लोके' जने 'लभते' प्राप्नोति 'निन्दां' जुगुप्सां, अकुलीनोऽयं किमस्य गुणैः? एतत्पुनः कर्म नीचैर्गोत्रं निकृष्टगोत्रं विज्ञेयम्। इति गाथार्थः ॥१५५॥

प्रतिपादितं गोत्रकर्म, अधुना गोत्रनिगमनपूर्वकमन्तरायमाह—

(पारमा०) सधनो रूपेण युक्तो बुद्धिनिपुणोऽपि 'यस्य' कर्मण उदयेन लोके धृतिका-पुत्रोऽयमित्यादिनिन्दां लभते। एतत्पुनर्भवति 'नीयं तु' इति नीचैर्गोत्रं सुम्भुलककारिकुम्भ-कारप्रतिमम्। इति गाथार्थः ॥१५५॥

गोत्रं निगमयन्नन्तरायकप्रस्तावनामाह—

[1]गोयं भणियं अहुणा, अट्ठमयं [2]अंतराययं होइ।
तं भंडारियसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥१५६॥

(पू०) व्याख्या–'गोत्रं' सप्तमं कर्म 'भणितं' प्रतिपादितम्। 'अधुना' साम्प्रतं अष्टम-मेवाष्टमकं, अन्तराये भवमान्तरायिकं कर्म 'भणामः' पतिपादयामः, तत्किंभूतम्? इत्याह– 'भाण्डारिकसदृशं' भाण्डागारनियुक्तपुरुषतुल्यं (यथा भवति) तथैव 'निशमयत' आक-र्णयत यूयं कथ्यमानमिति शेषः। इति गाथार्थः ॥१५६॥

अत्रैवार्थे दृष्टान्तमाह अन्वयव्यतिरेकाभ्याम्—

(पारमा०) गोत्रं भणितम्, अधुनाऽष्टमकं अन्तरायकं भवति तद्भाण्डागारिकसदृशं यथा भवति तथा 'निशमयत' शृणुत। इति गाथार्थः ॥१५६॥

प्रतिज्ञातमाह—

जइ राया इह भंडारिएण विणिएण कुणइ [3]दाणाई।
तेण उ पडिकूलेणं, न कुणइ सो [4]दाणमाईणि ॥१५७॥

(पू०) व्याख्या–यथेति दृष्टान्तार्थः। यथा 'राजा' नरपतिः 'इह' अस्मिँल्लोके 'भाण्डा-रिकेण' स्वनियोगिकेन 'विनीतेन' स्वायत्तेन 'करोति' विधत्ते दानमादौ येषां तानि दाना-दीनि, आदिशब्दाद्भोगोपभोगपरिग्रहः 'तेन तु प्रतिकूलेन' तेन पुनर्विबन्धकेन निषेधकेन 'न करोत्येव' न वितरत्येव 'स' राजा दानादि तु, आदिशब्दाद्भोगोपभोगादिपरिग्रहः। तुशब्दस्यै-वकारार्थत्वात्। इति गाथार्थः ॥१५७॥

---

१ "गुत्तं" इत्यपि पाठः। २ "अंतराइयं भणिमो" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्या-नम्। ३ "दाणाइं" इत्यपि पाठः। ४ "दाणमाई उ" इति व्याख्यावारः।

अभिहितो दृष्टान्तः, अधुना दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

(पारमा०) यथा राजा 'इह' लोके भाण्डागारिकेण विनीतेन दानादीनि करोति। तेन तु प्रतिकूलेन कुतोऽपि वैगुण्यादविधेयेन न करोति स राजा दानादीनि। इति गाथार्थः ॥१५७॥

जह राया तह जीवो, भंडारी जह [1]तहंतराय [2]च।
तेण उ विबंधएणं न कुणइ सो [3]दाणमाईणि ॥१५८॥

(पू०) व्याख्या—यथा राजा तथा जीवः तत्तुल्यो भाण्डारिको यथा तथाऽन्तरायिकं कर्म भवति भाण्डागारिकसदृशं जायते। अयमत्र भावार्थः—यदा तदन्तरायं क्षयोपशमादनुकूलं भवति जीवस्य तदाऽसौ दानादीनि करोति। 'तेन तु' पुनरन्तरायकर्मणा 'विघ्नचकेन' प्रतिकूलेन न करोति स जीवो दानभोगादि आदिशब्दादुपभोगादिपरिग्रहः। इति गाथार्थः ॥१५८॥

तदेवान्तरायं संख्याभेदेन दर्शयति—

(पारमा०) यथा राजा तथा जीवः, यथा भाण्डागारिकस्तथाऽन्तरायं पुनः। 'तेन' तन्तरायेण 'विघ्नचकेन' प्रतिकूलेन न करोति स जीवो दानादीनि। इति गाथार्थः ॥१५८॥

सम्प्रति पञ्चप्रकारत्वमाह—

तं दाणलाभभोगो-वभोगविरियंतराय [4]पंचमयं।
एएसिं तु विवागं [5]वोच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥१५९॥

(पू०) व्याख्या—तद् दानं च लाभश्च भोगश्च उपभोगश्च वीर्यं चेति द्वन्द्वः, एतेषामन्तरायं विघ्नः लुप्तानुस्वारमन्तरायपदं प्राकृतत्वात्, 'पञ्चमयं' पञ्चभेदः। दानं त्रिविधम्, ज्ञानदानम्, अभयदानम्, धर्मोपग्रहदानम्। लाभोऽनेकप्रकारः, दायकाददेयप्राप्तिः। भुज्यत इति भोग आहारपुष्पादिः, उप सामीप्येन पुनः पुनर्वा भुज्यते उपभोगः। वीर्यमान्तरः शक्तिविशेषः। अन्तरायशब्दो विघातकः, स च प्रत्येकं संबध्यते। एतेषां पुनः 'विपाकं' अनुभवं 'वोच्छामि' वक्ष्ये 'यथाऽऽनुपूर्व्या' यथापरिपाट्या। इति गाथार्थः ॥१५९॥

दानान्तरायस्य विषयमाह—

(पारमा०) 'तत्' अन्तरायं दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायाः पञ्च प्रकृता अस्मिन् दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायपञ्चमयम्। एतेषां तु दानादीनां विपाकं भणामि 'यथानुपूर्व्या' आनुपूर्व्यनतिक्रमेण। इति गाथार्थः ॥१५९॥

---

१ व्याख्याकारेण तु "तहंतराइयं" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम्। २ "तु" इत्यपि पाठः। ३ व्याख्याकारेण तु "दाणभोगाई" इति पाठानुसारेण व्याख्यातम्। ४ "पंचविहं" इत्यपि पाठः। ५ "वुच्छामि" इत्यपि पाठः, "भणामि य" इति पाठानुसारेण परमानन्दसूरीभिर्व्याख्यातम्॥

तत्र दानान्तरायमाह—

सइ फासुयंमि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई विउलं ।
बंभञ्चेराइजुयं, पत्तंपि य विज्जए तत्थ ॥१६०॥

(पू०) व्याख्या–'सति' विद्यमाने 'प्रासुके' निर्जीवे 'दाने' देयवस्तुनि, तथा न केवलं देयमस्ति, दानस्य यत् फलं स्वर्गापवर्गलक्षणं, तच्च बुध्यते 'अतुलं' अनन्यसाधारणं, न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादियुक्तम्, आदिशब्दादहिंसादिपरिग्रहः । पात्रमपि च देययोग्यं साधुरूपमपि च 'विद्यते' अस्ति 'अत्र' लोके दान[2]प्रस्तावे । इति गाथार्थः ॥१६०॥

उक्तं दानकारणम्, सत्यपि तस्मिन् दानान्तरायमाह—

(पारमा०) 'सति' विद्यमाने 'प्रासुके' यतिजनग्रहणोचिते 'दाने' देयवस्तुनि न केवलं देयमस्ति । तथा दानफलं च 'अतुल्यं' असाधारणं स्वर्गापवर्गादि 'बुध्यते' जानाति दान-सामग्रीपतितो जीव इति गम्यम् । न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादीति ब्रह्मचर्यज्ञानतपोयुक्तं पात्रमपि च विद्यते तत्रेति दानप्रस्तावे ॥१६०॥

दाउं नवरि न सक्कइ, दाणविघायस्स [3]कम्मणो उदए ।
दाणंतरायमेयं, लाभेवि य भण्णए विग्घं ॥१६१॥

(पू०) व्याख्या–दानसामग्र्यां सत्यामपि 'दातुं' प्रयच्छयितुं (वितरीतुं) 'नवरं' केवलं 'न शक्नोति' न शक्तो भवति, क्व सति ? इत्याह–'दानविघातस्य कर्मण उदये' वितरण-विघ्नकरस्य कर्मणो विपाके दानान्तरायं 'एतत्' कर्म । यदस्मिन् सति दानसामग्रीसद्भावेऽपि दानं न करोति । दानान्तरायमिदं प्रत्यक्षोक्तं । लाभेऽपि च, न केवलं दाने 'भण्यते' प्रति-पाद्यते 'विघ्न[1]' अन्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६१॥

तदेवाह—

(पारमा०) केवलमेवंविधायामपि सामग्र्यां 'दानविघातस्य' दानविघ्नकरस्य कर्मण उदयाद्दातुं न शक्नोति, एतद्दानान्तरायम् । लाभान्तरायं प्रस्तौति–लाभेऽपि च भण्यते 'विघ्न' अन्तरायम् । इति गाथाद्वयार्थः ॥१६१॥

प्रतिज्ञातमाह—

---

१ व्याख्याकारेण तु "इत्य" इति पाठ आहतः । २ ०प्रस्तावे च । जे० । ३ कम्मुणो इत्यपि पाठः ।

जइवि पसिद्धो दाया, जायणनिउणोवि जायगो [1]जइवि ।
[2]न लहइ जस्सुदएणं, एयं पुण लाभविग्घं तु ॥१६२॥

(पू०) व्याख्या—यद्यपि प्रसिद्धो भवति दाता, सर्वजनदायकत्वेन प्रसिद्धिं गतः, एकः कश्चित्कस्यचिद्ददाति कस्यचिन्न स न प्रसिद्धः । यस्तु सार्वजनिकः स प्रसिद्धो भवति दाता । यद्यपि दाता प्रसिद्धो भवति तथाऽपि याचको न निपुणः ततो दानं न प्रवर्तते इत्याह—याचना=मार्गणा तत्र निपुणो विज्ञानवान्, तथा [3]याचते यथाऽदातापि ददाति, किं पुनर्दाता ? । याचको [4]यद्यप्येवंभूतस्तथाऽपि नापि(?) 'नैव लभते' न प्राप्नोति दातुः सकाशात्, 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेनैतत्पुनः 'लाभविघ्नं तु' लाभान्तरायमेव । ननु तद्दानान्तरायमेव किमितिकृत्वा दातुर्नोच्यते, यावल्लाभान्तरायमुच्यते [5]याचितुः ?, उच्यते—स्यादिदं वचो दानान्तरायमेव तन्न लाभान्तरायम् । यदि दाता यथा तस्य विवक्षितस्य न ददाति तथाऽन्यस्यापि यदि न कस्यचिद्दद्यात्तदा त्वदुक्तमेव स्यात् । यावता त्वसौ विवक्षितस्यैव न ददाति, अन्यस्य तु पुनः सर्वस्यापि ददाति तस्माल्लाभान्तरायमेव तत्, न दानान्तरायं दायकविषयं हि तद् ग्राहकविषयं तु, लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

उक्तं लाभान्तरायम् । अधुना भोगोपभोगसाधनसत्तायामप्युपभोगभोगयोर्विघ्नमाह—

(पारमा०) यद्यपि प्रसिद्धो दाता सर्वजनदायकत्वेन । यः किल कस्यचिद्ददाति कस्यचिन्न तस्मान्न निश्चयेन लाभः संभवतीति प्रसिद्धोपादानम् । एवंविधेऽपि दातरि अकालमार्गणउच्छृङ्खलभाषणादियाचकवैगुण्यादपि न दानसंभव इत्याह—याचननिपुणश्च याचको यद्यपि प्रसादपरं ज्ञात्वा प्रह्लादयन् तथा याचते यथाऽदाताऽपि ददाति, किं पुनर्दाता ? । तथाऽपि न लभते 'यस्य' कर्मण उदयेन, एतत्पुनर्लाभविघ्नं लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

अथ भोगोपभोगयोर्विघ्नमाह—

मणुयत्तेवि [6]हु पत्ते, [7]लद्धे वि हु भोगसाहणे विभवे ।
भुत्तुं नवरि न सक्कइ, विरइविहूणोवि जस्सुदए ॥१६३॥

(पू०) व्याख्या—मनुष्यत्वं पुरुषत्वं प्रधानं भोगोपभोगकरणं विकलादिगतौ तदयोग्यत्वात् तस्मात्तत्प्राप्तिरेव दुर्लभा, अतो दुर्लभे मनुजत्वे प्राप्तेऽपि तथा मनुजत्वे सत्यपि प्रधानं भोगकारणं विभवः, तदभावे तेषां भोक्तुमशक्य[8]त्वात्परिभोक्तुम् (?), अत आह—'लब्धेऽपि च'

---

१ "जयवि" (?) इत्यपि पाठः । २ "न वि लब्भइ जस्सुदए" इत्यपि पाठः । ३ याचयति (?) जे० । ४ यदा-ऽपि (?) जे० । ५ याचयितुः (?) जे० । ६ "य" इत्यपि पाठः । ७ "लद्धेवि य भोगसाहणे विभवे । इयभुंजिउं न सक्कइ" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति । ८ त्वात्, अत जे० ।

तत्र दानान्तरायमाह—

सइ फासुयंमि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई विउलं ।
बंभच्चेराइजुयं, पत्तंपि य विज्जए [1]तत्थ ॥१६०॥

(पू०) व्याख्या–'**सति**' विद्यमाने '**प्रासुके**' निर्जीवे '**दाने**' देयवस्तुनि, तथा न केवलं देयमस्ति, दानस्य यत् फलं स्वर्गापवर्गलक्षणं, तच्च वुध्यते '**अतुलं**' अनन्यसाधारणं, न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादियुक्तम्, आदिशब्दादहिंसादिपरिग्रहः । पात्रमपि च देययोग्यं साधुरूपमपि च '**विद्यते**' अस्ति '**अत्र**' लोके दान[2]प्रस्तावे । इति गाथार्थः ॥१६०॥

उक्तं दानकारणम्, सत्यपि तस्मिन् दानान्तरायमाह—

(पारमा०) '**सति**' विद्यमाने '**प्रासुके**' यतिजनग्रहणोचिते '**दाने**' देयवस्तुनि न केवलं देयमस्ति । तथा दानफलं च '**अतुल्यं**' असाधारणं स्वर्गापवर्गादि '**बुध्यते**' जानाति दानसामग्रीपतितो जीव इति गम्यम् । न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादीति ब्रह्मचर्यज्ञानतपोयुक्तं पात्रमपि च विद्यते तत्रेति दानप्रस्तावे ॥१६०॥

दाउं नवरि न सक्कइ, दाणविघायस्स [3]कम्मणो उदए ।
दाणंतरायमेयं, लाभेवि य भण्णए विग्घं ॥१६१॥

(पू०) व्याख्या–दानसामग्र्यां सत्यामपि '**दातुं**' प्रयच्छयितुं (वितरीतुं) '**नवरं**' केवलं '**न शक्नोति**' न शक्तो भवति, क सति ? इत्याह–'**दानविघातस्य कर्मण उदये**' वितरणविघ्नकरस्य कर्मणो विपाके दानान्तरायं '**एतत्**' कर्म । यदस्मिन् सति दानसामग्रीसद्भावेऽपि दानं न करोति । दानान्तरायमिदं प्रत्यक्षोक्तं । लाभेऽपि च, न केवलं दाने '**भण्यते**' प्रतिपाद्यते '**विघ्नं**' अन्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६१॥

तदेवाह—

(पारमा०) केवलमेवंविधायामपि सामग्र्यां '**दानविघातस्य**' दानविघ्नकरस्य कर्मण उदयाद्दातुं न शक्नोति, एतद्दानान्तरायम् । लाभान्तरायं प्रस्तौति–लाभेऽपि च भण्यते '**विघ्नं**' अन्तरायम् । इति गाथाद्वयार्थः ॥१६१॥

प्रतिज्ञातमाह—

---

१ व्याख्याकारेण तु "इत्थ" इति पाठ आहतः । २ ०प्रस्तावे च । जे० । ३ कम्मुणो इत्यपि पाठः ।

जइवि पसिद्धो दाथा, जायणनिउणोवि जायगो [1]जइवि ।
[2]न लहइ जस्सुदएणं, एयं पुण लाभविग्घं तु ॥१६२॥

(पू०) व्याख्या—यद्यपि प्रसिद्धो भवति दाता, सर्वजनदायकत्वेन प्रसिद्धिं गतः, एकः कश्चित्कस्यचिद्ददाति कस्यचिन्न स न प्रसिद्धः । यस्तु सार्वजनिकः स प्रसिद्धो भवति दाता । यद्यपि दाता प्रसिद्धो भवति तथाऽपि याचको न निपुणः ततो दानं न प्रवर्तते इत्याह—याचना=मार्गणा तत्र निपुणो विज्ञानवान्, तथा [3]याचते यथाऽदातापि ददाति, किं पुनर्दाता ? । याचको [4]यद्यप्येवंभूतस्तथाऽपि नापि(?) 'नैव लभते' न प्राप्नोति दातुः सकाशात्, 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेनैतत्पुनः 'लाभविघ्नं तु' लाभान्तरायमेव । ननु तद्दानान्तरायमेव किमितिकृत्वा दातुर्नोच्यते, यावल्लाभान्तरायमुच्यते [5]याचितुः ?, उच्यते—स्यादिदं वचो दानान्तरायमेव तन्न लाभान्तरायम् । यदि दाता यथा तस्य विवक्षितस्य न ददाति तथाऽन्यस्यापि यदि न कस्यचिद्दद्यात्तदा त्वदुक्तमेव स्यात् । यावता त्वसौ विवक्षितस्यैव न ददाति, अन्यस्य तु पुनः सर्वस्यापि ददाति तस्माल्लाभान्तरायमेव तत्, न दानान्तरायं दायकविषयं हि तद् ग्राहकविषयं तु, लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

उक्तं लाभान्तरायम् । अधुना भोगोपभोगसाधनसत्तायामप्युपभोगभोगयोर्विघ्नमाह—

(पारमा०) यद्यपि प्रसिद्धो दाता सर्वजनदायकत्वेन । यः किल कस्यचिद्ददाति कस्यचिन्न तस्मान्न निश्चयेन लाभः संभवतीति प्रसिद्धोपादानम् । एवंविधेऽपि दातरि अकालमार्गणउच्छृङ्खलमापणादियाचकत्रैगुण्यादपि न दानसंभव इत्याह—याचननिपुणश्च याचको यद्यपि प्रसादपरं ज्ञात्वा प्रह्लादयन् तथा याचते यथाऽदाताऽपि ददाति, किं पुनर्दाता ? । तथाऽपि न लभते 'यस्य' कर्मण उदयेन, एतत्पुनर्लाभविघ्नं लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

अथ भोगोपभोगयोर्विघ्नमाह—

मणुयत्तोवि [6]हु पत्तो, [7]लद्धेवि हु भोगसाहणे विभवे ।
भुत्तुं नवरि न सक्कइ, विरइविहूणोवि जस्सुदए ॥१६३॥

(पू०) व्याख्या—मनुष्यत्वं पुरुषत्वं प्रधानं भोगोपभोगकरणं विकलादिगतौ तदयोग्यत्वात् तस्मात्तत्प्राप्तिरेव दुर्लभा, अतो दुर्लभे मनुजत्वे प्राप्तेऽपि तथा मनुजत्वे सत्यपि प्रधानं भोगकारणं विभवः, तदभावे तेषां भोक्तुमशक्य[8]त्वात्परिभोक्तुम् (?), अत आह—'लब्धेऽपि च'

१ "जयवि" (?) इत्यपि पाठः । २ "न वि लब्भइ जस्सुदए" इत्यपि पाठः । ३ याचयति (?) जे० । ४ यदा-ऽपि (?) जे० । ५ याचयितुः (?) जे० । ६ "य" इत्यपि पाठः । ७ "लद्धेवि य भोगसाहणे विभवे । उयभुंजिउं न सक्कइ" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति । ८ त्वात्, अत जे० ।

तत्र दानान्तरायमाह—

सइ फासुयंमि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई विउलं।
बंभच्चेराइजुयं, पत्तंपि य विज्जए [1]तत्थ ॥१६०॥

(पू०) व्याख्या—'सति' विद्यमाने 'प्रासुके' निर्जीवे 'दाने' देयवस्तुनि, तथा न केवलं देयमस्ति, दानस्य यत् फलं स्वर्गापवर्गलक्षणं, तच्च बुध्यते 'अतुलं' अनन्यसाधारणं, न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादियुक्तम्, आदिशब्दादहिंसादिपरिग्रहः। पात्रमपि च देययोग्यं साधुरूपमपि च 'विद्यते' अस्ति 'अत्र' लोके दान[2]प्रस्तावे। इति गाथार्थः ॥१६०॥

उक्तं दानकारणम्, सत्यपि तस्मिन् दानान्तरायमाह—

(पारमा०) 'सति' विद्यमाने 'प्रासुके' यतिजनग्रहणोचिते 'दाने' देयवस्तुनि न केवलं देयमस्ति। तथा दानफलं च 'अतुल्यं' असाधारणं स्वर्गापवर्गादि 'बुध्यते' जानाति दानसामग्रीपतितो जीव इति गम्यम्। न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादीति ब्रह्मचर्यज्ञानतपोयुक्तं पात्रमपि च विद्यते तत्रेति दानप्रस्तावे ॥१६०॥

दाउं नवरि न सक्कइ, दाणविघायस्स [3]कम्मणो उदए।
दाणंतरायमेयं, लाभेवि य भण्णए विग्घं ॥१६१॥

(पू०) व्याख्या—दानसामग्र्यां सत्यामपि 'दातुं' प्रयच्छयितुं (वितरीतुं) 'नवरं' केवलं 'न शक्नोति' न शक्तो भवति, क्व सति? इत्याह—'दानविघातस्य कर्मण उदये' वितरणविघ्नकरस्य कर्मणो विपाके दानान्तरायं 'एतत्' कर्म। यदस्मिन् सति दानसामग्रीसद्भावेऽपि दानं न करोति। दानान्तरायमिदं प्रत्यक्षोक्तं। लाभेऽपि च, न केवलं दाने 'भण्यते' प्रतिपाद्यते 'विघ्नं' अन्तरायम्। इति गाथार्थः ॥१६१॥

तदेवाह—

(पारमा०) केवलमेवंविधायामपि सामग्र्यां 'दानविघातस्य' दानविघ्नकरस्य कर्मण उदयाद्दातुं न शक्नोति, एतद्दानान्तरायम्। लाभान्तरायं प्रस्तौति—लाभेऽपि च भण्यते 'विघ्नं' अन्तरायम्। इति गाथाद्वयार्थः ॥१६१॥

प्रतिज्ञातमाह—

---

१ व्याख्याकारेण तु "इत्थ" इति पाठ आदृतः। २ ०प्रस्तावे च। जै०। ३ कम्मुणो इत्यपि पाठः।

जइवि पसिद्धो दाया, जायणनिउणोवि जायगो [1]जइवि ।
[2]न लहइ जस्सुदएणं, एयं पुण लाभविग्घं तु ॥१६२॥

(पू०) व्याख्या–यद्यपि प्रसिद्धो भवति दाता, सर्वजनदायकत्वेन प्रसिद्धिं गतः, एकः कश्चित्कस्यचिद्दाति कस्यचिन्न स न प्रसिद्धः । यस्तु सार्वजनिकः स प्रसिद्धो भवति दाता । यद्यपि दाता प्रसिद्धो भवति तथाऽपि याचको न निपुणः ततो दानं न प्रवर्तते इत्याह–याचना=मार्गणा तत्र निपुणो विज्ञानवान्, तथा [3]याचते यथाऽदातापि ददाति, किं पुनर्दाता ? । याचको [4]यद्यप्येवंभूतस्तथाऽपि नापि(?) 'नैव लभते' न प्राप्नोति दातुः सकाशात्, 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेनैतत्पुनः 'लाभविघ्नं तु' लाभान्तरायमेव । ननु तद्दानान्तरायमेव किमितिकृत्वा दातुर्नोच्यते, यावल्लाभान्तरायमुच्यते [5]याचितुः ?, उच्यते–स्यादिदं वचो दानान्तरायमेव तन्न लाभान्तरायम् । यदि दाता यथा तस्य विवक्षितस्य न ददाति तथाऽन्यस्यापि यदि न कस्यचिद्दद्यात्तदा त्वदुक्तमेव स्यात् । यावता त्वसौ विवक्षितस्यैव न ददाति, अन्यस्य तु पुनः सर्वस्यापि ददाति तस्माल्लाभान्तरायमेव तत्, न दानान्तरायं दायकविषयं हि तद् ग्राहकविषयं तु, लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

उक्तं लाभान्तरायम् । अधुना भोगोपभोगसाधनसत्तायामप्युपभोगभोगयोर्विघ्नमाह—

(पारमा०) यद्यपि प्रसिद्धो दाता सर्वजनदायकत्वेन । यः किल कस्यचिद्दाति कस्यचिन्न तस्मान्न निश्चयेन लाभः संभवतीति प्रसिद्धोपादानम् । एवंविधेऽपि दातरि अकालमार्गणउच्छृङ्खलभाषणादियाचकवैगुण्यादपि न दानसंभव इत्याह–याचननिपुणश्च याचको यद्यपि प्रसादपरं ज्ञात्वा प्रह्लादयन् तथा याचते यथाऽदाताऽपि ददाति, किं पुनर्दाता ? । तथाऽपि न लभते 'यस्य' कर्मण उदयेन, एतत्पुनर्लाभविघ्नं लाभान्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६२॥

अथ भोगोपभोगयोर्विघ्नमाह—

मणुयत्तेवि [6]हु पत्ते, [7]लद्धे वि हु भोगसाहणे विभवे ।
भुत्तुं नवरि न सक्कइ, विरइविहूणोवि जस्सुदए ॥१६३॥

(पू०) व्याख्या–मनुष्यत्वं पुरुषत्वं प्रधानं भोगोपभोगकारणं विकलादिगतौ तदयोग्यत्वात् तस्मात्तत्प्राप्तिरेव दुर्लभा, अतो दुर्लभे मनुजत्वे प्राप्तेऽपि तथा मनुजत्वे सत्यपि प्रधानं भोगकारणं विभवः, तदभावे तेषां भोक्तुमशक्य[8]त्वात्परिभोक्तुम् (?), अत आह—'लब्धेऽपि च'

---

१ "जयवि" (?) इत्यपि पाठः । २ "न वि लब्भइ जस्सुदए" इत्यपि पाठः । ३ याच्यति (?) जे० । ४ यदा-ऽपि (?) जे० । ५ याचयितुः (?) जे० । ६ "य" इत्यपि पाठः । ७ "लद्धेवि य भोगसाहणे विभवे । उवभुजिउं न सक्कइ" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति । ८ त्वात्, अत जे० ।

तत्र दानान्तरायमाह—

सइ फासुयंमि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई विउलं ।
बंभञ्चेराइजुयं, पत्तंपि य विज्जए [1]तत्थ ॥१६०॥

(पू०) व्याख्या-'सति' विद्यमाने 'प्रासुके' निर्जीवे 'दाने' देयवस्तुनि, तथा न केवलं देयमस्ति, दानस्य यत् फलं स्वर्गापवर्गलक्षणं, तच्च बुध्यते 'अतुलं' अनन्यसाधारणं, न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादियुक्तम्, आदिशब्दादहिंसादिपरिग्रहः । पात्रमपि च देययोग्यं साधुरूपमपि च 'विद्यते' अस्ति 'अत्र' लोके दान[2]प्रस्तावे । इति गाथार्थः ॥१६०॥

उक्तं दानकारणम्, सत्यपि तस्मिन् दानान्तरायमाह—

(पारमा०) 'सति' विद्यमाने 'प्रासुके' यतिजनग्रहणोचिते 'दाने' देयवस्तुनि न केवलं देयमस्ति । तथा दानफलं च 'अतुल्यं' असाधारणं स्वर्गापवर्गादि 'बुध्यते' जानाति दान-सामग्रीपतितो जीव इति गम्यम् । न केवलं फलं वेत्ति, ब्रह्मचर्यादीति ब्रह्मचर्यज्ञानतपोयुक्तं पात्रमपि च विद्यते तत्रेति दानप्रस्तावे ॥१६०॥

दाउं नवरि न सक्कइ, दाणविघायस्स [3]कम्मणो उदए ।
दाणंतरायमेयं, लाभेवि य भण्णए विग्घं ॥१६१॥

(पू०) व्याख्या-दानसामग्र्यां सत्यामपि 'दातुं' प्रयच्छयितुं (वितरीतुं) 'नवरं' केवलं 'न शक्नोति' न शक्तो भवति, क्व सति ? इत्याह-'दानविघातस्य कर्मण उदये' वितरण-विघ्नकरस्य कर्मणो विपाके दानान्तरायं 'एतत्' कर्म । यदस्मिन् सति दानसामग्रीसद्भावेऽपि दानं न करोति । दानान्तरायमिदं प्रत्यक्षोक्तं । लाभेऽपि च, न केवलं दाने 'भण्यते' प्रति-पाद्यते 'विघ्नं' अन्तरायम् । इति गाथार्थः ॥१६१॥

तदेवाह—

(पारमा०) केवलमेवंविधायामपि सामग्र्यां 'दानविघातस्य' दानविघ्नकरस्य कर्मण उदयाद्दातुं न शक्नोति, एतद्दानान्तरायम् । लाभान्तरायं प्रस्तौति-लाभेऽपि च भण्यते 'विघ्नं' अन्तरायम् । इति गाथाद्वयार्थः ॥१६१॥

प्रतिज्ञातमाह—

१ व्याख्याकारेण तु "इत्थ" इति पाठ आहतः । २ ०प्रस्तावे च । जे० । ३ कम्मुणो इत्यपि पाठः ।

जइवि पसिद्धो दाया, जायणनिउणोवि जायगो [1]जइवि।
[2]न लहइ जस्सुदएणं, एयं पुण लाभविग्घं तु ॥१६२॥

(पू०) व्याख्या—यद्यपि प्रसिद्धो भवति दाता, सर्वजनदायकत्वेन प्रसिद्धिं गतः, एकः कश्चि-त्कस्यचिद्ददाति कस्यचिन्न स न प्रसिद्धः। यस्तु सार्वजनिकः स प्रसिद्धो भवति दाता। यद्यपि दाता प्रसिद्धो भवति तथाऽपि याचको न निपुणः ततो दानं न प्रवर्तते इत्याह—याचना=मार्गणा तत्र निपुणो विज्ञानवान्, तथा [3]याचते यथाऽदातापि ददाति, किं पुनर्दाता ? । याचको [4]यद्य-प्येवंभूतस्तथाऽपि नापि(?)'नैव लभते' न प्राप्नोति दातुः सकाशात्, 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेनैतत्पुनः 'लाभविघ्नं तु' लाभान्तरायमेव। ननु तद्दानान्तरायमेव किमितिकृत्वा दातु-र्नोच्यते, यावल्लाभान्तरायमुच्यते [5]याचितुः ?, उच्यते—स्याददिदं वचो दानान्तरायमेव तन्न लाभान्तरायम्। यदि दाता यथा तस्य विवक्षितस्य न ददाति तथाऽन्यस्यापि यदि न कस्य-चिद्दद्यात्तदा त्वदुक्तमेव स्यात्। यावता त्वसौ विवक्षितस्यैव न ददाति, अन्यस्य तु पुनः सर्वस्यापि ददाति तस्माल्लाभान्तरायमेव तत्, न दानान्तरायं दायकविषयं हि तद् ग्राहकविषयं तु, लाभान्तरायम्। इति गाथार्थः ॥१६२॥

उक्तं लाभान्तरायम्। अधुना भोगोपभोगसाधनसत्तायामप्युपभोगभोगयोर्विघ्नमाह—

(पारमा०) यद्यपि प्रसिद्धो दाता सर्वजनदायकत्वेन। यः किल कस्यचिद्ददाति कस्यचिन्न तस्मान्न निश्चयेन लाभः संभवतीति प्रसिद्धोपादानम्। एवंविधेऽपि दातरि अकालमार्गणउच्छृ-ङ्खलभाषणादियाचकवैगुण्यादपि न दानसंभव इत्याह—याचननिपुणश्च याचको यद्यपि प्रसादपरं ज्ञात्वा प्रह्लादयन् तथा याचते यथाऽदाताऽपि ददाति, किं पुनर्दाता ?। तथाऽपि न लभते 'यस्य' कर्मण उदयेन, एतत्पुनर्लाभविघ्नं लाभान्तरायम्। इति गाथार्थः ॥१६२॥

अथ भोगोपभोगयोर्विघ्नमाह—

मणुयत्तोवि [6]हु पत्तो, [7]लद्धे वि हु भोगसाहणे विभवे।
भुत्तुं नवरि न सक्कइ, विरइविहूणोवि जस्सुदए॥१६३॥

(पू०) व्याख्या—मनुष्यत्वं पुरुषत्वं प्रधानं भोगोपभोगकरणं विकलादिगतौ तदयोग्यत्वात् तस्मात्तत्प्राप्तिरेव दुर्लभा, अतो दुर्लभे मनुजत्वे प्राप्तेऽपि तथा मनुजत्वे सत्यपि प्रधानं भोग-कारणं विभवः, तदभावे तेषां भोक्तुमशक्य[8]त्वात्परिभोक्तुम् (?), अत आह—'लब्धेऽपि च'

---

१ "जयवि" (?) इत्यपि पाठः। २ "न वि लब्भइ जस्सुदए" इत्यपि पाठः। ३ याचयति (?) जे०। ४ यदा-ऽपि (?) जे०। ५ याचयितुः (?) जे०। ६ "य" इत्यपि पाठः। ७ "लद्धेवि य भोगसाहणे विभवे। उयभुजिउं न सफइ" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति। ८ त्वात्, भव जे०।

प्राप्तेऽपि च **'भोगसाधने'** भोगशब्दस्योपलक्षणत्वाद्भोगोपभोगकारणे **'विभवे'** धनादौ, किम्? इत्याह–**'उपभोक्तुं'** परिभोक्तुं **'न शक्नोति'** न शक्तः, कथंभूतः सन्? इत्याह– **'विरतिविहीनोऽपि'** विरतिरहितोऽपि **'यस्य'** कर्मणः **'उदये'** विपाके। इति गाथार्थः॥१६३॥

तदेतत् किम्? इत्याह—

(पारमा०) **'मनुष्यत्वेऽपि'** विशिष्टभोगयोग्यताऽसाधारणकारणे प्राप्ते तत्रापि प्रधानं भोगसाधनं विभव इत्युक्तम् **'लब्धेऽपि'** प्राप्तेऽपि **'भोगसाधने विभवे'** भोजनताम्बूलविलेपनादिविधिप्रसाधने धने भोक्तुं **'नवरं'** केवलं **'यस्य'** कर्मणः **'उदये'** विपाके **'विरतिविहीनोऽपि'** भावनावशमनुत्थपरिहारामिसन्धिशून्योऽपि कार्पण्याशक्त्यादिकारणवशान्न शक्नोति॥१६३॥

[१]भोगस्स विग्घमेयं, उवभोगे आवि विग्घमेवेव।
भोगुवभोगाणेसिं, नवरि विसेसो इमो होइ॥१६४॥

(पू०) व्याख्या–उप सामीप्येन भुज्यते परिसमन्तात् पुनः पुनर्वा भुज्यत इत्युपभोगस्तस्य विघ्नं एतदुपभोगान्तरायम्। [२]भोगोऽप्येवमेव उपभोगोक्तनीत्या, यथोपभोगेऽन्तरायमभिहितं तथाऽत्रापि विघ्नं द्रष्टव्यम्। तुशब्दः पादपूरणः। ननु सूत्रोक्तं क्रममुल्लङ्घ्य किमर्थमुपभोगान्तरायव्याख्यातम्? सूत्रक्रमात्प्रथमं भोगान्तरायं व्याख्यातुं युज्यते, अत्रोच्यते–उपभोगस्य प्राधान्यख्यापनार्थं व्यतिक्रमव्याख्यानम्। भोगोपभोगयोः कः प्रतिविशेषः? इत्युच्यते, **'नवरं'** केवलं विशेषः **'एष.'** वक्ष्यमाणलक्षणः (**'भवति'** जायते)। इति गाथार्थः॥१६४॥

भोगोपभोगयोर्विषयव्यवस्थामाह—

(पारमा०) भोगविघ्नमेतदिति भोगान्तरायमिदमिति भावः। उपभोगे चापि विघ्नमेवमेवेति पूर्ववत्। यदुदयेन मनुष्यत्वेऽपि प्राप्ते ललितललनाद्युपभोग्यतासंबन्धनिबन्धने लब्धेऽप्युभोगसाधने अमररमणीरामणीयकहठहरणप्रवीणपण्यतरुणीवशीकरणकार्मणसन्निभे विभवे ब्रह्मचर्यादिविशिष्टपरिणामापरिगतोऽपि कदर्यत्वासामर्थ्यादिकारणवशादुपभोक्तुं न शक्नोति तदुपभोगान्तरायमिति भावः। भोगोपभोगयोरेतयोः केवलं विशेषः **'एषः'** वक्ष्यमाणलक्षणो भवति। इति गाथाद्वयार्थः॥१६४॥ प्रतिज्ञातमाह—

सइ भुज्जइत्ति भोगो, सो [३]पुण आहारपुप्फमाईओ।
उवभोगो [४]य पुणो पुण, उवभुज्जइ भवणविलयाई॥१६५॥

---

१ "उवभोगविग्घमेयं. भोगेवि हु एवमेव विग्घं तु" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण व्याख्याकारेण व्याख्यातमस्ति॥ २ भोगे जे०। ३ "पुणु आहारपुप्फमाईणं" इत्यपि पाठः। ४ "उ" इत्यपि पाठः।

(पू०) व्याख्या—'सकृद्' एकयैव वारया निर्वर्तितं वस्तु भुज्यते, एकां वा वारां भुज्यत इति भोगः। स पुनः कः ? इत्याह—आहारश्चतुर्विधोऽशनपानखादिमस्वादिमरूपः, पुष्पाण्यादौ यस्याहारादेः स आहारपुष्पादिर्भोग्यं वस्तूच्यते आदिशब्दाद्विलेपनादिपरिग्रहः। उपभोगस्तु पुनः पुनर्भुज्यते, उप सामीप्येन वा भुज्यते उपभोगः। स च कः ? इत्याह—'भवनविलयादिः' भवनं धवलगृहादि, विलयादि कलत्रादि आदिशब्दादाभरणादिपरिग्रहः। इति गाथार्थः ॥१६५॥

अभिहितं भोगोपभोगान्तरायम्। साम्प्रतं वीर्यान्तरायमाह—

(पारमा०) 'सकृद्' एकवारं भुज्यत इति भोगः, स पुनराहारपुष्पादिकः। उपभोगश्च पुनः पुनरुपभुज्यते 'भवनवनितादिकः' गृहगृहिणीप्रभृतिकः। इति गाथार्थः ॥१६५॥

उक्तं भोगोपभोगयोरन्तरायं सकृत्पौनःपुन्यासेवनलक्षणो विशेषश्च। अधुना वीर्यान्तरायमाह—

बलवं रोगविउत्तो, वयसंपण्णोवि जस्स उदएणं।
विरिएण होइ हीणो, वीरियविग्धं तु पंचमयं ॥१६६॥

(पू०) व्याख्या—'बलवान्' बलसंपन्नः 'रोगवियुक्तः' रोगरहितः 'वयःसंपन्नः' शरीरावस्थया विशिष्टवयोऽवस्थासंपन्नः, सोऽप्येवंभूतोऽपि 'यस्य' कर्मणः 'उदयेन' विपाकेन 'वीर्येण भवति हीनः' अन्तःप्राणेन जायते रहितः। 'वीरियविग्घं तु पञ्चमयं' वीर्यान्तरायमेव पञ्चमकं संख्यया। इति गाथार्थः ॥१६६॥

अन्तरायनिगमनद्वारेण प्रकरणपरिसमाप्तिं प्रदर्शयन् प्रकरणकारः स्वनामाह—

(पारमा०) 'बलवं' इति बलवान् उपचितदेह इत्यर्थः। 'रोगवियुक्तः' कासश्वासादिरहितः 'वयःसंपन्नः' तारुण्यभरपरिगतः। एवंविधोऽपि 'यस्य' कर्मण उदयेन 'वीर्येण' शक्त्या हीनो भवति। केशोद्धरणकुसुमोच्चयादावप्यसमर्थः संपद्यते। तदित्यध्याहारात् तद्वीर्यान्तरायं पञ्चमकं भवति इति गाथार्थः ॥१६६॥

साम्प्रत्यन्तरायनिगमनपूर्वकं प्रकरणकारः प्रकरणपरिसमाप्तिं स्वनाम चाह—

एवं पंच[1]वियप्पं, अट्ठमयं अंतराइयं होइ।
भणिओ कम्मविवागो, समासओ गग्गरिसिणा उ ॥१६७॥

व्याख्या—'एवं' उक्तन्यायेन 'पञ्चविकल्पं' पञ्चप्रकारं 'अष्टमकं' संख्ययान्तरायिकं कर्म 'भवति' जायते। तदुक्ते 'भणितः' प्रतिपादितः 'कर्मविपाकः' कर्मविपाकाख्यं प्रकरणं 'समासतः' संक्षेपतः। केन ? इत्याह—'गर्गर्षिणा तु' उत्तमसाधुनैव। इति गाथार्थः ॥१६७॥ ग्रं ॥९६०॥ साम्प्रतं प्रकरणसंख्यामाह—

१ "विगप्पं" इत्यपि पाठः।

(पारमा०) 'एवं' उक्तयुक्त्या 'पञ्चविकल्पं' पञ्चप्रकारमष्टमकमन्तरायकं भवति। उक्तमन्तरायकं तदुक्तौ भणितः कर्मविपाकः। 'समासतः' संक्षेपतः 'गर्गर्षिणा' यतिमतल्लिकावृन्दवन्द्यपादपल्लवेन गर्गाभिधानमुनिनायकेन। इति गाथार्थः ॥१६७॥ अधुना ग्रन्थप्रमाणप्रतिपादनपुरस्सरं तत्परिज्ञानोपायप्रतिपादनद्वारेण पर्यन्तमङ्गलमाह—

एवं गाहाण सयं, अहियं छावट्ठिए उ पढिऊण।
जो गुरु पुच्छइ नाही, कम्मविवागं च सो अइरा ॥१६८॥

(पू०) व्याख्या–'एवं' उक्तनीत्या ग्रन्थतो गाथानां 'शतमधिकं षट्षष्ट्या तु' षट्षष्ट्यैव [1]चाधिकं शतं 'पठित्वा' कण्ठे कृत्वा. किम्? इत्याह–यो 'गुरुं पृच्छति' आचार्यं प्रश्नयति, विनेयो मानं विहाय, अनेन मानपरित्यागात्परलोकार्थिनाऽवश्यंतया तथा तथा गुरुराराधनीयः प्रष्टव्यश्च, यथाऽसौ प्रसन्नः सर्वस्वं कथयती[2]त्यावेदितम्, न पुनर्मानग्रस्तेन पुस्तकशिष्येण भाव्यम्, अविनयाज्ञाविराधनादिदोषप्रसङ्गात्। स चैवं[3]भूतः ज्ञास्यत्येव=[4]अवभोत्स्यत्येव 'कर्मविपाकं तु' कर्मस्वरूप तु 'सः' साधुः, अन्यो वा 'अचिरादेव' स्तोककालादेव। इति [5]गाथार्थः ॥१६८॥ ग्रन्थाग्रम् १६७॥

॥ इति कर्मविपाकसूत्रव्याख्या समाप्ता ॥

(पारमा०) एतद्गाथानां शतमधिकं षट्षष्ट्येति। आदिमान्तिमगाथयोर्नमस्कारकरणप्रकरणप्रमाणप्रतिपादनमात्रत्वेन ग्रन्थार्थानभिधायकत्वात्परमार्थतः षट्षष्ट्यैवाधिकं, तत्किम्? इत्याह- 'पठित्वा' कण्ठगतं कृत्वा यो गुरुं प्रश्नयति स ज्ञास्यत्यचिरात्कर्मविपाकम्। गुरुनामग्रहणं च कुर्वता ग्रन्थकृता पर्यन्तमङ्गलं शिष्यसंतानस्याप्रच्युतस्मृतये कृतमिति गाथार्थः ॥१६८॥

श्रीमद्रेश्वरसूरिशिष्यतिलकश्रीशान्तिसूरेःप्रभोः, श्रीमन्तोऽभयदेवसूरिगुरवः सिंहासनोत्तंसकाः।
तत्पादाम्बुजषट्पदेन परमानन्देन सत्प्रीतये, चक्रे कर्मविपाकवृत्तिमिषतः श्रोत्रैकलेह्यं मधु ॥१॥
यन्नागमानुगामि स्या–न्न वा सङ्गतिमङ्गति। इह तत्साधुभिः शोध्य–मनभ्यर्थितवत्सलैः ॥२॥
प्रत्यक्षरं निरूप्यास्याः, ग्रन्थाग्रं परिनिश्चितम्। अनुष्टुभां नवशती, द्वाविंशत्यधिका ९२२ भवेत् ॥३॥

॥ इति पारमानन्दी कर्मविपाकवृत्तिः समाप्ता ॥

१व्याख्याकारेण "तु" इति पाठ आदृतः ॥ २ ०अधिकं जे०। ३ ०भूतः साधुः जे०। ४ बुध अवगमने जे० टिप्पणी। ५ गाथार्थः ॥ छ। "छ" ॥कर्मविपाकविवरणं समाप्तमिति ॥ मंगल महाश्रीः" ॥ शिवमस्तु सर्वजगतः ॥ छ ॥ छ ॥ सवत १२२१ वर्षे माघशुदि ६ भौमे ॥ छ ॥ छ ॥ जे०।

समाप्तोऽयं टीकाद्वयोपेतः कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः

॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हँ श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

॥ सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

॥ कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

श्वेतपटाचार्यश्रीमद्गोविन्दगणिगुम्फितटीकया समलङ्कृतः

कर्मस्तवाख्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः ।



कर्मबन्धोदयोदीर्या–सत्तावैचित्र्यवेदिनम् ।
कर्मस्तवस्य टीकेयं, नत्वा वीरं विरच्यते ॥१॥

नमिऊण जिणवरिंदे, तिहुयणवरनाणदंसणपईवे ।
बंधुदयसंतजुत्तं, वोच्छामि थयं निसामेह ॥ १ ॥

पूर्वार्धेन मङ्गलार्थमिष्टदेवतानमस्कारमाह–मङ्गलं चाविघ्नेन प्रकरणसमाप्त्यर्थम् । पश्चार्द्धेन तु प्रयोजनादित्रयमिति गाथासमुदायार्थः, अवयवार्थस्तु 'नत्वा' प्रणम्य '**जिनवरेन्द्रान्**' 'रागादिजयाज्जिनाः[1], ते च छद्मस्थवीतरागा अपि भवन्ति, अतः केवलिप्रतिपत्त्यर्थं वरग्रहणम् । जिनानां वरा जिनवराः, । ते च सामान्यकेवलिनोऽपि भवन्ति, अतोऽर्हत्प्रतिपत्त्यर्थमिन्द्रग्रहणम् । जिनवराणामिन्द्रा जिनवरेन्द्राः । जिनत्वे केवलित्वे च सति चतुस्त्रिंशद्बु[2]द्धातिशेषरूपपरमैश्वर्यवन्त इत्यर्थः, तान् । तेषां वरशब्दलब्धं केवलित्वं विशेषणान्तरेण विवृणोति–'**त्रिभुवनवरज्ञानदर्शनप्रदीपान्**' त्रीणि भुवनानि ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्लोकरूपाणि, तेषां वराभ्यां केवलरूपतया ज्ञानदर्शनाभ्यां प्रदीपाः प्रकाशकास्तान्, एवंविधान् जिनवरेन्द्रान्नत्वा ततः स्तवं वक्ष्यामीति संबन्धः । किंविशिष्टं स्तवम्?, '**बन्धोदयसद्युक्तं**' तत्र मिथ्यात्वादिभिर्बन्धहेतुभिरञ्जनचूर्णपूर्णसमुद्गकवत् निरन्तरं पुद्गलनिचिते लोके कर्मयोग्यवर्गणापुद्गलैरात्मनो वह्न्ययःपिण्डवदन्योऽन्यानुगमाभेदात्मकः संबन्धो बन्धः । तेषां च यथा स्वस्थितिबद्धानां कर्मपुद्गलानां करणविशेषकृते स्वाभाविके वा स्थित्यपचये सत्युदयसमयप्राप्तानां विपाकवेदनमुदयः । उदयग्रहणेनोदीरणाऽपि तज्जातीया गृह्यते । सा पुनः कर्मपुद्गलानां करणविशेषजनिते स्थित्यपचये सत्युदयावलिकायां प्रवेशनमुदी-

---

१ "रागारिजया" रागादिविजया" इति वा पाठः । २ "द्धातिशय" इति वा ।

णा। बन्धसङ्क्रमाभ्यां लब्धात्मलाभानां कर्मणां निर्जरणसङ्क्रमणकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सद्भावः सत्ता। बन्धश्च उदयश्च सत् चेति बन्धोदयसन्ति, सदिति भावप्रधानेन निर्देशेन सत्तोच्यते. तैर्बन्धोदयसद्भिर्युक्तः, तेषां व्यवच्छेदस्येह वर्णनात्, तं स्तवं वक्ष्यामि। स्तवस्त्वयमसाधारणसद्भूतगुणोत्कीर्त्तनरूपत्वात्। स त्विह गुणो बन्धोदयोदीरणासत्क्षयो जिनस्य वेदितव्यः। तथा च तदुद्देशाधिकारे वक्ष्यति "अडयालं पयडिसयं, खविय जिणं निव्वुयं वंदे" इति। सत्ताप्रक्षये च बन्धोदयोर्दीरणा अपि क्षीणा एव भवन्तिः इति पृथक् तत्क्षयो नोक्तः। तत्क्षयोऽपि वा प्रतिगुणस्थानं तद्व्यवच्छेदवचनेन पृथगुक्त एव। निशमयतेति शिष्यान् बोधयति। यमहं जिनस्य स्तवं वक्ष्ये तं 'निशामयत' शृणुत यूयं, तच्छ्रवणस्य तदुक्तभगवद्गुणबहुमानद्वारेणाशयशुद्ध्या कर्मक्षयहेतुत्वाद्वस्तुस्वरूपावगतिहेतुत्वाच्च। तदवगतिहेतुत्वं च स्तावकवचनानामपि वस्तुस्वरूपवाचित्वेन प्रामाण्याभ्युपगमात्, तदेवमिह वक्तुरात्माशयविशुद्धिरनन्तरं स्तववचनस्य प्रयोजनं शिष्यानुग्रहश्च। श्रोतॄणामपि स्वाशयविशुद्धिरेर्थावगतिश्च। पारम्पर्येण तु स्वाशयविशुद्धेरुत्तरोत्तरविशुद्धिफलत्वादुभयेषां परमविशुद्ध्यात्मको निःश्रेयस इति प्रयोजनम्। अभिधेयं च बन्धादिव्यवच्छेदरूपमर्हद्गुणनिकुरुम्बम्। संबन्धश्च स्तवप्रयोजनयोरुपायोपेयभावः। स्तवाभिधेययोस्तु वाच्यवाचकभाव इति दर्शितं वेदितव्यम् ॥१॥

कर्मणां च भगवतो न सर्वेषां युगपदेव बन्धादिव्यवच्छेदः, किं तर्हि ?, मिथ्यादृष्ट्यादीनि गुणस्थानानि परमपदप्रसादशिखरारोहणसोपानकल्पानि क्रमेणाधिरोहतः क्वचिदेव गुणस्थाने कियत्योऽप्येव कर्मप्रकृतयो बन्धमुदयमुदीरणां सत्तां वा प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः ?, तत्र तावद्बन्धं प्रतीत्य क्व कियत्यो व्यवच्छिन्नाः ? इत्येतदाह—

[2]मिच्छे सोलस पणुवी-स सासणे अविरए य दस पयडी।
चउछक्कमेग देसे, विरए य कमेण वोच्छिन्ना ॥२॥

अधुना सुखप्रतिपत्त्यर्थं तावद्गुणस्थानानि लेशतो व्याख्याय पश्चादिमां गाथां व्याख्यास्यामः। तानि च गुणस्थानानि चतुर्दशधा, तद्यथा-मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् १, सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् २, सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ३, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ४, देशविरतगुणस्थानम् ५, प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ६, अप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ७, अपूर्वकरणगुणस्थानम् ८, अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानम् ९, सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानम् १०, उपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् ११, क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् १२, सयोगि-

१ "-र्यापत्तिश्च।" इति वा पाठः॥ २ कर्मस्तवमूलपुस्तकेष्वेवद्गाथाद्वन्द्वं दृश्यते-'मिच्छद्दिट्ठी १ सासायणे २ य तह सम्मामिच्छद्दिट्ठी ३ य। अविरयसम्मद्दिट्ठी ४, विरयाविरए ५ पमत्ते ६ य॥१॥ तत्तो य अप्पमत्ते ७, नियट्टि ८ अनियट्टिबायरे ९ सुहुमे १०। उवसंत ११ खीणमोहे १२ होइ सजोगी १३ अजोगी १४ य॥२॥" परं टीकाया अभावेन नादृतं मूले॥

केवलिगुणस्थानम् १३, अयोगिकेवलिगुणस्थानं १४ चेति।

तत्र गुणाः ज्ञानदर्शनचारित्ररूपा जीवस्वभावविशेषाः, स्थानं पुनरत्र तेषां शुद्ध्यशुद्धि-प्रकर्षापकर्षकृतः स्वरूपभेदः, तिष्ठन्त्यस्मिन् गुणा इतिकृत्वा यथाऽध्यवसायस्थानमिति, गुणानां स्थानं गुणस्थानम् ॥

मिथ्या विपर्यस्ता दृष्टिरर्हत्प्रणीतवस्तुप्रतिपत्तिर्यस्य भक्षितहृत्पूरपुरुषस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत् मिथ्यादृष्टिस्तस्य गुणस्थानं ज्ञानादिगुणानामविशुद्धिप्रकर्षविशुद्ध्यपकर्षकृतः स्वरूपविशेषो मिथ्या-दृष्टिगुणस्थानम् १, ननु च दृष्टौ विपर्यस्तायां तदाधारत्वाद् गुणानामभाव एव स्यात् तदभावे च कुतस्तत्स्वरूपविशेषात्मकं मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानम् इत्यत्रोच्यते—यद्यपि मिथ्यात्वमोहनीयोदयाद् दृष्टिविपर्यासस्तथाऽपि नैकान्तेनास्य निर्गुणत्वं, अजीवत्वप्रसङ्गात्। तथा चार्षम्—"**सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ। जइ पुण सोवि आवरेज्जेज्जा तेणं जीवो अजीवत्तं पावेज्जा। सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पहा चंदसूराणं**" इत्यस्ति, तस्यापि या च यावती च गुणमात्रा दृष्टिर्विपर्यासेन तु साऽपि विपर्यस्तस्वरूपैवेति। जिनप्रणीतं चैकम-प्यक्षरमश्रद्दधानो मिथ्यादृष्टिर्भवतीति। उक्तं च—"**सूत्रोक्तस्यैकस्या—प्यरोचनादक्षरस्य भवति नरः। मिथ्यादृष्टिः सूत्रं, हि नः प्रमाणं जिनाभिहितम्** ॥१॥" इति १॥

आयं सादयतीति आसादनं, अनन्तानुबन्धिकषायवेदनम्, नैरुक्तो यशब्दलोपः। सति हि तस्मिन्ननन्तसुखफलदनिःश्रेयसतरुबीजभूत औपशमिकसम्यक्त्वलाभो जघन्यतः समयेन उत्कृष्टतः षड्भिरावलिकाभिः सीदत्यपगच्छति। सहासादनेन वर्तत इति सासादनः। सम्यग-विपर्यस्ता दृष्टिर्जिनप्रणीतवस्तुप्रतिपत्तिर्यस्य स सम्यग्दृष्टिः। सासादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेति सासादनसम्यग्दृष्टिः, तस्य गुणस्थानं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमिति। एतच्चैवं भवति—गम्भीरभवोदधिमध्यविपरिवर्त्ती जन्तुरनाभोगनिर्वर्त्तितेन गिरिसरिदुपलघोलनाकल्पेन यथा-प्रवृत्तिकरणेन संपादितान्तः सागरोपमकोटाकोटीस्थितिकस्य मिथ्यात्ववेदनीयस्य कर्मणः स्थिते-रन्तर्मुहूर्तमुदयक्षणादुपर्यतिक्रम्यापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसंज्ञिताभ्यां विशुद्धिविशेषाभ्यामन्तर्मुहूर्त-कालप्रमाणमन्तरकरणं करोति। तस्मिन् कृते तस्य कर्मणः स्थितिद्वयं भवति, अन्तरकरणादध-स्तनी प्रथमस्थितिरन्तर्मुहूर्तमात्रा, तस्मादेवोपरितनी शेषा द्वितीयस्थितिरिति। स्थापनेयम्—△ □

तत्र प्रथमस्थितौ मिथ्यात्वदलिकवेदनादसौ मिथ्यादृष्टिः। अन्तर्मुहूर्तेन तु तस्याम-पगतायामन्तरकरणप्रथमसमय एवौपशमिकं सम्यक्त्वमाप्नोति मिथ्यात्वदलिकवेदनाभावात्, यथा हि वनदवानलः पूर्वदग्धेन्धनमूषरं वा देशमवाप्य विध्यायति, तथा मिथ्यात्ववेदनाग्निर-न्तरकरणमवाप्य विध्यायति। तस्यामान्तर्मौहूर्तिक्यामुपशान्ताद्धायां परमनिधिलाभकल्पायां जघन्येन समयशेषायामुत्कर्षेण षडावलिकाशेषायां कस्यचिदनन्तानुबन्ध्युदयो भवति। तदुदये

रणा। बन्धसङ्क्रमाभ्यां लब्धात्मलाभानां कर्मणां निर्जरणसङ्क्रमणकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सद्भावः सत्ता। बन्धश्च उदयश्च सत् चेति बन्धोदयसन्ति, सदिति भावप्रधानेन निर्देशेन सत्तोच्यते, तैर्बन्धोदयसद्भिर्युक्तः, तेषां व्यवच्छेदस्येह वर्णनात्, तं स्तवं वक्ष्यामि। स्तवस्त्वयमसाधारणसद्भूतगुणोत्कीर्त्तनरूपत्वात्। स त्विह गुणो बन्धोदयोदीरणासत्क्षयो जिनस्य वेदितव्यः। तथा च सदुदेशाधिकारे वक्ष्यति "**अडयालं पयडिसयं, खविय जिणं निव्वुयं वंदे**" इति। सत्ताप्रक्षये च बन्धोदयोदीरणा अपि क्षीणा एव भवन्तिः इति पृथक् तत्क्षयो नोक्तः। तत्क्षयोऽपि वा प्रतिगुणस्थानं तद्व्यवच्छेदवचनेन पृथगुक्त एव। निशमयतेति शिष्यान् बोधयति। यमहं जिनस्य स्तवं वक्ष्ये तं '**निशमयत**'शृणुत यूयं, तच्छ्रवणस्य तदुक्तभगवद्गुणबहुमानद्वारेणाशयशुद्ध्या कर्मक्षयहेतुत्वाद्वस्तुस्वरूपावगतिहेतुत्वाच्च। तदवगतिहेतुत्वं च स्तावकवचनानामपि वस्तुस्वरूपवाचित्वेन प्रामाण्याभ्युपगमात्, तदेवमिह वक्तुरात्माशयविशुद्धिरनन्तरं स्तववचनस्य प्रयोजनं शिष्यानुग्रहश्च। श्रोतॄणामपि स्वाशयविशुद्धिरेर्थावगतिश्च। पारम्पर्येण तु स्वाशयविशुद्धेरुत्तरोत्तरविशुद्धिफलत्वादुभयेषां परमविशुद्ध्यात्मको निःश्रेयस इति प्रयोजनम्। अभिधेयं च बन्धादिव्यवच्छेदरूपमर्हद्गुणनिकुरुम्बम्। संबन्धश्च स्तवप्रयोजनयोरुपायोपेयभावः। स्तवाभिधेययोस्तु वाच्यवाचकभाव इति दर्शितं वेदितव्यम् ॥१॥

कर्मणां च भगवतो न सर्वेषां युगपदेव बन्धादिव्यवच्छेदः, किं तर्हि ?, मिथ्यादृष्ट्यादीनि गुणस्थानानि परमपदप्रसादशिखरारोहणसोपानकल्पानि क्रमेणाधिरोहतः क्वचिदेव गुणस्थाने कियत्योऽप्येव कर्मप्रकृतयो बन्धमुदयमुदीरणां सत्तां वा प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः ?, तत्र तावद्बन्धं प्रतीत्य क्व कियत्यो व्यवच्छिन्नाः ? इत्येतदाह—

[२]मिच्छे सोलस पणुवी–स सासणे अविरए य दस पयडी।
चउछक्कमेग देसे, विरए य कमेण वोच्छिन्ना ॥२॥

अधुना सुखप्रतिपत्त्यर्थं तावद्गुणस्थानानि लेशतो व्याख्याय पश्चादिमां गाथां व्याख्यास्यामः। तानि च गुणस्थानानि चतुर्दशधा, तद्यथा–मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् १, सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् २, सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ३, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ४, देशविरतगुणस्थानम् ५, प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ६, अप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ७, अपूर्वकरणगुणस्थानम् ८, अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानम् ९, सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानम् १०, उपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् ११, क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् १२, सयोगि-

---

१ "–र्थापत्तिश्च।" इति वा पाठः॥ २ कर्मस्तवमूलपुस्तकेष्वेतद्गाथाद्वन्द्वं दृश्यते–'मिच्छदिट्ठी १ सासायणे २ य तह सम्ममिच्छदिट्ठी ३ य। अविरयसम्मदिट्ठी ४, विरयाविरए ५ पमत्ते ६ य ॥१॥ तत्तो य अप्पमत्ते ७, नियट्टि ८ अनियट्टिबायरे ९ सुहुमे १०। उवसंत ११ खीणमोहे १२ होइ सजोगी १३ अजोगी १४ य ॥२॥" परं टीकाया अभावेन नादृतं मूले॥

केवलिगुणस्थानम् १३, अयोगिकेवलिगुणस्थानं १४ चेति।

तत्र गुणाः ज्ञानदर्शनचारित्ररूपा जीवस्वभावविशेषाः, स्थानं पुनरत्र तेषां शुद्ध्यशुद्धिप्रकर्षापकर्षकृतः स्वरूपभेदः, तिष्ठन्त्यस्मिन् गुणा इतिकृत्वा यथाऽध्यवसायस्थानमिति, गुणानां स्थानं गुणस्थानम् ॥

मिथ्या विपर्यस्ता दृष्टिरर्हत्प्रणीतवस्तुप्रतिपत्तिर्यस्य भक्षितहृत्पूरपुरुषस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत् मिथ्यादृष्टिस्तस्य गुणस्थानं ज्ञानादिगुणानामविशुद्धिप्रकर्षविशुद्ध्यपकर्षकृतः स्वरूपविशेषो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् १, ननु च दृष्टौ विपर्यस्तायां तदाधारत्वाद् गुणानामभाव एव स्यात् तदभावे च कुतस्तत्स्वरूपविशेषात्मकं मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानम् इत्यत्रोच्यते—यद्यपि मिथ्यात्वमोहनीयोदयाद् दृष्टिविपर्यासस्तथाऽपि नैकान्तेनास्य निर्गुणत्वं, अजीवत्वप्रसङ्गात्। तथा चार्षम्—"**सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ। जइ पुण सोवि आवरेज्जेज्जा तेणं जीवो अजीवत्तं पावेज्जा। सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पहा चंदसूराणं**" इत्यस्ति, तस्यापि या च यावती च गुणमात्रा दृष्टिर्विपर्यासेन तु साऽपि विपर्यस्तस्वरूपैवेति। जिनप्रणीतं चैकमप्यक्षरमश्रद्दधानो मिथ्यादृष्टिर्भवतीति। उक्तं च—"**सूत्रोक्तस्यैकस्या—प्यरोचनादक्षरस्य भवति नरः। मिथ्यादृष्टिः सूत्रं, हि नः प्रमाणं जिनाभिहितम् ॥१॥**" इति १॥

आयं सादयतीति आसादनं, अनन्तानुबन्धिकषायवेदनम्, नैरुक्तो यशब्दलोपः। सति हि तस्मिन्ननन्तसुखफलदनिःश्रेयसतरुबीजभूत औपशमिकसम्यक्त्वलाभो जघन्यतः समयेन उत्कृष्टतः षड्भिरावलिकाभिः सीदत्यपगच्छति। सहासादनेन वर्तत इति सासादनः। सम्यगविपर्यस्ता दृष्टिर्जिनप्रणीतवस्तुप्रतिपत्तिर्यस्य स सम्यग्दृष्टिः। सासादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेति सासादनसम्यग्दृष्टिः, तस्य गुणस्थानं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमिति। एतच्चैवं भवति—गम्भीरभवोदधिमध्यविपरिवर्त्ती जन्तुरनाभोगनिर्वार्त्तितेन गिरिसरिदुपलघोलनाकल्पेन यथाप्रवृत्तिकरणेन संपादितान्तःसागरोपमकोटाकोटीस्थितिकस्य मिथ्यात्ववेदनीयस्य कर्मणः स्थितेरन्तर्मुहूर्तमुदयक्षणादुपर्यतिक्रम्यापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसंज्ञिताभ्यां विशुद्धिविशेषाभ्यामन्तर्मुहूर्तकालप्रमाणमन्तरकरणं करोति। तस्मिन् कृते तस्य कर्मणः स्थितिद्वयं भवति, अन्तरकरणादधस्तनी प्रथमस्थितिरन्तर्मुहूर्तमात्रा, तस्मादेवोपरितनी शेषा द्वितीयस्थितिरिति। स्थापनेयम्—△ □

तत्र प्रथमस्थितौ मिथ्यात्वदलिकवेदनादसौ मिथ्यादृष्टिः। अन्तर्मुहूर्तेन तु तस्यामपगतायामन्तरकरणप्रथमसमय एवौपशमिकं सम्यक्त्वमाप्नोति मिथ्यात्वदलिकवेदनाभावात्, यथा हि वनदवानलः पूर्वदग्धेन्धनमूपरं वा देशमवाप्य विध्यायति, तथा मिथ्यात्ववेदनाग्निरन्तरकरणमवाप्य विध्यायति। तस्यामान्तर्मौहूर्तिक्यामुपशान्ताद्धायां परमनिधिलाभकल्पायां जघन्येन समयशेषायामुत्कर्षेण षडावलिकाशेषायां कस्यचिदनन्तानुबन्ध्युदयो भवति। तदुदये

चासौ सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने वर्तते, उपशमश्रेणिप्रतिपतितो वा कश्चिन्सासादनत्वं याति। तदुत्तरकालमवश्यं मिथ्यात्वोदयादसौ मिथ्यादृष्टिर्भवतीति २ ॥

सम्यक् च मिथ्या च दृष्टिर्यस्य स सम्यग्मिथ्यादृष्टिः, तस्य गुणस्थानं सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम्। वर्णितविधिना लब्धं सम्यक्त्वमौषधविशेषकल्पमासाद्य मदनकोद्रवस्थानीयं दर्शनमोहनीयं अशुद्धं कर्म त्रिधा करोति, अशुद्धं १ अर्द्धविशुद्धं २ विशुद्धं ३ चेति। स्थापना—

अ	अर्द्ध	वि

त्रयाणां चैतेषां पुञ्जानां मध्ये यदाऽर्द्धविशुद्धः पुञ्ज उदेति तदा तदुदयवशादर्द्धविशुद्धमर्हद्दृष्टतत्त्वश्रद्धानं भवति जीवस्य, तेन तदाऽसौ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमन्तर्मुहूर्तं कालं स्पृशति, तत ऊर्ध्वमवश्यं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा गच्छतीति ३ ॥ तथा विरतिर्विरतं, 'नपुंसके भावे क्तः' तत्पुनः सावद्ययोगप्रत्याख्यानं, तन्न जानाति नाभ्युपगच्छति न तत्पालनाय यतत इति त्रयाणां पदानामष्टौ भङ्गाः। तज्ज्ञापनाय स्थापना—

न	ना	न
न	ना	पा
न	ऽ	न
न	ऽ	पा
ज्ञा	ना	न
ज्ञा	ना	पा
ज्ञा	ऽ	न
ज्ञा	ऽ	पा

तत्र प्रथमेषु चतुर्षु भङ्गेषु मिथ्यादृष्टिरज्ञानित्वाद्गम्यते। शेषेषु त्रिषु सम्यग्दृष्टिः, तस्य हि ज्ञानमेव भवतीति सप्तसु भङ्गेषु नास्य विरतमस्तीत्यविरतो भवति। चरमभङ्गे तु विरतिरस्तीति।

अविरतश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेत्यविरतसम्यग्दृष्टिः तस्य गुणस्थानमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम्, सम्यग्दृष्टित्वं पुनरौपशमिकसम्यक्त्वे वर्णितान्तरकरणकालसंभवे विशुद्धदर्शनमोहपुञ्जकोदयकालसंभवे वा क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे सर्वदर्शनमोहक्षयसंभवे वा क्षायिकसम्यक्त्वे सति भवति, विरतः पुनरप्रत्याख्यानावरणकषायोदयवशान्न भवति। ते ह्यल्पमपि प्रत्याख्यानमावृण्वन्तीति नञोऽल्पार्थत्वादप्रत्याख्यानावरणा उच्यन्ते इति ४ ॥

एकव्रतविषयस्थूलसावद्ययोगादौ सर्वव्रतविषयानुमतिवर्जसावद्ययोगान्ते करणत्रययोगत्रयविषयसर्वसावद्ययोगस्य देशे विरतमस्यास्तीति देशविरतः। सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानरूपं तु विरतमस्य नास्ति, प्रत्याख्यानावरणकषायोदयात्। सर्वविरतिरूपं हि प्रत्याख्यानमावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणा उच्यन्त इति ५ ॥ संयच्छति स्म सम्यगुपरमति स्म यावज्जीवं सर्वसावद्ययोगादिति संयतः। "कर्तरि निष्ठा गत्यर्थाकर्मका" इत्यादिसूत्रेण, प्रमदनं प्रमत्तं प्रमादः, स च विकथाकषायमद्यविकटेन्द्रियनिद्रारूपाणां पञ्चानामन्यतमः प्रमत्तमस्यास्तीति अर्शआदित्वाद् अचः मत्वर्थीयस्योपादानात् प्रमत्तः प्रमादवानित्यर्थः, स चासौ संयतश्चेति प्रमत्तसंयतस्तस्य संबन्धिनां गुणानां स्थानं विशुद्ध्यविशुद्धिप्रकर्षापकर्षकृतः स्वरूपविशेषः। तथाहि—देशविरतगुणादेतद्गुणानां विशुद्धिप्रकर्षोऽशुद्ध्यपकर्षश्च, अप्रमत्तसंयतगुणापेक्षया तु विपर्यय इति

एवमन्यगुणस्थानेष्वपि गुणस्थानयोजना द्रष्टव्या पूर्वोत्तरापेक्षया विशुद्ध्यविशुद्धिप्रकर्षापकर्षकृतेति ६ ॥

नास्ति प्रमत्तमस्येति अप्रमत्तो विकथादिप्रमादरहितः । अप्रमत्तश्चासौ संयतश्चेत्यप्रमत्तसंयतस्तस्य गुणस्थानम् ७ ॥

अपूर्वं करणं स्थितिघातरसघातगुणश्रेणिगुणसङ्क्रमस्थितिबन्धानां पञ्चानामर्थानां निर्वर्तनमस्यासावपूर्वकरणः, तथाहि—यावत्प्रमाणमसौ पूर्वगुणस्थानविशुद्ध्या स्थितिखण्डकं रसखण्डकं वा हतवान्, ततो बृहत्तरप्रमाणमपूर्वमस्मिन् गुणस्थाने हन्ति । उपरितनस्थितेर्विशुद्धिवशादपवर्तनाकरणेनावतारितस्य दलिकस्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणमुदयक्षणादुपरि क्षिप्रतरक्षपणाय प्रतिक्षणमसंख्येयगुणवृद्ध्या विरचनं गुणश्रेणिरित्युच्यते । स्थापना । एतां च पूर्वगुणस्थानेष्वविशुद्धतरत्वात् कालतो द्राघीयसीमप्रथीयसीं च दलिकस्याल्पतरस्यापवर्तनाद्विरचितवान् । इह तु विशुद्धतरत्वादपूर्वां कालतो ह्रस्वतरां पृथुतरां च बहुतरदलिकापवर्तनाद्विरचयति । स्थापना । शुभप्रकृतिष्वशुभप्रकृतिदलिकस्य प्रतिक्षणमसंख्येयगुणवृद्ध्या विशुद्धिवशान्नयनं गुणसङ्क्रमः, तमिहासावपूर्वं करोति । स्थितिं च कर्मणां द्राघीयसीं प्राग्बद्धवान्, इह तु तामपूर्वां ह्रसीयसीं बध्नाति विशुद्धतरत्वादिति । पञ्चाप्यपूर्वाणि करणान्यस्य । स च द्विधा, क्षपक उपशमको वा । क्षपणोपशमनार्हत्वात्, राज्यार्हकुमारराजवत्, न पुनरसौ क्षपयत्युपशमयति वा, तस्य गुणस्थानं अपूर्वकरणगुणस्थानम् । अपूर्वकरणाद्धायाश्चान्तर्मौहूर्तिक्याः प्रथमसमये जघन्यादीन्युत्कृष्टान्तान्यध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्राणि । द्वितीयसमये तदन्यान्यधिकतराणि । तृतीयसमये तदन्यान्यधिकतराणि चतुर्थसमये । तदन्यान्यधिकतराणीत्येवं यावच्चरमसमय इति । तानि च स्थापनायां विषमचतुरस्रं क्षेत्रमास्तृणन्ति । स्थापना—

७०००००००००
६००००००००
५०००००००
४००००००
३०००००
२००००
१०००
ज० म० उ०

प्रथमसमयजघन्यात्प्रथमसमयोत्कृष्टमनन्तगुणविशुद्धम्, तस्माद् द्वितीयसमयजघन्यमनन्तगुणविशुद्धम्, तस्मात्तदुत्कृष्टमनन्तगुणेन विशुद्धमिति । एवं यावद्द्विचरमसमयोत्कृष्टाच्चरमसमयजघन्यमनन्तगुणविशुद्धम्, तस्माच्चदुत्कृष्टमनन्तगुणविशुद्धमिति । एकसमयगतानि तु परस्परं षट्स्थानपतितानीति । युगपदेतद्गुणस्थानप्रविष्टानां बहूनां जीवानामन्योऽन्यस्य संबन्धिनोऽध्यवसायस्थानस्यास्ति निवृत्तिरपीति निवृत्तिगुणस्थानमपीदमुच्यते ८ ॥

युगपदेकगुणस्थानं प्रतिपन्नानां बहूनां जीवानामन्योऽन्यस्य संबन्धिनोऽध्यवसायस्थानस्य व्यावृत्तिरिह निवृत्तिरभिप्रेता, नास्ति तथाविधा निवृत्तिरस्येत्यनिवृत्तिः, अन्येषां यदध्यवसायस्थानमसावपि तद्वर्तीत्यर्थः, सम्परायः कषायोदयः,समन्तात्परैति पर्यटति संसारमनेनेतिकृत्वा । बादरः स्थूलः सम्परायो यस्य स बादरसम्परायः, सूक्ष्मकिट्टीकृतसम्परायापेक्षया बादरत्वम् । अनिवृत्तिश्चासौ बाद-

रसम्परायश्चेत्यनिवृत्तिबादरसम्परायः। स च द्विविधः, क्षपक उपशमको वा, क्षपयति उपशमयति वा मोहनीयादिकर्मेति कृत्वा, तस्य गुणस्थानं अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानम्। अनिवृत्तिबादरसम्परायाद्धायामान्तर्मौहूर्तिक्यां प्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयमेकैकमनन्तगुणविशुद्धं यथोत्तरमध्यवसायस्थानम् तेन तत्रैकसमयप्रविष्टानामेकमध्यवसायस्थानमनुवर्तते परस्परं न तु निवर्तत इत्यनिवृत्तित्वम् ९ ॥

सूक्ष्मः सम्परायः किट्टीकृतलोभकषायोदयरूपो यस्य सोऽयं सूक्ष्मसम्परायः। सोऽपि द्विविधः, क्षपकः उपशमको वा। क्षपयत्युपशमयति वा लोभमेकमितिकृत्वा, तस्य गुणस्थानम् १० ॥

छाद्यते केवलज्ञानदर्शनमात्मनोऽनेनेऽति छद्म ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायमोहनीयकर्मोदयः, सति तस्मिन् केवलस्यानुत्पादात्तदपगमानन्तरं चोत्पादाच्छद्मनि तिष्ठतीति छद्मस्थः, स च सरागोऽपि भवतीत्यतस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम्। वीतो विगतो रागो मायालोभकषायोदयरूपो यस्य स वीतरागः, स चासौ छद्मस्थश्च वीतरागच्छद्मस्थः। स च क्षीणकषायोऽपि भवति, तस्यापि यथोक्तरागापगमादतस्तद्व्यवच्छेदार्थमुपशान्तकषायग्रहणम्। कषत्रूष-शिषेत्यादिदण्डकधातुर्हिंसार्थः। कषन्ति कष्यन्ते च परस्परमस्मिन् प्राणिन इति कषः संसारः। 'पुंसि सञ्ज्ञायां घः प्रायेण' (पा० ३-३-१८) इति घः प्रायग्रहणात्, अन्यथा हि हलन्तत्वात् 'हलश्च' (पा०३-३-१२१) इति घञ् स्यात्। कषमयन्ते गच्छन्ति एभिर्जन्तव इति कषायाः क्रोधादयः। उपशान्ता उपशमिता विद्यमाना एव सङ्क्रमणोद्वर्तनापवर्तनादिकरणोदयायोग्यत्वेन व्यवस्थापिताः कषाया येन स उपशान्तकषायः, स चासौ वीतरागच्छद्मस्थश्चेत्युपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थः तस्य गुणस्थानमिति प्राग्वत्। तत्राविरतसम्यग्दृष्टेः प्रभृत्यनन्तानुबन्धिनः कषाया उपशान्ताः संभवन्ति। उपशमश्रेण्यारम्भे ह्यनन्तानुबन्धिकषायानविरतो देशविरतः प्रमत्तोऽप्रमत्तो वा सन् उपशमय्य दर्शनमोहत्रितयमुपशमयति। तदुपशमानन्तरं प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानपरिवृत्तिशतानि कृत्वा ततोऽपूर्वकरणगुणस्थानोत्तरकालमनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थाने चारित्रमोहनीयस्य प्रथमं नपुंसकवेदमुपशमयति, ततः स्त्रीवेदम्, ततो हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सारूपं युगपत् षट्कम् ६, ततः पुरुषवेदम्, ततो युगपदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणौ क्रोधौ, ततः संज्वलनक्रोधम्, ततो युगपद्द्वितीयतृतीयौ मानौ ततः संज्वलनमानम्, ततो युगपद्द्वितीयतृतीये माये, ततः संज्वलनमायाम्, ततो युगपद्द्वितीयतृतीयौ लोभौ, ततः सूक्ष्मसम्परायगुणस्थाने संज्वलनलोभमुपशमयतीति। तदेवमन्येष्वपि गुणस्थानेषु क्वापि कियतामपि कषायाणामुपशान्तत्वसंभवात् उपशान्तकषायव्यपदेशः संभवतीत्यतस्तद्व्यवच्छेदार्थमुपशान्तकषायग्रहणे सत्यपि वीतरागग्रहणं कर्तव्यम्। उपशान्तकषायवीतराग इति चैतावतैवेष्टसिद्धौ छद्मस्थग्रहणं स्वरूपकथनार्थम्, व्यवच्छेद्याभावात्। न ह्यच्छद्मस्थ उपशान्तकषायवीतरागः संभवति, यस्य छद्मस्थग्रहणेन व्यवच्छेदः स्यात् ११ ॥

क्षीणा अभावमापन्नाः कषाया यस्य स क्षीणकषायः । तत्रानन्तानुबन्धिकषायान् प्रथममविरतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानेषु क्षपयति । दर्शनत्रितयं चैतेषु पूर्वोक्तगुणस्थानेषु क्षपयति । ततः शेषान् संज्वलनलोभवर्जाननिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थाने वक्ष्यमाणेन क्रमेण क्षपयति । संज्वलनलोभं सूक्ष्मसम्परायगुणस्थान इति । तदेवमन्येष्वपि सरागेषु क्षीणकषायव्यपदेशः संभवति क्वापि कियतामपि कषायाणां क्षीणत्वसंभवात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम् । क्षीणकषायवीतरागत्वं च केवलिनोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं छद्मस्थग्रहणम् । छद्मस्थग्रहणेऽपि च कृते सरागव्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम् । वीतरागश्चासौ छद्मस्थश्चेति वीतरागच्छद्मस्थः । स चोपशान्तकषायोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं क्षीणकषायग्रहणम् । क्षीणकषायश्चासौ वीतरागच्छद्मस्थश्च क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थः तस्य गुणस्थानमिति प्राग्वत् १२ ॥

वीर्यान्तरायक्षयक्षयोपशमसमुत्थलब्धिविशेषप्रत्ययमभिसन्ध्यनभिसन्धिपूर्वमात्मनो वीर्यं योगः । स द्विधा, सकरणोऽकरणश्च । तत्रालेश्यस्य केवलिनः कृत्स्नयोर्ज्ञेयदृश्ययोरर्थयोः केवलं ज्ञानं दर्शनं चोपयुञ्जानस्य योऽसावपरिस्पन्दोऽप्रतिघो वीर्यविशेषः सोऽकरणः, स च नेहाधिक्रियते । यस्तु मनोवाक्कायकरणसाधनसलेश्यजीवकर्तृको जीवप्रदेशपरिस्पन्दात्मको व्यापारः स सकरणस्तेकेवलिनो नेहाधिकारः । स च करणभेदात्तिस्रः संज्ञा लभते, तद्यथा-कायिको वाचिको मानसश्चेति । तत्र भगवतोऽभिसन्धिपूर्वस्त्रिविधोऽपि भवति । कायिकश्चङ्क्रमणनिमेषोन्मेषादौ । वाचिको देशनादौ । मानसो मनःपर्यायज्ञानिभिरनुत्तरसुरादिभिर्वा मनसा पृष्टस्य सतो मनसैव देशनायाम्, ते हि भगवत्प्रयुक्तानि मनोद्रव्याणि मनःपर्यायज्ञानेनावधिज्ञानेन च पश्यन्ति, ततस्तद्द्वारेण पृष्टमर्थमवगच्छन्ति । सह योगेन वर्तत इति सयोगः सयोगीति वा, बहुव्रीहेर्मत्वर्थीय इति यथा सर्वधनीत्यादौ सर्वधनादेराकृतिगणत्वात्, केवलमेकमसहायमसाधारणमनन्तमपरिशेषं च । तत्रैकं तद्भावे छाद्मस्थिकशेषज्ञानदर्शनाभावात् । 'उक्तं च-'[1]"'उप्पन्नंमि अणंते, नट्ठंमि य छाउमत्थिए नाणे" इति । असहायं न तु मतिज्ञानवदिन्द्रियमनःकृतसहायकापेक्षमर्थग्रहणे प्रवर्तते, परनिरपेक्षनिरावरणात्मस्वभावत्वात् । असाधारणमनन्यसदृशं, तदन्यस्यैवंविधज्ञानदर्शनाभावात् । अनन्तमपर्यवसानं, पुनस्तत्स्वरूपतिरस्करणकारणघातिकर्माऽत्यन्तक्षयोद्भूतत्वात् द्रव्याद्यनन्तज्ञेयग्रहणात्मकत्वाद्वा अनन्तम् । अपरिशेषं संपूर्णं, संभिन्नापरिशेषद्रव्यक्षेत्रकालभावलक्षणवस्तुग्रहणस्वरूपत्वात् । तच्च द्विविधं, ज्ञानं दर्शनं चेति । तत्केवलं यस्यास्तीति स केवली, सयोगी चासौ केवली चेति सयोगिकेवली तस्य गुणस्थानं तथैव १३॥

नास्ति यथोक्तो योगो निरुद्धत्वादस्येत्ययोगः अयोगीति वा पूर्ववदिति । स त्रिविधोऽपि योगः प्रत्येकं द्विविधः, सूक्ष्मो बादरश्च । तत्र केवलोत्पत्तेरुत्तरकालं जघन्येनान्तर्मुहूर्तमुत्कर्षेण देशो-

---

१ "तदुक्तम्" इत्यपि पाठः ॥

नपूर्वकोटीं विहृत्यान्तर्मुहूर्तावशेषायुष्कः सयोगिकेवली प्रथमं बादरकाययोगेन बादरवाङ्मनोयोगौ निरुणद्धि । ततः सूक्ष्मकाययोगेन बादरं काययोगं निरुणद्धि, सति तस्मिन् सूक्ष्मयोगस्य निरोद्धुमशक्यत्वात् । ततश्च सर्वबादरयोगनिरोधानन्तरं सूक्ष्मक्रियमनिवर्त्तिशुक्लध्यानं ध्यायन् सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मवाङ्मनोयोगौ निरुणद्धि । ततस्तमेव सूक्ष्मकाययोगं स्वात्मनैव निरुणद्धि । तन्निरोधानन्तरं समुच्छिन्नक्रियमप्रतिपातिशुक्लध्यानं ध्यायन् ह्रस्वपञ्चाक्षरोच्चारणमात्रं कालं शैलेशीकरणं प्रविष्टो भवति शीलस्य योगलेश्याकलङ्कविप्रमुक्तयथाख्यातचारित्रलक्षणस्य य ईशः स शीलेशः, तस्येयं शैलेशी । त्रिभागोनस्वदेहावगाहनयामुदरादिरन्ध्रपूरणवशात्सङ्कोचितस्वप्रदेशस्य शीलेशस्यात्मनोऽत्यन्तं स्थिरावस्थितिरित्यर्थः । तस्यां करणं पूर्वरचितशैलेशीसमयसमानगुणश्रेणीकस्य वेदनीयनामगोत्राख्यस्याघातिकर्मत्रितयस्यासंख्येयगुणया श्रेण्या, आयुःशेषस्य तु यथास्वरूपस्थितया श्रेण्या निर्जरणं शैलेशीकरणम्, तच्चासौ प्रविष्टः सन् अयोगी चासौ केवली चेत्ययोगिकेवली भवस्थः । स च शैलेशीकरणचरमसमयान्तरसमये छिन्नचतुर्विधकर्मबन्धनत्वाच्छिन्नफलबन्धनैरण्डबीजवद्गतिप्रवृत्तेः, व्यवगतकर्मलेपसङ्गत्वात् । विगतमृल्लेपसङ्गगम्भीरजलतलवत्युपरितलगामयलाबुवत् सर्वथा विप्रहाय शरीरत्रयमूर्ध्वमृजुश्रेण्या समयेन गच्छत्यालोका[1]न्तरम्, न परतोऽपि, मत्स्यस्य जलकल्पगत्युपष्टम्भकधर्मास्तिकायाभावात् । तत्रासौ सिद्धोऽयोगिकेवली शाश्वतं कालमास्ते १४॥ इति व्याख्यातानि लेशतो गुणस्थानकानि ।

गाथाऽधुना विव्रियते–'मिच्छे' इति, भीमसेनो भीम इत्यादिवत्पदवाच्यस्यार्थस्य पदैकदेशेनाप्यभि[2]धानदर्शनान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमित्यर्थः । एवमुत्तरेष्वपि पदवाच्यस्यार्थस्य पदैकदेशप्रयोगो द्रष्टव्यः । तत्र षोडशेति बन्धमाश्रित्य कर्मप्रकृतय इति प्रक्रमाद्गम्यते । व्यवच्छिन्ना इति वक्ष्यमाणेन संबन्धः । तत्र भावस्तदुत्तरेषु चाभावो व्यवच्छेदार्थः । केवलज्ञानं जम्बूस्वामिनि यथा, विंशत्युत्तरं च कर्मप्रकृतिशतं बन्धेऽधिक्रियते तच्च दर्शयिष्यामः । तत्र तीर्थकरनाम्न आहारकद्वयस्य च मिथ्यादृष्टेर्बन्धो नास्ति, तद्बन्धस्य यथासङ्ख्यं सम्यक्त्वसंयमप्रत्ययत्वात् । उक्तं च–"सम्मत्तगुणनिमित्तं, तित्थयरं संजमेण आहारं" इति । शेषस्य सप्तदशोत्तरस्य कर्मप्रकृतिशतस्य मिथ्यादृष्टेर्बन्ध इति । 'पणुवीस सासणे' इति, पञ्चविंशतिः कर्मप्रकृतयः सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने बन्धं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः । इह तु मिथ्यादृष्टिषोडशके सप्तदशोत्तरशतादपनीते शेषस्यैकोत्तरशतस्य बन्धः । तीर्थकरनाम्नस्तु सत्यपि तत्प्रत्यये सम्यक्त्वे नास्तीह बन्धः, तस्य हि बन्धारम्भः शुद्धसम्यग्दृष्टेरेव भवति । तत्सत्कर्मा च सासादनत्वं न प्राप्नोति । सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने तु देवमनुष्यायुषोरपि बन्धो नास्ति, आयुर्बन्धाध्यवसायस्थानविरहात् । अतस्तत्सहितायां सासादनव्यवच्छिन्नपञ्चविंशतावेकोत्तरशतादपनीतायां शेष-

१ "न्तात्, न" इत्यपि ॥ २ "धानान्मिथ्या" इति वा पाठः ।

चतुःसप्ततेर्बन्धः 'अविरए य दस पयडी' इति, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने दश प्रकृतयो बन्धं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः। पूर्वोक्तायां चतुःसप्ततौ देवमनुष्यायुष्कतीर्थकरनामसु प्रक्षिप्तेषु सप्तसप्ततेर्बन्धः। 'चउ छक्कमेग देसे, विरए य कमेण वोच्छिन्ना' इति, चतस्रः षट्कं एकं देशे इति देशविरतगुणस्थाने, विरते चेति विरतो द्विविधः, प्रमत्तोऽप्रमत्तश्च तस्मिन्निति। किमुक्तं भवति?-देशविरतगुणस्थाने चतस्रः प्रमत्तसंयतगुणस्थाने, षट्कं अप्रमत्तसंयतगुणस्थाने त्वेका कर्मप्रकृतिः क्रमेण यथासंख्यं व्यवच्छिन्नाः। तत्र देशविरतगुणस्थाने दशसु प्रकृतिषु अविरतसम्यग्दृष्टिव्यवच्छिन्नासु सप्तसप्ततेरपनीतासु शेषायाः सप्तषष्टेर्बन्धः। प्रमत्तसंयतगुणस्थाने तु देशविरतव्यवच्छिन्नासु चतसृषु प्रकृतिषु सप्तषष्टेरपनीतासु शेषायास्त्रिषष्टेर्बन्धः। अप्रमत्तसंयतगुणस्थाने तु प्रमत्तसंयतव्यवच्छिन्नासु षट्सु प्रकृतिषु त्रिषष्टेरपनीतासु शेषायां सप्तपञ्चाशति द्वयोराहारकशरीराहारकाङ्गोपाङ्गयोः प्रक्षिप्तयोरेकोनषष्टेर्बन्धः। प्रमत्तसंयतगुणस्थाने तु तत्प्रत्यये संयमे सत्यपि नास्त्याहारकद्वयबन्धः, तस्य प्रमादरहितविशिष्टसंयमप्रत्ययत्वात् देवायुषस्तु बन्धे व्यवच्छिन्ने सत्यप्रमत्तसंयतस्याप्यष्टपञ्चाशतो बन्धः ॥२॥

दुगतीसचउरपुव्वे, पंच नियट्टिंमि बंधवोच्छेओ।
सोलस सुहुमसरागे, साय सजोगी जिणवरिंदे ॥३॥

(टीका) 'दुगतीसचउरपुव्वे' इति, अपूर्वकरणगुणस्थाने त्वन्तर्मुहूर्तमात्रायास्तदद्धाया भागसप्तकम्। तत्र प्रथमे सप्तभागे द्विकस्य बन्धव्यवच्छेद इति वक्ष्यमाणेन संबन्धः। षष्ठे सप्तभागे त्रिंशतः, चरमे सप्तमागे चतसृणां प्रकृतीनां बन्धव्यवच्छेदः। तत्र प्रथमे सप्तभागे प्रागुक्ताया अष्टपञ्चाशतो बन्धः। द्वितीयादिभागेषु तु प्रथमभागव्यवच्छिन्नं प्रकृतिद्वयमष्टपञ्चाशतः शोध्यते, शेषायाः षट्पञ्चाशतो बन्धः। सप्तमभागे षष्ठभागव्यवच्छिन्नायां त्रिंशति षट्पञ्चाशतः शोधितायां शेषायाः षड्विंशतेर्बन्धः। 'पंच नियट्टिंमि बंधवोच्छेओ' इति, अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थाने पञ्चानां कर्मप्रकृतीनां बन्धव्यवच्छेदः। 'पञ्च' इति, छन्दोवशादार्षत्वाच्च षष्ठ्यर्थे प्रथमा, दृश्यते ह्यार्षे विभक्तिव्यत्ययः। तद्यथा-'अक्खत्थूससिएण' इति। अन्यत्रोच्छ्वसितादिति पञ्चम्यर्थे तृतीया। एवं द्विकत्रिंशच्चतुरित्यत्रापि समाहारद्वन्द्वात्षष्ठ्यर्थे प्रथमा द्रष्टव्या। तासां च पञ्चानां न युगपद्बन्धव्यवच्छेदः, किन्तु क्रमेणानिवृत्त्यद्धायाः पञ्चसु भागेषु एकस्याः कर्मप्रकृतेः प्रथमभागे, द्वितीयस्या द्वितीये, तृतीयस्यास्तृतीये, चतुर्थ्याश्चतुर्थे, पञ्चम्याः पञ्चमे भागे बन्धव्यवच्छेद इति। तत्र प्रथमे भागे चतसृषु प्रकृतिष्वपूर्वकरणगुणस्थानसप्तमभागव्यवच्छिन्नासु षड्विंशतेरपनीतासु शेषाया द्वाविंशतेर्बन्धः। द्वितीयभागे प्रथमभागव्यवच्छिन्नामेकामपनीय शेषैकविंशतेर्बन्धः। तृतीये भागे द्वितीयभागव्यवच्छिन्नामेकामपनीय शेषाया विंशते-

बन्धः । चतुर्थभागे तु तृतीयभागव्यवच्छिन्नामेकां मुक्त्वा शेषाया एकान्नविंशतेर्बन्धः । पञ्चमभागे तु चतुर्थभागे व्यवच्छिन्नामेकां मुक्त्वा शेषाणामष्टादशानां बन्धो बोद्धव्यः । **'सोलस सुहुमसरागे'** इति, सूक्ष्मसम्परायगुणस्थाने षोडशेति विभक्तिव्यत्ययात्षोडशानां कर्मप्रकृतीनां बन्धव्यवच्छेदः । इह चानिवृत्तिबादरसम्परायपञ्चमभागव्यवच्छिन्नायामेकस्यां कर्मप्रकृतावष्टादशभ्योऽपनीतायां शेषाणां सप्तदशानां बन्धः । **'साय सजोगो जिणवरिंदे'** इति, सयोगिकेवलिगुणस्थाने सातस्यैकस्य बन्धव्यवच्छेदः । जिनवरेन्द्र इति पूर्ववत् । सूक्ष्मसम्परायव्यवच्छिन्नासु षोडशसु प्रकृतिषु सप्तदशभ्योऽपनीतासूपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिगुणस्थानेषु शेषाया एकस्याः सातवेदनीयकर्मप्रकृतेर्बन्धः । अयोगिकेवली त्वबन्धकः, पुद्गलग्रहणहेतोर्योगस्याभावात् । उक्तं हि–**'जोगा पयडिपएसं'** इति ॥३॥

उक्तो गुणस्थानेषु प्रकृतिबन्धव्यवच्छेदोद्देशः । इदानीं तेष्वेव क कियतीनां कर्मप्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः ? इत्याह—

पण नव [1]इग सत्तरसं, अड पंच य चउर छक्क छ च्चेव ।
[2]इग दुग सोलस तीसं, बारस उदए [3]अजोगंता ॥४॥

पञ्च १ नव २ एका ३ सप्तदश ४ अष्टौ ५ पञ्च ६ च चतस्रः ७ षट्कं ८ षट् ९ चैव एका १० द्विकं ११ षोडश १२ त्रिंशत् १३ द्वादश १४ कर्मप्रकृतयो यथासङ्ख्यं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानप्रभृत्ययोग्यन्ता योज्याः । कर्मप्रकृतीनां च द्वाविंशं शतमुदयोदीरणयोरधिक्रियते, तच्च दर्शयिष्यामः । तत्र–मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने पञ्चानामुदयव्यवच्छेदः पूर्वोक्त एव व्यवच्छेदार्थः सर्वत्रानुसरणीयः इह सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वाहारकशरीरतदङ्गोपाङ्गनामतीर्थकरनाम्नां पञ्चानां प्रकृतीनामुदयो मिथ्यादृष्टेर्नास्ति । शेषस्य सप्तदशोत्तरस्य शतस्योदयः । सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने नवानामुदयव्यवच्छेदः । सासादनभावस्थस्य नरकेषूत्पादो न संभवतीति तदपान्तरालगतिभावी नरकानुपूर्व्या नास्त्युदय इति तत्सहिते मिथ्यादृष्टिव्यवच्छिन्ने पञ्चके सप्तदशोत्तरशतादपनीते शेषस्यैकादशोत्तरशतस्योदयः । सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने त्वेकस्याः कर्मप्रकृतेरुदयव्यवच्छेदः । सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्विग्रहगतिर्न संभवति, **'न सम्ममिच्छो कुणइ कालं'** इति वचनात् । अतो विग्रहगतिभावी नास्त्यानुपूर्वीचतुष्कस्योदयः । तत्र नरकानुपूर्वी पूर्वा(र्वम)पनीतैव, शेषत्रयसहितं सासादनव्यवच्छिन्नं नवकं द्वादश भवन्ति । तेष्वेकादशोत्तरशतादपनीतेषु [4]शेषा नवनवतिः, तस्यां सम्यग्मिथ्यात्वे प्रक्षिप्ते शतस्योदयः । अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने सप्तदशानां प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । सम्यग्मिथ्यादृष्टिव्यवच्छिन्नामेकां प्रकृतिं

१–२ "दुगि" इत्यपि पाठः ३ "य" इत्यपि पाठः । ४ "शेषायां नवनवतौ सम्यग्मिथ्यात्वं प्रक्षिप्यते ततश्च शतस्योदयः" इत्यपि पाठः ।

शतादपनीय शेषायां नवनवतौ सम्यक्त्वमानुपूर्वीचतुष्कं च प्रक्षिप्यते ततश्चतुरुत्तरशतस्योदयः । देशविरतगुणस्थाने प्रकृत्यष्टकस्योदयव्यवच्छेदः । अविरतसम्यग्दृष्टिव्यवच्छिन्ने सप्तदशके चतुरुत्तरशतादपनीते शेषायाः सप्ताशीतेरुदयः । प्रमत्तसंयतगुणस्थाने पञ्चानामुदयव्यवच्छेदः । देशविरतव्यवच्छिन्नमष्टकं सप्ताशीतेरपनीय [1]शेषायामेकोनाशीतावाहारकशरीरतदङ्गोपाङ्गनाम्नोः प्रक्षिप्तयोरेकाशीतेरुदयः । अप्रमत्तसंयतगुणस्थाने चतसृणां प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । प्रमत्तसंयतव्यवच्छिन्नं पञ्चकमेकाशीतेरपनीयते शेषायाः षट्सप्ततेरुदयः । अपूर्वकरणगुणस्थाने षण्णां प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । अप्रमत्तव्यवच्छिन्ने चतुष्के षट्सप्ततेरपनीते शेषाया द्वासप्ततेरुदयः । अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थाने षण्णां प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । अपूर्वकरणव्यवच्छिन्ने षट्के द्वासप्ततेरपनीते शेषायाः षट्षष्टेरुदयः । सूक्ष्मसम्परायगुणस्थाने त्वेकस्याः प्रकृतेरुदयव्यवच्छेदः अनिवृत्तिबादरसम्परायव्यवच्छिन्ने षट्के षट्षष्टेरपनीते शेषायाः षष्टेरुदयः । उपशान्तमोहगुणस्थाने द्वयोः प्रकृत्योरुदयव्यवच्छेदः । [2]सूक्ष्मसम्परायव्यवच्छिन्नायामेकस्यां प्रकृतौ षष्टेरपनीतायामेकोनषष्टेरुदयः । क्षीणमोहगुणस्थाने षोडशानां प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । द्वयोर्द्विचरमसमये चतुर्दशानां तु चरमसमये उपशान्तमोहव्यवच्छिन्नं द्वयमेकोनषष्टेरपनीयते, शेषायाः सप्तपञ्चाशत उदयः । सयोगिकेवलिगुणस्थाने त्रिंशतः प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । क्षीणमोहव्यवच्छिन्ने षोडशके सप्तपञ्चाशतोऽपनीते शेषायामेकचत्वारिंशति तीर्थकरनाम्नि प्रक्षिप्ते द्वाचत्वारिंशत उदयः । भवस्थायोगिकेवलिगुणस्थाने द्वादशानामुदयव्यवच्छेदः । सयोगिकेवलिव्यवच्छिन्नायां त्रिंशति द्वाचत्वारिंशतः शोधितायां द्वादशानामुदयः । सिद्धकेवली त्ववेदकः ॥४॥

इति प्रकृत्युदयव्यवच्छेदोद्देशः । इदानीमुदीरणाव्यवच्छेदोद्देशमाह—

पण नव [3]इग सत्तरसं, अट्ठट्ठ य चउर छक्क छ च्चेव ।
[4]इग दुग सोलगुयालं, उदीरणा होइ जोगंता ॥५॥

इहोदयाधिकारमनुसृत्य भावनीयमुदीरणाभिलापेन । नवरं विशेष उच्यते—प्रमत्तसंयतगुणस्थाने प्रकृत्यष्टकस्योदीरणाव्यवच्छेदः । उदीरणा त्वेकाशीतेरुदयवत् । अप्रमत्ते चतसृणां प्रकृतीनामुदीरणाव्यवच्छेदः । प्रमत्तव्यवच्छिन्नमष्टकमेकाशीतेरपनीयते, शेषायास्त्रिसप्ततेरुदीरणा । अपूर्वकरणे षण्णां व्यवच्छेदः । अप्रमत्तव्यवच्छिन्ने चतुष्के त्रिसप्ततेरपनीते शेषाया एकोनसप्तते-

१ "शेषायामेकाशीती" इति वा पाठः । एवमग्रेऽपि 'एकोनचत्वारिंशत् एकोनषष्टिः' इत्यादावपि 'एकान्नचत्वारिंशत् एकान्नषष्टिः' इत्यादि "नविंशत्यादिनैकोऽन्नान्त" (सिद्ध० ३-१-६१) इति सूत्रेण तत्पुरुषसमासे एकशब्दस्य 'अद्' इत्यन्तागमे च ज्ञेयम् ॥ २ "सूक्ष्मरागव्यव" इति वा पाठः ॥ ३-४ "इगि" इत्यपि पाठः ।

रुदीरणा । अनिवृत्तिबादरसम्पराये षण्णां व्यवच्छेदः । अपूर्वकरणव्यवच्छिन्नं षट्कमेकोनसप्ततेरपनीयते, शेषायास्त्रिषष्टेरुदीरणा । सूक्ष्मसम्पराये त्वेकस्याः प्रकृतेरुदीरणाव्यवच्छेदः । अनिवृत्तिबादरसम्परायव्यवच्छिन्ने षट्के त्रिषष्टेरपनीते शेषायाः सप्तपञ्चाशत उदीरणा । उपशान्तमोहे द्वयोरुदीरणाव्यवच्छेदः । [1]सूक्ष्मरागव्यवच्छिन्नायामेकस्यां सप्तपञ्चाशतः शोधितायां शेषायाः षट्पञ्चाशत उदीरणा । क्षीणमोहे षोडशानामुदीरणाव्यवच्छेदः । उपशान्तमोहव्यवच्छिन्ने द्वये षट्पञ्चाशतः शोधिते शेषायाश्चतुष्पञ्चाशत उदीरणा । सयोगिकेवलिन्येकोनचत्वारिंशत उदीरणाव्यवच्छेदः । क्षीणकषायव्यवच्छिन्ने षोडशके चतुष्पञ्चाशतः शोधिते शेषायामष्टात्रिंशति तीर्थकरनाम्नि प्रक्षिप्ते सत्येकोनचत्वारिंशत उदीरणा । अयोगिकेवली त्वनुदीरक एव ॥५॥

इति प्रकृत्युदीरणाव्यवच्छेदोद्देशः । प्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदोद्देशमाह—

अणमिच्छमीससम्मं, अविरयसम्माइअप्पमत्तंता ।
सुरनरयतिरियआउं, नियगभवे सव्वजीवाणं ॥६॥

अनन्तानुबन्धिनश्चत्वारः क्रोधमानमायालोभाः, मिथ्यात्वं, 'मिश्रं' सम्यग्मिथ्यात्वमित्यर्थः सम्यक्त्वं इत्येताः सप्त कर्मप्रकृतयोऽविरतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्ताः । किमुक्तं भवति ?, एताः प्रकृतयोऽविरतदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतगुणस्थाना[2]नामन्यतमस्मिन् व्यवच्छिन्नसत्ताका भवन्ति । एतां हि सप्त प्रकृतीरेतेषामन्यतमो विशुद्धिवशात् क्षपयतीति । तथा सुरनारकतिर्यगायूंषि निजकभवे सत्तामधिकृत्य व्यवच्छिन्नानीत्यधिकाराल्लभ्यते । केषाम् ?, इत्याह—सर्वजीवानां क्षपकजिनत्वं प्राप्स्यतामेव, न त्वन्येषामित्यर्थाद्गम्यते । तथाहि—ये जीवाः सुरनारकतिर्यक्षु चरमं तद्भवमनुभूय मनुष्यतयोत्पन्नास्तेषां सुरनारकतिर्यगायूंषि स्वस्वभवे व्यवच्छिन्नसत्ताकानि जातानि, पुनस्तदनवाप्तेः, नान्येषां पुनस्तत्प्राप्तेरिति । अष्टचत्वारिंशं च शतं कर्मप्रकृतीनां सत्तायामधिक्रियते, तच्च दर्शयिष्यामः । तत्र मिथ्यादृष्टेरष्टचत्वारिंशस्यापि शतस्य सत्ता । यदा प्राग्बद्धनारकायुष्कः क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वमवाप्य तीर्थकरनाम्नो बन्धमारभते, तदाऽसौ नरकेषूत्पद्यमानः सम्यक्त्वमवश्यं वमतीति मिथ्यादृष्टेस्तीर्थकरनाम्नोऽपि सत्ता संभवति । सासादनसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योस्तस्मिन्नेव तीर्थकरनामरहिते सप्तचत्वारिंशस्य शतस्य सत्ता । तीर्थकरनामसत्कर्मणो जीवस्य तद्भावानवाप्तेः । तद्बन्धारम्भस्य च शुद्धसम्यक्त्वप्रत्ययत्वादित्युक्तं प्राक् । अविरतदेशविरत[3]प्रमत्तसंयताप्रमत्तसंयतानामक्षपितदर्शनसप्तकानामष्टचत्वारिंशस्य शतस्य सत्ता संभवति । तदितरेषां त्वेकचत्वारिंशस्य शतस्येति । इयं चैतेषु गुणस्थानेषु सामान्यजीवानां संभवमधिकृत्य सत्ता वर्णिता, न त्वधिकृतस्तवस्तुत्यस्य जिनस्यैषा सत्ता

१ "सूक्ष्मसम्परायव्यव०" इति वा पाठः २ "अन्यतरस्मिन्" इत्यपि पाठः । ३ "प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानाम" इति वा पाठः ।

संभवति, अस्याः सुरनारकतिर्यगायुष्कसंभवापेक्षणीयत्वात्, जिनस्य च तद्‌संभवत्त्वेऽपि वा प्राग्भवापेक्षया संभवो भाव्यः । इदानीं जिनस्य क्षपकश्रेण्यामपूर्वकरणादिषु प्रकृतिसत्ताऽनुवर्ण्यते । उपशमश्रेणी [1]सत्तायास्त्विह नाधिकारः । तत्रापूर्वकरणगुणस्थाने स्वस्वभवव्यवच्छिन्नानि देवनारकतिर्यगायूंषि त्रीण्यविरताद्यप्रमत्तसंयतावसानगुणस्थानव्यवच्छिन्नं च दर्शनसप्तकमष्टाचत्वारिंशशतादपनीयते, शेषस्याष्टात्रिंशस्य प्रकृतिशतस्य सत्ता ॥६॥

अधुना त्वनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थाने प्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदमाह—

सोलस [2]अट्ठेक्केक्कं [3]छक्केक्कक्केक्क खीणमनियट्टी ।
एगं सुहुमसरागे, खीणकसाए य सोलसगं ॥७॥

षोडश १ अष्टौ २ एकं ३ एकं ४ "छक्केक्केक्क खीणमनियट्टी" इति, षट् ५ एकं ६ एकं ७ एकं ८ एकं ९ । क्रमेण कर्म क्षीणं 'अनिवृत्तौ' अनिवृत्त्यद्धायां प्रथमं षोडश कर्माणि क्षीणानि । ततोऽष्टौ तत एकमित्यादिक्रमः । यावदक्षीणं षोडशकं तावत्पूर्वोक्तस्याष्टात्रिंशस्य शतस्य सत्ता । तस्मिन् क्षीणे सत्यष्टात्रिंशशतादपनीते शेषस्य द्वाविंशस्य शतस्य सत्ता । ततोऽप्यष्टके क्षीणे द्वाविंशशतादपनीते शेषस्य चतुर्दशोत्तरस्य शतस्य सत्ता । ततोऽप्येकस्मिन् क्षीणे त्रयोदशस्य शतस्य सत्ता । ततः पुनरेकस्मिन क्षीणे द्वादशस्य शतस्य सत्ता । ततोऽपि षट्के क्षीणे द्वादशशतादपनीते षडुत्तरशतस्य सत्ता । तस्मादेकस्मिन् क्षीणे पञ्चोत्तरशतस्य सत्ता । ततोऽपि द्वितीये पुनरेकस्मिन् क्षीणे चतुरुत्तरशतस्य सत्ता । ततोऽपि तृतीये पुनरेकस्मिन् क्षीणे त्र्युत्तरशतस्य सत्ता । ततश्चतुर्थे पुनरेकस्मिन् क्षीणे द्व्युत्तरशतस्य सत्ता । **'एगं सुहुमसरागे'** इति, सूक्ष्मसरागगुणस्थाने त्वेकं कर्म क्षीणं व्यवच्छिन्नमित्यर्थः । पूर्वोक्तस्य द्व्युत्तरशतस्य सत्ता । **'खीणकसाए य सोलसगं'** इति, क्षीणकषायगुणस्थाने षोडशकं कर्मणां क्षीणम् । द्वे कर्मणी द्विचरमसमये, चतुर्दश चरमसमय इति । तत्र यावद्द्विचरमसमयस्तावत्सूक्ष्मसम्परायक्षीणायामेकस्यां कर्मप्रकृतौ द्व्युत्तरशतादपनीतायां शेषस्यैकोत्तरशतस्य सत्ता । चरमसमये तु द्विचरमसमयक्षीणं द्विकमेकोत्तरशतादपनीयते, शेषाया नवनवतेः सत्ता । सयोगिकेवलिनस्तु क्षीणकषायचरमसमयक्षीणे चतुर्दशके नवनवतेरपनीते शेषायाः पञ्चाशीतेः सत्ता ॥७॥

बावत्तरि दुचरिमे, तेरस चरिमे अजोगिणो खीणे ।
अडयालं पयडिसयं, खविय जिणं निव्वुयं वंदे ॥८॥

---

१ "सत्तया त्विह" इत्यपि पाठः ॥ २ "अट्ठिक्किक्कं" इत्यपि पाठः । ३–४ "छक्किक्किक्किक्क खीणमनियट्टी ।" इति वा पाठः ॥

अयोगिकेवलिनो द्वासप्ततिर्द्विचरमे समये क्षीणा। द्वौ चरमावस्मादिति द्विचरमः, तद्गुणसंविज्ञानेन बहुव्रीहिणा चरमात्पूर्वोऽनन्तरसमय उच्यते। **'तेरस चरिमे अजोगिणो खीणे'** इति त्रयोदश चरमे समये कर्माण्ययोगिकेवलिनः क्षीणानि। यावद्द्विचरमसमयस्तावत्पूर्वोक्तायाः पञ्चाशीतेः सत्ता। चरमसमये तु द्विचरमसमयक्षीणायां द्वासप्ततौ पञ्चाशीतेरपनीतायां शेषाणां त्रयोदशानां सत्ता। तदेवं च **'अडयालं पयडिसयं, खविय जिणं निव्वुयं वंदे'** इति, पूर्वमवक्षीणमायुस्त्रयमविरताद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानक्षीणे दर्शनसप्तके क्षिप्तं जाता दश। तेऽप्यनिवृत्तिबादरसम्परायक्षीणे षोडशके क्षिप्ता जाता षड्विंशतिः। तस्यां तत्रैव क्षीणमष्टकं क्षिप्तं जाता चतुस्त्रिंशत्। तस्यां तत्रैव क्रमेण क्षीणौ द्वावेककौ क्षिप्तौ जाता षट्त्रिंशत्। तस्यां तत्रैव क्षीणं षट्कं क्षिप्तं जाता द्विचत्वारिंशत्। तस्यां तत्रैव क्रमेण क्षीणाश्चत्वार एककाः क्षिप्ता जाता षट्चत्वारिंशत्। तस्यां सूक्ष्मसम्परायक्षपित एकः क्षिप्तो जाता सप्तचत्वारिंशत्। तस्यां क्षीणमोहक्षपितं द्वयं क्षिप्तं जातैकोनपञ्चाशत्। तस्यां तत्क्षपितमेव चतुर्दशकं क्षिप्तं जाता त्रिषष्टिः। साऽप्ययोगिकेवलिक्षपितायां द्विसप्ततौ क्षिप्ता जातं पञ्चत्रिंशं शतम्। तत्र तत्क्षपितमेव त्रयोदशकं क्षिप्तं जातमष्टचत्वारिंशं शतमिति। तदेवमष्टचत्वारिंशं प्रकृतिशतं क्षपयित्वा जिनो निर्वृतः, तमेवंविधं जिनमहं वन्दे॥८॥

इत्युक्तः सत्ताव्यवच्छेदोद्देशः। इदानीं बन्धादिव्यवच्छेदोद्देशेषूद्दिष्टानां षोडशादीनां प्रकृतिसंख्यानां प्रतिनिर्देशाय मूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतीर्दर्शयितुमाह—

नाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउयनामं गोयं, तहंतरायं च पयडीओ ॥९॥
पंच नव [१]दोन्नि अट्ठावीसा चउरो तहेव बायाला।
[२]दोण्णि य पंच य भणिया, पयडीओ उत्तरा चेव ॥१०॥

गाथे युगपद्व्याख्यायेते—ज्ञानस्यावरणं पञ्चविधं भवति। तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानावरणं १ श्रुतज्ञानावरणं २ अवधिज्ञानावरणं ३ मनःपर्यायज्ञानावरणं ४ केवलज्ञानावरण ५ मिति १॥ दर्शनस्यावरणं नवविधम्। तद्यथा—निद्रा १ निद्रानिद्रा २ प्रचला ३ प्रचलाप्रचला ४ स्त्यानर्द्धिः ५ चक्षुर्दर्शनावरणं ६ अचक्षुर्दर्शनावरण ७ अवधिदर्शनावरणं ८ केवलदर्शनावरणं ९ चेति २॥ वेदनीयं द्विविधम्—सातवेदनीयं १ असातवेदनीयं २ चेति ३॥ मोहनीयमष्टाविंशतिविधम्। तिस्रो दर्शनमोहनीयप्रकृतयः-मिथ्यात्वं १ सम्यग्मिथ्यात्वं २ सम्यक्त्वं ३ चेति। पञ्चविंशतिश्चारित्रमोहनीयप्रकृतयः। तद्यथा—षोडश कषायाः १६ नव नोकषायाः २५। तत्र कषायाः—अनन्तानुबन्धी क्रोधो मानो माया लोभश्च ४, अप्रत्याख्यानावरणः क्रोधो मानो

१-२ "दुन्नि" इत्यपि पाठः।

माया लोभश्च ८, प्रत्याख्यानावरणः क्रोधो मानो माया लोभश्च १२, संज्वलनः क्रोधो मानो माया लोभश्च १६ इति षोडश कषायाः। नव नोकषायास्तु—वेदत्रयं हास्यादिषट्कं च। वेदत्रयम्—स्त्रीवेदः १ पुंवेदः २ नपुंसकवेदः ३ इति। हास्यादिषट्कं च—हास्यं १ रतिः २ अरतिः ३ शोकः ४ भयं ५ जुगुप्सा ६ इत्यष्टाविंशतिधा मोहनीयमुक्तम् ४॥ आयुष्कं चतुर्धा-नारकायुष्कम् १ तिर्यगायुष्कम् २ मनुष्यायुष्कम् ३ देवायुष्क ४ मिति ५॥ [1]नाम द्विचत्वारिंशद्भेदम्। तद्यथा चतुर्दश पिण्डप्रकृतयः १४, अष्टाविंशतिः प्रत्येकप्रकृतयः २८ इति द्विचत्वारिंशत्। पिण्डप्रकृतयस्तावत्-गतिनाम १ जातिनाम २ शरीरनाम ३ शरीराङ्गोपाङ्गनाम ४ शरीरबन्धननाम ५ शरीरसङ्घातननाम ६ संहनननाम ७ संस्थाननाम ८ वर्णनाम ९ गन्धनाम १० रसनाम ११ स्पर्शनाम १२ आनुपूर्वीनाम १३ विहायोगतिनाम १४ इति चतुर्दश। एतासां तावद्भेदा दर्श्यन्ते। गतिनाम चतुर्विधम्—नारकगतिनाम १ तिर्यग्गतिनाम २ मनुष्यगतिनाम ३ देवगतिनाम ४ इति। जातिनाम पञ्चविधम्—एकेन्द्रियजातिनाम १ द्वीन्द्रियजातिनाम २ त्रीन्द्रियजातिनाम ३ चतुरिन्द्रियजातिनाम ४ पञ्चेन्द्रियजातिनाम ५ इति। शरीरनाम पञ्चविधम्—औदारिकशरीरनाम १ वैक्रियशरीरनाम २ आहारकशरीरनाम ३ तैजसशरीरनाम ४ कार्मणशरीरनाम ५ इति। अङ्गोपाङ्गं त्रिविधम्—औदारिकाङ्गोपाङ्गम् १ वैक्रियाङ्गोपाङ्गम् २ आहारकाङ्गोपाङ्गं ३ चेति। बन्धनं पञ्चविधम्—औदारिकबन्धनादि शरीरवत् ५। सङ्घातनामापि तथैव ५। संहनननाम षड्विधम्-वज्रर्षभनाराचम् १ ऋषभनाराचम् २ नाराचम् ३ अर्द्धनाराचम् ४ कीलिका ५ सेवार्त्तं ६ चेति। संस्थाननाम षड्विधम्-समचतुरस्रम् १ न्यग्रोधपरिमण्डलम् २ [2]सादि ३ वामनम् ४ कुब्जं ५ हुण्डं ६ चेति। वर्णनाम पञ्चविधम्—कृष्णम् १ नीलम् २ लोहितम् ३ हारिद्रम् ४ शुक्लं ५ चेति। गन्धनाम द्विविधम्—सुरभिनाम १ दुरभिनाम २ चेति। रसनाम पञ्चविधम्—तिक्तम् १ कटुकम् २ कषायम् ३ अम्लम् ४ मधुरं ५ चेति। स्पर्शनामष्टविधम्—कर्कशम् १ मृदु २ गुरु ३ लघु ४ शीतम् ५ उष्णम् ६ स्निग्धम् ७ रूक्षं चेति। आनुपूर्वी चतुर्विधा नरकानुपूर्वी १ तिर्यगानुपूर्वी २ मनुष्यानुपूर्वी ३ देवानुपूर्वी ४ चेति। विहायोगतिर्द्विविधा-प्रशस्तविहायोगतिः १ अप्रशस्तविहायोगति २ श्चेति। इत्येताश्चतुर्दश पिण्डप्रकृतयः। प्रभेदाप्रभेतासां पञ्चषष्टिरिति ६५। प्रत्येकप्रकृतयस्त्विमाः—त्रसनाम १ स्थावरनाम २ बादरनाम ३ सूक्ष्मनाम ४ पर्याप्तकनाम ५ अपर्याप्तकनाम ६ प्रत्येकनाम ७ साधारणनाम ८ स्थिरनाम ९ अस्थिरनाम १० शुभनाम ११ अशुभनाम १२ सुस्वरनाम १३ दुःस्वरनाम १४ सुभगनाम १५ दुर्भगनाम १६ आदेयनाम १७ अनादेयनाम १८ यशःकीर्तिनाम १९ अयशःकीर्त्तिनाम २० अगुरुलघुनाम

१ "तदिदानीं नाम भण्यते, तद्द्विचत्वारिंशद्विधम्।" इति वा पाठः। २ "सादि ३" इत्यपि। ३ "द्विधा" इति वा। ४ "अष्टधा" इति वा पाठः॥

अयोगिकेवलिनो द्वासप्ततिर्द्विचरमे समये क्षीणा। द्वौ चरमावस्मादिति द्विचरम', तद्गुणसंविज्ञानेन बहुव्रीहिणा चरमात्पूर्वोऽनन्तरसमय उच्यते। **'तेरस चरिमे अजोगिणो खीणे'** इति त्रयोदश चरमे समये कर्माण्ययोगिकेवलिनः क्षीणानि। यावद्द्विचरमसमयस्तावत्पूर्वोक्तायाः पञ्चाशीतेः सत्ता। चरमसमये तु द्विचरमसमयक्षीणायां द्वासप्ततौ पञ्चाशीतेरपनीतायां शेषाणां त्रयोदशानां सत्ता। तदेवं च **'अडयालं पयडिसयं. खविय जिणं निव्वुयं वंदे'** इति, पूर्वमवक्षीणमायुस्त्रयमविरताद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानक्षीणे दर्शनसप्तके क्षिप्तं जाता दश। तेऽप्यनिवृत्तिबादरसम्परायक्षीणे षोडशके क्षिप्ता जाता षड्विंशतिः। तस्यां तत्रैव क्षीणमष्टकं क्षिप्तं जाता चतुस्त्रिंशत्। तस्यां तत्रैव क्रमेण क्षीणौ द्वावेकको क्षिप्तौ जाता षट्त्रिंशत्। तस्यां तत्रैव क्षीणं षट्कं क्षिप्तं जाता द्विचत्वारिंशत्। तस्यां तत्रैव क्रमेण क्षीणाश्चत्वार एकका: क्षिप्ता जाता षट्चत्वारिंशत्। तस्यां सूक्ष्मसम्परायक्षपित एकः क्षिप्तो जाता सप्तचत्वारिंशत्। तस्यां क्षीणमोहक्षपितं द्वयं क्षिप्तं जातैकोनपञ्चाशत्। तस्यां तत्क्षपितमेव चतुर्दशकं क्षिप्तं जाता त्रिषष्टिः। साऽप्ययोगिकेवलिक्षपितायां द्विसप्ततौ क्षिप्ता जातं पञ्चत्रिंशं शतम्। तत्र तत्क्षपितमेव त्रयोदशकं क्षिप्तं जातमष्टचत्वारिंशं शतमिति। तदेवमष्टचत्वारिंशं प्रकृतिशतं क्षपयित्वा जिनो निर्वृतः, तमेवंविधं जिनमहं वन्दे ॥८॥

इत्युक्तः सत्ताव्यवच्छेदोद्देशः। इदानीं बन्धादिव्यवच्छेदोद्देशेषूद्दिष्टानां षोडशादीनां प्रकृतिसंख्यानां प्रतिनिर्देशाय मूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतीर्दर्शयितुमाह—

नाणस्स दंसणस्स य. आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउयनामं गोयं, तहंतरायं च पयडीओ ॥९॥
पंच नव [1]दोन्नि अट्ठा-वीसा चउरो तहेव बायाला।
[2]दोण्णि य पंच य भणिया. पयडीओ उत्तरा चेव ॥१०॥

गाथे युगपद्व्याख्यायेते—ज्ञानस्यावरणं पञ्चविधं भवति। तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानावरणं १ श्रुतज्ञानावरणं २ अवधिज्ञानावरणं ३ मनःपर्यायज्ञानावरणं ४ केवलज्ञानावरण ५ मिति १॥ दर्शनस्यावरणं नवविधम्। तद्यथा—निद्रा १ निद्रानिद्रा २ प्रचला ३ प्रचलाप्रचला ४ स्त्यानर्द्धिः ५ चक्षुर्दर्शनावरणं ६ अचक्षुर्दर्शनावरणं ७ अवधिदर्शनावरणं ८ केवलदर्शनावरणं ९ चेति २॥ वेदनीयं द्विविधम्—सातवेदनीयं १ असातवेदनीयं २ चेति ३॥ मोहनीयमष्टाविंशतिविधम्। तिस्रो दर्शनमोहनीयप्रकृतयः-मिथ्यात्वं १ सम्यग्मिथ्यात्वं २ सम्यक्त्वं ३ चेति। पञ्चविंशतिश्चारित्रमोहनीयप्रकृतयः। तद्यथा—षोडश कषायाः १६ नव नोकषायाः २५। तत्र कषायाः—अनन्तानुबन्धी क्रोधो मानो माया लोभश्च ४, अप्रत्याख्यानावरणः क्रोधो मानो

[1]-[2] "दुन्नि" इत्यपि पाठः।

माया लोभश्च ८, प्रत्याख्यानावरणः क्रोधो मानो माया लोभश्च १२, संज्वलनः क्रोधो मानो माया लोभश्च १६ इति षोडश कषायाः। नव नोकषायास्तु—वेदत्रयं हास्यादिषट्कं च। वेदत्रयम्—स्त्रीवेदः १ पुंवेदः २ नपुंसकवेदः ३ इति। हास्यादिषट्कं च—हास्यं १ रतिः २ अरतिः ३ शोकः ४ भयं ५ जुगुप्सा ६ इत्यष्टाविंशतिधा मोहनीयमुक्तम् ४॥ आयुष्कं चतुर्धा-नारकायुष्कम् १ तिर्यगायुष्कम् २ मनुष्यायुष्कम् ३ देवायुष्क ४ मिति ५॥ [1]नाम द्विचत्वारिंशद्भेदम्। तद्यथा चतुर्दश पिण्डप्रकृतयः १४, अष्टाविंशतिः प्रत्येकप्रकृतयः २८ इति द्विचत्वारिंशत्। पिण्डप्रकृतयस्तावत्-गतिनाम १ जातिनाम २ शरीरनाम ३ शरीराङ्गोपाङ्गनाम ४ शरीरबन्धननाम ५ शरीरसङ्घातननाम ६ संहनननाम ७ संस्थाननाम ८ वर्णनाम ९ गन्धनाम १० रसनाम ११ स्पर्शनाम १२ आनुपूर्वीनाम १३ विहायोगतिनाम १४ इति चतुर्दश। एतासां तावद्भेदा दर्श्यन्ते। गतिनाम चतुर्विधम्—नारकगतिनाम १ तिर्यग्गतिनाम २ मनुष्यगतिनाम ३ देवगतिनाम ४ इति। जातिनाम पञ्चविधम्—एकेन्द्रियजातिनाम १ द्वीन्द्रियजातिनाम २ त्रीन्द्रियजातिनाम ३ चतुरिन्द्रियजातिनाम ४ पञ्चेन्द्रियजातिनाम ५ इति। शरीरनाम पञ्चविधम्—औदारिकशरीरनाम १ वैक्रियशरीरनाम २ आहारकशरीरनाम ३ तैजसशरीरनाम ४ कार्मणशरीरनाम ५ इति। अङ्गोपाङ्गं त्रिविधम्—औदारिकाङ्गोपाङ्गम् १ वैक्रियाङ्गोपाङ्गम् २ आहारकाङ्गोपाङ्गं ३ चेति। बन्धनं पञ्चविधम्—औदारिकबन्धनादि शरीरवत् ५। सङ्घातनामापि तथैव ५। संहनननाम षड्विधम्-वज्रर्षभनाराचम् १ ऋषभनाराचम् २ नाराचम् ३ अर्द्धनाराचम् ४ कीलिका ५ सेवार्त्तं ६ चेति। संस्थाननाम षड्विधम्-समचतुरस्रम् १ न्यग्रोधपरिमण्डलम् २ [2]सादि ३ वामनम् ४ कुब्जं ५ हुण्डं ६ चेति। वर्णनाम पञ्चविधम्—कृष्णम् १ नीलम् २ लोहितम् ३ हारिद्रम् ४ शुक्लं ५ चेति। गन्धनाम द्विविधम्—सुरभिनाम १ दुरभिनाम २ चेति। रसनाम पञ्चविधम्—तिक्तम् १ कटुकम् २ कषायम् ३ अम्लम् ४ मधुरं ५ चेति। स्पर्शनामष्टविधम्—कर्कशम् १ मृदु २ गुरु ३ लघु ४ शीतम् ५ उष्णम् ६ स्निग्धम् ७ रूक्षं चेति। आनुपूर्वी चतुर्विधा नरकानुपूर्वी १ तिर्यगानुपूर्वी २ मनुष्यानुपूर्वी ३ देवानुपूर्वी ४ चेति। विहायोगतिर्द्विविधा-प्रशस्तविहायोगतिः १ अप्रशस्तविहायोगति २ श्चेति। इत्येताश्चतुर्दश पिण्डप्रकृतयः। प्रभेदाग्रमेतासां पञ्चषष्टिरिति ६५। प्रत्येकप्रकृतयस्त्विमाः—त्रसनाम १ स्थावरनाम २ बादरनाम ३ सूक्ष्मनाम ४ पर्याप्तकनाम ५ अपर्याप्तकनाम ६ प्रत्येकनाम ७ साधारणनाम ८ स्थिरनाम ९ अस्थिरनाम १० शुभनाम ११ अशुभनाम १२ सुस्वरनाम १३ दुःस्वरनाम १४ सुभगनाम १५ दुर्भगनाम १६ आदेयनाम १७ अनादेयनाम १८ यशःकीर्तिनाम १९ अयशःकीर्त्तिनाम २० अगुरुलघुनाम

१ "तदिदानीं नाम भण्यते, तद्द्विचत्वारिंशद्विधम्।" इति वा पाठः। २ "साति ३" इत्यपि। ३ "द्विधा" इति वा। ४ "माष्टधा" इति वा पाठः॥

२१ उपघातनाम २२ पराघातनाम २३ उच्छ्वासनाम २४ आतपनाम २५ उद्योतनाम २६ निर्माणनाम२७ तीर्थकरनाम २८ इत्यष्टाविंशतिः प्रत्येकप्रकृतयः। पूर्वोक्तपिण्डप्रकृतिचतुर्दशकेन सहिता द्विचत्वारिंशद्भवन्ति। पिण्डप्रकृतिप्रभेदपञ्चषष्ट्या तु सहिता त्रिनवतिर्भवति ६ ॥ गोत्रं द्विभेदम्-उच्चैर्गोत्रं १ नीचैर्गोत्रं २ चेति ७ ॥ अन्तरायं पञ्चधा—दानान्तरायम् १ लाभान्तरायम् २ भोगान्तरायम् ३ उपभोगान्तरायम् ४ वीर्यान्तरायं ५ चेति ८ ॥ एवं च कृत्वा ज्ञानावरणे पञ्च प्रकृतयः। दर्शनावरणे नव। वेदनीये द्वे। मोहनीयेऽष्टाविंशतिः। आयुषि चतस्रः। नाम्नि त्रिनवतिः। गोत्रे द्वे। अन्तराये पञ्च। सर्वपिण्डोऽष्टचत्वारिंशं शतमित्येतेन सर्वेण सत्तायामधिकारः। उदयोदीरणयोस्त्वौदारिकादिबन्धनानां पञ्चानामौदारिकादिसङ्घातानां च पञ्चानां यथास्वमौदारिकादिषु पञ्चसु शरीरेष्वन्तर्भावः। वर्णगन्धरसस्पर्शानां यथासंख्यं पञ्च-द्विपञ्चाष्टप्रभेदानां तत्प्रभेदकृतां विंशतिमपनीय तेषामेव चतुर्णामभिन्नानां ग्रहणे षोडशकमिदं, बन्धनसङ्घातदशकसहितमष्टचत्वारिंशशतादपनीयते, शेषेण द्वाविंशेन शतेनाधिकारः। बन्धे तु सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः सङ्क्रमेणैव निष्पाद्यत्वाद्बन्धो न संभवतीति तयोर्द्वाविंशशतादपनीतयोः शेषेण विंशेन शतेनाधिकारः। इति प्रकृतिसमुत्कीर्तना कृता। अधुना प्रकृतिवर्णना क्रियते। तत्र ज्ञानावरणं तावत्-सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मको बोधो ज्ञानं तस्यावरणं ज्ञानावरणम्। तस्य प्रथमो भेद आभिनिबोधिकज्ञानावरणम्। अभिमुखो योग्यदेशावस्थितार्थापेक्षी नियतः स्वस्वविषयापेक्षी बोधोऽभिनिबोधः स एवाभिनिबोधिकं, तच्च तद् ज्ञानं चेति आभिनिबोधिकज्ञानम्। तच्चतुर्विधम्—अवग्रहः १ ईहा २ अपायः ३ धारणा ४ चेति। अवग्रहो द्विविधः—व्यञ्जनावग्रहः १ अर्थावग्रहश्च २। तत्र व्यञ्जनावग्रहश्चक्षुर्मनोवर्जानामिन्द्रियाणां स्वस्वविषयद्रव्यैः सह संबन्धः, तेनासौ चतुर्विध एव। अर्थावग्रहस्तु किमपीदमित्येतावन्मात्रो मनःषष्ठैः पञ्चभिरिन्द्रियैर्वस्त्ववबोधः, ततश्चैवमसौ षोढा। ईहादयोऽपि मनःषष्ठेन्द्रियपञ्चकसंभवत्वात्षोढैव। अपि किं न्वयं भवेत् पुरुष एव उत स्थाणुः ? इत्यादिवस्तुधर्मान्वेषणात्मकं ज्ञानचेष्टनमीहा। पुरुष एवायमिति [2]वस्त्वध्यवसायात्मको निश्चयोऽपायः। निश्चितस्याविच्युतिस्मृतिवासनात्मकं धरणं धारणा। तदेतदष्टाविंशतिविधं श्रुतनिश्रितमाभिनिबोधिकज्ञानम्, श्रुतेन संस्क्रियमाणत्वात्। अश्रुतनिश्रितेनौत्पत्तिक्यादिबुद्धिचतुष्टयेन सह द्वात्रिंशद्विधम्। अथवा बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितासंदिग्धध्रुवाणां सेतराणामर्थानां ग्रहणेन भिद्यमानत्वाद्द्वादशभिरष्टाविंशतिर्गुणिता त्रीणि शतानि षट्त्रिंशानि, तानि बुद्धिचतुष्टयसहितानि चत्वारिंशानि त्रीणि शतानि भेदानामाभिनिबोधिकज्ञानस्येति तस्यैतावद्भेदमेव यदावरणस्वभावं कर्म

१ "कृता विंशतिरपनीयते, ते-०" इति वा पाठः।

२ "वस्तुन्यध्यवसायात्मको" इत्यपि पाठः॥

तदाभिनिबोधिकज्ञानावरणमेकग्रहणेन गृह्यते १ । तथा श्रवणं श्रुतं अभिलापप्लावितार्थग्रहणप्रत्ययोपलब्धिविशेषः, ततस्तेन तदेव वा ज्ञानं श्रुतज्ञानम् । तच्च संक्षेपतश्चतुर्दशविधमक्षरश्रुतादि । तत्राक्षरश्रुतं त्रिविधम्—संज्ञा १ व्यञ्जन २ लब्धि ३ भेदात् । तत्र संज्ञाक्षरं लेख्यलिपिरूपम्, यथा—ठकारो घटाकृतिः, घटीरूपो धकार इत्यादि । व्यञ्जनाक्षरं भाषाशब्दस्तदेतद् द्वितयमज्ञानात्मकमपि श्रुतकारणत्वादुपचारेण श्रुतम् । लब्ध्यक्षरं तु शब्दश्रवणरूपदर्शनादेरर्थप्रत्यायनगर्भाक्षरोपलब्धिः १ अनक्षरश्रुतं क्ष्वेडितशिरःकम्पादिनिमित्तं मामाह्वयति वारयति वेत्यादिरूपमभिप्रायादिपरिज्ञानम् २ । समनस्कस्य मनःसहायैरिन्द्रियैर्जनितमुक्तलक्षणं श्रुतं संज्ञिश्रुतम् ३ । तदेव मनोरहितेन्द्रियजमसंज्ञिश्रुतममनस्कस्य ४ । सम्यग्दृष्टेरर्हत्प्रणीतमितरद्वा श्रुतं यथास्वरूपावगमात् सम्यक्श्रुतम् ५ । तदेव मिथ्यादृष्टेर्मिथ्याश्रुतम्, अन्यथाऽवगमात् ६ । सादिश्रुतं ज्ञानात्मकं सम्यग्दृष्टेरज्ञानात्मकं वा सम्यक्त्वच्युतस्य ७ । मिथ्यादृष्टेरलब्धपूर्वसम्यक्त्वस्य तु तदेवानादिश्रुतम् ८ । सपर्यवसितं भव्यानां केवलोत्पत्तौ ध्रुवं पर्यवसानात् ९ । अपर्यवसितमभव्यानां केवलोत्पादानर्हत्वात् १० । भिन्ने यदर्थजाते सदृशाक्षरालापकं तद्गमिकम् ११ । असदृशं त्वगमिकम् १२ । अङ्गप्रविष्टमाचारादीन्यङ्गानि १३ शेषं प्रकीर्णका नङ्गप्रविष्टम् १४ । इति चतुर्दशधा श्रुतज्ञानं तस्यावरणस्वभावं कर्म श्रुतज्ञानावरणम् २ । तथाऽवधानमवधिरिन्द्रियाद्यनपेक्षात्मनः साक्षादर्थग्रहणम्, अवधिरेव ज्ञानमवधिज्ञानम् । अथवाऽवधिर्मर्यादा तेनावधिना रूपिद्रव्यमर्यादात्मकेन ज्ञानमवधिज्ञानम् । इत्येक एव समासशब्दो विग्रहद्वयनिष्पन्नः स्वसर्थमन्यव्यतिरिक्तमाह, मतिश्रुते तावदिन्द्रियमनोजनिते, तयोः प्रथमेन विग्रहेण व्यतिरेकः, द्वितीयेन तु मनःपर्यायकेवलयोः एकस्य सर्वरूपिमर्यादया ज्ञानत्वासंभवात्, द्वितीयस्य तु रूप्यरूपिविषयत्वात् । यत्त्ववधिज्ञानं तस्य सर्वरूपिमर्यादयापि विषयः संभवतीति मनःपर्यायकेवलयोस्ततो व्यतिरेकः । तद्भवप्रत्ययं नारकदेवानां गुणप्रत्ययं मनुष्यतिरश्चाम् । एतच्च षोढा, अनुगाम्यादि । तत्र अनुगामि यद्देशान्तरगतमपि ज्ञानिनमनुगच्छति लोचनवत् १ यत्तु तद्देशस्थस्यैव भवति स्थानस्थदीपवत्, तद्देशनिबन्धनक्षयोपशमजन्यत्वात्, देशान्तरगतस्य त्वपैति तदननुगामीति २ । अवस्थितं यन्न प्रतिपतति, आदित्यमण्डलवत् ३ । अनवस्थितं यत्प्रतिपतति, लवणसमुद्रवेलावत् ४ । हीयमानकं यज्जघन्येनाङ्गुलासङ्ख्येयभागविषयमुत्कर्षेण सर्वलोकविषयमुत्पद्य पुनः संक्लेशवशात्क्रमेण हानिं विषयसंकोचात्मिकां याति, यावदङ्गुलासङ्ख्येयभागस्ततोऽपि प्रतिपतति, येन त्वलोकस्य प्रदेशोऽपि दृष्टस्तस्य न हीयते ५ । वर्धमानकं यदङ्गुलासङ्ख्येयभागादिविषयमुत्पद्य पुनर्वृद्धिं विषयविस्तरणात्मिकां याति, यावदलोके लोकप्रमाणान्यसङ्ख्येयानि खण्डानि ६ । इति षड्विधमवधिज्ञानम् । तस्य च जघन्योत्कृष्टमध्यमक्षेत्रविषयासङ्ख्येयत्ववशादसङ्ख्येया भेदाः, तेषामावरणस्वभावानि एतावन्त्येव कर्माणि, तानि चैकग्रहणेन

गृह्यन्तेऽवधिज्ञानावरणमिति ३ । तथा संज्ञिभिर्जीवैः काययोगेन गृहीतानि मनःप्रायोग्यवर्गणा-पुद्गलद्रव्याणि चिन्तनीयवस्तुचिन्तनव्यापृतेन मनोयोगेन मनस्त्वेन परिणमय्यालम्ब्यमानानि मनांसीत्युच्यन्ते, तेषां मनसां पर्यायाश्चिन्तनानुगुणाः परिणामाः तेषु ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानम् । अथवाऽऽत्मभिर्वस्तुचिन्तने व्यापारितानि मनांसि पर्येति परिगच्छत्यवैतीति मनःपर्यायं, 'कर्मण्यण्' (पाणि०३-२-१) तस्य कथंचित्कर्तुरनन्यत्वात्कर्तृत्वम् । कर्ता वाऽऽत्मा यथोक्तानि मनांसि पर्येति अनेनेति मनःपर्यायम् । 'अकर्तरि च' इत्यादिना घञ् । तत्पुनस्तदावरणक्षयोपशमजो लब्धिविशेषः, तदुपयोगो वा विषयग्रहणात्मक इति । तच्च तद् ज्ञानं च मनःपर्यायज्ञानम् । तच्च द्विविधम्—ऋजुमति विपुलमति चेति । ऋज्वी साक्षात्कृतेष्वनुमितेषु वाऽर्थेष्वल्पतरविशेषविषयतया मुग्धा मतिविषयपरिच्छित्तिर्यस्य तदृजुमति । तदितरा विपुला मतिर्यस्य तद्विपुलमति । तत्रर्जुमतेरर्धतृतीयाङ्गुलहीनो मनुष्यलोकः क्षेत्रतो विषयः, स एव विपुलमतेः संपूर्णो निर्मलतरः । कालतस्त्वेतावति क्षेत्रे भूतभाविनोः पल्योपमासङ्ख्येयभागयोरतीतानागतानि, संज्ञिमनोरूपाणि मूर्त्तद्रव्याणि, तान्येव च द्रव्यतोऽपि । भावतस्तु तत्पर्यायाश्चिन्तनानुगुणाः परिणतिरूपा ऋजुमतेर्विषय इति । चिन्तनीयं तु मूर्त्तममूर्त्तं वा त्रिकालगोचरमपि बाह्यमर्थमनुमानादवैति, न साक्षात् । यत एतत्परिणतान्येतानि मनोद्रव्याणीत्येतदन्यथानुपपत्तेरमुकोऽनेनार्थश्चिन्तित इति लेखाक्षरदर्शनात्तदुक्तार्थमिवाप्रत्यक्षं मनोद्रव्यदर्शनाच्चिन्त्यमर्थमनुमिमीते । स चैष बाह्याभ्यन्तररूपो द्विविधोऽपि विषयः स्फुटतरबहुतरविशेषाध्यासितत्वेन विपुलमतेर्विमलतरोऽवसेयः । तदेवमेतयोर्द्वयोरपि मनःपर्यायभेदयोरावरणस्वभावं कर्मापि द्विविधमेव, तदेकग्रहणेन गृह्यते मनःपर्यायज्ञानावरणमिति ४ । केवलज्ञानं प्रागुक्तस्वरूपं तस्यावरणं केवलज्ञानावरणम् ५ । इत्युक्तं पञ्चविधं ज्ञानावरणम् १ ॥ सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यग्रहणात्मको बोधो दर्शनं तस्यावरणस्वभावं कर्म दर्शनावरणम् । तन्नवविधम् । तत्र निद्रापञ्चकं तावत् 'द्रा' कुत्सायां गतौ । नियतं द्राति कुत्सितत्वमविस्पष्टत्वं[1] गच्छति चैतन्यमनयेति निद्रा सुखप्रबोधा स्वापावस्था, नखच्छोटिकामात्रेणापि यत्र प्रबोधो भवति तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि निद्रेति कार्येण व्यपदिश्यते १ । तथा निद्रातिशायिनी निद्रा निद्रानिद्रा, शाकपार्थिवादित्वान्मध्यपदलोपी समासः । सा पुनर्दुःखप्रबोधा स्वापावस्था तस्यां ह्यत्यर्थमस्फुटतरीभूतचैतन्यत्वाद्दुःखेन बहुभिर्घोलनादिभिः प्रबोधो भवति, अतः सुखप्रबोधनिद्रापेक्षयाऽस्या अतिशायिनीत्वम्, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिः कार्यद्वारेण निद्रानिद्रेत्युच्यते २ । उपविष्ट ऊर्ध्वस्थितो वा प्रचलत्यस्यां स्वप्ता स्वापावस्थायामिति प्रचला, सा ह्युपविष्टस्योर्ध्वस्थि-

१ "मविस्फुटत्वं" इति वा पाठः ॥

तस्य वा घूर्णमानस्य स्वप्तुर्भवति, तथाविधविपाकवेद्या कर्मप्रकृतिः प्रचलेति ३। तथैव प्रचला-ऽतिशायिनी प्रचला प्रचलाप्रचला, सा हि चङ्क्रमणादि कुर्वतः स्वप्तुर्भवति, अतः स्थानस्थित-स्वप्तृभवां प्रचलामपेक्ष्याऽतिशायिनी, तद्विपाका कर्मप्रकृतिरपि प्रचलाप्रचला ४। स्त्याना बहुत्वेन सङ्घातमापन्ना गृद्धिरभिकाङ्क्षा जाग्रदवस्थाऽध्यवसितार्थसाधनविषया यस्यां स्वापावस्थायां सा स्त्यानगृद्धिः। तस्यां हि सत्यां जाग्रदवस्थाध्यवसितमर्थमुत्थाय साधयति। स्त्याना वा पिण्डीभूता ऋद्धिरात्मशक्तिरूपा [1]अस्यामिति स्त्यानर्द्धिरित्यप्युच्यते, तद्भावे हि स्वप्तुः प्रथमसंहननस्य केश-वबलसदृशी शक्तिर्भवति। प्रसिद्धं चैतदागमे—भिक्षार्थमन्यग्रामं गतस्य क्षुल्लकस्यागच्छतो न्यग्रोध[2]शाखायां शिरः स्खलितम्। ततस्तेन [3]रुषितेन रात्रावेतन्निद्रोदये सा वटशाखा भङ्क्त्वा प्रतिश्रयद्वारे प्रक्षिप्तेत्यादि॥ अथवा स्त्याना जडीभूता चैतन्यर्द्धिरस्यामिति स्त्यानर्द्धिरिति, तादृशविपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि स्त्यानर्द्धिः स्त्यानगृद्धिरिति वा ५ तदेतन्निद्रापञ्चकं दर्शनावर-णक्षयोपशमलब्धात्मलाभानां दर्शनलब्धीना[4]मावारकमुक्तम्। अधुना यद्दर्शनलब्धीनां मूलत एव लाभमावृणोति तदिदं दर्शनावरणचतुष्कमुच्यते—चक्षुषा सामान्यग्राही बोधश्चक्षुर्दर्शनं तस्यावरणं चक्षुर्दर्शनावरणम् ६ अचक्षुषा चक्षुर्वर्जेन्द्रियचतुष्टयेन मनसा वा यद्दर्शनं तदचक्षुर्दर्शनं तस्यावरणम् ७। अवधिना—रूपि[5]द्रव्यमर्यादया अवधिरेव वा करणनिरपेक्षबोधरूपो दर्शनं सामान्यार्थग्रह-णमवधिदर्शनं तस्यावरणम् ८ तथा केवलमुक्तस्वरूपं तच्च तद्दर्शनं च तस्यावरणं केवलदर्शनाव-रणम् ९। इत्युक्तं नवविधं दर्शनावरणम् २॥ आरोग्यविषयोपभोगादिजनितमाह्लादरूपं सुखं सातं, तद्रूपेण विपाकेन वेद्यत इति सातवेदनीयम् १। तद्विपरीतं दुःखमसातं, तद्रूपेण विपाकेन वेद्यत इत्यसातवेदनीयम् २। इत्युक्तं द्विविधं वेदनीयम् ३॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं दर्शनं, तन्मोहयति विपर्यासं गमयतीति दर्शनमोहनीयम्। तत्त्रिविधं, मिथ्यात्वादि। तत्र मिथ्यात्वं त्रिविधम्—सांशयिकम् १ आभिग्रहिकम् २ अनाभिग्रहिकं ३ चेति। तत्र सांशयिकं यदिदमुक्तमर्हता तत्त्वं जीवादि, तन्न जाने—तथा स्यात् उतान्यथा ? इत्येवंरूपम्। उक्तं च—"**एकस्मिन्नपि तत्त्वे, सन्दिग्धे प्रत्ययोऽर्हति हि नष्टः। मिथ्या च दर्शनं तत्, स चादिहेतुर्भवगतो-नाम्॥१॥**" इति १। आभिग्रहिकं येन बोटिकादिकुदर्शनानामन्यतमदभिगृह्णाति २। अना-भिग्रहिकं अज्ञानां गोपादीनामपि माध्यस्थ्याद्वाऽनभिगृहीतदर्शनविशेषा सर्वदर्शनानि शोभना-नीत्येवंरूपा या प्रतिपत्तिः ३। इत्येतेन त्रिविधेन प्रकारेण विपच्यते यत्कर्म तदपि मिथ्यात्वम् १। सम्यग्मिथ्यात्वमर्द्धविपर्यस्तत्वं दर्शनस्य नैकान्तशुद्धमशुद्धमेव वा [6]तत्त्वश्रद्धानत्वं तादृशविपा-

---

१ "यत्या" इत्यपि। २ "शाखया" इति वा। ३ "रुषितेन गत्वा स्त्यानर्द्धिनिद्रोदये सा"। ४ "मावरण-कर्तु" इति क्वचित्॥ ५ "रूपिमर्यादयाः" इत्यपि। ६ "तत्त्वार्थश्रद्धानत्वं तादृशविपाकवेद्य" इत्यपि पाठः।

कवेद्यं कर्म सम्यग्मिथ्यात्वम् २ । तथा सम्यक्त्वमविपर्यस्तत्वं तत्त्वदर्शनस्य यथा यदर्हन् प्राह तथैव तत् , इत्येवंरूपं, तत्त्व [1]श्रद्धानत्वम् , एतत्परिणामपरिणतेनात्मना यद्वेद्यते तद्दर्शनमोहनीयं कर्म, तदपि सम्यक्त्वमिति ३ । १ । तथा चारित्रं सावद्ययोगविरतिलक्षणो जीवपरिणामः तन्मोहयतीति चारित्रमोहनीयम् । तत्र षोडश कषायाः । कषायशब्दः प्रागुक्तार्थ एव । तत्रानन्तं संसारमनुबध्नन्ति अनुसंदधति तच्छीलाश्चेत्यनन्तानुबन्धिनः । यद्यपि चैतेषां शेषकषायरहितानामुदयो नास्ति, तथाऽप्यवश्यमनन्तसंसारमौलकारणमिथ्यात्वोदया[2]क्षेपित्वादेतषामेवैष व्यपदेशः । शेषकषाया हि नावश्यं मिथ्यात्वोदयमाक्षिपन्ति, अतस्तेषामुदययौगपद्ये सत्यपि नायं व्यपदेशः, इत्यसाधारणमेतेषामेवैतन्नामधेयम् । ते च चत्वारः । क्रोधोऽक्षान्तिपरिणतिलक्षणः । मानो गर्वो जात्याद्युद्भवममार्दवम् । माया वञ्चनप्रतिकुञ्चनाद्यात्मिका परिणतिः । लोभोऽसंतोषात्मको गार्द्ध्यपरिणामः । तद्विपाकवेद्याः कर्मप्रकृतयोऽपि तन्नामधेयाः । इत्येते क्रोधादयो यथासङ्ख्यं पर्वतरेखाशैलस्तम्भवंशीमूलकृमिरागसमाना यावज्जीवानुबन्धिनो जीवपरिणामविशेषा अनन्तानुबन्धिन इत्यवसेया इति ४ ॥ त एव च क्रोधादयो यथाक्रमं पृथिवीरेखाऽस्थिमेषशृङ्गकर्दमरागसमानाः संवत्सरानुबन्धिनोऽप्रत्याख्यानावरणाः, नञोऽल्पार्थत्वादल्पं प्रत्याख्यानं अप्रत्याख्यानं देशविरत्याख्यं तदावृण्वन्ति ये ते तथोक्ताः ४ । त एव क्रमेण रेणुरेखाकाष्ठगोमूत्रिकाखञ्जनरागसमानाश्चतुर्मासानुबन्धिनः प्रत्याख्यानावरणाः, प्रत्याख्यानं सर्वविरत्याख्यमावृण्वन्तीतिकृत्वा ४ । त एव क्रमशो जलरेखातिनिसलताअवलेखहरिद्रारागसमानाः पक्षानुबन्धिनः संज्वलनाः, संज्वलयन्त्युदयेन चारित्रिणमपीति संज्वलनाः ४ । इत्युक्ताः षोडश कषायाः । नव नोकषाया इति, नोशब्दः साहचर्यार्थः । कषायैः सहचरा नोकषायाः । केवलानां नैषां प्राधान्यं, किन्तु कषायैरनन्तानुबन्ध्यादिभिः सहोदयं यान्ति तद्विपाकसदृशमेव विपाकमादर्शयन्तीति बुधग्रहवदन्यसंसर्गमनुवर्तन्ते । तत्र वेदत्रये—यदुदयेन स्त्रियाः पुंस्यभिलाषः पित्तोदयेन मधुराभिलाषवत् , स[3]फुम्फुमाग्निसमानः स्त्रीवेदः १ । यदुदयेन पुंसः स्त्रियामभिलाषः श्लेष्मोदयादम्लाभिलाषवत् , स तृणाग्निज्वालासमानः पुंवेदः २ । यदुदयेन पण्डकस्य स्त्रीपुंसयोरुभयोरभिलाषः पित्तश्लेष्मणोरुदयेन मर्जि(ज्जि)काभिलाषवत् , स महानगरदाहाग्निसमानो नपुंसकवेदः ३ । यदुदयेन सनिमित्तमनिमित्तं वा हसति तत्कर्म हास्यवेदनीयम् ४ । [4]यदुदयेन रमणीयेषु वस्तुषु रमते प्रमोदते तद्रतिवेदनीयमिति ५ । ततो विपरीतमरतिवेद-

---

१ "अश्रद्धानत्व—" इति वा पाठः ॥ २ "यापेक्षित्वा" इत्यपि ॥ ३ "फुम्फकाग्नि" इति वा पाठः । ४ "यदुदयेन सचित्ताचित्तेषु बाह्यद्रव्येषु जीवस्य रतिरुत्पद्यते तद्रतिवेदनीयं कर्म ५ । यदुदयेन तेष्वेवारतिरुत्पद्यते तदरतिवेदनीयं कर्म ६ । यदुदयेन शोकरहितस्यापि जीवस्याक्रन्दनादिशोको जायते तच्छोकवेदनीयं कर्म ७ । यदुदयेन भयवर्जितस्यापि जीवस्येहलोकादि सप्तप्रकारं भयमुत्पद्यते तद्भयवेदनीयं कर्म ८ ॥" इति वा पाठः ॥

नीयम् ६ । यदुदयेन प्रियविप्रयोगादिपीडितचित्तः शोचनाऽऽक्रन्दपरिदेवनादि करोति तच्छोकवेदनीयम् ७ । यदुदयेन सनिमित्तमनिमित्तं वा बिभेति तद्भयवेदनीयम् ८ । यदुदयेन शकृदादिबीभत्सपदार्थेभ्यो जुगुप्सते उद्विजते तज्जुगुप्सावेदनीयम् ९ । इत्युदिता नोकषायाः, तदभिधानाच्चारित्रमोहनीयं च २ मोहनीयं चाष्टाविंशतिविधमिति ४ ॥ एति याति चेत्यायुः, नैरुक्तीशब्दव्युत्पत्तिः । यद्यपि च सर्वं कर्म स्वहेतुभिर्नियमादपूर्वमेत्यात्मानं, पूर्वबद्धं च यात्यपैत्यात्मनस्तथाप्ययमस्त्यायुषो विशेषः । प्राग्भवबद्धमात्मनो यदा यात्यपैति तदा तदपगमानन्तरं वर्तमानभवबद्धमुदयमेति एति याति चेत्यनया व्युत्पत्त्या, तदेवेदृशं गमनागमनं विवक्षितमित्यसाधारणमायुषो नाम, तच्चतुर्धा । नारकस्य सतो वेद्यमायुष्कम् नारकायुष्कम् १ । तिरश्चां तिर्यगायुष्कम् २ । मनुष्याणां मनुष्यायुष्कम् ३ । देवानां देवायुष्कम् ४ इत्युक्तं चतुर्विधमायुष्कम् ५ ॥ तथा नामयति परिणमयत्यात्मानं तैस्तैर्गत्यादिभिः पर्यायैरिति नाम । गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति तथाविधकर्मोदयसचिवा जीवास्तामिति गतिः । नारकादिपर्यायपरिणतिस्तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि गतिः, सैव नाम गतिनाम । नारकशब्दव्यपदेश्यपर्यायनिबन्धनं नारकगतिनाम एवं तिर्यङ्मनुष्यदेवगतिनामापि वाच्यम् १ । जननं जातिरेकेन्द्रियादिशब्दव्यपदेश्येन पर्यायेण जीवानामुत्पत्तिः, तद्भावनिबन्धनभूतं नाम जातिनाम, तत्पञ्चधा, एकेन्द्रियजातिनामादि । तत्रैकस्य स्पर्शनेन्द्रियज्ञानस्यावरणक्षयोपशमात्तदेकविज्ञानभाज एकेन्द्रियाः अनेनैवाभिलापेन द्वयोः स्पर्शनरसनज्ञानयोर्द्वीन्द्रियाः । त्रयाणां स्पर्शनरसनघ्राणज्ञानानां त्रीन्द्रियाः । चतुर्णां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुर्ज्ञानानां चतुरिन्द्रियाः । पञ्चानां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रज्ञानानामावरणक्षयोपशमात्पञ्चविज्ञानभाजः पञ्चेन्द्रियाश्च वाच्याः । एकेन्द्रियाणां जातिनामैकेन्द्रियजातिनाम, एवं यावत्पञ्चेन्द्रियजातिनाम । ननु चैकादीन्द्रियज्ञानावरणक्षयोपशमादेवैकेन्द्रियादिव्यपदेशः सिद्ध्यत्येव तत्किमपरं जातिनाम्ना कार्यम् ?, नैतदस्ति, क्षयोपशमस्य ज्ञानोत्पादनमात्रनिबन्धनत्वेनैकेन्द्रियादिव्यपदेशहेतुत्वायोगात् । किञ्चैकेन्द्रियजात्यादिनामोदयजनितस्यैकेन्द्रियादिशब्दव्यपदेशहेतोः पर्यायविशेषस्याभावे क्षयोपशमं प्रति नियमो न स्यात्, ततश्च पृथिव्यादीनां शङ्खादीनां (पिपीलिकादीनां) चैकद्वित्र्यादीन्द्रियज्ञानावरणक्षयोपशमोऽप्यनियमेन स्यात्तस्माज्जातिनामोदयकृतः पर्यायविशेषस्तथातथाक्षयोपशमस्य नियामक एकेन्द्रियादिव्यपदेशहेतुश्चेति स्थितम् २ । शीर्यते तदिति शरीरं, प्रतिक्षणं प्रागवस्थातश्चयापचयाभ्यां विनश्यतीत्यर्थः । तच्च पञ्चविधैरौदारिकादिवर्गणापुद्गलैः क्रियत इति तद्भेदात्पञ्चधा, औदारिकशरीरादि, तद्विपाकवेद्यं कर्मापि तन्नामकं पञ्चधैव । तत्र यस्य कर्मण उदयादौदारिकवर्गणपुद्गलान् गृहीत्वौदारिकशरीरत्वेन परिणमयति तदौदारिकशरीरनाम । एवं वैक्रियाहारकतैजसकार्मणशरीरनामकर्मस्वपि स्वस्ववर्गणापुद्गलग्रहण-

परिणमनकारणत्वं वाच्यम् । यावद्यस्य कर्मण उदयात्कार्मणवर्गणापुद्गलान् गृहीत्वा कार्मणशरीरत्वेन परिणमयति तत्कार्मणशरीरनामकर्म. तच्च कार्मणशरीरादन्यत् । सत्यपि समानवर्गणापुद्गलात्मकत्वे तद्धि नाम्नः कर्मण उत्तरप्रकृतिः । कार्मणशरीरं पुनस्तदुदयनिर्वर्त्यमशेषकर्मणां प्ररोहभूमिराधारभूतम् । तथा संसारिणामात्मनां गत्यन्तरसंक्रमणे साधकतमं करणमित्यन्यत् . ततस्तत्कारणभूतं कार्मणशरीरनामकर्मेति स्थितम् ३ । अङ्गानि शिरउरउदरपृष्ठबाहूरुसंज्ञकान्यष्टौ । तदवयवभूतानि त्वङ्गुल्यादीन्युपाङ्गानि । शेषाणि तु तत्प्रत्यवयवभूतान्यङ्गुलिपर्वरेखादीन्यङ्गोपाङ्गानि । अङ्गानि चोपाङ्गानि चाङ्गोपाङ्गानि चेति द्वन्द्वगर्भादेकशेषादङ्गोपाङ्गानि. तानि च यस्य कर्मण उदयात्त्रिषु शरीरेषु भवन्ति, तत्त्रिविधमङ्गोपाङ्गनाम । तत्र यदुदयादौदारिकशरीरत्वेन परिणतानां पुद्गलानामङ्गोपाङ्गविभक्त्या परिणतिः तदौदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम । एवं वैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गनाम्नोरपि वाच्यम् । तैजसकार्मणयोस्तु, जीवप्रदेशसंस्थानानुरोधित्वान्नास्त्यङ्गोपाङ्गसंभवः ४ । पूर्वगृहीतैरौदारिकपुद्गलैः सह परस्परं च गृह्यमाणानौदारिकपुद्गलानुदितेन येन कर्मणा बध्नात्यात्माऽन्योऽन्यसंसक्तान् करोति तदौदारिकशरीरबन्धननाम, दारुपाषाणादीनां जतुरालाप्रभृतिश्लेष[1]"द्रव्य" वत् । एवं वैक्रियादि चतुष्केऽपि वाच्यम् । यदि त्विदं शरीरपञ्चकपुद्गलानामन्योऽन्यसंबन्धकारि बन्धनपञ्चकं न स्यात्ततस्तेषां शरीरपरिणतौ सत्यामप्यसंबद्धत्वात्पवनाहतकुण्डस्थितास्तीमितसक्तूनामिवैकत्रस्थैर्यं न स्यात् ५ । तच्च बन्धनमसंहतानां न संभवति, अतस्तत्पिण्डनकारणं पञ्चविधं सङ्घातनाम । तथैवौदारिकसङ्घातनामादि । तत्र यस्योदयादौदारिकशरीरत्वपरिणतान् पुद्गलानात्मा सङ्घातयति=पिण्डयति तदौदारिकसङ्घातनाम । वैक्रियादिचतुष्केऽप्येवमेव वाच्यम् ६ । संहननमस्थिसंचयः, तच्चौदारिकशरीर एव, नान्येषु, तेषामस्थ्याद्यभावात् । तच्च षोढा, वज्रर्षभनाराचादि । तत्र वज्रं कीलिका. ऋषभः परिवेष्टनपट्टः, नाराच उभयतो मर्कटबन्धः । यत्र द्वयोरस्थ्नोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थ्ना परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयभेदि कीलिकाकारं वज्रनामकमस्थि भवति तद्वज्रर्षभनाराचं प्रथमम् । यत्र तु कीलिका नास्ति तदृषभनाराचं द्वितीयम्, ऋषभवर्जं वज्रनाराचं द्वितीयमित्येके । वज्रर्षभवर्जं नाराचं तृतीयम् । एकतो मर्कटबन्धं द्वितीयपार्श्वे कीलिकाविद्धमर्द्धनाराचं चतुर्थम् । ऋषभनाराचवर्जं कीलिकाविद्धास्थिद्वयमंचितं कीलिकाख्यं पञ्चमम् । अस्थिद्वयपर्यन्तसंस्पर्शलक्षणां सेवामृतमागतं सेवार्तं षष्ठम् । इतीदं षड्विधमस्थिसंनिचयात्मकं संहननं यदुदयाद्भवति शरीरे तदपि तत्संज्ञकं षड्विधं संहनननामकर्म ७ । संस्थानं शरीराकृतिरवयवरचनात्मिका तदपि षोढा, समचतुरस्रादि । तत्र समाः शरीरलक्षणशास्त्रोक्तप्रमाणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्रयो यस्य तत्समचतुरस्रम् । 'सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः' (पाणि०

1 द्रव्याणां तुल्यम्" इति वा पाठः ॥

५-४-१२०) इत्यकारः समासान्तः । अस्रयस्त्विह चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवाः । ततश्च सर्वेऽप्यत्रयवाः शरीरलक्षणोक्तप्रमाणाऽव्यभिचारिणो यस्य, न तु न्यूनाधिकप्रमाणाः, तत्तुल्यं समचतुरस्रम् । न्यग्रोधवत्परिमण्डलं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णावयवः, अधस्तनभागे तु न तथा, तथेदमपि नाभेरुपरि विस्तरबहुलं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभाग्, अधस्तु हीनाधिकप्रमाणमिति । सादीति, आदिरिहोत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, तेनादिना शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभाजा सह वर्तते यत्तत्सादि । सर्वमेव हि शरीरमविशिष्टेनादिना सह वर्तते इति विशेषणान्यथानुपपत्तेरादेरिह विशिष्टता लभ्यते । सादि उत्सेधबहुलं परिपूर्णोत्सेधमित्यर्थः । वामनं मडभकोष्ठं, यत्र पाणिपादशिरोग्रीवं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणयुक्तम् , यत्पुनः शेषं कोष्ठमुरउदरपृष्ठादिरूपं तन्मडभं न्यूनाधिकप्रमाणं तद्वामनम् । कुब्जमधस्तनकायमडभं वामनविपर्ययाद्भावनीयम् । नवरमधस्तनकायशब्देन पाणिपादशिरोग्रीवमिहोच्यते । सर्वत्रासंस्थितं हुण्डं, यस्य हि प्रायेणैकोऽप्यवयवः शरीरलक्षणोक्तं प्रमाणं न संवदति तत्सर्वत्रासंस्थितं हुण्डमिति । उक्तं च—"**तुल्लं वित्थडबहुलं, उस्सेहबहुं च मडहकोट्ठं च । हेट्ठिल्लकायमडहं, सव्वत्थासंठियं हुंडं** ॥१॥" इत्येतद्यथाक्रमं षण्णामपि लक्षणमितीदं षड्विधं संस्थानं यदुदयाद्भवति शरीरे तदपि कर्म तदभिधानं षड्विधं संस्थाननाम ८ । वर्णः पञ्चविधः प्रसिद्धस्वरूपः, स यदुदयाच्छरीरपुद्गलेषु भवति तत्पञ्चविधं कृष्णनामादि वर्णनाम ९ । एवं गन्धो द्विविधः, रसः पञ्चविधः, स्पर्शश्चाष्टविधः, प्रसिद्धस्वरूप एव । तन्नामान्यपि कर्माणि तथैव वाच्यानि १० । ११ । १२ । द्विसमयादिना विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिनियता गमनपरिपाटीहानुपूर्वीत्युच्यते, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरप्यानुपूर्वी । सा चतुर्विधा । नरकगतिनामकर्मप्रकृतेः सहचरितानुपूर्वी नरकगत्यानुपूर्वी, तया सह वेद्यमानत्वात्तत्सहचरितत्वम् तथा तिर्यङ्मनुष्यदेवानुपूर्व्योऽपि वाच्याः १३ । गमनं गतिः, सा चेह पादविहरणाद्यात्मिका देशान्तरप्राप्तिहेतुर्द्वीन्द्रियादीनां प्रवृत्तिरभिधीयते, नैकेन्द्रियाणां, पादाद्यभावात् । विहायसा गतिर्विहायोगतिः । ननु च विहायसः सर्वगतत्वात्ततोऽन्यत्र गतिर्न संभवति, ततश्च व्यवच्छेद्याभावाद्विहायसा विशेषणमनर्थकम् , सत्यमेतत् , नभसोऽन्यत्र गतिर्नास्ति तथाऽपि यदि गतिरित्येवोच्येत, ततो नाम्नः प्रथमप्रकृतिरपि गतिरस्तीति पौनरुक्त्याशङ्कास्यात् , अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं [1]विहायोग्रहणं कार्यम् । विहायसा गतिः प्रवृत्तिर्न तु भवगतिर्नरकगत्यादिकेति । सा च द्विविधा, प्रशस्ताऽप्रशस्ता च । प्रशस्ता गजहंसवृषभादीनाम् , अप्रशस्ता तुष्ट्रखरटोलादीनामिति, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि तन्नामिकैव द्विविधा १४ । इत्युक्ताः पिण्डप्रकृतयः ॥ त्रसन्त्युष्णाद्यभितप्ताः छायाद्यभिसर्पणेनोद्विजन्ते तस्मादिति त्रसा द्वीन्द्रियादयः, तत्पर्यायविपाकवेद्यं कर्मापि त्रसनाम १५ । उष्णाद्यभितापेऽपि स्थानशीला न तत्परिहारसमर्थाः

१ "विहायसो" इति वा पाठः ।

परिणमनकारणत्वं वाच्यम् । यावद्यस्य कर्मण उदयात्कार्मणवर्गणापुद्गलान् गृहीत्वा कार्मणशरीरत्वेन परिणमयति तत्कार्मणशरीरनामकर्म, तच्च कार्मणशरीरादन्यत्। सत्यपि समानवर्गणापुद्गलात्मकत्वे तद्धि नाम्नः कर्मण उत्तरप्रकृतिः। कार्मणशरीरं पुनस्तदुदयनिर्वर्त्यमशेषकर्मणां प्ररोहभूमिराधारभूतम्। तथा संसार्यात्मनां गत्यन्तरसंक्रमणे साधकतमं करणमित्यन्यत्, ततस्तत्कारणभूतं कार्मणशरीरनामकर्मेति स्थितम् ३ । अङ्गानि शिरउरउदरपृष्ठबाहूरुसंज्ञकान्यष्टौ । तदवयवभूतानि त्वङ्गुल्यादीन्युपाङ्गानि। शेषाणि तु तत्प्रत्यवयवभूतान्यङ्गुलिपर्वरेखादीन्यङ्गोपाङ्गानि। अङ्गानि चोपाङ्गानि चाङ्गोपाङ्गानि चेति द्वन्द्वगर्भादेकशेषादङ्गोपाङ्गानि, तानि च यस्य कर्मण उदयात्त्रिषु शरीरेषु भवन्ति, तत्त्रिविधमङ्गोपाङ्गनाम । तत्र यदुदयादौदारिकशरीरत्वेन परिणतानां पुद्गलानामङ्गोपाङ्गविभक्त्या परिणतिः तदौदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम । एवं वैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गनाम्नोरपि वाच्यम् । तैजसकार्मणयोस्तु, जीवप्रदेशसंस्थानानुरोधित्वाभावान्नाङ्गोपाङ्गसंभवः ४ । पूर्वगृहीतैरौदारिकपुद्गलैः सह परस्परं च गृह्यमाणानौदारिकपुद्गलानुदितेन येन कर्मणा बध्नात्यात्माऽन्योऽन्यसंसक्तान् करोति तदौदारिकशरीरबन्धननाम, दारुपाषाणादीनां जतुरालाप्रभृतिश्लेष"द्रव्य"[1] वत् । एवं वैक्रियादि चतुष्केऽपि वाच्यम् । यदि त्विदं शरीरपञ्चकपुद्गलानामन्योऽन्यसंबन्धकारि बन्धनपञ्चकं न स्यात्ततस्तेषां शरीरपरिणतौ सत्यामप्यसंबद्धत्वात्पवनाहतकुण्डस्थितास्तीमितसक्तूनामिवैकत्रस्थैर्यं न स्यात् ५ । तच्च बन्धनमसंहतानां न संभवति, अतस्तत्पिण्डनकारणं पञ्चविधं सङ्घातनाम । तथैवौदारिकसङ्घातनामादि । तत्र यस्योदयादौदारिकशरीरत्वपरिणतान् पुद्गलानात्मा सङ्घातयति=पिण्डयति तदौदारिकसङ्घातनाम । वैक्रियादिचतुष्केऽप्येवमेव वाच्यम् ६ । संहननमस्थिसंचयः, तच्चौदारिकशरीर एव, नान्येषु, तेषामस्थ्याद्यभावात् । तच्च षोढा, वज्रर्षभनाराचादि । तत्र वज्रं कीलिका, ऋषभः परिवेष्टनपट्टः, नाराच उभयतो मर्कटबन्धः । यत्र द्वयोरस्थ्नोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थ्ना परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयभेदि कीलिकाकारं वज्रनामकमस्थि भवति तद्वज्रर्षभनाराचं प्रथमम् । यत्र तु कीलिका नास्ति तदृषभनाराचं द्वितीयम्, ऋषभवर्जं वज्रनाराचं द्वितीयमित्येके । वज्रर्षभवर्जं नाराचं तृतीयम् । एकतो मर्कटबन्धं द्वितीयपार्श्वे कीलिकाविद्धमर्द्धनाराचं चतुर्थम् । ऋषभनाराचवर्जं कीलिकाविद्धास्थिद्वयसंचितं कीलिकाख्यं पञ्चमम् । अस्थिद्वयपर्यन्तसंस्पर्शलक्षणां सेवामृतमागतं सेवार्तं षष्ठम् । इतीदं षड्विधमस्थिसंनिचयात्मकं संहननं यदुदयाद्भवति शरीरे तदपि तत्संज्ञकं षड्विधं संहनननामकर्म ७ । संस्थानं शरीराकृतिरवयवरचनात्मिका तदपि षोढा, समचतुरस्रादि । तत्र समाः शरीरलक्षणशास्त्रोक्तप्रमाणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्रयो यस्य तत्समचतुरस्रम् । 'सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः' (पाणि०

---

१ द्रव्याणां तुल्यम्" इति वा पाठः ॥

५-४-१२०) इत्यकारः समासान्तः। अस्रयस्त्विह चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवाः। ततश्च सर्वेऽप्यवयवाः शरीरलक्षणोक्तप्रमाणाऽव्यभिचारिणो यस्य, न तु न्यूनाधिकप्रमाणाः, तत्तुल्यं समचतुरस्रम्। न्यग्रोधवत्परिमण्डलं न्यग्रोधपरिमण्डलम्। यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णावयवः, अधस्तनभागे तु न तथा, तथेदमपि नाभेरुपरि विस्तरबहुलं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभाग्, अधस्तु हीनाधिकप्रमाणमिति। सादीति, आदिरिहोत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, तेनादिना शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभाजा सह वर्तते यत्तत्सादि। सर्वमेव हि शरीरमविशिष्टेनादिना सह वर्तते इति विशेषणान्यथानुपपत्तेरादेरिह विशिष्टता लभ्यते। सादि उत्सेधबहुलं परिपूर्णोत्सेधमित्यर्थः। वामनं मडभकोष्ठं, यत्र पाणिपादशिरोग्रीवं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणयुक्तम्, यत्पुनः शेषं कोष्ठमुरउदरपृष्ठादिरूपं तन्मडभं न्यूनाधिकप्रमाणं तद्वामनम्। कुब्जमधस्तनकायमडभं वामनविपर्ययाद्भावनीयम्। नवरमधस्तनकायशब्देन पाणिपादशिरोग्रीवमिहोच्यते। सर्वत्रासंस्थितं हुण्डं, यस्य हि प्रायेणैकोऽप्यवयवः शरीरलक्षणोक्तं प्रमाणं न संवदति तत्सर्वत्रासंस्थितं हुण्डमिति। उक्तं च—"**तुल्लं वित्थडबहुलं, उस्सेहबहुं च मडहकोट्ठं च। हेट्ठिल्लकायमडहं, सव्वत्थासंठियं हुंडं** ॥१॥" इत्येतद्यथाक्रमं षण्णामपि लक्षणमितीदं षड्विधं संस्थानं यदुदयाद्भवति शरीरे तदपि कर्म तदभिधानं षड्विधं संस्थाननाम ८। वर्णः पञ्चविधः प्रसिद्धस्वरूपः, स यदुदयाच्छरीरपुद्गलेषु भवति तत्पञ्चविधं कृष्णनामादि वर्णनाम ९। एवं गन्धो द्विविधः, रसः पञ्चविधः, स्पर्शश्चाष्टविधः, प्रसिद्धस्वरूप एव। तन्नामान्यपि कर्माणि तथैव वाच्यानि १०। ११। १२। द्विसमयादिना विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिनियता गमनपरिपाटीहानुपूर्वीत्युच्यते, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरप्यानुपूर्वी। सा चतुर्विधा। नरकगतिनामकर्मप्रकृतेः सहचरितानुपूर्वी नरकगत्यानुपूर्वी, तया सह वेद्यमानत्वात्तत्सहचरितत्वम् तथा तिर्यङ्मनुष्यदेवानुपूर्व्योऽपि वाच्याः १३। गमनं गतिः, सा चेह पादविहरणाद्यात्मिका देशान्तरप्राप्तिहेतुर्द्वीन्द्रियादीनां प्रवृत्तिरभिधीयते, नैकेन्द्रियाणां, पादाद्यभावात्। विहायसा गतिर्विहायोगतिः। ननु च विहायसः सर्वगतत्वात्ततोऽन्यत्र गतिर्न संभवति, ततश्च व्यवच्छेद्याभावाद्विहायसा विशेषणमनर्थकम्, सत्यमेतत्, नभसोऽन्यत्र गतिर्नास्ति तथाऽपि यदि गतिरित्येवोच्येत, ततो नाम्नः प्रथमप्रकृतिरपि गतिरस्तीति पौनरुक्त्याशङ्कास्यात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं [१]विहायोग्रहणं कार्यम्। विहायसा गतिः प्रवृत्तिर्न तु भवगतिर्नरकगत्यादिकेति। सा च द्विविधा, प्रशस्ताऽप्रशस्ता च। प्रशस्ता गजहंसवृषभादीनाम्, अप्रशस्ता तूष्ट्रखरटोलादीनामिति, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि तन्नामिकैव द्विविधा १४। इत्युक्ताः पिण्डप्रकृतयः॥ त्रसन्त्युष्णाद्यभितप्ताः छायाद्यभिसर्पणेनोद्विजन्ते तस्मादिति त्रसा द्वीन्द्रियादयः, तत्पर्यायविपाकवेद्यं कर्मापि त्रसनाम १५। उष्णाद्यभितापेऽपि स्थानशीला न तत्परिहारसमर्थाः

१ "विहायसो" इति वा पाठः।

परिणमनकारणत्वं वाच्यम् । यावद्यस्य कर्मण उदयात्कार्मणवर्गणापुद्गलान् गृहीत्वा कार्मणशरीरत्वेन परिणमयति तत्कार्मणशरीरनामकर्म. तच्च कार्मणशरीरादन्यत् । नत्यपि समानवर्गणापुद्गलात्मकत्वे तद्धि नाम्नः कर्मण उत्तरप्रकृतिः । कार्मणशरीरं पुनस्तदुदयनिर्वर्त्यमशेषकर्मणां प्ररोहभूमिराधारभूतम् । तथा संसारात्मनां गत्यन्तरसंक्रमणे साधकतमं करणमित्यन्यत् . ततस्तत्कारणभूतं कार्मणशरीरनामकर्मेति स्थितम् ३ । अङ्गानि शिरउरउदरपृष्ठबाहूरुसंज्ञकान्यष्टौ । तदवयवभूतानि त्वङ्गुल्यादीन्युपाङ्गानि । शेषाणि तु तत्प्रत्यवयवभूतान्यङ्गुलिपर्वरेखादीन्यङ्गोपाङ्गानि । अङ्गानि चोपाङ्गानि चाङ्गोपाङ्गानि चेति द्वन्द्वगर्भादेकशेषादङ्गोपाङ्गानि. तानि च यस्य कर्मण उदयात्त्रिषु शरीरेषु भवन्ति, तत्त्रिविधमङ्गोपाङ्गनाम । तत्र यदुदयादौदारिकशरीरत्वेन परिणतानां पुद्गलानामङ्गोपाङ्गविभक्त्या परिणतिः तदौदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम । एवं वैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गनाम्नोरपि वाच्यम् । तैजसकार्मणयोस्तु, जीवप्रदेशसंस्थानानुरोधित्वान्नास्त्यङ्गोपाङ्गसंभवः ४ । पूर्वगृहीतैरौदारिकपुद्गलैः सह परस्परं च गृह्यमाणानौदारिकपुद्गलानुदितेन येन कर्मणा बध्नात्यात्माऽन्योऽन्यसंसक्तान् करोति तदौदारिकशरीरबन्धननाम, दारुपाषाणादीनां जतुरालाप्रभृतिश्ले"ष'द्रव्य" वत् । एवं वैक्रियादि चतुष्केऽपि वाच्यम् । यदि त्विदं शरीरपञ्चकपुद्गलानामन्योऽन्यसंबन्धकारि बन्धनपञ्चकं न स्यात्ततस्तेषां शरीरपरिणतौ सत्यामप्यसंबद्धत्वात्पवनाहतकुण्डस्थितास्तीमितसक्तूनामिवैकत्रस्थैर्यं न स्यात् ५ । तच्च बन्धनमसंहतानां न संभवति, अतस्तत्पिण्डनकारणं पञ्चविधं सङ्घातनाम । तथौदारिकसङ्घातनामादि । तत्र यस्योदयादौदारिकशरीरत्वपरिणतान् पुद्गलानात्मा सङ्घातयति=पिण्डयति तदौदारिकसङ्घातनाम । वैक्रियादिचतुष्केऽप्येवमेव वाच्यम् ६ । संहननमस्थिसंचयः, तच्चौदारिकशरीर एव, नान्येषु, तेषामस्थ्याद्यभावात् । तच्च षोढा, वज्रर्षभनाराचादि । तत्र वज्रं कीलिका, ऋषभः परिवेष्टनपट्टः, नाराच उभयतो मर्कटबन्धः । यत्र द्वयोरस्थ्नोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थ्ना परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयभेदि कीलिकाकारं वज्रनामकमस्थि भवति तद्वज्रर्षभनाराचं प्रथमम् । यत्र तु कीलिका नास्ति तदृषभनाराचं द्वितीयम् . ऋषभवर्जं वज्रनाराचं द्वितीयमित्येके । वज्रर्षभवर्जं नाराचं तृतीयम् । एकतो मर्कटबन्धं द्वितीयपार्श्वे कीलिकाविद्धमर्द्धनाराचं चतुर्थम् । ऋषभनाराचवर्जं कीलिकाविद्धास्थिद्वयमंचितं कीलिकाख्यं पञ्चमम् । यास्थिद्वयपर्यन्तसंस्पर्शलक्षणां सेवामृतमागतं सेवार्तं षष्ठम् । इतीदं षड्विधमस्थिसंनिचयात्मकं संहननं यदुदयाद्भवति शरीरे तदपि तत्संज्ञकं षड्विधं संहनननामकर्म ७ । संस्थानं शरीराकृतिरवयवरचनात्मिका तदपि षोढा, समचतुरस्रादि । तत्र समाः शरीरलक्षणशास्त्रोक्तप्रमाणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्रयो यस्य तत्समचतुरस्रम् । 'सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः' (पाणि०

---

१ द्रव्याणां तुल्यम्" इति वा पाठः ॥

५-४-१२०) इत्यकारः समासान्तः। अस्रयस्त्विह चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवाः। ततश्च सर्वेऽप्यवयवाः शरीरलक्षणोक्तप्रमाणाऽव्यभिचारिणो यस्य, न तु न्यूनाधिकप्रमाणाः, तत्तुल्यं समचतुरस्रम्। न्यग्रोधवत्परिमण्डलं न्यग्रोधपरिमण्डलम्। यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णावयवः, अधस्तनभागे तु न तथा, तथेदमपि नाभेरुपरि विस्तरबहुलं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभाग्, अधस्तु हीनाधिकप्रमाणमिति। सादीति. आदिरिहोत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, तेनादिना शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभाजा सह वर्तते यत्तत्सादि। सर्वमेव हि शरीरमविशिष्टेनादिना सह वर्तते इति विशेषणान्यथानुपपत्तेरादेरिह विशिष्टता लभ्यते। सादि उत्सेधबहुलं परिपूर्णोत्सेधमित्यर्थः। वामनं मडमकोष्ठं, यत्र पाणिपादशिरोग्रीवं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणयुक्तम्, यत्पुनः शेषं कोष्ठमुरउदरपृष्ठादिरूपं तन्मडभं न्यूनाधिकप्रमाणं तद्वामनम्। कुब्जमधस्तनकायमडभं वामनविपर्ययाद्भावनीयम्। नवरमधस्तनकायशब्देन पाणिपादशिरोग्रीवमिहोच्यते। सर्वत्रासंस्थितं हुण्डं, यस्य हि प्रायेणैकोऽप्यवयवः शरीरलक्षणोक्तं प्रमाणं न संवदति तत्सर्वत्रासंस्थितं हुण्डमिति। उक्तं च—"तुल्लं वित्थडबहुलं, उस्सेहबहुं च मडहकोट्ठं च। हेट्ठिल्लकायमडहं, सव्वत्थासंठियं हुंडं ॥१॥" इत्येतद्यथाक्रमं षण्णामपि लक्षणमितीदं षड्विधं संस्थानं यदुदयाद्भवति शरीरे तदपि कर्म तदभिधानं षड्विधं संस्थाननाम ८। वर्णः पञ्चविधः प्रसिद्धस्वरूपः, स यदुदयाच्छरीरपुद्गलेषु भवति तत्पञ्चविधं कृष्णनामादि वर्णनाम ९। एवं गन्धो द्विविधः, रसः पञ्चविधः, स्पर्शश्चाष्टविधः, प्रसिद्धस्वरूप एव। तन्नामान्यपि कर्माणि तथैव वाच्यानि १०। ११। १२। द्विसमयादिना विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिनियता गमनपरिपाटीहानुपूर्वीत्युच्यते, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरप्यानुपूर्वी। सा चतुर्विधा। नरकगतिनामकर्मप्रकृतेः सहचरितानुपूर्वी नरकगत्यानुपूर्वी, तया सह वेद्यमानत्वात्तत्सहचरितत्वम् तथा तिर्यङ्मनुष्यदेवानुपूर्व्योऽपि वाच्याः १३। गमनं गतिः, सा चेह पादविहरणाद्यात्मिका देशान्तरप्राप्तिहेतुर्द्वीन्द्रियादीनां प्रवृत्तिरभिधीयते, नैकेन्द्रियाणां, पादाद्यभावात्। विहायसा गतिर्विहायोगतिः। ननु च विहायसः सर्वगतत्वात्ततोऽन्यत्र गतिर्न संभवति, ततश्च व्यवच्छेद्याभावाद्विहायसा विशेषणमनर्थकम्, सत्यमेतत्, नभसोऽन्यत्र गतिर्नास्ति तथाऽपि यदि गतिरित्येवोच्येत, ततो नाम्नः प्रथमप्रकृतिरपि गतिरस्तीति पौनरुक्त्याशङ्का स्यात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं [1]विहायोग्रहणं कार्यम्। विहायसा गतिः प्रवृत्तिर्न तु भवगतिर्नरकगत्यादिकेति। सा च द्विविधा, प्रशस्ताऽप्रशस्ता च। प्रशस्ता गजहंसवृषभादीनाम्, अप्रशस्ता तुरगखरटोलादीनामिति, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि तन्नामिकैव द्विविधा १४। इत्युक्ताः पिण्डप्रकृतयः॥ त्रसन्त्युष्णाद्यभितप्ताः छायाद्यभिसर्पणेनोद्विजन्ते तस्मादिति त्रसा द्वीन्द्रियादयः, तत्पर्यायविपाकवेद्यं कर्मापि त्रसनाम १५। उष्णाद्यभितापेऽपि स्थानशीला न तत्परिहारसमर्थाः

१ "विहायसो" इति वा पाठः।

स्थावराः पृथिव्यादय एकेन्द्रियाः, तत्पर्यायविपाकवेद्यं कर्मापि स्थावरनाम । तेजोवाय्वो तु स्थावरनामोदयेऽपि स्वाभाविकं चलनम् १६ । यस्योदयाज्जीवा बादराः स्थूरा भवन्ति तद्बादरनाम । न चेह चाक्षुषत्वं बादरत्वमिष्टं, बादरस्याप्येकैकस्य पृथिव्यादिशरीरस्य च क्षुषत्वाभावात् । यद्यपि चैतज्जीवविपाकि बादरनाम तथापि शरीरेऽभिव्यक्तिं कियतीमपि दर्शयति । [1]यथा क्रोध उदितो रक्तनेत्रभ्रकुटीभङ्गरूक्षवदनत्वादिकमिति । तेन पृथिव्यादीनां बादराणां बहूनां समेतानां चाक्षुषत्वं भवति, न तु सूक्ष्माणामिति १७ । यस्योदयात्सूक्ष्माः पृथिव्यादयः पञ्च भवन्ति तत्सूक्ष्मनाम १८ । पर्याप्तिराहारादिपुद्गलदलिकग्रहणपरिणमनहेतुः पुद्गलोपचयजः शक्तिविशेषः । सा च साध्यभेदेन षोढा । यया ह्याहारमात्मा गृहीत्वा खलरसतया परिणमयति सा शक्तिराहारपर्याप्तिः । यया रसीभूतमाहारं सप्तधातुतया परिणमयति सा शरीरपर्याप्तिः । यया तु धातुभूतमिन्द्रियतया परिणमयति सेन्द्रियपर्याप्तिः । यया तूच्छ्वासप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यमादायोच्छ्वासतयाऽऽलम्ब्य मुञ्चति सोच्छ्वासपर्याप्तिः । यया तु भाषाप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यमादाय भाषात्वेनावलम्ब्य मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः । यया तु मनःप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यमादाय मनस्त्वयाऽऽलम्ब्य मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः । इत्येताः यथासंख्यमेकेन्द्रियविकलेन्द्रियसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां चतुष्पञ्चषट्सङ्ख्याः पर्याप्तयो यस्योदयाद्भवन्ति तत्पर्याप्तकनाम । येषां हि पर्याप्तयः सन्ति ते पर्याप्ताः, मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययः, पर्याप्ता एव पर्याप्तकाः । तद्भावविपाकवेद्यं कर्मापि पर्याप्तकनाम । ननु च शरीरपर्याप्त्यैव शरीरं भविष्यति तत्किं शरीरनाम्ना ?, नैतदस्ति, साध्यभेदात्, शरीरनाम्नो हि जीवेन गृहीतानां पुद्गलानामौदारिकादित्वेन परिणतिः साध्या, शरीरपर्याप्तेस्तु प्रागात्मनाऽऽरब्धस्य शरीरस्य परिसमाप्तिरिति १९ । ता एव षड् यथास्वं शक्तयो विकला अपर्याप्तयस्ता यस्योदयाद्भवन्ति तदपर्याप्तकनाम, शब्दव्युत्पत्तिः पूर्ववत् २० यस्योदयात्प्रत्येकं शरीरं भवति, एकैकस्य जीवस्यैकैकं शरीरमित्यर्थः, तत्प्रत्येकनाम २१ । यस्योदयादनन्तानां जीवानां साधारणमेकं शरीरं भवति तत्साधारणनाम २२ । यदुदयाद्दन्त्यादयः शरीरावयवाः स्थिरा निश्चला भवन्ति तत्स्थिरनाम २३ । यदुदयाज्जिह्वादिवदस्थिरा भवन्ति तदस्थिरनाम २४ । यदुदयान्नाभेरुपरि शुभाः शरीरावयवा भवन्ति तच्छुभनाम, शिरःप्रभृतिना हि स्पृष्टस्तुष्यति पादादिभिस्तु रुष्यति २५ । यदुदयान्नाभेरधोऽशुभाः शरीरावयवा भवन्ति तदशुभनाम २६ । यदुदयान्मधुरगम्भीरोदारः स्वरो भवति तत्सुस्वरनाम २७ । यदुदयात्खरभिन्नहीनदीनः स्वरो भवति तद्दुःस्वरनाम २८ । यदुदयात्सर्वस्य प्रियः प्रह्लादकारी भवति तत्सुभगनाम २९ । तद्विपरीतं दुर्भगनाम ३० । यदुदयेन यत्किंचिदपि ब्रुवाण उपादेयवचनो भवति सर्वस्य तदादेयनाम ३१ । यदुदयेन तु युक्तमपि ब्रुवाणः परिहार्यवचनो भवति तदनादेयनाम

१ "यथा क्रोधे उदिते" इत्यपि पाठः ॥

३२। सर्वदिग्गामिनी पराक्रमकृता वा सर्वजनोत्कीर्त्तनीयगुणता यश उच्यते, एकदिग्गामिनी तु दानपुण्यकृता वा कीर्त्तिः, यशश्च कीर्त्तिश्च यशःकीर्त्ती, ते यदुदयाद्भवतस्तद्यशःकीर्त्तिनाम ३३। तद्विपर्ययादयशःकीर्त्तिनाम ३४। सर्वप्राणिनां शरीराणि यदुदयान्नैकान्तगुरूणि नैकान्तलघूनि भवन्ति तदगुरुलघुनाम। एकान्तगुरुत्वे हि वोढुमशक्यानि स्युः, एकान्तलघुत्वे तु वायुनाऽपि ह्रियमाणानि धारयितुं न पार्येरन् ३५। स्वशरीरावयवैरेव नखादिभिः शरीरान्तर्वर्द्धमानैर्यदुदयादुपहन्यते पीड्यते तदुपघातनाम ३६। यदुदयात् परानाहन्ति दुष्प्रधृष्यतया शरीराकृतेरभिभवति तत्पराघातनाम ३७। यदुदयादुच्छ्वासलब्धिरात्मनो भवति तदुच्छ्वासनाम। सर्वलब्धीनां क्षायोपशमिकत्वादौदयिकी लब्धिर्न संभवति?, इति चेत् नैतदस्ति, वैक्रियाहारकलब्धीनामौदायिकीनामपि संभवात्। वीर्यान्तरायक्षयोपशमोऽपि च तत्र निमित्तीभवतीति सत्यप्यौदयिकत्वे क्षायोपशमिकव्यपदेशोऽपि न विरुध्यत एव। सतीमपि चोच्छ्वासनामोदयजनितामुच्छ्वसनलब्धिमात्मा व्यापारयितुं न शक्नुयात् शक्तिविशेषरूपामुच्छ्वासपर्याप्तिमन्तरेण, यथा हि वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितां सतीमपि वाग्व्यापारात्मिकां वाग्वीर्यलब्धिं व्यापारयितुं न शक्नोति 'भाषापर्याप्तिमन्तरेण, इत्यसावपि वाग्वीर्यलब्धेः पृथगिष्यते। यथा वा ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयोपशमजनितां सतीमपि मनोव्यापारात्मिकां पर्यालोचनवीर्यलब्धिं व्यापारयितुं न शक्नोति मनःपर्याप्तिमन्तरेण इत्यसावपि मनोवीर्यलब्धेः पृथगिष्यत एव। तथोच्छ्वासनामोदयजनितायामुच्छ्वासलब्धौ सत्यामप्युच्छ्वासपर्याप्तिरेपितव्या ३८। यदुदयाज्जन्तुशरीराण्यत्युष्णप्रकाशलक्षणमातपं प्रकुर्वन्ति तदातपनाम। तदुदयश्च रविबिम्बादौ पार्थिवशरीरेष्वेव न शेषेषु, वह्निज्वालाप्रभादिषूष्णप्रकाशरूपत्वे सत्यप्यातपो न भवति, किं तर्हि? तेजोजन्तुशरीराण्येव, तत्र तूष्णत्वमुष्णस्पर्शनामोदयात्, प्रकाशरूपत्वं तु लोहितवर्णनामोदयादवसेयमिति ३९। यदुदयाज्जन्तुशरीरमनुष्णप्रकाशात्मकमुद्द्योतं प्रकरोति। यथा यतिदेवोत्तरवैक्रियचन्द्रर्क्षग्रहताराररत्नौषधिमणिप्रभृतयस्तदुद्द्योतनाम ४०। यदुदयाच्छरीरेष्वङ्गप्रत्यङ्गानां प्रतिनियतस्थानवृत्तिता भवति तत्सूत्रधारकल्पं निर्माणनाम। तदभावे हि तद्भृतककल्पैरङ्गोपाङ्गनामादिभिर्निर्वृत्तानामपि शिरउरउदरादीनां स्थानवृत्तेरनियमः स्यात् ४१ यदुदयाज्जीवः सदेवमनुजासुरलोकपूज्यमुत्तमोत्तमं पदं धर्मतीर्थस्य प्रवर्त्तयितृत्वमवाप्नोति तत्तीर्थकरनाम ४२। इत्युक्तं नाम ६॥ गां वाचं त्रायत इति गोत्रम्। तत्पुनः प्राणिनामुच्चैर्नीचैर्भावलक्षणः कर्मविशेषोदयजनितः पर्यायविशेषः। स ह्युत्तमाधमादिशब्दरूपां स्वार्थप्रतिपादनप्रवृत्तां प्रवृत्तिनिमित्तीभवन् वाचं रक्षति तदर्थाभिधायित्वेन पालयति। अथवा 'गुङ् शब्दे' इत्यस्माद्धातोः ष्ट्रन्। गूयते संशब्द्यते प्रधानाधमादिरूपतयाऽनेनेति गोत्रम्। तथाविधविपाकवेद्यं कर्मापि गोत्रम्, तच्च

१ "वाक्पर्या-" इति पाठः॥

स्थावराः पृथिव्यादय एकेन्द्रियाः, तत्पर्यायविपाकवेद्यं कर्मापि स्थावरनाम । तेजोवायूनां तु स्थावरनामोदयेऽपि स्वाभाविकं चलनम् १६ । यस्योदयाज्जीवा बादराः स्थूरा भवन्ति तद्बादरनाम । न चेह चाक्षुषत्वं बादरत्वमिष्टं, बादरस्यापि एकैकस्य पृथिव्यादिशरीरस्य च क्षुषत्वाभावात् । यद्यपि चैतज्जीवविपाकि बादरनाम तथापि शरीरेऽभिव्यक्तिं कियतीमपि दर्शयति । [1]यथा क्रोध उदितो रक्तनेत्रभ्रकुटीभङ्गरूक्षवदनत्वादिकमिति । तेन पृथिव्यादीनां बादराणां बहूनां समेतानां चाक्षुषत्वं भवति, न तु सूक्ष्माणामिति १७ । यस्योदयात्सूक्ष्माः पृथिव्यादयः पञ्च भवन्ति तत्सूक्ष्मनाम १८ । पर्याप्तिराहारादिपुद्गलदलिकग्रहणपरिणमनहेतुः पुद्गलोपचयजः शक्तिविशेषः । सा च साध्यभेदेन षोढा । यया ह्याहारमात्मा गृहीत्वा खलरसतया परिणमयति सा शक्तिराहारपर्याप्तिः । यया रसीभूतमाहारं सप्तधातुतया परिणमयति सा शरीरपर्याप्तिः । यया तु धातुभूतमिन्द्रियतया परिणमयति सेन्द्रियपर्याप्तिः । यया तूच्छ्वासप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यमादायोच्छ्वासतयाऽऽलम्ब्य मुञ्चति सोच्छ्वासपर्याप्तिः । यया तु भाषाप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यमादाय भाषात्वेनावलम्ब्य मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः । यया तु मनःप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यमादाय मनस्तयाऽऽलम्ब्य मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः । इत्येताः यथासंख्यमेकेन्द्रियविकलेन्द्रियसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां चतुष्पञ्चषट्सङ्ख्याः पर्याप्तयो यस्योदयाद्भवन्ति तत्पर्याप्तकनाम । येषां हि पर्याप्तयः सन्ति ते पर्याप्ताः, मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययः, पर्याप्ता एव पर्याप्तकाः । तद्भावविपाकवेद्यं कर्मापि पर्याप्तकनाम । ननु च शरीरपर्याप्त्यैव शरीरं भविष्यति तत्किं शरीरनाम्ना ?, नैतदस्ति, साध्यभेदात्, शरीरनाम्नो हि जीवेन गृहीतानां पुद्गलानामौदारिकादित्वेन परिणतिः साध्या, शरीरपर्याप्तेस्तु प्रागात्मनाऽऽरब्धस्य शरीरस्य परिसमाप्तिरिति १९ । ता एव षड् यथास्वं शक्तयो विकला अपर्याप्तयस्ता यस्योदयाद्भवन्ति तदपर्याप्तकनाम, शब्दव्युत्पत्तिः पूर्ववत् २० यस्योदयात्प्रत्येकं शरीरं भवति, एकैकस्य जीवस्यैकैकं शरीरमित्यर्थः, तत्प्रत्येकनाम २१ । यस्योदयादनन्तानां जीवानां साधारणमेकं शरीरं भवति तत्साधारणनाम २२ । यदुदयादस्थ्यादयः शरीरावयवाः स्थिरा निश्चला भवन्ति तत्स्थिरनाम २३ । यदुदयाज्जिह्वादिवदस्थिरा भवन्ति तदस्थिरनाम २४ । यदुदयान्नाभेरुपरि शुभाः शरीरावयवा भवन्ति तच्छुभनाम, शिरःप्रभृतिना हि स्पृष्टस्तुष्यति पादादिभिस्तु रुष्यति २५ । यदुदयान्नाभेरधोऽशुभाः शरीरावयवा भवन्ति तदशुभनाम २६ । यदुदयान्मधुरगम्भीरोदारः स्वरो भवति तत्सुस्वरनाम २७ । यदुदयात्खरभिन्नहीनदीनः स्वरो भवति तद्दुःस्वरनाम २८ । यदुदयात्सर्वस्य प्रियः प्रह्लादकारी भवति तत्सुभगनाम २९ । तद्विपरीतं दुर्भगनाम ३० । यदुदयेन यत्किंचिदपि ब्रुवाण उपादेयवचनो भवति सर्वस्य तदादेयनाम ३१ । यदुदयेन तु युक्तमपि ब्रुवाणः परिहार्यवचनो भवति तदनादेयनाम

---

१ "यथा क्रोधे उदिते" इत्यपि पाठः ॥

३१। सर्वदिग्गामिनी पराक्रमकृता वा सर्वजनोत्कीर्त्तनीयगुणता यश उच्यते, एकदिग्गामिनी तु दानपुण्यकृता वा कीर्त्तिः, यशश्च कीर्त्तिश्च यशःकीर्त्ती, ते यदुदयाद्भवतस्तद्यशःकीर्त्तिनाम ३३। तद्विपर्ययादयशःकीर्त्तिनाम ३४। सर्वप्राणिनां शरीराणि यदुदयान्नैकान्तगुरूणि नैकान्तलघूनि भवन्ति तदगुरुलघुनाम। एकान्तगुरुत्वे हि वोढुमशक्यानि स्युः, एकान्तलघुत्वे तु वायुनाऽपि ह्रियमाणानि धारयितुं न पार्येरन् ३५। स्वशरीरावयवैरेव नखादिभिः शरीरान्तर्वर्द्धमानैर्यदुदयादुपहन्यते पीड्यते तदुपघातनाम ३६। यदुदयात् परानाहन्ति दुष्प्रधृष्यतया शरीराकृतेरभिभवति तत्पराघातनाम ३७। यदुदयादुच्छ्वासलब्धिरात्मनो भवति तदुच्छ्वासनाम। सर्वलब्धीनां क्षायोपशमिकत्वादौदयिकी लब्धिर्न संभवति?, इति चेत् नैतदस्ति, वैक्रियाहारकलब्धीनामौदायिकीनामपि संभवात्। वीर्यान्तरायक्षयोपशमोऽपि च तत्र निमित्तीभवतीति सत्यप्यौदयिकत्वे क्षायोपशमिकव्यपदेशोऽपि न विरुध्यत एव। सतीमपि चोच्छ्वासनामोदयजनितामुच्छ्वसनलब्धिमात्मा व्यापारयितुं न शक्नुयात् शक्तिविशेषरूपामुच्छ्वासपर्याप्तिमन्तरेण, यथा हि वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितां सतीमपि वाग्व्यापारात्मिकां वाग्वीर्यलब्धिं व्यापारयितुं न शक्नोति 'भाषापर्याप्तिमन्तरेण, इत्यसावपि वाग्वीर्यलब्धेः पृथगिष्यते। यथा वा ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयोपशमजनितां सतीमपि मनोव्यापारात्मिकां पर्यालोचनवीर्यलब्धिं व्यापारयितुं न शक्नोति मनःपर्याप्तिमन्तरेण इत्यसावपि मनोवीर्यलब्धेः पृथगिष्यत एव। तथोच्छ्वासनामोदयजनितायामुच्छ्वासलब्धौ सत्यामप्युच्छ्वासपर्याप्तिरेषितव्या ३८। यदुदयाज्जन्तुशरीराण्यत्युष्णप्रकाशलक्षणमातपं प्रकुर्वन्ति तदातपनाम। तदुदयश्च रविबिम्बादौ पार्थिवशरीरेष्वेव न शेषेषु, वह्निज्वालाप्रभादिषूष्णप्रकाशरूपत्वे सत्यप्यातपो न भवति, किं तर्हि? तेजोजन्तुशरीराण्येव, तत्र तूष्णत्वमुष्णस्पर्शनामोदयात्, प्रकाशरूपत्वं तु लोहितवर्णनामोदयादवसेयमिति ३९। यदुदयाज्जन्तुशरीरमनुष्णप्रकाशात्मकमुद्द्योतं प्रकरोति। यथा यतिदेवोत्तरवैक्रियचन्द्रर्क्षग्रहतारारत्नौषधिमणिप्रभृतयस्तदुद्द्योतनाम ४०। यदुदयाच्छरीरेष्वङ्गप्रत्यङ्गानां प्रतिनियतस्थानवृत्तिता भवति तत्सूत्रधारकल्पं निर्माणनाम। तदभावे हि तद्भृतककल्पैरङ्गोपाङ्गनामादिभिर्निर्वर्त्तितानामपि शिरउरउदरादीनां स्थानवृत्तेरनियमः स्यात् ४१ यदुदयाज्जीवः सदेवमनुजासुरलोकपूज्यमुत्तमोत्तमं पदं धर्मतीर्थस्य प्रवर्त्तयितृत्वमवाप्नोति तत्तीर्थकरनाम ४२। इत्युक्तं नाम ६॥ गां वाचं त्रायत इति गोत्रम्। तत्पुनः प्राणिनामुच्चैर्नीचैर्भावलक्षणः कर्मविशेषोदयजनितः पर्यायविशेषः। स ह्युत्तमाधमादिशब्दरूपां स्वार्थप्रतिपादनप्रवृत्तां प्रवृत्तिनिमित्तीभवन् वाचं रक्षति तदर्थाभिधायित्वेन पालयति। अथवा 'गुङ् शब्दे' इत्यस्माद्धातोः ष्ट्रन्। गूयते संशब्द्यते प्रधानाधमादिरूपतयाऽनेनेति गोत्रम्। तथाविधविपाकवेद्यं कर्मापि गोत्रम्, तच्च

१ "भाषापर्या-" इति पाठः॥

द्विधा–उच्चैर्गोत्रं १ नीचैर्गोत्रं २ च। तत्रोच्चैर्गोत्रमष्टधा वेद्यते, जातिकुलबलरूपतपऐश्वर्यश्रुतलाभैः १। तद्विपर्ययात्तु नीचैर्गोत्रम् २। निर्गुणोऽपि हि जातिवशादुत्तम इति जनैः पूज्यते। जातिहीनस्तु गुणवानपि निन्द्यते तथा कुलादिष्वपि वाच्यम् उक्तं द्विविधं गोत्रम् ७॥ जीवं चार्थसाधनं चान्तरा एति पततीत्यन्तरायम्। जीवस्य दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्विघ्नीभूय विचाले पततीत्यर्थः। तत्पञ्चधा–दानस्यान्तरायं दानान्तरायमित्यादि। सति दातव्ये वस्तुनि समागते च गुणवति पात्रे दानस्य च कल्याणकं फलविशेषं विद्वानपि यदुदयाद्दातुं नोत्सहते तद्दानान्तरायम् १ प्रसिद्धादपि सर्वप्रदाद्दातुः गृहे च विद्यमानं देयमर्थजातं याञ्चाकुशलो याचमानो गुणवानपि यदुदयान्न लभते तल्लाभान्तरायम् २। सकृद्भुज्यत इति भोगः, आहारमाल्यविलेपनादिः। पुनः पुनर्भुज्यत इत्युपभोगः शयनवसनवनिताभूषणादिस्तस्यान्तरायम्, भोग्यमुपभोग्यं वा विद्यमानमनुपहताङ्गोऽपि यदुदयान्न शक्नोति भोक्तुमुपभोक्तुं वा तद्भोगान्तरायमुपभोगान्तरायं च वेदितव्यम् ३। ४। वीर्यं शक्तिरुत्साहः सामर्थ्यमिति चोच्यते, तस्यान्तरायं विघातकं वीर्यान्तरायम्। यदुदयादनुपहतपीनाङ्गोऽपि शक्तिविकलो भवति तद्वीर्यान्तरायम् ५। इत्युक्तं पञ्चविधमन्तरायम् ८॥ कृता च प्रकृतिवर्णना। व्याख्यातं च मूलोत्तरप्रकृतिसंख्याप्रतिपादकं गाथाद्वयम्॥ ९॥ १०॥

इदानीं कास्ता मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु षोडशाद्याः कर्मप्रकृतयो बन्धादीन् प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः ? इति प्रदर्शयन्नाह—

> मिच्छ नपुंसगवेयं, नरयाउं तह य चेव नरयदुगं।
> इगविगलिंदियजाई[1], हुंडमसंपत्तमायावं ॥११॥
> थावर सुहुमं च तहा, साहारणयं तहा अपज्जत्तं।
> एया सोलस पयडी, मिच्छंमि य बंधवोच्छेओ ॥१२॥

मिथ्यात्वं नपुंसकवेदः नरकायुष्कं 'तह य नरयदुगं' इति, नरकगतिनाम [2]नरकगत्यानुपूर्वीनाम 'इगविगलिंदियजाई' इति, एकेन्द्रियजातिः द्वीन्द्रियजातिः त्रीन्द्रियजातिः चतुरिन्द्रियजातिः हुण्डं संस्थानं 'असंप्राप्तं' सेवार्त्तसंहननं आतपनाम स्थावरनाम सूक्ष्मनाम साधारणनाम अपर्याप्तनाम, 'एया सोलस पयडी' इति, विभक्तिव्यत्ययादेतासां षोडशानां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बन्धव्यवच्छेदो भवति, एतत्प्रकृतिबन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययत्वात्, तस्य चोत्तरत्राभावात् ॥११॥ १२॥

---

१ "जाइं" इत्यपि पाठः। २ "नरकानुपूर्वीनाम" इति वा पाठः॥

थीणतिगं इत्थी वि य, अण तिरियाउं तहेव तिरियदुगं।
मज्झिम चउ संठाणं, मज्झिम चउ चेव संघयणं ॥१३॥
उज्जोयमप्पसत्था, [1]विहायगइ दूभगं अणाएज्जं।
दूसर नीयागोयं, सासणसम्मम्मि वोच्छिन्ना ॥१४॥

'**थीण तिगं**' इति, निद्रानिद्रा १ प्रचलाप्रचला २ स्त्यानगृद्धिः ३ स्त्रीवेदः ४ 'अण' इति, अनन्तानुबन्धिनश्चत्वारः क्रोधमानमायालोभाः ८ तिर्यगायुष्कं ९ '**तहेव तिरियदुगं**' इति, तिर्यग्गतिनाम १० तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम ११ '**मज्झिम चउ संठाणं मज्झिम चउ चेव संघयणं**' इति, प्रथमचरमवर्जानि मध्यमानि चत्वारि चत्वारि संस्थानसंहननानि । तानि चामूनिन्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानं सादिसंस्थानं वामनसंस्थानं कुब्जसंस्थानं ऋषभनाराचसंहननं नाराचसंहननं अर्द्धनाराचसंहननं कीलिकासंहननं चेति, उद्द्योतनाम अप्रशस्तविहायोगतिः दुर्भगं अनादेयं दुस्वरं नीचैर्गोत्रम्, इत्येताः पञ्चविंशतिः कर्मप्रकृतयो बन्धं प्रतीत्य सासादनसम्यग्दृष्टौ व्यवच्छिन्नाः । अनन्तानुबन्ध्युदयप्रत्ययत्वादेतद्बन्धस्य तदभावादुत्तरेष्विति ॥१३॥१४॥

बीयकसायचउक्कं, मणुयाउं मणुय[2]दुग य ओरालं।
तस्स य अंगोवंगं, संघयणाई अविरयंमि ॥१५॥

'**बीयकसायचउक्कं**' इत्यप्रत्याख्यानावरणाश्चत्वारः क्रोधमानमायालोभाः मनुष्यायुष्कं '**मणुयदुग य**' इति, मनुष्यगतिर्मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीरं '**तस्स य अंगोवंगं**' इति, औदारिकाङ्गोपाङ्गं '**संघयणाई**' इति, संहननानामादिप्रकृतिर्वज्रर्षभनाराचसंहननम्, इत्येता दश प्रकृतयोऽविरतसम्यग्दृष्टौ व्यवच्छिन्ना इति वर्तते । बन्धं प्रतीत्येति च प्रकरणाद्गम्यते । तत्र द्वितीयकषायचतुष्कं तदुदयाभावान्न बध्नाति देशविरतादिः । कषाया ह्यनन्तानुबन्धिवर्जा वेद्यमाना एव बध्यन्ते, "**जे वेयइ ते बंधति**" इतिवचनात् । अनन्तानुबन्धिनस्तु चतुर्विंशतिमोहसत्कर्माऽनन्तवियोजको मिथ्यात्वं गतो बन्धावलिकामात्रं कालमनुदितान् बध्नाति । मनुष्यायुरादित्रयं त्वेकान्तेन मनुष्यवेद्यमेव । औदारिकादित्रयं तु मनुष्यतिर्यगेकान्तवेद्यमेव । देशविरतादिस्तु देवगतिवेद्यमेव बध्नाति, नान्यत् । तेनैतद्दशकमविरत एव व्यवच्छिन्नम् । सम्यग्मिथ्यादृष्टौ न कस्यचिद्बन्धव्यवच्छेदः, तस्याविरतसम्यग्दृष्टिना सह बन्धहेत्वविशेषात् ॥१५॥

तइयकसायचउक्कं, विरयाविरयंमि बंधवोच्छेओ।
[3]अस्सायमरइसोयं, तह चेव य अथिरमसुभं च ॥१६॥

---

१ "विहाइगइदूभयं" इत्यपि पाठः । २ "०दुगय" इत्यपि पाठः । ३ "अस्साइअरइसोगं" इत्यपि पाठः ।

द्विधा—उच्चैर्गोत्रं १ नीचैर्गोत्रं २ च । तत्रोच्चैर्गोत्रमष्टधा वेद्यते, जातिकुलबलरूपतपऐश्वर्यश्रुतलाभैः १ । तद्विपर्ययात्तु नीचैर्गोत्रम् २ । निर्गुणोऽपि हि जातिवशादुत्तम इति जनैः पूज्यते । जातिहीनस्तु गुणवानपि निन्द्यते तथा कुलादिष्वपि वाच्यम् उक्तं द्विविधं गोत्रम् ७ ॥ जीवं चार्थसाधनं चान्तरा एति पततीत्यन्तरायम् । जीवस्य दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्विघ्नीभूय विचाले पततीत्यर्थः । तत्पञ्चधा—दानस्यान्तरायं दानान्तरायमित्यादि । सति दातव्ये वस्तुनि समागते च गुणवति पात्रे दानस्य च कल्याणकं फलविशेषं विद्वानपि यदुदयाद्दातुं नोत्सहते तद्दानान्तरायम् १ प्रसिद्धादपि सर्वप्रदाद्दातुः गृहे च विद्यमानं देयमर्थजातं याञ्चाकुशलो याचमानो गुणवानपि यदुदयान्न लभते तल्लाभान्तरायम् २ । सकृद्भुज्यत इति भोगः, आहारमाल्यविलेपनादिः । पुनः पुनर्भुज्यत इत्युपभोगः शयनवसनवनिताभूषणादिस्तस्यान्तरायम्, भोग्यमुपभोग्यं वा विद्यमानमनुपहताङ्गोऽपि यदुदयान्न शक्नोति भोक्तुमुपभोक्तुं वा तद्भोगान्तरायमुपभोगान्तरायं च वेदितव्यम् ३ । ४ । वीर्यं शक्तिरुत्साहः सामर्थ्यमिति चोच्यते, तस्यान्तरायं विघातकं वीर्यान्तरायम् । यदुदयादनुपहतपीनाङ्गोऽपि शक्तिविकलो भवति तद्वीर्यान्तरायम् ५ । इत्युक्तं पञ्चविधमन्तरायम् ८ ॥ कृता च प्रकृतिवर्णना । व्याख्यातं च मूलोत्तरप्रकृतिसंख्याप्रतिपादकं गाथाद्वयम् ॥ ९ ॥ १० ॥

इदानीं कास्ता मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु षोडशाद्याः कर्मप्रकृतयो बन्धादीन् प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः ? इति प्रदर्शयन्नाह—

> मिच्छ नपुंसगवेयं, नरयाउं तह य चेव नरयदुगं ।
> इगविगलिंदिय[१]जाई, हुंडमसंपत्तमायावं ॥११॥
> थावर सुहुमं च तहा, साहारणयं तहा अपज्जत्तं ।
> एया सोलस पयडी, मिच्छंमि य बंधवोच्छेओ ॥१२॥

मिथ्यात्वं नपुंसकवेदः नरकायुष्कं 'तह य नरयदुगं' इति, नरकगतिनाम [२]नरकगत्यानुपूर्वीनाम 'इगविगलिंदियजाई' इति, एकेन्द्रियजातिः द्वीन्द्रियजातिः त्रीन्द्रियजातिः चतुरिन्द्रियजातिः हुण्डं संस्थानं 'असंप्राप्तं' सेवार्त्तसंहननं आतपनाम स्थावरनाम सूक्ष्मनाम साधारणनाम अपर्याप्तनाम, 'एया सोलस पयडी' इति, विभक्तिव्यत्ययादेतासां षोडशानां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बन्धव्यवच्छेदो भवति, एतत्प्रकृतिबन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययत्वात्, तस्य चोत्तरत्राभावात् ॥११॥ १२॥

---

१ "जाइं" इत्यपि पाठः । २ "नरकानुपूर्वीनाम" इति वा पाठः ॥

द्विधा—उच्चैर्गोत्रं १ नीचैर्गोत्रं २ च । तत्रोच्चैर्गोत्रमष्टधा वेद्यते, जातिकुलबलरूपतपऐश्वर्यश्रुतलाभैः १ । तद्विपर्ययात्तु नीचैर्गोत्रम् २ । निर्गुणोऽपि हि जातिवशादुत्तम इति जनैः पूज्यते । जातिहीनस्तु गुणवानपि निन्द्यते तथा कुलादिष्वपि वाच्यम् उक्तं द्विविधं गोत्रम् ७ ॥ जीवं चार्थसाधनं चान्तरा एति पततीत्यन्तरायम् । जीवस्य दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्विघ्नीभूय विचाले पततीत्यर्थः । तत्पञ्चधा—दानस्यान्तरायं दानान्तरायमित्यादि । सति दातव्ये वस्तुनि समागते च गुणवति पात्रे दानस्य च कल्याणकं फलविशेषं विद्वानपि यदुदयाद्दातुं नोत्सहते तद्दानान्तरायम् १ प्रसिद्धादपि सर्वप्रदाद्दातुः गृहे च विद्यमानं देयमर्थजातं याञ्चाकुशलो याचमानो गुणवानपि यदुदयान्न लभते तल्लाभान्तरायम् २ । सकृद्भुज्यत इति भोगः, आहारमाल्यविलेपनादिः । पुनः पुनर्भुज्यत इत्युपभोगः शयनवसनवनिताभूषणादिस्तस्यान्तरायम्, भोग्यमुपभोग्यं वा विद्यमानमनुपहताङ्गोऽपि यदुदयान्न शक्नोति भोक्तुमुपभोक्तुं वा तद्भोगान्तरायमुपभोगान्तरायं च वेदितव्यम् ३ । ४ । वीर्यं शक्तिरुत्साहः सामर्थ्यमिति चोच्यते, तस्यान्तरायं विघातकं वीर्यान्तरायम् । यदुदयादनुपहतपीनाङ्गोऽपि शक्तिविकलो भवति तद्वीर्यान्तरायम् ५ । इत्युक्तं पञ्चविधमन्तरायम् ८ ॥ कृता च प्रकृतिवर्णना । व्याख्यातं च मूलोत्तरप्रकृतिसंख्याप्रतिपादकं गाथाद्वयम् ॥ ९ ॥ १० ॥

इदानीं कास्ता मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु षोडशाद्याः कर्मप्रकृतयो बन्धादीन् प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः ? इति प्रदर्शयन्नाह—

मिच्छ नपुंसगवेयं, नरयाउं तह य चेव नरयदुगं ।
इगविगलिंदियजाई, हुंडमसंपत्तमायावं ॥११॥
थावर सुहुमं च तहा, साहारणयं तहा अपज्जत्तं ।
एया सोलस पयडी, मिच्छंमि य बंधवोच्छेओ ॥१२॥

मिथ्यात्वं नपुंसकवेदः नरकायुष्कं 'तह य नरयदुगं' इति, नरकगतिनाम [1]नरकगत्यानुपूर्वीनाम 'इगविगलिंदियजाई' इति, एकेन्द्रियजातिः द्वीन्द्रियजातिः त्रीन्द्रियजातिः चतुरिन्द्रियजातिः हुण्डं संस्थानं 'असंप्राप्तं' सेवार्त्तसंहननं आतपनाम स्थावरनाम सूक्ष्मनाम साधारणनाम अपर्याप्तनाम, 'एया सोलस पयडी' इति, विभक्तिव्यत्ययादेतासां षोडशानां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बन्धव्यवच्छेदो भवति, एतत्प्रकृतिबन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययत्वात्, तस्य चोत्तरत्राभावात् ॥११॥ १२॥

---

१ "जाइं" इत्यपि पाठः । २ "नरकानुपूर्वीनाम" इति वा पाठः ॥

थीणतिगं इत्थी वि य, अण तिरियाउं तहेव तिरियदुगं।
मज्झिम चउ संठाणं, मज्झिम चउ चेव संघयणं ॥१३॥
उज्जोयमप्पसत्था, [1]विहायगइ दूभगं अणाएज्जं।
दूसर नीयागोयं, सासणसम्मम्मि वोच्छिन्ना ॥१४॥

'थीणतिगं' इति, निद्रानिद्रा १ प्रचलाप्रचला २ स्त्यानगृद्धिः ३ स्त्रीवेदः ४ 'अण' इति, अनन्तानुबन्धिनश्चत्वारः क्रोधमानमायालोभाः ८ तिर्यगायुष्कं ९ 'तहेव तिरियदुगं' इति, तिर्यग्गतिनाम १० तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम ११ 'मज्झिम चउ संठाणं मज्झिम चउ चेव संघयणं' इति, प्रथमचरमवर्जानि मध्यमानि चत्वारि चत्वारि संस्थानसंहननानि। तानि चामूनिन्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानं सादिसंस्थानं वामनसंस्थानं कुब्जसंस्थानं ऋषभनाराचसंहननं नाराचसंहननं अर्द्धनाराचसंहननं कीलिकासंहननं चेति, उद्द्योतनाम अप्रशस्तविहायोगतिः दुर्भगं अनादेयं दुस्वरं नीचैर्गोत्रम्, इत्येताः पञ्चविंशतिः कर्मप्रकृतयो बन्धं प्रतीत्य सासादनसम्यग्दृष्टौ व्यवच्छिन्नाः। अनन्तानुबन्ध्युदयप्रत्ययत्वादेतद्बन्धस्य तदभावादुत्तरेष्विति ॥१३॥१४॥

बीयकसायचउक्कं, मणुयाउं मणुय[2]दुग य ओरालं।
तस्स य अंगोवंगं, संघयणाई अविरयंमि ॥१५॥

'बीयकसायचउक्कं' इत्यप्रत्याख्यानावरणाश्चत्वारः क्रोधमानमायालोभाः मनुष्यायुष्कं 'मणुयदुग य' इति, मनुष्यगतिर्मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीरं 'तस्स य अंगोवंगं' इति, औदारिकाङ्गोपाङ्गं संघयणाई' इति, संहनननामादिप्रकृतिर्वज्रर्षभनाराचसंहननम्, इत्येता दश प्रकृतयोऽविरतसम्यग्दृष्टौ व्यवच्छिन्ना इति वर्तते। बन्धं प्रतीत्येति च प्रकरणाद्गम्यते। तत्र द्वितीयकषायचतुष्कं तदुदयाभावान्न बध्नाति देशविरतादिः। कषाया ह्यनन्तानुबन्धिवर्जा वेद्यमाना एव बध्यन्ते, "जे वेयइ ते बंधति" इतिवचनात्। अनन्तानुबन्धिनस्तु चतुर्विंशतिमोहसत्कर्माऽनन्तवियोजको मिथ्यात्वं गतो बन्धावलिकामात्रं कालमनुदितान् बध्नाति। मनुष्यायुरादित्रयं त्वेकान्तेन मनुष्यवेद्यमेव। औदारिकादित्रयं तु मनुष्यतिर्यगेकान्तवेद्यमेव। देशविरतादिस्तु देवगतिवेद्यमेव बध्नाति, नान्यत्। तेनैतद्दशकमविरत एव व्यवच्छिन्नम्। सम्यग्मिथ्यादृष्टौ न कस्यचिद्बन्धव्यवच्छेदः, तस्याविरतसम्यग्दृष्टिना सह बन्धहेत्वविशेषात् ॥१५॥

तइयकसायचउक्कं, विरयाविरयंमि बंधवोच्छेओ।
[3]अस्सायमरइसोयं, तह चेव य अथिरमसुभं च ॥१६॥

---

१ "विहाइगइदूभयं" इत्यपि पाठः। २ "०दुगय" इत्यपि पाठः। ३ "अस्साअरइसोगं" इत्यपि पाठः।

अज्जसकित्ती य तहा, पमत्तविरयंमि बंधवोच्छेओ ।
[1]देवाउयं च एगं, नायव्वं अप्पमत्तंमि ॥ १७ ॥

तइयेत्यादि गाथापूर्वार्द्धम् । 'तइयकसायचउक्कं' इति, प्रत्याख्यानावरणानां क्रोधमानमायालोभानां देशविरतेर्बन्धव्यवच्छेदः, तदुत्तरेषु तेषामुदयाभावादनुदितानां चाबन्धात्प्राग्वत् ॥

'अस्साय' इत्यादि पश्चार्द्धम् । 'अज्जसकित्ती' इत्यादि पूर्वार्द्धम् । असातवेदनीयं अरतिः शोकः अस्थिरनाम अशुभनाम ॥१६॥ अयशःकीर्त्तिनाम, इत्येतासां षण्णां प्रकृतीनां प्रमत्तविरतेर्बन्धव्यवच्छेदः, तद्बन्धस्य प्रमादप्रत्ययत्वात् , प्रमादस्य चोत्तरत्राभावात् ॥

'देवाउयं' इत्यादि पश्चार्द्धम् , देवायुष्कमेकं ज्ञातव्यं, अप्रमत्ते बन्धं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नम् । [2]देवायुष्कबन्धं हि प्रमत्तः [3]सन्नारभते, तद्बन्धाद्धायामेव कश्चिदप्रमत्तो भूत्वा समापयति, न त्वप्रमत्त एवारभते । तदुत्तरेषु तद्बन्धासंभव एव, तेषामत्यन्तविशुद्धत्वात् , आयुषश्च घोलनापरिणामेनैव बन्धात् ॥१७॥

निद्दापयला य तहा, अपुव्वपढमंमि बंधवोच्छेओ ।
देवदुगं पंचिंदिय-उरालवज्जं चउसरीरं ॥ १८ ॥
समचउरं वेउव्विय–आहारय अंगुवंगनामं च ।
वण्णचउक्कं च तहा, अगुरुयलहुयं च चत्तारि ॥१९॥
तसचउपसत्थमेव य, विहायगइ थिरसुभं च नायव्वं ।
सुहयं सुस्सरमेव य, आएज्जं चेव निमिणं [4]च ॥२०॥
तित्थयरमेव तीसं, अपुव्वछब्भागबंधवोच्छेओ ।
हासरइभयदुगुंछा, अपुव्व[5]चरमंमि वोच्छिन्ना ॥२१॥

निद्देति गाथाचतुष्कं । अपूर्वकरणाद्धायाः सप्त भागाः क्रियन्ते । तत्र प्रथमे भागे निद्राप्रचलयोर्बन्धव्यवच्छेदः । तदुत्तरत्र तद्बन्धाध्यवसायस्थानाभावाद् , उत्तरेष्वपि चायमेव हेतुरनुसरणीयः । 'देवदुगं' इति, देवगतिर्देवानुपूर्वी पञ्चेन्द्रियजातिः 'उरालवज्जं चउसरीरं' इति, वैक्रियं आहारकं तैजसं कार्मणं, समचतुरस्रसंस्थानं वैक्रियाङ्गोपाङ्गं आहारकाङ्गोपाङ्गम् 'वण्णचउक्कं च तहा' इति, वर्णो गन्धो रसः स्पर्शः, 'अगुरुयलहुयं च चत्तारि' इति, अगुरुलघु उपघातं पराघातं उच्छ्वासनाम चेति, 'तस चउ' इति, त्रसं बादरं पर्याप्तकं, प्रत्येकं, 'पसत्थमेव य विहायगइ' इति, प्रशस्ता विहायोगतिः, स्थिरं शुभं च ज्ञातव्यम् , सुभगं सुस्वरं आदेयं निर्माणं तीर्थकरनाम, च. इत्येतासां त्रिंशतः कर्मप्रकृतीनामपूर्वकरणस्य

---

१ "देवाउगं च एक्कं वहापमत्तम्मि नायव्वं" । इत्यपि पाठः । २ "तदायु०" इत्यपि पाठः । ३ "सन्नारभ्य त०" इति वा पाठः । ४ "चेव" (?) इत्यपि पाठः । ५ "०चरिमम्मि" इत्यपि पाठः ।

'छब्भाग' इति, षष्ठे सप्तमागे बन्धव्यवच्छेदः । हास्यरतिभयजुगुप्साश्चतस्रः प्रकृतयोऽपूर्वकरण-चरमे सप्तभागे बन्धं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः ॥१८॥१९॥२०॥२१॥

पुरिसं चउसंजलणं, पंच य पयडीओ पंच [1]भागंमि ।
अनियट्टीअद्धाए, जहक्कमं बंधवोच्छेओ ॥२२॥

पुरुषं कर्म पुरुषवेदः, 'चउ संजलणं' इति, चत्वारः संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः, इत्येतासां पञ्चानां प्रकृतीनां 'पञ्च भागंमि' इति, पञ्चसु भागेष्वनिवृत्त्यद्धायाः 'यथाक्रमं' यथासंख्यमेकैकस्मिन् भागे एकैकस्याः प्रकृतेर्बन्धव्यवच्छेदः । पुरुषवेदादीनां मायासंज्वलनान्तानामुत्तरत्र तद्बन्धाध्यवसायस्थानाभावः, व्यवच्छेदहेतुर्लोभसंज्वलनस्य (संज्वलनलोभस्य) तु बादरसम्परायप्रत्ययो बन्धः, स चोत्तरत्र नास्तीत्यतो व्यवच्छेदः ॥२२॥

नाणंतरायदसगं दंसण चत्तारि उच्चजसकित्ती ।
एया सोलस पयडी, [2]सुहुमकसायंमि वोच्छिन्ना ॥२३॥

'नाणंतरायदसगं' इति, ज्ञानावरणं पञ्चविधमन्तरायं पञ्चविधं, 'दंसण चत्तारि' इति, दर्शनावरणानि चत्वारि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणाख्यानि, उच्चैर्गोत्रं, यशःकीर्त्तिः, इत्येताः षोडश प्रकृतयः सूक्ष्मकषाये बन्धं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः । एतद्बन्धस्य साम्परायिकत्वादुत्तरेषु च सम्परायस्य कषायोदयलक्षणस्याभावात् ॥२३॥

उवसंतखीणमोहे, [3]जोगिंमि उ साय बंधवोच्छेओ ।
नायव्वो पयडीणं, बंधस्संतो अणंतो [4]य ॥२४॥

॥ बंधो सम्मत्तो ॥

उवसंतेत्यादि । उपशान्तमोहे क्षीणमोहे सयोगिकेवलिनि च सातवेदनीयस्य बन्धव्यवच्छेदः । तदुत्तरस्मिन्नयोगिकेवलिनि तद्बन्धप्रत्ययस्य योगस्याभावात्, इत्येवं ज्ञातव्यः प्रकृतीनां बन्धस्यान्तोऽनन्तश्च । यत्र हि गुणस्थाने यासां प्रकृतीनां बन्धहेतुव्यवच्छेदस्तत्र तासां बन्धस्यान्तः, यथा मिथ्यादृष्टिव्यवच्छिन्नबन्धानां षोडशानां प्रकृतीनां मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाः समुदिता बन्धहेतवः, तेषु मध्ये मिथ्यात्वं तत्रैव व्यवच्छिन्नम् । ततश्च मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने तासां बन्धस्यान्तः तत उत्तरेषु कारणवैकल्येन बन्धाभावादितरासां बन्धस्यानन्तः । तत उत्तरेष्वपि तद्बन्धकारणसाकल्येन बन्धभावात् इत्येवमन्येष्वपि गुणस्थानेषु प्रकृतीनां स्वस्वबन्धहेतूनां व्यवच्छेदाव्यवच्छेदाभ्यां साकल्यवैकल्यवशाद्बन्धस्यान्तोऽनन्तश्च भावनीयः ॥२४॥

॥ इति बन्धाधिकारः समाप्तः ॥

१ "मायम्मि" इत्यपि पाठः । २ "सुहुमसरागम्मि" इत्यपि पाठः । ३ "सजोइम्मी साय" इत्यपि पाठः । ४ "वा" इत्यपि पाठः ।

अथेदानीं कास्ताः पञ्चाद्याः कर्मप्रकृतयो यासां मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषूदयव्यवच्छेदः ? इत्याह—

मिच्छत्तं आयावं सुहुम अपज्जतया य तह चेव ।
साहारणं च पंच य, मिच्छंमि य उदयवोच्छेओ ॥२५॥

मिथ्यात्वं आतपनाम सूक्ष्मनाम अपर्याप्तकनाम साधारणं च, इत्यासां पञ्चानां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टावुदयव्यवच्छेदः । मिथ्यात्वोदयस्तावन्मिथ्यादृष्टेरेव भवति, तेनोत्तरेषु तदुदयाभावः । आतपनामोदयस्तु बादरपृथिवीकायिकेष्वेव । अपर्याप्तनाम्नस्तु सर्वेष्वपर्याप्तकेषु । सूक्ष्मनाम्नः सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु । साधारणनाम्नोऽनन्तकायिकवनस्पतिषु । न चैतेषु स्थितो जीवः सासादनादित्वं लभते, नापि पूर्वप्रतिपन्नस्तेषूत्पद्यते । सासादनस्तु यद्यपि बादरपर्याप्तकैकेन्द्रियेषूत्पद्यते तथाऽपि न तस्यातपनामोदयसंभवः, तत्रोत्पन्नमात्रस्यासमाप्तशरीरस्यैव सासादनत्ववमनात् । समाप्ते च शरीरे तत्रातपनामोदयो भवति, तेनैतासां मिथ्यादृष्टौ व्यवच्छेद उदयस्य ॥२५॥

अण एगिंदियजाई, विगलिंदियजाइमेव थावरयं ।
एया नव पयडीओ, सासणसम्मंमि वोच्छिन्ना ॥२६॥

'अण' इति अनन्तानुबन्धिनश्चत्वारः, एकेन्द्रियजातिः, **'विगलिंदियजाइमेव'** इति विकलानि पञ्चभ्य ऊनानि इन्द्रियाणि येषां ते विकलेन्द्रिया द्वीन्द्रियादयस्तेषां जातयस्तिस्रः, तद्यथा—द्वीन्द्रियजातिः, त्रीन्द्रियजातिः, चतुरिन्द्रियजातिः, स्थावरनाम, इत्येता नव प्रकृतयः सासादनसम्यग्दृष्टावुदयं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः । अनन्तानुबन्धिनामुदये सम्यक्त्वलाभो न भवति, **"पढमिल्लुयाण उदए, नियमा संजोयणा कसायाणं । सम्मद्दंसणलंभं, भवसिद्धीयावि न लभंति ॥१॥"** इतिवचनात् । नापि सम्यङ्मिथ्यात्वं कोऽप्यनन्तानुबन्ध्युदये गच्छति । योऽपि पूर्वप्रतिपन्नसम्यक्त्वोऽनन्तानुबन्धिनामुदयं करोति सोऽपि सासादन एव भवतीत्युत्तरेष्वासामुदयाभावः । शेषास्त्वेकेन्द्रियजात्यादयो यथास्वमेकेन्द्रियविकलेन्द्रियवेद्या एव । उत्तरगुणस्थानानि तु संज्ञिपञ्चेन्द्रिया एव प्रतिपद्यन्ते । पूर्वप्रतिपन्नोऽपि पञ्चेन्द्रियेष्वेव गच्छति अत उत्तरेष्वासामुदयाभावः । । ततश्च सासादन एवोदयव्यवच्छेदः ॥२६॥

सम्मा मिच्छत्तेगं, सम्मामिच्छमि उदयवोच्छेओ ।
बीयकसायचउक्कं तह चेव य नरयदेवाऊ ॥२७॥
मणुयतिरियाणुपुव्वी, वेउव्वियछक्क [1]दूहयं चेव ।
अणएज्जं चेव तहा, अज्जसकित्ती अविरयंमि ॥२८॥

---

१ "दूहियं" इत्यपि पाठः ।

पूर्वार्द्धम् । सम्यङ्मिथ्यात्वस्यैकस्य सम्यङ्मिथ्यादृष्टावुदयव्यवच्छेदः । तदुदये हि सम्यङ्मिथ्यादृष्टिरेव भवति नान्य इति ॥

'बीयकसायचउक्कं' इति, अप्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः । देवायुः नरकायुः मनुजानुपूर्वी, तिर्यगानुपूर्वी 'वेउव्वियछक्क' इति वैक्रियेण युक्तं षट्कं वैक्रियषट्कम्-वैक्रियशरीरं वैक्रियाङ्गोपाङ्गं नरकगतिः नरकानुपूर्वी देवगतिः देवानुपूर्वीति । दुर्भगं, अनादेयं, अयशःकीर्त्तिः, इत्येताः सप्तदश प्रकृतय उदयं प्रतीत्याविरतसम्यग्दृष्टौ व्यवच्छिन्नाः । द्वितीयकषायोदये देशविरतेरपि लाभः श्रुते प्रतिषिद्धः, 'बीयकसायाणुदये' इत्यादिना । नापि पूर्वप्रतिपन्नदेशविरत्यादेर्जीवस्य तदुदयसंभवः, तेनोत्तरेषु तदुदयाभावः । देवनरकायुषी देवगतिद्विकं नरकगतिद्विकं च यथास्वं देवनारकवेद्यमेव, न च तेषु देशविरत्यादेः संभवः । वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम्नोस्तु देवनारकेषूदयः । तिर्यङ्मनुष्येषु त्वप्राचुर्येणाविरतसम्यग्दृष्ट्यन्तेषु । यस्तूत्तरगुणस्थानेष्वपि केषाञ्चिदागमे विष्णुकुमारस्थूलभद्रादीनां वैक्रियद्वितियस्योदयः श्रूयते, स इहाचार्येण न विवक्षितः, किं प्रविरलतरत्वात्, आहोस्विदन्यः कोऽप्यभिप्रायः ?, इति न विद्मः तिर्यङ्मनुजानुपूर्व्योस्तु परभवादिसमयेषु त्रिष्वपान्तरालगतावुदयसंभवः, स च यथायोगं तिर्यङ्मनुष्याणां वर्षाष्टकादुपरिष्टात्संभविषु देशविरत्यादिगुणस्थानेषु न संभवति । दुर्भगमनादेयमयशःकीर्तिरित्येतास्तु तिस्रः प्रकृतयो देशविरतादीनां गुणप्रत्ययान्नोद्यन्तीत्यत एता अविरते व्यवच्छिन्नाः ॥२७॥२८॥

तइयकसायचउक्कं, [1]तिरियाऊ तह य चेव तिरियगई ।
उज्जोय [2]नीयगोयं, विरयाविरयंमि वोच्छिन्ना ॥२९॥

'तृतीयकषायचतुष्कं' इति, प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधादयः, तिर्यगायुः, तिर्यग्गतिः, उद्योतं, नीचैर्गोत्रम्, इत्येता अष्टौ प्रकृतय उदयं प्रतीत्य विरताविरते व्यवच्छिन्नाः । विरतश्चासौ स्थूलप्राणातिपातादेरविरतश्च सूक्ष्मप्राणातिपातादेर्विरताविरतो=निवृत्तानिवृत्तो देशविरत इत्यर्थः । तृतीयकषायोदये हि चारित्रलाभो न भवति, "तइयकसायाणुदए" इत्यादिवचनात् । न च पूर्वप्रतिपन्नचारित्रस्य तदुदयसंभव इत्युत्तरेषु तदुदयाभावः । तिर्यगायुस्तिर्यग्गतिरुद्योतनाम इत्येताः स्वभावतस्तिर्यग्वेद्या एव । तेषु च देशविरतान्तान्येव गुणस्थानानि संभवन्ति नोत्तराणि इत्युत्तरेषु तदुदयाभावः । उद्योतनाम्नस्तु यतिवैक्रियेऽप्युदयसंभवः । तथा चोक्तम्-"उत्तरवेउव्व देवजति" इति, स त्विहाचार्येण वैक्रियोदयवन्न विवक्षितः । नीचैर्गोत्रं तु तिर्यक्षु गतिस्वाभाव्याद् ध्रुवौदयिकं न परावर्तते । ततश्च देशविरतस्यापि तिरश्चो नीचैर्गोत्रोदयोऽस्त्येव । मनुजेषु तु सर्वस्य देशविरतादेर्गुणिनो गुणप्रत्ययादुच्चैर्गोत्रमेवोदेतीति उक्तत्र नीचैर्गोत्रोदयाभावः । ततश्चैता अष्टावपि देशविरत एवोदयं प्रतीत्य व्यवच्छिन्नाः ॥२९॥

१ "तिरियाउं तहय चेव तिरियगई" इत्यपि पाठः । २ "निय०" इत्यपि पाठः ।

थीणतिगं चेव तहा, आहारदुगं पमत्तविरयंमि ।
सम्मत्तं संघयणं, अंतिमतिगमप्पमत्तंमि ॥३०॥

पूर्वार्द्धम् । स्त्यानर्धित्रयं पूर्वोक्तम् , तथा 'आहारकद्वयं' आहारकशरीराहारकाङ्गोपाङ्गाख्यम् , इत्येतत् प्रकृतिपञ्चकं प्रमत्तविरते व्यवच्छिन्नमुदयं प्रतीत्य । तत्र स्त्यानर्द्धित्रयोदयः प्रमादरूपत्वादप्रमत्ते न संभवति । आहारकं च शरीरं विकुर्वाणो यतिरवश्यं प्रमादवशगो भवति । यत्त्विदमन्यत्र श्रूयते—प्रमत्तयतिराहारकं विकृत्य पश्चाद्विशुद्धिवशात्तत्रस्थ एवाप्रमत्ततां यातीति तदाचार्येण वैक्रियोदयन्यायेन न विवक्षितम् ॥

'सम्मत्तं' इत्यादि पश्चार्द्धम् । सम्यक्त्वं, तथा 'संहननानामन्त्यत्रयं' इति, अर्द्धनाराचकीलिकासेवार्त्ताख्यं, इत्येताश्चतस्रः प्रकृतय उदयं प्रतीत्याप्रमत्ते व्यवच्छिन्नाः । तत्र सम्यक्त्वे क्षपिते उपशमिते वा श्रेणिद्वयमारुह्यत इत्यपूर्वकरणादौ तदुदयाभावः । चरमसंहननत्रयोदये तु श्रेणिरारोढुं न शक्यते, तथाविधविशुद्धेरभावादित्युत्तरेषु तदुदयाभावः ॥३०॥

तह नोकसायछक्कं, अपुव्वकरणंमि उदयवोच्छेओ ।
वेयतिग कोह[1]माणामायासंजलणमनियट्टी ॥३१॥

पूर्वार्द्धम् । नोकषायषट्कस्य हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साख्यस्यापूर्वकरणे उदयव्यवच्छेदः । संक्लिष्टतरपरिणामवेद्यत्वादुत्तरेषां च विशुद्धतरपरिणामत्वात्तेषु तदुदयाभाव इति, उत्तरेष्वप्ययमुदयव्यवच्छेदो हेतुरनुसरणीयः ॥

'वेयतिग' इत्यादिपश्चार्द्धम् । वेदत्रिकं स्त्रीवेदपुंवेदनपुंसकवेदाख्यम् , क्रोधमानमायाः संज्वलनास्त्रयः, इत्यस्य प्रकृतिषट्कस्यानिवृत्तिबादरसम्पराये उदयव्यवच्छेदः । तत्र स्त्रियाः श्रेणिमारोहन्त्याः स्त्रीवेदस्य प्रथममुदयव्यवच्छेदः, ततः क्रमेण संज्वलनत्रयस्य, पुंसोऽप्येवम् , नवरं प्रथमं पुंवेदस्य, नपुंसकस्य तु प्रथमं नपुंसकवेदस्य ॥३१॥

संजलणलोभमेगं, [2]सुहुमकसायंमि उदयवोच्छेओ ।
तह [3]रिसहं नारायं, नारायं चेव उवसंते ॥३२॥

पूर्वार्द्धम् । संज्वलनलोभस्यैकस्य सूक्ष्मकषाये उदयव्यवच्छेदः । तदुत्तरेष्वस्योदयाभावः, उपशान्तत्वात्क्षीणत्वाद्वा ॥

'तह रिसहं' इति पश्चार्द्धम् । ऋषभनाराचं द्वितीयं संहननं नाराचं तृतीयमित्यनयोरुपशान्तमोहे उदयव्यवच्छेदः । प्रथमसंहननेनैव क्षपकश्रेण्यारोहणात्क्षीणमोहादौ तदुदयाभावः । उपशमश्रेणिस्तु प्रथमसंहननत्रयेणारुह्यते ॥३२॥

---

१ "नाणय०" इत्यपि पाठः । २ "सुहुमसरागम्मि" इत्यपि पाठः । ३ "रिसहना०" इत्यपि पाठः ।

निद्दा पयला य तहा, खीणदुचरिमंमि उदयवोच्छेओ ।
नाणंतरायदसगं, दंसण चत्तारि चरिमंमि ॥३३॥

निद्राप्रचलयोः क्षीणकषायस्य द्विचरमसमये उदयव्यवच्छेदः । चरमसमये तु क्षीणत्वात्तदुदयाभावः । अपरे पुनराहुः—उपशान्तमोहे निद्राप्रचलयोरुदयव्यवच्छेदः । पञ्चानामपि हि निद्राणां घोलनपरिणामे भवत्युदयः । क्षपकाणां त्वतिविशुद्धत्वान्न निद्रोदयसंभवः । उपशमकानां पुनरनतिविशुद्धत्वात्स्यादपीति । 'नाणंतरायदसगं' इति, ज्ञानावरणे पञ्च, अन्तराये पञ्च, दर्शनावरणानि चत्वारि चक्षुर्दर्शनावरणादीनि, इत्येतासां चतुर्दशानां प्रकृतीनां क्षीणकषायचरमसमये उदयव्यवच्छेदः, तदनन्तरं क्षयादिति ॥३३॥

[1]अन्नयरवेयणीयं, ओरालियतेयकम्मनामं च ।
छच्चेव य संठाणा, ओरालियअंगुवंगं च ॥३४॥
[2]आइमसंघयणं खलु, वण्णचउक्कं च दो विहायगती ।
अगुरुयलहुयचउक्कं, पत्तेयथिराथिरं चेव ॥३५॥
सुभसुस्सरजुयलावि य, निमिणं च तहा हवंति नायव्वा ।
एया तीसं पयडी, सजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥३६॥

गाथात्रयम् । 'अन्यतरवेदनीयं' सातमसातं वा यदयोगिगुणस्थाने न वेदयिष्यते । औदारिकशरीरं तैजसशरीरं कार्मणशरीरम्, 'छच्चेव य संठाणा' षट् संस्थानानि समचतुरस्रादीनि, 'ओरालियअंगुवंगं च' इति, औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम, 'आदिमसंहननं' वज्रर्षभनाराचम् 'वर्णचतुष्कं' वर्णगन्धरसस्पर्शाख्यम्, 'दो विहायगती' इति, प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती इति, 'अगुरुलघुचतुष्कं' अगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासाख्यम्, प्रत्येकं स्थिरं अस्थिरं, 'सुभसुस्सरजुयलावि य' इति, शुभं अशुभं सुस्वरं दुःस्वरं निर्माणम्, इत्येतास्त्रिंशत् प्रकृतय उदयं प्रतीत्य सयोगिचरमसमये व्यवच्छिन्नाः । तत्रान्यतरवेदनीयं यदयोगिगुणस्थाने न वेदयितव्यं तत्सयोगिचरमसमये व्यवच्छिन्नोदयं भवति, पुनरुत्तरत्रोदयाभावात् । सुस्वरदुःस्वरनाम्नोस्तु भाषापुद्गलविपाकित्वाद्वाग्योगिनामेवोदयः, शेषाणां शरीरपुद्गलविपाकित्वात्काययोगिनामेव । तेन हि योगेन तत्पुद्गलग्रहणपरिणामालम्बनानि, ततस्तेषु गृहीतेषु पुद्गलेष्वेतेषां कर्मणां स्वस्वविपाकेनोदयो भवति, तेनायोगिनि योगाभावात्तदुदयाभावः ॥३४॥३५॥३६॥

१-"अन्नयरं" इत्यपि पाठः । २ "आयम" (?) इत्यपि पाठः ।

'अन्नयरवेयणीयं मणुयाऊ मणुयगइ य बोद्धव्वा ।
पंचिंदियजाई वि य, तस सुभगा[2]एज्जपज्जत्तं ॥३७॥
बायरजसकित्ती वि य, तित्थयरं उच्चगोयय' चेव ।
एया बारस पयडी, अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥३८॥

॥ उदओ सम्मत्तो ॥

•

गाथाद्वयम् ॥ 'अन्यतरवेदनीयं' सातमसातं वा, यदुदयावस्थं मनुष्यायुः मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिः त्रसं सुभगं आदेयं पर्याप्तं बादरं यशःकीर्त्तिः तीर्थकरं उच्चैर्गोत्रम्, इत्येता द्वादश प्रकृतयो भवस्थायोगिचरमसमये व्यवच्छिन्ना उदयमाश्रित्य क्षयादुत्तरत्रोदयाभावः ॥३७॥३८॥

॥ इत्युदयाधिकारः ॥

•

इदानीं कास्ताः पञ्चनवत्याः कर्मप्रकृतयो यासां गुणस्थानेषूदीरणाव्यवच्छेदः ? इत्येतदतिदेशद्वारेणाह—

उदयस्सुदीरणाए, सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।
मोत्तूण तिन्नि ठाणे, पमत्तजोगी अजोगी य ॥३९॥

उदयस्योदीरणस्य च इत्यनयोरभिहितलक्षणयोः 'स्वामित्वात्' स्वामित्वमाश्रित्य, कर्मप्रकृतीनामिति गम्यते । न विद्यते विशेषः संख्यान्यूनाधिकत्वकृतो भेदः । किमुक्तं भवति— यावतीनां प्रकृतीनां यो मिथ्यादृष्ट्यादिर्वेदयिता स तावतीनामुदीरयिता-ऽपीति, अतिप्रसङ्गनिवृत्त्यर्थमपवादमाह—मुक्त्वा त्रीणि स्थानानि प्रमत्तयतिसयोग्ययोगिगुणस्थानकाख्यानीति ॥३९॥

तेषु तु यो विशेषस्तमाह—

तीसं बारस उदए, केवलिणो मेलणं च काऊण ।
सायासायं च तहा [3]मणुयाउं अवणियं किच्चा ॥४०॥

त्रिंशत् द्वादश च यथासंख्यं प्रकृतय उदयव्यवच्छेदमाश्रित्य, केषाम् ? इत्याह—केवलिनां सयोगिनामयोगिनां च । ततश्च तासां त्रिंशतो द्वादशानां च प्रकृतीनां मीलनं कृत्वा द्विचत्वारिंशति जातायां सातमसातं च तथा मनुष्यायुरित्येतत् प्रकृतित्रयमपनीतं कृत्वा ॥४०॥

ततः—

सेसं इगुयालीसं, [4]जोगिंमि उदीरणा य बोद्धव्वा ।
अवणीय तिन्नि पयडी, [5]पमत्त उदयंमि पक्खित्ता ॥४१॥

---

१ "अन्नयरं वेअणीयं मणुयाउं मणुयगती य" इत्यपि पाठः । २ "॰इज्ज" इत्यपि पाठः । ३ "मणुयाऊमवणियं" (?) इत्यपि पाठ । ४ "सजोगम्मि" इत्यपि । ५ "पमत्तविरियम्मि" इत्यपि पाठः ।

शेषमपनीतस्य किं भवति ? एकोनचत्वारिंशत् प्रकृतयः, तासां सयोगिगुणस्थाने उदीरणा बोद्धव्या । अपनीय तिस्रः प्रकृतीः प्रमत्तयतेरुदये व्यवच्छिन्नस्य प्रकृतिपञ्चकस्य संनिधिनि प्रक्षिप्ताः । सातासातमनुजायुषां हि प्रमादसहितेनैव योगेनोदीरणा भवति, नान्येन; इत्युत्तरेषु तदुदीरणाया अभावः ॥४१॥

ततश्च किं भवति—

तह चेव अट्ठ पयडी, पमत्तविरए उदीरणा होइ ।
नत्थित्ति अजोगिजिणे, उदीरणा होइ नायव्वा ॥४२॥

॥ उदीरणा सम्मत्ता ॥

•

तथा चैवं सत्यष्टानां प्रकृतीनां प्रमत्तविरते व्यवच्छेदमधिकृत्योदीरणा भवति, अष्टानामुदीरणाव्यवच्छेदो भवतीत्यर्थः । नास्तीत्ययोगिजिने उदीरणा ज्ञातव्या भवति, योगाभावात् । उदीरणा हि योगविशेषरूपः करणविशेषः ॥४२॥

॥ इत्युदीरणाधिकारः ॥

•

इदानीं प्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदाधिकारोद्दिष्टाः प्रकृतीरानुपूर्व्या प्रतिनिर्दिशति—

अणमिच्छमीससम्मं, [1]अविरयसम्माइअप्पमत्तंता ।
सुरनरयतिरियआऊ, नियभवे सव्वजीवाणं ॥४३॥

पूर्वव्याख्यातैव गाथा । पूर्वमुद्देशाधिकारोक्ताऽपि पुनरिह प्रकृतिनिर्देशप्रसङ्गेन पठिता स्मृत्यर्थं विस्मरणशीलानामिति ॥४३॥

थीणतिगं चेव तहा, नरयदुगं चेव तह य तिरियदुगं ।
इगिविगलिंदियजाई, आयावुज्जोयथावरयं ॥४४॥

प्राग्भवन्यवच्छिन्नायुस्त्रयसत्ताकः सम्भिविरताद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानेषु क्षपितदर्शनसप्तको यतिरप्रमत्तः प्रतिसमयानन्तगुणविशुद्धिविवृद्ध्यात्मकयथाप्रवृत्तकरणबलेनापूर्वकरणं प्रविश्य तत्र चातिशयवद्विशुद्धिवशात्कर्माणि क्षपणयोग्यतामापाद्यानिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानं प्रविशति । तत्र च प्रथममेव द्वितीयतृतीयानष्टौ कषायान् क्षपयितुमारभते, तेषु चार्द्धक्षपितेष्वेताः षोडश प्रकृतीरुत्सादयति । तद्यथा—'स्त्यानर्द्धित्रयं' प्रागुक्तम्, 'नरयदुगं चेव तह य तिरियदुगं' इति, नरकगतिर्नरकानुपूर्वी, तिर्यग्गतिरितिर्यगानुपूर्वी, 'इगिविगलिंदियजाई' इति, एकेन्द्रियजातिस्तथा द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातयस्तिस्रः, आतपमुद्योतं स्थावरम् ॥४४॥

---

१ "अविरइ" इत्यपि पाठः ।

साहारण सुहुमं [1]चिय, सोलस पयडीओ [2]होंति नायव्वा।
बीयकसायचउक्कं, तइयकमायं च [3]अट्ठेव ॥४५॥

साधारणं सूक्ष्मं, इत्येताः पोडश प्रकृतयः प्रागुद्दिष्टाः सत्ताव्यवच्छेदमधिकृत्य भवन्ति ज्ञातव्याः। तासां च क्षयानन्तरं शेषमष्टकं क्षपयति, तच्चेदं—द्वितीयकषायचतुष्कम्, तृतीयकषायाश्च चत्वार इति ॥४५॥

एगनपुंसगवेयं, इत्थीवेयं तहेव एगं च।
तह नोकसायछक्कं, पुरिसं [4]कोहं च माणं च ॥४६॥

ततश्चैको नपुंसकवेदः सत्तां प्रतीत्य व्यवच्छिन्नो ज्ञातव्यः। ततः स्त्रीवेद एकः, ततः 'नोकषायषट्कं' हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साख्यम्, ततः पुरुषवेदः, ततः संज्वलनः क्रोधः, ततः संज्वलनो मानः, सत्ताव्यवच्छेदमधिकृत्य ज्ञातव्यः ॥४६॥

मायं चिय अनियट्टी, भागं गंतूण संतवोच्छेओ।
लोहं चिय संजलणं, [5]सुहुमकसायंमि वोच्छिन्ना ॥४७॥

पूर्वार्द्धम् ॥ मायायाश्च संज्वलनाया अनिवृत्त्यद्धाया भागं गत्वा सत्ताव्यवच्छेदः। अनिवृत्त्यद्धाभागं गत्वेत्येतद् पूर्वेष्वपि षोडशाष्टैकैकादिष्वपेक्षणीयम्।

'लोभं चिय' इत्यादिपश्चार्द्धम्। लोभस्य संज्वलनस्य सूक्ष्मकषाये सत्तामधिकृत्य व्यवच्छेदः ॥४७॥

खीणकसायदुचरिमे, [6]निद्दं पयलं च हणइ छउमत्थो।
नाणंतरायदसगं दंसणचत्तारि चरिमंमि ॥४८॥

क्षीणकषायो द्विचरमे समये निद्रां प्रचलां च हन्ति, छद्मस्थः सन्नित्यतो द्विचरमसमये तयोः सत्ताव्यवच्छेदः। तथा ज्ञानावरणं पञ्चविधम्, अन्तरायं पञ्चविधम्, इत्येतद्दशकम्, दर्शनावरणानि चत्वारि, इत्येताश्चतुर्दश प्रकृतीः क्षीणकषायच्छद्मस्थश्चरमसमये हन्तीत्यतस्तत्र तासां व्यवच्छेदः ॥४८॥

देवदुग पणसरीरं, पंचसरीरस्स बंधणं चेव।
पंचेव य संघाया, संठाणा तह य छक्कं च ॥४९॥
तिन्नि य अंगोवंगा, संघयणं तह य होइछक्कं च।
पंचेव य [7]वण्णरसा, दो गंधा अट्ठ फासा य ॥५०॥

---

१ "चिय" इत्यपि। २ "हुंति" इत्यपि। ३ "अट्ठ च" इत्यपि पाठः। ४ "कोहा य माणा य" इत्यपि पाठः। ५ "सुहुमसरागम्मि" इत्यपि पाठः। ६ "निद्दा पयला हणइ" इत्यपि पाठः। ७ "वन्नरसा" इत्यपि पाठः।

अगुरुयलहुयचउक्कं, विहायगइदुग थिराथिरं चेव ।
'सुहसुस्सरजुयलावि य, पत्तेयं दूभगं अजसं ॥५१॥
अणएज्जं निमिणं चिय, अपजत्तं तह य [2]नीयगोयं च ।
[3]अन्नयरवेयणियं अजोगिदुचरमंमि वोच्छिण्णा ॥५२॥

गाथाचतुष्टयम् ॥ देवगतिर्देवानुपूर्वी । पञ्च शरीराण्यौदारिकादीनि । पञ्चशरीरस्यौदारिकादेर्बन्धनान्यौदारिकबन्धनादीनि । पञ्च संघातनामान्यौदारिकसङ्घातादीनि । संस्थानषट्कं षट्प्रकारं समचतुरस्रादि । त्रीण्यङ्गोपाङ्गनामान्यौदारिकाङ्गोपाङ्गादीनि । संहननषट्कं षट्प्रकारं वज्रर्षभनाराचादि । 'पंचेव य वण्णरसा' इति, पञ्च वर्णनामानि कृष्णादीनि, पञ्चरसनामानि तिक्तादीनि । द्वे गन्धनामनी सुरभि असुरभि च । अष्टौ स्पर्शनामानि कर्कशादीनि । 'अगुरुयलहुयचउक्कं' इति, अगुरुलघुपघातपराघातोच्छ्वासाख्यं चतुष्कम् । 'विहायगइदुग' इति, प्रशस्तविहायोगतिरप्रशस्तविहायोगतिः, इत्येतद्द्विकं स्थिरमस्थिरं 'सुहसुस्सरजुयलावि य' इति, शुभमशुभं सुस्वरं दुःस्वरमिति । प्रत्येकं दुर्भगमयशःकीर्त्तिरनादेयं निर्माणमपर्याप्तकं नीचैर्गोत्रमन्यतरवेदनीयमनुदयावस्थं सातमसातं वा । इत्येता द्वासप्ततिः प्रकृतयः सत्तामधिकृत्यायोगिद्विचरमसमये व्यवच्छिन्नाः । सर्वा अपि ह्येता अनुदयावस्थाः । ततश्च यद्यपि सयोगिना योगनिरोधं कुर्वता सर्वासामघातिप्रकृतीनां कालतः समैव गुणश्रेणिरुपरचिता तथाऽप्यनुदयावस्थप्रकृतीनां चरमसमये दलिकमुदयवतीषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रान्तत्वात् आत्मानुभावतो नास्ति। तेन द्विचरमसमये तत्सत्ताव्यवच्छेदः ॥४९॥५०॥५१॥५२॥

[4]अन्नयरवेयणीयं, मणुयाऊ मणुयदुवय बोद्धव्वा ।
पंचिंदियजाईवि य, तससुभगाएज्जपज्जत्तं ॥५३॥
बायरजसकित्ती वि य, तित्थयरं उच्चगोययं चेव ।
एया तेरस पयडी, अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥५४॥

॥ सत्ता सम्मत्ता ॥

गाथाद्वयम् ॥ अन्यतरवेदनीयं सातमसातं वा, यदुदयावस्थं मनुष्यायुः, 'मणुयदुवय बोद्धव्वा' मनुजद्वितयं मनुजगतिः मनुष्यानुपूर्वी पञ्चेन्द्रियजातिः त्रसं सुभगं आदेयं पर्याप्तं बादरं यशःकीर्त्तिस्तीर्थंकरं उच्चैर्गोत्रम्, इत्येतास्त्रयोदश प्रकृतयोऽयोगिचरमसमये व्यवच्छिन्नाः सत्तामधिकृत्य । अपरेषां पुनराचार्याणां मतेन—मनुजानुपूर्व्या द्विचरमसमये सत्ताव्यवच्छेदः उदयाभावात् । उदयवतीनां हि द्वादशानां स्तिबुकसङ्क्रमाभावात्स्वानुभवे दलिकं चरमसमयेऽपि दृश्यत

१ "सुभसुस्सरजुगलदुगं पत्तेयं दूहगं" इत्यपि पाठः । २ "नीयगुत्तं च" इत्यपि पाठः । ३ "अन्नयरं वेअणीयं अजोगिदुचरिमम्मि वोच्छिन्ना" इत्यपि पाठः । ४ "अन्नयरं" इत्यपि पाठः ।

एवेति युक्तस्तासां चरमसमये व्यवच्छेदः । आनुपूर्वीनाम्नां चतुर्णामपि क्षेत्रविपाकित्वाद्भवान्तरापान्तरालगतावेवोदयस्तेन भवस्थस्य नास्ति तदुदयः । तदभावाच्चायोगिद्विचरमसमये मनुजानुपूर्व्या अपि सत्ताव्यवच्छेदः । ततश्च तन्मतेनोल्लिङ्गनगाथादावेवं पाठो द्रष्टव्यः–'**तेवत्तरिं दुचरिमे बारसचरमे अजोगिणो खीणे**' इति। तथा–"**मणएज्जनिमिणमणुयाणुपुव्विपज्जत्तय च नीयं च**" । तथा–"**मणुयाऊ मणुयगइ य बोद्धव्वा**" । तथा–"**एया बारस पयडी अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना**" इति । तथा चेहाप्युदयाधिकारे द्वादशानामयोगिन्युदय उक्तः '**बारस उदये अजोगंता**' ॥५३॥५४॥

॥ इति सत्ताधिकारः ॥

•

तदेवं भगवता क्रमेण गुणस्थानान्यारोहता संपादितं कर्मप्रकृतिबन्धोदयोदीरणासत्ताव्यवच्छेदाख्यं गुणमभिष्टुत्य स्तवकारः सर्वकर्मबन्धादिव्यवच्छेदोद्भवं भगवतो निरतिशयं गुणं दर्शयन्नात्मनः प्रशस्ताध्यवसायप्रवृत्तिहेतुं प्रार्थनाविशेषमाह—

सो मे तिहुयणमहिओ, सिद्धो बुद्धो निरंजणो निच्चो ।
दिसउ वरनाण[1]लंभं, दंसणसुद्धिं समाहिं च ॥५५॥

॥ कर्मस्तवः समाप्तः ॥

•

'**सः**' भगवानेवमात्मनः संपादितगुणातिशयः '**मे**' मह्यं दिशतु ज्ञानलाभादिकमिति संबन्धः । त्रिभुवनेन देवमनुजासुरलोकत्रयलक्षणेन महितः पूजितः, '**सिद्धः**' निष्ठिताशेषप्रयोजनः, '**बुद्धः**' समस्तवस्तुविषयकेवलबोधभाक्, '**निरञ्जनः**' निर्गताशेषक्लिष्टकर्माञ्जनः, '**नित्यः**' ध्रुवः साद्यनिधनं कालं तत्पर्यायापरित्यागी '**दिशतु**' ददातु वरमुत्तमं ज्ञानं सम्यग्ज्ञानरूपं मतिज्ञानादिकेवलज्ञानान्तं तस्य लाभमप्राप्तप्राप्तिलक्षणम्, तथा दर्शनं सम्यक्त्वं तस्य शुद्धिं दर्शनमोहनीयकर्मापगमकृतं वैमल्यम्, तथा '**समाधिं**' चारित्रविशुद्धात्मकमिति ॥५५॥

स्मृत्यनुसारेण मया, यद्गदितमिहोनमधिकमागमतः । तत्क्षन्तव्यं [2]श्रुतशु-द्धबुद्धिभिः शोधनीयं च॥१॥
इति श्वेतपटाचा[3]र्य–गोविन्दगणिना कृता । कर्मस्तवस्य टीकेयं, देवनागगुरोर्गिरा ॥२॥
अनुष्टुप्छन्दसां प्रायः, संकलय्यानुवर्णितम् । सहस्रमेकं श्लोकानां, नवत्युत्तरमेव च ॥३॥

॥ इति श्वेतपटाचार्यश्रीमद्गोविन्दगणिकृता कर्मस्तवटीका समाप्ता ॥

---

१ "लाभं" इत्यपि पाठः । २ 'सर्व, सुबु–" इत्यपि । ३ "र्य श्रीगोविन्देन निर्मिता" इत्यपि पाठ. ॥

समाप्तोऽयं सटीकः कर्मस्तवाख्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः

॥ ॐ ह्रीँ अर्हं श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ न्यायाम्भोनिधि–प्रतिभाप्रतिकृति–श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

॥ सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

॥ कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः ।

श्रीमद्धरिभद्रसूरिविरचितव्याख्ययोपेतः ।



गत्यादिमार्गणास्थान-बन्धस्वामित्वदेशकम् ।
नत्वा वीरं जिनं वक्ष्ये, बन्धस्वामित्ववृत्तिकाम् ॥१॥

इह स्वपरोपकाराय यथार्थाभिधानं बन्धस्वामित्वप्रकरणमारिप्सुराचार्यो मङ्गलादिप्रतिपादकं गाथासूत्रमिदमाह—

नमिऊण वद्धमाणं, 'गइयाईठाणदेसयं सिद्धं ।
गइयाइएसु 'वोच्छं, बंधस्सामित्तमोघेणं ॥१॥

(हारि०) व्याख्या-इह प्रथमार्द्धेन मङ्गलं द्वितीयार्द्धेनाभिधेयं साक्षादुक्तम् । प्रयोजनसंबन्धौ तु सामर्थ्यगम्यौ, इति गाथासमुदायार्थः । अवयवार्थस्त्वयम्–'वक्ष्ये' अभिधास्ये, किं तद् ? 'बन्धस्वामित्वं' मिथ्यात्वादिभिर्बन्धहेतुभिः कर्मपरमाणूनां जीवप्रदेशैः सह संबन्धो बन्धस्तस्य स्वामित्वमाधिपत्यं बन्धस्वामित्वं, जीवानामिति गम्यते । केषु ? 'गइयाइएसु' इति गत्यादिमार्गणास्थानेषु, केन ? 'ओघेन' सामान्येन, किं कृत्वा ? 'नत्वा' प्रणम्य, कम् ? 'वर्द्धमानं' स्वकुलसमृद्धिवृद्धिकारकत्वेन पितृभ्यां व्यवस्थापितैवंविधनामकं चरमतीर्थाधिपतिं, शेषजिनत्यागेन च वर्द्धमानग्रहणं वर्त्तमानतीर्थाधिपतित्वेन परमोपकारित्वात् । कीदृशम् ? गतिरादिर्येषां तानि गत्यादीनि तानि च तानि स्थानानि च गत्यादिस्थानानि तेषां देशकः प्रतिपादको गत्यादिस्थानदेशकस्तम् तथा सितं बद्धं ध्मातं भस्मसात्कृतमष्टप्रकारं कर्म येन स सिद्धस्तम् । इति गाथार्थः ॥१॥

गत्यादीन्येवाह—

गइ इंदिए य काए, जोए वेए कसाय नाणे य ।
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सण्णि आहारे ॥२॥

---

१ "गइयाइट्ठा०" इत्यपि पाठः । २ "वुच्छं" इत्यपि ।

एवेति युक्तस्तासां चरमसमये व्यवच्छेदः । आनुपूर्वीनाम्नां चतुर्णामपि क्षेत्रविपाकित्वाद्भवान्तरापान्तरालगतावेवोदयस्तेन भवस्थस्य नास्ति तदुदयः । तदभावाच्चायोगिद्विचरमसमये मनुजानुपूर्व्या अपि सत्ताव्यवच्छेदः । ततश्च तन्मतेनोल्लिङ्गनगाथादावेवं पाठो द्रष्टव्यः—**'तेवत्तरिं दुचरिमे बारसचरमे अजोगिणो खीणे'** इति । तथा—**"अणएज्जनिमिणमणुयाणुपुव्विपज्जत्तय च नीयं च"** । तथा—**"मणुयाऊ मणुयगइ य बोद्धव्वा"** । तथा—**"एया बारस पयडी अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना"** इति । तथा चेहाप्युदयाधिकारे द्वादशानामयोगिन्युदय उक्तः **'बारस उदये अजोगंता'** ॥५३॥५४॥

॥ इति सत्ताधिकारः ॥

•

तदेवं भगवता क्रमेण गुणस्थानान्यारोहता संपादितं कर्मप्रकृतिबन्धोदयोदीरणासत्ताव्यवच्छेदाख्यं गुणमभिष्टुत्य स्तवकारः सर्वकर्मबन्धादिव्यवच्छेदोद्भवं भगवतो निरतिशयं गुणं दर्शयन्नात्मनः प्रशस्ताध्यवसायप्रवृत्तिहेतुं प्रार्थनाविशेषमाह—

सो मे तिहुयणमहिओ, सिद्धो बुद्धो निरंजणो निच्चो ।
दिसउ वरनाण[1]लंभं, दंसणसुद्धिं समाहिं च ॥५५॥

॥ कर्मस्तवः समाप्तः ॥

•

'सः' भगवानेवमात्मनः संपादितगुणातिशयः **'मे'** मह्यं दिशतु ज्ञानलाभादिकमिति संबन्धः । त्रिभुवनेन देवमनुजासुरलोकत्रयलक्षणेन महितः पूजितः, **'सिद्धः'** निष्ठिताशेषप्रयोजनः, **'बुद्धः'** समस्तवस्तुविषयकेवलबोधभाक्, **'निरञ्जनः'** निर्गताशेषक्लिष्टकर्मप्रक्षणः, **'नित्यः'** ध्रुवः साद्यनिधनं कालं तत्पर्यायापरित्यागी **'दिशतु'** ददातु वरमुत्तमं ज्ञानं सम्यग्ज्ञानरूपं मतिज्ञानादिकेवलज्ञानान्तं तस्य लाभमप्राप्तप्राप्तिलक्षणम्, तथा दर्शनं सम्यक्त्वं तस्य शुद्धिं दर्शनमोहनीयकर्मापगमकृतं वैमल्यम्, तथा **'समाधिं'** चारित्रविशुद्धात्मकमिति ॥५५॥

स्मृत्यनुसारेण मया, यद्गदितमिहोनमधिकमागमतः । तत्क्षन्तव्यं [2]श्रुतशु-द्धबुद्धिभिः शोधनीयं च ॥१॥
इति श्वेतपटाचा[3]र्य—गोविन्दगणिना कृता । कर्मस्तवस्य टीकेयं, देवनागगुरोर्गिरा ॥२॥
अनुष्टुप्छन्दसां प्रायः, संकलय्यानुवर्णितम् । सहस्रमेकं श्लोकानां, नवत्युत्तरमेव च ॥३॥

॥ इति श्वेतपटाचार्यश्रीमद्गोविन्दगणिकृता कर्मस्तवटीका समाप्ता ॥

---

१ "लाभं" इत्यपि पाठः । २ "सर्व, सुबु—" इत्यपि । ३ "र्यं श्रीगोविन्देन निर्मिता" इत्यपि पाठ· ॥

समाप्तोऽयं सटीकः कर्मस्तवाख्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः

॥ ॐ ह्रीँ अर्हँ श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ न्यायाम्भोनिधि–प्रतिभाप्रतिकृति–श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

॥ सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

॥ कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः ।

श्रीमद्धरिभद्रसूरिविरचितव्याख्ययोपेतः ।



गत्यादिमार्गणास्थान-बन्धस्वामित्वदेशकम् ।
नत्वा वीरं जिनं वक्ष्ये, बन्धस्वामित्ववृत्तिकाम् ॥१॥

इह स्वपरोपकाराय यथार्थाभिधानं बन्धस्वामित्वप्रकरणमारिप्सुराचार्यो मङ्गलादिप्रतिपादकं गाथासूत्रमिदमाह—

नमिऊण वद्धमाणं, [1]गइयाईठाणदेसयं सिद्धं ।
गइयाइएसु [2]वोच्छं, बंधस्सामित्तमोघेणं ॥१॥

(हारि०) व्याख्या-इह प्रथमार्द्धेन मङ्गलं द्वितीयार्द्धेनाभिधेयं साक्षादुक्तम् । प्रयोजनसंबन्धौ तु सामर्थ्यगम्यौ, इति गाथासमुदायार्थः । अवयवार्थस्त्वयम्–'वक्ष्ये' अभिधास्ये, किं तद् ? 'बन्धस्वामित्वं' मिथ्यात्वादिभिर्बन्धहेतुभिः कर्मपरमाणूनां जीवप्रदेशैः सह संबन्धो बन्धस्तस्य स्वामित्वमाधिपत्यं बन्धस्वामित्वं, जीवानामिति गम्यते । केषु ? 'गइयाइएसु' इति गत्यादिमार्गणास्थानेषु, केन ? 'ओघेन' सामान्येन, किं कृत्वा ? 'नत्वा' प्रणम्य, कम् ? 'वर्द्धमानं' स्वकुलसमृद्धिवृद्धिकारकत्वेन पितृभ्यां व्यवस्थापितैवंविधनामकं चरमतीर्थाधिपतिं, शेषजिनत्यागेन च वर्द्धमानग्रहणं वर्त्तमानतीर्थाधिपतित्वेन परमोपकारित्वात् । कीदृशम् ? गतिरादिर्येषां तानि गत्यादीनि तानि च तानि स्थानानि च गत्यादिस्थानानि तेषां देशकः प्रतिपादको गत्यादिस्थानदेशकस्तम् तथा सितं बद्धं ध्मातं भस्मसात्कृतमष्टप्रकारं कर्म येन स सिद्धस्तम् । इति गाथार्थः ॥१॥

गत्यादीन्येवाह—

गइ इंदिए य काए, जोए वेए कसाय नाणे य ।
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सण्णि आहारे ॥२॥

१ "गइयाइट्ठा०" इत्यपि पाठः । २ "वुच्छं" इत्यपि ।

(हारि०)व्याख्या–तत्र **'गतयो'** नरकगत्याद्याश्चतस्रः। **'इन्द्रियाणि'** स्पर्शनादीनि पञ्च। **'कायाः'** पृथिव्यादयः षट्। **'योगाः'** सत्यमनःप्रभृतयः पञ्चदश। **'वेदाः'** स्त्रीवेदादयस्त्रयः। **'कषायाः'** क्रोधादयश्चत्वारः **'ज्ञानानि'** मतिज्ञानादीनि पञ्च । इहोपलक्षणत्वेन विपक्षस्यापि संग्रहादज्ञानान्यपि मत्यज्ञानादीनि त्रीणि ग्राह्याणि। एवमुत्तरत्रापि क्वाप्युपलक्षणव्याख्यानं द्रष्टव्यम्। ननु ज्ञाने प्रस्तुते उपलक्षणत्वेन किमर्थमज्ञानत्रयग्रहणं कृतम् ?, सत्यं, सौम्य ! चतुर्दशमार्गणास्थानेषु प्रत्येकं सर्वेषां सांरिकसत्त्वसंग्रहार्थम्। तथा **'संयमः'** सामायिकादिः पञ्चप्रकारः। उपलक्षणत्वाद्देशसंयमासंयमौ च, इत्येते सप्तात्रापि ग्राह्याः। **'दर्शनानि'** चक्षुर्दर्शनादीनि चत्वारि। **'लेश्याः'** कृष्णलेश्याद्याः षट्। भवपदेन भव्याभव्यौ द्वौ ग्राह्यौ। **'सम्यक्त्वानि'** वेदकादीनि त्रीणि। संज्ञिपदेन संज्ञ्यसंज्ञिनौ द्वौ। आहारकपदेन आहारकानाहारकौ द्वौ गृहीतौ। इति द्वारगाथासमासार्थः ॥२॥

इह यद्यपि गत्यादिषु बन्धस्वामित्वं वक्ष्यामीति प्रागुक्तं तथाऽपि न तद्गुणस्थानकनिरपेक्षं वक्ष्यते। गुणस्थानकानामपि बन्धस्वामित्ववद्गत्याद्याश्रितत्वादिति गुणस्थानकानि। तथा गत्याद्याश्रितत्वेनैव सुरनिरयनरतिरश्चां पर्याप्तापर्याप्तकजीवस्थानयोरपि बन्धस्वामित्वस्य वक्ष्यमाणत्वादिति जीवस्थानानि च गतिषु दर्शयन्नाह—

गुणठाणा सुरनिरए, चउ पण [1]तिरिएसु चउदस नरेसु।
जीवट्ठाणा तिरिए, चउदस सेसेसु [2]दुग दुगं जाण ॥३॥ गीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या–इह यथासंभवं सर्वत्र लिङ्गव्यत्ययविभक्तिलोपादिकं प्राकृतत्वाद्द्रष्टव्यम्। ततश्च गुणस्थानकानि–"**मिच्छद्दिट्ठी सासा-यणे य तह सम्ममिच्छिद्दिट्ठी य । अविरयसम्मद्दिट्ठी, विरयाविरए पमत्ते य ॥१॥ तत्तो य अप्पमत्ते, नियट्टि अनियट्टिबायरे सुहुमे । उवसंतखीणमोहे, होइ सजोगी अजोगी य ॥२॥**" इति नामकानि। एतानि च क्व कियन्ति भवन्ति ? इत्याह–सुरनारकयोश्चत्वारि प्रत्येकमाद्यानि जानीहि, इति संबन्धः। तथा पञ्च तिर्यक्षु आद्यान्येव। तथा चतुर्दश नरेषु। इति योजितानि चतसृष्वपि गतिषु गुणस्थानकानि, सम्प्रति तास्वेव जीवस्थानानि योजयन्नाह–जीवस्थानानि–"**सुहुमा बायर बेइं-दिया य तेइंदिया य चउरिंदी । अस्सण्णी सण्णी खलु, चउदस पज्जत्त अपजत्ता ॥१॥**" इत्येवंरूपाणि। एतानि च केषु कियन्ति भवन्ति ? इत्याह तिर्यक्षु चतुर्दश। **'शेषेषु'** सुरनरनारकेषु द्विकं द्विकं जीवस्थानयोरिति शेषः । पर्याप्तापर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं **'जानीहि'** अवबुध्यस्वेति। ननु संमूर्च्छनजापर्याप्तलक्षणं नरेषु तृतीयमपि जीवस्थानकमस्ति तत्कथमत्र न गृहीतम् ?, इत्यत्रोच्यते–तिर्यग्ग्रहणेन तेषां ग्रहणादिति न दोषः। इति गाथार्थः ॥३॥

---

१ 'तिरिए चउद्दस नरेसु" इत्यपि पाठः। २ "जाण दुगं" (?) इत्यपि पाठः।

इह बन्धस्वामित्वं वक्ष्य इत्युक्तम्। बन्धश्च कर्मप्रकृतीनां भवति, अतः शिष्यहितार्थं त्रेऽनुक्ता अपि प्रथमं प्रकृतयः सर्वाः प्ररूप्यन्ते, [1]ताश्चैताः–"दसण १ नाणावरण २ न्तराय ३ मोहा ४ ऽऽउ ५ गोय ६ वेयणियं ७। नामं ८ च नव १ पण २ पण ऽट्ठवीस ४ चउ ५ दु ६ दु ७ बियाल ८ विहं ॥१॥ नयणेयरोहिकेवल दंसणआ-रणयं [2]भवे चउहा। निद्दापयलाहिं छहा, निद्दाइदुरुत्तथीणद्धी ॥२॥ नाणावरणं मइसुयओहिमणोनाणकेवलावरणं। विग्घं दाणे लाभे, भोगुवभोगेसु विरिए य ॥३॥ सोलस कसाय नव नोकसाय दंसणतिगं [3]च मोहणियं। नरयतिरिनरसुराऊ, नीउच्चं सायमस्सायं ॥४॥ गइ १ जाइ २ तणु ३ उवंगा ४, बंधण ५ संघाय-णाणि ६ संघयणा ७। संठाण ८ वण्ण ९ गंध १० रस ११ फास १२ अणुपुव्वि १४ विहगगई १४ ॥५॥ पिंडपयडित्ति चउदस, परघाउज्जोयआयवुस्सासं। अगु-रुलहुतित्थनिमिणोवघायमिइ अड पत्तेया ॥६॥ तसबायरपज्जत्तं, पत्तेय थिरं सुभं च सुभगं च। [4]सुसराऽऽएज्जजसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥७॥ थावरसुहुम अपज्ज, साहारणअथिरअसुभदुभगाणि। दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥८॥ तसचउ थिरछक्कं अथिरछक्क सुहुमतिग थावरचउक्कं। सुभगतिगाइविभासा, पयडीण तयाइ संखाहिं ॥९॥ गइयाईण य कमसो, चउ १ पण २ पण ३ ति ४ पण ५ पंच ६ छ ७ छक्कं ८। पण ९ दुग १० पण ११ ऽट्ठ १२ चउ १३ दुग १४–मिय उत्तरभेय पणसट्ठी ॥१०॥ निरयतिरिनरसुरगई, इगबियतियचउपणिंदि जाईओ। ओरालियवेउव्वियआहारगतेयकम्मइया ॥११॥ पढमतिगुणुवंगा, बंधण संघायणा य तणुनामा। सुत्ते सत्तिविसेसो संघयणमिहट्ठिनिचउत्ति ॥१२॥ छव्हा संघयणं वज्जरिसभनाराय १ वज्जनारायं २। नाराय ३ मद्धनाराय ४ कीलिया ५ तह य छेवट्ठं ६ ॥१३॥ समचउरंसं १ नग्गोह २ साइ ३ खुज्जाणि ४ वामणं ५ हुंडं ६। संठाणा वण्णा किण्हनीललोहियहलिद्दसिया ॥१४॥ सुरभि १ दुरभी २ रसा पण,तित्त १ कडु २ कसाय ३ अंबिला ४ महुरा ५। फासा गुरु १ लहु २ मिउ ३ खर ४ सी ५ उण्ह ६ सिणिद्ध ७ रुक्ख ८ ऽट्ठ ॥१५॥ चउह गइव्वणु-पुव्वी, दुविहा य सुहासुहा विहायगई। गइअणुपुव्वी उ दुगं, तिगं तु तं चिय नियाउजुयं ॥१६॥ इय तेणउई संते बंधणपण्णरसगेण तिसयं वा। वण्णाइभेय १६ बंधण १५ संघाय ५ विणा उ सत्तट्ठी ॥१७॥ सा बंधुदए बंधणसंघाया निय-तणुग्गहणगहिया। वण्णाइविगप्पा वि हु, न य बंधे सम्ममीसाइ ॥१८॥ वेउ-

१ "ताश्चेमाः" इत्यपि पाठः। २ "हवइ" इत्यपि पाठः। ३ "ति" इत्यपि। ४ "सूसरआएज्जजसं" इत्यपि मुद्रितप्रतौ।

(हारि०) व्याख्या–तत्र **'गतयो'** नरकगत्याद्याश्चतस्रः। **'इन्द्रियाणि'** स्पर्शनादीनि पञ्च। **'कायाः'** पृथिव्यादयः षट्। **'योगाः'** सत्यमनःप्रभृतयः पञ्चदश। **'वेदाः'** स्त्रीवेदादयस्त्रयः। **'कषायाः'** क्रोधादयश्चत्वारः **'ज्ञानानि'** मतिज्ञानादीनि पञ्च। इहोपलक्षणत्वेन विपक्षस्यापि संग्रहादज्ञानान्यपि मत्यज्ञानादीनि त्रीणि ग्राह्याणि। एवमुत्तरत्रापि क्वाप्युपलक्षणव्याख्यानं द्रष्टव्यम्। ननु ज्ञाने प्रस्तुते उपलक्षणत्वेन किमर्थमज्ञानत्रयग्रहणं कृतम्?, सत्यं, सौम्य! चतुर्दशमार्गणास्थानेषु प्रत्येकं सर्वेषां सांरिकसत्त्वसंग्रहार्थम्। तथा **'संयमः'** सामायिकादिः पञ्चप्रकारः। उपलक्षणत्वाद्देशसंयमासंयमौ च, इत्येते सप्तात्रापि ग्राह्याः। **'दर्शनानि'** चक्षुर्दर्शनादीनि चत्वारि। **'लेश्याः'** कृष्णलेश्याद्याः षट्। भवपदेन भव्याभव्यौ द्वौ ग्राह्यौ। **'सम्यक्त्वानि'** वेदकादीनि त्रीणि। संज्ञिपदेन संज्ञ्यसंज्ञिनौ द्वौ। आहारकपदेन आहारकानाहारकौ द्वौ गृहीतौ। इति द्वारगाथासमासार्थः ॥२॥

इह यद्यपि गत्यादिषु बन्धस्वामित्वं वक्ष्यामीति प्रागुक्तं तथाऽपि न तद्गुणस्थानकनिरपेक्षं वक्ष्यते। गुणस्थानकानामपि बन्धस्वामित्ववद्गत्याद्याश्रितत्वादिति गुणस्थानकानि। तथा गत्याद्याश्रितत्वेनैव सुरनिरयनरतिरश्चां पर्याप्तापर्याप्तकजीवस्थानयोरपि बन्धस्वामित्वस्य वक्ष्यमाणत्वादिति जीवस्थानानि च गतिषु दर्शयन्नाह—

गुणठाणा सुरनिरए, चउ पण [1]तिरिएसु चउदस नरेसु।
जीवट्ठाणा तिरिए, चउदस सेसेसु [2]दुग दुगं जाण ॥३॥ गीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या–इह यथासंभवं सर्वत्र लिङ्गव्यत्ययविभक्तिलोपादिकं प्राकृतत्वाद्द्रष्टव्यम्। ततश्च गुणस्थानकानि–"**मिच्छद्दिट्ठी सासायणे य तह सम्ममिच्छदिट्ठी य। अविरयसम्मदिट्ठी, विरयाविरए पमत्ते य ॥१॥ तत्तो य अप्पमत्ते, नियट्टि अनियट्टिबायरे सुहुमे। उवसंतखीणमोहे, होइ सजोगी अजोगी य ॥२॥**" इति नामकानि। एतानि च क्व कियन्ति भवन्ति? इत्याह–सुरनारकयोश्चत्वारि प्रत्येकमाद्यानि जानीहि, इति संबन्धः। तथा पञ्च तिर्यक्षु आद्यान्येव। तथा चतुर्दश नरेषु। इति योजितानि चतसृष्वपि गतिषु गुणस्थानकानि, सम्प्रति तास्वेव जीवस्थानानि योजयन्नाह–जीवस्थानानि–"**सुहुमा बायर बेइं-दिया य तेइंदिया य चउरिंदी। अस्सण्णी सण्णी खलु, चउदस पज्जत्त अपजत्ता ॥१॥**" इत्येवंरूपाणि। एतानि च केषु कियन्ति भवन्ति? इत्याह तिर्यक्षु चतुर्दश। **'शेषेषु'** सुरनरनारकेषु द्विकं द्विकं जीवस्थानयोरिति शेषः। पर्याप्तापर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं **'जानीहि'** अवबुध्यस्वेति। ननु संमूर्च्छनजापर्याप्तलक्षणं नरेषु तृतीयमपि जीवस्थानकमस्ति तत्कथमत्र न गृहीतम्?, इत्यत्रोच्यते–तिर्यग्ग्रहणेन तेषां ग्रहणादिति न दोषः। इति गाथार्थः ॥३॥

---

१ 'तिरिए चउद्दस नरेसु" इत्यपि पाठः। २ "जाण दुगं" (?) इत्यपि पाठः।

इह बन्धस्वामित्वं वक्ष्य इत्युक्तम् । बन्धश्च कर्मप्रकृतीनां भवति, अतः शिष्यहितार्थं सूत्रेऽनुक्ता अपि प्रथमं प्रकृतयः सर्वाः प्ररूप्यन्ते, [1]ताश्चैताः—"दसण १ नाणावरण २ ऽन्तराय ३ मोहा ४ ऽऽउ ५ गोय ६ वेयणियं ७ । नामं ८ च नव १ पण २ पण ३ ऽट्ठवीस ४ चउ ५ दु ६ दु ७ बियाल ८ विहं ॥१॥ नयणेयरोहिकेवल दंसणआवरणयं [2]भवे चउहा । निद्दापयलाहिं छहा, निद्दाइदुरुत्तथीणद्धी ॥२॥ नाणावरणं मइसुयओहिमणोनाणकेवलावरणं । विग्घं दाणे लाभे, भोगुवभोगेसु विरिए य ॥३॥ सोलस कसाय नव नोकसाय दंसणतिगं [3]च मोहणियं । नरयतिरिनरसुराऊ, नीउच्चं सायमस्सायं ॥४॥ गइ १ जाइ २ तणु ३ उवंगा ४, बंधण ५ संघायणाणि ६ संघयणा ७ । संठाण ८ वण्ण ९ गंध १० रस ११ फास १२ अणुपुव्वि १४ विहगगई १४ ॥५॥ पिंडपयडित्ति चउदस, परघाउज्जोयआयवुस्सासं । अगुरुलहुतित्थनिमिणोवघायमिइ अट्ठ पत्तेया ॥६॥ तसबायरपज्जत्तं, पत्तेय थिरं सुभं च सुभगं च । [4]सुसराऽऽएज्जजसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥७॥ थावरसुहुम अपज्ज, साहारणअथिरअसुभदुभगाणि । दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥८॥ तसचउ थिरछक्कं अथिरछक्क सुहुमतिग थावरचउक्कं । सुभगतिगाइविभासा, पयडोण तयाइ सत्वाहिं ॥९॥ गइयाईण य कमसो, चउ १ पण २ पण ३ ति ४ पण ५ पंच ६ छ ७ छक्कं ८ । पण ९ दुग १० पण ११ ऽट्ठ १२ चउ १३ दुग १४–मिय उत्तरभेय पणसट्ठी ॥१०॥ निरयतिरिनरसुरगई, इगबियतियचउपणिंदिआईओ । ओरालियवेउव्वियआहारगतेयकम्मइया ॥११॥ पढमतिणुणुवंगा, बंधण संघायणा य तणुनामा । सुरो सत्तिविसेसो संघयणमिहट्ठिनिचउत्ति ॥१२॥ छद्धा संघयणं वज्जरिसभनाराय १ वज्जनारायं २ । नाराय ३ मद्धनाराय ४ कीलिया ५ तह य छेवट्ठं ६ ॥१३॥ समचउरंसं १ नग्गोह २ साइ ३ खुज्जाणि ४ वामणं ५ हुंडं ६ । संठाणा वण्णा किण्हनीललोहियहलिद्दसिया ॥१४॥ सुरभि १ दुरभी २ रसा पण, तित्त १ कडु २ कसाय ३ अंबिला ४ महुरा ५ । फासा गुरु १ लहु २ मिउ ३ खर ४ सी ५ उण्ह ६ सिणिद्ध ७ रुक्ख ८ ऽट्ठ ॥१५॥ चउह गइव्वणुपुव्वी, दुविहा य सुहासुहा विहायगई । गइअणुपुव्वी उ दुगं, तिगं तु तं चिय नियाउजुयं ॥१६॥ इय तेणउई संते बंधणपण्णरसगेण तिसयं वा । वण्णाइभेय १६ बंधण १५ संघाय ५ विणा उ सत्तट्ठी ॥१७॥ सा बंधुदए बंधणसंघाया नियतणुग्गहणगहिया । वण्णाइविगप्पा वि हु, न य बंधे सम्ममीसाइ ॥१८॥ वेउ-

१ "ताश्चेमाः" इत्यपि पाठः । २ "हवइ" इत्यपि पाठः । ३ "ति" इत्यपि । ४ "सूसरआएज्जजसं" इत्यपि मुद्रितप्रतौ ।

(हारि०)व्याख्या–तत्र 'गतयो' नरकगत्याद्याश्चतस्रः। 'इन्द्रियाणि' स्पर्शनादीनि पञ्च। 'कायाः' पृथिव्यादयः षट्। 'योगाः' सत्यमनःप्रभृतयः पञ्चदश। 'वेदाः' स्त्रीवेदादयस्त्रयः। 'कषायाः' क्रोधादयश्चत्वारः 'ज्ञानानि' मतिज्ञानादीनि पञ्च। इहोपलक्षणत्वेन विपक्षस्यापि संग्रहादज्ञानान्यपि मत्यज्ञानादीनि त्रीणि ग्राह्याणि। एवमुत्तरत्रापि क्वाप्युपलक्षणव्याख्यानं द्रष्टव्यम्। ननु ज्ञाने प्रस्तुते उपलक्षणत्वेन किमर्थमज्ञानत्रयग्रहणं कृतम्?, सत्यं, सौम्य! चतुर्दशमार्गणास्थानेषु प्रत्येकं सर्वेषां सारिकसत्त्वसंग्रहार्थम्। तथा 'संयमः' सामायिकादिः पञ्चप्रकारः। उपलक्षणत्वाद्देशसंयमासंयमौ च, इत्येते सप्तात्रापि ग्राह्याः। 'दर्शनानि' चक्षुर्दर्शनादीनि चत्वारि। 'लेश्याः' कृष्णलेश्याद्याः षट्। भवपदेन भव्याभव्यौ द्वौ ग्राह्यौ। 'सम्यक्त्वानि' वेदकादीनि त्रीणि। संज्ञिपदेन संज्ञ्यसंज्ञिनौ द्वौ। आहारकपदेन आहारकानाहारकौ द्वौ गृहीतौ। इति द्वारगाथासमासार्थः ॥२॥

इह यद्यपि गत्यादिषु बन्धस्वामित्वं वक्ष्यामीति प्रागुक्तं तथाऽपि न तद्गुणस्थानकनिरपेक्षं वक्ष्यते। गुणस्थानकानामपि बन्धस्वामित्ववद्गत्याद्याश्रितत्वादिति गुणस्थानकानि। तथा गत्याद्याश्रितत्वेनैव सुरनिरयनरतिरश्चां पर्याप्तापर्याप्तकजीवस्थानयोरपि बन्धस्वामित्वस्य वक्ष्यमाणत्वादिति जीवस्थानानि च गतिषु दर्शयन्नाह—

गुणठाणा सुरनिरए, चउ पण [1]तिरिएसु चउदस नरेसु।
जीवट्ठाणा तिरिए, चउदस सेसेसु [2]दुग दुगं जाण ॥३॥ गीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या–इह यथासंभवं सर्वत्र लिङ्गव्यत्ययविभक्तिलोपादिकं प्राकृतत्वाद्दृष्टव्यम्। ततश्च गुणस्थानकानि–"मिच्छ दिट्ठी सासा-यणे य तह सम्ममिच्छदिट्ठी य। अविरयसम्मदिट्ठी, विरयाविरए पमत्ते य ॥१॥ तत्तो य अप्पमत्ते, नियट्टि अनियट्टिबायरे सुहुमे। उवसंतखीणमोहे, होइ सजोगी अजोगी य ॥२॥" इति नामकानि। एतानि च क्व कियन्ति भवन्ति? इत्याह–सुरनारकयोश्चत्वारि प्रत्येकमाद्यानि जानीहि, इति संबन्धः। तथा पञ्च तिर्यक्षु आद्यान्येव। तथा चतुर्दश नरेषु। इति योजितानि चतसृष्वपि गतिषु गुणस्थानकानि, सम्प्रति तास्वेव जीवस्थानानि योजयन्नाह–जीवस्थानानि–"सुहुमा बायर बेइं-दिया य तेइंदिया य चउरिंदी। अस्सण्णी सण्णी खलु, चउदस पज्जत्त अपज्जत्ता ॥१॥" इत्येवंरूपाणि। एतानि च केषु कियन्ति भवन्ति? इत्याह तिर्यक्षु चतुर्दश। 'शेषेषु' सुरनरनारकेषु द्विकं द्विकं जीवस्थानयोरिति शेषः। पर्याप्तापर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं 'जानीहि' अवबुध्यस्वेति। ननु संमूर्च्छनजापर्याप्तलक्षणं नरेषु तृतीयमपि जीवस्थानकमस्ति तत्कथमत्र न गृहीतम्?, इत्यत्रोच्यते–तिर्यग्ग्रहणेन तेषां ग्रहणादिति न दोषः। इति गाथार्थः ॥३॥

---

१ 'तिरिए चउसग नरेसु" इत्यपि पाठः। २ "जाण दुगं" (?) इत्यपि पाठः।

इह बन्धस्वामित्वं वक्ष्य इत्युक्तम् । बन्धश्च कर्मप्रकृतीनां भवति, अतः शिष्यहितार्थं सूत्रेऽनुक्ता अपि प्रथमं प्रकृतयः सर्वाः प्ररूप्यन्ते, [1]ताश्चैताः–"दंसण १ नाणावरण २ ऽन्तराय ३ मोहा ४ ऽऽउ ५ गोय ६ वेयणियं ७ । नामं ८ च नव १ पण २ पण ३ ऽट्ठवीस ४ चउ ५ दु ६ दु ७ बियाल ८ विहं ॥१॥ नयणेयरोहिकेवल दंसणआवरणयं [2]भवे चउहा । निद्दापयलाहिं छहा, निद्दाइदुरुत्तथीणद्धी ॥२॥ नाणावरणं मइसुयओहिमणोनाणकेवलावरणं । विग्घं दाणे लाभे, भोगुवभोगेसु विरिए य ॥३॥ सोलस कसाय नव नोकसाय दंसणतिगं [3]च मोहणियं । नरयतिरिनरसुराऊ, नीउच्चं सायमस्सायं ॥४॥ गइ १ जाइ २ तणु ३ उवंगा ४, बंधण ५ सघायणाणि ६ संघयणा ७ । संठाण ८ वण्ण ९ गंध १० रस ११ फास १२ अणुपुव्वि १३ विहगगई १४ ॥५॥ पिंडपयडित्ति चउदस, परघाउज्जोयआयवुस्सासं । अगुरुलहुतित्थनिमिणोवघायमिइ अट्ठ पत्तेया ॥६॥ तसबायरपज्जत्तं, पत्तेय थिरं सुभं च सुभगं च । [4]सुसराऽऽएज्जजसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥७॥ थावरसुहुम अपज्ज, साहारणअथिरअसुभदुभगाणि । दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥८॥ तसचउ थिरछक्कं अथिरछक्क सुहुमतिग थावरचउक्कं । सुभगतिगाइविभासा, पयडीण तयाइ सव्वाहिं ॥९॥ गइयाईण य कमसो, चउ १ पण २ पण ३ ति ४ पण ५ पंच ६ छ ७ छक्कं ८ । पण ९ दुग १० पण ११ ऽट्ठ १२ चउ १३ दुग १४–मिय उत्तरभेय पणसट्ठी ॥१०॥ निरयतिरिनरसुरगई, इगबियतियचउपणिंदिजाईओ । ओरालियवेउव्वियआहारगतेयकम्मइया ॥११॥ पढमतिणुणुवंगा, बंधण संघायणा य तणुनामा । सुरो सत्तिविसेसो संघयणमिहट्ठिनिचउत्ति ॥१२॥ छद्धा संघयणं वज्जरिसभनाराय १ वज्जनारायं २ । नाराय ३ मद्धनाराय ४ कीलिया ५ तह य छेवट्ठं ६ ॥१३॥ समचउरंसं १ नग्गोह २ साइ ३ खुज्जाणि ४ वामणं ५ हुंडं ६ । संठाणा वण्णा किण्हनीललोहियहलिद्दसिया ॥१४॥ सुरभि १ दुरभी २ रसा पण,तित्त १ कडु २ कसाय ३ अंबिला ४ महुरा ५ । फासा गुरु १ लहु २ मिउ ३ खर ४ सी ५ उण्ह ६ सिणिद्ध ७ रुक्ख ८ ऽट्ठ ॥१५॥ चउह गइव्वणुपुव्वी, दुविहा य सुहासुहा विहायगई । गइअणुपुव्वी उ दुगं, तिगं तु तं चिय नियाउजुयं ॥१६॥ इय तेणउई संते बंधणपण्णरसगेण तिसयं वा । वण्णाइभेय १६ बंधण १५ संघाय ५ विणा उ सत्तट्ठी ॥१७॥ सा बंधुदए बंधणसंघाया नियतणुग्गहणगहिया । वण्णाइविगप्पा वि हु, न य बंधे सम्ममीसाइ ॥१८॥ वेउ-

१ "ताश्चेमाः" इत्यपि पाठः । २ "हवइ" इत्यपि पाठः । ३ "ति" इत्यपि । ४ "सूसरआएज्जजसं" इत्यपि मुद्रितप्रतौ ।

ऽवाहारोरालियाण सग ३ तेय ३ कम्म ३ जुत्ताणं । नव बंधणाणि इयरदुसहियाणं तिण्णि ३ तेसिं च ३ ॥१९॥" अस्या अयमर्थः—पूर्वगृहीतवैक्रियपुद्गलैः सह परस्परं गृह्यमाणान् वैक्रियपुद्गलानुदितेन येन कर्मणा बध्नात्यात्मा तद् वैक्रियवैक्रियबन्धनम् १ । एवं वैक्रियतैजसं २ वैक्रियकार्मणं ३ । आहारकाहारक ४ आहारकतैजस ५ आहारककार्मण ६ औदारिकौदारिक ७ औदारिकतैजस ८ औदारिककार्मण ९ वैक्रियतैजसकार्मण १० आहारकतैजसकार्मण ११ औदारिकतैजसकार्मण १२ [1]"तेसिं च' इति, तयोस्तैजसकार्मणयोः तैजसतैजस १३ तैजसकार्मण १४ कार्मणकार्मण १५ बन्धनानि । इति पञ्चदश बन्धनानि । वर्णादिविंशतेः शुभाशुभविभागोऽयम्—"नीलकसिणं दुगंधं, तित्तं कडुयं गुरुं खरं रुक्खं । सीयं च असुभनवगं, इक्कारसगं सुहं सेसं" इति प्ररूपिताः प्रकृतयः । आसां व्याख्यानं ग्रन्थान्तरादवसेयम्, गमनिकामात्रत्वात् प्रस्तुतप्रयासस्येति ॥

अथ वक्ष्यमाणार्थोपयोगि मिथ्यादृष्टि[2]सास्वादनगुणस्थानकव्यवच्छिन्नप्रकृतिसंख्यासूचकं गाथाद्वयमाह—

निरयतिगं मिच्छत्तं, नपुंस [3]इगविगलजाइआयावं ।
[4]छेवट्ठ थावरचऊ हुंडं चिय मिच्छदिट्ठिम्मि ॥४॥
थीणतिगित्थी अण तिरितिग [5]कुविहगई य नीयमुज्जोयं ।
[6]दूभगतिग पणुवीसा, मज्झिमसंठाणसंघयणा ॥५॥

(हारि०) व्याख्या—'निरयतिगं' इति, नरकत्रिकं नरकगति १ नरकानुपूर्वी २ नरकायुः ३ लक्षणम्, मिथ्यात्वं ४ नपुंसकवेदः ५, 'इगविगलजाइ' इति, एकेन्द्रियजातिः ६, द्वि ७ त्रि ८ चतुरिन्द्रिय ९ जातयश्च, आतपनाम १० सेवार्तसंहननम् ११, 'थावरचऊ' इति, स्थावरनाम १२ सूक्ष्मनाम १३ साधारणनाम १४ अपर्याप्तनाम १५ लक्षणं स्थावरचतुष्कम्, हुण्डसंस्थानं १६ चेति प्रकृतिषोडशकं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके बन्धं [7]प्रतीत्य व्यवच्छिन्नमिति ॥४॥ साम्प्रतं द्वितीयगाथा व्याख्यायते—'थीणतिगित्थी' इति, स्त्यानर्द्धित्रिकं स्त्यानर्द्धि १ निद्रानिद्रा २ प्रचलाप्रचला ३ लक्षणम्, स्त्रीवेदः ४ 'अण' इति, अनन्तानुबन्धि-क्रोध ५ मान ६ माया ७ लोभाः ८, 'तिरितिग' इति, तिर्यक्त्रिकं तिर्यग्गति ९ तिर्यगानुपूर्वी १० तिर्यगायु ११ लक्षणम्, 'कुविहगई य' इति, अशुभविहायोगतिश्च १२, नीचैर्गोत्रं १३ उद्योतनाम १४, 'दूभगतिग' इति, दुर्भगत्रिकं दुर्भगनाम १५ अनादेयनाम १६ दुःस्वरनाम १७ रूपम्,

१ " 'तेसिं च' इति, तयोस्तैजसकार्मणयोः" इति पाठो न दृश्यते जे० प्रतौ । २ केषुचित्पुस्तकेषु "०सासादन०" इत्यपि पाठः । ३ "इगि०" इत्यपि पाठः ४ "सेवट्ठ०" इति जे० प्रतौ । ५ "कुविहगगई" पाठः । ६ "दुभगतिगं" इत्यपि पाठः । ७ "प्रति व्यवच्छिन्नमिति" इत्यपि पाठः ॥

'मज्झिमसंठाणसंघयणा' इति, मध्यमसंस्थानानि चत्वारि न्यग्रोधपरिमण्डलं १८ सादि १९ वामनं २० कुब्जं २१ चेति, संहननानि चत्वारि ऋषभनाराचं २२ नाराचं २३ अर्द्धनाराचं २४ कीलिका २५ चेति पञ्चविंशतिप्रकृतयः। आसां सासादनगुणस्थाने बन्धमाश्रित्य व्यवच्छेद इति शेषः। सासादनगुणस्थानकस्वरूपं त्विदम् "**उवसमसम्मत्ताओ, चयओ मिच्छं अपाव-माणस्स सासायणसम्मत्तं तयंतरालम्मि छावलियं ॥१॥**" इति गाथाद्वयार्थः ॥५॥

व्याख्यातं वक्ष्यमाणार्थोपयोगि गाथाद्वयम्। अथ प्रस्तुतमभिधीयते, तत्र मार्गणास्था-नानां प्रथमं गतिद्वारमाश्रित्य नरकगतावोघबन्धः प्रतिपाद्यते—

थावरचउजाई चउ, विउवाहारदुग सुरनिरतिगाणि ।
आयवजुयाऽऽहिँ ऊणं, एगहियसयं नरयबंधे ॥६॥

(हारि०) व्याख्या—**'थावरचउ'** इति, स्थावरनाम १ सूक्ष्मनाम २ साधारणनाम ३ अप-र्याप्तनामेति ४ चत्वारि **'जाई चउ'** इति, एक ५ द्वि ६ त्रि ७ चतुरिन्द्रिय ८ जातयश्चतस्रः, **'विउवाहारदुग'** इति, द्विकशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धाद्वैक्रियशरीर ९ तदङ्गोपाङ्गद्विकम् १०, आहारकशरीर ११ तदङ्गोपाङ्गद्विकम् १२, **'सुरनिरतिगाणि'** इति, त्रिकशब्दस्य प्रत्येकम-भिसंबन्धात् सुरगति ११ सुरानुपूर्वी १४ सुरायुष्कत्रिकम्, १५, नरकगति १६ नरकानुपूर्वी १७ नरकायुष्कत्रिकम् १८ एषां तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः। तानि किंविशिष्टानि ? इत्याह—**'आयवजुय'** इति, विभक्तिलोपादातपनाम १९ युतानि कर्माणीति शेषः। **'आहिँ ऊणं'** इति लिङ्गव्यत्य-येनैभिरूनमेकाधिकशतं नरकबन्धे। अयमत्राभिप्रायः—एकोनविंशतिं कर्मप्रकृतीर्बन्धाधिकृतकर्म-प्रकृतिविंशत्युत्तरशतमध्यान्मुक्त्वा ततः शेषस्यैकोत्तरशतस्य १०१ नरकगतावोघबन्धः। **'आय-वजुयाणि मोत्तुं'**[१] इति पाठेऽयमर्थः—प्राक्तनकर्माणि आतपयुतानि मुक्त्वा, शेषं तथैव। इति गाथार्थः ॥६॥

इति सामान्येन नरकगतौ बन्धमभिधाय साम्प्रतं तस्यामेव मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानक-चतुष्टयविशिष्टं तं प्रतिपिपादयिषुराह—

तित्थोणं सय मिच्छा, साणा नपुहुंड[१]छेयमिच्छोणं ।
मीसा नराउपणुवीसोणं सम्मा नराउतित्थजुयं ॥७॥ गीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या—अत्र साध्याहारा योजना। ततः प्रागुक्तमेकोत्तरशतं, **'तित्थोणं'** इति, तीर्थकरनामोनं शतं भवति तन्मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति १००। एतच्च शतं नपुंसकवेद १ हुण्डसंस्थान २ छेदस्पृष्टसंहनन ३ मिथ्यात्वो ४ नं सत् षण्णवतिर्भवति, एतां सासादना बध्नन्ति ९६। एषा च षण्णवतिः, नरायुश्च प्रागुक्तपञ्चविंशतीश्च, नरायुःपञ्चविंशती, ताभ्यामूना

१ "०छेव०" इत्यपि पाठः।

नरायुःपञ्चविंशत्यूना सती सप्ततिर्भवति, तां मिश्रा बध्नन्ति '७० इति । एतां च सप्ततिं नरायुस्तीर्थकरनामयुतां सम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ७२ इति । अयं च बन्धो रत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभाभिधानप्रथमनरकपृथिवीत्रये द्रष्टव्यः, पङ्कप्रभादिषु विशेषबन्धाभिधानात् । इति गाथार्थः ।।७।।

अथ तमेव पङ्कप्रभादिनरकपृथिवीत्रये गाथाप्रथमपादेन तथा सप्तमनरकपृथिव्यां पादोनगाथाद्वयेनाह—

पंकाइसु तित्थोणं, नराउहीणं सयं तु सत्तमिए ।
मणुदुगउच्चेहिँ विणा, मिच्छा बंधंति [1]छण्णउई ।।८।।
हुंडाईचउरहियं, साणा तिरियाउणा य [2]इगनउइं ।
इगुणपणुवीसरहिया, सनरदुगुच्चा सयरि मीसे ।।९।।

(हारि०) व्याख्या—सामान्यं गुणस्थानचतुष्टयवर्त्ति च प्राक्तनप्रथमनरकपृथिवीत्रयोक्तं बन्धकदम्बकं यथासंभवं तीर्थकरनामोनं 'पंकाइसु' इति, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभासु मन्तव्यमिति शेषः । अत्र पृथिवीत्रये तीर्थकरनामनिमित्तसम्यक्त्वसद्भावेऽपि क्षेत्रमाहात्म्येन तथाविधाध्यवसायाभावात्तीर्थकरनामकर्मबन्धो नास्तीति । ततः सामान्येन शतं १००, मिथ्यादृशां च शतं १००,सासादनानां षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, अविरतसम्यग्दृष्टीनामेकसप्ततिः ७१, इति । इह तु सामान्यपदेऽविरतगुणस्थानके च तीर्थकरनामहीनतोक्ता, मिथ्यादृष्ट्यादिषु त्रिषु पुनस्तस्य प्रागेवापनीतत्वादिति भावः । 'नराउहीणं सयं तु सत्तमिए' इत्यादि पङ्कप्रभादिनरकपृथिवीत्रये सामान्येन यच्छतमुक्तं तदेव नरायुष्कहीनं पुनः सप्तम्यामोघबन्धः ९९ । तुशब्दः [3]पुनः योजित एवेति । अथ तस्यामेव गुणस्थानकेषु तन्निरूपयन्नाह— मणुदुग' इत्यादि मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैर्विना षण्णवतिर्भवति, तां मिथ्यादृशो बध्नन्ति ९६ । इति ।।८।। अथ द्वितीयगाथा व्याख्यायते—'हुंडाईचउरहियं' इति, हुण्डसंस्थानच्छेदस्पृष्टसंहनननपुंसकवेदमिथ्यात्वचतुष्करहितम् तथा 'तिरियाउणा य' इति, तिर्यगायुषा च रहितां तां षण्णवतिं कृत्वेति शेषः, चशब्दाद्रहितशब्दः प्राक् समस्तोऽप्यत्र योज्यते । तत एकनवतिं ९१ सासादना बध्नन्तीति प्राक्तनेन संबन्धः । तथा 'इगुणपणुवीसरहिया' इति, एकेन तिर्यगायुषाऽनन्तरापनीतेनोना रहितैकोना सा चासौ पञ्चविंशतिश्च पूर्वोक्ता तया रहिता न्यूना एकोनपञ्चविंशतिरहिता । तथा 'सनरदुगुच्चा' इति, सह नरद्विकोच्चैर्वर्तते सनरद्विकोच्चा, नरगतिनरानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैः सहितेत्यर्थः । [4]यका एकनवतिः । सा सप्ततिर्भवति, सा च मिश्रे ७० । इह सप्तम्यां नरायुस्तावन्न बध्यत एव । तद्बन्धाभावेऽपि मिश्रगुणस्थानकेऽविर-

१ "छन्नउई" इत्यपि पाठः । २ "इगनउई" इत्यपि पाठः । ३ "पुनरर्थे" इत्यपि, "पुनरर्थो" इत्यपि । ४ "यका" इति स्वार्थिकप्रत्ययान्तं रूपम् , "या" इत्यर्थः ।

तगुणस्थानके च नरगतिनरानुपूर्वीद्वयं बध्यते, तस्यान्यदाऽपि बन्धात् । अयमर्थः—नरगति-नरानुपूर्व्योर्नरायुषा सह नावश्यं प्रतिबन्धः, यदुत यत्रायुर्बध्यते तत्रैव गत्यानुपूर्वीद्वयमपि, किन्तु आयुरेकदैव बध्यते, गत्यानुपूर्वीद्वयमन्यदाऽपि बध्यत इति । तथा मिथ्यात्व[1]सासादनाभ्यां द्वयं न बध्यते, कलुषाध्यवसायत्वादिति । अथ कथमत्राविरतगुणस्थानके बन्धस्वामित्वं पृथग् नोक्तम् ?, सत्यं, मिश्रस्येवाविरतस्यापि सप्ततिर्द्द श्या, न्यूनाधिकप्रकृतेरभावात् । इति गाथाद्वयार्थः ॥९॥

एवं नरकगतौ बन्धस्वामित्वमभिधायाथ तिर्यग्गतौ सामान्येन गुणस्थानकविशिष्टं च तदाह—

तित्थाहारदुगूणा, तिरिया बंधंति सव्वपयडीओ ।
पज्जत्ता तह मिच्छा, [2]साणा उण सोलसविहीणा ॥१०॥

(हारि०) व्याख्या—तीर्थकराहारकद्विकोनाः सर्वप्रकृतीः पर्याप्तास्तिर्यञ्चः प्रक्रमात्सामान्येन बध्नन्तीति ११७ । अत्र च तिरश्चां सत्यपि सम्यक्त्वे भवप्रत्ययादेव तथाविधाध्यवसायाभावात्तीर्थकरनाम्नः संपूर्णसंयमाभावादाहारकद्विकस्य च बन्धो नास्तीति हृदयम् । 'तह मिच्छा' इति तथा मिथ्यादृशोऽपि पर्याप्ता इति योगः । सप्तदशोत्तरशतसंख्याः ११७ प्रकृतीर्बध्नन्ति । 'साणा उण' इति सासादनाः पुनः षोडशेन पूर्वोक्तेन विहीनाः षोडशविहीनाः १०१ ता बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥१०॥

तथा—

नरतिगसुराउउसभं, उरलदुगं [3]मोत्तु पणवीसं च ।
अणुहत्तरिं तु मीसा, सुराउणा सत्तरी सम्मा ॥११॥

(हारि०) व्याख्या—'नरतिग' इति, नरगतिनरानुपूर्वीनरायुस्त्रिकं सुरायुः 'उसभं' इति, वज्रर्षभनाराचं, एषां समाहारद्वन्द्वस्तत् । 'उरलदुगं' इति औदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गद्विकमिति सप्तप्रकृतीः पञ्चविंशतिं च प्रागुक्तां मुक्त्वा एकोत्तरशतमध्यादिति शेषः । शेषामेकोनसप्ततिं मिश्रा बध्नन्ति ६९ । एषैव सुरायुषा सहिता सप्ततिर्भवति ७०, तां 'सम्मा' इति, अविरतसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥११॥

तथा—

[4]बीयकसायूणा देस अपज्जत्ता सयं नवग्गं तु ।
मोत्तूणमोघबन्धा, निरसुरआउं विउव्विछक्कं च ॥१२॥ गीतिरियम्

---

१ "सासादनयोः तद्द्वयं" इत्यपि । २ "सासा उण सोलसविहूणा" इत्यपि । ३ "मुत्तुं" इत्यपि पाठः ।
४ "बीयकसायविहूणा देसमपज्जत्तसयनवग्गं तु मुत्तूण" । इत्यपि पाठः ।

नरायुःपञ्चविंशत्यूना सती सप्ततिर्भवति, तां मिश्रा बध्नन्ति '७० इति । एतां च सप्ततिं नरायुस्तीर्थकरनामयुतां सम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ७२ इति। अयं च बन्धो रत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभाभिधानप्रथमनरकपृथिवीत्रये द्रष्टव्यः, पङ्कप्रभादिषु विशेषबन्धाभिधानात् । इति गाथार्थः ॥७॥

अथ तमेव पङ्कप्रभादिनरकपृथिवीत्रये गाथाप्रथमपादेन तथा सप्तमनरकपृथिव्यां पादोनगाथाद्वयेनाह—

पंकाइसु तित्थोणं, नराउहीणं सयं तु सत्तमिए ।
मणुदुगउच्चेहिँ विणा, मिच्छा बंधंति [1]छण्णउइं ॥८॥
हुंडाईचउरहियं, साणा तिरियाउणा य [2]इगनउइं ।
इगुणपणुवीसरहिया, सनरदुगुच्चा सयरि मीसे ॥९॥

(हारि०) व्याख्या–सामान्यं गुणस्थानचतुष्टयवर्त्ति च प्राक्तनप्रथमनरकपृथिवीत्रयोक्तं बन्धकदम्बकं यथासंभवं तीर्थकरनामोनं 'पंकाइसु' इति, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभासु मन्तव्यमिति शेषः । अत्र पृथिवीत्रये तीर्थकरनामनिमित्तसम्यक्त्वसद्भावेऽपि क्षेत्रमाहात्म्येन तथाविधाध्यवसायाभावात्तीर्थकरनामकर्मबन्धो नास्तीति । ततः सामान्येन शतं १००, मिथ्यादृशां च शतं १००,सासादनानां षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, अविरतसम्यग्दृष्टीनामेकसप्ततिः ७१, इति । इह तु सामान्यपदेऽविरतगुणस्थानके च तीर्थकरनामहीनतोक्ता, मिथ्यादृष्ट्यादिषु त्रिषु पुनस्तस्य प्रागेवापनीतत्वादिति भावः । 'नराउहीणं सयं तु सत्तमिए' इत्यादि पङ्कप्रभादिनरकपृथिवीत्रये सामान्येन यच्छतमुक्तं तदेव नरायुष्कहीनं पुनः सप्तम्यामोघबन्धः ९९ । तुशब्दः [3]पुनः योजित एवेति । अथ तस्यामेव गुणस्थानकेषु तन्निरूपयन्नाह– मणुदुग' इत्यादि मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैर्विना षण्णवतिर्भवति, तां मिथ्यादृशो बध्नन्ति ९६ । इति ॥८॥ अथ द्वितीयगाथा व्याख्यायते–'हुंडाईचउरहियं' इति, हुण्डसंस्थानच्छेदस्पृष्टसंहनननपुंसकवेदमिथ्यात्वचतुष्करहितम् तथा 'तिरियाउणा य' इति, तिर्यगायुषा च रहितां तां षण्णवतिं कृत्वेति शेषः, चशब्दाद्रहितशब्दः प्राक् समस्तोऽप्यत्र योज्यते । तत एकनवतिं ९१ सासादना बध्नन्तीति प्राक्तनेन संबन्धः । तथा 'इगुणपणुवीसरहिया' इति, एकेन तिर्यगायुषाऽनन्तरापनीतेनोना रहितैकोना सा चासौ पञ्चविंशतिश्च पूर्वोक्ता तया रहिता न्यूना एकोनपञ्चविंशतिरहिता । तथा 'सनरदुगुच्चा' इति, सह नरद्विकोच्चैर्वर्तते सनरद्विकोच्चा, नरगतिनरानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैः सहितेत्यर्थः । [4]यका एकनवतिः । सा सप्ततिर्भवति, सा च मिश्रे ७० । इह सप्तम्यां नरायुस्तावन्न बध्यत एव । तद्बन्धाभावेऽपि मिश्रगुणस्थानकेऽविर-

१ "छण्णउई" इत्यपि पाठः । २ "इगनउई" इत्यपि पाठः । ३ "पुनरर्थे" इत्यपि, "पुनरर्थो" इत्यपि । ४ "यका" इति स्वार्थिकप्रत्ययान्तं रूपम् , "या" इत्यर्थः ।

तगुणस्थानके च नरगतिनरानुपूर्वीद्वयं बध्यते, तस्यान्यदाऽपि बन्धात् । अयमर्थः—नरगति-नरानुपूर्व्योर्नरायुषा सह नावश्यं प्रतिबन्धः, यदुत यत्रायुर्बध्यते तत्रैव गत्यानुपूर्वीद्वयमपि, किन्तु आयुरेकदैव बध्यते, गत्यानुपूर्वीद्वयमन्यदाऽपि बध्यत इति । तथा मिथ्यात्व [1]सासादनाभ्यां द्वयं न बध्यते, कलुषाध्यवसायत्वादिति । अथ कथमत्राविरतगुणस्थानके बन्धस्वामित्वं पृथग् नोक्तम् ?, सत्यं, मिश्रस्येवाविरतस्यापि सप्ततिर्द्दश्या, न्यूनाधिकप्रकृतेरभावात् । इति गाथार्द्धार्थः ॥९॥

एवं नरकगतौ बन्धस्वामित्वमभिधायाथ तिर्यग्गतौ सामान्येन गुणस्थानकविशिष्टं च तदाह—

तित्थाहारदुगूणा, तिरिया बंधंति सव्वपयडीओ ।
पज्जत्ता तह मिच्छा, [2]साणा उण सोलसविहीणा ॥१०॥

(हारि०) व्याख्या—तीर्थकराहारकद्विकोनाः सर्वप्रकृतीः पर्याप्तास्तिर्यञ्चः प्रक्रमात्सामान्येन बध्नन्तीति ११७ । अत्र च तिरश्चां सत्यपि सम्यक्त्वे भवप्रत्ययादेव तथाविधाध्यवसायाभावात्तीर्थकरनाम्नः संपूर्णसंयमाभावादाहारकद्विकस्य च बन्धो नास्तीति हृदयम् । 'तह मिच्छा' इति तथा मिथ्यादृशोऽपि पर्याप्ता इति योगः । सप्तदशोत्तरशतसंख्याः ११७ प्रकृतीर्बध्नन्ति । 'साणा उण' इति सासादनाः पुनः षोडशेन पूर्वोक्तेन विहीनाः षोडशविहीनाः १०१ ता बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥१०॥

तथा—

नरतिगसुराउउसभं, उरलदुगं [3]मोत्तु पणवीसं च ।
अणुहत्तरिं तु मीसा, सुराउणा सत्तरी सम्मा ॥११॥

(हारि०) व्याख्या—'नरतिग' इति, नरगतिनरानुपूर्वीनरायुस्त्रिकं सुरायुः 'उसभं' इति, वज्रर्षभनाराचं, एषां समाहारद्वन्द्वस्तत् । 'उरलदुगं' इति औदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गद्विकमिति सप्तप्रकृतीः पञ्चविंशतिं च प्रागुक्तां मुक्त्वा एकोत्तरशतमध्यादिति शेषः । शेषामेकोनसप्ततिं मिश्रा बध्नन्ति ६९ । एषैव सुरायुषा सहिता सप्ततिर्भवति ७०, तां 'सम्मा' इति, अविरतसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥११॥

तथा—

[4]बीयकसायूणा देस अपज्जत्ता सयं नवग्गं तु ।
मोत्तूणमोघबन्धा, निरसुरआउं विउव्विछक्कं च ॥१२॥ गीतिरियम्

---

१ "सासादनयोः सद्द्वयं" इत्यपि । २ "सासा उण सोलसविहूणा" इत्यपि । ३ "मुत्तुं" इत्यपि पाठः ।
४ "बीयकसायविहूणा देसअपज्जत्तसयनवगं तु मुत्तूण" । इत्यपि पाठः ।

नरायुःपञ्चविंशत्यूना सती सप्ततिर्भवति, तां मिश्रा बध्नन्ति '७० इति । एतां च सप्ततिं नरायुस्तीर्थकरनामयुतां सम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ७२ इति । अयं च बन्धो रत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभाभिधानप्रथमनरकपृथिवीत्रये द्रष्टव्यः, पङ्कप्रभादिषु विशेषबन्धाभिधानात् । इति गाथार्थः ॥७॥

अथ तमेव पङ्कप्रभादिनरकपृथिवीत्रये गाथाप्रथमपादेन तथा सप्तमनरकपृथिव्यां पादोनगाथाद्वयेनाह—

पंकाइसु तित्थोणं, नराउहीणं सयं तु सत्तमिए ।
मणुदुगउच्चेहिं विणा, मिच्छा बंधंति [1]छण्णउइं ॥८॥
हुंडाईचउरहियं, साणा तिरियाउणा य [2]इगनउइं ।
इगुणपणुवीसरहिया, सनरदुगुच्चा सयरि मीसे ॥९॥

(हारि०) व्याख्या–सामान्यं गुणस्थानचतुष्टयवर्त्ति च प्राक्तनप्रथमनरकपृथिवीत्रयोक्तं बन्धकदम्बकं यथासंभवं तीर्थकरनामोनं 'पंकाइसु' इति, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभासु मन्तव्यमिति शेषः । अत्र पृथिवीत्रये तीर्थकरनामनिमित्तसम्यक्त्वसद्भावेऽपि क्षेत्रमाहात्म्येन तथाविधाध्यवसायाभावात्तीर्थकरनामकर्मबन्धो नास्तीति । ततः सामान्येन शतं १००, मिथ्यादृशां च शतं १००,सासादनानां षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, अविरतसम्यग्दृष्टीनामेकसप्ततिः ७१, इति । इह तु सामान्यपदेऽविरतगुणस्थानके च तीर्थकरनामहीनतोक्ता, मिथ्यादृष्ट्यादिषु त्रिषु पुनस्तस्य प्रागेवापनीतत्वादिति भावः । 'नराउहीणं सयं तु सत्तमिए' इत्यादि पङ्कप्रभादिनरकपृथिवीत्रये सामान्येन यच्छतमुक्तं तदेव नरायुष्कहीनं पुनः सप्तम्यामोघबन्धः ९९ । तुशब्दः [3]पुनः योजित एवेति । अथ तस्यामेव गुणस्थानकेषु तन्निरूपयन्नाह– मणुदुग' इत्यादि मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैर्विना षण्णवतिर्भवति, तां मिथ्यादृशो बध्नन्ति ९६ । इति ॥८॥ अथ द्वितीयगाथा व्याख्यायते–'हुंडाईचउरहियं' इति, हुण्डसंस्थानच्छेदस्पृष्टसंहनननपुंसकवेदमिथ्यात्वचतुष्करहितम् तथा 'तिरियाउणा य' इति, तिर्यगायुषा च रहितां तां षण्णवतिं कृत्वेति शेषः, चशब्दाद्रहितशब्दः प्राक् समस्तोऽप्यत्र योज्यते । तत एकनवतिं ९१ सासादना बध्नन्तीति प्राक्तनेन संबन्धः । तथा 'इगुणपणुवीसरहिया' इति, एकेन तिर्यगायुषाऽनन्तरापनीतेनोना रहितैकोना सा चासौ पञ्चविंशतिश्च पूर्वोक्ता तया रहिता न्यूना एकोनपञ्चविंशतिरहिता । तथा 'सनरदुगुच्चा' इति, सह नरद्विकोच्चैर्वर्तते सनरद्विकोच्चा, नरगतिनरानुपूर्वीद्विकोच्चैर्गोत्रैः सहितेत्यर्थः । [4]यका एकनवतिः । सा सप्ततिर्भवति, सा च मिश्रे ७० । इह सप्तम्यां नरायुस्तावन्न बध्यत एव । तद्बन्धाभावेऽपि मिश्रगुणस्थानकेऽविर-

१ "छन्नउई" इत्यपि पाठः । २ "इगनउई" इत्यपि पाठः । ३ "पुनरर्थे" इत्यपि, "पुनरर्थो" इत्यपि । ४ "यका" इति स्वार्थिकप्रत्ययान्तं रूपम्, "या" इत्यर्थः ।

तगुणस्थानके च नरगतिनरानुपूर्वीद्वयं बध्यते, तस्यान्यदाऽपि बन्धात् । अयमर्थः—नरगति-नरानुपूर्व्योर्नरायुषा सह नावश्यं प्रतिबन्धः, यदुत यत्रायुर्बध्यते तत्रैव गत्यानुपूर्वीद्वयमपि, किन्तु आयुरेकदैव बध्यते, गत्यानुपूर्वीद्वयमन्यदाऽपि बध्यत इति । तथा मिथ्यात्व[1]सासादनाभ्यां द्वयं न बध्यते, कलुषाध्यवसायत्वादिति । अथ कथमत्राविरतगुणस्थानके बन्धस्वामित्वं पृथग् नोक्तम् ?, सत्यं, मिश्रस्येवाविरतस्यापि सप्ततिर्द्दश्या, न्यूनाधिकप्रकृतेरभावात् । इति गाथाद्वयार्थः ॥९॥

एवं नरकगतौ बन्धस्वामित्वमभिधायाथ तिर्यग्गतौ सामान्येन गुणस्थानकविशिष्टं च तदाह—

तित्थाहारदुगूणा, तिरिया बंधंति सव्वपयडीओ ।
पज्जत्ता तह मिच्छा, [2]साणा उण सोलसविहीणा ॥१०॥

(हारि०) व्याख्या—तीर्थकराहारकद्विकोनाः सर्वप्रकृतीः पर्याप्तास्तिर्यञ्चः प्रक्रमात्सामान्येन बध्नन्तीति ११७ । अत्र च तिरश्चां सत्यपि सम्यक्त्वे भवप्रत्ययादेव तथाविधाध्यवसायाभावात्तीर्थकरनाम्नः संपूर्णसंयमाभावादाहारकद्विकस्य च बन्धो नास्तीति हृदयम् । 'तह मिच्छा' इति तथा मिथ्यादृशोऽपि पर्याप्ता इति योगः । सप्तदशोत्तरशतसंख्याः ११७ प्रकृतीर्बध्नन्ति । 'साणा उण' इति सासादनाः पुनः षोडशेन पूर्वोक्तेन विहीनाः षोडशविहीनाः १०१ ता बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥१०॥

तथा—

नरतिगसुराउउसभं, उरलदुगं [3]मोत्तु पणवीसं च ।
अणुहत्तरिं तु मीसा, सुराउणा सत्तरी सम्मा ॥११॥

(हारि०) व्याख्या—'नरतिग' इति, नरगतिनरानुपूर्वीनरायुस्त्रिकं सुरायुः 'उसभं' इति, वज्रर्षभनाराचं, एषां समाहारद्वन्द्वस्तत् । 'उरलदुगं' इति औदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गद्विकमिति सप्तप्रकृतीः पञ्चविंशतिं च प्रागुक्तां मुक्त्वा एकोत्तरशतमध्यादिति शेषः । शेषामेकोनसप्ततिं मिश्रा बध्नन्ति ६९ । एषैव सुरायुषा सहिता सप्ततिर्भवति ७०, तां 'सम्मा' इति, अविरतसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥११॥

तथा—

[4]बीयकसायूणा देस अपज्जत्ता सयं नवगं तु ।
मोत्तूणमोघबन्धा, निरसुरआउं विउव्विछक्कं च ॥१२॥ गीतिरियम्

१ "सासादनयोः तद्द्वयं" इत्यपि । २ "सासा उण सोलसविहूणा" इत्यपि । ३ "मुत्तु" इत्यपि पाठः ।
४ "बीयकसायविहूणा देसभपज्जत्तसयनवगं तु मुत्तूण" । इत्यपि पाठः ।

(हारि०) व्याख्या–'बीयकसायूणा देस' इति द्वितीयकषायैरप्रत्याख्यानावरणैः क्रोधाद्यैश्चतुर्भिरूना=हीना द्वितीयकषायोनाः सप्ततिः प्रकृतयः षट्षष्टिर्भवति ६६, ताः प्रकृतीर्देशविरता बध्नन्तीति। पर्याप्तकपञ्चेन्द्रियाणां तिर्यग्जातीनां बन्धोऽभिहितः। अथापर्याप्तानां तेषां तमाह–'अपज्जत्ता' इत्यादिगाथापादत्रयम्, एतस्य मात्रार्थः–तिर्यग्गतिसत्कारसप्तदशोत्तरशतलक्षणादोघबन्धान्नारकसुरायुषी 'वैक्रियषट्कं च' वैक्रियशरीर १ तदङ्गोपाङ्ग २ नरकगति ३ नरकानुपूर्वी ४ देवगति ५ देवानुपूर्वी ६ लक्षणं मुक्त्वा शेषं शतं नवाग्रम् १०९, तुशब्दस्य पुनरर्थस्येह संबन्धादपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाः पुनस्तिर्यगजातयो बध्नन्ति। इति गाथार्थः ॥१२॥

एवं तिर्यग्गतौ बन्धस्वामित्वमुक्तम्। साम्प्रतं नरगतावाद्यगुणस्थानकपञ्चके तदतिदिशन् शेषगुणस्थानकेषु तदेवाह––

तिरिया व नरा पयडी, बंधंती मिच्छमाइया पंच।
अजयाइ पंच तित्थं, अपमत्तनियट्टि आहारं॥१३॥
कम्मत्थयबंधसमो, पमत्तमाईण होइ बन्धो उ।
अप्पज्जत्ता मणुया, तिरिया व सयं [1]नवग्गं तु ॥१४॥

(हारि०) व्याख्या–सामान्येन नरा विंशत्युत्तरशतं बध्नन्तीति प्रक्रमः। मिथ्यादृगाद्याः पञ्च तिर्यञ्च इव प्रकृतीर्बध्नन्तीति। अत्रैव विशेषमाह––'अजयाइ पंच तित्थं' इति, अविरतसम्यग्दृष्ट्याद्या निवृत्तिबादरान्ताः पञ्च तीर्थकरनाम बध्नन्ति। तथा 'अपमत्तनियट्टि आहारं' इति, अप्रमत्तनिवृत्तिबादराः सप्तमाष्टमगुणस्थानवर्तिनो यतयो द्विकशब्दाध्याहारादाहारकद्विकं बध्नन्तीति ॥१३॥ तथा–कर्मस्तवबन्धसमः, मकारस्यालाक्षणिकत्वात् प्रमत्तादीनां पुनर्मनुष्याणां भवति बन्धः। तुशब्दः पुनरर्थः प्रागेव योजित इति, अस्याः सार्द्धगाथायाः सामान्येन चतुर्दशगुणस्थानकेषु च नरबन्धमधिकृत्यैवं सशब्दसंस्काराङ्कतः स्थापना–तत्र सामान्येन विंशत्यधिकशतं १२०, मिथ्यादृशां सप्तदशोत्तरशतं ११७, सासादनानामेकोत्तरशतं १०१, मिश्राणामेकोनसप्ततिः ६९, अविरतसम्यग्दृष्टीनामेकसप्ततिः ७१, देशविरतानां सप्तषष्टिः ६७, प्रमत्तानां त्रिषष्टिः ६३, अप्रमत्तानामेकोनषष्टिः ५९, निवृत्तिबादराणामष्टपञ्चाशत् ५८ षट्पञ्चाशत् ५६ षड्विंशतिश्चेति २६ त्रिभागत्रयम्, अनिवृत्तिबादराणां द्वाविंशतिः २२ एकविंशतिः २१ विंशतिः २० [2]एकोनविंशतिः १९ अष्टादश १८ चेति पञ्च विभागाः, सूक्ष्मसम्परायाणां सप्तदश १७, उपशान्तमोह १ क्षीणमोह १ सयोगिनां १ प्रत्येकमेकैव अयोगिनां बन्धो नास्ति। इति "कम्मत्थयबंधसमो, पमत्तमाईण होइ बंधो उ" इत्युक्तम्। तत्र कर्मस्तवग्रन्थे

१ "नवब्भहियं" इत्यपि पाठः। २ एकाभवि० जे०।

सामान्यतो बन्धं प्रत्युक्तम्, न पुनः काश्चन गतिमाश्रित्य। यथा–' सत्तरससयमेगुत्तर चउ-सयरी तह य सतत्तरा य। सगसट्ठी तेवट्ठी, उणसट्ठी अट्ठवण्णा य ॥१॥ छप्पण्णा छव्वीसा, बावीसा सत्तरेगमेगं च। एगा य बंधसेसो मिच्छाइसु होंति नायव्वा। ॥२॥" अङ्कतस्तु सामान्येन १२० । म० ११७। सा० १०१। मि० ७४। अ० ७७। दे० ६७। प्र० ६३। अ० ५९, ५८। नि० ५८, ५६, २६। अ० २२ २१, २० १९, १८। सू० २७। उ० १। क्षी० १। स० १ अ० ०। एतानि चाङ्कस्थानानि प्रतिगुणस्थानमनेन प्रकृतिव्यवच्छेद-क्रमेण जायन्ते। यथा-' मिच्छे सोलस पणुवीस सासणे अविरए य दसपयडी। चउक्क-क्कमेण देसे, विरए य कमेण वोच्छिन्नाः ॥२॥ दुगतीस चउरपुव्वे, पंच नियट्टिम्मि बंध-वोच्छेओ। सोलस सुहुमसरागे, सायसजोगो जिणवरिंदे ॥२॥" इह मिथ्यादृष्टिसासादनगुणस्थानकद्वये बन्धं प्रति व्यवच्छिन्नाः प्रकृतयोऽत्रैव प्राक् प्रतिपादिताः। मिश्रे तु न काश्चन प्रकृतयो व्यवच्छिन्नाः, अतोऽविरतगुणस्थानकादौ बन्धं प्रति व्यवच्छिन्नाः प्रकृतयः प्रतिपाद्यन्ते। तद्यथा–"बीयकसायचउक्कं ४, मणुयाउं ५ मणुयदुव्वय ७ ओरालं ८। तस्स य अंगोवंगं ९, संघयणाई १० अविरयम्मि। १॥ तइयकसायचउक्कं ४, विरयाविरयम्मि बंधवोच्छेओ। अस्साय १ मरइ २ सोगं ३, तह चेव य अथिर ४ असुहं ५ च ॥२॥ अजसकित्ती ६ य तहा, पमत्तविरयम्मि बंधवोच्छेओ। देवाउयं च एगं, [1]नायव्वं अप्पमत्तंमि ॥३॥ निद्दा १ पयला २ य तहा, अपुव्वपढमंमि बंधवुच्छेओ। देवदुगं २ पचिंदिय ३, उरालवज्जं चउसरीरं ७ ॥४॥ समचउरं ८ वेउव्विय ९, आहारगअंगुवंगनामं १० च। वण्णचउक्कं १४ च तहा, अगुरुयलहुयं च चत्तारि १८ ॥५॥ तसचउ २२ पसत्थमेव य, विहायगइ २३ थिर २४ सुहं च २५ नायव्वं। सुहयं २६ सूसरमेव य २७, आएज्जं २८ चेव निमिणं च २९ ॥६॥ तित्थयरमेव तीसं, ३०, अपुव्वछब्भाय बंधवोच्छेओ। हास १ रइ २ भय ३ दुगुंछा ४, अपुव्वचरिमम्मि वोच्छिन्ना ॥७॥ पुरिसं १ चउसंजलणं ५, पंच य पयडीओ पंचभागम्मि। अनियट्टीअद्धाए, जहक्कमं बंधवोच्छेओ ॥८॥ नाणंतराय-दसगं १०, दंसणचत्तारि १४ उच्च १५ जसकित्ती १६। एया सोलस पयडी सुहुमसरागंमि वोछिन्ना ॥९॥ उवसंतखीणमोहे, जोगिम्मि उ साय १ बंधवोच्छेओ। नायव्वो पयडीणं, बंधस्संतो अणंतो य ॥१०॥" बन्धस्यान्तोऽनन्तश्चेत्यस्यायमर्थः–याः प्रकृतयो यत्र गुणस्थाने व्यवच्छिन्नास्तत्र तासामन्तोऽग्रेतनगुणस्थाने न गच्छन्तीति, अन्यासां त्वनन्त उत्तरत्रापि गच्छन्तीति तात्पर्यमिति। आसां दशानामपि गाथानां पुनर्व्याख्यानं कर्मस्तवटीकातो बोद्धव्यमिति। तथाऽत्रैव प्रकृत्यपकर्षप्रक्षेपकथनगाथाः। यथा–

१ कर्मस्तवे तु "तहप्पमत्तम्मि नायव्वं" इत्येवंरूपः पाठोऽपि दृश्यते।

"बीससयं सामन्ने, सत्तरससयं तु बंधए मिच्छो। तित्थयराहारदुगं, न बंधए मिट्टए तेण॥१॥ सम्मा मिच्छद्दिट्ठी, आऊणि न बंधए [1]जओ ताणि। मिट्ट ति [2]तेण तस्स उ अज्झवसाओ [1]जओ नत्थि ॥२॥ तित्थयरं पक्खिप्पइ, सम्मद्दिट्ठिम्मि बंधए जेण। सम्मत्तस्स गुणाणं, आऊणि य तत्थ खिप्पंति॥३॥ आहारमप्पमत्तो, पक्खिप्पइ जेण संजमो तस्स। इय इसु गुणठाणेसु, अवगरिसो दोसु पक्खेवो ॥४॥" इह कर्मस्तवोक्तगुणस्थानकबन्धात् नरतिरश्चां मिश्राविरतगुणस्थानकयोर्विशेषोऽयं द्रष्टव्यः। तद्यथा—कर्मस्तवे मिश्रगुणस्थानके चतुःसप्ततिः ७४, अविरतगुणस्थानके सप्तसप्ततिः ७७ इति। नरतिरश्चां पुनर्मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीवज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्ग-लक्षणप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धाभावान्मिश्रगुणस्थानके एकोनसप्ततिः ६९, अविरते सप्ततिः ७०, केवलं नराणां तीर्थंकरक्षेपे एकसप्ततिः ७१ इति। इहैकसप्ततिप्रमाणनरबन्धमध्येऽनन्तरोक्तप्रकृ-तिपञ्चके नरायुष्के च क्षिप्ते कर्मस्तवोक्ता सप्तसप्ततिर्भवति अविरतगुणस्थानके ७७ इति। एवं सामान्यकर्मस्तवोक्ताङ्कावली नरतिर्यगङ्कावली च किंचित्पृथग्जातेति केवलं तिरश्चां पञ्चैव गुण-स्थानानि, नराणां तु सर्वाण्येव। विशेषस्तु मिश्राविरतगुणस्थानयोरिति तात्पर्यार्थः। विस्तरतस्तु कर्मप्रकृतिनिर्णनादिकर्मस्तवटीकातो विज्ञेयमिति। तथा—'अप्पज्जत्ता' इत्यादि, अपर्याप्तमनुजाः पुनस्तिर्यञ्च इव शतं नवाग्रं १०९ बध्नन्ति। तुशब्दो योजित एव। इति गाथाद्वयार्थः ॥१४॥

एवं मनुष्यगतौ बन्धस्वामित्वमुक्तम्। साम्प्रतं देवगतिमधिकृत्य तत्प्रतिपादयन्नाह—

वेउव्वाहारदुगं, नारयसुरसुहुमविगलजाइतिगं।
[4]मोत्तुं चउरग्गसयं, देवा बंधंति ओहेणं ॥१५॥

(हारि०)व्याख्या-'वेउव्वाहारदुगं' इति, द्विकशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धाद्वैक्रियशरीरतदङ्गो-पाङ्गद्विकं, आहारकशरीरतदङ्गोपाङ्गद्विकम्। 'नारयसुरसुहुमविगलजाइतिगं' इति, त्रिकश-ब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धान्नारकत्रिकं सुरत्रिकं च प्राग्वत्। सूक्ष्मत्रिकं तु सूक्ष्मनामसाधारणना-मापर्याप्तनामलक्षणम्। विकलजातित्रिकं च प्राग्वत्। एवमेताः षोडश [5]प्रकृतीर्द्वन्द्वगर्भास्तत्पुरु-षकृतसमासाः विंशत्यधिकशतमध्यान्मुक्त्वा चतुरग्रशतं १०४ ओघेन देवा बध्नन्ति। इति गाथार्थः ॥१५॥

एवमोघबन्धं प्रतिपाद्य साम्प्रतं गुणस्थानकेषु तन्निरूपयन्नाह—

तित्थोणं तं मिच्छा, साणा छेवट्ठहुंडनपुमिच्छं।
एगिंदिथावरायवपयडी [6]मोत्तूण छन्नउइं ॥१६॥

१-२ "तओ" इति जे०। ३ "जेण" इति जे०। ४ "मुत्तुं" इत्यपि पाठः। ५ प्रकृतीस्तत्पुरुषगर्भकृ-तसमाहारद्वन्द्वा विंशत्य० जे०। ६ "मुत्तूण छन्नवई" इत्यपि पाठः।

(हारि०) व्याख्या–तच्च चतुरग्रशतं तीर्थकरनामोनं १०३ मिथ्यादृशो देवा वध्नन्ति इति प्राक्तनेन संबन्धः। एवमुत्तरत्रापि। छेदस्पृष्टसंहननहुण्डसंस्थाननपुंसकवेदमिथ्यात्वमिति द्वन्द्वैकवद्भावः। तथैकेन्द्रियजातिस्थावरनामातपनामप्रकृतीर्विहितद्वन्द्वसमासाः। एवमेताः सप्तापि त्र्यधिकशतमध्यान्मुक्त्वा शेषां पण्णवतिं सासादनसम्यग्दृष्टिदेवा ९६ वध्नन्ति इति गाथार्थः ॥१६॥

तथा—

ओघुत्तं पणुवीसं, नराउजुत्तं विवज्जिउं मीसा।
बंधंति सयरिमजया, तित्थनराऊहिँ विगसयरी ॥१७॥

(हारि०) व्याख्या–ओघोक्तां पञ्चविंशतिं नरायुर्युक्तां पण्णवतेर्मध्याद्विवर्ज्य शेषां सप्ततिं 'मिश्राः' सम्यग्मिथ्यादृष्टयो देवा बध्नन्ति ७०। एषा च सप्ततिस्तीर्थकरनामनरायुर्भ्यां सह द्विसप्ततिर्भवति, तां ७२ अयता बध्नन्ति। इति गाथार्थः ॥२७॥

इति सामान्येन देवगतिबन्धः प्रतिपादितः, साम्प्रतं विशेषतो देवविशेषनामोच्चारणपूर्वकं तमाह—

मिच्छाइअविरयंता, देवोघं तित्थहीण बंधंति।
भवणवणजोइदेवा, देवीओ चेव सव्वाओ ॥१८॥

(हारि०) व्याख्या–अत्र पदघटनैवं कार्या–भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कदेवाः सर्वे तद्देव्यश्चैव सर्वा मिथ्यादृगाद्या अविरतसम्यग्दृष्टिपर्यन्ता विभक्तिलोपात्तीर्थकरनामहीनं देवौघं चतुरग्रशतादिलक्षणं यथासंभवं बध्नन्तीति। तद्यथा–सामान्यतस्त्र्यधिकशतं १०३, मिथ्यादृशोऽपि त्र्यधिकशतं १०३, सासादनाः षण्णवतिं ९६, मिश्राः सप्ततिं ७०, अविरता एकाधिकसप्ततिं ७१ बध्नन्ति। इति गाथार्थः ॥१८॥

तथा—

सामन्नदेवभंगो, सोहम्मीसाण मिच्छमाईणं।
सहसारंता इगिथावरायवोणं सणंकुमाराई ॥१९॥ गीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या–'सामान्यदेवभङ्गकः' पूर्वोक्तश्चतुरग्रशतादिलक्षणः १०४, कयोः? विभक्तिलोपात्सौधर्मेशानयोः, केषाम्? मकारोऽलाक्षणिकः, मिथ्यादृगादीनां भवतीति शेषः। इह यद्यपि 'मिच्छमाईणं' इत्युक्तं तथाऽपि सामान्यमपि द्रष्टव्यम्। ततः सामान्येन चतुरग्रशतं १०४, मिथ्यादृशां त्र्यग्रशतं १०३, सासादनानां षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, अविरतानां द्विसप्तति ७२ रिति। 'सहसारंता' इत्यादियोजना त्वेवं कार्या–सनत्कुमा-

राद्याः सहस्रारान्ता देवा एकेन्द्रियजातिस्थावरातपोनमोघं चतुरग्रशतादिलक्षणं बध्नन्ति। तद्यथा-सामान्येनैकाग्रशतं १०१, मिथ्यादृशः शतं १००, सासादनाः षण्णवतिं ९६, मिश्राः सप्तति ७०, अयता द्विसप्तति ७२ मित्यत्र सासादनादिगुणस्थानकत्रये एकेन्द्रियादिप्रकृतित्रयस्य, "**तित्थोणं तं मिच्छा, साणा छेवट्ठहुंडनपुमिच्छं। एगिंदिथावरायव-**" इति गाथया प्रागेवापनीतत्वान्न कश्चित्सङ्ख्याविशेष इह। इति गाथार्थः ॥१९॥

अथ सनत्कुमारादिसहस्रारान्तदेवा रत्नप्रभादिपृथिवीत्रयनारकाश्च बन्धमाश्रित्य समा इति गाथायाः प्रथमार्द्धेन, तथा पश्चिमार्द्धेनानतादिग्रैवेयकान्तदेवानां सामान्यबन्धं दर्शयन्नाह—

रयणा नारयसरिसा, सहसारंता सणंकुमाराई।
इगिथावरायवतिरितिगुज्जोऊणं तु आणयाईया ॥२०॥ गीतिरियम्।

(हारि०) व्याख्या-'**रयणा**' इति सूचकत्वात्सूत्रमिति न्यायात्पदावयवे पदसमुदायोपचाराद्वा रत्नप्रभोच्यते। उपलक्षणं चैतत् प्रथमपृथिवीत्रयस्य। ततश्च रत्नप्रभाया नारका रत्नप्रभानारकास्तैः सदृशाः=समाः '**रत्नप्रभानारकसदृशाः**'। क एते ? सनत्कुमाराद्याः सहस्रारान्ता देवा इति गम्यते। तद्यथा-सामान्येनैकाग्रशतं १०१, मिथ्यादृशां शतं १००, सासादनानां षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, अयतानां द्विसप्तति ७२ रिति। '**इगि**' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिस्थावरनामातपनामतिर्यक्त्रिकोद्द्योतोनं तु चतुरग्रशतं सप्तनवतिर्भवति, तामानताद्या ग्रैवेयकनवकान्ता देवा इति गम्यते, सामान्येन ९७ बध्नन्ति। इति गाथार्थः ॥२०॥

एवमानतादिसामान्यबन्धं प्रतिपाद्य साम्प्रतं तमेव गुणस्थानकविशिष्टं निरूपयन्नाह—

तित्थं [1]नपुचउतिरितियउज्जोऊण [2]पणवीस सनराउं।
मोत्तूण मिच्छमाई, नराउतित्थेहि अजया उ ॥२१॥

(हारि०) व्याख्या-अस्या भावार्थोऽयम्-पूर्वोक्तसप्तनवतेर्मध्यात्तीर्थकरं मुक्त्वेति संबन्धः। एवमुत्तरत्रापि शेषां षण्णवतिं ९६ मिथ्यादृशो बध्नन्ति। तथा षण्णवतेर्मध्यात् 'नपुंसकचतुष्कं' सेवार्तसंहननहुण्डसंस्थाननपुंसकवेदमिथ्यात्वलक्षणं मुक्त्वा शेषां द्विनवतिं ९२ सासादना बध्नन्ति, तथा द्विनवतेर्मध्यात्तिर्यक्त्रिकोद्द्योतोनां '**पञ्चविंशतिं**' एकविंशतिमित्यर्थः, किंविशिष्टाम् ? '**सनरायुषं**' नरायुर्युक्तां द्वाविंशतिमित्यर्थः, '**मुक्त्वा**' त्यक्त्वा शेषां मिश्राः सप्ततिं ७० बध्नन्ति। तथा सप्ततिं च नरायुस्तीर्थकराभ्यां सहाविरता बध्नन्ति ७२। तुशब्दाद्विशेषा-

---

१ "नपुंसचउ" इत्यपि पाठः। २ "पणुवीससनराओ। मुत्तूण" इत्यपि पाठः।

नमिधानेऽपि मिथ्यात्वादिगुणस्थानकत्रयाभावात्पञ्चोत्तरविमानदेवा एतामेवाविरतगुणस्थानकसत्कां द्विसप्ततिं ७२ बध्नन्ति इति गाथार्थः ॥२१॥

इति देवगतौ बन्धस्वामित्वमुक्तम्, तद्भणनाच्च गतिबन्धमार्गणा समाप्ता १ ॥ साम्प्रतमिन्द्रियेषु तदारभ्यते—

तित्थाहारं निरयसुराउं [1]मोत्तुं विउव्विछक्कं च ।
[2]इगविगलिंदी बंधहिँ, नवुत्तरं ओघमिच्छा य ॥२२॥

(हारि०) व्याख्या–'तित्थाहारं' इति, द्विकशब्दो लुप्तो द्रष्टव्यः । ततस्तीर्थंकरा १ ऽऽहारकद्विकं ३, नरकायुः ४, सुरायुः ५, 'वैक्रियषट्कं च' वैक्रियशरीर ६ तदङ्गोपाङ्ग ७ सुरगति ८ सुरानुपूर्वी ९ नरकगति १० नरकानुपूर्वीलक्षणं ११ विंशत्युत्तरशतमध्यादिति शेषः, मुक्त्वा शेषं नवोत्तरं शतमिति गम्यते १०९, 'ओघ' इति प्राकृतत्वात् सामान्यपदिनो मिथ्यादृशश्च १०९ एकेन्द्रियविकलेन्द्रिया बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥२२॥

अथ गाथायाः प्रथमार्द्धेन तेषां सासादने बन्धं समर्थयन्नपरार्द्धेन पञ्चेन्द्रियेषु तमाह—

साणा बंधहिँ सोलस, [3]निरतिगहीणा य [4]मोत्तु छन्नउइं ।
ओघेणं वीसुत्तर–सयं च पंचिंदिया बंधे ॥२३॥

(हारि०) व्याख्या–अत्रापि पदघटनैवं कार्या–नरकत्रिकहीनाश्च षोडश प्रकृतीर्नवोत्तरशतमध्यान्मुक्त्वा शेषां षण्णवतिं ९६ मेकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सासादना बध्नन्ति । पञ्चेन्द्रियाः पुनः चशब्दस्य पुनरर्थस्यात्र योजनात् 'ओघेन' सामान्येन विंशत्युत्तरशतं १२० 'बन्धे' इति प्राकृतत्वाद्बध्नन्तीति, अत्रोपलक्षणत्वान्मिथ्यात्वादिषु च कर्मस्तवोक्तबन्धो द्रष्टव्यः । इति गाथार्थः ॥२३॥

अत्रैवैकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु सासादनमाश्रित्य मतान्तरमाह—

[5]इगिविगलिंदी साणा, तणुपज्जत्तिं न जंति जं तेण ।
नरतिरियाउअबंधा, मयतरेणं तु [6]चउणउइं ॥२४॥

(हारि०) व्याख्या–एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सासादनाः सन्तः 'तनुपर्याप्तिं' शरीरपर्याप्तिं 'न यान्ति' न गच्छन्ति, 'यद्' यस्माद्धेतोस्तेन ते नरतिर्यगायुरबन्धा इति मतान्तरेण पुनश्चतुर्नवतिं ९४ बध्नन्तीति । अत्र भावार्थः–पूर्वमतेन शरीरपर्याप्त्युत्तरकालमपि सासादनभावस्येष्टत्वादायुर्बन्धो[7]ऽभिप्रेतः । इह तु प्रथममेव तन्निवृत्तेर्नेष्टः । इति गाथार्थः ॥२४॥

---

१ "मुत्तु" इत्यपि पाठः । २ "इगि" इत्यपि पाठः । ३ "निरि" इत्यपि पाठः । ४ "मुत्तु छन्नउई" इत्यपि पाठः । ५ "इग०" इत्यपि पाठः । ६ "चउणउई" इत्यपि पाठः । ७ "ऽभिहितः" इत्यपि पाठः ।

नभिधानेऽपि मिथ्यात्वादिगुणस्थानकत्रयाभावात्पञ्चोत्तरविमानदेवा एतामेवाविरतगुणस्थानकसत्कां द्विसप्ततिं ७२ बध्नन्ति इति गाथार्थः ॥२१॥

इति देवगतौ बन्धस्वामित्वमुक्तम्, तद्भणनाच्च गतिवन्धमार्गणा समाप्ता १ ॥ साम्प्रतमिन्द्रियेषु तदारभ्यते—

तित्थाहारं निरयसुराउं [1]मोत्तुं विउव्विछक्कं च ।
[2]इगविगलिंदी बंधहिँ, नवुत्तरं ओघमिच्छा य ॥२२॥

(हारि०) व्याख्या–'तित्थाहारं' इति, द्विकशब्दो लुप्तो द्रष्टव्यः । ततस्तीर्थंकरा १ ऽऽहारकद्विकं ३, नरकायुः ४, सुरायुः ५, 'वैक्रियषट्कं च' वैक्रियशरीर ६ तदङ्गोपाङ्ग ७ सुरगति ८ सुरानुपूर्वी ९ नरकगति १० नरकानुपूर्वीलक्षणं ११ विंशत्युत्तरशतमध्यादिति शेषः, मुक्त्वा शेषं नवोत्तरं शतमिति गम्यते १०९, 'ओघ' इति प्राकृतत्वात् सामान्यपदिनो मिथ्यादृशश्च १०९ एकेन्द्रियविकलेन्द्रिया बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥२२॥

अथ गाथायाः प्रथमार्द्धेन तेषां सासादने बन्धं समर्थयन्नपरार्द्धेन पञ्चेन्द्रियेषु तमाह—

साणा बंधहिँ सोलस, [3]निरतिगहीणा य [4]मोत्तु छन्नउइं ।
ओघेणं वीसुत्तर–सयं च पंचिंदिया बंधे ॥२३॥

(हारि०) व्याख्या–अत्रापि पदघटनैवं कार्या–नरकत्रिकहीनाश्च षोडश प्रकृतीर्नवोत्तरशतमध्यान्मुक्त्वा शेषां षण्णवतिं ९६ मेकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सासादना बध्नन्ति । पञ्चेन्द्रियाः पुनः चशब्दस्य पुनरर्थस्यात्र योजनात् 'ओघेन' सामान्येन विंशत्युत्तरशतं १२० 'बन्धे' इति प्राकृतत्वाद्बध्नन्तीति, अत्रोपलक्षणत्वान्मिथ्यात्वादिषु च कर्मस्तवोक्तबन्धो द्रष्टव्यः । इति गाथार्थः ॥२३॥

अत्रैवैकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु सासादनमाश्रित्य मतान्तरमाह—

[5]इगिविगलिंदी साणा, तणुपज्जत्तिं न जंति जं तेण ।
नरतिरियाउअबंधा, मयतरेणं तु [6]चउणउइं ॥२४॥

(हारि०) व्याख्या–एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सासादनाः सन्तः 'तनुपर्याप्तिं' शरीरपर्याप्तिं 'न यान्ति' न गच्छन्ति, 'यद्' यस्माद्धेतोस्तेन ते नरतिर्यगायुरबन्धा इति मतान्तरेण पुनश्चतुर्नवतिं ९४ बध्नन्तीति । अत्र भावार्थः–पूर्वमतेन शरीरपर्याप्त्युत्तरकालमपि सासादनभावस्येष्टत्वादायुर्बन्धो[7]ऽभिप्रेतः । इह तु प्रथममेव तन्निवृत्तेर्नेष्टः । इति गाथार्थः ॥२४॥

---

१ "मुत्तुं" इत्यपि पाठः । २ "इगि" इत्यपि पाठः । ३ "निरि" इत्यपि पाठः । ४ "मुत्तु छन्नउई" इत्यपि पाठः । ५ "इग०" इत्यपि पाठः । ६ "चउणउई" इत्यपि पाठः । ७-"ऽभिहित." इत्यपि पाठः ।

उक्तमिन्द्रियेषु बन्धस्वामित्वम् २ ॥ साम्प्रतं कायेषु तदुच्यते—

भूदगवणकाया एगिंदिसमा मिच्छसाणदिट्ठीओ ।
मणुयतिगुच्चं [1]मोत्तु, सुहुमतसा ओघ थूलतसा ॥२५॥

(हारि०) व्याख्या- अत्रैवं योजना कार्या मिथ्यादृशः सासादनसम्यग्दृशश्च भूदगवनस्पतिकाया एकेन्द्रियसमाः । एकेन्द्रियाणां तु पूर्वमिदमुक्तम्, तद्यथा—ओघतः १०९, मि० १०९, सा० ९६ । प्रागुक्तमतान्तरेण तु चतुर्नवतिरपि ९४ द्रष्टव्या । तथा 'मणुय' इत्यादि, अस्यायमर्थः पूर्वोक्तैकेन्द्रियविकलेन्द्रियसत्कान्नवाग्रशतान्मनुजत्रिकोच्चैर्गोत्रं मुक्त्वा 'सूक्ष्मत्रसाः' तेजोवायुकायजीवः पञ्चोत्तरशतं १०५ बध्नन्ति । तथा 'ओघ' इति, अनुस्वारलोपादोघं विंशत्युत्तरशतादिलक्षणं कर्मस्तवोक्तं 'स्थूलत्रसाः' त्रयकायिका बध्नन्तीति शेषः । अङ्कतः स प्रागेव दर्शितः । इति गाथार्थः ॥२५॥

एवं कायेषु बन्धोऽभिहितः ३ ॥ साम्प्रतं योगेषु तं प्रतिपादयन्नाह—

[2]मणवइजोगचउक्के, ओघो उरलेवि ओघनरभंगो ।
निरतिगसुराउआहारगं [3]च हिच्चा उ [4]तंमीसे ॥२६॥

(हारि०) व्याख्या-' [5]मनोवाग्योगचतुष्के' इति चतुष्कशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धान्मनोयोगचतुष्के वाग्योगचतुष्के चेत्यर्थः, सत्य १ मृषा २ मिश्रा ३ ऽसत्यामृषाख्ये ४ । एतत्स्वरूपं संक्षेपत इदम्—'अस्ति जीवः' इत्यादिचिन्तनपरं सत्यम् । एतद्विपरीतं मृषा । तथा धवखदिरादिषु वृक्षेषु सत्सु खदिरवनमिदमिति मिश्रम् । सत्यमृषाविकलमसत्यामृषं आज्ञापनादि, यथा—हे देवदत्त ! घटमानय, धर्मं कुरु, भिक्षां देहीति । विस्तरव्याख्यानं तु ग्रन्थान्तरादवसेयं, गमनिकामात्र[6]त्वात्प्रस्तुतप्रयासस्येति ओघबन्धो विंशत्युत्तरशतादिलक्षणः १२० कर्मस्तवाभिहितो विज्ञेय इति शेषः । तथौदारिकेऽपि 'ओघनरभङ्ग' सामान्यमनुष्यभङ्गको द्रष्टव्य इति शेषः, अङ्कत उभयेऽपि भङ्गकाः प्राक् प्रदर्शिता एव । तथा नरकत्रिकसुरायुराहारकद्विकं विहितसमाहारद्वन्द्वसमासं प्रकृतिषट्कं विंशत्युत्तरशतमध्यादिति शेषः, हित्वा शेषस्य चतुर्दशाधिकशतस्य ११४ 'तन्मिश्रे' त्वौदारिकमिश्रे सामान्येन बन्ध इति शेषः । सुरद्विकभावना [7]सप्तमनरकपृथिव्या नरद्विकभावनावद्द्रष्टव्या । इति गाथार्थः ॥२६॥

अथौदारिकमिश्रेऽपि गुणस्थानकविशिष्टं तमाह—

---

१ "मुत्तु" इत्यपि पाठः । २ "मणवय०" इत्यपि पाठः । ३ "तु" इति मुद्रितप्रतौ । ४ "तम्मिस्से" इत्यपि पाठः । ५ "मनोयोगवा०" इत्यपि । ६ "त्वादेतत्प्र०" इति जे० । ७ "सप्तमनरकपथि"

सुरदुग विउव्वियदुगं, तित्थं हिच्चा सयं नवग्गं तु ।
बंधंति उरलमिस्से, मिच्छा उ सजोगिणो सायं ॥२७॥

(हारि०) व्याख्या—सुरद्विकवैक्रियद्विकं पूर्वोक्तम् , अत्र तत्पुरुषगर्भः समाहारद्वन्द्वः, तीर्थंकरनाम चेति प्रकृतिपञ्चकमनन्तरोक्तसामान्यबन्धाच्चतुर्दशोत्तरशतादिति गम्यते, 'हित्वा' परित्यज्य शेषं नवाग्रशतमौदारिकमिश्रयोगे मिथ्यादृशस्तु बध्नन्ति १०९ । तथा सयोगिन औदारिकमिश्रयोग इति पूर्वेण योगः, केवलिसमुद्घाते सप्तमषष्ठद्वितीयसमयेषु सातमेवैकं १ बध्नन्तीति पूर्वेण संबन्धः । अत्र यदुत्क्रमतः सयोगिग्रहणं तल्लाघवार्थम् । यच्च प्राक्तनगाथायाः 'औदारिकमिश्रे' इति पदेऽनुवर्तमाने पुनस्तत्पदोपादानं तद्भिन्नगाथायां सुखार्थम् । इति गाथार्थः ॥२७॥

अथ सार्द्धगाथयौदारिकमिश्रयोगे बन्धं समर्थयन् गाथार्द्धेन वैक्रिययोगे देवनारकबन्धसमतां दर्शयन्ना(यंश्चा)ह—

निरतिगहीणा सोलस, तिरिनरआउं पि [1]मोत्तु साणा वि ।
तिरियाउविहीणं पणवीसमुज्झित्तु अविरए [3]बंधो ॥२८॥
तित्थं वेउव्विदुगं, सुरदुगसहियं उरलमिस्से ।
साम[4]न्नदेवनारयबंधो नेओ विउव्विजोगे वि ॥२९॥ गीत्युद्गीती एते गाथे

(हारि०) व्याख्या—नरकत्रिकहीनाः षोडश प्रकृतीः तथा तिर्यङ्नरायुषी अपि नवोत्तरशतमध्यादनन्तरोक्तान्मुक्त्वा शेषां चतुर्नवतिं ९४ मौदारिकमिश्रयोग इति पूर्वेणयोगः । 'साणा वि' इति, सासादनसम्यग्दृशोऽपि । अपिशब्दः समुच्चयार्थः । बध्नन्तीति प्राक्तनेन संबन्धः । तथा चतुर्नवतेर्मध्यात्तिर्यगायुर्विहीनां पञ्चविंशतिं 'उज्झित्वा' परित्यज्य शेषायाः सप्ततेः 'तित्थं वेउव्विदुगं सुरदुगसहियं' इति, प्राकृतवशात्तीर्थंकरनाम वैक्रियद्विकं सुरद्विकसहितमिति पञ्चप्रकृतिसहितायाः ७५ औदारिकमिश्रयोगे 'अविरए' इति, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके बन्धः । एवं गुणस्थानकचतुष्क एवौदारिकमिश्रयोगोऽपि लभ्यते नान्यत्रेति । मिश्रता चात्र कार्मणेनैव [5]सह मन्तव्येति । 'सामन्नदेवनारयबंधो नेओ विउव्विजोगे वि' इति, वैक्रिययोगेऽपि सामान्यदेवनारकबन्धो ज्ञेयः । स च प्रागेव प्रतिपादितः, तद्यथा—देवानां सामान्येन [6]चतुरग्रशतं १०४, मिथ्यादृशां त्र्युत्तरशतं १०३, सासादनसम्यग्दृशां

---

१ "वेउव्विदुगं" इत्यपि पाठः । २ "मुत्तु" इत्यपि पाठः । ३ "बंधे" इति मुद्रितप्रतौ । ४ "ण्णा०" इत्यपि । ५ "सहेति मन्तव्यमिति" इति जे० । ६ "चतुरुत्तरशतम्" इति जे० ।

षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, [1]अविरतसम्यग्दृशां द्विसप्तति ७२ रिति। नारकाणां तु सामान्येनैकाधिकं शतं १०१, मिथ्यादृशां शतं १००, सासादनानां षण्णवतिः ९६, मिश्राणां सप्ततिः ७०, अविरतानां द्विसप्तति ७२ रिति। स्वभावस्थदेवनारकवैक्रिययोगोऽत्र गृहीतः। इति गाथाद्वयार्थः ॥२८-२९॥

साम्प्रतं वैक्रियमिश्रयोगेऽपि देवनारकबन्धातिदेशगर्भं सामान्यपदे मिथ्यात्वसासादनाविरतगुणस्थानकत्रये च तन्निरूपयन्नाह—

वेउव्वियमीसम्मि वि, तिरियनराऊहिँ वज्जिया सेसा।
तित्थोणा ता मिच्छा, बंधहिँ माणा उ चउणउइं ॥३०॥
एगिंदिथावरायवसंढाइचउक्कवज्जिया सेसा।
तिरियाऊणं पणुवीस [2]मोत्तु अजया सतित्था उ ॥३१॥

(हारि०) व्याख्या-वैक्रियमिश्रयोगेऽपि न केवलं वैक्रिययोग इत्यपिशब्दार्थः। अनन्तरं देवनारकवैक्रिययोगोक्ताः प्रकृतीस्तिर्यग्नरायुर्भ्यां वर्जिताः शेषा द्व्युत्तरशतसङ्ख्याः सामान्येन देवाः १०२, नारकास्तु नवनवतिप्रमाणा ९९ बध्नन्ति। [3]इह देवनारका निजायुषः षण्मासावशेषा एवायुर्बध्नन्ति, अतो मिश्रयोगे उत्पत्तिकाले आयुर्द्वयबन्धाभावे ता एव सामान्योक्ताः प्रकृतीस्तीर्थकरोना मिथ्यादृशो देवाः १०१ नारकाश्च ९८ बध्नन्तीति ॥३०॥ अथ 'एगिंदि' इत्यादिगाथा विव्रियते—ता एव पुनरेकेन्द्रियजातिस्थावरातपनामनपुंसकवेदहुण्डसंस्थानसेवार्त्तसंहननमिथ्यात्वरूपनपुंसकचतुष्कवर्जिताः शेषाः सासादनवर्तिनो देवाः ९४, [4]नारका नपुंसकचतुष्केण वर्जिताः शेषाः न त्वेकेन्द्रियादित्रयेण तस्य प्रागेव 'थावरचउ जाईचउ' इत्यादिगाथयाऽपनीतत्वादित्यतश्चतुर्नवति ९४ सङ्ख्या एव बध्नन्ति। तथा तिर्यगायुरूनां 'पणवीस' इति विभक्तिलोपात् पञ्चविंशतिं मुक्त्वा सतीर्थकराः कर्मप्रकृतीरयता अविरतसम्यग्दृष्टिदेवाः ७१, तुशब्दः समुच्चयार्थः। नारकाश्च ७१ बध्नन्ति वैक्रियमिश्रयोग इति पूर्वेण योगः। मिश्रता चात्र प्रथमोत्पत्तौ कार्मणकायेनव सह मन्तव्येति। अयं च मिथ्यात्वसासादना[5]विरति गुणस्थानकत्रय एव लभ्यते नान्यत्र। यत एतेष्वेव गृहीतेषु जीवा म्रियन्ते नान्येषु। तथाहि—"मिच्छे सासाणे वा, अविरयसम्मम्मि अहव गहियमि। जंति जिया परलोए, सेसेक्कारसगुणे मोत्तुं ॥१॥" इति गाथाद्वयार्थः ॥३०-३१॥

---

१ "अविरतानां द्वासप्तति ७२ रिति" इत्यपि॥ २ "मुत्तु" इत्यपि पाठः। ३ "इह देवनारका निजायुषः षण्मासावशेषा एवायु र्बध्नन्ति, अतो मिश्रयोगे उत्पत्तिकाले आयुर्द्वयबन्धाभावे" इति पाठो जे० प्रतौ न दृश्यते। ४ "नारकाश्च नपुंसकादि चतु० इत्यपि। ५ "०विरत०" इत्यपि।

अथ गुणस्थानकदृष्टान्तपूर्वकं किंचिदधिकपादेनाहारकयोगद्वये, तथा सामान्यपदे गुणस्थानचतुष्टये च तदूनगाथात्रयेण कार्मणकाययोगे बन्धमाह—

तेवट्ठाहारदुगे, जहा पमत्तस्स कम्मणे बंधो ।
आउतिगं निरयतिगं, आहारय वज्जिउं ओघो ॥३२॥
[1]सुरदुगतित्थविउव्वियदुगाणि मोत्तूण बंधहिं मिच्छा ।
निरतिगहीणा सोलस, वज्जित्ता सासणा कम्मे ॥३३॥
तिरियाऊणं पणुवीस [2]मोत्तु सुरदुगविउव्विदुगजुत्तं ।
अजया तित्थेण समं, सजोगि सायं समुग्घाए ॥३४॥

(हारि०) व्याख्या—'तेवट्ठा' इति प्राकृतत्वाद्विभक्तिलोपे त्रिषष्टेः ६३ कर्मप्रकृतीनामिति गम्यते आहारकद्विके आहारकशरीर[3]तन्मिश्रलक्षणयोगद्वये बन्धो यथा प्रमत्तस्येति षष्ठीसप्तम्योरर्थं प्रत्यभेदाद्यथा प्रमत्ते प्रमत्तगुणस्थानके बन्धशब्दस्य वक्ष्यमाणस्यात्रापि योजनादेवं संबन्धः । साम्प्रतं कार्मणकाययोगे बन्धमाह—'कम्मणे बंधो आउतिगं' इत्यादि, आयुस्त्रिकं तिर्यङ्नरामरायुष्कलक्षणम् । नरकत्रिकं प्रागुक्तम् । 'आहारय' इति सूचकत्वात्सूत्रस्याहारकशरीरतदङ्गोपाङ्गलक्षणं द्वयं ग्राह्यं, इत्यष्टावोघबन्धाद्विंशत्युत्तरशतलक्षणाद्वर्जयित्वा शेषस्य द्वादशोत्तरशतस्य ११२ सामान्येन कार्मणकाययोगे बन्धः । इति गाथार्थः ॥३२॥ तथा—सुरद्विक २ तीर्थकर १ वैक्रियद्विकानि २ पूर्वोक्तानि, तत्पुरुषगर्भकृतद्वन्द्वसमासानि कर्माणीति शेषः, अनन्तरोक्तसामान्यबन्धद्वादशोत्तरशतमध्यान्मुक्त्वा शेषं सप्तोत्तरशतं १०७ कार्मणकाययोगे मिथ्यादृशो बध्नन्ति । तथा नरकत्रिकहीनाः षोडश प्रकृतीरिति शेषः, अनन्तरोक्तसप्तोत्तरशतमध्याद्वर्जयित्वा शेषां चतुर्नवतिं ९४ सासादनसम्यग्दृष्टयः 'कम्मे' इति कार्मणकाययोगे बध्नन्तीति प्राक्तनेन संबन्ध इति । 'कम्मणे बंधो' इति प्राक्तनगाथाया अनुवर्तमाने कार्मणकाययोगे यत् पुनरिहोक्तम् 'कम्मे' इति तद्गुणस्थानकयोजनार्थमिति न दोषः । इति गाथार्थः ॥३३॥ तथा—तिर्यगायुरूनां 'पणुवीस' इति विभक्तिलोपात्पञ्चविंशतिमनन्तरोक्तचतुर्नवतेर्मध्यान्मुक्त्वा शेषां सप्ततिं सुरद्विकवैक्रियद्विकयुक्तां तीर्थकरेण च 'समं' सार्द्धं पञ्चसप्ततिमित्यर्थः, अयता अविरतसम्यग्दृष्टयः कार्मणकाययोगे बध्नन्तीति ७५ पूर्वेण संबन्धः । अयं च कार्मणकाययोगो विग्रहगतौ गच्छतो जीवस्यानाहारकस्यैतद्गुणस्थानत्रयोपेतस्य लभ्यते । तथाहि—"मिच्छे सासाणे वा, अविरयसम्मम्मि अहव गहियम्मि । जंति जिया परलोए, सेसेका-

१ सुगुण इत्यपि पाठः । २ मुत्तु इत्यपि पाठः । ३ "—तन्मिश्रलक्षणे योगद्वये" इति व्यस्तं क्वचित् ॥

रसगुणे मोत्तु ॥१॥'' तथा '**सजोगि सायं समुग्घाए**' इति विभक्तिलोपात्सयोगिनस्त्रयोदशगुणस्थानवर्तिनः समुद्घाते केवलिसमुद्घाते तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु कार्मणकाययोगे सातमेवैकं १ बध्नन्तीत्यत्रापि प्राक्तनेन संबन्धः । एवं च कार्मणकाययोगो मिथ्यात्वसासादनाविरतसयोगिगुणस्थानकचतुष्टय एव लभ्यते, नान्यत्र । इति गाथार्थः ॥३२-३३-३४॥

एवं योगेषु बन्धस्वामित्वमुक्तम् ४ ॥ साम्प्रतं वेदद्वारे कषायद्वारे च तत्प्रतिपादयन्नाह–

वेयतिएवोघेणं, बंधो जा बायरो हवइ ताव ।
कोहाइसु चउमोघो, मिच्छाओ जाव [1]अनियट्टिं ॥३५॥

(हारि०) व्याख्या–'**वेदत्रिकेऽपि**' स्त्रीवेदपुरुषवेदनपुंसकवेदरूपे '**ओघेन**' सामान्येन बन्धः कर्मस्तवोक्तो यावदनिवृत्तिबादरगुणस्थानकं तावद्भवति, ततः परं वेदानामभावादिति । तद्यथा–सामान्येन १२० । मि० ११७ । सासादन १०१ । मिश्र ७४ । अविरत ७७ । दे० ६७ । प्र० ६३ ।अ० ५९, ५८। नि० ५८, ५६ २६ ।अ० २२, २१, २०, १९, १८, । इति वेदेषु बन्धस्वामित्वमुक्तम् ५ ॥ तथा क्रोधादिषु चतुर्ष्वोघबन्धो मिथ्यादृष्टेरारभ्य यावदनिवृत्तिबादरगुणस्थानकम् । तद्यथा–सामान्येन १२०, मि० ११७, सा० १०१, इत्यादिकोऽनन्तरोक्तो वेदद्वारवत् । इति गाथार्थः ॥३५॥

इति कषायद्वारे बन्धस्वामित्वमुक्तम् ६॥ साम्प्रतं ज्ञानद्वारे गुणस्थानकगमं यथायोगं तदारभ्यते ।

अण्णाणतिएवोघो, मिच्छासाणेसु नवसु नाणतिए ।
मणपज्जवेवि सत्तसु, ओघं दुसु [2]केवलिस्सावि ॥३६॥

(हारि०) व्याख्या–'**अज्ञानत्रिकेऽपि**' मत्याज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपे मिथ्यादृष्टिसासादन-[4]गुण-स्थानकयोरुपलक्षणत्वान्मिश्रे चौघबन्धः। तथा '**ज्ञानत्रिके**' मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानलक्षणे '**नवसु**' गुणस्थानकेष्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादिक्षीणमोहान्तेष्वोघबन्ध इति संबन्धः । तथा मनःपर्यायज्ञानेऽपि सप्तसु गुणस्थानकेषु प्रमत्तसंयतगुणस्थानादिक्षीणमोहान्तेषु '**ओघं**' इति प्राकृतत्वादोघबन्ध इति । तथा केवलिनोऽपि '**द्वयोः**' सयोग्ययोगिगुणस्थानकयोरोघबन्ध इति पूर्वेण योगः । सर्वत्र कर्मस्तवोक्तोऽयमोघबन्धो द्रष्टव्यः । यत्पुनरप्योघशब्दोपादानमेकगाथायां तत्सुखार्थम् । तथा त्रयोऽप्यपिशब्दाः समुच्चयार्थाः । स चाकृत एवम् । अज्ञानत्रिके–सामान्येन

---

१ "अनियट्टी" इत्यपि पाठः। २ "ओघो" इत्यपि पाठः । ३ "केवलस्सावि" इत्यपि पाठः । ४ "–गुणस्थानकं यावदुपल०" इत्यपि ग।

११७ । मि० ११७ । सा० १०१ । मिश्रे ७४ । ज्ञानत्रये—अविरते ७७ । दे० ६७ । प्र० ६३ । अ० ५९. ५८ । नि० ५८, ५६. २६ । अनि० २२, २१, २०, १९, १८ । सू० १७ । उ० १ । क्षी० १ । मनःपर्यवे—प्र० ६३ । अ० ५९ ५८। नि० ५८, ५६, २६ । अ० २२, २१, २०, १९, १८ । सू० १७ । उ० १ । क्षी० १ । केवलिनः स० १ अ०—० । [1]इह ज्ञानद्वारे मिश्रगुणस्थानकेऽप्युपलक्षणत्वादोघबन्धो द्रष्टव्यः ७४ । इति गाथार्थः ॥३६॥

एवं ज्ञानद्वारे सप्रतिपक्षे बन्धस्वामित्वमुक्तम् ७॥ अथ संयमद्वारे यथायोगं गुणस्थानकसन्मिश्रं तत्प्रति[2]पादयन्नाह—

सामाइयछेएसुं, पमत्तमाईसु चउसु ओघोत्ति ।
परिहारस्स पमत्तो, अपमत्तो सुहुम सट्ठाणे ॥३७॥
उवसंताइसु अहखाय देसविरयस्स होइ सट्ठाणे ।
[3]मिच्छाईसु चऊसुं, ओघो अस्संजयस्सावि ॥३८॥

(हारि०) व्याख्या—सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोः प्रमत्तादिषु चतुर्ष्वोघबन्धः । 'इतिः वाक्यसमाप्तौ । तथा '**परिहारस्य**' परिहारविशुद्धिकस्य प्रमत्तेऽप्रमत्ते च गुणस्थानकद्वये ओघबन्ध इति योगः, एवमुत्तरत्रापि । '**सुहुम**' इति विभक्तिलोपात्सूक्ष्मसम्परायस्य '**सट्ठाणे**' इति स्वस्थाने सूक्ष्मसम्पराये गुणस्थानक इति ॥३७॥ तथोपशान्तादिषु चतुर्षु गुणस्थानकेषु '**अहखाय**' इति विभक्तिलोपाद्यथाख्यातस्य, तथा देशविरतस्य स्वस्थाने भवति बन्धः । तथा मिथ्यात्वादिषु चतुर्ष्वसंयतस्यापि, न केवलं प्राक्तनेषु इत्यपिशब्दार्थः, ओघबन्धः । तद्यथा प्रथमसंयमयोः—प्र० ६३ । अ० ५९ ५८। नि० ५८, ५६, २६ । अ० २२, २१, २०, १९, १८ । परिहारविशुद्धिकस्य—प्र० ६३ । अप्र० ५९ । सूक्ष्मस्य—सू० १७ । यथाख्यातस्य—उ० १ । क्षी० १ । स० १ । अ०—० । देशविरतस्य—दे० ६७ । असंयतस्य—मिथ्या० ११७ । सा०—१०१ । मि० ७४ । अ० ७७ । इति गाथाद्वयार्थः ॥३७-३८॥

इति संयमद्वारे देशसंयमासंयमाभ्यां युक्ते बन्धस्वामित्वमुक्तम् ८ ॥ साम्प्रतं दर्शनद्वारे [4]सगुणस्थानके तन्निरूपयन्नाह—

चक्खुअचक्खू ओघो, मिच्छाई खीणमोह ओहिस्स ।
अजयाइनवसु केवलदंसण केवलिदुगे चेव ॥३९॥

---

१ "इह ज्ञानद्वारे मिश्रगुणस्थानके बन्धो न चिन्तितः तस्य मिश्ररूपत्वादिति सम्भाव्यत इति गाथार्थः ॥ ३६ ॥" इति जे० । २ "-पादनायाह" इत्यपि ॥ ३ "मिच्छाईसुं चउसु" इत्यपि पाठः । ४ "गुणस्थानकेषु" इत्यपि पाठः ।

(हारि०) व्याख्या-चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्मिथ्यादृगादि 'खीणमोह' इति प्राकृतवशात्पदैकदेशेऽपि पदावगमात्क्षीणमोहान्तेष्वोघवन्धः। तद्यथा—सामान्यतः १२० । मि० ११७ । सा० १०१ । मि० ७४ । अ० ७७ । दे० ६७ । प्र० ६३ । अ० ५९, ५८ । नि० ५८, ५६, २६, । अ० २२, २१, २०, १९, १८ । सू० १७ । उ० १ । क्षी० १ । तथा 'ओहिस्स' इति विभक्तिव्यत्ययादवधिदर्शने अयतादिष्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादिषु नवरिवतिभणनात्क्षीणमोहान्तेष्विति लभ्यते ओघवन्धः। तद्यथा—अविरतस्य सप्तसप्तति ७७ रित्यादिरनन्तरं दर्शित एवेति। 'केवल-दंसण' इति विभक्तिलोपात्केवलदर्शने 'केवलिदुगे चेव' इति केवलिसत्कसयोग्ययोगिगुण-स्थानकद्विके चौघवन्ध इति पूर्वेण संवन्धः। तद्यथा—स० १ । अ०—० । इति गाथार्थः ३९॥

इति दर्शनद्वारे बन्धस्वामित्वं [1]निरूपितम् ९ ॥ साम्प्रतं लेश्याद्वारमभिधीयते, तत्रादौ गुणस्थानकेषु ताः प्रतिपाद्य तत[2]स्तद्गतं बन्धस्वामित्वं भणिष्यते—

छसु चउसु [3]तिण्णि तीसुं, छण्हं सुक्का अजोगि अल्लेसा ।
आहारूणा आइतिलेसी बंधंति सव्वपयडीओ ॥४०॥ गीतिरियम् ॥

(हारि०) व्याख्या—षड् लेश्याश्चतुर्षु आद्यगुणस्थानकेषु ततस्तिस्रो लेश्यास्तेजो-लेश्याद्यास्त्रिषु देशविरतप्रमत्ता[4]प्रमत्तेषु ततः 'छण्हं' इति विभक्तिव्यत्ययात् षट्सु निवृत्तिवादर-गुणस्थानकादिषु सयोग्यन्तेषु । शुक्लैवैका लेश्या, अयोगिनस्त्वलेश्या एवेति। अङ्कतः—मि० ६ । सा० ६ । मि० ६ । अ० ६ । दे० ३ । प्र० ३ । अ० ३ । नि० १ । अ० । १ सू० १ । उ० १ क्षी० १ । स० १ । अ०—० । इति योजिता लेश्या गुणस्थानकेषु । साम्प्रतमुक्त-लेश्यावत्सु गुणस्थानकेषु बंधस्वामित्वं योज्यते—आहारकद्विकोनाः सर्वाः प्रकृतीः 'आइति-लेसी' इति प्राकृतशैलीवशादाद्यत्रिलेश्यावन्तः, इत्याद्यगुणस्थानकचतुष्केऽपि योज्यम् । सामा-न्येन बध्नन्ति ११८ । इति गाथार्थः ॥४०॥

तथा—

मिच्छा तित्थोणा ता, साणा उण सोलसविहूणा ।
सुरनरआऊ [5]पणवीस मोत्तु बंधंति मीसा उ ॥४१॥ उद्गीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या-मिथ्यादृशस्तीर्थकरोनास्ता अनन्तरोक्ता अष्टादशाधिकशतसंख्याः प्रकृती-र्बध्नन्तीति योगः। तद्यथा—मि० ११७ । सासादनाः पुनः षोडशविहीनास्ताः पूर्वोक्तसप्तदशा-

---

१ "प्ररूपितम्" इत्यपि । २ "स्तद्द्वारबन्ध०" इत्यपि । ३ "तिन्नि" इत्यपि । ४ "०प्रमत्तान्तेषु इत्यपि । ५ "पणुवीस मुत्तु" इत्यपि ।

धिकशतप्रमाणा बध्नन्तीत्यत्रापि योज्यम् तद्यथा–सा० १०१ । तथा सुरनरायुषी पञ्चविंशतिं च पूर्वोक्तामेकाग्रशतान्मुक्त्वा शेषां चतुःसप्ततिं ७४ मिश्रा बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥४१॥

तथा—

सुरनरआउयसहिया, अविरयसम्मा उ [1]होंति नायव्वा ।
तित्थयरेण जुया तह, तेऊलेसे [2]परं वोच्छं ॥४२॥

(हारि०) व्याख्या–सुरनरायुष्कसहितास्तीर्थकरेण युताश्चतुःसप्ततिसंख्याः प्रकृतय इति शेषः । '**अविरयसम्मा उ**' इति विभक्तिव्यत्ययात्तथाऽविरतसम्यग्दृष्टिषु '**भवन्ति**' ज्ञातव्याः । तुशब्दः समुच्चयार्थः, स च प्राग् योजित एव । तथाशब्दोऽपीत्ययमर्थः–पूर्वोक्तां चतुःसप्ततिमेतत्प्रकृतित्रयसहितामतिरतसम्यग्दृशो बध्नन्ति ७७ इति । अथ गाथाचतुर्थपादेनाग्रेतनग्रन्थसंबन्धमाह '**तेऊलेसे**' इति प्राकृतत्वात्तेजोलेश्यायामतः परं 'वक्ष्ये' अभिधास्ये । इति गाथार्थः ॥४२॥

यथाप्रतिज्ञातमेवाह—

विगलतिगं निरयतिगं सुहुमतिगूणं सयं तु [3]एक्कारं ।
तित्थाहारूणा मिच्छ साण इगितिनपुचउरूणा ॥४३॥

(हारि०) व्याख्या–अनुस्वारयोरलाक्षणिकत्वाद्विकलत्रिकनरकत्रिकसूक्ष्मसाधारणापर्याप्तलक्षणसूक्ष्मत्रिकोनं पुनर्विंशत्युत्तरशतमेकादशाधिकशतं भवति तच्छतमेकादशाग्रं १११ । तुशब्दो योजित एव, सामान्येन तेजोलेश्याका जीवा बध्नन्तीति वक्ष्यमाणेन संबन्धः । '**तित्थाहारूणा**' इति प्राकृतत्वेन द्विकशब्दलोपात्तीर्थकराहारकद्विकोना एकादशोत्तरशतसंख्यप्रकृतीर्मिथ्यादृशस्तेजोलेश्यावन्तो बध्नन्तीति १०८ । '**इगिति**' इति सूचकत्वात्सूत्रस्यैकेन्द्रियजातिस्थावरातपनामेति त्रिकं, '**नपुचउरूणा**' इति प्राकृतत्वादेव नपुंसकवेदहुण्डसंस्थानसेवार्तसंहननमिथ्यात्वलक्षणनपुंसकचतुष्कं, अनयोर्द्वन्द्वः ताभ्यामूना हीना एकेन्द्रियत्रिकनपुंसकचतुष्कोना अनन्तरोक्ता अष्टाधिकशतसङ्ख्याः प्रकृतय एकोत्तरशतसङ्ख्या भवन्ति १०१ । तास्तेजोलेश्याकाः सासादना बध्नन्ति । इति गाथार्थः ॥४३॥

मीसाईपंचगुणा, ओघं बंधंति पम्हलेसा वि ।
विगलतिगं निरयतिगं, सुहुमतिगेगिंदिथावरायावं ॥४४॥
हिच्चा सयमट्ठहियं, तित्थाहारदुगहीण मिच्छाओ ।
संढाइचउक्कोणं, साणा मीसाइ पणगओघं तु ॥४५॥ गीतिद्वयम् ॥

---

१ हुंति" इत्यपि पाठः २ "परे वुच्छं" इत्यपि । ३ "इक्कारं" इत्यपि पाठः ।

(हारि०) व्याख्या-'तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेशः' इतिन्यायान्मिश्रादिपञ्चगुणस्था जीवाः कर्मस्तवोक्तमोघं बध्नन्ति। तद्यथा—मिश्र ७४। अ० ७७। दे० ६७। प्र० ६३। अ० ५९, इति तेजोलेश्याकाः। तथा पद्मलेश्याका अपि विकलत्रिकं नरकत्रिकं पूर्वोक्तस्वरूपम्। 'सुहुमतिग' इति सूक्ष्मनामसाधारणनामापर्याप्तकनामलक्षणसूक्ष्मत्रिकमेकेन्द्रियजातिस्थावरनामातपनाम चेति पदद्वयस्य समाहारद्वन्द्वस्तदिति द्वादशप्रकृतीरित्यर्थः, 'हित्वा' त्यक्त्वा विंशत्यधिकशतमध्यादिति शेषः। शेषं शतमष्टाधिकं सामान्येन १०८ बध्नन्तीति प्राक्तनक्रियायोग इति। तथा तीर्थकराहारकद्विकहीनाः पूर्वोक्ताष्टाधिकशतसङ्ख्याः प्रकृतीर्मिथ्यादृशस्तु पद्मलेश्याका बध्नन्तीति योगः १०५। तथा पञ्चोत्तरशतं 'संढाइचउक्कोणं' इति नपुंसकादिचतुष्केण पूर्वोक्तेनोनं हीनं नपुंसकादिचतुष्कोनं पद्मलेश्याकाः सासादना बध्नन्तीति १०१। तथा मिश्रादयः 'पणग' इति पञ्चौघं पद्मलेश्याका बध्नन्तीति योगः। तद्यथा—मिश्र० ७४। अ० ७७। देश० ६७। प्र० ६३। अ० ५९, ५८। तुः' पूरणे समुच्चये वा। इति गाथद्वयार्थः। ॥ ४४-४५ ॥

उक्तः पद्मलेश्यावत्सु गुणस्थानकेषु बन्धः। साम्प्रतं शुक्ललेश्यावत्सु जीवेषु सामान्येन स उच्यते—

बंधंति सुक्कलेसा, नारयतिरिसुहुमविगलजाइतिगं।
इगिथावरायवुज्जोय वज्जिय सयं तु चउरहियं ॥४६॥

(हारि०) व्याख्या—बध्नन्ति शुक्ललेश्याकास्तु सामान्येनेति शेषः। किं तत्? शतं चतुरधिकमिति संबन्धः। तुशब्दो योजित एव। किं कृत्वा? 'वज्जिय' इति वर्जयित्वेति योगः। किं तत्? नारकतिर्यक्त्रिकसूक्ष्मत्रिकविकलजातित्रिकम्। अत्र तत्पुरुषगर्भः समाहारद्वन्द्वः। त्रिकशब्दस्य च प्रत्येकमभिसंबन्धः कार्यः। तथा 'इगिथावरायवुज्जोय' इति विभक्तिलोपादेकेन्द्रियजातिस्थावरनामातपनामोद्द्योतनाम चेति प्रकृतिषोडशकमित्यर्थः, 'वर्जयित्वा' त्यक्त्वा विंशत्यधिकशतमध्यादिति शेष इति। तद्यथा—सामान्येन १०४। इति गाथार्थः ॥४६॥

साम्प्रतं शुक्ललेश्यावतामेव त्रयोदशगुणस्थानकेषु बन्धमाह—

तित्थाहारदुगूणं, एगहियसयं तु बंधही मिच्छा।
संढाइचउक्कोणं, साणा बंधंति [2]सगनउई ॥४७॥

---

१ "इग" इत्यपि। २ "सगणवई" इत्यपि पाठः।

(हारि०) व्याख्या–किंचिदत्र साध्याहारा योजना ततस्तदनन्तरोक्तं चतुरग्रशतं तीर्थकराहारकद्विकोनमेकाग्रशतं भवति, तच्छुक्ललेश्याका मिथ्यादृशो बध्नन्ति १०१ । पुनरेतदेवैकाग्रशतं 'संढाइचउक्कोणं' इति नपुंसकादिचतुष्केण पूर्वोक्तेनोनं हीनं नपुंसकादिचतुष्कोनं [1] सत् सप्तनवतिर्भवति, तां शुक्ललेश्याकाः सासादना बध्नन्ति । यदिह बध्नन्तीति द्विरुपादानं तद्गुणस्थानकद्वययोजनेन सुखार्थम् । इति गाथार्थः ॥४७॥

तथा—

तिरितियउज्जोऊणं पणुवीसं [2]मोत्तु सुरनराउजुयं ।
चउहत्तरिं तु मीसा. बंधहिँ कम्माण पयडीओ ॥४८॥

(हारि०) व्याख्या–तिर्यक्त्रिकोद्द्योतोनां पञ्चविंशतिं सुरनरायुर्युतां सप्तनवतेर्मध्यान्मुक्त्वा चतुःसप्ततिं शुक्ललेश्याका मिश्रा बध्नन्ति ७४ कर्मणां प्रकृतीः । इति गाथार्थः ॥४८॥

साम्प्रतं बन्धमाश्रित्य लेश्याद्वारं गाथायाः पादत्रयेण समर्थयंश्चतुर्थपादेन तु भव्यद्वारे बन्धस्वामित्वमुपदर्शयन्नाह—

तित्थयरसुरनराउयसहिया अजयम्मि होइ सगसयरी ।
देसाइनवसु ओघो, भव्वेसु वि सो अभव्व मिच्छसमा ॥४९॥ गीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या–तीर्थकरसुरनरायुष्कसहिता 'अयते' अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके सप्तसप्ततिर्भवति ७७ शुक्ललेश्याकानां बन्धमाश्रित्येति शेषः । तथा 'देसाइ' इति देशविरतादिनवसु गुणस्थानकेष्विति शेषः, ओघबन्धः । तद्यथा–देश० ६७ । प्र० ६३ । अ० ५९, ५८ । नि० ५८, ५६, २६ । अ० २२, २१, २०, १९, १८ । सू० १७ । उ० १ । क्षी० १ । स० १ इति लेश्यासु बन्धस्वामित्वमुक्तम् १० ॥ साम्प्रतं भव्यद्वारे तदभिधीयते– 'भव्वेसु वि' इति भव्येष्वपि न केवलं प्राक्तनपदेष्वित्यपिशब्दार्थः । 'सो' इति यः पूर्वं कर्मस्तवोक्तो बन्धो दृष्टान्तीकृतः स बन्धो भवतीति योगः । तद्यथा–सामान्येन १२० । मि० ११७ । इत्यादिकः । तथा 'अभव्व मिच्छसमा' इति प्राकृतत्वादभव्या मिथ्यादृष्टिसमाः । तद्यथा–मि० ११७ । इति गाथार्थः ॥४९॥

एवं भव्याभव्येषु बन्ध उक्तः ११ ॥ साम्प्रतं [3]सम्यक्त्वद्वारे यथासंभवं गुणस्थानकसम्मिश्रः सम्यक्त्वे उच्यते—

---

१ "तत्सप्त–" इत्यपि पाठः ॥ २ 'मुत्त' इत्यपि पाठः । ३ "सम्यक्त्वद्वारे" इति पाठो नास्ति जे० प्रतौ ।

(हारि०) व्याख्या-'तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेशः' इतिन्यायान्मिश्रादिपञ्चगुणस्था जीवाः कर्मस्तवोक्तमोघं बध्नन्ति। तद्यथा–मिश्र ७४। अ० ७७। दे० ६७। प्र० ६३। अ० ५९, इति तेजोलेश्याकाः। तथा पद्मलेश्याका अपि विकलत्रिकं नरकत्रिकं पूर्वोक्तस्वरूपम्। 'सुहुमतिग' इति सूक्ष्मनामसाधारणनामापर्याप्तकनामलक्षणसूक्ष्मत्रिकमेकेन्द्रियजातिस्थावरनामातपनाम चेति पदद्वयस्य समाहारद्वन्द्वस्तदिति द्वादशप्रकृतीरित्यर्थः, 'हित्वा' त्यक्त्वा विंशत्यधिकशतमध्यादिति शेषः। शेषं शतमष्टाधिकं सामान्येन १०८ बध्नन्तीति प्राक्तनक्रियायोग इति। तथा तीर्थकराहारकद्विकहीनाः पूर्वोक्ताष्टाधिकशतसङ्ख्याः प्रकृतीर्मिथ्यादृशस्तु पद्मलेश्याका बध्नन्तीति योगः १०५। तथा पञ्चोत्तरशतं 'संढाइचउक्कोणं' इति नपुंसकादिचतुष्केण पूर्वोक्तेनोनं हीनं नपुंसकादिचतुष्कोनं पद्मलेश्याकाः सासादना बध्नन्तीति १०१। तथा मिश्रादयः 'पणग' इति पञ्चौघं पद्मलेश्याका बध्नन्तीति योगः। तद्यथा–मिश्र० ७४। अ० ७७। देश० ६७। प्र० ६३। अ० ५९, ५८। 'तुः' पूरणे समुच्चये वा। इति गाथाद्वयार्थः। ॥ ४४–४५ ॥

उक्तः पद्मलेश्यावत्सु गुणस्थानकेषु बन्धः। साम्प्रतं शुक्ललेश्यावत्सु जीवेषु सामान्येन स उच्यते—

वंधंति सुक्कलेसा, नारयतिरिसुहुमविगलजाइतिगं।
इगिथावरायवुज्जोय वज्जिय सयं तु चउरहियं ॥४६॥

(हारि०) व्याख्या–बध्नन्ति शुक्ललेश्याकास्तु सामान्येनेति शेषः। किं तत्? शतं चतुरधिकमिति संवन्धः। तुशब्दो योजित एव। किं कृत्वा? 'वज्जिय' इति वर्जयित्वेति योगः। किं तत्? नारकतिर्यक्त्रिकसूक्ष्मत्रिकविकलजातित्रिकम्। अत्र तत्पुरुषगर्भः समाहारद्वन्द्वः। त्रिकशब्दस्य च प्रत्येकमभिसंवन्धः कार्यः। तथा 'इगिथावरायवुज्जोय' इति विभक्तिलोपादेकेन्द्रियजातिस्थावरनामातपनामोद्योतनाम चेति प्रकृतिषोडशकमित्यर्थः, 'वर्जयित्वा' त्यक्त्वा विंशत्यधिकशतमध्यादिति शेष इति। तद्यथा–सामान्येन १०४। इति गाथार्थः ॥४६॥

साम्प्रतं शुक्ललेश्यावतामेव त्रयोदशगुणस्थानकेषु बन्धमाह—

तित्थाहारदुगूणं, एगहियसयं तु बंधही मिच्छा।
संढाइचउक्कोणं, साणा बंधंति [1]सगनउइं ॥४७॥

---

१ "बुग" इत्यपि। २ "सगणवई" इत्यपि पाठः।

(हारि०) व्याख्या-किंचिदत्र साध्याहारा योजना ततस्तदनन्तरोक्तं चतुरग्रशतं तीर्थकराहारकद्विकोनमेकाग्रशतं भवति, तच्छुक्ललेश्याका मिथ्यादृशो बध्नन्ति १०१ । पुनरेतदेवैकाग्रशतं 'संढाइचउक्कोणं' इति नपुंसकादिचतुष्केण पूर्वोक्तेनोनं हीनं नपुंसकादिचतुष्कोनं ¹मत् सप्तनवतिर्भवति, तां शुक्ललेश्याकाः सासादना बध्नन्ति । यदिह बध्नन्तीति द्विरुपादानं तद्गुणस्थानकद्वययोजनेन सुखार्थम् । इति गाथार्थः ॥४७॥

तथा—

तिरितियउज्जोऊणं पणुवीसं ²मोत्तु सुरनराउजुयं ।
चउहत्तरिं तु मीसा बंधहिँ कम्माण पयडीओ ॥४८॥

(हारि०) व्याख्या-तिर्यक्त्रिकोद्द्योतोनां पञ्चविंशतिं सुरनरायुर्युतां सप्तनवतेर्मध्यान्मुक्त्वा चतुःसप्ततिं शुक्ललेश्याका मिश्रा बध्नन्ति ७४ कर्मणां प्रकृतीः । इति गाथार्थः ॥४८॥

साम्प्रतं बन्धमाश्रित्य लेश्याद्वारं गाथायाः पादत्रयेण समर्थयंश्चतुर्थपादेन तु भव्यद्वारे बन्धस्वामित्वमुपदर्शयन्नाह—

तित्थयरसुरनराउयसहिया अजयम्मि होइ सगसयरी ।
देसाइनवसु ओघो, भव्वेसु वि सो अभव्व मिच्छसमा ॥४९॥ गीतिरियम्

(हारि०) व्याख्या-तीर्थकरसुरनरायुष्कसहिता 'अयते' अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके सप्तसप्ततिर्भवति ७७ शुक्ललेश्याकानां बन्धमाश्रित्येति शेषः । तथा 'देसाइ' इति देशविरतादिनवसु गुणस्थानकेष्विति शेषः, ओघबन्धः । तद्यथा-देश० ६७ । प्र० ६३ । अ० ५९, ५८ । नि० ५८, ५६, २६ । अ० २२, २१, २०, १९, १८ । सू० १७ । उ० १ । क्षी० १ । स० १ इति लेश्यासु बन्धस्वामित्वमुक्तम् १० ॥ साम्प्रतं भव्यद्वारे तदभिधीयते-'भव्वेसु वि' इति भव्येष्वपि न केवलं प्राक्तनपदेष्वित्यपिशब्दार्थः । 'सो' इति यः पूर्वं कर्मस्तवोक्तो बन्धो दृष्टान्तीकृतः स बन्धो भवतीति योगः । तद्यथा-सामान्येन १२० । मि० ११७ । इत्यादिकः । तथा **'अभव्व मिच्छसमा'** इति प्राकृतत्वादभव्या मिथ्यादृष्टिसमाः । तद्यथा-मि० ११७ । इति गाथार्थः ॥४९॥

एवं भव्याभव्येषु बन्ध उक्तः ११ ॥ साम्प्रतं ³सम्यक्त्वद्वारे यथासंभवं गुणस्थानकसम्मिश्रः सम्यक्त्वे उच्यते—

---

१ "सत्सप्त-" इत्यपि पाठः ॥ २ 'मुत्त' इत्यपि पाठः । ३ "सम्यक्त्वद्वारे" इति पाठो नास्ति जे० प्रतौ ।

ओघो वेयगसम्मे, अजयाइचउक्क खाइगेवोघो ।
अजयादजोगि जाव उ, ओघो उवसामिए होइ ॥५०॥
[1]उवसम्मे वट्टंता चउण्हमिक्कंपि आउयं [2]नेय ।
बंधंति तेण अजया, सुरनरआऊहिँ ऊणं तु ॥५१॥

(हारि०) व्याख्या–ओघबन्धः कर्मस्तवोक्तः, 'वेयगसम्मे' इति क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे गुणस्थानकमाश्रित्य, कस्मिन्? अत आह–'अजयाइचउक्क' इति विभक्तिलोपादविरतसम्य[3]ग्दृष्टि-देशयतप्रमत्ताप्रमत्तसयंतलक्षणगुणस्थानकचतुष्टये भवतीति योगः । तद्यथा–अविरत० ७७ । देश० ६७ । प्रमत्त० ६३ । अप्र० ५९, ५८ । क्षायोपशमिकसम्यक्त्वस्वरूपं तूदीर्णमिथ्यात्वक्षयेऽनुदीर्णोपशमे भवतीति । उक्तं च–"**मिच्छत्तं जमुइन्नं, तं खीणं अणुइयं तु उवसंतं । मीसीभावपरिणयं, वेइज्जंतं खओवसमं ॥१॥**" तथा '**खाइगेवोघो**' इति क्षायिकेऽप्योघबन्धो भवतीति सण्टङ्कः । कस्मिन्? अत आह–अजयादजोगिजाव' इति अयताच्चतुर्थगुणस्थानकादयोगिगुणस्थानकं चतुर्दशं यावत् । तद्यथा–अवि० ७७ । दे० ६७ । इत्यादिकः पूर्ववदिति । क्षायिकसम्यक्त्वस्वरूपं त्विदम्–"**खीणे दंसणमोहे, तिविहम्मि वि भवनियाणभूयम्मि । निप्पच्चवायमउलं, सम्मत्तं खाइयं होइ ॥१॥**" तथौघबन्ध औपशमिके भवतीति ॥५०॥ अत्र किंचिद्विशेषमाह–'**उवसम्मे**' इत्यादिद्वितीयगाथा व्याख्यायते–औपशमिके सम्यक्त्वे वर्तमाना जीवाश्चतुर्णां मध्यादेकमप्यायुष्कं नैव बध्नन्ति, तेन '**अयताः**' अविरतसम्यग्दृष्टयः सुरनरायुर्भ्यां, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, ऊनामेव नवरमोघं बध्नन्तीति । तदन्यायुष्कद्वयं प्रागेव मिथ्यात्वसासादनगुणस्थानकद्वयेऽपनीतम्, ततोऽयतानामौपशमिकसम्यक्त्वे पञ्चसप्ततिरेव भवतीति ७५ । अयमाशयः–कर्मस्तवोक्तौघबन्धोऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके सुरनरायुषोर्बन्धोऽस्ति, औपशमिके नास्ति । इति गाथाद्वयार्थः ॥५०-५१॥

साम्प्रतं गाथायाः पूर्वार्द्धेनौपशमिकसम्यक्त्वेऽपि देशविरताद्युपशान्तमोहान्तगुणस्थानकेषु बन्धं दर्शयन्नपरार्द्धेन तु संज्ञिद्वारे तमेव प्रतिपादयन्नाह—

ओघो देसजयाइसु, सुराउहीणो उ जाव उवसंतो ।
ओघो [4]सण्णिसु नेओ, मिच्छाभंगो असण्णीसु ॥५२॥

(हारि०) व्याख्या–ओघबन्धो देशयतादिषु, किं निःशेष एव? न इत्याह–सुरायुषा हीनः सुरायुर्हीनः, तुशब्दः पुनरर्थे । ओघबन्धे हि देशविरत्याद्यप्रमत्तान्तेषु सुरायुषो बन्धोऽस्ति,

1 "उवसंते" इत्यपि पाठः । 2 "नेय" इत्यपि पाठः । 3 "–ग्दृष्टिप्रभृतिगुणस्थानकचतुष्के भवतीति योगः" इति जे० प्रतौ ॥ 4 "सन्निसु" इत्यपि पाठः ।

औपशमिके सोऽपि नास्तीति भावः। अयं चौघबन्धः कियद्दूरं यावत् ज्ञेयः ? इत्याह–यावत् 'उपशान्तं' उपशान्तमोहवीतरागगुणस्थानकं प्राकृतत्वात्पुँल्लिङ्गनिर्देश इति। अङ्कतः पुनरीदृशः देव० ६६। प्र० २६। अ० ५८। नि० ५८, ५६, २६,। अ० २२, २१, २०, १९, १८। सू० १७। उ० १। अत्र देवायुर्बन्धाभावाद्देशविरतिप्रभृतिगुणस्थानकत्रय एव कर्मस्तवोक्त-बन्धाद्विशेषः. नान्यत्रेति। यदा पुनरुपशमश्रेणिस्थ आयुष्क[1]क्षये देवेषूत्पद्यतेऽसौ तदा त्वग्रति-पन्नौपशमिकसम्यक्त्व एवायुर्बन्धं विधत्त इति। इह सूत्रेऽनुक्तोऽपि सम्यक्त्वविपक्षभूतेषु मिथ्यात्वसासादनमिश्रेषु कर्मस्तवोक्त ओघबन्धो द्रष्टव्यः। स पुनः–मि० ११७। सा० १०१। मि० ७४। इति। अत्राह परः–ननु "**उवसामगसेढीए, पट्ठवओ अप्पमत्तविरओ उ। पज्जवसाणे सो वा, होइ पमत्तो अविरओ वा ॥९॥**" अयमर्थः–उपशमश्रेण्याः '**प्रस्थापकः**' आरोहकः '**अप्रमत्तविरतः**' सप्तमगुणस्थानकस्थः साधुर्भवति। स एवौपश-मिकः '**पर्यवसाने**' उपशमश्रेण्या अद्धाक्षये भवति प्रमत्तोऽविरतो वा। तथा '**सो वा**' इत्यत्र वाशब्दादुपशमश्रेणिस्थो मृतो वा देवेषूत्पन्नोऽविरतो वा भवतीति, सत्यम्, अपराचार्यमतेना-विरतादयोऽपि प्रारम्भका इति। [2]यत उक्तम्–"**अन्ने भणंति अविरयदेसपमत्तविरयाणं। अन्नयरो पडिवज्जइ, दंसणसमणम्मि उ नियट्टी ॥१॥**" चतुर्थपादस्यायमर्थः-दर्शन-त्रिकोपशमे सति निवृत्तिबादरो भवतीति। औपशमिकसम्यक्त्वं तूपशमश्रेण्यां प्रथमसम्यक्त्वलाभे वा भवति जीवस्य। उक्तं च–"**उवसामगसेढिगयस्स होइ उवसामियं तु सम्मत्तं। जो वा अकयतिपुंजो, अखवियमिच्छो लहइ सम्मं ॥१॥**" अत्राह परः–ननु क्षायोपशमिकौ-पशमिकसम्यक्त्वयोः कः प्रतिविशेषः, उच्यते–क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमिथ्यात्वदलिकवेदनं विपा-कतो नास्ति, प्रदेशतः पुनर्विधत्ते। औपशमिके तु प्रदेशतोऽपि नास्तीति विशेषः। एवं सप्रपञ्चं सम्यक्त्वद्वारे बन्धस्वामित्वमभिहितमिति १२॥ '**ओघो सण्णि०**' इत्यादि ओघबन्धः कर्म-स्तवोक्तः '**संज्ञिषु**' मनोविज्ञानवत्सु ज्ञेयः। तद्यथा–सामान्येन १२०। मि० ११७। इत्या-दिकः पूर्ववदिति। तथा मिथ्यादृष्टिभङ्गकः '**असंज्ञिषु**' मनोविज्ञानविकलेषु ज्ञेय इति पूर्वेण योगः। तद्यथा–मि० ११७। इति गाथार्थः ॥५२॥

अथ गाथायाः पूर्वार्द्धेन सासादनेऽसंज्ञिबन्धं समर्थयन्नपरार्द्धेनाहारकद्वारे सप्रतिपक्षे तमेवाह–

साणेवि असण्णिस्सा, भंगा [3]सण्णुब्भवा मुणेयव्वा।
आहारगेसु ओघो, इयरेसु य [4]कम्मणो भंगो ॥५३॥

---

१ "० क्षये सर्वार्थसिद्धावुत्पद्यतेऽसौ तदा" इति जे०। २ "यदुक्तम्" इत्यपि। ३ "सण्णिब्भवा" इत्यपि। ४ "कम्मुणो" इत्यपि पाठः।

(हारि०) व्याख्या--सासादनेऽप्यसंज्ञिनो भङ्गः संज्ञ्युद्भवो मुणितव्यः। तद्यथा-सा० १०१। इह सूत्रे बहुवचनं प्राकृतशैलीवशाद्। इति संज्ञिद्वारे बन्धोऽभिहित इति १३ ॥ 'आहारगेसु ओघो' इति आहारकेष्वोघबन्धः कर्मस्तवोक्तः। तद्यथा--सामान्येन १२०। मि० ११७। इत्यादिकः। तथेतरेषु पुनरनाहारकेषु "कम्मणो' इति कार्मशरीरस्य संबन्धी 'भंगो' [2]भङ्ग-विकल्पो मुणितव्य इति पूर्वेण योगः। तद्यथा--आयुस्त्रिकं नरकत्रिकं, आहारकद्विकम्, इत्यष्टौ प्रकृतीरोघबन्धाद्विंशत्यधिकशतलक्षणान्मुक्त्वा शेषस्य द्वादशोत्तरशतस्यानाहारके सामान्येन बन्धः ११२। तथा सुरद्विकं २ तीर्थकरं १ वैक्रियद्विकं २ च पूर्वोक्तद्वादशोत्तरशतमध्यान्मुक्त्वा शेषस्य सप्तोत्तरशतस्यानाहारके मिथ्यादृष्टेर्बन्धः १०७। तथा नरकत्रिकहीनाः षोडश प्रकृतीः पूर्वोक्ताः सप्तोत्तरशतमध्याद्वर्जयित्वा शेषायाश्चतुर्नवतेः सासादनगुणस्थानकेऽनाहारकजीवे बन्धः ९४। तिर्यगायुरूनां पञ्चत्रिंशतिं पूर्वोक्तां चतुर्नवतेर्मध्यान्मुक्त्वा शेषायाः सप्ततेः सुरद्विकवैक्रियद्विकतीर्थकरयुक्ताया अविरतगुणस्थानकेऽनाहारकजीवे बन्धः ७५। तथा सयोगिनि त्रयोदशगुणस्थानके एकस्याः सातप्रकृतेः समुद्घाते तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेष्वनाहारकजीवे बन्धः। अयं चानाहारकजीवो मिथ्यात्वसासादनाविरतसयोगिगुणस्थानकचतुष्टय एव लभ्यते, नान्यत्रेति। यदिदं बन्धस्वामित्वं कार्मणकाययोगे प्राक् चतुर्थयोगद्वारे प्रतिपादितं तदिहाप्यर्थतः स्मारितं विस्मरणशीलानाम्। नवरं तत्र कार्मणकाययोगाभिलापेनोक्तमिह त्वनाहारकाभिलापेन। इति गाथार्थः ॥५३॥

इत्याहारके बन्धस्वामित्वं प्रतिपादितम् १४ ॥ तत्प्रतिपादनाच्च प्रतिपादितं प्रकरणादौ प्रतिज्ञातं चतुर्दशमार्गणास्थानबन्धस्वामित्वं गुणस्थानकयोजनागर्भं यथासंभवं पर्याप्तकापर्याप्तकजीवस्थानक[3]सन्मिश्रं च। साम्प्रतमौद्धत्यपरिहारपूर्वकं प्रकरणसमर्थनां प्रयरणपरिज्ञानोपायं च प्रचिकटयिषुर्गाथामाह—

इय पुव्वसूरिकय[4]पगरणेसु जडबुद्धिणा [5]मए रइयं।
बंधस्सामित्तमिणं, नेयं कम्मत्थयं सोउं ॥५४॥

॥ बंधसामित्त सम्मत्तं ॥

(हारि०) व्याख्या-इतिशब्दः परिसमाप्तौ। 'पूर्वसूरिकृतप्रकरणेषु' कर्मप्रकृत्यादिषु विषये 'जडबुद्धिना' बालमतिना 'मए' इति ग्रन्थकार आत्मानं निर्दिशति, 'रचितं' निबद्धम्।

१ 'कम्मुणो" इत्यपि पाठः॥ २ "बन्धविकल्पो" इत्यपि। ३ "समन्वितं च" इत्यपि। ४ "०पगरणाउ" इत्यपि पाठः। ५ "मया" इत्यपि।

यद्वा विभक्तिव्यत्ययात्पूर्वसूरिकृतप्रकरणेभ्यः सकाशाद्रचितं स्वभावतः पुनर्जडमतिनेति शेषः। तथैवेति, 'बन्धस्वामित्वमिदं' प्रस्तुतप्रकरणमेतच्च 'ज्ञेयं' बोद्धव्यम्। किं कृत्वा? 'श्रुत्वा' आकर्ण्य, कम्? 'कर्मस्तवं' कर्मस्तवप्रकरणम्, इह बहुषु स्थानेषु तदुक्तबन्धनिर्देशद्वारेण बन्धाभिधानात्। इति गाथार्थः ॥५४॥

•

॥ अथ टीकाकृत्प्रशस्तिः ॥

•

यत्यालये मन्दगुरूपशोभे, सन्मङ्गले सद्बुधराजहंसे ।
तारापथे वा सुकविप्रचारे श्रीमानदेवाभिधसूरिगच्छे ॥१॥
भव्या बभूवुः शुभशस्यशिष्याः, अध्यापकाः श्रीजिनदेवसंज्ञाः ।
तेषां विनेयो गुरुभक्तियुक्तः समस्ति नाम्ना हरिभद्रसूरिः ॥२॥
अणहिल्लपाटकपुरे, श्रीमज्जयसिंहदेवनृपराज्ये ।
आशावरसौवर्णिकवसतौ विहिताधिवासेन ॥३॥
बन्धस्वामित्वाख्यप्रकरणवृत्तिः समासतो रचिता ।
तेनेयं तनुमतिना, प्राक्तनटिप्पनकमवलोक्य ॥४॥
अत्र च यन्मतिमान्द्यादुत्सूत्रं विरचितं कथञ्चिदपि ।
तच्छोध्यं धीमद्भिः, परोपकारैककृतचित्तैः ॥५॥
वर्षशतैकादशके द्वासप्तत्याऽधिके नभोमासे ।
सितपंचम्यां सूर्ये समर्थिता वृत्तिकेयमिति ॥६॥
अस्यामक्षरगणनाजातं शतपंचकं युतं षष्ट्या ।
द्वात्रिंशदक्षरात्मक–सदनुष्टुप्छन्दसां प्रायः ॥७॥

•

॥ इति श्रीमद्धरिभद्रसूरिविहिता बन्धस्वामित्वप्रकरणवृत्तिः समाप्ता ॥

•

॥ ग्रन्थाग्रम् ५६० ॥

समाप्तोऽयं सटीको बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः

(हारि०) व्याख्या--सासादनेऽप्यसंज्ञिनो भङ्गः संज्ञ्युद्भवो मुणितव्यः। तद्यथा-सा० १०१। इह सूत्रे बहुवचनं प्राकृतशैलीवशाद्। इति संज्ञिद्वारे बन्धोऽभिहित इति १३ ॥ 'आहारगेसु ओघो' इति आहारकेष्वोघबन्धः कर्मस्तवोक्तः। तद्यथा--सामान्येन १२०। मि० ११७। इत्यादिकः। तथेतरेषु पुनरनाहारकेषु "कम्मणो" इति कार्मशरीरस्य संबन्धी 'भंगो' [2]भङ्ग-विकल्पो मुणितव्य इति पूर्वेण योगः। तद्यथा-आयुस्त्रिकं नरकत्रिकं, आहारकद्विकम्, इत्यष्टौ प्रकृतीरोघबन्धाद्विंशत्यधिकशतलक्षणान्मुक्त्वा शेषस्य द्वादशोत्तरशतस्यानाहारके सामान्येन बन्धः ११२। तथा सुरद्विकं २ तीर्थकरं १ वैक्रियद्विकं २ च पूर्वोक्तद्वादशोत्तरशतमध्यान्मु-क्त्वा शेषस्य सप्तोत्तरशतस्यानाहारके मिथ्यादृष्टेर्बन्धः १०७। तथा नरकत्रिकहीनाः षोडश प्रकृतीः पूर्वोक्ताः सप्तोत्तरशतमध्याद्वर्जयित्वा शेषायाश्चतुर्नवतेः सासादनगुणस्थानकेऽनाहार-कजीवे बन्धः ९४। तिर्यगायुरूनां पञ्चविंशतिं पूर्वोक्तां चतुर्नवतेर्मध्यान्मुक्त्वा शेषायाः सप्ततेः सुरद्विकवैक्रियद्विकतीर्थकरयुक्ताया अविरतगुणस्थानकेऽनाहारकजीवे बन्धः ७५। तथा सयो-गिनि त्रयोदशगुणस्थानके एकस्याः सातप्रकृतेः समुद्धाते तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेष्वनाहारकजीवे बन्धः । अयं चानाहारकजीवो मिथ्यात्वसासादनाविरतसयोगिगुणस्थानकचतुष्टय एव लभ्यते, नान्यत्रेति। यदिदं बन्धस्वामित्वं कार्मणकाययोगे प्राक् चतुर्थयोगद्वारे प्रतिपादितं तदिहाप्यर्थतः स्मारितं विस्मरणशीलानाम्। नवरं तत्र कार्मणकाययोगाभिलापेनोक्तमिह त्वनाहारकाभिला-पेन। इति गाथार्थः ॥५३॥

इत्याहारके बन्धस्वामित्वं प्रतिपादितम् १४ ॥ तत्प्रतिपादनाच्च प्रतिपादितं प्रकरणादौ प्रतिज्ञातं चतुर्दशमार्गणास्थानबन्धस्वामित्वं गुणस्थानकयोजनागर्भं यथासंभवं पर्याप्तकापर्याप्तक-जीवस्थानक[3]सन्मिश्रं च। साम्प्रतमौद्धत्यपरिहारपूर्वकं प्रकरणसमर्थनां प्रयरणपरिज्ञानोपायं च प्रचिकटयिषुर्गाथामाह—

इय पुव्वसूरिकय[4]पगरणेसु जडबुद्धिणा [5]मए रइयं।
बंधस्सामित्तमिणं, नेयं कम्मत्थयं सोउं ॥५४॥

॥ बंधसामित्त सम्मत्तं ॥

(हारि०) व्याख्या-इतिशब्दः परिसमाप्तौ। 'पूर्वसूरिकृतप्रकरणेषु' कर्मप्रकृत्यादिषु विषये 'जडबुद्धिना' बालमतिना 'मए' इति ग्रन्थकार आत्मानं निर्दिशति, 'रचितं' निबद्धम्।

१ 'कम्मुणो" इत्यपि पाठः॥ २ "बन्धविकल्पो" इत्यपि । ३ "समन्वितं च" इत्यपि। ४ "०पग-रणाउ" इत्यपि पाठः। ५ "मया" इत्यपि।

यद्वा विभक्तिव्यत्ययात्पूर्वसूरिकृतप्रकरणेभ्यः सकाशाद्रचितं स्वभावतः पुनर्जडमतिनेति शेषः। तथैवेति, 'बन्धस्वामित्वमिदं' प्रस्तुतप्रकरणमेतच्च 'ज्ञेयं' बोद्धव्यम्। किं कृत्वा ? 'श्रुत्वा' आकर्ण्य, कम् ? 'कर्मस्तवं' कर्मस्तवप्रकरणम्, इह बहुषु स्थानेषु तदुक्तबन्धनिर्देशद्वारेण बन्धाभिधानात्। इति गाथार्थः ॥५४॥

•

॥ अथ टीकाकृत्प्रशस्तिः ॥

•

यत्यालये मन्दगुरूपशोभे, सन्मङ्गले सद्बुधराजहंसे ।
तारापथे वा सुकविप्रचारे श्रीमानदेवाभिधसूरिगच्छे ॥१॥
भव्या बभूवुः शुभशस्यशिष्याः, अध्यापकाः श्रीजिनदेवसंज्ञाः ।
तेषां विनेयो गुरुभक्तियुक्तः समस्ति नाम्ना हरिभद्रसूरिः ॥२॥
अणहिल्लपाटकपुरे, श्रीमज्जयसिंहदेवनृपराज्ये ।
आशावरसौवर्णिकवसतौ विहिताधिवासेन ॥३॥
बन्धस्वामित्वाख्यप्रकरणवृत्तिः समासतो रचिता ।
तेनेयं तनुमतिना, प्राक्तनटिप्पनकमवलोक्य ॥४॥
अत्र च यन्मतिमान्द्यादुत्सूत्रं विरचितं कथञ्चिदपि ।
तच्छोध्यं धीमद्भिः, परोपकारैककृतचित्तैः ॥५॥
वर्षशतैकादशके द्वासप्तत्याऽधिके नभोमासे ।
सितपंचम्यां सूर्ये समर्थिता वृत्तिकेयमिति ॥६॥
अस्यामक्षरगणनाज्ञातं शतपंचकं युतं षष्ट्या ।
द्वात्रिंशदक्षरात्मक-सदनुष्टुप्छन्दसां प्रायः ॥७॥

•

॥ इति श्रीमद्धरिभद्रसूरिविरचिता बन्धस्वामित्वप्रकरणवृत्तिः समाप्ता ॥

•

॥ ग्रन्थाग्रम् ५६० ॥

समाप्तोऽयं सटीको बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः

॥ ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ।

॥ न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

॥ सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

॥ कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीतः

षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ।

(अपरनाम—आगमिकवस्तुविचारसारप्रकरणम्)

श्रीहरिभद्रसूरिविरचितविवृत्त्या श्रीमन्मलयगिरिसूरिविरचितवृत्त्या च समलङ्कृतः



(हारिभद्री वृत्तिः)

नत्वा जिनं विधास्ये, विवृतिं जिनवल्लभप्रणीतस्य ।
आगमिकवस्तुविस्तर—विचारसारप्रकरणस्य ॥१॥

इह जिनवल्लभगणिनामा सूत्रकारो गणधरदेवादिनिबद्धातिगम्भीरशास्त्रार्थावगाहनाऽसमर्थानां विशिष्टसंहननायुर्मेधादिविकलानां कलिकालोत्पन्नमानवानामनुग्रहाय सूक्ष्मार्थ[1]सार्थप्रकाशनार्थं प्रस्तुतप्रकरणं चिकीर्षुर्मङ्गलादिप्रतिपादकमिदमादौ गाथाद्वितयमाह—

(मलयगिरीया वृत्तिः)

प्रणम्य सिद्धिशास्तारं, कर्मवैचित्र्यवेदिनम् ।
जिनेशं विदधे वृत्तिं, षडशीतेर्यथाऽऽगमम् ॥१॥

इह हि शिष्टाः क्वचिदिष्टे वस्तुनि प्रवर्तमानाः सन्त इष्टदेवतास्तवाभिधानपुरस्सरमेव प्रवर्तन्ते, न चायमाचार्यो न शिष्ट इति तत्समयपरिपालनार्थं तथा श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति, उक्तं च—"**श्रेयांसि बहुविघ्नानि, भवन्ति महतामपि । अश्रेयसि प्रवृत्तानां, क्वापि यान्ति विनायकाः ॥१॥**" इति । इदं च प्रकरणं सम्यग्ज्ञानहेतुत्वाच्छ्रेयोभूतमतो मा भूदत्र विघ्न इति विघ्नविनायकोपशान्तये चेष्टदेवतास्तवम् । तथा न प्रेक्षापूर्वकारिणः क्वचिदपि

---

१ "शास्त्रार्थ-०" इत्यपि ।

प्रयोजना[१]दिविरहे प्रवर्तन्ते। ततः प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं प्रयोजनादिकं च प्रतिपिपादयिषुरादाविदं गाथाद्वयमाह—

निच्छिन्नमोहपासं, पसरियविमलोरुकेवलपयासं।
पणयजणपूरियासं, पयओ पणमित्तु जिणपासं॥१॥
वोच्छामि जीवमग्गण–गुणठाणुवओगजोगलेसाई।
किंचि सुगुरूवएसा, सन्नाणसुझाणहेउत्ति ॥२॥

(हारि०) व्याख्या—तत्र विघ्नविनायकोपशान्तये शिष्यजनप्रवर्तनाय वा शिष्टसमयपरिपालनार्थं चेष्टदेवतानमस्काररूपं भावमङ्गलमुपादेयम्। तथा श्रोतृजनप्रवृत्त्यर्थं शिष्टसमयपरिपालनार्थं च संबन्धादित्रयं वाच्यम्। तथाहि-इह श्रेयोभूते वस्तुनि प्रवर्तमानानां प्रायो विघ्नः संभवति, श्रेयोभूतत्वादेव, श्रेयोभूतं चेदं स्वर्गापवर्गसंसर्गहेतुत्वाद्, विघ्नोपहतशक्तेश्च शास्त्रकर्तुश्चिकीर्षितप्रकरणस्यानिष्पत्तिर्मा भूदिति विघ्नविनायकोपशमनाय मङ्गलमुपादेयम्। आह च-"**बहुविग्घाइं सेयाइं तेण कयमङ्गलोवयारेहिं। सत्थे पयट्टियव्वं, विज्जाए महानिहीए व्व ॥१॥**" ननु मानसादिनमस्कारतपश्चरणादिना मङ्गलान्तरेणैव विघ्नोपशमसद्भावादिष्टसिद्धिर्भविष्यतीति किमनेन ग्रन्थगौरवकारिणा वाचनिकनमस्कारेण ? इति, सत्यम्, किन्तु श्रोतृजनप्रवृत्त्यर्थमिदं भविष्यति। तथाहि-यद्यप्युक्तन्यायेन कर्तुरविघ्नेष्टसिद्धिः स्यात्तथाऽपि प्रमादवतः शिष्यस्येष्टदेवतानमस्काररूपमङ्गलं विना प्रक्रान्तप्रकरणाध्ययनश्रवणादिषु प्रवर्तमानस्य विघ्नसंभवादप्रवृत्तिः स्यात्। मङ्गलवाक्योपन्यासे तु मङ्गलवचनाभिधानपूर्वकं प्रवर्तमानस्य मङ्गलवचनापादितदेवता[२]विषयशुभभावव्यपोहितविघ्नत्वेन शास्त्रे प्रवृत्तिरप्रतिहतप्रसरा स्यात्। तथा देवताविशेषनमस्कारोपादाने सति देवताविशेषगदितागमानुसारीदं प्रकरणमत उपादेयमित्येवंविधबुद्धिनिबन्धनत्वेन शिष्यप्रवृत्त्यर्थमिदं भविष्यतीति। आह च-"**मंगलपुव्वपवत्तो, पमत्तसीसो वि पारमिह जाइ। सत्थविसेसन्नाणाउ गोरवाविह पयट्टेज्जा ॥१॥**" शास्त्रविशेषपरिज्ञानात् इत्युक्तगाथायास्तृतीयपादस्यार्थः। ननु मङ्गलविकलानामपि बहुतमशास्त्राणां दृश्यते संसिद्धिः श्रोतृजनप्रवृत्तिश्चेति, ततः किमनेनानैकान्तिकेन शास्त्रगौरवकारिणा मङ्गलेन ? इति सत्यम् शिष्टसमयपरिपालनार्थमिदं भविष्यति। तथाहि—शिष्टाः क्वचिदभीष्टे वस्तुनि प्रवर्तमाना इष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं प्रायः प्रवर्तन्ते। शिष्टश्चायमप्या-

१ आदिशब्दात् संबन्धाभिधेयग्रहणम्॥ २ "विशेषनमस्कारोपलब्धशुभ०—" इत्यपि पाठः।

चार्य इति शिष्टसमाचारः परिपालितो भवतु, इति मङ्गलमभिधेयम्। आह च–"**शिष्टाः शिष्टत्वमायान्ति, शिष्टमार्गानुपालनात्। तल्लङ्घनादशिष्टत्वं, तेषां समनुषज्यते॥१॥**" तथा संबन्धादीनि श्रोतृजनप्रवृत्त्यर्थमभिधेयानि। तथाहि–'यदसंबन्धं तत्र न प्रवर्तन्ते प्रेक्षावन्तो दशदाडिमादिवाक्य इव। एवं निरभिधेयेऽपि काकदन्तपरीक्षायामिव। एवं निष्प्रयोजनेऽपि कण्टकशाखामर्दन इवेति। अतः संबन्धादिप्रतिपादनं श्रोतृणां शास्त्रे प्रवृत्त्यङ्गम्। अथासर्वज्ञादीतरागवचनानां व्यभिचारित्वसंभवेन संबन्धादिसद्भावे निश्चयाभावान्नेतः प्रेक्षावतां प्रवृत्तिरत्र भविष्यति। या पुनः संशयात्प्रवृत्तिस्तां संबन्धादिवचनं विनैव भवन्तीं को निवारयितुं पारयतीति न श्रोतृप्रवृत्त्यङ्गं संबन्धादिवचनम्, सत्यम्, किन्तु शिष्टसमयपरिपालनार्थं भविष्यति। शास्त्रकारा ह्येवं प्रवर्तमानाः प्रायः प्रेक्ष्यन्ते। येऽपि किल बौद्धाः सर्वथा वचनस्य प्रामाण्यं नाभ्युपगतास्तेऽपि संबन्धाद्यभिधानपूर्वकमेव प्रवृत्तास्ततः शिष्टसमयानुपालनार्थमिदमिति। इह–"**संहिता च पदं चैव, पदार्थः पदविग्रहः। चालना प्रत्यवस्थानं, व्याख्या तन्त्रस्य षड्विधा॥१॥**" इति व्याख्यालक्षणप्रपञ्चोऽन्यतोऽवधारणीयः। तत्र निच्छिन्नो नितरां त्रोटितो मोह एव पाशो मोहनीयकर्मबन्धनं येन स निच्छिन्नमोहपाशस्तम्। प्रसृतो=विस्तृतो विमलो=निर्मल उरु=बृहत्प्रमाणः केवलप्रकाशः=केवलज्ञानोद्योतो यस्य स प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशस्तम्। प्रणतजनानां=प्रणिपतितलोकानां पूरिताः=परिपूर्णतां नीता आशा=मनोरथा येन स प्रणतजनपूरिताशस्तम् '**प्रयतः**' आदरपरः '**प्रणम्य**' प्रणिपत्य '**जिनपार्श्वं**' पार्श्वतीर्थकरमिति॥१॥ ततो '**वक्ष्यामि**' अभिधास्ये, स्थानशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धाज्जीवस्थानानि च सूक्ष्मापर्याप्तकैकेन्द्रियादीनि, मार्गणास्थानानि च गत्यादीनि, गुणस्थानकानि च मिथ्यादृष्टयादीनि, उपयोगाश्च मतिज्ञानादयः, योगाश्च मनःप्रभृतयः लेश्याश्च कृष्णलेश्याद्याः, ता आदिः=प्रभृतिर्यस्य तत्तथा। आदिशब्दात् कर्मबन्धोदयोदीरणासत्तास्थानाल्पबहुत्वबन्धहेतुपरिग्रहः। किंचिदित्यल्पं न विस्तरतः क्रियाविशेषणमिदम्। '**सुगुरूपदेशात्**' सदाचार्यहेयोपादेयार्थप्रतिपादनलक्षणात्, संज्ञानं च विशिष्टावबोधः सुध्यानं च धर्मध्यानादि संज्ञानसुध्याने तयोर्हेतुः=कारणमितिकृत्वा। तत्र प्रथमगाथया मङ्गलम्, द्वितीयया तु जीवस्थानाद्यभिधेयम्। सुगुरूपदेशादिति पदसूचितो गुरुपर्वक्रमलक्षणः संबन्धः। संज्ञानसुध्यानहेतुरितिवचनाभ्यूहितं प्रयोजनमिति भावनीयम्। इह च जीवस्थानाद्यभिधेयजातं यद्यपि सामान्यतः प्रोक्तं तथाऽपि जीवस्थानेषु गुणस्थान १ योगो २ पयोग ३ लेश्या ४ बन्धो ५ दयो ६ दीरणा ७ सत्तास्थाना ८ ल्याल्पष्टौ। तथा मार्गणास्थानेषु जीवस्थानक १ गुणस्थानक २ योगो ३ पयोग ४ लेश्याऽ ५ ल्पबहुत्व ६ रूपाणि षट्। तथा गुणस्थानकेषु जीवस्थान १ योगो २ पयोग ३ लेश्या ४

१ "यदसंबद्धं" इत्यपि पाठः॥

बन्धहेतु ५ बन्धोदयो ७ दीरणा ८ सत्तास्थाना ९ ऽल्पबहुत्व १० लक्षणानि दश पदान्यभिधेयतया मन्तव्यानि। व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेरिति । इहाष्टपदादिसंग्रहार्थमिदं गाथात्रयं श्रोतृजनसुखार्थं कथ्यते । तद्यथा—"चउदसजियठाणेसु, गुणजोगुवओगलेसबंधुदया । [1]उदीरणा य सत्ता, वत्तव्वा अट्ठपयकमसो ॥१॥ चउदसमग्गणठाणेसु मूलएसु बिसइइयरेसु। जियगुणजोगुवओगा, लेसप्पबहुं च छट्ठाणा ॥२॥ चउदसगुणठाणेसु जियजोगुवओगलेसबंधा य । बंधुदउदीरणाओ, [2]संतप्पबहुं च दस ठाणा, ॥३॥" इति गाथाद्वयार्थः ॥२॥

अथ जीवस्थानानि प्रदर्शयन्नाह—

(मल०) इहाद्यगाथयाऽभीष्टदेवतास्तवस्याभिधानम् । इतरया च प्रयोजनादीनाम् स चाभीष्टदेवतास्तवो द्विधा, प्रणामतः स्तोत्रतश्च । तत्र प्रयतः प्रणम्येति प्रणामतः, परिशिष्टपदैः स्तोत्रतः। स्तोत्रमपि [3]स्वपरार्थसंपदतिशयाभिधानेन द्विधा । स्वार्थसंपन्नश्च परार्थं प्रति समर्थो भवतीति प्रथमतः पूर्वार्द्धेन स्वार्थसंपदमाह—नितरामपुनर्भावेन छिन्नो द्विधाकृत आत्मना सह एकीभूतः सन् ततः पृथग्भूतीकृतः, मोहयत्यात्मानमिति मोहो मोहनीयं कर्म, स एव भवचारकविनिर्गमप्रतिबन्धकारितया पाश इव पाशो येन स निच्छिन्नमोहपाशस्तं प्रणम्य । मोहग्रहणं चेह शेषज्ञानावरणीयादिघातिकर्मत्रयोपलक्षणम् । यत आह—'पसरियविमलोरुकेवलपयासं' न ह्यपरिक्षीणमोह इवाक्षीणज्ञानावरणीयादिघातिकर्मा प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशो भवतीति । तत्र प्रसृतो=विस्तृतो विमलो=निर्मलस्तदावरणमलस्य निःशेषतोऽपगमात् , उरु=विशालः सकललोकालोकविषयत्वात्केवलस्य=केवलज्ञानस्य प्रकाशः=प्रकाशकत्वशक्तिर्यस्य स प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशः। शक्तेश्च प्रसरः प्रचुरीभावो न पुनर्बहिर्गमनमसंभवात् । इह प्रकाशशब्दस्य केवलमेव प्रकाशः केवलप्रकाश[4] इत्येवं केवलशब्देन सह सामानाधिकरण्यमव्याख्याय यत्प्रकाशकत्वरूपशक्तिवाचकत्वव्याख्यानं तेनेदमावेद्यते यदुत न ज्ञानं क्वापि गच्छति, किंत्वात्मस्थमेव सत्सकलमपि ज्ञेयं भिन्नदेशस्थमपि अचिन्त्यशक्तियुक्ततया प्रकाशयतीति । तेन यत्कैश्चिदुच्यते, इह सकललोकपर्यन्तेऽपि ज्ञानमुदयते तच्च ज्ञानमात्मनो गुणः, गुणाश्च न द्रव्यमन्तरेण क्वापि गच्छन्ति तस्मादाकाशवदात्माऽपि सर्वव्यापी प्रतिपत्तव्य इति तदपास्तं द्रष्टव्यम् । ज्ञानस्याचिन्त्यशक्त्युपेततयास्वभिन्नदेशस्थेऽपि विषये परिच्छेदाय प्रवृत्त्युपपत्तेः, यथा लोहोपलस्य भिन्नदेशस्थस्यापि लोह-

---

१ "उदीरणया" इत्यपि पाठः । २ "अप्पबहुं चेव दसठाणा ॥३॥" इति जे० । ३ स्वश्च परश्च तयोरर्थसंपत् तस्या अतिशयः तस्याभिधानं तेनेति समासः । ४ "इति सामानाधिकरण्यम्—" इत्येवंरूपः क्वचित् पाठः ॥

स्याकर्षणे। तदुक्तम्–"**गंतूण न परिछिंदइ, नाणं नेयं तयंमि देसंमि। आयत्थं चिय नवरं, अचिंतसत्तीओ विन्नेयं॥१॥ लोहोवलस्स सत्ती, आयत्था चेव भिन्नदेसंमि। लोहं आगरिसंती, दीसइ इह कज्जपच्चक्खा॥२॥ एवमिह नाणसत्ती, आयत्था चेव हंदि लोगंतं। जइ परिछिंदइ सव्वं, को णु विरोहो भवे तस्स?॥३॥**" इति। एतेन "**अज्जवि धावइ नाणं अज्जवि ऽलोओ अणंतओ अत्थि**" इत्याद्यपि कुचोद्यमपाकृतमवसेयम्। यतो न केवलज्ञानमलोके गच्छति, द्रव्यमन्तरेण गुणानां प्रवृत्त्यसंभवात् तत्र गत्युपष्टम्भकधर्मास्तिकायाभावाच्च, किन्तूत्पत्तिसमय एवात्मप्रदेशस्थं सदचिन्त्यशक्तियुक्ततया सकलमपि लोकालोकात्मकं ज्ञेयं परिच्छिनत्ति। तदुक्तम्–"**तम्हा सव्वपरिच्छेयसत्तिमंतं तु नायजुत्तमिणं एत्तो च्चिय नीसेसं, जाणइ उप्पत्तिसमयंमि॥१॥**" ततः कथम्? "**अज्जवि धावइ नाणं**" इत्यादि दोषप्रसङ्गः। ननु यो निच्छिन्नमोहपाशः स प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाश एव भवति, ततोऽपार्थकत्वान्नेदं विशेषणमुपादेयमिति न, छद्मस्थावस्थाभाविनिच्छिन्नमोहपाशव्यवच्छेदफलतयाऽस्य सार्थकत्वात्। यद्येवं ततः प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशमित्येतावदेवास्तामलं निच्छिन्नमोहपाशग्रहणेन न, अस्यापि कुवादिमतव्यवच्छेदफलतया सार्थकत्वात्। तथाहि–इह आजीविकनयमतानुसारिणो गोशालकशिष्याः प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशमपि न तत्त्वतो निच्छिन्नमोहपाशमभिमन्यन्ते, अवाप्तमुक्तिपदा अपि तीर्थनिकारदर्शनादिहागच्छन्तीतिवचनात्। तत्त्वतो निच्छिन्नमोहपाशस्य चेहागमनासंभवात् ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं निच्छिन्नमोहपाशग्रहणम्। [1]एनमेव परार्थसंपदा विशेषयति–'**पणयजणपूरियासं**' प्रणता ये जनाः तेषां पूरिता आशा=मनोरथा येन स प्रणतजनपूरिताशस्तम्। प्रणतजनानां चाशाः पूर्यन्ते भगवता सकलदेवासुरमनुजतिर्यग्गणसाधारण्या वाण्या निःश्रेयसाभ्युदयसाधनोपायप्रदर्शनेन, नान्यथा। यदुक्तम्–"**अरिहंता भगवंतो, अहियं च हियं च नवि इहं किंचि[2]। वारेंति कारवेंति य, घेत्तूण जणं बला हत्थे॥१॥ उवएसं पुण [3]तं दिंति जेण चरिएण कित्तिनिलयाणं। देवाणवि होंति पहू, किमंग पुण मणुयमेत्ताणं?॥२॥**" इत्यादि ननु यो निच्छिन्नमोहपाशः प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशश्च स प्रणतजनपूरिताश एव भवति, ततः किमनेन विशेषणेन दानादिप्रकारेण?, सामान्यकेवलिव्यवच्छेदार्थत्वात्, ते हि यथोक्तविशेषणद्वयविशिष्टा अपि सन्तो न भगवानिव सकलजगदुपकारकरणैकतानाः, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं प्रणतजनपूरिताशग्रहणम्। यद्येवं तर्हि प्रणतजनपूरिताशमित्येतदेवास्तां अलं निच्छिन्नमोहपाशादिग्रहणेन, तदयुक्तं, माण्डलिकादयोऽपि हि तथाविधतुच्छद्रव्यादिमात्रवितरणैकरसिका लोके प्रणतजनपूरिताशा इति प्रतीताः, ततस्तत्कल्पं भगवन्तं प्रणामार्हं मा ज्ञासिषुरिति तद्व्यवच्छेदार्थं निच्छिन्नमोह-

१ पार्श्वजिनमेव। २ 'किंपि" इत्यपि। ३ "ते" इत्यपि।

पाशादिग्रहणम् । कमेवंभूतम् ? पुनः प्रयतः प्रणम्येत्यतो विशेष्यमाह--'जिनपार्श्वं' पश्यति यथावस्थितं सकलमपि जगदिति पार्श्वः रागद्वेषादिशत्रुजेतृत्वाज्जिनः स चासौ पार्श्वश्च जिनपार्श्वस्तम् । ननु यो जिनपार्श्वः स निच्छिन्नमोहपाशादिविशेषणकलापोपेत एव भवतीति किमेतेषां विशेषणानामुपादानेन ? निरर्थकत्वात्, न, नामादिरूपजिनपार्श्वादिव्यवच्छेदकारितया तेषामपि सफलत्वात् । एवं द्व्यादिसंयोगापेक्षयाऽपि विचित्रनयमताभिज्ञेन यथाशक्ति विशेषणसाफल्यं वाच्यम् । तमेवंभूतं जिनपार्श्वं प्रयतः प्रणम्य ॥१॥ किम् ? इत्याह--इह स्थान-शब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । जीवस्थानानि मार्गणास्थानानि गुणस्थानानि । तत्र जीवति प्राणान् धारयतीति जीवः । क इत्थंभूतः ? इति चेत्, उच्यते, यो मिथ्यात्वादिकलुषितरूपतया सातादिवेदनीयादिकर्मणाम[1]भिनिर्वर्तकः, तत्फलस्य च विशिष्टसातादेरुपभोक्ता, नारकादि-भवेषु च यथाकर्मविपाकोदयं संसर्ता, सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयाभ्यासप्रकर्षवशाच्चाशेषकर्मांशाऽ[2]प-गमतः [3]परिनिर्वाता स जीव आत्मा । [4]यदुक्तम्--' **यः कर्ता कर्मभेदानां, भोक्ता कर्मफलस्य च । संसर्ता परिनिर्वाता, स ह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥१॥''** इति । [5]कथं तत्सिद्धिः ? इति चेत्[6]प्रतिप्राणिस्वसंवेदनप्रमाणसिद्धचैतन्याऽन्यथानुपपत्तेः । तथाहि-नेदं चैतन्यं नाम भूत-धर्मः, तद्धर्मत्वे सति पृथिव्याः काठिन्यस्येव तस्य सर्वदोपलम्भप्रसङ्गात् । कदाचिद[7]नभिव्यक्ति-भावान्न सर्वदोपलम्भ इति चेत्, न, आवरणाभावेनानभिव्यक्तेरेवानुपपद्यमानत्वात् । कथमा-वरणाभावः ? इति चेत्, एते [8]ब्रूमः, विकल्पाभ्यामयोगात् । तथाहि--किं तान्येव भूतान्या-वरणं भवेयुः, अन्यद्वा ? इति विकल्पद्वयी गत्यन्तराभावात्, तत्र न तावत्तान्येव भूतान्यावरणी-भवितुमर्हेयुः, तेषां भूतानां व्यञ्जकत्वप्रतिज्ञानात् । नाप्यन्यद्वाऽऽवरणं विचारपथमवतार्यमाणं घटामटाट्टि, वस्त्वन्तराभ्युपगमप्रसङ्गेन चत्वार्येव पृथिव्यादीनि भूतानीति तत्त्वसंख्याव्याघात-प्रसङ्गात् । न वै पृथिव्यादिभ्योऽन्यद्वस्त्वन्तरमावरणमिति ब्रूमः, किन्तु तेषामेव पृथिव्या-दिभूतानां तथाविधविशिष्टपरिणामाभावः, ततो न कश्चिद्दोषः ? इति चेत्, न, तथाविध विशिष्टपरिणामाभावस्यैकान्ततुच्छरूपत्वेनाऽऽवारकत्वायोगात् । अन्यथा तस्याप्यतुच्छरूपतया भावरूपत्वे सति पृथिव्यादिभूतचतुष्टयान्यतमभूतरूपतापत्तेर्व्यञ्जकत्वाप्रसङ्गः । अथोच्यते--नासौ तथाविधविशिष्टपरिणामाभावस्तुच्छरूपः, किन्तु परिणामान्तरम्, ततः कथमावारकत्व-योगः ? इति, न, तस्यापि भूतपरिणामतया भूतस्वभावत्वाद् भूतवद्व्यञ्जकत्वेऽस्यै (त्वस्यै-) वोपपत्तेर्नावारकत्वस्येति यत्किञ्चिदेतत् । नापि भूतकार्यमिदं चैतन्यम्, अत्यन्तवैलक्षण्येन भूतचैतन्ययोः कारणकार्यभावस्यानुपपत्तेः । तथाहि--प्रत्यक्षत एव काठिन्याबोधस्वरूपाणि

---

१ उपार्जकः । २ विनाशतः । ३ मोक्षं गन्ता । ४ 'तदुक्तम्" इत्यपि । ५ चार्वाको वदति । ६ अस्ति जीव इति पक्षः । ७ अप्रकट- । ८ वयं जैनाः ॥

भूतानि प्रतीयन्ते, चैतन्यं च तद्विलक्षणम्, ततः कथमनयोः कार्यकारणभावः ?, यदाह— **"काठिन्याबोधरूपाणि, भूतान्यध्यक्षसिद्धितः। चेतना च न तद्रूपा, सा कथं तत्फलं भवेत् ? ॥१॥"** तदेवं न भूतधर्मो भूतकार्यं वा चैतन्यम्, अस्ति चैतत्प्रतिप्राणिस्वसंवेदनप्रमाणसिद्धम्। तत एतदन्यथानुपपत्त्या स यथोक्तलक्षणो जीवः प्रतीयते। तस्यैव चिद्रूपाऽमूर्ततया चैतन्यं प्रत्यनुरूपत्वेन तद्धर्मित्वोपपत्तेः, इति कृतं प्रसंगेन, विस्तरार्थिना तु धर्मसंग्रहणिटीकाऽनुसर्तव्या। तेषां जीवानां स्थानानि, सूक्ष्मपर्याप्तैकेन्द्रियत्वादयोऽवान्तरविशेषाः, तिष्ठन्त्येषु जीवा इतिकृत्वा गुणानां स्थानानि। मार्गणं जीवादीनां पदार्थानामन्वेषणं मार्गणा तस्याः स्थानानि आश्रया मार्गणास्थानानि वक्ष्यमाणानि गत्यादीनि। गुणा ज्ञानदर्शनचारित्ररूपा जीवस्वभावविशेषाः, स्थानं पुनरेतेषां शुद्ध्यशुद्धिप्रकर्षापकर्षकृतः स्वरूपभेदः, तिष्ठन्त्यस्मिन् गुणा इतिकृत्वा गुणस्थानानि गुणस्थानानि वक्ष्यमाणानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि। 'उवओग' इति उपयोजनमुपयोगः, बोधरूपो जीवव्यापारः। कर्मणि वा घञ्। उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यत इत्युपयोगः। करणे वा घः। उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति जीवोऽनेनेत्युपयोगः। सर्वत्र जीवस्वतत्त्वभूतोऽवबोध एवोपयोगो मन्तव्यः। 'जोग' इति योजनं योगः, जीवस्य वीर्यं परिस्पन्द इतियावत्। कर्मणि वा घञ्। युज्यते धावनवल्गनादिक्रियासु व्यापार्यत इति योगः। यद्वा युज्यते संबध्यते धावनवल्गनादिक्रियासु जीवोऽनेनेति योगः। पुंनाम्नीति करणे घः प्रत्ययः स च मनोवाक्कायलक्षणसहकारिकारणभेदात्त्रिधा वक्ष्यमाणस्वरूपः। लिश्यते श्लिष्यते कर्मणा सहात्माऽनयेति लेश्या, कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यादात्मनः शुभाशुभरूपः परिणामविशेषः। यदुक्तम्—**"कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः। स्फटिकस्येव तत्रायं लेश्याशब्दः प्रवर्तते ॥१॥"** इति। सा च षोढा, कृष्णलेश्या नीललेश्या, २ कापोतलेश्या ३ तेजोलेश्या ४ पद्मलेश्या ५ शुक्ललेश्या ६। आसां च स्वरूपं जम्बूफलखादकषट्पुरुषीदृष्टान्तेनैवमवसेयम्—**"जह जंबुपायवेगो, सुपक्कफलभरिय नमियसाहग्गो। दिट्ठो छहिं पुरिसेहिं, ते बिंती जंबु भक्खेमो ॥१॥ किह पुण ते बिंतेगो, आरुहणे होज्ज जीवसंदेहो। तो छिंदिऊण मूलाउ भक्खिमो ताइं**[1] **पाडेउं ॥२॥ बीओऽह किमम्हाणं, तरुणा छिन्नेण एम(म्म)हंतेण। छिंदह महल्ल**[2] **साहा, बेई तइओ पसाहाओ ॥३॥ गोच्छे चउत्थओ पुण, पंचमओ बेइ गिण्हह फलाइं। छट्ठो बेइ पडिय त्ति य, खायह त्ति य, छट्ठओ बेइ ॥४॥ दिट्ठंतस्सोवणओ, छिंदइ मूलाउ बेइ जो एवं। वट्टइ सो किण्हाए, नीलाए महल्लसाहाए ॥५॥ काऊ होइ पसाहा, तेऊ गुच्छा फला य पम्हाए। पडिय त्ति सुक्कलेसाए"** इति ॥ आदिशब्दा-

१ "ताहिं" इत्यपि पाठः। २—"साला" इत्यपि पाठः, एवमग्रेऽपि ॥

त्कर्मबन्धहेतुबन्धोदयोदीरणासत्ताल्पबहुत्वपरिग्रहः तत्र क्रियते मिथ्यात्वादिभिर्हेतुभिर्निर्वर्त्यत इति कर्म ज्ञानावरणीयादि वक्ष्यमाणमष्टप्रकारम्। कथमेतत्सिद्धिः? इति चेत्, उच्यते, इह आत्मत्वेनाविशिष्टानामात्मनां यदिदं देवासुरमनुजतिर्यगादिरूपं वैचित्र्यं तत्तावन्न निर्हेतुकमेष्टव्यम्। मा प्रापत्सदा भावादिदोषप्रसङ्गः। **"नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा हेतोरन्यानपेक्षणात्"** इतिवचनात्। सहेतुकत्वाभ्युपगमे च यदेवास्य हेतुस्तदेवास्माकं कर्मेति मतमिति तत्सिद्धिः। तदुक्तम्–**"आत्मत्वेनाविशिष्टस्य, वैचित्र्य तस्य यद्वशात्। नरादिरूपं तच्चित्रम-दृष्टं कर्मसंज्ञितम् ॥१॥"** इति। तदपि च कर्म पुद्गलस्वरूपं प्रतिपत्तव्यं, नामूर्त्तम्। तथा सति ततः सकाशादात्मनामनुग्रहोपघातासंभवादाकाशादिव। यदाह–**"अन्ने उ अमुत्तं चिय, कम्मं मन्नंति वासणारूवं। तं च न जुज्जइ तत्तो, उवघायाणुग्गहाभावा ॥ ॥ नागासं उवघायं अणुग्गहं वावि कुणइ सत्ताणं"** इत्यादि। इति कृतं प्रसंगेन, गमनिकामात्रफलत्वात्प्रयासस्य। ततस्तैः कर्मपुद्गलैः सहात्मनो वह्न्ययःपिण्डवदन्योऽन्यानुगमलक्षणः संबन्धो बन्धः, तस्य हेतवः सामान्यविशेषरूपा वक्ष्यमाणा मिथ्यात्वतद्भेदादिलक्षणाः। बन्ध उक्तस्वरूप एव। तथा तेषामेव कर्मपुद्गलानां यथास्वस्थितिबद्धानामपवर्तनादिकरणविशेषतः स्वभावतो वा उदयसमयप्राप्तानां विपाकवेदनमुदयः। तेषामेव च कर्मपुद्गलानामकालप्राप्तानां जीवसामर्थ्यविशेषादुदयावलिकायां प्रवेशनमुदीरणा। तथा तेषामेव कर्मपुद्गलानां बन्धसंक्रमाभ्यां लब्धात्मलाभानां निर्जरणसङ्क्रमकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सति सद्भावः सत्ता। अल्पबहुत्वं गत्यादिरूपमार्गणास्थानादिषु जीवानां परस्परं स्तोकभूयस्त्वम्, एतत् 'वक्ष्ये' अभिधास्ये। कथम्? इत्याह– **किंचित्'** स्वल्पं न विस्तरवत्। दुःषमानुभावेनापचीयमानमेधायुरादिगुणानामिदानींतनजनानां तथाऽभिधाने सति उपकारासंभवात्, तदुपकारार्थं च एष प्रकरणारम्भप्रयासः। उपकारमेव दर्शयति- **'सन्नाणसुझाणहेउ'** इति संज्ञानं=यथाऽवस्थितवस्तुतत्त्वावबोधात्मकमागमानुसारिविज्ञानं, सुध्यानं=धर्मध्यानं, तयोर्हेतुः=कारणम्। इदं जीवस्थानाद्यभिधानमितिकृत्वा जीवस्थानादिकं किंचिदभिधास्ये। किं स्वमनीषिकया?, न इत्याह- **'सुगुरूवएसाउ'** गृणाति शास्त्रार्थमिति गुरुः, स चानागमिकोऽपि स्यात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं सुग्रहणम्। शोभनः सर्वदैव सदागमनिष्णातो गुरुः सुगुरुः, तस्योपदेशो यथाऽवस्थितजीवाजीवादिवस्तुतत्त्वयाथात्म्यनिर्देशस्तस्मात् इह वक्ष्यमाणसकलवक्तव्यतानिबन्धनं जीवा इति प्रथमतस्तेषामुपादानम् ते च प्रपञ्चतो निरूप्यमाणा गत्यादिमार्गणास्थानैरेव निरूपयितुं शक्यन्त इति। तदनन्तरं मार्गणास्थानग्रहणम्। तेषु च मार्गणास्थानेषु वर्तमाना जीवा न कदाचिदपि मिथ्यादृष्ट्याद्यन्यतमगुणस्थानकविकला भवन्तीति प्रतिपत्त्यर्थं मार्गणास्थानकानन्तरं गुणस्थानकग्रहणम्। अमूनि च गुणस्थानकानि ज्ञानादिरूपशुभपरिणामशुद्ध्यशुद्धिप्रकर्षापकर्षरूपाण्युपयोगवतामेवोपपद्यन्ते, नान्येषामाकाशा-

दीनाम्, तेषां ज्ञानादिरूपपरिणामरहितत्वात्, इति ज्ञापनार्थं गुणस्थानकानन्तरमुपयोगग्रहणम्। उपयोगवन्तश्च मनोवाक्कायचेष्टासु वर्तमाना नियमतः कर्मसंबन्धभाजो भवन्तीति ज्ञापनायोपयोगग्रहणानन्तरं योगग्रहणम्। योगवशाच्चोपात्तस्यापि कर्मणो यावच्च कृष्णाद्यन्यतमलेश्यापरिणामो जायते तावच्च तस्य स्थितिपाकविशेषो भवति। **"स्थितिपाकविशेषस्तस्य भवति लेश्याविशेषेण"** इतिवचनप्रामाण्यात् ततो योगवशादुपात्तस्य कर्मणो लेश्याविशेषतः स्थितिविपाकविशेषो भवतीति प्रतिपत्त्यै योगानन्तरं लेश्योपादानमिति। यद्यपि चेह सामान्येनोदतं जीवस्थानाद्यभिधास्ये इति, तथाऽप्येवं विशेषतो द्रष्टव्यम्। जीवस्थानकेषु-गुणस्थानक १ योगो २ पयोग ३ लेश्या ४ कर्मबन्धो ५ दयो ६ दीरणा ७ सत्ता ८ वक्ष्ये। मार्गणास्थानकेषु पुनः-जीवस्थानक १ गुणस्थानक २ योगो ३ पयोग ४ लेश्या ५ ल्पबहुत्वमनि ६। गुणस्थानकेषु च-जीवस्थानक १ योगो २ पयोग ३ लेश्या ४ बन्धहेतु ५ बन्धो ६ दयो ७ दीरणा ८ सत्ता ९ ऽल्पबहुत्वानि १०। इति तथैव सूत्रकृता वक्ष्यमाणत्वात् ॥२॥

तत्र **'यथोद्देशं निर्देशः'** इति न्यायात्प्रथमतस्तावज्जीवस्थानानि निरूपयन्नाह—

इह सुहुमबायरेगिंदिबितिचउअसन्निसन्निपंचिंदी।
अपजत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥३॥

(हारि०) व्याख्या-इह सर्वत्र यथासंभवं लिङ्गव्यत्ययविभक्तिलोपादिकं प्राकृतत्वाद् द्रष्टव्यम्। **'इह'** जीवस्थानादिषु मध्ये सूक्ष्मबादरभेदादेकेन्द्रिया द्विधा, द्वित्रिचतुरिन्द्रियास्त्रयः, असंज्ञिसंज्ञिभेदात्पञ्चेन्द्रिया द्विभेदाः, एवमेते सप्त सप्ताप्यपर्याप्ताः पर्याप्ताश्चैवं क्रमेण तावच्चतुर्दश जीवस्थानानि भवन्तीति शेषः। **इतिगाथार्थः** ॥३॥

साम्प्रतमेतेषु गुणस्थानकानि संबन्धपूर्वकं गाथाद्वयेनाह—

(मल०) **'इह'** अस्मिन् जगति अनेन क्रमेण चतुर्दश जीवस्थानानि प्राग्निरूपितशब्दार्थानि भवन्ति, केन क्रमेण? इति चेत्, आह-सूक्ष्मबादरैकेन्द्रियद्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः, एते च सर्वेऽपि प्रत्येकं पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्चेति। तत्र एकं स्पर्शनलक्षणमिन्द्रियं येषां ते एकेन्द्रियाः, पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः। ते च प्रत्येकं द्विविधाः, सूक्ष्मा बादराश्च। सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्माः, सकललोकव्यापिनः। बादरनामकर्मोदयाद्बादराः. ते च लोकप्रतिनियतदेशवर्तिनः। द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रिया इति। इन्द्रियशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते। द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, असंज्ञिसंज्ञिभेदभिन्नाश्च पञ्चेन्द्रियाः। तत्र द्वे स्पर्शनरसनलक्षणे इन्द्रिये येषां ते द्वीन्द्रियाः, शङ्खचन्दनककपर्दजलूकाकृमिगण्डोलपूतरकादयः। त्रीणि स्पर्शनरसनघ्राणलक्षणानीन्द्रियाणि येषां ते त्रीन्द्रियाः, यूकामत्कुणगर्दभेन्द्रगोपककुन्थुमत्कोटा-

१ "चउदसजियठाणेसुं गुणजोगुवओगलेसबंधुदया। उदीरणया सत्ता वत्तव्वा अट्ठपयक्कमसो ॥१॥" इत्यपि गाथाऽधिकतया दृश्यते हस्तलिखितमूलगाथाप्रतौ।

दयः। चत्वारि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुर्लक्षणानीन्द्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रियाः, भ्रमरमक्षिकामशकवृश्चिकादयः। पञ्च स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रलक्षणानीन्द्रियाणि येषां ते पञ्चेन्द्रियाः, मत्स्यमकरमनुजादयः। ते च द्विभेदाः, संज्ञिनोऽसंज्ञिनश्च। तत्र संज्ञानं संज्ञा, भूतभवद्भाविभावस्वभावपर्यालोचनं 'उपसर्गादातः' इत्यङ्प्रत्ययः, सा विद्यते येषां ते संज्ञिनः, विशिष्टस्मरणादिरूपमनोविज्ञानभाज इतियावत्। तद्विपरीता असंज्ञिनः, यथोक्तमनोविज्ञानविकला इत्यर्थः। एते च सूक्ष्मैकेन्द्रियादयः प्रत्येकं द्विधा, पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च। पर्याप्तिर्नाम पुद्गलोपचयजः पुद्गलग्रहणपरिणमनहेतुः शक्तिविशेषः सा च विषयभेदात्षोढा। तद्यथा—आहारपर्याप्तिः १, शरीरपर्याप्तिः २, इन्द्रियपर्याप्तिः ३, उच्छ्वासपर्याप्तिः ४, भाषापर्याप्तिः ५, मनःपर्याप्ति ६ श्चेति। तत्र यया बाह्यमाहारमादाय खलरसरूपतया परिणमयति साऽऽहारपर्याप्तिः। यया रसीभूतमाहारं रसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रलक्षणसप्तधातुरूपतया परिणमयति सा शरीरपर्याप्तिः। यया तु धातुरूपतया परिणमितमाहारमिन्द्रियरूपतया परिणमयति सा इन्द्रियपर्याप्तिः। यया पुनरुच्छ्वासप्रायोग्यवर्गणादलिकमादायोच्छ्वासरूपतया परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा उच्छ्वासपर्याप्तिः। यया तु भाषाप्रायोग्यवर्गणाद्रव्यं गृहीत्वा भाषात्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः। यया पुनर्मनोयोग्यवर्गणादलिकं गृहीत्वा मनस्त्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः। एताश्च यथाक्रममेकेन्द्रियाणां संज्ञिवर्जानां द्वीन्द्रियादीनां संज्ञिनां च चतुः—पञ्च-षट्—संख्या भवन्ति। पर्याप्तयो विद्यन्ते येषां ते पर्याप्ताः। 'अभ्रादिभ्यः' इति मत्वर्थीयो[१]ऽप्रत्ययः। ये पुनः स्वयोग्यपर्याप्तिपरिसमाप्तिविकलास्तेऽपर्याप्तकाः। ते च द्विधा, लब्ध्या करणेन च। तत्र येऽपर्याप्तका एव सन्तो म्रियते न पुनः स्वयोग्यपर्याप्तीः सर्वा अपि समर्थयन्ते ते लब्ध्यपर्याप्तकाः। ये पुनः करणानि शरीरेन्द्रियादीनि न तावन्निर्वर्तयन्ति, अथ चावश्यं पुरस्तान्निर्वर्तयिष्यन्ति ते करणापर्याप्तकाः। इह चैवमागमः-लब्ध्यपर्याप्तका अपि नियमादाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तिपरिसमाप्तावेव म्रियन्ते नार्वाग्। यस्मादागामिभवायुर्बद्ध्वा म्रियन्ते सर्वे एव देहिनः। तच्चाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तानामेव बध्यत इति ॥३॥

तदेवं निरूपितानि जीवस्थानानि, सांप्रतं यथोद्देशं निर्देश इति न्यायात्क्रमप्राप्तान्यपि मार्गणास्थानानि अनिरूप्य एतेष्वेव जीवस्थानकेषु गुणस्थानकाद्यमिभित्सुर्युक्तिमुपन्यस्यन्नाह-

सव्वभणियव्वमूलेसु तेसु गुणठाणगाइ ता भणिमो।
पढमगुणा दो बायरबितिचउरअसन्नि अपजत्ते ॥४॥

---

१ "अभ्रादिभ्यः" (७।२।४६)इति हैमसूत्रे तथा श्री मलयगिरिसूरिभिरपि स्वकृतव्याकरणे-'अप्रत्ययः,' अङ्गीकृतोऽस्ति॥

पयत्थेसु । तं पंचविहं मिच्छं, तद्दिट्ठी मिच्छदिट्ठीओ ॥२॥ उवसमअद्धाए ठिओ, मिच्छमपत्तो तमेव गंतुमणो । सम्मं आसायंतो, सासायणगो मुणेयव्वो ॥३॥ जह गुडदहीणि विसमाइभावसहियाणि होंति मीसाणि । भुंजंतस्स तहोभय-दिट्ठीए मीसदिट्ठीओ ॥४॥ तिविहे वि हु सम्मत्ते, थेवावि न विरइ जस्स कम्मवसा । सो अविरउ त्ति भण्णइ, देसे पुण देसविरईओ ॥५॥ विकहाकसाय-निद्दासद्दाइरओ भवे पमत्तो त्ति । पंचसमिओ तिगुत्तो, अपमत्तजई मुणेयव्वो ॥६॥ अप्पुव्वं अप्पुव्वं, जहुत्तरं जो करेइ ठिइकंडं । रसकंडं तग्घायं, सो होइ अपुव्वकरणो त्ति ॥७॥ निनिवट्टंति विसुद्धिं, समगपइट्ठा वि जम्मि अन्नोऽन्नं । तत्तो नियट्टिठाणं, विवरीयमओ य अनियट्टी ॥८॥ थूलाण लोभखंडाण वेयगो बायरो मुणेयव्वो । सुहुमाण होइ सुहुमो, उवसंतेहिं तु उवसंतो ॥९॥ खीणंमि मोहणिज्जे, खीणकसाओ सजोगजोगि त्ति । होइ पउत्ता य तओ, अपउत्ता होइ हु अजोगी ॥१०॥" एतानि जीवस्थानकेषूपदर्शयन्नाह—पढमेत्यादि । इह पदैकदेशेऽपि पदसमुदायोपचारात् 'गुणाः' इत्युक्ते गुणस्थानकग्रहणम् । प्राकृतत्वाच्च द्वित्वेऽपि बहुवचनम् । यथा '**हत्था पाया**' इत्यादौ । तत्र द्वे प्रथमगुणस्थानके मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे भवत इति गम्यते । केषु ? इत्याह–'**बादरद्वित्रिचतुरिन्द्रियाऽसंज्ञिनि अपर्याप्ते**' बादरेत्यादिपदानां समाहारो द्वन्द्वः प्राकृतत्वाच्च ततः परस्य सप्तम्येकवचनस्य लुक् अपर्याप्त इति च तस्य विशेषणम् । एवमन्यत्राप्यक्षरगमनिका कार्या । एतदुक्तं भवति—अपर्याप्तबादरैकेन्द्रियं पृथिव्यम्बुवनस्पतिलक्षणे न तेजोवायुरूपे, तन्मध्ये सम्यक्त्वलेशवतामप्युत्पादाभावात् । सम्यक्त्वं चासादयतां सासादनभावाभ्युपगमात् । तथा द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु चापर्याप्तकेषु प्रथमे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । नन्वेकेन्द्रियाणामागमे सासादनभावो नेष्यते, यतस्तत्र नियमादेकेन्द्रिया अज्ञानिन एवोक्ताः । द्वीन्द्रियाश्च केचिदपर्याप्तावस्थायां सासादनभावोपगमाज्ज्ञानिनः, केचिच्च तदभावादज्ञानिनः । [1]यदि पुनरेकेन्द्रियाणामपि सासादनभावः स्यात्तर्हि तेऽपि द्वीन्द्रियादिवदुभयथाऽप्युच्येरन् , न चोच्यन्ते, तथाहि–"**एगिंदियाणं भंते ! किं णाणी अन्नाणी ?, गोयमा ! नो नाणी नियमा अण्णाणी । तथा बेंदियाणं भंते ! किं नाणी अण्णाणी ?, गोयमा ! नाणी वि अन्नाणी वि** ।" इत्यादि । तत्कथमिहापर्याप्तबादरैकेन्द्रियेषु पृथिव्यब्वनस्पतिलक्षणेषु सासा-

---

१ तालपत्रपुस्तके तु "अन्यथा तेऽपि द्वीन्द्रियादिवदुभयथाऽप्युच्येरन् , चोच्यन्ते" इत्येतावानेव पाठो दृश्यते ।

सन्नि अपज्जत्ते मिच्छदिट्ठिसासाणअविरया तिन्नि ।
सव्वं सन्नि पज्जत्ते, मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि ॥५॥

(हारि०) व्याख्या—'सर्वभणितव्यमूलेषु' समस्तवक्तव्यताद्येषु 'तेसु' इति, यानि पूर्वं प्रतिपादितानि जीवस्थानानि तेषु [1]विषयेषु, गुणस्थानकानि वक्ष्यमाणलक्षणान्यादिः प्रथमं यस्य तत्तथा । आदिशब्दाद्योगोपयो[2]गादिसमस्थानानि ग्राह्याणि । तावच्छब्दः क्रमोपन्यासे । 'भणामः' प्रतिपादयामः । तत्र गुणस्थानकानि तावदाह—प्रथमगुणस्थानके द्वे मिथ्यादृष्टि-सासादनरूपे भवत इति शेषः । केषु ? इत्याह—"बायरबितिचउरअसन्नि" इति विभक्ति-लोपात् बादरद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु, इति द्वन्द्वः । कीदृशेषु ? 'अपज्जत्ते' इति वचनव्यत्ययादपर्याप्तकेषु । कर्मग्रन्थाभिप्रायेण बादरैकेन्द्रियेष्वपि सासादनस्यापि सद्भावादिति ॥४॥ सन्नीत्यादिद्वितीयगाथा व्याख्यायते—

संज्ञिपञ्चेन्द्रिये अपर्याप्ते मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकानि त्रीणि भवन्तीति शेषः । एवं सर्वत्र यत्र क्रिया नास्ति तत्र स्वयं योज्या । तथा 'सर्वाणि' गुणस्था-नकानि संज्ञिपञ्चेन्द्रिये पर्याप्ते । तथा मिथ्यात्वगुणस्थानकं शेषेषु 'सप्तस्वपि' पर्याप्ता-पर्याप्तक सूक्ष्म १–२ पर्याप्तकबादर ३ द्वि ४ त्रि ५ चतुरिन्द्रिया ६ ऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु ७ । इति गाथाद्वयार्थः ॥५॥

इति जीवस्थानेषूक्तानि गुणस्थानानि । अथैतेष्वेव योगान् योजयन्नाह—

(मल०) यद्यपि वक्तुमवसरप्राप्तानि मार्गणास्थानानि तथाऽपि प्रथमतस्तावत् 'तेषु' एवानन्तरोद्दिष्टेषु जीवस्थानकेषु वयं गुणस्थानकादि 'भणामः' भणिष्यामः=प्रतिपादयिष्यामः "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" इति भविष्यति [3]वर्तमाना । किं कारणम् ? इत्यत आह-'सर्वभणितव्यमूलेषु' इति "निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्श-नम्" इति न्यायाद्धेताविय सप्तमी । ततोऽयमर्थः—यतः सकलवक्ष्यमाणमार्गणास्थानकादिवक्तव्य-तानिबन्धनमेते जीवास्तत एतेष्वेव तावद्गुणस्थानकादि वक्ष्यामः न हि गुणस्थानकादिप्रपञ्चे-नानिर्ज्ञातस्वरूपा जीवा मार्गणास्थानादिषु निरूप्यमाणा अपि यथावत्प्रत्येतु शक्यन्त इति । तत्र गुणस्थानकानि यद्यप्याचार्येण स्वयमेवाग्रे वक्ष्यन्ते, तथाऽपीह नाविज्ञातस्वरूपाणि सन्ति तानि जीवस्थानकेषु चिन्त्यमानानि सम्यगवगन्तु शक्यन्ते । ततो विनेयजनानुग्रहाय तानि संक्षे-पतः प्रदर्श्यन्ते—'जीवाइपयत्थेसुं, जिणोवइट्ठेसु जा असद्दहणा । सद्दहणावि य मिच्छा, विवरीयपरूवणा जा य ॥१॥ संसयकरणं जंपि य, जो तेसु अणायरो

१ 'विषये' इति जे० । २ "०गाष्टौ स्था०" इति जे० । ३ "लट् प्रत्ययः" इत्यपि पाठः ।

पर्याप्तेसु । नं पंचविहं मिच्छं, तद्दिट्ठी मिच्छदिट्ठीओ ॥२॥ उवसमअद्धाए ठिओ, मिच्छमपत्तो तमेव गंतुमणो । सम्मं आसायंतो, सासायणगो मुणेयव्वो ॥३॥ जह गुडदहीणि विसमाइभावसहियाणि होंति मीसाणि । भुंजंतस्स तहोभय-दिट्ठीए मीसदिट्ठीओ ॥४॥ तिविहे वि हु सम्मत्ते, थेवावि न विरइ जस्स कम्मवसा । सो अविरय त्ति भण्णइ, देसे पुण देसविरईओ ॥५॥ विकहाकसाय-निद्दासद्दाइरओ भवे पमत्तो त्ति । पंचसमिओ तिगुत्तो, अपमत्तजई मुणेयव्वो ॥६॥ अप्पुव्वं अप्पुव्वं, जहुत्तरं जो करेइ ठिइकंडं । रसकंडं तग्घायं, सो होइ अपुव्वकरणो त्ति ॥७॥ निनिवट्टंति विसुद्धिं, समगपइट्ठा वि जम्मि अन्नोऽन्नं । तत्तो नियट्टिठाणं, विवरीयमओ य अनियट्टी ॥८॥ थूलाण लोभखंडाण वेयगो बायरो मुणेयव्वो । सुहुमाण होइ सुहुमो, उवसंतेहि तु उवसंतो ॥९॥ खीणंमि मोहणिज्जे, खीणकसाओ सजोगजोगि त्ति । होइ पउत्ता य तओ, अपउत्ता होइ हु अजोगी ॥१०॥" एतानि जीवस्थानकेषूपदर्शयन्नाह–पढमेत्यादि । इह पदैकदेशे-ऽपि पदसमुदायोपचारात् 'गुणाः' इत्युक्ते गुणस्थानकग्रहणम् । प्राकृतत्वाच्च द्वित्वेऽपि बहु-वचनम् । यथा '**हत्था पाया**' इत्यादौ । तत्र द्वे प्रथमगुणस्थानके मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे भवत इति गम्यते । केषु ? इत्याह–'**बादरद्वित्रिचतुरिन्द्रियाऽसंज्ञिनि अपर्याप्ते**' वादरे-त्यादिपदानां समाहारो द्वन्द्वः प्राकृतत्वाच्च ततः परस्य सप्तम्येकवचनस्य लुक् अपर्याप्त इति च तस्य विशेषणम् । एवमन्यत्राप्यक्षरगमनिका कार्या । एतदुक्तं भवति–अपर्याप्तबादरैकेन्द्रिये पृथिव्यम्बुवनस्पतिलक्षणे न तेजोवायुरूपे, तन्मध्ये सम्यक्त्वलेशवतामप्युत्पादाभावात् । सम्यक्त्वं चासादयतां सासादनभावाभ्युपगमात् । तथा द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु चापर्याप्तकेषु प्रथमे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । नन्वेकेन्द्रियाणामागमे सासादनभावो नेष्यते, यतस्तत्र नियमादेकेन्द्रिया अज्ञानिन एवोक्ताः । द्वीन्द्रियाश्च केचिद-पर्याप्तावस्थायां सासादनभावोपगमाज्ज्ञानिनः, केचिच्च तदभावादज्ञानिनः । [1]यदि पुनरे-केन्द्रियाणामपि सासादनभावः स्यात्तर्हि तेऽपि द्वीन्द्रियादिवदुभयथाऽप्युच्येरन्, न चोच्यन्ते, तथाहि–"**एगिंदियाणं भंते ! किं णाणी अन्नाणी ?, गोयमा ! नो नाणी नियमा अण्णाणी । तथा बेइंदियाणं भंते ! किं नाणी अण्णाणी ?, गोयमा ! नाणी वि अन्नाणी वि ।**" इत्यादि । तत्कथमिहापर्याप्तबादरैकेन्द्रियेषु पृथिव्यबूवनस्पतिलक्षणेषु सासा-

१ तालपत्रपुस्तके तु "अन्यथा तेऽपि द्वीन्द्रियादिवदुभयथाऽप्युच्येरन्, चोच्यन्ते" इत्येतावानेव पाठो दृश्यते ।

दनगुणस्थानकभाव उक्तः ?, सत्यमेतत् . किन्तु मा त्वरिष्ठाः, स्वयमेतदाचार्य एवाग्रे प्रतिविधास्यतीति ॥४॥ संज्ञिनि अपर्याप्तके **त्रीणि'** गुणस्थानकानि भवन्ति । कानि ? इत्यत आह–**'मिच्छद्दिट्ठिसासाणअविरया'** इति, मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिलक्षणानि, न शेषाणि सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादीनि, तेषां पर्याप्तावस्थायामेव भावात् । **'सव्वे सन्निपजत्ते'** इति, [1]सर्वाण्यपि मिथ्यादृष्ट्यादीन्ययोगिपर्यन्तानि गुणस्थानकानि संज्ञिनि पर्याप्ते भवन्ति, संज्ञिनः सर्वपरिणामसंभवात् । अथ कथं संज्ञिनः सयोग्ययोगिरूपगुणस्थानकद्वयसंभवः ? तद्भावे तस्यामनस्कतया संज्ञित्वायोगात्, न, तदानीमपि हि तस्य द्रव्यमनःसंबन्धोऽस्ति, समनस्काश्चाविशेषेण संज्ञिनो व्यवह्रियन्ते, ततो न तस्य संज्ञित्वव्याघातः । उक्तं च–**"मणकरणं केवलिणो वि अत्थि, तेण सण्णिणो भन्नंति । मणोविन्नाणं पडुच्च ते सन्निणो न भवंति"** इति ॥ **'मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि'** इति शेषेषु पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तबादरद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणेषु सप्तस्वपि जीवस्थानकेषु मिथ्यादृष्टिलक्षणमेकं गुणस्थानकं भवति, न सासादनलक्षणमपि कथम् ? इति चेत्, उच्यते–इह संज्ञिशेषेसु जीवस्थानकेषु परभवादागच्छतामेव घण्टालालान्यायेन सम्यक्त्वलेशमास्वादयतामुत्पत्तिकाल एव सासादनभावो लभ्यते, तदानीं चैतेषामपर्याप्तावस्था । तत्रापि चापर्याप्ते सूक्ष्मैकेन्द्रिये न सासादनभावसंभवः, तस्य मनाक् शुभपरिणामरूपत्वात्, महासंक्लिष्टपरिणामस्य च सूक्ष्मैकेन्द्रियमध्ये उत्पादाभिधानादिति । तदेवं निरूपितानि जीवस्थानकेषु गुणस्थानकानि, [2]सांप्रतं यद्यप्युपयोगा वक्तुमवसरप्राप्तास्तथाऽपि बहुवक्तव्यत्वाद्योगा एव तावद्वक्ष्यन्ते । **'ते च'** इत्यादि । ते च पञ्चदश । तद्यथा–सत्यवाग्योगः १, असत्यवाग्योगः २, सत्यमृषावाग्योगः ३, असत्यमृषावाग्योगः ४, । तत्स्वरूपं चेदम्–**"सच्चा हिया सतामिह, संतो मुणओ गुणा पयत्था वा । तव्विवरीया मोसा, मीसा जा तदुभयसहावा ॥१॥ अणहिगया जा तीसु वि, सद्दो च्चिय केवलो असच्चमुसा ।"** एवं मनोयोगोऽपि चतुर्धा द्रष्टव्यः । काययोगः सप्तधा । औदारिकं १, औदारिकमिश्रं २, वैक्रियं ३, वैक्रियमिश्रं ४, आहारकं ५, आहारकमिश्रं ६, कार्मणं ७, च । तत्रौदारिककाययोगस्तिर्यङ्मनुष्ययोस्तयोरेवापर्याप्तयोरौदारिकमिश्रकाययोगः । वैक्रियकाययोगो देवनारकयोस्तिर्यङ्मनुष्ययोर्वा वैक्रियलब्धिमतोः । वैक्रियमिश्रकाययोगोऽपर्याप्तयोर्देवनारकयोस्तिर्यङ्मनुष्ययोर्वा वैक्रियारम्भकाले परित्यागकाले च । आहारककाययोगश्चतुर्दशपूर्वविदः । आहारक-

---

१ तालपत्रपुस्तके स्थितः परम्–"इह प्राकृतत्वाल्लिङ्गव्यत्ययः । यदाह पाणिनिः प्राकृतलक्षणे–'लिङ्गं व्यभिचारी' इति । ततश्च 'सर्वे' इति ।" इत्येतत्पाठोऽधिक उपलभ्यते । २ इतः परं तालपत्रपुस्तके तु "सांप्रतं योगाः प्राप्तावसराः । ते च पञ्चदश । तद्यथा" इत्येतावानेव पाठो दृश्यते ।

मिश्रकाययोगः आहारकस्य प्रारम्भसमये परित्यागकाले च । कार्मणकाययोगः अष्टप्रकारकर्म-विकाररूपशरीरचेष्टास्वरूपोऽपान्तरालगतावुत्पत्तिप्रथमसमये केवलिसमुद्घातवस्थायां च ॥५॥

तानेतान् योगान् जीवस्थानकेषु चिन्तयन्नाह—

जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो ।
वेउव्वियमीसजुया सन्नि अपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

(हारि०) व्याख्या-'योगौ' वक्ष्यमाणलक्षणौ कार्मणौदारिकमिश्रकाययोगौ द्वौ । केषु ? इत्याह-'षट्स्वपर्याप्तकेषु' संज्ञिपञ्चेन्द्रियवर्जितेषु । तत्र विग्रहगतावनाहारकस्य यथासंभव-मेकद्वित्रिसमयान् यावत्कार्मणकाययोगः, तदन्यत्रौदारिकमिश्रयोग इति । मिश्रता च कार्मणेनैव सह मन्तव्येति । तथा वैक्रियमिश्रयुतौ तावेव पूर्वोक्तौ द्वौ । क ? इत्याह-संज्ञिन्यपर्याप्तके त्रय एवंरूपा भवन्ति । अत्र तु देवनारकेषूत्पद्यमानस्य वैक्रियमिश्रकाययोगो द्रष्टव्यः । अत्रापि मिश्रता कार्मणेनैव सह मन्तव्या । इति गाथार्थः ॥६॥

अथात्रैव गाथार्द्धेन मतान्तरं दर्शयन् पर्याप्तेषु तानेवाह—

(मल०) संज्ञिपञ्चेन्द्रियापर्याप्तकवर्जितेषु षट्स्वपर्याप्तकेषु द्वौ कार्मणौदारिकमिश्रलक्षणौ योगौ भवतः । तत्र कार्मणकाययोगोऽपान्तरालगतावुत्पत्तिप्रथमसमये च । शेषकालं त्वौदारिक-मिश्रकाययोगः । **'सन्निअपज्जत्तए तिन्नि'** इति संज्ञिन्यपर्याप्तके त्रयो योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह-**'वेउव्वियमीसजुया'** तावेवानन्तरोक्तावौदारिकमिश्रकार्मणयोगौ वैक्रियमिश्र-युतौ, तथा च त्रयो योगा भवन्ति । वैक्रियमिश्रकाययोगश्च संज्ञिनोऽपर्याप्तस्य देवनारकेषूत्पद्य-मानस्य द्रष्टव्यो न शेषस्य, असंभवात् । मिश्रता च कार्मणेन सह द्रष्टव्या ॥६॥

अत्रैव मतान्तरमुपदर्शयन्नाह—

बिंति अपज्जत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।
बायरपज्जत्ते तिन्नि उरल वेउव्वियदुगं च ॥७॥

(हारि०) व्याख्या-अत्रैवं योजना कार्या । केचनाचार्याः शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्ता-नामपि **'तणुपज्जत्ताण'** इति तनुपर्याप्तानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिकशरीरं **'ब्रुवते'** प्रतिपादयन्तीति । नन्वेवं सति वैक्रियमपि प्राप्नोति, न्यायस्य समानत्वादिति, सत्यम् , लब्ध्य-पर्याप्तानां शरीरपर्याप्तौ सत्यां यावदद्यापीन्द्रियपर्याप्तिं न समापयन्ति तावत्तिर्यग्मनुष्याणा-मौदारिकयोगोऽभिप्रेतः । सुरनारकाणां तु लब्ध्यपर्याप्तत्वं नास्त्येवेति न तेषां वैक्रिययोगः प्रतिपादित इति । करणापर्याप्तानां त्वौदारिकयोगो वैक्रिययोगश्च न विवक्षितः, अन्यथाऽपर्या-

दनगुणस्थानकभाव उक्तः ? सत्यमेतत् . किन्तु मा त्वरिष्ठाः, स्वयमेतदाचार्य एवाग्रे प्रतिविधास्यतीति ।।४।। संज्ञिनि अपर्याप्तके 'त्रीणि' गुणस्थानकानि भवन्ति। कानि ? इत्यत आह–'मिच्छदिट्ठिसासाणअविरया' इति, मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिलक्षणानि, न शेषाणि सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादीनि, तेषां पर्याप्तवस्थायामेव भावात्। 'सव्वे सन्निपजत्ते' इति, [1]सर्वाण्यपि मिथ्यादृष्ट्यादीन्ययोगिपर्यन्तानि गुणस्थानकानि संज्ञिनि पर्याप्ते भवन्ति, संज्ञिनः सर्वपरिणामसंभवात् । अथ कथं संज्ञिनः सयोग्ययोगिरूपगुणस्थानकद्वयसंभवः ? तद्भावे तस्यामनस्कतया संज्ञित्वायोगात्, न, तदानीमपि हि तस्य द्रव्यमनःसंबन्धोऽस्ति, समनस्काश्चाविशेषेण संज्ञिनो व्यवह्रियन्ते, ततो न तस्य संज्ञित्वव्याघातः। उक्तं च–"मणकरणं केवलिणो वि अत्थि, तेण सण्णिणो भन्नंति। मणोविन्नाणं पडुच्च ते सन्निणो न भवंति" इति ।। 'मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि' इति शेषेषु पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तबादरद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणेषु समस्तस्वपि जीवस्थानकेषु मिथ्यादृष्टिलक्षणमेकं गुणस्थानकं भवति, न सासादनलक्षणमपि कथम् ? इति चेत्, उच्यते–इह संज्ञिशेषेषु जीवस्थानकेषु परभवादागच्छतामेव घण्टालालान्यायेन सम्यक्त्वलेशमास्वादयतामुत्पत्तिकाल एव सासादनभावो लभ्यते, तदानीं चैतेषामपर्याप्तावस्था। तत्रापि चापर्याप्ते सूक्ष्मैकेन्द्रिये न सासादनभावसंभवः, तस्य मनाक् शुभपरिणामरूपत्वात्, महासंक्लिष्टपरिणामस्य च सूक्ष्मैकेन्द्रियमध्ये उत्पादाभिधानादिति। तदेवं निरूपितानि जीवस्थानकेषु गुणस्थानकानि, [2]सांप्रतं यद्यप्युपयोगा वक्तुमवसरप्राप्तास्तथाऽपि बहुवक्तव्यत्वाद्योगा एव तावद्वक्ष्यन्ते। 'ते च' इत्यादि। ते च पञ्चदश । तद्यथा–सत्यवाग्योगः १, असत्यवाग्योगः २, सत्यमृषावाग्योगः ३, असत्यमृषावाग्योगः ४, । तत्स्वरूपं चेदम्–"सब्भा हिया सतामिह, संतो मुणओ गुणा पयत्था वा । तव्विवरीया मोसा, मीसा जा तदुभयसहावा ।।१।। अणहिगया जा तीसु वि, सद्दो च्चिय केवलो असच्चमुसा ।" एवं मनोयोगोऽपि चतुर्धा द्रष्टव्यः। काययोगः सप्तधा। औदारिकं १, औदारिकमिश्रं २, वैक्रियं ३, वैक्रियमिश्रं ४, आहारकं ५, आहारकमिश्रं ६, कार्मणं ७, च। तत्रौदारिककाययोगस्तिर्यङ्मनुष्ययोस्तयोरेवापर्याप्तयोरौदारिकमिश्रकाययोगः। वैक्रियकाययोगो देवनारकयोस्तिर्यङ्मनुष्ययोर्वा वैक्रियलब्धिमतोः । वैक्रियमिश्रकाययोगोऽपर्याप्तयोर्देवनारकयोस्तिर्यङ्मनुष्ययोर्वा वैक्रियारम्भकाले परित्यागकाले च। आहारककाययोगश्चतुर्दशपूर्वविदः। आहारक-

---

१ तालपत्रपुस्तके त्वितः परम्–"इह प्राकृतत्वाल्लिङ्गव्यत्ययः। यदाह पाणिनिः प्राकृतलक्षणे–'लिङ्गं व्यभिचारी' इति। ततश्च 'सर्वे' इति।" इत्येतत्पाठोऽधिक उपलभ्यते। २ इतः परं तालपत्रपुस्तके तु "सांप्रतं योगाः प्राप्तावसराः। ते च पञ्चदश। तद्यथा" इत्येतावानेव पाठो दृश्यते।

मिश्रकाययोगः आहारकस्य प्रारम्भसमये परित्यागकाले च । कार्मणकाययोगः अष्टप्रकारकर्मविकाररूपशरीरचेष्टास्वरूपोऽपान्तरालगतावुत्पत्तिप्रथमसमये केवलिसमुद्घातावस्थायां च ॥५॥

तानेतान् योगान् जीवस्थानकेषु चिन्तयन्नाह—

जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो ।
वेउव्वियमीसजुया सन्नि अपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

(हारि०) व्याख्या-'योगौ' वक्ष्यमाणलक्षणौ कार्मणौदारिकमिश्रकाययोगौ द्वौ । केषु ? इत्याह-'षट्स्वपर्याप्तकेषु' संज्ञिपञ्चेन्द्रियवर्जितेषु । तत्र विग्रहगतावनाहारकस्य यथासंभवमेकद्वित्रिसमयान् यावत्कार्मणकाययोगः, तदन्यत्रौदारिकमिश्रयोग इति । मिश्रता च कार्मणेनैव सह मन्तव्येति । तथा वैक्रियमिश्रयुतौ तावेव पूर्वोक्तौ द्वौ । क्व ? इत्याह-संज्ञिन्यपर्याप्तके त्रय एवंरूपा भवन्ति । अत्र तु देवनारकेषूत्पद्यमानस्य वैक्रियमिश्रकाययोगो द्रष्टव्यः । अत्रापि मिश्रता कार्मणेनैव सह मन्तव्या । इति गाथार्थः ॥६॥

अथात्रैव गाथार्द्धेन मतान्तरं दर्शयन् पर्याप्तेषु तानेवाह—

(मल०) संज्ञिपञ्चेन्द्रियापर्याप्तकवर्जितेषु षट्स्वपर्याप्तकेषु द्वौ कार्मणौदारिकमिश्रलक्षणौ योगौ भवतः । तत्र कार्मणकाययोगोऽपान्तरालगतावुत्पत्तिप्रथमसमये च । शेषकालं त्वौदारिकमिश्रकाययोगः । 'सन्निअपज्जत्तए तिन्नि' इति संज्ञिन्यपर्याप्तके त्रयो योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह-'वेउव्वियमीसजुया' तावेवानन्तरोक्तावौदारिकमिश्रकार्मणयोगौ वैक्रियमिश्रयुतौ, तथा च त्रयो योगा भवन्ति । वैक्रियमिश्रकाययोगश्च संज्ञिनोऽपर्याप्तस्य देवनारकेषूत्पद्यमानस्य द्रष्टव्यो न शेषस्य, असंभवात् । मिश्रता च कार्मणेन सह द्रष्टव्या ॥६॥

अत्रैव मतान्तरमुपदर्शयन्नाह—

बिंति अपज्जत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।
बायरपज्जत्ते तिन्नि उरल वेउव्वियदुगं च ॥७॥

(हारि०) व्याख्या-अत्रैवं योजना कार्या । केचनाचार्याः शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्तानामपि 'तणुपज्जत्ताण' इति तनुपर्याप्तानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिकशरीरं 'ब्रुवते' प्रतिपादयन्तीति । नन्वेवं सति वैक्रियमपि प्राप्नोति, न्यायस्य समानत्वादिति, सत्यम् , लब्ध्यपर्याप्तानां शरीरपर्याप्तौ सत्यां यावदद्यापीन्द्रियपर्याप्तिं न समापयन्ति तावत्तिर्यग्मनुष्याणामौदारिकयोगोऽभिप्रेतः । सुरनारकाणां तु लब्ध्यपर्याप्तत्वं नास्त्येवेति न तेषां वैक्रिययोगः प्रतिपादित इति । करणापर्याप्तानां त्वौदारिकयोगो वैक्रिययोगश्च न विवक्षितः, अन्यथाऽपर्या-

प्तानामौदारिकयोगवद्वै क्रिययोगोऽप्यभिहितः स्यादिति । लब्धिकरणापर्याप्तकपर्याप्तिमतां पुनरयं विशेषः- लब्ध्यपर्याप्तास्त उच्यन्ते ये निजपर्याप्तीरसमाप्य म्रियन्ते, लब्धिपर्याप्ताः पुनः समाप्य म्रियन्त इति । करणापर्याप्तास्ते भण्यन्ते ये निजपर्याप्तीर्नाद्यापि पूरयन्ति परं पूरयिष्यन्ति । करणपर्याप्ताः पुनस्ते भण्यन्ते यैर्निजपर्याप्तयः पूरिता भवन्ति । अतो देवनारका असंख्यातवर्षायुषस्तिर्यङ्नरा जिनादयश्च लब्धिपर्याप्ता एव भवन्ति न तु लब्ध्यपर्याप्ताः तेषां निरुपक्रमायुष्कत्वेनापर्याप्तकावस्थायां मरणाभावात् । तथा चोक्तम्-' **देवा नेरइया वा, असंखवासाउया य तिरिमणुया । उत्तमपुरिसा य तहा, चरमसरीरा य निरुवकमा ।।१।।**" इति । करणत उभयथाऽपि भवन्ति । संख्यातवर्षायुषो नरतिर्यञ्चो लब्धितः करणतश्चापर्याप्ताः पर्याप्तकाश्च भवन्ति । संख्यातवर्षायुषस्तिर्यङ्नरास्तु ते गीयन्ते[1] येषां पूर्वकोट्यायुः, येषां पुनस्तदधिकं तेऽसंख्यातवर्षायुषो[2]ऽभिधीयन्ते आगमपरिभाषया । इत्युक्तं प्रासङ्गिकं साम्प्रतं प्रस्तुतमभिधीयत इति '**बायरपज्जत्ते**' इत्यादि बादरपर्याप्ते किम् ? इत्याह—औदारिकं वैक्रियद्विकं च वैक्रियशरीरतन्मिश्रलक्षणमिति त्रयो भवन्तीति शेषः । वैक्रियद्विकस्य हि बादरपर्याप्तकवायुकायिकेषु सद्भावात् । इति गाथार्थः ।।७।।

अथ गाथार्द्धेन योगान् समर्थयन् जीवेष्वेवोपयोगानाह—

(मल०) केचिदाचार्याः शीलाङ्कादयः शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्तानां '**तणुपज्जत्ताणं**' इति तनुपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिकं शरीरं '**ब्रुवते**' प्रतिपादयन्ति । शरीरपर्याप्त्या हि परिसमाप्तवत्या किल तेषां शरीरं परिपूर्णं निष्पन्नमितिकृत्वा । तथा च तद्ग्रन्थः-"**औदारिककाययोगस्तिर्यङ्मनुजयोः शरीरपर्याप्तेरूर्ध्वं, तदारतस्तु मिश्रः**" इति । नन्वनया युक्त्या संज्ञिनोऽपर्याप्तस्य देवनारकेषूत्पद्यमानस्य तनुपर्याप्त्या पर्याप्तस्य वैक्रियमपि शरीरमुपपद्यत एव तत्किमिह तन्नोक्तम् ?, इत्युच्यते, उपलक्षणत्वादेतदपि द्रष्टव्यमित्यदोषः । यद्वा इहापर्याप्ता लब्ध्यपर्याप्तका एवान्तर्मुहूर्तायुषो विवक्षितास्ते च तिर्यङ्मनुष्या एव घटन्ते तेषामेवान्तर्मुहूर्तायुष्कत्वसंभवात्, न देवनारकाः, तेषां जघन्यतोऽपि दशवर्षसहस्रप्रमाणायुष्कत्वात् । लब्ध्यपर्याप्तकाश्च जघन्यतोऽपीन्द्रियपर्याप्तौ परिसमाप्तायामेव म्रियन्ते नार्वाग्, इत्युक्तागमाभिप्रायेण । ततस्तेषां लब्ध्यपर्याप्तकानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिकमेव शरीरमुपपद्यते, न वैक्रियमित्यदोषः । केचिदिति ब्रुवाणस्य चाचार्यस्यायमभिप्रायो लक्ष्यते—यद्यपि तेषां शरीरपर्याप्तिरभूत्तथाऽपि इन्द्रियोच्छ्वासादीनामप्यद्याप्यनिष्पन्नत्वेन शरीरस्यासंपूर्णत्वात्, अत एव कार्मणस्याप्यद्यापि व्याप्रियमाणत्वादौदारिकमिश्रमेव तेषां युक्त्युपपन्नमिति । '**बायर**' इत्यादि बादर एकेन्द्रियपर्याप्तके त्रयो योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह—

१ "०स्ते भण्यन्ते" इत्यपि । २ 'भण्यन्ते" इत्यपि ।

औदारिकं वैक्रियद्विकं च। तत्रौदारिकं पृथिव्यादीनाम्। वैक्रियद्विकं तु वैक्रियतन्मिश्रलक्षणं वायुकायिकस्य ॥७॥

उरलं सुहुमे चउसु य, भासजुयं पनरसावि सन्निम्मि।
उवओगा दससु तओ, अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥८॥

(हारि०) व्याख्या–औदारिकशरीरं, क्व? इत्याह–सूक्ष्मे पर्याप्त इति पूर्वेण संबन्धः। तथा 'चतुर्षु' द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु, पर्याप्तेषु अत्रापि पूर्वेण योगः। किम्? इत्यत आह–तदौदारिकं पूर्वोक्तं भाषयाऽसत्यामृषारूपया युतं समन्वितं भाषायुतं योगद्वयमित्यर्थः। तथा 'पञ्चदशापि' योगा वक्ष्यमाणस्वरूपाः संज्ञिनि पर्याप्ते इति प्राक्तनेन संटङ्कः। इति योजिता जीवस्थानेषु योगाः पञ्चदशापि, साम्प्रतं तेष्वेवोपयोगान् प्रतिपिपादयिषुराह–'**उवओगा दससु तओ**' इत्यादि। उपयोगा वक्ष्यमाणलक्षणास्त्रयः, किंरूपाः? इत्याह–'**अचक्षुर्दर्शनम्**' चक्षुरहितशेषेन्द्रियोपयोगलक्षणम्। तथा '**अज्ञानद्विकं च**' मत्यज्ञानश्रुताज्ञानस्वरूपमिति। केषु? इत्याह–दशसु जीवस्थानेषु पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्म २ बादर २ द्वि २ त्रीन्द्रिया२ऽपर्याप्तकचतुरिन्द्रिया१ऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रिय१रूपेषु। इति गाथार्थः॥८॥

तथा—

(मल०) पर्याप्त इत्यनुवर्तते। '**औदारिकं**' औदारिककाययोगः सूक्ष्मैकेन्द्रिये पर्याप्ते भवति। तथा '**चउसु य भासजुयं**' इति चतुर्षु द्वि १ त्रि २ चतुरिन्द्रिया ३ ऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु ४ पर्याप्तेषु तदेवौदारिकं '**भाषायुतं**' वाग्योगसहितं द्रष्टव्यम्। भाषा चेह असत्यामृषारूपाऽवगन्तव्या। तदुक्तम्–"**विगलेसु असच्चमोसेव**" इति। '**पनरसावि 'सन्निम्मि'** इति संज्ञिनि पर्याप्तके पञ्चदशापि योगाः संभवन्ति। चतुर्धा मनोयोगः चतुर्धा वाग्योगः, सप्तधा च काययोग इति। नन्वौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रकार्मणकाययोगाः कथमस्योपपद्यन्ते? तेषामपर्याप्तावस्थामात्रित्वात्, उच्यते, वैक्रियमिश्रं संयतादेर्वैक्रियं प्रारभमाणस्य प्राप्यते। औदारिकमिश्रकाययोगौ तु केवलिनः समुद्घातगतस्य। उक्तं च "**औदारिकप्रयोक्ता, प्रथमाष्टमसमययोरसाविष्टः। मिश्रौदारिकयोक्ता, सप्तमषष्ठद्वितीयेषु ॥१॥ कार्मणशरीरयोगी, चतुर्थके पञ्चमे तृतीये च ॥**" तदेवं निरूपिता जीवस्थानकेषु योगाः, सांप्रतमुपयोगा निरूपणावसरप्राप्तास्ते च द्वादश। तद्यथा–मतिज्ञानादीनि पञ्च ज्ञानानि, मत्यज्ञानादीनि त्रीण्यज्ञानानि, चक्षुर्दर्शनादीनि च चत्वारि दर्शनानि। एतान् जीवस्थानेषु चिन्तयन्नाह–'**उवओगा**' इत्यादि। '**दससु**' जीवस्थानकेषु पर्याप्ता–ऽपर्याप्त–सूक्ष्म–बादर–एकेन्द्रिय ४ द्वीन्द्रिय ६ त्रीन्द्रिया ८ ऽपर्याप्त चतुरिन्द्रिया ९ऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रिय १० लक्षणेषु त्रय उपयोगा भवन्ति।

सानामौदारिकयोगवद्वै क्रिययोगोऽप्यभिहितः स्यादिति । लब्धिकरणापर्याप्तकपर्याप्तमतां पुनरयं विशेषः- लब्ध्यपर्याप्तास्त उच्यन्ते ये निजपर्याप्तीरसमाप्य म्रियन्ते, लब्धिपर्याप्ताः पुनः समाप्य म्रियन्त इति । करणापर्याप्तास्ते भण्यन्ते ये निजपर्याप्तीर्नाद्यापि पूरयन्ति परं पूरयिष्यन्ति । करणपर्याप्ताः पुनस्ते भण्यन्ते यैर्निजपर्याप्तयः पूरिता भवन्ति । अतो देवनारका असंख्यातवर्षायुषस्तिर्यङ्नरा जिनादयश्च लब्धिपर्याप्ता एव भवन्ति न तु लब्ध्यपर्याप्ताः तेषां निरुपक्रमायुष्कत्वेनापर्याप्तकावस्थायां मरणाभावात् । तथा चोक्तम्-' देवा नेरइया वा, असंखवासाउया य तिरिमणुया । उत्तमपुरिसा य तहा, चरमसरीरा य निरुवकमा ।१।।" इति । करणत उभयथाऽपि भवन्ति । संख्यातवर्षायुषो नरतिर्यञ्चो लब्धितः करणतश्चापर्याप्ताः पर्याप्तकाश्च भवन्ति । संख्यातवर्षायुषस्तिर्यङ्नरा[1]स्तु ते गीयन्ते येषां पूर्वकोट्यायुः, येषां पुनस्तदधिकं तेऽसंख्यातवर्षायुषो[2]ऽभिधीयन्ते आगमपरिभाषया । इत्युक्तं प्रासङ्गिकं साम्प्रतं प्रस्तुतमभिधीयत इति 'बायरपज्जत्ते' इत्यादि बादरपर्याप्ते किम् ? इत्याह–औदारिकं वैक्रियद्विकं च वैक्रियशरीरतन्मिश्रलक्षणमिति त्रयो भवन्तीति शेषः । वैक्रियद्विकस्य हि बादरपर्याप्तकवायुकायिकेषु सद्भावात् । इति गाथार्थः ।।७।।

अथ गाथार्द्धेन योगान् समर्थयन् जीवेष्वेवोपयोगानाह—

(मल०) केचिदाचार्याः शीलाङ्कादयः शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्तानां 'तणुपज्जत्ताणं' इति तनुपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिकं शरीरं 'ब्रुवते' प्रतिपादयन्ति । शरीरपर्याप्त्या हि परिसमाप्तवत्या किल तेषां शरीरं परिपूर्णं निष्पन्नमितिकृत्वा । तथा च तद्ग्रन्थः–"औदारिककाययोगस्तिर्यङ्मनुजयोः शरीरपर्याप्तेरूर्ध्वं, तदारतस्तु मिश्रः" इति । नन्वनया युक्त्या संज्ञिनोऽपर्याप्तस्य देवनारकेषूत्पद्यमानस्य तनुपर्याप्त्या पर्याप्तस्य वैक्रियमपि शरीरमुपपद्यत एव तत्किमिह नोक्तम् ?, इत्युच्यते, उपलक्षणत्वादेतदपि द्रष्टव्यमित्यदोषः । यद्वा इहापर्याप्ता लब्ध्यपर्याप्तका एवान्तर्मुहूर्तायुषो विवक्षितास्ते च तिर्यङ्मनुष्या एव घटन्ते तेषामेवान्तर्मुहूर्तायुष्कत्वसंभवात् , न देवनारकाः, तेषां जघन्यतोऽपि दशवर्षसहस्रप्रमाणायुष्कत्वात् । लब्ध्यपर्याप्तकाश्च जघन्यतोऽपीन्द्रियपर्याप्तौ परिसमाप्तायामेव म्रियन्ते नार्वाग् , इत्युक्तागमाभिप्रायेण । ततस्तेषां लब्ध्यपर्याप्तकानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिकमेव शरीरमुपपद्यते, न वैक्रियमित्यदोषः । केचिदिति ब्रुवाणस्य चाचार्यस्यायमभिप्रायो लक्ष्यते–यद्यपि तेषां शरीरपर्याप्तिरभूत्तथाऽपि इन्द्रियोच्छ्वासादीनामप्यद्याप्यनिष्पन्नत्वेन शरीरस्यासंपूर्णत्वात् , अत एव कार्मणस्याप्यद्यापि व्याप्रियमाणत्वादौदारिकमिश्रमेव तेषां युक्त्युपपन्नमिति । 'बायर' इत्यादि बादर एकेन्द्रियपर्याप्तके त्रयो योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह–

१ "०स्ते भण्यन्ते" इत्यपि । २ "भण्यन्ते" इत्यपि ।

पर्याप्तकेषु । 'मणनाण' इत्यादि संज्ञिनि अपर्याप्ते मनःपर्यवज्ञानचक्षुर्दर्शनकेवलज्ञानकेवलदर्शन-रूपकेवलद्विकरहिताः शेषा अष्टावपि ज्ञानात्रिकाज्ञानत्रिकाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनरूपा उपयोगा भवन्ति ॥९॥

सव्वे सन्निसु एत्तो, लेसाओ छावि दुविह सन्निंमि ।
चउरो पढमा बायर अपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(हारि०) व्याख्य.– **सर्वे** उपयोगाः '**संज्ञिषु**' पर्याप्तष्विति शेषः । एवं प्रतिपादिता जीवस्थानेषूपयोगाः, इतो लेश्यास्तेष्वेव प्रतिपाद्यन्त इति शेषः । '**छावि दुविह सन्निंमि**' इति षडपि कृष्णलेश्याद्याः । क ? **द्विविधे संज्ञिनि**' पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे । तथा '**चतस्रः प्रथमाः**' कृष्णनीलकापोततैजसीरूपाः । क ? **बादर**' इति बादरेऽपर्याप्ते देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुपूत्पन्नस्य तेजोलेश्यायाः सद्भावात् । तथा **तिस्रः**' प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्या', केषु ? शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्तबादरवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानेषु । इति गाथार्थः ॥१०॥

इति प्रतिपादिता लेश्या जीवस्थानेषु, सांप्रतं तेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थानचतुष्टयमेकगाथया प्रतिपादयन्नाह—

(मल०) सर्वेऽपि द्वादशाप्युपयोगाः संज्ञिषु पर्याप्तेषु द्रष्टव्याः ते च क्रमेणैव न तु युगपत्, उपयोगानां तथाजीवस्वभावत्वतो यौगपद्यासंभवात् । तदुक्तम्–"**समए दो उवओगा**" इति । तदेवं निरूपिता जीवस्थानकेषूपयोगाः । '**एत्तो**' इति इत ऊर्ध्वमेतेष्वेव लेश्या अपि निरूप्यन्ते '**छावि दुविह सन्निम्मि**' इति द्विविधेऽपि संज्ञिनि पर्याप्तापर्याप्तलक्षणे षडपि कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लरूपा लेश्या भवन्ति । '**चउरो पढमा बायर अपजत्ते**' इति बादरैकेन्द्रियेऽपर्याप्तके प्रथमाश्चतस्रः कृष्णनीलकापोततेजोरूपा भवन्ति । तेजोलेश्या कथमवाप्यते ?, इति चेदुच्यते, यदा देवभवाच्च्युतः सन् कश्चनापि बादरैकेन्द्रियतया भूदकतरुषु मध्ये समुत्पद्यते तदा तस्य घण्टालालान्यायेन साऽवाप्यते इत्यदोषः '**तिन्नि सेसेसु**' इति । अत्र प्रथमा इत्यनुवर्तते । प्रथमास्तिस्रः कृष्णनीलकापोताख्याः शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्तबादरैकेन्द्रियवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानकेषु लभ्यन्ते नान्याः, तेषां सदैवाशुभपरिणामभावात् । शुभपरिणामरूपाश्च तेजोलेश्यादयः । इति ॥१०॥

तदेवं जीवस्थानकेषु लेश्या अभिधाय, साम्प्रतमेतेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थानचतुष्टयमभिधित्सुराह—

सत्तट्ठ १ अट्ठ २ सत्तट्ठ ३ अट्ठ ४ बंधु १दयु २दीरणा ३संता[१]४ ।
तेरससु जीवठाणेसु सन्निपज्जत्तए ओघो ॥११॥

१ "सत्ता" इत्यपि पाठः ।

पर्याप्तकेषु । 'मणनाण' इत्यादि संज्ञिनि अपर्याप्ते मनःपर्यवज्ञानचक्षुर्दर्शनकेवलज्ञानकेवलदर्शन-रूपकेवलद्विकरहिताः शेषा अष्टावपि ज्ञानत्रिकाज्ञानत्रिकाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनरूपा उपयोगा भवन्ति ॥९॥

सव्वे सन्निसु एत्तो, लेसाओ छावि दुविह सन्निंमि ।
चउरो पढमा बायर अपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(हारि०) व्याख्या.- सर्वे उपयोगाः 'संज्ञिषु' पर्याप्तष्विति शेषः । एवं प्रतिपादिता जीवस्थानेषूपयोगाः, इतो लेश्यास्तेष्वेव प्रतिपाद्यन्त इति शेषः । 'छावि दुविह सन्निंमि' इति षडपि कृष्णलेश्याद्याः । क्व ? द्विविधे संज्ञिनि' पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे । तथा 'चतस्रः प्रथमाः' कृष्णनीलकापोततैजसीरूपाः । क्व ? बादर' इति बादरेऽपर्याप्ते देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुषूत्प-न्नस्य तेजोलेश्यायाः सद्भावात् । तथा तिस्रः' प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्याः, केषु ? शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्तबादरवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानेषु । इति गाथार्थः ॥१०॥

इति प्रतिपादिता लेश्या जीवस्थानेषु, सांप्रतं तेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थानचतुष्ट-यमेकगाथया प्रतिपादयन्नाह—

(मल०) सर्वेऽपि द्वादशाप्युपयोगाः संज्ञिषु पर्याप्तेषु द्रष्टव्याः ते च क्रमेणैव न तु युगपत्, उपयोगानां तथाजीवस्वभावत्वतो यौगपद्यासंभवात् । तदुक्तम्-"समए दो णुव-ओगा" इति । तदेवं निरूपिता जीवस्थानकेषूपयोगाः । 'एत्तो' इति इत ऊर्ध्वमेतेष्वेव लेश्या अपि निरूप्यन्ते 'छावि दुविह सन्निम्मि' इति द्विविधेऽपि संज्ञिनि पर्याप्तापर्याप्तलक्षणे षडपि कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लरूपा लेश्या भवन्ति । 'चउरो पढमा बायर अपजत्ते' इति बादरैकेन्द्रियेऽपर्याप्तके प्रथमाश्चतस्रः कृष्णनीलकापोततेजोरूपा भवन्ति । तेजोलेश्या कथमवा-प्यते ?, इति चेदुच्यते, यदा देवभवाच्च्युतः सन् कश्चनापि बादरैकेन्द्रियतया भूदकतरुषु मध्ये समुत्पद्यते तदा तस्य घण्टालालान्यायेन साऽवाप्यते इत्यदोषः 'तिन्नि सेसेसु' इति । अत्र प्रथमा इत्यनुवर्तते । प्रथमास्तिस्रः कृष्णनीलकापोताख्याः शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्त-बादरैकेन्द्रियवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानकेषु लभ्यन्ते नान्याः, तेषां सदैवाशुभपरिणामभावात् । शुभपरिणामरूपाश्च तेजोलेश्यादयः । इति ॥१०॥

तदेवं जीवस्थानकेषु लेश्या अभिधाय, साम्प्रतमेतेष्वेव बन्धोदयोदीरणसत्ताख्यस्थान-चतुष्टयमभिधित्सुराह—

सत्तट्ठ १ अट्ठ २ सत्तट्ठ ३ अट्ठ ४ बंधु १दयु २दीरणा ३संता[1]४ ।
तेरससु जीवठाणेसु सन्निपज्जत्तए ओघो ॥११॥

१ "सत्ता" इत्यपि पाठः ।

के ते ? इत्याह–अचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकं च मत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणम् । ननु स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमसंभवाद्भवतु मतिरेकेन्द्रियाणां, यत्तु श्रुतं तत्कथमुपपद्यते ? भाषालब्धिश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वात्, भाषाश्रोत्रेन्द्रियलब्धिमतो हि तदुपपद्यते नान्यस्य । तदुक्तम्— "**भावसुयं भासासोयलद्धिणो जुज्जए न इयरस्स । भासाभिमुहस्स सुयं, सोऊण व जं हविज्जाहि ॥१॥**" उच्यते, इह तावदेकेन्द्रियाणामाहारादिसंज्ञा विद्यते, तथा सूत्रेऽभिधानात् । संज्ञा चाभिलाष उच्यते । यदुक्तमावश्यकटीकायाम्–"**आहारसंज्ञा आहाराभिलाषः क्षुद्वेदनीयप्रभवः खल्वात्मपरिणामविशेषः**" इति । अभिलापश्च ममैवंरूपं वस्तु पुष्टिकारि तद्यदीदमवाप्यते ततः समीचीनं भवति इत्येवंशब्दार्थोल्लेखानुविद्धः स्वपुष्टिनिमित्तभूतप्रतिनियतवस्तुप्राप्त्यध्यवसायरूपः, स च श्रुतमेव शब्दार्थालोचनानुसारित्वात् श्रुतस्य चैतल्लक्षणत्वात्, उक्तं च–**इंदियमणोनिमित्तं, जं विन्नाणं सुयाणुसारेण । निययत्थोत्तिसमत्थं तं भावसुयं मई सेसं ॥१॥**" इति 'सुयाणुसारेण' इति शब्दार्थालोचनानुसारेण केवलमेकेन्द्रियाणामव्यक्त एव कश्चनापि अनिर्वचनीयः शब्दार्थोल्लेखो द्रष्टव्यः, अन्यथाऽऽहारादिसंज्ञानुपपत्तेः । यदप्युक्तं भाषालब्धिश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वादेकेन्द्रियाणां श्रुतमनुपपन्नमिति, तदप्यसमीक्षिताभिधानम्, तथाहि–बकुलादेः स्पर्शनेन्द्रियातिरिक्तद्रव्येन्द्रियविकलत्वेऽपि किमपि सूक्ष्मं भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानमभ्युपगम्यते, "**पचेंदिउ व्व (ओ उ) बउलो**" इत्यादिजिनवचनप्रामाण्यात्, तथा भाषाश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं श्रुतमपि भविष्यति, अन्यथा आहारादिसंज्ञानुपपत्तेः, तदुक्तम्–"**जह सुहुमं भाविंदियणाणं दव्विंदियाण विरहे वि । दव्वसुयाभावंमि वि, भावसुयं पत्थिवाईणं ॥१॥**" इति कृतं प्रसंगेन गमनिकामात्रफलत्वात्प्रयासस्य ॥८॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो ।
मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्नि अपजत्ते ॥९॥

(हारि०) व्याख्या–ते पूर्वगाथोक्तास्त्रय उपयोगाः '**चक्षुर्युताः**' चक्षुरिन्द्रियोपयोगान्विताश्चत्वारो भवन्तीत्यर्थः। केषु ? '**चउरिंदियअसन्नि**' इति विभक्तिलोपाच्चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु, कीदृशेषु ? पर्याप्तकेषु । तथा मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनकेवलद्विकरहिताः । केवलद्विकं तु केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपम् । शेषा अष्टावुपयोगाः संज्ञिन्यपर्याप्तके भवन्ति । इति गाथार्थः ॥९॥

अथ किंचिदूनपादेनोपयोगान् समर्थयन् संबन्धपूर्वकं लेश्यास्तेष्वेव दर्शयन्नाह—

(मल०) त एव पूर्वोक्तास्त्रय उपयोगाः '**चक्षुर्युताः**' चक्षुर्दर्शनोपयोगसहिताः सन्तश्चत्वार उपयोगा भवन्ति, केषु ? इत्याह–'**चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु**' चतुरिन्द्रियेषु असंज्ञिषु च

पर्याप्तकेषु । 'मणनाण' इत्यादि संज्ञिनि अपर्याप्ते मनःपर्यवज्ञानचक्षुर्दर्शनकेवलज्ञानकेवलदर्शन-रूपकेवलद्विकरहिताः शेषा अष्टावपि ज्ञानात्रिकाज्ञानत्रिकाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनरूपा उपयोगा भवन्ति ॥९॥

मव्वे सन्निसु एत्तो, लेसाओ छावि दुविह सन्निंमि ।
चउरो पढमा बायर अपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(हारि०) व्याख्या- सर्वे उपयोगाः 'संज्ञिषु' पर्याप्तष्विति शेषः । एवं प्रतिपादिता जीवस्थानेषूपयोगाः, इतो लेश्यास्तेष्वेव प्रतिपाद्यन्त इति शेषः । 'छावि दुविह सन्निंमि' इति षडपि कृष्णलेश्याद्याः । क १ द्विविधे संज्ञिनि' पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे । तथा 'चतस्रः प्रथमाः' कृष्णनीलकापोततैजसीरूपाः । क १ बादर' इति बादरेऽपर्याप्ते देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुपूत्पन्नस्य तेजोलेश्यायाः सद्भावात् । तथा तिस्रः' प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्या', केषु १ शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्तबादरवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानेषु । इति गाथार्थः ॥१०॥

इति प्रतिपादिता लेश्या जीवस्थानेषु, सांप्रतं तेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थानचतुष्टयमेकगाथया प्रतिपादयन्नाह—

(मल०) सर्वेऽपि द्वादशाप्युपयोगाः संज्ञिषु पर्याप्तेषु द्रष्टव्याः ते च क्रमेणैव न तु युगपत्, उपयोगानां तथाजीवस्वभावत्वतो यौगपद्यासंभवात् । तदुक्तम्—"समए दो णुवओगा" इति । तदेवं निरूपिता जीवस्थानकेषूपयोगाः । 'एत्तो' इति इत ऊर्ध्वमेतेष्वेव लेश्या अपि निरूप्यन्ते 'छावि दुविह सन्निम्मि' इति द्विविधेऽपि संज्ञिनि पर्याप्तापर्याप्तलक्षणे षडपि कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लरूपा लेश्या भवन्ति । 'चउरो पढमा बायर अपजत्ते' इति बादरैकेन्द्रियेऽपर्याप्तके प्रथमाश्चतस्रः कृष्णनीलकापोततेजोरूपा भवन्ति । तेजोलेश्या कथमवाप्यते १, इति चेदुच्यते, यदा देवभवाच्च्युतः सन् कश्चनापि बादरैकेन्द्रियतया भूदकतरुषु मध्ये समुत्पद्यते तदा तस्य घण्टालालान्यायेन साऽवाप्यते इत्यदोषः 'तिन्नि सेसेसु' इति । अत्र प्रथमा इत्यनुवर्तते । प्रथमास्तिस्रः कृष्णनीलकापोताख्याः शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्तबादरैकेन्द्रियवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानकेषु लभ्यन्ते नान्याः, तेषां सदैवाशुभपरिणामभावात् । शुभपरिणामरूपाश्च तेजोलेश्यादयः । इति ॥१०॥

तदेवं जीवस्थानकेषु लेश्या अभिधाय, साम्प्रतमेतेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थानचतुष्टयमभिधित्सुराह—

सत्तट्ठ १ अट्ठ २ सत्तट्ठ ३ अट्ठ ४ बंधु १दयु २दीरणा ३संता'४ ।
तेरससु जीवठाणेसु सन्निपज्जत्तए ओघो ॥११॥

१ "सत्ता" इत्यपि पाठः ।

के ते ? इत्याह–अचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकं च मत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणम् । ननु स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमसंभवाद्भवतु मतिरेकेन्द्रियाणां, यत्तु श्रुतं तत्कथमुपपद्यते ? भाषालब्धिश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वात्, भाषाश्रोत्रेन्द्रियलब्धिमतो हि तदुपपद्यते नान्यस्य । तदुक्तम्–"**भावसुयं भासासोयलद्धिणो जुज्जए न इयरस्स । भासाभिमुहस्स सुयं, सोऊण व जं हविज्जाहि ॥१॥**" उच्यते, इह तावदेकेन्द्रियाणामाहारादिसंज्ञा विद्यते, तथा सूत्रेऽभिधानात् । संज्ञा चाभिलाष उच्यते । यदुक्तमावश्यकटीकायाम्–"**आहारसंज्ञा आहाराभिलाषः क्षुद्वेदनीयप्रभवः खल्वात्मपरिणामविशेषः**" इति । अभिलाषश्च ममैवंरूपं वस्तु पुष्टिकारि तद्यदीदमवाप्यते ततः समीचीनं भवति इत्येवंशब्दार्थोल्लेखानुविद्धः स्वपुष्टिनिमित्तभूतप्रतिनियतवस्तुप्राप्त्यध्यवसायरूपः, स च श्रुतमेव शब्दार्थालोचनानुसारित्वात् श्रुतस्य चैतल्लक्षणत्वात्, उक्तं च–"**इंदियमणोनिमित्तं, जं विन्नाणं सुयाणुसारेण । निययत्थोत्तिसमत्थं तं भावसुयं मई सेसं ॥१॥**" इति '**सुयाणुसारेण**' इति शब्दार्थालोचनानुसारेण केवलमेकेन्द्रियाणामव्यक्त एव कश्चनापि अनिर्वचनीयः शब्दार्थोल्लेखो द्रष्टव्यः, अन्यथाऽऽहारादिसंज्ञानुपपत्तेः । यदप्युक्तं भाषालब्धिश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वादेकेन्द्रियाणां श्रुतमनुपपन्नमिति, तदप्यसमीक्षिताभिधानम्, तथाहि–वकुलादेः स्पर्शनेन्द्रियातिरिक्तद्रव्येन्द्रियविकलत्वेऽपि किमपि सूक्ष्मं भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानमभ्युपगम्यते, "**पचेंदिउ व्व (ओ उ) बउलो**" इत्यादिजिनवचनप्रामाण्यात्, तथा भाषाश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं श्रुतमपि भविष्यति, अन्यथा आहारादिसंज्ञानुपपत्तेः, तदुक्तम्–"**जह सुहुमं भाविंदियनाणं दव्विंदियाण विरहे वि । दव्वसुयाभावंमि वि, भावसुयं पत्थिवाईणं ॥१॥**" इति कृतं प्रसंगेन गमनिकामात्रफलत्वात्प्रयासस्य ॥८॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो ।
मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्नि अपजत्ते ॥९॥

(हारि०) व्याख्या–ते पूर्वगाथोक्तास्त्रय उपयोगाः '**चक्षुर्युताः**' चक्षुरिन्द्रियोपयोगान्विताश्चत्वारो भवन्तीत्यर्थः। केषु ? '**चउरिंदियअसन्नि**' इति विभक्तिलोपाच्चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु, कीदृशेषु ? पर्याप्तकेषु । तथा मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनकेवलद्विकरहिताः । केवलद्विकं तु केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपम् । शेषा अष्टावुपयोगाः संज्ञिन्यपर्याप्तके भवन्ति । इति गाथार्थः ॥९॥

अथ किंचिदूनपादेनोपयोगान् समर्थयन् संबन्धपूर्वकं लेश्यास्तेष्वेव दर्शयन्नाह—

(मल०) त एव पूर्वोक्तास्त्रय उपयोगाः '**चक्षुर्युताः**' चक्षुर्दर्शनोपयोगसहिताः सन्तश्चत्वार उपयोगा भवन्ति, केषु ? इत्याह–'**चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु**' चतुरिन्द्रियेषु असंज्ञिषु च

पर्याप्तकेषु । 'मणनाण' इत्यादि संज्ञिनि अपर्याप्ते मनःपर्यवज्ञानचक्षुर्दर्शनकेवलज्ञानकेवलदर्शनरूपकेवलद्विकरहिताः शेषा अष्टावपि ज्ञानत्रिकाज्ञानत्रिकाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनरूपा उपयोगा भवन्ति ॥९॥

सव्वे सन्निसु एत्तो, लेसाओ छावि दुविह सन्निंमि ।
चउरो पढमा बायर अपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(हारि०) व्याख्या– सर्वे उपयोगाः 'संज्ञिषु' पर्याप्तेष्विति शेषः । एवं प्रतिपादिता जीवस्थानेषूपयोगाः, इतो लेश्यास्तेष्वेव प्रतिपाद्यन्त इति शेषः । 'छावि दुविह सन्निंमि' इति षडपि कृष्णलेश्याद्याः । क्व ? 'द्विविधे संज्ञिनि' पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे । तथा 'चतस्रः प्रथमाः' कृष्णनीलकापोततैजसीरूपाः । क्व ? 'बादर' इति बादरेऽपर्याप्ते देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुपूत्पन्नस्य तेजोलेश्यायाः सद्भावात् । तथा 'तिस्रः' प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्याः, केषु ? शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्तबादरवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानेषु । इति गाथार्थः ॥१०॥

इति प्रतिपादिता लेश्या जीवस्थानेषु, सांप्रतं तेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थानचतुष्टयमेकगाथया प्रतिपादयन्नाह—

(मल०) सर्वेऽपि द्वादशाप्युपयोगाः संज्ञिषु पर्याप्तेषु द्रष्टव्याः ते च क्रमेणैव न तु युगपत्, उपयोगानां तथाजीवस्वभावत्वतो यौगपद्यासंभवात् । तदुक्तम्–"समए दो णुवओगा" इति । तदेवं निरूपिता जीवस्थानकेषूपयोगाः । 'एत्तो' इति इत ऊर्ध्वमेतेष्वेव लेश्या अपि निरूप्यन्ते 'छावि दुविह सन्निम्मि' इति द्विविधेऽपि संज्ञिनि पर्याप्तापर्याप्तलक्षणे षडपि कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लरूपा लेश्या भवन्ति । 'चउरो पढमा बायर अपजत्ते' इति बादरैकेन्द्रियेऽपर्याप्तके प्रथमाश्चतस्रः कृष्णनीलकापोततेजोरूपा भवन्ति । तेजोलेश्या कथमवाप्यते ?, इति चेदुच्यते, यदा देवभवाच्च्युतः सन् कश्चनापि बादरैकेन्द्रियतया भूदकतरुषु मध्ये समुत्पद्यते तदा तस्य घण्टालालान्यायेन साऽवाप्यते इत्यदोषः 'तिन्नि सेसेसु' इति । अत्र प्रथमा इत्यनुवर्तते । प्रथमास्तिस्रः कृष्णनीलकापोताख्याः शेषेषु प्राक्तनद्विविधसंज्ञ्यपर्याप्तबादरैकेन्द्रियवर्जितेष्वेकादशसु जीवस्थानकेषु लभ्यन्ते नान्याः, तेषां सर्वत्राशुभपरिणामभावात् । शुभपरिणामरूपाश्च तेजोलेश्यादयः । इति ॥१०॥

तदेवं जीवस्थानकेषु लेश्या अभिधाय, साम्प्रतमेतेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यस्थानचतुष्टयमभिधित्सुराह—

सत्तट्ठ १ अट्ठ २ सत्तट्ठ ३ अट्ठ ४ बंधु १दयु २दीरणा ३संता[१] ४ ।
तेरससु जीवठाणेसु सन्निपज्जत्तए ओघो ॥११॥

१ "सत्ता" इत्यपि पाठः ।

के ते ? इत्याह—अचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकं च मत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणम् । ननु स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमसंभवाद्भवतु मतिरेकेन्द्रियाणां, यत्तु श्रुतं तत्कथमुपपद्यते ? भाषालब्धिश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वात्, भाषाश्रोत्रेन्द्रियलब्धिमतो हि तदुपपद्यते नान्यस्य । तदुक्तम्— **"भावसुयं भासासोयलद्धिणो जुज्जए न इयरस्स । भासाभिमुहस्स सुयं, सोऊण व जं हविज्जाहि ॥१॥"** उच्यते, इह तावदेकेन्द्रियाणामाहारादिसंज्ञा विद्यते, तथा सूत्रेऽभिधानात् । संज्ञा चाभिलाष उच्यते । यदुक्तमावश्यकटीकायाम्—**"आहारसंज्ञा आहाराभिलाषः क्षुद्वेदनीयप्रभवः खल्वात्मपरिणामविशेषः"** इति । अभिलापश्च ममैवंरूपं वस्तु पुष्टिकारि तद्यदीदमवाप्यते ततः समीचीनं भवति इत्येवंशब्दार्थोल्लेखानुविद्धः स्वपुष्टिनिमित्तभूतप्रतिनियतवस्तुप्राप्त्यध्यवसायरूपः, स च श्रुतमेव शब्दार्थालोचनानुसारित्वात् श्रुतस्य चैतल्लक्षणत्वात्, उक्तं च—**इंदियमणोनिमित्तं, जं विन्नाणं सुयाणुसारेण । निययत्थोत्तिसमत्थं तं भावसुयं मई सेसं ॥१॥"** इति **'सुयाणुसारेण'** इति शब्दार्थालोचनानुसारेण केवलमेकेन्द्रियाणामव्यक्त एव कश्चनापि अनिर्वचनीयः शब्दार्थोल्लेखो द्रष्टव्यः, अन्यथाऽऽहारादिसंज्ञानुपपत्तेः । यदप्युक्तं भाषालब्धिश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वादेकेन्द्रियाणां श्रुतमनुपपन्नमिति, तदप्यसमीक्षिताभिधानम्, तथाहि—बकुलादेः स्पर्शनेन्द्रियातिरिक्तद्रव्येन्द्रियविकलत्वेऽपि किमपि सूक्ष्मं भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानमभ्युपगम्यते, **"पचेंदिउ व्व (ओ उ) बउलो"** इत्यादिजिनवचनप्रामाण्यात्, तथा भाषाश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं श्रुतमपि भविष्यति, अन्यथा आहारादिसंज्ञानुपपत्तेः, तदुक्तम्—**"जह सुहुमं भाविंदियणाणं दव्विंदियाण विरहे वि । दव्वसुयाभावंमि वि, भावसुयं पत्थिवाईणं ॥१॥"** इति कृतं प्रसंगेन गमनिकामात्रफलत्वात्प्रयासस्य ॥८॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो ।
मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्नि अपजत्ते ॥९॥

(हारि०) व्याख्या—ते पूर्वगाथोक्तास्त्रय उपयोगाः **'चक्षुर्युताः'** चक्षुरिन्द्रियोपयोगान्विताश्चत्वारो भवन्तीत्यर्थः। केषु ? **'चउरिंदियअसन्नि'** इति विभक्तिलोपाच्चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु, कीदृशेषु ? पर्याप्तकेषु । तथा मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनकेवलद्विकरहिताः । केवलद्विकं तु केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपम् । शेषा अष्टावुपयोगाः संज्ञिन्यपर्याप्तके भवन्ति । इति गाथार्थः ॥९॥

अथ किंचिदूनपादेनोपयोगान् समर्थयन् संबन्धपूर्वकं लेश्यास्तेष्वेव दर्शयन्नाह—

(मल०) त एव पूर्वोक्तास्त्रय उपयोगाः **'चक्षुर्युताः'** चक्षुर्दर्शनोपयोगसहिताः सन्तश्चत्वार उपयोगा भवन्ति, केषु ? इत्याह—**'चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु'** चतुरिन्द्रियेषु असंज्ञिषु च

षट् ६, वेदनीयायुर्मोहवर्जाः पञ्च ५, नामगोत्रे एव द्वे २, इति पञ्चप्रकारोदीरणा ५। सत्ता पुनरुदयवत्। इति गाथार्थः ॥११॥

इत्युक्तानि जीवस्थानेषु गुणस्थानकादीन्यष्टौ पदानि, सांप्रतं मार्गणास्थानानि प्ररूपयन्नाह—

(मल०) सप्त वाऽष्टौ वा सप्ताष्टाः, सप्ताष्टाश्चाष्टौ चेत्यादिद्वन्द्वः। बन्धोदयादिपदानामपि द्वन्द्वः। ततः षष्ठीतत्पुरुषसमासः। समाननिर्देशत्वाच्चात्र यथासंख्यम्, एतदुक्तं भवति—संज्ञिपर्याप्तवर्जितेषु शेषेषु त्रयोदशसु जीवस्थानकेषु बन्धः सप्तानामष्टानां वा कर्मणां ज्ञातव्यः। तथाहि—यदाऽनुभूयमानभवायुषस्त्रिभागनवभागादिरूपे शेषे सति परभवायुर्बध्यते, तदाऽष्टानामपि कर्मणां बन्धः। शेषकालं त्वायुषो बन्धाभावात्सप्तानामेव उदयः पुनरेतेषु त्रयोदशसु जीवस्थानकेषु सर्वकालमष्टानामेव कर्मणाम्। यतः सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं यावदष्टानामपि कर्मणामुदयोऽवाप्यते, एतेषु च जीवस्थानकेषु उत्कर्षतोऽपि यथासंभवमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकसंभव इति। उदीरणा सप्तानामष्टानां वा। तत्र यदाऽनुभूयमानभवायुरुदयावलिकान्तः प्रविष्टं भवति तदा सप्तानाम्, अनुभूयमानभवायुषोऽनुदीरणात्, आवलिकावशेषस्योदीरणानर्हत्वात्। उदीरणा हि उदयावलिकाबहिर्वर्तिनीभ्यः स्थितिभ्यः सकाशात्कषायसहितेनासहितेन वा योगकरणेन दलिकमाकृष्योदयसमयप्राप्तेन दलिकेन सहानुभवनम्। तथा चोक्तम्—"**उदयावलियबाहिरिल्लठिईहिंतो कसायसहियासहिएणं जोगकरणेणं दलियमाकड्ढिय पत्तदलिएण समं अणुभवणमुदीरणा**" इति। ततः कथमावलिकागतस्योदीरणा भवति? इति, न च परभवायुषस्तदानीमुदीरणासंभवस्तस्योदयाभावात्, अनुदितस्य चोदीरणानर्हत्वात्। शेषकालं त्वष्टानामुदीरणेति। सत्ताऽप्येतेषु जीवस्थानकेष्वष्टानामपि कर्मणां द्रष्टव्या। तथाहि—अष्टानामपि कर्मणां सत्ता उपशान्तमोहगुणस्थानकं यावदनुवर्तते। एते च जीवा उत्कर्षतोऽपि यथासंभवमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकवर्तिन एवेति। '**सन्निपज्जत्तए ओघो**' इति संज्ञिनि पर्याप्ते ओघः, सामान्यं द्रष्टव्यम्। तच्च यद्यप्यग्रे स्वयमेवाचार्यो गुणस्थानकेषु बन्धादिमार्गणायामभिधास्यति तथाऽपीह स्थानाऽशून्यार्थं संक्षेपतः किंचिदुच्यते—तत्र सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकादर्वाग्वर्तिनो यथासंभवं यदायुर्बध्नन्ति तदाऽष्टानामपि कर्मणां बन्धकाः शेषकालं तु सप्तानाम्। सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकवर्तिनस्तु मोहायुर्वर्जानां षण्णां कर्मणाम्। उपशान्तमोहादयः पुनः सयोगिकेवलिपर्यन्ताः सातवेदनीयस्यैवैकस्येति। तथा सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं यावदष्टानामपि कर्मणामुदयः। उपशान्तमोहगुणस्थानके क्षीणमोहगुणस्थानके च मोहनीयवर्जानां सप्तकर्मप्रकृतीनाम्। सयोगिकेवलिगुणस्थानकेऽयोगिकेवलिगुणस्थानके

(हारि०) व्याख्या—सप्ताष्टौ चाष्टौ च सप्ताष्टौ चाष्टौ च सप्ताष्टाष्टसप्ताष्टाष्टौ। एतत्संख्यानि कानि भवन्ति ? इत्याह—'बंधुदयुदीरणा 'संता' इति बन्धश्च उदयश्च उदीरणा च स[2]च्च बन्धोदयोदीरणा[3]संति भवन्तीति शेषः । क ? इत्याह—'अयोदशसु जीवस्थानेषु' सूक्ष्मापर्याप्तादिषु । तथा 'सन्निपज्जत्तए ओघो' इति संज्ञिपर्याप्ते पर्यन्तवर्तिनि चतुर्दशजीवस्थानके ओघः सामान्यं भवति। इति गाथाऽक्षरघटना । भावना त्वेवम्—सप्तायुर्वर्जाः प्रकृतयोऽष्टौ तद्युक्ता बन्धे । तथाऽष्टावुदये । तथा सप्ताष्टौ कथितस्वरूपा उदीरणायाम् । तथाऽष्टौ सत्तायाम् । इति यथासंख्येन योजना कार्या । बन्धादीनां स्वरूपं त्विदम्—मिथ्यात्वादिभिर्बन्धहेतुभिरञ्जनचूर्णपूर्णसमुद्गकवन्निरन्तरं पुद्गलनिचिते लोके कर्मयोग्यवर्गणापुद्गलैरात्मनो वह्न्ययःपिण्डवदन्योऽन्यानुगमाभेदात्मकः संबन्धो बन्धः । तेषां च यथास्वस्थितिवद्धानां कर्मपुद्गलानां करणविशेषकृते स्वाभाविके वा स्थित्यपचये सत्युदयसमयप्राप्तानां विपाकवेदनमुदयः । करणानि पुनरिमान्युक्तानि । तथाहि—''**बंधण १ संकमणु २ व्वट्टणा ३ य ओवट्टणा ४ उईरणया ५ । उवसामणा ६ निहत्ती, ७ निकायणा ८ च त्ति करणाइं** ॥१॥'' अस्याः सुखार्थं लेशतो व्याख्यानमिदम्—बन्धनं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपम् १ । संक्रमणं प्रकृतेः प्रकृत्यन्तरनयनम् २ । उद्वर्तनं स्थितिरसवृद्ध्युत्पादनम् ३ । अपवर्तनं स्थितिरसह्रापनम् ४ । उदीरणाऽप्राप्तकालस्य कर्मदलिकस्योदये प्रवेशनम् ५ । [4]उपशमना सर्वकरणायोग्यत्वसंपादनं, दर्शनत्रिके तु संक्रमणमेकं प्रवर्तते ६ । निधत्तिरुदयोदीरणासंक्रमरूपैस्त्रिभिः करणैर्यदन्यथा कर्तुं न शक्यते ७ । निकाचना पुनः सर्वकरणायोग्यत्वमिति ८ । तथा कर्मपुद्गलानामेव करणविशेषजनिते स्थित्यपचये सत्युदयावलिकायां प्रवेशनमुदीरणा । बन्धसंक्रमाभ्यां लब्धात्मलाभानां कर्मणां निर्जरणसंक्रमकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सद्भावः सत्ता 'सन्निपज्जत्तए ओघो' इति । अस्य पदस्यार्थं स्वयमेव ग्रन्थकारो गुणस्थानकेषु बन्धादिमार्गणायामग्रे वक्ष्यति । स्थानाऽशून्यार्थं सामान्यतो, न गुणस्थानकयोजनया बन्धादिस्थानसंख्या गाथाद्वयेनोच्यते—''**बन्धेऽट्ठ सत्त छाउग ७ छविहममोहाउ ६ इगविहं सायं १ । सत्तोदयेसु अट्ठ उ ८, सत्त अमोहा ७ चउ अघाई ॥१॥ अट्ठ उदीरइ ८ सत्त उ, अणाउ ७ छव्विहमवेयणियआऊ ६ । पण अवियणमोहाउग ५ अकसाई नामगोत्तदुगं २ ॥२॥**'' अयमर्थः—अष्टौ सर्वा अपि मूलप्रकृतयः ८, आयुर्वर्जाः सप्त ७, मोहायुर्वर्जाः षट् ६, एकमेव वेदनीयम्, इत्येवं चतुर्धा बन्धः । तथाऽष्टौ [5]तथैव ८, मोहवर्जाः सप्त ७, घातिकर्मवर्जाश्चतस्रः ४, इत्युदयस्त्रिधा । तथाऽष्टौ पूर्ववत् ८, आयुर्वर्जाः सप्त ७, आयुर्वेदनीयवर्जाः

१-२-३ "सत्ता" इत्यपि पाठः । ४ "उपशामना" इत्यपि पाठः । ५ "पूर्ववत्" इत्यपि पाठः ।

षट् ६, वेदनीयायुर्मोहवर्जाः पञ्च ५, नामगोत्रे एव द्वे २, इति पञ्चप्रकारोदीरणा ५। सत्ता पुनरुदयवत्। इति गाथार्थः ॥११॥

इत्युक्तानि जीवस्थानेषु गुणस्थानकादीन्यष्टौ पदानि, सांप्रतं मार्गणास्थानानि प्ररूपयन्नाह—

(मल०) सप्त वाऽष्टौ वा सप्ताष्टाः, सप्ताष्टाश्चाष्टौ चेत्यादिद्वन्द्वः। बन्धोदयादिपदानामपि द्वन्द्वः। ततः षष्ठीतत्पुरुषसमासः। समाननिर्देशत्वाच्चात्र यथासंख्यम्, एतदुक्तं भवति—संज्ञिपर्याप्तवर्जितेषु शेषेषु त्रयोदशसु जीवस्थानकेषु बन्धः सप्तानामष्टानां वा कर्मणां ज्ञातव्यः। तथाहि—यदाऽनुभूयमानभवायुषस्त्रिभागनवभागादिरूपे शेषे सति परभवायुर्बध्यते, तदाऽष्टानामपि कर्मणां बन्धः। शेषकालं त्वायुषो बन्धाभावात्सप्तानामेव उदयः पुनरेतेषु त्रयोदशसु जीवस्थानकेषु सर्वकालमष्टानामेव कर्मणाम्। यतः सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं यावदष्टानामपि कर्मणामुदयोऽवाप्यते, एतेषु च जीवस्थानकेषु उत्कर्षतोऽपि यथासंभवमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकसंभव इति। उदीरणा सप्तानामष्टानां वा। तत्र यदाऽनुभूयमानभवायुरुदयावलिकान्तः प्रविष्टं भवति तदा सप्तानाम्, अनुभूयमानभवायुषोऽनुदीरणात्, आवलिकावशेषस्योदीरणानर्हत्वात्। उदीरणा हि उदयावलिकाबहिर्वर्तिनीभ्यः स्थितिभ्यः सकाशात्कषायसहितेनासहितेन वा योगकरणेन दलिकमाकृष्योदयसमयप्राप्तेन दलिकेन सहानुभवनम्। तथा चोक्तम्—"**उदयावलियबाहिरिल्लठिईहिंतो कसायसहियासहिएणं जोगकरणेणं दलियमाकड्ढिय पत्तवलिएण समं अणुभवणमुदीरणा**" इति। ततः कथमावलिकागतस्योदीरणा भवति? इति, न च परभवायुषस्तदानीमुदीराणासंभवस्तस्योदयाभावात्, अनुदितस्य चोदीरणानर्हत्वात्। शेषकालं त्वष्टानामुदीरणेति। सत्ताऽप्येतेषु जीवस्थानकेष्वष्टानामपि कर्मणां द्रष्टव्या। तथाहि—अष्टानामपि कर्मणां सत्ता उपशान्तमोहगुणस्थानकं यावदनुवर्तते। एते च जीवा उत्कर्षतोऽपि यथासंभवमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकवर्तिन एवेति। '**सन्निपज्जत्तए ओघो**' इति संज्ञिनि पर्याप्ते ओघः, सामान्यं द्रष्टव्यम्। तच्च यद्यप्यग्रे स्वयमेवाचार्यो गुणस्थानकेषु बन्धादिमार्गणायामभिधास्यति तथाऽपीह स्थानाऽशून्यार्थं संक्षेपतः किंचिदुच्यते—तत्र सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकादर्वाग्वर्तिनो यथासंभवं यदायुर्बध्नन्ति तदाऽष्टानामपि कर्मणां बन्धकाः शेषकालं तु सप्तानाम्। सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकवर्तिनस्तु मोहायुर्वर्जानां षण्णां कर्मणाम्। उपशान्तमोहादयः पुनः सयोगिकेवलिपर्यन्ताः सातवेदनीयस्यैवैकस्येति। तथा सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं यावदष्टानामपि कर्मणामुदयः। उपशान्तमोहगुणस्थानके क्षीणमोहगुणस्थानके च मोहनीयवर्जानां सप्तकर्मप्रकृतीनाम्। सयोगिकेवलिगुणस्थानकेऽयोगिकेवलिगुणस्थानके

च घातिकर्मचतुष्टयरहितशेषकर्मचतुष्टस्येति। तथा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकात्प्रभृति यावत्प्रमत्तसंयतगुणस्थानकं तावद्यदि अनुभूयमानभवायुरावलिकावशेषं न भवति तदाऽष्टानामपि कर्मणामुदीरणा यदा त्वनुभूयमानभवायुरावलिकावशेषं तदा तथास्वभावत्वेन तस्यानुदीर्यमाणत्वात्सप्तानामुदीरणा। सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके तु सदैवाष्टानामेव कर्मणामुदीरणा, आयुष आवलिकावशेषे सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकस्यैवाभावात्। तथाऽप्रमत्तगुणस्थानकात्प्रभृति यावत्सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकस्यावलिकावशेषो न भवति तावद्वेदनीयायुर्वर्जानां षण्णां कर्मणामुदीरणा तदानीमतिविशुद्धत्वेन वेदनीयायुरुदीरणायोग्याध्यवसायाभावात्। आवलिकावशेषे तु मोहनीयस्याप्यावलिकाप्रविष्टत्वेनोदीरणाया असंभवाज्ज्ञान १ दर्शनावरण २ नाम ३ गोत्रा ४ऽन्तराया ५ णामेवोदीरणा। एतेषामेव चोपशान्तमोहगुणस्थानकेऽपि उदीरणा। क्षीणमोहगुणस्थानकेऽप्येतेषामेव यावदावलिकामात्रावशेषो न भवति। आवलिकावशेषे तु ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणामप्यावलिका प्रविष्टत्वान्नोदीरणेति द्वयोरेव नामगोत्रयोरुदीरणा। [1]एवं सयोगिकेवलिगुणस्थानकेऽपि। अयोगिकेवलिगुणस्थानके तु वर्तमानो जीवः सर्वथाऽनुदीरक एव। ननु तदानीमप्येष सयोगिकेवलिगुणस्थानक इव भवोपग्राहिकर्मचतुष्टयोदये वर्तते ततः कथं तदापि तयोर्नामगोत्रयोरुदीरको न भवति? इति, नैष दोषः, उदये सत्यपि योगसव्यपेक्षत्वादुदीरणायास्तदानीं च तस्य योगासंभवादिति। तथा उपशान्तमोहगुणस्थानकं यावदष्टानामपि कर्मणां सत्ता। क्षीणमोहावस्थायां तु मोहरहितानां सप्तानां कर्मणाम्। सयोगिकेवल्याद्यवस्थायां चाघातिकर्मणां चतुर्णाम्। इति ॥११॥

तदेवं जीवस्थानकेषु गुणस्थानकाद्यभिधाय साम्प्रतं मार्गणास्थानेषु जीवस्थानकादि विवक्षुस्तान्येव तावन्निर्दिशन्नाह—

एत्तो गइ १ इंदिय २ काय ३ जोय ४ वेए ५ कसाय णाणेसु।
संजम ८ दंसण ९ लेसा १० भव ११ सम्मे १२ सन्नि १२ आहारे १४॥१२॥

(हारि०) व्याख्या–'**इतः**' जीवस्थानविचारानन्तरं मार्गणास्थानान्युच्यन्त इति शेषः। तान्येवाह–**गतीन्द्रियकाययोगवेदे**' इति समाहारद्वन्द्वः। '**कषायज्ञानेषु**' अत्रेतरेतरद्वन्द्वः '**सयमदर्शनलेश्याभव्यसम्यक्त्वे**' इत्यत्रापि समाहारद्वन्द्वः। '**सज्ञा(ज्ञ्या)ह्ारे**' इत्यत्रापि स एव। इति गाथार्थः ॥१२॥

इति मूलभेदापेक्षया मार्गणास्थानानि चतुर्दश १४, उत्तरभेदापेक्षया तु द्विषष्टिः, तत्प्रतिपादनाय गाथापञ्चकमाह—

---

१ एवमिति कोऽर्थः? सयोगिकेवलिगुणस्थानकेऽपि द्वयोरेव नामगोत्रयोरुदीरणा।

(मल०) 'इतः' जीवस्थानेषु गुणस्थानकाद्यभिधानादनन्तरं मार्गणास्थानकेषु जीवस्थानाद्युच्यत इति शेषः । तानि च मार्गणास्थानान्यमूनि–'गइ' इत्यादि । तत्र गम्यते तथाविधकर्मसचिवैर्जीवैः प्राप्यते गतिर्नारकत्वादिपर्यायपरिणतिः, सा च चतुर्धा-नरकगतिः १ तिर्यग्गतिः २ मनुष्यगतिः ३ देवगतिश्च ४ 'इंदिय' इति इन्दनादिन्द्र आत्मा ज्ञानैश्वर्ययोगात्तस्येदमिन्द्रियम्, तच्च स्पर्शन १ रसन २ घ्राण ३ चक्षुः ४ श्रोत्र ५ भेदात्पञ्चधा । इन्द्रियग्रहणेन च तदुपलक्षिता एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादयो गृह्यन्ते तेष्वेवाग्रे जीवस्थानकादीनां चिन्तयिष्यमाणत्वात् । 'काय' इति चीयत इति कायः, 'चित्युपसमाधानावासदेहे कश्चादेः' इति घञ्प्रत्ययः, चकारस्य च ककारः, स च षोढा–पृथिवी १ अप् २ तेजो ३ वायु ४ वनस्पति ५ त्रस ६ काययोगात् । 'जोग' इति योगशब्दः प्राग्निरूपितशब्दार्थः, स च मनो १ वाक् २ काय ३ सहकारिभेदात्संक्षेपतस्त्रिधा । 'वेय' इति वेद्यत इति वेदः, स च त्रिधा–स्त्रीवेदः १ पुरुषवेदः २ नपुंसकवेदश्च ३ । तत्र स्त्रियाः पुंस्यभिलाषः स्त्रीवेदः १ । पुंसः स्त्रियामभिलाषः पुंवेदः २ । नपुंसकस्योभयं प्रत्यभिलाषो नपुंसकवेदः ३ । 'कसाय' इति कष्यन्ते हिंस्यन्ते परस्परमस्मिन् प्राणिन इति कषः–संसारः तमयन्ते गच्छन्त्येभिर्जन्तव इति कषायाः क्रोध १ मान २ माया ३ लोभाः ४ 'णाण' इति ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानम्–सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मकोऽवबोधः । तच्च पञ्चधा, तद्यथा–मतिज्ञानं १ श्रुतज्ञानं १ अवधिज्ञानं ३ मनःपर्यायज्ञानं ४ केवलज्ञानं ५ च । ज्ञानग्रहणेन चाज्ञानमपि तत्प्रतिपक्षभूतमुपलक्ष्यते । तच्च त्रिविधम्–मत्यज्ञानं १ श्रुताज्ञानं २ विभङ्गज्ञानम् ३ च । वक्ष्यति च ज्ञानभेदाभिधानावसरे–"**मइसुयओहीणकेवलाणि मइसुयअनाणविब्भंगा**" इति । 'संजम' इति संयमनं संयमः सम्यगुपरमः, '**यमः संन्युपवेः**" इति भावेऽच्प्रत्ययः, चारित्रमित्यर्थः । तच्च पञ्चधा सामायिकं १ छेदोपस्थापनं २ परिहारविशुद्धिकं ३ सूक्ष्मसंपरायं ४ यथाख्यातं ५ च । संयमग्रहणेन च तत्प्रतिपक्षभूतो देशसंयमोऽसंयमश्च सूच्यते । वक्ष्यति च "**सामइयछेयपरिहारसुहुमअहक्खायदेसजयअजया**" इति । 'दंसण' इति दृष्टिर्दर्शनं सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यावबोधः। तच्चतुर्विधम्, तद्यथा–चक्षुर्दर्शनं १ अचक्षुर्दर्शनं २ अवधिदर्शनं ३ केवलदर्शनं च ४ । 'लेसा' इति लेश्या प्राङ्निरूपितशब्दार्था, सा षोढा–कृष्णलेश्या १ नीललेश्या २ कापोतलेश्या ३ तेजोलेश्या ४ पद्मलेश्या ५ शुक्ललेश्या ६ (च)। 'भव' इति भव्यः–तथारूपानादिपारिणामिकभावात्सिद्धिगमनयोग्यः । भव्यग्रहणेन च तत्प्रतिपक्षभूतोऽभव्योऽपि गृह्यते । यद्वक्ष्यति भव्यद्वारभेदव्याख्यायाम्–'**भव्वाभव्व**' इति । 'सम्मे' इति सम्यक्त्वम् । सम्यक्शब्दः प्रशंसार्थोऽविरुद्धार्थो वा । सम्यग् जीवस्तद्भावः सम्यक्त्वम्, प्रशस्तो मोक्षाविरोधी वा आत्मधर्म इति यावत् । तच्च त्रिधा-क्षयोपशमिकं १ औपशमिकं २ क्षायिकं ३ च । उक्तं च "**सम्मत्तंपि य**

तिविहं खओवसमियं तहोवसमियं य । खइयं च" इति । सम्यक्त्वग्रहणेन च तत्प्रतिपक्षभूतं मिश्रं १ सास्वादनं २ मिथ्यात्वं ३ च परिगृह्यते । तथा चैतद् द्वारं व्याख्यानयन् वक्ष्यति- **"खओवसमखइयउवसमियमोससासाणं मिच्छो य"** इति । **'सन्नि'** इति संज्ञी प्राङ्निर्दिष्टस्वरूपः, तत्प्रतिपक्षभूतः सर्वोऽप्येकेन्द्रियादिरसंज्ञी, सोऽपि संज्ञिग्रहणेन सूचितो द्रष्टव्यः, । **'आहार'** इति आहारयति ओजोलोमप्रक्षेपाहाराणामन्यतममाहाराणामित्याहारकः, तत्प्रतिपक्षभूतोऽनाहारकः ॥१२॥

तदेवमुक्तानि मार्गणास्थानानि, साम्प्रतमेतेषामेव विनेयजनानुग्रहायोक्तस्वरूपानेव भेदान् दर्शयन्नाह—

सुरनरतिरिनरयगई ४, [1]इगबितिचउरिंदिया य [2]पंचिंदी ५ ।
पुढवीआऊतेऊवाऊवणसइतसा काया ६ ॥ १३ ॥

(हारि०) व्याख्या-सुराश्च भवनपत्याद्याः, नराश्च कर्मभूमिजादयः, तिर्यञ्चश्च जलचरादयः, नारकाश्च रत्नप्रभाद्याः, अत्र समासस्तेषां गतयः सुरनरतिर्यग्नारकगतयश्चतस्रः ४ । तथैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियश्चेति पञ्च । पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसाः कायाः षट् । इति प्राग्वत्सर्वपदेषु समासः कार्यः । इति गाथार्थः ॥१३॥

मणव[3]इकायाजोगा ३, इत्थी पुरिसो [4]नपुंसगो वेया ४ ।
कोहो माणो माया, लोभो चउरो कसायत्ति ४ ॥१४॥

(हारि०) व्याख्या-मनोवाक्काययोगत्रयः । स्त्री पुरुषो नपुंसकमिति वेदास्त्रयः । क्रोधो मानो माया लोभ इति चत्वारः कषायाः । इतिशब्दो वाक्यसमाप्तौ । इति गाथार्थः ॥१४॥

(मल०) **'सुरगाहा' 'मणगाहा'** एते निगदसिद्धे ॥१३॥१४॥

मइसुयओहीमणके-वलाणि मइसुयअनाणविब्भंगा ८ ।
सामइयछेयपरिहा-रसुहुमअहखायदेसजयअजया ७ ॥१५॥

(हारि०) व्याख्या-मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलानीति पञ्च ज्ञानानि । मतिश्रुताज्ञानविभङ्गनामानि त्रीण्यज्ञाना[5]न्युपलक्षणत्वाद् गृह्यन्ते । एवमन्यत्रापि यत्र विपक्षभूतं पदं दृश्यते तत्रायमेव हेतुर्वक्तव्य इति । अत एवोत्तरभेदापेक्षया द्विषष्टिरित्युक्तं प्रागिति । सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसंपराययथाख्यातदेशसंयतासंयताख्यानि सप्त पदानि । इति गाथार्थः ॥१५॥

---

१ "इगि" इति जे० । २ "पंचेंदी" इति जे० । ३ "वय" इत्यपि पाठः । ४ "नपुंसगो" इत्यपि पाठः । ५ "न्यप्यु०" इति जे० ।

(मल०) मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवललक्षणानि पञ्च ज्ञानानि । मतिश्रुताज्ञानविभङ्गलक्षणानि च त्रीणि अज्ञानानि । तत्र **"मनज्ञाने"** मननं मतिः । यद्वा मन्यते इन्द्रियमनोद्वारेण नियतं वस्तु परिच्छिद्यतेऽनयेति मतिः, योग्यदेशावस्थितवस्तुविषय इन्द्रियमनोनिमित्तकोऽवगमविशेषः । तथा श्रवणं श्रुतम्, अभिलापप्लावितार्थग्रहणप्रत्यय उपलब्धिविशेषः । एवमाकारं वस्तु जलधारणाद्यर्थक्रियासमर्थं घटशब्दाभिलाप्यम्, इत्यादिरूपतया प्रधानीकृतत्रिकालसाधारणसमानपरिणामः शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी इन्द्रियमनोनिमित्तो ज्ञानविशेष इति यावत् । तदुक्तम्—**"जं पुण तिकालविसयं, आगमगथाणुसारि विन्नाणं । इंदियमणोनिमित्तं, तं सुयनाणं जिणा बिंति ॥१॥"** तथाऽवशब्दोऽधःशब्दार्थः । ततश्च अव=अधोऽधो विस्तृतं वस्तु धीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः । यद्वाऽवधि=र्मर्यादा रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा तदुपलक्षितं ज्ञानमप्यवधिः । तथा परि=सर्वतो भावे अवनं अवः । **"तुदादिभ्योऽनक्कौ"** इत्यधिकारे, **"अक्तितो वा"** इत्यनेनाकारः प्रत्ययः । यथा भवनं भव इत्यादिषु अवनं गमनं वेदनमिति पर्यायाः । परि=अवः पर्यवः, मनसि मनसो वा पर्यवः मनःपर्यवः, सर्वतस्तत्परिच्छेद इत्यर्थः । इदं च मनःपर्यवज्ञानमर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्तिसंज्ञिमनोगतद्रव्यालम्बनं मनःपर्यायज्ञानमित्येवमप्येतदभिधीयते । तत्र मनसः पर्याया बाह्यवस्त्वालोचनप्रकारा धर्मा मनःपर्यायाः तेषु तेषां वा संबन्धि ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानमिति पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद्व मन इत्युक्तेऽपि मनःपर्यव इति मनःपर्यायज्ञानमिति व्याख्यातम् । तथा केवलमेकं, मत्यादिज्ञानरहितत्वात् । **"उप्पण्णंमि अणंते, नट्ठंमि उ छाउमत्थिए नाणे ।"** इतिवचनात् । शुद्धं वा केवलं, तदावरणमलकलङ्कापगमात् । सकलं वा केवलं, तत्प्रथमतयैवाशेषतदावरणविगमतः संपूर्णोत्पत्तेः । असाधारणं वा केवलं, अनन्यसदृशत्वात् । अनन्तं वा केवलं ज्ञेयानन्तत्वात् । यथावस्थिताशेषभूतभवद्भाविभावस्वभावावभासि ज्ञानमितिभावना । तथा मतिश्रुतावधिज्ञानान्येव मिथ्यात्वकलुषिततया यथाक्रमं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानव्यपदेशभाञ्जि भवन्ति । तदुक्तमाद्यत्रयं ज्ञानमज्ञानमपि भवति मिथ्यात्वसंयुक्तमिति । **'विभंगे'** इति विपरीतो भङ्गः परिच्छित्तिप्रकारो यस्मिंस्तद्विभङ्गम्, विपर्यस्तमवधिज्ञानम् **'सामइय'** इत्यादि । समानां ज्ञानदर्शनचारित्राणामायः समायः, समाय एव सामायिकम् । विनयादेराकृतिगणतया **"विनयादिभ्यः"** इति स्वार्थे इकण् । तच्च सर्वसावद्यविरतिरूपं चारित्रम् । यद्यपि च सर्वमपि चारित्रमविशेषतः सामायिकं तथाऽपि च्छेदादिविशेषैर्विशेष्यमाणमर्थतः शब्दान्तरतश्च नानात्वं भजते । प्रथमं पुनरविशेषणात्सामान्यशब्द एवावतिष्ठते । तच्च द्विधा—इत्वरं यावत्कथिकं च । तत्रेत्वरं भरतैरावतेषु प्रथमपश्चिमतीर्थकरतीर्थेष्वनारोपितव्रतस्य शैक्षकस्य विज्ञेयम् । यावत्कथिकमाभवव्रति । तच्च भरतैरावतभाविमध्यमद्वाविंशतितीर्थकरविदेहतीर्थकरतीर्थान्तर्गतसाधूनामवसेयम्,

तेषामुत्थापनाया अभावात् । 'छेद' इति छेदोपस्थापनम् । तत्र छेदः पूर्वपर्यायस्य, उपस्थापना च महाव्रतेषु यस्मिन् चारित्रे तच्छेदोपस्थापनम् । तच्च द्विधा–सातिचारं निरतिचारं च । तत्र निरतिचारं यदित्वरसामायिकवतः शैक्षकस्यारोप्यते तीर्थान्तरसंक्रान्तौ वा, यथा पार्श्वनाथतीर्थाद्वर्धमानस्वामितीर्थे संक्रामतः पञ्चयामधर्मप्रतिपत्तौ । सातिचारं यन्मूलगुणघातिनः पुनर्व्रतोच्चारणम् । 'परिहार' इति परिहारविशुद्धिकम् । परिहरणं परिहारस्तपोविशेषः तेन विशुद्धिर्यस्मिन् चारित्रे तत्परिहारविशुद्धिकम् । तच्च द्विधा–निर्विशमानकं निर्विष्टकायिकं च । तत्र निर्विशमानका विवक्षितचारित्रसेवकाः । निर्विष्टकायिका आसेवितविवक्षितचारित्रकाः । तदव्यतिरेकाच्चारित्रमप्येवमुच्यते । इह नवको गणः, तत्रैको वाचनाचार्यः चत्वारो निर्विशमानकाः, चत्वारश्चानुचारिणः । निर्विशमानकानां चायं परिहारः–"परिहारियाण उ तवो, जहन्न मज्झो तहेव उक्कोसो । सीउण्हवासकाले, भणिओ । धीरेहि पत्तेयं ॥१॥ तत्थ जहन्नो गिम्हे, चउत्थ १ छट्ठो २ उ होइ मज्झिमओ । अट्ठम ३ मिह उक्कोसो, एत्तो सिसिरे पवक्खामि ॥२॥ सिसिरे उ जहन्नाई, छट्ठाई दसम ४ चरिमगो होइ । वासासु अट्ठमाई, बारस ५ पज्जंतगो नेओ ॥३॥ पारणगे आयामं, पंचसु गहो दोसु (स) भिग्गहो भिक्खे । कप्पट्ठिया वि पइदिण, करेंति एमेव आयामं ॥४॥ एवं छम्मासतवं, चरिउं परिहारिगा अणुचरंति । अणुचरिगे परिहारिय–पइट्ठिए जाव छम्मासा ॥५॥ कप्पट्ठिओ वि एवं, छम्मासतवं करेइ सेसाओ । अणुपरिहारिगभावं, वयंति कप्पट्ठिगत्तं च ॥६॥ एवं सो अट्ठारसमासपमाणो उ वण्णिओ कप्पो । संखेवओ विसेसो, सुत्तादेसाओ (विसेससुत्ताउ) नायव्वो ॥७॥ कप्पस्स समत्ते, तयं जिणकप्पं वा उवेंति गच्छं वा । पडिवज्जमाणगा पुण, जिणस्सगासे पवज्जंति ॥८॥ तित्थयरसमीवासे–वगस्स पासे व नो उ (न उण) अन्नस्स । एएसिं जं चरणं, परिहारविसुद्धिगं तं तु ॥९॥ तथा 'सुहुम' इति सूक्ष्मसंपरायम् । सूक्ष्मो लोभांशावशेषत्वात् संपरायः कषायोदयो यत्र तत्सूक्ष्मसंपरायम् । तच्च द्विधा-विशुद्धयमानकं संक्लिश्यमानकं च । तत्र विशुद्धयमानकं क्षपकश्रेणिमुपशमश्रेणिं वा समारोहतः । संक्लिश्यमानकं तूपशमश्रेणितः प्रच्यवमानस्य । 'अहखाय' इति यथाख्यातं यथा सर्वस्मिन् जीवलोके ख्यातं प्रसिद्धं अकषायं भवति चारित्रमिति तथैव यत्तद्यथाख्यातम् । 'देस' इति देशयतो देशविरतः । 'अजय' इति अयतोऽविरतो विरतिहीन इति ॥१५॥

अचक्खुचक्खुओही केवलदंसण ४ मओ य छल्लेसा ६ ।
किण्हा नीला काऊ, तेऊ पम्हा य सुक्का य ॥१६॥

(हारि०) व्याख्या–अचक्षुश्चक्षुरवधिकेवलदर्शनानि चत्वारि । अतश्च षड्लेश्या उच्यन्ते ति शेषः । कास्ताः ? इत्याह–कृष्णा नीला कापोता तैजसी पद्मा शुक्ला चेति षड् लेश्याः । इति गाथार्थः ॥१६॥

(मल०) दर्शनशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । अचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनं च । तत्र सामान्यविशेषात्मके अचक्षुषा चक्षुर्वर्जशेषेन्द्रियमनोभिर्दर्शनं स्वस्वविषयसामान्यग्रहणमचक्षुर्दर्शनम् । चक्षुषा दर्शनं रूपसामान्यग्रहणं चक्षुर्दर्शनम् । अवधिरेव दर्शनं रूपिद्रव्यसामान्यग्रहणमवधिदर्शनम् । केवलमेव दर्शनं सकलजगद्भाविवस्तुसामान्यपरिच्छेदरूपं केवलदर्शनम् । **'भओ य छक्केसा'** इत्यादि निगदसिद्धम् ॥१६॥

भव्व १ अभव्वा २ [१]खउवसम १ खइय २ उवसमिय ३ मीस ४ [१]सासाणं ५ ।
मिच्छो य ६ [२]सन्न १ सन्नी २, आहार १ णहार २ इय भेया ॥१७॥

(हारि०) व्याख्या–भव्याभव्यौ द्वौ । क्षायोपशमिकक्षायिकौपशमिकमिश्रसासादनानि **'मिच्छो य'** इति मिथ्यात्वं चेति षट् । तथा संज्ञ्यसंज्ञिनौ द्वौ । तथाऽऽहारकानाहारकौ द्वौ । **'इति'** अमुना प्रकारेण **'भेदाः'** द्विषष्टिप्रमाणा उत्तरभेदा मूलभेदानां भवन्तीति शेषः । एतेषां व्याख्यानमावश्यकादिग्रन्थेभ्योऽवसेयम् , गमनिकामात्रत्वात्प्रस्तुतप्रयासस्य । इति गाथार्थः ॥१७॥ साम्प्रतमेतेष्वेव जीवस्थानान्याह—

(मल०) भव्याभव्यौ प्रागुक्तस्वरूपौ **'खउवसम'** इत्यादि । क्षायोपशमिकं क्षायिकं औपशमिकं च । तत्र उदीर्णस्य मिथ्यात्वस्य क्षयेणानुदीर्णस्य चोपशमेन सम्यक्त्वरूपतापत्तिलक्षणेन विष्कम्भितोदयत्वरूपेण च यन्निर्वृत्तं तत्क्षायोपशमिकम् । तथा त्रिविधस्यापि दर्शनमोहनीयस्य क्षयेणात्यन्तोच्छेदेन निर्वृत्तं क्षायिकम् । तथोदीर्णस्य मिथ्यात्वस्य क्षये सत्यनुदीर्णस्य य उपशमो विपाकप्रदेशवेदनरूपस्य द्विविधस्याप्युदयस्य विष्कम्भणं तेन निर्वृत्तमौपशमिकम् । **'मीससासाणं मिच्छो य'** इति मिश्रं सासादनं मिथ्यात्वं च, एतानि गुणस्थानकव्याख्यायां यथास्थानं वक्ष्यन्ते । शेषं सुगमम् ॥१७॥

तदेवमुक्ता अवान्तरगत्यादिमार्गणास्थानभेदाः, साम्प्रतमेतेष्वेव जीवस्थानानि चिन्तयन्नाह—

सुरनिरए सन्निदुगं, नरेसु तइओ असन्निअपजत्तो ।
तिरियगईए चउदस, एगिंदिसु आइमा चउरो ॥१८॥

(हारि०) व्याख्या–सुरनारकयोः **'सन्निदुगं'** इति पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणं संज्ञिपञ्चेन्द्रियद्विकम् । तथा **'नरेसु तइओ'** इति नरेषु पुरुषेषु पूर्वोक्तं द्वयं तृतीयोऽसंज्ञ्यपर्याप्त इति । आह अन्यत्र बन्धस्वामित्वशतकादिग्रन्थेषु नरेषु जीवस्थानकद्वयमेवोक्तं तत्कथमत्र तृतीयमप्य-

१ "सासाणा" इत्यपि पाठस्तदनुसारेण श्रीहरिभद्रसूरिणा व्याख्यातम् । २ "सन्नि" इत्यपि पाठ ॥

पर्याप्तासंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं जीवस्थानकमुक्तम् ?, सत्यम्, तेषु तस्य तिर्यग्ग्रहणेन गृहीतत्वादिति । तथा तिर्यग्गतौ चतुर्दशापि जीवस्थानानि भवन्तीति शेषः । इति गतिषु मार्गितानि जीवस्थानानि, साम्प्रतमिन्द्रियेषु तान्येवाह—एकेन्द्रियेषु 'आइमा' इति आदिमानि प्रथमानि पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मबादरलक्षणानि चत्वारि जीवस्थानानि भवन्ति । इति गाथार्थः ॥१८॥

तथा—

(मल०) सुरगतौ नरकगतौ च 'संज्ञिद्विक' पर्याप्तापर्याप्तलक्षणम् । अपर्याप्तकश्चेह करणापर्याप्तको गृह्यते, न लब्ध्यपर्याप्तकः, तस्य देवनारकगत्योरुत्पादाभावात् । 'नरेसु' इत्यादि । 'नरेसु' मनुष्येषु पूर्वोक्तं संज्ञिद्विकं तावल्लभ्यत एव, किन्तु तृतीयोऽपि जीवजातिभेदोऽसंज्ञ्यपर्याप्तको लभ्यते । कथम् ? इति चेदुच्यते, इह द्वये मनुष्या गर्भव्युत्क्रान्ताः संमूर्छिमाश्च । तत्र ये गर्भव्युत्क्रान्तास्तेषु यथोक्तं संज्ञिद्विकं लभ्यते, ये तु वान्तपित्तादिषु संमूर्छन्ति तेऽन्तर्मुहूर्तायुषोऽसंज्ञिनो लब्ध्यपर्याप्तकाश्चेति तेषु तृतीयः प्रकारो लभ्यत इति । 'तिरियगईए चउदस' इति तिर्यग्गतौ चतुर्दशापि जीवस्थानानि भवन्ति । यतस्तस्यामेकेन्द्रिया विकलेन्द्रियाः संज्ञ्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च प्राप्यन्ते । उक्तानि गतिषु जीवस्थानानि, साम्प्रतमिन्द्रियेषु तान्येवाह—'एगिंदिएसु आइमा चउरो' एकेन्द्रियेष्वादिमानि पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मबादरलक्षणानि चत्वारि जीवस्थानानि भवन्ति, शेषस्यासंभवात् ॥१८॥

बितिचउरिंदिसु दो दो, अंतिम चउरो पणिंदिसु [1]भवंति ।
थावरपणगे पढमा, चउरो चरमा दस तसेसु ॥१९॥

(हारि०) व्याख्या—द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु प्रत्येकं 'दुवे दुवे' पर्याप्तापर्याप्तकलक्षणे जीवस्थानके । तथा 'अन्तिमानि' पर्यन्तवर्तीनि 'चत्वारि' पर्याप्तापर्याप्तकासंज्ञिसंज्ञिरूपाणि जीवस्थानानि भवन्तीति संबन्धः । केषु ? इत्याह—पञ्चेन्द्रियेषु । इत्येवमिन्द्रियेषु मार्गितानि जीवस्थानानि, सम्प्रति कायेषु तान्येवाह— स्थावरपञ्चके' पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिलक्षणे प्रथमानि' पूर्वाण्येकेन्द्रियरूपतानि पूर्वोक्तानि चत्वारि जीवस्थानानि भवन्ति । तथा 'चरमाणि' अन्त्यवर्तीनि दश जीवस्थानानि पूर्वोक्तैकेन्द्रियसत्कवर्जितानि, केषु ? 'त्रसेसु' द्वीन्द्रियादिषु भवन्ति । इति गाथार्थः ॥१९॥

इति कायेषु जीवस्थानान्युक्तानि, साम्प्रतं योगेषु तान्येवाह—

(मल०) द्वीन्द्रियेषु त्रीन्द्रियेषु चतुरिन्द्रियेषु च प्रत्येकं 'द्वे द्वे' पर्याप्तापर्याप्तलक्षणे जीवस्थानके भवतः । तथा पञ्चेन्द्रियेषु 'अन्तिमानि' पर्यन्तवर्तीनि पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिलक्षणानि चत्वारि जीवस्थानानि न शेषाणि, असंभवात् । कायेष्वेतानि चिन्तयन्नाह—'थावर' इत्यादि ।

---

१ हवन्ति ।

'स्थावरपञ्चके' पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिलक्षणे प्रत्येकं **'प्रथमानि'** पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मबादरै-केन्द्रियलक्षणानि चत्वारि जीवस्थानानि भवन्ति, स्थावरपञ्चकस्यैकेन्द्रियत्वेन तत्संबन्धिनामेव जीवस्थानानां तत्र संभवात् । तथा **'चरमाणि'** एकेन्द्रियसंबन्धीनि चत्वारि जीवस्थानानि वर्जयित्वा शेषाणि द्वीन्द्रियादिसंबन्धीनि दश जीवस्थानानि त्रसेषु लभ्यन्ते, द्वीन्द्रियादीनामेव त्रसत्वात् ॥१९॥

इदानीं योगादिष्वेतानि जीवस्थानानि यथालाघवमुपदिदर्शयिषुराह—

विगलतिअसन्निसन्नी, पज्जत्ता पंच होंति [१]वइजोगे ।
मणजोगे [२]सन्निक्को, पुमित्थिवेए चरम चउरो ॥२०॥

(हारि०) व्याख्या—इह प्राकृतशैलीवशात्पुंल्लिङ्गनिर्देशः । ततश्च विकलत्रिकासंज्ञिसंज्ञिलक्षणानि पर्याप्तकजीवस्थानानि पञ्च भवन्ति, क ? इत्याह—वाग्योगे । तथा मनोयोगे पर्याप्तसंज्ञ्येकं जीवस्थानकम् । काययोगे पुनरग्रे वक्ष्यतीति । साम्प्रतं वेदेषु तान्याह—वेदशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात् पुरुषवेदस्त्रीवेदयोः **'चरमाणि'** पर्यन्तवर्तीनि जीवस्थानानि पञ्चेन्द्रियसत्कानि चत्वारि भवन्तीति प्राक्तनेन योगः । इह अपर्याप्तश्च करणेन गृह्यते, न लब्ध्या, लब्ध्यपर्याप्तकस्य सर्वस्यैव नपुंसकत्वात् । अन्यच्च यदत्रासंज्ञिनि स्त्रीपुंसाभिधानं तत्कार्मग्रन्थिकमतेनैव द्रष्टव्यम् । सैद्धान्तिकानां त्वसंज्ञी पर्याप्तोऽपर्याप्तो वा नपुंसक एव । तथा च प्रज्ञप्तिः—"**असन्निपुच्छा गोयमा ! नपुंसगवेयगा**" मनुष्यासंज्ञिनस्तु लब्ध्यपर्याप्ता एव भवन्तीत्यतस्ते निर्विवादं नपुंसका एव । इति गाथार्थः ॥२०॥

उक्तानि वेदेषु जीवस्थानानि । अथ पूर्वायोजितकाययोगनपुंसकवेदयोरग्रेतनपदपञ्चदशके च सर्वजीवस्थानानि । लाघवार्थं संगृह्य तत्प्रतिपादयन्नाह—

(मल०) विकलत्रिकं द्वीन्द्रिय १ त्रीन्द्रिय २ चतुरिन्द्रिय ३ लक्षणं, असंज्ञी ४ संज्ञी ५ च पर्याप्तः, इत्येतानि पञ्च जीवस्थानानि वाग्योगे भवन्ति न शेषाणि, तेषु वाग्योगासंभवात् । **'मणजोगे सन्निक्को'** इति पर्याप्त इत्यनुवर्तते, मनोयोगे पर्याप्तः संज्ञ्येको लभ्यते नान्यः, तत्र मनःसद्भावायोगात् । तथा पुंवेदे स्त्रीवेदे च चरमाणि पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिलक्षणानि चत्वारि जीवस्थानानि भवन्ति । यद्यपि च सिद्धान्तेऽसंज्ञी पर्याप्तोऽपर्याप्तो वा सर्वथा नपुंसक एवोक्तः । तथा चोक्तं प्रज्ञप्तौ—"**तेणं भंते ! असन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिया किं इत्थिवेयगा पुरिसवेयगा नपुंसगवेयगा ? गोयमा ! नो इत्थिवेयगा नो-पुरिसवेयगा नपुंसकवेयगा**" इति । तथाऽपीह स्त्रीपुंसलिङ्गाकारमात्रमङ्गीकृत्य स्त्रीवेदे पुंवेदे वाऽसंज्ञीनिर्दिष्ट इत्यदोषः । तदुक्तं पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम्—"**यद्यपि चासंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ नपुंसकौ तथा-**

१ "वय०" इत्यपि पाठः । २ "सन्नेक्को" इति जे० ।

ऽपि स्त्रीपुंसलिङ्गाकारमात्रमङ्गीकृत्य स्त्रीपुंसावुक्ताविति ।" अपर्याप्तकश्चेह करणापर्याप्तको गृह्यते न लब्ध्यपर्याप्तकः, लब्ध्यपर्याप्तकस्य सर्वस्यैव नपुंसकत्वात् ॥२०॥

काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणअविरयअचक्खू ।
आइतिलेसा भव्वियरमिच्छ आहारगे सव्वे ॥२१॥

(हारि०) व्याख्या—काययोगे १ नपुंसकवेदे २ कषायचतुष्के ६ अज्ञानशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात् मत्यज्ञाने ७ श्रुताज्ञाने ८ अविरते ९ अचक्षुर्दर्शने १० [1]"आइतिलेसा' इति कृष्णलेश्यायां ११ नीललेश्यायां १२ कापोतलेश्यायां १३ 'भव्वियर' इति भव्येषु १४ अभव्येषु १५ मिथ्यादृष्टिषु १६ आहारके १७ चेति सप्तदशस्थानेषु सर्वाणि जीवस्थानानि भवन्तीति शेषः । इति गाथार्थः ॥२१॥

इत एकादशस्थानेषु लाघवार्थमेव संगृह्य पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपं जीवस्थानकद्वयं निरूपयन्नाह—

(मल०) काययोगे नपुंसकवेदे 'कषाये' क्रोधादिचतुष्टयरूपे अज्ञानशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धान्मत्यज्ञाने श्रुताज्ञाने 'अविरत' इति विरतिहीने अचक्षुर्दर्शने 'आदित्रिलेश्यासु' कृष्णनीलकापोतरूपासु 'भव्येतरेषु' इति भव्येष्वभव्येषु च तथा मिथ्यात्वे आहारके च सर्वाण्यपि जीवस्थाना न भवन्ति, जीवस्थानव्यापकत्वात्काययोगादीनाम् ॥२१॥

मइसुयओहिदुगविभंगपम्हसुक्कासु तिसु [2]य सम्मेसु ।
सन्निम्मि [3]य दो ठाणा, सन्निअपज्जत्तपज्जत्ता ॥२२॥

(हारि०) व्याख्या—मतिज्ञाने १ श्रुतज्ञाने २ 'ओहिदुग' इति अवधिज्ञाने ३ अवधिदर्शने ४ च विभङ्गज्ञाने ५ पद्मलेश्यायां ६ शुक्ललेश्यायां ७ चेति, तथा 'तिसु य सम्मेसु' इति त्रिषु च सम्यक्त्वेषु, तद्यथा—क्षायिके ८ क्षायोपशमिके ९ औपशमिके १० च, संज्ञिनि ११ च, 'दो ठाणा' इति द्वे जीवस्थानके पर्याप्तापर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणे इत्येकादशस्थानेषु जीवस्थानकद्वयमित्याह । इह भावना चैवम्—मतिश्रुतावधिद्विकविभङ्गपद्मशुक्ललेश्यावतां देवादिभ्यश्च्युतानां संज्ञिपञ्चेन्द्रियेषूत्पन्नानां प्रथममपर्याप्तकसंज्ञिलक्षणं जीवस्थानकं प्राप्यते । पर्याप्तं च जीवस्थानकमेतेषु सुज्ञानमेव । तथा 'तिसु य सम्मेसु' इति त्रिषु च सम्यक्त्वेषु क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकलक्षणेषु पर्याप्तापर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं जीवस्थानकद्वयं भवतीत्युक्तम् । तत्र क्षायिकसम्यग्दृष्टिः संज्ञिपञ्चेन्द्रियः पर्याप्तकः करणापर्याप्तकश्च सर्वगतिषु तावल्लभ्यते । कथमत्रापर्याप्तको लभ्यते ? इति चेत्, उच्यते, इहकश्चित्पूर्वं बद्धायुष्कः क्षायिकसम्य-

---

१ "आइतिलेस० त्ति" इति जे० । २ "वि" इत्यपि पाठः । ३ "उ" इत्यपि पाठः ।

क्त्वमुत्पाद्य गतिचतुष्टयस्यान्यतरस्यां गतावुत्पद्यमानः प्रथममपर्याप्तकः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्लभ्यते पर्याप्तः सुप्रतीत एव । क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिस्तु देवादिभ्योऽनन्तरमिहोत्पद्यमानस्तीर्थंकरादिरपर्याप्तकः प्राप्यते । पर्याप्तकः पुनरत्रापि सुज्ञान एव । औपशमिकसम्यक्त्वे पर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रिय एव लभ्यते, अपर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पुनरौपशमिकसम्यक्त्वाभावात् । अन्ये तु संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्यापर्याप्तस्यापि व्यवहारनयमताभिप्रायेणौपशमिकसम्यक्त्वं वर्णयन्ति, तच्च नावगच्छामः । तथाहि–अपर्याप्तावस्थायां तावदेतत्सम्यक्त्वं नोत्पादयति, तथाविधशुद्ध्यभावात् । पारभविकं तर्हि भविष्यति ? इति चेत्, तदपि न युक्तिक्षमम्, तथाहि–यो मिथ्यादृष्टिः संस्तत्प्रथमतयौपशमिकसम्यक्त्वमवाप्नोति स तद्भावमापन्नः कालं न करोत्येव । यत उक्तम्-"अणबंधो १ दय २ माउगबंधं ३ कालंपि ४ सासणे कुणइ । उवसमसम्मद्दिट्ठी, चउण्हमेगंपि नो कुणइ ॥१॥" उपशमश्रेणिमृत्वाऽनुत्तरसुरेषूत्पन्नस्यापर्याप्तकस्यैतल्लभ्यते इति चेत्, एतदपि न मन्यामहे, तस्य प्रथमसमय एव सम्यक्त्वपुद्गलोदयात् । उक्तं च शतकचूर्ण्यामस्मिन्नेव विचारे-"जो उवसमसम्मद्दिट्ठी उवसमसेढीए कालं करेइ, सो पढमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उदयावलियाए छोढूण सम्मत्तपोग्गले वेएइ, तेण न उवसमसम्मद्दिट्ठी अपज्जत्तगो लब्भइ ।" इत्यादि । तस्मात्पर्याप्तकसंज्ञिलक्षणमेकमेव जीवस्थानकमत्र प्राप्यते इति स्थितम् । इह तु ग्रन्थे[1] मतान्तरमाश्रित्यौपशमिकसम्यक्त्वे जीवस्थानकद्वयमुक्तम् । इति गाथार्थः ॥२२॥

साम्प्रतं दशसु स्थानेषु लाघवार्थमेव पर्याप्तसंज्ञिरूपमेकजीवस्थानकं चक्षुर्दर्शने च सविकल्पजीवस्थानकानि निरूपयन्नाह—

(मल०) मतौ श्रुते अवधिद्विके इति–अवधिज्ञाने अवधिदर्शने च तथा विभङ्गज्ञाने पद्मलेश्यायां शुक्ललेश्यायां 'त्रिषु च सम्यक्त्वेषु' क्षायोपशमिकक्षायिकौपशमिकेषु संज्ञिनि च प्रत्येकं द्वे द्वे जीवस्थानके पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिलक्षणे भवतः न शेषाणि, तेषु मिथ्यात्वादिकारणतो मतिज्ञानादीनामसंभवात् । अत एव च हेतोरिहापर्याप्तकः करणापर्याप्तको गृह्यते न लब्ध्यपर्याप्तकः, तस्य मिथ्यादृष्टित्वा[2]दिति । आह क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकेषु कथं संज्ञी अपर्याप्तको लभ्यते ? उच्यते, इह कश्चित् पूर्वबद्धायुष्कः क्षपकश्रेणिमारभ्यानन्तानुबन्ध्यादिसप्तकक्षयं कृत्वा क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पाद्य यदा गतिचतुष्टयस्यान्यतरस्यां गतावुत्पद्यते तदाऽसौ अपर्याप्तकः क्षायिकसम्यक्त्वे प्राप्यते । क्षायोपशमिकसम्यक्त्वयुक्तश्च देवादिभ्योऽनन्तरमिहोत्पद्यमानस्ती-

---

१ इतोऽग्रे-'व्यवहारनय-' इत्यधिकः पाठः । २ इतः परम्-"पद्मशुक्ललेश्याकत्वादसंज्ञित्वाच्चेति" इत्येतत्पाठः क्वचित्पुस्तकेऽधिको लभ्यते ॥

ऽपि स्त्रीपुंसलिङ्गाकारमात्रमङ्गीकृत्य स्त्रीपुंसावुक्ताविति ।" अपर्याप्तकश्चेह करणापर्याप्तको गृह्यते न लब्ध्यपर्याप्तकः, लब्ध्यपर्याप्तकस्य सर्वस्यैव नपुंसकत्वात् ॥२०॥

काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणअविरयअचक्खू ।
आइतिलेसा भव्वियरमिच्छ आहारगे सव्वे ॥२१॥

(हारि०) व्याख्या—काययोगे १ नपुंसकवेदे २ कपायचतुष्के ६ अज्ञानशब्दस्य प्रत्येकमभिसंवन्धात् मत्यज्ञाने ७ श्रुताज्ञाने ८ अविरते ९ अचक्षुर्दर्शने १० "'आइतिलेसा' इति कृष्णलेश्यायां ११ नीललेश्यायां १२ कापोतलेश्यायां १३ 'भव्वियर' इति भव्येषु १४ अभव्येषु १५ मिथ्यादृष्टिषु १६ आहारके १७ चेति सप्तदशस्थानेषु सर्वाणि जीवस्थानानि भवन्तीति शेषः । इति गाथार्थः ॥२१॥

इत एकादशस्थानेषु लाघवार्थमेव संगृह्य पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपं जीवस्थानकद्वयं निरूपयन्नाह—

(मल०) काययोगे नपुंसकवेदे 'कषाये' क्रोधादिचतुष्टयरूपे अज्ञानशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धान्मत्यज्ञाने श्रुताज्ञाने 'अविरत' इति विरतिहीने अचक्षुर्दर्शने 'आदित्रिलेश्यासु' कृष्णनीलकापोतरूपासु 'भव्येतरेषु' इति भव्येष्वभव्येपु च तथा मिथ्यात्वे आहारके च सर्वाण्यपि जीवस्थाना न भवन्ति, जीवस्थानव्यापकत्वात्काययोगादीनाम् ॥२१॥

मइसुयओहिदुगविभंगपम्हसुक्कासु तिसु 2य सम्मेसु ।
सन्निम्मि 3य दो ठाणा, सन्निअपज्जत्तपज्जत्ता ॥२२॥

(हारि०) व्याख्या—मतिज्ञाने १ श्रुतज्ञाने २ 'ओहिदुग' इति अवधिज्ञाने ३ अवधिदर्शने ४ च विभङ्गज्ञाने ५ पद्मलेश्यायां ६ शुक्ललेश्यायां ७ चेति, तथा 'तिसु य सम्मेसु' इति त्रिषु च सम्यक्त्वेषु, तद्यथा—क्षायिके ८ क्षायोपशमिके ९ औपशमिके १० च, संज्ञिनि ११ च, 'दो ठाणा' इति द्वे जीवस्थानके पर्याप्तापर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणे इत्येकादशस्थानेषु जीवस्थानकद्वयमित्याह । इह भावना चैवम्—मतिश्रुतावधिद्विकविभङ्गपद्मशुक्ललेश्यावर्ता देवादिभ्यश्च्युतानां संज्ञिपञ्चेन्द्रियेषूत्पन्नानां प्रथममपर्याप्तकसंज्ञिलक्षणं जीवस्थानकं प्राप्यते । पर्याप्तं च जीवस्थानकमेतेषु सुज्ञानमेव । तथा 'तिसु य सम्मेसु' इति त्रिषु च सम्यक्त्वेषु क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकलक्षणेषु पर्याप्तापर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणं जीवस्थानकद्वयं भवतीत्युक्तम् । तत्र क्षायिकसम्यग्दृष्टिः संज्ञिपञ्चेन्द्रियः पर्याप्तकः करणापर्याप्तकश्च सर्वगतिषु तावल्लभ्यते । कथमत्रापर्याप्तको लभ्यते ? इति चेत्, उच्यते, इहकश्चित्पूर्वं बद्धायुष्कः क्षायिकसम्य-

१ "आइतिलेस० त्ति" इति जे० । २ "वि" इत्यपि पाठ । ३ "च" इत्यपि पाठ ।

चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानानि पर्याप्तकचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि भवन्तीति। अत्रैवं विकल्पमाह–"छ व पज्जियर चरमा" इति षड् वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानानि चतुरिन्द्रियप्रभृतीनां भवन्तीति शेषः। इह कैश्चिदिन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात्। इति गाथार्थः ॥२३॥

तथा—

(मल०) मनःपर्यायज्ञाने '**केवलद्विके**' केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे '**संयतेषु**' सामायिकादिपञ्चप्रकारसंयमवत्सु देशयते मिश्रदृष्टौ च संज्ञिपर्याप्तलक्षणमेकं जीवस्थानं प्राप्यते नान्यत्। तथाहि–न तावन्मनःपर्यायज्ञाने केवलद्विके पञ्चप्रकारे च सामायिकादौ संयमे देशसंयमे चान्यज्जीवस्थानकं संभवति, तत्र सर्वदेशविरत्योरभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टिता च पर्याप्तसंज्ञिव्यतिरेकेण शेषेषु जीवस्थानकेषु तथाविधपरिणामाभावाच्च संभवतीति। '**चक्खुंमि तिन्नि**' इति चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानकानि पर्याप्तचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणानि भवन्ति नान्यानि, तेषु तदसंभवात्। अत्रैव मतान्तरेण विकल्पमाह–'**छ व पज्जियर चरमा**' इति षड्वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानकानि चक्षुर्दर्शने भवन्ति, चतुरिन्द्रियादीनामिन्द्रियपर्याप्त्या पर्याप्तानां शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्तानामपि आचार्यान्तरैश्चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात्। तदुक्तं पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम्–"**करणापर्याप्तकेषु चतुरिन्द्रियादिष्विन्द्रियपर्याप्तौ सत्यां चक्षुर्दर्शनं भवति**"। इति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे बायराइ छ अपज्ज सन्निपज्जो य।
तेउल्लेसे बायरअपजत्तो दुविह सन्नी य ॥२४॥

(हारि०) व्याख्या–सप्तैव तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् जीवस्थानानि, क्व? इत्याह–'**सासादने**' कानि तानि? इत्याह–बादरादीनि षडपर्याप्तानि। अयमर्थः–सासादनभावे मृतस्य बादरादिषूत्पन्नस्य तेषु तत्प्राप्यते, अतः सासादने तानि षट् प्राप्यन्त इति। तथा संज्ञि पर्याप्तश्च[1] सासादने सप्तम इति। तथा '**तेउल्लेसे**' इति तेजोलेश्यायामपर्याप्तबादरजीवस्थानकमेकम्[2], देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुषूत्पन्नस्यापर्याप्तावस्थायां प्राक्तनी तेजोलेश्या प्राप्यते इत्याशयः। तथा द्विविधः संज्ञी पर्याप्तापर्याप्तरूप इति द्वयमिति तेजोलेश्यायां त्रीणि जीवस्थानानि। इति गाथार्थः ॥२४॥

तथा—

(मल०) '**सासादने**' सासादनसम्यक्त्वे सप्त जीवस्थानकानि भवन्ति, कानि? इत्यत आह–'**बादरादयः**' बादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः षट् अपर्याप्तकाः

१ "०मश्चि" इति जे०। २ "क्ति" जे०।

श्वङ्करादिरपर्याप्तकः सुप्रतीत एव । औपशमिकसम्यक्त्वं पुनरपर्याप्तावस्थायामनुत्तरसुरस्य द्रष्टव्यम् । इह केचिदपर्याप्तावस्थायामौपशमिकं सम्यक्त्वं नेच्छन्ति । तथा च ते आहुः—न तावदस्यामेवापर्याप्तावस्थायामिदं सम्यक्त्वमुपजायते, तदानीं तस्य तथाविधविशुद्ध्यभावात् । अथै तत्तदानीं मोत्पादि यत्तु पारभविकं तद्भवत्केन विनिवार्यत इतिमन्येथाः, तदपि न युक्तम्, यतो यो मिथ्यादृष्टिस्तत्प्रथमतया सम्यक्त्वमौपशमिकमवाप्नोति स तावत्तद्भावमापन्नः सन् कालं न करोत्येव । यदुक्तमागमे—"**अणबंधो १ दय २ माउगबंधं ३ कालं ४ च सासणो कुणइ उवसमसम्मद्दिट्ठो, चउण्हमेक्कंपि नो कुणइ ॥१॥**" यस्तूपशमश्रेणिमारूढः सन् मृत्वाऽनुत्तरसुरेषूत्पद्यते तस्य प्रथमसमय एव सम्यक्त्वपुद्गलोदयात् क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वं भवति न त्वौपशमिकम् । उक्तं च शतकबृहच्चूर्णौ—"**जो उवसमसम्मद्दिट्ठी उवसमसेढीए कालं करेइ सो पढमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उदयावलियाए छोढूण सम्मत्तपोग्गले वेयइ, तेण न उवसमसम्मद्दिट्ठी अपज्जत्तगो लब्भइ**" इत्यादि । अपरे पुनराहुः—भवत्येवापर्याप्तावस्थायामप्यौपशमिकं सम्यक्त्वम्, सप्ततिचूर्ण्यादिषु तथाऽभिधानात् । सप्ततिचूर्णौ हि गुणस्थानकेषु नामकर्मणो बन्धोदयादिमार्गणावसरेऽविरतसम्यग्दृष्टेरुदयस्थानचिन्तायां पञ्चविंशत्युदयः सप्तविंशत्युदयश्च देवनारकानधिकृत्योक्तः । तत्र नारकाः क्षायिकवेदकसम्यग्दृष्टयः, देवाश्च त्रिविधसम्यग्दृष्टयोऽपि । तथा च तद्ग्रन्थः—"**पणवीस सत्तावीसोदया देवनेरइए पडुच्च नेरइगो खइगवेयगसम्मद्दिट्ठी देवो तिविहसम्मद्दिट्ठी वि**" इति । पञ्चविंशत्युदयश्च शरीरपर्याप्तिं निर्वर्तयतः । सप्तविंशत्युदयश्च शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य शेषपर्याप्तिभिः पुनरपर्याप्तस्य । ततोऽपर्याप्तावस्थायामपीहौपशमिकं सम्यक्त्वमुक्तम् । तथा पञ्चसंग्रहेऽपि मार्गणास्थानकेषु जीवस्थानकचिन्तायामौपशमिकसम्यक्त्वे—[2]"**उवसमसम्मंमि दो सण्णी**" इत्यनेन ग्रन्थेन संज्ञिद्विकमुक्तम् । ततश्चाचार्येणापीहोक्तम्—"**तिसु य सम्मेसु**" इति । तत्त्वं पुनः केवलिनो विदन्तीति ॥२२॥

मणपज्जवकेवलदुगसंजयदेसजयमीसदिट्ठीसु ।
सन्नीपज्जो चक्खुम्मि तिन्नि छ व पज्जि[3]यर चरमा ॥२३॥

(हारि०) व्याख्या—मनःपर्यायज्ञाने १ 'केवलदुग' [4]इति केवलज्ञाने २ केवलदर्शने च ३ 'संजय' [5]इति गुणगुणिनोरभेदोपचारेण संयमो गृहीतस्ततः सामायिके ४ छेदोपस्थापनीये ५ परिहारविशुद्धिके ६ सूक्ष्मसंपराये ७ यथाख्याते ८ 'देशविरतौ ९ मिश्रदृष्टौ १० च संज्ञिपर्याप्तकपञ्चेन्द्रियरूपमेकं जीवस्थानकं दशसु स्थानेषु भवतीति शेषः । तथा

---

१ सप्ततिका चूर्णिः । २ "सन्नी सम्मंमि दोण्णि" इत्यपि पाठः । ३ "अर" इत्यपि पाठः । ४-५ "स्ति" इति जे० । "देशयतौ" इति जे० ।

चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानानि पर्याप्तकचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि भवन्तीति। अत्रैवं विकल्पमाह—"छ व पज्जियर चरमा" इति षड् वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानानि चतुरिन्द्रियप्रभृतीनां भवन्तीति शेषः। इह कैश्चिदिन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात्। इति गाथार्थः ॥२३॥

तथा—

(मल०) मनःपर्यायज्ञाने 'केवलद्विके' केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे 'संयतेषु' सामायिकादिपञ्चप्रकारसंयमवत्सु देशयते मिश्रदृष्टौ च संज्ञिपर्याप्तलक्षणमेकं जीवस्थानं प्राप्यते नान्यत्। तथाहि—न तावन्मनःपर्यायज्ञाने केवलद्विके पञ्चप्रकारे च सामायिकादौ संयमे देशसंयमे चान्यजीवस्थानकं संभवति, तत्र सर्वदेशविरत्योरभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टिता च पर्याप्तसंज्ञिव्यतिरेकेण शेषेषु जीवस्थानकेषु तथाविधपरिणामाभावाच्च संभवतीति। 'चक्खुंमि तिन्नि' इति चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानकानि पर्याप्तचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणानि भवन्ति नान्यानि, तेषु तदसंभवात्। अत्रैव मतान्तरेण विकल्पमाह—'छ व पज्जियर चरमा' इति षड्वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानकानि चक्षुर्दर्शने भवन्ति, चतुरिन्द्रियादीनामिन्द्रियपर्याप्त्या पर्याप्तानां शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्तानामपि आचार्यान्तरैश्चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात्। तदुक्तं पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम्—"करणापर्याप्तकेषु चतुरिन्द्रियादिष्विन्द्रियपर्याप्तौ सत्यां चक्षुर्दर्शनं भवति"। इति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे बायराइ छ अपज्ज सन्निपज्जो य।
तेउल्लेसे बायरअपजत्तो दुविह सन्नी य ॥२४॥

(हारि०) व्याख्या—सप्तैव तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् जीवस्थानानि, क? इत्याह—'सासादने' कानि तानि? इत्याह—बादरादीनि षडपर्याप्तानि। अयमर्थः—सासादनभावे मृतस्य बादरादिषूत्पन्नस्य तेषु तत्प्राप्यते, अतः सासादने तानि षट् प्राप्यन्त इति। तथा संज्ञि पर्याप्तश्च सासादने सप्तम इति। तथा 'तेउल्लेसे' इति तेजोलेश्यायामपर्याप्तबादरजीवस्थानकमेकम्[1], देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुषूत्पन्नस्यापर्याप्तावस्थायां प्राक्तनी तेजोलेश्या प्राप्यते इत्याशयः। तथा द्विविधः संज्ञी पर्याप्तापर्याप्तरूप इति त्रयमिति तेजोलेश्यायां त्रीणि जीवस्थानानि। इति गाथार्थः ॥२४॥

तथा—

(मल०) 'सासादने' सासादनसम्यक्त्वे सप्त जीवस्थानकानि भवन्ति, कानि? इत्यत आह—'बादरादयः' बादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः षट् अपर्याप्तकाः[2]

१ "०मपि" इति जे०। २ "प्ति" जे०।

र्थङ्करादिरपर्याप्तकः सुप्रतीत एव । औपशमिकसम्यक्त्वं पुनरपर्याप्तावस्थायामनुत्तरसुरस्य द्रष्टव्यम् । इह केचिदपर्याप्तावस्थायामौपशमिकं सम्यक्त्वं नेच्छन्ति । तथा च ते आहुः—न तावदस्यामेवापर्याप्तावस्थायामिदं सम्यक्त्वमुपजायते, तदानीं तस्य तथाविधविशुद्ध्यभावात् । अथैतत्तदानीं मोत्पादि यत्तु पारभविकं तद्भवत्केन विनिवार्यत इतिमन्येथाः, तदपि न युक्तम्, यतो यो मिथ्यादृष्टिस्तत्प्रथमतया सम्यक्त्वमौपशमिकमवाप्नोति स तावत्तद्भावमापन्नः सन् कालं न करोत्येव । यदुक्तमागमे—"**अणबंधो १ दय २ माउगबंधं ३ कालं ४ च सासणो कुणइ उवसमसम्मद्दिट्ठी, चउण्हमेक्कंपि नो कुणइ ॥१॥**" यस्तूपशमश्रेणिमारूढः सन् मृत्वाऽनुत्तरसुरेषूत्पद्यते तस्य प्रथमसमय एव सम्यक्त्वपुद्गलोदयात् क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वं भवति न त्वौपशमिकम् । उक्तं च शतकबृहच्चूर्णौ—"**जो उवसमसम्मद्दिट्ठी उवसमसेढीए कालं करेइ सो पढमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उदयावलियाए छोढूण सम्मत्तपोग्गले वेयइ, तेण न उवसमसम्मद्दिट्ठी अपज्जत्तगो लब्भइ**" इत्यादि । अपरे पुनराहुः—भवत्येवापर्याप्तावस्थायामप्यौपशमिकं सम्यक्त्वम्, सप्ततिचूर्ण्यादिषु तथाऽभिधानात् । सप्ततिचूर्णौ हि गुणस्थानकेषु नामकर्मणो बन्धोदयादिमार्गणावसरेऽविरतसम्यग्दृष्टेरुदयस्थानचिन्तायां पञ्चविंशत्युदयः सप्तविंशत्युदयश्च देवनारकानधिकृत्योक्तः । तत्र नारकाः क्षायिकवेदकसम्यग्दृष्टयः, देवाश्च त्रिविधसम्यग्दृष्टयोऽपि । तथा च तद्ग्रन्थः—"**पणुवीस सत्तावीसोदया देवनेरइए पडुच्च नेरइगो खइगवेयगसम्मद्दिट्ठी देवो तिविहसम्मद्दिट्ठी वि**" इति । पञ्चविंशत्युदयश्च शरीरपर्याप्तिं निर्वर्तयतः । सप्तविंशत्युदयश्च शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य शेषपर्याप्तिभिः पुनरपर्याप्तस्य । ततोऽपर्याप्तावस्थायामपीहौपशमिकं सम्यक्त्वमुक्तम् । तथा पञ्चसंग्रहेऽपि मार्गणास्थानकेषु जीवस्थानकचिन्तायामौपशमिकसम्यक्त्वे—[२]"**उवसमसम्मंमि दो सण्णी**" इत्यनेन ग्रन्थेन संज्ञिद्विकमुक्तम् । ततश्चाचार्येणापीहोक्तम्—"**तिसु य सम्मेसु**" इति । तत्त्वं पुनः केवलिनो विदन्तीति ॥२२॥

मणपज्जवकेवलदुगसंजयदेसजयमीसदिट्ठीसु ।
सन्नीपज्जो चक्खुम्मि तिन्नि छ व पज्जि[३]यर चरमा ॥२३॥

(हारि०) व्याख्या—मनःपर्यायज्ञाने १ '**केवलदुग**' [४]इति केवलज्ञाने २ केवलदर्शने च ३ '**संजय**' [५]इति गुणगुणिनोरभेदोपचारेण संयमो गृहीतस्ततः सामायिके ४ छेदोपस्थापनीये ५ परिहारविशुद्धिके ६ सूक्ष्मसंपराये ७ यथाख्याते ८ [६]देशविरतौ ९ मिश्रदृष्टौ १० च संज्ञिपर्याप्तकपञ्चेन्द्रियरूपमेकं जीवस्थानकं दशसु स्थानेषु भवतीति शेषः । तथा

---

१ सप्ततिका चूर्णिः । २ "सन्नी सम्मंमि दोण्णि" इत्यपि पाठः । ३ "अर" इत्यपि पाठः । ४-५ "त्ति" इति जे० । "देशयतौ" इति जे० ।

चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानानि पर्याप्तकचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि भवन्तीति । अत्रैवं विकल्पमाह—"**छ व पज्जियर चरमा**" इति षड् वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानानि चतुरिन्द्रियप्रभृतीनां भवन्तीति शेषः । इह कैश्चिदिन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात् । इति गाथार्थः ॥२३॥

तथा—

(मल०) मनःपर्यायज्ञाने '**केवलद्विके**' केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे '**संयतेषु**' सामायिकादिपञ्चप्रकारसंयमवत्सु देशयते मिश्रदृष्टौ च संज्ञिपर्याप्तलक्षणमेकं जीवस्थानं प्राप्यते नान्यत् । तथाहि—न तावन्मनःपर्यायज्ञाने केवलद्विके पञ्चप्रकारे च सामायिकादौ संयमे देशसंयमे चान्यज्जीवस्थानकं संभवति, तत्र सर्वदेशविरत्योरभावात् । सम्यग्मिथ्यादृष्टिता च पर्याप्तसंज्ञिव्यतिरेकेण शेषेषु जीवस्थानकेषु तथाविधपरिणामाभावान्न संभवतीति । '**चक्खुंमि तिन्नि**' इति चक्षुर्दर्शने त्रीणि जीवस्थानकानि पर्याप्तचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणानि भवन्ति नान्यानि, तेषु तदसंभवात् । अत्रैव मतान्तरेण विकल्पमाह—'**छ व पज्जियर चरमा**' इति षड्वा पर्याप्तापर्याप्तरूपाणि चरमाणि जीवस्थानकानि चक्षुर्दर्शने भवन्ति, चतुरिन्द्रियादीनामिन्द्रियपर्याप्त्या पर्याप्तानां शेषपर्याप्त्यपेक्षयाऽपर्याप्तानामपि आचार्यान्तरैश्चक्षुर्दर्शनाभ्युपगमात् । तदुक्तं पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम्—"**करणापर्याप्तकेषु चतुरिन्द्रियादिष्विन्द्रियपर्याप्तौ सत्यां चक्षुर्दर्शनं भवति**" । इति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे बायराइ छ अपज्ज सन्निपज्जो य ।
तेउल्लेसे बायरअपजत्तो दुविह सन्नी य ॥२४॥

(हारि०) व्याख्या—सप्तैव तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् जीवस्थानानि, क ? इत्याह—'**सासादने**' कानि तानि ? इत्याह—बादरादीनि षडपर्याप्तानि । अयमर्थः—सासादनभावे मृतस्य बादरादिषूत्पन्नस्य तेषु तत्प्राप्यते, अतः सासादने तानि षट् प्राप्यन्त इति । तथा संज्ञि पर्याप्तश्च सासादने सप्तम इति । तथा '**तेउल्लेसे**' इति तेजोलेश्यायामपर्याप्तबादरजीवस्थानकमेकम्, देवेभ्यश्च्युतस्य भूदकतरुषूत्पन्नस्यापर्याप्तावस्थायां प्राक्तनी तेजोलेश्या प्राप्यते इत्याशयः । तथा द्विविधः संज्ञी पर्याप्तापर्याप्तरूप इति द्वयमिति तेजोलेश्यायां त्रीणि जीवस्थानानि । इति गाथार्थः ॥२४॥

तथा—

(मल०) '**सासादने**' सासादनसम्यक्त्वे सप्त जीवस्थानकानि भवन्ति, कानि ? इत्यत आह—'**बादरादयः**' बादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः षट् अपर्याप्तकाः

१ "०मप्वि" इति जे० । २ "प्वि" जे० ।

संज्ञी पर्याप्तकश्च । नन्वेकेन्द्रियाणामागमे सासादनभावो नेष्यते तत्कथमिहापर्याप्तबादरैकेन्द्रियलक्षणं जीवस्थानकं सासादनेऽभिहितम् ? इति, सत्यमेतत्, किन्तु मा त्वरिष्ठाः, सर्वमेतदाचार्य एवाग्रे निर्णेष्यतीति । तेजोलेश्यायां त्रीणि जीवस्थानकानि भवन्ति, किम्[1] ? इत्याह—बादरोऽपर्याप्तो, द्विविधश्च पर्याप्तापर्याप्तभेदेन संज्ञीति । बादरोऽपर्याप्तकः कथमवाप्यते ? इति चेद्, इह भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानदेवाः पृथिवीजलवनस्पतिषु मध्ये उत्पद्यन्ते ते च तेजोलेश्यावन्तः । यल्लेश्यश्च म्रियते अग्रेऽपि तल्लेश्य एवोत्पद्यते—"**जल्लेसे मरइ तल्लेसे उववज्जइ**" इतिवचनात् । अतो बादरापर्याप्तावस्थायांकियत्कालं तेजोलेश्याऽवाप्यते ? इति न कश्चिद्दोषः ॥२४॥

अस्सन्नि आइ बारस, अणहारे अट्ठ सत्तअपजत्ता ।
सन्नी पज्जत्तो तह, इय गइ[2]याइसु जियट्ठाणा ॥२५॥

(हारि०) व्याख्या—असंज्ञिनि मनोविज्ञानविकले, किम् ? इत्याह— 'आइ' [3]इति विभक्तिलोपादाद्यानि द्वादश जीवस्थानानि संज्ञिपञ्चेन्द्रियसत्कजीवस्थानकद्वयवर्जितानि । तथाऽनाहारकेऽष्टौ जीवस्थानानि, कथम् ? सप्तापर्याप्तजीवस्थानानि संज्ञिपर्याप्तकं च जीवस्थानकमष्टममिति । तच्च केवलिसमुद्घाते तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु कार्मणकाययोगे प्राप्यते । तथा चोक्तम् "**कार्मणशरीरयोगी, चतुर्थके पञ्चमे तृतीये च । समयत्रयेऽपि तस्मिन्, भवत्यनाहारको नियमात्** ॥१॥" इह यद्यपि केवली मनोविज्ञानविकल्परहितस्तथाऽपि द्रव्यमनः समाश्रित्य संज्ञिग्रहणेन गृहीतः । इति गत्यादिषु जीवस्थानान्युक्तानीति शेषः । इति गाथार्थः ॥२५॥

इति मार्गितानि मार्गणास्थानेषु चतुर्दशापि जीवस्थानानि, साम्प्रतमेतेष्वेव गुणस्थानकान्यभिधित्सुस्तन्नामसूचामाह—

(मल०) '**असंज्ञिनि**' संज्ञिव्यतिरिक्ते '**आइ बारस**' इति आदिमानि द्वादश जीवस्थानकानि भवन्ति, सर्वेषामपि विशिष्टमनोविकलतया संज्ञिप्रतिपक्षत्वाविशेषात्, संज्ञिप्रतिपक्षस्य चाऽसंज्ञित्वेन व्यवहारात् । तथाऽनाहारकेऽष्टौ जीवस्थानकानि भवन्ति, कानि ? इत्यत आह—सप्तापर्याप्तकाः सूक्ष्मैकेन्द्रियादयः विग्रहगतावेकं द्वौ त्रीन् वा समयान् यावत्तेषामाहारासंभवात्, संज्ञी च पर्याप्तकः, स च केवलिसमुद्घातावस्थायां तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु । तदुक्तम्—"**चतुर्थपञ्चमतृतीयेष्वनाहारकः**" इति । उपसंहारमाह—'**इय**' इत्यादि । इतिरेवमुक्तेन प्रकारेण '**गत्यादिषु**' मार्गणास्थानकेषु जीवस्थानकानि भवन्तीति ॥२५॥

---

१ "कानि ? इत्याह—" इत्यपि पाठः । २ "आइसु" इत्यपि पाठः । ३ "त्ति" इति जे० ।

तदेवमुक्तानि मार्गणास्थानेषु जीवस्थानकानि, साम्प्रतमेतेष्वेव गुणस्थानकान्यभिधित्सुस्तान्येव तावत्स्वरूपतो निर्दिशति—

मिच्छे १ सासण २ [1]मिस्से ३ अविरय ४ देसे ५ पमत्त ६ अपमत्ते ७ ।
नियट्टि ८ अनियट्टि ९ सुहुम १० वसम ११ खीण
१२ सजोगि १३ अजोगि १४ गुणा ॥२६॥

(हारि०) व्याख्या-सूचकत्वात्सूत्रमितिन्यायात्पदावयवेषु पदसमुदायोपचाराद्वा । तथा एकारान्ताः शब्दाः प्रथमान्ता ज्ञेयाः प्राकृतशैलीवशात् । "कयरे आगच्छइ दित्तरूवे" इत्यादिवदिति यथायोगं शब्दसंस्कारा[2]दि कार्यम् । तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् १, सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् २, सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ३, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ४, देशविरतिगुणस्थानम् ५, प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ६, अप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ७, अपूर्वकरणगुणस्थानम् ८, अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानम् ९, सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानम् १०, उपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् ११, क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् १२, सयोगिकेवलिगुणस्थानम् १३, अयोगिकेवलिगुणस्थानम् १४ 'गुणाः' इति गुणस्थानकानि । एवं गुणस्थानकपदसंस्कारः । पदार्थस्तु कर्मस्तवटीकातोऽवधारणीयः । स्थानाशून्यार्थं कश्चिद्गाथाभिः कथ्यते । ताश्चेमाः-"**जीवाइपयत्थेसुं, जिणोवइट्ठेसु जा असद्दहणा । सद्दहणावि य मिच्छा, विवरीयपरूवणा जा य ॥१॥ संसयकरणं जंपि य, जो तेसु अणायरो पयत्थेसु । तं पञ्चविहं मिच्छं, तद्दिट्ठी मिच्छदिट्ठी य ॥२॥ उवसमअद्धाए ठिओ, मिच्छमपत्तो तमेव गंतुमणो । सम्मं आसायंतो, सासायणमो मुणेयव्वो ॥३॥ जह गुडदहीणि विसमाइभावसहियाणि हुंति मिस्साणि । भुंजंतस्स तहोभय, तद्दिट्ठी मीसदिट्ठी य ॥४॥ तिविहे वि हु सम्मत्ते, थेवा वि न विरइ जस्स कम्मवसा । सो अविरओ त्ति भण्णइ, देसो पुण देसविरईए ॥५॥ विकहाकसायनिद्दासद्दाइरओ भवे पमत्तो त्ति । पंचसमिओ तिगुत्तो, अपमत्तजई मुणेयव्वो ॥६॥ अप्पुव्वं अप्पुव्वं जहुत्तरं जो करेइ ठिइखंडं । रसखंडं तग्घायं सो होइ अपुव्वकरणो त्ति ॥७॥ विणिवट्टंति विसुद्धिं, समयपइट्ठा वि जत्थ अन्नोन्नं । तत्तो नियट्टिठाणं, विवरीयमओ य अनियट्टी ॥८॥ थूलाण लोभखंडाण वेयगो बायरो मुणेयव्वो । सुहुमाण होइ सुहुमो, उवसंतेहिं तु उवसंतो ॥९॥ खीणंमि मोहणीए, खीणकसाओ सजोगिजोगि त्ति । होइ पउत्ता य तओ, अपउत्ता होइ हु अजोगी ॥१०॥** इति संक्षेपतो

---

१ "मीसे" इत्यपि पाठः । २ "०दिति कार्यम्" इत्यपि पाठः ।

गुणस्थानकीर्तनम् । अथैतेषामेव शिष्यजनहितार्थं कालप्रमाणं गाथाभिरेव कथ्यते—"**मिच्छत्तमभव्वाणं, अणाइयमणंतयं मुणेयव्वं । भव्वाणं तु अणाइयसपज्जवसियं च सम्मत्ते ॥१॥ छावलियं सासाणं, समहियतेत्तीससागर चउत्थं । देसूणपुव्वकोडी पचमगं तेरसं च पुहो ॥ लहुपंचक्खरचरमं, तइयं छट्ठाइबारस जाव । इय अट्ठगुणट्ठाणा, अन्तमुहुत्ता य पत्तेयं ॥३॥**" अथैतेषु गुणस्थानकेषु गृहीतेषु जीवो भवान्तरं याति उत न ? इत्याह—"**मिच्छे सासाणे वा अविरयसम्मंमि अहव गहियंमि । जंति जिया परलोए, सेसेक्कारसगुणे मोत्तुं ॥१॥**" अथ केषु म्रियन्ते केषु च न ? इति कथ्यते—"**मीसे १ खीणि २ सजोगा ३ न मरंतेक्कारसेसु उ मरंति । तेसु वि तिसु गहिएसुं, परलोगगमो न अट्ठेसुं ॥१॥**" इति गाथार्थः ॥२६॥

साम्प्रतमेतानि मार्गणास्थानेष्वभिधित्सुः पूर्वं तावद्गतीन्द्रियेषु मार्गयन्नाह—

(मल०) सूचनात्सूत्रमितिन्यायात्पदैकदेशेऽपि पदसमुदायोपचाराद्वा । इहैवं गुणस्थानकनिर्देशो द्रष्टव्यः । तद्यथा—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् १, सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् २, सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ३, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ४, देशविरतगुणस्थानम् ५, प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ६, अप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ७, अपूर्वकरणगुणस्थानम् ८, अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानम् ९, सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानम् १०, उपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् ११, क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् १२, सयोगिकेवलिगुणस्थानम् १३, अयोगिकेवलिगुणस्थानम् १४ इति । तत्र मिथ्या विपर्यस्ता दृष्टिर्जीवाजीवादिवस्तुप्रतिपत्तिर्यस्य भक्षितहृत्पूरपुरुषस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत्स मिथ्यादृष्टिः, गुणस्थानशब्दः प्राग्निरूपितशब्दार्थः, मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् । ननु यदि मिथ्यादृष्टिस्ततः कथं तस्य गुणस्थानसंभवः ?, गुणा हि ज्ञानदर्शनचारित्ररूपाः, तत्कथं ते दृष्टौ विपर्यस्तायां भवेयुः ? इति, उच्यते, इह यद्यपि तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणात्मगुणसर्वघातिप्रबलमिथ्यात्वमोहनीयविपाकोदयाद्वस्तुप्रतिपत्तिरूपा दृष्टिरसुमतो विपर्यस्ता भवति, । तथापि काचिन्मनुष्यपश्वादिप्रतिपत्तिरन्ततो निगोदावस्थायामपि तथाभूताव्यक्तस्पर्शमात्रप्रतिप्रत्तिरविपर्यस्ताऽपि भवति । यथाऽतिबहलघनपटलसमाच्छादितायामपि चन्द्रार्कप्रभायां काचित्प्रभा, तथाहि—समुन्नतातिबहलजीमूतपटलेन दिवाकररजनिकरकरनिकरतिरस्कारेऽपि नैकान्तेन तत्प्रभानाशः संपद्यते, प्रतिप्राणिप्रसिद्धदिनरजनीविभागाभावप्रसङ्गात् । उक्तं च—"**सुट्ठु वि मेहसमुदए, होइ पहा चंदसूराणं ।**" इति । एवमिहापि प्रबलमिथ्यात्वोदयेऽपि काचिदविपर्यस्तापि दृष्टिर्भवतीति तदपेक्षया मिथ्यादृष्टेरपि गुणस्थानकसंभवः । यद्येवं ततः कथमसौ मिथ्यादृष्टिरेव ? मनुष्यपश्वादिप्रतिपत्त्यपेक्षया अन्ततो निगोदावस्थायामपि तथाभूताव्यक्तस्पर्शमात्रप्रतिपत्त्यपेक्षया वा सम्यग्दृष्टित्वात्,

नैष दोषः, यतो भगवदर्हत्प्रणीतं सकलमपि द्वादशाङ्गार्थमभिरोचयमानोऽपि यदि तद्गतमेकमप्यक्षरं न रोचयति तदानीमप्येष मिथ्यादृष्टिरेवोच्यते, तस्य भगवति सर्वज्ञे प्रत्ययनाशात् । तदुक्तम्–'**सूत्रोक्तस्यैकस्याऽप्यरोचनादक्षरस्य भवति नरः । मिथ्यादृष्टिः सूत्रं, हि न प्रमाणं जिनाभिहितम् ॥१॥**' इति । किं पुनः शेषो भगवदर्हदभिहितयथावज्जीवाजीवादिवस्तुतत्त्वप्रतिपत्तिविकल इति यत्किंचिदेवैतत् । मिथ्यात्वं च पञ्चधा तच्चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः । आयमौपशमिकसम्यक्त्वलाभलक्षणं सादयति अपनयतीति आसादनं अनन्तानुबन्धिकषायवेदनम् । अत्र पृषोदरादित्वाद्यशब्दलोपः । "कृद्बहुलं" इतिवचनाच्च कर्तरि अनट् । सति हि अस्मिन् परमानन्दरूपानन्तसुखफलदो निःश्रेयसतरुबीजभूत औपशमिकसम्यक्त्वलाभो जघन्यतः समयमात्रेण उत्कर्षतः षड्भिरावलिकाभिरपगच्छतीति । ततः सह आसादनेन वर्तत इति सासादनः । सम्यग् अविपर्यस्ता दृष्टिर्जिनप्रणीतवस्तुप्रतिपत्तिर्यस्य स सम्यग्दृष्टिः, सासादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्च सासादनसम्यग्दृष्टिः तस्य गुणस्थानं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् । सास्वादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमिति वा पाठः । तत्र सह सम्यक्त्वलक्षणरसास्वादनेन वर्तत इति सास्वादनः । यथा हि भुक्तक्षीरान्नविषयव्यलीकचित्तः पुरुषस्तद्वमनकाले क्षीरान्नरसमास्वादयति तथैषोऽपि मिथ्यात्वाभिमुखतया सम्यक्त्वस्योपरि व्यलीकचित्तः सम्यक्त्वमुद्वमन् तद्रसमास्वादयति । ततः स चासौ सम्यग्दृष्टिश्च तस्य गुणस्थानं सास्वादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् । एतच्चैवं भवति, इह गम्भीरापारसंसारपारावारमध्यमध्यासीनो जन्तुर्मिथ्यादर्शनमोहनीयादिप्रत्ययमनन्तपुद्गलपरावर्तान् यावदनेकशारीरिकमानसिकदुःखलक्षाण्यनुभूय कथमपि तथाभव्यत्वपरिपाकवशतो गिरिसरिदुपलघोलनाकल्पेनानाभोगनिर्वर्तितेन यथाप्रवृत्तकरणेन करणं परिणामोऽत्रेतिवचनादध्यवसायविशेषरूपेण ज्ञानावरणीयादिकर्माण्यायुर्वर्जानि सर्वाण्यपि पल्योपमासंख्येयभागन्यूनैकसागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानि करोति । अत्र चान्तरे जीवस्य कर्मपरिणामजनितो घनरागद्वेषपरिणामरूपः कर्कशनिबिडचिरप्ररूढगुपिलवल्कग्रन्थिवद्दुर्भेदोऽभिन्नपूर्वो ग्रन्थिर्भवति । तदुक्तम्–'**तहि अंतरंमि जीवस्स । हवइ हु अभिन्नपुव्वो, गंठी एवं जिणा बेंति ॥ गंठित्ति सुदुब्भेओ, कक्खडघणरूढगूढगंठि व्व । जीवस्स कम्मजणिओ, घणरागद्दोसपरिणामो ॥१॥**" इति । इमं च ग्रन्थिं यावदभव्या अपि यथाप्रवृत्तकरणेन कर्म क्षपयित्वाऽनन्तशः समागच्छन्ति । यदुक्तमावश्यकटीकायाम्–"**अभव्यस्यापि कस्यचिद्यथाप्रवृत्तकरणतो ग्रन्थिमासाद्यार्हदादिविभूतिदर्शनतः प्रयोजनान्तरतो वा प्रवर्तमानस्य श्रुतसामायिकलाभो भवति न शेषलाभ इति ।**" एतदनन्तरं पुनः कश्चिदेव महात्मा समासन्नपरमनिर्वृतिसुखः समुल्लसितप्रचुरदुर्निवारवीर्यप्रसरो निशितकुठारधारयेव परमविशुद्ध्या यथोक्तस्वरूपस्य ग्रन्थेर्भिदां विधाय

मिथ्यात्वमोहनीयकर्मस्थितेरन्तर्मुहूर्तमुदयक्षणादुपरि अतिक्रम्यानिवृत्तिकरणसंज्ञितेन विशुद्धिविशेषेणान्तर्मुहूर्तकालप्रमाणमन्तरकरणं करोति । अत्र यथाप्रवृत्तकरणापूर्वकरणानिवृत्तिकरणानामयं क्रमः–"**जा गंठो ता पढमं, गंठि समइच्छओ हवइ बीय । अनियट्टीकरणं पुण, सम्मत्तपुरक्खडे जीवे ॥१॥**" '**गंठि समइच्छओ**' इति ग्रन्थिं समतिक्रामतो भिन्दानस्येति यावत्, '**सम्मत्त पुरक्खडे**' इति सम्यक्त्वं पुरस्कृतं येन तस्मिन् आसन्नसम्यक्त्वे जीवेऽनिवृत्तिकरणं भवतीत्यर्थः । तस्मिंश्चान्तरकरणे कृते सति कर्मणः स्थितिद्वयं भवति । अन्तरकरणादधस्तनी प्रथमा स्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा । तस्मादेव चान्तरकरणादुपरितनी द्वितीया । स्थापना चेयम्–△▭ । तत्र प्रथमस्थितौ मिथ्यात्वदलिकवेदनादसौ मिथ्यादृष्टिरेव । अन्तर्मुहूर्तेन पुनस्तस्यामपगतायामन्तरकरणप्रथमसमय एवौपशमिकं सम्यक्त्वमवाप्नोति मिथ्यात्वदलिकवेदनाभावात् । यथा हि वनदावानलः पूर्वदग्धेन्धनं वनमूषरं वा देशमवाप्य विध्यायति तथा मिथ्यात्ववेदनवनदवोऽपि अन्तरकरणमवाप्य विध्यायति, तथा च सति तस्यौपशमिकसम्यक्त्वलाभः । उक्तं च–"**ऊसरदेसं दड्ढिल्लयं च विज्झाइ वणदवो पप्प । इय मिच्छस्स अणुदए, उवसमसम्मं लहइ जीवो ॥१॥**" इति । तस्यां चान्तर्मौहूर्तिक्यामुपशान्ताद्धायां परमनिधिलाभकल्पायां जघन्येन समयमात्रशेषायामुत्कर्षतः षडावलिकाशेषायां सत्यां कस्यचिन्महाविभीषिकोत्थानकल्पोऽनन्तानुबन्धिकषायोदयो भवति, तदुदये च सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके वर्तते, उपशमश्रेणिप्रतिपतितो वा कश्चित्सासादनत्वं याति । तदुत्तरकालं चावश्यं मिथ्यात्वोदयादसौ मिथ्यादृष्टिर्भवतीति ॥ तथा सम्यक् च मिथ्या च दृष्टिर्यस्यासौ सम्यग्मिथ्यादृष्टिः तस्य गुणस्थानं सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् । इहानन्तराभिहितविधिना लब्धेनौपशमिकसम्यक्त्वेनौषधविशेषकल्पेन मदनकोद्रवस्थानीयमिथ्यात्वमोहनीयं कर्म शोधयित्वा त्रिधा करोति । तद्यथा–शुद्धम् १, अर्द्धविशुद्धम् २, अविशुद्धं ३ चेति । स्थापना–△△△ ॥ तत्र त्रयाणां पुञ्जानां मध्ये यदाऽर्द्धविशुद्धः पुञ्ज उदेति तदा तदुदयवशाज्जीवस्यार्द्धविशुद्धमर्हदभिहिततत्त्वश्रद्धानं भवति, तेन तदाऽसौ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमन्तर्मुहूर्तकालं स्पृशति । तत ऊर्ध्वमवश्यं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा गच्छतीति ॥ तथा विरमति स्म सावद्ययोगेभ्यो निवर्तते स्मेति विरतः । "**गत्यर्थकर्मण्याधारे च**" इति कर्तरि क्तप्रत्ययः । यथा शयितो देवदत्त इति । अत्र न विरतोऽविरतः । यद्वा '**नपुंसके भावे क्तः**' इति नपुंसके भावे क्तप्रत्यये विरमणं विरतं सावद्ययोगप्रत्याख्यानम्, नास्य विरतमस्तीत्यविरतः स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेत्यविरतसम्यग्दृष्टिः । एष हि अविरतिप्रत्ययं दुरन्तनरकादिदुःखफलं कर्मबन्धम् । सावद्ययोगविरतिं च परममुनिप्रणीतां सिद्धिसौधाध्यारोहणनिःश्रेणिकल्पां जानन्नपि न विरतिमभ्युपगच्छति, न च तत्पालनाय यतते अप्रत्याख्यानावरणकषायोदयविघ्नितत्वात् । उक्तं च–

"**बंधं अविरइहेउं, जाणंतो रागदोसदुक्खं च । विरइसुह इच्छंतो, विरइं काउं च असमत्थो ॥१॥ एस असंजयसम्मो, निंदंतो पावकम्मकरणं च । अहिगय-जीवाजीवो, अचलियदिट्ठी चलियमोहो ॥२॥**" सम्यग्दृष्टित्वं चास्य पूर्वव्यावर्णितान्तरकरणकालसंभविनि औपशमिकसम्यक्त्वे विशुद्धदर्शनमोहपुञ्जोदयसंभविनि क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे वा सर्वदर्शनमोहनीयक्षयसमुत्थक्षायिकसम्यक्त्वे वा सति द्रष्टव्यम्, तस्य गुणस्थानमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ॥ तथा सर्वसावद्ययोगस्य देशे एकव्रतविषयस्थूलसावद्ययोगादौ सर्वव्रतविषयानुमतिवर्जसावद्ययोगान्ते विरतं विरतिर्यस्यासौ देशविरतः । सर्वसावद्ययोगविरतिस्त्वस्य नास्ति प्रत्याख्यानावरणकषायोदयात् । सर्वविरतिरूपं हि प्रत्याख्यानमावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणाः । उक्तं च—"**सम्मद्दंसणसहिओ, गिण्हंतो विरइमप्पसत्तीए । एगव्वयाइचरिमो, अणुमइमित्तो त्ति देसजई ॥१॥ परिमियमुवसेवंतो, अपरिमियमणंतयं परिहरंतो । पावइ परम्मि लोए, अपरिमियमणंतयं सोक्खं ॥२॥** देशविरतस्य गुणस्थानं देशविरतगुणस्थानम् ॥ तथा संयच्छति स्म सम्यगुपरमति स्मेति संयतः । "**गत्यर्थाकर्मकपिबभुजेः**" इति कर्तरि क्तप्रत्ययः । प्रमाद्यति स्म संयमयोगेषु सीदति स्मेति प्रमत्तः, पूर्ववत्कर्तरि क्तप्रत्ययः । यद्वा प्रमदनं प्रमत्तं प्रमादः, मदिराकषायविषयादिभेदात्पञ्चप्रकारः, प्रमत्तमस्यास्तीति प्रमत्तः प्रमादवान्, "**अभ्रादिभ्यः**" इति मत्वर्थीयोऽप्रत्ययः । प्रमत्तश्चासौ संयतश्च प्रमत्तसंयतः तस्य गुणस्थानं प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् । विशुद्ध्यविशुद्धिप्रकर्षापकर्षकृतः स्वरूपभेदः । तथाहि—देशविरतगुणापेक्षयैतद्गुणानां विशुद्धिप्रकर्षोऽविशुद्ध्यपकर्षश्च । अप्रमत्त संयतगुणस्थानापेक्षया तु विपर्ययः । एवमन्येष्वपि गुणस्थानकेषु पूर्वोत्तरापेक्षया विशुद्ध्यविशुद्धिप्रकर्षापकर्षयोजना द्रष्टव्या ॥ तथा न प्रमत्तोऽप्रमत्तः, यद्वा नास्ति प्रमत्तमस्येत्यप्रमत्तः स चासौ संयतश्च तस्य गुणस्थानमप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ॥

तथा अपूर्वमभिनवं प्रथममिति यावत्करणं स्थितिघात १ रसघात २ गुणश्रेणि ३ गुणसंक्रम ४ स्थितिबन्धानां ५ पञ्चानामर्थानां निर्वर्तनं यस्यासावपूर्वकरणः । तथाहि—बृहत्प्रमाणाया ज्ञानावरणीयादिकर्मस्थितेरपवर्तनाकरणेन खण्डनमल्पीकरणं स्थितिघात उच्यते । रसस्यापि च प्रचुरीभूतस्य सतोऽपवर्तनाकरणेन खण्डनमल्पीकरणं रसघातः । एतौ च द्वावपि पूर्वगुणस्थानकेषु विशुद्धेरल्पत्वादल्पावेव कृतवान् । अत्र पुनर्विशुद्धेरतीवप्रकृष्टत्वात् बृहत्प्रमाणतयाऽपूर्वाविमौ करोति । तथोपरितनस्थितेर्विशुद्धिवशादपवर्तनाकरणेनावतारितस्य दलिकस्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणमुदयक्षणादुपरि क्षिप्रतरक्षपणाय प्रतिक्षणमसंख्येयगुणवृद्ध्या यद्विरचनं सा गुणश्रेणिः । स्थापना चेयम्—★ ॥ इमां च पूर्वगुणस्थानकेष्वविशुद्धत्वात्कालतो द्राघीयसीमप्रथीयसीं च दलिकस्यापवर्तनाद्विरचितवान् । इह पुनर्विशुद्धतरत्वादपूर्वां कालतो ह्रस्वतरां पृथुतरां च प्रभूततरदलिक-

स्यापवर्तनाद्विरचयतीति । तथा बध्यमानशुभप्रकृतिष्वबध्यमानाशुभप्रकृतिदलिकस्य प्रतिसमयमसंख्येयगुणवृद्धया विशुद्धिवशान्नयनं गुणसंक्रमः, तमपीह पूर्वं करोति । तथा स्थितिं कर्मणां प्राग् अशुद्धत्वाद्द्राघीयसीं बद्धवान्, इह तु तामपूर्वां विशुद्धिवशाद् ह्रसीयसीं बध्नातीति । एषं चापूर्वकरणो द्विधा, क्षपक उपशमकश्च । क्षपणोपशमार्हत्वाच्चैवमुच्यते । राज्यार्हकुमारराजवत् । न पुनरसौ क्षपयति उपशमयति वा, तस्य गुणस्थानमपूर्वकरणगुणस्थानम् । अस्मिंश्च गुणस्थानके कालत्रयवर्तिनो नानाजीवानाश्रित्य प्रतिसमयं यथोत्तरमधिकवृद्धयाऽसंख्येयलोकाकाशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि भवन्ति । तथाहि—येऽस्य गुणस्थानकस्य प्रथमसमयं प्रतिपद्यन्ते प्रतिपत्स्यन्ते च तान् सर्वानपेक्ष्य जघन्यादीन्युत्कृष्टान्तान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि लभ्यन्ते. कचित्कदाचित्केषांचित्तेषां प्रथमसमयवर्तिनां परस्परमध्यवसायस्थाननानात्वस्यापि भावात् । तस्य च नानात्वस्यैतावत एव केवलवेदिनोपलब्धत्वात् । अत एव चेदमपि न वाच्यम्, कालत्रयवर्तिनामेतद्गुणस्थानकप्रथमसमयप्रतिपत्तृणामानन्त्यात्परस्परमध्यवसायस्थाननानात्वाच्चानन्तान्यध्यवसायस्थानानि प्राप्नुवन्तीति बहूनां प्राय एकाध्यवसायस्थानवर्तित्वाद्द्वितीयसमये तदन्यान्यधिकतराण्यध्यवसायस्थनानि लभ्यन्ते तृतीयसमये तदन्यान्यधिकतराणी चतुर्थसमये तदन्यान्यधिकतराणीत्येवं यावच्चरमसमयः । एतानि च स्थाप्यमानानि विषमचतुरस्रं क्षेत्रमास्तृणन्ति । स्थापना ॥

०	० ० ० ० ० ०
०	० ० ० ० ०
०	० ० ० ०
०	० ० ०

ननु द्वितीयादिसमयेष्वध्यवसायस्थानानां वृद्धौ किं कारणम् ?, उच्यते, तथास्वभावविशेषः । एतद्गुणस्थानकं प्रविपत्तारो हि प्रतिसमयं विशुद्धिप्रकर्षमासादयन्तः खलु स्वभावत एव ऊर्ध्वमूर्ध्वतरं गच्छन्तो बहवो विभिन्नेषु विभिन्नेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्तन्त इति । अत्र च प्रथमसमयजघन्याध्यवसायस्थानात्प्रथमसमयोत्कृष्टमध्यवसायस्थानमनन्तगुणविशुद्धम् । प्रथमसमयोत्कृष्टाध्यवसायस्थानाद्द्वितीयसमये जघन्यमध्यवसायस्थानमनन्तगुणविशुद्धमिति । तस्मात्तदुत्कृष्टमनन्तगुणविशुद्धमित्येवं यावद्द्विचरमसमयोत्कृष्टाध्यवसायस्थानाच्चरमसमयजघन्यमध्यवसायस्थानमनन्तगुणविशुद्धम् । तस्मादपि तदुत्कृष्टमनन्तगुणविशुद्धम् । इत्येकसमयगतानि चामून्यध्यवसायस्थानानि परस्परमनन्तभागवृद्धा १ ऽसंख्यातभागवृद्ध २ संख्यातभागवृद्ध ३ संख्येयगुणवृद्धा ४ ऽसंख्येयगुणवृद्धा ५ ऽनन्तगुणवृद्ध ६ रूपषट्स्थानकपतितानि । युगपदेतद्गुणस्थानकप्रविष्टानां च परस्परमध्यवसायस्थानस्य व्यावृत्तिलक्षणा निवृत्तिरप्यस्ति, यथोक्तमनन्तरमितिकृत्वा निवृत्तिगुणस्थानकमप्येतदुच्यते । उक्तं च—'**नियट्टि अनियट्टि बायरे सुहुमे**' इति इदानीमनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानकमुच्यते—तत्र युगपद्गुणस्थानकं प्रतिपन्नानां बहूनामपि जीवानामन्योऽन्यमध्यवसायस्थानस्य व्यावृत्तिर्निवृत्तिः सा नास्त्यस्येत्यनिवृत्तिः । समकालमेतद्गुणस्थानकमारूढस्यापरस्य यस्मिन् समये यदध्यवसायस्थानमसावपि विवक्षितः

पुरुषस्यास्मिन् समये तदेवाध्यवसायस्थानमनुवर्तत इति यावत् । संपरैति पर्यटति संसारमनेनेति संपरायः कषायोदयः, बादरः सूक्ष्मकिट्टीकृतसंपरायापेक्षया स्थूरः संपरायो यस्य स बादरसंपरायः, अनिवृत्तिश्चासौ बादरसंपरायश्च तस्य गुणस्थानं अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानम् । तस्यां चानिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानकाद्धायामान्तर्मौहूर्तिक्या प्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयमनन्तगुणविशुध्दं यथोत्तरमध्यवसायस्थानं भवति । यावन्तश्चान्तर्मुहूर्ते समयास्तावन्त्येवाध्यवसायस्थानानि तत्प्रविष्टानां भवन्ति नाधिकानि, एकसमयप्रविष्टानां सर्वेषामप्येकाध्यवसायस्थानत्वात् । स चानिवृत्तिबादरो द्वेधा, क्षपक उपशमकश्च । क्षपयत्युपशमयति वा मोहनीयं कर्मेतिकृत्वा ॥ तथा सूक्ष्मः किट्टीकृतः संपरायो लोभकषायोदयरूपो यस्य स सूक्ष्मसंपरायः । स द्विधा, क्षपक उपशमकश्च । क्षपयति उपशमयति वा लोभमेकमितिकृत्वा तस्य गुणस्थानं सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानम् ॥ तथा छादयति ज्ञानादिगुणमात्मन इति छद्म ज्ञानावरणीयादिघातिकर्मोदयः। छद्मनि तिष्ठतीति च्छद्मस्थः । च स सरागोऽपि भवतीति तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम् । वीतो विगतो रागो मायालोभकषायोदयरूप उपलक्षणत्वादस्य द्वेषोऽपि क्रोधमानोदयरूपो यस्यासौ वीतरागः स चासौ छद्मस्थश्च वीतरागच्छद्मस्थः । स च क्षीणकषायोऽपि भवति तस्यापि यथोक्तरागापगमात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थमुपशान्तकषायग्रहणम् । उपशान्ता उपशमिता विद्यमाना एव सन्तः संक्रमणोद्वर्तनादिकरणविपाकप्रदेशोदयायोग्यत्वेन व्यवस्थापिताः कषायाः प्राङ्निरूपितशब्दार्था येन स उपशान्तकषायः स चासौ वीतरागच्छद्मस्थश्च तस्य गुणस्थानमुपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् । एतद्विनेयजनानुग्रहाय विशेषतो मूलत एव भाव्यते । तत्र प्रथमतोऽनन्तानुबन्धिकषायानविरतो देशविरतः प्रमत्तोऽप्रमत्तो वोपशमय्य ततो दर्शनमोहनीयत्रितयमुपशमयति । कथमनन्तानुबन्धिनामुपशमनम् ? इति चेत्, उच्यते, योऽविरतादीनामन्यतमोऽनन्तानुबन्धिन उपशमयितुं प्रयतते सोऽन्यतमस्मिन् योगे वर्तमानोऽवश्यं तेजःपद्मशुक्ललेश्याऽन्यतमलेश्यायुक्तः साकारोपयोगोपयुक्तोऽन्तःसागरोपमकोटीकोटीस्थितिसत्कर्मा प्रकृतीश्च बध्नाति परिवर्तमानाः शुभा एव। प्रतिसमयं चाशुभानां कर्मणामनुभागमनन्तगुणहान्या करोति, शुभानां चानन्तगुणवृद्ध्या । स्थितिबन्धेऽपि च पूर्णे पूर्णे सत्यन्यं स्थितिबन्धं पल्योपमासंख्येयभागन्यूनं करोति । करणकालात्पूर्वमपि चान्तर्मुहूर्तं कालं यावदवदायमानचित्तसंततिरवतिष्ठते । स्थित्वा च तावन्तं कालमान्तर्मौहूर्तिकानि त्रीणि करणानि करोति । तद्यथा— यथाप्रवृत्तकरणं १ मपूर्वकरणं २ मनिवृत्तिकरणं ३ च । चतुर्थी तूपशान्ताद्धा । तत्र यथाप्रवृत्तकरणे प्रविशन् प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्या प्रविशति, न च तत्र स्थितिघातं रसघातं गुणश्रेणिं गुणसंक्रमणं वा करोति तद्योग्यविशुद्ध्यभावात् । तस्यां चान्तर्मौहूर्तिक्यां यथाप्रवृत्तकरणाद्धायां कालत्रयवर्तिनानाजीवापेक्षया प्रतिसमयमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि विशुद्धि-

स्थानानि भवन्ति । प्रतिसमयं चैतानि सर्वाण्यपि षट्स्थानपतितानि । तत्र प्रथमसमये या जघन्या विशुद्धिः सा सर्वस्तोका । ततो द्वितीयसमये जघन्या विशुद्धिरनन्तगुणा । ततोऽपि तृतीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । एवं तावद्द्रष्टव्यं यावत्तस्य यथाप्रवृत्तकरणस्यासंख्येयो भागो गतो भवति । ततोऽसंख्येयभागगतचरमसमयजघन्यविशुद्धेः सकाशात्प्रथमसमये उत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा । ततोऽपि यतो जघन्यविशुद्धिस्थानाभिवृत्तस्तत उपरितनं जघन्यं स्थानमनन्तगुणम् । ततो द्वितीयसमये उत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा । तत उपरितनं जघन्यं स्थानमनन्तगुणम् । ततस्तृतीयसमये उत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा । एवमुपदर्शितक्रमेण जघन्यमुत्कृष्टं चामुञ्चता सताऽनन्तगुणवृद्धया श्रेण्या तावज्ज्ञातव्यं यावद्यथाप्रवृत्तकरणस्यान्तिमं जघन्यं विशुद्धिस्थानम् । ततः शेषाण्युत्कृष्टानि स्थानानि सर्वाण्यप्यनन्तगुणवृद्धया श्रेण्या नेतव्यानि यावद्यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमसमये उत्कृष्टं विशुद्धिस्थानम् । भणितं यथाप्रवृत्तकरणम् ॥ इदानीमपूर्वकरणमुच्यते-

१२	०	०	०	०	०	०	०	०	१६
१०	०	०	०	०	०	०	०	०	१५
८	०	०	०	०	०	०	०	०	१४
६	०	०	०	०	०	०	०		१३
४	०	०	०	०	०	०			११
३	०	०	०	०	०				९
२	०	०	०	०					७
१	०	०	०						५

तत्रापूर्वकरणस्य प्रतिसमयमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि विशुद्धिस्थानानि भवन्ति, तानि च प्रतिसमयं षट्स्थानपतितानि । तत्र प्रथमसमये जघन्या विशुद्धिः सर्वस्तोका, सा च यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयोत्कृष्टविशुद्धिस्थानादनन्तगुणा । ततोऽपि चापूर्वकरणस्य प्रथमसमय एवोत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा । ततोऽपि च द्वितीयसमये जघन्या विशुद्धिरनन्तगुणा । एवं जघन्यमुत्कृष्टं चानन्तगुणवृद्धया श्रेण्या तावन्नेतव्यं यावदपूर्वकरणस्य चरमसमये जघन्यविशुद्धित उत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा । स्थापना चेयम्-

९००००००००१०
७०००००००८
५००००००६
३०००००४
१००००२

॥ अस्मिंश्चापूर्वकरणे प्रविशन् स्थितिघातं रसघातं गुणश्रेणिं गुणसंक्रमं स्थितिबन्धं च युगपदारभते । तत्र स्थितिघातो नाम सत्कर्मणोऽग्रिमभागादुत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वमात्रां जघन्यतः पल्योपमासंख्येयभागमात्रां स्थितिं खण्डयति तद्दलिकं चाधस्ताद्याः स्थितीर्न खण्डयिष्यति तत्र प्रक्षिपति । अन्तर्मुहूर्तमात्रकालेन तद्दलिकं खण्डयते । ततः पुनरपि ततोऽधस्तादुपदर्शितक्रमेणैव पल्योपमासंख्येयभागमात्रं स्थितिखण्डमुत्किरति निक्षिपति च । एवमपूर्वकरणाद्धायामनेकानि स्थितिखण्डसहस्राणि भवन्ति । तस्य चापूर्वकरणस्य प्रथमसमये यत्स्थितिसत्कर्मासीत्तत्तस्यैव चरमसमये संख्येयगुणहीनं जातम् । अधुनाऽनुभागघातो भण्यते-तत्र यदशुभप्रकृतीनामनुभागसत्कर्म तस्यानन्ततमभागमपहाय शेषस्य प्रतिसमयमनन्ताननुभागभागान् विनाशयन् साकल्यतोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण विनाशमापादयति । ततः पुनरपि तस्यानन्तरमुक्तस्यानन्ततमभागस्यानन्तभागं विमुच्य शेषं प्रतिसमयमनन्ताननुभागभागान् विनाशयन् साकल्यतोऽनन्तर्मुहूर्तमात्रेण विनाशयति । ततः पुनरपि प्रागुक्तस्यानन्तभागस्यानन्तभागं मुक्त्वा शेषमन्तर्मुहूर्तमात्रेण पूर्वोक्तविधिना साकल्येन विनाशयति ।

कस्थितिखण्डोत्किरणकालेऽनेकान्यनुभागखण्डसहस्राणि व्यतिक्रामन्ति । स्थितिखण्डसहस्रैस्त्वपूर्वकरणं परिसमाप्यते । तथा गुणश्रेणिं कालतोऽपूर्वकरणकालतोऽनिवृत्तिकरणकालतश्च विशेषाधिकां करोति । तत्रोदयक्षणादन्तर्मुहूर्तप्रमाणाभ्यः स्थितिभ्य उपरितनीनां स्थितीनां संबन्धिदलिकमादायोदयावलिकात उपरि वर्तमानासु स्थितिष्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणासु मध्ये निक्षिपति । यच्च प्रथमसमयगृहीतं दलिकं निक्षिप्यते तत्प्रथमस्थितौ स्तोकम्, द्वितीयस्थितावसंख्येयगुणम्, तृतीयस्थितावसंख्येयगुणम्, एवं यावन्निक्षेपविषयभूतान्तर्मुहूर्तचरमस्थितिः । द्वितीयसमयेऽपि यद्दलिकमन्तर्मुहूर्तादुपरितनस्थितिभ्यो गृह्यते, ततः प्रथमसमयगृहीतदलिकादसंख्येयगुणम्, तदपि निक्षिप्यमाणं पूर्ववदेवावगन्तव्यम् । एवं तृतीयादिसमयेष्वपि ग्रहणनिक्षेपौ द्रष्टव्यौ । विपाकानुभवतश्च क्षीयमाणास्वधस्तनस्थितिषु तत उपर्युपरितरमारभ्योदयावलिकात ऊर्ध्वं शेषासु स्थितिषु शेषसमयगृहीतं दलिकं निक्षिप्यते इति । अधुना गुणसंक्रमो भण्यते—तत्रापूर्वकरणस्य प्रथमसमये यदनन्तानुबन्धिकषायसंबन्धिदलिकं परप्रकृतौ संक्रमयति तत्स्तोकम् । ततो द्वितीयसमये संक्रम्यमाणमसंख्येयगुणम् । तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणम् । एवं यावदपूर्वकरणाद्धायाश्चरमसमयः । तथाऽपूर्वकरणस्य प्रथमसमयेऽन्य एव स्थितिबन्ध आरभ्यते । स्थितिबन्धस्थितिखण्डे च युगपदारभ्येते युगपदेव च निष्ठां यातः । एवमेते पञ्च पदार्था अस्मिन्नपूर्वकरणे युगपदारभ्यन्ते । गतमपूर्वकरणम् । इदानीमनिवृत्तिकरणमुच्यते-अनिवृत्तिशब्दार्थभावना प्राग्वदवगन्तव्या । अत्रापि पूर्वोक्ताः स्थितिघातादयः पञ्च पदार्था युगपदारभ्यन्ते । तस्याश्चानिवृत्तिकरणाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्स्वनन्तानुबन्धिनां कषायाणामन्तरकरणं करोति । तच्चैवम्-अधस्तादावलिकामात्रं मुक्त्वा तत उपरिष्टादन्तर्मुहूर्तमात्रं स्थितिखण्डमुत्किरति । उत्कीर्यमाणं च दलिकं बध्यमानासु परप्रकृतिषु संक्रमयति । अन्तर्मुहूर्तमात्रकालेन च स्थितिबन्धकालसमेन तदन्तरकरणं परिसमाप्यते । तस्मिन्नेव च समये प्रथमस्थित्यावलिकागतं च दलिकं स्तिबुक[1]-संक्रमेण वेद्यमानासु परप्रकृतिषु प्रक्षिपति । उपरितनस्थितिगतं च [2]दलिकमेवमुपशमयति-प्रथमसमये स्तोकम् । द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम् । तृतीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम् । एवमन्तर्मुहूर्तमात्रेणानन्तानुबन्धिनः साकल्येनोपशमयति ।

अन्ये पुनराहुः—नैवानन्तानुबन्धिनामुपशमना भवति, किन्तु विसंयोजनैव, सा पुनरेवम्—इहाविरतादयः क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टयश्चातुर्गतिका अपि । तद्यथा—नारका देवा अविरतसम्यग्दृष्टयः, तिर्यञ्चोऽविरतसम्यग्दृष्टयो देशविरता वा, मनुजा अविरतसम्यग्दृष्टयो देशविरताः सर्वविरता वा, यथासंभवं विशुद्धिपरिणामेन परिणममाना अनन्तानुबन्धिनां विसंयोजनार्थं यथाप्रवृत्तादीनि

---

१ अनुदीर्णमुदीर्णान्तस्तुल्यकालं प्रतिपक्षणम् । दलिकं संक्रमं याति येन स स्तिबुको मतः ॥१॥ २ "दलिकमुपशमयितुमारमते । तच्चैवम्" इत्यपि पाठः ॥

त्रीणि करणानि कुर्वन्ति। तत्र यथाप्रवृत्तमपूर्वं च प्राग्वत्। अनिवृत्तिकरणं पुनः प्राप्तः सन् अनन्तानुबन्धिनां स्थितिमुद्वलनासंक्रमेणोद्वलयन् तावदुद्वलयति यावत्पल्योपमासंख्येयभागामात्रं स्थितम्। तदपि च बध्यमानासु मोहनीयप्रकृतिषु परिणमयति प्रथमसमये स्तोकम्, द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणम्। एवं यावच्चरमसमये आवलिकागतं मुक्त्वा शेषं सर्वं संक्रमेण द्विचरमसमयपरिणमितादसंख्येयगुणं परिणमयति। आवलिकागतं पुनः स्तिबुकसंक्रमेण वेद्यमानासु प्रकृतिषु संक्रमयति। भणिता अनन्तानुबन्धिनां विसंयोजना। साम्प्रतं दर्शनत्रिकस्योपशमना भण्यते—तत्र मिथ्यात्वस्योपशमको द्विधा, मिथ्यादृष्टिः क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिश्च। इतरयोस्तु द्वयोरपि क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिरेव। तत्र मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वोपशमना यथा कर्मप्रकृतिसंग्रहण्याम् इह तु ग्रन्थगौरवभयान्नोच्यते। क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टेर्दर्शनत्रिकोपशमनाविधिः पुनरयम्—इह क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिः संयमे वर्तमानः सन्नन्तर्मुहूर्तमात्रेण दर्शनत्रिकमुपशमयति। उपशमयतश्च करणत्रिकविधिः पूर्ववत्तावद्वक्तव्यः यावदनिवृत्तिकरणाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्स्वन्तरकरणम्। अन्तरकरणं च कुर्वन् वेदकसम्यक्त्वस्य प्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रां स्थापयति। मिथ्यात्वमिश्रयोश्चावलिकामात्राम्। उत्कीर्यमाणं च दलिकं त्रयाणामपि सम्यक्त्वस्य प्रथमस्थितौ प्रक्षिपति। मिथ्यात्वमिश्रयोः प्रथमस्थितिदलिकं सम्यक्त्वस्य प्रथमस्थितिदलिकमध्ये स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति। सम्यक्त्वस्य पुनः प्रथमस्थितौ विपाकानुभवतः क्रमेण क्षीणायां सत्यामुपशमसम्यग्दृष्टिर्भवति। उपरितनदलिकस्य चोपशमना त्रयाणामपि मिथ्यात्वादीनामनन्तानुबन्धिनामुपरितनस्थितिदलिकस्येवावसेया। एवमुपशान्तदर्शनमोहनीयत्रिकश्चारित्रमोहनीयमुपशमयितुकामः पुनरपि यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि करोति। करणानां च स्वरूपं प्राग्वदवगन्तव्यम्। केवलमिह यथाप्रवृत्तकरणमप्रमत्तगुणस्थाने भवति। अपूर्वकरणमपूर्वकरणगुणस्थानके। अत्रापि स्थितिघातादयः पूर्ववदेव। अपूर्वकरणाद्धायाश्च संख्येयभागे गते सति निद्राप्रचलयोर्बन्धव्यवच्छेदः। ततः प्रभूतेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु सत्स्वपूर्वकरणाद्धायाः संख्येया भागा गता भवन्ति। अस्मिश्चान्तरे देवगति १ देवानुपूर्वी २ पञ्चेन्द्रियजाति ३ वैक्रिया ४ ऽऽहारक ५ तैजस ६ कार्मण ७ समचतुरस्र ८ वैक्रिया ९ ऽऽहारकाङ्गोपाङ्ग १० वर्णादिचतुष्का १४ ऽगुरुलघू १५ पघात १६ पराघातो १७ च्छ्वास १८ त्रस १९ बादर २० पर्याप्त २१ प्रत्येक २२ प्रशस्तविहायोगति २३ स्थिर २४ शुभ २५ सुभग २६ सुस्वरा २७ ऽऽदेय २८ निर्माण २९ तीर्थकर ३० संज्ञितानां त्रिंशतः प्रकृतीनां बन्धव्यवच्छेदः। ततः स्थितिखण्डपृथक्त्वे गते सत्यपूर्वकरणाद्धायाश्चरमसमये हास्यरतिभयजुगुप्सानां बन्धव्यवच्छेदः। उदयव्यवच्छेदश्च सर्वकर्मणां देशोपशमनानिधत्तिनिकाचनाकरणव्यवच्छेदश्च। ततोऽनन्तरसमयेऽनिवृत्तिकरणे प्रविशति। तत्रापि स्थितिघातादीनि पूर्व-

वत्करोति। ततोऽनिवृत्तिकरणाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु दर्शनसप्तकशेषाणामेकविंशतेर्मोहनीयप्रकृतीनामन्तरकरणं करोति। तत्र यस्य वेदस्य संज्वलनस्य चोदयोऽस्ति तयोः स्वोदयकालप्रमाणां प्रथमस्थितिं करोति शेषाणां त्वेकादशकषायाणामष्टानां च नोकषायाणामावलिकामात्राम्। वेदत्रिकसंज्वलनचतुष्टयस्य तूदयकालप्रमाणमिदम्—स्त्रीवेदनपुंसकवेदयोरुदयकालः सर्वस्तोकः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः, ततः पुरुषवेदस्यासंख्येयगुणः, तस्मादपि संज्वलनक्रोधस्योदयकालो विशेषाधिकः, तस्मादपि मानस्य विशेषाधिकः एवं यथोत्तरं मायालोभयोरुदयकालो विशेषाधिको वाच्यः। अत एवान्तरकरणमुपरितनभागापेक्षया समम्, अधोभागापेक्षया तूक्तनीत्या विषमम्। अन्तरकरणविधानकालश्च स्थितिघाताभिनवकर्मबन्धकालसमानः। अन्तरकरणगतस्य चोत्कीर्यमाणस्य दलिकस्य प्रक्षेपविधिरयम्—यस्य कर्मणस्तदानुभवनं बन्धश्च भवति तस्यान्तरकरणसत्कप्रदेशाग्रं प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च प्रक्षिपति, यथा पुरुषवेदोदयारूढः पुरुषवेदस्य। यस्य पुनरनुभवनमस्ति, न तु बन्धः, तस्यान्तरकरणसत्कं दलिकं प्रथमस्थितौ प्रक्षिपति, यथा स्त्रीनपुंसकवेदोदयारूढः स्त्रीनपुंसकवेदयोः। यस्य पुनरुदयो नास्ति, बन्धः पुनरस्ति, तस्यान्तरकरणसत्कं दलिकं द्वितीयस्थितौ प्रक्षिपति, यथा संज्वलनक्रोधोदयारूढः शेषसंज्वलनानां। यस्य पुनरुदयो बन्धश्च नास्ति तस्यान्तरकरणसत्कं प्रदेशाग्रं परप्रकृतिषु प्रक्षिपति, यथा द्वितीयतृतीयकषायाणाम्। इहानिवृत्तिकरणे बहु वक्तव्यं तद्ग्रन्थगौरवभयान्नोच्यते। केवलं विशेषार्थिना कर्मप्रकृतिसंग्रहणिर्निरीक्षितव्या। अन्तरकरणं च कृत्वा ततो नपुंसकवेदमन्तर्मुहूर्तमात्रेणोपशमयति। उपशमनाविधिः प्राग्वत्। ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण स्त्रीवेदम्। ततोऽन्तर्मुहूर्तेन हास्यादिषट्कम्। तस्मिंश्चोपशान्ते तत्समयमेव पुरुषवेदस्य बन्धोदयव्यवच्छेदः। ततः समयोनावलिकाद्विकेन पुरुषवेदमुपशमयति, ततो युगपदन्तर्मुहूर्तमात्रेणाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणक्रोधौ। तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनक्रोधस्य बन्धोदयोदीरणाव्यवच्छेदः। ततः समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनक्रोधमुपशमयति। ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणौ मानौ युगपदुपशमयति। तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनमानस्य बन्धोदयोदीरणाव्यवच्छेदः। ततः समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनमानमुपशमयति। ततो युगपदन्तर्मुहूर्तमात्रेणाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणे माये उपशमयति। तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनमायाया बन्धोदयोदीरणाव्यवच्छेदः। ततोऽसौ लोभवेदको जातः। लोभवेदकाद्धायाश्च द्वयोस्त्रिभागयोर्वर्तमानो द्वितीयस्थितेः सकाशाद्दलिकमानीय प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च। तत्र प्रथमस्त्रिभागोऽश्वकर्णकरणाद्धा तत्र विशुद्धया वर्द्धमानोऽपूर्वस्पर्द्धकानि करोति। अपूर्वस्पर्द्धकशब्दार्थं चाग्रे वक्ष्यामः। संज्वलनमायायाश्च बन्धादौ व्यवच्छिन्ने सति ततः

समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनमायामुपशमयति। एवमश्वकर्णकरणाद्धायां गतायां ततो द्वितीये लोभवेदकाद्धायास्त्रिभागे वर्तमानो लोभस्य द्वितीयस्थितिगतस्य किट्टीः करोति। किट्टीकरणाद्धायाश्चरमसमये युगपदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणलोभावुपशमयति। तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनलोभबन्धव्यवच्छेदः बादरलोभोदयव्यवच्छेदश्च। ततोऽसौ सूक्ष्मसंपरायो भवति। तदा चोपरितनस्थितौ यत्किट्टीकृतं दलिकं तत्कतिपयं ततः समानीय प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च, सा च सूक्ष्मसंपरायाद्धान्तर्मुहूर्तप्रमाणा। तदानीं च सूक्ष्मकिट्टीकृतं दलिकं समयोनावलिकाद्विकबद्धं चोपशमयति सूक्ष्मसंपरायाद्धायाश्चरमसमये संज्वलनलोभ उपशान्तो भवति, तत्समयमेव च ज्ञानावरणपञ्चक ५ दर्शनावरणचतुष्का ९ ऽन्तरायपञ्चक १४ यशःकीर्त्यु १५ च्चैर्गोत्राणां १६ बन्धव्यवच्छेदः। ततोऽनन्तरसमयेऽसावुपशान्तकषायो भवति, स च जघन्येनैकसमयमात्रमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावल्लभ्यते। तत ऊर्ध्वं नियमादसौ प्रतिपतति। प्रतिपातश्च द्विधा, भवक्षयेण अद्धाक्षयेण च। तत्र भवक्षयो म्रियमाणस्य। अद्धाक्षय उपशान्ताद्धायां समाप्तायाम्। अद्धाक्षयेण च प्रतिपतन् यथैवारूढस्तथैव प्रतिपतति। यत्र यत्र बन्धोदयो व्यवच्छिन्नास्तत्र तत्र प्रतिपतता सता ते आरभ्यन्त इति यावत्। प्रतिपतंश्च तावत्प्रतिपतति यावत्प्रमत्तसंयतगुणस्थानकम्। कश्चित् पुनस्ततोऽप्यधस्तनं गुणस्थानकद्विकं याति। कोऽपि सासादनभावमपि। यः पुनर्भवक्षयेण प्रतिपतति स प्रथमसमय एव सर्वाण्यपि बन्धानादीनि करणानि प्रवर्तयतीत्येष विशेषः। उत्कर्षतश्चैकस्मिन् भवे द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते। यश्च द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते तस्य नियमात्तस्मिन् भवे क्षपकश्रेण्यभावः। यः पुनरेकं वारं प्रतिपद्यते। तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपि इत्येष कार्मग्रन्थिकाभिप्रायः। सिद्धान्ताभिप्रायेण त्वेकस्मिन् भवे एकामेव श्रेणिं प्रतिपद्यते। यत उक्तं कल्पाध्ययने—"**अन्नयरसेढिवज्जं एगभवेणं च सव्वाइं**"। '**सव्वाइं**' इति सर्वाणि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनि। अन्यत्राप्युक्तम्—**मोहोपशम एकस्मिन्, भवे द्विः स्यादसंततः। यस्मिन् भवे तूपशमः, क्षयो मोहस्य तत्र न॥१॥**" इति॥ '**क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानमिति**' क्षीणा अभावमापन्नाः कषाया यस्य स क्षीणकषायः, तत्रान्येष्वपि गुणस्थानकेषु वक्ष्यमाणयुक्त्या क्वापि कियतामपि कषायाणां क्षीणत्वसंभवात्क्षीणकषायव्यपदेशः संभवति, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम्। क्षीणकषायवीतरागत्वं च केवलिनोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं छद्मस्थग्रहणम्। यद्वा छद्मस्थः सरागोऽपि भवतीति तदपनोदार्थं वीतरागग्रहणम्। वीतरागश्चासौ छद्मस्थश्चेति वीतरागच्छद्मस्थः, स चोपशान्तकषायोऽपि भवतीति तन्निरासार्थं क्षीणकषायग्रहणम्। क्षीणकषायश्चासौ वीतरागच्छद्मस्थश्च तस्य गुणस्थानं क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम्। इदं च यथाऽवाप्यते तथा मूलत एव भाव्यते। इह यः क्षपकश्रेणिमारभते सोऽवश्यं मनुष्यो वर्षाष्टकाच्चोपरि वर्तमानः, स च प्रथममनन्तानुबन्धिनो विसंयोजयति। तद्विसंयोजना च प्रागेव भणिता। ततो दर्शनमोहक्षपणार्थं यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि करोति। तत्र यावदपूर्वकरणं तावत्पूर्ववदेव वक्तव्यम्। अनिवृत्तिकरणा-

द्धायां च वर्तमानो दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्म तावदुद्वलनासंक्रमेणोद्वलयति यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्रमवतिष्ठते। ततो मिथ्यात्वदलिकं सम्यक्त्वमिश्रयोः प्रक्षिपति, तच्चैवम्—प्रथमसमये स्तोकम्, द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम्। एवं यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमये आवलिकागतं मुक्त्वा शेषं द्विचरमसमयसंक्रमिताद्दलिकादसंख्येयगुणं संक्रमयति। आवलिकागतं तु स्तिबुकसंक्रमेण सम्यक्त्वे संक्रमयति। एवं मिथ्यात्वं क्षपितम्। ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण सम्यग्मिथ्यात्वमप्यनेनैव क्रमेण सम्यक्त्वे प्रक्षिपति। ततः सम्यग्मिथ्यात्वमपि क्षपितम्। ततः सम्यक्त्वमपवर्तयितुं तथा लग्नो यथाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण तदप्यन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिकं जातम्, तच्च क्रमेणानुभूयमानमनुभूयमानं सत्समयाधिकावलिकाशेषं जातम्। ततोऽनन्तरसमये तस्योदीरणाव्यवच्छेदः। ततो विपाकानुभवनेनैव केवलेन वेदयति यावच्चरमसमयः। ततोऽनन्तरसमयेऽसौ क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्जायते। उक्तो दर्शनत्रिकक्षपणाविधिः। इह यदि बद्धायुष्कः क्षपकश्रेणिमारभते, तत एतावत्येवावतिष्ठते। अथाबद्धायुष्कस्ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे गते सति पुनरपि चारित्रमोहनीयक्षपणार्थं यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणान्यारभते, तेषां च स्वरूपं पूर्ववदेव वक्तव्यम्। तत्रापूर्वकरणे स्थितिघातादिभिरप्रत्याख्यानावरणक्रोधादीन्यष्टौ कर्माणि तथा क्षपयति स्म यथाऽनिवृत्तिकरणाद्धाप्रथमसमये तानि पल्योपमासंख्येयभागमात्रस्थितिकानि जातानि। अनिवृत्तिकरणाद्धायाश्च संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु स्त्यानर्द्धित्रिक ३ नरकगति ४ तिर्यग्गति ५ एक ६ द्वि ७ त्रि ८ चतुरिन्द्रियजाति ९ नरकानुपूर्वी १० तिर्यगानुपूर्वी ११ स्थावरा १२ ऽऽतपो १३ द्युद्योत १४ सूक्ष्म १५ साधारणा १६ नां षोडशप्रकृतीनां प्रतिसमयमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानानां पल्योपमासंख्येयभागमात्रा स्थितिर्जाता। ततो बध्यमानासु प्रकृतिषु गुणसंक्रमेण प्रतिसमयं प्रक्षिप्यमाणानि तानि षोडश कर्माणि निःशेषतोऽपि क्षीणानि भवन्ति। इहाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकं पूर्वमेव क्षपयितुमारब्धं परं नाद्यापि क्षीणं केवलमपान्तराल एव पूर्वोक्तं प्रकृतिषोडशकं क्षपितम्। ततः पश्चात्तदपि कषायाष्टकमुद्वलनविधिनाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण क्षपयति, एष सूत्रादेशः। अन्ये पुनराहुः—षोडश कर्माण्येव पूर्वं क्षपयितुमारभते। केवलमपान्तरालेऽष्टौ कषायान् क्षपयति, पश्चात् षोडश कर्माणीति। ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण नवानां नोकषायाणां चतुर्णां च संज्वलनानामन्तरकरणं करोति, तच्च कृत्वा नपुंसकवेदमुद्वलनविधिना क्षपयितुमारभते। तत्रान्तरकरणस्योपरितनस्थितिदलिकमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानमुद्वल्यमानं पल्योपमासंख्येयभागमात्रं जातम्। ततः प्रभृति बध्यमानप्रकृतिषु गुणसंक्रमेण तद्दलिकं प्रक्षिपति। तच्चैवं प्रक्षिप्यमाणं प्रक्षिप्यमाणमन्तर्मुहूर्तमात्रेण निःशेषं क्षीणम्। अधस्तनस्थितिदलिकं च यदि नपुंसकवेदेन क्षपकश्रेणिमारूढस्ततोऽनुभवतः क्षपयति, अन्यथा त्वावलिकामात्रम्। तच्च वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति। तदेवं क्षपितो नपुंसकवेदः। ततोऽन्तर्मुहूर्तमा-

समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनमायामुपशमयति । एवमश्वकर्णकरणाद्धायां गतायां ततो द्वितीये लोभवेदकाद्धायास्त्रिभागे वर्तमानो लोभस्य द्वितीयस्थितिगतस्य किट्टीः करोति । किट्टीकरणाद्धायाश्चरमसमये युगपदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणलोभावुपशमयति । तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनलोभबन्धव्यवच्छेदः बादरलोभोदयव्यवच्छेदश्च । ततोऽसौ सूक्ष्मसंपरायो भवति। तदा चोपरितनस्थितौ यत्किट्टीकृतं दलिकं तत्कतिपयं ततः समानीय प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च, सा च सूक्ष्मसंपरायाद्धान्तर्मुहूर्तप्रमाणा । तदानीं च सूक्ष्मकिट्टीकृतं दलिकं समयोनावलिकाद्विकबद्धं चोपशमयति सूक्ष्मसंपरायाद्धायाश्चरमसमये संज्वलनलोभ उपशान्तो भवति, तत्सममेव च ज्ञानावरणपञ्चक ५ दर्शनावरणचतुष्का ९ ऽन्तरायपञ्चक १४ यशःकीर्त्यु १५ च्चैर्गोत्राणां १६ बन्धव्यवच्छेदः। ततोऽनन्तरसमयेऽसावुपशान्तकषायो भवति, स च जघन्येनैकसमयमात्रमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावल्लभ्यते । तत ऊर्ध्वं नियमादसौ प्रतिपतति । प्रतिपातश्च द्विधा, भवक्षयेण अद्धाक्षयेण च । तत्र भवक्षयो म्रियमाणस्य । अद्धाक्षय उपशान्ताद्धायां समाप्तायाम् । अद्धाक्षयेण च प्रतिपतन् यथैवारूढस्तथैव प्रतिपतति । यत्र यत्र बन्धोदयो व्यवच्छिन्नास्तत्र तत्र प्रतिपतता सता ते आरभ्यन्त इति यावत् । प्रतिपतंश्च तावत्प्रतिपतति यावत्प्रमत्तसंयतगुणस्थानकम् । कश्चित् पुनस्ततोऽप्यधस्तनं गुणस्थानकद्विकं याति । कोऽपि सासादनभावमपि । यः पुनर्भवक्षयेण प्रतिपतति स प्रथमसमय एव सर्वाण्यपि बन्धानादीनि करणानि प्रवर्तयतीत्येष विशेषः । उत्कर्षतश्चैकस्मिन् भवे द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते । यश्च द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते तस्य नियमात्तस्मिन् भवे क्षपकश्रेण्यभावः। यः पुनरेकं वारं प्रतिपद्यते । तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपि इत्येष कार्मग्रन्थिकाभिप्रायः । सिद्धान्ताभिप्रायेण त्वेकस्मिन् भवे एकामेव श्रेणिं प्रतिपद्यते । यत उक्तं कल्पाध्ययने—"**अन्नयरसेढिवज्जं एगभवेणं च सव्वाइं**" । '**सव्वाइं**' इति सर्वाणि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनि । अन्यत्राप्युक्तम्—**मोहोपशम एकस्मिन् , भवे द्विः स्यादसंततः । यस्मिन् भवे तूपशमः, क्षयो मोहस्य तत्र न ॥१॥**" इति ॥ '**क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानमिति**' क्षीणा अभावमापन्नाः कषाया यस्य स क्षीणकषायः, तत्रान्येष्वपि गुणस्थानकेषु वक्ष्यमाणयुक्त्या क्वापि कियतामपि कषायाणां क्षीणत्वसंभवात्क्षीणकषायव्यपदेशः संभवति, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम् । क्षीणकषायवीतरागत्वं च केवलिनोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं छद्मस्थग्रहणम् । यद्वा छद्मस्थः सरागोऽपि भवतीति तदपनोदार्थं वीतरागग्रहणम् । वीतरागश्चासौ छद्मस्थश्चेति वीतरागच्छद्मस्थः, स चोपशान्तकषायोऽपि भवतीति तन्निरासार्थं क्षीणकषायग्रहणम् । क्षीणकषायश्चासौ वीतरागच्छद्मस्थश्च तस्य गुणस्थानं क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् । इदं च यथाऽवाप्यते तथा मूलत एव भाव्यते । इह यः क्षपकश्रेणिमारभते सोऽवश्यं मनुष्यो वर्षाष्टकाद्योपरि वर्तमानः, स च प्रथममनन्तानुबन्धिनो विसंयोजयति । तद्विसंयोजना च प्रागेव भणिता । ततो दर्शनमोहक्षपणार्थं यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि करोति । तत्र यावदपूर्वकरणं तावत्पूर्ववदेव वक्तव्यम् । अनिवृत्तिकरणा-

द्धायां च वर्तमानो दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्म तावदुद्वलनासंक्रमेणोद्वलयति यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्रमवतिष्ठते। ततो मिथ्यात्वदलिकं सम्यक्त्वमिश्रयोः प्रक्षिपति, तच्चैवम्–प्रथमसमये स्तोकम्, द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम्। एवं यावदन्तमुहूर्तचरमसमये आवलिकागतं मुक्त्वा शेषं द्विचरमसमयसंक्रमिताद्दलिकादसंख्येयगुणं संक्रमयति। आवलिकागतं तु स्तिबुकसंक्रमेण सम्यक्त्वे संक्रमयति। एवं मिथ्यात्वं क्षपितम्। ततोऽन्तमुहूर्तमात्रेण सम्यग्मिथ्यात्वमप्यनेनैव क्रमेण सम्यक्त्वे प्रक्षिपति। ततः सम्यग्मिथ्यात्वमपि क्षपितम्। ततः सम्यक्त्वमपवर्तयितुं तथा लग्नो यथाऽन्तमुहूर्तमात्रेण तदप्यन्तमुहूर्तमात्रस्थितिकं जातम्, तच्च क्रमेणानुभूयमानमनुभूयमानं सत्समयाधिकावलिकाशेषं जातम्। ततोऽनन्तरसमये तस्योदीरणाव्यवच्छेदः। ततो विपाकानुभवनेनैव केवलेन वेदयति यावच्चरमसमयः। ततोऽनन्तरसमयेऽसौ क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्जायते। उक्तो दर्शनत्रिकक्षपणाविधिः। इह यदि बद्धायुष्कः क्षपकश्रेणिमारभते, तत एतावत्येवावतिष्ठते। अथाबद्धायुष्कस्ततोऽन्तमुहूर्तमात्रे गते सति पुनरपि चारित्रमोहनीयक्षपणार्थं यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणान्यारभते, तेषां च स्वरूपं पूर्ववदेव वक्तव्यम्। तत्रापूर्वकरणे स्थितिघातादिभिरप्रत्याख्यानावरणक्रोधादीन्यष्टौ कर्माणि तथा क्षपयति स्म यथाऽनिवृत्तिकरणाद्धाप्रथमसमये तानि पल्योपमासंख्येयभागमात्रस्थितिकानि जातानि। अनिवृत्तिकरणाद्धायाश्च संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु स्त्यानर्द्धित्रिक ३ नरकगति ४ तिर्यग्गति ५ एक ६ द्वि ७ त्रि ८ चतुरिन्द्रियजाति ९ नरकानुपूर्वी १० तिर्यगानुपूर्वी ११ स्थावरा १२ ऽऽतपो १३ द्द्योत १४ सूक्ष्म १५ साधारणा १६ नां षोडशप्रकृतीनां प्रतिसमयमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानानां पल्योपमासंख्येयभागमात्रा स्थितिर्जाता। ततो बध्यमानासु प्रकृतिषु गुणसंक्रमेण प्रतिसमयं प्रक्षिप्यमाणानि तानि षोडश कर्माणि निःशेषतोऽपि क्षीणानि भवन्ति। इहाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकं पूर्वमेव क्षपयितुमारब्धं परं नाद्यापि क्षीणं केवलमपान्तराल एव पूर्वोक्तं प्रकृतिषोडशकं क्षपितम्। ततः पश्चात्तदपि कषायाष्टकमुद्वलनविधिनाऽन्तमुहूर्तमात्रेण क्षपयति, एष सूत्रादेशः। अन्ये पुनराहुः–षोडश कर्माण्येव पूर्वं क्षपयितुमारभते। केवलमपान्तरालेऽष्टौ कषायान् क्षपयति, पश्चात् षोडश कर्माणीति। ततोऽन्तमुहूर्तमात्रेण नवानां नोकषायाणां चतुर्णां च संज्वलनानामन्तरकरणं करोति, तच्च कृत्वा नपुंसकवेदमुद्वलनविधिना क्षपयितुमारभते। तत्रान्तरकरणस्योपरितनस्थितिदलिकमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानमुद्वल्यमानं पल्योपमासंख्येयभागमात्रं जातम्। ततः प्रभृति बध्यमानप्रकृतिषु गुणसंक्रमेण तद्दलिकं प्रक्षिपति। तच्चैवं प्रक्षिप्यमाणं प्रक्षिप्यमाणमन्तमुहूर्तमात्रेण निःशेषं क्षीणम्। अधस्तनस्थितिदलिकं च यदि नपुंसकवेदेन क्षपकश्रेणिमारूढस्ततोऽनुभवतः क्षपयति, अन्यथा त्वावलिकामात्रम्। तच्च वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति। तदेवं क्षपितो नपुंसकवेदः। ततोऽन्तमुहूर्तमा-

समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनमायामुपशमयति । एवमश्वकर्णकरणाद्धायां गतायां ततो द्वितीये लोभवेदकाद्धायास्त्रिभागे वर्तमानो लोभस्य द्वितीयस्थितिगतस्य किट्टीः करोति । किट्टीकरणाद्धायाश्चरमसमये युगपदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणलोभावुपशमयति । तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनलोभबन्धव्यवच्छेदः बादरलोभोदयव्यवच्छेदश्च । ततोऽसौ सूक्ष्मसंपरायो भवति। तदा चोपरितनस्थितौ यत्किट्टीकृतं दलिकं तत्कतिपयं ततः समानीय प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च, सा च सूक्ष्मसंपरायाद्धान्तर्मुहूर्तप्रमाणा । तदानीं च सूक्ष्मकिट्टीकृतं दलिकं समयोनावलिकाद्विकबद्धं चोपशमयति सूक्ष्मसंपरायाद्धायाश्चरमसमये संज्वलनलोभ उपशान्तो भवति, तत्समयमेव च ज्ञानावरणपञ्चक ५ दर्शनावरणचतुष्का ९ ऽन्तरायपञ्चक १४ यशःकीर्त्यु १५ च्चैर्गोत्राणां १६ बन्धव्यवच्छेदः। ततोऽनन्तरसमयेऽसावुपशान्तकषायो भवति, स च जघन्येनैकसमयमात्रमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावल्लभ्यते । तत ऊर्ध्वं नियमादसौ प्रतिपतति । प्रतिपातश्च द्विधा, भवक्षयेण अद्धाक्षयेण च । तत्र भवक्षयो म्रियमाणस्य । अद्धाक्षय उपशान्ताद्धायां समाप्तायाम् । अद्धाक्षयेण च प्रतिपतन् यथैवारूढस्तथैव प्रतिपतति । यत्र यत्र बन्धोदयो व्यवच्छिन्नास्तत्र तत्र प्रतिपतता सता ते आरभ्यन्त इति यावत् । प्रतिपतंश्च तावत्प्रतिपतति यावत्प्रमत्तसंयतगुणस्थानकम् । कश्चित् पुनस्ततोऽप्यधस्तनं गुणस्थानकद्विकं याति । कोऽपि सासादनभावमपि । यः पुनर्भवक्षयेण प्रतिपतति स प्रथमसमय एव सर्वाण्यपि बन्धानादीनि करणानि प्रवर्तयतीत्येष विशेषः । उत्कर्षतश्चैकस्मिन् भवे द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते । यश्च द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते तस्य नियमात्तस्मिन् भवे क्षपकश्रेण्यभावः। यः पुनरेकं वारं प्रतिपद्यते । तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपि इत्येष कार्मग्रन्थिकाभिप्रायः । सिद्धान्ताभिप्रायेण त्वेकस्मिन् भवे एकामेव श्रेणिं प्रतिपद्यते । यत उक्तं कल्पाध्ययने—"**अन्नयरसेढिवज्जं एगभवेणं च सव्वाइं**" । '**सव्वाइं**' इति सर्वाणि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनि । अन्यत्राप्युक्तम्—**मोहोपशम एकस्मिन् , भवे द्विः स्यादसंततः । यस्मिन् भवे तूपशमः, क्षयो मोहस्य तत्र न ॥१॥**" इति ॥ '**क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानमिति**' क्षीणा अभावमापन्नाः कषाया यस्य स क्षीणकषायः, तत्रान्येष्वपि गुणस्थानकेषु वक्ष्यमाणयुक्त्या क्वापि कियतामपि कषायाणां क्षीणत्वसंभवात्क्षीणकषायव्यपदेशः संभवति, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम्। क्षीणकषायवीतरागत्वं च केवलिनोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं छद्मस्थग्रहणम् । यद्वा छद्मस्थः सरागोऽपि भवतीति तदपनोदार्थं वीतरागग्रहणम् । वीतरागश्चासौ छद्मस्थश्चेति वीतरागच्छद्मस्थः, स चोपशान्तकषायोऽपि भवतीति तन्निरासार्थं क्षीणकषायग्रहणम् । क्षीणकषायश्चासौ वीतरागच्छद्मस्थश्च तस्य गुणस्थानं क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् । इदं च यथाऽवाप्यते तथा मूलत एव भाव्यते । इह यः क्षपकश्रेणिमारभते सोऽवश्यं मनुष्यो वर्षाष्टकाच्चोपरि वर्तमानः, स च प्रथममनन्तानुबन्धिनो विसंयोजयति । तद्विसंयोजना च प्रागेव भणिता । ततो दर्शनमोहक्षपणार्थं यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि करोति । तत्र यावदपूर्वकरणं तावत्पूर्ववदेव वक्तव्यम् । अनिवृत्तिकरणा-

द्धायां च वर्तमानो दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्म तावदुद्वलनासंक्रमेणोद्वलयति यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्रमवतिष्ठते । ततो मिथ्यात्वदलिकं सम्यक्त्वमिश्रयोः प्रक्षिपति, तच्चैवम्–प्रथमसमये स्तोकम्, द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम् । एवं यावदन्तमुहूर्तचरमसमये आवलिकागतं मुक्त्वा शेषं द्विचरमसमयसंक्रमितादलिकादसंख्येयगुणं संक्रमयति । आवलिकागतं तु स्तिबुकसंक्रमेण सम्यक्त्वे संक्रमयति । एवं मिथ्यात्वं क्षपितम् । ततोऽन्तमुहूर्तमात्रेण सम्यग्मिथ्यात्वमप्यनेनैव क्रमेण सम्यक्त्वे प्रक्षिपति । ततः सम्यग्मिथ्यात्वमपि क्षपितम् । ततः सम्यक्त्वमपवर्तयितुं तथा लग्नो यथाऽन्तमुहूर्तमात्रेण तदप्यन्तमुहूर्तमात्रस्थितिकं जातम्, तच्च क्रमेणानुभूयमानमनुभूयमानं सत्समयाधिकावलिकाशेषं जातम्। ततोऽनन्तरसमये तस्योदीरणाव्यवच्छेदः । ततो विपाकानुभवनेनैव केवलेन वेदयति यावच्चरमसमयः। ततोऽनन्तरसमयेऽसौ क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्जायते । उक्तो दर्शनत्रिकक्षपणाविधिः । इह यदि बद्धायुष्कः क्षपकश्रेणिमारभते, तत एतावत्येवावतिष्ठते । अथाबद्धायुष्कस्ततोऽन्तमुहूर्तमात्रे गते सति पुनरपि चारित्रमोहनीयक्षपणार्थं यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणान्यारभते, तेषां च स्वरूपं पूर्ववदेव वक्तव्यम् । तत्रापूर्वकरणे स्थितिघातादिभिरप्रत्याख्यानावरणक्रोधादीन्यष्टौ कर्माणि तथा क्षपयति स्म यथाऽनिवृत्तिकरणाद्धाप्रथमसमये तानि पल्योपमासंख्येयभागमात्रस्थितिकानि जातानि । अनिवृत्तिकरणाद्धायाश्च संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु स्त्यानर्द्धित्रिक ३ नरकगति ४ तिर्यग्गति ५ एक ६ द्वि ७ त्रि ८ चतुरिन्द्रियजाति ९ नरकानुपूर्वी १० तिर्यगानुपूर्वी ११ स्थावरा १२ ऽऽतपो १३ द्द्योत १४ सूक्ष्म १५ साधारणा १६ नां षोडशप्रकृतीनां प्रतिसमयमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानानां पल्योपमासंख्येयभागमात्रा स्थितिर्जाता । ततो बध्यमानासु प्रकृतिषु गुणसंक्रमेण प्रतिसमयं प्रक्षिप्यमाणानि तानि षोडश कर्माणि निःशेषतोऽपि क्षीणानि भवन्ति । इहाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकं पूर्वमेव क्षपयितुमारब्धं परं नाद्यापि क्षीणं केवलमपान्तराल एव पूर्वोक्तं प्रकृतिषोडशकं क्षपितम् । ततः पश्चात्तदपि कषायाष्टकमुद्वलनविधिनाऽन्तमुहूर्तमात्रेण क्षपयति, एष सूत्रादेशः । अन्ये पुनराहुः–षोडश कर्माण्येव पूर्वं क्षपयितुमारभते । केवलमपान्तरालेऽष्टौ कषायान् क्षपयति, पश्चात् षोडश कर्माणीति । ततोऽन्तमुहूर्तमात्रेण नवानां नोकषायाणां चतुर्णां च संज्वलनानामन्तरकरणं करोति, तच्च कृत्वा नपुंसकवेदमुद्वलनविधिना क्षपयितुमारभते । तत्रान्तरकरणस्योपरितनस्थितिदलिकमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानमुद्वल्यमानं पल्योपमासंख्येयभागमात्रं जातम् । ततः प्रभृति बध्यमानप्रकृतिषु गुणसंक्रमेण तद्दलिकं प्रक्षिपति । तच्चैवं प्रक्षिप्यमाणं प्रक्षिप्यमाणमन्तमुहूर्तमात्रेण निःशेषं क्षीणम् । अधस्तनस्थितिदलिकं च यदि नपुंसकवेदेन क्षपकश्रेणिमारूढस्ततोऽनुभवतः क्षपयति, अन्यथा त्वावलिकामात्रम् । तच्च वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति । तदेवं क्षपितो नपुंसकवेदः । ततोऽन्तमुहूर्तमा-

समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनमायामुपशमयति। एवमश्वकर्णकरणाद्धायां गतायां ततो द्वितीये लोभवेदकाद्धायास्त्रिभागे वर्तमानो लोभस्य द्वितीयस्थितिगतस्य किट्टीः करोति। किट्टीकरणाद्धायाश्चरमसमये युगपदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणलोभावुपशमयति। तदुपशान्तौ च तत्समयमेव संज्वलनलोभबन्धव्यवच्छेदः बादरलोभोदयव्यवच्छेदश्च। ततोऽसौ सूक्ष्मसंपरायो भवति। तदा चोपरितनस्थितौ यत्किट्टीकृतं दलिकं तत्कतिपयं ततः समानीय प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च, सा च सूक्ष्मसंपरायाद्धान्तर्मुहूर्तप्रमाणा। तदानीं च सूक्ष्मकिट्टीकृतं दलिकं समयोनावलिकाद्विकबद्धं चोपशमयति सूक्ष्मसंपरायाद्धायाश्चरमसमये संज्वलनलोभ उपशान्तो भवति, तत्समयमेव च ज्ञानावरणपञ्चक ५ दर्शनावरणचतुष्का ९ ऽन्तरायपञ्चक १४ यशःकीर्त्यु १५ च्चैर्गोत्राणां १६ बन्धव्यवच्छेदः। ततोऽनन्तरसमयेऽसावुपशान्तकषायो भवति, स च जघन्येनैकसमयमात्रमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावल्लभ्यते। तत ऊर्ध्वं नियमादसौ प्रतिपतति। प्रतिपातश्च द्विधा, भवक्षयेण अद्धाक्षयेण च। तत्र भवक्षयो म्रियमाणस्य। अद्धाक्षय उपशान्ताद्धायां समाप्तायाम्। अद्धाक्षयेण च प्रतिपतन् यथैवारूढस्तथैव प्रतिपतति। यत्र यत्र बन्धोदयो व्यवच्छिन्नास्तत्र तत्र प्रतिपतता सता ते आरभ्यन्त इति यावत्। प्रतिपतंश्च तावत्प्रतिपतति यावत्प्रमत्तसंयतगुणस्थानकम्। कश्चित् पुनस्ततोऽप्यधस्तनं गुणस्थानकद्विकं याति। कोऽपि सासादनभावमपि। यः पुनर्भवक्षयेण प्रतिपतति स प्रथमसमय एव सर्वाण्यपि बन्धानादीनि करणानि प्रवर्तयतीत्येष विशेषः। उत्कर्षतश्चैकस्मिन् भवे द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते। यश्च द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते तस्य नियमात्तस्मिन् भवे क्षपकश्रेण्यभावः। यः पुनरेकं वारं प्रतिपद्यते। तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपि इत्येष कार्मग्रन्थिकाभिप्रायः। सिद्धान्ताभिप्रायेण त्वेकस्मिन् भवे एकामेव श्रेणिं प्रतिपद्यते। यत उक्तं कल्पाध्ययने—"**अन्नयरसेढिवज्जं एगभवेणं च सव्वाइं**"। '**सव्वाइं**' इति सर्वाणि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनि। अन्यत्राप्युक्तम्—**मोहोपशम एकस्मिन्, भवे द्विः स्यादसंततः। यस्मिन् भवे तूपशमः, क्षयो मोहस्य तत्र न॥१॥**" इति॥ '**क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानमिति**' क्षीणा अभावमापन्नाः कषाया यस्य स क्षीणकषायः, तत्रान्येष्वपि गुणस्थानकेषु वक्ष्यमाणयुक्त्या क्वापि कियतामपि कषायाणां क्षीणत्वसंभवात्क्षीणकषायव्यपदेशः संभवति, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम्। क्षीणकषायवीतरागत्वं च केवलिनोऽप्यस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं छद्मस्थग्रहणम्। यद्वा छद्मस्थः सरागोऽपि भवतीति तदपनोदार्थं वीतरागग्रहणम्। वीतरागश्चासौ छद्मस्थश्चेति वीतरागच्छद्मस्थः, स चोपशान्तकषायोऽपि भवतीति तन्निरासार्थं क्षीणकषायग्रहणम्। क्षीणकषायश्चासौ वीतरागच्छद्मस्थश्च तस्य गुणस्थानं क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम्। इदं च यथाऽवाप्यते तथा मूलत एव भाव्यते। इह यः क्षपकश्रेणिमारभते सोऽवश्यं मनुष्यो वर्षाष्टकाद्योपरि वर्तमानः, स च प्रथममनन्तानुबन्धिनो विसंयोजयति। तद्विसंयोजना च प्रागेव भणिता। ततो दर्शनमोहक्षपणार्थं यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि करोति। तत्र यावदपूर्वकरणं तावत्पूर्ववदेव वक्तव्यम्। अनिवृत्तिकरणा-

द्धायां च वर्तमानो दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्म तावदुद्वलनासंक्रमेणोद्वलयति यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्रमवतिष्ठते। ततो मिथ्यात्वदलिकं सम्यक्त्वमिश्रयोः प्रक्षिपति, तच्चैवम्–प्रथमसमये स्तोकम्, द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणम्। एवं यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमये आवलिकागतं मुक्त्वा शेषं द्विचरमसमयसंक्रमिताद्दलिकादसंख्येयगुणं संक्रमयति। आवलिकागतं तु स्तिबुकसंक्रमेण सम्यक्त्वे संक्रमयति। एवं मिथ्यात्वं क्षपितम्। ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण सम्यग्मिथ्यात्वमप्यनेनैव क्रमेण सम्यक्त्वे प्रक्षिपति। ततः सम्यग्मिथ्यात्वमपि क्षपितम्। ततः सम्यक्त्वमपवर्तयितुं तथा लग्नो यथाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण तदप्यन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिकं जातम्, तच्च क्रमेणानुभूयमानमनुभूयमानं सत्समयाधिकावलिकाशेषं जातम्। ततोऽनन्तरसमये तस्योदीरणाव्यवच्छेदः। ततो विपाकानुभवनेनैव केवलेन वेदयति यावच्चरमसमयः। ततोऽनन्तरसमयेऽसौ क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्जायते। उक्तो दर्शनत्रिकक्षपणाविधिः। इह यदि बद्धायुष्कः क्षपकश्रेणिमारभते, तत एतावत्येवावतिष्ठते। अथाबद्धायुष्कस्ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे गते सति पुनरपि चारित्रमोहनीयक्षपणार्थं यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणान्यारभते, तेषां च स्वरूपं पूर्ववदेव वक्तव्यम्। तत्रापूर्वकरणे स्थितिघातादिभिरप्रत्याख्यानावरणक्रोधादीन्यष्टौ कर्माणि तथा क्षपयति स्म यथाऽनिवृत्तिकरणाद्धाप्रथमसमये तानि पल्योपमासंख्येयभागमात्रस्थितिकानि जातानि। अनिवृत्तिकरणाद्धायाश्च संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु स्त्यानर्द्धित्रिक ३ नरकगति ४ तिर्यग्गति ५ एक ६ द्वि ७ त्रि ८ चतुरिन्द्रियजाति ९ नरकानुपूर्वी १० तिर्यगानुपूर्वी ११ स्थावरा १२ ऽऽतपो १३ द्द्योत १४ सूक्ष्म १५ साधारणा १६ नां षोडशप्रकृतीनां प्रतिसमयमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानानां पल्योपमासंख्येयभागमात्रा स्थितिर्जाता। ततो बध्यमानासु प्रकृतिषु गुणसंक्रमेण प्रतिसमयं प्रक्षिप्यमाणानि तानि षोडश कर्माणि निःशेषतोऽपि क्षीणानि भवन्ति। इहाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकं पूर्वमेव क्षपयितुमारब्धं परं नाद्यापि क्षीणं केवलमपान्तराल एव पूर्वोक्तं प्रकृतिषोडशकं क्षपितम्। ततः पश्चात्तदपि कषायाष्टकमुद्वलनविधिनाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण क्षपयति, एष सूत्रादेशः। अन्ये पुनराहुः–षोडश कर्माण्येव पूर्वं क्षपयितुमारभते। केवलमपान्तरालेऽष्टौ कषायान् क्षपयति, पश्चात् षोडश कर्माणीति। ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण नवानां नोकषायाणां चतुर्णां च संज्वलनानामन्तरकरणं करोति, तच्च कृत्वा नपुंसकवेदमुद्वलनविधिना क्षपयितुमारभते। तत्रान्तरकरणस्योपरितनस्थितिदलिकमुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्यमानमुद्वल्यमानं पल्योपमासंख्येयभागमात्रं जातम्। ततः प्रभृति बध्यमानप्रकृतिषु गुणसंक्रमेण तद्दलिकं प्रक्षिपति। तच्चैवं प्रक्षिप्यमाणं प्रक्षिप्यमाणमन्तर्मुहूर्तमात्रेण निःशेषं क्षीणम्। अधस्तनस्थितिदलिकं च यदि नपुंसकवेदेन क्षपकश्रेणिमारूढस्ततोऽनुभवतः क्षपयति, अन्यथा त्वावलिकामात्रम्। तच्च वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति। तदेवं क्षपितो नपुंसकवेदः। ततोऽन्तर्मुहूर्तमा-

त्रेण स्त्रीवेदोऽप्यनेनैव क्रमेण क्षिप्यते । ततः षड् नोकषायान् युगपत्क्षपयितुमारभते । ततः प्रभृति च तेषामुपरितनस्थितिदलिकं न पुरुषवेदे संक्रमयति किन्तु संज्वलनक्रोध एव, एतेऽपि च पूर्वोक्तविधिना क्षिप्यमाणा अन्तर्मुहूर्तमात्रेण निःशेषाः क्षीणाः । तत्समयमेव च पुरुषवेदस्य बन्धोदयोदीरणाव्यवच्छेदः समयोनावलिकाद्विकबद्धं मुक्त्वा शेषदलिकस्य क्षयश्च । ततोऽसाविदानीमवेदको जातः । क्रोधं च वेदयतः सतस्तस्य क्रोधाद्धायास्त्रयो विभागा भवन्ति । तद्यथा–अश्वकर्णकरणाद्धा १, किट्टिकरणाद्धा २, किट्टिवेदनाद्धा ३ च । तत्राश्वकर्णकरणाद्धायां वर्तमानः प्रतिसमयमनन्तान्यपूर्वस्पर्द्धकानि चतुर्णामपि संज्वलनानामन्तरकरणादुपरितनस्थितौ करोति । अथ किमिदं स्पर्द्धकम् ? इति, उच्यते, इह तावदनन्तानन्तैः परमाणुभिर्निष्पन्नान् स्कन्धान् जीवः कर्मतया गृह्णाति । तत्र चैकैकस्मिन् स्कन्धे यः सर्वजघन्यरसः परमाणुः तस्यापि रसः केवलिप्रज्ञया छिद्यमानः सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणान् रसभागान् प्रयच्छति । अपरस्तु तानप्येकाधिकान् । अन्यस्तु द्वयधिकान् । एवमेकोत्तरया वृद्ध्या तावन्नेयं यावदन्यः परमाणुः सिद्धानन्तभागाधिकान् रसविभागान् प्रयच्छति । तत्र जघन्यरसा ये केचन परमाणवस्तेषां समुदायः समानजातीयत्वादेका वर्गणा इत्युच्यते । अन्येषां त्वेकाधिकरसभागयुक्तानां समुदायो द्वितीया वर्गणाः अपरेषां तु द्वयधिकरसभागयुक्तानां समुदायस्तृतीया । एवमनया दिशैकैकरसभागवृद्धानामणूनां समुदायरूपा वर्गणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा अभव्येभ्योऽनन्तगुणा वाच्याः । एतासां च समुदायः स्पर्द्धकमित्युच्यते । स्पर्द्धन्त इवोत्तरोत्तरवृद्ध्या परमाणुवर्गणा अत्रेति कृत्वा । इत ऊर्द्ध्वमेकोत्तरया निरन्तरवृद्ध्या प्रवर्द्धमानो रसो न लभ्यते, किन्तु सर्वजीवानन्तगुणैरेव रसभागैः । ततस्तेनैव क्रमेण ततः प्रभृति द्वितीयं स्पर्द्धकमारभ्यते । एवमेव च तृतीयम् । एवं तावद्वाच्यं यावदनन्तानि स्पर्द्धकानि । एतेभ्य एव च इदानीं प्रथमादिवर्गणा गृहीत्वा विशुद्धिप्रकर्षवशादनन्तगुणहीनरसाः कृत्वा पूर्ववत्स्पर्द्धकानि करोति । न चैवंभूतानि कदाचनापि पूर्वं कृतानि ततोऽपूर्वाणीत्युच्यन्ते । अस्यांचाश्वकर्णकरणाद्धायां वर्तमानः पुरुषवेदं समयोनावलिकाद्विकेन क्रोधे गुणसंक्रमेण संक्रमयन् चरमसमये सर्वसंक्रमेण संक्रमयति, तदेवं क्षीणः पुरुषवेदः । किट्टिकरणाद्धायां पुनर्वर्तमानश्चतुर्णामपि संज्वलनानामुपरितनस्थितिगतदलिकस्य किट्टीः करोति । अथ किमिदं किट्टिः ? इति, उच्यते, पूर्वस्पर्द्धकेभ्योऽपूर्वस्पर्द्धकेभ्यश्च प्रथमादिवर्गणा गृहीत्वा विशुद्धिप्रकर्षवशादत्यन्तहीनरसाः कृत्वा तासामेकैकोत्तरवृद्धित्यागेन बृहदन्तरालतया व्यवस्थापनम् । यथा यासामेव वर्गणानामसत्कल्पनयाऽनुभागभागानां शतमेकोत्तरादि चासीत्, तासामेव विशुद्धिवशादनुभागभागानां दशकस्य पञ्चदशकादेश्च व्यवस्थापनमिति । एताश्च किट्टयः परमार्थतोऽनन्ता अपि स्थूलजातिभेदापेक्षया द्वादश कल्प्यन्ते एकैकस्य कषायस्य तिस्रस्तिस्रः । तद्यथा–प्रथमा द्वितीया तृतीया च । एवं क्रोधेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य द्रष्टव्यम् ।

यदा तु मानेन प्रतिपद्यते तदोद्वलनविधिना पूर्वोक्तेन क्रोधे क्षपिते सति शेषाणां त्रयाणां पूर्वक्रमेण नवकिट्टीः करोति । मायया चेत्प्रतिपन्नस्तर्हि क्रोधमानयोरुद्वलनविधिना क्षपितयोः सतोः शेषद्विकस्य पूर्वक्रमेण षट् किट्टीः करोति । यदि पुनर्लोभेन प्रतिपद्यते तत उद्वलनविधिना क्रोधादित्रिके क्षपिते सति लोभस्य किट्टित्रिकं करोति । एष किट्टीकरणविधिः । किट्टीकरणाद्धायां निष्ठितायां क्रोधेन प्रतिपन्नः सन् क्रोधस्य प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावत्समयाधिकावलिकामात्रमवशिष्यते । ततोऽन्तरसमये द्वितीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावत्समयाधिकावलिकामात्रमवशिष्यते । ततस्तृतीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावदिहापि समयाधिकावलिकामात्रं शेषः, तिसृष्वपि चामूषु किट्टिवेदनाद्धासूपरितनस्थितिगतं दलिकं गुणसंक्रमेणापि प्रतिसमयमसंख्येयगुणवृद्धिलक्षणेन संज्वलनमाने प्रक्षिपति । तृतीयकिट्टिवेदनाद्धायाश्चरमसमये संज्वलनक्रोधस्य बन्धोदयोदीरणानां युगपद्व्यवच्छेदः । सत्कर्मापि च तस्य समयोनावलिकाद्विकबद्धं मुक्त्वाऽन्यन्नास्ति, सर्वस्य माने प्रक्षिप्तत्वात् । ततोऽनन्तरसमये मानस्य प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावदन्तर्मुहूर्तम् । क्रोधस्यापि च बन्धादौ व्यवच्छिन्ने सति तस्य संबन्धि दलिकं समयोनावलिकाद्विकमात्रेण कालेन माने गुणसंक्रमेण संक्रमयति । मानस्यापि च प्रथमकिट्टिदलिकं प्रथमस्थितीकृतं समयाधिकावलिकाशेषं जातम् । ततोऽनन्तरसमये मानस्य द्वितीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । ततस्तृतीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । तस्मिन्नेव च समये मानस्य बन्धोदयोदीरणानां युगपद्व्यवच्छेदः । सत्कर्मापि च तस्य समयोनावलिकाद्विकबद्धमेव,शेषस्य क्रोधशेषस्येव माने मायायां प्रक्षिप्तत्वात् । ततो मायायाः प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावदन्तर्मुहूर्तमात्रम् । संज्वलनमानस्य च बन्धादौ व्यवच्छिन्ने तस्य संबन्धि दलिकं समयोनावलिकाद्विकमात्रेण कालेन गुणसंक्रमेण मायायां प्रक्षिपन् चरमसमये सर्वसंक्रमेण संक्रमयति । ततो मायायां च प्रथमकिट्टिदलिकं प्रथमस्थितीकृतं समयाधिकावलिकाशेषं जातम् । ततोऽनन्तरसमये मायाया द्वितीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावत् यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । ततोऽनन्तरसमये तृतीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । तस्मिन्नेव च समये मायाया बन्धोदयोदीरणानां युगपद्व्यवच्छेदः । सत्कर्मापि च तस्याः समयोनावलिकाद्विकबद्धमात्रमेव, शेषस्य गुणसंक्रमेण लोभे प्रक्षिप्तत्वात् । ततोऽनन्तरसमये लोभस्य

प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तावद् यावदन्तर्मुहूर्तमात्रं संज्वलनमायायाश्च बन्धादौ व्यवच्छिन्ने सति तस्याः संबन्धि दलिकं समयोनावलिकाद्विकमात्रेण कालेन गुणसंक्रमेण लोभे प्रक्षिपन् चरमसमये सर्वसंक्रमेण संक्रमयति । संज्वलनलोभस्य च तदानीं प्रथमकिट्टिदलिकं प्रथमस्थितीकृतं समयाधिकावलिकामात्रशेषं जातम् । ततोऽनन्तरसमये लोभस्य द्वितीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति, तां च वेदयन् तृतीयकिट्टिदलिकं गृहीत्वा सूक्ष्मकिट्टीः करोति तावद् यावद्द्वितीयकिट्टिदलिकस्य प्रथमस्थितीकृतस्य समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । तस्मिन्नेव च समये संज्वलनलोभस्य बन्धव्यवच्छेदः, बादरकषायोदयोदीरणाव्यवच्छेदः अनिवृत्तिगुणस्थानककालव्यवच्छेदश्च युगपज्जायते । ततोऽनन्तरसमये सूक्ष्मकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च तदानीमसौ सूक्ष्मसंपराय उच्यते । पूर्वोक्ताश्चावलिकाः द्वितीयतृतीयकिट्टिगताः शेषीभूताः सर्वा अपि वेद्यमानासु परप्रकृतिषु स्तिवुकसंक्रमेण संक्रमयति । प्रथमद्वितीयकिट्टिगताश्च यथास्वं द्वितीयतृतीयकिट्टयन्तर्गता एव वेद्यन्ते । सूक्ष्मसंपरायश्च लोभस्य सूक्ष्मकिट्टीर्वेदयन् सूक्ष्मकिट्टिदलिकं समयोनावलिकाद्विकबद्धं च प्रतिसमयं स्थितिघातादिभिस्तावत्क्षपयति यावत्सूक्ष्मसंपरायाद्धायाः संख्येयभागा गता भवन्ति, एकोऽवशिष्यते । ततस्तस्मिन् संख्येये भागे संज्वलनलोभं सर्वापवर्तनयाऽपवर्त्य सूक्ष्मसंपरायाद्धासमं करोति, सा च सूक्ष्मसंपरायाद्धा अद्याप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणा, ततः प्रभृति च मोहस्य स्थितिघातादयो निवृत्ताः । शेषकर्मणां तु प्रवर्तन्त एव । तां च लोभस्यापवर्तितां स्थितिमुदयोदीरणाभ्यां वेदयन् तावद्गतः यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । ततोऽनन्तरसमये उदीरणा स्थिता । तत उदयेनैव केवलेन तां वेदयति यावच्चरमसमयः । तस्मिंश्चरमसमये ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकानां षोडशकर्मणां बन्धव्यवच्छेदः, मोहनीयस्योदयसत्ताव्यवच्छेदश्च भवति । ततोऽसावनन्तरसमये क्षीणकषायो जातः, तस्य च शेषकर्मणां स्थितिघातादयः पूर्ववत्प्रवर्तन्ते, यावत्क्षीणकषायाद्धायाः संख्येया भागा गता भवन्ति, एकः संख्येयो भागोऽवतिष्ठते । तस्मिंश्च ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कनिद्राद्विकरूपाणां षोडशकर्मणां स्थितिसत्कर्मसर्वापवर्तनयाऽपवर्त्य क्षीणकषायाद्धासमं करोति । केवलं निद्राद्विकस्य दलिकापेक्षया समयन्यूनं कालतस्तु तुल्यं करोति । सा च क्षीणकषायाद्धाऽद्याप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणा, ततः प्रभृति चैतेषां स्थितिघातादयः स्थिताः, शेषाणां तु भवन्त्येव । तानि च षोडश कर्माणि निद्राद्विकवर्जितान्युदयोदीरणाभ्यां वेदयन् तावद्गतः यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । ततोऽनन्तरसमये तेषां निद्राद्विकवर्जितानां चतुर्दशकर्मणामुदीरणा निवृत्ता । तत आवलिकामात्रं कालं यावदुदयेनैव केवलेन तानि वेदयति यावत्क्षीणकषायाद्धाया द्विचरमसमयः ।

तस्मिंश्च द्विचरमसमये निद्राद्विकं स्तिबुकसंक्रमेणान्यत्र संक्रमयति । एवं निद्राद्विकं स्वरूपसत्ताऽपेक्षया क्षीणम् । चतुर्दशानां च प्रकृतीनां चरमसमये क्षयः । ततोऽनन्तरसमये केवली जायत इति ।। **'सयोगिकेवलिगुणस्थानम्'** इति योगो वीर्यं परिस्पन्द इत्यनर्थान्तरम् सह योगेन वर्तन्ते ये ते सयोगा मनोवाक्कायाः ते यस्य विद्यन्त इति सयोगी । तत्र भगवतः काययोगश्चङ्क्रमणनिमेषोन्मेषादिः, वाचिको देशनादिः, मानसिको मनःपर्यायज्ञानिभिरनुत्तरसुरादिभिर्वा पृष्टस्य सतो मनसैव देशनात् । ते हि भगवत्प्रयुक्तानि मनोद्रव्याणि मनःपर्यायज्ञानेनावधिज्ञानेन च पश्यन्ति, दृष्ट्वा च ते विवक्षितवस्त्वालोचनाकारान्यथाऽनुपपत्त्याऽलोकस्वरूपादिकमपि बाह्यमर्थं पृष्टमवगच्छन्तीति । केवलं ज्ञानं दर्शनं चोक्तस्वरूपं विद्यते यस्य स केवली, सयोगी चासौ केवली च सयोगिकेवली तस्य गुणस्थानं सयोगिकेवलिगुणस्थानम् । सयोगिकेवली च जघन्येनान्तर्मुहूर्तम्, उत्कर्षतो देशोनां पूर्वकोटीं विहृत्य कश्चित् कर्मणां समीकरणार्थं समुद्घातं गच्छति, यस्य वेदनीयादिकमायुषः सकाशादधिकतरम् । अन्यस्तु न गच्छत्येव । गत्वा चागत्वा च समुद्घातमघातिकर्मक्षपणाय लेश्यातीतमत्यन्ताप्रकम्पं परमनिर्जराकारणं ध्यानं प्रतिपित्सुर्योगनिरोधायोपक्रमत एव । तत्र पूर्वं बादरकाययोगेन बादरमनोयोगं निरुणद्धि, ततो वाग्योगम्, ततः सूक्ष्मकाययोगेन बादरकाययोगम्, ततस्तेनैव सूक्ष्ममनोयोगम्, ततः सूक्ष्मवाग्योगम्, ततः सूक्ष्मकाययोगं निरुन्धानः सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानमारोहति । तत्सामर्थ्याच्च वदनोदरादिविवरपूरणेन संकुचितदेहत्रिभागवर्तिप्रदेशो भवति । योगनिरोधश्चैष विस्तरतरकेणास्माभिर्द्दृष्टधर्मसारटीकायामभिहित इति नेह पुनः प्रतायते । तस्मिंश्च ध्याने वर्तमानः स्थितिघातादिभिरायुर्वर्जानि सर्वाण्यपि अघातिकर्माणि तावदपवर्तयति यावत्सयोग्यवस्थाचरमसमयः तस्मिंश्च चरमसमये सर्वाण्यपि कर्माण्ययोग्यवस्थासमस्थितिकानि जातानि । येषां च कर्मणामयोग्यवस्थायामुदयाभावः तेषां स्थितिं च स्वरूपं प्रतीत्य समयोना विधत्ते । सामान्यतः सत्ताकालं त्वाश्रित्यायोग्यवस्थासमानामेव । तस्मिंश्च सयोग्यवस्थाचरमसमये औदारिक १ तैजस २ कार्मणशरीर ३ संस्थानषट्क ६ प्रथमसंहननौ १० दारिकाङ्गोपाङ्ग ११ वर्णादिचतुष्का १५ ऽगुरुलघू १६ पघात १७ पराघात १८ शुभाशुभविहायोगति १९ २० प्रत्येक २१ स्थिरा २२ ऽस्थिर २३ शुभा २४ ऽशुभ २५ निर्माण २६ नाम्नामुदयोदीरणाव्यवच्छेदः, अन्यतरवेदनीयस्य २७ च उच्छ्वास २८ सुस्वर २९ दुःस्वराणां ३० च ततोऽनन्तरसमयेऽयोगिकेवली भवति ।। **'अयोगिकेवलिगुणस्थानकम्'** इति योगः पूर्वोक्तो विद्यते यस्यासौ योगी, न योगी अयोगी, अयोगी चासौ केवली चायोगिकेवली, तस्य गुणस्थानं अयोगिकेवलिगुणस्थानम् । तस्मिंश्च वर्तमानः कर्मक्षपणाय व्युपरतक्रियमप्रतिपातिध्यानमारोहति । एवमसावयोगिकेवली स्थितिघातादिरहितो यान्युदयवन्ति कर्माणि तानि स्थितिक्षयेणानुभवन् क्षप-

यति। यानि पुनरुदयवन्ति तदानीं न सन्ति तानि वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयन् वेद्यमानप्रकृतिरूपतया च वेदयन् तावद्याति यावदयोग्यवस्थाद्विचरमसमयः तस्मिंश्च द्विचरमसमये देवगति १ देवानुपूर्वी २ शरीरपञ्चक ७ बन्धनपञ्चक १२ संघातपञ्चक १७ संस्थानपञ्चका २३ ऽङ्गोपाङ्गत्रय २६ संहननषट्क ३२ वर्णादिविंशति ५२ पराघातो ५३ पघाता ५४ ऽगुरुलघू ५५ छ्वास ५६ प्रशस्ता ५७ ऽप्रशस्त ५८ विहायोगति स्थिरा ५९ ऽस्थिर ६० शुभा ६१ ऽशुभ ६२ सुस्वर ६३ दुःस्वर ६४ दुर्भग ६५ प्रत्येका ६६ ऽनादेया ६७ ऽयशःकीर्ति ६८ निर्माणा ६९ ऽपर्याप्तक ७० नीचैर्गोत्रा ७१ ऽसातासातान्यतरा ७२ नुदितवेदनीयानि द्विसप्ततिसंख्यानि स्वरूपसत्तामधिकृत्य क्षयमुपगच्छन्ति। चरमसमये तेषां सर्वात्मना स्तिबुकसंक्रमेणोदयवतीषु प्रकृतिषु मध्ये संक्रमयिष्यमाणतया न स्वरूपसत्ता संभवति। संक्रमश्च सर्वोऽप्युक्तस्वरूपो मूलप्रकृत्यभिन्नासु परप्रकृतिषु द्रष्टव्यः। मूलप्रकृत्यभिन्नाः संक्रमयति गुणत उत्तराः प्रकृतीः' इतिवचनात्। चरमसमये सातासातान्यतरोदितवेदनीय १ मनुष्यगति-२ मनुष्यानुपूर्वी ३ मनुष्यायुः ४ पञ्चेन्द्रियजाति ५ त्रस ६ सुभगा ७ ऽऽदेय ८ यशःकीर्ति ९ पर्याप्तक १० बादर ११ तीर्थकरो १२ च्चैर्गोत्राणां १३ त्रयोदशप्रकृतीनां सत्ताव्यवच्छेदः। अन्ये पुनराहुः—मनुष्यानुपूर्व्या द्विचरमसमये व्यवच्छेदः, उदयाभावात्। उदयवतीनां हि स्तिबुकसंक्रमाभावात्स्वरूपेण चरमसमये दलिकं दृश्यत एवेति युक्तस्तासां चरमसमये सत्ताव्यवच्छेदः। आनुपूर्वीनाम्नां तु चतुर्णामपि क्षेत्रविपाकतया भवापान्तरालगतावेवोदयस्तेन न भवस्थस्य तदुदयसंभवः। तदसंभवाच्चायोग्यवस्थाद्विचरमसमय एव मनुष्यानुपूर्व्याः सत्ताव्यवच्छेद इति। तन्मतेन द्विचरमसमये त्रिसप्ततिप्रकृतीनां सत्ताव्यवच्छेदः, चरमसमये द्वादशानामिति। ततोऽनन्तरसमये कोशबन्धविमोक्षलक्षणसहकारिसमुत्थस्वभावविशेषादेरण्डफलमिव भगवानपि कर्मसंबन्धविमोक्षलक्षणसहकारिसमुत्थस्वभावविशेषसंभवादूर्ध्वं गच्छति। स चोर्ध्वं गच्छन् ऋजुश्रेण्या यावत्स्वाकाशप्रदेशेष्विहावगाढस्तावत एव प्रदेशान् ऊर्ध्वमप्यवगाहमानो विवक्षितसमयाच्चान्यत्समयान्तरमस्पृशन् लोकान्ते गच्छति। तदुक्तमावश्यकचूर्णौ—जेत्तिए जीवोऽवगाढो तावइयाए ओगाहणाए उड्ढं उज्जगं गच्छइ न वंकं बिइयं समयं च न फुसए" इति। तत्र गतः सन् भगवान् शाश्वतं कालमवतिष्ठते। इति ॥२६॥

तदेवमुक्तानि प्रसक्तानुप्रसक्तप्रतिपादनेन सप्रपञ्चं गुणस्थानकानि। साम्प्रतमेतानि मार्गणास्थानेषु चिन्तयन्नाह—

चत्तारि देवनरएसु पंच तिरिएसु चउदस नरेसु।
इगिविगलेसु दो दो पंचिंदीसु चउदस वि ॥२७॥

(हारि०) व्याख्या–'चत्वारि' मिथ्यादृष्ट्यादीनि गुणस्थानकानीति गम्यते । क ? इत्याह–देवनारकेषु प्रत्येकं भवन्तीति शेषः । तथा पञ्च तिर्यक्ष्वाद्यान्येव । तथा चतुर्दश नरेषु । इति मार्गितानि गतिषु गुणस्थानकानि, साम्प्रतमिन्द्रियेषु तान्याह–'इगिविगलेसु' इति एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु द्वे द्वे गुणस्थानके मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे भवतः । एकेन्द्रियेषु सासादनं प्राग्वत् । तथा पञ्चेन्द्रियेषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति । इति गाथार्थः ।।२७।।

इत्युक्तानि गुणस्थानकानीन्द्रियेषु, इतः कायादिषु चतुर्षु मार्गणास्थानेषु तान्येवाह—

(मल०) देवेषु नारकेषु च प्रत्येकमाद्यानि मिथ्यादृष्ट्यादीन्यविरतसम्यग्दृष्टिपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति न देशविरतादीनि, तेषु भवस्वभावतो देशतोऽपि विरतेरभावात् । 'पञ्च तिरिसु' इति तिर्यक्षु पञ्च गुणस्थानकानि भवन्ति, तत्र चत्वारि पूर्वोक्तान्येव, पञ्चमं तु देशविरतिगुणस्थानकम्, तेषु देशविरतेः सद्भावात् । तथा 'नरेसु' मनुष्येषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति, तेषु मिथ्यात्वादीनां शैलेश्यवस्थापर्यन्तानां सर्वभावानामपि संभवात् । तथैकेन्द्रियविकलेद्रियेषु प्रत्येकं 'द्वे द्वे' मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकमविशेषेण सर्वेषु द्रष्टव्यम् । सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकं पुनस्तेजोवायुवर्जप्रत्येकबादरैकेन्द्रियद्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु लब्ध्या पर्याप्तेषु करणेन त्वपर्याप्तेषु न सर्वेष्विति । 'पंचिंदीसु चउदस वि' इति पञ्चेन्द्रियेषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति । तत्रासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु द्वे मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिलक्षणे गुणस्थानके प्राप्येते, तेषु लब्ध्या पर्याप्तेसु करणेन त्वपर्याप्तकेषु सासादनभावस्यापि लभ्यमानत्वात् । लब्ध्यपर्याप्तेषु तु तेषु मिथ्यादृष्टिलक्षणमेवैकं गुणस्थानकम् । संज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु पुनरपर्याप्तकेषु त्रीणि गुणस्थानकानि, तत्र 'द्वे' पूर्वोक्ते एव, तृतीयं त्वविरतिसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकम् । एतेष्वेव च करणपर्याप्तकेषु सर्वाण्यपि गुणस्थानकानि भवन्ति, मनुष्येषु सर्वभावसंभवात् ।। २७ ।।

भूदगतरूसु दो एगमगणिवाऊसु चउदस तसेसु ।
जोए तेरस वेए तिकसाए नव दस य लोभे ।।२८।।

(हारि०) व्याख्या–'भूदगतरूसु' भूम्यम्बुवनस्पतिकायिकेषु 'द्वे' प्रथमे गुणस्थानके प्रत्येकं भवतः । तथा 'एकं' आद्यं गुणस्थानकमग्निवायुकायिकेषु, सासादनभावान्वितस्य तेष्वनुत्पादात् । तथा चतुर्दश त्रसेषु । तथा 'जोए' इति योगत्रये मनोवाक्कायलक्षणे त्रयोदश गुणस्थानान्यन्त्यगुणस्थानकवर्जितानि, चतुर्दशगुणस्थानके तु योगानामभावात् । तथा नवशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात्, 'वेदत्रये' स्त्रीपुंनपुंसकलक्षणे नव गुणस्थानानि, 'कषायत्रये' क्रोधमानमायालक्षणे नवैवाद्यानि, तथा दश चाऽऽद्यान्येव लोभे भवन्ति । इति गाथार्थः ।।२८।।

इति काययोगवेदकषायेषु मार्गितानि गुणस्थानकानि, साम्प्रतं ज्ञानपञ्चकेऽज्ञानत्रयान्विते तथा लाघवार्थमवधिदर्शने केवलदर्शने च तान्येवाह—

(मल०) 'भूदगतरुसु' पृथिव्यम्बुवनस्पतिषु प्रत्येकं [1]'दु दु' मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः, करणापर्याप्तावस्थायामेतेषु लब्धिपर्याप्तकेषु सासादनभावस्यापि लभ्यमानत्वात्। 'इगमगणिवाउसु' इति अग्निषु वायुषु चैकमेव मिथ्यादृष्टिलक्षणं गुणस्थानकं भवति, सासादनभावोपगतस्य तेषु मध्ये उत्पादाभावात्। 'चउदस तसेसु' इति त्रसेषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति, एकेन्द्रियवर्जितानां सर्वेषामपि त्रसत्वात्। तत्र च मनुष्यापेक्षया सर्वगुणस्थानकानामपि संभवात्। तथा 'योगे' मनोवाक्कायरूपेऽयोगिकेवलिगुणस्थानकवर्जितानि शेषाणि त्रयोदशापि गुणस्थानकानि भवन्ति सर्वेष्वप्येतेषु यथायोगं योगत्रयस्यापि संभवात्। तथा 'वेदे' स्त्रीपुंनपुंसकलक्षणे, 'कषायत्रये' क्रोधमानमायारूपे मिथ्यादृष्ट्यादीन्यनिवृत्तिबादरपर्यन्तानि नव गुणस्थानकानि भवन्ति, न शेषाणि; अनिवृत्तिबादर एव क्षीणत्वेनोपशान्तत्वेन वा शेषेषु गुणस्थानकेषु तेषामसंभवात्। 'दस य लोभे' इति लोभे=लोभकषाये दश गुणस्थानकानि भवन्ति। तत्र नव पूर्वोक्तान्येव, दशमं सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकम्, तत्र किट्टीकृतलोभदलिकस्य वेद्यमानत्वात्॥ २८॥

मइसुयओहिदुगे नव अजयाइ जयाइ सत्त मणनाणे।
केवलदुगंमि दो तिन्नि दो व पढमा अनाणतिगे ॥२९॥

(हारि०) व्याख्या—मतिश्रुतावधिद्विके, अत्र द्वन्द्वैकवद्भावः, तत्र मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने अवधिज्ञाने अवधिदर्शने च प्रत्येकं नव गुणस्थानानि भवन्तीति। अथ किमाद्यानि? तान्याह-'अजयाइ' [2]इति विभक्तिलोपादयतादीन्यविरतिसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकप्रभृतीनि क्षीणमोहान्तानि। तथा 'जयाइ सत्त मणनाणे' [3]इति अत्रापि विभक्तिलोपाद्यतादीनि प्रमत्तयतिप्रमुखानि क्षीणमोहान्तानि सप्त गुणस्थानकानि मनःपर्यवज्ञाने भवन्ति। तथा 'केवलद्विके' केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे 'द्वे' सयोग्ययोग्याख्ये गुणस्थानके भवतः। तथा 'त्रीणि' प्रथमानि मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्ररूपाणि, 'द्वे वा प्रथमे' मिथ्यादृष्टिसासादनरूपे, क? इत्याह— 'अज्ञानत्रिके' मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गलक्षणे। तत्र यदभिप्रायेण त्रीणि गुणस्थानानि भवन्ति, तेषामयमाशयः—यदुत मिश्रदृष्टेर्व्यामिश्रज्ञानान्यप्यज्ञानान्येव यथावस्थिततत्त्वनिर्णयाभावात्, अतस्त्रीण्यपि गुणस्थानान्यत्राज्ञानत्रिके भवन्तीति। यदभिप्रायेण च द्वे गुणस्थानके भवतः तेषामिदमाकूतम्—यदुत मिश्रदृष्टेः किंचित्सम्यग्रूपत्वात्तज्ज्ञानानि किंचित्कलुषाण्यपि सम्य-

१ अत्र टीकायां "दो दो इगमगणिवाउसु" इति पाठान्तरानुसारेण व्याख्यातं ज्ञेयम्।
२-३ "त्ति" इत्यपि पाठः।

गुज्ञानान्येव, अतोऽज्ञानत्रये द्वे एव गुणस्थानके भवतः । अहिवं तर्हि सासादनस्यापि सम्यग्दृष्टित्वेन तदवबोधस्यापि ज्ञानरूपत्वात्कथमज्ञानत्रये सासादनगुणस्थानकसंभवः ? इति, सत्यमेतत्, नवरं तज्ज्ञानस्यानन्तानुबन्धिप्रथमकषायोदयेनातिदूषितत्वादज्ञानमेवेति भावः । इति गाथार्थः ॥२१॥

एवं ज्ञानेषु सप्रतिपक्षेषु अवधिदर्शने केवलदर्शने च तानि प्ररूपितानि गुणस्थानकानि, साम्प्रतं संयमे सामायिकादिपञ्चप्रकारे देशसंयमे च तानि प्रतिपिपादयिषुराह—

(मल०) मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने अवधिद्विके अवधिज्ञानदर्शनरूपे 'अयतादीनि' अविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणमोहान्तानि नव गुणस्थानकानि भवन्ति न शेषाणि । तथाहि न मतिश्रुतावधिज्ञानानि मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रेषु भवन्ति तद्भावे ज्ञानत्वस्यैवायोगात् । यत्त्ववधिदर्शनं तत्कुतश्चिदभिप्रायाद्विशिष्टश्रुतविदो मिथ्यादृष्ट्यादीनां नेच्छन्ति । तन्मतमाश्रित्याचार्येणापि तत्तेषां नेष्टम् । अथ च सूत्रे मिथ्यादृष्ट्यादीनामप्यवधिदर्शनं प्रतिपाद्यते । यदुक्तं प्रज्ञप्तौ—"ओहिदंसणअणगारोवउत्ताणं भंते ? किं नाणी अन्नाणी? गोयमा ! णाणीवि अन्नाणीवि । जइ नाणी ते अत्थेगइआ तिण्णाणी, अत्थेगइया चउणाणी । जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी । जे चउणाणि ते आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी जे अण्णाणी ते णियमा 'मइअण्णाणी सुयअण्णाणी विभंगनाणी" इति । अत्र हि येऽज्ञानिनस्ते मिथ्यादृष्टय एवेति मिथ्यादृष्टीनामप्यवधिदर्शनं साक्षादत्र सूत्रे प्रतिपादितम्, स एव च विभङ्गज्ञानी । यदा सासादनभावे मिश्रभावे वा वर्तते तदानीं तत्राप्यवधिदर्शनं प्राप्यत इति । यत्तु सयोग्ययोगिकेवलिगुणस्थानकद्विकं तत्र मतिज्ञानादि न संभवत्येव, तद्व्यवच्छेदेनैव केवलज्ञानस्य प्रादुर्भावात् । "नट्ठंमि उ छाउमत्थिए नाणे" इतिवचनप्रामाण्यात् । आह, ननु यदि मतिज्ञानादीनि स्वस्वावरणक्षयोपशमभावेऽपि प्रादुर्भवन्ति ततो निःशेषतः स्वस्वावरणक्षये सुतरां भवेयुश्चारित्रपरिणामवत्तत्कथं तदानीं तेषामभावः ? आह च—"आवरणदेसविगमे जाइं विज्जंति मइसुयाईणि । आवरणसव्वविगमे कह ताइं न होंति जीवस्स ॥१॥" इति, उच्यते, इह यथा सहस्रभानोरुपचितघनपटलान्तरितस्यापान्तरालावस्थितकटकुड्याद्यावरणविवरप्रविष्टः प्रकाशो घटपटादीन् प्रकाशयति, तथा केवलज्ञानावरणावृतस्य केवलज्ञानस्यापान्तरालमतिज्ञानाद्यावरणक्षयोपशमरूपविवरविनिर्गतः प्रकाशो जीवादीन् पदार्थान् प्रकाशयति, स च तथा प्रकाशयन् मतिज्ञानमित्यादिलक्षणं तत्तत्क्षयोपशमानुरूपमभिधानमुद्वहति । ततो यथा सकलघनपटलकटकुड्याद्यावरणापगमे स तथाविधः प्रकाशः सहस्रभानोरस्पष्टरूपो न भवति, किन्तु सर्वात्मना स्फुटरूपोऽन्य एव, तथेहापि सकलकेवलज्ञानावरणमतिज्ञानाद्यावरणक्षये

१ ति अमाणी, तं जहा ।

न तथाविधो मतिज्ञानादिसंज्ञितः केवलज्ञानस्य प्रकाशो भवति, किन्तु सर्वात्मना यथावस्थितं वस्तु परिच्छिन्दम् परिस्फुटरूपोऽन्य एवेत्यदोषः । उक्तं च–"कडविवरागयकिरणा मेहंतरियस्स जह दिणेसस्स । ते कडमेहावगमे; न होंति जह तह इमाइंपि ॥१॥" इति । अन्ये पुनराहुः–सन्त्येव मतिज्ञानादीन्यपि सयोगिकेवल्यादौ, केवलमफलत्वात् सन्त्यपि तदानीं न विवक्ष्यन्ते यथा सूर्योदये नक्षत्रादीनीति । तथा चोक्तम्–"अण्णे आभिणिबोहियणाणाईणि वि जिणस्स विज्जंति । अफलाणि सूरुदये, जहेव णक्खत्तमाईणि ॥१॥" 'जयाइ सत्त मणनाणे' इति यतादीनि प्रमत्तयतिप्रमुखानि क्षीणमोहान्तानि सप्त गुणस्थानकानि मनःपर्यायज्ञाने भवन्ति न शेषाणि। भावना पूर्वोक्तानुसारेणावसेया। तथा 'केवलद्विके' केवलज्ञानदर्शनरूपे द्वे सयोग्ययोगिकेवलिलक्षणे गुणस्थानके भवतः। तथा 'अज्ञानत्रिके' मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणे प्रथमानि त्रीणि मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रलक्षणानि गुणस्थानकानि भवन्ति। मिश्रदृष्टेश्च यद्यपि–'मीसंमि वा मिस्सं' इतिवचनात्, ज्ञानव्यामिश्राण्यज्ञानानि प्राप्यन्ते न शुद्धान्यज्ञानानि, तथाऽपि तान्यज्ञानान्येव, यथावस्थितवस्तुतत्त्वनिर्णयाभावात्। अन्ये पुनराहुः–यद्यपि न तदानीं यथावस्थितवस्तुतत्त्वनिर्णयस्तथाऽपि न तान्यज्ञानान्येव, सम्यग्ज्ञानलेशव्यामिश्रत्वात् । तदुक्तम्–मिथ्यात्वाधिकस्य मिश्रदृष्टेरज्ञानबाहुल्यम्, सम्यक्त्वाधिकस्य पुनः सम्यग्ज्ञानबाहुल्यमित्यादि । तन्मतमाश्रित्याह–'दो व' इति द्वे वा प्रथमे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । इति ॥२९॥

सामाइयछेएसुं, चउरो परिहार दो पमत्ताई ।
देससुहुमे सगं पढमचरमचउ अजयअहखाए ॥३०॥

(हारि०) व्याख्या–सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोश्चत्वारि गुणस्थानानि विभक्तिलोपात्प्रमत्तादीनीति सण्टङ्कः। तथा परिहारविशुद्धिके द्वे प्रमत्ताप्रमत्ते। तथा 'देशसूक्ष्मे' अत्र द्वन्द्वः, स्वकमिति प्रत्येकं योज्यम् । देशे=देशविरते=चारित्राचारित्र इत्यर्थः, 'स्वकं' स्वकीयं देशयति गुणस्थानकमित्यर्थः । तथा सूक्ष्मसंपराये च चतुर्थचारित्रे स्वकं=स्वकीयं सूक्ष्मसंपरायाभिधगुणस्थानकमित्यर्थः। तथा प्रथमं च चरमं च प्रथमचरमे, *प्रथमचरमे च* ते 'चउ' इति चतुष्के च प्रथमचरमचतुष्के ते भवतः, अत्र प्रथमाद्विवचनलोपो द्रष्टव्यः । कयोः ? इत्याह–वचनव्यत्ययादयतयथाख्यातयोर्यथासंख्यम्। अयमभिप्रायः–अयतशब्देन गुणगुणिनोरभेदोपचारादसंयमो गृहीतः, ततोऽसंयमे प्रथमानि मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्राविरतलक्षणानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति । यथाख्याते तु संयमे चरमाण्युपशान्तक्षीणमोहसयोग्ययोगिकेवलिलक्षणानि चत्वारि गुणस्थानानि भवन्ति। इति गाथार्थः ॥३०॥

इति संयमे सप्रतिपक्षे भणितानि गुणस्थानानि, साम्प्रतं दर्शनलेश्याभव्येषु तान्येवाह–

* एतच्चिह्नद्वयान्तर्गतभागो मुद्रितप्रतौ नास्ति ।

(मल०) सामायिकच्छेदोपस्थापनयोश्चत्वारि प्रमत्तादीन्यनिवृत्तिबादरपर्यन्तानि गुणस्थानकानि भवन्ति । तथा परिहारविशुद्धिके संयमे द्वे प्रमत्ताप्रमत्तयतिलक्षणे गुणस्थानके भवतः, नोत्तराणि; तस्मिन् संयमे वर्तमानस्य श्रेण्यारोहप्रतिषेधात् । 'देससुहुमे सग' इति देशविरतौ सूक्ष्मसंपरायसंयमे च स्वकं=स्वकीयं स्वकीयं यथाक्रमं देशविरतिगुणस्थानकं सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं भवति । 'पढमचरमचउ अजयअहक्खाए' इति यथाक्रमं अयते=असंयते=संयमहीने प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीन्यविरतसम्यग्दृष्टिपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति । यथाख्यातचारित्रे पुनश्चरमाण्युपशान्तमोहादीन्ययोगिकेवलिपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानानि भवन्ति ॥३०॥

बारस अचक्खुचक्खुसु पढमा लेसासु तिसु छ दुसु सत्त ।
सुक्काए तेरस गुणा सव्वे भव्वे अभव्वेगं ॥३१॥

(हारि०) व्याख्या- द्वादश प्रथमानि गुणस्थानकानीति योगः । क्व ? इत्याह—अचक्षुश्चक्षुषोः' 'अचक्षुर्दर्शने चक्षुर्दर्शने इत्यर्थः[१] । तथा प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानानि षडिति संबन्धः । कासु ? इत्याह- लेश्यासु' तिसृषु कृष्णनीलकापोताभिधानासु । तथा सप्त प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि अप्रमत्तयत्यन्तानि । कयोः ? इत्याह—'दुसु' इति द्वयोर्लेश्ययोस्तेजसीपद्माभिधानयोः । तथा 'शुक्लायां' शुक्ललेश्यायां प्रथमानि त्रयोदश गुणस्थानानि । प्रथमशब्दश्चतुर्ष्वपि पदेषु योज्यते । तथा भव्ये सर्वाणि गुणस्थानानि । तथाऽभव्ये एकं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकम् , अत्र जातावेकवचनम् । इति गाथार्थः ॥३१॥

इति दर्शनादिपदत्रये मार्गितानि गुणस्थानानि, साम्प्रतं सम्यक्त्वसंज्ञिपदद्वये तान्येवाह-

(मल०) अचक्षुर्दर्शने चक्षुर्दर्शने च प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणमोहपर्यन्तानि द्वादश गुणस्थानकानि भवन्ति । भावना सुज्ञाना । तथा प्रथमासु तिसृषु 'लेश्यासु' कृष्णनीलकापोतरूपासु प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि प्रमत्तान्तानि षड् गुणस्थानकानि भवन्ति । कृष्णनीलकापोतलेश्यानां हि प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि, ततो मन्दसंक्लेशेषु तदध्यवसायस्थानेषु तथाविधसम्यक्त्वदेशसर्वविरतीनामपि सद्भावो न विरुध्यते । तदुक्तम्—सम्यक्त्वदेशविरतिसर्वविरतीनां प्रतिपत्तिकाले शुभलेश्यात्रयमेव भवति । उत्तरकालं तु सर्वा अपि लेश्याः परावर्तन्तेऽपीति । तथा 'द्वयोः' तेजःपद्मरूपयोर्लेश्ययोः सप्त गुणस्थानानि भवन्ति । तत्र षट् पूर्वोक्तान्येव, सप्तमं त्वप्रमत्तसंयतगुणस्थानकम् मिथ्यादृष्ट्यादीनां त्वेते लेश्ये जघन्यात्यन्ताविशुद्धतदध्यवसायस्थानापेक्षया द्रष्टव्ये । एवमुत्तरत्रापि भावनीयम् । तथा 'शुक्लायां' शुक्ललेश्यायां प्रथमानि त्रयोदश गुणस्थानकानि भवन्ति, न त्वयोगिगुणस्थानकम्; अयोगिनो लेश्यातीतत्वात् । तथा भव्ये सर्वाण्यपि गुणस्थानकानि भवन्ति, योग्यत्वात् । अभव्ये पुनरेकमेव मिथ्यादृष्टिलक्षणं गुणस्थानकमिति ॥३१॥

---

१ "चक्षुर्दर्शने-ऽचक्षुर्दर्शने चेत्यर्थः" इत्यपि पाठः ।

वेयगखइगउवसमे चउरो एक्कारसट्ठ तुरियाई ।
सेसतिगे सट्ठाणं सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥३२॥

(हारि०) व्याख्या--वेदकं=क्षायोपशमिकं तच्च क्षायिकं चौपशमिकं चेति समाहारद्वन्द्वः । तत्र यथासंख्येन चत्वार्येकादशाष्टौ गुणस्थानानि भवन्ति । किमाद्यानि ? इत्याह--विभक्तिलोपात् 'तुर्याद्यानि' चतुर्थादीनि । तत्र वेदकेऽविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तयतिनामानि चत्वारि गुणस्थानानि । क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिकेवलिगुणस्थानकान्तान्येकादश । औपशमिकेऽविरतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तमोहान्तान्यष्टौ गुणस्थानकानि भवन्ति । तथा 'शेषत्रिके' मिश्रसासादनमिथ्यादृष्टिरूपे 'स्वस्थानं' स्वकीयपदं भवति । अयमर्थः-सम्यग्मिथ्यात्वे सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकम् । एवं सासादने सासादनम्, मिथ्यात्वे मिथ्यात्वमिति । तथा 'संज्ञिषु' मनोविज्ञानयुक्तेषु चतुर्दश गुणस्थानकानि भवन्ति । नन्वत्र चतुर्दशगुणस्थानकभणनेन सामान्येन केवल्यपि संज्ञित्वेन गृहीतः, तत्र सयोगिनं प्रति संज्ञित्वभावना द्रव्यमनःसमाश्रयणेन भवद्भिः प्रागुक्ता अयोगिनं प्रति सा कथं बुध्यते ?, अत्रोच्यते, पूर्वावस्थामाश्रित्य द्रष्टव्येति संभाव्यते *यथा दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा गृह्यते । तथा* 'असंज्ञिषु' मनोविज्ञानरहितेषु द्वे मिथ्यात्वसासादनलक्षणगुणस्थानके भवतः । इति गाथार्थः ॥३२॥

इति सम्यक्त्वद्वारे सप्रतिपक्षे संज्ञिद्वारे चोक्तानि गुणस्थानानि । अथ पर्यन्तवर्त्याहारकद्वारे सप्रतिपक्षे तानि प्रतिपादयन् गत्यादिषु गुणस्थानकसमर्थनां दर्शयन्नाह—

(मल०) वेदकं=क्षायोपशमिकं तस्मिन्, तथा क्षायिके औपशमिके च सम्यक्त्वे यथासंख्यं चत्वारि एकादशाष्टौ च गुणस्थानकानि भवन्ति । कानि पुनस्तानि ? इत्यत आह—'तुर्यादीनि' चतुर्थादीनि । तत्र क्षायोपशमिकसम्यक्त्वेऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्यप्रमत्तपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति, क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिपर्यन्तान्येकादश गुणस्थानकानि भवन्ति, औपशमिकसम्यक्त्वे पुनरविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्युपशान्तमोहपर्यन्तान्यष्टाविति । 'सेसतिगे सट्ठाणं' इति शेषत्रिके मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रलक्षणे स्वस्थानं स्वं स्वमेव गुणस्थानकं भवति । तथा संज्ञिषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति, सयोग्ययोग्यवस्थायामपि द्रव्यमनोऽपेक्षया संज्ञित्वाभ्युपगमात् । 'असण्णिसु दो' इति असंज्ञिषु द्वे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । तत्र सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकं लब्धिपर्याप्तकानां करणापर्याप्तावस्थायां द्रष्टव्यम् ॥३२॥

आहारगेसु पढमा तेरसऽणाहारगेसु पंच इमे ।
[1]पढमंतिमदुगअविरय इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

---

* एतच्चिह्नद्वयान्तर्गतपाठः प्रत्यन्तरे नास्ति । १ "पढमंतदुगअविरया" इति वा ।

(हारि०) व्याख्या–आहारकेषु प्रथमानि त्रयोदश गुणस्थानानि भवन्ति। तथाऽनाहारके पञ्चैमानि वक्ष्यमाणानि। तान्येवाह–'पढमंतिमदुगअविरय' इति द्विकशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात्प्रथमद्विकान्त्यद्विकाविरतानीति तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः। तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकानि त्रीणि विग्रहगतौ सयोगिकेवलिगुणस्थानकम्। समुद्घाते चतुर्थपञ्चमतृतीयसमयेषु सिद्धान्तप्रसिद्धेषु अयोगिकेवलिगुणस्थानं त्वीषद्ह्रस्वाक्षरपञ्चकोद्गिरणमात्रं कालं समस्तगुणस्थानकमित्यर्थः। उक्तं च–"विग्गहगइमावन्ना, केवलिणो समुहया अजोगी य। सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारगा जीवा ॥१॥" इत्यनाहारके पञ्चेति गत्यादिष्वाहारकपर्यवसानेषु चतुर्दशपदेषु द्विषष्ट्युत्तरभेदप्रभिन्नेषु 'इति' अमुना प्रकारेण गुणस्थानकान्यभिहितानीति शेषः। इति गाथार्थः ॥३३॥

साम्प्रतं मार्गणास्थानेष्वेव योगान्मार्गयितुकामः पूर्वं तानेव प्ररूपयन्नाह—

(मल०) आहारकेषु प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश गुणस्थानकानि भवन्ति, सर्वेष्वप्येतेषु ओजोलोमप्रक्षेपाहाराणामन्यतमस्याहारस्य यथायोगं संभवात्। तथाऽनाहारकेषु पञ्च इमानि वक्ष्यमाणानि गुणस्थानकानि भवन्ति। कानि? इत्यत आह–पढमंतिमदुगअविरय' इति प्रथमद्विकं मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणम्, अन्तिमद्विकं सयोग्ययोगिकेवलिलक्षणम्, अविरतसम्यग्दृष्टिश्चेति। तत्र सयोगिनोऽनाहारकत्वं समुद्घातगतस्य तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु तदुक्तम्–"चतुर्थपञ्चमतृतीयेष्वनाहारकः" इति। अयोग्यवस्थायां तु योगरहितत्वेनौदारिकादिशरीरपोषकपुद्गलग्रहणाभावादनाहारकत्वम् औदारिकवैक्रियाहारकशरीरपोषकपुद्गलोपादानमाहार इति हि समयोपनिषद्वेदिनः। मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिषु विग्रहगतावनाहारकत्वमिति। उपसंहारमाह–' गइयाइसु इय गुणट्ठाणा" ॥३३॥

तदेवमुक्तानि मार्गणास्थानेषु गुणस्थानकानि, साम्प्रतमेतेषु योगानभिधित्सुस्तानेव पूर्वं स्वरूपतो निर्दिशति—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं मणं तह वई य।
उरलविउव्वाहारा मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥३४॥

(हारि०) व्याख्या–सन्तो मुनयः पदार्था वा, तेषु यथासंख्येन मुक्तिप्रापकत्वेन यथावस्थितस्वरूपचिन्तनेन वा हितं सत्यम्। अस्ति जीवः सदसद्रूपो वा देहमात्रव्यापकः, इत्यादि यथावस्थितवस्तुविकल्पनपरम्। तथा तद्विपरीतं मृषा। नास्ति जीव एकान्तसद्रूपो वेत्यादि। यथावस्थिता-ऽयथावस्थितवस्तुचिन्तनपरं मिश्रम्। इह धवखदिरपलाशादिमिश्रेषु बहुष्वशोकवृक्षेषु अशोकवनमिदमिति यदा विकल्पयति तदा प्रस्तुतमिश्रविषयता। इदं हि विकल्पनमत्राशोकवृक्षाणां सद्भावात्सत्यम्, अन्येषामपि धवादीनां तत्र सद्भावादसत्यमिति मिश्रम्। न

वेयगखइगउवसमे चउरो एक्कारसट्ठ तुरियाई ।
सेसतिगे सट्ठाणं सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥३२॥

(हारि०) व्याख्या--वेदकं=क्षायोपशमिकं तच्च क्षायिकं चौपशमिकं चेति समाहारद्वन्द्वः । तत्र यथासंख्येन चत्वार्येकादशाष्टौ गुणस्थानानि भवन्ति । किमाद्यानि ? इत्याह--विभक्तिलोपात् 'तुर्यादीनि' चतुर्थादीनि । तत्र वेदकेऽविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तयतिनामानि चत्वारि गुणस्थानानि । क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिकेवलिगुणस्थानकान्तान्येकादश । औपशमिकेऽविरतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तमोहान्तान्यष्टौ गुणस्थानकानि भवन्ति । तथा 'शेषत्रिके' मिश्रसासादनमिथ्यादृष्टिरूपे 'स्वस्थानं' स्वकीयपदं भवति । अयमर्थः-सम्यग्मिथ्यात्वे सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकम् । एवं सासादने सासादनम्, मिथ्यात्वे मिथ्यात्वमिति । तथा 'संज्ञिषु' मनोविज्ञानयुक्तेषु चतुर्दश गुणस्थानकानि भवन्ति । नन्वत्र चतुर्दशगुणस्थानकभणनेन सामान्येन केवल्यपि संज्ञित्वेन गृहीतः, तत्र सयोगिनं प्रति संज्ञित्वभावना द्रव्यमनःसमाश्रयणेन भवद्भिः प्रागुक्ता अयोगिनं प्रति सा कथं बुध्यते ?, अत्रोच्यते, पूर्वावस्थामाश्रित्य द्रष्टव्येति संभाव्यते *यथा दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा गृह्यते । तथा* 'असंज्ञिषु' मनोविज्ञानरहितेषु द्वे मिथ्यात्वसासादनलक्षणगुणस्थानके भवतः । इति गाथार्थः ॥३२॥

इति सम्यक्त्वद्वारे सप्रतिपक्षे संज्ञिद्वारे चोक्तानि गुणस्थानानि । अथ पर्यन्तवर्त्याहारकद्वारे सप्रतिपक्षे तानि प्रतिपादयन् गत्यादिषु गुणस्थानकसमर्थनां दर्शयन्नाह—

(मल०) वेदकं=क्षायोपशमिकं तस्मिन्, तथा क्षायिके औपशमिके च सम्यक्त्वे यथासंख्यं चत्वारि एकादशाष्टौ च गुणस्थानकानि भवन्ति । कानि पुनस्तानि ? इत्यत आह--'तुर्यादीनि' चतुर्थादीनि । तत्र क्षायोपशमिकसम्यक्त्वेऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्यप्रमत्तपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति, क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिपर्यन्तान्येकादश गुणस्थानकानि भवन्ति, औपशमिकसम्यक्त्वे पुनरविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्युपशान्तमोहपर्यन्तान्यष्टाविति । 'सेसतिगे सट्ठाणं' इति शेषत्रिके मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रलक्षणे स्वस्थानं स्वं स्वमेव गुणस्थानकं भवति । तथा संज्ञिषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति, सयोग्ययोग्यवस्थायामपि द्रव्यमनोऽपेक्षया संज्ञित्वाभ्युपगमात् । 'असण्णिसु दो' इति असंज्ञिषु द्वे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । तत्र सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकं लब्धिपर्याप्तकानां करणापर्याप्तावस्थायां द्रष्टव्यम् ॥३२॥

आहारगेसु पढमा तेरसऽणाहारगेसु पंच इमे ।
[1]पढमंतिमदुगअविरय इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

---

* एतच्चिह्नद्वयान्तर्गतपाठः प्रत्यन्तरे नास्ति । १ "पढमंतदुगअविरया" इति वा ।

(हारि०) व्याख्या—आहारकेषु प्रथमानि त्रयोदश गुणस्थानानि भवन्ति। तथाऽनाहारके पञ्चेमानि वक्ष्यमाणानि। तान्येवाह—'**पढमंतिमदुगअविरय**' इति द्विकशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात्प्रथमद्विकान्त्यद्विकाविरतानीति तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः। तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकानि त्रीणि विग्रहगतौ सयोगिकेवलिगुणस्थानकम्। समुद्घाते चतुर्थपञ्चमतृतीयसमयेषु सिद्धान्तप्रसिद्धेषु अयोगिकेवलिगुणस्थानं त्वीपद्हृस्वाक्षरपञ्चकोद्गिरणमात्रं कालं समस्तगुणस्थानकमित्यर्थः। उक्तं च—"**विग्गहगइमावन्ना, केवलिणो समुहया अजोगी य। सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारगा जीवा ॥१॥**" इत्यनाहारके पञ्चेति गत्यादिष्वाहारकपर्यवसानेषु चतुर्दशपदेषु द्विषष्ट्युत्तरभेदप्रभिन्नेषु 'इति' अमुना प्रकारेण गुणस्थानकान्यभिहितानीति शेषः। इति गाथार्थः ॥२३॥

साम्प्रतं मार्गणास्थानेष्वेव योगान्मार्गयितुकामः पूर्वं तानेव प्ररूपयन्नाह—

(मल०) आहारकेषु प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश गुणस्थानकानि भवन्ति, सर्वेष्वप्येतेषु ओजोलोमप्रक्षेपाहाराणामन्यतमस्याहारस्य यथायोगं संभवात्। तथाऽनाहारकेषु पञ्च इमानि वक्ष्यमाणानि गुणस्थानकानि भवन्ति। कानि? इत्यत आह—**पढमंतिमदुगअविरय**' इति प्रथमद्विकं मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणम्, अन्तिमद्विकं सयोग्ययोगिकेवलिलक्षणम्, अविरतसम्यग्दृष्टिश्चेति। तत्र सयोगिनोऽनाहारकत्वं समुद्घातगतस्य तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु तदुक्तम्—"**चतुर्थपञ्चमतृतीयेष्वनाहारकः**" इति। अयोग्यवस्थायां तु योगरहितत्वेनौदारिकादिशरीरपोषकपुद्गलग्रहणाभावादनाहारकत्वम् औदारिकवैक्रियाहारकशरीरपोषकपुद्गलोपादानमाहार इति हि समयोपनिषद्वेदिनः। मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिषु विग्रहगतावनाहारकत्वमिति। उपसंहारमाह—'**गइयाइसु इय गुणट्ठाणा**" ॥२३॥

तदेवमुक्तानि मार्गणास्थानेषु गुणस्थानकानि, साम्प्रतमेतेषु योगानभिधित्सुस्तानेव पूर्वं स्वरूपतो निर्दिशति—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं मणं तह वई य।
उरलविउव्वाहारा मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥२४॥

(हारि०) व्याख्या—सन्तो मुनयः पदार्था वा, तेषु यथासंख्येन मुक्तिप्रापकत्वेन यथावस्थितस्वरूपचिन्तनेन वा हितं सत्यम्। अस्ति जीवः सदसद्रूपो वा देहमात्रव्यापकः, इत्यादि यथावस्थितवस्तुविकल्पनपरम्। तथा तद्विपरीतं मृषा। नास्ति जीव एकान्तसद्रूपो वेत्यादि। यथावस्थिता-ऽयथावस्थितवस्तुचिन्तनपरं मिश्रम्। इह धवखदिरपलाशादिमिश्रेषु बहुष्वशोकवृक्षेषु अशोकवनमिदमिति यदा विकल्पयति तदा प्रस्तुतमिश्रविषयता। इदं हि विकल्पनमत्राशोकवृक्षाणां सद्भावात्सत्यम्, अन्येषामपि धवादीनां तत्र सद्भावादसत्यमिति मिश्रम्। न

वेयगखइगउवसमे चउरो एक्कारसट्ठ तुरियाई ।
सेसतिगे सट्ठाणं सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥३२॥

(हारि०) व्याख्या--वेदकं=क्षायोपशमिकं तच्च क्षायिकं चौपशमिकं चेति समाहारद्वन्द्वः । तत्र यथासंख्येन चत्वार्येकादशाष्टौ गुणस्थानानि भवन्ति । किमाद्यानि ? इत्याह--विभक्तिलोपात् 'तुर्यादीनि' चतुर्थादीनि । तत्र वेदकेऽविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तयतिनामानि चत्वारि गुणस्थानानि । क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिकेवलिगुणस्थानकान्तान्येकादश । औपशमिकेऽविरतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तमोहान्तान्यष्टौ गुणस्थानकानि भवन्ति । तथा 'शेषत्रिके' मिश्रसासादनमिथ्यादृष्टिरूपे 'स्वस्थानं' स्वकीयपदं भवति । अयमर्थः--सम्यग्मिथ्यात्वे सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकम् । एवं सासादने सासादनम्, मिथ्यात्वे मिथ्यात्वमिति । तथा 'संज्ञिषु' मनोविज्ञानयुक्तेषु चतुर्दश गुणस्थानकानि भवन्ति । नन्वत्र चतुर्दशगुणस्थानकभणनेन सामान्येन केवल्यपि संज्ञित्वेन गृहीतः, तत्र सयोगिनं प्रति संज्ञित्वभावना द्रव्यमनःसमाश्रयणेन भवद्भिः प्रागुक्ता अयोगिनं प्रति सा कथं बुध्यते ?, अत्रोच्यते, पूर्वावस्थामाश्रित्य द्रष्टव्येति संभाव्यते *यथा दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा गृह्यते । तथा* 'असंज्ञिषु' मनोविज्ञानरहितेषु द्वे मिथ्यात्वसासादनलक्षणगुणस्थानके भवतः । इति गाथार्थः ॥३२॥

इति सम्यक्त्वद्वारे सप्रतिपक्षे संज्ञिद्वारे चोक्तानि गुणस्थानानि । अथ पर्यन्तवर्त्याहारकद्वारे सप्रतिपक्षे तानि प्रतिपादयन् गत्यादिषु गुणस्थानकसमर्थनां दर्शयन्नाह—

(मल०) वेदकं=क्षायोपशमिकं तस्मिन्, तथा क्षायिके औपशमिके च सम्यक्त्वे यथासंख्यं चत्वारि एकादशाष्टौ च गुणस्थानकानि भवन्ति । कानि पुनस्तानि ? इत्यत आह--'तुर्यादीनि' चतुर्थादीनि । तत्र क्षायोपशमिकसम्यक्त्वेऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्यप्रमत्तपर्यन्तानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति, क्षायिके त्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्ययोगिपर्यन्तान्येकादश गुणस्थानकानि भवन्ति, औपशमिकसम्यक्त्वे पुनरविरतसम्यग्दृष्ट्यादीन्युपशान्तमोहपर्यन्तान्यष्टाविति । 'सेसतिगे सट्ठाणं' इति शेषत्रिके मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रलक्षणे स्वस्थानं स्वं स्वमेव गुणस्थानकं भवति । तथा संज्ञिषु चतुर्दशापि गुणस्थानकानि भवन्ति, सयोग्ययोग्यवस्थायामपि द्रव्यमनोऽपेक्षया संज्ञित्वाभ्युपगमात् । 'असण्णिसु दो' इति असंज्ञिषु द्वे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके भवतः । तत्र सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकं लब्धिपर्याप्तकानां करणापर्याप्तावस्थायां द्रष्टव्यम् ॥३२॥

आहारगेसु पढमा तेरसऽणाहारगेसु पंच इमे ।
[1]पढमंतिमदुगअविरय इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

---

* एतच्चिह्नद्वयान्तर्गतपाठः प्रत्यन्तरे नास्ति । 1 "पढमंतदुगअविरया" इति वा ।

साम्प्रतमेते गत्यादिमार्गणास्थानेषु योज्यन्ते—

(मल०) इह योगशब्देन कारणे कार्योपचारात्तत्सहकारिभूतं मनः प्रभृत्येव विवक्षितमिति तैः सह योगस्य सामानाधिकरण्यम्। तत्र मनश्चतुर्धा, तद्यथा—सत्यं, मृषा 'मिश्रम्' इति सत्यामृषा असत्यामृषेति। तत्र सत्यमिति सन्तो मुनयः पदार्था वा, तेषु यथासंख्यं मुक्तिप्रापकत्वेन यथावस्थितवस्तुस्वरूपचिन्तनेन च साधु सत्यम्, यथाऽस्ति जीवः सदसद्रूपो देहमात्रव्यापी, इत्यादिरूपतया यथावस्थितवस्तुचिन्तनपरम्। सत्यविपरीतमसत्यम्, यथा नास्ति जीव एकान्तासद्रूपो वा, इत्यादिकुविकल्पनपरम्। सत्यं च मृषा चेति मिश्रम्, यथा धवखदिरपलाशादिमिश्रेषु बहुष्वशोकवृक्षेष्वशोकवनमेवेदमिति विकल्पनपरम्। अत्र हि कतिपयाशोकवृक्षाणां सद्भावात्सत्यता, अन्येषामपि धवादीनां सद्भावादसत्यता, व्यवहारनयमतापेक्षया चैवमुच्यते। परमार्थतः पुनरिदमसत्यमेव, यथाविकल्पितार्थायोगात्। तथा यन्न सत्यं नापि मृषा तदसत्यामृषा। इह विप्रतिपत्तौ सत्यां यद्वस्तुप्रतिष्ठाशया सर्वज्ञमतानुसारेण विकल्प्यते, यथाऽस्ति जीवः सदसद्रूप इत्यादि, तत्किल सत्यं परिभाषितम्। यत्पुनर्विप्रतिपत्तौ सत्यां वस्तुप्रतिष्ठाशया सर्वज्ञमतोत्तीर्णं विकल्प्यते, यथा नास्ति जीव एकान्तनित्यो वेति तदसत्यम्, विराधकत्वात्। यत्पुनर्वस्तुप्रतिष्ठाशामन्तरेण स्वरूपमात्रपर्यालोचनपरम्; यथा हे देवदत्त! घटमानय, गां देहि मह्यम्; इत्यादिचिन्तनपरं तदसत्यामृषा। इदं हि स्वरूपमात्रपर्यालोचनपरत्वान्न यथोक्तलक्षणं सत्यं नापि मृषेति, इदमपि व्यवहारनयमतेन द्रष्टव्यम्, निश्चयनयमतेन तु विप्रतारणादिबुद्धिपूर्वकमसत्येऽन्तर्भवति अन्यथा तु सत्ये इति। 'तह वई' इति यथा मनः सत्यादिभेदाच्चतुर्धा तथा वागपि सत्यादिभेदाच्चतुर्धा। 'उरलविउव्वाहारा' इति औदारिकवैक्रियाहारकाणि। तत्रोदारं=प्रधानम्। प्राधान्यं च तीर्थकरगणधरशरीरापेक्षया द्रष्टव्यम्। ततोऽन्यस्यानुत्तरसुरशरीरस्याप्यनन्तगुणहीनरूपत्वादुदारमेवौदारिकम्। विनयादित्वादिकण्। अथवोदारं=सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वाच्छेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रमाणम्। बृहत्ता चास्य वैक्रियमधिकृत्य भवधारणीयसहजशरीरापेक्षया द्रष्टव्या। अन्यथोत्तरवैक्रियं योजनलक्षमानमपि लभ्यत इति। उदारमेवौदारिकम्। प्राग्वदिकण्प्रत्ययः। तथा विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियम्। तथा चतुर्दशपूर्वविदा तीर्थकरस्फातिदर्शनादिकतथाविधप्रयोजनोत्पत्तौ सत्यां विशिष्टलब्धिवशादाह्रियते=निर्वर्त्यत इत्याहारकम्। कृत्यल्युटो बहुलमितिवचनात् कर्मणि वुञ्। यथा पादहारक इत्यत्र। 'मिस्सा' इति मिश्रशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते। औदारिकमिश्रं वैक्रियमिश्रं आहारकमिश्रं च। तत्रौदारिकमिश्रं कार्मणेन, तच्चापर्याप्तावस्थायां केवलिसमुद्घातावस्थायां वा उत्पत्तिदेशे हि पूर्वभवादनन्तरमागतो जीवः प्रथमसमये कार्मणेनैव केवलेनाहारयति, ततः परमौदारिकस्याप्यारब्धत्वादौदारिकेण कार्मणमिश्रेण यावच्छरीरस्य निष्पत्तिः। उक्तं च ''जोएण

विद्यते मृशा यत्र तद्भवत्यमृषम्, असत्यं च तदमृषं चेति कृताकृतादिवत्कर्मधारयः, आमन्त्रण-प्रज्ञापनादिरूपम्, यथा हे देवदत्त! घटमानय, धर्मं कुरु, भिक्षां देहि इत्यादि। एवंविधं किम्? इत्याह—'मणं' इति मनः=श्चित्तं, तथाशब्दो वाक्योपक्षेपार्थः। लिङ्गव्यत्ययेन वाक्चैवं-विधैव चतुर्भेदेत्यर्थः। तथा 'उरलविउव्वाहारा' इति सूचकत्वात्सूत्रस्यौदारिकवैक्रियाहारककाययोगाः। तथा 'मीसा' इति एत एवौदारिकादयो मिश्रास्त्रयः। 'कम्मइण' इति प्राकृतत्वात्कार्मणकाययोग इति सप्तविधकाययोगः। तत्रोदारं=प्रधानं, उदारमेवौदारिकम्। प्राधान्यं चेह तीर्थकरगणधरशरीरापेक्षया वेदितव्यम्। ततोऽन्यस्यानुत्तरसुर-शरीरस्याप्यनन्तगुणहीनरूपत्वात्। अथवा उदारं=सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वाच्छेषशरीरेभ्यो बृहत्प्रमाणम्, उदारमेवौदारिकम्। बृहत्त्वं चास्य भवधारणीयसहजशरीरापेक्षया मन्तव्यम्। अन्यथा हि उत्तरवैक्रियं लक्षयोजनमानमपि लभ्यत इति। औदारिकमेव चीयमानत्वात्कायः, तेन सहकारिकारणभूतेन तद्विषयो वा योग औदारिककाययोगः १। तथा विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रया तस्यां भवं वैक्रियम्, विशिष्टं कुर्वन्ति तदिति च निपातनाद्वैक्रियम्, तदेव कायस्तेन योगो वैक्रियकाययोगः २। तथा चतुर्दशपूर्वविदा तथाविधकार्योत्पत्तौ विशिष्टल-ब्धिवशादाह्रियते=निर्वर्त्यत इत्याहारकम्, अथवा आह्रियन्ते=गृह्यन्ते तीर्थकरादिसमीपे सूक्ष्मा जीवादयः पदार्था अनेनेत्याहारकम्, तदेव कायः, तेन योग आहारककाययोगः ३। तथा औदारिकं मिश्रं यत्र, कार्मणेनेति गम्यते, स भवत्यौदारिकमिश्रः। उत्पत्तिदेशे हि अनन्तरागतो जीवः प्रथमसमये कार्मणेनैवाहारयति ततः परमौदारिकस्यारब्धत्वादौदारिकेण कार्मणमिश्रेणा-हारयति, उक्तं च निर्युक्तिकृता—"जोएण कम्मएणं, आहारेई अणंतरं जीवो। तेण परं मीसेणं, जाव सरीरस्स निप्फत्ती ॥१॥" औदारिकमिश्रश्चासौ कायश्च तेन योग औदारिकमिश्रकाययोगः ४। तथा वैक्रियं मिश्रं यत्र कार्मणेनेति गम्यते स वैक्रियमिश्रः। अयं तु देवनारकाणामपर्याप्तावस्थायां मन्तव्यः। शेषस्तु वाय्वादीनामौदारिक (वैक्रिय) मिश्रो न प्राह्योऽप्रधानत्वादिति ५। तथाऽऽहारकं मिश्रं यत्रौदारिकेणेति गम्यते स आहारकमिश्रः, स एव कायस्तेन योग आहारकमिश्रकाययोगः। यदा सिद्धप्रयोजनश्चतुर्दशपूर्वविदाऽऽहारकं परित्यज्यौदारिकोपादानाय प्रवर्तते तदौदारिकेण मिश्रमाहारकं प्राप्यते। बहुव्यापारत्वेन प्रधान-त्वादाहारकेण व्यपदेश इति भावः। अन्ये त्वस्यापि प्रारम्भकाल एवाहारकमिश्रं प्रतिपद्यन्ते, प्रारभ्यमाणत्वेनाहारकस्य प्राधान्यविवक्षया तेनैव व्यपदेशमिच्छन्तीति हृदयम् ६। तथा कर्मैव कार्मणः, अथ कर्मणो विकारः कार्मणः, उक्तं च—'कम्मविवागो कम्मणमट्ठविहविचित्त-कम्मनिप्फन्नं। सव्वेसि सरीराणं कारणभूयं मुणेयव्वं ॥१॥' कार्मणश्चासौ कायश्च तेन योगः कार्मणकाययोगः ७। 'इय जोगा' इति 'इति' अमुना प्रकारेण योगाः पञ्च-दशापि प्ररूपिता इति शेषः। इति गाथार्थः ॥२४॥

साम्प्रतमेते गत्यादिमार्गणास्थानेषु योज्यन्ते—

(मल०) इह योगशब्देन कारणे कार्योपचारात्तत्सहकारिभूतं मनः प्रभृत्येव विवक्षितमिति तैः सह योगस्य सामानाधिकरण्यम्। तत्र मनश्चतुर्धा, तद्यथा–सत्यं, मृषाः 'मिश्रम्' इति सत्यामृषा असत्यामृषेति। तत्र सत्यमिति सन्तो मुनयः पदार्था वा, तेषु यथासंख्यं मुक्तिप्रापकत्वेन यथावस्थितवस्तुस्वरूपचिन्तनेन च साधु सत्यम्, यथाऽस्ति जीवः सदसद्रूपो देहमात्रव्यापी, इत्यादिरूपतया यथावस्थितवस्तुचिन्तनपरम्। सत्यविपरीतमसत्यम्, यथा नास्ति जीव एकान्तासद्रूपो वा, इत्यादिकुविकल्पनपरम्। सत्यं च मृषा चेति मिश्रम्, यथा धवखदिरपलाशादिमिश्रेषु बहुष्वशोकवृक्षेष्वशोकवनमेवेदमिति विकल्पनपरम्। अत्र हि कतिपयाशोकवृक्षाणां सद्भावात्सत्यता, अन्येषामपि धवादीनां सद्भावादसत्यता, व्यवहारनयमतापेक्षया चैवमुच्यते। परमार्थतः पुनरिदमसत्यमेव, यथाविकल्पितार्थायोगात्। तथा यन्न सत्यं नापि मृषा तदसत्यामृषा। इह विप्रविपत्तौ सत्यां यद्वस्तुप्रतिष्ठाशया सर्वज्ञमतानुसारेण विकल्प्यते, यथाऽस्ति जीवः सदसद्रूप इत्यादि, तत्किल सत्यं परिभाषितम्। यत्पुनर्विप्रतिपत्तौ सत्यां वस्तुप्रतिष्ठाशया सर्वज्ञमतोत्तीर्णं विकल्प्यते, यथा नास्ति जीव एकान्तनित्यो वेति तदसत्यम्, विराधकत्वात्। यत्पुनर्वस्तुप्रतिष्ठाशामन्तरेण स्वरूपमात्रपर्यालोचनपरम्; यथा हे देवदत्त! घटमानय, गां देहि मह्यम्; इत्यादिचिन्तनपरं तदसत्यामृषा। इदं हि स्वरूपमात्रपर्यालोचनपरत्वान्न यथोक्तलक्षणं सत्यं नापि मृषेति, इदमपि व्यवहारनयमतेन द्रष्टव्यम्, निश्चयनयमतेन तु विप्रतारणादिबुद्धिपूर्वकमसत्येऽन्तर्भवति अन्यथा तु सत्ये इति। 'तह वई' इति यथा मनः सत्यादिभेदाच्चतुर्धा तथा वागपि सत्यादिभेदाच्चतुर्धा। 'उरलविउव्वाहारा' इति औदारिकवैक्रियाहारकाणि। तत्रोदारं=प्रधानम्। प्राधान्यं च तीर्थकरगणधरशरीरापेक्षया द्रष्टव्यम्। ततोऽन्यस्यानुत्तरसुरशरीरस्याप्यनन्तगुणहीनरूपत्वादुदारमेवौदारिकम्। विनयादित्वादिकण्। अथवोदारं=सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वाच्छेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रमाणम्। बृहत्ता चास्य वैक्रियमधिकृत्य भवधारणीयसहजशरीरापेक्षया द्रष्टव्या। अन्यथोत्तरवैक्रियं योजनलक्षमानमपि लभ्यत इति। उदारमेवौदारिकम्। प्राग्वदिकण्प्रत्ययः। तथा विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियम्। तथा चतुर्दशपूर्वविदा तीर्थकरस्फातिदर्शनादिकतथाविधप्रयोजनोत्पत्तौ सत्यां विशिष्टलब्धिवशादाह्रियते=निर्वर्त्यत इत्याहारकम्। कृत्यल्युटो बहुलमितिवचनात् कर्मणि वुञ्। यथा पादहारक इत्यत्र। 'मिस्सा' इति मिश्रशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते। औदारिकमिश्रं वैक्रियमिश्रं आहारकमिश्रं च। तत्रौदारिकमिश्रं कार्मणेन, तच्चापर्याप्तावस्थायां केवलिसमुद्घातावस्थायां वा उत्पत्तिदेशे हि पूर्वभवादनन्तरमागतो जीवः प्रथमसमये कार्मणेनैव केवलेनाहारयति, ततः परमौदारिकस्याप्यारब्धत्वादौदारिकेण कार्मणमिश्रेण यावच्छरीरस्य निष्पत्तिः। उक्तं च "जोएण

विद्यते मृषा यत्र तद्सत्यमृषम्, असत्यं च तदमृषं चेति कृताकृतादिवत्कर्मधारयः, आमन्त्रण-प्रज्ञापनादिरूपम्, यथा हे देवदत्त! घटमानय, धर्मं कुरु, भिक्षां देहि इत्यादि। एवंविधं किम्? इत्याह–'मणं' इति मन=श्चित्तं, तथाशब्दो वाक्योपक्षेपार्थः। लिङ्गव्यत्ययेन वाक्चैवं-विधैव चतुर्भेदेत्यर्थः। तथा 'उरलविउव्वाहारा' इति द्वन्द्वैकत्वात्त्रयस्यौदारिकवैक्रियाहारककाययोगाः। तथा 'मीसा' इति एत एवौदारिकादयो मिश्रास्त्रयः। 'कम्मइग' इति प्राकृतत्वात्कार्मणकाययोग इति सप्तविधकाययोगः। तत्रोदारं=प्रधानं, उदारमेवौदारिकम्। प्राधान्यं चेह तीर्थकरगणधरशरीरापेक्षया वेदितव्यम्। ततोऽन्यस्यानुत्तरसुरशरीरस्याप्यनन्तगुणहीनरूपत्वात्। अथवा उदारं=सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वाच्छेषशरीरेभ्यो बृहत्प्रमाणम्, उदारमेवौदारिकम्। बृहत्त्वं चास्य भवधारणीयसहजशरीरापेक्षया मन्तव्यम्। अन्यथा हि उत्तरवैक्रियं लक्षयोजनमानमपि लभ्यत इति। औदारिकमेव चीयमानत्वात्कायः, तेन सहकारिकारणभूतेन तद्विषयो वा योग औदारिककाययोगः १। तथा विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियम्, विशिष्टं कुर्वन्ति तदिति च निपातनाद्वैक्रियम्, तदेव कायस्तेन योगो वैक्रियकाययोगः २। तथा चतुर्दशपूर्वविदा तथाविधकार्योत्पत्तौ विशिष्टलब्धिवशादाह्रियते=निर्वर्त्यत इत्याहारकम्, अथवा आह्रियन्ते=गृह्यन्ते तीर्थकरादिसमीपे सूक्ष्मा जीवादयः पदार्था अनेनेत्याहारकम्, तदेव कायः, तेन योग आहारककाययोगः ३। तथा औदारिकं मिश्रं यत्र, कार्मणेनेति गम्यते, स भवत्यौदारिकमिश्रः। उत्पत्तिदेशे हि अनन्तरागतो जीवः प्रथमसमये कार्मणेनैवाहारयति ततः परमौदारिकस्यारब्धत्वादौदारिकेण कार्मणमिश्रेणाहारयति, उक्तं च निर्युक्तिकृता–"जोएण कम्मएणं, आहारेई अणंतरं जीवो। तेण परं मीसेणं, जाव सरीरस्स निप्फत्ती ॥१॥" औदारिकमिश्रश्चासौ कायश्च तेन योग औदारिकमिश्रकाययोगः ४। तथा वैक्रियं मिश्रं यत्र कार्मणेनेति गम्यते स वैक्रियमिश्रः। अयं तु देवनारकाणामपर्याप्तावस्थायां मन्तव्यः। शेषस्तु वाय्वादीनामौदारिक (वैक्रिय) मिश्रो न ग्राह्योऽप्रधानत्वादिति ५। तथाऽऽहारकं मिश्रं यत्रौदारिकेणेति गम्यते स आहारकमिश्रः, स एव कायस्तेन योग आहारकमिश्रकाययोगः। यदा सिद्धप्रयोजनश्चतुर्दशपूर्वविदाऽऽहारकं परित्यज्यौदारिकोपादानाय प्रवर्तते तदौदारिकेण मिश्रमाहारकं प्राप्यते। बहुव्यापारत्वेन प्रधानत्वादाहारकेण व्यपदेश इति भावः। अन्ये त्वस्यापि प्रारम्भकाल एवाहारकमिश्रं प्रतिपद्यन्ते, प्रारभ्यमाणत्वेनाहारकस्य प्राधान्यविवक्षया तेनैव व्यपदेशमिच्छन्तीति हृदयम् ६। तथा कर्मैव कार्मणः, अथ कर्मणो विकारः कार्मणः, उक्तं च–'कम्मविगारो कम्मणमट्ठविहविचित्तकम्मनिप्फन्नं। सव्वेसि सरीराणं कारणभूयं मुणेयव्वं ॥१॥' कार्मणश्चासौ कायश्च तेन योगः कार्मणकाययोगः ७। 'इय जोगा' इति 'इति' अमुना प्रकारेण योगाः पञ्चदशापि प्ररूपिता इति शेषः। इति गाथार्थः ॥२४॥

नरगइ[1] पणिंदि[2] तस[3] तणु[4] नर[5] अपुम[6] कसाय[10] मइ[11] सु[12] ओहिदुग[14] ।
अच्चक्खु[15] छलेसा[21] भव्व[22] सम्मदुग[24] सन्निसु[25] य सव्वे ॥३६॥

(हारि०) व्याख्या–'नरगइ' इति मनुष्यगतौ १ पञ्चेन्द्रियेषु २ त्रसेषु ३ 'तणु' इति काययोगे ४ 'नर' इति पुरुषवेदे ५ 'अपुम' इति नपुंसकवेदे ६ 'कसाय' इति क्रोध ७ मान ८ माया ९ लोभेषु १० मतिज्ञाने ११ श्रुतज्ञाने १२ 'ओहिदुगे' इति अवधिज्ञाने १३ अवधिदर्शने १४ च । एतेषु समाहारद्वन्द्वः 'अच्चक्खु' इति अचक्षुर्दर्शने १५ 'छलेसा' इति कृष्ण १६ नील १७ कापोत १८ तैजसी १९ पद्म २० शुक्ललेश्यासु २१ भव्येषु २२ सम्म-दुग' इति क्षायोपशमिके २३ क्षायिके २४ संज्ञिषु २५, अत्रापीतरेतरद्वन्द्वः, चशब्दः समुच्चये, 'सव्वे' योगा इति प्रक्रमः, पञ्चदशापि पञ्चविंशतिपदेषु भवन्ति । इति गाथार्थः ॥३६॥

तथा–

(मल०) नरगतौ मनुष्यगतौ. इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियेषु कायद्वारे त्रसकायेषु, योगद्वारे काययोगे, वेदद्वारे पुंवेदनपुंसकवेदयोः, कषायद्वारे चतुर्ष्वपि कषायेषु 'मइसुओहिदुगे' इति ज्ञानद्वारे मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने अवधिज्ञाने, दर्शनद्वारे अवधिदर्शने 'अचक्खु' इति अचक्षुर्दर्शने, लेश्याद्वारे षट्स्वपि लेश्यासु, भव्यद्वारे भव्येषु 'सम्मदुग' इति सम्यक्त्वद्वारे क्षायोपशमिके क्षायिके च, संज्ञिद्वारे संज्ञिषु' पञ्चदशापि योगा भवन्ति । सुज्ञानत्वाच्च नेह भावना क्रियते ॥३६॥

एगिंदिएसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।
कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(हारि०) व्याख्या–एकेन्द्रियेषु पञ्चैव योगा इति प्रक्रमः । तुशब्द एवकारार्थः, स च योजित एव । के एते ? युगलशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात्कार्मणवैक्रिययुगलौदारिकयुगलानि, अत्र तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, वैक्रियद्विकं बादरपर्याप्तकवायुकायिकापेक्षम्, तथा कार्मणौदारिकद्विकमिति द्वन्द्वः, अन्त्यभाषा चेति 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रिय-रूपेषु प्रत्येकं चत्वारो योगा इति प्रक्रमः । इतिशब्दो वाक्यसमाप्तौ । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, अन्त्यभाषाऽसत्यामृषालक्षणा इति गाथार्थः। ।३७।

तथा–

(मल०) एकेन्द्रियेषु पञ्च योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह-'कम्मइगविउव्विउरल-जुयलाणि' इति कार्मणमौदारिकयुगलं वैक्रिययुगलं च । तत्र कार्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्ति-प्रथमसमये च औदारिकमिश्रमपर्याप्तावस्थायां, पर्याप्तावस्थायां त्वौदारिकम् । वैक्रिययुगलं बाद-रपर्याप्तवायुकायिकस्य तस्य तल्लब्धिसंभवात् । तथा 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रिय-लक्षणेषु कार्मणौदारिकद्विकान्तिमभाषारूपाश्चत्वारो योगा भवन्ति । तत्र कार्मणौदारिकद्विकभा-वना प्राग्वत् । अन्तिमभाषा चासत्यामृषारूपा, शेषा तु भाषा तेषां न संभवत्येव, "विगलेसु असच्चमोसेव" इतिवचनात् ॥३७॥

कम्मएणं, आहारेई अणंतरं जीवो। तेण परं मीसेणं, जाव सरीरस्स निप्फत्ती ॥१॥" केवलिसमुद्घातावस्थायां तु द्वितीयषष्ठसप्तमसमयेषु कार्मणेन मिश्रमौदारिकं प्रतीतमेव। तथा वैक्रियमिश्रं कार्मणेन औदारिकेण वा। तत्कार्मणेन मिश्रं देवनारकाणामपर्याप्तावस्थायां प्रथमसमयादनन्तरं द्रष्टव्यम्। बादरपर्याप्तकवायोः पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां च वैक्रियलब्धिमतां वैक्रियारम्भकाले वैक्रियपरित्यागकाले वा औदारिकेणेति। तथा सिद्धप्रयोजनस्य चतुर्दशपूर्वविद आहारकं परित्यजत औदारिकमुपपादनस्य आहारकं वा प्रारभमाणस्याहारकमिश्रमौदारिकेण द्रष्टव्यम्। **'कम्मइग'** इति कर्मैव कार्मणम्। प्रज्ञादित्वादण्। संसार्यात्मनां गत्यन्तरसंक्रमणे साधकतमं करणम्। **'इय जोगा'** इतिः परिसमाप्तिवचनः। ततोऽयमर्थः—एते एव योगा नान्ये इति। ननु तैजसमपि शरीरं विद्यते तदुक्ताहारपरिणमनहेतुः, यद्वशाद्वा विशिष्टतपोविशेषसमुत्थलब्धिविशेषस्य पुंसस्तेजोलेश्याविनिर्गमः तत्कथम्?, उच्यते, एत एव योगा इति नैष दोषः, सदा कार्मणेन सहाव्यभिचारितया तस्य तद्ग्रहेणैव गृहीतत्वादिति ॥३४॥

उक्ताः स्वरूपतो योगाः, साम्प्रतमेतानेव मार्गणास्थानेषु चिन्तयन्नाह—

एकारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया।
जोगा तिरियगईए तेरस आहारगदुगूणा ॥३५॥

(हारि०) व्याख्या—एकादशेति संख्या योगा इति योगः। किं स्वरूपास्ते? इत्याह—**'आहारकद्विकौदारिकद्विकरहिताः'** द्विकशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते कयोः,? **सुरनारकगत्योः'** सुराणां नारकाणां चैकादश योगा इत्यर्थः। आहारकद्विकं यतेरेव। औदारिकद्विकं तु नरतिरश्चामेवेतिकृत्वेति तद्वर्जनम्। तथा तिर्यग्गतौ त्रयोदश योगा इति प्राक्तनेन संबन्धः। कीदृशास्ते? इत्याह—आहारकद्विकोनाः, भावना तु पूर्ववत् इति गाथार्थः ॥३५॥

सम्प्रत्येकगाथया पञ्चविंशतिपदेषु पञ्चदशापि योगान् संगृह्य लाघवार्थमाह—

(मल०) सुरगतौ नरकगतौ च प्रत्येकमाहारकद्विकौदारिकद्विकरहिताः शेषा एकादश मनोयोगचतुष्ट ४ वाग्योगचतुष्टय ८ वैक्रिय ९ वैक्रियमिश्र १० कार्मण ११ लक्षणा योगा भवन्ति। तत्र कार्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्तिप्रथमसमये च, वैक्रियमिश्रमपर्याप्तावस्थायाम्, पर्याप्तवस्थायां तु वैक्रियम्, मनोयोगचतुष्टयं वाग्योगचतुष्टयं च पर्याप्तावस्थायां सुप्रतीतमेव। यदा-ऽऽहारकद्विकमाहारकतन्मिश्रलक्षणं तन्न संभवत्येव, तत्र सर्वविरत्यभावात्। सर्वविरतस्य हि चतुर्दशपूर्वविदिन आहारकद्विकं संभवति—**"आहारं चउदसपुव्विणो उ"** इत्यादिवचनप्रामाण्यात्। औदारिकद्विकमप्यौदारिकतन्मिश्रलक्षणं नरतिरश्चामेवोपपद्यते, न देवनारकाणामिति। तथा तिर्यग्गतौ आहारकद्विकेन आहारकतन्मिश्रलक्षणेन ऊना=हीनाः शेषास्त्रयोदश भवन्ति। तत्रैकादश पूर्वोक्ता एव तिरश्चामपि केषांचिद्वैक्रियलब्धियोगतो वैक्रियद्विकसंभवात्केवलमौदारिकद्विकमधिकमिह प्रक्षिप्यते ॥३५॥

नरगइ[1] पणिंदि[2] तस[3] तणु[4] नर[5] अपुम[6] कसाय[10] मइ[11] सु ओहिदुगे ।
अच्चक्खु[15] छलेसा[21] भव्व[22] सम्मदुग[24] सन्निसु[25] य सव्वे ॥३६॥

(हारि०) व्याख्या–'नरगइ' इति मनुष्यगतौ १ पञ्चेन्द्रियेषु २ त्रसेषु ३ 'तणु' इति काययोगे ४ 'नर' इति पुरुषवेदे ५ 'अपुम' इति नपुंसकवेदे ६ 'कसाय' इति क्रोध ७ मान ८ माया ९ लोभेषु १० मतिज्ञाने ११ श्रुतज्ञाने १२ 'ओहिदुगे' इति अवधिज्ञाने १३ अवधिदर्शने १४ च । एतेषु समाहारद्वन्द्वः 'अचक्खु' इति अचक्षुर्दर्शने १५ 'छलेसा' इति कृष्ण १६ नील १७ कापोत १८ तैजसी १९ पद्म २० शुक्ललेश्यासु २१ भव्येषु २२ 'सम्मदुग' इति क्षायोपशमिके २३ क्षायिके २४ संज्ञिषु २५, अत्रापीतरेतरद्वन्द्वः, चशब्दः समुच्चये, 'सव्वे' योगा इति प्रक्रमः, पञ्चदशापि पञ्चविंशतिपदेषु भवन्ति । इति गाथार्थः ॥३६॥

तथा–

(मल०) नरगतौ मनुष्यगतौ. इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियेषु कायद्वारे त्रसकायेषु, योगद्वारे काययोगे, वेदद्वारे पुंवेदनपुंसकवेदयोः, कषायद्वारे चतुर्ष्वपि कषायेषु 'मइसुओहिदुगे' इति ज्ञानद्वारे मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने अवधिज्ञाने, दर्शनद्वारे अवधिदर्शने 'अचक्खु' इति अचक्षुर्दर्शने, लेश्याद्वारे षट्स्वपि लेश्यासु, भव्यद्वारे भव्येषु 'सम्मदुग' इति सम्यक्त्वद्वारे क्षायोपशमिके क्षायिके च, संज्ञिद्वारे संज्ञिषु' पञ्चदशापि योगा भवन्ति । सुज्ञानत्वाच्च नेह भावना क्रियते ॥३६॥

एगिंदिएसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।
कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(हारि०) व्याख्या–एकेन्द्रियेषु पञ्चैव योगा इति प्रक्रमः । तुशब्द एवकारार्थः, स च योजित एव । के एते ? युगलशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात्कार्मणवैक्रिययुगलौदारिकयुगलानि, अत्र तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, वैक्रियद्विकं बादरपर्याप्तकवायुकायिकापेक्षम्, तथा कार्मणौदारिकद्विकमिति द्वन्द्वः, अन्त्यभाषा चेति 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियरूपेषु प्रत्येकं चत्वारो योगा इति प्रक्रमः । इतिशब्दो वाक्यसमाप्तौ । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, अन्त्यभाषाऽसत्यामृषालक्षणा इति गाथार्थः ॥३७॥

तथा–

(मल०) एकेन्द्रियेषु पञ्च योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह-'कम्मइगविउव्विउरलजुयलाणि' इति कार्मणमौदारिकयुगलं वैक्रिययुगलं च । तत्र कार्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्तिप्रथमसमये च औदारिकमिश्रमपर्याप्तावस्थायां, पर्याप्तावस्थायां त्वौदारिकम् । वैक्रिययुगलं बादरपर्याप्तवायुकायिकस्य तस्य तल्लब्धिसंभवात् । तथा 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियलक्षणेषु कार्मणौदारिकद्विकान्तिमभाषारूपाश्चत्वारो योगा भवन्ति । तत्र कार्मणौदारिकद्विकभावना प्राग्वत् । अन्तिमभाषा चासत्यामृषारूपा, शेषा तु भाषा तेषां न संभवत्येव, "विगलेसु असच्चमोसेव" इतिवचनात् ॥३७॥

कम्मएणं, आहारेई अणंतरं जोवो। तेण परं मीसेणं, जाव सरीरस्स निप्फत्ती ॥१॥'' केवलिसमुद्घातावस्थायां तु द्वितीयषष्ठसप्तमसमयेषु कार्मणेन मिश्रमौदारिकं प्रतीतमेव। तथा वैक्रियमिश्रं कार्मणेन औदारिकेण वा। तत्कार्मणेन मिश्रं देवनारकाणामपर्याप्तावस्थायां प्रथमसमयादनन्तरं द्रष्टव्यम्। बादरपर्याप्तकवायोः पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां च वैक्रियलब्धिमतां वैक्रियारम्भकाले वैक्रियपरित्यागकाले वा औदारिकेणेति। तथा सिद्धप्रयोजनस्य चतुर्दशपूर्वविद आहारकं परित्यजत औदारिकमुपपादनस्य आहारकं वा प्रारभमाणस्याहारकमिश्रमौदारिकेण द्रष्टव्यम्। **'कम्मइग'** इति कर्मैव कार्मणम्। प्रज्ञादित्वादण्। संसार्यात्मनां गत्यन्तरसंक्रमणे साधकतमं करणम्। **'इय जोगा'** इतिः परिसमाप्तिवचनः। ततोऽयमर्थः–एते एव योगा नान्ये इति। ननु तैजसमपि शरीरं विद्यते तदुक्ताहारपरिणमनहेतुः, यद्वशाद्वा विशिष्टतपोविशेषसमुत्थलब्धिविशेषस्य पुंसस्तेजोलेश्याविनिर्गमः तत्कथम्?, उच्यते, एत एव योगा इति नैष दोषः, सदा कार्मणेन सहाव्यभिचारितया तस्य तद्ग्रहेणैव गृहीतत्वादिति ॥३४॥

उक्ताः स्वरूपतो योगाः, साम्प्रतमेतानेव मार्गणास्थानेषु चिन्तयन्नाह—

एकारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया।
जोगा तिरियगईए तेरस आहारगदुगूणा ॥३५॥

(हारि०) व्याख्या–एकादशेति संख्या योगा इति योगः। किं स्वरूपास्ते? इत्याह–**'आहारकद्विकौदारिकद्विकरहिताः'** द्विकशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते कयोः? **सुरनारकगत्योः'** सुराणां नारकाणां चैकादश योगा इत्यर्थः। आहारकद्विकं यतेरेव। औदारिकद्विकं तु नरतिरश्चामेवेतिकृत्वेति तद्वर्जनम्। तथा तिर्यग्गतौ त्रयोदश योगा इति प्राक्तनेन संबन्धः। कीदृशास्ते? इत्याह–आहारकद्विकोनाः, भावना तु पूर्ववत् इति गाथार्थः ॥३५॥

सम्प्रत्येकगाथया पञ्चविंशतिपदेषु पञ्चदशापि योगान् संगृह्य लाघवार्थमाह—

(मल०) सुरगतौ नरकगतौ च प्रत्येकमाहारकद्विकौदारिकद्विकरहिताः शेषा एकादश मनोयोगचतुष्ट ४ वाग्योगचतुष्टय ८ वैक्रिय ९ वैक्रियमिश्र १० कार्मण ११ लक्षणा योगा भवन्ति। तत्र कार्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्तिप्रथमसमये च, वैक्रियमिश्रमपर्याप्तावस्थायाम्, पर्याप्तवस्थायां तु वैक्रियम्, मनोयोगचतुष्टयं वाग्योगचतुष्टयं च पर्याप्तावस्थायां सुप्रतीतमेव। यदा-ऽऽहारकद्विकमाहारकतन्मिश्रलक्षणं तन्न संभवत्येव, तत्र सर्वविरत्यभावात्। सर्वविरतस्य हि चतुर्दशपूर्ववेदिन आहारकद्विकं संभवति–**"आहारं चउदसपुव्विणो उ"** इत्यादिवचनप्रामाण्यात्। औदारिकद्विकमप्यौदारिकतन्मिश्रलक्षणं नरतिरश्चामेवोपपद्यते, न देवनारकाणामिति। तथा तिर्यग्गतौ आहारकद्विकेन आहारकतन्मिश्रलक्षणेन ऊना=हीनाः शेषास्त्रयोदश भवन्ति। तत्रैकादश पूर्वोक्ता एव तिरश्चामपि केषांचिद्वैक्रियलब्धियोगतो वैक्रियद्विकसंभवात्केवलमौदारिकद्विकमधिकमिह प्रक्षिप्यते ॥३५॥

नरगइ[1] पणिंदि[2] तस[3] तणु[4] नर[5] अपुम[6] कसाय[10] मइ[11] सु[12] ओहिदुगे[14] ।
अच्चक्खु[15] छलेसा[21] भव्व[22] सम्मदुग[24] सन्निसु[25] य सव्वे ॥३६॥

(हारि०) व्याख्या—'नरगइ' इति मनुष्यगतौ १ पञ्चेन्द्रियेषु २ त्रसेषु ३ 'तणु' इति काययोगे ४ 'नर' इति पुरुषवेदे ५ 'अपुम' इति नपुंसकवेदे ६ 'कसाय' इति क्रोध ७ मान ८ माया ९ लोभेषु १० मतिज्ञाने ११ श्रुतज्ञाने १२ 'ओहिदुगे' इति अवधिज्ञाने १३ अवधिदर्शने १४ च । एतेषु समाहारद्वन्द्वः 'अचक्खु' इति अचक्षुर्दर्शने १५ 'छलेसा' इति कृष्ण १६ नील १७ कापोत १८ तैजसी १९ पद्म २० शुक्ललेश्यासु २१ भव्येषु २२ सम्म-दुग' इति क्षायोपशमिके २३ क्षायिके २४ संज्ञिषु २५, अत्रापीतरेतरद्वन्द्वः, चशब्दः समुच्चये, 'सव्वे' योगा इति प्रक्रमः, पञ्चदशापि पञ्चविंशतिपदेषु भवन्ति । इति गाथार्थः ॥३६॥

तथा—

(मल०) नरगतौ मनुष्यगतौ. इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियेषु कायद्वारे त्रसकायेषु, योगद्वारे काययोगे, वेदद्वारे पुंवेदनपुंसकवेदयोः, कषायद्वारे चतुर्ष्वपि कषायेषु 'मइसुओहिदुगे' इति ज्ञानद्वारे मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने अवधिज्ञाने, दर्शनद्वारे अवधिदर्शने 'अचक्खु' इति अचक्षुर्द-र्शने, लेश्याद्वारे षट्स्वपि लेश्यासु, भव्यद्वारे भव्येषु 'सम्मदुग' इति सम्यक्त्वद्वारे क्षायोपशमिके क्षायिके च, संज्ञिद्वारे संज्ञिषु' पञ्चदशापि योगा भवन्ति । सुज्ञानत्वान्न नेह भावना क्रियते ॥३६॥

एगिंदिएसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।
कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(हारि०) व्याख्या—एकेन्द्रियेषु पञ्चैव योगा इति प्रक्रमः । तुशब्द एवकारार्थः, स च योजित एव । के एते ? युगलशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धात्कार्मणवैक्रिययुगलौदारिकयुगलानि, अत्र तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, वैक्रियद्विकं बादरपर्याप्तकवायुकायिकापेक्षम्, तथा कार्मणौदारिकद्विकमिति द्वन्द्वः, अन्त्यभाषा चेति 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रिय-रूपेषु प्रत्येकं चत्वारो योगा इति प्रक्रमः । इतिशब्दो वाक्यसमाप्तौ । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, अन्त्यभाषाऽसत्यामृषालक्षणा इति गाथार्थः। ।३७॥

तथा—

(मल०) एकेन्द्रियेषु पञ्च योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह-'कम्मइगविउव्विउरल-जुयलाणि' इति कार्मणमौदारिकयुगलं वैक्रिययुगलं च । तत्र कार्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्ति-प्रथमसमये च औदारिकमिश्रमपर्याप्तावस्थायां, पर्याप्तावस्थायां त्वौदारिकम् । वैक्रिययुगलं बाद-रपर्याप्तवायुकायिकस्य तस्य तल्लब्धिसंभवात् । तथा 'विकलेषु' विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रिय-लक्षणेषु कार्मणौदारिकद्विकान्तिमभाषारूपाश्चत्वारो योगा भवन्ति । तत्र कार्मणौदारिकद्विकभा-वना प्राग्वत् । अन्तिमभाषा चासत्यामृषारूपा, शेषा तु भाषा तेषां न संभवत्येव, "विगलेसु असच्चमोसेव" इतिवचनात् ॥३७॥

कम्मुरलदुगं थावरकाए वाए विउव्विजुयलजुयं ।
पढमंतिममणवइदुगकम्मुरलदु केवलदुगंमि ॥३८॥

(हारि०) व्याख्या–कार्मणौदारिकद्विकम्, अत्र समाहारद्वन्द्वः । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, औदारिकद्विकं त्वौदारिकशरीरतन्मिश्रलक्षणमिति त्रयो योगाः । क ? इत्याह–'स्थावरकाये' पृथिव्यम्बुतेजोवनस्पतिरूपे । तथा 'वायौ' वायुकायिके प्राक्तनत्रयं स्थावरकायसत्कं वैक्रिययुगलयुतमिति पञ्च योगा वायुकाये । वैक्रियद्विकभावना तु प्राग्वदिति । तथा विभक्तिलोपात्प्रथमान्त्यमनोवाग्द्विककार्मणौदारिकद्विकमिति कर्मधारयगर्भो द्वन्द्व इति योगसप्तकं 'केवलद्विके' केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे भवति । तत्र सत्यासत्यमृषारूपं मनोद्वयम् २ एवं वाग्द्वयमपि २ । औदारिकं च सर्वदैव, कार्मणौदारिकमिश्रद्वयं तु केवलिसमुद्घाते, उक्तं च–'**औदारिकप्रयोक्ता, प्रथमाष्टमसमययोरसाविष्टः । मिश्रौदारिकयोक्ता, सप्तमषष्ठद्वितीयेषु ॥१॥ कार्मणशरीरयोगी चतुर्थके पञ्चमे तृतीये च । समयत्रयेऽपि तस्मिन्, भवत्यनाहारको नियमात् ॥२॥**" इति गाथार्थः ॥३८॥

साम्प्रतं प्रथमार्द्धेन पदनवके आहारकद्विकवर्जत्रयोदशयोगान्, द्वितीयार्द्धेन पदषट्के औदारिकमिश्रकार्मणवर्जत्रयोदशयोगानेव च संगृह्णाह—

(मल०) कार्मणमौदारिकतन्मिश्रलक्षणम् , इत्येते त्रयो योगा '**स्थावरकाये**' पृथिव्यप्तेजोवनस्पतिलक्षणे भवन्ति, भावना प्राग्वत् , न शेषा, असंभवात् । तथा वातकाये तदेव पूर्वोक्तं त्रिकं '*वैक्रिययुगलयुत*' वैक्रियतन्मिश्रसहितं द्रष्टव्यम्, तस्य बादरपर्याप्तस्य सतः कस्यचिद् वैक्रियलब्धिसंभवात् । ननु च कथमुच्यते कस्यचिद्वैक्रियलब्धिसंभवः ? यावता सर्वोऽपि बादरपर्याप्तो वायुकायिकः स वैक्रिय एव, अवैक्रियस्य चेष्टाया एवाप्रवृत्तेः. तदुक्तम्–**सव्वे वेउव्विया वाया वायंति अवेउव्वियाणं चेट्ठा चेव न पवत्तइ**" इति, तदयुक्तम्, अवैक्रियाणामपि तेषां स्वभावत एव तथाचेष्टोपपत्तेः, उक्तं च–"**जेण सव्वेसु चेव लोगागासाइसु चला वायवो वायंति तम्हा अवेउव्वियावि वाया वायंति त्ति घेत्तव्वं सभावओ तेसिं वाइयव्व**" इति वानाद्वायुरितिकृत्वा । तथाऽन्यत्राप्युक्तम्–"**तत्थ ताव तिण्हं रासीणं वेउव्वियलद्धी चेव नत्थि । बायरपज्जत्ताणपि असंखिज्जइभागमेत्ताणं लद्धी अत्थि त्ति तिण्हं रासीणं**" इति । त्रयाणां राशीनां पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मापर्याप्तबादरवायुकायिकानाम् । तथा **केवलद्विके**' केवलज्ञानदर्शनरूपे सप्त योगा भवन्ति । के ते ? इत्याह–"**पढमंतिममणवइदुगकम्मुरलदु**" इति प्रथमान्तिमरूपं मनोद्विकं सत्यमनः असत्यामृषामनश्च, वाग्द्विकं प्रथमान्तिमरूपं सत्या असत्यामृषा च भाषा, शेषस्य मनोद्विकस्य वाग्द्विकस्य चासंभवाच्छद्मस्थविरहितत्वात् । औदारिककाययोगः सयोग्यवस्थायां तस्यामेव चावस्थायां समुद्घातगतस्य कार्मणौदारिकमिश्रलक्षणयोगद्वयसंभव इति ॥३८॥

थीवेअ १ न्नाणो ४ वसम ५ अजय ६ सासण ७ अभव्व ८ मिच्छेसु ९ ।
तेरस मण १ वइ २ मणनाण ३ छेय ४ सामइय ५ चक्खुसु ६ य ॥२९॥

(हारि०) व्याख्या—स्त्रीवेदे १ मत्यज्ञाने २ श्रुताज्ञाने ३ विभङ्गज्ञाने ४ औपशमिकसम्यक्त्वे ५ 'अजय' इति अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके ६ सासादने ७ अभव्ये ८ मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके ९ अत्र द्वन्द्वः, आहारकद्विकवर्जास्त्रयोदश योगा भवन्त्येतेषु नवसु स्थानेषु चतुर्दशपूर्वधरत्वाभावेनाहारकद्विकाभावो भावनीयः । तद्यथा—मनोयोगे १ वाग्योगे २ मनःपर्यायज्ञाने ३ छेदोपस्थापनीयसंयमे ४ सामायिकसंयमे ५ 'चक्खुसु' इति चक्षुर्दर्शने च ६ द्वन्द्वः, चशब्दः समुच्चये, न केवलं प्राक्तनपदनवके त्रयोदश योगाः, किन्तु मनोयोगादिपदषट्के चात्रापर्याप्तकाभावादौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगवर्जत्रयोदशयोगा भवन्तीति । अत्रायं गर्भार्थः—इह वर्जनीययोगद्वयं द्वयोरपि पदकदम्बयोर्भिन्नं भिन्नं मिश्नविभक्तिनिर्देशादेवैतदर्थमेव तन्मध्ये त्रयोदशशब्दस्य प्रक्षेपो विहितः । वर्जनीययोगद्वयं च सुज्ञानात्वात्सूत्रे सूत्रकृता नोक्तम् । इति गाथार्थः ॥२९॥

तथा—

(मल०) वेदद्वारे स्त्रीवेदे, ज्ञानद्वारे अज्ञाने मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणे, सम्यक्त्वद्वारे औपशमिकसम्यक्त्वे, अयते विरतिहीने, सासादने, अभव्ये, मिथ्यात्वे च आहारकद्विकहीनाः शेषास्त्रयोदश योगा भवन्ति । यत्त्वाहारकद्विकं तदेतेषु न संभवत्येव, यतस्तच्चतुर्दशपूर्वविदो भवति—"आहारदुगं जायइ चउदसपुव्विण" इति वचनात् । तानि चतुर्दशापि पूर्वाण्यज्ञानाऽयतसासादनाऽभव्यमिथ्यादृष्टिषु दूरतोऽपास्तानि । स्त्रीवेदश्चेह द्रव्यरूपो द्रष्टव्यः, न तु तथारूपाध्यवसायलक्षणो भावरूपः, तयाविवक्षणात् । एवमुपयोगमार्गणायामपि द्रष्टव्यम् । प्राक्तु गुणस्थानकमार्गणायां सर्वोऽपि वेदो भावरूपो गृहीतः, तथा विवक्षणादेव । अन्यथा तेषु यथोक्तगुणस्थानकनवकसंख्यानायोगात्सयोगिकेवल्यादावपि द्रव्यवेदस्य भावात् । द्रव्यवेदश्च बाह्यमाकारमात्रम्, तत्कृतः स्त्रीवेदे चतुर्दशपूर्वाधिगमसंभवः । यत आहारकद्विकं तत्रोपपद्यते, स्त्रीणामागमे दृष्टिवादाध्ययनप्रतिषेधात्, तदुक्तम्—"तुच्छा गारवबहुला, चलिंदिया दुब्बला य धीईए । इय अइसेसज्झयणा, भूयावाओ उ नो त्थीणं ॥१॥" इति । 'भूयावाओ' इति भूतवादो=दृष्टिवादः । तथा औपशमिकसम्यक्त्वं प्रथमसम्यक्त्वोत्पादकाले उपशमश्रेण्यारोहे वा, न च सम्यक्त्वोपादकाले चतुर्दशपूर्वाधिगमसंभवः, तदभावाच्च कथमाहारकद्विकभावः ? श्रेण्यारूढस्त्वाहारकं नारभत एव, तस्याप्रमत्तत्वात् । आहारकारम्भकस्य तु लब्ध्युपजीवनेनौत्सुक्यभावतः प्रमादबहुल-

१ "जोगा-ऽऽहारदुगूणा तेरस थीमाइनवसु दारेसु । ओरालमिस्सकम्मणरहिया मणमाइछच्चेवि ॥ ॥" इति गाथा-ऽधिकतयाऽदृश्यतेहस्तलिखितप्रतौ ।

[1]थीवेअ १ न्नाणो ४ वसम ५ अजय ६ सासण ७ अभव्व ८ मिच्छेसु ९ ।
तेरस मण १ वइ २ मणनाण ३ छेय ४ मामइय ५ चक्खुसु ६ य ॥३१॥

(हारि०) व्याख्या—स्त्रीवेदे १ मत्यज्ञाने २ श्रुताज्ञाने ३ विभङ्गज्ञाने ४ औपशमिकसम्यक्त्वे ५ 'अजय' इति अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके ६ सासादने ७ अभव्ये ८ मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके ९ अत्र द्वन्द्वः, आहारकद्विकवर्जास्त्रयोदश योगा भवन्त्येतेषु नवसु स्थानेषु चतुर्दशपूर्वधरत्वाभावेनाहारकद्विकाभावो भावनीयः। तद्यथा—मनोयोगे १ वाग्योगे २ मनःपर्यायज्ञाने ३ छेदोपस्थापनीयसंयमे ४ सामायिकसंयमे ५ 'चक्खुसु' इति चक्षुर्दर्शने च ६ द्वन्द्वः, चशब्दः समुच्चये, न केवलं प्राक्तनपदनवके त्रयोदश योगाः, किन्तु मनोयोगादिपदषट्के चात्रापर्याप्तकाभावादौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगवर्जत्रयोदशयोगा भवन्तीति। अत्रायं गर्भार्थः—इह वर्जनीययोगद्वयं द्वयोरपि पदकदम्बयोर्भिन्नं भिन्नं भिन्नविभक्तिनिर्देशादेवैतदर्थमेव तन्मध्ये त्रयोदशशब्दस्य प्रक्षेपो विहितः। वर्जनीययोगद्वयं च सुज्ञानात्वात्सूत्रे सूत्रकृता नोक्तम्। इति गाथार्थः ॥३१॥

तथा—

(मल०) वेदद्वारे स्त्रीवेदे, ज्ञानद्वारे अज्ञाने मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणे, सम्यक्त्वद्वारे औपशमिकसम्यक्त्वे, अयते विरतिहीने, सासादने, अभव्ये, मिथ्यात्वे च आहारकद्विकहीनाः शेषास्त्रयोदश योगा भवन्ति। यत्त्वाहारकद्विकं तदेतेषु न संभवत्येव, यतस्तच्चतुर्दशपूर्वविदो भवति—"आहारदुगं जायइ चउदसपुव्विण" इति वचनात्। तानि चतुर्दशापि पूर्वाण्यज्ञानाऽयतसासादनाऽभव्यमिथ्यादृष्टिषु दूरतोऽपास्तानि। स्त्रीवेदश्चेह द्रव्यरूपो द्रष्टव्यः, न तु तथारूपाध्यवसायलक्षणो भावरूपः, तथाविवक्षणात्। एवमुपयोगमार्गणायामपि द्रष्टव्यम्। प्राक्तु गुणस्थानकमार्गणायां सर्वोपि वेदो भावरूपो गृहीतः, तथा विवक्षणादेव। अन्यथा तेषु यथोक्तगुणस्थानकनवकसंख्यानायोगात्सयोगिकेवल्यादावपि द्रव्यवेदस्य भावात्। द्रव्यवेदश्च बाह्यमाकारमात्रम्, तत्कृतः स्त्रीवेदे चतुर्दशपूर्वाधिगमसंभवः। यत आहारकद्विकं तत्रोपपद्यते, स्त्रीणामागमे दृष्टिवादाध्ययनप्रतिषेधात्, तदुक्तम्—"तुच्छा गारवबहुला, चलिंदिया दुब्बला य धीईए। इय अइसेसज्झयणा, भूयावादो उ नोत्थीणं ॥१॥" इति। 'भूयावादो' इति भूतवादो—दृष्टिवादः। तथा औपशमिकसम्यक्त्वं प्रथमसम्यक्त्वोत्पादकाले उपशमश्रेण्यारोहे वा, न च सम्यक्त्वोपादकाले चतुर्दशपूर्वाधिगमसंभवः, तदभावाच्च कथमाहारकद्विकभावः? श्रेण्यारूढस्त्वाहारकं नारभत एव, तस्याप्रमत्तत्वात्। आहारकारम्भकस्य तु लब्ध्युपजीवनेनौत्सुक्यभावतः प्रमादबहुल-

[1] "जोगा-ऽऽहारदुगूणा तेरस थीमाइनवसु दारेसु। ओरालमिस्सकम्मणरहिया मणमाइछण्हंपि ॥ ॥" इति गाथा-ऽधिकतयाऽऽदृश्यतेहस्तलिखितप्रतौ।

त्वात्, अत एवोक्तमन्यत्र–"आहारगं पमत्तो उप्पाएइ न अप्पमत्तो" इति। आहारकस्थितश्चोपशमश्रेणिं नारभत एव, तथास्वभावत्वात्। औदारिकमिश्रं चेह सासादनभावाभिमुखस्य कदाचित्कालकरणसंभवादवसेयमिति। 'मणवइ' इत्यादि मनोयोगे वाग्योगे मनःपर्यायज्ञाने छेदोपस्थापने सामायिके चक्षुर्दर्शने च कार्मणौदारिकमिश्रवर्जाः शेषास्त्रयोदश योगा भवन्ति कार्मणौदारिकमिश्रयोगौ तु तेषु न संभवत एव, तयोरपर्याप्तावस्थायां भावात् एतेषां तु मनोयोगादीनां तस्यामवस्थायामसंभवात् ॥३६॥

परिहारे सुहुमे नव, उरल १ वइ २ मणा ३ ते सकम्मुरलमिस्सा।
अहखाए सविउव्वा, मीसे देसे सविउविदुगा ॥४०॥

(हारि०) व्याख्या–परिहारविशुद्धिके तृतीयसंयमे सूक्ष्मसंपराये च चतुर्थसंयमे, अत्र समाहारद्वन्द्वः। औदारिकवाग्मनांसीति द्वन्द्वः। औदारिककाययोगो वाक्चतुष्टयं मनश्चतुष्टयं च इति प्रत्येकं नव योगा भवन्ति। तथा 'ते' पूर्वोक्ता नव 'सकार्मणौदारिकमिश्राः' कार्मणकाययोगौदारिकमिश्रयोगयुक्ता एकादश योगा 'यथाख्याते' पञ्चमे संयमे भवन्ति। यथाख्यातसंयमश्चान्त्यगुणस्थानकचतुष्के प्राप्यते, ततः कार्मणौदारिकमिश्रयोगद्वयं केवलिसमुद्घाते प्राग्वद् द्रष्टव्यम्। उपशान्तक्षीणमोहयोस्तु नव नव योगा भवन्ति। अयोगिनि पुनः सर्वयोगाभाव एवेति तात्पर्यम्। तथा 'सविउव्वा मीसे' इति तच्छब्दः पूर्वोक्तोऽत्राप्यनुवर्तते, ततस्ते पूर्वोक्ताः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायसत्का नव योगा सवैक्रियाः सवैक्रियशरीरा दशेत्यर्थः, क? इत्याह–'मिश्रे' मिश्रगुणस्थानके। इदं च वैक्रियं देवनारकापेक्षम्। तथा 'देसे सविउविदुगा' इति देशे देशविरते गुणस्थानके, अत्रापि तच्छब्दोऽनुवर्तनीयः। ततस्ते पूर्वोक्ता नव सवैक्रियद्विका वैक्रियशरीरतन्मिश्रान्विता इत्येकादश योगा भवन्ति। वैक्रियद्विकं च यथासंभवं लब्धौ सत्यां देशविरताः कुर्वन्ति। इति गाथार्थः ॥४०॥

तथा—

(मल०) परिहारविशुद्धिके सूक्ष्मसंपराये च संयमे नव योगा भवन्ति। के ते? इत्याह–'उरलवइमणा' औदारिकं चतुर्धा वाक् चतुर्धा मनश्च। यस्वाहारकद्विकं वैक्रियद्विकं कार्मणमौदारिकमिश्रं च तत्र संभवत्येव। तथाहि, आहारकद्विकं चतुर्दशपूर्ववेदिनः। परिहारविशुद्धिकसंयमोपेतश्चोत्कर्षतोऽप्यधीतकिंचिन्न्यूनदशपूर्व एव, उत्कर्षतोऽपि तावदधीतश्रुतस्यैव तत्संयमप्रतिपत्त्यभ्यनुज्ञानात्, तत्कथं तस्याहारकद्विकसंभवः? नापि तस्य वैक्रियद्विकसंभवः, तस्यामवस्थायां तत्करणाननुज्ञानात् जिनकल्पिकस्येव, तस्याप्यत्यन्तविशुद्धाप्रमादमूलघोरानुष्ठानपरायणत्वात्, वैक्रियारम्भे च लब्ध्युपजीवनेनौत्सुक्यभावतः प्रमादसंभवात्। अत एव सूक्ष्मसंपराय संयमेऽपि चतुर्णामपि योगानामभावः, तत्संयमोपेतस्याप्यत्यन्तविशुद्धतया निस्तरङ्गमहोदधिक-

ल्पत्वेन वैक्रियाद्यारम्भासंभवात् । कार्मणमौदारिकमिश्रं चापर्याप्तावस्थायामेवेति संयमद्वयेऽपि तस्याभावः । तथा यथाख्यातसंयमे त एव नव पूर्वोक्ता योगाः कार्मणौदारिकमिश्रसहिताः सन्त एकादश भवन्ति । यथाख्यातसंयमो हि केवलिनोऽपि भवति । तस्य च समुद्घातगतस्य तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु कार्मणं "**कार्मणशरीरयोगी चतुर्थके पञ्चमे तृतीये च ।**" इतिवचनात् । द्वितीयषष्ठसप्तमसमयेषु त्वौदारिकमिश्रं "**मिश्रौदारिकयोक्ता सप्तमषष्ठद्वितीयेषु** इतिवचनादवाप्यत इति, यथाख्यातसंयमे द्वयोरपि संभवः । **सविउव्वा मीसे**' इति मिश्रे सम्यग्मिथ्यादृष्टौ त एव पूर्वोक्ता योगा वैक्रियसहिताः सन्तो दश भवन्ति । तत्र वैक्रियं देवनारकापेक्षम्, यत्तु वैक्रियमिश्रं तन्नैवावाप्यते, तस्यापर्याप्तावस्थाभावित्वात् । मिश्रभावस्य च—"**न सम्मामिच्छो कुणइ कालं**" इतिवचनप्रामाण्यतोऽपर्याप्तावस्थायामसंभवात् । स्यादेतद्वैक्रियलब्धिमतां मनुष्यतिरश्चां सम्यग्मिथ्यादृशां सतां वैक्रियमिश्रं नावाप्यते ? इति, तेषां वैक्रियारम्भासंभवादन्यतो वा कुतश्चित्कारणादाचार्येणान्यैश्च तन्नाभ्युपगम्यत इति न सम्यगवच्छामस्तथाविधसंप्रदायाभावात् । '**देसे सविउव्वदुगा**' इति देशे देशविरतिरूपे संयमे त एव नव पूर्वोक्ताः सवैक्रियद्विका वैक्रियतन्मिश्रसहिताः सन्त एकादश योगा भवन्ति, देशविरतानामम्बडादीनामिव वैक्रियलब्धिमतां वैक्रियद्विकसंभवात् ॥४०॥

कम्मुरलविउव्विदुगाणि चरमभासा य छ उ असन्निम्मि ।
जोगा अकम्मगाहारगेसु कम्मणमणाहारे ॥४१॥

(हारि०) व्याख्या—द्विकशब्दः पदद्वयेऽपि संबध्यते । कार्मणौदारिकद्विकवैक्रियद्विकानि अत्र तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः, '**चरमभाषा च**' असत्यामृषारूपेति, षड्योगा इति संबन्धः । '**असञ्ज्ञिनि**' मनोविज्ञानविकले एकेन्द्रियादौ । तत्र कार्मणं विग्रहगतौ, औदारिकमिश्रमपर्याप्तकावस्थायाम्, औदारिकं पर्याप्तावस्थायाम्, सर्वदैव वैक्रियद्विकं बादरपर्याप्तकावस्थायां वायुकायिकापेक्षम् । अन्त्यभाषा च शङ्खादिद्वीन्द्रियादीनाम् । तथा योगाः '**अकार्मणाः**' कार्मणशरीररहिताश्चतुर्दशेत्यर्थः, केषु ? इत्याह—आहारकेषु भवन्ति । कार्मणमेकं '**अनाहारे**' अनाहारकजीवे । अनाहारको हि मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकत्रये विग्रहगतौ सयोगिगुणस्थानके केवलिसमुद्घाते [१]इह यद्यप्ययोग्यप्यनाहारको वर्तते तथाऽपि निरुद्धसमस्तयोगत्वान्नास्य कार्मणकयोगो भवति । इति गाथार्थः ॥४१॥

एवं मार्गणास्थानेषु योजिता योगाः, साम्प्रतमुपयोगनामसूचां कुर्वंस्तावदाह—

(मल०) कार्मणम्, औदारिकद्विकमौदारिकतन्मिश्रलक्षणं, वैक्रियद्विकं वैक्रियतन्मिश्रल-

---

[१] 'समयत्रये अयोगिगुणस्थानके समस्तेऽपि प्राप्यते तत्रैव कार्मणकयोगो नान्यत्रेति गाथार्थः ॥४१॥' इति जे० ।

त्वात्, अत एवोक्तमन्यत्र–"आहारगं पमत्तो उप्पाएइ न अप्पमत्तो" इति। आहारकस्थितश्चोपशमश्रेणिं नारभत एव, तथास्वभावत्वात्। औदारिकमिश्रं चेह सासादनभावाभिमुखस्य कदाचित्कालकरणसंभवादवसेयमिति। 'मणवइ' इत्यादि मनोयोगे वाग्योगे मनःपर्यायज्ञाने छेदोपस्थापने सामायिके चक्षुर्दर्शने च कार्मणौदारिकमिश्रवर्जाः शेषास्त्रयोदश योगा भवन्ति कार्मणौदारिकमिश्रयोगौ तु तेषु न संभवत एव, तयोरपर्याप्तावस्थायां भावात् एतेषां तु मनोयोगादीनां तस्यामवस्थायामसंभवात् ॥३९॥

परिहारे सुहुमे नव, उरल १ वइ २ मणा ३ ते सकम्मुरलमिस्सा।
अहखाए सविउव्वा, मीसे देसे सविउविदुगा ॥४०॥

(हारि०) व्याख्या–परिहारविशुद्धिके तृतीयसंयमे सूक्ष्मसंपराये च चतुर्थसंयमे, अत्र समाहारद्वन्द्वः। औदारिकवाग्मनांसीति द्वन्द्वः। औदारिककाययोगो वाक्चतुष्टयं मनश्चतुष्टयं च इति प्रत्येकं नव योगा भवन्ति। तथा 'ते' पूर्वोक्ता नव 'सकार्मणौदारिकमिश्राः' कार्मणकाययोगौदारिकमिश्रयोगयुक्ता एकादश योगा 'यथाख्याते' पञ्चमे संयमे भवन्ति। यथाख्यातसंयमश्चान्त्यगुणस्थानकचतुष्के प्राप्यते, ततः कार्मणौदारिकमिश्रयोगद्वयं केवलिसमुद्घाते प्राग्वद् द्रष्टव्यम्। उपशान्तक्षीणमोहयोस्तु नव नव योगा भवन्ति। अयोगिनि पुनः सर्वयोगाभाव एवेति तात्पर्यम्। तथा 'सविउव्वा मीसे' इति तच्छब्दः पूर्वोक्तोऽत्राप्यनुवर्तते, ततस्ते पूर्वोक्ताः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायसत्का नव योगा सवैक्रियाः सवैक्रियशरीरा दशेत्यर्थः, क्व ? इत्याह–'मिश्रे' मिश्रगुणस्थानके। इदं च वैक्रियं देवनारकापेक्षम्। तथा 'देसे सविउविदुगा' इति देशे देशविरते गुणस्थानके, अत्रापि तच्छब्दोऽनुवर्तनीयः। ततस्ते पूर्वोक्ता नव सवैक्रियद्विका वैक्रियशरीरतन्मिश्रान्विता इत्येकादश योगा भवन्ति। वैक्रियद्विकं च यथासंभवं लब्धौ सत्यां देशविरताः कुर्वन्ति। इति गाथार्थः ॥४०॥

तथा—

(मल०) परिहारविशुद्धिके सूक्ष्मसंपराये च संयमे नव योगा भवन्ति। के ते ? इत्याह–'उरलवइमणा' औदारिकं चतुर्धा वाक्चतुर्धा मनश्च। शेषाहारकद्विकं वैक्रियद्विकं कार्मणमौदारिकमिश्रं च तत्र संभवत्येव। तथाहि, आहारकद्विकं चतुर्दशपूर्ववेदिनः। परिहारविशुद्धिकसंयमोपेतश्चोत्कर्षतोऽप्यधीतकिंचिन्न्यूनदशपूर्व एव, उत्कर्षतोऽपि तावदधीतश्रुतस्यैव तत्संयमप्रतिपत्त्यभ्यनुज्ञानात्, तत्कथं तस्याहारकद्विकसंभवः ? नापि तस्य वैक्रियद्विकसंभवः, तस्यामवस्थायां तत्करणाननुज्ञानाज्जिनकल्पिकस्येव, तस्याप्यत्यन्तविशुद्धाप्रमादमूलघोरानुष्ठानपरायणत्वात्, वैक्रियारम्भे च लब्ध्युपजीवनेनौत्सुक्यभावतः प्रमादसंभवात्। अत एव सूक्ष्मसंपराय संयमेऽपि चतुर्णामपि योगानामभावः, तत्संयमोपेतस्याप्यत्यन्तविशुद्धतया निस्तरङ्गमहोदधिक-

हारः, चतुर्दर्शनमितिशब्दोऽत्रापि योज्यः, ते च इत्येवंरूपा[2] अनाकाराः सामान्यग्राहिणो द्वादशेति संख्योपयोगा इति सण्टङ्कः। कीदृशास्ते ? इत्याह—'जियलक्खण' इति विभक्तिलोपा[1]ज्जीवानां पूर्वोक्तस्वरूपाणां लक्षणानि चिह्नानि जीवलक्षणानि—''उपयोगलक्षणो जीवः' इति वचनात्। इति गाथार्थः ॥४२॥

अथैतस्तिेष्वेव योजयन्नाह—

(मल०) 'उपयोगाः' प्राग्निरूपितशब्दार्था द्वादश भवन्ति। किंविशिष्टाः ? इत्याह—'जियलक्खण' इति प्राकृतत्वाद्विभक्तिलोपः, जीवस्यात्मनो लक्षणं, लक्ष्यते ज्ञायते तदन्यव्यवच्छेदेनेति लक्षणं असाधारणं स्वरूपम्, अत एवोक्तमन्यत्र—'उपयोगलक्षणो जीवः'' इति। ते च द्विधा, साकारा अनाकाराश्च। तत्राकारः प्रतिवस्तुप्रतिनियतो ग्रहणपरिणामरूपो विशेषः ''आगारो उ विसेसो'' इतिवचनात्, सहाकारेण वर्तन्त इति साकाराः, यथोक्ताकारविकलास्त्वनाकाराः। तत्र साकाराः पञ्चविधं ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवललक्षणम्, अज्ञानत्रिकं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपम्, 'इतिः' परिसमाप्तौ, एतावन्त एवाष्टौ साकारा उपयोगा न त्वन्ये इति। चत्वारि दर्शनानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनलक्षणान्यनाकारा उपयोगाः। अमूनि च ज्ञानान्यज्ञानानि दर्शनानि च मार्गणास्थानभेदाभिधानावसरे सप्रपञ्चं व्याख्यातानीति नेह भूयो व्याख्यायन्ते ॥४२॥

अथैतान् मार्गणास्थानेषु योजयन्नाह—

मणुयगईए बारस, मणकेवलदुरहिया नवन्नासु।
थावरइगिबितिइंदिसु, अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥४३॥

(हारी०) व्याख्या—मनुष्यगतौ द्वादशोपयोगा इति प्रक्रमः। तथा मनःपर्यवज्ञानकेवलद्विकरहिता इति द्वन्द्वगर्भस्तत्पुरुषः, नवोपयोगाः 'अन्यासु' मनुष्यगत[illegible] तिर्यग्गतिषु। इत्युक्ता गतिषूपयोगाः। इत इन्द्रियादिषु तान् प्रतिपादय[illegible] बितिइंदिसु' इति ''गइइंदिए य काए'' इत्यादिगाथया केषांचित्पदानां मणनं तल्लाघवार्थमिति। पृथिव्यम्बुतेजोवायुवनस्पत्येकद्वित्रीन्द्रियेष्वित्यष्टसु त्वचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकमिति त्रय उपयोगाः। इति गाथार्थः ॥४३॥

तथा—

(मल०) मनुजगतौ उपयोगा द्वादशापि यथोक्ता भवन्ति। तत्र [illegible] केवलज्ञानादीनामपि संभवात्। तथा मन[illegible] [illegible]ज्ञानके[illegible]

१ "स्ति" इति जे०। २ "क्षिप्रव्यत्ययत्वाच जी इति जे०।

हारः, चतुर्दर्शनमितिशब्दोऽत्रापि योज्यः, ते च इत्येवंरूपा अनाकाराः सामान्यग्राहिणो द्वादशेति संख्योपयोगा इति सण्टङ्कः। कीदृशास्ते ? इत्याह—'जियलक्खण' इति विभक्तिलोपा[1] जीवानां पूर्वोक्तस्वरूपाणां लक्षणानि चिह्नानि जीवलक्षणानि—"उपयोगलक्षणो जीवः" इति वचनात्। इति गाथार्थः ॥४२॥

अथैतस्तितेष्वेव योजयन्नाह—

(मल०) 'उपयोगाः' प्रागूनिरूपितशब्दार्था द्वादश भवन्ति। किंविशिष्टाः ? इत्याह—'जियलक्खण' इति प्राकृतत्वाद्विभक्तिलोपः, जीवस्यात्मनो लक्षणं, लक्ष्यते ज्ञायते तदन्यव्यवच्छेदेनेति लक्षणं असाधारणं स्वरूपम्, अत एवोक्तमन्यत्र—"उपयोगलक्षणो जीवः" इति। ते च द्विधा, साकारा अनाकाराश्च। तत्राकारः प्रतिवस्तुप्रतिनियतो ग्रहणपरिणामरूपो विशेषः "आगारो उ विसेसो" इतिवचनात्, सहाकारेण वर्तन्त इति साकाराः, यथोक्ताकारविकलास्त्वनाकाराः। तत्र साकाराः पञ्चविधं ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवललक्षणम्, अज्ञानत्रिकं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपम्, 'इतिः' परिसमाप्तौ, एतावन्त एवाष्टौ साकारा उपयोगा न त्वन्ये इति। चत्वारि दर्शनानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनलक्षणान्यनाकारा उपयोगाः। अमूनि च ज्ञानान्यज्ञानानि दर्शनानि च मार्गणास्थानभेदाभिधानावसरे सप्रपञ्चं व्याख्यातानीति नेह भूयो व्याख्यायन्ते ॥४२॥

अथैतान् मार्गणास्थानेषु योजयन्नाह—

मणुयगईए बारस, मणकेवलदुरहिया नवन्नासु।
थावरइगिबितिइंदिसु, अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥४३॥

(हारी०) व्याख्या—मनुष्यगतौ द्वादशोपयोगा इति प्रक्रमः। तथा मनःपर्यवज्ञानकेवलद्विकरहिता इति द्वन्द्वगर्भस्तत्पुरुषः, नवोपयोगाः 'अन्यासु' मनुष्यगत्युद्धरितासु सुरनारकतिर्यग्गतिषु। इत्युक्ता गतिषूपयोगाः। इत इन्द्रियादिषु तान् प्रतिपादयन्नाह—'थावरइगिबितिइंदिसु' इति "गइइंदिए य काए" इत्यादिगाथया केषांचित्पदानां क्वचित्पदव्यत्ययेन भणनं तल्लाघवार्थमिति। पृथिव्यम्बुतेजोवायुवनस्पत्येकद्वित्रीन्द्रियेष्वित्यष्टसु पदेषु कृतद्वन्द्वे[2]ऽचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकमिति त्रय उपयोगाः। इति गाथार्थः ॥४३॥

तथा—

(मल०) मनुजगतौ उपयोगा द्वादशापि यथोक्ता भवन्ति। तत्र सर्वविरतिसद्भावेन मनःपर्यायकेवलज्ञानादीनामपि संभवात्। तथा मनःपर्यायज्ञानकेवलज्ञानकेवलदर्शनरूपकेवलद्विकरहिताः

---

१ "त्ति" इति जे०। २ "क्षिप्तव्यत्ययत्वाच्च जी इति जे०।

क्षणं, चरमभाषा अन्तिमभाषा इत्येते षड् योगाः 'असंज्ञिनि' संज्ञिव्यतिरिक्ते जीवे भवन्ति। तत्र कार्मणमपान्तरालगतौ उत्पत्तिप्रथमसमये च औदारिकमिश्रमपर्याप्तावस्थायाम्। पर्याप्तावस्थायामौदारिकम्, वैक्रियद्विकं बादरपर्याप्तवायुकायिकानाम्, चरमभाषा शङ्खादिद्वीन्द्रियादीनामिति। 'अकम्मणाहारगेसु' इति आहारकेषु कार्मणकाययोगविकलाः, शेषाश्चतुर्दशापि योगा भवन्ति। यत्तु कार्मणं तन्न घटत एव, तस्यापान्तरालगतौ केवलिसमुद्घाततृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु वा भावात्, तदानीं चानाहारकत्वात्। एतच्चाचार्येणोक्तं न सम्यगवगम्यते, यत ऋजुगतौ विग्रहगतौ वा उत्पत्तिप्रथमसमये—"जोएण कम्मएणं, आहारेई अणंतरं जीवो। तेण परं मीसेणं, जाव सरीरस्स निप्फत्ती॥१॥" इति परममुनिवचनप्रामाण्यादाहारकस्यापि सतः कार्मणकाययोगोऽस्त्येव। अथोच्येत, गृह्यमाणं गृहीतमिति निश्चयनयवशात्प्रथमसमयेऽप्यौदारिकादिपुद्गला गृह्यमाणा गृहीता एव, ततो द्वितीयादिसमयेष्विव तदानीमप्यौदारिकमिश्रकाययोग इति, तदेतदयुक्तम्, यतो यद्यपि तदानीमौदारिकादिपुद्गला गृह्यमाणा अपि गृहीता एव तथाऽपि न तेषां गृह्यमाणानां स्वग्रहणक्रियां प्रति करणरूपता येन तन्निबन्धनो योगः परिकल्प्येत, किन्तु कर्मरूपतैव, निष्पन्नरूपस्य सत उत्तरकालं करणभावदर्शनात्, न हि घटः स्वनिष्पादनक्रियां प्रति कर्मरूपतां करणरूपतां च प्रपद्यमानो दृश्यते। द्वितीयादिसमयेषु तु तेषामपि प्रथमसमयगृहीतानामन्यपुद्गलोपादानं प्रति करणभावो न विरुध्यते निष्पन्नत्वात्, अतस्तदानीमौदारिकादिमिश्रकाययोग उपपद्यत एव, अत एवोक्तम्—"तेण परं मीसेणं" इति तस्मादस्ति आहारकस्याप्युत्पत्तिप्रथमसमये कार्मणकाययोग इति। 'कम्मणमणाहारे' इति व्यवच्छेदफलं हि वाक्यमतोऽवश्यमवधारयितव्यम्। तच्चावधारणमिहैवं कार्मणमेवैकमनाहारके न शेषयोगा असंभवादिति। न पुनरेवं कार्मणमनाहारकेष्वेवेति। आहारकेष्वप्युत्पत्तिप्रथमसमये कार्मणयोगसंभवान्नापि कार्मणमनाहारकेषु भवत्येवेत्यवधारणम्, अयोग्यवस्थायामनाहारकस्यापि कार्मणकाययोगाभावात्। वक्ष्यति च—"गयजोगो उ अजोगी" इत्येवमन्यत्रापि यथासंभवमवधारणविधिरनुसरणीयः॥४१॥

तदेवं मार्गणास्थानेषु योगानभिधाय साम्प्रतमेतेष्वेवोपयोगानभिधित्सुस्तानेव स्वरूपतस्तावदाह—

नाणं पंचविहं तह, अन्नाणतिगं ति अट्ठ सागारा।
चउदंसणमणगारा, बारस जियलक्खणुवओगा॥४२॥

(हारि०) व्याख्या—'ज्ञानं' बोधः 'पञ्चविधं' मतिज्ञानादिपञ्चप्रकारम्, तथाशब्दः समुच्चयार्थः, 'अज्ञानत्रिकं' मत्यज्ञानादित्रिभेदम्, इत्येवंप्रकारा अष्टेति संख्याः 'साकाराः' सहाकारैर्विशेषग्राहकैर्वर्तन्त इति साकाराः। तथा चतुर्णां दर्शनानां चक्षुर्दर्शनादीनां समा-

हारः, चतुर्दर्शनमितिशब्दोऽत्रापि योज्यः, ते च इत्येवंरूपा अनाकाराः सामान्यग्राहिणो द्वादशेति संख्योपयोगा इति सण्टङ्कः। कीदृशास्ते ? इत्याह—'जियलक्खण' इति विभक्तिलोपा[1]ज्जीवानां पूर्वोक्तस्वरूपाणां लक्षणानि चिह्नानि जीवलक्षणानि—''उपयोगलक्षणो जीवः' इति वचनात्। इति गाथार्थः ॥४२॥

अथैतस्तिष्वेव योजयन्नाह—

(मल०) **'उपयोगाः'** प्राग्निरूपितशब्दार्था द्वादश भवन्ति। किंविशिष्टाः ? इत्याह—**'जियलक्खण'** इति प्राकृतत्वाद्विभक्तिलोपः, जीवस्यात्मनो लक्षणं, लक्ष्यते ज्ञायते तदन्यव्यवच्छेदेनेति लक्षणं असाधारणं स्वरूपम्, अत एवोक्तमन्यत्र—**'उपयोगलक्षणो जीवः''** इति। ते च द्विधा, साकारा अनाकाराश्च। तत्राकारः प्रतिवस्तुप्रतिनियतो ग्रहणपरिणामरूपो विशेषः **''आगारो उ विसेसो''** इतिवचनात्, सहाकारेण वर्तन्त इति साकाराः, यथोक्ताकारविकलास्त्वनाकाराः। तत्र साकाराः पञ्चविधं ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवललक्षणम्, अज्ञानत्रिकं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपम्, **'इनिः'** परिसमाप्तौ, एतावन्त एवाष्टौ साकारा उपयोगा न त्वन्ये इति। चत्वारि दर्शनानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनलक्षणान्यनाकारा उपयोगाः। अमूनि च ज्ञानान्यज्ञानानि दर्शनानि च मार्गणास्थानभेदाभिधानावसरे सप्रपञ्चं व्याख्यातानीति नेह भूयो व्याख्यायन्ते ॥४२॥

अथैतान् मार्गणास्थानेषु योजयन्नाह—

मणुयगईए बारस, मणकेवलदुरहिया नवन्नासु।
थावरइगिबितिइंदिसु, अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥४३॥

(हारी०) व्याख्या—मनुष्यगतौ द्वादशोपयोगा इति प्रक्रमः। तथा मनःपर्यवज्ञानकेवलद्विकरहिता इति द्वन्द्वगर्भस्तत्पुरुषः, नवोपयोगाः **'अन्यासु'** मनुष्यगत्युद्धरितासु सुरनारकतिर्यग्गतिषु। इत्युक्ता गतिषूपयोगाः। इत इन्द्रियादिषु तान् प्रतिपादयन्नाह—**'थावरइगिबितिइंदिसु'** इति **''गइइंदिए य काए''** इत्यादिगाथया केषांचित्पदानां क्वचित्पदव्यत्ययेन भणनं तल्लाघवार्थमिति। पृथिव्यम्बुतेजोवायुवनस्पत्येकद्वित्रीन्द्रियेष्वित्यष्टसु पदेषु कृतद्वन्द्वे[2]ष्वचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकमिति त्रय उपयोगाः। इति गाथार्थः ॥४३॥

तथा—

(मल०) मनुजगतौ उपयोगा द्वादशापि यथोक्ता भवन्ति। तत्र सर्वविरतिसद्भावेन मनःपर्यायकेवलज्ञानादीनामपि संभवात्। तथा मनःपर्यायज्ञानकेवलज्ञानकेवलदर्शनरूपकेवलद्विकरहिताः

---

१ "त्ति" इति जे०। २ "त्रिकव्यत्ययत्वाच जी इति जे०।

शेषाः नवोपयोगा 'अन्यासु' मनुजगतिव्यतिरिक्तासु सुरनारकतिर्यग्गतिषु भवन्ति. तासु सर्वविरत्यसंभवेन मनःपर्यायज्ञानादीनामसंभवात् । तथा कायद्वारे स्थावरेषु पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिलक्षणेषु, इन्द्रियद्वारे एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियेषु, अचक्षुर्दर्शनम्, अज्ञानद्विकं च मत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणमिति त्रय उपयोगा भवन्ति, न शेषाः । यतः सम्यक्त्वाभावान्न तेषु मतिज्ञानश्रुतज्ञानसंभवः, सर्वविरत्यभावाच्च मनःपर्यायकेवलज्ञानकेवलदर्शनाभावः । यत्त्ववधिज्ञानमवधिदर्शनं विभङ्गज्ञानं च तद् भवप्रत्ययं गुणप्रत्ययं वा न चानयोरन्यतरोऽपि प्रत्ययः संभवति । चक्षुर्दर्शनोपयोगाभावस्तु चक्षुरिन्द्रियाभावादेव सिद्धः । इति ॥४३॥

चक्खुजुयं चउरिंदिसु, तं चिय बारम 'पणिंदि'तसकाए ।
'जोए 'वेए'सुक्काए' 'भव्व' 'सन्नीसु' 'आहारे ॥४४॥

(हारि०) व्याख्या-'चक्षुर्युतं' चक्षुरिन्द्रियोपयोगान्वितं 'तं चिय' इति तदेव पूर्वोक्तमुपयोगत्रयं च, क्व ? इत्याह-'चतुरिन्द्रियेषु' अचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकं चक्षुर्दर्शनमिति चत्वार उपयोगाश्चतुरिन्द्रियेषु भवन्तीत्यर्थः । अथ द्वादशपदेषु लाघवार्थं सर्वोपयोगान् संगृह्य प्रदर्शयन्नाह-'बारस' इति द्वादशोपयोगाः, क्व ? इत्याह-पञ्चेन्द्रिय १ त्रसकाये २ इति समाहारद्वन्द्वः, योगे मनो ३ वा ४ काय ५ रूपे, वेदे स्त्री ६ पुं ७-नपुंसक ८ लक्षणे, 'सुक्काए' इति शुक्ललेश्यायां ९, भव्ये १०, संज्ञिषु ११ अत्र द्वन्द्वः, आहारे १२ इति पदद्वादशके भवन्ति । इति गाथार्थः ॥४४॥

तथा गाथार्द्धेन पदैकादशके दशोपयोगान् संगृह्य तथा केवलद्विके निजद्विकं क्षायिके नवोपयोगाश्चापरार्द्धेनाह—

(मल०) 'चक्षुर्युतं' चक्षुर्दर्शनोपयोगसहितं तदेव पूर्वोक्तमुपयोगत्रयं चतुरिन्द्रियेषु भवति । तथा पञ्चेन्द्रियेषु, कायद्वारे त्रसेषु योगेषु च मनोवाक्कायरूपेषु, वेदेषु च द्रव्यवेदरूपस्त्रीपुंनपुंसकलक्षणेषु, शुक्ललेश्यायां, भव्येषु, संज्ञिषु, आहारकेषु च द्वादशोपयोगा भवन्ति, एतेषु सर्वेष्वपि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनां संभवात् ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस, 'कसाय'पणलेस' 'चक्खूसु ।
केवलदुगे नियदुगं, खइगे नय नो अनाणतिगं ॥४५॥

(हारि०) व्याख्या-'केवलद्विकहीनाः' केवलज्ञानकेवलदर्शनरहिता दशोपयोगा भवन्ति. केषु ? इत्याह-कषाय ४ पञ्चलेश्या ९ अचक्षु १० श्चक्षुष्षु ११ अत्र द्वन्द्व इति

पदैकादशके इति । तथा 'केवलद्विके' केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे 'निजद्विकं' केवलज्ञाने केवलज्ञानोपयोगः, केवलदर्शने केवलदर्शनोपयोग इत्यर्थः । तथा क्षायिके सम्यक्त्वे नवोपयोगाः, कथम्? इत्याह—'नो' नैव 'अज्ञानत्रिकं' मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपमेतदुपयोगत्रयं त्रिनेत्यर्थः । इति गाथार्थः ॥४५॥

तथा—

(मल०) केवलद्विकेन केवलज्ञानकेवलदर्शनलक्षणेन हीनाः शेषा दशोपयोगाः कषायेषु क्रोधमानमायालोभरूपेषु, शुक्ललेश्यावर्जितासु शेषासु पञ्चसु पद्मादिलेश्यासु, अचक्षुर्दर्शने च भवन्ति, न तु केवलद्विकं कषायादिसद्भावे तस्यानुत्पादात् 'केवलदुगे नियदुगं' इति केवलद्विके केवलज्ञानदर्शनलक्षणे निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनलक्षणं स्वकीयमुपयोगद्वयं भवति न शेषा उपयोगाः, देशज्ञानदर्शनव्यवच्छेदेनैव केवलद्विकस्य सद्भावात् । एतच्च प्रागेवोक्तम् । तथा क्षायिके सम्यक्त्वे नव उपयोगा भवन्ति कुतः? इत्याह—'नो अनाणतिगं' इति यतस्तत्सद्भावेऽज्ञानत्रिकं न भवति, तस्य मिथ्यात्वनिबन्धनत्वात्, निर्मूलतो मिथ्यात्वक्षयेण च क्षायिकसम्यक्त्वोत्पादात्, अतस्तत्र नवैवोपयोगा भवन्ति ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।
नाणचउदंसणतिगं, केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(हारि०) व्याख्या—ज्ञानानि च मतिज्ञानादीनि संयमाश्च सामायिकसंयमादयो ज्ञानसंयमाः, चत्वारश्च ते ज्ञानसंयमाश्च चतुर्ज्ञानसंयमाः, प्रथमाश्च ते चतुर्ज्ञानसंयमाश्च प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमाः, प्रथमचतुर्ज्ञानानि प्रथमचतुःसंयमाश्चेत्यर्थः, प्रथमचतुःशब्दयोः प्रत्येकमभिसंबन्धात्, ततः प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमाश्च वेदकं च क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमौपशमिकं च अवधिदर्शनं च प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमवेदकौपशमिकावधिदर्शनानि तेष्वेकादशस्थानकेषु कत्युपयोगाः? इत्याह—ज्ञानचतुष्टयदर्शनत्रिकमिति तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः, तत्र ज्ञानचतुष्कं मतिश्रुतावधिमनःपर्यवज्ञानलक्षणम्, दर्शनत्रिकं तु चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनरूपम्, इति सप्तोपयोगा भवन्ति। तथा 'केवलद्विकयुतं' केवलज्ञानकेवलदर्शनद्वययुक्तं पूर्वोक्तमुपयोगसप्तकमुपयोगनवकं भवति तत् क? इत्याह—'यथाख्याते' पञ्चमसंयमे, एतच्चान्त्यगुणस्थानकचतुष्टये भवति । ततश्चोपयोगसप्तकं छद्मस्थवीतरागोपशान्तक्षीणमोहगुणस्थानकयोः । केवलद्विकं च केवलिनः स्वगुणस्थानकयोरिति भावना । इति गाथार्थः ॥४६॥

तथा—

शेषाः नवोपयोगा 'अन्यासु' मनुजगतिव्यतिरिक्तासु सुरनारकतिर्यग्गतिषु भवन्ति. तासु सर्वविरत्यसंभवेन मनःपर्यायज्ञानादीनामसंभवात् । तथा कायद्वारे स्थावरेषु पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिलक्षणेषु, इन्द्रियद्वारे एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियेषु, अचक्षुर्दर्शनम्, अज्ञानद्विकं च मत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणमिति त्रय उपयोगा भवन्ति, न शेषाः । यतः सम्यक्त्वाभावान्न तेषु मतिज्ञानश्रुतज्ञानसंभवः, सर्वविरत्यभावाच्च मनःपर्यायकेवलज्ञानकेवलदर्शनाभावः । यत्त्ववधिज्ञानमवधिदर्शनं विभङ्गज्ञानं च तद् भवप्रत्ययं गुणप्रत्ययं वा न चानयोरन्यतरोऽपि प्रत्ययः संभवति । चक्षुर्दर्शनोपयोगाभावस्तु चक्षुरिन्द्रियाभावादेव सिद्धः । इति ॥४३॥

चक्खुजुयं चउरिंदिसु, तं चिय बारस [१]पणिंदि[२]तसकाए ।
[३]जोए [४]वेए[५]सुक्काए [६]भव्व[७]सन्नीसु [८]आहारे ॥४४॥

(हारि०) व्याख्या–'चक्षुर्युतं' चक्षुरिन्द्रियोपयोगान्वितं 'तं चिय' इति तदेव पूर्वोक्तमुपयोगत्रयं च, क्व? इत्याह–'चतुरिन्द्रियेषु' अचक्षुर्दर्शनमज्ञानद्विकं चक्षुर्दर्शनमिति चत्वार उपयोगाश्चतुरिन्द्रियेषु भवन्तीत्यर्थः । अथ द्वादशपदेषु लाघवार्थं सर्वोपयोगान् संगृह्य प्रदर्शयन्नाह–'बारस' इति द्वादशोपयोगाः, क्व? इत्याह–पञ्चेन्द्रिय १ त्रसकाये २ इति समाहारद्वन्द्वः, योगे मनो ३ वा ४ काय ५ रूपे, वेदे स्त्री ६ पुं ७–नपुंसक ८ लक्षणे, 'सुक्काए' इति शुक्ललेश्यायां ९, भव्ये १०, संज्ञिषु ११ अत्र द्वन्द्वः, आहारे १२ इति पदद्वादशके भवन्ति । इति गाथार्थः ॥४४॥

तथा गाथार्द्धेन पदैकादशके दशोपयोगान् संगृह्य तथा केवलद्विके निजद्विकं क्षायिके नवोपयोगाश्चापरार्द्धेनाह—

(मल०) 'चक्षुर्युतं' चक्षुर्दर्शनोपयोगसहितं तदेव पूर्वोक्तमुपयोगत्रयं चतुरिन्द्रियेषु भवति । तथा पञ्चेन्द्रियेषु, कायद्वारे त्रसेषु योगेषु च मनोवाक्कायरूपेषु, वेदेषु च द्रव्यवेदरूपस्त्रीपुंनपुंसकलक्षणेषु, शुक्ललेश्यायां, भव्येषु, संज्ञिषु, आहारकेषु च द्वादशोपयोगा भवन्ति, एतेषु सर्वेष्वपि सम्यक्त्वदेशविरत्यादीनां संभवात् ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस, [१]कसाय[२]पणलेस[३]चक्खूसु ।
केवलदुगे नियदुगं, खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(हारि०) व्याख्या–'केवलद्विकहीनाः' केवलज्ञानकेवलदर्शनरहिता दशोपयोगा भवन्ति. केषु? इत्याह–कषाय ४ पञ्चलेश्या ६ अचक्षु १० चक्षुष्षु ११ अत्र द्वन्द्व इति

पदैकादशके इति । तथा 'केवलद्विके' केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे 'निजद्विकं' केवलज्ञाने केवलज्ञानोपयोगः, केवलदर्शने केवलदर्शनोपयोग इत्यर्थः। तथा क्षायिके सम्यक्त्वे नवोपयोगाः, कथम्? इत्याह–'नो' नैव 'अज्ञानत्रिकं' मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गरूपमेतदुपयोगत्रयं विनेत्यर्थः। इति गाथार्थः ॥४५॥

तथा—

(मल०) केवलद्विकेन केवलज्ञानकेवलदर्शनलक्षणेन हीनाः शेषा दशोपयोगाः कषायेषु क्रोधमानमायालोभरूपेषु, शुक्ललेश्यावर्जितासु शेषासु पञ्चसु पद्मादिलेश्यासु, अचक्षुर्दर्शने च भवन्ति, न तु केवलद्विकं कषायादिसद्भावे तस्यानुत्पादात् 'केवलदुगे नियदुगं' इति केवलद्विके केवलज्ञानदर्शनलक्षणे निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनलक्षणं स्वकीयमुपयोगद्वयं भवति न शेषा उपयोगाः, देशज्ञानदर्शनव्यवच्छेदेनैव केवलद्विकस्य सद्भावात् । एतच्च प्रागेवोक्तम् । तथा क्षायिके सम्यक्त्वे नव उपयोगा भवन्ति कुतः? इत्याह–'नो अनाणतिगं' इति यतस्तत्सद्भावेऽज्ञानत्रिकं न भवति, तस्य मिथ्यात्वनिबन्धनत्वात्, निर्मूलतो मिथ्यात्वक्षयेण च क्षायिकसम्यक्त्वोत्पादात्, अतस्तत्र नवैवोपयोगा भवन्ति ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।
नाणचउदंसणतिगं, केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(हारि०) व्याख्या–ज्ञानानि च मतिज्ञानादीनि संयमाश्च सामायिकसंयमादयो ज्ञानसंयमाः, चत्वारश्च ते ज्ञानसंयमाश्च चतुर्ज्ञानसंयमाः, प्रथमाश्च ते चतुर्ज्ञानसंयमाश्च प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमाः, प्रथमचतुर्ज्ञानानि प्रथमचतुःसंयमाश्चेत्यर्थः, प्रथमचतुःशब्दयोः प्रत्येकमभिसंबन्धात्, ततः प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमाश्च वेदकं च क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमौपशमिकं च अवधिदर्शनं च प्रथमचतुर्ज्ञानसंयमवेदकौपशमिकावधिदर्शनानि तेष्वेकादशस्थानकेषु कत्युपयोगाः? इत्याह–ज्ञानचतुष्टयदर्शनत्रिकमिति तत्पुरुषगर्भो द्वन्द्वः, तत्र ज्ञानचतुष्कं मतिश्रुतावधिमनःपर्यवज्ञानलक्षणम्, दर्शनत्रिकं तु चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनरूपम्, इति सप्तोपयोगा भवन्ति। तथा 'केवलद्विकयुतं' केवलज्ञानकेवलदर्शनद्वययुक्तं पूर्वोक्तमुपयोगसप्तकमुपयोगनवकं भवति तत् क्व? इत्याह–'यथाख्याते' पञ्चमसंयमे, एतच्चान्त्यगुणस्थानकचतुष्टये भवति । ततश्चोपयोगसप्तकं छद्मस्थवीतरागोपशान्तक्षीणमोहगुणस्थानकयोः । केवलिद्विकं च केवलिनः स्वगुणस्थानकयोरिति भावना । इति गाथार्थः ॥४६॥

तथा—

(मल०) प्रथमेषु चतुर्षु ज्ञानेषु मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानलक्षणेषु प्रथमेषु च चतुर्षु संयमेषु सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसंपरायरूपेषु, 'वेयग' इति क्षायोपशमिके औपशमिके च सम्यक्त्वेऽवधिदर्शने च चत्वारि ज्ञानानि मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानलक्षणानि, तथा दर्शनत्रिकं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनलक्षणम्, इत्येते सप्त उपयोगा भवन्ति न शेषाः, तद्भावे मत्यज्ञानादीनामसंभवात्। इहाप्यवधिदर्शने मत्यज्ञानाद्युपयोगप्रतिषेधो मतान्तरापेक्षया द्रष्टव्यः। अन्यथा हि मत्यज्ञानादिमतामपि सूत्रे साक्षादवधिदर्शनं प्रतिपादितमेव यथोक्तं प्रागिति। '**केवलदुजुयं अहक्खाए**' इति यथाख्यातसंयमे तदेव पूर्वोक्तमुपयोगसप्तकं '**केवलद्विकयुतं**' केवलज्ञानदर्शनयुतं द्रष्टव्यम्, यथाख्यातसंयमस्य सयोगिकेवल्यादावपि भावात्। तत्र च केवलद्विकस्य भावात्। इति ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं, देसे मीसे अनाणमीसं तं।
केवलदुगपणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥ ४७ ॥

(हारि०) व्याख्या—ज्ञानत्रिकदर्शनत्रिकमिति द्वन्द्वः, इति षडुपयोगाः, क ? इत्याह—'**देशे**' देशविरतसंयमे, तथा '**मिश्रे**' मिश्रगुणस्थानके, तदिति ज्ञानदर्शनत्रिकं मिश्रमज्ञानमिश्रम्, तथा केवलद्विकमनःपर्यायज्ञानवर्जा इह यथायोगं समासः, नवोपयोगाः क ? इत्याह—'**असंयते**' संयमरहिते, तत्र मिश्रे उक्ता एवोपयोगाः। मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य चाज्ञानत्रयम्, सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च, त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनं चेति नवोपयोगभावना। इति गाथार्थः ॥४७॥

तथा—

(मल०) ज्ञानत्रिकं मतिश्रुतावधिलक्षणम्, दर्शनत्रिकं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनलक्षणम्, इत्येते षड् उपयोगा देशविरतिसंयमे भवन्ति न शेषाः, मिथ्यात्वसर्वविरत्यभावात् '**मीसे अनाणमीसं तं**' इति मिश्रे सम्यग्दृष्टौ तज्ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चाज्ञानमिश्रं द्रष्टव्यम्। मतिज्ञानं मत्यज्ञानमिश्रम्, श्रुतज्ञानं श्रुताज्ञानमिश्रम्, अवधिज्ञानं विभङ्गज्ञानमिश्रम्। इह चावधिदर्शनमाचार्येण मतान्तरापेक्षया भणितम्। अन्यथैतेष्वेव मार्गणास्थानकेषु गुणस्थानकमार्गणायाम्—"**मइसुय-ओहिदुगे नव अजयाई**" इत्यनेन ग्रन्थेन यदुक्तं अवधिदर्शनस्यायतादीनि क्षीणमोहान्तानि नव गुणस्थानकानि भवन्तीति तद्विरुध्येत, मिश्रगुणस्थानकेऽपीदानीमवधिदर्शनस्याभिधानादिति। तथा केवलज्ञानकेवलदर्शनलक्षणकेवलद्विकमनःपर्यायज्ञानवर्जाः शेषा नवोपयोगाः 'असंयते' संयमहीने भवन्ति, न तु केवलद्विकमनःपर्यायज्ञाने, तस्य विरतिहीनत्वात्, तेषां च विरतिनिबन्धनत्वात् ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे, सासणमिच्छे य पंच उवओगा।
दो दंसण तिअनाणा, ते अविभंगा असन्निम्मि ॥४८॥

(हारि०) व्याख्या—अज्ञानत्रिकं च पूर्वोक्तमभव्यश्चेति समाहारद्वन्द्वः, तत्राज्ञानत्रिकाभव्ये, सासादनं च मिथ्यात्वं चात्रापि समाहारद्वन्द्वः, तत्र सासादनमिथ्यात्वे च, चशब्दः समुच्चयार्थः, इति पदषट्के, किम् ? इत्याह—पञ्चोपयोगाः। कीदृशाः ? इत्याह—'द्वे दर्शने' चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनलक्षणे, 'त्रीण्यज्ञानानि' मत्यज्ञानादीनि। तथा 'ते' पूर्वोक्ताः पञ्चाविभङ्गा विभङ्गवर्जिताश्चत्वार इत्यर्थः, क ? 'असञ्ज्ञिनि' मनोविज्ञानविकले। इति गाथार्थः ॥४८॥

साम्प्रतमुपयोगानुपसंहरन् मतान्तरं दर्शयन्नाह—

(मल०) अज्ञानत्रिके मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणे, तथाऽभव्ये, सासादने, मिथ्यात्वे च, दर्शनद्विकं चक्षुरचक्षुर्दर्शनलक्षणम्, अज्ञानत्रिकं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणम्, इत्येते पञ्च उपयोगा भवन्ति न शेषाः, अवदातसम्यक्त्वविरत्यभावात्। अज्ञानत्रिकादौ चावधिदर्शनं यतः कुतश्चिदभिप्रायादाचार्येण नोक्तं तन्न सम्यगवगच्छामः, सूत्रे मत्यज्ञानादावप्यवधिदर्शनस्य प्रतिपादितत्वात्। एतच्च प्रागेवानेकश उक्तम्। "ते अविभंगा असन्निम्मि" इति त एव पूर्वोक्ताः पञ्चोपयोगा अविभङ्गा विभङ्गज्ञानविकलाः सन्तः शेषाश्चत्वार उपयोगा असंज्ञिनि संज्ञिव्यतिरिक्ते जीवे भवन्ति। यत्तु विभङ्गज्ञानं तदसंज्ञिनि नोपपद्यते, तद्धि भवप्रत्ययतो गुणप्रत्ययतो वा जायते, न चानयोरेकतरोऽपि प्रत्ययोऽत्र घटते। इति ॥४८॥

मणनाणचक्खुरहिया, दस उ अणाहारगेसु उवओगा।
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥४९॥

(हारि०) व्याख्या—मनःपर्यवज्ञानचक्षुर्दर्शनरहिता दशैवोपयोगाः, तुरेवकारार्थः, क ? इत्याह—अनाहारके विग्रहगतौ केवलिसमुद्घाते च यथायोगं योज्याः। तथाहि—विग्रहगतौ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च, मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य चाज्ञानत्रयम्, त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनं तस्यानाहारकावस्थायामपि लब्धिमाश्रित्याभ्युपगमात्। इत्येवमेतेऽष्टौ केवलिसमुद्घातेऽयोगिनि गुणस्थानके च केवलज्ञानकेवलदर्शनद्विकमित्यनाहारके दशेति भावना। इति गत्यादिषूपयोगा योजिता इति शेषः इति। अत्र नयमतेन निश्चयनयाभिप्रायेणैकैकयोगापेक्षयेत्यर्थः, नानात्वं नयमतनानात्वं विशेषो योगेषु मनोवाक्कायरूपेषु। कीदृशं नानात्वम् ? अत आह—इदं वक्ष्यमाणम्, तुशब्दः पुनरर्थः, प्राक्तनव्याख्यापेक्षया वक्ष्यमाणव्याख्यानस्य विशेषद्योतकः। इति गाथार्थः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

(मल०) मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनरहिताः शेषा दशैवोपयोगा अनाहारके भवन्ति, तुरेवकारार्थः, तदुक्तम्—"तुः स्याद्भेदेऽवधारणे" इति । अनाहारको हि विग्रहगतौ केवलिसमुद्घातावस्थायामयोग्यवस्थायां वा, न च तदानीं मनःपर्यायज्ञ नचक्षुर्दर्शनसंभव इति, उपसंहारमाह—'उवयोगा इय गइयाइसु' इति, इति एवमुक्तेन प्रकारेण गत्यादिषु मार्गणास्थानेषूपयोगा भवन्ति । साम्प्रतं योगेषु गुणस्थानकजीवस्थानोपयोगयोगानधिकृत्य मतान्तरमुपक्षिप्नाह—'नयमयणाणत्तमिणं तु जोगेसु' योगेषु मनोवाक्कायलक्षणेषु नयनमतेन "नयो ज्ञातुरभिप्रायः" इतिवचनात्, अभिप्रायान्तरविशेषरूपेण नानात्वमिदं वक्ष्यमाणरूपं द्रष्टव्यम् । तुर्विशेषणे, स च शेषेषु मार्गणास्थानकेषु यथाभिहितं तथैवावगन्तव्यम् । योगेषु पुनर्वक्ष्यमाणनयमतापेक्षयाऽन्यथाऽपीति विशेषयति ॥४९॥

तदेव नानात्वमुपदर्शयति—

तणुवइमणेसु कमसो, दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।
तेरसदुबारतेरस, गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥५०॥

(हारि०) व्याख्या-तनुवाङ्मनस्सु 'क्रमशो' यथासंख्येन द्वि १ चतु २ स्त्रि ३ पञ्च ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगा ४ इति तनौ काययोगे । तथा क्रमश एव द्वि १ अष्ट २ चतु ३ श्चत्वारो ४ गुण १ जीवो २ पयोग ३ योगाः ४ इति वाचि वाग्योगे । तथा क्रमश इत्यत्रापि संबध्यते, ततस्त्रयोदश १ द्वि २ द्वादश ३ त्रयोदश ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगाः ४ इति मनसि मनोयोगे भवन्तीत्यक्षरघटना । भावार्थो गाथाभिः [1]कथ्यते-[2]"केवलतणुजोगंमी, दो गुणचउजीवआइमा हुंति । मइसुयअन्नाणदुगं, अचक्खू तिन्नि उवओगा ॥१॥ वेउव्विउरलजुयला ४. कम्मणजोगो य १ पंच जोगत्ति । अमणवईए पढमा, दो गुण जिय अट्ठ चउ उवरिं ॥२॥ चक्खुअचक्खू मइसुय अनाण चत्तारि हुंति उवओगा । कम्मणउरालजुयलं २, असच्चभासा य चउ जोगा ॥३॥ तेरस गुण मणजोगे, अंतिमदो जीव बारउवओगा । तेरस जोगा य तहा, कम्मोरलमिस्स २ वज्जत्ति ४ ॥४॥" मनोयोगे नानात्वं जीवस्थानेष्वेव शेषपदत्रयाभिधानं च प्रसङ्गादिति । अत्र यन्त्रस्थापनेयम्-

म	१३	२	१२	१३
व	२	८	४	४
त	२	४	३	५
०	गु	जी	उ	जो

मतान्तराभिधायकगाथागम्भीरार्थाऽपि सूत्रकारेण केनाप्यभिप्रायेण न विवृता अस्माभिश्च यथाऽवबोधं विवृता । इति गाथार्थः ॥५०॥

---

१ "उच्यते" इति जे० । २ एतद्गाथाचतुष्कं हस्तलिखितमूलगाथाप्रतौ मूलगाथातया प्रतिपादितम् ।

(मल०) मनःपर्यायज्ञान-चक्षुर्दर्शनरहिताः शेषा दशैवोपयोगा अनाहारके भवन्ति, तुरेवकारार्थः, तदुक्तम्—"तुः स्याद् भेदेऽवधारणे" इति । अनाहारको हि विग्रहगतौ केवलिसमुद्घातावस्थायामयोग्यवस्थायां वा, न च तदानीं मनःपर्यायज्ञ नचक्षुर्दर्शनसंभव इति, उपसंहारमाह—'उवओगा इय गइयाइसु' इति, इति एवमुक्तेन प्रकारेण गत्यादिषु मार्गणास्थानेषूपयोगा भवन्ति । साम्प्रतं योगेषु गुणस्थानकजीवस्थानोपयोगयोगानधिकृत्य मतान्तरमुपक्षिपन्नाह—'नयमयणाणत्तमिणं तु जोगेसु' योगेषु मनोवाक्कायलक्षणेषु नयनमतेन "नयो ज्ञातुरभिप्रायः" इतिवचनात्, अभिप्रायान्तरविशेषरूपेण नानात्वमिदं वक्ष्यमाणरूपं द्रष्टव्यम् । तुर्विशेषणे, स च शेषेषु मार्गणास्थानकेषु यथाभिहितं तथैवावगन्तव्यम् । योगेषु पुनर्वक्ष्यमाणनयमतापेक्षयाऽन्यथाऽपीति विशेषयति ॥४९॥

तदेव नानात्वमुपदर्शयति—

तणुवइमणेसु कमसो, दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।
तेरसदुबारतेरस, गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥५०॥

(हारि०) व्याख्या-तनुवाङ्मनस्सु 'कमसो' यथासंख्येन द्वि १ चतु २ स्त्रि ३ पञ्च ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगा ४ इति तनौ काययोगे । तथा क्रमश एव द्वि १ अष्ट २ चतु ३ श्चत्वारो ४ गुण १ जीवो २ पयोग ३ योगाः ४ इति वाचि वाग्योगे । तथा क्रमश इत्यत्रापि संबध्यते, ततस्त्रयोदश १ द्वि २ द्वादश ३ त्रयोदश ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगाः ४ इति मनसि मनोयोगे भवन्तीत्यक्षरघटना । भावार्थो गाथाभिः [1]कथ्यते-[2]"**केवलतणुजोगंमी, दो गुणचउजीवआइमा हुंति । मइसुयअन्नाणदुगं, अचक्खू तिन्नि उवओगा ॥१॥ वेउव्विउरलजुयला ४. कम्मणजोगो य १ पंच जोगत्ति । अमणवईए पढमा, दो गुण जिय अट्ठ चउ उवरिं ॥२॥ चक्खुअचक्खू मइसुय अनाण चत्तारि हुंति उवओगा । कम्मणउरालजुयलं २, असच्चमासा य चउ जोगा ॥३॥ तेरस गुण मणजोगे, अंतिमदो जीव बारउवओगा । तेरस जोगा य तहा, कम्मोरलमिस्स २ वज्जत्ति ४ ॥४॥**" मनोयोगे नानात्वं जीवस्थानेष्वेव शेषपदत्रयाभिधानं च प्रसङ्गादिति । अत्र यन्त्रस्थापनेयम्-

म	१३	२	१२	१३
व	२	८	४	४
त	२	४	३	५
•	गु	जी	उ	जो

मतान्तराभिधायकगाथागम्भीरार्थाऽपि सूत्रकारेण केनाप्यभिप्रायेण न विवृता अस्माभिश्च यथाऽवबोधं विवृता । इति गाथार्थः ॥५०॥

---

१ "उच्यते" इति जे० । २ एतद्गाथाचतुष्कं हस्तलिखितमूलगाथाप्रतौ मूलगाथातया प्रतिपादितम् ।

अधुना लेश्यास्तेष्वेव योज्यन्ते—

(मल०) तनुवाङमनस्सु 'क्रमशः' क्रमेण यानि द्विचतुरादीनि द्वादशसङ्ख्यापदानि तानि चत्वारि चत्वारि भूत्वा क्रमश एवं पृथक् पृथग् गुणस्थानकजीवस्थानकोपयोगयोगाभिधायकानि ज्ञातव्यानीत्यक्षरघटना। अस्य च नानात्वस्य निबन्धनम्। अयमभिप्रायः—प्राग्योगान्तरसहितोऽसहितो वा स्वस्व रूपमात्रेणैव काययोगादिर्विवक्षितः, तेन यत्र यथोक्तगुणस्थानकादिवक्तव्यता सर्वाऽप्युपपद्यते। इह तु काययोगादिर्योगान्तरविरहित एव विवक्ष्यते। यथा वाग्योगमनोयोगविरहितः काययोगः, मनोयोगकेवलकाययोगविरहितश्च वाग्योगः, केवलकाययोगवाग्योगविरहितश्च मनोयोगः, ततः पूर्वस्मान्नानात्वमिति। तत्र केवलकाययोगे द्वे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके, चत्वारि पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मबादरैकेन्द्रियलक्षणानि जीवस्थानकानि, त्रयो मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाचक्षुर्दर्शनरूपा उपयोगाः, वैक्रियद्विकौदारिकद्विककार्मणलक्षणाः पञ्च योगाः, केवलकाययोगो ह्येकेन्द्रियेष्वेवाप्यते, तत्र च गुणस्थानकादीनि यथोक्तान्येव घटन्त इति। तथा वाग्योगे मनोयोगविरहिते द्वे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके अष्टौ, पर्याप्तापर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणानि जीवस्थानानि, चत्वारश्चक्षुरचक्षुर्दर्शनमत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणा उपयोगाः, कार्मणौदारिकद्विकासत्यामृषाभाषारूपाश्चत्वारो योगाः, केवलवाग्योगो हि केवलकाययोगविरहितस्वरूपो द्वीन्द्रियादिष्वेवासंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तेषु संभवति नान्येषु, ततो यथोक्तान्येव गुणस्थानकादीनि तत्र भवन्ति न ऊनाधिकानि। तथा मनोयोगेऽयोगिकेवलिवर्जितानि शेषाणि त्रयोदशगुणस्थानकानि, द्वे च पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणे जीवस्थानके, द्वादशाप्युपयोगाः, कार्मणौदारिकमिश्रवर्जिताश्च शेषास्त्रयोदश योगाः, कार्मणौदारिकमिश्रौ हि काययोगावपर्याप्तावस्थायां केवलिसमुद्घातावस्थायां वा, न च तदानीं मनोयोगोऽपर्याप्तावस्थायां मनस एवाभावात् केवलिसमुद्घातावस्थायां तु प्रयोजनाभावात्। तदुक्तम् मनोवचसी तु तदा सर्वथा न व्यापारयति, प्रयोजनाभावादिति ॥५०॥

उक्तं योगेषु नयमतनानात्वम्, साम्प्रतं मार्गणास्थानेषु लेश्या अभिधित्सुराह—

लेसा उ तिन्नि पढमा, नारगविगलग्गिवाउकाएसु।
एगिंदिभूतरूदगअसन्निसु पढमिया चउरो ॥५१॥

(हारि०) व्याख्या—लेश्यास्तिस्रः प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्या भवन्तीति। केषु? इत्याह—नारक १-विकला ४ ऽग्नि ५ वायुकायिकेषु ६ अत्र द्वन्द्वः इति पदपञ्चके प्रथमा एव प्रथमिकाश्चतस्रः कृष्णनीलकापोततैजस्यभिधाना भवन्ति। इति गाथार्थः ॥५१॥

(मल०) मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनरहिताः शेषा दशैवोपयोगा अनाहारके भवन्ति, तुरेवकारार्थे, तदुक्तम्—"तुः स्याद्भेदेऽवधारणे" इति । अनाहारको हि विग्रहगतौ केवलिसमुद्घातावस्थायामयोग्यवस्थायां वा, न च तदानीं मनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनसंभव इति, उपसंहारमाह—'**उवयोगा इय गइयाइसु**' इति, इति एवमुक्तेन प्रकारेण गत्यादिषु मार्गणास्थानेषूपयोगा भवन्ति । साम्प्रतं योगेषु गुणस्थानकजीवस्थानोपयोगयोगानधिकृत्य मतान्तरमुपक्षिपन्नाह—'**नयमयणाणत्तमिणं तु जोगेसु**' योगेषु मनोवाक्कायलक्षणेषु नयनमतेन "**नयो ज्ञातुरभिप्रायः**" इतिवचनात्, अभिप्रायान्तरविशेषरूपेण नानात्वमिदं वक्ष्यमाणरूपं द्रष्टव्यम् । तुर्विशेषणे, स च शेषेषु मार्गणास्थानकेषु यथाभिहितं तथैवावगन्तव्यम् । योगेषु पुनर्वक्ष्यमाणनयमतापेक्षयाऽन्यथाऽपीति विशेषयति ॥४९॥

तदेव नानात्वमुपदर्शयति—

तणुवइमणेसु कमसो, दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।
तेरसदुबारतेरस, गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥५०॥

(हारि०) व्याख्या-तनुवाङ्मनस्सु '**कमसो**' यथासंख्येन द्वि १ चतु २ त्रि ३ पञ्च ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगा ४ इति तनौ काययोगे । तथा क्रमश एव द्वि १ अष्ट २ चतु ३ श्चत्वारो ४ गुण १ जीवो २ पयोग ३ योगाः ४ इति वाचि वाग्योगे । तथा क्रमश इत्यत्रापि संबध्यते, ततस्त्रयोदश १ द्वि २ द्वादश ३ त्रयोदश ४ गुण १ जीवस्थानको २ पयोग ३ योगाः ४ इति मनसि मनोयोगे भवन्तीत्यक्षरघटना । भावार्थो गाथाभिः [1]कथ्यते-[2]"**केवलतणुजोगंमी, दो गुणचउजीवआइमा हुंति । मइसुयअन्नाणदुगं, अचक्खू तिन्नि उवओगा ॥१॥ वेउव्विउरलजुयला ४. कम्मणजोगो य १ पंच जोगत्ति । अमणवईए पढमा, दो गुण जिय अट्ठ चउ उवरिं ॥२॥ चक्खुअचक्खू मइसुय अनाण चत्तारि हुंति उवओगा । कम्मणउरालजुयलं २, असच्चभासा य चउ जोगा ॥३॥ तेरस गुण मणजोगे, अंतिमदो जीव बारउवओगा । तेरस जोगा य तहा, कम्मोरलमिस्स २ वज्जत्ति ४ ॥४॥**" मनोयोगे नानात्वं जीवस्थानेष्वेव शेषपदत्रयाभिधानं च प्रसङ्गादिति । अत्र यन्त्रस्थापनेयम्- मतान्तराभिधायकगाथागम्भीरार्थाऽपि सूत्रकारेण केनाप्यभिप्रायेण न विवृता अस्माभिश्च यथाऽवबोधं विवृता । इति गाथार्थः ॥५०॥

म	१३	२	१२	१३
व	२	८	४	४
त	२	५	३	५
•	गु	जी	उ	जो

१ "उच्यते" इति जे० । २ एतद्गाथाचतुष्कं हस्तलिखितमूलगाथाप्रतौ मूलगाथातया प्रतिपादितम् ।

अधुना लेश्यास्तेष्वेव योज्यन्ते—

(मल०) तनुवाङ्मनस्सु 'क्रमशः' क्रमेण यानि द्विचतुरादीनि द्वादशसङ्ख्यापदानि तानि चत्वारि चत्वारि भूत्वा क्रमश एवं पृथक् पृथग् गुणस्थानकजीवस्थानकोपयोगयोगाभिधायकानि ज्ञातव्यानीत्यक्षरघटना । अस्य च नानात्वस्य निबन्धनम् । अयमभिप्रायः—प्राग्योगान्तरसहितोऽसहितो वा स्वस्वरूपमात्रेणैव काययोगादिर्विवक्षितः, तेन यत्र यथोक्तगुणस्थानकादिवक्तव्यता सर्वाऽप्युपपद्यते। इह तु काययोगादिर्योगान्तरविरहित एव विवक्ष्यते। यथा वाग्योगमनोयोगविरहितः काययोगः, मनोयोगकेवलकाययोगविरहितश्च वाग्योगः, केवलकाययोगवाग्योगविरहितश्च मनोयोगः, ततः पूर्वस्मान्नानात्वमिति। तत्र केवलकाययोगे द्वे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके, चत्वारि पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मबादरैकेन्द्रियलक्षणानि जीवस्थानकानि, त्रयो मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाचक्षुर्दर्शनरूपा उपयोगाः, वैक्रियद्विकौदारिकद्विककार्मणलक्षणाः पञ्च योगाः, केवलकाययोगो ह्येकेन्द्रियेष्वेवाप्यते,तत्र च गुणस्थानकादीनि यथोक्तान्येव घटन्त इति । तथा वाग्योगे मनोयोगविरहिते द्वे मिथ्यादृष्टिसासादनलक्षणे गुणस्थानके अष्टौ, पर्याप्तापर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणानि जीवस्थानानि, चत्वारश्चक्षुरचक्षुर्दर्शनमत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणा उपयोगाः, कार्मणौदारिकद्विकासत्यामृषाभाषारूपास्चत्वारो योगाः, केवलवाग्योगो हि केवलकाययोगविरहितस्वरूपो द्वीन्द्रियादिष्वेवासंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तेषु संभवति नान्येषु, ततो यथोक्तान्येव गुणस्थानकादीनि तत्र भवन्ति न ऊनाधिकानि । तथा मनोयोगेऽयोगिकेवलिवर्जितानि शेषाणि त्रयोदशगुणस्थानकानि, द्वे च पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणे जीवस्थानके, द्वादशाप्युपयोगाः, कार्मणौदारिकमिश्रवर्जिताश्च शेषास्त्रयोदश योगाः, कार्मणौदारिकमिश्रौ हि काययोगावपर्याप्तावस्थायां केवलिसमुद्घातावस्थायां वा, न च तदानीं मनोयोगोऽपर्याप्तावस्थायां मनस एवाभावात् केवलिसमुद्घातावस्थायां तु प्रयोजनाभावात् । तदुक्तम् मनोवचसी तु तदा सर्वथा न व्यापारयति, प्रयोजनाभावादिति ॥५०॥

उक्तं योगेषु नयमतनानात्वम् , साम्प्रतं मार्गणास्थानेषु लेश्या अभिधित्सुराह—

'लेसा उ तिन्नि पढमा, नारगविगलग्गिवाउकाएसु ।
एगिंदिभूतरूदगअसन्निसु पढमिया चउरो ॥५१॥

(हारि०) व्याख्या—लेश्यास्तिस्रः प्रथमाः कृष्णनीलकापोताख्या भवन्तीति । केषु ? इत्याह—नारक १-विकला ४ ऽग्नि ५ वायुकायिकेषु ६ अत्र द्वन्द्वः इति पदपञ्चके प्रथमा एव प्रथमिकाश्चतस्रः कृष्णनीलकापोततैजस्यभिधाना भवन्ति । इति गाथार्थः ॥५१॥

तथा—

(मल०) लेश्यास्तिस्रः कृष्णनीलकापोतरूपा नारकेषु विकलेन्द्रियेष्वमिषु वायुकायिकेषु च संभवन्ति नान्याः प्रायोऽमीषामप्रशस्ताध्यवसायस्थानोपेतत्वात् । तथेन्द्रियद्वारे एकेन्द्रियेषु, कायद्वारे भूतरूदकेष्वसंज्ञिषु च प्रथमाश्चतस्रः कृष्णनीलकापोततेजोरूपा लेश्या भवन्ति । भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशाना हि देवाः स्वस्वभवविच्युतावेतेषूत्पद्यन्ते ते च तेजोलेश्यावन्तः । जीवश्च यल्लेश्यो म्रियते अग्रेऽपि तल्लेश्य एवोपपद्यते, "जल्लेसे मरइ तल्लेसे उववज्जइ" इति वचनात् । तत एतेषामपर्याप्तावस्थायां कियत्कालं तेजोलेश्या भवतीति ॥५१॥

केवलजुयलअहक्खायसुहुमरागेसु सुक्कलेसेव ।
लेसासु छसु सठाणं गइयाइसु छावि सेसेसु ॥५२॥

(हारि०) व्याख्या—केवलयुगलयथाख्यातसूक्ष्मरागेषु इति द्वन्द्वः, इति पदचतुष्के शुक्लैवैका लेश्या । तथा लेश्यासु षट्सु स्वस्थानम् । कृष्णलेश्यायां कृष्णलेश्या, नीललेश्यायां, नीललेश्या, इत्यादि । तथा गत्यादिषु शेषेष्वेकचत्वारिंशत्पदेषु षडपि लेश्याः । इति गाथार्थः ॥५२॥

इति योजिता लेश्याः, इतोऽल्पबहुत्वमुच्यते—

(मल०) केवलयुगले केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे, तथा यथाख्यातसंयमे सूक्ष्मसंपरायसंयमे च शुक्ललेश्या भवति न शेषलेश्याः, केवलयुगलादावेकान्तविशुद्धपरिणामभावात्, तस्य शुक्ललेश्याऽविनाभूतत्वात् । तथा षट्सु लेश्यासु 'स्वस्थानम्' इति स्वा स्वा लेश्या भवति यथा कृष्णलेश्यायां कृष्णलेश्या इत्यादि । 'शेषेषु' च गत्यादिमार्गणास्थानकेष्वेकचत्वारिंशत्संख्येषु षडपि लेश्या भवन्तीति ।५२।

तदेवमुक्ता मार्गणास्थानकेषु लेश्याः, इदानीमेतेष्वेव चतुर्दशसु मार्गणास्थानेषु स्वस्थानापेक्षयाऽल्पबहुत्वमुच्यते—

गइयाइसु अप्पबहुं, भणामि सामन्नओ सठाणे वि ।
नरनिरयदेवतिरिया, थोवा दुअसंखणंतगुणा ॥५३॥

(हारि०) व्याख्या—'गत्यादिषु' चतुर्दशस्थानेषु 'अल्पबहुत्वं' एते स्तोका एतेभ्य एते बहव इत्येवंलक्षणं 'भणामि' प्रतिपादयामि, 'स्वस्थानेऽपि' सप्रतिभेदे गत्यादौ 'सामान्यतो' देवमनुष्यादिगतिभेदानपेक्षं यथा भवति, एतदेवाह—'नर' इत्यादि, अत्र

यथासंख्येन पदयोजना कार्या, सा चैवम्—नरास्तावत् स्तोकाः १, ततो नारका असंख्यातगुणाः २, ततो देवा असंख्यातगुणाः ३, ततस्तिर्यञ्चोऽनन्तगुणाः ४ तत्रानन्तवनस्पतिसद्भावात् । एवमन्यत्रापि यथासंभवं वनस्पतिमाश्रित्यानन्तत्वभावना कार्या । इति गाथार्थः ॥५३॥

इति गतिष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) गत्यादिषु चतुर्दशसु मार्गणास्थानेषु 'सठाणे वि' इति अपिरवधारणे स्वस्थान एव न तु परस्थाने, स्वगत[1]नारकाद्यपेक्षयैवेति यावत् 'अल्पबहुत्वम्' एतेभ्य एते स्तोका एते बहव इत्येवं लक्षणं भणामि, "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" इति भविष्यति वर्तमाना, ततो भणामि भणिष्यामीत्यर्थः । कथम् ? इत्याह—'सामान्यतः' सामान्येन स्तोकविशेषाधिकासंख्यातादित्वरूपेण, न तु विशेषेण श्रेणिप्रतराद्याकाशप्रदेशोत्सर्पिण्यादिसमयापहारलक्षणेन, तथाऽभिधाने सति ग्रन्थगौरवापत्तितः संक्षिप्तरुचिविनेयजनोपकारानुपपत्तेः । तदेव सामान्यतोऽल्पबहुत्वमाह—'नरनिरय' इत्यादि । इह यथासंख्येन पदयोजना कर्तव्या । सा चैवम्—नरा मनुष्या निरयदेवतिर्यग्योनिभ्यः सकाशात्स्तोकाः, यतस्तैरुत्कृष्टपदवर्तिभिरपि सर्वतः सप्तरज्जुप्रमाणस्य घनीकृतस्य लोकस्योपरितनाधस्तनप्रदेशरहितमेकैकप्रदेशपङ्क्तिरूपं श्रेणिमात्रमप्यङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशिसंबन्धितृतीयवर्गमूलगुणितप्रथमवर्गमूलप्रदेशप्रमाणैरसत्कल्पनया षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयप्रमाणाङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशिसंबन्धिद्विकलक्षणतृतीयवर्गमूलगुणितषोडश—लक्षणप्रथमवर्गमूललब्धद्वात्रिंशत्प्रदेशप्रमाणैराकाशखण्डैर्मनुष्यरूपस्थानीयैरपह्रियमाणमपि नापह्रियते, एकरूपहीनत्वात् । यदि पुनरेतावत्प्रमाणमेकं रूपमन्यत्स्यात्, ततः सकलाऽपि श्रेणिरपह्रियते । कालतश्च प्रतिसमयमेतावत्प्रमाणैरप्याकाशखण्डैरपह्रियमाणा श्रेणिरसंख्याताभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिर्निःशेषतोऽपह्रियते, कालतः सकाशात्क्षेत्रस्यात्यन्तसूक्ष्मत्वात् । उक्तं च **"उक्कोसपए जे मणुस्सा भवन्ति तेसु एक्कंमि मणुयरूवे पक्खित्ते समाणे तेहिं मणुस्सेहिं सेढी अवहीरइ । तीसे य सेढीए कालखित्तेहिं अवहारो मग्गिज्जइ । कालतो ताव असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणोहिं, खेत्तओ अंगुलपढमवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पन्नं । किं भणियं होइ ? तीसे सेढीए अंगुलायए खण्डे जो पएसरासी, तस्स जं पढमवग्गमूलपएसरासिमाणं तं तं तइयवग्गमूलपएसरासिणा पडुप्पाइज्जइ पडुप्पाइए समाणे जो पएसरासी हवइ एवइएहिं खंडेहिं अवहीरमाणो अवहीरमाणो जाव निट्ठाइ ताव मणुस्सावि अवहीरमाणा निट्ठंति । आह, कहमेगा सेढी एद्दहमेत्तेहिं खंडेहिं अवहीरमाणी अवहीरमाणी असंखि-**

---

१ "नारकादिपदापेक्षया" इत्यपि । "नारकादिभेदापेक्षया" इत्यपि ॥

ज्जाहि उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरइ। आयरिओ आह, खेत्तस्स सुहुमत्त-णओ सुत्ते विमं भणियं–'सुहुमो य होइ कालो, तत्तो सुहुमयरं हवइ खेत्तं। अंगुलसेढीमित्ते, ओसप्पिणिओ असंखेज्जा ॥१॥' इति।'' अतो निरयादिभ्यः सकाशात्स्तोका मनुष्याः, तेभ्यो नारका असंख्यातगुणाः, यतः सप्तरज्जुप्रमाणस्य घनीकृतस्य लोकस्योर्द्ध्वाधआयता एकप्रादेशिक्यः श्रेणयोऽङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशिगतप्रथमवर्गमूलघनप्रदेशराशिप्रमाणास्तासां यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणा नारकाः, अतस्ते नरेभ्योऽसंख्यातगुणा एव, तेभ्योऽपि देवा असंख्यातगुणाः, कथम्? इति चेद्, उच्यते, देवा हि भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकभेदेन चतुर्विधाः। भवनपतयश्चासुरनागसुवर्णादिभेदेन दशविधाः। तत्रासुरकुमारा अपि तावद्घनीकृतस्य लोकस्य या ऊर्ध्वाधआयता एकप्रादेशिक्यः श्रेणयोऽङ्गुलमात्रक्षेत्रगतप्रदेशराशिसंबन्धिप्रथमवर्गमूलासंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणास्तासां संबन्धी यावान् प्रदेशराशिस्तावत्संख्याकाः। एवं नागकुमारादयोऽपि प्रत्येकं द्रष्टव्याः। तथा संख्येययोजनप्रमाणाकाशप्रदेशसूचिरूपैः खण्डैर्यावद्भिर्घनीकृतस्य लोकस्य (¹उपरितनाधस्तनप्रदेशरहितं मण्डकाकारं) प्रतरमपह्रियते तावत्प्रमाणा व्यन्तराः। उक्तं च–**''संखेज्जजोयणाणं, सूइपएसेहिं भाइयं पयरं। वंतरसुरेहि हीरइ, एवं एक्केक्कभेदेणं ॥१॥''** इति। अस्या अक्षरगमनिका-संख्येययोजनानां या सूचिरेकप्रादेशिकी पङ्क्तिस्तत्प्रदेशैः संख्येययोजनप्रमाणैकप्रादेशिकपङ्क्तिप्रदेशैरिति यावद्भक्तं प्रतरं व्यन्तरसुरैरपह्रियते तावद्भागलब्धराशिप्रमाणा व्यन्तरसुरा इत्यर्थः। इयमत्र भावना-संख्येययोजनप्रमाणसूचिप्रदेशाः किलासत्कल्पनया दश प्रतरप्रदेशाश्च लक्षम्, तस्य दशभिर्भागे हृते लब्धाः सहस्रा दश एतावन्त इत्यर्थः। एवमुक्तेन प्रकारेण प्रतिनिकायं व्यन्तराणां भावना कार्या। न चैवं सर्वसमुदायप्रमाणनियमव्याघातप्रसङ्गः, सूचिप्रमाणहेतुयोजनसंख्येयत्वस्य वैचित्र्यादिति। तथा षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयाङ्गुलप्रमाणैराकाशप्रदेशसूचिरूपैः खण्डैर्यावद्भिर्यथोक्तस्वरूपं प्रतरमपह्रियते तावत्प्रमाणा ज्योतिष्का देवाः। तदुक्तम्–**छप्पन्नदोसयंगुलसूइपएसेहिं भाइयं पयरं। जोइसिएहिं हीरइ''** इति। अत एवोक्तं सूत्रे–**''वाणमंतरेहिंतो संखेज्जगुणा जोइसिया''** इति तथा वैमानिकदेवा घनीकृतस्य लोकस्य या ऊर्ध्वाधआयता एकप्रादेशिक्यः श्रेणयोऽङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशिसंबन्धितृतीयवर्गमूलघनप्रमाणास्तासां यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणाः। अतः सकलभवनपत्यादिसमुदायापेक्षया चिन्त्यमाना देवा नारकेभ्योऽसङ्ख्यातगुणा एव। तथा चोक्तम्–**''थोवा नरा नरेहि य, असंखगुणिया हवंति नेरइया। तत्तो सुरासुरेहि य, सिद्धाणंता तओ तिरिया ॥१॥''** इति। यदुक्तं तृतीयवर्गमूलघनप्रमाणा इति, तस्येयं गणितभावना–अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेरसत्कल्पनया

१ एतत्कोष्ठाकान्तर्वर्तिपाठ एक एव पुस्तक उपलभ्यते।

षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयप्रमाणस्य प्रथमं वर्गमूलं षोडश, द्वितीयं चत्वारि, तृतीये द्वे, तच्च तृतीयं वर्गमूलं द्वितीयेन वर्गमूलेन चतुष्टयलक्षणेन गुण्यते ततोऽष्टौ भवन्ति; एष तृतीयवर्गमूलस्य घनः।

अङ्कस्थापना-	२५६ / १६ / ४ / २	अस्य घनः ८। एवं प्रागपि वर्गमूलघनभावना द्रष्टव्या। तेभ्योऽपि च
देवेभ्यस्तिर्य-		ञ्चोऽनन्तगुणाः; तत्रानन्तसंख्योपेतस्य वनस्पतिकायस्य सद्भावात् ॥५३॥

तदेवं गतिष्वल्पबहुत्वमभिधाय, साम्प्रतमिन्द्रियद्वारे तदभिधित्सुराह—

पणचउतिदुएगिंदी, थोवा तिन्नि अहिया अणंतगुणा।
तसतेउपुढविजलवाउहरियकाया पुण कमेणं ॥५४॥
थोवा असंखगुणिया, तिन्नि विसेसाहिया अणंतगुणा।
मणवयणकायजोगी, थोवासंखगुणणंतगुणा ॥५५॥

(हारि०) व्याख्या—सूचकत्वात्सूत्रस्य पञ्चचतुस्त्रिद्व्येकेन्द्रियाः, अत्र द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। तत्र पञ्चेन्द्रियाः स्तोकाः, तेभ्यश्चतुरिन्द्रिया अधिकाः, तेभ्यस्त्रीन्द्रिया अधिकाः, ततो द्वीन्द्रिया अधिकाः, तेभ्य एकेन्द्रिया अनन्तगुणाः। अनन्तत्वभावना प्राग्वत्। इतीन्द्रियेष्वल्पबहुत्वमुक्तम्। तथा त्रसतेजःपृथिवीजलवायुहरितकायाः, इह द्वन्द्वगर्भस्तत्पुरुषः। पुनः क्रमेणाल्पबहुत्वं वक्ष्यमाणगाथया मन्तव्यम्। इति गाथार्थः ॥५४॥

तदेवाह—

(हारि०) व्याख्या—त्रसादयः प्राग्गाथापरार्द्धोक्ताः। तत्र त्रसाः स्तोकाः, तेभ्यस्तेजस्काया असङ्ख्येयगुणिताः, ततः पृथिवीकायिका विशेषाधिकाः, तेभ्यो जलकायिका विशेषाधिकाः, तेभ्यो वायुकायिका विशेषाधिकाः, तेभ्यो हरितकायिका अनन्तगुणाः। अनन्तत्वभावना प्राग्वत्। इति कायेष्वल्पबहुत्वमुक्तम्। तथा मनोवचनकाययोगिनः क्रमेणेति प्रक्रमः। स्तोका मनोयोगिनः संज्ञिपञ्चेन्द्रियाः, तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणा वचनयोगिनो द्वीन्द्रियादयः, तेभ्योऽनन्तगुणाः काययोगिन एकेन्द्रियाः पृथ्वीप्रभृतयः। अनन्तगुणत्वभावना प्रागिव। इति योगेष्वल्पबहुत्वमुक्तम्। इति गाथार्थः ॥५५॥

तथा—

(मल०) पञ्चेन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियादिभ्यः सकाशात्स्तोकाः, तेभ्यश्चतुरिन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेभ्योऽपि त्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेभ्योऽपि द्वीन्द्रिया विशेषाधिकाः। तत्र यद्यपि च घनीकृतस्य लोकस्य या ऊर्ध्वाधआयता एकप्रादेशिक्यः श्रेणयः असंख्यातयोजनकोटीकोटीप्रमाणाकाशप्रदेशसूचिगतप्रदेशराशिप्रमाणास्तासां यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणा द्वीन्द्रियत्रीन्द्रिय-

चतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिपञ्चेन्द्रिया अविशेषेण सूत्रे निर्दिष्टाः । तथा चोक्तं तत्र यथोक्तरूप-द्वीन्द्रियपरिमाणाभिधानानन्तरम्–"जहा बेइंदियाणं तहा तेइंदियाणं चउरिंदियाण वि भाणियव्व. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणंपि" इति । तथाऽपि सूचिपरिमाणहेत्वसङ्ख्यातरूपसङ्ख्याया बहुभेदत्वान्न यथोक्तविशेषाधिकत्वाभिधानव्याघातः । अत एव च हेतोस्तिर्यग्योनिपञ्चेन्द्रियेषु द्वीन्द्रियादितुल्यतया सूत्रेऽभिहितेष्वपि तत्रापि नरनिरयदेवप्रक्षेपेऽपि पञ्चेन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियादिभ्यः स्तोका एव द्रष्टव्याः । तदुक्तम्–पचिंदिया य थोवा, विवज्जएण वियला विसेसहिया" इति द्वीन्द्रियेभ्योऽपि चैकेन्द्रिया अनन्तगुणाः, वनस्पतिकायजीवराशेरनन्तानन्तत्वात् । तस तेउ' इत्यादि सोत्तरगाथार्द्धम् । त्रसा द्वीन्द्रियादयः पूर्वनिर्दिष्टसंख्याकाः, ते तेजस्कायिकादिभ्यः सकाशात्स्तोकाः, तेभ्यः पुनस्तेजस्कायिका असंख्यातगुणाः, तेषां सूक्ष्मबादरभेदभिन्नानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् तेभ्यः पृथ्वीकायिका विशेषाधिकाः, तेभ्योऽप्कायिका विशेषाधिकाः, तेभ्योऽपि वायुकायिका विशेषाधिकाः । यद्यपि चैतेषामपि पृथ्वीकायिकादीनामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणतया सूत्रेऽविशेषेण निर्देशः कृतः । तथा चोक्तम्–जहा पुढविकाइयाणं एवं आउकाइयाणं वि" इत्यादि । तथाऽपि लोकानामसंख्यातत्वस्यानेकभेदत्वादिहैव विशेषाधिकत्वाभिधानेऽपि न कश्चिद्दोषः । उक्तं च—"थोवा य तसा तत्तो. तेउ असंखा तओ विसेसहिया । कमसो भूदगवाऊ, अकायहरिया अणंतगुणा ॥१॥" 'अकाय' इति सिद्धाः, तथा तेभ्यो वायुकायिकेभ्यो हरितकाया अनन्तगुणाः, अनन्तलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् । मणवयग' इत्यादि । मनोयोगिनः स्तोकाः, संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणामेव मनोयोगित्वात् । तेभ्यश्च वाग्योगिनोऽसङ्ख्यातगुणाः, द्वीन्द्रियादीनामप्यसंज्ञितिर्यक्पञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां वाग्योगिनां मनोयोगिभ्योऽसङ्ख्यातगुणानां तत्र प्रक्षेपात् । वाग्योगिभ्योऽपि काययोगिनोऽनन्तगुणाः, वनस्पतिकायिकानामप्यनन्तानन्तानां तत्र प्रक्षेपात् ॥५४॥५५॥

पुरिसेहिंतो इत्थी, संखेज्जगुणा नपुंसणंतगुणा ।
माणी कोही [1]मायी, लोही कमसो विसेसहिया ॥५६॥

(हारि०) व्याख्या–पुरुषाः स्तोका इति सामर्थ्याल्लभ्यते, ततः पुरुषेभ्यः स्त्रियः संख्येयगुणाः । तथा चागमः–"देवेहिंतो बत्तीसगुणाओ देवीणो नरेहिंतो सत्तावीसगुणाओ नारीओ, तिरिएहिंतो तिगुणाओ तिरिक्खीओ किंचि अहियाओ ।" इति । अत्रार्थे गाथे "तिगुणा तिरूवअहिया, तिरियाणं इत्थिया मुणेयव्वा । सत्तावीसगुणा पुण, मणुयाणं तदहिया चेव ॥१॥ बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया य तह य देवाणं ।

१ "माई लोमी" इत्यपि पाठ ।

देवीओ पन्नत्ता, जिणेहि जियरागदोसेहिं ॥२॥" ततः स्त्रीभ्यो नपुंसकान्यनन्तगुणानि । अनन्तत्वभावना पूर्ववत् । इति वेदेष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा मानिनः, क्रोधवन्तो, मायिनो, लोभवन्तः क्रमेण विशेषाधिकाः, अयमर्थः—स्तोका मानवन्त इत्यागमे भणनात्स्तोका इति सामर्थ्यलभ्यम् । शेषा भणितक्रमेण विशेषाधिका ज्ञेयाः । सामान्येन चत्वारोऽप्यनन्ताः, अनन्तकायिकादिष्वेतच्चतुष्कषायसद्भावात् । इति कषायेष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । इति गाथार्थः ॥५६॥

तथा—

(मल०) स्त्र्यादिभ्यः सकाशात्पुरुषाः स्तोका इति सामर्थ्याल्लभ्यते, अन्यथा तेभ्यः स्त्रीणां सङ्ख्यातगुणत्वं नोपपद्यते, पुरुषेभ्यः सकाशात्स्त्रियः संख्यातगुणाः । उक्तंच—"**तिगुणा तिरूवअहिया, तिरियाणं इत्थिया मुणेयव्वा । सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिया चेव ॥१॥ बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया य तह य देवाणं । देवीओ पण्णत्ता, जिणेहि जियरागदोसेहिं ॥२॥**" स्त्रीभ्यश्च नपुंसका अनन्तगुणाः, अनन्तगुणता च वनस्पतिकायापेक्षया द्रष्टव्या । '**माणी**' इत्यादि सर्वस्तोका मानिनः, मानपरिणामकालस्य क्रोधादिपरिणामकालापेक्षया सर्वस्तोकत्वात् । तेभ्यः क्रोधवन्तो विशेषाधिकाः, क्रोधपरिणामकालस्य मानपरिणामकालापेक्षया विशेषाधिकत्वात् । तेभ्योऽपि मायिनो विशेषाधिकाः, भूयस्त्वेन जन्तूनां प्रभूतकालं च मायाबहुलत्वात् । ततोऽपि विशेषाधिका लोभवन्तः, सर्वेषामपि प्रायः संसारिजीवानां सदा परिग्रहाद्याकाङ्क्षासद्भावात् ॥५६॥

मणपज्जविणो [1]थोवा, ओहिण्णाणी तओ असंखगुणा ।
मइसुयनाणी तत्तो, विसेसअहिया समा दोवि ॥५७॥

(हारि०) व्याख्या—मनःपर्यवज्ञानिनः स्तोकाः, अवधिज्ञानिनस्ततोऽसंख्यगुणाः, असंख्यत्वात्सम्यग्दृष्टिदेवादीनाम् । मतिश्रुतज्ञानिनस्ततो विशेषाधिकाः, अवधिरहितसम्यग्दृष्टितिर्यङ्नरप्रक्षेपात् । स्वस्थाने पुनः '**समौ**' तुल्यौ द्वावपि राशी । इति गाथार्थः ॥५७॥

तथा—

(मल०) मनःपर्यायज्ञानिनः शेषज्ञान्यपेक्षया स्तोकाः, तद्धि गर्भव्युत्क्रान्तमनुष्याणां तत्रापि संयतानामप्रमत्तानां विविधामर्षौषध्यादिलब्धियुक्तानामुपजायते । यत उक्तम्-"**तं संजयस्स सव्वप्पमायरहियस्स विविहरिद्धिमतो ।**" इत्यादि । ते च स्तोका एव, सङ्ख्यातत्वात् । तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणा अवधिज्ञानिनः, सम्यग्दृष्टिदेवादीनामवधिज्ञानयुक्तानां तेभ्योऽसंख्यातगुणत्वात् । '**ततः**' अवधिज्ञानिभ्यः सकाशान्मतिश्रुतज्ञानिनो विशेषाधिकाः, अवधिज्ञानरहितसम्यग्दृष्टिनरतिर्यक्प्रक्षेपात् । एतौ च मतिज्ञानिश्रुतज्ञानिनो स्वस्थाने चिन्त्यमानौ

---

१ "थेवा ओहिन्नाणी" इत्यपि पाठः ।

द्वावपि तुल्यौ, मतिश्रुतज्ञानयोः परस्परनान्तरीयकत्वात् । तथा च सूत्रम्-"**जत्थ मइनाणं तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुयनाणं तत्थ मइनाणं । दोवि एयाइं अन्नान्नमणुगयाइं**" इति ॥५७॥

विब्भंगिणो असंखा, केवलनाणी तओ अणंतगुणा ।
तत्तोऽणंतगुणा दो, मइसुयअन्नाणिणो तुल्ला ॥५८॥

(हारि०) व्याख्या—वक्ष्यमाणतच्छब्दस्यात्रापि योगात्ततः पूर्वगाथोक्तमतिश्रुतज्ञानिभ्यः सकाशाद्विभङ्गिनोऽसंख्याः, मिथ्यादृष्टिसुरादीनामसंख्यगुणत्वात् । केवलज्ञानिनस्ततोऽनन्तगुणाः सिद्धानामानन्त्यात् । ततोऽनन्तगुणौ द्वौ मतिश्रुताज्ञानिनौ, एतदज्ञानद्वयवतां हि मिथ्यादृष्ट्यादीनामनन्तगुणत्वात् । 'तुल्यौ' समौ स्वस्थान इति शेषः । इति गाथार्थः ॥५८॥

इति ज्ञानेष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) तेभ्यश्च मतिज्ञानिश्रुतज्ञानिभ्यः सकाशाद्विभङ्गज्ञानिनोऽसङ्ख्यातगुणाः, मिथ्यादृष्टिसुरादीनां विभङ्गज्ञानवतां तेभ्योऽसङ्ख्यातगुणत्वात् । ततोऽपि च विभङ्गज्ञानिभ्यः सकाशात्केवलिनोऽनन्तगुणाः, सिद्धानां तेभ्योऽनन्तगुणत्वात्, तेषां च केवलज्ञानयुक्तत्वात् । तेभ्योऽपि च केवलज्ञानिभ्यः सकाशादनन्तगुणाः मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनः, सिद्धेभ्यो वनस्पतिकायिकानामनन्तगुणत्वात्, तेषां च मिथ्यादृष्टितया मतिश्रुताज्ञानयुक्तत्वात् । एतौ द्वावपि मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनौ स्वस्थाने चिन्त्यमानौ तुल्यौ, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानयोः परस्परमविनाभावित्वात् ॥५८॥

सुहुमपरिहारअहखायछेयसामइयदेसजइअजया ।
थोवा संखेज्जगुणा, चउरो अस्संखणंतगुणा ॥५९॥

(हारि०) व्याख्या—सूचकत्वात्सूत्रस्य सूक्ष्मसंपरायपरिहारविशुद्धिकयथाख्यातच्छेदोपस्थापनीयसामायिकदेशयत्ययताः क्रमेणेति प्रक्रमः । प्रथमाः स्तोकाः । ततः संख्येयगुणाश्चत्वारः । ततो देशयतयो गुणशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धादसंख्यगुणाः असंख्यगुणत्वाद्देशविरततिरश्चाम् । ततोऽनन्तगुणा अयताः, आद्यगुणस्थानकचतुष्टयवर्त्यसंयमिनः । भावना पूर्ववत् । इति गाथार्थः ॥५९॥

इति संयमेष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) सर्वस्तोकाः सूक्ष्मसंपरायसंयमिनः, शतपृथक्त्वमात्रसंभवात् । तेभ्यः सङ्ख्येयगुणाः परिहारविशुद्धिकाः, सहस्रपृथक्त्वसंभवात् । तेभ्योऽपि सङ्ख्येयगुणा यथाख्यातचारित्रिणः, कोटीपृथक्त्वेन प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्योऽपि च च्छेदोपस्थापनचारित्रिणः सङ्ख्येयगुणाः, कोटीशतपृथक्त्वेन लभ्यमानत्वात् । तेभ्योऽपि सामायिकसंयमिनः सङ्ख्येयगुणाः, कोटीसहस्रपृथ-

क्त्वेन प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्योऽपि देशयतयोऽसङ्ख्यातगुणाः, असङ्ख्यातानां तिरश्चां देशविरतिसंभवात् । तेभ्योऽप्ययताः संयमहीना आद्यगुणस्थानकचतुष्टयवर्तिनोऽनन्तगुणाः, मिथ्यादृशामनन्तानन्तत्वात् । 'संखेज्जगुणा चउरो' इति चत्वारः परिहारविशुद्धिकयथाख्यातच्छेदोपस्थानसामायिकवन्तः क्रमेण सङ्ख्येयगुणाः शेषाक्षरगमनिका सुज्ञाना । इति ॥५९॥

इय ओहिचक्खुकेवलअचक्खुदंसी कमेण विन्नेया ।
थोवा अस्संखगुणा, अणंतगुणिया अणंतगुणा ॥६०॥

(हारि०) व्याख्या–'इति' अमुनोल्लेखेन विज्ञेया इति संबन्धः, पदावयवे पदसमुदायोपचारात् । अवधिदर्शनचक्षुर्दर्शनकेवलदर्शनाचक्षुर्दर्शनिनः, 'क्रमेण' भणितपरिपाट्या 'विज्ञेयाः' ज्ञातव्याः । कथम् ? स्तोका अवधिदर्शनिनः । ततोऽसंख्यगुणाश्चक्षुर्दर्शनिनः चतुरिन्द्रियप्रमुखचक्षुष्मतामसंख्यगुणत्वात् । ततोऽनन्तगुणिताः केवलदर्शनिनः, सिद्धानामनन्तत्वादेव । ततोऽनन्तगुणा अचक्षुर्दर्शनिनः, सर्वजीवव्यापित्वादचक्षुर्दर्शनस्य । तदुक्तम्–"**ज्ञानं सम्यग्दृष्टेर्दर्शनमथ भवति सर्वजीवानाम् । इति भावना ।**" इति गाथार्थः ॥६०॥

इति दर्शनेष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) '**इति**' एवं वक्ष्यमाणलक्षणेन प्रकारेणावधिचक्षुःकेवलाचक्षुर्दर्शनिनः क्रमेण विज्ञेयाः । केन प्रकारेण ? इत्याह–'**थोवा**' इत्यादि, स्तोका अवधिदर्शनिनः, सुरनारकाणां नरतिरश्चां च केषांचिदवधिदर्शनसंभवात् । तेभ्यश्चक्षुर्दर्शनिनोऽसङ्ख्यातगुणाः, चतुरिन्द्रियादीनामपि चक्षुर्दर्शनिनां तत्र प्रक्षेपात् । तेभ्योऽनन्तगुणा, केवलदर्शनिनः, सिद्धानां तेभ्योऽनन्तगुणत्वात् , तेषां च केवलदर्शनयुक्तत्वात् । तेभ्योऽप्यनन्तगुणा अचक्षुर्दर्शनिनः, सर्वसंसारिजीवानां सिद्धेभ्योऽनन्तगुणत्वात् , तेषां च नियमादचक्षुर्दर्शनोपेतत्वात् । इति ॥६०॥

सुक्का पम्हा तेऊ, काऊ नीला य किण्हलेसा य ।
थोवा दो संखगुणाऽणंतगुणा दो विसेसहिया ॥६१॥

(हारि०) व्याख्या–इह गुणगुणिनोरभेदोपचारादेतल्लेश्यावन्तो गृह्यन्ते । ततः शुक्ललेश्यावन्तः स्तोकाः, ततः पद्मतेजोलेश्यावन्तौ संख्येयगुणौ द्वौ प्रत्येकम् । ततोऽनन्तगुणाः कापोतलेश्यावन्तः कापोतलेश्याया अनन्तकायिकेष्वपि सद्भावात् । ततो द्वावुमौ राशी विशेषाधिकौ । 'नीलाश्च' नीललेश्यावन्तः कृष्णलेश्याश्च । तत्र नीललेश्याधिक्यं चतुर्थनरके सद्भावात् । कृष्णलेश्याधिक्यं षष्ठसप्तमनरकसद्भावात् । इति गाथार्थः ॥६१॥

इति लेश्यास्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) स्तोकाः शुक्ललेश्यावन्तः, वैमानिकेष्वेव देवेषु लान्तकादिष्वनुत्तरसुरपर्यवसानेषु

केषुचिदेव च मनुष्यस्त्रीपुंसेषु कर्मभूमिजेषु तिर्यक्स्त्रीपुंसेषु च केषुचित्सङ्ख्यातवर्षायुष्केषु शुक्ललेश्यासंभवात् । ततः सङ्ख्येयगुणाः पद्मलेश्यावन्तः, सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकदेवेषु उक्तस्वरूपेषु च मनुष्यतिर्यक्षु पद्मलेश्याभावात्, सनत्कुमारादिदेवानां च लान्तकादिदेवेभ्यः सङ्ख्येयगुणत्वात् । तेभ्योऽपि तेजोलेश्यावन्तः सङ्ख्येयगुणाः, सौधर्मेशानादिदेवेषु केषुचिच्च तिर्यङ्मनुष्येषु तेजोलेश्यासद्भावात्, तेषां च सकलपद्मलेश्यासहिततिर्यगादिप्राणिगणापेक्षया संख्येयगुणत्वात् । ततः कापोतलेश्यावन्तोऽनन्तगुणाः, अनन्तकायिकेष्वपि कापोतलेश्यासद्भावात् । ततो विशेषाधिका नीललेश्यावन्तः, नारकादीनां तल्लेश्यावतां तत्र प्रक्षेपात् । ततोऽपि विशेषाधिकाः कृष्णलेश्यावन्तः, भूयसां तल्लेश्यासद्भावात् ॥६१॥

थोवा जहन्नजुत्ताऽणंतयतुल्ल त्ति इह अभव्वजिया ।
तेहिंतोऽणंतगुणा, भव्वा णिव्वाणगमणरिहा ॥६२॥

(हारि०) व्याख्या—स्तोका इहात्र विचारे वर्तन्ते । क एते ? अभव्यजीवा मुक्तिगमनायोग्यजन्तवः, किं परिमाणाः ? जघन्यं च तद्युक्तानन्तकं च जघन्ययुक्तानन्तकं सिद्धान्तप्रसिद्धम्, तेन तुल्याः समा जघन्ययुक्तानन्तकतुल्याः । इह युक्तानन्तकपदे स्थानाशून्यार्थं काचिद्भावना लिख्यते-तत्र जम्बूद्वीपप्रमाणशलाकाप्रतिशलाकामहाशलाकाख्यपल्यत्रयमनवस्थितचतुर्थपल्येन भ्रियते, एकैकभरणपूर्वकं यावच्चत्वारोऽपि पल्या भृता एकशलाकोना भवन्ति तावत्संख्यातमुत्कृष्टं भवति । तत एकशलाकाक्षेपे परीतासंख्यातं जघन्यं स्यात् १ । एवमनेकप्रक्षेपैर्वर्गितसंवर्गितन्यायेन च मध्यमपरीतासंख्यातम् २ । उत्कृष्टपरीतासंख्यातं च ३ । एवं जघन्यादिभेदत्रयेण युक्तासंख्यातम् ३ । एवं भेदत्रयेणाऽसंख्यातासंख्यातं भवति ३ । एवमसंख्यातपदस्थानेऽनन्तपदं वाच्यम् । ततोऽनन्तेऽपि नवभेदा जाताः ९ । प्रक्षेपादिकं सर्वं जीवसमासादिग्रन्थेभ्योऽवसेयम् । वचनमात्रमत्र लिखितमिति । किन्त्वनन्तानन्तकमुत्कृष्टं न कथंचित्पूर्यते प्रस्तुते त्वभव्या युक्तानन्तकप्रथमभेदसमा मन्तव्याः । इतिशब्दो वाक्यार्थसमाप्तौ । इहशब्दो योजित एव । तेभ्योऽनन्तगुणा भव्याः । कीदृशा भव्याः ? 'निर्वाणगमनार्हाः' निर्वृतियानयोग्याः । इति गाथार्थः ॥६२॥

इति भव्येष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) 'इह' अस्मिन् जगति भव्यापेक्षयाऽभव्यजीवाः स्तोकाः, कुतः ? इत्याह—'जहन्नजुत्ताणंतयतुल्ल त्ति' हेतावियं प्रथमा । ततोऽयमर्थः—यतोऽभव्यजीवा जघन्ययुक्तानन्तकतुल्या इति, तस्माद्भव्यजीवापेक्षया ते स्तोकाः । अथ किमिदं जघन्ययुक्तानन्तकं नाम ?, उच्यते, अनन्तसङ्ख्याविशेषः, स च सङ्ख्यातासङ्ख्यातरूपसङ्ख्याविशेषप्ररूपणामन्तरेण न प्ररूपयितुं शक्यते, एकादिप्ररूपणामन्तरेण शतादिसङ्ख्यावत्, तत आदितः कथयितुमारभ्यते ।

तत्र सङ्ख्यातं त्रिधा, जघन्यं मध्यमुत्कृष्टं च । तत्र जघन्यं द्वौ एकस्य एकत्वादेव गणनागोचरातिक्रान्तत्वात् । मध्यमं संख्यातं त्रिप्रभृति यावदेकरूपहीनतया उत्कृष्टं सङ्ख्यातं न भवति । तच्चोत्कृष्टमेवम्—इह जम्बूद्वीपप्रमाणा अधस्ताद्योजनसहस्रमवगाढा उपरिष्टादष्टयोजनोच्छ्रितचतुर्दशोपर्यधोविस्तृतप्राकारतदुपरिपञ्चधनुःशतविस्तृतद्विगव्यूतोच्छ्रितवेदिकान्तसहिताश्चत्वारः पल्याः कल्प्यन्ते । तत्र प्रथमोऽनवस्थितपल्यः । द्वितीयः शलाकापल्यः । तृतीयः प्रतिशलाकापल्यः । चतुर्थो महाशलाकापल्यः । प्रथमपल्यश्चानवस्थितनामा सशिखाकः सर्षपैरापूर्यते, यावदेकोऽप्यन्यः सर्षपस्तत्र प्रक्षिप्तः सन् नावस्थातुं शक्नोति । ततोऽसत्कल्पनया कश्चनापि देवो वा दानवो वा तमनवस्थितं पल्यं वामकरतले धृत्वैकं सर्षपं द्वीपे प्रक्षिपेद् एकं समुद्रे पुनरप्येकं द्वीपे एकं समुद्रे, एवं तावत्प्रक्षेपो वाच्यो यावदसावनवस्थितपल्यो निःशेषतो निष्ठितो भवति, तत एकोऽनवस्थितपल्यसत्कसर्षपेभ्योऽन्य एव सर्षपः शलाकापल्ये प्रक्षिप्यते, ततो यत्र द्वीपे समुद्रे चाऽसौ अनवस्थितपल्यो निष्ठां गतः, तदन्ता ये द्वीपसमुद्रास्तावत्प्रमाणः पुनरन्यः पल्यः परिकल्प्यते । सोऽप्यधोयोजनसहस्रमवगाढ उपरिष्टाद्यथोक्तजगतीवेदिकापरिकलितः सशिखाकः सर्षपैरापूर्यते । ततस्तमुत्पाट्य यस्मिन् द्वीपे समुद्रे वा प्रथमः पल्यो निष्ठितस्ततः परतो द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेत्तावद् यावदसौ निर्लेपो भवति । ततः शलाकापल्ये द्वितीया सर्षपरूपा शलाका प्रक्षिप्यते । अन्ये त्वाहुः—एषैव प्रथमा शलाकेति । तत्त्वं पुनः केवलिनो विदन्ति । ततो यस्मिन् द्वीपे समुद्रे वा स एष द्वितीयः पल्यो निष्ठितस्तदन्ता मूलतः सर्वेऽपि ये द्वीपसमुद्रास्तावत्प्रमाणः पुनरन्यः पल्यः परिकल्प्यते, पूर्ववत्सर्षपैश्चापूर्यते । ततस्तं तावत्प्रमाणं पल्यमुत्पाट्य ततो निष्ठितस्थानात्परतो द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततस्तृतीया सर्षपरूपा शलाका शलाकापल्ये प्रक्षिप्यते । एवमनेन क्रमेण पुनः पुनरनवस्थितपल्यसर्षपाऽऽपूरणरिक्तीकरणलब्धैकैकसर्षपरूपाभिः शलाकाभिः शलाकापल्यो यथोक्तप्रमाणः सशिखाकस्तावदापूरयितव्यो यावत्तत्रैकोऽप्यन्यः सर्षपो न मातीति । ततः पूर्वपरिपाट्यागतोऽनवस्थितः पल्यः सर्षपैरापूरणीयः । ततः शलाकापल्यं वामकरतले कृत्वा पूर्वानवस्थितपल्यचरमसर्षपाक्रान्ताद्द्वीपात्समुद्राद्वा परतः प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं त्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततः प्रतिशलाकापल्ये सर्षपरूपा प्रथमा प्रतिशलाका प्रक्षिप्यते । ततोऽनन्तरोक्तोऽनवस्थितपल्य उत्पाट्यते । ततः शलाकापल्यचरमसर्षपाक्रान्ताद्द्वीपात्समुद्राद्वा परतः पूर्वक्रमेण द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निःशेषतो निष्ठितो भवति । ततः शलाकापल्ये पुनरपि सर्षपरूपा एका शलाका प्रक्षिप्यते । ततोऽनन्तरोक्तानवस्थितपल्यचरमसर्षपाक्रान्तो द्वीपः समुद्रो वा यस्तदन्तमनवस्थितपल्यं सर्षपैर्भृत्वा ततः परतः पुनरप्येकैकं सर्षपं प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं च प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततो द्वितीया शलाका शलाकापल्ये प्रक्षिप्यते । एवमपरापरानव-

स्थितपल्यापूरणरिक्तीकरणलब्धैकैकसर्षपैर्यदा शलाकापल्य आपूरितो भवति । पूर्वपरिपाट्या चानवस्थितपल्यस्तदा शलाकापल्यमुत्पाट्य प्राक्तनानवस्थितपल्यचरमसर्षपाक्रान्ताद्द्वीपात्समुद्राद्वा परतः प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं चैकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निर्लेपो भवति । ततः प्रतिशलाकापल्ये सर्षपरूपा द्वितीया शलाका प्रक्षिप्यते । ततोऽनवस्थितपल्यमुत्पाट्यानन्तररिक्तीकृतशलाकापल्यचरमसर्षपाक्रान्तद्द्वीपात्समुद्राद्वा परतः पूर्वक्रमेण द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततः पुनरपि शलाकापल्ये सर्षपरूपा शलाका प्रक्षिप्यते, यत्र चासौ द्वीपे समुद्रे वा निष्ठितस्तावत्प्रमाणविस्तरात्मकमनवस्थितपल्यं सर्षपैरापूर्य ततः परतः पूर्वक्रमेण द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततः शलाकापल्ये द्वितीया शलाका प्रक्षिप्यते । एवमनेन क्रमेण तावद्वक्तव्यं यावत्योऽपि प्रतिशलाकापल्यशलाकापल्यानवस्थितपल्याः परिपूर्णमापूरिता भवन्ति । ततः प्रतिशलाकापल्यमुत्पाट्य निष्ठितस्थानात्परतः प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रमेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततो महाशलाकापल्ये एका सर्षपरूपा शलाका प्रक्षिप्यते । ततः शलाकापल्यमुत्पाट्य प्रतिशलाकापल्यगतचरमसर्षपाक्रान्ताद्द्वीपात्समुद्राद्वा । परतः प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रमेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततः प्रतिशलाकापल्ये एका शलाका प्रक्षिप्यते । ततोऽनवस्थितपल्यमुत्पाटयेद्, उत्पाट्य च शलाकापल्यगतचरमसर्षपाक्रान्ताद्द्वीपात्समुद्राद्वा परतो द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद्, तावद्गच्छेद् यावदसौ निःशेषतो रिक्तीभवति । ततः शलाकापल्ये प्रथमा शलाका प्रक्षिप्यते । ततोऽनन्तरोक्तानवस्थितपल्यगतचरमसर्षपाक्रान्तो द्वीपः समुद्रो वा यस्तत्पर्यन्तविस्तरात्मकोऽनवस्थितपल्यः कल्पयित्वा सर्षपैरापूर्यते । ततस्तमुत्पाट्य ततो निष्ठितस्थानात्परतो द्वीपसमुद्रेष्वेकैकं सर्षपं प्रक्षिपेद् यावदसौ निष्ठितो भवति । ततो द्वितीया शलाका शलाकापल्ये प्रक्षिप्यते । एवं शलाकापल्यः पूरणीयः । एवमापूरणोत्पाटनप्रक्षेपपरम्परया तावद्वक्तव्यं यावन्महाशलाकापल्यप्रतिशलाकापल्यशलाकापल्यानवस्थितपल्याः सर्वेऽपि परिपूर्णशिखायुक्ताः समापूरिता भवन्ति । अत्र च यावन्तोऽनवस्थितपल्यशलाकापल्यप्रतिशलाकापल्यसर्षपप्रक्षेपव्याप्ता द्वीपसमुद्रा यावन्तश्च चतुष्पल्यसर्षपा एतावत्प्रमाणो राशिरेकरूपोन उत्कृष्टं संख्यातं भवति । तदुक्तम्-"**पढमतिपल्लुद्धरिया दीवुदही पल्लचउ सरिसवा य । सव्वोवि एस रासी, रूवूणो परमसंखेज्जं ॥१॥**" इति । सिद्धान्ते च यत्र कुत्रचित्संख्यातग्रहणम्, तत्र सर्वत्रापि जघन्योत्कृष्टापान्तरालवर्तिमध्यमं संख्यातं द्रष्टव्यम् । तदुक्तमनुयोगद्वारचूर्णौ सिद्धान्ते-"**जत्थ जत्थ संखेज्जगगहणं तत्थ तत्थ सव्वत्थ अजहण्णमणुक्कोसयं दट्ठव्वं**" इति । उक्तं सङ्ख्यातं, साम्प्रतमसङ्ख्यातकमुच्यते । तत्तु त्रिधा, परीतासङ्ख्यातकं युक्तासङ्ख्यातकं असङ्ख्यातासङ्ख्यातकं च । पुनरप्येकैकं त्रिधा, जघन्यं मध्यमं उत्कृष्टं च । तत्र जघ-

न्यं परीतासंख्यातकं उत्कृष्टसङ्ख्यातकमेवैकरूपाधिकं द्रष्टव्यम् । यत उक्तं सूत्रे—"उक्कोसए संखेज्जयं रूव पक्खित्तं जहण्णय परित्तासंखेज्जयं होइ" इति । ततः परमसंख्यातसंख्यास्थानानि सर्वाण्यपि मध्यमपरीतासंख्यातकरूपाणि द्रष्टव्यानि यावदुत्कृष्टं परीतासंख्यातकं न भवति । तच्चैवंरूपम्—जघन्यपरीतासंख्यातकसंबन्धीनि यावन्ति सर्षपलक्षणानि रूपाणि तान्येकैकशः पृथक् पृथक् संस्थाप्य, तत एकैकस्मिन् रूपे जघन्यपरीतासंख्यातकप्रमाणो राशिर्व्यवस्थाप्यते । तेषां च राशीनां परस्परमभ्यासो विधीयते । इहैवं भावना-असत्कल्पनया किल जघन्यपरीतासंख्यातकराशिस्थाने पञ्च रूपाणि कल्प्यन्ते । तानि च रूपाणि पृथक् पृथग् विध्रियन्ते । जाताः पञ्च एककाः एतेषामेककानां स्थाने प्रत्येकं पञ्चपरिमाणो राशिर्व्यवस्थाप्यते एतेषां च राशीनामेवमभ्यासः क्रियते । पञ्चभिर्गुणिताः पञ्च, जाता पञ्चविंशतिः । एषा पञ्चभिरभ्यस्यते, जाते पञ्चविंशं शतं एवमनेन क्रमेण परस्परमभ्यासे सति जातानि पञ्चविंशत्यधिकान्येकत्रिंशच्छतानि ३१२५

१
१
१
१
१

५
५
५
५
५

एवमिहापि यथोक्तजघन्यपरीतासंख्यातकराशीनां पृथक् पृथग् एकैकस्मिन् रूपे व्यवस्थापितानां परस्परमभ्यासे सति यावान् राशिरुत्पद्यते, तावान् रूपोनः सन्नुत्कृष्टं परीतासंख्यातकं भवति । रूपे च प्रक्षिप्ते सति जघन्यं युक्तासंख्यातकं भवति, तावत्प्रमाणा एव च समया एकस्यामावलिकायां द्रष्टव्याः । तथा च सूत्रं जघन्ययुक्तासंख्यातकाभिधानानन्तरम्—"आवलिया वि तत्तिया चेव" इति । ततः परं यान्यसंख्यातसंख्यास्थानानि तानि मध्यमयुक्तासंख्यातकस्थानानि द्रष्टव्यानि, यावदुत्कृष्टं युक्तासंख्यातकं न भवति । तच्चैवम्—यानि जघन्ययुक्तासंख्यातकराशौ रूपाणि तान्येकैकशः पृथक् पृथक् संस्थाप्य तत एकैकस्मिन् रूपे जघन्ययुक्तासंख्यातकप्रमाणो राशिर्व्यवस्थाप्यते । तेषां च राशीनां पूर्वोक्तप्रकारेण परस्परमभ्यासे सति यावान् राशिः संपद्यते, तावान् एकरूपोनः सन्नुत्कृष्टं युक्तासंख्यातकं भवति । रूपे च प्रक्षिप्ते सति जघन्यमसंख्यातासंख्यातकं भवति । अन्ये पुनराहुः—जघन्ययुक्तासंख्यातकराशौ जघन्ययुक्तासंख्याकराशिना वर्गिते सति यावान् राशिः संभवति । यथा चतुष्केन वर्गिते षोडश, तावत्प्रमाणो राशिरेकरूपोनः सन्नुत्कृष्टं युक्तासंख्यातकं भवति । रूपे च प्रक्षिप्ते सति जघन्यमसंख्यातासंख्यातकं भवति । ततः परं यान्यसंख्यातसंख्यास्थानानि तानि सर्वाण्यपि मध्यमासंख्यातासंख्यातकस्थानानि, यावदुत्कृष्टमसंख्यातासंख्यातकं न भवति । तत्पुनः कियत्? इति चेद्, उच्यते, जघन्यासंख्यातासंख्यातकराशिरूपाणि पृथक्पृथग् एकैकशो व्यवस्थाप्य तत एकैकस्मिन् रूपे जघन्यासंख्यातासंख्यातकराशिर्व्यवस्थाप्यते । तेषां च राशीनां परस्परमभ्यासे कृते सति यावान् राशिः संभवति तावानेकरूपहीनः सन्नुत्कृष्टमसंख्यातासंख्यातकं भवति । अन्ये पुनरेवमाहुः-जघन्यासंख्यातासंख्यातकराशेर्वर्गो विधीयते । वर्गितस्यापि च तस्य राशेः पुनरन्यो वर्गो विधीयते । ततः

पुनरपि तस्य वर्गितवर्गितस्यान्यो वर्गो विधीयते । इत्येवं । त्रीन् वारान् वर्गे कृते सति इमान् दशाऽसंख्यातकप्रक्षेपान् प्रक्षिपेत् । "**लोगागासपएसा, धम्माधम्मेगजीवदेसा य । दव्वट्ठिया निगोया, पत्तेया चेव बोद्धव्वा ॥१॥ ठिइबंधज्झवसाया, अणुभागा जोगछेयपलिभागा । दोण्ह य समाणसमया, असंखपक्खेव दसउ त्ति ॥२॥**" "**दव्वट्ठिया निगोया**" इति द्रव्यस्थिता निगोदाः सूक्ष्माणां च बादराणां चानन्तकायिकजीवानां शरीराणि '**पत्तेया**' इति अनन्तकायिकव्यतिरिक्ताः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसाः प्रत्येकशरीरिणः।'**ठिइबंधज्झवसाया**" इति स्थितिबन्धस्य कारणभूता अध्यवसायाः कषायोदयरूपाः । "**ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ**" इतिवचनात् । स्थितिबन्धाध्यवसायाः तेऽप्यसंख्याता एव । तथाहि-ज्ञानावरणीयस्य कर्मणस्तावज्जघन्यस्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः । मध्यमः स एवैकसमयाधिको द्विसमयाधिक इत्यादिरूपः । उत्कृष्टस्तु त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणः । एषां च स्थितिबन्धानां निर्वर्तका अध्यवसायाः प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रमाणाः । '**ठिइबंधे ठिइबंधे अज्झवसाणाणऽसंखिया लोगा**' इति वचनात् । एवं च सत्येकस्मिन्नपि ज्ञानावरणीये कर्मण्यसंख्याताः स्थितिबन्धाध्यवसायाः प्राप्यन्ते । किं पुनः समस्तेषु कर्मसु ? इति । अनुभागा ज्ञानावरणीयादिकर्मणां दलिकेषु जघन्यमध्यमादिभेदभिन्ना रसविशेषाः, तेषां निष्पादकानि यान्यध्यवसायस्थानानि तान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि, पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् । तत्रानुभागबन्धाध्यवसायस्थानान्यनुभागशब्देनोक्तानि तानि चासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि । '**जोगच्छेयपलिभागो**' इति योगो मनोवाक्कायनिमित्तं वीर्यम् तस्य प्रज्ञाच्छेदनकच्छेदेन प्रतिविशिष्टा निर्विभागा भागा योगच्छेदप्रतिभागाः, ते च जघन्ययोगस्थानादारभ्योत्कृष्टयोगस्थानं यावत्प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा भवन्ति । '**दोण्ह य समाणसमया**' इति । द्वयोः समयोरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीरूपयोः समयाः परमनिरुद्धाः कालविशेषाः, तेऽप्यसंख्याता एव । एतेषां च दशानां राशीनां प्रक्षेपे सति पुनः समस्तस्यापि राशेः पूर्ववत्त्रीन् वारान् वर्गो विधीयते । तत एतावत्प्रमाणो राशिरेकरूपोन उत्कृष्टमसंख्यातासंख्यातकं भवति । उक्तमसंख्यातकम्, इदानीमनन्तकमुच्यते । तदपि त्रिधा, परीतानन्तकं युक्तानन्तकं अनन्तानन्तकं च । पुनरप्येकैकं त्रिधा, जघन्यं मध्यममुत्कृष्टं च । तत्रोत्कृष्टासंख्यातासंख्यातकराशावेकरूपे प्रक्षिप्ते सति जघन्यं परीतानन्तकं भवति । ततः परं यान्यनन्तकरूपसंख्यास्थानानि तानि मध्यमपरीतानन्तकानि द्रष्टव्यानि, यावदुत्कृष्टं परीतानन्तकं न भवति । तच्चैवम्—जघन्यपरीतानन्तकराशौ यावन्ति रूपाणि तावत्संख्याकानां जघन्यपरीतानन्तकराशीनां परस्परमभ्यासे कृते सति यावान् राशिर्भवति तावानेकरूपहीनः सन्नुत्कृष्टं परीतानन्तकं भवति । रूपे च प्रक्षिप्ते सति जघन्यं युक्तानन्तकं भवति । एतावत्प्रमाणा अभव्यजीवाः । तथा च सूत्रं जघन्ययुक्तानन्तकसंख्याभिधानानन्तरम्—"**अभव-**

सिद्धिया वि तत्तिया चेव" इति । इह तावदेतावतैव पर्याप्तम् । अतः परं तु विनेयजनानुग्रहाय मध्यमयुक्तानन्तकादीन्यपि संख्यास्थानान्युपदर्श्यन्ते । तत्र जघन्ययुक्तानन्तकात्पराणि यान्यनन्तसंख्यास्थानानि तानि मध्यमयुक्तानन्तकस्थानानि द्रष्टव्यानि, यावदुत्कृष्टं युक्तानन्तकं न भवति । तच्चैवमवगन्तव्यम्—जघन्ययुक्तानन्तकराशौ यावन्ति रूपाणि तावत्प्रमाणानामेव जघन्ययुक्तानन्तकराशीनामन्योन्यमभ्यासे कृते सति यावान् राशिः संपद्यते तावानेकरूपोनः सन्नुत्कृष्टं युक्तानन्तकं भवति । रूपे च प्रक्षिप्ते सति जघन्यमनन्तानन्तकं भवति । ततः परं यान्यनन्तसंख्यास्थानानि तानि सर्वाण्यपि मध्यमानन्तानन्तकरूपाणि द्रष्टव्यानि । उत्कृष्टं त्वनन्तानन्तकं नास्त्येव । तथा च सूत्रम्—"**उक्कोसय अणंताणंतयं नत्थि**" इति अन्ये पुनराहुः—जघन्यानन्तानन्तकराशेस्तावतैव राशिना गुणनस्वरूपो वर्गः क्रियते, ततस्तस्य वर्गितराशेः पुनर्वर्गस्तस्यापि भूयो वर्गः । एवं वारत्रयं वर्गे कृते सति इमे षट् प्रक्षेपाः प्रक्षिप्यन्ते—"**सिद्धा निगोयजीवा, वणस्सई कालपुग्गला चेव । सव्वमलोगागासं, छप्पेएऽणंतपक्खेवा ॥१॥**" इत्यस्य व्याख्या—सर्व एव सिद्धा अपगतसकलकर्मकलङ्काः । तथा सर्वेऽपि सूक्ष्मबादरभेदभिन्ना निगोदजीवा अनन्तकायिकसत्त्वाः, तथा सर्वे वनस्पतयः प्रत्येकानन्तवनस्पतिजीवाः, 'काल' इति सर्वेऽतीतानागताः समयाः, सर्वे पुद्गलाः समस्तपुद्गलास्तिकायगताः परमाणवः, तथा सर्वं समस्तमलोकाकाशम्, अयं च सर्वशब्दः प्रत्येकं लिङ्गवचनपरिणामेन संबन्धनीयः, स च तथैव संबन्धितः। एते प्रदर्शितस्वरूपाः षडपि प्रक्षिप्यन्त इति प्रक्षेपाः, **कर्मणि घञ्** प्रक्षेपणीया राशयः पूर्वोक्तराशौ प्रक्षिप्यन्ते ततः पुनरप्येतावत्प्रमाणस्य राशेः पूर्वोक्तेनैव क्रमेण वारत्रयं वर्गो विधीयते ततः केवलज्ञानदर्शनपर्यायाः सर्वेऽपि तत्र प्रक्षिप्यन्ते, तत उत्कृष्टमनन्तानन्तकं भवति । सूत्राभिप्रायतश्चैवमप्युत्कृष्टमनन्तानन्तकं न भवतीति । प्रकृतमिदानीमनुस्रियते । तत्र यथोक्तसंख्येभ्योऽभव्येभ्यः सकाशाद्भव्या अनन्तगुणाः । किंरूपास्ते ? इत्याह—'**निर्वाणगमनार्हाः**' निर्वृतिगमनयोग्याः ॥६२॥

सासाणउवसमियमिस्सवेयगखइगमिच्छदिट्ठीओ ।
थोवा दो संखगुणा, असंखगुणिया अणंता दो ॥६३॥

(हारि०) व्याख्या—सासादनौपशमिकमिश्रवेदकक्षायिकमिथ्यादृष्टय इति द्वन्द्वः । तत्र स्तोकाः सासादनाः, ततो द्वावौपशमिकमिश्रदृष्टी संख्यातगुणौ, ततोऽसंख्यातगुणिता वेदकाः, क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टय इत्यर्थः, एतत्सम्यक्त्ववर्ती देवादीनामसंख्येयगुणत्वात् । ततोऽनन्तगुणौ द्वौ क्षायिकमिथ्यादृष्टी । तत्र क्षायिकेष्वनन्तत्वं सिद्धापेक्षम् मिथ्यादृष्टिपदे च भावितार्थमेव । इति गाथार्थः ॥६३॥

इति सम्यक्त्वे सप्रतिपक्षेऽल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः, तेभ्यः संख्यातगुणा औपशमिकसम्यग्दृष्टयः, केषांचिदेवोपशमिकसम्यक्त्वतः प्रच्युतेः, ततः प्रच्यवमानानां च सासादनत्वात् । तेभ्योऽपि चौपशमिकसम्यग्दृष्टिभ्यः सकाशान्मिश्राः संख्यातगुणाः तेभ्योऽपि क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः तेभ्योऽपि क्षायिकसम्यग्दृष्टयोऽनन्तगुणाः, क्षायिकसम्यक्त्वातां सिद्धानामानन्त्यात् । तेभ्योऽपि मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः, सिद्धेभ्योऽपि वनस्पतिजीवानामनन्तत्वात्, तेषां च मिथ्यादृष्टित्वात् ॥ इति ॥६३॥

सन्नी थोवा तत्तो अणंतगुणिया असन्निणो होंति[1] ।
थोवाऽणाहारजिया, तदसंखगुणा उ आहारा[2] ॥६४॥

(हारि०) व्याख्या—संज्ञिनः स्तोकाः ततोऽनन्तगुणिताः 'असंज्ञिनः' मनोविज्ञानविकलाः पृथिवीकायिकादिसर्वजीवा भवन्तीति, क्रियापदं सर्वाल्पबहुत्वपदेषु योज्यम् । इति संज्ञिष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा स्तोका आहारकापेक्षयाऽनन्ता अप्यनाहारकाः । एषां चानन्त्यं प्रतिसमयोद्वर्तनिगोदासंख्येयभागप्रमाणानन्तकायिकजीवानामनन्तानां विग्रहगत्यापन्नानां तथा सिद्धानां चानन्तानां सद्भावात् । तेभ्योऽसंख्यातगुणास्तदसंख्यातगुणा भवन्ति, के ? इत्याह—सहाहारेण वर्तन्त इति साहारकाः । यतोऽनाहारका विग्रहगत्यापन्ना एकैकनिगोदासंख्येयभागवर्तिन उक्ताः शेषास्त्वाहारकाः अतोऽनाहारकेभ्य आहारका असंख्येयगुणा एव इति गाथार्थः ॥६४॥

'इत्युक्तमल्पबहुत्वम्'; तदभिधानाच्च भणितं मार्गणास्थानगताभिधेयपदषट्कम्, गुणस्थानकेषु जीवस्थानाद्यभिधेयपददशकं मार्गयितुकामः प्रथमतस्तेष्वेव जीवस्थ... अत्रार्थेऽन्यकर्तृकी संबन्धगाथेयम्—"इय जियठाणाईयं मग्गणठाणेसु भणिय संपइ गुणठाणेसु, जीवट्ठाणाइयं वोच्छं ॥१॥" इतः प्रस्तुतगाथोच्यते

(मल०) स्तोकाः संज्ञिनो जीवाः, ...
त्वात् । तेभ्योऽसंज्ञिनः संज्ञिव्यतिरिक्ता अनन्तगुणाः, वनस...
स्तोका अनाहारकाः । विग्रहगत्यापन्नसमुद्घातगतकेवलिभव...
कत्वात् । तेभ्योऽसंख्यातगुणाः साहारा आहारकजीवाः ।

१ "हुंति" इत्यपि पाठः । २ "उ साहारा" ॥ इत्यपि पाठः ।
इत्यपि पाठः ।

जीवाः ते च प्राय आहारकाः. तत्कथमसंख्यातगुणा अनाहारकेभ्य आहारकाः ? इति, नैष दोषः, यतः प्रतिसमयमेकैकस्य निगोदस्यासंख्येयभागप्रमाणा विग्रहगत्यापन्ना जीवा लभ्यन्ते ते चानाहारकाः. तत आहारकजीवानामनाहारकजीवापेक्षयाऽसंख्यातगुणत्वमेवेति ।।६४।।

उक्तं गत्यादिषु मार्गणास्थानेषु स्वस्थानापेक्षयाऽल्पबहुत्वम् । इदानीं गुणस्थानकेषु जीवस्थानानि चिन्तयन्नाह—

मिच्छे सव्वे छ अपज्ज सन्निपज्जत्तगो य सासाणे ।
सम्मे दुविहो सन्नी सेसेसु सन्निपज्जत्तो ।।६५।।

(हारि०) व्याख्या—मिथ्यादृष्टौ सर्वजीवस्थानानि भवन्तीति गम्यम् । तथा षडपर्याप्तकजीवस्थानानि सूक्ष्मरहितानि संज्ञी पर्याप्तकश्चेति सप्तमं जीवस्थानकम् . क ? इत्याह—सासादने । तथा 'सम्मे' इति अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके. किम् ? इत्याह—'द्विविधः' पर्याप्तापर्याप्तलक्षणः संज्ञीति जीवस्थानकद्वयम् । तथा 'शेषेषु' मिश्रदेशविरत्यादिष्वेकादशगुणस्थानकेषु संज्ञी पर्याप्त इत्येकं जीवस्थानकम् । इति गाथार्थः ।।६५।।

साम्प्रतं गुणस्थानकेषु जीवस्थानकसमर्थनां सूचयन् योगादिसंबन्धं दर्शयंश्च तेषु तानेवाह—

(मल०) मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके सर्वाण्यपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियादीनि पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तानि जीवस्थानानि भवन्ति, मिथ्यात्वस्य सर्वेष्वप्येतेषु संभवात् । तथा सूक्ष्मैकेन्द्रियवर्जिताः शेषाः षट् अपर्याप्तकाः संज्ञी पर्याप्तकश्चेति सप्त जीवस्थानानि सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके भवन्ति । अपर्याप्तकाश्चेह करणापर्याप्तका द्रष्टव्याः न तु लब्ध्यपर्याप्तकाः, तेषु मध्ये सासादनसम्यक्त्वसहितस्योत्पादाभावात् । 'सम्मे दुविहो सन्नी' इति अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने 'द्विविधः' पर्याप्तापर्याप्तरूपतया द्विप्रकारः संज्ञी ज्ञातव्यः । इहाप्यपर्याप्तकः करणापेक्षया द्रष्टव्यः न तु लब्ध्यपर्याप्तकमध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावात् । 'शेषेषु' मिश्रदेशविरत्यादिषु गुणस्थानकेषु पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणमेकमेव जीवस्थानकं द्रष्टव्यं न शेषाणि, तेषां मिश्रभावदेशसर्वविरतिप्रतिपत्त्यभावात् । न च पूर्वप्रतिपन्नमिश्रभावोऽन्येषु जीवस्थानकेषु लभ्यते—"न सम्ममिच्छो कुणइ कालं" इतिवचनात् ।।६५।।

उपसंहारमाह—

इय जियठाणा गुणठाणगेसु जोगाइ वोच्छमेत्ताहे ।
जोगाहारदुगूणा, मिच्छे सासणअविरए य ।।६६।।

इति सम्यक्त्वे सप्रतिपक्षेऽल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा—

(मल०) स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः, तेभ्यः संख्यातगुणा औपशमिकसम्यग्दृष्टयः, केषांचिदेवोपशमिकसम्यक्त्वतः प्रच्युतेः, इतः प्रच्यवमानानां च सासादनत्वात् । तेभ्योऽपि चौपशमिकसम्यग्दृष्टिभ्यः सकाशान्मिश्राः संख्यातगुणाः तेभ्योऽपि क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः तेभ्योऽपि क्षायिकसम्यग्दृष्टयोऽनन्तगुणाः, क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां सिद्धानामानन्त्यात् । तेभ्योऽपि मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः, सिद्धेभ्योऽपि वनस्पतिजीवानामनन्तत्वात् , तेषां च मिथ्यादृष्टित्वात् ॥ इति ॥६३॥

सन्नी थोवा तत्तो, अणंतगुणिया असन्निणो होंति ।
थोवाणाहारजिया, तदसंखगुणा उ आहारा ॥६४॥

(हारि०) व्याख्या—संज्ञिनः स्तोकाः ततोऽनन्तगुणिताः 'असंज्ञिनः' मनोविज्ञानविकलाः पृथिवीकायिकादिसर्वजीवा भवन्तीति, क्रियापदं सर्वाल्पबहुत्वपदेषु योज्यम् । इति संज्ञिष्वल्पबहुत्वमुक्तम् । तथा स्तोका आहारकापेक्षयाऽनन्ता अप्यनाहारकाः । एषां चानन्त्यं प्रतिसमयोद्धृतनिगोदासंख्येयभागप्रमाणानन्तकायिकजीवानामनन्तानां विग्रहगत्यापन्नानां तथा सिद्धानां चानन्तानां सद्भावात् । तेभ्योऽसंख्यातगुणास्तदसंख्यातगुणा भवन्ति, के ? इत्याह— सदाहारेण वर्तन्त इति साहारकाः । यतोऽनाहारका विग्रहगत्यापन्ना एकैकनिगोदासंख्येयभागवर्तिन उक्ताः शेषास्त्वाहारकाः अतोऽनाहारकेभ्य आहारका असंख्येयगुणा एव इति गाथार्थः ॥६४॥

'इत्युक्तमल्पबहुत्वम्'; तदभिधानाच्च भणितं मार्गणास्थानगताभिधेयपदषट्कम् । अधुना गुणस्थानकेषु जीवस्थानाद्यभिधेयपददशकं मार्गयितुकामः प्रथमतस्तेष्वेव जीवस्थानान्याह, अत्रार्थेऽन्यकर्तृकी संबन्धगाथेयम्—"इय जियठाणाईयं, मग्गणठाणेसु भणियमसेसं । संपइ गुणठाणेसु, जीवट्ठाणाइयं वोच्छं ॥१॥" इतः प्रस्तुतगाथोच्यते—

(मल०) स्तोकाः संज्ञिनो जीवाः, देवनारकसमनस्कपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्नराणामेव संज्ञित्वात् । तेभ्योऽसंज्ञिनः संज्ञिव्यतिरिक्ता अनन्तगुणाः, वनस्पतिकायजीवानामनन्तत्वात् । तथा स्तोका अनाहारकाः । विग्रहगत्यापन्नसमुद्घातगतकेवलिभवस्थायोगिकेवलिसिद्धानामेवानाहारकत्वात् । तेभ्योऽसंख्यातगुणाः साहाराः आहारकजीवाः । ननु च सिद्धेभ्योऽनन्तगुणाः संसारि-

१ "हुंति" इत्यपि पाठः । २ "उ साहारा" ॥ इत्यपि पाठः । ३ "तेभ्योऽसंख्यातगुणा भवन्ति" इत्यपि पाठः ।

णान्यैश्च तत्राभ्युपगम्यते तच्च सम्यगवगच्छामः, तथाविधसंप्रदायाभावात्, एतच्च प्रागेवोक्त-मिति। त एवानन्तरोक्ता दश योगा वैक्रियमिश्रयुताः सन्त एकादश 'देशयते' देशविरति-गुणस्थानके भवन्ति, अम्बडस्येव वैक्रियलब्धिमतो देशविरतस्य वैक्रियारम्भसंभवात्। तथा 'प्रमत्ते' प्रमत्तगुणस्थानके त एवानन्तरोक्ता एकादश योगा 'साहारद्विकाः' आहारकद्विक-सहिताः सन्तस्त्रयोदश भवन्ति ॥६७॥

एक्कारस अपमत्ते, मणवइआहारउरलवेउव्वा।
अप्पुव्वाइसु पंचसु, नव ओरालो मणवई य ॥६८॥

(हारि०) व्याख्या-एकादश योगाः, क्व? इत्याह—अप्रमत्ते, कीदृशास्ते? इत्याह—मनोवागाहारकौदारिकवैक्रियाणीति द्वन्द्वः। तत्रौदारिकमिश्रमपर्याप्तकतिर्यङ्मनुष्याणां केवलिसमुद्घाते च। कार्मणं तु विग्रहगतौ तिर्यगादीनां केवलिसमुद्घाते च। तथाऽऽहारकमिश्रं प्रमत्तयतेः। वैक्रियमिश्रं तु देवादीनामिति। एते चत्वारो योगा यथायोगमेतेषु भवन्ति, अतोऽप्रमत्ते प्रोक्ता एवैकादश योगा भवेयुरिति। तथाऽपूर्वादिषु निवृत्तिबादरगुणस्थानकादिषु पञ्चसु क्षीणमोहान्तेष्वित्यर्थः, कियन्तो योगाः? इत्याह—नवेति संख्यौदारिकमनोवचांसि चेति द्वन्द्वः, औदारिककाययोगश्चत्वारि मनांसि चत्वारि वचनानि। इति गाथार्थः ॥६८॥

साम्प्रतं योगान् समर्थयन्नुपयोगसंबन्धं दर्शयन्नाह—

(मल०) चतुर्विधवाग्योगचतुर्विधमनोयोगाहारकौदारिकवैक्रियलक्षणा एकादश योगाः 'अप्रमत्ते' अप्रमत्तगुणस्थानके भवन्ति। यत्तु वैक्रियमिश्रमाहारकमिश्रं च तन्न संभवति, तद्धि वैक्रियस्याहारकस्य च प्रारम्भकाले भवति, तदानीं लब्ध्युपजीवनादिनौत्सुक्यभावतः प्रमादसंभव इति। तथा औदारिकमिश्रमपर्याप्तावस्थायाम्, कार्मणं त्वपान्तरालगतौ, यद्वोभेऽपि केवलिसमुद्घातावस्थायाम्, ततस्तेऽपीह पूर्वत्र च गुणस्थानके न संभवत इति। 'अप्पुव्वाइसु' इत्यादि। अपूर्वादिष्वपूर्वकरणादिषु क्षीणमोहपर्यन्तेषु पञ्चसु गुणस्थानकेष्वौदारिकं चतुर्विधं मनश्चतुर्विधा वाग् इत्येते नव योगा भवन्ति, न शेषाः, अत्यन्तविशुद्धतया तेषां वैक्रियाहारकारम्भासंभवात्, तत्र स्थितानां च स्वभावत एव श्रेण्यारोहाभावात्। औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगाभावस्तु पूर्वोक्तयुक्तेरेवावसेय इति ॥६८॥

चरमाइममणवइदुगकम्मुरलदुगं ति जोगिणो सत्त।
गयजोगो य अजोगी, वोच्छमओ बारसुवओगे ॥६९॥

(हारि०) व्याख्या-मनश्च वाक् च तयोर्द्विके, मनोवाग्द्विके चरमं चान्त्यं, आदिमं चाद्यं चर-

१ "तु" इत्यपि पाठः।

(हारि०) व्याख्या—इति जीवस्थानानि गुणस्थानकेषूक्तानि । इति शेषो दृश्यः ॥१॥ इतो योगादि वक्ष्ये, इति गाथार्द्धेन संबन्धोऽभिहितः । साम्प्रतं संबन्धितमेवार्थमाह—योगा उक्तस्वरूपा भवन्ति । किमशेषा अपि ? न इत्याह-आहारकद्विकोनास्त्रयोदशेत्यर्थः, क ? इत्याह- 'मिच्छे' इति मिथ्यादृष्टौ सासादनेऽविरते च गाथार्थः ॥६६॥

तथा—

(मल०) 'इति' एवमुपदर्शितेन प्रकारेण जीवस्थानकानि गुणस्थानकेषु द्रष्टव्यानि । 'एत्ताहे' इति इत ऊर्ध्वं सम्प्रति 'योगादि' आदिशब्दादुपयोगादिपरिग्रहः, 'वक्ष्ये' अभिधास्ये । तत्र योगान् तावदाह— जोगा' इत्यादि । योगा आहारकद्विकेन आहारकतन्मिश्रलक्षणेन ऊना रहिताः शेषास्त्रयोदश मिथ्यादृष्टौ सासादने अविरतौ च भवन्ति । मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानकत्रये हि संज्ञिपञ्चेन्द्रियोऽपि लभ्यते, तस्य च यथोक्तास्त्रयोदशापि योगाः संभवन्ति । यच्चाहारकद्विकं तच्चतुर्दशपूर्विण एव । तदुक्तम्—**आहारदुगं जायइ चउदसपुव्विस्स**' इति । न च मिथ्यादृष्ट्यादौ चतुर्दशपूर्वाधिगमसंभव इति ॥६६॥

उरलविउव्वे'वइमणा दस मीसे ते विउव्विमीसजुया ।
देसजए एक्कारस साहारदुगा पमत्ते ते ॥६७॥

(हारि०) व्याख्या—औदारिवैक्रियवाग्मनांसीति द्वन्द्वः, इति दश योगा मिश्रे—**न सम्ममिच्छो कुणइ कालं''** इतिवचनात् । कार्मणौदारिकवैक्रियमिश्रत्रिकं न भवति, आहारकद्विकं तु यतेरेव भवति, अतो मिश्रे दश योगा इति भावना । तथा ते पूर्वोक्ता दश योगा वैक्रियमिश्रयुता एकादशेत्यर्थः क ? इत्याह—देशयते । तथा सहाहारकद्विकेन आहारकशरीरतन्मिश्रलक्षणेन वर्तन्त इति साहारकद्विकास्ते पूर्वोक्ता एकादश त्रयोदशेत्यर्थः, क ? इत्याह-**'प्रमत्ते'** षष्ठगुणस्थानके । इति गाथार्थः ॥६७॥

तथा—

(मल०) औदारिकवैक्रियचतुर्विधवाग्योगचतुर्विधमनोयोगलक्षणा दश योगा मिश्रे सम्यग्मिथ्यादृष्टौ भवन्ति न शेषाः । तथा ह्याहारकद्विकस्यासंभवः पूर्वोक्तयुक्तेरेव, कार्मणशरीरं त्वपान्तरालगतौ संभवति, अस्य च मरणासंभवेनापान्तरालगत्यसंभवस्ततस्तस्याप्यसंभवः, अत एवौदारिकवैक्रियमिश्रेऽपि न संभवतः, तयोरपर्याप्तावस्थाभावित्वात् . तस्यां चावस्थायां सम्यग्मिथ्यात्वाभावात् । ननु च मा भूद्देवनारकसंबन्धि वैक्रियमिश्रम्, यत्पुनर्मनुष्यतिरश्चां सम्यग्मिथ्यादृशां वैक्रियलब्धिमतां वैक्रियकरणसंभवेन तदारम्भकाले वैक्रियमिश्रं भवति तत्कस्मान्नाभ्युपगम्यते ?, उच्यते, तेषां वैक्रियकरणासंभवतोऽन्यतो वा यतः कुतश्चित्कारणादाचार्यै-

१ "वय" इत्यपि पाठः ।

गान्यैश्च तत्राभ्युपगम्यते तन्न सम्यगवगच्छामः, तथाविधसंप्रदायाभावात्, एतच्च प्रागेवोक्तमिति। त एवानन्तरोक्ता दश योगा वैक्रियमिश्रयुताः सन्त एकादश 'देशयते' देशविरतिगुणस्थानके भवन्ति, अम्बडस्येव वैक्रियलब्धिमतो देशविरतस्य वैक्रियारम्भसंभवात्। तथा 'प्रमत्ते' प्रमत्तगुणस्थानके त एवानन्तरोक्ता एकादश योगा 'साहारद्विकाः' आहारकद्विकसहिताः सन्तस्त्रयोदश भवन्ति ॥६७॥

एक्कारस अपमत्ते, मणवइआहारउरलवेउव्वा ।
अप्पुव्वाइसु पंचसु, नव ओरालो मणवई य ॥६८॥

(हारि०) व्याख्या-एकादश योगाः, क? इत्याह—अप्रमत्ते, कीदृशास्ते? इत्याह—मनोवागाहारकौदारिकवैक्रियाणीति द्वन्द्वः। तत्रौदारिकमिश्रमपर्याप्तकतिर्यङ्मनुष्याणां केवलिसमुद्घाते च। कार्मणं तु विग्रहगतौ तिर्यगादीनां केवलिसमुद्घाते च। तथाऽऽहारकमिश्रं प्रमत्तयतेः। वैक्रियमिश्रं तु देवादीनामिति। एते चत्वारो योगा यथायोगमेतेषु भवन्ति, अतोऽप्रमत्ते प्रोक्ता एवैकादश योगा भवेयुरिति। तथाऽपूर्वादिषु निवृत्तिबादरगुणस्थानकादिषु पञ्चसु क्षीणमोहान्तेष्वित्यर्थः, कियन्तो योगाः? इत्याह—नवेति संख्यौदारिकमनोवचांसि चेति द्वन्द्वः, औदारिककाययोगश्चत्वारि मनांसि चत्वारि वचनानि। इति गाथार्थः ॥६८॥

साम्प्रतं योगान् समर्थयन्नुपयोगसंबन्धं दर्शयन्नाह—

(मल०) चतुर्विधवाग्योगचतुर्विधमनोयोगाहारकौदारिकवैक्रियलक्षणा एकादश योगाः 'अप्रमत्ते' अप्रमत्तगुणस्थानके भवन्ति। यत्तु वैक्रियमिश्रमाहारकमिश्रं च तन्न संभवति, तद्धि वैक्रियस्याहारकस्य च प्रारम्भकाले भवति, तदानीं लब्ध्युपजीवनादिनौत्सुक्यभावतः प्रमादसंभव इति। तथा औदारिकमिश्रमपर्याप्तावस्थायाम्, कार्मणं त्वपान्तरालगतौ, यद्वोभेऽपि केवलिसमुद्घातावस्थायाम्, ततस्तेऽपीह पूर्वत्र च गुणस्थानके न संभवत इति। 'अप्पुव्वाइसु' इत्यादि। अपूर्वादिष्वपूर्वकरणादिषु क्षीणमोहपर्यन्तेषु पञ्चसु गुणस्थानकेष्वौदारिकं चतुर्विधं मनश्चतुर्विधा वाग् इत्येते नव योगा भवन्ति, न शेषाः, अत्यन्तविशुद्धतया तेषां वैक्रियाहारकारम्भासंभवात्, तत्र स्थितानां च स्वभावत एव श्रेण्यारोहाभावात्। औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगाभावस्तु पूर्वोक्तयुक्तेरेवावसेय इति ॥६८॥

चरमाइममणवइदुगकम्मुरलदुगं'ति जोगिणो सत्त ।
गयजोगो य अजोगी, वोच्छमओ बारसुवओगे ॥६९॥

(हारि०) व्याख्या-मनश्च वाक् च तयोर्द्विके, मनोवाग्द्विके चरमं चान्त्यं, आदिमं चाद्यं चर-

१ "तु" इत्यपि पाठः।

मादिमे, ते च ते मनोवाग्द्विके च चरमादिममनोवाग्द्विके, चरमादिमं च मनोऽसत्यामृषं सत्यं चेत्यर्थः, चरमा आदिमा च वागसत्यामृषा सत्या चेत्यर्थः, ततश्चरमादिममनोवाग्द्विके च कार्मणं चौदारिकद्विकं चौदारिकशरीरतन्मिश्रलक्षणं चरमादिममनोवाग्द्विककार्मणौदारिकद्विकम् , इत्येते सप्तेति संबन्धः, योगा भवन्ति । कस्य ? इत्याह–'योगिनः' सयोगिकेवलिनः । तत्र मनोद्विकं दूरदेशस्थमनःपर्यायज्ञानादिषु द्रव्यमनोव्यापारणात् । वाग्द्विकं देशनादावुपयोगात् । कार्मण औदारिकमिश्रश्च केवलिसमुद्घातेऽष्टसामयिके यथासंभवमौदारिकश्च चङ्क्रमणादौ द्रष्टव्य इति, तथा गतयोगश्चायोगीति । इति योजिता योगा गुणस्थानकेषु ॥ वक्ष्येऽभिधास्येऽत ऊर्ध्वं कान् ? उपयोगान् प्राक्प्रतिपादितस्वरूपान् , कियतः? द्वादश गुणस्थानकेष्विति प्रक्रमः । इति गाथार्थः ॥६९॥

प्रस्तावितमेवाह—

(मल०) चरमादिमरूपं मनोद्विकं चरमादिमरूपं च वाग्द्विकं कार्मणमौदारिकतन्मिश्रलक्षणमौदारिकद्विकं चेति सप्त योगाः 'योगिनः' सयोगिकेवलिनो भवन्ति । तत्र चरमं मनोऽसत्यामृषा आदिमं सत्यम् एवं चरमादिमे वाचावपि द्रष्टव्ये । कार्मणौदारिकमिश्रे तु समुद्घातावस्थायामिति । 'गयजोगो उ अजोगी' इति अयोगी अयोगिकेवली गतयोग एव भवति, योगाभावनिबन्धनत्वादयोगित्वावस्थायाः. तुशब्द एवकारार्थः तदेवमभिहिता गुणस्थानकेषु योगाः । साम्प्रतमेतेष्वेवोपयोगानभिधातुकाम आह–'वोच्छमओ' इत्यादि । वक्ष्येऽभिधास्येऽत ऊर्ध्वं गुणस्थानकेषु द्वादश उपयोगान् ॥६९॥

तानेवाह—

> अचक्खुचक्खुदंसणमन्नाणतिगं च मिच्छसासाणे ।
> अविरयसम्मे देसे, तिनाणदंसणतिगंति छ उ ॥७०॥

(हारि०) व्याख्या–दर्शनशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबन्धादचक्षुर्दर्शनचक्षुर्दर्शनमिति द्वन्द्वः, तथाऽज्ञानत्रिकं चेति पञ्चोपयोगाः, कयोः ? इत्याह–वचनव्यत्ययान्मिथ्यादृष्टिसासादनयोरिति द्वन्द्वः । तथाऽविरतसम्यक्त्वे 'देसे' देशविरते च, किम् ? इत्याह–त्रिज्ञानदर्शनत्रिकमिति कर्मधारयतत्पुरुषगर्भः समाहारद्वन्द्वः, इत्येते षडुपयोगाः । इति गाथार्थः ॥७०॥

तथा—

(मल०) अचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनं अज्ञानत्रिकं च मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गलक्षणमित्येते पञ्चोपयोगा मिथ्यादृष्टिसासादनगुणस्थानकयोर्भवन्ति न शेषाः, सम्यक्त्वविरत्यभावात् । तथाऽविरतसम्यग्दृष्टौ देशविरते च त्रीणि ज्ञानानि मतिश्रुतावधिलक्षणानि, दर्शनत्रिकं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनलक्षणमित्येते षडुपयोगा भवन्ति न शेषाः, मिथ्यात्वसर्वविरत्यभावात् ॥७०॥

मीसे ते च्चिय मीसा सत्त पमत्ताइसु समणनाणा ।
केवलियनाणदंसणउवओगा जोगजोगीसु ॥७१॥

(हारि०) व्याख्या–मिश्रगुणस्थानके त एव पूर्वोक्ताः षडुपयोगा अज्ञानमिश्राः । तथा सप्तोपयोगाः, केषु ? इत्याह–प्रमत्तयत्यादिषु क्षीणमोहान्तेषु सप्तगुणस्थानकेषु, कीदृशाः ? समनःपर्यायज्ञानाः । 'ते च्चिय' इत्यत्रापि संबन्धात्त एव पूर्वोक्ताः षडुपयोगाः समनःपर्यायज्ञानाः सप्तेत्यर्थः । तथा केवलिकज्ञानदर्शनोपयोगाविति कर्मधारयः, कयोः ? इत्याह–'योग्ययोगिनोः' सयोग्ययोगिकेवलिगुणस्थानकयोर्भवत इति शेषः । इति गाथार्थः ॥७१॥

इत्युक्ता उपयोगा गुणस्थानकेषु । साम्प्रतमिहैवागमोक्तानामपि केषांचिदर्थानामनधिकृतत्वमाह—

(मल०) 'मिश्रे' मिश्रगुणस्थानके त एव पूर्वोक्ताः षडुपयोगा अज्ञानमिश्रा द्रष्टव्याः, तस्योभयदृष्टिपातित्वात् । केवलं कदाचित्सम्यक्त्वबाहुल्येन ज्ञानबाहुल्यम्, कदाचिच्च मिथ्यात्वबाहुल्येनाज्ञानबाहुल्यम्, समकक्षतायां तूभयोरपि समतेति । अस्मिंश्च गुणस्थानके यदवधिदर्शनमुक्तं तत्सैद्धान्तिकमतापेक्षया द्रष्टव्यमित्युक्तं प्राक् । तथा प्रमत्तादिषु क्षीणमोहपर्यन्तेषु सप्तसु गुणस्थानकेषु त एव पूर्वोक्ताः षड् उपयोगाः 'समणनाणा' इति समनःपर्यायज्ञानाः सन्तः सप्त भवन्ति न शेषाः, मिथ्यात्वघातिकर्मक्षयाभावात् । तथा केवलिकज्ञानदर्शनलक्षणौ द्वावुपयोगौ सयोगिकेवलिनि अयोगिकेवलिनि च गुणस्थानके भवतो न शेषा दश ज्ञानदर्शनलक्षणाः, तदुच्छेदेनैव केवलज्ञानदर्शनोत्पत्तेः । "नट्ठंमि उ छाउमत्थिए नाणे" इतिवचनात् ॥७१॥

तदेवमुक्ता गुणस्थानकेषूपयोगाः । साम्प्रतं यदिह प्रकरणे सूत्राभिमतमपि कार्मग्रन्थिकाभिप्रायानुसरणतो नाधिकृतं तद्दर्शयन्नाह—

सासणभावे नाणं विउव्विगाहारगे उरलमिस्सं ।
नेगिंदिसु सासाणो नेहाहिगयं सुयमयंपि ॥७२॥

(हारि०) व्याख्या 'सासादनभावे' सासादने सति ज्ञानमित्यादि 'श्रुतमतमपि' सिद्धान्ताभिप्रेतमपि 'न' नैव 'इह' अस्मिन् प्रकरणे 'अधिकृतं' अभ्युपगतम्, किन्त्वज्ञानमेवाधिकृतं कर्मग्रन्थाभिप्रायस्येहाश्रितत्वादिति संबन्धः । तथा 'वैक्रियाहारके' वैक्रियाहारककरणे औदारिकमिश्रमित्यपि नाधिकृतम्, किन्तु वैक्रियमिश्रमाहारकमिश्रं चाधिकृतम्, तस्यैव प्रधा-

१ "सिच्चिय" इत्यपि पाठः ।

नत्वात् । तथा 'न' नैवैकेन्द्रियेषु 'सासाणो' इति लिङ्गव्यत्ययात्सासादनमिति न चाधिकृतम् , किन्त्वेकेन्द्रियेषु सासादनमधिकृतं तत एव हेतोः । इति गाथार्थः ॥७२॥

इतो लेश्यास्तेष्वेवाभिधित्सुराह—

(मल०) 'सासादनभावे' सासादनसम्यग्दृष्टित्वे सति ज्ञानं भवति, नाज्ञानमिति । 'श्रुतमतमपि' सूत्रसम्मतमपि, तथाहि—"बेइन्दियाणं भंते ! किं नाणी अन्नाणी ? गोयमा ! णाणीवि अण्णाणीवि । जे नाणी ते नियमा दुनाणी । तंजहा—आभिणिबोहियनाणी सुयणाणी । जे अण्णाणी ते वि नियमा दुअन्नाणी । तंजहा—मइअन्नाणी सुयअन्नाणी य ॥" इत्यादि सूत्रे द्वीन्द्रियादीनां ज्ञानित्वमभिहितम् , तच्च सासादनसम्यक्त्वापेक्षयैव न शेषसम्यक्त्वापेक्षया, असंभवात् । उक्तं च प्रज्ञापनाटीकायाम्—"बेइन्दियस्स दो णाणा कहं लब्भंति ? भण्णइ सासायणं पडुच्च तस्सापज्जत्तयस्स दो णाणा लब्भंति" इति । ततः सासादनभावेऽपि ज्ञानं सूत्रे सम्मतमेव, तच्चेत्थं सम्मतमपि नेह प्रकरणेऽधिकृतं किंत्वज्ञानमेव, कार्मग्रन्थिकाभिप्रायस्यानुसरणात् । तदभिप्रायश्चायम्—सासादनस्य मिथ्यात्वाभिमुखतया तत्सम्यक्त्वस्य मलीमसत्वेन तन्निबन्धनस्य ज्ञानस्यापि मलीमसत्वादज्ञानरूपतेति । तथा सूत्रे वैक्रिये आहारके चारभ्यमाणे तेन आरभ्यमाणेन सहौदारिकस्य मिश्रीभवनात् , औदारिकमिश्रमुक्तम् । तथा चाह प्रज्ञापनाटीकाकारः—यदा पुनरौदारिकशरीरी वैक्रियलब्धिसंपन्नो मनुष्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको वा पर्याप्तबादरवायुकायिको वा वैक्रियं करोति तदौदारिकशरीरयोग एव वर्तमानः प्रदेशान् विक्षिप्य वैक्रियशरीरयोग्यान् पुद्गलानादाय यावद्वैक्रियशरीरपर्याप्त्या पर्याप्तिं न गच्छति तावद्वैक्रियेण मिश्रता व्यपदेशश्चौदारिकेण तस्य प्रधानत्वात् । एवमाहारकेणापि सह मिश्रता द्रष्टव्या । आहारयति च तेनैवेति तेनैव व्यपदेश इति । परित्यागकाले च वैक्रियस्याहारकस्य च यथाक्रमं वैक्रियमिश्रमाहारकमिश्रं च । उक्तं च प्रज्ञापनाटीकायामेवाहारकमधिकृत्य—यदाहारकशरीरी भूत्वा कृतकार्यः पुनरप्यौदारिकं गृह्णाति तदाऽऽहारकस्य प्रधानत्वादौदारिकप्रवेशं प्रति व्यापारभावान्न परित्यज्यते, यावत्सर्वथैवाहारकं तदौदारिकेण सह मिश्रतेत्याहारकमिश्रता इत्याहारकमिश्रशरीरकायप्रयोग इति । तच्चेत्थम्—वैक्रियाहारकारम्भकाले औदारिकमिश्रं सूत्रेऽभिहितमपि नेह प्रकरणेऽधिकृतं कार्मग्रन्थिकैः, गुणविशेषप्रत्ययसमुत्थलब्धिविशेषकारणतया प्रारम्भकाले परित्यागकाले च वैक्रियस्याहारकस्य च प्राधान्यविवक्षया वैक्रियमिश्रस्याहारकमिश्रस्यैव चाभिधानात् तदभिप्रायस्य चेहानुसरणात् । तथा नैकेन्द्रियेषु 'सासाणो' इति भावप्रधानोऽयं निर्देशः सासादनभावः सूत्रे मतः, अन्यथा द्वीन्द्रियादीनामिवैकेन्द्रियाणामपि ज्ञानित्वमुच्येत न चोच्यते, किन्तु विशेषतः प्रतिषिध्यते । तथाहि—'एगिंदियाणं भंते ! किं नाणी अण्णाणी ?

गोयमा ! नो नाणी नियमा अन्नाणी" इति । स चेत्थं सासादनभावप्रतिषेधः सूत्रे मतोऽपि केनचित्कारणेन कार्मग्रन्थिकैर्नाभ्युपैयत, इतीहापि नाधिक्रियते तदभिप्रायस्यैवेह प्रायोऽनुसरणादिति । '**नेहाहिगयं सुयमयंपि**'इत्येतद्विभक्तिपरिणामेन प्रतिपादं संबन्धनीयं तथैव च संबन्धितमिति ॥७२॥

गुणस्थानकेष्वेव लेश्या अभिधित्सुराह—

लेसा तिन्नि पमत्तं तेऊपम्हा उ अप्पमत्तंता ।
सुक्का जाव सजोगी निरुद्धलेसो अजोगि त्ति ॥७३॥

(हारि०) व्याख्या—आद्यास्तिस्रो लेश्याः प्रमत्तान्ताः प्रमत्तात्परतो न भवन्तीति प्रमत्तं यावत्षडपीत्यर्थः । तथा तैजसीपद्मे त्वप्रमत्तान्तेऽप्रमत्तात्परतस्ते न भवतोऽप्रमत्ते अन्त्यास्तिस्रो लेश्या इत्यर्थः, । ततोऽप्रमत्तादूर्ध्वं '**शुक्ला**' शुक्ललेश्यैकैवेत्यर्थो यावत् सयोगिगुणस्थानम् । तथा '**निरुद्धलेश्यः**' अलेश्य इत्यर्थः, कोऽसौ ? इत्याह—'**अयोगी**' अयोगिकेवली । इतिशब्दो लेश्याद्वारसमाप्त्यर्थे । इति गाथार्थः ॥७३॥

इत्युक्ता लेश्या गुणस्थानकेषु ४ । साम्प्रतं बन्धहेतवः, ते च मूलभेदतश्चत्वार उत्तरभेदतः सप्तपञ्चाशदिति तानुभयथाऽभिधित्सुराह—

(मल०) आद्यास्तिस्रो लेश्याः '**प्रमत्तान्ताः**' प्रमत्तगुणस्थानकपर्यन्ता भवन्ति, प्रमत्तात्परतो न भवन्तीति यावत् । तेजःपद्मलेश्ये तु '**अप्रमत्तान्ते**' मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकात्प्रभृति यावदप्रमत्तगुणस्थानकं तावद्भवत इत्यर्थः । '**सुक्का जाव सजोगी**' इति मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकात्प्रभृति यावत्सयोगिकेवलिगुणस्थानकं तावत् '**शुक्ला**' शुक्ललेश्या भवति । '**निरुद्धलेसो अजोगी त्ति**' अयोगी अयोगीकेवली '**निरुद्धलेश्यः**' अपगतलेश्यो भवति । इतिर्वाक्यपरिसमाप्तौ । इह लेश्यानां प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि । ततो मन्दाध्यवसायस्थानापेक्षया शुक्ललेश्यादीनामपि मिथ्यादृष्ट्यादौ कृष्णलेश्यादीनामपि प्रमत्तगुणस्थानकेऽपि संभवो न विरुध्यत इति ॥७३॥

तदेवमुक्ता गुणस्थानकेषु लेश्याः । साम्प्रतं बन्धहेतवो वक्तुमवसरप्राप्ताः, ते च मूलभेदतश्चत्वार उत्तरभेदतश्च सप्तपञ्चाशत्, एतानुभयथाऽप्यभिधित्सुराह—

बंधस्स मिच्छअविरइकसायजोग त्ति हेयवो चउरो ।
पंच दुवालस पणुवीस पनरस कमेण भेया सिं ॥७४॥

(हारि०) व्याख्या—मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाः, '**इति**' अमुना प्रकारेण बन्धस्य मूल-

१ "अविरय" इत्यपि पाठः ।

नत्वात् । तथा 'न' नैवैकेन्द्रियेषु 'सासाणो' इति लिङ्गव्यत्ययात्सासादनमिति न चाधिकृतम् , किन्त्वेकेन्द्रियेषु सासादनमधिकृतं तत एव हेतोः । इति गाथार्थः ॥७२॥

इतो लेश्यास्तेष्वेवाभिधित्सुराह—

(मल०) **'सासादनभावे'** सासादनसम्यग्दृष्टित्वे मतिज्ञानं भवति, नाज्ञानमिति । **श्रुतसममपि'** सूत्रसम्मतमपि, तथाहि—**वेइंदियाणं भंते ! किं नाणी अन्नाणी ? गोयमा ! णाणीवि अण्णाणीवि । जे नाणी ते नियमा दुनाणी । तंजहा—आभिणिबोहियनाणी सुयणाणी । जे अण्णाणी ते वि नियमा दुअन्नाणी । तंजहा—मइअन्नाणी सुयअन्नाणी य ॥''** इत्यादि सूत्रे द्वीन्द्रियादीनां ज्ञानित्वमभिहितम् , तच्च सासादनसम्यक्त्वापेक्षयैव न शेषसम्यक्त्वापेक्षया, असंभवात् । उक्तं च प्रज्ञापनाटीकायाम्—**बेइंदियस्स दो णाणा कहं लब्भंति ? भण्णइ सासायणं पडुच्च तस्सापज्जत्तयस्स दो णाणा लब्भंति''** इति । ततः सासादनभावेऽपि ज्ञानं सूत्रे सम्मतमेव, तच्चेत्थं सम्मतमपि नेह प्रकरणेऽधिकृतं किंत्वज्ञानमेव, कार्मग्रन्थिकाभिप्रायस्यानुसरणात् । तदभिप्रायश्चायम्—सासादनस्य मिथ्यात्वाभिमुखतया तत्सम्यक्त्वस्य मलीमसत्वेन तन्निबन्धनस्य ज्ञानस्यापि मलीमसत्वादज्ञानरूपतेति । तथा सूत्रे वैक्रिये आहारके चारभ्यमाणे तेन प्रारभ्यमाणेन सहौदारिकस्य मिश्रीभवनात् , औदारिकमिश्रमुक्तम् । तथा चाह प्रज्ञापनाटीकाकारः—यदा पुनरौदारिकशरीरी वैक्रियलब्धिसंपन्नो मनुष्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको वा पर्याप्तबादरवायुकायिको वा वैक्रियं करोति तदौदारिकशरीरयोग एव वर्तमानः प्रदेशान् विक्षिप्य वैक्रियशरीरयोग्यान् पुद्गलानादाय यावद्वैक्रियशरीरपर्याप्त्या पर्याप्तिं न गच्छति तावद्वैक्रियेण मिश्रता व्यपदेशश्चौदारिकेण तस्य प्रधानत्वात् । एवमाहारकेणापि सह मिश्रता द्रष्टव्या । आहारयति च तेनैवेति तेनैव व्यपदेश इति । परित्यागकाले च वैक्रियस्याहारकस्य च यथाक्रमं वैक्रियमिश्रमाहारकमिश्रं च । उक्तं च प्रज्ञापनाटीकायामेवाहारकमधिकृत्य—यदाहारकशरीरी भूत्वा कृतकार्यः पुनरप्यौदारिकं गृह्णाति तदाऽऽहारकस्य प्रधानत्वादौदारिकप्रवेशं प्रति व्यापारभावान्न परित्यज्यते, यावत्सर्वथैवाहारकं तदौदारिकेण सह मिश्रतेत्याहारकमिश्रता इत्याहारकमिश्रशरीरकायप्रयोग इति । तच्चेत्थम्—वैक्रियाहारकारम्भकाले औदारिकमिश्रं सूत्रेऽभिहितमपि नेह प्रकरणेऽधिकृतं कार्मग्रन्थिकैः, गुणविशेषप्रत्ययसमुत्थलब्धिविशेषकारणतया प्रारम्भकाले परित्यागकाले च वैक्रियस्याहारकस्य च प्राधान्यविवक्षया वैक्रियमिश्रस्याहारकमिश्रस्यैव चाभिधानात् तदभिप्रायस्य चेहानुसरणात् । तथा नैकेन्द्रियेषु **'सासाणो'** इति भावप्रधानोऽयं निर्देशः सासादनभावः सूत्रे मतः, अन्यथा द्वीन्द्रियादीनामिवैकेन्द्रियाणामपि ज्ञानित्वमुच्येत न चोच्यते, किन्तु विशेषतः प्रतिषिध्यते । तथाहि—**'एगिंदियाणं भंते ! किं नाणी अण्णाणी ?**

गोयमा ! नो नाणी नियमा अन्नाणी" इति । स चेत्थं सासादनभावप्रतिषेधः सूत्रे मतोऽपि केनचित्कारणेन कार्मग्रन्थिकैर्नाभ्युपैयत, इतीहापि नाधिक्रियते तदभिप्रायस्यैवेह प्रायोऽनुसरणादिति । '**नेहाहिगयं सुयमयंपि**'इत्येतद्विभक्तिपरिणामेन प्रतिपाद्यं संबन्धनीयं तथैव च संबन्धितमिति ॥७२॥

गुणस्थानकेष्वेव लेश्या अभिधित्सुराह—

लेसा तिन्नि पमत्तं तेऊपम्हा उ अप्पमत्तंता ।
सुक्का जाव सजोगी निरुद्धलेसो अजोगि त्ति ॥७३॥

(हारि०) व्याख्या—आद्यास्तिस्रो लेश्याः प्रमत्तान्ताः प्रमत्तात्परतो न भवन्तीति प्रमत्तं यावत्षडपीत्यर्थः । तथा तैजसीपद्मे त्वप्रमत्तान्तेऽप्रमत्तात्परतस्ते न भवतोऽप्रमत्ते अन्त्यास्तिस्रो लेश्या इत्यर्थः, । ततोऽप्रमत्तादूर्ध्वं 'शुक्ला' शुक्ललेश्यैकैवेत्यर्थो यावत् सयोगिगुणस्थानम् । तथा '**निरुद्धलेश्यः**' अलेश्य इत्यर्थः, कोऽसौ ? इत्याह—'**अयोगी**' अयोगिकेवली । इतिशब्दो लेश्याद्वारसमाप्त्यर्थे । इति गाथार्थः ॥७३॥

इत्युक्ता लेश्या गुणस्थानकेषु ४ । साम्प्रतं बन्धहेतवः, ते च मूलभेदतश्चत्वार उत्तरभेदतः सप्तपञ्चाशदिति तानुभयथाऽभिधित्सुराह—

(मल०) आद्यास्तिस्रो लेश्याः '**प्रमत्तान्ताः**' प्रमत्तगुणस्थानकपर्यन्ता भवन्ति, प्रमत्तात्परतो न भवन्तीति यावत् । तेजःपद्मलेश्ये तु '**अप्रमत्तान्ते**' मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकात्प्रभृति यावदप्रमत्तगुणस्थानकं तावद्भवत इत्यर्थः । '**सुक्का जाव सजोगी**' इति मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकात्प्रभृति यावत्सयोगिकेवलिगुणस्थानकं तावत् '**शुक्ला**' शुक्ललेश्या भवति । '**निरुद्धलेसो अजोगी त्ति**' अयोगी अयोगीकेवली '**निरुद्धलेश्यः**' अपगतलेश्यो भवति । इतिर्वाक्यपरिसमाप्तौ । इह लेश्यानां प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि । ततो मन्दाध्यवसायस्थानापेक्षया शुक्ललेश्यादीनामपि मिथ्यादृष्ट्यादौ कृष्णलेश्यादीनामपि प्रमत्तगुणस्थानकेऽपि संभवो न विरुध्यत इति ॥७३॥

तदेवमुक्ता गुणस्थानकेषु लेश्याः । साम्प्रतं बन्धहेतवो वक्तुमवसरप्राप्ताः, ते च मूलभेदतश्चत्वार उत्तरभेदतश्च सप्तपञ्चाशत् , एतानुभयथाऽप्यभिधित्सुराह—

बंधस्स मिच्छअविरइकसायजोग त्ति हेयवो चउरो ।
पंच दुवालस पणुवीस पनरस कमेण भेया सिं ॥७४॥

(हारि०) व्याख्या—मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाः, '**इति**' अमुना प्रकारेण बन्धस्य मूल-

१ "अविरय" इत्यपि पाठः ।

हेतवश्चत्वारः। एषां च मिथ्यात्वादीनां 'क्रमेण' परिपाट्या इति संबन्धः। पञ्च-द्वादश-पञ्चविंशति-पञ्चदशसंख्या भेदा भवन्ति। एते च मीलिताः सप्तपञ्चाशद्बन्धहेतूत्तरभेदाः। इति गाथार्थः ॥७४॥ एतानेव विवृण्वन्नाह—

(मल०) 'बन्धस्य' सामर्थ्याज्ज्ञानावरणीयादिकर्मबन्धस्य मूलहेतवश्चत्वारः। के ते ? इत्याह–मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाः। तत्र मिथ्यात्वं विपरीतावबोधस्वभावम्। अविरतिः सावद्ययोगेभ्यो निवृत्त्यभावः। कषाययोगाः प्राङ्निरूपितस्वरूपाः। नन्वन्यत्र प्रमादोऽपि बन्धहेतुरभिधीयते, तदुक्तम्–"**मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः**" इति। स कथमिह नोक्तः ?, उच्यते, कार्मग्रन्थिकैर्मद्यविषयरूपस्य तस्याविरतावेवान्तर्भावो विवक्षितः कषायश्च पृथगेवोक्तः। वैक्रियारम्भादिसंभवी तु प्रमादो योगग्रहणेनैव गृहीत इत्यदोषः। अमीषामेवोत्तरभेदानाह–'पंच' इत्यादि। मिथ्यात्वस्योत्तरभेदाः पञ्च, अविरतेर्द्वादश कषायाणां पञ्चविंशतिः, योगानां पञ्चदश ॥७४॥ एतानेव स्वरूपतः कथयन्नाह—

★आभिग्गहियं अणभिग्गहं च तह अभिनिवेसियं चेव।
संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पंचहा एवं ॥७५॥
बारसविहा अविरई मणइंदियअनियमो छकायवहो।
सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥७६॥

(हारि०) व्याख्या–आभिग्रहिकं दीक्षितानाम् १। अनभिग्रहं चेतरेषाम् २। तथाऽऽभिनिवेशिकं गोष्ठामाहिलादीनाम् ३। सांशयिकं जिनोक्ततत्त्वेषु संशयवताम् ४। अनाभोगमेकेन्द्रियादीनाम् ५। मिथ्यात्वं पञ्चधा 'एवं' इत्येवंप्रकारमिति ॥७५॥ अथ द्वितीयगाथा व्याख्यायते–द्वादशविधाऽविरतिर्भवति। कथम् ? इत्याह-मनश्चेन्द्रियाणि च मनइन्द्रियाणि तेषामनियमोऽनियन्त्रणमिति समासः। तथा षट् च ते कायाश्च पृथिव्यादयः तेषां च वधो=हिंसेति समासः। तथा षोडश नव च कषायाः प्रसिद्धस्वरूपाः कियन्तो मीलिता भवन्ति ? इत्याह-पञ्चविंशतिः। तथा पञ्चदश योगाः प्राक्प्रतिपादितस्वरूपाः। इति गाथाद्वयार्थः ॥७६॥

अथ बन्धहेतूत्तरभेदान् गुणस्थानकेषु यथासंख्येन योजयन्नाह—

(मल०) गाथाद्वयम्। मिथ्यात्वमुक्तस्वरूपम्। 'एवम्' अमुना प्रकारेण 'पञ्चधा' पञ्चप्रकारम्। केन च प्रकारेण ? इत्याह–आभिग्रहिकं १ आनाभिग्रहिकं २ च तथाऽऽभिनिवेशिकं ३ चैव सांश-

★उक्तगाथा द्वयमध्येऽन्यगाथाद्वयं हस्तलिखितमूलगाथाप्रतावधिकतयेत्थं दृश्यते तद्यथा—
आभिग्गहियं किल दिक्खियाणमणभिग्गहं तु इयराणं। गुट्ठामाहिलमाईण जं अभिनिवेसियं तं तु ॥
संसइयं मिच्छत्तं जा संका जिणवरुत्ततत्तेसु। विगलिंदियाण जं पुण तमणाभोगं विणिद्दिट्ठं ॥

यिकं ४ अनाभोगिकं ५ मिति । तत्राभिग्रहेण इदमेव दर्शनं शोभनं नान्यद् इत्येवंरूपेण कुदर्शनविषयेण निर्वृत्तमाभिग्रहिकम् यद्वशाद्बोटिकादिकुदर्शनानामन्यतमं दर्शनं गृह्णाति १ । एतद्विपरीतमनाभिग्रहिकम् यद्वशात्सर्वाण्यपि दर्शनानि शोभनानीत्येवमीषन्माध्यस्थ्यमुपजायते २ । आभिनिवेशिकं यदभिनिवेशेन निर्वृत्तम्, यथा गोष्ठामाहिलादीनाम् ३ । सांशयिकम्, यद्वशाद्भगवदर्हदुपदिष्टेष्वपि जीवादितत्त्वेषु संशय उपजायते, यथा न जाने किमिदं भगवदुक्तं धर्मास्तिकायादि सत्यमुतान्यथेति ४ । अनाभोगिकं यदनाभोगेन निर्वृत्तम्, तच्चैकेन्द्रियादीनामिति ५ । तथा द्वादशविधाऽविरतिः । कथम्? इत्याह—'**मणइंदियअनियमो छकायवहो**' इति पञ्चानामिन्द्रियाणां षष्ठस्य च मनसः स्वस्वविषये प्रवर्तमानस्य यदनियमनं अनियन्त्रणम् । तथा षण्णां पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसरूपाणां कायानां वधो=हिंसा इति । तथा कषायाः प्रागुक्तशब्दार्थाः पञ्चविंशतिः । कथम्? इत्याह—षोडश नव चेति । तत्र क्रोधमानमायालोभाः प्रत्येकमनन्तानुबन्धिनोऽप्रत्याख्यानावरणाः प्रत्याख्यानावरणाः संज्वलनाश्च ततस्ते षोडश भवन्ति । तत्र पारंपर्येण भवमनन्तमनुबध्नन्तीत्येवं शीला अनन्तानुबन्धिनः, उदयस्थानाममीषां सम्यक्त्वविघातकृत्त्वात् । तथाऽल्पमपि प्रत्याख्यानमावृण्वन्तीत्यप्रत्याख्यानावरणाः, तदुदये लेशतोऽपि प्रत्याख्यानानुत्पत्तेः । प्रत्याख्यानं सर्वविरतिरूपमावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणाः । तथा परीषहोपसर्गादिसंपाते चारित्रिणमपि सम् ईषज्ज्वलयन्तीति संज्वलनाः । पश्चानुपूर्व्या च स्वरूपमेतेषामेवम्—"**जलरेणुपुढविपव्वयराईसरिसो चउव्विहो कोहो । तिणिसलयाकट्ठट्ठियसेलत्थंभोवमो माणो ॥१॥ मायावलेहिगोमुत्तिमिंढसिंगघणवंसमूलसमा । लोहो हलिद्दखंजणकद्दमकिमिरागसारिच्छो ॥२॥ पक्खचउमासवच्छरजावज्जीवाणुगामिणो कमसो । देवनरतिरियनारयगइसाहणहेयवो भणिया ॥३॥**" इति तथा वेदत्रिकहास्यादिषट्करूपा नव नोकषायाः । ते च कषायसहचारित्वादुपचारेणेह कषाया इत्युक्ताः । तत्र वेदत्रिकं प्रागनिर्दिष्टस्वरूपम् । हास्यादिषट्कं हास्यरत्यरतिभयशोकजुगुप्सालक्षणम् । तत्र सनिमित्तमनिमित्तं वा यद्धसनं तद्धास्यम् । बाह्याभ्यन्तरेषु वस्तुषु प्रीती रतिः । तेष्वेवाप्रीतिररतिः । भयं त्रासः । परिदेवनादिलिङ्गः शोकः । सचेतनाचेतनेषु वस्तुषु व्यलीककरणं जुगुप्सा इति । योगाः पञ्चदश, ते च सर्वेऽपि प्राक् प्रतिपादितस्वरूपाः ॥७५॥७६॥

इदानीममूनेव बन्धहेतून् गुणस्थानकेषु चिन्तयन्नाह—

[1]पण[2]पन्न[3]पन्न[4]तियछहिय[5] [6]चत्तउण[7]चत्त[8]छचउ दुगवीसा ।
[9]सोलस[10]दस[11]नव[12]नव[13]सत्तहेउणो न उ अजोगिम्मि ॥७७॥

८ "चत्तिगुणचत्त०" इत्यपि पाठः ।

(हारि०) व्याख्या—अस्याः केनाप्यभिप्रायेण सूत्रकारेण पदविवरणं न कृतम् तच्च यथाऽवबोधमस्माभिः शास्त्रानुसारेण लिख्यते—तत्र सामान्येन पूर्वोक्ताः सप्तपञ्चाशदुत्तरभेदा बन्धहेतवो भवन्ति ५७। ततो। मिथ्यादृष्टेराहारकतन्मिश्रवर्जनात्पञ्चपञ्चाशदेव मन्तव्याः, तद्वर्जनं तु संयमवतस्तत्सद्भावादिति ५५ । तथा पूर्वोक्तायाः पञ्चपञ्चाशतो मिथ्यात्वपञ्चकेऽपनीते सासादनस्य पञ्चाशद्द्रष्टव्याः ५०। सम्यग्मिथ्यादृष्टेस्तु परलोकगमनाभावात्कार्मणं औदारिकमिश्रं वैक्रियमिश्रं च न संभवति, अनन्तानुबन्ध्युदयस्य चास्य निषिद्धत्वात् । अनन्तानुबन्धिचतुष्टयं च नास्ति अत एतेषु सप्तसु पूर्वोक्तायाः पञ्चाशतोऽपनीतेषु शेषास्त्रिचत्वारिंशदुत्तरभेदा भवन्ति ४३। तथाऽविरतस्य परलोकगमनसंभवात् पूर्वापनीतकार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रत्रये पूर्वोक्तत्रिचत्वारिंशति पुनः-प्रक्षिप्ते षट्चत्वारिंशद्भेदा भवन्ति ४६ । तथा देशविरतस्याप्रत्याख्यानावरणोदयस्य निषिद्धत्वादप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं तथा विग्रहगतावपर्याप्तावस्थायां च देशविरतेरभावात् कार्मणौदारिकमिश्रद्वयं त्रससंयमानिवृत्तत्वात् त्रसासंयमश्च न संभवति, अत एतानि पूर्वोक्तायाः षट्चत्वारिंशतोऽपनीयन्ते, ततः शेषा एकोनचत्वारिंश [1]द्बन्धहेतवो भवन्ति। अत्राह, ननु देशविरतस्त्रसासंयमात्संकल्पजा[2]देव निवृत्तो न त्वारम्भजादेः, तत्कथं सर्वोऽप्येषोऽपनीयते ? सत्यम् , किन्तु, गृहिणामशक्यपरिहारत्वेन सन्नप्यारम्भजत्रसासंयमो न विवक्षित इत्यदोषः । एतच्च शतकबृहच्चूर्णिमनुश्रित्य लिखितमिति नात्र स्वमनीषिका भावनीयेति । तथा प्रमत्तस्य पूर्वापनीतत्रसासंयमव्यतिरिक्तानामेकादशाविरतीनामभावात् प्रत्याख्यानावरणानां चाभावादेव आहारक[3]द्विकसद्भावात् पूर्वोक्तायामेकोनचत्वारिंशति पञ्चदशकेऽपनीते द्विके च क्षिप्ते षड्विंशत्युत्तरभेदा भवन्ति २६ । तथाऽप्रमत्तस्य त्वनन्तरोक्तायाः षड्विंशतेर्लब्ध्यनुपजीवनेनाहारवैक्रियानारम्भकत्वाद्वैक्रियमिश्राहारकमिश्रद्वयेऽपनीते शेषाश्चतुर्विंशत्युत्तरभेदा भवन्ति २४ । तथाऽपूर्वकरणे त्वतिविशुद्धत्वाद्वैक्रियाहारकमपि न संभवत्येव, ततो वैक्रियाहारकद्विकेऽनन्तरोक्तायाश्चतुर्विंशतेर्मध्यादपनीते शेषा द्वाविंशतिर्भवति २२ । तथाऽनिवृत्तिबादरस्य तु हास्यादिषट्कस्यापूर्वकरण एव व्यवच्छिन्नत्वात् शेषाः संज्वलनाश्चत्वारः कषायाः, वेदत्रयम् , मनो ४ वचनौ ४ दारिकरूपा नव योगाः, एते षोडश भवन्ति १६ । यावदद्यापि वेदत्रयं संज्वलनत्रयं च नापगच्छति, तदपगमने तु यथासंभवो वाच्यः । तथा सूक्ष्मसंपरायस्य वेदत्रयक्रोधादित्रिकयोरनिवृत्तिबादर एव व्यवच्छिन्नत्वाच्छेषा नव योगाः संज्वलनलोभश्चेति दश भवन्ति १० । तथा त्रयाणामुपशान्तादीनां योगप्रत्यय एव बन्धः, ततश्चोपशान्तक्षीणमोहयोः प्रत्येकं नवधा भवति, अष्टौ मनोवाचः औदारिककाययोगश्चेति ९ । तथा सयोगिकेवलिनस्तु योगः सप्तधा

१–'दुत्तरभेदा लभ्यन्ते' इत्यपि ॥ २"०देरेवासौ" इत्यपि । ३ ''मिश्रवैक्रियमिश्रसद्भावात्'' इत्यपि ।

भवति, पूर्वोक्तनवकमध्यान्मृषामिश्ररूपे मनोद्वये एवं वाग्द्वये चापनीते औदारिकमिश्रकार्मणे च क्षिप्ते सति। तथाऽयोगी तु प्रत्ययाभावादबन्धकः। अयमर्थो गाथाभिरपि कथ्यते शिष्यानुग्रहार्थम्—**आहारगदुगहीणा, पणवन्ना होइ मिच्छदिट्ठिम्मि ५५। सा मिच्छपणगहीणा, पन्नासा तह य सासाणे ५० ॥१॥ सा चउणंतकसाया ४, ओरालविउव्विमीसकम्मइगं। इय सत्तगेण रहिया, तेयाला मीसगुणठाणे ४३ ॥२॥ ओरालियवेउव्वियमीसदुगं तह य कम्मणसरीरं। एय तिगेणं सहिया, अविरयसंमंमि छायाला ४६ ॥३॥ ओरालमीसकम्मणचउबीयकसायतसअविरई य। इय सत्तगेण रहिया, इगुयाला देसविरइयंमि ३९ ॥४॥ तइयकसायचउक्कं, एक्कारस अविरई य ¹मोत्तूण। आहारगदुगसहिया, पमत्तसाहुस्स छव्वीसा २६ ॥५॥ विउवाहरगमीसगरहिया चउवीस होइ अपमत्ते २४। आहारगवेउव्वियहीणदुवीसा अपुव्वंमि २२ ॥६॥ हासाइछक्करहिया, सोलस अनियट्टिबायरे होंति १६। संजलणवेयनियतियरहिया इह होंति दस सुहमे १०॥७॥ उवसंते ९ तह खीणे ९, नव नव हेऊ य लोहपरिहीणा। दोमणदोवइरहिया, कम्मणओरालमीसजुया ॥८॥ एवं सत्त सजोगे ७, एए सव्वे न हुंतऽजोगंमि। चउदस गुणठाणेसु, पणचन्निवाइ वक्खायं ॥९॥"** इति गाथार्थः ॥७७॥

इत्युक्ता बन्धहेतवः। अधुना येषां कर्मणामेते बन्धहेतवस्तेभ्यस्तेषां बन्धं दर्शयन् संख्याविशिष्टानि तान्याह—

(मल०) इह मिथ्यात्वाद्यवान्तरभेदानामनन्तरोक्तानां पञ्च द्वादशादीनामेकत्र मीलने सप्तपञ्चाशद्भवति। तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके आहारकतन्मिश्रवर्जाः शेषाः पञ्चपञ्चाशद्बन्धहेतवो भवन्ति। आहारकद्विकवर्जनं तु **'संयमवतां तदुदयो नान्यस्य'** इतिवचनात्। तथा सासादनसम्यग्दृष्टौ पञ्चाशद्बन्धहेतवः, मिथ्यात्वपञ्चकस्येहासंभवेनोपनयनात्। तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टौ त्रिचत्वारिंशद्बन्धहेतवः, यतोऽत्र **"न सम्ममिच्छो कुणइ कालं"** इतिवचनात्, न परलोकगमनं तदभावाच्च न कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रसंभवः, अनन्तानुबन्ध्युदयस्य चात्र निषिद्धत्वादनन्तानुबन्धिचतुष्टयमपि न संभवति, अत एतेषु सप्तसु पूर्वोक्तायाः पञ्चाशतोऽपनीतेषु शेषास्त्रिचत्वारिंशदेव भवति। तथाऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके षट्चत्वारिंशद्बन्धहेतवः यतोऽत्र परलोकगमनसंभवात् पूर्वापनीतं कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रलक्षणं त्रिकं पूर्वोक्तायां त्रिचत्वारिंशति पुनः प्रक्षिप्यत इति। तथा देशविरतिगुणस्थानके एकोनचत्वारिंशद्बन्धहेतवः यस्मान्नात्राप्रत्याख्यानावरणकषायोदयः, न च त्रसासंयमः, नाप्येतद्गुणस्थानकमपान्तरालगतावपर्याप्तावस्थायां वा लभ्यते, ततोऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयकार्मणौदारिकमिश्रत्रसासंयमरूपेषु सप्तसु

---

१ "मोत्तु तओ" इत्यपि।

(हारि०) व्याख्या-अस्याः केनाप्यभिप्रायेण सूत्रकारेण पदविवरणं न कृतम् तच्च यथावबोधमस्माभिः शास्त्रानुसारेण लिख्यते-तत्र सामान्येन पूर्वोक्ताः सप्तपञ्चाशदुत्तरभेदा बन्धहेतवो भवन्ति ५७। ततो । मिथ्यादृष्टेराहारकतन्मिश्रवर्जनात्पञ्चपञ्चाशदेव मन्तव्याः, तद्वर्जनं तु संयमव्रतस्तत्सद्भावादिति ५५ ।तथा पूर्वोक्तायाः पञ्चपञ्चाशतो मिथ्यात्वपञ्चकेऽपनीते सासादनस्य पञ्चाशद्द्रष्टव्याः ५० ।सम्यग्मिथ्यादृष्टेस्तु परलोकगमनाभावात्कार्मणमौदारिकमिश्रं वैक्रियमिश्रं च न संभवति, अनन्तानुबन्ध्युदयस्य चास्य निषिद्धत्वात् ; अनन्तानुबन्धिचतुष्टयं च नास्ति अत एतेषु सप्तसु पूर्वोक्तायाः पञ्चाशतोऽपनीतेषु शेषास्त्रिचत्वारिंशदुत्तरभेदा भवन्ति ४३ । तथाऽविरतस्य परलोकगमनसंभवात् पूर्वापनीतकार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रत्रये पूर्वोक्तत्रिचत्वारिंशति पुनः-प्रक्षिप्ते षट्चत्वारिंशद्भेदा भवन्ति ४६ । तथा देशविरतस्याप्रत्याख्यानावरणोदयस्य निषिद्धत्वादप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं तथा विग्रहगतावपर्याप्तावस्थायां च देशविरतेरभावात् कार्मणौदारिकमिश्रद्वयं त्रससंयमानिवृत्तत्वात् त्रसासंयमश्च न संभवति, अत एतानि पूर्वोक्तायाः षट्चत्वारिंशतोऽपनीयन्ते, ततः शेषा एकोनचत्वारिंश [1]द्बन्धहेतवो भवन्ति । अत्राह, ननु देशविरतस्त्रसासंयमात्संकल्पजा [2]देव निवृत्तो न त्वारम्भजादेः, तत्कथं सर्वोऽप्येषोऽपनीयते ? सत्यम् , किन्तु, गृहिणामशक्यपरिहारत्वेन सन्नप्यारम्भजत्रसासंयमो न विवक्षित इत्यदोषः । एतच्च शतकबृहच्चूर्णिमनुश्रित्य लिखितमिति नात्र स्वमनीषिका भावनीयेति । तथा प्रमत्तस्य पूर्वापनीतत्रसासंयमव्यतिरिक्तानामेकादशाविरतीनामभावात् प्रत्याख्यानावरणानां चाभावादेव आहारक [3]द्विकसद्भावात् पूर्वोक्तायामेकोनचत्वारिंशति पञ्चदशकेऽपनीते द्विके च क्षिप्ते षड्विंशत्युत्तरभेदा भवन्ति २६ । तथाऽप्रमत्तस्य त्वनन्तरोक्तायाः षड्विंशतेर्लब्ध्यनुपजीवनेनाहारवैक्रियानारम्भकत्वाद्वैक्रियमिश्राहारकमिश्रद्वयेऽपनीते शेषाश्चतुर्विंशत्युत्तरभेदा भवन्ति २४ । तथाऽपूर्वकरणे त्वतिविशुद्धत्वाद्वैक्रियाहारकमपि न संभवत्येव, ततो वैक्रियाहारकद्विकेऽनन्तरोक्तायाश्चतुर्विंशतेर्मध्यादपनीते शेषा द्वाविंशतिर्भवति २२ । तथाऽनिवृत्तिबादरस्य तु हास्यादिषट्कस्यापूर्वकरण एव व्यवच्छिन्नत्वात् शेषाः संज्वलनाश्चत्वारः कषायाः, वेदत्रयम् , मनो ४ वचनौ ४ दारिकरूपा नव योगाः, एते षोडश भवन्ति १६ । यावदद्यापि वेदत्रयं संज्वलनत्रयं च नापगच्छति, तदपगमने तु यथासंभवो वाच्यः । तथा सूक्ष्मसंपरायस्य वेदत्रयक्रोधादित्रिकयोरनिवृत्तिबादर एव व्यवच्छिन्नत्वाच्छेषा नव योगाः संज्वलनलोभश्चेति दश भवन्ति १० ।

तथा त्रयाणामुपशान्तादीनां योगप्रत्यय एव बन्धः, ततश्चोपशान्तक्षीणमोहयोः प्रत्येकं नवधा भवति, अष्टौ मनोवाचः औदारिककाययोगश्चेति ९ । तथा सयोगिकेवलिनस्तु योगः सप्तधा

१-'द्युत्तरभेदा लभ्यन्ते' इत्यपि ॥ २"०देरेवासौ" इत्यपि । ३ ''मिश्रवैक्रियमिश्रसद्भावात्'' इत्यपि ।

भवति, पूर्वोक्तनवकमध्यान्मृषामिश्ररूपे मनोद्वये एवं वाग्द्वये चापनीते औदारिकमिश्रकार्मणे च क्षिप्ते सति। तथाऽयोगी तु प्रत्ययाभावादबन्धकः। अयमर्थो गाथाभिरपि कथ्यते शिष्यानुग्रहार्थम्—आहारगदुगहीणा, पणवन्ना होइ मिच्छदिट्ठिम्मि ५५। सा मिच्छपणगहीणा, पन्नासा तह य सासाणे ५० ॥१॥ सा चउणंतकसाया ४, ओरालविउव्विमीसकम्मइगं। इय सत्तगेण रहिया, तेयाला मीसगुणठाणे ४३ ॥२॥ ओरालियवेउव्वियमीसदुगं तह य कम्मणसरीरं। एय तिगेणं सहिया, अविरयसंमंमि छायाला ४६ ॥३॥ ओरालमीसकम्मणचउबीयकसायतसअविरई य। इय सत्तगेण रहिया, इगुयाला देसविरइयंमि ३९ ॥४॥ तइयकसायचउक्कं, एक्कारस अविरई य [1]मोत्तूण। आहारगदुगसहिया, पमत्तसाहुस्स छव्वीसा २६ ॥५॥ विउवाहारगमीसगरहिया चउवीस होइ अपमत्ते २४। आहारगवेउव्वियहीणदुवीसा अपुव्वंमि २२ ॥६॥ हासाइछक्करहिया, सोलस अनियट्टिबायरे होंति १६। संजलणवेयनियतियरहिया इह होंति दस सुहमे १०॥७॥ उवसंते ९ तह खीणे ९, नव नव हेऊ य लोहपरिहीणा। दोमणदोवइरहिया, कम्मणओरालमीसजुया ॥८॥ एवं सत्त सजोगे ७, एए सव्वे न हुंतऽजोगंमि। चउदस गुणठाणेसुं, पणवन्नाइ वक्खायं ॥९॥" इति गाथार्थः ॥७७॥

इत्युक्ता बन्धहेतवः। अधुना येषां कर्मणामेते बन्धहेतवस्तेभ्यस्तेषां बन्धं दर्शयन् संख्याविशिष्टानि तान्याह—

(मल०) इह मिथ्यात्वाद्यवान्तरभेदानामनन्तरोक्तानां पञ्च द्वादशादीनामेकत्र मीलने सप्तपञ्चाशद्भवति। तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके आहारकतन्मिश्रवर्जाः शेषाः पञ्चपञ्चाशद्बन्धहेतवो भवन्ति। आहारकद्विकवर्जनं तु 'संयमवतां तदुदयो नान्यस्य' इतिवचनात्। तथा सासादनसम्यग्दृष्टौ पञ्चाशद्बन्धहेतवः, मिथ्यात्वपञ्चकस्येहासंभवेनोपनयनात्। तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टौ त्रिचत्वारिंशद्बन्धहेतवः, यतोऽत्र "न सम्ममिच्छो कुणइ कालं" इतिवचनात्, न परलोकगमनं तदभावाच्च न कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रसंभवः, अनन्तानुबन्ध्युदयस्य चात्र निषिद्धत्वादनन्तानुबन्धिचतुष्टयमपि न संभवति, अत एतेषु सप्तसु पूर्वोक्तायाः पञ्चाशतोऽपनीतेषु शेषास्त्रिचत्वारिंशदेव भवति। तथाऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके षट्चत्वारिंशद्बन्धहेतवः यतोऽत्र परलोकगमनसंभवात् पूर्वापनीतं कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रलक्षणं त्रिकं पूर्वोक्तायां त्रिचत्वारिंशति पुनः प्रक्षिप्यत इति। तथा देशविरतिगुणस्थानके एकोनचत्वारिंशद्बन्धहेतवः यस्मान्नात्राप्रत्याख्यानावरणकषायोदयः, न च त्रसासंयमः, नाप्येतद्गुणस्थानकमपान्तरालगतावपर्याप्तावस्थायां वा लभ्यते, ततोऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयकार्मणौदारिकमिश्रत्रसासंयमरूपेषु सप्तसु

[1] "मोत्तु तओ" इत्यपि।

(हारि०) व्याख्या-अस्याः केनाप्यभिप्रायेण सूत्रकारेण पदविवरणं न कृतम् तच्च यथावबोधमस्माभिः शास्त्रानुसारेण लिख्यते-तत्र सामान्येन पूर्वोक्ताः सप्तपञ्चाशदुत्तरभेदा बन्धहेतवो भवन्ति ५७। ततो । मिथ्यादृष्टेराहारकतन्मिश्रवर्जनात्पञ्चपञ्चाशदेव मन्तव्याः, तद्वर्जनं तु संयमवतस्तत्सद्भावादिति ५५ । तथा पूर्वोक्तायाः पञ्चपञ्चाशतो मिथ्यात्वपञ्चकेऽपनीते सासादनस्य पञ्चाशदुद्रष्टव्याः ५० । सम्यगमिथ्यादृष्टेस्तु परलोकगमनाभावात्कार्मणं औदारिकमिश्रं वैक्रियमिश्रं च न संभवति, अनन्तानुबन्ध्युदयस्य चास्य निषिद्धत्वात् ; अनन्तानुबन्धिचतुष्टयं च नास्ति अत एतेषु सप्तसु पूर्वोक्तायाः पञ्चाशतोऽपनीतेषु शेषास्त्रिचत्वारिंशदुत्तरभेदा भवन्ति ४३ । तथाऽविरतस्य परलोकगमनसंभवात् पूर्वापनीतकार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रत्रये पूर्वोक्तत्रिचत्वारिंशति पुनः-प्रक्षिप्ते षट्चत्वारिंशद्भेदा भवन्ति ४६ । तथा देशविरतस्याप्रत्याख्यानावरणोदयस्य निषिद्धत्वादप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं तथा विग्रहगतावपर्याप्तावस्थायां च देशविरतेरभावात् कार्मणौदारिकमिश्रद्वयं त्रससंयमानिवृत्तत्वात् त्रसासंयमश्च न संभवति, अत एतानि पूर्वोक्तायाः षट्चत्वारिंशतोऽपनीयन्ते, ततः शेषा एकोनचत्वारिंश [1]द्बन्धहेतवो भवन्ति । अत्राह, ननु देशविरतस्त्रसासंयमात्संकल्पजा[2]देव निवृत्तो न त्वारम्भजादेः, तत्कथं सर्वोऽप्येषोऽपनीयते ? सत्यम् , किन्तु, गृहिणामशक्यपरिहारत्वेन सन्नप्यारम्भजत्रसासंयमो न विवक्षित इत्यदोषः । एतच्च शतकबृहच्चूर्णिमनुश्रित्य लिखितमिति नात्र स्वमनीषिका भावनीयेति । तथा प्रमत्तस्य पूर्वापनीतत्रसासंयमव्यतिरिक्तानामेकादशाविरतीनामभावात् प्रत्याख्यानावरणानां चाभावादेव आहारक[3]द्विकसद्भावात् पूर्वोक्तायामेकोनचत्वारिंशति पञ्चदशकेऽपनीते द्विके च क्षिप्ते षड्विंशत्युत्तरभेदा भवन्ति २६ । तथाऽप्रमत्तस्य त्वनन्तरोक्तायाः षड्विंशतेर्लब्ध्यनुपजीवनेनाहारवैक्रियानारम्भकत्वाद्वैक्रियमिश्राहारकमिश्रद्वयेऽपनीते शेषाश्चतुर्विंशत्युत्तरभेदा भवन्ति २४ । तथाऽपूर्वकरणे त्वतिविशुद्धत्वाद्वैक्रियाहारकमपि न संभवत्येव, ततो वैक्रियाहारकद्विकेऽनन्तरोक्तायाश्चतुर्विंशतेर्मध्यादपनीते शेषा द्वाविंशतिर्भवति २२ । तथाऽनिवृत्तिबादरस्य तु हास्यादिषट्कस्यापूर्वकरण एव व्यवच्छिन्नत्वात् शेषाः संज्वलनाश्चत्वारः कषायाः, वेदत्रयम् , मनो ४ वचनौ ४ दारिकरूपा नव योगाः, एते षोडश भवन्ति १६ । यावदद्यापि वेदत्रयं संज्वलनत्रयं च नापगच्छति, तदपगमने तु यथासंभवो वाच्यः । तथा सूक्ष्मसंपरायस्य वेदत्रयक्रोधादित्रिकयोरनिवृत्तिबादर एव व्यवच्छिन्नत्वाच्छेषा नव योगाः संज्वलनलोभश्चेति दश भवन्ति १० ।

तथा त्रयाणामुपशान्तादीनां योगप्रत्यय एव बन्धः, ततश्चोपशान्तक्षीणमोहयोः प्रत्येकं नवधा भवति, अष्टौ मनोवाचः औदारिककाययोगश्चेति ९ । तथा सयोगिकेवलिनस्तु योगः सप्तधा

१-' दुत्तरभेदा लभ्यन्ते" इत्यपि ॥ २"०देरेवासौ" इत्यपि । ३ "मिश्रवैक्रियमिश्रसद्भावात्" इत्यपि ।

व्यापाराहृतकर्मवर्गणान्तःपाती विशिष्टपुद्गलसमूहः, ज्ञानं च दर्शनं च तयोरावरणे, तथा वेद्यते सातसातरूपेणेति वेदनीयम्, यद्यपि च सर्वं कर्म वेद्यते, तथाऽपीह पङ्कजादिशब्दवद्वेदनीयशब्दस्य रूढिविषयत्वात्सातासातरूपमेव कर्म वेदनीयं न शेषम्, ज्ञानदर्शनावरणे च वेदनीयं च तानि। मोहयतीति मोहनीयं, मिथ्यादर्शनादि। चः समुच्चये। आयात्यागच्छति प्रतिबन्धकर्ता स्वकृतकर्मावाप्तनरकादिकुगतेर्निष्क्रमितुमनसो जन्तोरित्यायुः। नामयति गत्यादिविविधभावानुभवनं प्रति जीवं प्रवणयतीतिनाम, गतिजात्यादि। गूयते शब्दयते उच्चावच्चैः शब्दैरात्मा यस्मात्तद्गोत्रम्। अन्तरा दातृप्रतिग्राहकयोरन्तर्विघ्नहेतुतयाऽयते गच्छतीत्यन्तरायं दानान्तरायादि ॥७८॥

तदेवं बन्धहेतुभ्यो यानि कर्माणि बध्यन्ते तान्युपदर्श्य, साम्प्रतमेतेष्वेव बन्धादिस्थानसंख्यामाह—

[1]सत्त [2]ट्ठछेग [3]बंधा, संतुदया [1]अट्ठ [2]सत्तचत्तारि।
[1]सत्त [2]ट्ठ [3]छपं [4]च [5]दुगं, उदीरणाठाणसंखेयं ॥७९॥

(हरि०) व्याख्या—सप्ताष्टषडेकविधबन्धभेदाच्चत्वारि बन्धस्थानानि ४। अष्टसप्तचतुर्विधसत्ताभेदात् त्रीणि सत्तास्थानानि ३। एवमुदयस्थानान्यपि त्रीणि ३ सप्ताष्टषट्पञ्चद्विविधोदीरणाभेदात्पञ्चसंख्योदीरणास्थानानि ५। इति गाथार्थः ॥७९॥

अथैतानि गुणस्थानकेषु योजयति—

(मल०) चत्वारि बन्धस्थानानि। तद्यथा—सप्ताष्टौ षडेकमिति। तत्र यदाऽऽयुर्न बध्यते तदा सप्त, शेषकालं त्वष्टौ। आयुर्मोहनीयबन्धव्यवच्छेदे षट्। ज्ञानदर्शनावरणान्तरायनामगोत्रबन्धस्य व्यवच्छेदे चैकमिति। त्रीणि सत्तास्थानानि। तद्यथा—अष्टौ सप्त चत्वारि। तत्राष्टौ प्रतीतानि। मोहनीयसत्ताक्षये सप्त। ज्ञानादर्शनावरणान्तरायसत्ताक्षयेऽपि चत्वारि। उदयस्थानान्यपि त्रीणि। तद्यथा—अष्टौ सप्त चत्वारि। तत्राष्टानामुदयः सर्वसंसारिणामुपशान्तमोहादौ। मोहनीयोदयव्यवच्छेदे सप्तानाम्। घातिकर्मक्षये तु चतुर्णामिति। उदीरणास्थानानि पञ्च। तद्यथा—सप्ताष्टौ षट् पञ्च द्वे इति। तत्रायुष उदीरणायामपगतायां सप्तानाम्। आयुरप्युदीरयतामष्टानाम्। वेदनीयायुषोरुदीरणायामपगतायां षण्णाम्। वेदनीयायुर्मोहनीयोदीरणायामपगतायां पञ्चानाम्। नामगोत्रे एव केवले उदीरयतो द्वयोरुदीरणेति। इयं बन्धादीनां स्थानसंख्या ॥७९॥

साम्प्रतं बन्धस्थानानि गुणस्थानकेषु योजयन्नाह—

अपमत्तंता सत्तट्ठ मीसअप्पुव्वबायरा सत्त।
बंधंति छ सुहुमो एगमुवरिमा बंधगोऽजोगी ॥८०॥

पूर्वोक्तायाः षट्चत्वारिंशतोऽपनीतेषु शेषा एकोनचत्वारिंशद्बन्धहेतवो भवन्ति । ननु देशविरतस्त्रसासंयमात्संकल्पजादेव निवृत्तो न त्वारम्भजात्, तत्कथमेषोऽत्रापनीयते ? इति, नैष दोषः, आरम्भेऽपि तस्य यतनया प्रवर्तमानत्वेन तन्निमित्तस्य त्रसासंयमस्य सतोपीहाविवक्षणात् । तथा प्रमत्तगुणस्थानके षड्विंशतिर्बन्धहेतवः, यत इहैकादशधाऽविरतिः प्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं च न संभवति, आहारकद्विकं च संभवति, ततः पूर्वोक्ताया एकोनचत्वारिंशतः पञ्चदशकेऽपनीते द्विके च तत्र प्रक्षिप्ते षड्विंशतिरेव भवति । तथाऽप्रमत्तस्य लब्ध्यनुपजीवनेनाहारकवैक्रियानारम्भादाहारकमिश्रवैक्रियमिश्रलक्षणे द्विके षड्विंशतेरप्यपनीते शेषाश्चतुर्विंशतिर्बन्धहेतवोऽप्रमत्तगुणस्थानके भवन्ति । अपूर्वकरणगुणस्थानके तु वैक्रियाहारके अपि न संभवतः, इत्यनन्तरोक्तायाश्चतुर्विंशतेर्वैक्रियाहारकरूपे द्विकेऽपनीते शेषा द्वाविंशतिर्बन्धहेतवः । तथा हास्यादिषट्कस्यापूर्वकरणगुणस्थानक एव व्यवच्छिन्नत्वादनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानके द्वाविंशतेः षट्केऽपनीते शेषाः षोडश बन्धहेतवो भवन्ति, ते च [3]वेदत्रय[4]संज्वलनचतुष्टयौ-[1]दारिककाययोग[4]चतुर्विधवाग्योग[4]चतुर्विधमनोयोगरूपा द्रष्टव्याः । तथा सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानके वेदत्रये क्रोधादित्रये चानिवृत्तिबादर एव व्यवच्छिन्नत्वात्षोडशकादपनीते शेषा दश बन्धहेतवो भवन्ति । उपशान्तमोहगुणस्थानके नव बन्धहेतवः, लोभस्य सूक्ष्मसंपराये व्यवच्छिन्नत्वात् अत एव क्षीणमोहगुणस्थानकेऽपि, सयोगिकेवलिगुणस्थानके सत्यासत्यामृषामनोयोगसत्यासत्यामृषावाग्योगकार्मणौदारिकतन्मिश्रलक्षणाः सप्त बन्धहेतवो भवन्ति । 'न उ अजोगिम्मि' इति अयोगिकेवलिगुणस्थानके तु न कश्चिद्बन्धहेतुः, योगस्यापि व्यवच्छिन्नत्वात् ॥७७॥

उक्ता बन्धहेतवः । साम्प्रतं येषां कर्मणामेते बन्धहेतवस्तेषामेतेभ्यो बन्धमुपदर्शयन्नाह—

तो [1]नाण[2]दंसणावरण[3]वेयणीयाणि [4]मोहणिज्जं च ।
[5]आउय[6]नामं [7]गोयं[8]तरायमिइ अट्ठ कम्माणि ॥७८॥

(हारि०) व्याख्या—'तो' इति तेभ्यो मिथ्यात्वादिभ्यः सकाशाज्ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयानीति द्वन्द्वः । तथा मोहनीयं च । आयुर्नामेति समाहारद्वन्द्वः । तथा गोत्रान्तरायमित्यत्रापि समाहारद्वन्द्वः । इत्येतान्यष्टौ कर्माणि बध्यन्त इति शेषः । इति गाथार्थः ॥७८॥

अधुनैषां बन्धादिस्थानसंख्यामाह—

(मल०) 'तो' इति तेभ्योऽनन्तरोक्तेभ्यो बन्धहेतुभ्यः 'इति' अमून्यष्टौ कर्माणि बध्यन्त इति शेषः । कानि ? इत्यत आह—'णाण' इत्यादि ज्ञायतेऽनेन ज्ञप्तिर्वा ज्ञानम्, सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मकोऽवबोधः, दृश्यतेऽनेन दृष्टिर्वा दर्शनम्, सामान्यावबोधात्मकं चक्षुर्दर्शनादि, आव्रियते=आच्छाद्यतेऽनेनेत्यावरणम्, मिथ्यात्वादिसचिवजीव-

मष्टौ। 'क्षीणे' क्षीणमोहगुणस्थानके सत्तायामुदये च सप्त कर्मप्रकृतयः, मोहनीयस्य क्षीणत्वात्। 'चत्तारि सेसेसु' इति प्राकृतत्वाद् द्वित्वेऽपि बहुवचनम्। शेषयोः सयोग्ययोगिकेवलिगुणस्थानकयोरुदये सत्तायां चतस्रोऽघातिकर्मप्रकृतयो भवन्ति, घातिकर्मचतुष्टयस्य क्षीणत्वात् ॥८१॥

उक्ता सत्तोदयस्थानकयोजना। साम्प्रतमुदीरणास्थानानि योजयन्नाह—

सत्तट्ठ पमत्तंता, [1]कम्मे उइरिंति अट्ठ मीसो उ।
वेयणियाउ विणा छ उ, अपमत्तअपुव्वअनियट्टी ॥८२॥

(हारि०) व्याख्या–सप्ताष्ट वा कर्माण्युदीरयन्तीति सण्टङ्कः। क एते? प्रमत्तान्ताः पञ्च मिश्रवर्जाः, तस्य पृथग्भणनात्। तदेवाह–'अट्ठ मीसो उ' इति अष्टावेव वचनव्यत्ययादुदीरयति मिश्रः, तुरेवकारार्थो योजित एव। तथा विभक्तिलोपाद्वेदनीयायुर्भ्यां विना षट् कर्माण्युदीरयन्ति। क एते? अप्रमत्तापूर्वानिवृत्तिबादरा इति द्वन्द्वः। इति गाथार्थः॥८२॥

तथा—

(मल०) मिथ्यादृष्टिप्रभृतयः प्रमत्तान्ता यावदद्याप्यनुभूयमानमवायुरावलिकावशेषं न भवति तावत्सर्वेऽप्यमी निरन्तरमष्टावपि कर्माण्युदीरयन्ति, आवलिकावशेषे पुनरनुभूयमानभवायुषि सप्तैव, आवलिकावशेषस्य कर्मण उदीरणाया अभावात्तथास्वाभाव्यात्। 'अट्ठ मीसो उ' इति मिश्रस्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टिः पुनरष्टावेव कर्माण्युदीरयति, न तु कदाचनापि सप्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके वर्तमानस्य सत आयुष आवलिकावशेषाभावात्। स हि अन्तर्मुहूर्तावशेषायुष्क एव तद्भावं परित्यज्य सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा नियमात्प्रतिपद्यत इति। तथाऽप्रमत्तापूर्वकरणानिवृत्तिबादरा वेदनीयायुषी वर्जयित्वा शेषाणि षट् कर्माण्युदीरयन्ति न तु वेदनीयायुषी, अतिविशुद्धतया तदुदीरणायोग्याध्यवसायस्थानाभावात् ॥८२॥

सुहुमो छ पंच [2]उइरेइ पंच [3]उवसंतु पंच दो खीणो।
जोगी उ नामगोए, अजोगि [4]अणुदीरगो भयवं ॥८३॥

(हारि०) व्याख्या–सूक्ष्मसंपरायः षट् पञ्च चोदीरयति। तथा पञ्चोपशान्तमोहः। तथा पञ्च द्वे वा क्षीणमोहः। तथा योगी सयोगिकेवली तुरेवकारार्थः, उत्तरत्र योक्ष्यते, नामगोत्रे एव। तथाऽयोगी अनुदीरको न किंचिदुदीरयति भगवान् पूज्य इति। सप्ताष्टषडादिपदभावना त्वेवं द्रष्टव्या–इह मिथ्यादृष्टेः प्रभृति यावत्प्रमत्तसंयतो यावदद्याप्यावलिकावशेषमात्मीया-

१ "कम्मउईरेंति" इत्यपि पाठः। २ "उईरेइ" इत्यपि पाठः। ३ "उवसंत" इत्यपि। ४ "अणुदीरगो भगवं" इत्यपि।

(हारि०) व्याख्या—'अप्रमत्तान्ताः' इत्युक्ते मिथ्यादृष्टिप्रभृतय इति लभ्यन्ते। तत एते षड् मिश्रवर्जास्तस्य पृथग्गणनात्सप्ताष्टौ वा बध्नन्तीति संबन्धः। तथा मिश्रापूर्वबादरास्त्रयोऽपि सप्त बध्नन्तीति। तथा षट् सूक्ष्मसंपराया बध्नन्ति। तथैकमुपरितना उपशान्तक्षीणमोहसयोगिकेवलिनः। तथा 'अबन्धगोऽजोगी' इति अयमर्थः—सप्तविधबन्धका आयुर्बन्धवर्जाः षड्विधबन्धका मोहायुर्बन्धवर्जिता एकविधबन्धकाः सातमेवैकं बध्नन्ति। इति गाथार्थः ॥८०॥

इति बन्धस्थानयोजना गुणस्थानकेषूक्ता ६। अथोदयसत्तास्थानद्वयं तेष्वेव निरूपयन्नाह—

(मल०) मिथ्यादृष्टिप्रभृतयोऽप्रमत्तान्ताः सप्ताष्टौ वा कर्माणि बध्नन्ति, आयुर्बन्धकालेऽष्टौ, शेषकालं तु सप्तैव। 'मीसअपुव्वबायरा' इति मिश्रापूर्वकरणानिवृत्तिबादराः सप्तैव बध्नन्ति, तेषामायुर्बन्धाभावात्। तत्र मिश्रस्य तथास्वाभाव्यात्, इतरयोस्त्वतिविशुद्धत्वात्, आयुर्बन्धस्य च घोलनापरिणामनिमित्तत्वात्। 'छ सुहुमो' इति सूक्ष्मसंपरायो मोहनीयायुर्वर्जानि षट् कर्माणि बध्नाति, मोहनीयबन्धस्य बादरकषायोदयनिमित्तत्वात्, तस्य च तदभावादायुर्बन्धाभावस्त्वतिविशुद्धत्वादवसेयः। 'एगमुवरिमा' इति एकं सातवेदनीयलक्षणं कर्मोपरितना उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिनो बध्नन्ति न शेषाणि, तद्बन्धहेत्वभावात्। 'अबन्धगोऽजोगी' इति अयोगी=अयोगिकेवली योगस्यापि बन्धहेतोरभावादबन्धकः ॥८०॥

उक्ता गुणस्थानकेषु बन्धस्थानयोजना। साम्प्रतमेतेषूदयसत्तास्थानयोजनां निरूपयन्नाह—

जा सुहुमो ता अट्ठवि, उदए संते य होंति पयडीओ।
सत्तट्ठुवसंते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसु ॥८१॥

(हारि०) व्याख्या—मिथ्यादृष्टेरारभ्य यावत्सूक्ष्मसंपरायस्तावदष्टावपि, किम्? 'उदए संते य' इति उदये सत्तायां च 'भवन्ति' जायन्ते प्रकृतयः कर्मणामिति शेषः। तथा सप्ताष्टौ चोपशान्ते, सप्त उदयेऽष्टौ सत्तायामित्यर्थः। तथा 'क्षीणे' क्षीणमोहे मोहवर्जा उदये सत्तायां च सप्तेति। तथा चत्वार्यघातिकर्माणीति शेषः। शेषयोः सयोग्ययोगिकेवलिगुणस्थानकयोरुदये सत्तायां च भवन्तीति सर्वत्र योज्यम्। इति गाथार्थः ॥८१॥

इत्युदयसत्तास्थानानि निरूपितानि गुणस्थानकेषु। ८१। साम्प्रतमुदीरणास्थानानि तेष्वेव योजयन्नाह—

(मल०) मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकमारभ्य यावत्सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानं तावदष्टावपि कर्मप्रकृतय उदये सत्तायां च प्राप्यन्ते। उपशान्तमोहगुणस्थानके उदये सप्त कर्मप्रकृतयः, सत्ताया-

मष्टौ । **'क्षीणे'** क्षीणमोहगुणस्थानके सत्तायामुदये च सप्त कर्मप्रकृतयः, मोहनीयस्य क्षीणत्वात् । **'चत्तारि सेसेसु'** इति प्राकृतत्वाद् द्वित्वेऽपि बहुवचनम् । शेषयोः सयोग्ययोगिकेवलिगुणस्थानकयोरुदये सत्तायां चतस्रोऽघातिकर्मप्रकृतयो भवन्ति, घातिकर्मचतुष्टयस्य क्षीणत्वात् ॥८१॥

उक्ता सत्तोदयस्थानकयोजना । साम्प्रतमुदीरणास्थानानि योजयन्नाह—

सत्तट्ठ पमत्तंता, [1]कम्मे उइरिंति अट्ठ मीसो उ ।
वेयणियाउ विणा छ उ, अपमत्तअपुव्वअनियट्टी ॥८२॥

(हारि०) व्याख्या—सप्ताष्ट वा कर्माण्युदीरयन्तीति सण्टङ्कः । क एते ? प्रमत्तान्ताः पञ्च मिश्रवर्जाः, तस्य पृथग्भणनात् । तदेवाह—**'अट्ठ मीसो उ'** इति अष्टावेव वचनव्यत्ययादुदीरयति मिश्रः, तुरेवकारार्थो योजित एव । तथा त्रिभक्तिलोपाद्वेदनीयायुर्भ्यां विना षट् कर्माण्युदीरयन्ति । क एते ? अप्रमत्तापूर्वानिवृत्तिबादरा इति द्वन्द्वः । इति गाथार्थः ॥८२॥

तथा—

(मल०) मिथ्यादृष्टिप्रभृतयः प्रमत्तान्ता यावदद्याप्यनुभूयमानभवायुरावलिकावशेषं न भवति तावत्सर्वेऽप्यमी निरन्तरमष्टावपि कर्माण्युदीरयन्ति, आवलिकावशेषे पुनरनुभूयमानभवायुषि सप्तैव, आवलिकावशेषस्य कर्मण उदीरणाया अभावात्तथास्वाभाव्यात् । **'अट्ठ मीसो उ'** इति मिश्रस्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टिः पुनरष्टावेव कर्माण्युदीरयति, न तु कदाचनापि सप्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके वर्तमानस्य सत आयुष आवलिकावशेषाभावात् । स हि अन्तर्मुहूर्तावशेषायुष्क एव तद्भावं परित्यज्य सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा नियमात्प्रतिपद्यत इति । तथाऽप्रमत्तापूर्वकरणानिवृत्तिबादरा वेदनीयायुषी वर्जयित्वा शेषाणि षट् कर्माण्युदीरयन्ति न तु वेदनीयायुषी, अतिविशुद्धतया तदुदीरणायोग्याध्यवसायस्थानाभावात् ॥८२॥

सुहुमो छ पंच [2]उइरेइ पंच [3]उवसंतु पंच दो खीणो ।
जोगी उ नामगोए, अजोगि [4]अणुदीरगो भयवं ॥८३॥

(हारि०) व्याख्या—सूक्ष्मसंपरायः षट् पञ्च वोदीरयति । तथा पञ्चोपशान्तमोहः । तथा पञ्च द्वे वा क्षीणमोहः । तथा योगी सयोगिकेवली तुरेवकारार्थः, उत्तरत्र योक्ष्यते, नामगोत्रे एव । तथाऽयोगी अनुदीरको न किंचिदुदीरयति भगवान् पूज्य इति । सप्ताष्टपदादिपदभावना त्वेवं द्रष्टव्या—इह मिथ्यादृष्टेः प्रभृति यावत्प्रमत्तसंयतो यावदद्याप्यावलिकावशेषमात्मीया-

१ "कम्मउईरेंति" इत्यपि पाठः । २ "उईरेइ" इत्यपि पाठः । ३ "उवसंत" इत्यपि । ४ - अणुदीरणा भगवं" इत्यपि ।

त्मीयमायुर्न भवति तावत्सर्वेऽप्यमी निरन्तरमष्टावपि प्रकृतीरुदीरयन्ति, तदुदीरणायोग्याध्यवसायस्य सर्वेष्वपि भावात् । अद्धावलिकावशेषे आयुषि सप्तैव प्रकृतीरुदीरयन्ति न त्वायुष्कम् । सम्यग्मिथ्यादृष्टिस्तु अष्टावेवोदीरयति न तु कदाचनापि सप्तेति, सम्यग्मिथ्यादृष्टेरायुष आवलिकावशेषताया अभावात्, सह्यायुष्कान्तर्मुहूर्तावशेष एव तद्भावं परित्यज्य सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा नियमात्प्रतिपद्यत इति । अप्रमत्तादयस्त्रयः षट् कर्माण्युदीरयन्ति, अतिविशुद्धत्वेन वेदनीयायुरुदीरणायोग्याध्यवसायाभावात् । सूक्ष्मसंपरायस्तु षड्विधोदीरकस्तावद् यावन्मोहनीयमावलिकावशेषं न भवति, तदवशेषे तु तस्मिन् पञ्चविधोदीरक एवेति । उपशान्तमोहस्तु पूर्वोक्तपञ्चविधोदीरक इति । क्षीणमोहस्तु ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायेष्वावलिकावशेषे तु द्विविधोदीरकः, पूर्वं तु पञ्चविधोदीरक इति । सयोगिकेवली पुनर्द्विविधोदीरक एव, यतो वेद्यमानमेव कर्मोदीर्यते । तत्र घातिचतुष्टयस्य क्षीणत्वाद्वेदनमेव नास्ति, कुतस्तदुदीरणम्? वेदनीयायुषोस्तूदीरणा प्रागेवोपरतेति । अयोगिकेवली तु न किंचिदुदीरयति, उदीरणस्य योगसव्यपेक्षत्वात्, तस्य च तदभावात् । इति गाथार्थः ॥८३॥

इत्युक्तोदीरणा । अथाल्पबहुत्वमाह—

(मल०) सूक्ष्मः=सूक्ष्मसंपरायः षट् पञ्च वा कर्माण्युदीरयति । तत्र षडनन्तरोक्तानि तानि च तावदुदीरयति यावन्मोहनीयमावलिकावशेषं न भवति, आवलिकावशेषे च मोहनीये तस्याप्युदीरणाया अभावात् शेषाणि पञ्च कर्माण्युदीरयति । **'पंच उवसंतु'** इति उपशान्त=उपशान्तमोहः पञ्चकर्माण्युदीरयति न वेदनीयायुर्मोहनीयानि । तत्र वेदनीयायुषोः कारणं प्रागेवोक्तम् । मोहनीयं तदुदयाभावान्नोदीर्यते **'वेद्यमानमेवोदीर्यते'** इतिवचनात् । **'पंच दो खीणे'** इति क्षीणः=क्षीणमोहोऽनन्तरोक्तानि पञ्च कर्माण्युदीरयति, तानि च तावदुदीरयति यावज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणि आवलिकाप्रविष्टानि न भवन्ति, आवलिकामात्रप्रविष्टेषु तु तेषु तेषामप्युदीरणाया अभावाद् द्वे एव नामगोत्रलक्षणे कर्मणी उदीरयति । **'जोगी उ नामगोए'** इति योगी तु=सयोगिकेवली पुनर्नामगोत्रे उदीरयति, न शेषाणि, घातिकर्मचतुष्टयं हि निर्मूलत एव क्षीणमिति न तस्योदीरणासंभवः, वेदनीयायुषोस्तूदीरणा पूर्वोक्तकारणादेव न भवतीति । **'अजोगि अणुदीरगो भयवं'** इति अयोगिकेवली भगवान् अनुदीरको=न किंचिदपि कर्मोदीरयति, योगसव्यपेक्षत्वादुदीरणायाः, तस्य च योगाभावात् ॥८३॥

इत्युक्ता गुणस्थानकेषूदीरणास्थानयोजना । साम्प्रतमेतेष्वेव वर्तमानानां जन्तूनामल्पबहुत्वमाह—

उवसंतजिणा थोवा, संखेज्जगुणा उ खीणमोहजिणा ।
सुहुमनियट्टिनियट्टी, तिन्नि वि तुल्ला विसेसहिया ॥८४॥
जोगिअपमत्तइयरे, संखगुणा देससासणा मिस्सा ।
अविरयअजोगिमिच्छा, असंख चउरो दुवेऽणंता ॥८५॥

(हारि०) व्याख्या–उपशान्तजिनाः स्तोकाः, यतस्ते प्रतिपद्यमानकाश्चतुष्पञ्चाशत्प्रमाणा एव प्राप्यन्ते, तेभ्यः संख्येयगुणाः क्षीणमोहजिनाः, यतस्तेऽष्टोत्तरशतसंख्या एकसमये प्रतिपद्यमाना लभ्यन्ते । एते द्वयेऽपि यदोत्कृष्टपदे लभ्यन्ते तदा ज्ञेयाः, कदाचिद्विपर्ययेणापि स्युः क्षीणमोहाः स्तोका उपशान्तमोहास्तु बहव इति । ततो विशेषाधिकाः, क एते ? सूक्ष्मसंपरायानिवृत्तिनिवृत्तिबादरास्त्रयोऽपि स्वस्थाने तुल्याः, तुल्यत्वादेतद्गुणस्थानकत्रयस्यारम्भकाणामिति ॥८४॥ इतो द्वितीयगाथा व्याख्यायते– तेभ्यो योग्यप्रमत्तेतरे इति द्वन्द्वः । इतरः=प्रमत्तो गृह्यते, संख्यातगुणाः, यतः सयोगिकेवलिनां कोटीपृथक्त्वं प्राप्यते । अप्रमत्तप्रमत्तगुणस्थानकवर्ती तु कोटीसहस्रपृथक्त्वं सामायिके कोटीशतपृथक्त्वं छेदोपस्थापनीये परमप्रमत्तान्तर्मुहूर्तं लघु प्रमत्तान्तर्मुहूर्तं बृहत्प्रमाणम्, इत्यतो यथोक्तं संख्यातगुणत्वं लभ्यते । ततो देशविरतसासादनमिश्राऽविरतायोगिमिथ्यादृष्टयः क्रमेणासंख्याश्चत्वारो द्वयेऽनन्ताः । भावना त्वेवम्–प्रमत्तयतिभ्योऽसंख्यातत्वाद्देशविरतितिर्यग्मनुष्याणाम् । सासादनास्तु कदाचित्सर्वथैव न भवन्ति, यदा तु भवन्ति तदा जघन्यपदे एको वा द्वौ वा यावदुत्कृष्टतो गतिचतुष्टयसंभवित्वाद्देशविरतेभ्योऽसंख्येयगुणा भवन्ति । मिश्रा यदा भवन्ति तदोत्कृष्टतः सासादनेभ्योऽसंख्यातगुणाः, उत्कृष्टतोऽपि षडावलिकाप्रमाणत्वात्सासादनाद्धायाः, मिश्राद्धायास्त्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वादिति । मिश्रेभ्योऽसंख्येयगुणा अविरतसम्यग्दृष्टयः, चतुर्गतिषु सर्वकालभावित्वात्तेषामिति । तेभ्योऽनन्तगुणा अयोगिनः, अयोगिग्रहणेन चात्र सिद्धा अपि गृहीताः, यतोऽयोगिनो भवस्थाभवस्थभेदेन द्विविधा भवन्ति । तेभ्योऽनन्तगुणा मिथ्यादृष्टयः, पृथिव्यादिसाधारणमिथ्यादृष्टीनामनन्तत्वात् । इति गाथार्थः ॥८५॥

इत्युक्तमल्पबहुत्वम्, तद्भणनाच्चोक्तं यथाप्रतिज्ञातं समस्तमभिधेयजातम् । साम्प्रतं प्रकरणस्यादेयताख्यापनार्थं प्रकरणकारो गुणनिष्पन्नं स्वनाम सूचयन्नुपदेशमाह—

(मल०) उपशान्तजिना=उपशान्तवीतरागाः स्तोकाः, यतस्ते प्रतिपद्यमानका उत्कर्षतोऽपि चतुष्पञ्चाशत्प्रमाणा एव प्राप्यन्त इति । तेभ्यः सकाशात्पुनः क्षीणमोहजिनाः संख्येयगुणाः, यतस्ते प्रतिपद्यमानका एकस्मिन् समयेऽष्टोत्तरशतप्रमाणा अपि लभ्यन्ते । एतच्चैवमाचार्येणाभिहितमुत्कृष्टपदापेक्षया, अन्यथा कदाचिद्विपर्ययोऽपि द्रष्टव्यः । स्तोकाः क्षीणमोहाः, बहवस्तु

तेभ्य उपशान्तमोहा इति । तथा तेभ्यः क्षीणमोहेभ्यः सकाशात्सूक्ष्मानिवृत्तिनिवृत्तयः सूक्ष्मसंपरायानिवृत्तिबादरापूर्वकरणा विशेषाधिकाः । स्वस्थाने पुनरेते चिन्त्यमानास्त्रयोऽपि तुल्या इति ॥८४॥ 'इयर' इति अप्रमत्तप्रतियोगिनः प्रमत्ताः तेभ्यः सूक्ष्मादिभ्यः सकाशाद्योगिनः सयोगिकेवलिनः सङ्ख्यातगुणाः, तेषां कोटीपृथक्त्वेन लभ्यमानत्वात् । तेभ्योऽप्रमत्ताः संख्येयगुणाः कोटीसहस्रपृथक्त्वेन प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्योऽपि संख्येयगुणाः प्रमत्ताः । प्रमादभावो हि बहूनां बहुकालं च लभ्यते, विपर्ययेण त्वप्रमाद इति न यथोक्तसंख्याव्याघातः । 'देस' इत्यादि, देशविरतसासादनमिश्राविरतिलक्षणाश्चत्वारो यथोत्तरमसंख्येयगुणाः । अयोगिमिथ्यादृष्टिलक्षणौ च द्वौ यथोत्तरमनन्तगुणौ । तत्र प्रमत्तेभ्यो देशविरता असंख्येयगुणाः, तिरश्चामसंख्यातानां देशविरतिभावात् । सासादनास्तु कदाचित्सर्वथैव न भवन्ति, यदा तु भवन्ति तदा जघन्येनैको द्वौ वा, उत्कर्षतस्तु देशविरतेभ्योऽप्यसंख्येयगुणाः । तेभ्योऽपि मिश्रा असंख्येयगुणाः, सासादनाद्धाया उत्कर्षतोऽपि षडावलिकामात्रतया स्तोकत्वात्, मिश्राद्धायास्त्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणतया प्रभूतत्वात् । तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणा अविरतसम्यग्दृष्टयः, तेषां गतिचतुष्टयेऽपि प्रभूततया सर्वकालं संभवात् । तेभ्योऽप्ययोगिनो भवस्थाभवस्थभेदभिन्ना अनन्तगुणाः, सिद्धानामनन्तत्वात् । तेभ्योऽप्यनन्तगुणा मिथ्यादृष्टयः साधारणवनस्पतीनां सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणत्वात्, तेषां च मिथ्यादृष्टित्वादिति ॥८५॥

तदेवमभिहितं गुणस्थानकवर्तिनां जीवानामल्पबहुत्वम्, तदभिधानाच्च यत् 'वोच्छामि जीवमग्गण' इत्यादि प्राक् प्रतिज्ञातं तदपि समर्थितम् । साम्प्रतं जिनवचनानुसारिप्रकरणमिदमित्येतत्प्रकरणश्रवणादिक्रियासु वर्तमानानां जीवानामेकान्तेन हितसंप्राप्तिमुत्प्रेक्षमाण आचार्यो निजान्वर्थनामोत्कीर्तनपूर्वकं जिनशासनगौरवख्यापनपूर्वकं च परेषामुपदेशमाह—

जिणवयणमहोवणीयं, जिणवयणामयसमुद्दबिंदुमिमं ।
हियकंखिणो बुहजणा, निसुणंतु गुणंतु जाणंतु ॥८६॥

॥ इति षडशीत्यपरपर्यायागमिकवस्तुविचारसारप्रकरणम् ॥

(हारि०) व्याख्या–जिनो वल्लभो यस्य स तथा तेनोपनीतस्तम्, इत्यनेन प्रकरणादेयतामाह। भवति हि यथोक्तान्वर्थनाम्ना पुरुषविशेषेणोपनीते वस्तुनि बुधजनानामादेयताबुद्धिः, एतदेव च प्रस्तुतप्रकरणकर्तुरभिधानम्। जिना=रागादिवैरिवारजेतारः, तेषां वचनं=मागमः, तदेवामृतं=त्रिदशाहारः, तस्य समुद्रः=सिन्धुः, तस्य बिन्दुरिवबिन्दुस्तम्, इमं प्रस्तुतप्रकरणरूपं 'हितकाङ्क्षिणः' मोक्षाभिलाषिणो 'बुधजनाः' पण्डितलोकाः 'निश्शृण्वन्तु' आकर्णयन्तु 'गुणयन्तु' परावर्तयन्तु 'जानन्तु' बुध्यताम्। इति गाथार्थः ॥८६॥

॥ अथ प्रशस्तिः ॥

* प्रायोऽन्यशास्त्रदृष्टः, सर्वोऽप्यर्थो मयाऽत्र संचरितः ।
न पुनः स्वमनीषिकया, तथापि यत्किंचिदिह वितथम् ॥१॥

* सूत्रमतिलङ्घ्य लिखितं, तच्छोध्यं मय्यनुग्रहं कृत्वा ।
परकीयदोषगुणयोस्त्यागोपादानविधिकुशलैः ॥२॥

* छद्मस्थस्य हि बुद्धिः, स्खलति न कस्येह कर्मवशगस्य ।
सद्बुद्धिविरहितानां, विशेषतो मद्विधासुमताम् ॥३॥

* कृत्वा यद्वृत्तिमिमां, पुण्यं समुपार्जितं मया तेन ।
मुक्तिमचिरेण लभतां, क्षपितरजाः सर्वभव्यजनः ॥४॥

× मध्यस्थभावादचलप्रतिष्ठः, सुवर्णरूपः सुमनोनिवासः ।
अस्मिन्महामेरुरिवास्ति लोके, श्रीमान् बृहद्गच्छ इति प्रसिद्धः ॥५॥

× तस्मिन्नभूदायतबाहुशाखः कल्पद्रुमाभः प्रभुमानदेवः ।
यदीयवाचो विबुधैः सुबोधाः, कर्णेकृता नूतनमञ्जरीवत् ॥६॥

× तस्मादुपाध्याय इहाजनिष्ट, श्रीमान्मनस्वी जिनदेवनामा ।
गुरुक्रमाराधयितान्पबुद्धिस्तस्यास्ति शिष्यो हरिभद्रसूरिः ॥७॥

* अणहिल्लपाटकपुरे, श्रीमज्जयसिंहदेवनृपराज्ये ।
आशापूरवसत्यां, वृत्तिस्तेनेयमारचिता ॥८॥

* एकैकाक्षरगणनादरया वृत्तेरनुष्टुभां मानम् ।
अष्टौ शतानि जातं, पञ्चाशत्समधिकानीति ८५० ॥९॥

* वर्षशतैकादशके, द्वासप्तत्याधिके ११७२ नभोमासे ।
सितपञ्चम्यां सूर्ये, समर्थिता वृत्तिकेयमिति ॥१०॥

॥ इत्यागमिकवस्तुविचारसारप्रकरणवृत्तिः, श्रीमद्धरिभद्रसूरिनिर्मिता समाप्ता ॥

* आर्या । × उपज.तिः ।

(मल०) सुगमम् ॥८६॥

॥ अथ प्रशस्तिः ॥

यद्गदितमल्पमतिना, जिनवचनविरुद्धमर्थतत्त्वेषु ।
विद्वद्भिस्तत्त्वज्ञैः, प्रसादमाधाय तच्छोध्यम् ॥१॥ [आर्या]
बह्वर्थमल्पशब्दं, प्रकरणमेतद्विवृण्वता कुशलम् ।
यदवापि मलयगिरिणा, सिद्धिं तेनाश्नुतां लोकः ॥२॥ [,,]

॥ इति श्रीमन्मलयगिरिसूरिविरचिता षडशीतिप्रकरणवृत्तिः समाप्ता ॥


॥ समाप्तोऽयं टीकाद्वयोपेतः षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ॥

इति

श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीते

श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे

प्रथमा श्रीहरिभद्रसूरिकृता द्वितीया श्रीमलयगिरिसूरिकृता च टीका समाप्ता

(मल०) सुगमम् ॥८६॥

॥ अथ प्रशस्तिः ॥

यद्गदितमल्पमतिना, जिनवचनविरुद्धमर्थतत्त्वेषु ।
विद्वद्भिस्तत्त्वज्ञैः, प्रसादमाधाय तच्छोध्यम् ॥१॥ [आर्या]
यद्वर्यमल्पशब्दं, प्रकरणमेतद्विवृण्वता कुशलम् ।
यदवापि मलयगिरिणा, सिद्धिं तेनाश्नुतां लोकः ॥२॥ [,,]

॥ इति श्रीमन्मलयगिरिसूरिविरचिता षडशीतिप्रकरणवृत्तिः समाप्ता ॥

॥ समाप्तोऽयं टीकाद्वयोपेतः षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ॥

इति

श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीते

श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे

प्रथमा श्रीहरिभद्रसूरिकृता द्वितीया श्रीमलयगिरिसूरिकृता च टीका समाप्ता

अथ

श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीते

श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे

तृतीया श्रीयशोभद्रसूरिकृता टीका प्रारभ्यते

॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथायनमः ॥

न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीतः

षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ।

(अपरनाम—आगमिकवस्तुविचारसारप्रकरणम्)

श्रीमद् यशोभद्रसूरीश्वरप्रणीतटीकया समलङ्कृतः ॥



श्री नमः सर्वज्ञाय

आगमिकवस्तुगोचरविचारसारप्रकरणपदजातं
किञ्चित्किञ्चिद्विवृणोमि नतहितां भारतीं स्मृत्वा ॥ १ ॥

क्वासौ श्रीजिनवल्लभस्य रचना *सूक्ष्मार्थचर्चाऽर्चिता,
क्वेयं मे मतिरग्रिमा प्रणयिनी मुग्धत्वपृथ्वीभुजः ।
पङ्गोस्तुङ्गनगाधिरोहणसुहृद्यत्नोऽयमार्यास्ततो,
ऽसद्ध्यानव्यसनार्णवे निपततः स्वान्तस्य पोतोऽर्पितः ॥ २ ॥

निच्छिन्नमोहपासं पमरियविमलोरुकेवलपयासं ।
पणयजणपूरियासं पयओ पणमित्तु जिणपासं ॥ १ ॥

(यशो०) "निच्छिन्नमोहपास"मित्यादि, विशेषणविभूषितात्मानं जिनपार्श्वं प्रणम्य जीवमार्गणागुणस्थानादि 'वक्ष्य' इत्युत्तरगाथया संबन्धः । तत्र "निच्छिन्ने"ति अविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनामपि सूक्ष्मसंपरायान्तानां किंचित् किंचिद् मोहच्छेदोऽस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं निशब्दोपादानं नितरामतिशयेन छिन्नः=खंडितो मोह एव सर्वोपद्रवव्यस्थानगमनविचारकत्वात्पाशोऽनेन स तथा, एवंरूपश्च क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थावस्थावलम्ब्यपि भगवान् स्यादत आह—प्रसृतो=ऽसर्वगतात्मनि व्यवस्थित एव विस्तृतः=प्रचुरभावमापन्नः समस्ततदावरणविरयाद्विमलः सकललोकालोकव्यापकत्वादुरू=महान् केवलस्य=केवलज्ञानस्य प्रकाशः=प्रकाशनशक्ति=

* "सूक्ष्मार्थचर्चा-ऽञ्चिता" इति वा ।

विषयपरिच्छेदसामर्थ्यं यस्य प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशः। इह यद्यपि मोह इव ज्ञानावरण-दर्शनावरणान्तरायेष्वपि छिन्नेष्वेव केवलप्रसरस्तथापि मोहच्छेदस्य प्रधानतया मोहच्छेदहेतुकः केवलप्रकाशः प्रतिपादितः। अनेन विशेषणद्वयेनापायापगम-ज्ञानातिशयावभिहितौ ताभ्यां च तीर्थकरस्तुतेः प्रस्तुतत्वात्तीर्थङ्करनामकर्मोदयाविनाभाविनौ पूजा-वचनातिशयावाक्षिप्तौ। इत्थं वानि-ष्टविघातेष्टप्राप्तिशरीरा स्वार्थसंपत्तिः प्रकाशिता। प्रणतजनस्य पूरिताः सकलसत्त्वसाधारणेन वचसा स्वर्गापवर्गमार्गप्रकाशनादाशा=वाञ्छा येनेत्यनेन च परार्थसंपत्तिः। प्रयत आदरपरः। एवं च सम्पूर्णस्वार्थपरार्थसंपदो भगवतः "**प्रणम्ये**" ति प्रकर्षप्राप्तनमस्कारस्वरूपमनुपधि धर्मोत्पा-दनद्वारा विघ्नजनका-ऽधर्म्मप्रतिबन्धान्निखिलविघ्नविघातनिघ्नं तत्त्वतो मङ्गलमाविष्कृतमिति। अर्हतां तुल्यगुणत्वेऽपि पार्श्वजिनस्य यदत्रोपादानं तत्तच्छासनाधिष्ठायकसाहायकेन प्रकरणस्य प्रणीतत्वात् ॥ १ ॥

वोच्छामि जीवमग्गणगुणठाणुवओगजोगलेसाई।
किंचि सुगुरूवएसा सन्नाणसुझाणहेउत्ति ॥ २ ॥

(यशो०) जीवाश्च मार्ग्गणगुणाश्च, तेषां स्थानानि, तानि चोपयोगाश्चेत्यादि द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। आदिशब्दात्कर्मबन्धोदयोदीरणासत्तास्थानाल्पबहुत्वबन्धहेतुपरिग्रहः। किंचिदिति सिद्धान्तसिन्धोरुद्धृत्य बिन्दुमात्रम्। वक्ष्ये=ऽभिधास्ये। किमिति? सज्ज्ञानस्य सुध्यानस्य च हेतुः= कारणमिति कृत्वा। "**सुगुरूवएसे**" ति शोभनस्य=समयानुसारिसम्यग्ज्ञानानुष्ठानसारस्य गुरो-रुपदेशेन, अनेन कश्चिदप्राप्तप्रवराम्नाय इदं प्रणीतवानिति शंकानिराशः। एवं च जीवस्थानाद्य-भिधेयं निखिलजगदुपादेयताकुलगृहम्। गुरुपर्वक्रमलक्षणः संबन्धः। जीवादिवस्तुविषय-प्रकरणकरणद्वारेणातिदृढिमोपारूढबोधरूपं सत्=शोभनं ज्ञानम्, धर्मध्यानाधिरोहणार्थं श्रुत-धर्मानुगतानि वाचनाप्रच्छनापरावर्त्तनानुप्रेक्षारूपाण्यालम्बनान्येव शोभनं रूपध्यानं च कर्त्तुरनंतरप्रयोजने एतत्प्रकरणश्रवणप्रसादसमासादितजीवस्थानादिव्युत्पत्तिस्वरूपं ज्ञानमुप-वर्णितचरं सुध्यानं च श्रोतुरनंतरप्रयोजने प्रतिपादितानि। परंपरप्रयोजनं तु कर्तृश्रोत्रोः "ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिद"मिति वचनात्परमपदरूपमाक्षिप्तं द्रष्टव्यम्। इह यद्यपि जीवस्थानाद्यभिधेयं सामान्यत उक्तम्, तथापि जीवस्थानेषु गुणस्थानयोगोपयोगलेश्याबन्धोदयोदीरणासत्ताख्या-न्यष्टौ, मार्गणास्थानेषु जीवस्थानगुणस्थानयोगोपयोगलेश्याल्पबहुत्वाभिधानानि षट्, गुण-स्थानेषु जीवस्थानयोगोपयोगलेश्याबन्धहेतुबन्धोदयोदीरणासत्तास्थानाल्पबहुत्वाख्यानि च दशाभिधेयानि "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्ति" रितिन्यायादवगन्तव्यानि जीवस्थानगुणस्था-नादीनाम्, तुशब्दार्थो यथावसरमुपवर्णयिष्यते। अत्र च प्रकरणकृत् 'प्रणम्ये'ति क्त्वाप्रत्ययेन पूर्वकालभाविना 'वक्ष्य' इत्युत्तरकालभाविक्रियासव्यपेक्षेण प्रणमनक्रियामभिदधता कथञ्चि-

नित्यानित्यपक्षं समर्थयते स्म । एकान्तनित्यानित्यपक्षे हि क्त्वाप्रत्ययानुपपत्तिः । एकान्तनित्यतायां कर्तुः प्रणमनक्रियास्वभावात्, जीवस्थानादिकर्मकवचनक्रियाया अभावात्, एकान्ताऽनित्यतायां चान्यः प्रणमनक्रियायाः कर्त्ताऽपरो वचनक्रियायाः कर्त्तेति विभिन्नकर्तृकत्वात् प्रत्ययानुपपत्तिः ॥ २ ॥

तत्र जीवस्थानानां संख्यावच्छिन्नं स्वरूपं निरूपयन्नाह—

इह सुहुमबायरेगिंदिबितिचउअसन्निसन्निपंचेंदी ।
अपजत्तापज्जत्ता कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥ ३ ॥

(यशो०) इह=जगति प्रवचने वा सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनो, बादरनामकर्मोदयाद्बादरा लोकदेशवर्त्तिन एकेन्द्रियाः । सूचकत्वात्सूत्रस्य द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः । "असन्निसन्न"ति, संज्ञा=विज्ञानं सा हेतुवाददीर्घकालदृष्टिवादभेदात् त्रिधा । तत्र हेतोर्वादस्तेन संज्ञा । द्वित्रिचतुरिन्द्रियाऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां मन्तव्या । ते हि हेतुवादेन एवं वक्तुं शक्यन्त एव, संज्ञिन एते, आतपादिभ्यश्छायाद्याश्रयणादाहारादिनिमित्तचेष्टान्वितत्वाच्च । एतदपेक्षया पृथिव्यादयोऽसंज्ञिनः, या तु सिद्धान्ते पृथिव्यादीनामपि आहारादिभेदाद्दशविधा संज्ञा प्रतिपादिता सा तेषामतिशयेनाव्यक्तेति न विवक्षिता १ । दीर्घकालिकी संज्ञा साभिधीयते यस्यां सत्यां कालत्रयेऽपि इदमकार्षमिदं करोमि इदं करिष्यामीति विमृश्यते । एतदपेक्षया मनोलब्ध्या वन्ध्याः सर्वेऽप्यसंज्ञिनः । एषा च न हेतुवादेन प्रतीयते, बालानामपि सुप्रतीतत्वात् २ । दृष्टिः=सम्यग्दर्शनं तस्य वदनं*(वादः) तेन संज्ञा सम्यक्त्वविमलीकृतज्ञानरूपा । एतदपेक्षया संज्ञिपञ्चेन्द्रिया अपि मिथ्यादृशोऽसंज्ञिन उच्यन्ते । समये तु यत्र क्वचित्संज्ञ्यसंज्ञिव्यवहारः, स समस्तोऽपि दीर्घकालिकसंज्ञाभावाभावावलम्ब्येत्यत्रापि दीर्घकालिकसंज्ञावन्तः संज्ञिनस्तद्विपरीतास्त्वसंज्ञिनः, पञ्चेन्द्रियाः । "अपज्जत्तापज्जत्ते" ति पर्याप्तापर्याप्तव्यवहारस्य पर्याप्तिपरिज्ञानपुरस्सरत्वादादौ पर्याप्तेः संक्षेपतः स्वरूपं सोपयोगित्वाद् भेदकालस्वामिनश्चोच्यन्ते । तत्र पर्याप्तिः=आहारप्रवृत्तियोग्यपुद्गलदलिकोपादनपरिणामनकारणं जीवस्य पुद्गलोपचयः शक्तिविशेष इति स्वरूपम् । यया बाह्यमाहारमाहृत्य खलरसरूपतया परिणामयति जन्तुः सा शक्तिराहारपर्याप्तिः । यया रसीभूतमाहारं रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्ररूपसप्तधातुमयौदारिकशरीररूपतया वैक्रियाहारकयोर्योग्यानि च द्रव्याण्यादाय वैक्रियाहारकरूपतया च परिणतिं नयति, सा शरीरपर्याप्तिः । इयं च न शरीरनामकर्मण्यन्तर्भवति, साध्यभेदात् । शरीरनाम्नो हि कर्मणो जीवेन गृहीतानां पुद्गलानामौदारिकादिदेहत्वेन परिणतिः साध्या, शरीरपर्याप्तेस्त्वारब्धशरीरस्य परिसमाप्तिरिति । ययेन्द्रिययोग्यधातुभूतमाहारमिन्द्रियतया परिणाममुपनयति, सेन्द्रियपर्याप्तिः । ययोच्छ्वासयोग्यं वर्गणाद्रव्यं स्वीकृत्योच्छ्वासतया परि-

* ( ) एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः प्रक्षिप्तो द्रष्टव्यः । एवमग्रेऽपि ।

विषयपरिछेदसामर्थ्यं यस्य प्रसृतविमलोरुकेवलप्रकाशः । इह यद्यपि मोह इव ज्ञानावरण-दर्शनावरणान्तरायेष्वपि छिन्नेष्वेव केवलप्रसरस्तथापि मोहछेदस्य प्रधानतया मोहछेदहेतुकः केवलप्रकाशः प्रतिपादितः । अनेन विशेषणद्वयेनापायापगम-ज्ञानातिशयावभिहितौ ताभ्यां च तीर्थकरस्तुतेः प्रस्तुतत्वात्तीर्थकरनामकर्मोदयाविनाभाविनौ पूजा-वचनातिशयावाक्षिप्तौ । इत्थं वानि-ष्टविघातेष्टप्राप्तिशरीरा स्वार्थसंपत्तिः प्रकाशिता । प्रणतजनस्य पूरिताः सकलसत्त्वसाधारणेन वचसा स्वर्गापवर्गमार्गप्रकाशनादाशा=वाञ्छा येनेत्यनेन च परार्थसंपत्तिः । प्रयत आदरपरः । एवं च सम्पूर्णस्वार्थपरार्थसंपदो भगवतः "प्रणम्ये" ति प्रकर्षप्राप्तनमस्कारस्वरूपमनुपधि धर्मोत्पा-दनद्वारा विघ्नजनका-ऽधर्म्मप्रतिबन्धान्निखिलविघ्नविघातनिघ्नं तत्त्वतो मङ्गलमाविष्कृतमिति । अर्हतां तुल्यगुणत्वेऽपि पार्श्वजिनस्य यदत्रोपादानं तत्तच्छासनाधिष्ठायकसाहायकेन प्रकरणस्य प्रणीतत्वात् ।। १ ।।

वोच्छामि जीवमग्गणगुणठाणुवओगजोगलेसाई ।
किंचि सुगुरूवएसा सन्नाणसुझाणहेउत्ति ॥ २ ॥

(यशो०) जीवाश्च मार्ग्गणगुणाश्च, तेषां स्थानानि, तानि चोपयोगाश्चेत्यादि द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः । आदिशब्दात्कर्मबन्धोदयोदीरणासत्तास्थानाल्पबहुत्वबन्धहेतुपरिग्रहः । किंचिदिति सिद्धान्तसिन्धोरुद्धृत्य विन्दुमात्रम् । वक्ष्ये=ऽभिधास्ये । किमिति ? सज्ज्ञानस्य सुध्यानस्य च हेतुः= कारणमिति कृत्वा । "सुगुरूवएसे" ति शोभनस्य=समयानुसारिसम्यग्ज्ञानानुष्ठानसारस्य गुरो-रुपदेशेन, अनेन कश्चिदप्राप्तप्रवराम्नाय इदं प्रणीतवानिति शंकानिराशः । एवं च जीवस्थानाद्य-भिधेयं निखिलजगदुपादेयताकुलगृहम् । गुरुपर्वक्रमलक्षणः संबन्धः । जीवादिवस्तुविषय-प्रकरणकरणद्वारेणातिदृढिमोपारूढबोधरूपं सत्=शोभनं ज्ञानम्, धर्मध्यानाधिरोहणार्थं श्रुत-धर्मानुगतानि वाचनाप्रच्छनापरावर्त्तनानुप्रेक्षारूपाण्यालम्बनान्येव शोभनं रूपध्यानं च कर्त्तुरनंतरप्रयोजने एतत्प्रकरणश्रवणप्रसादसमासादितजीवस्थानादिव्युत्पत्तिस्वरूपं ज्ञानमुप-वर्णितचरं सुध्यानं च श्रोतुरनंतरप्रयोजने प्रतिपादितानि । परंपरप्रयोजनं तु कर्तृश्रोत्रोः "ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिद"मिति वचनात्परमपदरूपमाक्षिप्तं द्रष्टव्यम् । इह यद्यपि जीवस्थानाद्यभिधेयं सामान्यत उक्तम्, तथापि जीवस्थानेषु गुणस्थानयोगोपयोगलेश्याबन्धोदयोदीरणासत्ताख्या-न्यष्टौ, मार्गणास्थानेषु जीवस्थानगुणस्थानयोगोपयोगलेश्याल्पबहुत्वाभिधानानि षट्, गुण-स्थानेषु जीवस्थानयोगोपयोगलेश्याबन्धहेतुबन्धोदयोदीरणासत्तास्थानाल्पबहुत्वाख्यानि च दशाभिधेयानि "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्ति" रितिन्यायादवगन्तव्यानि जीवस्थानगुणस्था-नादीनाम्, तुशब्दार्थो यथावसरमुपवर्णयिष्यते । अत्र च प्रकरणकृत् 'प्रणम्ये'ति क्त्वाप्रत्ययेन पूर्वकालभाविना 'वक्ष्य' इत्युत्तरकालभाविक्रियासव्यपेक्षेण प्रणमनक्रियामभिदधता कथञ्चि-

नित्यानित्यपक्षं समर्थयते स्म । एकान्तनित्यानित्यपक्षे हि क्त्वाप्रत्ययानुपपत्तिः । एकान्तनित्यतायां कर्तुः प्रणमनक्रियास्वभावात्, जीवस्थानादिकर्मकवचनक्रियाया अभावाद्, एकान्ताऽनित्यतायां चान्यः प्रणमनक्रियायाः कर्त्ताऽपरो वचनक्रियायाः कर्तेति विभिन्नकर्तृकत्वात् प्रत्ययानुपपत्तिः ॥ २ ॥

तत्र जीवस्थानानां संख्यावच्छिन्नं स्वरूपं निरूपयन्नाह—

इह सुहुमबायरेगिंदिबितिचउअसन्निसन्निपंचेंदी ।
अपजत्तापज्जत्ता कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥ ३ ॥

(यशो०) इह=जगति प्रवचने वा सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनो, बादरनामकर्मोदयाद्बादरा लोकदेशवर्त्तिन एकेन्द्रियाः । सूचकत्वात्सूत्रस्य द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः । "असन्निसन्न"ति, संज्ञा=विज्ञानं सा हेतुवाददीर्घकालदृष्टिवादभेदात् त्रिधा । तत्र हेतोर्वादस्तेन संज्ञा । द्वित्रिचतुरिन्द्रियाऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां मन्तव्या । ते हि हेतुवादेन एवं वक्तुं शक्यन्त एव, संज्ञिन एते, आतपादिभ्यश्छायाद्याश्रयणादाहारादिनिमित्तचेष्टान्वितत्वाच्च । एतदपेक्षया पृथिव्यादयोऽसंज्ञिनः, या तु सिद्धान्ते पृथिव्यादीनामपि आहारादिभेदाद्दशविधा संज्ञा प्रतिपादिता सा तेषामतिशयेनाव्यक्तेति न विवक्षिता १ । दीर्घकालिकी संज्ञा साभिधीयते यस्यां सत्यां कालत्रये-ऽपि इदमकार्यमिदं करोमि इदं करिष्यामीति विमृश्यते । एतदपेक्षया मनोलब्ध्या वन्ध्याः सर्वेऽप्यसंज्ञिनः । एषा च न हेतुवादेन प्रतीयते, बालानामपि सुप्रतीतत्वात् २ । दृष्टिः=सम्यग्दर्शनं तस्य वदनं *(वादः) तेन संज्ञा सम्यक्त्वविमलीकृतज्ञानरूपा । एतदपेक्षया संज्ञिपञ्चेन्द्रिया अपि मिथ्यादृशोऽसंज्ञिन उच्यन्ते । समये तु यत्र क्वचित्संज्ञ्यसंज्ञिव्यवहारः, स समस्तोऽपि दीर्घकालिकसंज्ञाभावाभावावलम्ब्येत्यत्रापि दीर्घकालिकसंज्ञावन्तः संज्ञिनस्तद्विपरीतास्त्वसंज्ञिनः, पञ्चेन्द्रियाः । "अपज्जत्तापज्जत्ते" ति पर्याप्तापर्याप्तव्यवहारस्य पर्याप्तिपरिज्ञानपुरस्सरत्वादादौ पर्याप्तेः संक्षेपतः स्वरूपं सोपयोगित्वाद् भेदकालस्वामिनश्चोच्यन्ते । तत्र पर्याप्ति=आहारप्रवृत्तियोग्यपुद्गलदलिकोपादनपरिणामनकारणं जीवस्य पुद्गलोपचयः शक्तिविशेष इति स्वरूपम् । यया बाह्यमाहारमाहृत्य खलरसरूपतया परिणामयति जन्तुः सा शक्तिराहारपर्याप्तिः । यया रसीभूतमाहारं रसासृग्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्ररूपसप्तधातुमयौदारिकशरीररूपतया वैक्रियाहारकयोर्योग्यानि च द्रव्यान्यादाय वैक्रियाहारकरूपतया च परिणतिं नयति, सा शरीरपर्याप्तिः। इयं च न शरीरनामकर्मपर्यन्तभवति, साध्यभेदात् । शरीरनाम्नो हि कर्मणो जीवेन गृहीतानां पुद्गलानामौदारिकादिदेहत्वेन परिणतिः साध्या, शरीरपर्याप्तेस्त्वारब्धशरीरस्य परिसमाप्तिरिति । ययेन्द्रिययोग्यधातुभूतमाहारमिन्द्रियतया परिणाममुपनयति, सेन्द्रियपर्याप्तिः । ययोच्छ्वासयोग्यं वर्गणाद्रव्यं स्वीकृत्योच्छ्वासतया परि-

* ( ) एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः प्रक्षिप्तो द्रष्टव्यः । एवमग्रे ऽपि ।

गुणस्थानान्यादिः=प्रथमं यस्य योगादिस्थानसप्तकस्य तत्तथा, तावच्छब्दः क्रमार्थः। ततो जीवस्थानेषु गुणस्थानानि ततो योगास्तत उपयोगा इत्यादि। 'बायरे' ति सूचकत्वात्सूत्रस्य बादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रिया इति दृश्यम्। तच्च समाहारद्वन्द्वाश्रयणाल्लुप्तसप्तम्येकवचनान्तम्। एवमन्यत्रापि। एकादश समुदायव्यपदेशविभक्तिलोपावभ्यूह्यौ। ततश्च बादरादिष्वसंज्ञिपर्यवसानेष्वपर्याप्तेषु पञ्चसु 'पढमगुणे' त्ति प्रथमे मिथ्यात्वसास्वादनरूपे गुणस्थाने भवतः। तत्र प्रथमगुणस्थानमेतेषु प्रतीतम्, द्वितीयं तु करणापर्याप्तबादरैकेन्द्रियादिषु बद्धायुषः संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्यन्ते औपशमिकसम्यक्त्वमवाप्य तदेव वमतो मिथ्यात्वं चाऽप्राप्नुवतस्तेष्वेवोत्पद्यमानस्य जघन्यतः समयमुत्कृष्टः षडावलिका भवतीति कार्मग्रन्थिकमतम्। यत्तु 'उभया(य)भावो पुढवाइएसु" इति वचनात्तु सम्यक्त्वश्रुतादिसामायिकानामुभयस्य पूर्वप्रतिपन्नप्रतिपद्यमानरूपस्यैकेन्द्रियेष्वन्तर्भाव इति सिद्धान्तमतम्। तदिह नाश्रितमिति 'नेगिंदिसु सासाणोत्ति' ति स्वयमेव वक्ष्यति। 'सन्निअपज्जत्ते' त्ति अत्र मिथ्यादृष्टिसास्वादने पूर्ववत्, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानसद्भावस्तु कस्यचिदप्रतिपतितसम्यक्त्वस्य करणापर्याप्तसंज्ञिषूत्पद्यमानस्य। 'सव्वे सन्नि' त्ति सर्वाणि चतुर्दशाऽपि संज्ञिनि पर्याप्ते प्राप्यन्ते, नानाजीवानपेक्ष्य सयोगिनि च संज्ञीति व्यवहारो द्रव्यमनोऽपेक्षया, अयोगिनि तु भूतपूर्वमनो-ऽपेक्षया। 'सेसे' स्विति उक्तातिरिक्तेषु सप्तसु पर्याप्तापर्याप्ते सूक्ष्मैकेन्द्रिये बादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु तु पर्याप्तेष्वित्यर्थ ॥४-५॥

अथैतेष्वेव जीवस्थानेषु [प्र]योगान्योजयन्नाह—

जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो।
वेउव्वियमीसजुया सन्निअपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

(यशो०) षट्सु अपर्याप्तेषु (अ)पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियवर्जेषु योगौ कार्मणौदारिकमिश्रौ। तत्रैतेषामृजुगतिविग्रहग[तिउ](त्यु)त्पत्तिप्रथमसमयवर्तिनां कार्मणकाययोगः। उत्पत्तिप्रथमसमयादपरसमयगतानां पर्याप्तिरसमर्थयमानानामौदारिकं मिश्रं कार्मणेन यत्र तत्तथा, तद्भवति। तावेव पूर्वोक्तौ वैक्रियं मिश्रं कार्मणेन यत्र तत्तथा, तेन युतौ सहिताविति त्रयो योगाः संज्ञिन्यपर्याप्ते भवन्ति। तत्र वैक्रियमिश्रयोगोऽस्य देवनारकेषूत्पद्यमानस्य बोद्धव्यः ॥६॥

अथाद्यार्द्धेन मतान्तरमाह—

बिंति अपज्जत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं।

(यशो.)इह सूत्रकृदङ्गस्य द्वितीयश्रुतस्कन्धे आहारपरिज्ञाख्यतृतीयाध्ययने'ओयाहारा जीवा सव्वे अपज्जत्तगो'ति निर्युक्तिगाथायां १८ प्रकारस्तु इन्द्रियादिभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तकः केवा-

णमय्यालम्ब्य च मुञ्चति, सोच्छ्‌वासपर्याप्तिः। इयमुच्छ्‌वासनाम्नो भिन्ना, यत उच्छ्‌वासनामोदयेन जनितामपि सतीमुच्छ्‌वासनलब्धिमुच्छ्‌वासलब्ध्या जन्तुर्व्यापारयितुं समर्थः, नान्यथा। यया भाषा प्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यं गृहीत्वा भाषारूपत्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति, सा भाषापर्याप्तिः। यया मनःप्रायोग्यं वर्गणाद्रव्यमुपादाय मनस्त्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति, सा मनःपर्याप्तिरिति षट्। प्रज्ञापना-व्याख्याप्रज्ञप्त्यादौ त्वन्त्यपर्याप्त्योर्बहुश्रुतिगम्यमुविविक्षयैकत्वविवक्षया पञ्चेति भेदाः। "वेउव्वाहाराणं सरीरअज्जाउपणइगिगसमया। पिहु पण अउमुहुत्ता उरले आहारइगसमये" त्ति-वचनात्, वैक्रियस्याहारकस्य च शरीरपर्याप्तिरान्तर्मौहूर्तिकी, शेषास्तु सामायिकाः। औदारिकस्याहारपर्याप्तिः सामायिका, शेषाः पुनरान्तर्मौहूर्तिक्य इति कालः। प्रज्ञापनायां त्वाहारादि-पर्याप्तीनां युगपदारब्धानां मध्ये आहारपर्याप्तेः समयः, शेषाणां प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तम्। सामान्येन निष्पत्तिकाल उक्तः। तत्राद्यानां च तिसृणामेकेन्द्रिया भाषापर्याप्तिसहितानां [कैव](विक)लेन्द्रिया भाषापर्याप्तिसमन्वितानां पञ्चेन्द्रिया इति स्वामिनः। एताश्च पर्याप्तयो विद्यन्ते येषां ते मत्वर्थीयात्प्रत्यये पर्याप्ताः तद्विपरीता अपर्याप्ताः। ते च, ये भवान्तरालवर्त्तिनो विवक्षितभवे च प्रथमोत्पन्नास्त एव वाच्याः, न पुनर्भवारम्भभाविपर्याप्तिसमाप्त्या पर्याप्त्या विशिष्टतीर्थगादयो वैक्रियाद्यारम्भादिकालवर्त्तिनः, सत्यामपि वैक्रियाद्यपेक्षया पर्याप्त्यसमाप्तौ तेषामपर्याप्तत्वेन सैद्धान्तिकैरपरिभाषितत्वात्। ततश्च सूक्ष्मबादरैकेन्द्रिया द्वीन्द्रियादयः संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्ताः प्रत्येकमपर्याप्तपर्याप्तभेदभाजः क्रमेणेति। सूक्ष्मत्वस्य सर्वप्राणिनां मूलस्थानत्वेन प्रथमं सूक्ष्मास्ततो यथोत्तरं प्रवर्द्धमानकर्म्मक्षयोपशमपात्रत्वेन बादराद्याः संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्ता निर्देश्याः, त एव चापर्याप्तत्वपूर्वकत्वाद्विवक्षितभवे पर्याप्तत्वस्य पर्याप्तेभ्यःप्रथममपर्याप्ता इत्यनेनैव क्रमेण। "जियट्ठाणे"ति प्राकृतत्वात्पुंसा निर्देशः। एवमन्यत्रापि लिङ्गव्यत्ययादि तत्र तत्र द्रष्टव्यम्। जीवन्ति जीविष्यन्ति जीवितवन्त इति जीवास्तिष्ठन्ति जीवास्तत्कर्मपारतन्त्र्यादेष्विति स्थानानि= स्वरूपभेदाः, जीवानां स्थानानि मन्तव्यानीति शेषः। अत्र सामर्थ्यादेव चतुर्दशत्वे लब्धे चतुर्दशेति न्यूनाधिकसंख्याव्यवच्छेदार्थमिति ॥३॥

संप्रति जीवस्थानेषु गुणस्थानानि संबन्धपुरस्सरं गाथायुगेनाह—

सव्वभणियव्वमूलेसु तेसु गुणठाणगाइ ता भणिमो।
पढमगुणा दो बायरबितिचउरअसन्निअपजत्ते ॥ ४ ॥
सन्निअपज्जत्ते मिच्छदिट्ठिसासाणअविरया तिन्नि।
सव्वे सन्निपजत्ते मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि ॥ ५ ॥

(यशो०) इह प्रकरणे सर्वेषां भणनार्हाणां गुणस्थानादीनामाद्येषु "तेस्वि"ति तेषु जीवस्थानेषु

गुणस्थानान्यादिः=प्रथमं यस्य योगादिस्थानसप्तकस्य तत्तथा, तावच्छब्दः क्रमार्थः । ततो जीवस्थानेषु गुणस्थानानि ततो योगास्तत उपयोगा इत्यादि । 'बायरे' ति सूचकत्वात्सूत्रस्य बादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रिया इति दृश्यम् । तच्च समाहारद्वन्द्वाश्रयणाल्लुप्तसप्तम्येकवचनान्तम् । एवमन्यत्रापि । एकादश समुदायव्यपदेशविभक्तिलोपावभ्यूह्यौ । ततश्च बादरादिष्वसंज्ञिपर्यवसानेष्वपर्याप्तेषु पञ्चसु 'पढमगुणे' त्ति प्रथमे मिथ्यात्वसास्वादनरूपे गुणस्थाने भवतः । तत्र प्रथमगुणस्थानमेतेषु प्रतीतम् . द्वितीयं तु करणापर्याप्तबादरैकेन्द्रियादिषु बद्धायुषः संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्यन्त औपशमिकसम्यक्त्वमवाप्य तदेव वमतो मिथ्यात्वं चाऽप्राप्नुवतस्तेष्वेवोत्पद्यमानस्य जघन्यतः समयमुत्कृष्टः षडावलिका भवतीति कार्मग्रन्थिकमतम् । यत्तु 'उभवा (या)भावो पुढवाइएसु" इति वचनात्तु सम्यक्त्वश्रुतादिसामायिकानामुभयस्य पूर्वप्रतिपन्नप्रतिपद्यमानरूपस्यैकेन्द्रियेष्वन्तर्भाव इति सिद्धान्तमतम् । तदिह नाश्रितमिति 'नेगिंदिसु सासाणोत्ति' ति स्वयमेव वक्ष्यति । 'सन्निअपज्जत्ते' त्ति अत्र मिथ्यादृष्टिसास्वादने पूर्ववत् , अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानसद्भावस्तु कस्यचिदप्रतिपतितसम्यक्त्वस्य करणापर्याप्तसंज्ञिषूत्पद्यमानस्य । 'सव्वे सन्नि'त्ति सर्वाणि चतुर्दशाऽपि संज्ञिनि पर्याप्ते प्राप्यन्ते, नानाजीवानपेक्ष्य सयोगिनि च संज्ञीति व्यवहारो द्रव्यमनोऽपेक्षया, अयोगिनि तु भूतपूर्वमनो-ऽपेक्षया । 'सेसे'स्विति उक्तातिरिक्तेषु सप्तसु पर्याप्तापर्याप्ते सूक्ष्मैकेन्द्रिये बादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु तु पर्याप्तेष्वित्यर्थ ॥४-५॥

अथैतेष्वेव जीवस्थानेषु [प्र]योगान्योजयन्नाह—

जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो ।
वेउव्वियमीसजुया सन्निअपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

(यशो०) षट्सु अपर्याप्तेषु (अ)पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियवर्जेषु योगौ कार्मणौदारिकमिश्रौ । तत्रैतेषामृजुगतिविग्रहग[तिउ](त्यु)त्पत्तिप्रथमसमयवर्तिनां कार्मणकाययोगः । उत्पत्तिप्रथमसमयादपरसमयगतानां पर्याप्तीरसमर्थयमानानामौदारिकं मिश्रं कार्मणेन यत्र तत्तथा, तद्भवति । तावेव पूर्वोक्तौ वैक्रियं मिश्रं कार्मणेन यत्र तत्तथा, तेन युतौ सहिताविति त्रयो योगाः संज्ञिन्यपर्याप्ते भवन्ति । तत्र वैक्रियमिश्रयोगोऽस्य देवनारकेषूत्पद्यमानस्य बोद्धव्यः ॥६॥

अथाद्यार्द्धेन मतान्तरमाह—

बिंति अपज्जत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।

(यशो.)इह सूत्रकृदङ्गस्य द्वितीयश्रुतस्कन्धे आहारपरिज्ञाख्यतृतीयाध्ययने'ओयाहारा जीव सव्वे अपज्जत्तगे'ति निर्युक्तिगाथायां १८ सकास्तु इन्द्रियादिभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तकाः केषा-

श्चिन्मतेन शरीरपर्याप्त्या वा पर्याप्तका गृह्यन्त" इति विवृत्तिः। ततः शरीरपर्याप्त्यापि पर्याप्ताः पर्याप्ता उच्यन्ते । तेनेन्द्रियादिपर्याप्तीरपेक्ष्याऽपर्याप्तानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिककाययोगं केचिदाचक्षते । तथा चाऽऽचाराङ्गस्य लोकविषयाख्यद्वितीयाध्ययनप्रथमोद्देशके पञ्चदशभेदमनोवाक्कायलक्षणप्रयोगकर्मविचारे "औदारिककाययोगास्तिर्यग्मनुष्योः शरीरपर्याप्ते-रूर्द्ध्व" मिति विवरणम् । नत्वेवं सुरनारकाणां वैक्रियकाययोगः कथं नेष्यते ? । पर्याप्ता हि द्विधा, लब्धितः करणतश्च । ततस्तत्र [कृताः?]लब्ध्यपर्याप्तानामौदारिकः काययोगो विवक्षितः, लब्ध्यपर्याप्तास्तु देवनारका न भवन्तीति तेषां वैक्रिययोगाऽप्रसङ्गः । करणापर्याप्तानां सुरनार-काणां वैक्रियकाययोगो नरतिरश्चां च औदारिककाययोगो न विवक्षित इति । "बिंति अपज्जत्ताण वि" इत्यौदारिकस्यैवोक्तेरेवानुमीयते । अथवा वैक्रियशरीरिणः शरीरपर्याप्तिरान्त-र्मौहूर्तिकी, शेषाः पञ्च सामायिक्य इति । संज्ञिनोऽपर्याप्तकस्य स्वल्पकालत्वेन वैक्रियं न विवक्षित-मिति । लब्धितः करणतश्च पर्याप्तापर्याप्तयोरयं विशेषः—यः स्वपर्याप्तीरसमाप्य म्रियते स लब्ध्य-पर्याप्तः । स च 'आइतिए न त्थ मपज्जत्तो' इति वचनादाद्यं पर्याप्तित्रिकं समाप्यैव म्रियेत इति दृश्यम् । यस्मादागामिभवायुष्कं बद्ध्वैव म्रियते । तच्च समापिताद्यपर्याप्तित्रिकेणैव बध्यते, यत औदारिकवैक्रियाहारककाययोगे विशिष्टे परभवायुर्बन्धः । तद्विशिष्टता च न शरीर-पर्याप्त्यैव किन्तु शरीरेन्द्रियपर्याप्तिभ्यां पर्याप्तस्य, अन्यथैकेन्द्रियादिव्यपदेशस्याप्यसम्भवप्रसङ्गः । तद्विपरीतो लब्धिपर्याप्तः । यः पुनरुच्छ्वासादिकाः स्वस्वविषयेषु परिणमनं प्रतिसाधकतमत्वेन करणापरपर्यायाः पर्याप्तीर्नाद्यापि पूरयति परं पूरयिष्यति स करणापर्याप्तः । यः पूरितनिजपर्याप्तिः स करणपर्याप्तः । तत्र सुरनारकासंख्यातवर्षायुर्नरतिर्यगुत्तमपुरुषचरिमशरीरिणो लब्धितः पर्याप्ता एव भवन्ति, निरुपक्रमायुष्कत्वेनापर्याप्तदशायां मरणाभावात् । निरुपक्रमसोपक्रमायुष्कता चैवम्—यदा जन्तुः स्वायुषस्त्रिभागे त्रिभागत्रिभागे वा जघन्यत एकेन द्वाभ्यां च, उत्कृष्टतः सप्तभिरष्टाभिर्वाकर्षैरायुःकर्माणुग्रहणरूपैरन्तर्मुहूर्तप्रमाणेन कालेन जीवप्रदेशरचनानाडिकान्त-र्वर्तिनं आयुःकर्म्मवर्गणापुद्गलान्विशिष्टवीर्येण करोति, तदा निरुपक्रमायुर्भवति । अन्यदा तु सोपक्रमायुष्क इत्या-ऽऽचारटीका । आयुषि सप्तभिरष्टाभिर्वाकर्षैर्गवामिव मरुषु जगलं दूषग्रहण-रूपैर्यत्पुद्गलोपादानं तदतिदृढमित्यपवर्त्तयितुमशक्यतया निरुपक्रममुच्यते । यत्तु षड्भिः पञ्चभि-श्चतुर्भिर्वा आगृहीतं दलिकं तदपवर्त्तनाकरणेनोपक्रम्यत इति सोपक्रममिति बृहदुत्तराध्ययनटी-केति । करणतस्त्वमी उभयथापि स्युः ।

अत्र संग्रहगाथाः—

"सो लद्धिअपज्जत्तो जो मरइ अपूरिउं अपज्जत्तो, लद्धिपजत्तो सो पुण जो मरई ताउ पूरित्ता ॥ १ ॥
नज्ञवि पूरेइ परं पूरिस्सइ स इह करणअपजत्तो । सो पुग करणपजत्तो जेणं ता पूरिया हुन्ति ॥ २ ॥
नेरइयसुरासंखाउतिरियनरचरिमतणुपवरपुरिसा । लद्धिपजत्ता नियमा करणेणं हुन्ति दुविहा वि ॥३॥"

इत्यलम् ।

बायरपज्जत्ते तिन्नि उरलवेउव्वियदुगं च ॥ ७॥

(यशो०) बादरपर्याप्तैकेन्द्रियस्य पृथिव्यादेरौदारिककाययोगः । वैक्रियो वैक्रियमिश्रश्च बादरपर्याप्तवायुकायिकं प्रतीत्य । तथाहि—अस्य वैक्रियलब्धिमतो वैक्रियः, वैक्रियारम्भत्यागकालयोरौदारिकेण मिश्रो वैक्रियो वैक्रियमिश्रः, स च योगः प्राप्यते । अत्रौदारिकवैक्रिययोर्मिश्रतायां समायामपि प्रारम्भकाले प्रारभ्यमाणत्वेन त्यागकाले च बहुव्यापारत्वेन वैक्रियस्य प्राधान्याद्वैक्रियमिश्र इति व्यपदेशो, न त्वौदारिकमिश्र इति । 'विउव्वगाहारगे उरलमिस्स' मिति वक्ष्यमाणोक्तेः । अन्ये तु वायोर्वैक्रियारम्भकाले वैक्रियेण मिश्र औदारिकमिश्र इति व्यपदिशन्ति । बहुव्यापारत्वेनौदारिकस्य प्राधान्यविवक्षया ॥७॥

अथाद्यार्द्धेन योगान्समर्थयन् जीवस्थानेष्वेवोपयोगानाह—

उरलं सुहुमे चउसु य भासजुयं पनरसा वि सन्निंमि ।
उवओगा दससु तओ अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥८॥

(यशो०) पज्जत्त' इति प्रागुक्तानुवृत्त्या सूक्ष्मे पर्याप्ते औदारिकः, चतुर्षु च द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु पर्याप्तेषु भाषयाऽसत्यामृषारूपया युक्त औदारिकः, चः पुनरर्थत्वात् संज्ञिनि पर्याप्ते पुनः पञ्चदश चतुर्विधमनश्चतुर्विधवाक्सप्तविधकायरूपा योगाः । तत्र वैक्रियमिश्रो गर्भजतिर्यग्मनुष्ययोर्लब्धिमतो वैक्रियस्याऽऽरम्भकाले त्यागकाले च । लब्धिपर्याप्तस्य च पर्याप्तग्रहणेन ग्रहणादुत्पद्यमानयोरपर्याप्तयोर्देवनारकयोरपि वैक्रियस्यारम्भकाले पर्याप्तयोस्तूभयोरुत्तरवैक्रियारम्भकाले च वैक्रियमिश्रः । आहारकमिश्रस्तु लब्धिमतां संयतानामाहारकस्यारम्भकाले त्यागकाले च मन्तव्यः । अन्ये तु तिर्यग्मनुष्ययोर्वैक्रियस्यारम्भकाले, संयतानामाऽऽहारकस्यारम्भकाले । केचित्तु तयोः त्यागकाले औदारिकमिश्रमिति मन्यन्ते । औदारिकमिश्रस्तु केवलिसमुद्घाते सप्तमषष्ठ-द्वितीयसमयेषु । कार्मणयोगः पुनस्तत्रैव चतुर्थ-पञ्चमतृतीयसमयेषु द्रष्टव्यः । शेषयोगास्तु सुज्ञाना एव । 'तओ' इति त्रय उपयोगा दशसु पर्याप्तापर्याप्तेषु सूक्ष्मबादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियेषु अपर्याप्तयोस्तु चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रिययोः त्रय इति व्याचष्टे । 'अचक्खुदंसणमनाणदुग' मिति अचक्षुषा=चक्षुर्वर्जेन्द्रियैर्दर्शनं=सामान्यांशग्राही बोधोऽचक्षुर्दर्शनं पर्याप्तेषु इन्द्रियानाश्रितसामान्योपयोगमात्ररूपं चापर्याप्तेषु । अज्ञानद्विकं=मत्यज्ञानश्रुताज्ञानरूपम् । तत्रास्य द्विकस्य द्वीन्द्रियादिषु सद्भावः सूपपादः । एकेन्द्रियेषु स्पर्शनावरणक्षयोपशमसमुत्थाया मतेर्भाषाश्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यभावेपि भावेन्द्रियप्रसूतस्यानभिव्यक्तशब्दार्थोल्लेखोपप्लावितोपलब्धिरूपस्य

ब्धिन्मतेन शरीरपर्याप्त्या वा पर्याप्तका गृह्यन्त" इति विवृत्तिः। ततः शरीरपर्याप्त्यापि पर्याप्ताः पर्याप्ता उच्यन्ते । तेनेन्द्रियादिपर्याप्तीरपेक्ष्याऽपर्याप्तानां शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानामौदारिककाययोगं केचिदाचक्षते । तथा चाऽऽचाराङ्गस्य लोकविषयाध्ययद्वितीयाध्ययनप्रथमोद्देशके पञ्चदशभेदमनोवाक्कायलक्षणप्रयोगकर्मविचारे "औदारिककाययोगास्तिर्यग्मनुष्योः शरीरपर्याप्तेरूर्द्ध्व" मिति विवरणम्। नन्वेवं सुरनारकाणां वैक्रियकाययोगः कथं नेष्यते ? । पर्याप्ता हि द्विधा, लब्धितः करणतश्च । ततस्तत्र [कृताः?]लब्ध्यपर्याप्तानामौदारिकः काययोगो विवक्षितः, लब्ध्यपर्याप्तास्तु देवनारका न भवन्तीति तेषां वैक्रिययोगाऽप्रसङ्गः । करणापर्याप्तानां सुरनारकाणां वैक्रियकाययोगो नरतिरश्चां च औदारिककाययोगो न विवक्षित इति । "बिंसि अपज्जत्ताण वि" इत्यौदारिकस्यैवोक्तेरेवानुमीयते । अथवा वैक्रियशरीरिणः शरीरपर्याप्तिरान्तमौहूर्तिकी, शेषाः पञ्च सामायिक्य इति । संज्ञिनोऽपर्याप्तकस्य स्वल्पकालत्वेन वैक्रियं न विवक्षितमिति । लब्धितः करणतश्च पर्याप्तापर्याप्तयोरयं विशेषः—यः स्वपर्याप्तीरसमाप्य म्रियते स लब्ध्यपर्याप्तः । स च 'आइतिए नत्थ अपज्जत्तो' इति वचनादाद्यं पर्याप्तित्रिकं समाप्यैव म्रियेत इति दृश्यम् । यस्मादागामिभवायुष्कं बद्‌ध्वैव म्रियते । तच्च समापिताद्यपर्याप्तित्रिकेणैव बध्यते, यत औदारिकवैक्रियाहारककाययोगे विशिष्टे परभवायुर्बन्धः । तद्विशिष्टता च न शरीरपर्याप्त्यैव किन्तु शरीरेन्द्रियपर्याप्तिभ्यां पर्याप्तस्य, अन्यथैकेन्द्रियादिव्यपदेशस्याप्यभवप्रसङ्गः । तद्विपरीतो लब्धिपर्याप्तः । यः पुनरुच्छ्वासादिकाः स्वस्वविषयेषु परिणमनं प्रतिसाधकतमत्वेन करणापरपर्यायाः पर्याप्तीर्नाद्यापि पूरयति परं पूरयिष्यति स करणापर्याप्तः । यः पूरितनिजपर्याप्तिः स करणपर्याप्तः । तत्र सुरनारकासंख्यातवर्षायुर्नरतिर्यगुत्तमपुरुषचरिमशरीरिणो लब्धितः पर्याप्ता एव भवन्ति, निरूपक्रमायुष्कत्वेनापर्याप्तदशायां मरणाभावात् । निरूपक्रमसोपक्रमायुष्कता चैवम्—यदा जन्तुः स्वायुषस्त्रिभागे त्रिभागत्रिभागे वा जघन्यत एकेन द्वाभ्यां च, उत्कृष्टतः सप्तभिरष्टाभिर्वाकर्षैरायुःकर्माणुग्रहणरूपैरन्तर्मुहूर्तप्रमाणेन कालेन जीवप्रदेशरचनानाडिकान्तर्वर्तिन आयुःकर्म्मवर्ग्गणापुद्गलान्विशिष्टवीर्येण करोति, तदा निरूपक्रमायुर्भवति । अन्यदा तु सोपक्रमायुष्क इत्या-ऽऽचारटीका । आयुषि सप्तभिरष्टाभिर्वाकर्षैर्गवामिव मरुषु जगलं दृषग्रहणरूपैर्यत्पुद्गलोपादानं तदतिदृढमित्यपवर्त्तयितुमशक्यतया निरुपक्रममुच्यते । यत्तु षड्भिः पञ्चभिश्चतुर्भिर्वा आगृहीतं दलिकं तदपवर्त्तनाकरणेनोपक्रम्यत इति सोपक्रममिति बृहदुत्तराध्ययनटीकेति । करणतस्त्वमी उभयथापि स्युः ।

अत्र संग्रहगाथाः—

"सो लद्धिअपज्जत्तो जो मरइ अपूरिउं अपज्जत्तो, लद्धिपजत्तो सो पुण जो मरई ताउ पूरित्ता ॥ १ ॥
नज्जवि पूरेइ परं पूरिस्सइ स इह करणअपजत्तो। सो पुण करणपजत्तो जेणं ता पूरिया हुन्ति ॥ २ ॥
नेरइयसुरासंखाउतिरियनरचरिमतणुपवरपुरिसा । लद्धिपजत्ता नियमा करणेणं हुन्ति दुविहा वि ॥३॥"

इत्यलम् ।

बायरपज्जत्ते तिन्नि उरलवेउव्वियदुगं च ॥ ७ ॥

(यशो०) बादरपर्याप्तैकेन्द्रियस्य पृथिव्यादेरौदारिककाययोगः । वैक्रियो वैक्रियमिश्रश्च बादरपर्याप्तवायुकायिकं प्रतीत्य । तथाहि—अस्य वैक्रियलब्धिमतो वैक्रियः, वैक्रियारम्भत्याग-कालयोरौदारिकेण मिश्रो वैक्रियो वैक्रियमिश्रः, स च योगः प्राप्यते । अत्रौदारिकवैक्रिययोर्मिश्र-तायां समायामपि प्रारम्भकाले प्रारभ्यमाणत्वेन त्यागकाले च बहुव्यापारत्वेन वैक्रियस्य प्राधान्याद्वैक्रियमिश्र इति व्यपदेशो, न त्वौदारिकमिश्र इति । 'विउव्वगाहारगे उरलमिस्स' मिति वक्ष्यमाणोक्तेः । अन्ये तु वायोर्वैक्रियारम्भकाले वैक्रियेण मिश्र औदारिकमिश्र इति व्यप दिशन्ति । बहुव्यापारत्वेनौदारिकस्य प्राधान्यविवक्षया ॥ ॥

अथाद्यार्द्धेन योगान्समर्थयन् जीवस्थानेष्वेवोपयोगानाह—

उरलं सुहुमे चउसु य भासजुयं पनरसा वि सन्निंमि ।
उवओगा दससु तओ अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥८॥

(यशो०) पज्जत्त' इति प्रागुक्तानुवृत्त्या सूक्ष्मे पर्याप्त औदारिकः, चतुर्षु च द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु पर्याप्तेषु भाषयाऽसत्यामृषारूपया युक्त औदारिकः, चः पुनरर्थत्वात् संज्ञिनि पर्याप्ते पुनः पञ्चदश चतुर्विधमनश्चतुर्विधवाक्सप्तविधकायरूपा योगाः । तत्र वैक्रियमिश्रो गर्भजतिर्यग्मनुष्ययोर्लब्धिमतोर्वैक्रियस्याऽऽरम्भकाले त्यागकाले च । लब्धि-पर्याप्तस्य च पर्याप्तग्रहणेन ग्रहणादुत्पद्यमानयोरपर्याप्तयोर्देवनारकयोरपि वैक्रियस्यारम्भकाले पर्याप्तयोस्तूभयोरुत्तरवैक्रियारम्भकाले च वैक्रियमिश्रः । आहारकमिश्रस्तु लब्धिमतां संयतानामाहा-रकस्यारम्भकाले त्यागकाले च मन्तव्यः । अन्ये तु तिर्यग्मनुष्ययोर्वैक्रियस्यारम्भकाले, संयतानामा-ऽऽहारकस्यारम्भकाले । केचित्तु तयोः त्यागकाले औदारिकमिश्रमिति मन्यन्ते । औदारिकमिश्रस्तु केवलिसमुद्घाते सप्तमषष्ठ-द्वितीयसमयेषु । कार्मणयोगः पुनस्तत्रैव चतुर्थ-पञ्चमतृतीयसमयेषु द्रष्टव्यः । शेषयोगास्तु सुज्ञाना एव । 'तओ' इति त्रय उपयोगा दशसु पर्याप्तापर्याप्तेषु सूक्ष्मबादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियेषु अपर्याप्तयोस्तु चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रिययोः त्रय इति व्याचष्टे । 'अचक्खुदंस-णमनाणदुग' मिति अचक्षुषा=चक्षुर्वर्जेन्द्रियैर्दर्शनं=सामान्यांशग्राही बोधोऽचक्षुर्दर्शनं पर्याप्तेषु इन्द्रियानाश्रितसामान्योपयोगमात्ररूपं चापर्याप्तेषु । अज्ञानद्विकं=मत्यज्ञानश्रुताज्ञानरूपम् । तत्रास्य द्विकस्य द्वीन्द्रियादिषु सद्भावः सूपपादः । एकेन्द्रियेषु स्पर्शनावरणक्षयोपशमसमुत्थाया मतेर्भाषा-श्रोतेन्द्रियलब्ध्यभावेपि भावेन्द्रियप्रसूतस्यानभिव्यक्तशब्दार्थोल्लेखोपप्लावितोपलब्धिरूपस्य

कस्यापि श्रुतस्य च सद्भावः । क्षुद्वेदनीयप्रादुर्भूताहाराभिलापात्मकाहारसंज्ञाया इव मतेः श्रुतस्य च मिथ्यात्वाक्रान्तत्वादज्ञानता ॥ ८ ॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो ।
मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्निअपजत्ते ॥ ९ ॥

(यशो) असन्नी'ति लुप्तसप्तमीबहुवचनान्तं पर्याप्तेष्विति प्रत्येकं सम्बध्यते. ततस्ते पूर्वोक्ता-स्त्रयश्चक्षुर्दर्शनयुक्ताश्चत्वारः पर्याप्तेषु चतुरिन्द्रियेष्वसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु च योगाः । संज्ञिन्यपर्याप्ते पुनरष्टौ । तथाहि-ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं करणापर्याप्तस्याविरतसम्यग्दृशो विभङ्गस्तु मिथ्यादृशः, नवरं मनुष्यस्य विभङ्गस्तिरश्चश्चावधिविभङ्गौ न स्तः, प्रज्ञापनादिषु प्रतिषिद्धत्वात् ; तिर्यक्षु हि विभङ्गावध्योः प्रतिपतितयोरेवोत्पत्तिः, मनुष्येषु तु विभङ्गे प्रतिपतित एव, अवधौ तु सत्यपि तीर्थंकरवत् , मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च लब्धितः करणतश्चापर्याप्तस्य मिथ्यादृशः, अचक्षुर्दर्शनं लब्धितः करणतश्चापर्याप्तयोः सम्यग्मिथ्यादृशोर्भवतीत्यत एवाह–'मणानाणे'त्यादि ॥ ९ ॥

अथ प्रथमपादेनोपयोगान् समर्थयन् लेश्या दर्शयन्नाह—

सव्वे सन्निसु पत्तो लेसाओ छावि दुविहसन्निंमि ।
चउरो पढमा बायरअपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(यशो०)संज्ञिषु पारिशेष्यात्पर्याप्तेषु सर्वे द्वादश मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानमत्यज्ञान-श्रुताज्ञानविभङ्गचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनरूपा उपयोगा भवन्ति इति । उपयोगानन्तरं लेश्या वक्ष्यन्त इति शेषः । ताश्च द्विविधे पर्याप्ता-ऽपर्याप्तलक्षणे संज्ञिनि षडपि कृष्णनीलकापोती तेजसीपद्माशुक्लाभिधाः । बादरापर्याप्तलक्षणे जीवस्थाने प्रथमाश्चतस्रस्तिस्रः प्रतीतास्तैजस्यास्तु सद्भावः पुढवीआउवणस्सई'त्यादिवचनाऽविशिष्टत्वेऽपि जघन्यायुर्देवेभ्य ईशानान्तेभ्यश्च्युत्वा जघन्यस्थितिरहितस्थितिकेषु शुभपृथिव्युदकाप्रशस्तपलाशादिशेषप्रशस्तोत्पलादिवनस्पति-ष्वुत्पद्यमाने करणापर्याप्ते । अत्रापि 'प्रथमा' इति सम्बन्ध।त्तिस्रः प्रथमाः शेषेषु=द्विविधसंज्ञिबादरा-पर्याप्तवर्जितेष्वेकादशसु ॥ १० ॥

अथ जीवस्थानेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यं स्थानचतुष्टयमाह—

सत्तऽट्ठअट्ठ सत्तऽट्ठ अट्ठ बन्धुदउदीरणासंता ।
तेरसखु जीवठाणेसु सन्निपज्जत्तए ओघो ॥११॥

(यशो०) सप्ताष्टौ च अष्टौ च सप्ताष्टौ च अष्टौ चेति संख्यानि यथाक्रमं 'सन्ते' ति भावप्रधान-त्वान्निर्देशस्य बन्धोदयोदीरणासत्तारूपाणि स्थानानि भवन्तीति

द्राग्वै बन्धस्य, ततो बन्धस्वरूपप्रच्युतेर्हेतुत्वेन बन्धप्रतिपक्षत्वादुदयोदीरणयोः, तत्राप्युदयविशेष एवोदीरणेत्युदयानन्तरमुदीरणायाः, ततो बन्धस्वरूपप्रच्युतेरहेतुत्वेनोदयोदीरणयोः प्रतिपक्षत्वात्सत्तायाः स्थानानीत्ययमेव बन्धादीनां क्रमः। इह च बन्धादीनां प्रत्येकमेकप्रकारत्वेपि सप्ताष्टादिमूलकर्मापेक्षया सप्ताष्टादिसंख्यात्वम्। तत्र ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयनामगोत्रान्तरायात्मनां सप्तानामायुर्युक्तानामष्टानां कर्मणां बन्धः, एवमुदीरणापि, उदयसत्ते त्वष्टानामेवेति त्रयोदशसु जीवस्थानेषु। संज्ञिनि तु पर्याप्ते ओघः=सामान्यं बन्धादीनाम्, विशेषन्तु गुणस्थानकविशेषापेक्षया "सत्तट्ठछेगबन्धे" इत्यादिना वक्ष्यति। स चैवं सुखार्थं किञ्चिदिहापि दर्श्यते।

अट्ठेव य सत्ताउगरहिया छम्मोहआउयविउत्ता। सायं एगं एयं चउरो ठाणाणि बन्धस्स ॥ १ ॥
अड सत्त मोहरहिया चउरो वेज्जाउनामगोयाणि। 'वेज्ज'त्ति वेदनीयं। सत्ताए उदएवि ठाणाणि य पत्तेयं ॥२॥
अड सत्त-ऽऽउविणा-ऽणाउवेज्ज छप्पण अमोहवेज्जाऊ दो नामं गोयं तह इय पंच उईरणाट्ठाणा ॥ ३ ॥

'अणाउवेज्ज'त्ति आयुर्वेदनीयरहितानि षट्। बन्धादीनां स्वरूपमिदम्-निरन्तरं पुद्गलपरिपूर्णलोके कर्मवर्गणानुगुणानामणूनामात्मनश्च वह्न्ययस्पिण्डवत्परस्परमभेदेनेव मिथ्यात्वादिहेतुभिः सम्बन्धो बन्धः। तेषामेव यथास्वस्थितिबद्धानां करणविशेषनिर्मिते स्वाभाविके वाऽबाधाकालक्षयरूपे स्थित्यपचये सत्युदयसमयमायातानां विपाकवेदनमुदयः। तेषामेवानागतफलानां करणविशेषनिर्वर्त्तिते स्थित्यपचये सत्युदयाऽऽवलिकायां प्रवेशनमुदीरणा। बन्धसंक्रमाभ्यां लब्धात्मलाभानां कर्मणां निर्जरणसंक्रमकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सद्भावः सत्ता।

अत्र संग्रहगाथाः—

जीवस्स पोग्गलाण य जोगाण परोप्परं अभेएणं। मिच्छाइहेउविहिया जा घडणा एत्थ सो बन्धो ॥ १ ॥
करणेण सहावेण च ठियवचए तेसिमुदयपत्ताणं। जं वेयणं विवागेणं सो उदओ जिणाभिहिओ ॥२॥
कम्माणूणं जाए करणविसेसेण ठियवचयभावे। जं उदयावलियाए पवेसणमुदीरणा सेह ॥ ३ ॥
बंधणसंकमलद्धत्तालाहकम्मस्स रूवअविणासे। निज्जरणसंकमेहिं सब्भावो जो य सा सत्ता ॥ ४ ॥

'करणेणं'ति सूचितानि करणान्यमूनि—

बन्धणसंकमणुव्वट्टणा य अववट्टणा उईरणया। उवसामणा निहत्ती निकायणा चत्ति करणाइं ॥ १ ॥

अस्या व्याख्या— बन्धनकरणं बन्ध एव।

पगिइठिइरसपएसाणमन्नकम्मत्तणेण ठवियाणं। जं अन्नकम्मरूवत्तठावणं संकमो एसो ॥ १ ॥
तं उव्वट्टणकरणं जं ठिइरसवुड्ढियवड्ढियपवुत्तं। ठिइरसहस्सीकरणं करणं अवयत्तणं जाणं ॥ २ ॥
उदीरणोक्तैव।

उदयनिहित्तिनिकायणउदीरणाणं अजोग्गयत्तेणं। कम्माणं जं ठावणमुवसमणा सा विणिद्दिट्ठा ॥ ३ ॥
उव्वट्टणापवत्तणियरकरणाजोग्गयाएं कम्माणं। संठावणं निहत्ती निकायणा करणमुवियत्तं ॥ ४ ॥
सर्वकरणायोग्यमित्यर्थः ॥ ११ ॥

कस्यापि श्रुतस्य च सद्भावः । क्षुद्वेदनीयप्रादुर्भूताहाराभिलाषात्मकाहारसंज्ञाया इव मतेः श्रुतस्य च मिथ्यात्वाक्रान्तत्वादज्ञानता ॥ ८ ॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो ।
मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्निअपजत्ते ॥ ९ ॥

(यशो०) असन्नो'ति लुप्तसप्तमीबहुवचनातं पर्याप्तेष्विति प्रत्येकं सम्बध्यते. ततस्ते पूर्वोक्तास्त्रयश्चक्षुर्दर्शनयुक्ताश्चत्वारः पर्याप्तेषु चतुरिन्द्रियेष्वसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु च योगाः । संज्ञिन्यपर्याप्ते पुनरष्टौ । तथाहि-ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं करणापर्याप्तस्याविरतसम्यग्दृशो विभङ्गस्तु मिथ्यादृशः, नवरं मनुष्यस्य विभङ्गस्तिरश्चश्चावधिविभङ्गौ न स्तः, प्रज्ञापनादिषु प्रतिषिद्धत्वात्; तिर्यक्षु हि विभङ्गावध्योः प्रतिपतितयोरेवोत्पत्तिः, मनुष्येषु तु विभङ्गे प्रतिपतित एव, अवधौ तु सत्यपि तीर्थकरवत्, मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च लब्धितः करणतश्चापर्याप्तस्य मिथ्यादृशः, अचक्षुर्दर्शनं लब्धितः करणतश्चापर्याप्तयोः सम्यग्मिथ्यादृशोर्भवतीत्यत एवाह-'मणनाणे'त्यादि ॥ ९ ॥

अथ प्रथमपादेनोपयोगान् समर्थयन् लेश्या दर्शयन्नाह—

सव्वे सन्निसु पत्तो लेसाओ छावि दुविहमन्निंमि ।
चउरो पढमा बायरअपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(यशो०) संज्ञिषु पारिशेष्यात्पर्याप्तेषु सर्वे द्वादश मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानमत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनरूपा उपयोगा भवन्ति इति । उपयोगानन्तरं लेश्या वक्ष्यन्त इति शेषः । ताश्च द्विविधे पर्याप्ता-ऽपर्याप्तलक्षणे संज्ञिनि षडपि कृष्णनीलकापोतीतेजसीपद्माशुक्लाभिधाः । बादरापर्याप्तलक्षणे जीवस्थाने प्रथमाश्चतस्रस्तिस्रः प्रतीतास्तैजस्यास्तु सद्भावः पुढवीआउवणस्सई'त्यादिवचनाऽविशिष्टत्वेऽपि जघन्यायुर्देवस्य ईशानान्तेभ्यश्च्युत्वा जघन्यस्थितिरहितस्थितिकेषु शुभपृथिव्युदकाप्रशस्तपलाशादिशेषप्रशस्तोत्पलादिवनस्पतिषूत्पद्यमाने करणापर्याप्ते । अत्रापि 'प्रथमा' इति सम्बन्धः तिस्रः प्रथमाः शेषेषु=द्विविधसंज्ञिबादरापर्याप्तवर्जितेष्वेकादशसु ॥ १० ॥

अथ जीवस्थानेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यं स्थानचतुष्टयमाह—

सत्तऽट्ठअट्ठ सत्तऽट्ठ अट्ठ बन्धुदउदीरणासंता ।
तेरमसु जीवठाणेसु सन्निपज्जत्तए ओघो ॥११॥

(यशो०) सप्ताष्टौ च अष्टौ च सप्ताष्टौ च अष्टौ चेति संख्यानि यथाक्रमं 'सन्ते' सि भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य बन्धोदयोदीरणासत्तारूपाणि स्थानानि भवन्तीति शेषः । उदयादीनां बन्धाधीनत्वा-

दादौ बन्धस्य, ततो बन्धस्वरूपप्रच्युतेर्हेतुत्वेन बन्धप्रतिपक्षत्वादुदयोदीरणयोः, तत्राप्युदयविशेष एवोदीरणेत्युदयानन्तरमुदीरणायाः, ततो बन्धस्वरूपप्रच्युतेरहेतुत्वेनोदयोदीरणयोः प्रतिपक्षत्वात्सत्तायाः स्थानानीत्ययमेव बन्धादीनां क्रमः। इह च बन्धादीनां प्रत्येकमेकप्रकारत्वेपि सप्ताष्टादिमूलकर्मापेक्षया सप्ताष्टादिसंख्यात्वम्। तत्र ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयनामगोत्रान्तरायात्मनां सप्तानामायुर्युक्तानामष्टानां कर्मणां बन्धः, एवमुदीरणापि, उदयसत्ते त्वष्टानामेवेति त्रयोदशसु जीवस्थानेषु। संज्ञिनि तु पर्याप्त ओघः=सामान्यं बन्धादीनाम्, विशेषन्तु गुणस्थानकविशेषापेक्षया "सत्तट्ठछेगबन्धे" इत्यादिना वक्ष्यति। स चैवं सुखार्थं किञ्चिदिहापि दर्श्यते।

अट्ठेव य सत्ताउगरहिया छम्मोहआउयविउत्ता। सायं एगं एयं चउरो ठाणाणि बन्धस्स ॥ १ ॥
अड सत्त मोहरहिया चउरो वेज्जाउनामगोयाणि। 'वेज्ज'ति वेदनीयं। सत्ताए उदएवि ठाणाणि य पत्तेयं ॥२॥
अड सत्ता-ऽऽउविणा-ऽणाउवेज्ज छप्पण अमोहविज्जाऊ दो नामं गोयं तह इय पंच उईरणाट्ठाणा ॥ ३ ॥

'अणाउवेज्ज'त्ति आयुर्वेदनीयरहितानि षट्। बन्धादीनां स्वरूपमिदम्-निरन्तरं पुद्गलपरिपूर्णलोके कर्मवर्गणानुगुणानामणूनामात्मनश्च वह्न्ययस्पिण्डवत्परस्परमभेदेनेव मिथ्यात्वादिहेतुभिः सम्बन्धो बन्धः। तेषामेव यथास्वस्थितिबद्धानां करणविशेषनिर्मिते स्वाभाविके वाऽबाधाकालक्षयरूपे स्थित्यपचये सत्युदयसमयमायातानां विपाकवेदनमुदयः। तेषामेवानागतफलानां करणविशेषनिर्वर्त्तिते स्थित्यपचये सत्युदयाऽऽवलिकायां प्रवेशनमुदीरणा। बन्धसंक्रमाभ्यां लब्धात्मलाभानां कर्मणां निर्जरणसंक्रमकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सद्भावः सत्ता।

अत्र संग्रहगाथाः—

जीवस्स पोग्गलाण य जोगाण परोप्परं अभेएणं। मिच्छाइहेउविहिया जा घडणा एत्थ सो बन्धो ॥ १ ॥
करणेण सहावेण च ठियवचए तेसिमुदयपत्ताणं। जं वेयणं विवागेणं सो उदओ जिणाभिहिओ ॥२॥
कम्माणूणं जाए करणविसेसेण ठियवचयभावे। जं उदयावलियाए पवेसणमुदीरणा सेह ॥ ३ ॥
बंधणसंकमलद्धत्तलाहकम्मस्स रूवअविणासे। निज्जरणसंकमेहिं सब्भावो जो य सा सत्ता ॥ ४ ॥

'करणेणं'ति सूचितानि करणान्यमूनि—

बन्धणसंकमणुव्वट्टणा य अववट्टणा उईरणया। उवसामणा निहत्ती निकायणा चत्ति करणाइं ॥ १ ॥

अस्या व्याख्या— बन्धनकरणं बन्ध एव।

पगिइठिइरसपएसाणमन्नकम्मत्तणेण ठवियाणं। जं अन्नकम्मरूवत्तठावणं संकमो एसो ॥ १ ॥
सं उव्वट्टणकरणं जं ठिइरसवुड्ढियपवियपकुणं। ठिइरसहस्सीकरणं करणं अववत्तणं जाणं ॥ २ ॥

उदीरणोक्तैव।

उदयनिहत्तिनिकायणउदीरणाणं अजोग्गयत्तेणं। कम्माणं जं ठावणमुवसमणा सा विणिदिट्ठा ॥ ३ ॥
उव्वट्टणापवत्तणियरकरणाजोग्गयाए कम्माणं। संठावणं निहत्ती निकायणा करणगुवियत्तं ॥ ४ ॥
सर्वकरणायोग्यमित्यर्थः ॥ ११ ॥

कस्यापि श्रुतस्य च सद्भावः। क्षुद्वेदनीयप्रादुर्भूताहाराभिलाषात्मकाहारसंज्ञाया इव मतेः श्रुतस्य च मिथ्यात्वाक्रान्तत्वादज्ञानता ॥ ८ ॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्नि पज्जत्तएसु ते चउरो।
मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्निअपजत्ते ॥ ९ ॥

(यशो०) असन्नी'ति लुप्तसप्तमीबहुवचनात् पर्याप्तेष्विति प्रत्येकं सम्बध्यते. ततस्ते पूर्वोक्तास्त्रयश्चक्षुर्दर्शनयुक्ताश्चत्वारः पर्याप्तेषु चतुरिन्द्रियेष्वसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु च योगाः। संज्ञिन्यपर्याप्ते पुनरष्टौ। तथाहि-ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं करणापर्याप्तस्याविरतसम्यग्दृशो विभङ्गस्तु मिथ्यादृशः, नवरं मनुष्यस्य विभङ्गस्तिरश्चश्चावधिविभङ्गौ न स्तः, प्रज्ञापनादिषु प्रतिषिद्धत्वात्; तिर्यक्षु हि विभङ्गावध्योः प्रतिपतितयोरेवोत्पत्तिः, मनुष्येषु तु विभङ्गे प्रतिपतित एव, अवधौ तु सत्यपि तीर्थकरवत्, मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च लब्धितः करणतश्चापर्याप्तस्य मिथ्यादृशः, अचक्षुर्दर्शनं लब्धितः करणतश्चापर्याप्तयोः सम्यग्मिथ्यादृशोर्भवतीत्यत एवाह-'मणनाणे'त्यादि ॥ ९ ॥

अथ प्रथमपादेनोपयोगान् समर्थयन् लेश्या दर्शयन्नाह—

सव्वे सन्निसु पत्तो लेसाओ छावि दुविहसन्निंमि।
चउरो पढमा बायरअपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(यशो०)संज्ञिषु पारिशेष्यात्पर्याप्तेषु सर्वे द्वादश मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानमत्यज्ञान-श्रुताज्ञानविभङ्गचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनरूपा उपयोगा भवन्ति इति। उपयोगानन्तरं लेश्या वक्ष्यन्त इति शेषः। ताश्च द्विविधे पर्याप्ता-ऽपर्याप्तलक्षणे संज्ञिनि षडपि कृष्णनीलकापोती तेजसीपद्माशुक्लाभिधाः। बादरापर्याप्तलक्षणे जीवस्थाने प्रथमाश्चतस्रस्तिस्रः प्रतीतास्तैजस्यास्तु सद्भावः पुढवीआउवणस्सई'त्यादिवचनाऽविशिष्टत्वेऽपि जघन्यायुर्देवेभ्य ईशानान्तेभ्यश्च्युत्वा जघन्यस्थितिरहितस्थितिकेषु शुभपृथिव्युदकाप्रशस्तपलाशादिशेषप्रशस्तोत्पलादिवनस्पति-षूत्पद्यमाने करणापर्याप्ते। अत्रापि 'प्रथमा' इति सम्बन्धात्तिस्रः प्रथमाः शेषेषु=द्विविधसंज्ञिबादरा-पर्याप्तवर्जितेष्वेकादशसु ॥ १० ॥

अथ जीवस्थानेष्वेव बन्धोदयोदीरणासत्ताख्यं स्थानचतुष्टयमाह—

सत्तऽट्ठअट्ठ सत्तऽट्ठ अट्ठ बन्धुदउदीरणासंता।
तेरससु जीवठाणेसु सन्निपज्जत्तए ओघो ॥११॥

(यशो०) सप्ताष्टौ च अष्टौ च सप्ताष्टौ च अष्टौ चेति संख्यानि यथाक्रमं 'सन्ते' ति भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य बन्धोदयोदीरणासत्तारूपाणि स्थानानि भवन्तीति शेषः। उदयादीनां बन्धाधीनत्वा-

संज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च मीनमहिष्याद्यस्तिर्यञ्चः । निरयाः=नरकावासास्तत्रोत्पन्ना अपि जन्तवो निरयाः । सुरनरादिषु विषये गतिः सुरनरादिशब्दव्यपदेश्यपर्यायनिबन्धनम् । अत्र प्रायः प्रकृष्टसुखस्य च्यवनेर्ष्याविषादादेरीषदसुखस्य चाऽऽधारतया प्रथमं सुराणाम्, प्रायोल्पसुखस्य बहोर्बन्ध-वध-परिभव-गर्भोत्पत्ति-जरा-रुगादेरसुखस्य चाऽऽधारतया तदनु नराणाम्, प्रायोल्पसुखस्य बहुतरस्य शीतवातातपपारतन्त्र्यादेरसुखस्य चाऽऽस्पदतया ततस्तिरश्चाम्, परमाधार्मिकपरस्परोदीरणक्षेत्रप्रत्ययबहुतमकेवलासुखनिकेतनतया तदनन्तरं नारकाणां गतिरुक्ता । सर्वदेवातितीव्राज्ञानोदयाद्याधारतया प्रागेकेन्द्रियास्तदपेक्षयोत्तरोत्तरविशिष्टक्षयोपशमसमर्प्पिताधिकाधिककरणोपबृंहितज्ञानभाक्त्वेन क्रमेण द्वीन्द्रियाद्याः पञ्चेन्द्रियान्ता निर्दिष्टाः । एकेन्द्रियादिव्यपदेशश्चामीषां यथोत्तरं प्रवर्द्धमानमतिज्ञानावरणक्षयोपशमाविर्भूतस्यैकेन्द्रियादिजातिनामकर्मोदयनियमितक्रमस्य पर्याप्तकनामकर्मादिसामर्थ्यसिद्धस्य द्रव्यभावरूपस्पर्शनादेरेकद्वयादीन्द्रियस्य भाजनत्वात् । प्रायोवादीनां चरणस्खलनादिक्षमाशिथिलावयवतया प्रथमं पृथिवीकायस्य, ततः शिथिलावयवतया तद्विपक्षस्या-ऽप्कायस्य, ततस्तद्विरोधित्वेन तेजस्कायस्य, ततस्तदुपबृंहकत्वेन वायोस्ततस्तत्सादुगुण्यवैगुण्यानुसारेणीवनस्पतेः सादुगुण्यवैगुण्य इति वनस्पतिकायस्याथ शकलपृथिवीकायाद्युपभोगयोग्यत्वेन त्रसकायस्य निर्देशः ॥१३॥

मणवयकाया जोगा इत्थी पुरिसो नपुंसगो वेया ।
कोहो माणो माया लोभो चउरो कसायत्ति ॥१४॥

(यशो०) काययोगेन मनोयोग्यवर्गणाभ्यो गृहीत्वा मनोरूपेण परिणमितानि वस्तुचिन्ताप्रवर्त्तकानि द्रव्याणि मन इत्युच्यते । तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगो मनोयोगः । उच्यत इति वाक्=भाषापरिणतिमापन्नः पुद्गलसमूहस्तया सहकारिण्या तद्विषयो वा योगो वाग्योगः । चीयत इति काय औदारिकादिस्तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगः काययोगः । तत्र स्तोकाधारतया प्रथमं मनोयोगस्य, तदपेक्षया बह्वाश्रयतया वाग्योगस्य, तदपेक्षयाऽतिबह्वाश्रयतया तत्पृष्ठे काययोगस्योपन्यासः । यदुदये स्त्रियाः पुंस्यभिलाषः स फुंफकाग्निसमानः स्त्रीवेदः । यदुदये पुंसः स्त्रियामभिलाप[स्त्रि](स्तृ)णाग्निज्वालातुल्यः स पुंवेदः । यदुदये नपुंसकस्य स्त्रीपुंसयोरभिलाषः स महानगरदवाग्निसमो नपुंसकवेदः । तत्र पुरुषवेदापेक्षया बह्वाश्रितत्वादादौ स्त्रीवेदः, ततः पुरुषवेदः, स्त्री-पुरुषोभयाभिलाषित्वेनातिसंक्लिष्टतया तयोरन्ते नपुंसकवेदः । क्रोधो=ऽक्षान्तिस्वरूपो मानो=गर्व्वो जात्याद्युद्भवममार्दवं माया=वञ्चनात्मिका परिणतिर्लोभो=ऽसंतोषात्मको गार्ध्यपरिणामः सर्वानुगामित्वादादौ क्रोधस्य, तदनु-

१ "बहु" इत्यपि पाठः ।

जीवस्थानेषु गुणस्थानादीन्यष्टौ पदान्युक्तानि जीवस्थानगुणस्थानादीनामन्वेषणा-रूपाया मार्गणायाः स्थानानि मार्गणास्थानानि मूलभेदापेक्षया चतुर्दशसंख्यान्याह—

एत्तो गइइंदियकायजोयवेए कसायनाणे य ।
संजमदंसणलेसा भवसम्मे सन्निआहारे ॥१२॥

(यशो०) एत्तो=जीवस्थानाद्यनन्तरम्, अत्र गतयश्चेन्द्रियाणि चेत्यादिः 'सुरनरतिरिनरयगई' इत्यादिविभागानुसारेण विग्रहे यथासम्भवं समाहारद्वन्द्वः, एत्वन्तु सर्वत्र प्राकृतप्रभवम् । तत्र गम्यन्ते स्वपरिणामनिर्मितकर्म्मपाशावबद्धैर्जन्तुभिरिति गतयः । इन्द्रस्याऽऽत्मनो लिङ्गानीन्द्रियाणि । अत्राश्रितेनेन्द्रियेणाश्रयमुपलक्षयता इन्द्रियवन्त उक्ता भवन्ति, तथा च 'इगबिती' त्यादिना विभागेन सद्भाविरोधः । एवमन्यत्रापि यथासम्भवं व्याख्येयम् । चीयन्त इति कायाः पृथिव्यादयः । कायशब्दश्चात्र शरीर इव पृथिव्यादिजीवनिचये वर्त्तते, चयसाधर्म्यात् । युज्यते= धावनादिक्रियासु व्यापार्यते जीव एभिरिति, युज्यन्ते=संबध्यन्ते धावनादिक्रियया ऽसुमन्त एभिरिति वा योगाः । वेद्यन्ते=अद्यमिलापोत्पादकत्वेनानुभूयन्त इति वेदाश्चारित्रमोहनीयान्तर्गतकर्मदलिकनिकायविशेषाः । कृष्यन्ते=नरकादिस्थानेषु देहिनोऽनेनेति कषं=कर्म, कष्यन्ते प्राणिनः परस्परमस्मिन्निति कषः=संसारो वा, तदेव, स एव वा, आयो=लाभो येभ्य इति वा, कषमयन्ते=गच्छन्त्येभिरिति वा कषायाः । ज्ञायन्ते=निर्णीयन्ते सामान्यविशेषात्मकानि वस्तूनि विशेषरूपत्वेनैभिरिति ज्ञानानि । सं=सम्यग् यम्यते=निवर्त्यते जन्तुर्जन्तुघातादिभ्य एभिरिति संयमाः । दृश्यते सामान्यविशेषात्मकसितं वस्तुसामान्यरूपतयैभिरिति दर्शनानि । लिश्यति= श्लिष्यति कर्मणा प्राणी आभिरिति लेश्याः=सकलकर्मनिस्यन्दभूतकृष्णनीलादिद्रव्यसचिवस्य जीवस्य शुभा अशुभाश्च परिणामविशेषाः । मुक्तिपर्यायेण भविष्यन्तीति त्रैकालिकेऽप्यत्यये भवाः=भव्याः । जीवादितत्त्वश्रद्धानेन सम्यगञ्चन्ति=प्रवर्तन्ते सम्यञ्चः=सम्यग्दृष्टयस्तेषां भावाः=सम्यक्त्वानि=जीवादितत्त्वश्रद्धानपरिणामाः । इदं कृतमिदं करोमीदं करिष्यामीत्यादिदीर्घकालत्रयविषयविशिष्टमनोव्यापारवती दीर्घकालिक्यभिधाना संज्ञाऽस्याऽस्तीति संज्ञी । ओजोलोमप्रक्षेपभेदात् त्रिविधमाहारं यथासम्भवमाहारयन्तीत्याहारकाः ॥१२॥

सुरनरतिरिनरयगई [1]इगबितिचउरिंदिया य [2]पंचेंदी ।
पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणसइतसा काया ॥१३॥

(यशो०) उत्तानार्था । नवरं भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकस्वरूपाः सुराः । सम्मूर्च्छिमा गर्भजाश्च प्रतीता नराः । एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सम्मूर्च्छजमनुष्यव्यतिरिक्ता असंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः

---

१ "बइ" इत्यपि पाठः । २ "पंचिंदि" इत्यपि ।

जीवस्थानेषु गुणस्थानादीन्यष्टौ पदान्युक्तानि जीवस्थानगुणस्थानादीनामन्वेषणारूपाया मार्ग्गणायाः स्थानानि मार्ग्गणास्थानानि मूलभेदापेक्षया चतुर्दशसंख्यान्याह—

एत्तो गइइंदियकायजोयवेए कसायनाणे य।
संजमदंसणलेसा भवसम्मे सन्निआहारे ॥१२॥

(यशो०) एत्तो=जीवस्थानाद्यनन्तरम्, अत्र गतयश्चेन्द्रियाणि चेत्यादिः 'सुरनरतिरिनरयगई' इत्यादिविभागानुसारेण विग्रहे यथासम्भवं समाहारद्वन्द्वः, एत्वन्तु सर्वत्र प्राकृतप्रभवम्। तत्र गम्यन्ते स्वपरिणामनिर्मितकर्म्मपाशावनद्धैर्जन्तुभिरिति गतयः। इन्द्रस्याऽऽत्मनो लिङ्गानीन्द्रियाणि। अत्राश्रितेनेन्द्रियेणाश्रयमुपलक्षयता इन्द्रियवन्त उक्ता भवन्ति, तथा च 'इगबिती' त्यादिना विभागेन सद्भाविरोधः। एवमन्यत्रापि यथासम्भवं व्याख्येयम्। चीयन्त इति कायाः पृथिव्यादयः। कायशब्दश्चात्र शरीर इव पृथिव्यादिजीवनिचये वर्त्तते, चयसाधर्म्यात्। युज्यते=धावनादिक्रियासु व्यापार्यते जीव एभिरिति, युज्यन्ते=संबध्यन्ते धावनादिक्रिययाऽसुमन्त एभिरिति वा योगाः। वेद्यन्ते=आद्यभिलापोत्पादकत्वेनानुभूयन्त इति वेदाश्चारित्रमोहनीयान्तर्गतकर्मदलिकनिकायविशेषाः। कष्यन्ते=नरकादिस्थानेषु देहिनोऽनेनेति कषं=कर्म, कष्यन्ते प्राणिनः परस्परमस्मिन्निति कषः=संसारो वा, तदेव, स एव वा, आयो=लाभो येभ्य इति वा, कषमयन्ते=गच्छन्त्येभिरिति वा कषायाः। ज्ञायन्ते=निर्णीयन्ते सामान्यविशेषात्मकानि वस्तूनि विशेषरूपत्वेनैभिरिति ज्ञानानि। सं=सम्यग् यम्यते=निवर्त्यते जन्तुर्जन्तुघातादिभ्य एभिरिति संयमाः। दृश्यते सामान्यविशेषाभ्यासितं वस्तुसामान्यरूपतयैभिरिति दर्शनानि। लिश्यति=श्लिष्यति कर्मणा प्राणी आभिरिति लेश्याः=सकलकर्मनिस्यन्दभूतकृष्णनीलादिद्रव्यसचिवस्य जीवस्य शुभा अशुभाश्च परिणामविशेषाः। मुक्तिपर्यायेण भविष्यन्तीति त्रैकालिकेऽर्थप्रत्यये भवाः=भव्याः। जीवादितत्त्वश्रद्धानेन सम्यगञ्चन्ति=प्रवर्तन्ते सम्यञ्चः=सम्यग्दृशस्तेषां भावाः=सम्यक्त्वानि=जीवादितत्त्वश्रद्धानपरिणामाः। इदं कृतमिदं करोमीदं करिष्यामीत्यादिदीर्घकालत्रयविषयविशिष्टमनोव्यापारवती दीर्घकालिक्यभिधाना संज्ञाऽस्याऽस्तीति संज्ञी। ओजोलोमप्रक्षेपभेदात् त्रिविधमाहारं यथासम्भवमाहारयन्तीत्याहारकाः ॥१२॥

सुरनरतिरिनरयगई [1]इगबितिचउरिंदिया य [2]पंचेंदी।
पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणसइतसा काया ॥१३॥

(यशो०) उत्तानार्था। नवरं भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकस्वरूपाः सुराः। सम्मूर्च्छिमा गर्भजाश्च प्रतीता नराः। एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सम्मूर्च्छजमनुष्यव्यतिरिक्ता असंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः

---

१ "मइ" इत्यपि पाठः। २ "पंचिंदि" इत्यपि।

संज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च मीनमहिष्यादयस्तिर्यञ्चः । निरयाः=नरकावासास्तत्रोत्पन्ना अपि जन्तवो निरयाः । सुरनरादिषु विषये गतिः सुरनरादिशब्दव्यपदेश्यपर्यायनिबन्धनम् । अत्र प्रायः प्रकृष्टसुखस्य च्यवनेर्ष्याविषादादेरीषदसुखस्य चाऽऽधारतया प्रथमं सुराणाम् , प्रायोऽल्पसुखस्य बहोर्बन्ध-वध-परिभव-गर्भोत्पत्ति-जरा-रुगादेरसुखस्य चाऽऽधारतया तदनु नराणाम्, प्रायोऽल्पसुखस्य बहुतरस्य शीतवातातपपारतन्त्र्यादेरसुखस्य चाऽऽस्पदतया ततस्तिरश्चाम् , परमाधार्मिकपरस्परोदीरणक्षेत्रप्रत्ययबहुतमकेवलासुखनिकेतनतया तदनन्तरं नारकाणां गतिरुक्ता । सर्वदेवातितीव्राज्ञानोदयाद्याधारतया प्रागेकेन्द्रियास्तदपेक्षयोत्तरोत्तरविशिष्टक्षयोपशमसमर्पिताधिकाधिककरणोपबृंहितज्ञानभाक्त्वेन क्रमेण द्वीन्द्रियाद्याः पञ्चेन्द्रियान्ता निर्दिष्टाः । एकेन्द्रियादिव्यपदेशश्चामीषां यथोत्तरं प्रवर्द्धमानमतिज्ञानावरणक्षयोपशमाविर्भूतस्यैकेन्द्रियादिजातिनामकर्मोदयनियमितक्रमस्य पर्याप्तकनामकर्मादिसामर्थ्यसिद्धस्य द्रव्यभावरूपस्पर्शनादेरेकद्व्यादीन्द्रियस्य भाजनत्वात् । प्रायोवादीनां चरणस्खलनादिक्षमाशिथिलावयवतया प्रथमं पृथिवीकायस्य, ततः शिथिलावयवतया तद्विपक्षस्या-ऽप्कायस्य, ततस्तद्विरोधित्वेन तेजस्कायस्य, ततस्तदुपबृंहकत्वेन वायोस्ततस्तत्साद्गुण्यवैगुण्यानुसारिणीवनस्पतेः साद्गुण्यवैगुण्य इति वनस्पतिकायस्याथ शकलपृथिवीकायाद्युपभोगयोग्यत्वेन त्रसकायस्य निर्देशः ॥१३॥

मणवयकाया जोगा इत्थी पुरिसो नपुंसगो वेया ।
कोहो माणो माया लोभो चउरो कसायत्ति ॥१४॥

(यशो०) काययोगेन मनोयोग्यवर्गणाभ्यो गृहीत्वा मनोरूपेण परिणमितानि वस्तुचिन्ताप्रवर्त्तकानि द्रव्याणि मन इत्युच्यते । तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगो मनोयोगः । उच्यत इति वाक्=भाषापरिणतिमापन्नः पुद्गलसमूहस्तया सहकारिण्या तद्विषयो वा योगो वाग्योगः । चीयत इति काय औदारिकादिस्तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगः काययोगः । तत्र स्तोकाधारतया प्रथमं मनोयोगस्य, तदपेक्षया बह्वाश्रयतया वाग्योगस्य, तदपेक्षयाऽतिबह्वाश्रयतया तत्पृष्ठे काययोगस्योपन्यासः । यदुदये स्त्रियाः पुंस्यभिलाषः स फुंफकाग्निसमानः स्त्रीवेदः । यदुदये पुंसः स्त्रियामभिलाप[स्त्रि](स्तृ)णाग्निज्वालातुल्यः स पुंवेदः । यदुदये नपुंसकस्य स्त्रीपुंसयोरभिलाषः स महानगरदवाग्निसमो नपुंसकवेदः । तत्र पुरुषवेदापेक्षया बह्वाश्रितत्वादादौ स्त्रीवेदः, ततः पुरुषवेदः, स्त्री-पुरुषोभयाभिलाषित्वेनातिसंक्लिष्टतया तयोरन्ते नपुंसकवेदः । क्रोधो=ऽक्षान्तिस्वरूपो मानो=गर्व्वो जात्याद्युद्भवममार्दवं माया=वञ्चनात्मिका परिणतिर्लोभो=ऽसंतोषात्मको गार्ध्यपरिणामः सर्वानुगामित्वादादौ क्रोधस्य, तदनु-

१ "घर्" इत्यपि पाठः ।

जीवस्थानेषु गुणस्थानादीन्यष्टौ पदान्युक्तानि जीवस्थानगुणस्थानादीनामन्वेषणारूपाया मार्गणायाः स्थानानि मार्गणास्थानानि मूलभेदापेक्षया चतुर्दशसंख्यान्याह—

एत्तो गइइंदियकायजोयवेए कसायनाणे य ।
संजमदंसणलेसा भवसम्मे सन्निआहारे ॥१२॥

(यशो०) एत्तो=जीवस्थानाद्यनन्तरम्, अत्र गतयश्चेन्द्रियाणि चेत्यादिः 'सुरनरतिरिनरयगई' इत्यादिविभागानुसारेण विग्रहे यथासम्भवं समाहारद्वन्द्वः, एत्वन्तु सर्वत्र प्राकृतप्रभवम् । तत्र गम्यन्ते स्वपरिणामनिर्मितकर्म्मपाशावनद्धैर्जन्तुभिरिति गतयः । इन्द्रस्याऽऽत्मनो लिङ्गानीन्द्रियाणि । अत्राश्रितेनेन्द्रियेणाश्रयमुपलक्षयता इन्द्रियवन्त उक्ता भवन्ति, तथा च 'इगबिती' त्यादिना विभागेन सहाविरोधः । एवमन्यत्रापि यथासम्भवं व्याख्येयम् । चीयन्त इति कायाः पृथिव्यादयः । कायशब्दश्चात्र शरीर इव पृथिव्यादिजीवनिचये वर्त्तते, चयसाधर्म्यात् । युज्यते=धावनादिक्रियासु व्यापार्यते जीव एभिरिति, युज्यन्ते=संबध्यन्ते धावनादिक्रिययाऽसुमन्त एभिरिति वा योगाः । वेद्यन्ते=अभिलाषोत्पादकत्वेनानुभूयन्त इति वेदाश्चारित्रमोहनीयान्तर्गतकर्मदलिकनिकायविशेषाः । कष्यन्ते=नरकादिस्थानेषु देहिनोऽनेनेति कषं=कर्म, कष्यन्ते प्राणिनः परस्परमस्मिन्निति कषः=संसारो वा, तदेव, स एव वा, आयो=लाभो येभ्य इति वा, कषमयन्ते=गच्छन्त्येभिरिति वा कषायाः । ज्ञायन्ते=निर्णीयन्ते सामान्यविशेषात्मकानि वस्तूनि विशेषरूपत्वेनैभिरिति ज्ञानानि । सं=सम्यग् यम्यते=निवर्त्यते जन्तुर्जन्तुघातादिभ्य एभिरिति संयमाः । दृश्यते सामान्यविशेषाभ्यासितं वस्तुसामान्यरूपतयैभिरिति दर्शनानि । लिश्यति=श्लिष्यति कर्मणा प्राणी आभिरिति लेश्याः=सकलकर्मनिस्यन्दभूतकृष्णनीलादिद्रव्यसचिवस्य जीवस्य शुभा अशुभाश्च परिणामविशेषाः । मुक्तिपर्यायेण भविष्यन्तीति त्रैकालिकेऽप्रत्यये भवाः=भव्याः । जीवादितत्त्वश्रद्धानेन सम्यगञ्चन्ति=प्रवर्तन्ते सम्यञ्चः=सम्यग्दृशस्तेषां भावाः=सम्यक्त्वानि=जीवादितत्त्वश्रद्धानपरिणामाः । इदं कृतमिदं करोमीदं करिष्यामीत्यादिदीर्घकालत्रयविषयविशिष्टमनोव्यापारवती दीर्घकालिक्यभिधाना संज्ञाऽस्याऽस्तीति संज्ञी । ओजोलोमप्रक्षेपभेदात् त्रिविधमाहारं यथासम्भवमाहारयन्तीत्याहारकाः ॥१२॥

सुरनरतिरिनरयगई [1]इगबितिचउरिंदिया य [2]पंचेंदी ।
पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणसइतसा काया ॥१३॥

(यशो०) उत्तानार्था । नवरं भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकस्वरूपाः सुराः । सम्मूर्च्छिमा गर्भजाश्च प्रतीता नराः । एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सम्मूर्च्छजमनुष्यव्यतिरिक्ता असंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः

१ "वइ" इत्यपि पाठः । २ "पंचिंदि" इत्यपि ।

संज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च मीनमहिष्याद्यस्तिर्यञ्चः । निरयाः=नरकावासास्तत्रोत्पन्ना अपि जन्तवो निरयाः । सुरनरादिषु विषये गतिः सुरनरादिशब्दव्यपदेश्यपर्यायनिबन्धनम् । अत्र प्रायः प्रकृष्टसुखस्य च्यवनेर्ष्याविषादादेरीषदसुखस्य चाऽऽधारतया प्रथमं सुराणाम् , प्रायोल्पसुखस्य बहोर्बन्ध-वध-परिभव-गर्भोत्पत्ति-जरा-रुगादेरसुखस्य चाऽऽधारतया तदनु नराणाम्, प्रायोल्पसुखस्य बहुतरस्य शीतवातातपपारतन्त्र्यादेरसुखस्य चाऽऽस्पदतया ततस्तिरश्चाम् , परमाधार्मिकपरस्परोदीरणक्षेत्रप्रत्ययबहुतमकेवलासुखनिकेतनतया तदनन्तरं नारकाणां गतिरुक्ता । सर्वदेवातितीव्राज्ञानोदयाद्याधारतया प्रागेकेन्द्रियास्तदपेक्षयोत्तरोत्तरविशिष्टक्षयोपशमसमर्पिताधिकाधिककरणोपबृंहितज्ञानभाक्त्वेन क्रमेण द्वीन्द्रियाद्याः पञ्चेन्द्रियान्ता निर्दिष्टाः । एकेन्द्रियादिव्यपदेशश्चामीषां यथोत्तरं प्रवर्द्धमानमतिज्ञानावरणक्षयोपशमाविर्भूतस्यैकेन्द्रियादिजातिनामकर्मोदयनियमितक्रमस्य पर्याप्तकनामकर्मादिसामर्थ्यसिद्धस्य द्रव्यभावरूपस्पर्शनादेरेकद्व्यादीन्द्रियस्य भाजनत्वात्। प्रायोवादीनां चरणस्खलनादिक्षमाशिथिलावयवतया प्रथमं पृथिवीकायस्य, ततः शिथिलावयवतया तद्विपक्षस्या-ऽप्कायस्य, ततस्तद्विरोधित्वेन तेजस्कायस्य, ततस्तदुपबृंहकत्वेन वायोस्ततस्तत्साद्गुण्यवैगुण्यानुसारिणीवनस्पतेः साद्गुण्यवैगुण्य इति वनस्पतिकायस्याथ सकलपृथिवीकायाद्युपभोगयोग्यत्वेन त्रसकायस्य निर्देशः ॥१३॥

मण वयकाया जोगा इत्थी पुरिसो नपुंसगो वेया ।
कोहो माणो माया लोभो चउरो कसायत्ति ॥१४॥

(यशो०) काययोगेन मनोयोग्यवर्गणाभ्यो गृहीत्वा मनोरूपेण परिणमितानि वस्तुचिन्ताप्रवर्त्तकानि द्रव्याणि मन इत्युच्यते । तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगो मनोयोगः । उच्यत इति वाक्=भाषापरिणतिमापन्नः पुद्गलसमूहस्तया सहकारिण्या तद्विषयो वा योगो वाग्योगः । चीयत इति काय औदारिकादिस्तेन सहकारिणा तद्विषयो वा योगः काययोगः । तत्र स्तोकाधारतया प्रथमं मनोयोगस्य, तदपेक्षया बह्वाश्रयतया वाग्योगस्य, तदपेक्षयाऽतिबह्वाश्रयतया तत्पृष्ठे काययोगस्योपन्यासः । यदुदये स्त्रियाः पुंस्यभिलाषः स फुंफकाग्निसमानः स्त्रीवेदः । यदुदये पुंसः स्त्रियामभिलाष[स्त्रि](स्तृ)णाग्निज्वालातुल्यः स पुंवेदः। यदुदये नपुंसकस्य स्त्रीपुंसयोरभिलाषः स महानगरदवाग्निसमो नपुंसकवेदः । तत्र पुरुषवेदापेक्षया बह्वाश्रितत्वादादौ स्त्रीवेदः, ततः पुरुषवेदः, स्त्री-पुरुषोभयाभिलाषित्वेनातिसंक्लिष्टतया तयोरन्ते नपुंसकवेदः । क्रोधो=ऽक्षान्तिस्वरूपो मानो=गर्वो जात्याद्युद्भवममार्दवं माया=वञ्चनाध्यात्मिका परिणतिर्लोभो=ऽसंतोषात्मको गार्ध्यपरिणामः सर्वानुगामित्वादादौ क्रोधस्य, तदनु-

१ "षड्" इत्यपि पाठः ।

तत्संश्रद्धत्वान्मानस्य, लोभार्थं मायोपादीयत इति ततो लोभकारणत्वान्मायायाः, ततस्तत्कार्यत्वात्सर्वदोषाश्रयत्वात्सर्वगुरुत्वात्सर्वोपरिक्षपणक्रमाद्वा लोभस्योपादानम्। 'कसायत्ति' इतिशब्द उपप्रदर्शनार्थः ॥१४॥

मइसुयओहीमणकेवलाणि　　मइसुयअनाणविभंगा ।
सामइयछेयपरिहा-रसुहुमअहखायदेसजयअजया ॥१५॥

(यशो०) "पदैकदेशे पदसमुदाय" इति न्यायान्मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानमनःपर्यायज्ञानकेवलज्ञानानीति मन्तव्यम्। एवं च्छेदादिष्वपि। योग्यदेशस्थितस्यार्थस्येन्द्रियाण्याश्रित्य मननं मतिस्तद्रूपं ज्ञानम्, श्रवणं श्रुतं शब्दसंपृक्तार्थप्रत्ययः, यदि वा श्रूयत इति श्रुतं=शब्दस्तत्पुनर्ज्ञानं कारणे कार्योपचारद्वारा। अवधानम्=इन्द्रियाद्यनपेक्षतयात्मनः साक्षात्कारेण वस्तुग्रहणम्, यदि वाऽवधि=र्मर्यादा तेन रूपिद्रव्यमर्यादात्मकेन यज्ज्ञानमुत्पद्यते तदप्युपचारादवधिः। मनसां पर्याया=श्चिन्तनानुगुणाः परिणामास्तेषु ज्ञानम्, अथवा मनांसि पर्येति=सर्वात्मना जानातीति कर्मण्यणि मनःपर्यायम्, तच्च तज्ज्ञानं च मनःपर्यायज्ञानम्, एतेषां च ज्ञानानां यथास्वमन्यत्र भेदा उक्ता अपि प्रस्तुतानुपयोगित्वान्नेहोच्यन्ते। केवलं=तद्भावे शेषज्ञानाभावादेकमित्यर्थः, तच्च तज्ज्ञानं च केवलज्ञानमिति ज्ञानानि पञ्च। इह स्वामि-काल-कारण-विषय-परोक्षत्व-साधर्म्यात्तद्भावे च शेषज्ञानसद्भावादादावेव मति-श्रुतयोरुपन्यासः। तत्र स्वामी मतिश्रुतयोरेकः। कालः स्थितिकालः प्रवाहापेक्षयाऽतीतादिः सर्व एव। अप्रतिपतितैकजीवापेक्षयोत्कृष्टतः षट्षष्टिसागरोपमाण्यधिकानि। कारणं तत्रापि मतिपूर्वकत्वान्मतिभेदत्वाद्वा श्रुतस्य प्रथमं मतेस्ततः श्रुतस्य। ततो जीवस्य साक्षात्कारेण व्याप्रियमाणत्वेन विशिष्टत्वात्कालविपर्ययस्वामिलाभसाधर्म्याद्वाद्यज्ञानद्वयानन्तरमवधेर्ग्रहः। तथाहि—य एव मतिश्रुतयोरुक्तः कालः स एवावधेः। यथा च मतिश्रुतयोर्विपक्षेऽज्ञाने, तथास्य विभङ्गः। य एव च तयोः स्वामी स एवास्यापि। तथा विभङ्गज्ञानिनः सुरादेः सम्यक्त्वावाप्तौ युगपदेव मतिश्रुतावधिज्ञानानां लाभः। ततो विशुद्धचारित्रसव्यपेक्षत्वेनातिविशिष्टत्वान्मनःपर्यायस्य। एभ्यः सर्वेभ्य उत्कृष्टत्वादन्ते केवलग्रहणम्, आद्यज्ञानत्रयविपक्षभूतानि'नाण'इत्युद्देशसूचितानि मत्यज्ञानादीनि तु त्रीण्यज्ञानानि। तत्र मतिज्ञानमपि मिथ्यादृशो नञः कुत्सार्थत्वान्मिथ्यात्वसंचलितत्वेन कुत्सितं ज्ञानं मत्यज्ञानम्। एवमस्य श्रुतज्ञानमपि श्रुताज्ञानम्। एवमस्यावधिज्ञानमपि। विविधो विरूपो वा सम्यग्ज्ञानवैदृश्येन भङ्गः=परिच्छेदप्रकाशोऽस्मादिति विभङ्गस्तद्रूपं ज्ञानं विभङ्गज्ञानमुच्यते। अत्र विभङ्गध्वनिनैव कुत्साया गमित्वान्न ज्ञानशब्दो नञा विशेषितः। एषामपि क्रमकारणमाद्यज्ञानत्रयवद्विज्ञेयः। सामायिकादयः पञ्च संयमाः। तत्र समो=रागद्वेषरहितस्य ज्ञानादीनामायो=लाभः समायः, स एव सामायिकं चारित्राचारकर्मक्षयोपशमसमुत्थः सर्वविरतिरूपो जीवपरिणतिविशेष-

स्तत्पञ्चविधमपि सामान्यतः सामायिकमुच्यते। केवलं यच्छेदोपस्थापनीयादिभेदोपसेवितं तत्तत्तद्भेदैरौचित्येन निगद्यते। यत्तूक्तभेदवन्ध्यं तत्सामान्येन सामायिकमुच्यते। तच्च द्वैधमल्पकालिकं यावज्जीविकं च, तत्राद्यं भरतैरावतेष्वादिमान्तिमतीर्थंकरतीर्थेष्वनारोपितमहाव्रतस्य, द्वितीयं तु मध्यमतीर्थङ्करतीर्थवर्तिनां विदेहतीर्थान्तर्वर्तिनां च। छेदोपस्थापनात्मिकाया[या] उपस्थापनाया[स्स](अ)भावाद्विज्ञेयम्। प्राचीनपर्यायच्छेदाच्छेदश्च महाव्रतेषूपस्थापनं चात्मनो यत्र तच्छेदोपस्थापनम्। तत्सातिचारमितरच्च। तत्र सातिचारं मूलगुणघातिनः पुनर्व्रतारोपरूपम्। इतरन्निरतिचारमल्पकालिकसामायिकस्य व्रतारोपणात्मकम्, तीर्थात्तीर्थान्तरसंक्रमे वा चतुर्यामधर्मात् पञ्चयामधर्माभ्युपगम इति। परिहारेण तपोविशेषण विशुद्धिर्यत्र तत्परिहारविशुद्धिकम्। तद्द्विविधम्। निर्विशमानकं निर्विष्टकायिकं च। तत्र निर्विशमानकास्तदा सेवकाः परिहारिकास्तदभेदात्तदपि निर्विशमानकम्। निर्विष्ट=आसेवितप्रस्तुतचारित्रः कायो येषां ते स्वार्थिकेकण निर्विष्टकायिका अनुपारिहारिकाः। कल्पस्थितश्च कृतप्रस्तुततपसस्तदभेदाच्चारित्रमपि निर्विष्टकायिकम्। तत्र चत्वारो यतयः पारिहारिका अनुपारिहारिकाश्चत्वारः कल्पस्थितस्तु वाचनाचार्य एक इति नवको गणः। प्रथमसंहननो जन्मत आरभ्य जघन्यत एकोनत्रिंशद्वर्षो यतित्वमाश्रित्य विंशतिवर्ष उभयमनुसृत्योत्कृष्टतो देशोनपूर्वकोटिको गणगणनाश्रयणेन जघन्यतस्त्रिसंख्य उत्कृष्टतः शतशः पुरुषापेक्षया सप्तविंशतिसंख्यपुरुषा उत्कृष्टतः सहस्रशो जघन्यतोप्यवगाढनवमपूर्वतृतीयाचाराभिधानवस्त्ववसानदृष्टिवाद उत्कृष्टतोऽपरिपूर्णदशपूर्वो गच्छान्निर्गत्य तीर्थंकरस्य सन्निधानासेवितत्तत्तपसो वा सन्निधौ ग्रीष्मे जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदतो यथाक्रमं चतुर्थषष्ठाष्टमान्तं शिशिरे षष्ठाष्ठमदशमान्तं वर्षास्वष्टमदशमद्वादशमान्तं संसृष्टाऽसंसृष्टवर्जितोद्धृताल्पलेपावगृहीता भिक्षाग्रहभक्तपानात्मकभिक्षाद्वयाभिग्रहपवित्राचामाम्लपारणकं पारिहारिकानुपारिहारिककल्पस्थितापेक्षया प्रत्येकं षाण्मासावधि समुदितापेक्षयाष्टादशमासावसानमेतत्तपः प्रतिपद्यते। परं प्रथमं पारिहारिकैस्ततोऽनुपारिहारिकैः प्रतिपन्नपारिहारिकैः 'मावैरस्मिंस्तपसि पूर्णतां नीते कल्पस्थित इदं तपः करोति, शेषास्त्वनुपारिहारिककल्पस्थितत्वे प्रतिपद्यन्ते, एतत्तपःसमाप्तौ सर्वेप्यमी पुनरिदमेव जिनकल्पं गच्छं वा समाश्रयन्ति। तत्र ये भूयो गच्छमाना गच्छन्ति त इत्वराः शुद्धपारिहारिकास्तेषां संहरणोपसर्गातङ्कवेदनानामभाव एतत्तपःप्रभावादेव। ये तु जिनकल्पं प्रतिपद्यन्ते ते यावत्कथिकास्तेषां संहरणादयो भाज्याः। ततश्चैषामुभयेषां चारित्रं परिहारविशुद्धिकम्। सूक्ष्मः=किट्टीकृतलोभलक्षणः संपरायः=कषायो यत्र तत्सूक्ष्मसंपरायम्। इदं च विशुध्यमानकं क्षपकोपशमयश्रेणिद्वयमारोहतो भवति। संक्लिश्यमानकं तूपशमश्रेणितः प्रतिपततः। सर्वकषायेभ्योऽकषायचारित्रं शुद्धं भवतीति जिनसमये समाख्यातम्। ततो यथैवाख्यातं समये तथैव यच्चारित्रं तद्यथाख्यातम्। सर्वथैव कषायोदयशून्यमित्यर्थः। अहक्खायमिति तु 'कगचजतदपयवां प्रायो लुग्' इत्यनेन

बाहुलकादादित्थस्यापि यस्य लोपे निर्देशः, यद्वा 'अहसद्दो जाहत्थे आङोऽभिविहीऍ कहियमक्खायं। चरणमकसायमुइय तमहक्खाय अहक्खाय'॥ मिति च वचनादथशब्दो यथार्थः । ततोऽथैव= यथैवाऽकषायतयेत्यर्थः, आ=अभिविधिना-ऽऽख्यात=मुक्तमथाख्यातम् । इदं चोपशान्तमोह-क्षीणमोहसयोग्ययोगिकेवलिसम्बन्धितया चतुर्द्धा । इहच्छेदोपस्थापनीयादिविशेषाविवक्षया सामान्यं सामायिकमादा, उत्तरोत्तरविशुद्धाऽऽधारतयाच्छेदोपस्थापनीयादीनि क्रमेणोपन्यस्थानीति संयमाः । स्वामिनस्तु पुलाक-बकुश-प्रतिसेवनाकुशीला आद्यद्वितीयसंयमयोः, कषायकुशीलोन्त्य-वर्ज्जानाम् , निर्ग्रन्थस्नातकावन्त्यस्य । पुलाकादयस्तु पुलाकोद्देशकादवसेयाः । संयमविपक्षतया च 'संयमे' त्युद्देशसूचितौ संयमासंयमाऽसंयमरूपौ धर्मे धर्मिणि उपचाराद्देशयतायताबुक्तौ । व्याख्यास्यमानार्थं तत्र चोत्कृष्टतया देशयतः प्रथमं निर्दिष्टस्ततोऽयतः ॥१५॥

अच्चक्खुचक्खुओही केवलदंसणमओ य छल्लेसा ।
किण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा य सुक्का य ॥१६॥

(यशो.) इह दर्शनशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धादचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनमित्यादि द्रष्टव्यम् । तत्राच-क्षुषा=चक्षुर्वर्जेन्द्रियचतुष्टयेन मनसा च सामान्यविशेषात्मनो वस्तुनः सामान्यांशग्राही बोधोत्पा-दसमयेऽपि सद्भावेनेन्द्रियानाश्रितसामान्योपयोगमात्रं चाऽचक्षुर्दर्शनम् । चक्षुषोक्तरूपस्य वस्तुनः सामान्यांशग्रहणात्मकं दर्शनं चक्षुर्दर्शनम् । अवधिना=रूपिद्रव्यमर्यादयावधिरेव वा करणनिरपेक्ष-बोधरूपो दर्शनं सामान्यार्थोपादानमवधिदर्शनम् । केवलेन=सम्पूर्णवस्तुतत्त्वग्राहिबोधविशेषरूपेण दर्शनं वस्तुसामान्यांशग्रहणं केवलदर्शनम् । तत्र चाऽचक्षुर्दर्शनमेकेन्द्रियादीनामपि भवतीत्यवि-शिष्टत्वात्प्रथममचक्षुर्दर्शनम् । तत उत्तरोत्तरविशिष्टतया चक्षुर्दर्शनादीन्युक्तानि । अतो लेश्या विभज्यन्त इति शेषः । ताश्च कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लद्रव्यसान्निध्योपनीततत्तत्परिणाम-विशेषोदयासादितकृष्णनीलादिव्यपदेशभाजः षट् , 'मूलं साह पसाहा गुच्छफले भूमिपडियमक्खणया। सव्वं माणुसपुरिसे साउहजुज्झंतधणहरणा ॥' इति गाथोक्तजम्बूखादकग्रामघातकोदाहरणद्वय-प्रतीततात्पर्यार्थाः । तत्र प्रकर्षपदप्राप्ताशुद्धिकत्वेन प्रथमं कृष्णां लेश्यामुपदर्श्योत्तरोत्तराधिक-विशुद्धतयोक्तक्रमेण नीलाकापोताद्याः प्रदर्शिताः ॥१६॥

भव्वअभव्वा खउवसम खइय उवसमिय मीस सासाणा ।
मिच्छो य सन्नसन्नी आहारणहार इय भेया ॥१७॥

(यशो.)भव्या=मुक्त्यर्हास्तद्विपक्षतया ''भवे''त्युद्देशसूचिताश्चा-ऽभव्याः । इह भव्यानां भव्य-त्वमनादिकालसिद्धमेवमभव्यानामप्यभव्यत्वम् । इदं भव्यत्वमभव्यत्वं चानादिकालसंसिद्धमपि केवलिनां प्रत्यक्षसिद्धम् । चर्मचक्षुषामनुमानगम्यम् । लिङ्गं त्विदम्-यः संसारविपक्षं मोक्षंप्रतिप-

द्यते तदभिलाषं च सस्पृहं वहति, किमहं भव्योऽभव्यो वा, यदि भव्यस्तदा भव्यम्, अथाभव्यस्तदा धिग्मामित्यादि चिन्तयति कदाचित्स भव्य इति भव्यत्वस्येति। यस्य नेदृशी चिन्ता कदाचित्सोऽभव्य इत्यभव्यत्वस्येति। मिथ्यात्वमोहनीयस्योदीर्णस्य क्षयादनुदीर्णस्यानुविपाकत उपशान्तत्वात् क्षयोपशमाभ्यां निर्वृत्तं क्षायोपशमिकम्। अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयक्षयपूर्वकेण सम्यक्त्वमिश्रमिथ्यात्वरूपस्य दर्शनत्रिकस्य विशुद्धा-ऽध्यवसायात्सर्वथा दलिकनिर्लेपनाकरणरूपेण क्षयेण निर्वृत्तं क्षायिकम्। उदयमायातस्य मिथ्यात्वस्य क्षयेऽनुदीर्णस्य सत्तामात्रवर्तिनः प्रदेशतयाप्युदयविघातरूपेणोपशमेन निर्वृत्तमौपशमिकम्। तत्र संसारिणां क्षायिकापेक्षया प्रभूतकालभावित्वेनादौ क्षायोपशमिकस्य, ततः क्षायिकस्य, ताभ्यामप्यल्पकालत्वेनौपशमिकस्य पश्चान्निर्देश इति सम्यक्त्वानि। एतद्विपक्षतया "सम्मे"त्युद्देशसूचितानि मिश्र-सास्वादन-मिथ्यात्वादीनि वक्ष्यमाणार्थानि। तत्र मध्यस्थत्वादक्लिष्टतया मिश्रस्य, ततः क्लिष्टतया सास्वादनस्य, ततोऽतिक्लिष्टतया मिथ्यात्वस्य कथनम्। संज्ञिनो व्याकृतार्थास्तद्विपक्षतया चासंज्ञिनः "सन्नी"त्युद्देशसूचिता इति निर्दिष्टाः। आहारका अपि निर्दिष्टार्थास्तद्विपक्षतया चाऽऽ"हारे"त्युद्देशसूचितानामनाहारकाणां निर्देशः। इत्येवंरूपा उत्तरभेदा द्वाषष्टिमार्गणास्थानानां तेषाञ्च निजनिजस्थानापेक्षया निर्देशक्रमकारणानि यथामति दर्शितानि सूक्ष्मदृशा त्वन्यथाऽप्यूह्यानि ॥१७॥

सांप्रत्येतेषु जीवस्थानान्याह—

सुरनरए सन्निदुगं नरेसु तइओ असन्निपज्जत्तो।
तिरियगईए चउदस एगिंदिसु आइमा चउरो ॥१८॥

(यशो०) [··················[··················भेदा सुरनरकयोः=सुरनरकगत्योः संज्ञिद्वयं पर्याप्तकरणापर्याप्तरूपं··················नरकगत्यो··················वगर्भजम··················रदात्य...द्वमयं······त्य······। अ या संशय······पर्याप्तघटनीय··················स्य··················सं······का देस्तु नराणां जीवस्थानद्वयमत्यकार्ष।]("सुरनरए" इत्यादि, मार्गणास्थानेषु जीवभेदाः। सुरनरकयोः=सुरनरकगत्योः संज्ञिद्वयं=पर्याप्तकरणा-ऽपर्याप्तरूपं संज्ञिभेद द्वयम्, सुरनरकगत्योर्लब्ध्यपर्याप्तस्योत्पादाभावादिह करणा-ऽपर्याप्तस्य ग्रहणम्। "नरेसु" इत्यादि, नरेषु=मनुष्येषु प्राग्वत् संज्ञिद्विकम्, केवलमिहा-ऽपर्याप्तो लब्धिकरणभेदेन द्विविधोऽवगन्तव्यः, लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिनोऽपीह प्रवेशात्। तृतीयश्च जीवभेदो लब्ध्यपर्याप्तासंज्ञिपञ्चेन्द्रियलक्षणः प्राप्यते, वान्तपित्तादिसंमूर्छिममनुष्याणामसंज्ञिलब्ध्यपर्याप्तकत्वात्। तद्यथा—इह द्विविधा मनुष्याः, गर्भजमनुष्याः संमूर्छिममनुष्याश्च। तत्र गर्भजमनुष्येषु पर्याप्ता-ऽपर्याप्तसंज्ञिभेदद्वयम्, वान्तपित्तादिगतसंमूर्छिममनुष्येष्वपर्याप्तासंज्ञि-

बाहुलकादादिस्थस्यापि यस्य लोपे निर्देशः, यद्वा 'अहसद्दो जाहत्थे आओऽभिविहीएँ कहियमक्खायं। चरणमकसायमुइय तमहक्खाय अहक्खाय'॥ मिति च वचनादथशब्दो यथार्थः । ततोऽथैव= यथैवाऽकषायतयेत्यर्थः, आ=अभिविधिना-ऽऽख्यात=मुक्तमथाख्यातम् । इदं चोपशान्तमोह-क्षीणमोहसयोग्ययोगिकेवलिसम्बन्धितया चतुर्द्धा । इहच्छेदोपस्थापनीयादिविशेषाविवक्षया सामान्यं सामायिकमादावुत्तरोत्तरविशुद्धाऽऽधारतयाच्छेदोपस्थापनीयादीनि क्रमेणोपन्यस्थानीति संयमाः । स्वामिनस्तु पुलाक-बकुश-प्रतिसेवनाकुशीला आद्यद्वितीयसंयमयोः, कषायकुशीलोन्त्य-वर्ज्जानाम्, निर्ग्रन्थस्नातकावन्त्यस्य । पुलाकादयस्तु पुलाकोद्देशकादवसेयाः । संयमविपक्षतया च 'संयमे' त्युद्देशसूचितौ संयमासंयमाऽसंयमरूपौ धर्मे धर्मिणि उपचाराद्देशयतायताबुक्तौ । व्याख्यास्यमानार्थं तत्र चोत्कृष्टतया देशयतः प्रथमं निर्दिष्टस्ततोऽयतः ॥१५॥

अच्चक्खुचक्खुओही केवलदंसणमओ य छल्लेसा ।
किण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा य सुक्का य ॥१६॥

(यशो.) इह दर्शनशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धादचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनमित्यादि द्रष्टव्यम् । तत्राच-क्षुषा=चक्षुर्वर्जेन्द्रियचतुष्टयेन मनसा च सामान्यविशेषात्मनो वस्तुनः सामान्यांशग्राही बोधोत्पा-दसमयेऽपि सद्भावेनेन्द्रियानाश्रितसामान्योपयोगमात्रं चाऽचक्षुर्दर्शनम् । चक्षुषोक्तरूपस्य वस्तुनः सामान्यांशग्रहणात्मकं दर्शनं चक्षुर्दर्शनम् । अवधिना=रूपिद्रव्यमर्यादयावधिरेव वा करणनिरपेक्ष-बोधरूपो दर्शनं सामान्यार्थोपादानमवधिदर्शनम् । केवलेन=सम्पूर्णवस्तुतत्त्वग्राहिबोधविशेषरूपेण दर्शनं वस्तुसामान्यांशग्रहणं केवलदर्शनम् । तत्र चाऽचक्षुर्दर्शनमेकेन्द्रियादीनामपि भवतीत्यवि-शिष्टत्वात्प्रथममचक्षुर्दर्शनम् । तत उत्तरोत्तरविशिष्टतया चक्षुर्दर्शनादीन्युक्तानि । अतो लेश्या विभज्यन्त इति शेषः । ताश्च कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लद्रव्यसाचिव्योपनीततत्तत्परिणाम-विशेषोदयासादितकृष्णनीलादिव्यपदेशभाजः षट्, 'मूलं साह पसाहा गुच्छ फले भूमिपडियमक्खणया । सव्वं माणुसपुरिसे साउहजुज्झंतधणहरणा ॥' इति गाथोक्तजम्बूखादकग्रामघातकोदाहरणद्वय-प्रतीततात्पर्यार्थाः । तत्र प्रकर्षपदप्राप्ताशुद्धिकत्वेन प्रथमं कृष्णां लेश्यामुपदर्श्योत्तरोत्तराधिक-विशुद्धतयोक्तक्रमेण नीलाकापोताद्याः प्रदर्शिताः ॥१६॥

भव्वअभव्वा खउवसम खइय उवसमिय मीस सासाणा ।
मिच्छो य सन्नसन्नी आहारणहार इय भेया ॥१७॥

(यशो.)भव्या=मुक्त्यर्हास्तद्विपक्षतया "भवे"त्युद्देशसूचिताश्चा-ऽभव्याः । इह भव्यानां भव्य-त्वमनादिकालसिद्धमेवमभव्यानामप्यभव्यत्वम् । इदं भव्यत्वमभव्यत्वं चानादिकालसंसिद्धमपि केवलिनां प्रत्यक्षसिद्धम् । चर्मचक्षुषामनुमानगम्यम् । लिङ्गं त्विदम्-यः संसारविपक्षं मोक्षंप्रतिप-

(यशो०) अवधिद्विकमवधिज्ञानमवधिदर्शनं च, त्रीणि सम्यक्त्वानिऽऔपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकरूपाणि, एतेषु च मत्यादिष्वेकादशसु स्थानेषु पर्याप्तकरणापर्याप्तसंज्ञिलक्षणे द्वे जीवस्थाने तत्र करणापर्याप्तरूपं जीवस्थानमेतेषु देवादिभ्यः समागत्य मनुष्यादौ प्रथमं समुत्पन्नस्य। नवरं रत्नप्रभायां भुवनपतिव्यन्तरेषु चासंज्ञिभ्य उत्पद्यमानस्यापर्याप्तस्य विभङ्गो न लभ्यते। संज्ञिभ्यः पुनरपर्याप्तस्यापि भवतीति विभङ्गे विशेषो दृश्यः। पर्याप्तसंज्ञिरूपं प्रतीतम्। यद्यप्यौपशमिके पर्याप्त एव संज्ञी सङ्गतिमङ्गति अपर्याप्तस्य संज्ञिन औपशमिकाभावात्। तथा ह्यसावपर्याप्तदशायां तावदिदं तथाविधविशुद्ध्यभावान्नोत्पादयितुं समर्थः। पारभविकं तु नोपपत्तिसहम्। यतो यो-ऽनादिमिथ्यादृक् तत्प्रथमतया औपशमिकमाप्नोति, न स तद्भावमापन्नः कालं करोति। यत उक्तम्—

"अणबन्धोदय २, माउगबंधं ३ कालं च ४ सासणो कुणइ। उवसमसम्मद्दिट्ठी चउण्हमेक्कं पि नो कुणइ" त्ति।

न चोपशमश्रेणीमृत्वाऽनुत्तरसुरेषूत्पद्यमानस्यापर्याप्तस्यैतत्प्राप्यत इति प्रतिपादयितुं सांप्रतम्, तस्य प्रथमसमय एव सम्यक्त्वपुद्गलोदयात्। उक्तं च— जो उवसमसम्मद्दिट्ठी उवसमसेढीए कालं करेइ, सो पढमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उदयावलियाए छोढूण सम्मत्तपुग्गले वेएइ, तेण न उवसमसम्मद्दिट्ठी अपज्जत्तगो लब्भइ।" इति निश्चयनयपरशतकमतम् तथापि व्यवहारनयपरपञ्चसंग्रहादिमतमवलम्ब्यात्रौपशमिकसम्यग्दृष्टेः संज्ञ्यपर्याप्तो-ऽप्यभिहितः, यतस्तत्र-ऽवक्तव्यस्य सर्वथोपशान्तये मोहस्योदया अवक्तव्योदया मोहस्यैव नानाजीवापेक्षया पञ्चाभिहिता एक-षट्-सप्ताष्टनवोदयरूपाः। तत्रैकोदयो लोभस्यैकस्योदयोऽद्धाक्षये उपशमश्रेणेः प्रतिपतितः सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमयेऽवाप्यते। शेषाश्चत्वारो भवक्षय एव। यत उपशान्तस्य सत आयुःक्षयादनुत्तरसुरेषु प्रथमसमय उत्पद्यमानस्य लभ्यन्ते। तत्रानन्तानुबन्धिशेषकषायत्रयहास्यरतिपुरुषवेदानाषडुदयः षडुदयः। भयेन वा जुगुप्सया वा वेदकेन वा क्षिप्तेन त्रिधा सप्तोदयः। भयजुगुप्सयोर्भयवेदकयोर्वा जुगुप्सावेदकयोर्वाऽऽक्षिप्तयोस्त्रिधाष्टोदयः। तत्रैकषडुदयो द्वौ सप्तोदयौ वेदकवन्ध्यावेकोऽष्टोदयो वेदकविकल इति चत्वार उदया औपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च सम्भवन्ति। तत उपशान्तः कालगत औपशमिकसम्यग्दृष्टिः संज्ञ्यपर्याप्तोऽपि लभ्यते। न च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरेव वेदकरहिता उदया इति वाच्यम्। तत्र पृथग्विवक्षाया अभावात्। कर्मसप्ततिकाचूर्ण्यां च 'छल्लोदओ उवसमसम्मद्दिट्ठिस्स वा खाइगसम्मदिट्ठिस्स वे' त्यादेर्व्यक्तमेव भणनाद्युक्तमुक्तं सूत्रकृतौपशमिकसम्यक्त्वे संज्ञ्यपर्याप्तोऽपि भवतीति ॥२२॥

मणपज्जवकेवलदुगसंजयदेसजयमीसदिट्ठीसु ।
सन्नी पज्जो चक्खुंमि तिन्नि छ व पज्जियरचरमा ॥२३॥

(यशो०) अत्र गुणगुणिनोरभेदोपचारादिह संयतशब्देन संयमः सामायिकादिः पञ्चविधोऽपि

पञ्चेन्द्रियरूपस्तृतीयो जीवभेदो-ऽप्यत्राप्यते । नन्वन्यत्र बन्धशतक-बन्धस्वामित्व-पञ्चसंग्रहादिषु ग्रन्थेषु नराणां जीवस्थानद्वयमेवोदितम्, तत्कथं घटनीयमिति चेत्, सत्यम्,) तत्र मनुष्यपर्याप्तक-णात्संक्लिष्टत्वाच्च सम्मूर्च्छजनरास्तिर्यग्ग्रहणेन गृहीता इत्येके; अपर्याप्तका एवामी कालं कुर्वन्तीत्यल्पकालत्वान्न विवक्षिता इत्यपरे मन्यन्त इति । तिर्यग्गतौ चतुर्दश, एकेन्द्रियादीनां संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्तानां सभेदानां व्यापकत्वात्स्याः । एकेन्द्रियेषु पृथिव्यादिषु सूक्ष्मबादरात्मकानि पर्याप्ता-ऽपर्याप्तभेदानि चत्वारि जीवस्थानानि ॥१८॥

वितिचउरिंदिसु दो दो अंतिमचउरो पणिंदिसु हवन्ति ।
थावरपणगे पढमा चउरो चरमा दस तसेसु ॥ १९॥

(यशो०) द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियेषु द्वे द्वे पर्याप्तापर्याप्तरूपे जीवस्थाने, शेषाणामसम्भवात् । पञ्चेन्द्रियेष्वन्त्यानि चत्वारि संज्ञ्यसंज्ञि-पर्याप्ता-ऽपर्याप्तलक्षणानि । उष्माद्यभितप्ता अपि स्थानशीलाः स्थावराः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिरूपास्तेषां पञ्चके सूक्ष्म-बादरापर्याप्ता-ऽपर्याप्तरूपाणि प्रथमानि चत्वारि । त्रस्यन्त्युष्माद्यभितप्तास्तस्मादुद्विजन्ते च्छायाद्यभिसर्पन्तीति त्रसा द्वीन्द्रियादयस्तेष्वन्त्यानि (पर्याप्ता-ऽ) पर्याप्तसूक्ष्मबादररहितानि दश ॥१९॥

विगलतियसन्निसन्नी पज्जत्ता पंच हुंति वयजोगे ।
मणजोगे सन्निक्को पुमित्थिवेए चरिमचउरो ॥२०॥

(यशो०) "पदेकदेशे पदसमुदाय" इतिन्यायाद्विकला=विकलेन्द्रिया=अपरिपूर्णेन्द्रिया=द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियास्तेषां त्रिकं चासंज्ञी (च) संज्ञी च विभक्तिलोपाद्विकलत्रिकासंज्ञिसंज्ञिनः पर्याप्ताः पञ्चवचनयोगे, न शेषाणि, तेषु वाग्योगाभावात् । मनोयोगे एकः संज्ञी पर्याप्तः, तत्रैव मनसः सद्भावात् । पुंवेद स्त्री-वेदयोश्चरमाणि पर्याप्तकरणापर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिरूपाणि जीवस्थानानि । लब्ध्यपर्याप्तस्तु सर्वोपि नपुंसक एव । यच्चात्रासंज्ञिनि स्त्रीपुंसाभिधानं तत् स्त्रीपुरुषाकारमात्रमङ्गीकृत्य कार्मग्रन्थिकमतेन । सिद्धान्तमतेन त्वसंज्ञी द्विविधोऽपि नपुंसक एव ॥२०॥

काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणअविरयअचक्खू ।
आइतिलेसा भव्वियरमिच्छआहारगे सव्वे ॥ २१ ॥
मइसुयओहिदुगविभंगपम्हसुक्कासु तिसु य सम्मेसु ।
सन्निम्मि य दो ठाणा सन्निअपज्जत्तपज्जत्ता ॥ २२ ॥

---

१. "विगलतिऊसन्नि" इत्यपि पाठः । २. "होंति वइ०" इत्यपि । ३. सन्नेक्को ।

(यशो०) अवधिद्विकमवधिज्ञानमवधिदर्शनं च, त्रीणि सम्यक्त्वानि क्षायोपशमिक-क्षायि-कौपशमिकरूपाणि, एतेषु च मत्यादिष्वेकादशसु स्थानेषु पर्याप्तकरणापर्याप्तसंज्ञिलक्षणं द्वे जीव-स्थाने तत्र करणापर्याप्तरूपं जीवस्थानमेतेषु देवादिभ्यः समागत्य मनुष्यादौ प्रथमं समुत्पन्नस्य । नवरं रत्नप्रभायां भुवनपतिव्यन्तरेषु चासंज्ञिभ्य उत्पद्यमानस्यापर्याप्तस्य विभङ्गो न लभ्यते । संज्ञिभ्यः पुनरपर्याप्तस्यापि भवतीति विभङ्गे विशेषो द्रष्टव्यः । पर्याप्तसंज्ञिरूपं प्रतीतम् । यद्यप्यौप-शमिके पर्याप्त एव संज्ञी सङ्गतिमङ्गति अपर्याप्तस्य संज्ञिन औपशमिकाभावात् । तथा ह्यनाद-पर्याप्तदशायां तावदिदं तथाविधविशुद्ध्यभावान्नोत्पादयितुं समर्थः । पारभविकं तु नोपपत्तिसहम् । यतो यो-ऽनादिमिथ्यादृक् तत्प्रथमतया औपशमिकमाप्नोति, न स तद्भावमापन्नः कालं करोति । यत उक्तम्—

"अणबन्धोदय २, माउगबंधं ३ कालं च ४ सासणो कुणइ । उवसमसम्मदिट्ठी चउण्हमेक्कं पि नो कुणइ" त्ति ।

न चोपशमश्रेणिमूर्त्वाऽनुत्तरसुरेषूत्पद्यमानस्यापर्याप्तस्यैतत्प्राप्यत इति प्रतिपादयितुं-सांप्रतम्, तस्य प्रथमसमय एव सम्यक्त्वपुद्गलोदयात् । उक्तं च— जो उवसमसम्मदिट्ठी उवसमसेढीए कालं करेइ, सो पढमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उदयावलियाए छोढूण सम्मत्तपुग्गले वेएइ, तेण न उवसमसम्मदिट्ठी अपज्जत्तगो लब्भइ।" इति निश्चयनयपरशतकमतम् तथापि व्यवहारनयपर-पञ्चसंग्रहाभिमतमवलम्ब्यात्रौपशमिकसम्यग्दृष्टेः संज्ञ्यपर्याप्तो-ऽप्यभिहितः, यतस्तत्र-ऽत्यन्तमस्य सर्वथोपशान्तये मोहस्योदया अवक्तव्योदया मोहस्यैव नानाजीवापेक्षया पञ्चाभिहिता एक-षट्-सप्ताष्टनवोदयरूपाः । तत्रैकोदयो लोभस्यैकस्योदयोऽद्धाक्षये उपशमश्रेणेः प्रतिपतितः सूक्ष्म-संपरायप्रथमसमयेऽवाप्यते । शेषाश्चत्वारो भवक्षय एव । यत उपशान्तस्य सत आयुःक्षयाद-नुत्तरसुरेषु प्रथमसमय उत्पद्यमानस्य लभ्यन्ते । तत्रानन्तानुबन्धिशेषकषायत्रयहास्यरति-पुरुषवेदानामुदयः षडुदयः । भयेन वा जुगुप्सया वा वेदकेन वा क्षिप्तेन त्रिधा सप्तोदयः । भयजुगुप्सयोर्भयवेदकयोर्वा जुगुप्सावेदकयोर्वाऽऽक्षिप्तयोस्त्रिधाष्टोदयः । तत्रैकषडुदयो द्वौ सप्तो-दयौ वेदकवर्ज्या वेकोऽष्टोदयो वेदकविकल इति चत्वार उदया औपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिक-सम्यग्दृष्टेश्च सम्भवन्ति । तत उपशान्तः कालगत औपशमिकसम्यग्दृष्टिः संज्ञ्यपर्याप्तोऽपि लभ्यते । न च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरेव वेदकरहिता उदया इति वाच्यम् । तत्र पृथग्विवक्षाया अभावात् । कर्मसप्ततिकाचूर्ण्यां च 'छक्कोदओ उवसमसम्मद्दिट्ठिस्स वा खाइगसम्मद्दिट्ठिस्स वे' त्यादेर्व्यक्तस्यैव भणनाद्युक्तमुक्तं सूत्रकृतौपशमिकसम्यक्त्वे संज्ञ्यपर्याप्तोऽपि भवतीति ॥२२॥

मणपज्जवकेवलदुगसंजयदेसजयमीसदिट्ठीसु ।
सन्नी पज्जो चक्खुंमि तिन्नि छ व पज्जियरचरमा ॥२३॥

(यशो०) अत्र गुणगुणिनोरभेदोपचारादिह संयतशब्देन संयमः सामायिकादिः पञ्चविधोऽपि

पञ्चेन्द्रियरूपस्तृतीयो जीवभेदोऽप्यवाप्यते । नन्वन्यत्र बन्धशतक-बन्धस्वामित्व-पञ्चसंग्रहादिषु ग्रन्थेषु नराणां जीवस्थानद्वयमेवोदितम्, तत्कथं घटनीयमिति चेत्, सत्यम्,) तत्र मनुष्यवर्यावर- णात्संक्लिष्टत्वाच्च सम्मूर्च्छजनरास्तिर्यग्ग्रहणेन गृहीता इत्येके; अपर्याप्तका एवामी कालं कुर्व- न्तीत्यल्पकालत्वान्न विवक्षिता इत्यपरे मन्यन्त इति । तिर्यग्गतौ चतुर्दश, एकेन्द्रियादीनां संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्तानां सभेदानां व्यापकत्वादस्याः । एकेन्द्रियेषु पृथिव्यादिषु सूक्ष्मबादरात्म- कानि पर्याप्ता-ऽपर्याप्तभेदानि चत्वारि जीवस्थानानि ॥१८॥

वितिचउरिंदिसु दो दो अंतिमचउरो पणिंदिसु हवन्ति ।
थावरपणगे पढमा चउरो चरमा दस तसेसु ॥ १९॥

(यशो०) द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियेषु द्वे द्वे पर्याप्तापर्याप्तरूपे जीवस्थाने. शेषाणामसम्भ- वात् । पञ्चेन्द्रियेष्वन्त्यानि चत्वारि संज्ञ्यसंज्ञि-पर्याप्ता-ऽपर्याप्तलक्षणानि । उष्माद्यभितप्ता अपि स्थानशीलाः स्थावराः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिरूपास्तेषां पञ्चके सूक्ष्म-बादरापर्याप्ता-ऽपर्याप्त- रूपाणि प्रथमानि चत्वारि । त्रस्यन्त्युष्माद्यभितप्तास्तस्मादुद्विजन्ते च्छायाद्यभिसर्प्पन्तीति त्रसा द्वीन्द्रियादयस्तेष्वन्त्यानि (पर्याप्ता-ऽ) पर्याप्तसूक्ष्मबादररहितानि दश ॥१९॥

विगलतियसन्निसन्नी पज्जत्ता पंच हुंति वयजोगे ।
मणजोगे सन्निक्को पुमित्थिवेए चरिमचउरो ॥२०॥

(यशो०) "पदेकदेशे पदसमुदाय" इतिन्यायाद्विकला=विकलेन्द्रिया=अपरिपूर्णेन्द्रिया=द्वीन्द्रिय- त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियास्तेषां त्रिकं चासंज्ञी (च) संज्ञी च विभक्तिलोपाद्विकलत्रिकासंज्ञिसंज्ञिनः पर्याप्ताः पञ्चवचनयोगे, न शेषाणि, तेषु वाग्योगाभावात् । मनोयोगे एकः संज्ञी पर्याप्तः, तत्रैव मनसः सद्भावात् । पुंवेद स्त्री-वेदयोश्चरमाणि पर्याप्तकरणापर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिरूपाणि जीवस्थानानि । लब्ध्यपर्याप्तस्तु सर्वोऽपि नपुंसक एव । यच्चात्रासंज्ञिनि स्त्रीपुंसाभिधानं तत् स्त्रीपुरुषाकारमात्र- मङ्गीकृत्य कार्मग्रन्थिकमतेन । सिद्धान्तमतेन त्वसंज्ञी द्विविधोऽपि नपुंसक एव ॥२०॥

काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणअविरयअचक्खू ।
आइतिलेसा भव्वियरमिच्छआहारगे सव्वे ॥ २१ ॥
मइसुयओहिदुगविभंगपम्हसुक्कासु तिसु य सम्मेसु ।
सन्निम्मि य दो ठाणा सन्निअपज्जत्तपज्जत्ता ॥ २२ ॥

१. "विगलतिऊसन्नि" इत्यपि पाठः । २. "होंति वइ०" इत्यपि । ३. सन्नेक्को ।

(यशो०) अवधिद्विकमवधिज्ञानमवधिदर्शनं च, त्रीणि सम्यक्त्वानि क्षायोपशमिक-क्षायिकौ-पशमिकरूपाणि, एतेषु च मत्यादिष्वेकादशसु स्थानेषु पर्याप्तकरणापर्याप्तसंज्ञिलक्षणे द्वे जीवस्थाने तत्र करणापर्याप्तरूपं जीवस्थानमेतेषु देवादिभ्यः समागत्य मनुष्यादौ प्रथमं समुत्पन्नस्य । नवरं रत्नप्रभायां भुवनपतिव्यन्तरेषु चासंज्ञिभ्य उत्पद्यमानस्यापर्याप्तस्य विभङ्गो न लभ्यते । संज्ञिभ्यः पुनरपर्याप्तस्यापि भवतीति विभङ्गे विशेषो द्रष्टव्यः । पर्याप्तसंज्ञिरूपं प्रतीतम् । यद्यप्यौपशमिके पर्याप्त एव संज्ञी सङ्गतिमङ्गति अपर्याप्तस्य संज्ञिन औपशमिकाभावात् । तथा ह्यभावपर्याप्तदशायां तावदिदं तथाविधविशुद्ध्यभावान्नोत्पादयितुं समर्थः । पारभविकं तु नोपपत्तिसहम् । यतो योऽनादिमिथ्यादृष्टिः तत्प्रथमतया औपशमिकमाप्नोति, न स तद्भावमापन्नः कालं करोति । यत उक्तम्—

"अणबन्धोदय २, माउगबंधं ३ कालं च ४ सासणो कुणइ । उवसमसम्मद्दिट्ठी चउण्हमेक्कं पि नो कुणइ" त्ति।

न चोपशमश्रेणेर्मृत्वाऽनुत्तरसुरेषूत्पद्यमानस्यापर्याप्तस्यैतत्प्राप्यत इति प्रतिपादयितुं सांप्रतम्, तस्य प्रथमसमय एव सम्यक्त्वपुद्गलोदयात् । उक्तं च— जो उवसमसम्मद्दिट्ठी उवसमसेढीए कालं करेइ, सो पढमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उदयावलियाए छोढूण सम्मत्तपुग्गले वेएइ, तेण न उवसमसम्मद्दिट्ठी अपज्जत्तगो लब्भइ।" इति निश्चयनयपरशतकमतम् तथापि व्यवहारनयपरपञ्चसंग्रहादिमतमवलम्ब्यात्रौपशमिकसम्यग्दृष्टेः संज्ञ्यपर्याप्तोऽप्यभिहितः, यतस्तत्राऽवक्तव्यस्य सर्वथोपशान्तये मोहस्योदया अवक्तव्योदया मोहस्यैव नानाजीवापेक्षया पञ्चाभिहिता एक-षट्-सप्ताष्टनवोदयरूपाः । तत्रैकोदयो लोभस्यैकस्योदयोऽद्धाक्षये उपशमश्रेणेः प्रतिपततः सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमयेऽवाप्यते । शेषाश्चत्वारो भवक्षय एव । यत उपशान्तस्य सत आयुःक्षयादनुत्तरसुरेषु प्रथमसमय उत्पद्यमानस्य लभ्यन्ते । तत्रानन्तानुबन्धिशेषकषायत्रयहास्यरतिपुरुषवेदानामुदयः षडुदयः । भयेन वा जुगुप्सया वा वेदकेन वा क्षिप्तेन त्रिधा सप्तोदयः । भयजुगुप्सयोर्भयवेदकयोर्वा जुगुप्सावेदकयोर्वाऽऽक्षिप्तयोस्त्रिधाष्टोदयः । तत्रैकषडुदयो द्वौ सप्तोदयौ वेदकवन्ध्यावेकोऽष्टोदयो वेदकविकल इति चत्वार उदया औपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च सम्भवन्ति । तत उपशान्तः कालगत औपशमिकसम्यग्दृष्टिः संज्ञ्यपर्याप्तोऽपि लभ्यते । न च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरेव वेदकरहिता उदया इति वाच्यम् । तत्र पृथग्विवक्षाया अभावात् । कर्मसप्ततिकाचूर्णौ च 'छलोदओ उवसमसम्मद्दिट्ठिस्स वा खाइगसम्मदिट्ठिस्स वे" त्यादेर्व्यक्तमेव भणनाद्युक्तमुक्तं सूत्रकृतौपशमिकसम्यक्त्वे संज्ञ्यपर्याप्तोऽपि भवतीति ॥२२॥

मणपज्जवकेवलदुगसंजयदेसजयमीसदिट्ठीसु ।
सन्नी पज्जो चक्खुंमि तिन्नि छ व पज्जियरचरमा ॥२३॥

(यशो०) अत्र गुणगुणिनोरभेदोपचारादिह संयतशब्देन संयमः सामायिकादिः पञ्चविधोऽपि

परिगृहीतस्तत एतेषु मनःपर्यवादिषु पर्याप्तसंज्ञिरूपमेकं जीवस्थानम् । केवली च यद्यपि न संज्ञी-नाप्यसंज्ञीति प्रतीतस्तथापि द्रव्यमनोयोगादिह संज्ञित्वेन विवक्षितः । चक्षुर्दर्शने त्रीणि पर्याप्त-चतुरिन्द्रिया-ऽसंज्ञि-संज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि षड् वा चरमाणि पर्याप्तेतराणि पर्याप्तकरणापर्याप्त-चतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिरूपाणि । यतः केचिदिन्द्रियपर्याप्तिमात्रपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शन-मभ्युपगच्छन्ति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे बायराइ छ अपज्जसन्निपज्जा य ।
तेउल्लेसे बायरअपजत्ता दुविहसन्नी य ॥२४॥

(यशो०) तुरेवार्थः, ततो-ऽयमर्थःसासादनभावे मृतस्य बद्धायुषो बादरादिषूत्पद्यमानस्य सासादनमवाप्यतेऽतः सासादने बादरादीनि संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्तानि करणापर्याप्तरूपाणि षट्, पर्याप्तसंज्ञिरूपं चेति सप्तैव । तथा ईशानान्तजघन्यायुर्देवेभ्यश्च्युतस्य शुभपृथिव्युदकवनस्पतेः पञ्चेन्द्रियेषूत्पन्नस्य करणापर्याप्तस्य प्राग्भवभाविनी पर्याप्तपञ्चेन्द्रियस्य तद्भवभाविनी तेजोलेश्या भवतीति तेजोलेश्यायां करणापर्याप्तबादरसंज्ञिरूपे पर्याप्तसंज्ञिरूपं चेति त्रीणि ॥२४॥

असन्नि आइ बारस अणहारे अट्ठ सत्त अपजत्ता ।
सन्नी पज्जत्तो तह इय [1]गइयाइसु जियट्ठाणा ॥२५॥

(यशो०) असंज्ञिनि मनोविज्ञानशून्ये एकेन्द्रियादौ "आई"ति विभक्तिलोपादाद्यानि द्वादश पर्याप्ताऽपर्याप्तसंज्ञिरहितानीत्यर्थः । अनाहारके सप्तापर्याप्तरूपाणि जीवस्थानानि विग्रहगताविति सा निरूप्यते । जन्तोर्मरणस्थानाद् भाविभवोत्पादस्थान एकसमयेन प्राञ्जलगमनमृजुगतिः, तद-पेक्षया वक्रत्वेन विलक्षणायाः श्रेणेर्ग्रहणं विग्रहस्तेन गतिर्विग्रहगतिः । सा द्विसमया एकवक्रा, यथा यदैशानकोणोपरिभागादाग्नेयकोणाधस्तनभागे कश्चिदुत्पद्यते, तदाद्ये समय 'ईशानकोणोप-रिभागादाग्नेयकोणोपरिभागं गत्वा तदधस्तनभागलक्षणस्योत्पत्तिस्थानस्य समश्रेणीं प्रतिपद्यते,-जीवपुद्गलयोरनुश्रेणिगमनादाद्यसमय एवोत्पत्तिस्थानाप्राप्तेः ततो द्वितीयसमये वक्रं विधाय तत्रोत्पत्तिस्थाने जन्तुरुत्पद्यत इति, अस्यां चैकवक्रायां द्विसमयायां विग्रहगतावाद्यसमये मुच्यमानं मुक्त = ममावीभूतमिति पूर्वशरीरस्य मुक्तत्वादग्रेतनस्याद्याप्यप्राप्तत्वादनाहारक इति क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदवादिनिश्चयनयानुगप्रज्ञप्त्यद्यागमानुसारिणः । क्रियाकालनिष्ठाका-लयोर्भेदवादिव्यवहारनयमतावलम्बितत्त्वार्थटीकाद्यनुसारिणस्तु मन्यन्ते—अत्राद्यसमयेऽप्यनाहार-कोऽसौ न भवति । प्राक्तनशरीरं ह्यत्र मुच्यमानममुक्तमत एवायं पूर्वभवचरमसमय एव,

---

१- "गइयाईसु जियठाणा" इति वा ।

न तु परभवप्रथमसमयः। पूर्वशरीरस्याद्यापि सद्भावात्तत्सद्भावे च न विद्यत आहारोऽस्येत्यनाहारक इति वक्तुमशक्यमेवेत्यनाहारको न भवति। इदं च मतद्वयमपि कथञ्चित्प्रमाणम्, मनद्वयमयत्वात् जिनशासनस्येति। द्वितीयसमये चाहारक इत्यत्रा-ऽविवादः। द्विवक्रा त्रिसमया, यथा यदा तस्मादेवेशानकोणोपरिभागान्नैरुतकोणाधस्तनप्रदेशे उत्पत्तिस्तदाद्यक्षणे चाग्नेयकोणोपरिभागं गच्छति, ततो द्वितीयक्षणे विग्रहेण नैरुतकोणोपरिभागं गच्छति, तृतीयक्षणे विग्रहेणैव तदधस्तनभागरूपमुत्पत्तिस्थानमासादयतीति। अत्रापि प्रागुक्तयुक्तेर्निश्चयनयमत आद्यक्षणद्वयेऽनाहारकः। व्यवहारनयमते तु प्रागुक्तोपपत्तेरेकस्मिन्नेव मध्यमे क्षणेऽनाहारको न त्वाद्यान्त्यक्षणयोरिति। तदेवं त्रसानामृजुगतिरेकवक्रा द्विवक्रा च विग्रहगतिरित्येतदेव गतित्रयं भवति। अथैकेन्द्रियाणामेव त्रिवक्रा चतुःसमया यथा यदा त्रसनाड्या बहिर्विदिग्व्यवस्थितस्य यस्य निगोदादेरधोलोकादूर्ध्वलोक उत्पादो नाड्या बहिरेव दिशि भवति, तदैकेन समयेनासौ विदिशो दिशमागत्य द्वितीयेन नाडीं प्रविश्य तृतीयेनोर्ध्वलोकं गत्वा चतुर्थेन नाडीतो निर्गत्योत्पत्तिस्थान उत्पद्यत इति। अत्रापि प्राग्वदेकीयमते नाडीं एषु त्रिषु समयेष्वनाहारकश्चतुर्थे त्वाहारकः। अन्यदीयमतेन तु मध्यमयोर्वक्रसमययोरेवानाहारको न त्वादिमान्तिमसमययोः। चतुर्वक्रा पञ्चसामायिकी, यथा यदा त्रसनाडी बहिर्विदिशस्तद्बहिर्विदिश्येवोत्पद्यते तदा भवति। अत्र स समयत्रयं पूर्ववदेव चतुर्थे तु समये नाडीतो बहिर्निर्गत्योत्पत्तिस्थानस्य समश्रेणीं प्रतिपद्यते, पञ्चमे तु नाडी बहिर्विदिग्लक्षणमुत्पत्तिस्थानमाप्नोति। अत्राप्येकमतेनाद्य-समयचतुष्टयेऽनाहारकः पञ्चमे त्वाहारकः। अन्यमतेन मध्यमे वक्रसमयत्रय एवानाहारको न तु प्रथमचरमसमययोरिति। मांडिपर्याप्तलक्षणं तु [बहिः] (जीव)स्थानं समुद्घाते। समुद्घातश्च सम्-शब्दस्यैकीभावार्थत्वाज्जीवस्य वेदनाद्यनुभवज्ञानेन सहैकीभावेन तदेकपरिणामात्मना उच्छब्दस्य प्राबल्यार्थत्वात्प्राबल्येन घातो=हननं बहूनां वेदनीयादिकर्मप्रदेशानां कालान्तरानुभवयोग्यानामुदीरणाकरणेनाकृष्योदयप्रक्षेपपुरस्सरमनुभूयनिर्जरणं=जीवप्रदेशैः सह सम्बद्धानां शातनमित्यर्थः। यद्वा समन्तादूर्ध्वं च हन्यन्ते क्षिप्यन्ते जीवप्रदेशा यत्रा-ऽसौ समुद्घातः। स च सप्तधा ; यदुक्तम्-

वेयण १ कषाय २ मारण ३ वेउव्विय ४ तेय ५ हार ६ केवलिया ७।
सगपण चउ तिन्निकमा मणु ७ सुर ५ नेरइय ४ तिरियाण ३॥"मिति।

* अस्या व्याख्या-तत्र यदा वेदनाभिभूतः कश्चित्प्रदेशाननन्तानन्तकर्मस्कन्धानुविद्धान् शरीराद्बहिः प्रक्षिपति, तैश्च जठरमुखादिशुषिराण्या ऽऽपूर्य विस्तारायामाभ्यां देहमानं क्षेत्रमभिव्याप्य तिष्ठति; तदा तस्य वेदनया=ऽसद्वेदनीयोदयप्रभवया पीडया समुद्घातो वेदनासमुद्घातः। अनेन च प्रभूतासातवेदनीयपुद्गलानां शातो भवति॥१॥ यदा तु तीव्रकषायोदयाकुलितः स्वप्रदेशान्बहिः क्षिप्त्वा स्वप्रदेशैरेव सर्वशुषि-

* अत्र प्रतिपादितसमुद्घातस्वरूपं जीवसमासश्रीमन्मलधारगच्छीयहेमचन्द्रसूरिवृत्त्यनुसारि।

परिगृहीतस्तत एतेषु मनःपर्यवादिषु पर्याप्तसंज्ञिरूपमेकं जीवस्थानम् । केवली च यद्यपि न संज्ञी-नाप्यसंज्ञीति प्रतीतस्तथापि द्रव्यमनोयोगादिह संज्ञित्वेन विवक्षितः । चक्षुर्दर्शने त्रीणि पर्याप्त-चतुरिन्द्रिया-ऽसंज्ञि-संज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि षड् वा चरमाणि पर्याप्तेतराणि पर्याप्तकरणापर्याप्त-चतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिरूपाणि । यतः केचिदिन्द्रियपर्याप्तिमात्रपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शन-मभ्युपगच्छन्ति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे बायराइ छ अपज्जसन्निपज्जा य ।
तेउल्लेसे बायरअपजत्तो दुविहसन्नी य ॥२४॥

(यशो०) तुरेवार्थः, ततो-ऽयमर्थःसासादनभावे मृतस्य बद्धायुषो बादरादिषूत्पद्यमानस्य सासादनमवाप्यतेऽतः सासादने बादरादीनि संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्तानि करणापर्याप्तिरूपाणि षट्, पर्याप्तसंज्ञिरूपं चेति सप्तैव । तथा ईशानान्तजघन्यायुर्देवेभ्यश्च्युतस्य शुभपृथिव्युदकवनस्पतेः पञ्चेन्द्रियेषूत्पन्नस्य करणापर्याप्तस्य प्राग्भवभाविनी पर्याप्तपञ्चेन्द्रियस्य तद्भवभाविनी तेजोलेश्या भवतीति तेजोलेश्यायां करणापर्याप्तबादरसंज्ञिरूपे पर्याप्तसंज्ञिरूपं चेति त्रीणि ॥२४॥

असन्नि आइ बारस अणहारे अट्ठ सत्त अपजत्ता ।
सन्नी पज्जत्तो तह इय [1]गइयाइसु जियट्ठाणा ॥२५॥

(यशो०) असंज्ञिनि मनोविज्ञानशून्ये एकेन्द्रियादौ "आई"ति विभक्तिलोपादाद्यानि द्वादश पर्याप्ताऽपर्याप्तसंज्ञिरहितानीत्यर्थः । अनाहारके सप्तापर्याप्तरूपाणि जीवस्थानानि विग्रहगताविति सा निरूप्यते । जन्तोर्मरणस्थानाद् भाविभवोत्पादस्थान एकसमयेन प्राञ्जलगमनमृजुगतिः, तद-पेक्षया वक्रत्वेन विलक्षणायाः श्रेणेर्ग्रहणं विग्रहस्तेन गतिर्विग्रहगतिः । सा द्विसमया एकवक्रा, यथा यदेशानकोणोपरिभागादाग्नेयकोणाधस्तनभागे कश्चिदुत्पद्यते, तदाद्ये समय 'ईशानकोणोप-रिभागादाग्नेयकोणोपरिभागं गत्वा तदधस्तनभागलक्षणस्योत्पत्तिस्थानस्य समश्रेणीं प्रतिपद्यते,-जीवपुद्गलयोरनुश्रेणिगमनादाद्यसमय एवोत्पत्तिस्थानाप्राप्तेः ततो द्वितीयसमये वक्रं विधाय तत्रोत्पत्तिस्थाने जन्तुरुत्पद्यत इति, अस्यां चैकवक्रायां द्विसमयायां विग्रहगतावाद्यसमये मुच्यमानं मुक्त=मभावीभूतमिति पूर्वशरीरस्य मुक्तत्वादग्रेतनस्याद्याप्यप्राप्तत्वादनाहारक इति क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदवादिनिश्चयनयानुगप्रज्ञप्त्यद्यागमानुसारिणः । क्रियाकालनिष्ठाका-लयोर्भेदवादिव्यवहारनयमतावलम्बितत्त्वार्थटीकाद्यनुसारिणस्तु मन्यन्ते—अत्राद्यसमयेऽप्यनाहार-कोऽसौ न भवति । प्राक्तनशरीरं ह्यत्र मुच्यमानममुक्तमत एवायं पूर्वभवचरमसमय एव,

---

१. "गइयाईसु जियठाणा" इति वा ।

न तु परभवप्रथमसमयः। पूर्वशरीरस्याद्यापि सद्भावात्तत्सद्भावे च न विद्यत आहारोऽस्येत्यनाहारक इति वक्तुमशक्यमेवेत्यनाहारको न भवति। इदं च मतद्वयमपि कथञ्चित्प्रमाणम्, मतद्वयमयत्वात् जिनशासनस्येति। द्वितीयसमये चाहारक इत्यत्रा-ऽविवादः। द्विवक्रा त्रिसमया, यथा यदा तस्मादेवैशानकोणोपरिभागान्नैरुतकोणाधस्तनप्रदेशे उत्पत्तिस्तदाद्यक्षणे वायव्यकोणोपरिभागं गच्छति, ततो द्वितीयक्षणे विग्रहेण नैरुतकोणोपरिभागं गच्छति, तृतीयक्षणे विग्रहेणैव तदधस्तनभागरूपमुत्पत्तिस्थानमासादयतीति। अत्रापि प्रागुक्तयुक्तेर्निश्चयनयमत आद्यक्षणद्वयेऽनाहारकः। व्यवहारनयमते तु प्रागुक्तोपपत्तेरेकस्मिन्नेव मध्यमे क्षणेऽनाहारको न त्वाद्यान्त्यक्षणयोरिति। तदेवं त्रसानामृजुगतिरेकवक्रा द्विवक्रा च विग्रहगतिरित्येतदेव गतित्रयं भवति। अथैकेन्द्रियाणामेव त्रिवक्रा चतुःसमया यथा यदा त्रसनाड्या बहिर्विदिग् व्यवस्थितस्य यस्य निगोदादेरधोलोकादूर्ध्वलोक उत्पादो नाड्या बहिरेव दिशि भवति, तदैकेन समयेनासौ विदिशो दिशमागत्य द्वितीयेन नाडीं प्रविश्य तृतीयेनोर्ध्वलोकं गत्वा चतुर्थेन नाडीतो निर्गत्योत्पत्तिस्थान उत्पद्यत इति। अत्रापि प्राग्वदेकीयमते नाडी एषु त्रिषु समयेष्वनाहारकश्चतुर्थे त्वाहारकः। अन्यदीयमतेन तु मध्यमयोर्वक्रसमययोरेवानाहारको न स्यादिमान्तिमसमययोः। चतुर्वक्रा पञ्चसामायिकी, यथा यदा त्रसनाडी बहिर्विदिशस्तद्बहिर्विदिश्येवोत्पद्यते तदा भवति। अत्र स समयत्रयं पूर्ववदेव चतुर्थे तु समये नाडीतो बहिर्निर्गत्योत्पत्तिस्थानस्य समश्रेणीं प्रतिपद्यते, पञ्चमे तु नाडी बहिर्विदिग्लक्षणमुत्पत्तिस्थानमाप्नोति। अत्राप्येकमतेनाद्यसमयचतुष्टयेऽनाहारकः पञ्चमे त्वाहारकः। अन्यमतेन मध्यमे वक्रसमयत्रय एवानाहारको न तु प्रथमचरमसमययोरिति। संज्ञिपर्याप्तलक्षणं तु [बहिः] (जीव)स्थानं समुद्घाते। समुद्घातश्च सम्शब्दस्यैकीभावार्थत्वाज्जीवस्य वेदनाद्यनुभवज्ञानेन सहैकीभावेन तदेकपरिणामात्मना उच्छब्दस्य प्राबल्यार्थत्वात्प्राबल्येन घातो=हननं बहूनां वेदनीयादिकर्मप्रदेशानां कालान्तरानुभवयोग्यानामुदीरणाकरणेनाकृष्योदयप्रक्षेपपुरस्सरमनुभूयनिर्जरणं=जीवप्रदेशैः सह सम्बद्धानां शातनमित्यर्थः। यद्वा समन्तादूर्ध्वं च हन्यन्ते क्षिप्यन्ते जीवप्रदेशा यत्रा-ऽसौ समुद्घातः। स च सप्तधा। यदुक्तम्-

वेयण १ कषाय २ मारण ३ वेउव्विय ४ तेय ५ हार ६ केवलिया ७।
सगपण चउ तिन्निकमा मणु ७ सुर ५ नेरइय ४ तिरियाण ३॥"मिति।

* अस्या व्याख्या-तत्र यदा वेदनाभिभूतः कश्चित्प्रदेशाननन्तानन्तकर्मस्कन्धानुविद्धान् शरीराद्बहिः प्रक्षिपति, तैश्च जठरमुखादिशुषिराण्या ऽऽपूर्य विस्तारायामाभ्यां देहमानं क्षेत्रमभिव्याप्य तिष्ठति, तदा तस्य वेदनया=ऽसद्वेदनीयोदयप्रभवया पीडया समुद्घातो वेदनासमुद्घातः। अनेन च प्रभूतासातवेदनीयपुद्गलानां घातो भवति॥१॥ यदा तु तीव्रकषायोदयाकुलितः स्वप्रदेशान्बहिः क्षिप्त्वा स्वप्रदेशैरेव सर्वशुषि-

* अत्र प्रतिपादितसमुद्घातस्वरूपं जीवसमासश्रीमन्मलधारगच्छीयहेमचन्द्रसूरिवृत्त्यनुसारि।

परिगृहीतस्तत एतेषु मनःपर्यवादिषु पर्याप्तसंज्ञिरूपमेकं जीवस्थानम् । केवली च यद्यपि न संज्ञी-नाप्यसंज्ञीति प्रतीतस्तथापि द्रव्यमनोयोगादिह संज्ञित्वेन विवक्षितः । चक्षुर्दर्शने त्रीणि पर्याप्त-चतुरिन्द्रिया-ऽसंज्ञि-संज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाणि षड् वा चरमाणि पर्याप्तेतराणि पर्याप्तकरणापर्याप्त-चतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिरूपाणि । यतः केचिदिन्द्रियपर्याप्तिमात्रपर्याप्तावस्थायामपि चक्षुर्दर्शन-मभ्युपगच्छन्ति ॥२३॥

सत्त उ सासाणे बायराइ छ अपज्जसन्निपज्जा य ।
तेउल्लेसे बायरअपजत्तो दुविहसन्नी य ॥२४॥

(यशो०) तुरेवार्थः, ततो-ऽयमर्थःसासादनभावे मृतस्य बद्धायुषो बादरादिषूत्पद्यमानस्य सासादनमवाप्यतेऽतः सासादने बादरादीनि संज्ञिपञ्चेन्द्रियान्तानि करणापर्याप्तरूपाणि षट्, पर्याप्तसंज्ञिरूपं चेति सप्तैव । तथा ईशानान्तजघन्यायुर्देवेभ्यश्च्युतस्य शुभपृथिव्युदकवनस्पतेः पञ्चेन्द्रियेषूत्पन्नस्य करणापर्याप्तस्य प्राग्भवभाविनी पर्याप्तपञ्चेन्द्रियस्य तद्भवभाविनी तेजोलेश्या भवतीति तेजोलेश्यायां करणापर्याप्तबादरसंज्ञिरूपे पर्याप्तसंज्ञिरूपं चेति त्रीणि ॥२४॥

अस्सन्नि आइ बारस अणहारे अट्ठ सत्त अपजत्ता ।
सन्नी पज्जत्तो तह इय [1]गइयाइसु जियट्ठाणा ॥२५॥

(यशो०) असंज्ञिनि मनोविज्ञानशून्ये एकेन्द्रियादौ "आई"ति विभक्तिलोपादाद्यानि द्वादश पर्याप्ताऽपर्याप्तसंज्ञिरहितानीत्यर्थः । अनाहारके सप्तापर्याप्तरूपाणि जीवस्थानानि विग्रहगताविति सा निरूप्यते । जन्तोर्मरणस्थानाद् भाविभवोत्पादस्थान एकसमयेन प्राञ्जलगमनमृजुगतिः, तद-पेक्षया वक्रत्वेन विलक्षणायाः श्रेणेर्ग्रहणं विग्रहस्तेन गतिर्विग्रहगतिः । सा द्विसमया एकवक्रा, यथा यदेशानकोणोपरिभागादाग्नेयकोणाधस्तनभागे कश्चिदुत्पद्यते, तदाद्ये समय ईशानकोणोप-रिभागादाग्नेयकोणोपरिभागं गत्वा तदधस्तनभागलक्षणस्योत्पत्तिस्थानस्य समश्रेणीं प्रतिपद्यते,-जीवपुद्गलयोरनुश्रेणिगमनादाद्यसमय एवोत्पत्तिस्थानाप्राप्तेः ततो द्वितीयसमये वक्रं विधाय तत्रोत्पत्तिस्थाने जन्तुरुत्पद्यत इति, अस्यां चैकवक्रायां द्विसमयायां विग्रहगतावाद्यसमये मुच्यमानं मुक्त=ममाविर्भूतमिति पूर्वशरीरस्य मुक्तत्वादग्रेतनस्याद्याप्यप्राप्तत्वादनाहारक इति क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदवादिनिश्चयनयानुगप्रज्ञप्त्यद्यागमानुसारिणः । क्रियाकालनिष्ठाका-लयोर्भेदवादिव्यवहारनयमतावलम्बितत्वार्थटीकाद्यनुसारिणस्तु मन्यन्ते—अत्राद्यसमयेऽप्यनाहार-कोऽसौ न भवति । प्राक्तनशरीरं ह्यत्र मुच्यमानममुक्तमत एवायं पूर्वभवचरमसमय एव,

---

१. "गइयाईसु जियठाणा" इति वा ।

न तु परभवप्रथमसमयः। पूर्वशरीरस्याद्यापि सद्भावात्तत्सद्भावे च न विद्यत आहारोऽस्येत्यनाहारक इति वक्तुमशक्यमेवेत्यनाहारको न भवति। इदं च मतद्वयमपि कथञ्चित्प्रमाणम्, मतद्वयमयत्वात् जिनशासनस्येति। द्वितीयसमये चाहारक इत्यत्रा-ऽविवादः। द्विवक्रा त्रिसमया, यथा यदा तस्मादेवेशानकोणोपरिभागान्नैरुतकोणाधस्तनप्रदेशे उत्पत्तिस्तदाद्यक्षणे चाग्नेयकोणोपरिभागं गच्छति, ततो द्वितीयक्षणे विग्रहेण नैरुतकोणोपरिभागं गच्छति, तृतीयक्षणे विग्रहेणैव तदधस्तनभागरूपमुत्पत्तिस्थानमासादयतीति। अत्रापि प्रागुक्तयुक्तेर्निश्चयनयमत आद्यक्षणद्वयेऽनाहारकः। व्यवहारनयमते तु प्रागुक्तोपपत्तेरेकस्मिन्नेव मध्यमे क्षणेऽनाहारको न त्वाद्यान्त्यक्षणयोरिति। तदेवं त्रसानामृजुगतिरेकवक्रा द्विवक्रा च विग्रहगतिरित्येतदेव गतित्रयं भवति। अथैकेन्द्रियाणामेव त्रिवक्रा चतुःसमया यथा यदा त्रसनाड्या बहिर्विदिग् व्यवस्थितस्य यस्य निगोदादेरधोलोकादूर्ध्वलोक उत्पादो नाड्या बहिरेव दिशि भवति, तदैकेन समयेनाधो विदिशो दिशमागत्य द्वितीयेन नाडीं प्रविश्य तृतीयेनोर्ध्वलोकं गत्वा चतुर्थेन नाडीतो निर्गत्योत्पत्तिस्थान उत्पद्यत इति। अत्रापि प्राग्वदेकीयमते नाडीं एषु त्रिपु समयेष्वनाहारकश्चतुर्थे त्वाहारकः। अन्यदीयमतेन तु मध्यमयोर्वक्रसमययोरेवानाहारको न त्वादिमान्तिमसमययोः। चतुर्वक्रा पञ्चसामायिकी, यथा यदा त्रसनाडी बहिर्विदिशस्तद्वहिर्विदिश्येवोत्पद्यते तदा भवति। अत्र स समयत्रयं पूर्ववदेव चतुर्थे तु समये नाडीतो बहिर्निर्गत्योत्पत्तिस्थानस्य समश्रेणीं प्रतिपद्यते, पञ्चमे तु नाडी बहिर्विदिग्लक्षणमुत्पत्तिस्थानमाप्नोति। अत्राप्येकमतेनाद्यसमयचतुष्टयेऽनाहारकः पञ्चमे त्वाहारकः। अन्यमतेन मध्यमे वक्रसमयत्रय एवानाहारको न तु प्रथमचरमसमययोरिति। संज्ञिपर्याप्तलक्षणं तु [बहिः] (जीव)स्थानं समुद्घाते। समुद्घातश्च सम्शब्दस्यैकीभावार्थत्वाज्जीवस्य वेदनाद्यनुभवज्ञानेन सहैकीभावेन तदेकपरिणामात्मना उच्छब्दस्य प्राबल्यार्थत्वात्प्राबल्येन घातो=हननं बहूनां वेदनीयादिकर्मप्रदेशानां कालान्तरानुभवयोग्यानामुदीरणाकरणेनाकृष्योदयप्रक्षेपपुरस्सरमनुभूयनिर्जरणं=जीवप्रदेशैःसह सम्बद्धानां शातनमित्यर्थः। यद्वा समन्तादूर्ध्वं च हन्यन्ते क्षिप्यन्ते जीवप्रदेशा यत्रा-ऽसौ समुद्घातः। स च सप्तधा; यदुक्तम्-

वेयण १ कषाय २ मारण ३ वेउव्विय ४ तेय ५ हार ६ केवलिया ७।
सगपण चउ तिन्निकमा मणु ७ सुर ५ नेरइय ४ तिरियाण ३॥" मिति।

* अस्या व्याख्या-तत्र यदा वेदनाभिभूतः कश्चित्प्रदेशाननन्तानन्तकर्मस्कन्धानुविद्धान् शरीराद्बहिः प्रक्षिपति, तैश्च जठरमुखादिशुषिराण्या-ऽऽपूर्य विस्तारायामाभ्यां देहमानं क्षेत्रमभिव्याप्य तिष्ठति; तदा तस्य वेदनया=ऽसद्वेदनीयोदयप्रभवया पीडया समुद्घातो वेदनासमुद्घातः। अनेन च प्रभूतासातवेदनीयपुद्गलानां शातो भवति॥१॥ यदा तु तीव्रकषायोदयाकुलितः स्वप्रदेशान्बहिः क्षिप्त्वा स्वप्रदेशैरेव सर्वशुषि-

* अत्र प्रतिपादितसमुद्घातस्वरूपं जीवसमासश्रीमन्मलधारगच्छीयहेमचन्द्रसूरिवृत्त्यनुसारि।

राण्या-ऽऽपूर्या-ऽऽयामविस्ताराभ्यां कायप्रमाणं क्षेत्रं व्याप्या ऽऽस्ते, तदा तस्य कषायैर्हेतुभिः समुद्घातः कषायसमुद्घातः । अनेन कषायमोहनीयपुद्गलानां शातो भवति ॥२॥ यदा कश्चिदन्तर्मुहूर्तशेषेष्वायुर्भिर्विष्कम्भबाहुल्याभ्यां शरीरमानमायामेन जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागमुत्कृष्टतोऽसंख्येययोजनानि शरीराद्बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य परभवे यत्र स्थाने स्वयमुत्पत्स्यते तत्र प्रक्षिपति, तदा तस्य मरणमेव प्राणिनामन्तकारित्वादन्तो मरणान्तस्तत्र भवो मारणान्तः समुद्घातः । एतेन चायुःकर्मपुद्गलानां शातो भवति ॥३॥ यदा कश्चिद्वैक्रियलब्धिमान् वैक्रियकरणकाले विष्कम्भबाहल्याभ्यां कायमानमायामेन जघन्यतोऽङ्गुलसंख्येयभागमुत्कृष्टतः संख्येयानि योजनानि शरीराद्बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य यथा स्थूलान्वैक्रियशरीरानामकर्मपुद्गलान्प्राग्बद्धान् शातयति * (तदा तस्य वैक्रियशरीरनामकर्मविषयः समुद्घातो वैक्रियसमुद्घातः, यद्वा वैक्रियशरीरकरणकालविषयः समुद्घातो वैक्रियसमुद्घातः ॥४॥ यदा कश्चित्तेजोनिसर्गलब्धिमान् क्रुद्धः साध्व्यादिः सप्ताष्टौ पदान्यवष्वष्क्य विष्कम्भबाहल्याभ्यां देहमानमायामेन तु जघन्यतो-ऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमुत्कृष्टतः पुनः संख्येयानि योजनान्यनन्ततैजसशरीरस्कन्धवेष्टितानां जीवप्रदेशानां दण्डं शरीराद्बहिः प्रक्षिपति, ततः क्रोधविषयीकृतं मनुष्यादि निर्दहति, तदा तस्य तेजोविषयः समुद्घातः तेजःसमुद्घातः । अनेन च प्रभूतांस्तैजःशरीरनामकर्मपुद्गलान् शातयति ॥५॥ यदा कश्चिदा-ऽऽहारकशरीरलब्धिमान्न चतुर्दशपूर्वविद् आहारकशरीरकरणकाले विष्कम्भबाहल्याभ्यां शरीरमानमायामेन जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभागमुत्कृष्टतस्तु संख्येयानि योजनानि शरीराद् बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य यथास्थूलान् प्रभूतानाहारकशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान् शातयति तदा तस्याहारकशरीरकरणकाले समुद्घात आहारकसमुद्घातः ॥६॥ एते च वेदनादयः पञ्चाप्यान्तर्मौहूर्तिकाः ॥ यदान्तर्मुहूर्तायुः केवली वेदनीय-नाम-गोत्रकर्मत्रयं नायुषः समं न्यूनं वा किन्त्वतिप्रचुरमाकलयति. तदा वेदनीयादित्रयस्य क्षिप्रतरक्षपणाय केवलज्ञानाभोगतो जीवप्रदेशसंघातं प्रथमसमये विष्कम्भबाहल्याभ्यां कायप्रमितमायामत ऊर्ध्वाधोलोकान्तगामिनं दण्डाकारत्वेन दण्डं द्वितीयसमये तमेव पूर्वापरदिक्प्रसारणात् तिर्यग्लोकान्तकपाटाकारत्वेन कपाटं तृतीयसमये च दक्षिणोत्तरदिक्प्रसारणात् तिर्यग्लोकान्तव्यापाकं मथ्याकारत्वेन मन्थानं कृत्वा चतुर्थसमये च जीवप्रदेशानामनुश्रेणिगमनात्तृतीयसमये पूरितानि मथ्यन्तराणि लोकनिष्कुटानि च पूरयित्वा पञ्चमसमये मथ्यन्तरप्रसृतान् जीवप्रदेशान् संहृत्य षष्ठे समये मन्थानमुपसंहृत्य सप्तमसमये कपाटं शङ्कोच्याष्टम-

* ( ) एतच्चिन्हान्तर्गतः पाठोऽत्र प्रक्षिप्तो द्रष्टव्यः । एवमन्यत्रापि ।

समये दण्डं संहृत्य शरीरस्थो भवति। तदा तस्य केवलिनः समुद्घातः केवलिसमुद्घातः ॥७॥ अयं चाष्टसामायिकः ॥ इति पूर्व्वार्द्धार्थः ॥ उत्तरार्द्धार्थस्तु—मनुजानां सर्व्वसम्भवात्सप्तापि। चतुर्विधदेवानामाद्याःकलब्धिकेवलित्वाभावात्पञ्चाद्याः। नारकाणां तैज[सआ](सा-ऽऽ)हारकलब्धिकेवलित्वाभावाद्याश्चत्वारः। पृथिव्यप्तेजोवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां वैक्रियलब्ध्यभावात् त्रयः। वायूनां बादरकरणपर्याप्तत्रसनाड्यन्तर्गतानां प्रायो वैक्रियलब्धिसंभवाच्चत्वारः। गर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां तेजोलब्धेरपि भावादाद्याश्चत्वारः। एवं समुद्घातस्य सप्तविधत्वेऽपि संज्ञिपर्याप्तलक्षणमेकं जीवस्थानं केवलीसमुद्घात एव मन्तव्यम्, अत्रैव तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेष्वनाहारकत्वसम्भवात्। इत्येवमनाहारके सप्तापर्याप्तरूपाणि संज्ञिपर्याप्तेन सहाष्टौ जीवस्थानानीति स्थितम्। इत्यनेन प्रकारेण गत्यादिषु मार्गणास्थानेषु जीवस्थानानि चिन्तितानि ॥ २५ ॥

इदानीं मार्ग्गणास्थानेषु योजयितुकामो गुणस्थानानि चतुर्द्दश नामतः स्वरूपतश्च—

मिच्छे सासणमिस्से अविरयदेसे पमत्तअपमत्ते ।
नियट्टिअनियट्टिसुहुमुवसमखीणसजोगजोगिगुणा ॥२६॥

(यशो.) "नियट्टी"त्यत्र प्राकृतत्वात् ट्टस्य द्वित्वाभावः। सूचकत्वात्सूत्रस्य, पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद्वा मिच्छादिट्ठिगुणठाणं सासायणसम्मदिट्ठिगुणठाणमित्यादि द्रष्टव्यम्। तत्र मिथ्या=विपर्यासवती दृष्टि=रर्हत्प्रणीततत्त्वप्रतिपत्तिर्यस्य कवलितहृत्पूरस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत्स मिथ्यादृष्टिः। गुणा=ज्ञानादिरूपा जीवस्वभावविशेषास्तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थानम्, गुणानामेवोपचयापचयजः स्वरूपविशेषः, गुणानां स्थानं गुणस्थानम्, ततश्च मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानं सास्वादनाद्यपेक्षया गुणानामपचयजः स्वरूपविशेषो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम्। इह यद्यपि मिथ्यादृष्टेर्विपर्यस्तदृष्टित्वात्सम्यग्बोधाभावेन गुणानामभावेन गुणस्थानाभावः। तथापि तस्य काचिच्चैतन्यकलाकक्षीकार्याऽन्यथाऽजीवत्वप्रसङ्गः। सा च मिथ्यात्वोदया विपर्ययपरीताऽपि चिद्रूपत्वात् व्यवहारतो गुणत्वेनेष्टेति तद्भाजनतया मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानत्वमुपपन्नम्। अत्र गुणस्थाने समस्तजन्तुराशेरनन्ततमेन भागेन रहिताः सर्व्वेऽपि जन्तवोऽवाप्यन्ते ॥१॥ आद्यमौपशमिकसम्यग्दर्शनप्राप्तिरूपं सादयत्य=ऽपनयतीति नैरुक्ते यशब्दलोपः, आसादनं=प्रथमकषायोदयवेदनम्। ततश्च सहा-ऽऽसादनेन वर्त्तत इति सासादनः। स चासौ सम्यग्=अविपरीता दृष्टिर्जिनप्रणीततत्त्वप्रतिपत्तिरस्येति सम्यग्दृष्टिश्च सासादनसम्यग्दृष्टिस्तस्य गुणस्थानं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम्। यद्वा सह सातनया प्रथमकषायोदयरूपया वर्त्तत इति सासादनः। स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेत्यादि प्राग्वत्। अथवा सह औपशमिकतत्त्वरसास्वादनेन वर्तते, तद्रसं नाद्या-ऽपि सर्वथा त्यजतीति सास्वादनः, स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेत्यादि प्रागिव। एतच्च यथा भवति तथा समासत उच्यते,—

राण्या-ऽऽपूर्या-ऽऽयामविस्ताराभ्यां कायप्रमाणं क्षेत्रं व्याप्या ऽऽस्ते, तदा तस्य कषायैर्हेतुभिः समुद्घातः कषायसमुद्घातः। अनेन कषायमोहनीयपुद्गलानां शातो भवति ॥२॥ यदा कश्चिदन्तर्मुहूर्तशेषेष्वायुर्भिर्विष्कम्भबाहुल्याभ्यां शरीरमानमायामेन जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागमुत्कृष्टतोऽसंख्येययोजनानि शरीराद्बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य परभवे यत्र स्थाने स्वयमुत्पत्स्यते तत्र प्रक्षिपति, तदा तस्य मरणमेव प्राणिनामन्तकारित्वादन्तो मरणान्तस्तत्र भवो मारणान्तः समुद्घातः। एतेन चायुःकर्मपुद्गलानां शातो भवति ॥३॥ यदा कश्चिद्वैक्रियलब्धिमान् वैक्रियकरणकाले विष्कम्भबाहुल्याभ्यां कायमानमायामेन जघन्यतोऽङ्गुलसंख्येयभागमुत्कृष्टतः संख्येयानि योजनानि शरीराद्बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य यथा स्थूलान्वैक्रियशरीरानामकर्मपुद्गलान्प्राग्बद्धान् शातयति * (तदा तस्य वैक्रियशरीरनामकर्मविषयः समुद्घातो वैक्रियसमुद्घातः, यद्वा वैक्रियशरीरकरणकालविषयः समुद्घातो वैक्रियसमुद्घातः ॥४॥ यदा कश्चित्तेजोनिसर्गलब्धिमान् क्रुद्धः साध्वादिः सप्ताष्टौ पदान्यवष्वष्क्य विष्कम्भबाहुल्याभ्यां देहमानमायामेन तु जघन्यतो-ऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमुत्कृष्टतः पुनः संख्येयानि योजनान्यनन्ततैजसशरीरस्कन्धवेष्टितानां जीवप्रदेशानां दण्डं शरीराद्बहिः प्रक्षिपति, ततः क्रोधविषयीकृतं मनुष्यादि निर्दहति, तदा तस्य तेजोविषयः समुद्घातः तेजःसमुद्घातः। अनेन च प्रभूतांस्तैजःशरीरनामकर्मपुद्गलान् शातयति ॥५॥ यदा कश्चिदा-ऽऽहारकशरीरलब्धिमान् चतुर्दशपूर्वविद् आहारकशरीरकरणकाले विष्कम्भबाहुल्याभ्यां शरीरमानमायामेन जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभागमुत्कृष्टतस्तु संख्येयानि योजनानि शरीराद् बहिः स्वप्रदेशदण्डं निसृज्य यथास्थूलान् प्रभूतानाहारकशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान् शातयति तदा तस्याहारकशरीरकरणकाले समुद्घात आहारकसमुद्घातः ॥६॥ एते च वेदनादयः षडप्यान्तर्मौहूर्तिकाः ॥ यदान्तर्मुहूर्त्तायुः केवली वेदनीय-नाम-गोत्र-कर्म्मत्रयं नायुषः समं न्यूनं वा किन्त्वतिप्रचुरमाकलयति. तदा वेदनीयादित्रयस्य क्षिप्रतरक्षपणाय केवलज्ञानाभोगतो जीवप्रदेशसंघातं प्रथमसमये विष्कम्भबाहुल्याभ्यां कायप्रमितमायामत ऊर्ध्वाधोलोकान्तगामिनं दण्डाकारत्वेन दण्डं द्वितीयसमये तमेव पूर्वापरदिक्प्रसारणात् तिर्यग्लोकान्तकपाटाकारत्वेन कपाटं तृतीयसमये च दक्षिणोत्तरदिक्प्रसारणात् तिर्यग्लोकान्तव्यापकं मथ्याकारत्वेन मन्थानं कृत्वा चतुर्थसमये च जीवप्रदेशानामनुश्रेणिगमनात्तृतीयसमये पूरितानि मथ्यन्तराणि लोकनिष्कुटानि च पूरयित्वा पञ्चमसमये मथ्यन्तरप्रसृतान् जीवप्रदेशान् संहृत्य षष्ठे समये मन्थानमुपसंहृत्य सप्तमसमये कपाटं सङ्कोच्याष्टम-

---

* ( ) एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठोऽत्र प्रक्षिप्तो द्रष्टव्यः। एवमन्यत्रापि।

समये दण्डं संहृत्य शरीरस्थो भवति । तदा तस्य केवलिनः समुद्घातः केवलिसमुद्घातः ॥७॥ अयं चाष्टसामायिकः ॥ इति पूर्वार्द्धार्थः॥ उत्तरार्द्धार्थस्तु—मनुजानां सर्वसम्भवात्सप्तापि । चतुर्विधदेवानामाहारकलब्धिकेवलित्वाभावात्पञ्चाद्याः । नारकाणां तेज[मआ](सा-ऽऽ)हारकलब्धिकेवलित्वाभावादाद्याश्चत्वारः । पृथिव्यप्तेजोवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां वैक्रियलब्ध्यभावात् त्रयः । वायूनां बादरकरणपर्याप्तत्रसनाड्यन्तर्गतानां प्रायो वैक्रियलब्धिसंभवाच्चत्वारः । गर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां तेजोलब्धेरपि भावादाद्याश्चत्वारः । एवं समुद्घातस्य सप्तविधत्वेऽपि संज्ञिपर्याप्तलक्षणमेकं जीवस्थानं केवलीसमुद्घात एव मन्तव्यम्, अत्रैव तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेष्वनाहारकत्वसम्भवात् । इत्येवमनाहारके सप्तापर्याप्तरूपाणि संज्ञिपर्याप्तेन सहाष्टौ जीवस्थानानीति स्थितम् । इत्यनेन प्रकारेण गत्यादिषु मार्गणास्थानेषु जीवस्थानानि चिन्तितानि॥ २५ ॥

इदानीं मार्गणास्थानेषु योजयितुकामो गुणस्थानानि चतुर्दश नामतः स्वरूपतश्च—

मिच्छे सासणमिस्से अविरयदेसे पमत्तअपमत्ते ।
नियटिअनियट्टिसुहुमुवसमखीणसजोगजोगिगुणा ॥२६॥

(यशो.) "नियटी"त्यत्र प्राकृतत्वात् ह्रस्य द्वित्वाभावः । सूचकत्वात्सूत्रस्य, पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद्वा मिच्छादिट्ठिगुणठाणं सासायणसम्मद्दिट्ठिगुणठाणमित्यादि दृश्यम् । तत्र मिथ्या=विपर्यासवती दृष्टि=रर्हत्प्रणीततत्त्वप्रतिपत्तिर्यस्य कवलितहृत्पूरस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत्स मिथ्यादृष्टिः । गुणा=ज्ञानादिरूपा जीवस्वभावविशेषास्तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थानम्, गुणानामेवोपचयापचयजः स्वरूपविशेषः, गुणानां स्थानं गुणस्थानम्, ततश्च मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानं सास्वादनाद्यपेक्षया गुणानामपचयजः स्वरूपविशेषो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् । इह यद्यपि मिथ्यादृष्टेर्विपर्यस्तदृष्टित्वात्सम्यग्बोधाभावेन गुणानामभावेन गुणस्थानाभावः । तथापि तस्य काचिच्चैतन्यकलाकक्षीकार्याऽन्यथाऽजीवत्वप्रसङ्गः । सा च मिथ्यात्वोदया विपर्ययपरीताऽपि चिद्रूपत्वाद् व्यवहारतो गुणत्वेनेष्टेति तद्भाजनतया मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानत्वमुपपन्नम् । अत्र गुणस्थाने समस्तजन्तुराशेरनन्ततमेन भागेन रहिताः सर्वेऽपि जन्तवोऽवाप्यन्ते ॥१॥ आद्यमौपशमिकसम्यग्दर्शनप्राप्तिरूपं सादयत्य=ऽपनयतीति नैरुक्ते यशब्दलोपः, आसादनं=प्रथमकषायोदयवेदनम् । ततश्च सहा-ऽऽसादनेन वर्त्तत इति सासादनः । स चासौ सम्यग्=अविपरीता दृष्टिर्जिनप्रणीततत्त्वप्रतिपत्तिरस्येति सम्यग्दृष्टिश्च सासादनसम्यग्दृष्टिस्तस्य गुणस्थानं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् । यद्वा सह सातनया प्रथमकषायोदयरूपया वर्त्तत इति सासादनः । स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेत्यादि प्राग्वत् । अथवा सह औपशमिकतत्त्वरसास्वादनेन वर्तते, तद्रसं नाद्या-ऽपि सर्वथा त्यजतीति सास्वादनः, स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेत्यादि प्रागिव । एतच्च यथा भवति तथा समासत उच्यते,—

अनादिमिथ्यादृष्टिरसुमान् निर्मितदर्शनत्रिपुञ्जोऽनाभोगनिर्वर्तितेन गिरिसरिदुपलघोलनाकल्पेन यथा येनैव प्रकारेणानादिकाले अभूत्तेनैव प्रवृत्तं नाऽपूर्वं स्वभावान्तरं प्राप्तमित्यन्वर्थेन यथाप्रवृत्तेन क्रियते कर्म्मबन्धोदयोदीरणोपशमनाद्यनेनेति करणेन। ध्यवसायविशेषेण मोहस्य सागरोपमाणामेकोनसप्ततिं नाम्नो गोत्रस्य चैकोनविंशतिमायुर्वर्जानामन्येषां कर्म्मणामेकोनत्रिंशतं च क्षपयित्वा प्रत्येकं कृतपल्योपमा-ऽसंख्येयभागन्यूनान्त्यसागरकोटिकोटिस्थितिको मध्यमस्थितावायुषो वर्त्तमानो विशुद्धावशेषस्वरूपेणानादौ संसारे अप्राप्तपूर्वत्वात् स्थितिघातरसघाताद्यपूर्वार्थनिर्वर्त्तकत्वाद् अपूर्वेण करणेन भिन्नघनरागद्वेषरूपग्रन्थिः प्रधानतरविशुध्यात्मके न विद्यते मोक्षतरुबीजं सम्यक्त्वमनासाद्य निवृत्ति [र्व्या घुटगमस्येण स्वद्धे](=र्व्यावृत्तिर्यस्य यस्मिन् वा तद् , तच्च तत्करण)- मानवृत्तिकरणमनुभवन्मिथ्यात्वस्थितेरुदयक्षणादारभ्यान्तर्मुहूर्त्तस्योपरि प्रदेशतो विपाकतश्च मिथ्यात्वदलिकानुदयरूपमन्तरकरणं करोति। कृते चैतस्मिन् मिथ्यात्वस्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमानाऽधस्तनी। तदुपरितनी अन्तर्मुहूर्त्तोनान्तःसागरोपमकोटीकोटिमाना द्वितीया। तत्रा-ऽऽद्यायां स्थितौ वर्त्तमानो मिथ्यात्वोदयान्मिथ्यादृष्टिरेव, अन्तर्मुहूर्तेन तस्यामुपगतायामन्तरकरणप्रथम(समय) एवौपशमिकसम्यग्दर्शनप्राप्तावुपशान्ताद्धायामान्तर्मौहूर्तिक्यां जघन्येन समयशेषायामुत्कृष्टतः षडावलिकाशेषायामनन्तानुबन्ध्युदयः कस्यचिद् भवति। तत्र चासौ सास्वादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने वर्तते। उपशमश्रेणेर्वा प्रतिपतितः कश्चिदिति कर्म्मग्रन्थमतम्। तत्र तस्याद्यगुणस्थानमपि यावत् गमनात्। सिद्धान्तमते तु श्रेणेः समाप्तौ निवृत्तः प्रमत्तगुणेऽप्रमत्तगुणे वा-ऽवतिष्ठते। कालगतस्तु देवेष्वविरतो भवतीति। सास्वादनोत्तरकालं चावश्यं मिथ्यात्वोदयान्मिथ्यादृष्टिः स्यात्। अत्र च गुणस्थाने उत्कर्षतो-ऽसंख्येयाः प्राणिनः प्राप्यन्ते ॥२॥ सम्यक् च मिथ्या च दृष्टिरस्येति सम्यग्मिथ्यादृष्टिस्तस्य गुणस्थानं सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम्। यदा हि पूर्वोक्तप्रकारेणा-ऽवाप्तेनौपशमिकसम्यक्त्वेनौषधकल्पेन वक्ष्यमाणमतभेदादपूर्वकरणेन वा मदनकोद्रववदशुद्धस्य मिथ्यात्वमोहनीयस्य शुद्धार्द्धविशुद्धाशुद्धतया त्रिधा कृतस्य सम्बन्धिनां पुञ्जानां मध्येऽर्द्धविशुद्धपुञ्ज उदेति, तदा तदुदयवशेनार्द्धविशुद्धजिनतत्त्वश्रद्धानसद्भावात् सम्यग्मिथ्यादृष्टिरन्तर्मुहूर्त्तं यावत्तत ऊर्ध्वं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा भजति। अत्राऽप्युत्कृष्टतोऽसंख्येयाः प्राणभाजो लभ्यन्ते ॥३॥ विरति स्म = सावद्ययोगेभ्यो निवर्त्तते स्म विरतो न तथाऽविरतः, यद्वा विरमणं विरतं=सावद्ययोगपरिहार एव, अप्रत्याख्यानकषायोदयान्नास्य विरतमस्तीत्यविरतः। स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चाविरतसम्यग्दृष्टिः। स च पूर्वोपवर्णितौपशमिकसम्यग्दृष्टिः, शुद्धदर्शनमोहपुञ्जोदयवर्त्ती वा क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिः, प्रथमकषायचतुष्कमिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वक्षपणात् क्षीणदर्शनसप्तको वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिस्तस्य गुणस्थानमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम्। इह च कर्मग्रन्थमतेन प्रथममुक्तरीत्यैव सर्वोऽ-प्यौपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा कृतत्रिपुञ्जः क्षायोपशमिक-

सम्यग्दृष्टिर्मिश्रो मिथ्यादृग्वा भवति । सिद्धान्तमतेन तु कोऽप्यनादिमिथ्यादृक्तथाविधगुर्वादि-सामग्र्यामपूर्वकरणेन पुञ्जत्रयं कृत्वा शुद्धपुञ्जपुद्गलान्वेदयन्नौपशमिकसम्यग्दृष्टिरभूत्वैव क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । अन्यस्तूक्तक्रमेणौपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । पुञ्जत्रयमसौ न करोत्येव । तदकरणादेव चौपशमिकाच्च्युतो मिथ्यात्वमेव व्रजति । यत्कल्पभाष्यम्—
"आलम्बणमलहन्ती जह सट्ठाणं न मुञ्चई इलिया । एवं अकयतिपुञ्जी मिच्छं चिय उवसमी एइ ॥" ।
अत्रा-ऽसंख्याताः सर्वदैव आसाद्यन्ते ॥४॥ प्रत्याख्यानकषायोदयेन विचारितसर्वविरति-लाभत्वात्करणत्रययोगत्रयविषयसर्वसावद्ययोगस्य देशे विवक्षितैकव्रतगोचरस्थूलसावद्ययोगादौ समस्तव्रतविषयानुमतिरहितव्यापारान्ते विरतं=विरतिर्यस्य स तथा, तस्य गुणस्थानं देश-विरतगुणस्थानम् । अत्रापि संख्यातीताः सततमऽवाप्यन्ते ॥५॥ संयच्छति स्म सर्वसावद्ययोगात्, सम्यगुपरमति स्म संयतः, प्रमाद्यति स्म=संयमयोगेषु सीदति स्म प्रमत्तः, यद्वा प्रमदनं प्रमत्तं=प्रमादो मदिरा-विषय-कषाय-निद्रा-विकथानामन्यतमः, सर्वे वा, प्रमत्तमस्यास्तीति मत्वर्थीया-त्प्रत्यये प्रमत्तः, स चासौ संयतश्च स तथा, तस्य गुणस्थानं प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् । अत्र कोटि-सहस्रपृथक्त्वं प्राप्यते ॥६॥ प्रमत्तविपरीतोऽप्रमत्तः, स चासौ संयतश्चाप्रमत्तसंयतस्तस्य गुणस्थानमप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् । अवसर्पिण्यास्तृतीये चतुर्थे चारके उत्सर्पिण्या द्वितीये तृतीये चतुर्थे चारकेऽवसर्पिण्युत्सर्पिणीव्यतिरिक्ते चतुर्थारकप्रतिमे च काले लब्धजन्मोत्तमसंहननो वर्षाष्टकोपरि शुभलेश्यो मनुष्योऽस्मिन्नप्रमत्तगुणस्थानकेऽविरतादीनां त्रयाणां गुणस्थान-कानामन्यतमे वा वर्त्तमानः प्रथमकषायचतुष्क-दर्शनत्रिकक्षपणाया आरम्भकः । अत्रा-ऽप्रमत्त-गुणस्थानके प्रमत्तसंयतेभ्यः स्तोकाः प्राप्यन्ते ॥७॥ युगपदिदं गुणस्थानमनुप्रविष्टानाम-न्योन्यमध्यवसायस्थानस्य भेदरूपा निवृत्तिरप्यस्तीति निवृत्तिः, सा चासौ गुणस्थानं च निवृत्तिगुणस्थानम् । अस्य 'निवृत्तिबादर' इत्यपि संज्ञा । यन्मूलावश्यकटीका—क्षपक-श्रेण्यन्तर्गतो जीवग्रामः क्षीणदर्शनसप्तको निवृत्तिबादरो भण्यते । अपूर्वकरणगुणस्थानमिति संज्ञा-न्तरमप्यस्य, तत्रापूर्वं=नवं स्थितिघात-रसघात-गुणश्रेणि-गुणसंक्रम-स्थितिबन्धानां करणं=निवर्त्तन-मस्येत्यपूर्वकरणः । तत्र महामानायाः कर्मस्थितेरपवर्त्तनाकरणेनाल्पीकरणं स्थितिघातः । रसस्य प्रभूतस्यापवर्त्तनाकरणेनाल्पीकरणं रसघातः । एतौ च प्राक्तनगुणस्थानेषु विशुद्धेरल्पत्वादल्पावेव व्यधादत्र तु विशुद्धेरुत्कृष्टत्वेन महाप्रमाणावपूर्वौ विधत्ते । उपरितनस्थितेर्विशुद्धिवशादपवर्त्तना-करणेनावतारितस्य दलिकस्यान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणमुदयसमयस्योपरि शीघ्रतरक्षपणाय प्रतिसमयम-संख्येयगुणया वृद्ध्या रचनं गुणश्रेणिरुच्यते । एतां च पूर्वगुणस्थानेष्वविशुद्धत्वेन कालतो दीर्घां दलिकरचनामाश्रित्य लघीयसीं दलिकस्यापवर्त्तनात् कृतवान् । अत्र तु विशुद्धत्वाद पूर्वां कालतो ह्रस्वतरां (दलिकरचनां) स्वीकृत्य पृथीयसीं बहुतरस्य दलिकस्यापवर्त्तनात् करोति । तथा बध्य-मानशुभकर्मस्वबध्यमानाशुभकर्मदलिकस्य प्रति[क्षणशब्द](क्षण)मसंख्येयगुणवृद्ध्या विशुद्धिवशेन

अनादिमिथ्यादृष्टिरसुमान् निर्मितदर्शनत्रिपुञ्जोऽनाभोगानिर्वर्तितेन गिरिसरिदुपलघोलनाकल्पेन यथा येनैव प्रकारेणानादिकाले अभूत्तेनैव प्रवृत्तं नाऽपूर्वं स्वभावान्तरं प्राप्तमित्यन्वर्थेन यथाप्रवृत्तेन क्रियते कर्म्मबन्धोदयोदीरणोपशमनाद्यनेनेति करणेनाध्यवसायविशेषेण मोहस्य सागरोपमाणामेकाग्रसप्ततिं नाम्नो गोत्रस्य चैकान्नविंशतिमायुर्वर्जानामन्येषां कर्म्मणामेकोनत्रिंशतं च क्षपयित्वा प्रत्येकं कृतपल्योपमा-ऽसंख्येयभागन्यूनान्त्यसागरकोटिकोटिस्थितिको मध्यमस्थितावायुषो वर्त्तमानो विशुद्धिविशेषस्वरूपेणानादौ संसारे अप्राप्तपूर्वत्वात् स्थितिघातरसघाताद्यपूर्वार्थनिर्वर्त्तकत्वाद् अपूर्वेण करणेन भिन्नघनरागद्वेषरूपग्रन्थिः प्रधानतरविशुध्यात्मकं न विद्यते मोक्षतरुबीजं सम्यक्त्वमनासाद्य निवृत्ति [र्व्यावृत्तिरस्येति व्युत्पत्तेः](=व्यावृत्तिर्यस्य यस्मिन् वा तद्, तच्च तत्करण)-मनिवृत्तिकरणमनुभवन्मिथ्यात्वस्थितेरुदयक्षणादारभ्यान्तर्मुहूर्त्तस्योपरि प्रदेशतो विपाकतश्च मिथ्यात्वदलिकानुदयरूपमन्तरकरणं करोति। कृते चैतस्मिन् मिथ्यात्वस्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमानाऽधस्तना। तदुपरितना चान्तर्मुहूर्त्तोनान्तःसागरोपमकोटीकोटिमाना द्वितीया। तत्रा-ऽऽद्यायां स्थितौ वर्त्तमानो मिथ्यात्वोदयान्मिथ्यादृष्टिरेव, अन्तर्मुहूर्तेन तस्यामुपगतायामन्तरकरणप्रथम(समय) एवौपशमिकसम्यग्दर्शनप्राप्तावुपशान्ताद्धायामान्तर्मौहूर्तिक्यां जघन्येन समयशेषायामुत्कृष्टतः षडावलिकाशेषायामनन्तानुबन्ध्युदयः कस्यचिद् भवति। तत्र चासौ सास्वादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने वर्तते। उपशमश्रेणेर्वा प्रतिपतितः कश्चिदिति कर्म्मग्रन्थमतम्। तत्र तस्याद्यगुणस्थानमपि यावत् गमनात्। सिद्धान्तमते तु श्रेणेः समाप्तौ निवृत्तः प्रमत्तगुणेऽप्रमत्तगुणे वा-ऽवतिष्ठते। कालगतस्तु देवेष्वविरतो भवतीति। सास्वादनोत्तरकालं चावश्यं मिथ्यात्वोदयान्मिथ्यादृष्टिः स्यात्। अत्र च गुणस्थाने उत्कर्षतो-ऽसंख्येयाः प्राणिनः प्राप्यन्ते ॥२॥ सम्यक् च मिथ्या च दृष्टिरस्येति सम्यग्मिथ्यादृष्टिस्तस्य गुणस्थानं सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम्। यदा हि पूर्वोक्तप्रकारेणा-ऽवाप्तेनौपशमिकसम्यक्त्वेनौषधकल्पेन वक्ष्यमाणमतभेदादपूर्वकरणेन वा मदनकोद्रववदशुद्धस्य मिथ्यात्वमोहनीयस्य शुद्धार्द्धविशुद्धाशुद्धतया त्रिधा कृतस्य सम्बन्धिनां पुञ्जानां मध्येऽर्द्धविशुद्धपुञ्ज उदेति, तदा तदुदयवशेनार्द्धविशुद्धजिनतत्त्वश्रद्धानसद्भावात् सम्यग्मिथ्यादृष्टिरन्तर्मुहूर्त्तं यावत्तत ऊर्ध्वं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा भजति। अत्राऽप्युत्कृष्टतोऽसंख्येयाः प्राणभाजो लभ्यन्ते ॥३॥ विरति स्म = सावद्ययोगेभ्यो निवर्त्तते स्म विरतो न तथाऽविरतः, यद्वा विरमणं विरतं=सावद्ययोगपरिहार एव, अप्रत्याख्यानकषायोदयान्नास्य विरतमस्तीत्यविरतः। स चासौ सम्यग्दृष्टिश्चाविरतसम्यग्दृष्टिः। स च पूर्वोपवर्णितौपशमिकसम्यग्दृष्टिः, शुद्धदर्शनमोहपुञ्जोदयवर्त्ती वा क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिः, प्रथमकषायचतुष्कमिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वक्षपणात् क्षीणदर्शनसप्तको वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिस्तस्य गुणस्थानमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम्। इह च कर्मग्रन्थमतेन प्रथममुक्तरीत्यैव सर्वोऽ-प्यौपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा कृतत्रिपुञ्जः क्षायोपशमिक-

सम्यग्दृष्टिर्मिश्रो मिथ्यादृग्वा भवति । सिद्धान्तमतेन तु कोऽप्यनादिमिथ्यादृक्तथाविधगुर्वादि-सामग्र्यामपूर्वकरणेन पुञ्जत्रयं कृत्वा शुद्धपुञ्जपुद्गलान्वेदयन्नौपशमिकसम्यग्दृष्टिरभूत्वैव क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । अन्यस्तूक्तक्रमेणौपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । पुञ्जत्रयमसौ न करोत्येव। तदकरणादेव चौपशमिकाच्च्युतो मिथ्यात्वमेव व्रजति । यत्कल्पभाष्यम्—
"आलम्बणमलहन्ती जह सट्ठाणं न मुञ्चई इलिया । एवं अकयतिपुञ्जी मिच्छं चिय उवसमी एइ ॥" ।
अत्रा-ऽसंख्याताः सर्वदैव आसाद्यन्ते ॥४॥ प्रत्याख्यानकषायोदयेन विचारितसर्वविरति-लाभत्वात्करणत्रययोगत्रयविषयसर्वसावद्ययोगस्य देशे विवक्षितैकव्रतगोचरस्थूलसावद्ययोगादौ समस्तव्रतविषयानुमतिवर्जितव्यापारान्ते विरतं=विरतिर्यस्य स तथा, तस्य गुणस्थानं देश-विरतगुणस्थानम् । अत्रापि संख्यातीताः सततमऽवाप्यन्ते ॥५॥ संयच्छति स्म सर्वसावद्ययोगात्, सम्यगुपरमति स्म संयतः, प्रमाद्यति स्म=संयमयोगेषु सीदति स्म प्रमत्तः, यद्वा प्रमदनं प्रमत्तं=प्रमादो मदिरा-विषय-कषाय-निद्रा-विकथानामन्यतमः, सर्वे वा, प्रमत्तमस्यास्तीति मत्वर्थीया-त्प्रत्यये प्रमत्तः, स चासौ संयतश्च स तथा, तस्य गुणस्थानं प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् । अत्र कोटि-सहस्रपृथक्त्वं प्राप्यते ॥६॥ प्रमत्तविपरीतोऽप्रमत्तः, स चासौ संयतश्चाप्रमत्तसंयतस्तस्य गुणस्थानमप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् । अवसर्पिण्यास्तृतीये चतुर्थे चारके उत्सर्पिण्या द्वितीये तृतीये चतुर्थे चारकेऽवसर्पिण्युत्सर्पिणीव्यतिरिक्ते चतुर्थारकप्रतिमे च काले लब्धजन्मोत्तमसंहननो वर्षाष्टकोपरि शुभलेश्यो मनुष्योऽस्मिन्नप्रमत्तगुणस्थानकेऽविरतादीनां त्रयाणां गुणस्थान-कानामन्यतमे वा वर्त्तमानः प्रथमकषायचतुष्क-दर्शनत्रिकक्षपणाया आरम्भकः । अत्रा-ऽप्रमत्त-गुणस्थानके प्रमत्तसंयतेभ्यः स्तोकाः प्राप्यन्ते ॥७॥ युगपदिदं गुणस्थानमनुप्रविष्टानाम-न्योन्यमध्यवसायस्थानस्य भेदरूपा निवृत्तिरप्यस्तीति निवृत्तिः, सा चासौ गुणस्थानं च निवृत्तिगुणस्थानम् । अस्य 'नियट्टिबायर' इत्यपि संज्ञा । यन्मूलावश्यकटीका—क्षपक श्रेण्यन्तर्गतो जीवग्रामः क्षीणदर्शनसप्तको निवृत्तिबादरो भण्यते । अपूर्वकरणगुणस्थानमिति संज्ञा-न्तरमप्यस्य, तत्रापूर्वं=नवं स्थितिघात-रसघात-गुणश्रेणि-गुणसंक्रम-स्थितिबन्धानां करणं=निर्वर्त्तन-मस्येत्यपूर्वकरणः । तत्र महामानायाः कर्मस्थितेरपवर्त्तनाकरणेनाल्पीकरणं स्थितिघातः । रसस्य प्रभूतस्यापवर्त्तनाकरणेनाल्पीकरणं रसघातः । एतौ च प्राक्तनगुणस्थानेषु विशुद्धेरल्पत्वादल्पावेव व्यधादत्र तु विशुद्धेरुत्कृष्टत्वेन महाप्रमाणावपूर्वौ विधत्ते । उपरितनस्थितेर्विशुद्धिवशादपवर्त्तना-करणेनावतारितस्य दलिकस्यान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणमुदयसमयस्योपरि शीघ्रतरक्षपणाय प्रतिसमयम-संख्येयगुणया वृद्ध्या रचनं गुणश्रेणिरुच्यते । एतां च पूर्वगुणस्थानेष्वविशुद्धत्वेन कालतो दीर्घां दलिकरचनामाश्रित्य लघीयसीं दलिकस्यापवर्त्तनात् कृतवान् । अत्र तु विशुद्धत्वाद पूर्वां कालतो ह्रस्वतरां (दलिकरचनां) स्वीकृत्य पृथीयसीं बहुतरस्य दलिकस्यापवर्त्तनात् करोति । तथा बध्य-मानशुभकर्मस्वबध्यमानाशुभकर्मदलिकस्य प्रति[न्दशब्द](क्षण)मसंख्येयगुणवृद्ध्या विशुद्धिवशेन

नयनं=संचारणं गुणसंक्रमः। एनमप्यत्र विशिष्टतरत्वादपूर्वं करोति। विशिष्टाध्यवसायपरिगृहीतस्य कर्मदलिकस्य यत्कालनियमनं स स्थितिबन्धः एतं चाशुद्धत्वात्प्राग्द्राघीयांसमाकार्षीदिह तु विशुद्धत्वाल्लघीयांसं करोति। उपलक्षणं चैतदुदयोद्वर्त्तनादीनाम्, यत एतानप्यपूर्वान् करोत्यत्र स चापूर्वकरणः क्षपणाया उपशमनायाश्चार्हत्वात् क्षपक उपशमको वा न पुनरयं क्षपयत्युपशमयति वा किञ्चित्। तस्य गुणस्थानमपूर्वकरणगुणस्थानम्। अत्र संख्याता लभ्यन्ते ॥८॥ एककालमिदं गुणस्थानमधिरूढानां बहूनामसुमन्तां परस्परसम्बन्धिनोऽध्यवसायस्थानस्य व्यावृत्तिरिह निवृत्तिः, नास्ति तथाविधा साऽस्येत्यनिवृत्तिः। तुल्यकालमिदमारूढानामन्येषां यदध्यवसायस्थानं विवक्षितस्यापि तदेवेत्यर्थः ॥९॥ सम्परैति=पर्यटति संसारमनेनेति सम्परायः=कषायोदयः, बादरसूक्ष्मसम्परायापेक्षया स्थूलः सम्परायोऽस्येति बादरसम्परायोऽनिवृत्तिश्चासौ बादरसम्परायश्च स तथा, स च क्षपकोपशमकभेदात् द्विधा, तत्राऽबद्धायुः क्षपकः प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानकषायाष्टकमर्द्धक्षपितं कृतान्तराल एवातिविशुद्धिवशेन क्षपितस्त्यानर्द्धित्रिकनरकद्विकतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कातपोद्योतस्थावर-साधारणसूक्ष्माभिधानषोडशप्रकृतिर्मतान्तरेण त्वपर्याप्तप्रक्षेपात्क्षपितसप्तदशप्रकृतिस्तस्यैव क्षपितशेषं क्षपयति, ततः क्रमेण नपुंसकवेद स्त्री-वेद-हास्यादिषट्क-पुंवेदसंज्वलनक्रोध-मान-मायाः क्षपयति, ततो लोभमपि बादरं सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसम्पराय एव क्षपणात् उपशमकस्तु नपुंसकवेदं स्त्रीवेदं हास्यादिषट्कं पुंवेदं द्वितीयतृतीयौ क्रोधौ चतुर्थक्रोधं द्वितीयतृतीयौ मानौ चतुर्थमानं द्वितीयतृतीये माये चतुर्थमायां द्वितीयतृतीयौ लोभौ च क्रमेणोपशमयति। ततश्चास्य सामान्येनेहोक्तक्षपणोपशमविषयक्रमस्यावश्यकवृत्तिकृता विशेषेण क्षपणायामुपशमनायां च निरुक्तिक्रमान्तर्मुहूर्त्तमनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानम्। अत्र संख्याताः प्राप्यन्ते ॥६॥ सूक्ष्मः सम्परायः=किट्टीकृतलोभकषायोदयरूपो यस्य स सूक्ष्मसम्परायः क्षपक उपशमो वा। तस्य गुणस्थानं सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानं। अत्र संख्याता अधिगम्यन्ते ॥१०॥ छाद्यते केवलं ज्ञानं दर्शनं चात्मनोऽनेनेति छद्म, तच्चात्र ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मोदयरूपम्, तत्र तिष्ठतीति छद्मस्थः, वीतो रागो मायालोभोदयरूपो यस्य स तथा, स चासौ छद्मस्थश्च वीतरागछद्मस्थः। उपशान्ता=उपशमं नीताः सन्त एव संक्रमणोद्वर्त्तनादिकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापिताः कषाया येन स तथा, स चासौ वीतरागछद्मस्थश्च उपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थस्तस्य गुणस्थानम् उपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम्। तत्रोपशान्तकषायग्रहणे सति वीतरागग्रहणमविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनां प्रमत्तान्तानां व्यवच्छेदाय, तेषामप्यनन्तानुबन्ध्यादिकियत्कषायोपशमकत्वात्, वीतरागग्रहणे चोपशान्तकषायवीतरागग्रहणं क्षीणकषायस्य निरासाय, उपशान्तकषायवीतरागग्रहणे छद्मस्थग्रहणं स्वरूपाविष्करणार्थम्; नह्म-

छद्मस्थ उपशान्तकषायवीतरागः सम्भवति, यः छद्मस्थग्रहणेन व्यवच्छिद्येत। अयमुपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थो जघन्यतः समयमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्तं भवति। तत ऊर्ध्वं नियमेनाद्धाक्षयेण भवक्षयेण वा प्रतिपतति। तत्र भवक्षयो म्रियमाणस्य,अद्धाक्षय उपशान्ताद्धायां पूर्णायाम्। अद्धाक्षयेण प्रतिपतन् यथैवारूढस्तथैव प्रतिपतति। अयं च वारचतुष्टयमुपशमश्रेणिं नानाभवेषु प्रतिपद्यते । 'च उ उवसमित्तु मोहं' इति वचनात्। एकस्मिंस्तु वारद्वयमुत्कर्षत 'एगभवे दुखुत्तो चरितमोहं उवसमेइ' इति वचनात्। यश्च वारद्वयमेतां प्रतिपद्यते तस्य तत्र भवे नियमात् क्षपकश्रेणेरभावः। यः पुनरेकवारं प्रतिपद्यते तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपीति कर्मग्रन्थमतम्। सिद्धान्तमतं त्वेकभवे एकामेव श्रेणीं प्रतिपद्यते। यस्कल्पः—'अन्नयरसेढिवज्जं एगभवेण च सव्वा' इति। अत्र संख्याता वर्त्तन्ते ॥११॥ क्षीणाः=क्षयमापन्नाः कषाया यस्य स तथा, स चासौ वीतरागच्छद्मस्थश्च क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थस्तस्य गुणस्थानं क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम्। अस्मिन् द्वादशे गुणस्थाने परमार्थेन दर्शितायाः क्षपकश्रेणेरेकादशे चोपशमश्रेणेः परिसमाप्तिर्भवति। श्रेणिद्वयस्यास्य परिसमाप्तिकालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमेव, असंख्येयत्वादन्तर्मुहूर्त्तानाम्। तत्राविरताद्यप्रमत्तान्तेष्वाद्यान् कषायान्दर्शनत्रयं च, शेषांस्तु संज्वलनलोभविकलाननिवृत्तौ, संज्वलनं लोभं च सूक्ष्मसम्पराये क्षपयति। तदेवमेतेष्वपि गुणस्थानेषु क्षीणकषायव्यपदेशः प्रसज्यते, क्वापि कियतां कषायाणां क्षयसद्भावात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम्, क्षीणकषायवीतरागत्वे सति च्छद्मस्थग्रहणं केवलीव्युदासाय, छद्मस्थग्रहणे सति सरागपराकरणार्थं वीतरागग्रहणम्, क्षीणकषायग्रहणं चोपशान्तकषायव्यवच्छित्तये। अत्र संख्याता भवन्ति।।१२।।सह योगेन=वीर्येण वर्त्तन्ते=सयोगा मनोवाक्कायास्ते विद्यन्ते यस्य सयोगी। यद्वा अनुत्तरविमानवासिमनःपर्यायज्ञानादिभिः किंचिन्मनसा पृष्टस्य केवलिनो मनसैवावेदने मनोयोगस्याद्यान्त्यभेदभाजः, देशनादौ वाग्योगस्यादिमान्तिमभेदान्वितस्य, चंक्रमणादावौदारिककाययोगस्य च सद्भावात्, सहयोगैर्मनोवाक्कायैर्वर्त्तत इति सयोगः, सयोगी वा, सर्वधनादेशकृतिगणत्वेन मत्वर्थीयेन्विधानात्, केवलमस्तीति केवली, सयोगश्चासौ सयोगी वा चासौ केवली च तस्य गुणस्थानं सयोगकेवलिगुणस्थानं सयोगिकेवलिगुणस्थानमिति वा। अत्र कोटिपृथक्त्वमापद्यते ॥१३॥ न सन्ति प्राचीना[म]योगा यस्या-ऽसावयोगोऽयोगी वा पूर्ववत्। अयोगित्वं पुनरेवम्—त्रिविधोऽपि योगः सूक्ष्मबादरत्वाभ्यां द्वेधा, केवली च केवलोत्पादादूर्ध्वं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कृष्टतस्तु देशोनां पूर्वकोटीं विहृत्यान्तर्मुहूर्त्तशेषायुः शैलेशीं प्रतिपित्सुरादौ बादरकाययोगेन बादरवाग्मनोयोगौ निरुध्य सूक्ष्मकाययोगावष्टम्भेन बादरकाययोगं निरुणद्धि। सर्वबादरयोगनिरोधानन्तरं च सूक्ष्मकाययोगावष्टम्भेन सूक्ष्मवाग्मनोयोगौ निरुणद्धि। सूक्ष्मकाययोगं तु सूक्ष्मक्रियमनिवर्त्तिशुक्लध्यानं ध्यायन् सावष्टम्भेनैव निरुणद्धि। अन्यस्यावष्टम्भनीययोगान्तरस्य तदा-

नयनं=संचारणं गुणसंक्रमः । एनमप्यत्र विशिष्टतरत्वादपूर्वं करोति । विशिष्टाध्यवसायपरिगृहीतस्य कर्मदलिकस्य यत्कालनियमनं स स्थितिबन्धः एतं चाशुद्धत्वात्प्राग्द्राघीयांसमाकार्षीदिह तु विशुद्धत्वाल्लघीयांसं करोति । उपलक्षणं चैतदुदयोद्वर्त्तनादीनाम् , यत एतानप्यपूर्वान् करोत्यत्र स चापूर्वकरणः क्षपणाया उपसमनायाश्चार्हत्वात् क्षपक उपशमको वा न पुनरयं क्षपयत्युपशमयनि वा किञ्चित् । तस्य गुणस्थानमपूर्वकरणगुणस्थानम् । अत्र संख्याता लभ्यन्ते ॥८॥ एककालमिदं गुणस्थानमधिरूढानां वहूनामसुमन्तां परस्परसम्बन्धिनोऽध्यवसायस्थानस्य व्यावृत्तिरिह निवृत्तिः, नास्ति तथाविधा साऽस्येत्यनिवृत्तिः । तुल्यकालमिदमारूढानामन्येषां यदध्यवसायस्थानं विवक्षितस्यापि तदेवेत्यर्थः ॥९॥ सम्परैति=पर्यटति संसारमनेनेति सम्परायः=कषायोदयः, वादरसूक्ष्मसम्परायापेक्षया स्थूलः सम्परायोऽस्येति वादरसम्परायोऽनिवृत्तिश्चासौ बादरसम्परायश्च स तथा, स च क्षपकोपशमकभेदात् द्विधा, तत्राऽबद्धायुः क्षपकः प्रत्याख्यानाप्रत्याखानकषायाष्टकमर्द्धक्षपितं कृतान्तराल एवातिविशुद्धिवशेन क्षपितस्त्यानर्द्धित्रिकनरकद्विकतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कातपोद्योतस्थावर-साधारणसूक्ष्माभिधानषोडशप्रकृतिर्मतान्तरेण त्वपर्याप्तप्रक्षेपात्क्षपितसप्तदशप्रकृतिस्तस्यैव क्षपितशेषं क्षपयति, ततः क्रमेण नपुंसकवेद स्त्री-वेद-हास्यादिषट्क-पुंवेदसंज्वलनक्रोध-मान-मायाः क्षपयति, ततो लोभमपि वादरं सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसम्पराय एव क्षपणात् उपशमकस्तु नपुंसकवेदं स्त्रीवेदं हास्यादिषट्कं पुवेदं द्वितीयतृतीयौ क्रोधौ चतुर्थक्रोधं द्वितीयतृतीयौ मानौ चतुर्थमानं द्वितीयतृतीये माये चतुर्थमायां द्वितीयतृतीयौ लोभौ च क्रमेणोपशमयति । ततश्चास्य सामान्येनेहोक्तक्षपणोपशमविषयक्रमस्यावश्यकवृत्तिकृता विशेषेण क्षपणायामुपशमनायां च निष्टङ्कितक्रमान्तर्मुहूर्त्तमनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानम् । अत्र संख्याताः प्राप्यन्ते ॥६॥ सूक्ष्मः सम्परायः=किट्टीकृतलोभकषायोदयरूपो यस्य स सूक्ष्मसम्परायः क्षपक उपशमो वा । तस्य गुणस्थानं सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानं । अत्र संख्याता अधिगम्यन्ते ॥१०॥ छाद्यते केवलं ज्ञानं दर्शनं चात्मनोऽनेति छद्म, तच्चात्र ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मोदयरूपम् , तत्र तिष्ठतीति छद्मस्थः, वीतो रागो मायालोभोदयरूपो यस्य स तथा, स चासौ छद्मस्थश्च वीतरागछद्मस्थः । उपशान्ता=उपशमं नीताः सन्त एव संक्रमणोद्वर्त्तनादिकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापिताः कषाया येन स तथा, स चासौ वीतरागछद्मस्थश्च उपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थस्तस्य गुणस्थानम् उपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् । तत्रोपशान्तकषायग्रहणे सति वीतरागग्रहणमविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनां प्रमत्तान्तानां व्यवच्छेदाय, तेषामप्यनन्तानुबन्ध्यादिकियत्कषायोपशमकत्वात् , वीतरागग्रहणे चोपशान्तकषायवीतरागग्रहणं क्षीणकषायस्य निरासाय, उपशान्तकषायवीतरागग्रहणे छद्मस्थग्रहणं स्वरूपाविष्करणार्थम् ; नह्य-

छद्मस्थ उपशान्तकषायवीतरागः सम्भवति, यः छद्मस्थग्रहणेन व्यवच्छिद्येत। अयमुपशान्तकषायवीतरागच्छद्मस्थो जघन्यतः समयमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं भवति। तत ऊर्ध्वं नियमेनाद्धाक्षयेण भवक्षयेण वा प्रतिपतति। तत्र भवक्षयो म्रियमाणस्य,अद्धाक्षय उपशान्ताद्धायां पूर्णायाम्। अद्धाक्षयेण प्रतिपतन् यथैवारूढस्तथैव प्रतिपतति। अयं च वारचतुष्टयमुपशमश्रेणिं नानाभवेषु प्रतिपद्यते। 'च उ उवसमित्त् मोहं' इति वचनात्। एकस्मिंस्तु वारद्वयमुत्कर्षत 'एगभवे दुक्खुत्तो चरित्तमोहं उवसमेइ' इति वचनात्। यश्च वारद्वयमेतां प्रतिपद्यते तस्य तत्र भवे नियमात् क्षपकश्रेणेरभावः। यः पुनरेकवारं प्रतिपद्यते तस्य क्षपकश्रेणिर्भवेदपीति कर्मग्रन्थमतम्। सिद्धान्तमतं त्वेकभवे एकामेव श्रेणीं प्रतिपद्यते। यस्कल्पः—'अन्नयरसेढिवज्जं एगभवेण च सव्वा' इति। अत्र संख्याता वर्त्तन्ते ॥११॥ क्षीणाः=क्षयमापन्नाः कषाया यस्य स तथा, स चासौ वीतरागच्छद्मस्थश्च क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थस्तस्य गुणस्थानं क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम्। अस्मिन् द्वादशे गुणस्थाने परमार्थेन दर्शितायाः क्षपकश्रेणेरेकादशे चोपशमश्रेणेः परिसमाप्तिर्भवति। श्रेणिद्वयस्यास्य परिसमाप्तिकालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमेव, असंख्येयत्वादन्तर्मुहूर्त्तानाम्। तत्राविरताद्यप्रमत्तान्तेष्वाद्यान् कषायान्दर्शनत्रयं च, शेषांस्तु संज्वलनलोभविकलाननिवृत्तौ, संज्वलनं लोभं च सूक्ष्मसम्पराये क्षपयति। तदेवमेतेष्वपि गुणस्थानेषु क्षीणकषायव्यपदेशः प्रसज्यते, क्वापि कियतां कषायाणां क्षयसद्भावात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं वीतरागग्रहणम्, क्षीणकषायवीतरागत्वे सति च्छद्मस्थग्रहणं केवलीव्युदासाय, छद्मस्थग्रहणे सति सरागपराकरणार्थं वीतरागग्रहणम्, क्षीणकषायग्रहणं चोपशान्तकषायव्यवच्छित्तये। अत्र संख्याता भवन्ति।॥१२॥ सह योगेन=वीर्येण वर्त्तन्ते=सयोगा मनोवाक्कायास्ते विद्यन्ते यस्य सयोगी। यद्वा अनुत्तरविमानवासिमनःपर्यायज्ञानादिभिः किंचिन्मनसा पृष्टस्य केवलिनो मनसैवावेदने मनोयोगस्याद्यान्त्यभेदभाजः, देशनादौ वाग्योगस्यादिमान्तिमभेदान्वितस्य, चंक्रमणाद्यावौदारिककाययोगस्य च सद्भावात्, सहयोगैर्मनोवाक्कायैर्वर्त्तत इति सयोगः, सयोगी वा, सर्वधनादेराकृतिगणत्वेन मत्वर्थीयेन्विधानात्, केवलमस्तीति केवली, सयोगश्चासौ सयोगी वा चासौ केवली च तस्य गुणस्थानं सयोगकेवलिगुणस्थानं सयोगिकेवलिगुणस्थानमिति वा। अत्र कोटिपृथक्त्वमापद्यते ॥१३॥ न सन्ति प्राचीना[म]योगा यस्या-ऽसावयोगोऽयोगी वा पूर्ववत्। अयोगित्वं पुनरेवम्—त्रिविधोऽपि योगः सूक्ष्मबादरत्वाभ्यां द्वेधा, केवली च केवलोत्पादादूर्द्ध्वं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कृष्टतस्तु देशोनां पूर्वकोटीं विहृत्यान्तर्मुहूर्त्तशेषायुः शैलेशीं प्रतिपित्सुरादौ बादरकाययोगेन बादरवाग्मनोयोगौ निरुध्य सूक्ष्मकाययोगावष्टम्भेन बादरकाययोगं निरुणद्धि। सर्वबादरयोगनिरोधानन्तरं च सूक्ष्मकाययोगावष्टम्भेन सूक्ष्मवाग्मनोयोगौ निरुणद्धि। सूक्ष्मकाययोगं तु सूक्ष्मक्रियमनिवर्त्तिशुक्लध्यानं ध्यायन् स्वावष्टम्भेनैव निरुणद्धि। अन्यस्यावष्टम्भनीययोगान्तरस्य तदा-

ऽसत्त्वात् । सन्निरोधानन्तरं च समुच्छिन्नक्रियमप्रतिपातिशुक्लध्यानं ध्यायन् ह्रस्वपञ्चाक्षरोद्गिरणमात्रमात्रकालं शैलेशीकरणं प्रविष्टो भवति । शीलस्य=योगलेश्यामलविकलयथाख्यातचारित्ररूपस्य य ईशः स शीलेशस्तस्येयं शैलेशी, त्रिभागोनस्वदेहावगाहनायामुदरादिरन्ध्रपूरणात्संकोचितस्वप्रदेशस्य शैलेश्या=ऽऽत्मनोऽत्यन्तस्थिरावस्थितिरित्यर्थः । तस्यां करणं=पूर्वरचितशैलेशीसमयसमानगुणश्रेणीकस्य नाम–वेद्य–गोत्राख्यस्याघातिकर्मत्रयस्याऽसंख्येयगुणया श्रेण्या, आयुःशेषस्य तु यथास्वरूपस्थितिकया श्रेण्या निर्जरणं शैलेशीकरणम् । तत्र प्रविष्टोऽयोगीऽयोगी वा स चासौ केवली च स तथा । अयं च शैलेशीकरणचरमसमयानन्तरं सिद्धो भवति । सिद्धोऽपि च सन्नयोगकेवलीति व्यपदिश्यते । योगानामभावात् केवलस्य च भावात् । एतदपेक्षयैव चोत्तरत्रायोगिकेवलिनामानन्त्यं वक्ष्यते । भवस्थापेक्षया तु संख्यात्वमेव स्यात् । तस्य गुणस्थानमयोगकेवलिगुणस्थानमयोगिकेवलिगुणस्थानं वा ॥ १४ ॥ एषामुत्तरोत्तरप्रवर्द्धमानविशुद्धसत्ता । एवं क्रमनिर्देशहेतुः । अत एवाह-'गुणा" इति सूचकत्वात् सूत्रस्य, इतेरुल्लेखार्थस्य च गम्यमानत्वादित्येवंरूपाणि गुणानां स्थानानि=उपचयापचयजाः स्वरूपविशेषा गुणस्थानानि । तथाहि-पूर्वपूर्वगुणापेक्षयोत्तरोत्तरगुणानामुपचय उत्तरोत्तरगुणापेक्षया पूर्वपूर्वगुणानामपचयः । कालप्रमाणं चामीषां यथा–

जीवाणमभव्वाणं मिच्छत्तमणाइअनिहणं नेयं । भवियाणमिणमणाई संत पत्तंमि सम्मत्ते ॥१॥
सासाणं छावलियं तुरियं तेत्तीससागरा अहिया । पंचममह तेरसमं देसूणा पुव्वकोडी उ ॥२॥
चरिमं हुस्सपणक्खरउग्गिरणपमाणयं भवत्थाणं । सिद्धाणमणंतदुगं अन्तमुहुत्तं तु सेसाणि ॥३॥
समओ उ जहण्णेणं पमत्तसासणुवसन्तमोहाणं । सेससजोगिअसंजयमिच्छत्ताणं मुहुत्तंतो ॥४॥

जीवसमासे त्वप्रमत्तादीनां चतुर्णां समयो जघन्यः कालः ।

सांप्रतमेतानि मार्गणास्थानेषु योजयति—

चत्तारि देवनरएसु पंच तिरिएसु चउदस नरेसु ।
इगिविगलेसु दो दो पंचिंदीसु चउदस त्ति ॥२७॥

(यशो०) देवनरकगत्योराद्यानि चत्वारि, न शेषाणि, विरतेरभावात् । तिर्यग्गतौ देशविरत्यन्तान्याद्यानि पञ्च, नान्यानि, सर्वविरतेरभावात् । मनुष्यगतौ चतुर्दश-सर्वगुणाश्रयत्वात्तस्याः । "इगिविगलेसु" ति एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु मिथ्यात्वसास्वादनरूपे द्वे । तत्रैतेषु सर्वभेदभिन्नेषु मिथ्यात्वं प्रतीतम् । स्वास्वादनं तु तेजोवायुवर्जप्रत्येकबादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियेषु करणापर्याप्तेषु द्रष्टव्यम् । पञ्चेन्द्रियेषु चतुर्दश । तत्रैतेषु सर्वभेदेषु मिथ्यात्वम्, असंज्ञिषु पञ्चेन्द्रियेषु करणापर्याप्तेषु सास्वादनम्, संज्ञिषु करणापर्याप्तेषु सासादना-ऽविरताख्ये, शेषाणि त्वेकादशापि संज्ञिषु पर्याप्तेष्वेव ॥ २७ ॥

भूदगतरूसु दो एगमगणिवाऊसु चउदस तसेसु ।
जोए तेरस वेए तिकसाए नव दस य लोभे ॥२८॥

(यशो०) भूदकतरूषु पृथिव्यब्वनस्पतिषु द्वे द्वे आद्ये । तत्र मिथ्यात्वं सुगमम् । सास्वादनं करणापर्याप्तेषु । एकमाद्यमग्निवायुष्वतिसंक्लिष्टतया सासादनभावान्वितरयेष्वनुत्पत्तेः । त्रसेषु चतुर्दश । द्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियान्तसंग्राहित्वेन सर्वगुणानां सम्भवात् । योगे मनोवाक्कायरूपेऽयोगिवर्जानि त्रयोदश । वेदे नपुंसकस्त्रीपुंरूपे त्रयः कषायाः समाहृतास्त्रिकषायं तत्र क्रोधमानमायात्मके नवाद्यानि । तत्राऽनिवृत्तिबादराख्यनवमगुणस्थाने वर्त्तमानो यावदेतत्कषायत्रिकं नाद्यापि क्षपयत्युपशमयति वा तावत् स्वगुणस्थानसंख्येयभागान्यावदेतद्वेदत्रयकषायत्रयत्रानवाप्यते, न परतः । लोभे दशादितः प्रभृति । सूक्ष्मसम्पराये-ऽपि किट्टीकृतालोभसम्भवात् ॥२८॥

मइसुयओहिदुगे नव अजयाइ जयाइ सत्त मणनाणे ।
केवलदुगंमि दो तिन्नि दो व पढमा अनाणतिगे ॥ २९ ॥

(यशो०) मतिज्ञानश्रुतज्ञाना-ऽवधिज्ञाना-ऽवधिदर्शनेषु नव अयतादीनि=अविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणमोहान्तानि मनःपर्यायज्ञाने यतादीनि=प्रमत्तसंयतादीनि क्षीणमोहान्तानि । केवलद्विके= केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मनि द्वे सयोग्ययोगिरूपे । अज्ञानत्रिके=मत्यज्ञान-श्रुतज्ञान-विभङ्गाख्ये । त्रीण्यादिमानि द्वे वा प्रथमे । तत्र ये त्रीणि मन्यन्ते, तेषामिदमाकूतं यन्मिश्रदृष्टेर्ज्ञानान्यपि अज्ञानान्येव, यथाऽवस्थितवस्तुपरिच्छेदाभावात्, ज्ञानकार्याऽकरणाद्वा । ये तु द्वे एव प्रतिजानते, तेषामयमभिसंधिर्यदुत मिश्रदृष्टेर्ज्ञानानि किञ्चित्समीचीनरूपत्वादीषत्कलुषभावभाञ्ज्यपि सम्यग्ज्ञानान्येव, अतो-ऽज्ञानात्रये मिश्रदृष्टिर्न प्राप्यते । न च सास्वादनस्यापि सम्यग्दृष्टित्वेन तदवबोधस्यापि सम्यग्ज्ञानात्मकत्वादज्ञानत्रितये सास्वादनगुणस्थानासद्भाव इति वाच्यम् । यतस्तज्ज्ञानस्य प्रथमकषायोदयेनातिदूषितत्वादज्ञानत्वमेव ॥२९॥

सामाइयछेएसु चउरो परिहार दो पमत्ताई ।
देससुहुमे सगं पढमचरमचउअजयअहखाए ॥ ३० ॥

(यशो०) सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोश्चत्वारि प्रमत्तादीनि अनिवृत्तिबादरान्तानि । परिहारविशुद्धिके द्वे प्रमत्ताऽप्रमत्तरूपे, नोत्तराणि, श्रेण्योरभावात् । देशविरते स्वकं स्वकीयं देशविरत्यभिधम्, सूक्ष्मसंम्पराये स्वकं सूक्ष्मसंपरायात्मकम् । प्रथमचरमयोरयत-यथाख्याताभ्यां सह यथाक्रमं सम्बन्धस्ततः प्रथमानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वार्यसंयते । यतोऽत्रासंयतत्वं विरतेरभावः, स चा-ऽविरतसम्यग्मिथ्यादृशोस्तुल्यः । यथाख्याते तु चरमाणि उपशान्तकषायादीनि चत्वारि ॥३०॥

बारस अचक्खुचक्खुसु पढमा लेसासु तिसु छ दुसु सत्त ।
सुक्काए तेरस गुणा सव्वे भव्वे अभव्वेगं ॥३१॥

(यशो०) "सव्वे भव्वे" इति पदं विहाय प्रथमशब्दस्य सर्वत्राभिसम्बन्धादचक्षुश्चक्षुर्दर्शनयोर्द्वादश प्रथमानि । लेश्यास्वाद्यासु तिसृषु प्रथमानि षट् । तत्र कृष्णादिलेश्यात्रये प्रथमानां चतुर्णां सद्भावः, मंदसंक्लेशे तु तत्र देशविरतप्रमत्तयोः सद्भावः। प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि ह्यध्यवसायस्थानानि । लेश्यानां मतभेदेन तु चत्वार्येव । यतः केचिद्देशविरतादित्रयस्य विशुद्धतैजस्यादित्रये सद्भावं मन्यते । न कृष्णादिलेश्यात्रये । देशविरतादित्रयस्य विरतत्वात्, तथाविधसंक्लेशवर्त्तिनः तु तत्र विरतेरभावात । द्वयोस्तैजसीपद्मलेश्ययोः सप्त प्रथमानि । शुक्लायां तु प्रथमानि त्रयोदश । भव्ये सर्वाणि चतुर्दश । अभव्ये प्रथममेकम् । ॥३१॥

वेयग खइग उवसमे चउरो एक्कारसट्ठ तुरियाई ।
सेसतिगे सट्ठाणं सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥३२॥

(यशो०) वेद्यन्ते=विपाकेनानुभूयन्ते सम्यक्त्वपुञ्जपुद्गला यत्र तद्वेदकं=क्षायोपशमिकम् । यदप्यन्यत्र क्षपितप्रायदर्शनसप्तकस्य सम्यक्त्वपुञ्जचरमपुद्गलग्रासरूपं वेदकमुक्तं तदप्येतदेव । तत्र वेदके क्षायिके औपशमिके च यथासंख्येन चत्वारि एकादश अष्टौ तुर्यादीनि=चतुर्थादीनि-अविरतसम्यग्दृष्टिप्रमुखाणि क्रमेणा=ऽप्रमातान्तानि अयोग्यन्तानि उपशान्तमोहान्तानीत्यर्थः । शेषत्रिके सम्यक्त्वत्रयापेक्षया विपक्षभूते मिश्रसास्वादनमिथ्यादृष्टिनाम्नि स्वस्थानं स्वपदं मिश्रे मिश्रं सास्वादने सास्वादनं मिथ्यात्वे मिथ्यात्वमित्यर्थः । संज्ञिषु=मनोविज्ञानसहितेषु चतुर्दश । यतोऽत्र द्रव्यमनोऽपेक्षया सयोगी । प्राचीनद्रव्यमनोऽपेक्षया वा-ऽयोग्यपि [illegible] व्यवहृतः । अन्ये तु केवली "नोसन्नी नोऽसन्नी" इतिवचनाऽवष्टम्भेन संज्ञिषु सयोग्यय[illegible] गुणस्थानं द्वयं न प्रतिपद्यन्ते । असंज्ञिषु द्वे आद्ये ॥३२॥

आहारगेसु पढमा तेरसणाहारगेसु पंच इमे ।
[1]पढमंतदुगअविरया इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

(यशो०) आहारकेषु प्रथमानि त्रयोदश । अनाहारकेषु पञ्चेमा[illegible] [illegible]न्येवाह—
[illegible]ति द्विक-शब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमद्विकान्त्यद्विकाविरतरूपा[illegible] मिथ्यात्व[illegible]
[illegible]दनाविरतसम्यग्दृष्टिरूपाणि विग्रहगतौ । सयोगिगुणस्थानं [illegible]
अयोगिगुणस्थानं तु पञ्चह्रस्वाक्षरोद्गिरणमात्रकालम् । [illegible]
स्थानेषु गुणस्थानानि योजितानीति शेषः ॥३३॥

1. "पढमतिमदुगअविरय गइयाईसु इय गुणट्ठाणा ॥३३॥" इत्यपि [illegible]

अधुना मार्गणास्थानेष्वेव योगान्योजयितुं योगभेदांस्तावदाह—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं मणं तह वई य ।
उरलविउव्वाहारा मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥३४॥

(यशो०) योगाः सपूर्वं व्याकृतार्थास्ते त्रिविधा अपि पञ्चदशधा मनोयोगचतुष्टयवाग्योगचतुष्टयकाययोगसप्तकमीलनेन । अत एव गाथान्ते "इय जोगा" इतीयत्ताद्योतकं पदमुक्तम् । तत्र मनोयोगस्तावच्चतुर्द्धा, सत्यासत्यमिश्रासत्यामृषाभेदेन । तत्र सन्ति मुनयः पदार्था वा तेभ्यो मुक्तिप्रापकत्वेन यथाऽवस्थितस्वरूपपर्यालोचनेन वा हितः सत्यः । यथास्ति जीवः सदसद्रूप इत्यादि । यथावस्थितवस्तुचिन्तनपरः सत्यमनोयोगः । सत्यविज्ञानजनकत्वात्तु मनोयोगस्य सत्यत्वव्यपदेशः, कारणे कार्योपचारात् । एवमन्यत्रापि । तद्विपरीतोऽसत्यो=मृषा । यथा नास्ति जीव एकान्तसद्रूपो वेत्यादि विमर्शनपरः । सत्यासत्योभयरूपो मिश्रो यथा धवखदिरमिश्रेषु बहुष्वशोकवनमिति विकल्पननिष्ठः । न विद्यते सत्यं यत्र सोऽसत्यो न विद्यते मृषा यत्रासावमृषा असत्यश्चासावमृषश्च कृताकृतादिवत्कर्मधारयेऽसत्यामृषः । यत्किल विवादे सति वस्तुप्रतिष्ठाशया जिनमतानुसारेण विकल्प्यन्ते तत्सत्यम् । यज्जिनमतानवतारि विकल्पयते तदसत्यम् । यत्तु वस्तु प्रतितिष्ठासां विना स्वरूपमात्रप्रज्ञापनापरं व्यवहारपतितं विमृश्यते तन्न सत्यं नाप्यसत्यं किन्त्व सत्यामृषम् । तदेवं देवदत्त घटमानय भिक्षां देहीत्यादिपरामर्शकोऽसत्यामृषो मनोयोगः । एवं यथा मनोयोगश्चतुर्द्धा तथा तेन प्रकारेणास्ति जीवः सद्रूप इत्यादिसमुच्चारणमात्रभेदेन चतुर्द्धा वाग्योग उदाहार्यः । काययोगभेदास्तु सूचकत्वात् सूत्रस्य औदारिको वैक्रिय आहार इति त्रयः, पुनरेत एव प्रत्येकं मिश्रपदविशेषिता इति षट्, कार्मणेन सह सप्त । तत्रोदारः=प्रधानं स एवौदारिकः प्राधान्यं च तीर्थकरगणधरपुरुषापेक्षया यद्वा सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वात् शेषभवधारणीयकायेभ्यो महाप्रमाण उदारः, स एवौदारिकः काययोगः । विशिष्टा विविधा वा क्रिया विक्रिया, तस्या भावो वैक्रियः । चतुर्दशपूर्वविदा संशयच्छेदनवार्थग्रहणार्थं तीर्थकरादिसन्निधिगमन-प्राणिदया-स्वसमृद्धिप्रकटनहेतवे विशिष्टलब्धिवशाद् ह्रियते=निर्माप्यत इत्याहारकः । स च जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा उत्कर्षतः सहस्रपृथक्त्वमानो युगपन्नानाजीवानां सम्भवति । एकजीवस्य त्वेकभवे वारद्वयम् । सर्वभवेषु वारचतुष्टयमेव । चतुर्थवेलायां कृते तद्भव एव मुक्तेरिति । औदारिको मिश्रो यत्र सामर्थ्यात् तेन कार्मणेन स औदारिकमिश्रः । उत्पत्तिदेशे हि समनन्तरागतो जन्तुराद्यसमये कार्मणेनैवाहारयति । तत ऊर्द्ध्वमौदारिकस्याऽऽरब्धत्वात्कार्म्मणमिश्रेणौदारिकेण कार्म्मणौदारिकयोर्मिश्रत्वे समाने पि ओदारिकस्यारम्यमाणत्वेन प्राधान्यादौदारिकमिश्र इति व्यपदेशः । वैक्रियो मिश्र उत्तरवैक्रियारम्भत्यागकालयोः पर्याप्तदेवनारकावपेक्ष्य वैक्रियेण । केषांचिन्मतेन

बारस अचक्खुचक्खुसु पढमा लेसासु तिसु छ दुसु सत्त ।
सुक्काए तेरस गुणा सव्वे भव्वे अभव्वेगं ॥३१॥

(यशो०) "सव्वे भव्वे" इति पदं विहाय प्रथमशब्दस्य सर्वत्राभिसम्बन्धाद्चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्द्वा दश प्रथमानि । लेश्यास्वाद्यासु तिसृषु प्रथमानि षट् । तत्र कृष्णादिलेश्यात्रये प्रथमानां चतुर्णां सद्भावः, मंदसंक्लेशे तु तत्र देशविरतप्रमत्तयोः सद्भावः। प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि ह्यध्यवसायस्थानानि । लेश्यानां मतभेदेन तु चत्वार्येव । यतः केचिद्देशविरतादित्रयस्य विशुद्धतैजस्यादित्रये सद्भावं मन्यते । न कृष्णादिलेश्यात्रये । देशविरतादित्रयस्य विरतत्वात्, तथाविधसंक्लेशवर्त्तिनः तु तत्र विरतेरभावात् । द्वयोस्तैजसीपद्मलेश्ययोः सप्त प्रथमानि । शुक्लायां तु प्रथमानि त्रयोदश । भव्ये सर्वाणि चतुर्दश । अभव्ये प्रथममेकम् । ॥३१॥

वेयग खइग उवसमे चउरो एक्कारसट्ठ तुरियाई ।
सेसतिगे सट्ठाणं सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥३२॥

(यशो०) वेद्यन्ते=विपाकेनानुभूयन्ते सम्यक्त्वपुञ्जपुद्गलो यत्र तद्वेदकं=क्षायोपशमिकम् । यदप्यन्यत्र क्षपितप्रायदर्शनसप्तकस्य सम्यक्त्वपुञ्जचरमपुद्गलग्रासरूपं वेदकमुक्तं तदप्येतदेव । तत्र वेदके क्षायिक ओपशमिके च यथासंख्येन चत्वारि एकादश अष्टौ तुर्यादीनि=चतुर्थादीनि-अविरतसम्यग्दृष्टिप्रमुखाणि क्रमेणाऽप्रमातान्तानि अयोग्यन्तानि उपशान्तमोहान्तानीत्यर्थः । शेषत्रिके सम्यक्त्वत्रयापेक्षया विपक्षभूते मिश्रसास्वादनमिथ्यादृष्टिनाम्नि स्वस्थानं स्वपदं मिश्रे मिश्रं सास्वादने सास्वादनं मिथ्यात्वे मिथ्यात्वमित्यर्थः । संज्ञिषु=मनोविज्ञानसहितेषु चतुर्दश । यतोऽत्र द्रव्यमनोऽपेक्षया सयोगी । प्राचीनद्रव्यमनोऽपेक्षया वा-ऽयोग्यपि संज्ञीति व्यवहृतः । अन्ये तु केवली "नोसन्नी नोऽसन्नी" इतिवचनाऽवष्टम्भेन संज्ञिषु सयोग्ययोगिरूपं गुणस्थानं द्वयं न प्रतिपद्यन्ते । असंज्ञिषु द्वे आद्ये ॥३२॥

आहारगेसु पढमा तेरसणाहारगेसु पंच इमे ।
[1]पढमंतदुगअविरया इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

(यशो०) आहारकेषु प्रथमानि त्रयोदश । अनाहारकेषु पञ्चेमानि । तान्येवाह– 'पढमन्ते" ति द्विक-शब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमद्विकान्त्यद्विकाविरतरूपाणि पञ्च । तत्र मिथ्यात्व-सास्वादनाविरतसम्यग्दृष्टिरूपाणि विग्रहगतौ । सयोगिगुणस्थानं समुद्घाते तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु । अयोगिगुणस्थाने तु पञ्चह्रस्वाक्षरोद्गिरणमात्रकालम् । इत्यमुनोल्लेखेन गत्यादिषु मार्गणास्थानेषु गुणस्थानानि योजितानीति शेषः ॥३३॥

---

१. "पढमतिमदुगअविरय गइयाइसु इय गुणट्ठाणा ॥३३॥" इत्यपि पाठः ।

अधुना मार्गणास्थानेष्वेव योगान्योजयितुं योगभेदांस्तावदाह—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं मणं तह वई य ।
उरलविउव्वाहारा मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥२४॥

(यशो०) योगाः सपूर्वे व्याकृतार्थास्ते त्रिविधा अपि पञ्चदशधा मनोयोगचतुष्टयवाग्योगचतुष्टयकाययोगसप्तकमीलनेन । अत एव गाथान्ते "इय जोगा" इतीयत्ताद्योतकं पदमुक्तम् । तत्र मनोयोगस्तावच्चतुर्द्धा, सत्यासत्यमिश्रासत्यामृषाभेदेन । तत्र सन्ति मुनयः पदार्था वा तेभ्यो मुक्तिप्रापकत्वेन यथाऽवस्थितस्वरूपपर्यालोचनेन वा हितः सत्यः । यथास्ति जीवः सदसद्रूप इत्यादि । यथावस्थितवस्तुचिन्तनपरः सत्यमनोयोगः । सत्यविज्ञानजनकत्वात्तु मनोयोगस्य सत्यत्वव्यपदेशः, कारणे कार्योपचारात् । एवमन्यत्रापि । तद्विपरीतोऽसत्यो=मृषा । यथा नास्ति जीव एकान्तसद्रूपो वेत्यादि विमर्शनपरः । सत्यासत्योभयरूपो मिश्रो यथा धवखदिरमिश्रेषु बहुष्वशोकवनमिति विकल्पननिष्ठः । न विद्यते सत्यं यत्र सोऽसत्यो न विद्यते मृषा यत्रासावमृषा असत्यश्चासावमृषश्च कृताकृतादिवत्कर्म्मधारयेऽसत्यामृषः । यत्किल विवादे सति वस्तुप्रतिष्ठाशया जिनमतानुसारेण विकल्प्यन्ते तत्सत्यम् । यज्जिनमतानवतारि विकल्पयते तदसत्यम् । यत्तु वस्तु प्रतिविष्ठासां विना स्वरूपमात्रप्रज्ञापनापरं व्यवहारपतितं विमृश्यते तन्न सत्यं नाप्यसत्यं किन्त्व सत्यामृषम् । तदेवं देवदत्त घटमानय भिक्षां देहीत्यादिपरामर्शकोऽसत्यामृषो मनोयोगः । एवं यथा मनोयोगश्चतुर्द्धा तथा तेन प्रकारेणास्ति जीवः सद्रूप इत्यादिसमुच्चारणमात्रभेदेन चतुर्द्धा वाग्योग उदाहार्यः । काययोगभेदास्तु सूचकत्वात् सूत्रस्य औदारिको वैक्रिय आहार इति त्रयः, पुनरेत एव प्रत्येकं मिश्रपदविशेषिता इति षट्, कार्मणेन सह सप्त । तत्रोदारः=प्रधानं स एवौदारिकः प्राधान्यं च तीर्थंकरगणधरपुरुषापेक्षया यद्वा सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वात् शेषभवधारणीयकायेभ्यो महाप्रमाण उदारः, स एवौदारिकः काययोगः । विशिष्टा विविधा वा क्रिया विक्रिया, तस्या भावो वैक्रियः । चतुर्दशपूर्वविदा संशयच्छेदनवार्थग्रहणार्थं तीर्थंकरादिसन्निधिगमन-प्राणिदया-स्वसमृद्धिप्रकटनहेतवे विशिष्टलब्धिवशाद् ह्रियते=निर्माप्यत इत्याहारकः । स च जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा उत्कर्षतः सहस्रपृथक्त्वमानो युगपन्नानाजीवानां सम्भवति । एकजीवस्य त्वेकभवे वारद्वयम् । सर्वभवेषु वारचतुष्टयमेव । चतुर्थवेलायां कृते तद्भव एव मुक्तेरिति । औदारिको मिश्रो यत्र सामर्थ्याय तेन कार्मणेन स औदारिकमिश्रः । उत्पत्तिदेशे हि समनन्तरागतो जन्तुराद्यसमये कार्मणेनैवाहारयति । तत ऊर्ध्वमौदारिकस्याऽऽरब्धत्वात्कार्म्मणमिश्रेणौदारिकेण कार्मणौदारिकयोर्मिश्रत्वे समाने पि ओदारिकस्यारम्यमाणत्वेन प्राधान्यादौदारिकमिश्र इति व्यपदेशः । वैक्रियो मिश्र उत्तरवैक्रियारम्भत्यागकालयोः पर्याप्तदेवनारकावपेक्ष्य वैक्रियेण । केषांचिन्मतेन

तु कृतवैक्रयसमुद्घातौ तावपेक्ष्य कार्म्मणेनापि । अपर्याप्तदेवनारकापेक्षया तु कार्मणेन । पर्याप्तबादरवायुकायिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यापेक्षया पुनरौदारिकेण यत्र स वैक्रियमिश्रः । अत्रा-ऽपि प्रारम्भकाले प्रारम्यमाणत्वेन त्यागकाले च बहुव्यापकत्वेन वैक्रियस्य प्राधान्याद्वैक्रियमिश्र इति व्यपदेशः, न तु कार्मणमिश्र इत्यौदारिकमिश्र इति वा । अत्र सैद्धान्तिका वायुकायिकतिर्यग्मनुष्याणां वैक्रियस्यारम्भकाले औदारिकस्य बहुव्यापारत्वेन प्राधान्यादौदारिकमिश्रमभ्युपयन्ति । अन्गे तु वैक्रियत्यागकाले औदारिकस्य प्रारम्यमाणत्वेन प्राधान्यादौदारिकमिश्रमभ्युपयन्ति । आहारको मिश्रो यत्र सामर्थ्यप्राप्तेनौदारिकेण स आहारकमिश्रः । अयं च चतुर्दशपूर्वविद आहारकारम्भत्यागकालयोर्बोद्धव्यः । अन्ये त्वाहारकस्याऽऽरम्भकाले, केचित्तु त्यागकाल औदारिकमिश्रं मन्यन्ते । कारणानि तु पूर्ववत् , कर्मैव कार्मणम् , कर्मविपाको वा कार्मणः, तद्रूपः काययोगः । अयं तु केवल ऋजुगतौ विग्रहगतावुत्पत्तिप्रथमसमये केवलिसमुद्घातस्य च त्रिचतुःपञ्चसमयेषु लभ्यते । तैजसकाययोगस्तु सर्वदैव कार्मणसहभावित्वात् कार्मणेनैव संगृहीत इति पृथग्नोक्तः । मनोवाक्काययोगानां क्रमकारणं प्रागुक्तम् , मनोभेदेषु प्रशस्यत्वादादौ सत्यस्य, ततस्तत्प्रतिपक्षत्वादसत्यस्य, ततस्तदुभयनिष्पन्नत्वान्मिश्रस्य, तदनुभयलब्धात्मलाभत्वादसत्यामृषस्योपादानम् । एष एव वाग्भेदेष्वपि निर्देशक्रमहेतुः । △काययोगभेदेषु पुनरुत्कृष्टतोऽ-नन्तकालभावित्वेनौदारिकस्य, तत उत्कृष्टतः संख्यातसागरोपमकालभावित्वेन वैक्रियस्य, ततोन्तर्मुहूर्तकालभावित्वेना-ऽऽहारकस्य, तत औदारिकादियोगमू(लानां मिश्राणां कार्मणे)रौदारिकादिमिश्राणाम् । तदनन्तरं केवलस्य कतिपयसमयभावित्वेन संसारान्त(र्वर्तिनां संसार)निमित्त(त्वेन च कार्मणस्य निर्देशः ॥ ३४ ॥

अथ तान् मार्गणा) स्थानेषु योजयति ।

एकारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया ।
जोगा तिरियगईए तेरस आहारगदुगूणा ॥३५॥

(यशो०) सुरनारकगत्योरेकादश योगाः । द्विकशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धादाहारकद्विकेन रहिता औदारिकद्विकेन रहिताः । आहारका-ऽऽहारकमिश्रौदारिकौदारिकमिश्रैरहिता एकादश योगा इत्यर्थः । आहारकद्विकं यतेरेव औदारिकद्विकं तिर्यग्नराणामेवेति तत्परिहरणम् , तिर्यग्गतौ त्रयोदश, के ? आहारकद्विकेनोना = ऽऽहारकद्विकशेषा । भावना पूर्ववत् ॥३५॥

△ अयं च बाहुल्यापेक्षया विवक्षाभेदः । अन्यथौदारिककायस्योत्कृष्टकालो देशोनद्वाविंशतिवर्षसहस्राणि, वैक्रियस्य चान्तर्मुहूर्तमात्र एव इति ज्ञेयम् ।

नरगइपणिंदितसतणुनरअपुमकसायमइसुओहिदुगे ।
अच्चक्खुछलेसाभव्वसम्मदुगसन्निसु य सव्वे ॥ ३६ ॥

(यशो०) अत्राऽऽद्यार्धे समाहारद्वन्द्वोऽपरार्द्धे तु "सन्निसु ये"तिपर्यन्त इतरेतरयोगः "अपुमे"ति नपुंसकः अवधिद्विक=मवधिज्ञानावधिदर्शने, सम्यक्त्वद्विकं=क्षायोपशमिक-क्षायिके, ततो नरगत्यादिषु पञ्चविंशतिसंख्येषु स्थानेषु सर्वयोगाः । भावना तु प्रतीता ॥३६॥

एगिंदिएसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।
कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(यशो०) तुरेवार्थे, पञ्चैव, एकेन्द्रियेषु के ? कार्म्मणं युगलशब्दस्य वैक्रि[या-ऽऽहार]यौदा-रि)काभ्यामभिसम्बन्धाद्वैक्रिययुगलमौदारिकयुगलं च । तत्र कार्मणं विग्रहगता ऋजुगतावुत्पत्तिप्र-थमसमये च औदारिकद्विकं पर्याप्तापर्याप्तदशायाम् । वैक्रियद्विकं तु पर्याप्तबादरवायुकायि-कापेक्षम् । विकलेषु=विकलेन्द्रियेषु=द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु कार्म्मणमौदारिकद्विकमन्तिमभाषा चास-त्यामृषारूपेति चत्वारः । भावना सुगमा ॥३७॥

कम्मुरलदुगं थावरकाए वाए विउव्विजुयलजुयं ।
पढमंतिममणवइदुगकम्मुरलदुकेवलदुगंमि ॥३८॥

(यशो०) स्थावरकाये पृथिव्यादौ वनस्पत्यन्तेऽर्थाद्वायुवर्जे, कार्मणं च औदारिकद्विकं चेति द्वन्द्वे कार्म्मणौदारिकद्विकमिति योगत्रयम् । एतदेव वायुकाये वैक्रियद्विकेन युतं=युक्तमिति योगप-ञ्चकम् । भावना त्वेकेन्द्रियवत् । प्रथमं सत्यमन्तिममसत्यामृषं मनस्तद्रूपं द्विकं प्रथमा सत्यान्तिमा-ऽसत्यामृषा वाक् तद्रूपं द्विकं कार्मणमौदारिकद्विकं चेति योगसप्तकं केवलज्ञानकेवलदर्शनयोः । अत्र द्रव्यमनः प्रतीत्य मनोभेदद्वयमुक्तम्, वागूद्वयमौदारिकं च प्रतीतम् । कार्मणौदारिकमिश्रयोगौ तु समुद्घाते । उक्तञ्च-"औदारिकप्रयोक्ता प्रथमाष्टमसमययोरसाविष्टः । मिश्रौदारिकयोक्ता सप्तमषष्ठ द्वितीयेषु ॥ कार्म्मणशरीरयोगी चतुर्थके पंचमे तृतीये च"ति ॥३८॥

[1]थीवेयअनाणोवसमअजयसासणअभव्वमिच्छेसु ।
तेरस मणवइमणनाणछेयसामइयचक्खुसु य ॥३९॥

(यशो०) अत्र पूर्वार्द्धप्रतिपादिते स्थाननवके आहारकद्विकवर्जास्त्रयोदश । द्वितीयार्द्धगते तु स्थानपट्केऽपर्याप्तत्वाभावादौदारिकमिश्रकार्म्मणवर्जास्त्रयोदश विवक्षितवर्जनीयं योगद्विकं च सूत्र-कृता सुज्ञानत्वान्नोक्तमिति ॥३९॥

१. "थीवेअन्नाणो"० इत्यपि पाठः ।

परिहारे सुहुमे नव उरलवइमणा सकम्मुरलमिस्सा ।
अहखाए सविउव्वा मीसे देसे सविउवदुगा ॥ ४० ॥

(यशो०) परिहारविशुद्धिके सूक्ष्मसम्पराये च औदारिको वाक्चतुष्टयं मनश्चतुष्टयं चेति नव । ते पूर्वोक्ता नव कार्मणौदारिकमिश्रौ केवलिसमुद्घातापेक्षौ [। उपशां](चेत्येकादश योगा यथाख्यातसं)यमेऽन्त्यगुणस्थानचतुष्कवर्त्तिनि भवन्ति । तत्र कार्म्मणौदारिकमिश्रौ केवलिसमुद्घातापेक्षौ । उपशान्तक्षीणमोहयोस्तु नव नव योगाः । अयोगिनि सर्वयोगाभाव एव । मिश्रगुणस्थानके तच्छब्दानुवृत्त्या ते पूर्वोक्ताः परिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायसम्बन्धिनो नव, वैक्रियसहिता दश । अत्र "न सम्ममिच्छो कुणइ काल" मिति वचनान्मिश्रस्य मरणाभावेन विग्रहगतिभावि कार्मणमपर्याप्तावस्थाभाविनावौदारिकमिश्रदेवनारकसम्बन्धिवैक्रियमिश्रौ च न भवन्ति । नरतिरश्चोस्तु सम्यग्मिथ्यादृशोर्वैक्रियमिश्राभावो वैक्रियस्यैवाकरणादन्यतो वा कारणादिति तत्त्वविदो विदन्ति । आहारकद्विकाभावः प्रतीतः । देशे=देशविरतेऽत्रापि तच्छब्दानुवृत्त्या ते पूर्वोक्ता नव वैक्रियद्विकेन तु सहिता एकादश । वैक्रियद्विकं देशविरतस्याम्बडपरिव्राजक_स्यैक](स्येव) वैक्रियलब्धौ सत्यां द्रष्टव्यम् ॥४०॥

कम्मुरलविउव्वदुगाणि चरमभासा य छ उ असन्निंमि ।
जोगा अकम्मगाहारगेसु कम्मणमणाहारे ॥ ४१ ॥

(यशो०)द्विकशब्दस्यौदारिकवैक्रियाभ्यामभिसम्बन्धात्कार्म्मणौदारिकद्विकवैक्रियद्विकान्यऽसत्यामृषा भाषा चेति षड् योगाः । असंज्ञिनि=मनोविज्ञानशून्य एकेन्द्रियादौ । तत्र कार्म्मणं विग्रहगतौ, औदारिकमिश्रोऽपर्याप्तावस्थायाम्, औदारिकं पर्याप्तावस्थायाम्, वैक्रियद्विकं च बादरपर्याप्तवायोः, असत्यामृषा भाषा च पर्याप्तद्वीन्द्रियादीनाम् । आहारकेषु योगा अकर्म्मकाः कार्मणरहिताश्चतुर्दशेत्यर्थः । यत्तु ऋजुगतौ विग्रहगतौ "जोएण कम्मएणं आहारेई अणंतरं जीवो ।" इति वचनादुत्पत्तिपञ्चमसमये कार्म्मणवतोऽप्या-ऽऽहारकत्वम्, तदल्पकालभावित्वान्न विवक्षितमि[ति यु](त्यु) च्यते । कार्मणमेकमेवानाहारके । अनाहारको हि मिथ्यादृष्टि-सासादना-ऽविरतगुणस्थानत्रये विग्रहगतौ सयोगिगुणस्थाने च केवलिसमुद्घाततृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु प्राप्यते । स च तदा कार्मणेनैव योगेन युतः । अयोगिनस्तु अनाहारकस्य न कार्मणयोगोऽपि, निरुद्धसमग्रयोगत्वादेव ॥४१॥

अधुना मार्गणास्थानेषु योजयितुमुपयोगान् भेदतः स्वरूपतश्च तावदाह—

नाणं पंचविहं तह अन्नाणतिगं ति अट्ठ सागारा ।
चउदंसणमणगारा बारस जियलक्खणुवओगा ॥४२॥

(यशो०)उपयुज्यते=ऽर्थपरिच्छित्तिं प्रति व्यापार्यत इति उपयुज्यतेऽर्थे परिच्छेदं प्रतिव्यापा-

र्यते जीव एभिरिति वा उपयोगा=जीवस्वतत्त्वभूतबोधात्मनः। ते च परिच्छेद्यभेदाद् द्वेधा। साकारा अनाकाराश्च। तत्र सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषांशग्राहिणः साकाराः। सह विशिष्टाकारेण विशेषग्राहित्वात्मकेन वर्त्तन्ते इति कृत्वा। सामान्यांशग्राहिणोऽनाकाराः। विशिष्टाकारस्याऽभावात्। तत्र ज्ञानपञ्चकं मतिज्ञानादि पूर्वोपवर्णितं मत्यज्ञानाद्यज्ञानत्रिकं चेत्यष्टौ साकाराः। चतुर्णां दर्शनानामचक्षुर्दर्शनादीनां प्राग्व्याकृतार्थानां समाहारश्चतुर्दर्शनमितिशब्दानुवृत्तेरिति दर्शनचतुष्टयरूपा अनाकाराः। एते न भेदानुगतं स्वरूपमुक्तम्। 'जीवलक्खणं''ति जीवानां लक्षणानि=स्वरूपाणि 'उपयोगलक्षणो जीव'' इति वचनादिदं च सामान्यानुयायि स्वरूपम्। द्वादशेति संख्यायाः सामर्थ्यगम्याया अपि साक्षादुपादानमेतवान्त एव न न्यूनाधिका इति नियमार्थम्। अत्र ''सव्वाउ लद्धीओ सागरोवउत्तस्स भवन्ती'' ति वचनाल्लब्धिहेतुत्वेन प्राधान्यात्। छद्मस्थगतसाकाराणामन्तर्मुहूर्त्तकालत्वेनान्ये-ऽपि साकाराणां पर्यायपरिच्छेदकतयाचिरस्थायित्वेनाऽनाकारेभ्यः संख्यातगुणकालत्वादादौ साकारा उक्ताः, ततोऽनाकाराः। यत्तु विभङ्गज्ञानान्निवर्त्तमानस्य साकारानाकारोपयोगद्वयेऽपि वर्त्तमानस्य सम्यक्त्वावधिज्ञानप्रतिपत्तिरस्तीत्युक्तं पञ्चमाङ्गे तदवस्थितपरिणामापेक्षया ''सव्वाओ लद्धीओ'' इत्यादि तु वचनं प्रवर्त्तमानपरिणामापेक्षयेति न विरोधः। ज्ञानपञ्चकस्या-ऽज्ञानत्रिकस्य दर्शनचतुष्कस्य च निर्देशक्रमहेतवः प्रागुक्ताः ॥४२॥

अथैतान् मार्गणास्थानेषु योजयति–

मणुयगईए बारस मणकेवलदुगविहिया नवन्नासु।
थावरइगबितिइंदिसु अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥ ४३ ॥

(यशो०) मनुष्यगतौ द्वादश, तत्र सर्वेषामपि सम्भवात्। मनःपर्यव-केवलद्विकवर्जिता नवाऽन्यासु देव-तिर्यग्नरकगतिषु। मनःपर्यवकेवलद्विकाभावस्तु संयमपरिणामाभावात्। स्थावरेषु पृथिव्यादिषु पञ्चसु एक-द्वि-त्रीन्द्रियेषु चाष्टासु पदेषु अचक्षुर्दर्शनमत्यज्ञानश्रुताज्ञानरूपमुपयोगत्रयम् ॥४३॥

चक्खुजुयं चउरिंदिसु तं च्चिय बारस पणिंदितसकाए।
जोए वेए सुक्काए भव्वसन्नीसु आहारे ॥ ४४ ॥

(यशो०) चक्षुर्दर्शनयुक्तं तदेव प्राचीनमुपयोगत्रयं चतुरिन्द्रियेषु पञ्चेन्द्रियादिषु द्वादशसु पदेषु द्वादशोपयोगाः प्रतीताः। परं यत्संज्ञिनि केवलद्विकं निगदितं तत्केवलिनः संज्ञ्य-ऽसंज्ञिव्यपदेशशून्यस्यापि द्रव्यमनोऽपेक्षया 'संज्ञि' इति विवक्षणान्मन्तव्यम्। यस्त्वनिवृत्तिबादर एव व्य-

वच्छिन्नेऽपि वेदत्रिके केवलिद्विकमुक्तम्, तदाकारमात्राश्रयणेन केवलिनो पि पुरुषादिव्यपदेशभाजनत्वाद् द्रष्टव्यम् ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुसु य ।
केवलदुगे नियदुगं खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(यशो०) कषायचतुष्के लेश्यापञ्चके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलद्विकेन न्यूना दश; एतेषामभाव एव केवलद्विकसद्भावात् । केवलद्विके निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मकम् । क्षायिके नव, कथं नोऽज्ञानत्रिकं भवति, तदन्ये भवन्तीति तात्पर्यार्थः ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।
नाणचउदंसणतिग केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(यशो.)प्रथमचतुःशब्दयोर्ज्ञानसंयमाभ्यां प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमेषु चतुर्षु ज्ञानेषु मत्यादिषु प्रथमेषु चतुर्षु संयमेषु सामायिकादिषु वेदके=क्षायौपशमिकसम्यक्त्वे औपशमिकसम्यक्त्वाऽवधिदर्शनयोश्च ज्ञानचतुष्कं दर्शनत्रिकं चेत्युपयोगसप्तकम् । एतदेव केवलद्विकेन सहितं यथाख्यातसंयमेऽन्त्युगुणस्थानचतुष्कवर्त्तिनि । तत्रोपयोगसप्तकमेतदेव क्षीणमोहयोः, केवलद्विकं च सयोग्ययोगिगुणस्थानयोः ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे मीसे अनाणमीसं तं ।
केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥४७॥

(यशो०) ज्ञानत्रिकमाद्यं दर्शनत्रिकं चाद्यमिति षडुपयोगा देशविरते । मिश्रे=मिश्रगुणस्थाने तदेव ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चेति षट् । केवलं ज्ञानत्रिकमज्ञानमिश्रं द्रष्टव्यम् । इदमत्र तात्पर्यम्—मिश्रः=सम्यगमिथ्यादृष्टिरूच्यते । ततश्च यावतांऽशेनाऽत्र सम्यग्शब्दप्रवृत्तिस्तावता ऽस्य ज्ञानं कथ्यते, यावता च मिथ्याशब्दप्रवृत्तिस्तावता तदेवा-ऽज्ञानमिश्रीभूतं द्रष्टव्यम् । अत एवावधिज्ञानांशं कंचिदाश्रित्यावधिदर्शनमप्यत्रोक्तम्, अन्यथा शुद्धे विभङ्गज्ञाने मिथ्यादृष्टेरिव न तदुक्तं स्यात् । केवलद्विकेन मनःपर्यवेन च रहिता नवाऽसंयते=संयमशून्ये मिथ्यादृष्टि-सास्वादन-मिश्रा-ऽविरतभेदे न च स्वरूपे । तत्र मिश्रे षडुक्ता एवोपयोगा । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य चाज्ञानत्रयम् । सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च । सर्वेषामप्येषां चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं चेति नवोपयोगभावना ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।
दोदंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

(यशो०) अज्ञानत्रिकादिषु षट्स्थानेषु चक्षुरचक्षुर्दर्शनरूपं द्विकमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च । इह विभङ्गेऽवधिदर्शनाभाव उक्तः कर्मप्रकृत्यनुवृत्त्या । तत्र हि मिथ्यारूपतया सम्यक् विषयाऽनिश्चायकत्वादवधिदर्शनं न विभङ्गात्पृथग्विवक्षितम् । प्रज्ञापनायां तु विभङ्गस्याववधिदर्शनमनुमतम् । यतस्तत्रोक्तम्–"दसणं विभंगोहीण जउनु ल‍ (छ)मेवं' ति यथासम्यग्दृशो विशेषविषयमवधिज्ञानमवधिदर्शनं सामान्यविषयमेवं मिथ्यादृशो विशेषविषयो विभङ्गः सामान्यविषयमवधिदर्शनमिति । ते च प्रागुक्ताः पञ्च विभङ्गरहिताश्चत्वारोऽसंज्ञिनि=मनोविज्ञानविकले ॥४८॥

अथोपयोगोपसंहरणाय मतान्तरप्रस्तावनायचाह—

मणनाणचक्खुरहिया दस उ अणाहारगेसु उवओगा ।
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥ ४९ ॥

(यशो०) तुरेवार्थे, दशैवोपयोगा अनाहारके । अनाहारको हि विग्रहगतिकेवलिसमुद्घातभवस्थायोगिसिद्धदशास्वेव प्राप्यते । तत्र विग्रहगतौ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं च । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य च मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने विभङ्गज्ञानमपि तयोः,

"सन्नी नेरइएसुं उरलपरिच्चायणंतरे समए । विब्भंगं ओहिं वा अविग्गहे विग्गहे लभइ ॥"

इति वचनात्संज्ञिभ्यो नारकेषूत्पद्यमानयोरपर्याप्तदशायां मन्तव्यम्, असंज्ञिभ्यः पुनर्नरकेषूत्पन्नस्य मिथ्यादृशः पर्याप्तदशायामेव विभङ्गाज्ञानम्, यत उक्तम्—

'अस्सन्नी नरएसुं पज्जत्तो जेण लहइ विब्भंगं । नाणा तिन्नेव तओ अन्नाणा दुन्नि तिन्नेव" त्ति,

एतच्च भवनपतिव्यन्तरे-ष्वप्युत्पद्यमानयोर्वाच्यम् । ज्योतिष्कवैमानिकेषु पुनरसंज्ञिन्य उत्पाद एव नास्तीत्येव विवादो विभङ्गः । त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनमेवमेतेऽष्टौ । केवलिसमुद्घाते भवस्थायोगिगुणस्थानके सिद्धेषु च केवलद्विकमिति विवेकः । इति गत्यादिषु उपयोगा योजिता इति शेषः । अत्र नयमतेन=निश्चयनयाश्रयेण नानात्वं=विशेषो नयमतनानात्वं योगेषु इदं वक्ष्यमाणम्, तुशब्दः प्राग्व्याख्यानात्करिष्यमाणव्याख्यानव्यतिरेकसूचकः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

तणुवइमणेसु कमसो दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।
तेरसदुबारतेरस गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥ ५० ॥

(यशो०) तनौ=काययोगे क्रमेण द्वौ चत्वारः त्रयः पञ्च गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । वाचि=वाग्योगे क्रमेण द्वावष्टौ चत्वारः चत्वारो गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । मनसि=मनोयोगे क्रमेण त्रयोदश द्वौ द्वादश त्रयोदश गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगा भवन्तीत्यक्षरघटना । भावार्थस्तु काययोगे मनोवाग्रहिते आद्यगुणस्थानद्वयम्, आदिमं जीवस्थानकचतुष्कम्,

वच्छिन्नेऽपि वेदत्रिके केवलिद्विकमुक्तम्, तदाकारमात्राश्रयणेन केवलिनोऽपि पुरुषादिव्यपदेशभाजनत्वाद् द्रष्टव्यम् ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुसु य ।
केवलदुगे नियदुगं खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(यशो०) कषायचतुष्के लेश्यापञ्चके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलद्विकेन न्यूना दश; एतेषाममाव एव केवलद्विकसद्भावात् । केवलद्विके निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मकम् । क्षायिके नव, कथं नोऽज्ञानत्रिकं भवति, तदन्ये भवन्तीति तात्पर्यार्थः ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।
नाणचउदंसणतिग केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(यशो.)प्रथमचतुःशब्दयोर्ज्ञानसंयमाभ्यां प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमेषु चतुर्षु ज्ञानेषु मत्यादिषु प्रथमेषु चतुर्षु संयमेषु सामायिकादिषु वेदके=क्षायौपशमिकसम्यक्त्वे औपशमिकसम्यक्त्वाऽवधिदर्शनयोश्च ज्ञानचतुष्कं दर्शनत्रिकं चेत्युपयोगसप्तकम् । एतदेव केवलद्विकेन सहितं यथाख्यातसंयमेऽन्त्युगुणस्थानचतुष्कवर्तिनि । तत्रोपयोगसप्तकमेतदेव क्षीणमोहयोः, केवलद्विकं च सयोग्ययोगिगुणस्थानयोः ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे मीसे अनाणमीसं तं ।
केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥४७॥

(यशो०) ज्ञानत्रिकमाद्यं दर्शनत्रिकं चाद्यमिति षडुपयोगा देशविरते । मिश्रे=मिश्रगुणस्थाने तदेव ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चेति षट् । केवलं ज्ञानत्रिकमज्ञानमिश्रं द्रष्टव्यम् । इदमत्र तात्पर्यम्—मिश्रः=सम्यगमिथ्यादृष्टिरुच्यते । ततश्च यावताऽंशेनाऽत्र सम्यग्शब्दप्रवृत्तिस्तावताऽस्य ज्ञानं कथ्यते, यावता च मिथ्याशब्दप्रवृत्तिस्तावता तदेवाऽज्ञानमिश्रीभूतं द्रष्टव्यम् । अत एवावधिज्ञानांशं कंचिदाश्रित्यावधिदर्शनमप्यत्रोक्तम्, अन्यथा शुद्धे विभङ्गज्ञाने मिथ्यादृष्टेरिव न तदुक्तं स्यात् । केवलद्विकेन मनःपर्यवेन च रहिता नवाऽसंयते=संयमशून्ये मिथ्यादृष्टि-सास्वादन-मिश्रा-ऽविरतभेदे न च स्वरूपे । तत्र मिश्रे षडुक्ता एवोपयोगा । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य चाज्ञानत्रयम् । सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च । सर्वेषामप्येषां चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं चेति नवोपयोगभावना ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।
दोदंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

(यशो०) अज्ञानत्रिकादिषु षट्स्थानेषु चक्षुरचक्षुर्दर्शनरूपं द्विकमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च । इह विभङ्गेऽवधिदर्शनाभाव उक्तः कर्मप्रकृत्यनुवृत्त्या । तत्र हि मिथ्यारूपतया सम्यक् विषयाऽनिश्चायकत्वादवधिदर्शनं न विभङ्गात्पृथग्विवक्षितम् । प्रज्ञापनायां तु विभङ्गस्याप्यवधिदर्शनमनुमतम् । यतस्तत्रोक्तम्—"दसणं विभंगोहीण जउनु ल१.(क्ष)मेवे' ति यथासम्यग्दृशो विशेषविषयमवधिज्ञानमवधिदर्शनं सामान्यविषयमेवं मिथ्यादृशो विशेषविषयो विभङ्गः सामान्यविषयमवधिदर्शनमिति । ते च प्रागुक्ताः पञ्च विभङ्गरहिताश्चत्वारोऽसंज्ञिनि=मनोविज्ञानविकले ॥४८॥

अथोपयोगोपसंहरणाय मतान्तरप्रस्तावनायचाह—

मणनाणचक्खुरहिया दस उ अणाहारगेसु उवओगा ।
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥ ४९ ॥

(यशो०) तुरेवार्थे, दशैवोपयोगा अनाहारके । अनाहारको हि विग्रहगतिकेवलिसमुद्घातभवस्थायोगिसिद्धदशास्वेव प्राप्यते । तत्र विग्रहगतौ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं च । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य च मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने: विभङ्गज्ञानमपि तयोः,

"सन्नी नेरइएसुं उरलपरिच्चायणंतरे समए । विब्भंगं ओहिं वा अविग्गहे विग्गहे लमइ ॥"

इति वचनात्संज्ञिभ्यो नारकेषूत्पद्यमानयोरपर्याप्तदशायां मन्तव्यम्, असंज्ञिभ्यः पुनर्नरकेषूत्पन्नस्य मिथ्यादृशः पर्याप्तदशायामेव विभङ्गज्ञानम्, यत उक्तम्—

'अस्सन्नी नरएसुं पज्जत्तो जेण लहइ विब्भंगं । नाणा तिन्नेव तओ अन्नाणा दुन्नि तिन्नेवे" ति,

एतच्च भवनपतिव्यन्तरे-ष्वप्युत्पद्यमानयोर्वाच्यम् । ज्योतिष्कवैमानिकेषु पुनरसंज्ञिभ्य उत्पाद एव नास्तीत्येव विवादो विभङ्गः । त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनमेवमेतेष्वष्टौ । केवलिसमुद्घाते भवस्थायोगिगुणस्थानके सिद्धेषु च केवलद्विकमिति विवेकः । इति गत्यादिषु उपयोगा योजिता इति शेषः । अत्र नयमतेन=निश्चयनयाश्रयेण नानात्वं=विशेषो नयमतनानात्वं योगेषु इदं वक्ष्यमाणम्, तुशब्दः प्राग्व्याख्यानात्करिष्यमाणव्याख्यानव्यतिरेकसूचकः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

तणुवइमणेसु कमसो दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।
तेरसदुबारतेरस गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥ ५० ॥

(यशो०) तनौ=काययोगे क्रमेण द्वौ चत्वारः त्रयः पञ्च गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । वाचि=वाग्योगे क्रमेण द्वावष्टौ चत्वारः चत्वारो गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । मनसि=मनोयोगे क्रमेण त्रयोदश द्वौ द्वादश त्रयोदश गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगा भवन्तीत्यक्षरघटना । भावार्थस्तु काययोगे मनोवाग्रहिते आद्यगुणस्थानद्वयम्, आदिमं जीवस्थानकचतुष्कम्,

वच्छिन्नेऽपि वेदत्रिके केवलिद्विकमुक्तम्, तदाकारमात्राश्रयणेन केवलिनोऽपि पुरुषादिव्यपदेशभाजनत्वाद् द्रष्टव्यम् ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुसु य।
केवलदुगे नियदुगं खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(यशो०) कषायचतुष्के लेश्यापञ्चके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलद्विकेन न्यूना दश। एतेषामभाव एव केवलद्विकसद्भावात्। केवलद्विके निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मकम्। क्षायिके नव, कथं नोऽज्ञानत्रिकं भवति, तदन्ये भवन्तीति तात्पर्यार्थः ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।
नाणचउदंसणतिग केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(यशो.)प्रथमचतुःशब्दयोर्ज्ञानसंयमाभ्यां प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमेषु चतुर्षु ज्ञानेषु मत्यादिषु प्रथमेषु चतुर्षु संयमेषु सामायिकादिषु वेदके=क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे औपशमिकसम्यक्त्वाऽवधिदर्शनयोश्च ज्ञानचतुष्कं दर्शनत्रिकं चेत्युपयोगसप्तकम्। एतदेव केवलद्विकेन सहितं यथाख्यातसंयमेऽन्त्यगुणस्थानचतुष्कवर्तिनि। तत्रोपयोगसप्तकमेतदेव क्षीणमोहयोः, केवलद्विकं च सयोग्ययोगिगुणस्थानयोः ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे मीसे अनाणमीसं तं।
केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥४७॥

(यशो०) ज्ञानत्रिकमाद्यं दर्शनत्रिकं चाद्यमिति षडुपयोगा देशविरते। मिश्रे=मिश्रगुणस्थाने तदेव ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चेति षट्। केवलं ज्ञानत्रिकमज्ञानमिश्रं द्रष्टव्यम्। इदमत्र तात्पर्यम्—मिश्रः=सम्यगमिथ्यादृष्टिरुच्यते। ततश्च यावताऽंशेनाऽत्र सम्यग्शब्दप्रवृत्तिस्तावताऽस्य ज्ञानं कथ्यते, यावता च मिथ्याशब्दप्रवृत्तिस्तावता तदेवाऽज्ञानमिश्रीभूतं द्रष्टव्यम्. अत एवावधिज्ञानांशं कंचिदाश्रित्यावधिदर्शनमप्यत्रोक्तम्, अन्यथा शुद्धे विभङ्गज्ञाने मिथ्यादृष्टेरिव न तदुक्तं स्यात्। केवलद्विकेन मनःपर्यवेन च रहिता नवाऽसंयते=संयमशून्ये मिथ्यादृष्टि-सास्वादनमिश्रा-ऽविरतभेदे न च स्वरूपे। तत्र मिश्रे षडुक्ता एवोपयोगा। मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य चाज्ञानत्रयम्। सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च। सर्वेषामप्येषां चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं चेति नवोपयोगभावना ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा।
दोदंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

(यशो०) अज्ञानत्रिकादिषु षट्स्थानेषु चक्षुरचक्षुर्दर्शनरूपं द्विकमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च । इह विभङ्गेऽवधिदर्शनाभाव उक्तः कर्मप्रकृत्यनुवृत्त्या । तत्र हि मिथ्यारूपतया सम्यक् विषयाऽनिश्चायकत्वादवधिदर्शनं न विभङ्गात्पृथग्विवक्षितम् । प्रज्ञापनायां तु विभङ्गस्यावधिदर्शनमनुमतम् । यतस्तत्रोक्तम्—"दसणं विभंगोहीण जउ तु ल्ल (ल्ल)मेव" ति यथाऽसम्यग्दृशो विशेषविषयमवधिज्ञानमवधिदर्शनं सामान्यविषयमेवं मिथ्यादृशो विशेषविषयो विभङ्गः सामान्यविषयमवधिदर्शनमिति । ते च प्रागुक्ताः पञ्च विभङ्गरहिताश्चत्वारोऽसंज्ञिनि=मनोविज्ञानविकले ॥४८॥

अथोपयोगोपसंहरणाय मतान्तरप्रस्तावनायचाह—

मणनाणचक्खुरहिया दस उ अणाहारगेसु उवओगा ।
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥ ४९ ॥

(यशो०) तुरेवार्थे, दशैवोपयोगा अनाहारके । अनाहारको हि विग्रहगतिकेवलिसमुद्घातभवस्थायोगिसिद्धदशास्वेव प्राप्यते । तत्र विग्रहगतौ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं च । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य च मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने; विभङ्गज्ञानमपि तयोः,

"सन्नी नेरइएसु' उरलपरिच्चायणंतरे समए । विब्भंगं ओहिं वा अविग्गहे विग्गहे लभइ ॥"

इति वचनात्संज्ञिभ्यो नारकेषूत्पद्यमानयोरपर्याप्तदशायां मन्तव्यम्, असंज्ञिभ्यः पुनर्नरकेषूत्पन्नस्य मिथ्यादृशः पर्याप्तदशायामेव विभङ्गाज्ञानम्, यत उक्तम्—

'असन्नी नरएसु' पज्जत्तो जेण लहइ विब्भंगं । नाणा तिन्नेव तओ अन्नाणा दुन्नि तिन्नेवे" ति,

एतच्च भवनपतिव्यन्तरे-ष्वप्युत्पद्यमानयोर्वाच्यम् । ज्योतिष्कवैमानिकेषु पुनरसंज्ञिभ्य उत्पाद एव नास्तीत्येव विवादो विभङ्गः । त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनमेवमेतेऽष्टौ । केवलिसमुद्घाते भवस्थायोगिगुणस्थानके सिद्धेषु च केवलद्विकमिति विवेकः । इति गत्यादिषु उपयोगा योजिता इति शेषः । अत्र नयमतेन=निश्चयनयाश्रयेण नानात्वं=विशेषो नयमतनानात्वं योगेषु इदं वक्ष्यमाणम्, तुशब्दः प्राग्व्याख्यानात्करिष्यमाणव्याख्यानव्यतिरेकसूचकः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

तणुवइमणेसु कमसो दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।
तेरसदुबारतेरस गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥ ५० ॥

(यशो०) तनौ=काययोगे क्रमेण द्वौ चत्वारः त्रयः पञ्च गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । वाचि=वाग्योगे क्रमेण द्वावष्टौ चत्वारः चत्वारो गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । मनसि=मनोयोगे क्रमेण त्रयोदश द्वौ द्वादश त्रयोदश गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगा भवन्तीत्यक्षरघटना । भावार्थस्तु काययोगे मनोवाग्रहिते आद्यगुणस्थानद्वयम्, आदिमं जीवस्थानकचतुष्कम्,

वच्छिन्नेऽपि वेदत्रिके केवलिद्विकमुक्तम्, तदाकारमात्राश्रयणेन केवलिनो पि पुरुषादिव्यपदेशभाजनत्वाद् द्रष्टव्यम् ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुसु य।
केवलदुगे नियदुगं खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(यशो०) कषायचतुष्के लेश्यापञ्चके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलद्विकेन न्यूना दश: एतेषामभाव एव केवलद्विकसद्भावात् । केवलद्विके निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मकम् । क्षायिके नव, कथं नोऽज्ञानत्रिकं भवति, तदन्ये भवन्तीति तात्पर्यार्थः ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंससु ।
नाणचउदंसणतिग केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(यशो.)प्रथमचतुःशब्दयोर्ज्ञानसंयमाभ्यां प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमेषु चतुर्षु ज्ञानेषु मत्यादिषु प्रथमेषु चतुर्षु संयमेषु सामायिकादिषु वेदके=क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे औपशमिकसम्यक्त्वाऽवधिदर्शनयोश्च ज्ञानचतुष्कं दर्शनत्रिकं चेत्युपयोगसप्तकम् । एतदेव केवलद्विकेन सहितं यथाख्यातसंयमेऽन्त्युगुणस्थानचतुष्कवर्तिनि । तत्रोपयोगसप्तकमेतदेव क्षीणमोहयोः, केवलद्विकं च सयोग्ययोगिगुणस्थानयोः ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे मीसे अनाणमीसं तं ।
केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥४७॥

(यशो०) ज्ञानत्रिकमाद्यं दर्शनत्रिकं चाद्यमिति षडुपयोगा देशविरते। मिश्रे=मिश्रगुणस्थाने तदेव ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चेति षट् । केवलं ज्ञानत्रिकमज्ञानमिश्रं द्रष्टव्यम् । इदमत्र तात्पर्यम्—मिश्रः=सम्यगमिथ्यादृष्टिरूच्यते । ततश्च यावतांऽशेनाऽत्र सम्यग्शब्दप्रवृत्तिस्तावता ऽस्य ज्ञानं कथ्यते, यावता च मिथ्याशब्दप्रवृत्तिस्तावता तदेवा-ऽज्ञानमिश्रीभूतं द्रष्टव्यम् . अत एवावधिज्ञानांशं कंचिदाश्रित्यावधिदर्शनमप्यत्रोक्तम्, अन्यथा शुद्धे विमङ्गज्ञाने मिथ्यादृष्टेरिव न तदुक्तं स्यात् । केवलद्विकेन मनःपर्यवेन च रहिता नवाऽसंयते=संयमशून्ये मिथ्यादृष्टि-सास्वादन-मिश्रा-ऽविरतभेदे न च स्वरूपे । तत्र मिश्रे षडुक्ता एवोपयोगा । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य चाज्ञानत्रयम् । सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च । सर्वेषामप्येषां चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं चेति नवोपयोगभावना ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।
दोदंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

(यशो०) अज्ञानत्रिकादिषु षट्स्थानेषु चक्षुरचक्षुर्दर्शनरूपं द्विकमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च । इह विभङ्गेऽवधिदर्शनाभाव उक्तः कर्मप्रकृत्यनुवृत्त्या । तत्र हि मिथ्यारूपतया सम्यक् विषयाऽनिश्चायकत्वादवधिदर्शनं न विभङ्गात्पृथग्विवक्षितम् । प्रज्ञापनायां तु विभङ्गस्यावधिदर्शनमनुमतम् । यतस्तत्रोक्तम्—"दसणं विभंगोहीण जउनु ज्ञ (ज्ञ)मेवं' ति यथासम्यग्दशो विशेषविषयमवधिज्ञानमवधिदर्शनं सामान्यविषयमेवं मिथ्यादृशो विशेषविषयो विभङ्गः सामान्यविषयमवधिदर्शनमिति । ते च प्रागुक्ताः पञ्च विभङ्गरहिताश्चत्वारोऽसंज्ञिनि=मनोविज्ञानविकले ॥४८॥

अथोपयोगोपसंहरणाय मतान्तरप्रस्तावनायचाह—

मणनाणचक्खुरहिया दस उ अणाहारगेसु उवओगा ।
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥ ४९ ॥

(यशो०) तुरेवार्थे, दशैवोपयोगा अनाहारके । अनाहारको हि विग्रहगतिकेवलिसमुद्घातभवस्थायोगिसिद्धदशास्वेव प्राप्यते । तत्र विग्रहगतौ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं च । मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य च मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने विभङ्गज्ञानमपि तयोः,

"सन्नी नेरइएसुं उरलपरिच्चायणंतरे समए । विब्भंगं ओहिं वा अविग्गहे विग्गहे लभइ ॥"

इति वचनात्संज्ञिभ्यो नारकेषूत्पद्यमानयोरपर्याप्तदशायां मन्तव्यम्, असंज्ञिभ्यः पुनर्नरकेषूत्पन्नस्य मिथ्यादृशः पर्याप्तदशायामेव विभङ्गज्ञानम्, यत उक्तम्—

'अस्सन्नी नरएसुं पज्जत्तो जेण लहइ विब्भंगं । नाणा तिन्नेव तओ अन्नाणा दुन्नि तिन्नेवे" ति,

एतच्च भवनपतिव्यन्तरे-ष्वप्युत्पद्यमानयोर्वाच्यम् । ज्योतिष्कवैमानिकेषु पुनरसंज्ञिन्य उत्पाद एव नास्तीत्येव विवादो विभङ्गः । त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनमेवमेतेऽष्टौ । केवलिसमुद्घाते भवस्थायोगिगुणस्थानके सिद्धेषु च केवलद्विकमिति विवेकः । इति गत्यादिषु उपयोगा योजिता इति शेषः । अत्र नयमतेन=निश्चयनयाश्रयेण नानात्वं=विशेषो नयमतनानात्वं योगेषु इदं वक्ष्यमाणम्, तुशब्दः प्राग्व्याख्यानात्करिष्यमाणव्याख्यानव्यतिरेकसूचकः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

तणुवइमणेसु कमसो दुअउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।
तेरसदुबारतेरस गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥ ५० ॥

(यशो०) तनौ=काययोगे क्रमेण द्वौ चत्वारः त्रयः पञ्च गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । वाचि=वाग्योगे क्रमेण द्वावष्टौ चत्वारः चत्वारो गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः । मनसि=मनोयोगे क्रमेण त्रयोदश द्वौ द्वादश त्रयोदश गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगा भवन्तीत्यक्षरघटना । भावार्थस्तु काययोगे मनोवाग्रहिते आद्यगुणस्थानद्वयम्, आदिमं जीवस्थानकचतुष्कम्,

वच्छिन्नेऽपि वेदत्रिके केवलिद्विकमुक्तम्, तदाकारमात्राश्रयणेन केवलिनो पि पुरुषादिव्यपदेशभाजनत्वाद् द्रष्टव्यम् ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुसु य ।
केवलदुगे नियदुगं खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(यशो०) कषायचतुष्के लेश्यापञ्चके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलद्विकेन न्यूना दश; एतेषामभाव एव केवलद्विकसद्भावात्। केवलद्विके निजद्विकं केवलज्ञानकेवलदर्शनात्मकम्। क्षायिके नव, कथं नोऽज्ञानत्रिकं भवति, तदन्ये भवन्तीति तात्पर्यार्थः ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।
नाणचउदंसणतिग केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(यशो.)प्रथमचतुःशब्दयोर्ज्ञानसंयमाभ्यां प्रत्येकमभिसम्बन्धात्प्रथमेषु चतुर्षु ज्ञानेषु मत्यादिषु प्रथमेषु चतुर्षु संयमेषु सामायिकादिषु वेदके=क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे औपशमिकसम्यक्त्वाऽवधिदर्शनयोश्च ज्ञानचतुष्कं दर्शनत्रिकं चेत्युपयोगसप्तकम्। एतदेव केवलद्विकेन सहितं यथाख्यातसंयमेऽन्त्यगुणस्थानचतुष्कवर्त्तिनि। तत्रोपयोगसप्तकमेतदेव क्षीणमोहयोः, केवलद्विकं च सयोग्ययोगिगुणस्थानयोः ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे मीसे अनाणमीसं तं ।
केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥४७॥

(यशो०) ज्ञानत्रिकमाद्यं दर्शनत्रिकं चाद्यमिति षडुपयोगा देशविरते। मिश्रे=मिश्रगुणस्थाने तदेव ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं चेति षट्। केवलं ज्ञानत्रिकमज्ञानमिश्रं द्रष्टव्यम्। इदमत्र तात्पर्यम्—मिश्रः=सम्यगमिथ्यादृष्टिरूच्यते। ततश्च यावताऽंशेनाऽत्र सम्यग्शब्दप्रवृत्तिस्तावताऽस्य ज्ञानं कथ्यते, यावता च मिथ्याशब्दप्रवृत्तिस्तावता तदेवाऽज्ञानमिश्रीभूतं द्रष्टव्यम्. अत एवावधिज्ञानांशं कंचिदाश्रित्यावधिदर्शनमप्यत्रोक्तम्, अन्यथा शुद्धे विभङ्गज्ञाने मिथ्यादृष्टेरिव न तदुक्तं स्यात्। केवलद्विकेन मनःपर्यवेन च रहिता नवाऽसंयते=संयमशून्ये मिथ्यादृष्टि-सास्वादनमिश्रा-ऽविरतभेदे न च स्वरूपे। तत्र मिश्रे षडुक्ता एवोपयोगा। मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य चाज्ञानत्रयम्। सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रयमवधिदर्शनं च। सर्वेषामप्येषां चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं चेति नवोपयोगभावना ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।
दोदंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निमि ॥ ४८ ॥

(यशो०) अज्ञानत्रिकादिषु षट्स्थानेषु चक्षुरचक्षुर्दर्शनरूपं द्विकमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च। इह विभङ्गेऽवधिदर्शनाभाव उक्तः कर्मप्रकृत्यनुवृत्त्या। तत्र हि मिथ्यारूपतया सम्यक् विषयाऽनिश्चायकत्वादवधिदर्शनं न विभङ्गात्पृथग्विवक्षितम्। प्रज्ञापनायां तु विभङ्गस्यावधिदर्शनमनुमतम्। यतस्तत्रोक्तम्—"दसणं विभंगोहीण जडत्तु ξ१ (ज्ञ)मेवं"ति यथा सम्यग्दृशो विशेषविषयमवधिज्ञानमवधिदर्शनं सामान्यविषयमेवं मिथ्यादृशो विशेषविषयो विभङ्गः सामान्यविषयमवधिदर्शनमिति। ते च प्रागुक्ताः पञ्च विभङ्गारहिताश्चत्वारोऽसंज्ञिनि=मनोविज्ञानविकले ॥४८॥

अथोपयोगोपसंहरणाय मतान्तरप्रस्तावनायचाह—

मणनाणचक्खुरहिया दस उ अणाहारगेसु उवओगा।
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥ ४९ ॥

(यशो०) तुरेवार्थे, दशैवोपयोगा अनाहारके। अनाहारको हि विग्रहगतिकेवलिसमुद्घातमवस्थायोगिसिद्धदशास्वेव प्राप्यते। तत्र विग्रहगतौ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानत्रिकमवधिदर्शनं च। मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य च मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने विभङ्गज्ञानमपि तयोः,

"सन्नी नेरइएसुं उरलपरिच्चायणंतरे समए। विब्भंगं ओहिं वा अविग्गहे विग्गहे लभइ ॥"

इति वचनात्संज्ञिभ्यो नारकेषूत्पद्यमानयोरपर्याप्तदशायां मन्तव्यम्, असंज्ञिभ्यः पुनर्नरकेषूत्पन्नस्य मिथ्यादृशः पर्याप्तदशायामेव विभङ्गज्ञानम्, यत उक्तम्—

'अस्सन्नी नरएसुं पज्जत्तो जेण लहइ विब्भंगं। नाणा तिन्नेव तओ अन्नाणा दुन्नि तिन्नेव" ति,

एतच्च भवनपतिव्यन्तरेष्वप्युत्पद्यमानयोर्वाच्यम्। ज्योतिष्कवैमानिकेषु पुनरसंज्ञिन्य उत्पाद एव नास्तीत्येव विवादो विभङ्गः। त्रयाणामप्यचक्षुर्दर्शनमेवमेतेष्वष्टौ। केवलिसमुद्घाते भवस्थायोगिगुणस्थानके सिद्धेषु च केवलद्विकमिति विवेकः। इति गत्यादिषु उपयोगा योजिता इति शेषः। अत्र नयमतेन=निश्चयनयाश्रयेण नानात्वं=विशेषो नयमतनानात्वं योगेषु इदं वक्ष्यमाणम्, तुशब्दः प्राग्व्याख्यानात्करिष्यमाणव्याख्यानव्यतिरेकसूचकः ॥४९॥

तदेव नानात्वमाह—

तणुवइमणेसु कमसो दुवउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो।
तेरसदुबारतेरस गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥ ५० ॥

(यशो०) तनौ=काययोगे क्रमेण द्वौ चत्वारः त्रयः पञ्च गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः। वाचि=वाग्योगे क्रमेण द्वावष्टौ चत्वारः चत्वारो गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगाः। मनसि=मनोयोगे क्रमेण त्रयोदश द्वौ द्वादश त्रयोदश गुणस्थान-जीवस्थानो-पयोग-योगा भवन्तीत्यक्षरघटना। भावार्थस्तु काययोगे मनोवाग्रहिते आद्यगुणस्थानद्वयम्, आदिमं जीवस्थानकचतुष्कम्,

प्रथमाज्ञानद्विकमचक्षुर्दर्शनं चेत्युपयोगत्रिकम् , वैक्रियद्विकमौदारिकद्विकं कार्मणं चेति योगपञ्चकम् , मनोवर्जिते न तु कायविरहिते वाचः कायाव्यभिचारित्वाद्वाग्योगे प्रथमगुणस्थानद्वयम् , पर्याप्तापर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियरूपाण्यष्टौ जीवस्थानानि, इह करणेनाऽपर्याप्तस्य वाग्योगो 'भाविनि भूतवदुपचार" इतिन्यायात् , चक्षुरचक्षुर्दर्शनमत्यज्ञानश्रुताज्ञानरूपा उपयोगाश्चत्वारः, औदारिकद्विकमसत्यमृषाभाषा कार्मणमिति योगाश्चत्वारः । मनोयोगे त्रयोदश गुणस्थानानि अयोगगुणस्थानरहितानि, संज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तरूपे द्वे जीवस्थाने, करणाऽपर्याप्तस्य मनोयोगो भाविनि भूतवदुपचारात् , उपयोगा द्वादशापि, योगाः कार्म्मणौदारिकमिश्रवर्जास्त्रयोदश । मनोयोगः कायवाग्भ्यां विना न सम्भवतीति तत्सहचरितो गृहीतः । मनोयोगे च नानात्वं जीवस्थानेष्वेव शेषपदत्रयप्रतिपादनं प्रसङ्गात्कृतम् ॥५०॥

अथ लेश्यानामवसरस्ताश्चोत्तरोत्तरविशुद्धिमत्त्वात्क्रमेण स्वरूपतः प्रागेव प्रदर्शिताः, केवलं मार्ग्गणास्थानेषु योज्यन्ते—

लेसा उ तिन्नि पढमा नारगविगलग्गिवाउकाएसु ।
एगिंदिभूतरूदगअमन्निसुं पढमिया चउरो ॥५१॥

(यशो०) नारकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाग्निकायवायुकायेषु तिस्र एव, अन्यासामसम्भवात् । एकेन्द्रियादिके पदपञ्चके प्रथमा एव प्रथमिकाश्चतस्रः । तत्र तिस्रः प्रतीताः, तेजसी पुनरीशानान्तजघन्यायुर्देवेभ्य उत्पन्नानां सूक्ष्मपृथिवीवनस्पत्यप्कायानां करणापर्याप्ततानामवगन्तव्या । एतदपेक्षयैव च करणाऽपर्याप्तकैकेन्द्रियासंज्ञिनोस्तेजसी प्रतिपादिता । शेषैकेन्द्रियशेषासंज्ञिनोस्तु मध्ये देवानामुत्पाद एव नास्ति ॥५१॥

केवलजुयलअहक्खायसुहुमरागेसु सुक्कलेसेव ।
लेसासु छसु सठाणं गइयाइसु छावि सेसेसुं ॥५२॥

(यशो०) केवलज्ञान–केवलदर्शनयोर्यथाख्याते सूक्ष्मरागे=सूक्ष्मसम्पराये च शुक्ललेश्यैव, अन्यासां व्यवच्छिन्नत्वात् । लेश्यासु षट्सु स्वस्थानं स्वकीयं स्थानं कृष्णायां कृष्णा नीलायां नीलेत्यादि । शेषेषूक्तोद्धरितेषु गत्यादिष्वेकचत्वारिंशति पदेषु षडपि । इह चैकैकस्या अपि लेश्यायाः परिणामतारतम्येनाऽसंख्येया भेदा इति विशुद्धिमधिरूढेषु मनःपर्यव-सामायिकच्छेदोपस्थापनीय-परिहारविशुद्धिकादिषु प्रतिपत्तिकालं विहाय परिणामविशेषापेक्षया प्रथमलेश्यात्रयस्यापि सद्भावात्सामान्येन लेश्या षट्कोक्तिर्न विरुध्यते । उक्तं च-

"सम्मत्तसुयं सव्वासु लहइ सुद्धासु तिसु य चारित्तं । पुव्वपडिवन्नओ पुण अन्नयरीए उ लेसाए॥" इति ॥५२॥

अथ प्रस्तावनापुरस्सरं मार्ग्गणास्थानानामल्पबहुत्वं चिन्तयति ।

गइयाइसु अप्पबहुं भणामि सामन्नओ सठाणे वि ।
नरनिरयदेवतिरिया थोवा दुअसंख्ऽणंतगुणा ॥५३॥

(यशो०) गत्यादिषु विभागेन चतुर्दशसु विभागेन द्वाषष्टिसंख्येषु मार्गणास्थानेष्वल्पबहुत्वमेतेऽल्पे एतेभ्य एते बहव इत्येवं रूपं "सठाणे वि" त्ति अपिरेवार्थे स्वस्थान एव स्वयमेव स्थानं भेदमपेक्ष्य सामान्यतोऽनपेक्षतया भवनपत्यादिगत्याद्यपेक्षं यथा भवति तथा वच्मि । तत्र नराः स्तोकाः, सर्वस्य संमूर्च्छजपर्याप्तापर्याप्तगर्भजभेदभाजो मनुष्यराशेरसंख्यातत्वेऽपि मनुजक्षेत्र एवोत्पत्तेः। नारकाद्यपेक्षया यदा तु गर्भजा एव नरा गृह्यन्ते तदा संख्याता एवेति स्तोकाः । एतेभ्यो नारकदेवौ द्वावसंख्यातौ, नारका असंख्याता देवाश्चा-ऽसंख्याता इत्यर्थः । अत्र नारकशब्दात्परेण देवशब्दोपपादान्नारकेभ्यो देवा भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्क-वैमानिकरूपा असंख्याता इति दृश्यम् । एवमन्यत्रापि यथास्वं वाच्यम् । एतच्च "मइसुयअन्नाणिणो तुल्ले" त्यादिवक्ष्यमाणोक्तौ तुल्यादिग्रहणाद् गम्यते । एतेभ्यस्तिर्यञ्चोऽनन्तगुणाः । आनन्त्यमत्रानन्तकायिकवनस्पत्यपेक्षया ॥५३॥

पणचउतिदुएगिन्दी थोवा तिन्नि अहिया अणन्तगुणा ।
तसतेउपुढविजलवाउहरियकाया पुण कमेणं ॥५४॥
थोवा असंखगुणिया तिन्नि विसेसाहिया अणन्तगुणा ।

(यशो०) सूचकत्वात्सूत्रस्य 'इंदी' त्यनेन सूचितस्येन्द्रियस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात्पञ्चेन्द्रियाश्चतुरिन्द्रिया इत्यादि दृश्यम्, ततः पञ्चेन्द्रिया असंख्याता अपि उत्तरापेक्षया स्तोकाः । एवमुत्तरत्रापि यथास्वं संख्याताऽसंख्यातानन्तोत्तरपदापेक्षया स्तोकत्वमुद्भाव्यम् । एभ्यश्चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियास्त्रयेऽधिका विशेषाधिकाः । अत्रापि चतुरिन्द्रियेभ्यस्त्रीन्द्रिया विशेषाधिका इति निर्देशक्रमानुसारेण गम्यम् । एवमन्यत्रापि विशेषाधिकत्वादि यथासम्भवं वाच्यम् । एकेन्द्रिया अनन्तगुणास्तेष्वनन्तवनस्पतिसद्भावात् । तथा त्रसा द्वीन्द्रियाद्यास्त्रसनाडीमात्रान्तर्गतत्वेन स्तोकाः, ततस्तेजस्कायिका मनुष्यक्षेत्रभाविनो बादराः, सर्वलोकभाविनः सूक्ष्मा इत्यसंख्याताः । ततः पृथिवीकायिकास्ततोऽप्कायिकास्ततोऽपि वायुकायिका इति त्रयोऽप्यधिका = विशेषाधिकाः । यतो बादरपर्याप्ताग्निभ्यो बादरपर्याप्तपृथिव्यब्वायवः क्रमेणाऽसंख्याताः, ततोऽग्निपृथिवीजलवायव एव बादराऽपर्याप्ता असंख्याताः, ततः सूक्ष्माऽपर्याप्तास्तेजःकायिका असंख्याताः, ततः सूक्ष्मापर्याप्ताः पृथिवीजलवायवो विशेषाधिकाः, तेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्ताग्नयोऽसंख्याताः, तेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्तभूजलवायवो विशेषाधिका इति

प्रज्ञापनातृतीयपदार्थलेशः । वनस्पतयोऽनन्ता । आनन्त्यमनन्तकायिकापेक्षम् । दिग्वि-भागापेक्षं तु प्रज्ञापनातृतीयपदोपदर्शितम् । तं गत्यादिद्वारत्रयगोचरमल्पबहुत्वमेवम्—दक्षिणो-दीचीदिशोर्भरतैरावतादिलघुक्षेत्रवर्तितया नराः स्तोकाः । दक्षिणस्यामसंख्यातगुणाः । तस्यां हि प्रभूतपापाः कृष्णपक्षिकास्तिर्यञ्चः प्रचुरा उत्पद्यन्त इति सप्तम्याम् । एवं षष्ठयादिषु रत्नप्र-भान्तासु नारका वाच्याः । पूर्वप्रतीच्योर्भवनानां स्तोकत्वात्तन्निवासिनोपि देवाः स्तोकाः । उदीच्यामसंख्यातगुणाः । याम्यायां भवनबहुत्वादसंख्यातगुणाः । यतो निकाये निकाये चत्वारि चत्वारि शतसहस्राण्यतिरिच्यन्ते । पूर्वस्यां व्यन्तराः स्तोकाः । यतो यत्र शुषिरं तत्र व्यन्तराः प्रच-रन्ति, यत्र पुनर्घनं तत्र न प्रचरंतीति घनत्वात्पूर्वस्याममीषाम्रुपप[त्तिमती](चेरतीव)स्तोकता । अधोलौकिकग्रामसद्भावादपरस्यां विशेषाधिकाः । तत एव च याम्यायां विशेषाधिकाः । प्राचिप्रतीच्योः स्तोका ज्योतिष्काः, यतश्चन्द्रसूर्यद्वीपेषूद्यानकल्पेषु तेषामल्पा राजधान्यः । विमा-नबहुत्वात्कृष्णपाक्षिकदक्षिणदिग्गामित्वाच्च दक्षिणस्यां विशेषाधिकाः । उदीच्यां विशेषाधिकाः । यस्मात्संख्येयासंख्येययोजनेभ्यो बहिर्द्वीपवर्तिनि विस्तरदीर्घत्वाभ्यां संख्यातयोजनकोटीकोटीके मानसाभिधाने सरसि बहून् ज्योतिष्कांस्तान् क्रीडनव्यापृताननवरतमवलोक्य मत्स्यादयो जलचराः संजातजातिस्मरा आसन्नविमानदर्शनकृतनिदानाः किंचद्व्रतं प्रतिपद्य कृतानशना ज्योतिष्केषूत्पद्यन्ते । वैमानिका आद्यकल्पचतुष्टयवासिनः पूर्वस्यामपरस्यां च स्तोकाः । यत आवलिकाप्रविष्टानि विमानानि चतसृष्वपि दिक्षु तुल्यानि पुष्पावकीर्णानि तु दक्षिणस्यामुत्तरस्यां च बहून्यसंख्यातविस्तृतानि च ततः पूर्वापरयोः पुष्पावकीर्णविमानद्वारेणोदितदेवाः स्तोकाः । उत्तरस्यां पुष्पावकीर्णविमानबहुत्वेनासंख्येययोजनविस्तृतत्वेन च सौधर्मवासिनोऽसंख्यातगुणाः । दक्षिणस्यां विशेषाधिकाः, दक्षिणदिग्गामित्वाद् बहूनां कृष्णपाक्षिकजीवानाम् । ईशानवासिन उत्तरस्यामसंख्यातगुणाः । याम्यायां विशेषाधिकाः । सनत्कुमारवासिनोऽसंख्यातगुणा उत्तरस्या-म् । विशेषाधिका याम्यायाम् । एतद्दिग्गामिनो हि बहवः कृष्णपाक्षिकाः, स्वल्पाः शुक्लपाक्षिकाः । एवं महेन्द्रवासिनोऽपि । ब्रह्मलोकवासिनः पूर्वापरोत्तरासु स्तोकाः । शुक्लपाक्षिका हि अल्पा एता सूत्पद्यन्ते । उदीच्यामसंख्यातगुणाः । याम्यां त एव विशेषाधिकाः । प्रचुरकृष्णपाक्षिकतिरश्चां तत्रोत्पत्तेः । एवं सहस्रारं यावत् । आनतादिवासिनो बहुसमा मनुष्याणामेव हि तेषूत्पत्तिः । तिर्यञ्च—एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियविशेषरूपाः । अत एवैषामल्पबहुत्वमिन्द्रियकायद्वार-योर्वच्मः । तत्रेन्द्रियद्वारे पृथिव्यादयः सूक्ष्माः प्रायः सर्वत्र समा एवेति तानुपेक्ष्य बादरानाश्रि-त्याल्पबहुत्वमित्थम्—पृथिवीकायिका दक्षिणस्यां स्तोकाः । यतो यत्र घनं तत्र पृथिवी बहुर्यत्र शुषिरं तत्र स्तोका । ततोऽस्यां बहुतरा भवनावासाश्च शुषिरा इति स्तोकता तेषाम् । उदीच्यां विशेषाधिकाः, भवनावासनरकावासस्तोकतया । प्राच्यां चन्द्रसूर्यद्वीपावधिकृत्य विशेषाधिकाः ।

अपरस्यां विशेषाधिकाः । षड्सप्ततिसमधिकयोजनसहस्रोच्चत्वेन द्वादशयोजनविष्कम्भेण लवणोदधिमध्यवर्त्तिना गोतमाभिधानद्वीपेन नवयोजनशतावगाहाधोलौकिकग्रामैश्च सहितावेता-वधिकृत्य अपरस्यामापः स्तोकाश्चन्द्रसूर्यगोतमद्वीपानपेक्ष्य । पूर्वस्यां विशेषाधिकाः, यतश्चन्द्र-सूर्यद्वीपयोरेव तत्र भावो न तु गोतमद्वीपस्य । याम्यायां चन्द्रसूर्यद्वीपाभावाद्विशेषाधिकाः । उदीच्यां तु पूर्वोपवर्णितमानससरःसद्भावेन तासां विशेषाधिकत्वम् । एवमुदीच्यां मानसा-पेक्षया वनस्पति-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियतिरश्चां पूर्वादिदिक्त्रयापेक्षया विशेषाधिकत्व-कारणमन्वेषणीयम् । दक्षिणोत्तरयोस्तेजस्कायिकाः स्तोकाः । यतोऽत्र मनुजास्तत्र पाकार-म्भेण बादरतेजस्कायानां सम्भव इति भरतैरावतेषु मनुष्याणामल्पत्वात् सुषमादिष्वभावाच्च स्तोकास्ते । पुरस्ताद्विदेहवर्त्तिमनुजजनितपाकारम्भद्वारा संख्यातगुणाः । पश्चिमायामधोलौकिक-ग्रामान्तरीकृत्य विशेषाधिकाः । पूर्वस्यां वायवः स्तोकाः । यस्माद्यत्र शुषिरं तत्र वायुर्यत्र घनं तत्र नासावस्ति । अधोलौकिकग्रामापेक्षयाऽपरस्यां विशेषाधिकाः । उत्तरस्यां भवनछिद्रबहुत्वात् विशेषाधिकाः । दक्षिणस्यां भवनबहुत्वात् शुषिरबहुत्वमिति विशेषाधिकाः । बहुतरभवनछिद्र-बहुत्वादेव । पूर्वस्यां स्तोका वनस्पतयः । **इयमत्र भावना**—इह सर्वबहवो वनस्पतय इति ते यत्र सन्ति तत्र तेषां बहुत्वम् । तेषां च तत्र बहुत्वं यत्राऽप्कायः, यत्राऽयं तत्र नियमेन वनस्पतिः पनकशैवलहढादिर्बादरः । ततश्च द्वीपद्विगुणविष्कम्भेषु समुद्रेषु सलिलं बहु । प्राचीप्रतीच्योश्च चन्द्रसूर्यद्वीपाः सन्ति । यत्र च तेऽवगाढास्तत्रोदकाभावः, तदभावाच्च वनस्पत्यभाव इति प्राच्यां स्तोका वनस्पतयः । प्रतीच्यां तु लवणसमुद्रे गौतमद्वीपोऽभ्यधिकस्तत्र च जलाभा-वादल्पतरा वनस्पतयः । याम्यायां तु चन्द्रसूर्यद्विपाभावात्पूर्वतो विशेषाधिकाः । याम्या-तोऽप्युदीच्यां मानससरोऽपेक्षया विशेषाधिकाः । मानसजलनिश्रया वनस्पतिवदुदीच्यां द्वित्रि-चतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियतिरश्चां दिक्त्रयाऽपेक्षया बहुत्वमुपरत्रोहनीयम् । एवं चैकेन्द्रियाः काय-पञ्चकाव्यभिचारिण इत्येकेन्द्रियाणामल्पबहुत्वभावनयैव कायपञ्चकाल्पबहुत्वमिहापि लाघवार्थं निर्णीतमेवेति कायद्वारे कायपञ्चकस्या-ऽल्पबहुत्वगवेषणा न कार्या । द्वि-त्रि-चतुरि-न्द्रियाः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चश्च प्रतीच्यां स्तोकाः । पूर्वस्यां विशेषाधिकाः । दक्षिणस्यां विशेषा-धिकाः । उत्तरस्यां विशेषाधिकाः । सुरनरनारकरूपाः पञ्चेन्द्रियाः प्रागेवाल्पबहुत्वेन निर्णीता एव । कायद्वारे पृथिव्यादयो वनस्पत्यन्तास्त्रसाश्चाल्पबहुत्वेन चिन्तिता एवेति गतीन्द्रियकायेति द्वारत्रयमूरीकृत्य दिगपेक्षयाल्पबहुत्वचिन्ता कृतोपयोगित्वात् ॥५४॥

मणवयणकायजोगी थोवअसंखगुणणन्तगुणा ॥५५॥

(यशो०) मनोयोगिनो गर्भजतिर्यग्मनुष्या देवा नारकाश्च असंख्याता अपि स्तोकाः । ततो वाग्योगिनो द्वीन्द्रियादयोऽसंख्यातगुणाः । काययोगिनः सर्वे संसारिणोऽनन्तगुणाः । आनन्त्यं

प्रागिव। यद्यपि निगोदजीवानामनन्तानामप्येकमौदारिकं वपुस्तथापि कार्मणापेक्षयानन्त-गुणत्वम् ॥५५॥

पुरिसेहिंतो इत्थी संखेज्जगुणा नपुंसणन्तगुणा ।
माणी कोही मायी लोभी कमसो विसेसहिया ॥५६॥

(यशो०) पुरुषेभ्यो देवगर्भजमनुजतिर्यग्विशेषरूपेभ्योऽसंख्यातेभ्यः स्त्रियो देवीनारीतिरश्च्यः संख्यातगुणाः। स्त्रीभ्यः पुरुषाः स्तोका इति तु सामर्थ्यलभ्यम्। उक्तं च—

"तिगुणा तिरूवअहिया तिरियाणं इत्थिओ मुणेयव्वा। सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिया चेव ॥ बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया य तह य देवाणं। देवीओ पन्नत्ता सुत्ते जीवाभिगमनामे ॥"

नपुंसकाः पूर्वोण्वर्णितस्त्रीपुरुषवर्जाः संसारिणोऽनन्ताः, आनन्त्यं प्राग्वत्। तथा मानिनः स्तोकास्ततः क्रोधिनो विशेषाधिकास्ततो मायिनस्ततोऽपि लोभिनः। यद्यप्यमी चत्वारोप्यनन्तवनस्पतिगतेन सामान्येनाऽनन्तास्तथापि कषायसत्तामात्रस्या-ऽविवक्षया तथाविधोपयोगरूपमिह कषायित्वमङ्गीकृतमितिस्वल्पकालत्वात् मानोपयोगस्य मानिनामल्पमनन्तत्वम्, ततः क्रोधादीनां यथाक्रमं बहुतरबहुतमकालत्वात् क्रोधमायालोभोपयोगानां विशेषाधिकमानन्त्यमवगन्तव्यम् ॥५६॥

मणपज्जविणो थोवा ओहिन्नाणी तओ असंखगुणा ।
मइसुयनाणी तत्तो विसेसअहिया समा दोवि ॥५७॥

(यशो.)मनःपर्यवज्ञानिनःस्तोकाः=परिमिताः,मनःपर्यवज्ञानस्य विशुद्धिमच्चारित्रवतामेव भावात्। ततोऽवधिज्ञानिनोऽसंख्यातगुणाः, असंख्यातानां देवनारकाणां भवप्रत्ययस्य तिर्यग्मनुष्याणां सम्यग्दृशां गुणप्रत्ययस्यावधेः सद्भावात्। ततो मतिज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च विशेषाधिकाः, यतस्तेऽवधिज्ञानिनो-ऽपि मनःपर्यायज्ञानिनोप्यवध्यादिरहिता अपि पञ्चेन्द्रिया भवन्ति [परस्परपेक्षया भवन्ति]। परस्परापेक्षया पुनरुभयेऽप्यमी तुल्या एव। अत एवोक्तं "समा दो वि"ति ॥५७॥

विब्भंगिणो असंखा केवलनाणी तओ अणन्तगुणा ।
तत्तोऽणन्तगुणा दो मइसुयअन्नाणिणो तुल्ला ॥५८॥

(यशो०) तत इत्यनुवृत्त्या तेभ्यो=मतिश्रुतज्ञानिभ्यो विभङ्गज्ञानिनोऽसंख्या=असंख्याता मिथ्यादृष्टिसुरादीनां विभङ्गभाजां सम्यग्दृष्ट्यपेक्षयाऽसंख्यातगुणत्वात्। ततोऽनन्तगुणाः केवलिनः, सिद्धकेवलिनामनन्तत्वात्। ततोऽनन्तगुणा मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्च, अनन्तकायिकप्रक्षेपात्। सिद्धकेवलिनोऽपि हि एकस्यापि निगोदस्यानन्ततम एव भागे वर्तन्ते, परस्परममी उभयेऽपि तुल्या एव। तत एवोक्तं "तुल्ला" इति ॥५८॥

सुहुमपरिहारअहखायछेयसामइयदेसजयअजया ।
थोवा संखेज्जगुणा चउरो अस्संखणन्तगुणा ॥५९॥

(यशो०) अत्र पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् सूक्ष्माः=सूक्ष्मसम्परायाः स्तोकाः, उत्कृष्टतो-ऽपि शतपृथक्त्वमानत्वात्तेषाम्। पृथक्त्वं च द्विप्रभृतिरानवभ्यः संख्या। ततः "परिहार" त्ति परिहारिकाः संख्येयगुणास्तेषामुत्कृष्टतः सहस्रपृथक्त्वमानत्वात्। ततो यथाख्यातचारित्रिण उपशान्तमोह-क्षीणमोह-सयोगि-भवस्था-ऽयोगिनः संख्यातगुणाः। यत उपशान्तमोहक्षीणमोहानां मिलितानामुत्कृष्टतः शतपृथक्त्वम्। एतच्च तु पञ्चादिशतरूपम्। यच्चाग्रे केवलानां क्षीणमोहानां शतपृथक्त्वं वक्ष्यते, तद् द्व्यादिशतरूपं मन्तव्यम्। सयोगिनां कोटिपृथक्त्वम्। भवस्था-ऽयोगिनां "अट्ठसयमेगसमयओ सिज्झे" इतिवचनाद् अष्टोत्तरं शतं प्राप्यते। एतेभ्यश्छेदोपस्थापनीयचारित्रिणः संख्यातगुणाः, तेषामुत्कृष्टतः कोटीशतपृथक्त्वमानत्वात्। ततः सामायिकचारित्रिणः संख्यातगुणाः, तेषामुत्कृष्टतः कोटीसहस्रपृथक्त्वमानत्वात्। ततो देशयता=देशविरता असंख्यातगुणाः, असंख्यातत्वाद्देशविरततिरश्चाम्। ततोऽयता आद्यगुणस्थानचतुष्कवर्तिनोऽनन्ताः, अनन्तकायिकप्रक्षेपात् ॥५९॥

इय ओहिचक्खुकेवलअचक्खुदंसी कमेण विन्नेया।
थोवा अस्संखगुणा अणन्तगुणिया अणन्तगुणा ॥६०॥

(यशो०) इत्यमुनोल्लेखेन विज्ञेया इति संटङ्कः। अवधिना चक्षुषा केवलेनाऽचक्षुषा च पश्यन्तीत्येवं शीला अवध्यादिदर्शिनोऽवधिदर्शनवदादयः। तत्रावधिदर्शिनः स्तोकाः, अवधिदर्शनस्य करणपर्याप्तपर्याप्तानां संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां केषांचिदेव भावात्। तेभ्यश्चक्षुर्दर्शनवन्तोऽसंख्यातगुणाः, केवलिवर्जसर्वपर्याप्तचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियव्यापकत्वाच्चक्षुर्दर्शनस्य। ततोऽनन्तगुणिताः केवलदर्शिनः, अनन्त-सिद्धकेवलिप्रक्षेपात्। ततोऽनन्तगुणा अचक्षुर्दर्शनिनः, सर्वे केवलिवर्जा एकेन्द्रियादयः, अनन्तगुणत्वमनन्तवनस्पतिप्रक्षेपात् ॥६०॥

सुक्का पम्हा तेऊ काऊ नीला य किण्हलेसा य।
थोवा दो संखगुणाऽणन्तगुणा दो विसेसहिया ॥६१॥

(यशो०) इह गुणगुणिनोरभेदात् शुक्लादिलेश्याशब्देन शुक्लादिलेश्यावन्तो ग्राह्याः। तत्र शुक्ललेश्यावन्तः स्तोकाः, असंख्याता अप्युत्तरापेक्षया कतिपयमहर्द्धिकब्रह्मलोकदेवसंख्यातायुर्गर्भजनरतिरश्चां तथा लान्तकाद्यनुत्तरान्तविमानवासिनामेव शुक्लायाः सद्भावात्। ततः पद्मलेश्यावन्तः संख्यातगुणाः, कतिपयसनत्कुमारदेवसंख्यातायुर्गर्भजनरतिरश्चां माहेन्द्रदेवानां भूयसां

च ब्रह्मलोकदेवानां पद्माया भावात् । अधस्तना हि यथाक्रमं वैमानिका बहवः । ततस्तेजोलेश्यावन्तः संख्यातगुणाः, ज्योतिष्क-सौधर्मेशानवासिदेवानां कतिपयसनत्कुमारवासिदेवभवनपतिव्यन्तरसंख्याता-ऽसंख्यातायुर्गर्भजनरतिर्यगपर्याप्तबादरपृथिव्यप्प्रत्येकवनस्पतिकायानां तैजस्याः सम्भवात् । ततः कापोतलेश्यावन्तोऽनन्तगुणाः, कतिपयतृतीयनरकनारकभवनपतिव्यन्तरसम्मूर्च्छजसंख्यातासंख्यातायुर्नरतिर्यगपर्याप्तपर्याप्तपृथिव्युदकतेजोवायुप्रत्येकाऽनन्तवनस्पतिविकलेन्द्रिया-ऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणामाद्यद्वितीयनरकनारकाणां च सर्वेषां कापोत्याः सम्भवात् । ततो नीललेश्यावन्तो विशेषाधिकाः । ततोऽपि कृष्णलेश्यावन्तः । कथमेतद्यावता-ऽनन्तराभिहितनरकनारकवर्जेष्वेव कापोतलेश्यावत्सु नीलकृष्णलेश्ये प्राप्येते, यस्तु कतिपयतृतीयपञ्चमनरकनारकेषु चतुर्थनरकनारकेषु च नीललेश्या कतिपयपञ्चमनरकनारकेषु षष्ठसप्तमनरकनारकेषु च कृष्णलेश्येति विशेषः, स प्रत्युताधिकत्वप्रतिकूलः,अधस्तनाधस्तननरकवासिनो हि नारकाः स्तोकाः, सत्यम् , किन्तु येषु प्रथमं लेश्यात्रयं प्राप्यते तेषु कापोतलेश्यावद्भ्यः संक्लिष्टत्वेन नीललेश्यावन्तः किंचदधिकास्तेभ्योप्यतिसंक्लिष्टत्वेन कृष्णलेश्यावन्तः । यदुक्तम्—एकेन्द्रियानाश्रित्य **भगवतीसप्तदशशतकद्वादशोद्देशके**—"गोयमा सव्वत्थोवा एगिन्दिया तेउलेसा काउलेसा अणन्तगुणा नीललेसा विसेसाहिया किण्हलेसा विसेसाहिये"ति ।। ।।६१।।

थोवा जहन्नजुत्ताणंतयतुल्लत्ति इह अभव्वजिया ।
तेहिंतोऽणन्तगुणा भव्वा निव्वाणगमणऽरिहा ।।६२।।

(यशो०) स्तोका इह संसारे-ऽभव्यजीवाः । किंप्रमाणाः ? जघन्यं च तद्युक्तानन्तकं च तेन तुल्याः। परित्तयुक्तनिजपदोपाधिवशाद्धि त्रिविधमप्यऽनन्तकं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदान्नवविधम् । तच्च जीवसमास-सार्द्धशतकादिभ्योऽभ्यूह्यम् । इह तु विस्तारभिया नाविर्भाव्यते । तेभ्यो=ऽभव्येभ्योऽनन्तगुणा भव्याः । अभव्याः सिद्धानामनन्तभागे, भव्यास्तु सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणा इति ह्यागममुद्रा । ते पुनः कीदृशाः, निर्वाणगमनमवश्यप्राप्यत्वेनार्हन्ति ये, त इह भव्याः,न पुनः सामग्गिअभावाओ ववहारगरासिअप्पवेसाओ । भव्वावि ते अणन्ता जे सिद्धिसुहं न पावेंति ॥ गाथोक्तस्वरूपा अपि ।।६२।।

सासाणउवसमियमिस्सवेयगखइगमिच्छदिट्ठीओ ।
थोवा दो संखगुणा असंखगुणिया अणन्ता दो ।।६३।।

(यशो०) सास्वादना उत्कृष्टतः क्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागवर्त्या-ऽऽकाशप्रदेशप्रमाणत्वेना-ऽसंख्याता अपि औपशमिकाऽपेक्षया स्तोकाः । सास्वादनत्वं हि औपशमिकं त्यजतां मिथ्यात्वं चाऽप्राप्नुवतां प्राप्यते । तत्र यावन्त औपशमिकं प्राप्नुवन्ति न तावन्तः सर्वेऽपि सास्वादनत्व-

स्पृशः, किन्तु केचिदेवा-ऽनन्तानुबन्ध्युदयादिति सास्वादनाः स्तोकाः। अत एवा-ऽमीभ्य औपशमिकसम्यक्त्वभाज उपशमाः संख्यातगुणा उक्ताः। ते हि

"असंखाउयतिरिया विमाणिणो पढमपुढविनेरइया। मणुया य तिसंमत्ता वेयगउवसामगा सेसा॥"

इत्युक्तेर्बहवः तृतीयनरके ऽपि कृष्णवसुदेवादीनां क्षायिकसम्यक्त्ववतां सद्भावेन 'पढमपुढविनेरइया' ति न व्यभिचारित्वम्, तेषां तद्वतां कादाचित्कत्वेनाल्पत्वादविवक्षितया जीवसमासवृत्त्युक्तयेति।
औपशमिकेभ्यो मिश्राः=सम्यग्मिथ्यादृशः संख्यातगुणाः। ते ह्यौपशमिकसम्यक्त्वभाग्भ्यो बहवो भवन्ति, यदा स्युः, मिश्रपरिणामस्य ह्येकस्मिन्नपि भवे एकस्यापि जीवस्य सर्वगतिष्वपि पुनः पुनः सम्भवः। औपशमिकं त्वनादिमिथ्यादृष्टीनां ग्रन्थिभेदे भवत्युपशमश्रेण्यां चाधिरोहतां कतिपयानामित्युपपन्नमौपशमिकसम्यक्त्ववद्भ्यो मिश्राणां संख्यातगुणत्वम्। कादाचित्कत्वं सास्वादनौपशमिकसम्यग्दृशोरपि समानम्। यदवोचाम–

"अपज्जत्तमणुस्सा वेउव्वियमिस्समीसदिट्ठी य। तह सुहुमसम्पराया परिहारियछेयचारित्ता॥
अपुव्वकरणअणियट्टिवायरा तहुवसन्तमोहा य। आहारगमिस्सोवि य सासणदिट्ठी य भयणिज्जा॥"

इत्येते एकादशापि "भयणिज्जे" ति कदाचिद्भवन्ति, कदाचिन्नेत्यर्थः। तथाहि– पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च गर्भजमनुजाः सदाभाविन इति लब्धितः करणतश्चा-ऽपर्याप्ताः सम्मूर्च्छजा मनुजा अपर्याप्तमनुष्या मिश्राः सास्वादनाश्चैते त्रयः सर्वस्मिँल्लोके कदाचित्पल्योपमाऽसंख्येयभागं यावन्न भवन्ति। नरकदेवगतौ द्वादश मुहूर्त्ता उत्पादविरहकाल उक्त इति नारकदेवानामुत्पत्तिसमयभाविनो वैक्रियशरीरानिष्पत्तौ वैक्रियमिश्रयोगाः कादाचित्काः। एतच्छेषयोगास्तु सदाभाविनः। लब्धिप्रत्ययतिर्यग्मनुष्यवैक्रियमिश्रयोगाः पुनरिह न विवक्षिताः। सूक्ष्मसम्परायाः उत्कृष्टतः षण्मासान्यावन्न भवतीति कादाचित्काः। यतः क्षपकश्रेणिं षण्मासान्यावन्न कोऽपि कश्चित्प्रतिपद्यते। एवमपूर्वकरणा-ऽनिवृत्तिबादराणामिहोक्तानामनुक्तानां च क्षपकश्रेण्यारम्भक्षीणमोहायोगिनामप्युत्कृष्टमन्तरं वाच्यम्। मिथ्यादृष्ट्य-ऽविरतदेशविरतप्रमत्ताऽप्रमत्तसयोगिनां सदैव लोके सद्भावेन च विरहकालासम्भवः। पारिहारिका अवसर्प्पिण्यामादित एव एकविंशतिवर्षसहस्रप्रमाणं पञ्चमं षष्टं चारकं उत्सर्प्पिण्यां तावत्प्रमाणं प्रथमं द्वितीयं चारकं यावद्भरतैरावतेषु जघन्यतो न भवन्ति। छेदोपस्थानीयचारित्रिणोऽवसर्प्पिण्या उक्तप्रमाणं षष्ठमरकमुत्सर्प्पिण्या उक्तप्रमाणं प्रथमं द्वितीयं चारकं यावद् भरतैरावतेषु जघन्यतो न भवन्ति। उभयेपि पारिहारिकाः च्छेदोपस्थापनीयचारित्रिणश्चाष्टादशसागरोपमकोटीकोटीर्यावन्न प्राप्यन्ते। उत्सर्प्पिण्या आदित एव सागरोपमकोटीकोटिद्वयप्रमाणं चतुर्थं सागरोपमकोटीकोटित्रयमानं पञ्चमं सागरोपमकोटीकोटिचतुष्टयप्रमितं षष्ठं चारकं यावन्न भवन्ति, अवसर्प्पिण्यामपि सागरोपमकोटीकोटिचतुष्कप्रमाणं प्रथमं सागरोपमकोटीकोटित्रय-

परिच्छिन्नं द्वितीयं सागरोपमकोटीकोटिद्वयावच्छिन्नं तृतीयं चारकं यावन्न भवन्ति। यः पुनरुत्स-र्पिण्याश्चतुर्थारकस्यादाववसर्पिण्यास्तृतीयारकस्य पर्यन्ते कियन्तमपि कालं उभयेषामपि सद्भावः सोऽल्पकालत्वेन न विवक्षित इति न तेन न्यूनता उत्कृष्टविरहकालस्य। उपशान्तमोहा उपश-मश्रेणिवर्त्तिनश्चोत्कृष्टतो वर्षपृथक्त्वं यावन्न भवन्ति। एवमाहारकमिश्रयोगोऽपि। प्रयोजना-भावेनाहारकशरीरस्या-ऽऽरम्भाभावेनाहारकमिश्राभावात्। "आहाराइं लोए छम्मासं जा न हुन्ति उ कयाइं"ति प्रज्ञापनावचनं तु मतान्तरेण। एतेषां च मिश्रादीनां यथावसरमुत्तरत्रापि कादाचित्क-त्वं भावनीयम्। मिश्रेभ्यः क्षायोपशमिकभाजोऽसंख्यातगुणाः। एते हि सर्वदैवा-ऽसंख्यातगुणाः प्राप्यन्ते। मिश्रास्तु कदाचिदेव, कादाचित्कत्वं त्वनन्तरमेव प्रत्यपादि। वेद्यन्ते=ऽनुभूयन्ते शुद्धसम्यक्त्वपुञ्जपुद्गला अस्मिन्निति वेदकं=क्षायोपशमिकमुपचारात्तु तद्वन्त उक्ताः। एवं क्षायिकशब्देन क्षायिकवन्तो मन्तव्यास्ततः क्षायोपशमिकवद्भ्यः क्षायिका अनन्तगुणाः। सिद्धानामपि क्षेपात्। क्षायिकवद्भ्यो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। एते ह्यनन्तास्तूत्सर्पिण्यवस-र्पिणीषु यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणाः। क्षायिकवन्तस्तु एकनिगोदजीवानामप्यनन्तभाग एव वर्तन्ते ॥६३॥

सन्नी थोवा तत्तो अणन्तगुणिया असन्निणो हुन्ति[1]।
थोवाणाहारजिया तदसंखगुणा सआहारा ॥६४॥

(यशो०) संज्ञिनो मनोविज्ञानान्वितास्ते च पर्याप्तपञ्चेन्द्रिया एवेत्यऽसंख्यातमात्रत्वेना-ऽसंज्ञिभ्यः स्तोकाः। ततः संज्ञिभ्योऽसंज्ञिनोऽनन्तगुणिताः, पृथिव्याद्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियान्तजन्तु-व्यापित्वादसंज्ञित्वस्य। स्तोका आहारका-ऽपेक्षयाऽनाहारकजीवास्तेषां विग्रहगतिमापन्नानामन-न्तानां सिद्धानां चाऽनन्तानां सद्भावादानन्त्येऽपि तेभ्योऽसंख्यातगुणास्तदसंख्यातगुणाः, के? सहाहारेण वर्त्तन्ते इति साहारा=आहारका इत्यर्थः। अनाहारका हि एकस्यापि निगोद-स्यासंख्येयभागवर्त्तिनोऽभिहिताः, अतोऽनाहारकेभ्योऽसंख्यातगुणा आहारकाः ॥६४॥

उक्तं मार्गणास्थानगताभिधेयपदषट्कमिदानीं गुणस्थानेषु जीवस्थानाद्यभिधेयपददशकं प्ररूपयितुकामो जीवस्थानानि तावदाह—

मिच्छे सव्वे छ अपज्ज सन्निपज्जत्तगो य सासाणे।
सम्मे दुविहो सन्नी सेसेसु सन्निपज्जत्तो ॥६५॥

(यशो०)मिथ्यात्वे सर्व्वाणि जीवस्थानानि। सर्वत्रैकेन्द्रियादौ मिथ्यात्वस्य सम्भवात्। सूक्ष्मै-

---

१. "होंति" इत्यपि पाठः।

केन्द्रियवर्ज्याण्यपर्याप्तरूपाणि षट्, संज्ञिपर्याप्तश्चेति सास्वादने सप्त सास्वादनस्य हि संज्ञिपर्याप्तत्वं निर्विवादसिद्धम्। संज्ञिपर्याप्तस्य च बादरैकेन्द्रियादिषु पूर्वं बद्धायुषः पर्यन्तसमये औपशमिकं प्राप्य तदेव वमतो मिथ्यात्वं चाप्राप्नुवतस्तेष्वेवोत्पद्यमानस्योत्कृष्टतोऽपि षडावलिकामानेनाऽपर्याप्तदशायामेव सास्वादनत्वं भवतीति सास्वादनस्याऽपर्याप्तरूपमेव बादरैकेन्द्रियादिजीवस्थानषट्कम्, न तु पर्याप्तरूपम्। सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु बद्धायुष औपशमिकं न लभत इति तत्र सास्वादनस्याभावः। सम्यक्त्वे=उपचारादविरतसम्यग्दृष्टौ द्विविधः करणपर्याप्तापर्याप्तरूपः संज्ञी, न शेषाणि। शेषेषु सम्यक्त्वाभाव एवोत्पत्तेः। शेषेपूक्तोद्धरितेषु मिश्रदेशविरतादिषु संज्ञिपर्याप्तः, एकादशसु शेषाभावस्तु सुज्ञानः ॥६५॥

इय जियठाणा गुणठाणगेसु जोगा य वोच्छमेत्ताहे।
जोगाहारदुगूणा मिच्छे सासणअविरए य ॥६६॥

(यशो०) इत्यमुनोल्लेखेन जीवस्थानानि गुणस्थानकेषूक्तानीति शेषः। योगांश्चेतः परं वक्ष्ये तानेवाह—योगा मिथ्यात्वे सास्वादनेऽविरते च संयमाभावादाहारकद्विकस्य च संयमप्रत्ययकत्वादाहारकद्विकेनोनास्तदन्ये त्रयोदशेत्यर्थः ॥६६॥

उरलविउव्विवइमणा दस मीसे ते विउव्विमीसजुया।
देसजए एक्कारस साहारदुगा पमत्तंमि ॥६७॥

(यशो०) मिश्रे=मिश्रगुणस्थानके औदारिक-वैक्रियौ काययोगौ वाग्मनसे च विशेषानिर्देशात् प्रत्येकं चतुर्द्धाऽपीति दश। मिश्रे हि संयमाभावादाहारकद्विकाभावः। कार्मणौदारिकमिश्र-वैक्रियमिश्राणामभावे कारणं "सव्विउव्वा मीसे" त्यत्रोक्तम्। ते पूर्वोक्ता दश वैक्रियमिश्रयुक्ता एकादश देशयते=देशविरते। तत्र वैक्रियद्विकं वैक्रियलब्धौ सत्याम्। अपर्याप्तत्वे भवान्तराले च देशविरतेरभावादौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगौ नास्याऽपि स्तः। सर्वविरतेरभावाच्चाऽऽहारकद्विकाभावः। ते पूर्वोक्ता एकादश सहाहारकद्विकेन वर्त्तन्ते साहारकास्त्रयोदशेत्यर्थः, प्रमत्ते=प्रमत्तसंयते। इह हि "संयमेणाहार" इति वचनादाहारककाययोगः, आहारकाश्रयत्वाच्चाहारकमिश्रयोगः। कार्मणौदारिकमिश्राभावस्तु भवान्तरालेऽपर्याप्तदशायां च सर्वविरतेरभावात्। यत्तु केचिद्देशविरत-प्रमत्तसंयतयोर्वैक्रियद्विकं न प्रतिपद्यन्ते, तदम्बडश्रावक-विष्णुकुमार-स्थूलभद्रादिभिर्व्यभिचरतीत्युपेक्षितमाचार्येण ॥६७॥

[1]एक्कारसऽप्पमत्ते, मणवइआहारगुरलवेउव्वा।
अप्पुव्वाइसु पंचसु नव ओरालो मणवई य ॥६८॥

---

१. "एक्कारस अपमत्ते" इत्यपि पाठः।

(यशो०) अप्रमत्ते=ऽप्रमतसंयते मनश्चतुष्कं वाक्चतुष्कमाहारकौदारिकवैक्रियाश्चे त्येकादश। इह कार्मणौदारिकमिश्राभावः पूर्ववत्। वैक्रियमिश्रा ऽऽहारकमिश्रयोस्त्वऽभावोऽप्रमत्तत्वादेव। तथा ह्येतौ वैक्रियाहारकयोरारम्यमाणयोस्त्यज्यमानयोर्वा प्राप्येते। तत्रारम्भकाले लब्धेरुपजीवनौत्सुक्यात्त्यागकाले च त्यागौत्सुक्यान्नाप्रमत्तत्वम्। आरम्भत्यागकालान्तराले चौत्सुक्याभावादऽप्रमत्तताऽपीत्यप्रमत्तस्याऽपि वैक्रियाहारकावुक्तौ। केश्चित्तु सर्वथा नोक्तौ, अप्रमत्तस्य लब्धेरनुपजीवनात्। अपूर्वादिषु=निवृत्त्यादिषु पञ्चसु क्षीणमोहान्तेष्वित्यर्थः, नवौदारिककायमनश्चतुष्टयवाक्चतुष्टयलक्षणाः। इहौदारिकमिश्रकार्मणाभावः प्रागिव। अतिविशुद्धत्वादेव वैक्रियाहारककरणासम्भवाद्वैक्रियस्याहारकद्विकस्य चाभावः ॥६८॥

संप्रति योगसमर्थनापुरस्सरमुपयोगप्रस्तावनामाह—

चरमाइममणवइदुगकम्मुरलदुगन्ति जोगिणो सत्त।
गयजोगो य अजोगी वोच्छमओ बारसुवओगे ॥६९॥

(यशो०) चरममसत्यामृषमादिमं च सत्यं मन इति द्विकमेवं चरमादिमा च वागिति द्विकं कार्मणमौदारिकद्विकं चेति सप्त योगिनः=सयोगिकेवलिनः। तत्र मनोद्विकं दवीयोदेशव्यवस्थितमनःपर्ययज्ञानिप्रभृतिषु द्रव्यमनोव्यापारणाद्, वाग्द्विकं देशनादौ, कार्मणौदारिकमिश्रयोगौ यथाक्रमं तृतीय-चतुर्थ-पञ्चमसमयेषु द्वितीय-षष्ट-सप्तमसमयेषु च समुद्घाते ज्ञाव्यौ, औदारिकः प्रतीतः। अयोगी च गतयोगो=ऽपगतयोगः। अतो=योगचिन्तानन्तरमुपयोगान्वक्ष्ये, 'गुणस्थानेष्वि'ति प्रकृतम् 'द्वादशे' ति स्वरूपपरम् ॥६९॥

तानेवाह—

अच्चक्खुचक्खुदंसणमन्नाणतिगं च मिच्छसासाणे।
अविरयसम्मे देसे तिनाणदंसणतिगं ति छ उ ॥७०॥

(यशो०) कर्मप्रकृतिमतेनाऽवधिदर्शनाऽनङ्गीकारादचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च वचनव्यत्ययान्मिथ्यात्वसास्वादनयोः। शेषास्तु सम्यक्त्वाविनाभाविन इत्यनयोर्न भवन्ति। अविरतसम्यग्दृष्टौ चशब्दलोपादेकदेशे समुपायोपचाराच्च देशविरते च त्रीण्याद्यानि ज्ञानानि दर्शनानि चेति षट्। अज्ञानत्रिकं मिथ्यात्वाविनाभावि मनःपर्यवज्ञानकेवलद्विकं च चारित्राव्यभिचारीत्यनयोर्न भवन्ति ॥७०॥

मीसे तिन्चिय मीसा सत्त पमत्ताइसुं समणनाणा।
केवलियनाणदंसणउवओगा जोगजोगीसु ॥७१॥

(यशो०) मिश्रे=मिश्रदृष्टौ त एव प्राचिनाः षट् मिश्रा अज्ञानेनेति शेषः । अत्र भावार्थो "मीसे अनाणमीसं तं"इत्यत्र योऽभिहितः स एवानुसर्त्तव्यः । शेषोपयोगाभावः पूर्ववत् । प्रमत्तादिषु सयोग्यऽयोगिनोः पार्थक्येन चिन्तनात् क्षीणमोहान्तेषु इत्यनुवृत्तेर्मतिज्ञानादयः षट् मह मनोज्ञानेन=मनःपर्यवज्ञानेनेति सप्त । शेषाभावः प्रतीतः । केवलज्ञानदर्शनोपयोगौ सयोग्ययोगिनोः, अत्र केवलद्विकस्य शेषोपयोगाऽपायेनैव भावाच्छेषाभावः ॥७१॥

साम्प्रतमागममाम्नातानामपि केषांचिदर्थानामत्रानधिकृतत्वमाह—

सासणभावे नाणं विउव्विगाऽऽहारगे उरलमिस्सं ।
नेगिंदिसु [1]सासाणोत्ति नेहहिगयं सुयमयंपि ॥७२॥

(यशो०) सास्वादनत्वे सति ज्ञानं=मत्यादि श्रुतमतमपि सास्वादनो हि किल सम्यग्दृष्टिः सम्यग्दृष्टेश्च ज्ञानमेवेति सैद्धान्तिकैः=प्रज्ञापनादिभिः आश्रितमपि नात्र प्रकरणेऽधिकृत=मभ्युपगतमपि त्वज्ञानमेवेति योगः । कार्मग्रन्थिका-(ऽङ्गी)कृतस्यैवेहाश्रितत्वादिति भावः । कार्मग्रन्थिकैर्हि कर्मप्रकृत्यनुसारिभिः सास्वादनभावेऽनन्तानुबन्ध्युदयाद्वाऽल्पकालभावित्वाद्वा ज्ञानं न विवक्षितम् । वचनव्यत्ययाद्वैक्रियाहारकयोस्त्यज्यमानयोरौदारिकमिश्रं शरीरं श्रुतमतमपि नाधिकृतमित्यत्रापि योगः । सिद्धान्ते हि प्रज्ञापनादौ (वैक्रि)यलब्धिमतां बादरवायुतिर्यग्मनुष्याणां वैक्रियस्याऽऽरम्भकाले वैक्रियमिश्रकाययोगस्त्यागकाले पुनरसा औदारिकमिश्र उक्तः । आहारकस्याप्याऽऽरम्भकाल आहारकमिश्रः त्यागकाले पुनरौदारिकमिश्रोऽभिहितः । इह तु कार्मग्रन्थिकाशयाश्रयणाद्वैक्रियाहारकयोरारम्भकाल इव त्यागकालेऽपि वैक्रियमिश्राहारकमिश्रावुक्तावित्यर्थः । तथैकेन्द्रियेषु न सास्वादन इति यत् श्रुतमतं तदप्यत्र नाधिकृतमित्यत्रापि योगः । अयं चार्थः 'पढमगुणा दो बायर" इत्यत्र निर्णीतः ॥७२॥

अथ गुणस्थानेष्वेव लेश्याः प्रतिपादयति—

लेसा तिन्नि पमत्तं तेऊ पम्हा य अप्पमत्तंता ।
सुक्का जाव सजोगी निरूद्धलेसो अजोगित्ति ॥७३॥

(यशो०) आद्यास्तिस्रो लेश्याः प्रमत्ते=प्रमत्तगुणस्थानेऽन्तस्तत्र सद्भाव उत्तरत्राभावरूपो व्यवच्छेद आसामिति। प्रमत्तान्ताः प्रमत्तं यावत्षडपि, तदूर्ध्वं तूत्तरास्तिस्र इत्यर्थः । यथा च प्रमत्तयतेर्विशुद्धस्या-ऽप्यविशुद्धमाद्यलेश्यात्रयं भवति । तथा 'गइयाइसु छावि सेसेसि" त्यत्रोक्तम् । एवं तैजसीपद्मे अप्रमत्तान्ते । अप्रमते-ऽन्त्यास्तिस्र इत्यर्थः । निवृत्तिगुणस्थानमादितः कृत्वा सयोगिकेवलिनं यावच्छुक्ला, अयोगी तु व्यवच्छिन्नलेश्यः, लेश्योच्छेद एवा-ऽयोगित्वप्राप्तेः ।

१ "सासाणो नेहाहिगयं" इत्यपि पाठः ।

(यशो०) अप्रमत्ते=ऽप्रमतसंयते मनश्चतुष्कं वाक्चतुष्कमाहारकौदारिकवैक्रियाश्चे त्येकादश । इह कार्मणौदारिकमिश्राभावः पूर्ववत् । वैक्रियमिश्रा ऽऽहारकमिश्रयोस्त्वभावोऽप्रमत्तत्वादेव । तथा ह्येतौ वैक्रियाहारकयोरारम्यमाणयोस्त्यज्यमानयोर्वा प्राप्येते । तत्रारम्भकाले लब्धेरुपजीव-नौत्सुक्यात्त्यागकाले च त्यागौत्सुक्यान्नाप्रमत्तत्वम् । आरम्भत्यागकालान्तराले चौत्सुक्याभावा-दऽप्रमत्तताऽपीत्यप्रमत्तस्याऽपि वैक्रियाहारकावुक्तौ । कैश्चित्तु सर्वथा नोक्तौ, अप्रमत्तस्य लब्धे-रनुपजीवनात् । अपूर्वादिषु=निवृत्त्यादिषु पञ्चसु क्षीणमोहान्तेष्वित्यर्थः, नवौदारिककायम-नश्चतुष्टयवाक्चतुष्टयलक्षणाः । इहौदारिकमिश्रकार्मणाभावः प्रागिव । अतिविशुद्धत्वादेव वैक्रियाहारककरणासम्भवाद्वैक्रियस्याहारकद्विकस्य चाभावः ॥६८॥

संप्रति योगसमर्थनापुरस्सरमुपयोगप्रस्तावनामाह—

चरमाइममणवइदुगकम्मुरलदुगन्ति जोगिणो सत्त ।
गयजोगो य अजोगी वोच्छमओ बारसुवओगे ॥६९॥

(यशो०) चरममसत्यामृषमादिमं च सत्यं मन इति द्विकमेवं चरमादिमा च वागिति द्विकं कार्मणमौदारिकद्विकं चेति सप्त योगिनः=सयोगिकेवलिनः । तत्र मनोद्विकं दवीयोदेशव्यवस्थित-मनःपर्ययज्ञानिप्रभृतिषु द्रव्यमनोव्यापारणाद् , वाग्द्विकं देशनादौ, कार्मणौदारिकमिश्रयोगौ यथाक्रमं तृतीय-चतुर्थ-पञ्चमसमयेषु द्वितीय-षष्ट-सप्तमसमयेषु च समुद्घाते ज्ञाप्यौ, औदारिकः प्रतीतः । अयोगी च गतयोगो=ऽपगतयोगः । अतो=योगचिन्तानन्तरमुपयोगान्वक्ष्ये, 'गुणस्थानेष्वि'ति प्रकृतम् 'द्वादशे' ति स्वरूपपरम् ॥६९॥

तानेवाह—

अच्चक्खुचक्खुदंसणमन्नाणतिगं च मिच्छसासाणे ।
अविरयसम्मे देसे तिनाणदंसणतिगं ति छ उ ॥७०॥

(यशो०) कर्मप्रकृतिमतेनाऽवधिदर्शनाऽनङ्गीकारादचक्षुर्दर्शनं चक्षुर्दर्शनमज्ञानत्रिकं चेति पञ्च वचनव्यत्ययान्मिथ्यात्वसास्वादनयोः । शेषास्तु सम्यक्त्वाविनाभाविन इत्यनयोर्न भवन्ति । अविरतसम्यग्दृष्टौ चशब्दलोपादेकदेशो समुदायोपचाराच्च देशविरते च त्रीण्याद्यानि ज्ञानानि दर्शनानि चेति षट् । अज्ञानत्रिकं मिथ्यात्वाविनाभावि मनःपर्यवज्ञानकेवलद्विकं च चारित्राव्य-भिचारीत्यनयोर्न भवन्ति ॥७०॥

मीसे तिच्चिय मीसा सत्त पमत्ताइसुं समणनाणा ।
केवलियनाणदंसणउवओगा जोगजोगीसु ॥७१॥

तस्य क्रिया सम्भवतीति वक्तुं शीलानामक्रियावादिनां चतुरशीतेः, अज्ञानेन चरतामज्ञानप्रयोजनानां वाऽज्ञानिकानां सप्तषष्टेः, विनयेन चरतां विनयप्रयोजनानां वा वैनयिकानां द्वात्रिंशतश्च, मीलनेन त्रिषष्ट्यधिकं शतत्रयविधम्। तत्र जीवाजीवपुण्यपापाश्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षाभिधाना नवपदार्थाः, स्वपरभेदाभ्यां क्रमेण काले-श्वरा-ऽऽत्म-नियति-स्वभावभेदान्विताभ्यामस्तित्वेन चिन्त्यमाना अशीत्युत्तरं शतं विकल्पानाविर्भावयन्ति। अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालतः १, तथास्ति जीवः स्वतोऽनित्यः कालतः २, इति स्वतो भङ्गद्वयम्। एवं परतोऽपि भङ्गद्वयम्। सर्वेऽपि चत्वारः कालेन लब्धाः। एवमीश्वरादिभिश्चतुर्भिरपि प्रत्येकं चत्वारो लभ्यन्ते। ततः पञ्चभिश्चतुष्कैर्विंशतिर्जाता। सा च जीवपदेन लब्धा। एवम-ऽजीवादिभिरष्टाभिः पृथग्विंशतिर्लभ्यत इति नव विंशतयो मीलिताः क्रियावादिनामशीत्युत्तरं शतं भवति। तथा जीवाजीवाश्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षाभिधानाः सप्त पदार्थाः स्वपरभेदाभ्यां प्रत्येकं कालेश्वरात्मनियतिस्वभावयदृच्छासम्बन्धिताभ्यां नास्तित्वेन चिन्त्यमानाश्चतुरशीतिविकल्पान्जनयन्ति। यथा नास्ति जीवः स्वतः कालतः, १, नास्ति जीवः परतः कालत इति द्वौ। एवमीश्वरादिभिः पञ्चभिः प्रत्येकं द्वौ द्वौ लभ्येते। सर्वेऽपि द्वादश। एते च जीवादिसप्तकेन गुणिताश्चतुरशीतिरक्रियावादिनाम्। तथा जीवादयो नव पदार्थाः सन् १, असन् २, सदसन् ३, अवक्तव्यः ४, सदवक्तव्यः ५, असदवक्तव्यः ६, सदसदवक्तव्यः ७, इत्येतैः सप्तभिः प्रकारैर्न ते ज्ञातुं शक्यन्ते। ज्ञातैर्वा किमेभिः प्रयोजनमिति बुद्ध्या व्यासितैस्त्रिषष्टिमाज्ञानिकानां भेदान्प्रसुवते। यथा सन् जीव इति को वेत्ति किं वा तेन ज्ञातेन प्रयोजनम्। असन् जीव इति को वेत्ति किं वा तेन ज्ञातेन प्रयोजनमित्यादयः सप्त जीवेन लब्धाः। एवमजीवादिभिरपि सप्तभिः पदैः प्रत्येकं सप्त लभ्यन्त इति नव सप्तकास्त्रिषष्टिः। एतन्मध्ये चामी चत्वारः क्षिप्यन्ते। यथा सती भावोत्पत्तिरिति को वेत्ति किं वा तया ज्ञातया। एवमसती सदसती अवक्तव्या भावोत्पत्तिरिति को वेत्ति किं वा ज्ञातयेति सर्वत्र योज्यते। सदवक्तव्यादिकं तु विकल्पत्रयमुत्तरं कालं भावावयवाऽपेक्षम्, अतोऽत्र न सम्भवतीति नोक्तम्। इत्थं च सप्तभङ्गी सूत्रकृदादिवृत्त्यनुवृत्त्या दर्शिता। विशेषावश्यकादौ त्ववक्तव्य इति तृतीयेन सदसन्निति चतुर्थेन भङ्गेन सेति। तदेवं सप्तषष्टिराज्ञानिकानां भवति। सुरनृपतियतिज्ञातिस्थविराधममातृपितृणामष्टानां स्थानानां प्रत्येकं कायेन वचसा मनसा दानेन च विनय इत्यष्टभिश्चतुष्कैर्द्वात्रिंशद्वैनयिकभेदाः सर्वेषां च मीलनेन त्रिषष्ट्यधिकशतत्रयविधं मिथ्यात्वम्।

'जावइया नयवाया तावइया चेव हुन्ति परसमया। जावइया परसमया तावइया चेव मिच्छत्तं" ॥ न्यायादपरिमितभेदं वेति ॥७५॥

बारसविहा अविरई मणइंदियअनियमो छकायवहो।
सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥७६॥

इतिशब्दो लेश्याद्वारसमाप्त्यर्थः ॥७३॥

इदानीं गुणस्थानेषु ज्ञानावरणादिकर्मणां बन्धहेतून् दर्शयितुकामः प्रथमं तानेव भेदत आह–

बन्धस्स मिच्छअविरइकसायजोगत्ति हेयवो चउरो ।
पंच [1]दुवाल पणुवीस पन्नरस कमेण भेया सिं ॥७४॥

(यशो०) ज्ञानावरणादिकर्मणां बन्धस्य हेतवः=कारणानि=मिथ्यात्वाविरतिकषाययोग इत्येवंरूपाश्चत्वारः, एतांश्च मूलभेदानाहुः, न तु प्रमादरूपं पञ्चममिति । तद्भेदानां मद्यादीनां मिथ्यात्वशेषेष्वेतेष्वेव यथायोगमन्तर्भावात् । तत्र मिथ्यात्वमेकस्मिन्नेव गुणस्थान इत्यादौ निर्दिष्टम् । ततो यथोत्तरं बहुगुणस्थानाश्रयत्वेना-ऽविरत्यादयः । तथाहि–मिथ्यात्वं मिथ्या(दृष्टा)वेव, अविरतिराद्यपञ्चगुणस्थानव्यापिनी, कषाया आद्यगुणस्थानदशकव्यापिनः, योगास्तु अयोगिवर्जगुणस्थानव्यापिनः । एषामेव क्रमेण पञ्च द्वादश पञ्चविंशति पञ्चदशेति संख्या-ऽवच्छिन्ना भेदाः, सर्वे वा मीलिताः सप्तपञ्चाशत् । एतांश्चोत्तरभेदानाचक्षते ॥७४॥

अथैतानेव क्रमेण विवृणोति ॥

आभिग्गहियं [2]अणभिग्गहियं च तह अभिनिवेसियं चेव ।
संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पञ्चहा एवं ॥७५॥

(यशो०)अभिग्रहः परोपदेशादिप्रभवः कदाग्रहस्तस्माद् यातमाभिग्रहिकम् येन बोटिकादिदर्शनानामन्यतमदभिगृह्णाति । तद्विपरीतमनाभिग्रहिकमज्ञानां गवादीनामिव । यद्वेषन्माध्यस्थ्यात्सर्वदर्शनानि शोभनानीत्येवंरूपा यतः प्रतिपत्तिः तदाभिग्रहिकम् । यद्यपि चाभिग्रहिकविपर्यस्तरूपतया-ऽभिनिवेशिकाद्यप्य-ऽनाभिग्राहिके-ऽन्तर्भवति । तथा-ऽप्य-ऽपवादविषयं परिहृत्योत्सर्गाः प्रवर्त्तन्त इति न्यायादाभिनिवेशिकादिभ्यो भिन्नविषयमनाभिग्रहिकं बोद्धव्यम् । अभिनिवेशो=ऽवलेपः, यद्वशीभूत एकेन वस्तुतत्त्वे प्ररूपिते मात्सर्यादिना वस्तुतत्त्वमन्यथा कथयति । उत्सूत्रप्ररूपणं वा स्वयं कृतमात्मलाघवभिया समर्थयते । वस्तुतत्त्वमजानानो वाऽन्येन पृष्टो मा मामज्ञं ज्ञासीदयमिति यथाकथञ्चिदुत्तरयति । तस्माद् यातमाभिनिवेशिकम् । यथा गोष्ठामाहिलादीनाम् । यदर्हता जीवादितत्त्वमभिहितं तन्न जाने किं तथैव भवेदुता-ऽन्यथेत्येवंभूतात्संशयाद् यातं सांशयिकम् । आभोगो=विशिष्टज्ञानम् , स न विद्यते यत्र तदनाभोगं पृथिव्यादीनाम् । एवमिति काक्वापाठस्तत एव=ममुना प्रकारेण पञ्चधा मिथ्यात्वम् । अन्यथा तु विपर्यस्तबोधरूपत्वेनैकविधम् । आभोगा-ऽनाभोगप्रभवतया द्विविधम् । संशयाऽऽभोगाऽनाभोगोद्भवतया त्रिविधम् । सावधारणजीवाद्यस्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणानां क्रियावादिनामशीत्यधिकशतस्य । न कस्यचित्क्षणिकत्वादनवस्थि-

---

१ "दुवालसपणुवीसपनरस" इत्यपि पाठः । २ "अणभिग्गहं" इत्यपि ।

तस्य क्रिया सम्भवतीति वक्तुं शीलानामक्रियावादिनां चतुरशीतेः, अज्ञानेन चरतामज्ञानप्रयोजनानां वाऽज्ञानिकानां सप्तषष्टेः, विनयेन चरतां विनयप्रयोजनानां वा वैनयिकानां द्वात्रिंशतश्च, मीलनेन त्रिषष्ट्यधिकं शतत्रयविधम्। तत्र जीवाजीवपुण्यपापाश्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षाभिधाना नवपदार्थाः, स्वपरभेदाभ्यां क्रमेण काले-श्वरा-ऽऽत्म-नियति-स्वभावभेदान्निना-भ्यामस्तित्वेन चिन्त्यमाना अशीत्युत्तरं शतं विकल्पानाविर्भावयन्ति। अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालतः १, तथास्ति जीवः स्वतोऽनित्यः कालतः २, इति स्वतो भङ्गद्वयम्। एवं परतोऽपि भङ्गद्वयम्। सर्वेऽपि चत्वारः कालेन लब्धाः। एवमीश्वरादिभिश्चतुर्भिरपि प्रत्येकं चत्वारो लभ्यन्ते। ततः पञ्चभिश्चतुष्कैर्विंशतिर्जाता। सा च जीवपदेन लब्धा। एवम-ऽजीवादिभिरष्टाभिः पृथग्विंशतिर्लभ्यत इति नव विंशतयो मीलिताः क्रियावादिनामशीत्युत्तरं शतं भवति। तथा जीवाजीवाश्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षाभिधानाः सप्त पदार्थाः स्वपरभेदाभ्यां प्रत्येकं कालेश्वरात्मनियतिस्वभावयदृच्छासम्बन्धिताभ्यां नास्तित्वेन चिन्त्यमानाश्चतुरशीतिविकल्पान्जनयन्ति। यथा नास्ति जीवः स्वतः कालतः, १, नास्ति जीवः परतः कालत इति द्वौ। एवमीश्वरादिभिः पञ्चभिः प्रत्येकं द्वौ द्वौ लभ्येते। सर्वेऽपि द्वादश। एते च जीवादिसप्तकेन गुणिताश्चतुरशीतिरक्रियावादिनाम्। तथा जीवादयो नव पदार्थाः सन् १, असन् २, सदसन् ३, अवक्तव्यः ४, सदवक्तव्यः ५, असदवक्तव्यः ६, सदसदवक्तव्यः ७, इत्येतैः सप्तभिः प्रकारैर्नैते ज्ञातुं शक्यन्ते। ज्ञातैर्वा किमेभिः प्रयोजनमिति बुद्ध्या व्यासितैस्त्रिषष्टिमाज्ञानिकानां भेदान्प्रस्तुवते। यथा सन् जीव इति को वेत्ति किं वा तेन ज्ञातेन प्रयोजनम्। असन् जीव इति को वेत्ति किं वा तेन ज्ञातेन प्रयोजनमित्यादयः सप्त जीवेन लब्धाः। एवमजीवादिभिरपि सप्तभिः पदैः प्रत्येकं सप्त लभ्यन्त इति नव सप्तकास्त्रिषष्टिः। एतन्मध्ये चामी चत्वारः क्षिप्यन्ते। यथा सती भावोत्पत्तिरिति को वेत्ति किं वा तया ज्ञातया। एवमसती सदसती अवक्तव्या भावोत्पत्तिरिति को वेत्ति किं वा ज्ञातयेति सर्वत्र योज्यते। सदवक्तव्यादिकं तु विकल्पत्रयमुत्तरं कालं भावावयवाऽपेक्षम्, अतोऽत्र न सम्भवतीति नोक्तम्। इत्थं च सप्तभङ्गी सूत्रकृदादिवृत्त्यनुवृत्त्या दर्शिता। विशेषावश्यकादौ त्ववक्तव्य इति तृतीयेन सदसन्निति चतुर्थेन भङ्गेन सेति। तदेवं सप्तषष्टिराज्ञानिकानां भवति। सुरनृपतियतिज्ञातिस्थविरावममातृपितृणामष्टानां स्थानानां प्रत्येकं कायेन वचसा मनसा दानेन च विनय इत्यष्टभिश्चतुष्कैर्द्वात्रिंशद्वैनयिकभेदाः सर्वेषां च मीलनेन त्रिषष्ट्यधिकशतत्रयविधं मिथ्यात्वम्।

'जावइया नयवाया तावइया चेव हुन्ति परसमया। जावइया परसमया तावइया चेव मिच्छत्तं'' ॥ न्यायादपरिमितभेदं वेति ॥७५॥

बारसविहा अविरई मणइंदियअनियमो छकायवहो।
सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥७६॥

(यशो०) अविरतिर्द्वादशविधा कथमित्याह–मनस इन्द्रियाणां च पञ्चानामनियमो=ऽनियन्त्रणं शब्दादिषु विषयेषु मनोज्ञा–ऽमनोज्ञेषु रागद्वेषप्रवृत्तेरनिवारणमिति षोढा तथा षण्णां कायानां पृथिव्यादीनां वधो = हिंसेति च षोढेति द्वादशविधेति मध्यमां वृत्तिमवलम्ब्योक्तमन्यथा सामान्येन सावद्ययोगा-ऽनिवृत्तिरूपत्वेनैकविधैव। व्यक्त्याश्रयणेन यावन्ति हिंसादीनां पापस्थानानि तदनुवृत्तिरूपत्वेनापरिमितविधा। षोडश नव चेति कषायाः पञ्चविंशतिः। षोडश नव च कषाया इति सामान्योक्तावपि षोडश कषाया नव नोकषाया इति दृश्यम्। तत्र कषायाः प्राग्निर्णीतार्थाः क्रोधादयश्चत्वारोऽनन्तानुबन्ध्यऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनात्मकभेदचतुष्टयेन प्रत्येकं भिद्यमानाः षोडश भवन्ति। तत्रानन्तं=संसारमनुबध्नन्ति=प्राणिभिः संबद्धं कुर्वन्तीत्येवंशीला अनन्तानुबन्धिनः। यद्यप्यमीषां शेषकषायोदयशून्यानामुदयो नास्ति। तथाऽप्यनन्तभवमूलकारणस्य मिथ्यात्वोदयस्या-ऽऽक्षेपकत्वादेतेषामेवानन्तानुबन्धित्वव्यपदेशः। शेषास्तु कषाया न नियमेन मिथ्यात्वोदयमाक्षिपन्ति। ते चाऽनन्तानुबन्धिनः क्रोध-मान-माया-लोभा यथाक्रमं शैलरेखाशैलस्तम्भवंशीशूलकृमिरागसंनिभा जीवपरिणतिविशेषा अवगन्तव्याः। नञोऽल्पार्थत्वादल्पमपि प्रत्याख्यानं देशविरतिरूपमावृण्वन्तीत्यप्रत्याख्यानावरणा एवंरूपाश्च क्रोधादयः क्रमेण पृथिवीरेखा-ऽस्थिमेषशृङ्गकर्दमरागसदृशा मन्तव्याः। प्रत्याख्यानं सर्वविरतिरूपमावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणा एवमात्मनश्च क्रोधादयो यथासंख्यं रेणुरेखाकाष्ठगोमूत्रिकाखञ्जनरागसमाना ज्ञेयाः। सम्शब्दस्येषदर्थत्वात्परीषहादिपरिचये चारित्रिणमपीषज्ज्वलयन्तीति संज्वलना एवंरूपाश्च क्रोधादयः क्रमेण जलरेखातिणिशलतावंशावलेखाहरिद्रारागसमा बोद्धव्या इति। तथा नोशब्दस्य साहचर्यवाचित्वात्कषायैः सहचरा नोकषायाः, तेषां हि केवलानां प्राधान्यम्, किन्तु तेषां यैः सहोदयमायान्ति कषायविपाकसममेव च विपाकमुपदर्शयन्ति। ते च स्त्रीपुंनपुंसकात्मकवेदत्रयहास्यरत्य-ऽरतिशोकभयजुगुप्सालक्षणहास्यादिषट्करूपत्वेन नवधा। तत्र वेदत्रयं प्रागुक्तस्वरूपम्। यदुदये सहेतुकमहेतुकं वा हसति स हासः। यदुदये रमणीये वस्तुनि रमते=प्रमोदते सा रतिः। तद्विपरीताऽरतिः। येन प्रियविप्रयोगाद्याकुलः शोचना-ऽऽक्रन्दनादि विधत्ते स शोकः। येन स बीजमबीजं वा बिभेति तद् भयम्। येन सकृदादिविरूपपदार्थात् जुगुप्सन्ते, सा जुगुप्सेति कषायाः पञ्चविंशतिः। योगाः पञ्चदशेति मनश्चतुष्टय-वाक्चतुष्टय-कायसप्तकरूपाः प्रागुक्तार्थाः। एते च मिथ्यात्वादयः सस्वभेदा मीलिताः सप्तपञ्चाशत्कर्मणां बन्धहेतव उक्ताः ॥७६॥

अथैतान् क्रमेण गुणस्थानेषु योजयति—

पणपन्नपन्नतियछहियचत्तगुणचत्तछचउदुगवीसा।
सोलस दस नव नव सत्त हेउणो न व अजोगित्ति ॥७७॥

(यशो०) न त्वयोगिनीति वचनात्पञ्चपञ्चाशदादिसंख्याऽवच्छिन्नाः क्रमेण मिथ्यादृष्ट्यादिषु बन्धहेतवो भवन्तीति शेषः । "तिगछहिगचत्त" ति त्रिचत्वारिंशत्षट्चत्वारिंशदित्यर्थः । "छच-उदुगवीसे" ति षड्विंशतिश्चतुर्विंशतिर्द्वाविंशतिरित्यर्थः । तत्र मिथ्यादृष्टेः संयमाभावेना-ऽऽहारकद्वयाऽभावाच्छेषा पञ्चपञ्चाशत् । पञ्चपञ्चाशतश्च मध्यान्मिथ्यात्वपञ्चकोत्सारणेन सास्वादनस्य पञ्चाशत् । पञ्चाशतश्च मध्यान्मिश्रत्वे कालकरणाभावेन कार्मणौदारिकमिश्र-वैक्रियमिश्ररूपयोग-त्रया-ऽपगमेऽनन्तानुबन्धिनां च निषिद्धत्वेनाऽनन्तानुबन्धिचतुष्टयोत्सारणेषु मिश्रदृष्टेस्त्र्यधिका चत्वारिंशत् । त्रिचत्वारिंशतः कालकरणसम्भवेन कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रात्मकयोगत्रिके प्रक्षिप्तेऽविरतसम्यग्दृष्टेः षड्भिरधिका चत्वारिंशत् । षट्चत्वारिंशतश्चा-ऽप्रत्याख्यानावरणोदये विग्रहगतावपर्याप्तदशायां च देशविरतेरभावादप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य कार्मणौदारिकमिश्रयोग-द्वयस्य चोत्सारण आरम्भजत्रसाऽविरत्यविवक्षया संकल्पजत्रसा-ऽविरतेर्निवृत्त्या त्रसा-ऽविरतौ चाप-नीतायां देशविरतस्यैकोनचत्वारिंशत् । एकोनचत्वारिंशतश्च मध्यात् प्रत्याख्यानावरणोदयस्या-ऽविरतेश्च सर्वविरतेः प्रतिपन्थित्वादेकादशभेदा-ऽविरति-प्रत्याख्यानावरणचतुष्का-ऽपनयने संयमप्रत्ययकत्वा-दाहारकलब्धेराहारकद्विकप्रक्षेपे च प्रमत्तसंयतस्य षड्विंशतिः । तस्याश्च मध्यात्पूर्वोक्तयुक्त्या वैक्रि-यमिश्रा-ऽऽहारकमिश्रद्वये-ऽपनीतेऽप्रमत्तसंयतस्य चतुर्विंशतिः । चतुर्विंशतेर्मध्यादपूर्वकरणस्या-तिविशुद्धत्वादा-ऽऽहारकवैक्रियापसारणे द्वाविंशतिः । द्वाविंशतेर्मध्यादपूर्वकरण एव व्यवच्छिन्नस्य हास्यादिषट्कस्यापगमेऽनिवृत्तिबादरस्य षोडश । एतच्च यावदद्या-ऽप्यऽसौ वेदत्रयं क्रोधमानमाया-रूपं संज्वलनत्रयं च न क्षपयति तावद् द्रष्टव्यम् । तत्क्षये तु यथासम्भवं वाच्यम् । षोडशानां च मध्यादनिवृत्तिबादर एव व्यवच्छिन्नयोर्वेदत्रिकसंज्वलनक्रोधादित्रिकयोरपसारणे सूक्ष्मसम्परायस्य दश । दशभ्यो लोभस्योपशान्तत्वेनोत्सारण उपशान्तमोहस्य नव । क्षीणत्वेन लोभस्यापनयने क्षीणमोहस्य नव । नवभ्यो मृषामिश्रात्मकयोर्मनोद्वय-वाग्द्वययोरपनयने कार्मणौदारिकमिश्रयोः प्रक्षेपे च सयोगिनः सप्त हेतवः कर्मबन्धस्येति गम्यम् । एषामपि सप्तानामभावान्न तु = नैवा-ऽयोगिनो बन्धहेतवः ।

कलिकालानुचितसमाचाराधारपरमाराध्यास्मद्गुरुश्रीशीलभद्रसूरिविरचिताः "पणपन्न" तिगाथाव्याख्यारूपास्त्विमा गाथाः ।

पणपन्नबन्धहेऊ मिच्छद्दिट्ठिस्स उदयओ होन्ति । आहारगदुगरहिया जेणं तं संजयस्स भवे ॥१॥
पन्नासा (सा)सायणि पंचगमिच्छत्तविरहिया होइ । मिस्से पुण तेयाला अणकम्मणमिस्सदुगरहिया ॥२॥
तुरियंमि उ छायाला कम्मणमिस्सदुगसंजुया जाण । एगूणचत्ता देसे बीयकसायाण भावाओ ॥३॥
अविरयउरलगमिस्सं कंमइगं जेण तस्स नो सन्ति । छव्वीसा य पमत्ते संजलणा नोकसाया य ॥४॥
कंमयउरालमिस्सं वज्जिता सव्वजोगसब्भावा । चउवीसं अपमत्ते वेउव्वाहारमिस्सविणा ॥५॥

बावीसाउ अपुव्वे वेउव्वाहारविरहिया होइ । अनियट्टीए सोलस हासच्छक्केण रहियाओ ॥६॥
सुहुमे दसगं जाणसु तिवेयतिकसायविरहियं काउ । उवसंते खीणे उण जोगा नव बन्धहेउम्मि ॥७॥
सज्जोगिकेवलम्मि सच्चमसच्चासुसा वइमणो य । उरलं कंमणमिस्सा जोगा सत्तेव बन्धस्स ॥८॥"

अधुना येषामेते बन्धहेतवस्तेषां कर्मणां बन्धोदयोदीरणासत्ता गुणस्थानेषु चिन्तयितुकामः संख्याविशेषितानि सहेतुकानि तावत्तान्याह—

तो नाणदंसणावरणवेयणीयाणि मोहणिज्जं च ।
आउयनामं गोयंतरायमिय अट्ठ कम्माणि ॥ ७८ ॥

(यशो०) "तो" इति तेभ्यो=मिथ्यात्वादिभ्यो हेतुभ्यः सकाशात् ज्ञानावरणादीनि अन्तरायान्तानि कर्म्माण्यष्टौ मूलभेदा-ऽपेक्षया भवन्तीति शेष इति समुदायार्थः । अवयार्थस्त्वयम्-ज्ञानं पूर्वोक्तस्वरूपं मत्यादि, दर्शनं च चक्षुर्दर्शनादि, तयोरावरणे=आवरणस्वभावे ज्ञानावरणं दर्शनावरणं चेत्यर्थः । आरोग्यविषयोपभोगादिजनितेनाल्हादात्मकत्वात्सुखरूपेणानारोग्यादिजनितेनानाल्हादात्मकदुःखरूपेण च विपाकेन वेद्यत इति वेदनीयम् । मुह्यन्ते=सत्कृत्येभ्यः पराङ्मुखा भवन्तीति मोहनीयम् । आयाति भवाद् भवान्तरे संक्रामतां जन्तूनां निश्चयेनोदयमित्यायुः । यद्वाऽनुमू [य](त)मेति, अनुभूतं च [जा](या)तीत्यायुः । यद्यपि च सर्वं कर्मैवंभूतमेव तथापि पङ्कजादिशब्दवद् रूढिविषयत्वादायुःशब्देन पञ्चममेव कर्म्माभिधीयते। व्युत्पत्तिद्वये-ऽप्या-ऽऽयुरितिशब्दसिद्धिर्नैरुक्ती । नमयति=परिणमयति संसारिणं गत्यादिभिः पर्यायैरिति नाम । यद्वा सुरोऽयं नरोऽयमित्यादिकं नाम यद्वशाज्जन्तुराशादयति तत्कर्म्माप्युपचारान्नाम । गूयते=संशब्द्यते प्रधाना-ऽप्रधानरूपतया तेनोच्चैर्नीचैः कुलोत्पत्त्यादिलक्षणेन पर्यायेणेति गोत्रं, तादृशविपाकवेद्यं कर्मापि गोत्रम् । आत्मानं चार्थसाधनं चान्तरायते=पततीत्यन्तरायं लिङ्गानुशासनेऽन्तरायशब्दस्य पुंस्त्वे-ऽप्यागमेषु नपुंसकत्वं दृश्यते । जीवस्य दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्विघ्नीभूयान्तरापततीत्यर्थः । भेदास्त्वेषां ज्ञानावरणादीनां प्रस्तुतानुपयोगित्वान्न प्रपञ्चिताः । इह च ज्ञानदर्शनस्वभावत्वेन आत्मनो ज्ञानदर्शन एवान्तरङ्गे इत्यादौ तदावरणोपादानम्, तुल्येपि च तयोरन्तरङ्गत्वे ज्ञानमेव विशेषांशग्राहित्वेन विशिष्टार्थक्षममिति ज्ञानावरणमादावुपादायि। ततो दर्शनावरणम् । एतयोश्च व्यवस्थितिकत्वेनैतदनंतरं वेदनीयम्। इष्टानिष्टविषया-ऽर्पितसुखदुःखरूपे च वेदनीये सति जीवः सत्कृत्येषु मुह्यतीत्यतोऽनन्तरं मोहरूपं मोहनीयम् । तदप्यायुषि सति भवतीत्यतः पृष्ठत आयुः । नराद्यायुःसहितश्च जन्तुर्नरकगत्यादिपर्यायानासादयतीत्यतः प्राग्नरकगत्यादिपर्यायपरिणमनरूपं नाम । नाम्ना च लब्धनरकगत्यादिपर्याय [1]उच्चैर्गोत्रवतोऽपि जन्तोर्दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्यद्विघ्नः सम्पद्यते तदन्तरायकर्ममाहात्म्यमिति ज्ञापनाय गोत्रानन्तरमन्तरायमुक्तम् ॥७८॥

१ "उच्चावचैर्गूयते इति ततो गोत्रम् ।" इत्यादिभावात्मकः पाठोऽत्र लुप्तः सम्भाव्यते ।

अथैतेषां बन्धादिस्थानसंख्यामाह—

सत्तट्ठछेगबन्धा सन्तुदया अट्ठ सत्त चत्तारि।
सत्तट्ठछपंचदुगं तुदीरणाठाणसंखेयं ॥७९॥

(यशो०) सप्ताष्टषडेकसंख्याश्चत्वारो बन्धा=बन्धस्थानानि। अष्टसप्तचतुःसंख्या-ऽङ्किताः प्रत्येकं सत्तोदयाः=सत्तास्थानान्युदयस्थानानि चेत्यर्थः। सप्ताष्टषट्पञ्चद्विकरूपा पुनरुदीरणास्थानानामियं संख्या। इह च बन्धादीनां प्रत्येकमेकप्रकारत्वेऽपि सप्ताष्टादिकर्मा-पेक्षया सप्ताष्टादिसंख्यात्वम्। तदयमर्थोऽष्टानामायुर्वर्जानां तु सप्तानां मोहनीयायुःशेषाणां षण्णां वेदनीयस्यैकस्य कर्मणो बन्धः। तथाष्टानां मोहरहितानां तु सप्तानां वेदनीया-ऽऽयुर्नाम-गोत्राणां चतुर्णां प्रत्येकं सत्तोदये। तथाष्टानामायुर्वर्जितानां तु सप्तानां वेदनीयायुःशेषाणां षण्णां वेदनीयायुर्मोहरहितानां पञ्चानां द्वयोर्वा नामगोत्रयोरुदीरणेति ॥७९॥

अथैतेषां बन्धस्थानानि गुणस्थानेषु योजयति—

अपमत्तंता सत्तट्ठ मीसअप्पुव्वबायरा सत्त।
बन्धंति छ सुहुमा एगमुवरिमाऽबन्धगोऽजोगी ॥८०॥

(यशो०) अप्रमत्तान्ता मिश्ररहिता मिथ्यादृष्ट्यादयः षट्, सप्तायुर्वर्जानि, आयुःसहितानि त्वष्टौ कर्माणि बध्नन्ति। आयुर्हि एकभवमध्य एकदैव बध्यत इति न सदा तद्बन्धः। मिश्रा-ऽपूर्वकरणा-ऽनिवृत्तिबादरास्त्रयोऽपि सप्तैव बध्नन्ति। तथाहि—मिश्रदृष्टित्वे वर्त्तमानो न म्रियते, नाऽप्या-ऽऽयुर्बध्नाति, तत्स्वभावत्वात्। अपूर्वकरणानिवृत्तिबादरौ त्वतिविशुद्धत्वान्नायुर्बध्नीतः। सूक्ष्मसम्परायाः मोहनीयायुःशेषाणि षड् बध्नन्ति। मोहनीयबन्धो हि बादरसम्परायहेतुकः। सूक्ष्मसम्परायाणां तु बादरसम्परायो नास्तीति मोहनीयबन्धाभावः। आयुर्बन्धाभावस्तु घोलनापरिणामाभावात्; आयुर्हि घोलनापरिणामनिर्वर्त्त्यम्। उपरितना = उपशान्तमोहक्षीण-मोह-सयोगिकेवलिनो योगव्यापारादेकमेव सातात्मकं वेदनीयं बध्नन्ति, न शेषाणि; तद्बन्ध-हेत्वभावात्। अयोगिकेवली पुनरबन्धकः, योगव्यापारस्या-ऽप्यभावात् ॥८०॥

अथ गुणस्थानेष्वेव उदयस्थानानि लाघवार्थं तत्समानसंख्याकानि सत्तास्थाननि च युगपद्योजयति—

जा सुहुमो ता अट्ठ वि उदये संते य [1]हुन्ति पयडीओ।
सत्तऽट्ठ व संते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसुं ॥८१॥

---

१ "होंति" इत्यपि पाठः।

बावीसाउ अपुव्वे वेउव्वाहारविरहिया होइ । अनियट्टीए सोलस हासच्छक्केण रहियाओ ॥६॥
सुहुमे दसगं जाणसु तिवेयतिकसायविरहियं काउ । उवसंते खीणे उण जोगा नव बन्धहेउम्मि ॥७॥
सज्जोगिकेवलम्मि सच्चममच्चामुसा वइमणो य । उरलं कंमणमिस्सा जोगा सत्तेव बन्धस्स ॥८॥"

अधुना येषामेते बन्धहेतवस्तेषां कर्मणां बन्धोदयोदीरणासत्ता गुणस्थानेषु चिन्तयितुकामः संख्याविशेषितानि सहेतुकानि तावत्तान्याह—

तो नाणदंसणावरणवेयणीयाणि मोहणिज्जं च ।
आउयनामं गोयंतरायमिय अट्ठ कम्माणि ॥ ७८ ॥

(यशो०) "तो" इति तेभ्यो=मिथ्यात्वादिभ्यो हेतुभ्यः सकाशात् ज्ञानावरणादीनि अन्तरायान्तानि कर्माण्यष्टौ मूलभेदा-ऽपेक्षया भवन्तीति शेष इति समुदायार्थः । अवयवार्थस्त्वयम्—ज्ञानं पूर्वोक्तस्वरूपं मत्यादि, दर्शनं च चक्षुर्दर्शनादि, तयोरावरणे=आवरणस्वभावे ज्ञानावरणं दर्शनावरणं चेत्यर्थः । आरोग्यविषयोपभोगादिजनितेनाल्हादात्मकत्वात्सुखरूपेणानारोग्यादिजनितेनानाल्हादात्मकदुःखरूपेण च विपाकेन वेद्यत इति वेदनीयम् । मुह्यन्ति=सत्कृत्येभ्यः पराङ्मुखा भवन्तीति मोहनीयम् । आयाति भवाद् भवान्तरे संक्रामतां जन्तूनां निश्चयेनोदयमित्यायुः । यद्वाऽनुभू [य](त)मेति, अनुभूतं च [जा](या)तीत्यायुः । यद्यपि च सर्वं कर्मैवंभूतमेव तथापि पङ्कजादिशब्दवद् रूढिविषयत्वादायुःशब्देन पञ्चममेव कर्माभिधीयते । व्युत्पत्तिद्वये-ऽप्या-ऽऽयुरितिशब्दसिद्धिर्नैरुक्ती । नमयति=परिणमयति संसारिणं गत्यादिभिः पर्यायैरिति नाम । यद्वा सुरोऽयं नरोऽयमित्यादिकं नाम यद्वशाज्जन्तुराशादयति तत्कर्माप्युपचारान्नाम । गूयते=संशब्द्यते प्रधाना-ऽप्रधानरूपतया तेनोच्चैर्नीचैः कुलोत्पत्त्यादिलक्षणेन पर्यायेणेति गोत्रं, तादृशविपाकवेद्यं कर्मापि गोत्रम् । आत्मानं चार्थसाधनं चान्तरायते=पततीत्यन्तरायं लिङ्गानुशासनेऽन्तरायशब्दस्य पुंस्त्वे-ऽप्यागमेषु नपुंसकत्वं दृश्यते । जीवस्य दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्विघ्नीभूयान्तरापततीत्यर्थः । भेदास्त्वेषां ज्ञानावरणादीनां प्रस्तुतानुपयोगित्वान्न प्रपञ्चिताः । इह च ज्ञानदर्शनस्वभावत्वेन आत्मनो ज्ञानदर्शन एवान्तरङ्गे इत्यादौ तदावरणोपादानम्, तुल्येपि च तयोरन्तरङ्गत्वे ज्ञानमेव विशेषांशग्राहित्वेन विशिष्टार्थक्षममिति ज्ञानावरणमादावुपादायि । ततो दर्शनावरणम् । एतयोश्च व्यवस्थितिकत्वेनैतदनंतरं वेदनीयम् । इष्टानिष्टविषया-ऽर्पितसुखदुःखरूपे च वेदनीये सति जीवः सत्कृत्येषु मुह्यतीत्यतोऽनन्तरं मोहरूपं मोहनीयम् । तदप्यायुषि सति भवतीत्यतः पृष्ठत आयुः । नराद्यायुःसहितश्च जन्तुर्नरकगत्यादिपर्यायानासादयतीत्यतः प्राग्नरकगत्यादिपर्यायपरिणमनरूपं नाम । नाम्ना च लब्धनरकगत्यादिपर्याय [1]उच्चैर्गोत्रवतोऽपि जन्तोर्दानादिकमर्थं सिसाधयिषोर्यद्विघ्नः सम्पद्यते तदन्तरायकर्ममाहात्म्यमिति ज्ञापनाय गोत्रानन्तरमन्तरायमुक्तम् ॥७८॥

---

१ "उच्चावचभेदैर्गूयते इति तच्चो गोत्रम् ।" इत्यादिभावात्मकः पाठोऽत्र लुप्तः सम्भाव्यते ।

दर्शनावरणान्तरायकर्माण्यनुदीरयन्नेव क्षपयत्यावलिकागतानामुदीरणाया असम्भवादिति । द्वे नाम गोत्राख्ये उदीरयति । योगी=सयोगिकेवली पुनर्द्वे एव नामगोत्रे उदीरयति । सयोगिकेवलिनो ज्ञानदर्शनावरणान्तरायमोहनीयानां क्षीणमोहत्वेन नोदीरणा, वेदनीयायुषोः पुनरुदीरणा प्रागेवोपरता । अयोगी=अयोगिकेवली नोदीरयति, योगाभावात् । उदीरणा हि योगसव्यपेक्षा, यत एवं कस्यापि कर्म्मणो नोदीरकस्तत एव प्रत्यासन्नसनातनानन्दपरपरमपदसमृद्धिकत्वेन भगवानिति विशेषितः ।८२-८३॥

अथ गुणस्थानेष्वेवाल्पबहुत्वमाह—

उवसन्तजिणा थोवा संखेज्जगुणा उ खीणमोहजिणा ।
सुहुमनियट्टनियट्टी तिन्नि वि तुल्ला विसेसहिया ॥८४॥
जोगिअपमत्तइयरे संखगुणा देससासणा मिस्सा ।
अविरयअजोगिमिच्छा असंखचउरो दुवेऽनन्ता ॥८५॥

(यशो०) उपशान्तजिना = उपशान्तमोहाः क्षीणमोहापेक्षया स्तोकाः । तथा ह्यन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणोपशमश्रेणिस्तस्यां च कदाचित्को-ऽपि न प्रविशति, तदन्तरकालस्योत्कर्षतो वर्षपृथक्त्वमानस्योक्तत्वात् , यदा तु प्रविशति तदैको द्वौ वा यावदुत्कर्षत एकसमये चतुःपञ्चाशत् । यथैकस्मिन्समयेषु युगपदुत्कृष्टतश्चतुःपञ्चाशत् प्रविशति, तथा परा-ऽपरेष्वपि समयेष्विति नानासमयप्रविष्टा अपि पञ्चदशस्वपि कर्मभूमिषु उत्कृष्टतः संख्याता एव भवन्ति । अथ कथमेवं यावतैकस्मिन्नप्यन्तर्मुहूर्ते समया असंख्याताः, तत्र यदि प्रतिसमयमेकैकोपि प्रविशति, तथाऽप्यन्तर्मुहूर्त्तकालेऽसंख्याताः, किमुत चतुःपञ्चाशत्प्रवेशे । सत्यम् , किन्तु न प्रतिसमयमुपशमश्रेण्यां प्रविशन्ति, केषुचिदेव समयेषु तत्प्रवेशस्य समयेऽभ्यनुज्ञानात् । किञ्च गर्भजमनुष्या अपि संख्याताः सम्भवन्ति, किं पुनश्चारित्रिणः । क्षीणमोहजिनाः पुनः संख्यातगुणाः, पूर्वेभ्य इति गम्यम् , एवमुत्तरत्रापि । तत्र क्षपकश्रेणिरप्यन्तर्मुहूर्त्तमाना, तस्यां च को-ऽपि कदाचिन्नाधिरोहतिः । तदन्तरालस्योत्कृष्टतः षण्मासमानत्वात् । यदा त्वधिरोहति तदैको द्वौ वा यावदुत्कृष्टत एकसमयेऽष्टोत्तरं शतम् । एवं च यथैकस्मिन्समयेऽष्टोत्तरं शतं तामधिरोहति, तथा-ऽपरेष्वपीति नानासमये-ऽधिरूढा उत्कृष्टतः शतपृथक्त्वमानाः क्षीणमोहाः प्राप्यन्ते । क्षपकश्रेणिमपि न प्रतिसमयं अधिरोहन्ति, किन्तु केषुचिदेव समयेष्विति पूर्ववत् ना-ऽसंख्यात्वमाशङ्कनीयम् । यदत्रोपशान्तमोहेभ्यः क्षीणमोहानां संख्यातगुणत्वमुक्तम् , तद्यदैते द्वयेऽप्युत्कृष्टपदे लभ्यन्ते तदा द्रष्टव्यम् । अन्यथा कदाचित्क्षीणमोहाः स्तोका । उपशान्तमोहास्तु बहव इत्यपि भवति । सूक्ष्मसंपरायनिवृत्तिअनिवृत्तिबादरास्त्रयो-ऽपि प्रत्येकं पूर्वेभ्यो विशेषाधिकाः, स्वस्थाने तु तुल्याः । एते हि त्रयो-ऽपि

(यशो०) मिथ्यादृष्टेरारभ्य यावत्सूक्ष्मसम्परायास्तावदष्टावपि प्रकृतयः कर्म्मण्युदये सत्तायां च भवन्ति । "सत्तट्ठे"ति यथासंख्यमुदयसत्ताभ्यां योज्यते । तत उपशान्तगुणस्थाने सप्तकर्म्माण्युदये । उपशान्तमोहस्य हि मोहोदयो नास्त्युपशान्तमोहत्वादेव । शेषाणां तु सप्तानामप्युदयः । सत्तायां त्वष्टौ, उपशान्तस्य हि मोह उपशान्तो न क्षीण इति मोहनीयस्यापि सत्ता । क्षीणमोहे मोहनीयन्यूनाः सप्तोदये सत्तायां च । अस्य हि मोहनीयस्योदयवत्सत्तापि नास्ति, तस्य सर्वथा क्षीणत्वात् । चत्वार्यघातिकर्म्माणि वेदनीयायुर्नामगोत्राख्यानि शेषयोः = सयोग्ययोगिनोरुदये सत्तायां च शेषाणां तु क्षय एव केवली भवतीति शेषाभावः ॥८१॥

अथ तेष्वेवोदीरणास्थानानि योजयति—

सत्तऽट्ठ पमत्तंता कम्मे उइरिन्ति अट्ठ मीसो उ ।
वेयणियाउ विणा छ उ अपमत्तअपुव्वअणियट्टी ॥८२॥
सुहुमो छ पंच उइरेइ पंच उवसंतु पंच दो खीणो ।
जोगी उ नामगोए अजोगिअणुदीरणो भयवं ॥८३॥

(यशो०) मिथ्यादृष्ट्यादयः प्रमत्तान्ताः सामर्थ्यान्मिश्रदृष्टिवर्जा अष्टौ सप्त वा कर्माण्युदीरयन्ति । तत्र यावदद्या-ऽप्येषामावलिकाशेषमात्मीयमायुर्न भवति तावदेते सर्वे-ऽपि सततमष्टौ कर्माण्युदीरयन्ति, सर्वेषामपि तदा तदुदीरणायोग्या-ऽध्यवसायस्य भावात् । आवलिकाशेषे त्वायुषि सप्तैवा-ऽऽयुर्वर्जितानि । आवलिकाशेषं ह्यायुरनुदीर्यमाणमेव वेद्यते, तत्स्वभावात् । एवमुत्तरत्रा-ऽपि विमर्शनीयम् । मिश्रदृष्टिरष्टावेव, तुशब्दस्यैवार्थस्य व्यवहितस्य योजितत्वात् , मिश्रदृष्ट्यायुषि आवलिकाशेषताया अभावात् । स ह्यन्तर्मुहूर्ता-ऽवशेष एवायुषि मिश्रदृष्टित्वमपहाय सम्यग्दर्शनं मिथ्यात्वं वा नियमेना-ऽऽसादयति । अप्रमत्ता-ऽपूर्वकरणा-ऽनिवृत्तिबादरा विभक्तिलोपाद्वेदनीयायुर्भ्यां विना तच्छेषाणि षडुदीरयन्ति । तेषामपि विशुद्धत्वेन वेदनीयायुषोरुदीरणाप्रायोग्या-ऽध्यवसायाभावान्नोदीरणा । सूक्ष्मसम्परायाः प्रागुक्तानि षडुदीरयन्ति । तावद्यावन्मोहनीयमावलिकाशेषं न भवति । आवलिकाशेषे तु तस्मिन्पञ्चैवोदीरयति । तस्य तदा वेदनीयायुर्वन्मोहनीयस्या-ऽप्युदीरणा नास्तीत्यर्थः । उपशान्तमोहः पूर्ववत्पञ्चैवोदीरयति, तस्य हि मोहनीयोपशान्तत्वेनोदयाभावान्नोदीरणा । **यदुक्तम्**– "वेद्यमानमेवोदीर्यते" इति । वेदनीया-ऽऽयुषोः पुनरनुदीरणाकारणं प्राग्वत् । क्षीणमोहः पञ्च द्वे वा कर्मणी उदीरयति । तत्र यावत् ज्ञानावरणदर्शनावरणा-ऽन्तरायकर्म्माण्यावलिकाशेषाणि न भवन्ति तावत्पूर्वोक्तानि पञ्च । तस्य हि क्षीणमोहनीयोदयाभावान्नोदीरणा, शेषं प्रागिव । यदा तु ज्ञानदर्शनावरणान्तराय-कर्म्माणि केवलोत्पत्तिप्रत्यासत्त्या ऽऽवलिकाशेषाणि स्युस्तदा द्वे एवोदीरयन्ति । तदा हि ज्ञान-

दर्शनावरणान्तरायकर्माण्यनुदीरयन्नेव क्षपयत्यावलिकागतानामुदीरणाया असम्भवादिति । द्वे नाम गोत्राख्ये उदीरयति । योगी=सयोगिकेवली पुनर्द्वे एव नामगोत्रे उदीरयति । सयोगिकेवलिनो ज्ञानदर्शनावरणान्तरायमोहनीयानां क्षीणमोहत्वेन नोदीरणा, वेदनीयायुषोः पुनरुदीरणा प्रागेवोपरता । अयोगी=अयोगिकेवली नोदीरयति, योगाभावात् । उदीरणा हि योगसव्यपेक्षा, यत एवं कस्यापि कर्म्मणो नोदीरकस्तत एव प्रत्यासन्नसनातनानन्दपरपरमपदसमृद्धिकत्वेन भगवानिति विशेषितः ।८२-८३॥

अथ गुणस्थानेष्वेवाल्पबहुत्वमाह—

उवसन्तजिणा थोवा संखेज्जगुणा उ खीणमोहजिणा ।
सुहुमनियट्टनियट्टी तिन्नि वि तुल्ला विसेसहिया ॥८४॥
जोगिअपमत्तइयरे संखगुणा देससासणा मिस्सा ।
अविरयअजोगिमिच्छा असंखचउरो दुवेऽनन्ता ॥८५॥

(यशो०) उपशान्तजिना = उपशान्तमोहाः क्षीणमोहापेक्षया स्तोकाः । तथा ह्यन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणोपशमश्रेणिस्तस्यां च कदाचित्को-ऽपि न प्रविशति, तदन्तरकालस्योत्कर्षतो वर्षपृथक्त्वमानस्योक्तत्वात् , यदा तु प्रविशति तदैको द्वौ वा यावदुत्कर्षत एकसमये चतुःपञ्चाशत् । यथैकस्मिन्समयेषु युगपदुत्कृष्टतश्चतुःपञ्चाशत् प्रविशति, तथा परा-ऽपरेष्वपि समयेष्विति नानासमयप्रविष्टा अपि पञ्चदशस्वपि कर्मभूमिषु उत्कृष्टतः संख्याता एव भवन्ति । अथ कथमेवं यावतैकस्मिन्नप्यन्तर्मुहूर्ते समया असंख्याताः, तत्र यदि प्रतिसमयमेकैकोपि प्रविशति, तथाऽप्यन्तर्मुहूर्त्तकालेऽसंख्याताः, किमुत चतुःपञ्चाशत्प्रवेशे । सत्यम् , किन्तु न प्रतिसमयमुपशमश्रेण्यां प्रविशन्ति, केषुचिदेव समयेषु तत्प्रवेशस्य समयेऽभ्यनुज्ञानात् । किञ्च गर्भजमनुष्या अपि संख्याताः सम्भवन्ति, किं पुनश्चारित्रिणः । क्षीणमोहजिनाः पुनः संख्यातगुणाः, पूर्वेभ्य इति गम्यम् , एवमुत्तरत्रापि । तत्र क्षपकश्रेणिरप्यन्तर्मुहूर्त्तमाना, तस्यां च को-ऽपि कदाचिन्नाधिरोहतिः । तदन्तरालस्योत्कृष्टतः षण्मासमानत्वात् । यदा त्वधिरोहति तदैको द्वौ वा यावदुत्कृष्टत एकसमयेऽष्टोत्तरं शतम् । एवं च यथैकस्मिन्समयेऽष्टोत्तरं शतं तामधिरोहति, तथा-ऽपरेष्वपीति नानासमये-ऽधिरूढा उत्कृष्टतः शतपृथक्त्वमानाः क्षीणमोहाः प्राप्यन्ते । क्षपकश्रेणिमपि न प्रतिसमयं अधिरोहन्ति, किन्तु केषुचिदेव समयेष्विति पूर्ववत् ना-ऽसंख्यात्वमाशङ्कनीयम् । यदत्रोपशान्तमोहेभ्यः क्षीणमोहानां संख्यातगुणत्वमुक्तम् , तद्यदैते द्वयेऽप्युत्कृष्टपदे लभ्यन्ते तदा द्रष्टव्यम् । अन्यथा कदाचित्क्षीणमोहाः स्तोका । उपशान्तमोहास्तु बहव इत्यपि भवति । सूक्ष्मसंपरायनिवृत्तिअनिवृत्तिबादरास्त्रयो-ऽपि प्रत्येकं पूर्वेभ्यो विशेषाधिकाः, स्वस्थाने तु तुल्याः । एते हि त्रयो-ऽपि

क्षपकोपशमकभेदाभ्यां द्वैधं भवति तत्र ये क्षपकास्ते क्षीणमोहवत् पूर्वोक्तरीत्या शतपृथक्त्वमानाः । ये चोपशमकास्ते प्रागुक्तन्यायेनोपशान्तवत्संख्याताः । तथा योगिनः=सयोगिकेवलिनोऽप्रमत्ता इतरे च=प्रमत्ताः सूक्ष्मसम्परायादिभ्यः संख्यातगुणाः । अत्र सयोगिभ्यः परेणाऽप्रमत्तानामप्रमत्तेभ्यश्च प्रमत्तानामुपादानात्सयोगिभ्योऽप्रमत्तास्तेभ्यश्च प्रमत्ताः संख्यातगुणा इत्यनुक्तमपि दृश्यम् । अयं च न्याय उत्तरत्रापि वाच्यः । तत्र सयोगित्वं प्रतिपद्यमाना जघन्यत एकादया उत्कृष्टतोऽष्टोत्तरं शतम् । पूर्वप्रतिपन्ना जघन्यत उत्कृष्टतश्च कोटिपृथक्त्वमानाः । अप्रमत्तप्रमत्तास्तु प्रत्येकं सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहार-विशुद्धिकसंयमवत्त्वेन त्रिधा । तत्र सामायिकं प्रतिपद्यमाना जघन्यत एकादय उत्कृष्टतः सहस्र-पृथक्त्वमानाः । पूर्वप्रतिपन्ना जघन्यत उत्कृष्टतश्च कोटिसहस्रपृथक्त्वमानाः । तच्चात्र द्वित्रादिकोटीरूपमेवाऽवगम्यते, न तु नवकोटीरूपम् , सर्वसंयतानामेव कोटीसहस्रपृथक्त्वस्य श्रूय-माणत्वात् । च्छेदोपस्थापनीयवन्तश्च यदा भवन्ति तदा तत्प्रतिपद्यमाना जघन्यत एकादय उत्कृष्टतः शतपृथक्त्वमानाः । पूर्वप्रतिपन्ना उत्कृष्टतः कोटीशतपृथक्त्वमानाः । जघन्यतो प्येतावन्त एव भगवत्यामभिहिताः । एतच्च सम्यग्नावगम्यते । यतो दुषमान्ते भरतादिषु दशसु क्षेत्रेषु प्रत्येकं च्छेदोपस्थापनीयवत्प्रमत्ता-ऽप्रमत्तद्वयस्य भावाद् विंशतिरेव श्रूयत इत्येके । प्रथमतीर्थकरतीर्थकालापेक्षमिदमित्यपरे । पारिहारिकविशुद्धिकवन्तो यदा स्युस्तदा तत्प्रतिप-द्यमाना जघन्यत एकादय उत्कृष्टतः शतपृथक्त्वमानाः । पूर्वप्रतिपन्ना जघन्यत एकादय उत्कृष्टतः सहस्रपृथक्त्वमाना इति । यद्यप्येषामपि समानतैव तथाप्यप्रमत्तकालादन्तर्मुहूर्तमात्रत्व साधर्म्येऽपि प्रमत्तकालस्य बहुत्वादप्रमत्तेभ्यः प्रमत्ताः संख्यातगुणा उक्ताः । अप्रमत्तान्तर्मुहूर्ता-ऽपेक्षया हि प्रमत्तान्तर्मुहूर्तानि महान्तीति । तथा प्रमत्तेभ्यो देशविरतास्तेभ्यः सास्वादन-सम्यग्दृशस्तेभ्यो मिश्रदृशस्तेभ्योऽप्यविरतसम्यग्दृश इति चत्वारोऽसंख्याताः । अविरतेभ्योऽयो-गिकेवलिनस्तेभ्यश्च मिथ्यादृश इति द्वयेऽनन्ताः । ततः प्रमत्तेभ्यो देशविरता असंख्याताः, तिर्य-क्प्रक्षेपात् । देशविरता हि नरास्तिर्यञ्चश्च । तत्र तिर्यञ्चोऽसंख्याताः । सास्वादनास्तु कदाचिन्न भवन्ति, यदा तु भवन्ति, तदोत्कृष्टतो गतिचतुष्कसंभवित्वेन देशविरतेभ्योऽसंख्याताः । मिश्रा अपि कदाचिन्न भवन्ति, यदा तु भवन्ति, तदोत्कर्षतः सास्वादनेभ्योऽसंख्याताः स्युः । सास्वादनाद्धाया उत्कृष्टतो-ऽपि षडावलिकामानत्वेनाल्पकालिकत्वान्मिश्राद्धायास्तु जघन्तोऽ-प्यन्तर्मुहूर्तमानत्वेन बहुकालभावित्वात् । अविरतसम्यग्दृशस्तु सर्वदैव सर्वास्वपि गतिषु प्राप्यन्त इति मिश्रदृष्टिभ्योऽऽसंख्याताः । अयोगिनस्तु भवस्थाः सिद्धाश्च तत्र सिद्धानामानन्त्यादविरते-भ्यो-ऽनन्तगुणाः । मिथ्यादृष्टयपेक्षयाऽनन्ता अपि सिद्धा अनन्तभाग एव वर्त्तन्त इत्य-ऽयोगिभ्यो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । आनन्त्यं चामीयामनन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु

यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणं मन्तव्यम् । इत्युक्तं गुणस्थानेषु जीवस्थानाद्यभिधेयपददशकम् । एवं च यथाप्रतिज्ञातं मूला-ऽदर्शितमप्यभिधेयजातमभिहितम् ॥८४-८५॥

संप्रति श्रोतॄणामाशीर्वचनव्याजेन प्रकरणार्थसम्पूर्णतामाविष्कर्तु माह—

जिणवल्लहोवणीयं जिणवयणामयसमुद्दविंदुमिमं ।
हियकंखिणो बुहजणा निसुणंतु गुणंतु जाणंतु ॥८६॥

(यशो०) जिन एव = रागादिजेतैवोपचाराज्जिनाज्ञैव वा जिनः स वल्लभो यस्येति सान्त्वयजिनवल्लभाभिधानः प्रकरणकारस्तेनोपनीत = मितस्ततो चिकीर्णानामर्थानामेकत्र मीलनेन सामीप्येन प्रापितं जिनवचनमेव जरामरणादिक्लेशपरम्परापहारकारितया परैरलब्धमध्यतयाऽमृतसमुद्रस्य बिन्दुरतिस्तोकत्वसाधर्म्येण इममिति यदा प्रकरणवशाल्लब्धस्य प्रकरणस्येदमिति (इ)दमा परामर्शस्तदा प्रकरणस्य जिनवचनामृतसमुद्रबिन्दुत्वेन निरूपणम् । यदा त्वतिशयोक्तिभङ्ग्या-ऽस्य प्रकरणस्य जिनवचनामृतसमुद्रबिन्दुत्वेनाऽत्यन्ता-ऽभेदाध्यवसायस्तदेममिति जिनवचनामृतसमुद्रविन्दोर्विशेषणम् । अनेन चागममूलता-ऽऽविर्भावनपरेणास्य प्रकरणस्य विशेषणोपादेयता प्रतिपादिता । हितकाङ्क्षिण इति मोक्षाभिलाषिणो मोक्ष एव हि प्राणिनां परमार्थतो हितम् । हितकाङ्क्षिणश्च तत्त्वज्ञानशून्या अपि स्वबुद्ध्या भवन्तीत्याह–बुधजनाः=तत्त्वविदः नितरामुपविश्यावधानपरतया श्रृण्वन्तु । परावर्त्तनं च पठनपूर्वकमिति पठन्त्विति सामर्थ्याद् गम्यते । तथा ज्ञानं तु संशयविपर्ययपराकरणद्वारेण निश्चिन्वन्तु । इह च प्रकरणमिदमीदृशमिति प्रवादाधिकसत्कौतुकास्तत्प्रथमं श्रृण्वन्ति । श्रवणे चा-ऽवधारितप्रकरणस्य परमोपादेयत्वात्पठित्वा परावर्त्तयन्ति । परावर्त्तेन प्रसादेन च सम्यग् जानन्तीति श्रवणादीनामेवं क्रमः ॥८६॥

॥ इत्यागमिकवस्तुविचारसारप्रकरणं विवरणम् ॥

॥ अथ प्रशस्तिः ॥

×शब्दैककारणतया-ऽद्भुतवैभवेन, सद्भावभूषिततया ध्रुवतानुवृत्त्या ।
पुष्णात्यखंडमिह यद्गमनेन संख्यं, चान्द्रं कुलं तदवनाववितीतमस्ति ॥१॥
×तत्रोदितः प्रतिदिनं स्मरमत्सरादि- दैतेय निर्दयविमर्दनकेलिलोलः ।
विश्वे ऽप्यधृष्यमहिमा सवितेव सूरिः, श्रीशीलभद्र इति विश्रुतनामधेयः ॥२॥
△बहुपरिभवातिदीना येन स्वात्मनि गुणाः सबहुमानं ।
न्यस्ताः सम्प्रतिकृतयुगमुनिविषयविवाददलनाय ॥३॥

× वसंततिलका । △ आर्या ।

×तस्याभवद्भुवनवल्लभभाग्यसम्प-त्सूरिर्द्धनेश्वर इति प्रथितः [1]स शिष्यः ।
अद्याऽप्यमन्दमतयो ननु यत्प्रतिष्ठा-मादित्सवः किमपि चेतसि चिन्तयन्ति ॥४॥
△सूक्ष्मार्थसार्द्धशतकप्रकरणविवरणमिषेण सम्यग्दर्शा ।
मलयजमिव लोकानां हृदयानि सुखानि भूषयति ॥५॥
△येन विविधशास्त्रादिप्रपञ्चपीयूषमर्पितं निपुणाः ।
के के पायं पायं न भवन्ति रुजार्त्तिनिर्मुक्ताः ॥६॥
△बाल्यादपि बलमांसल-भवरिपुपृतनापराभवारम्भः ।
अजनि नयविनयसदनं तयोर्विनेयेषु यस्तिलकः ॥७॥
×बोधावधारणविरोधनिरोधधर्मो पायप्रदर्शनपरोपकृतादिशक्त्या ।
यो रोचकं व्यरचयच्चतुराशयेषु, प्रायेण विश्रुतगुणेष्वपि सज्जनानां ॥८॥
+नृपतिरजयदेवो देवविद्वन्मनीष-मददलनविनोदैः कोविदैस्तुल्यकालं ।
स्थितिमुपधिविरुद्धां मागधीयामधत्ता-ऽस्खलितमखिलविद्या-ऽऽचार्यकं यस्य दृष्ट्वा ॥९॥

▽अर्णोराजनृपे सभां परिवृढे, श्रीदेवबोधादिषु,
प्राप्तानेकजयेषु साक्षिषु सदिग्-वासःशिरःशेखरः ।
सद्विद्योऽपि गुणेन्दुरन्तरुदित-क्षोभोद्भवद्वेपथु-
र्हेतुं यस्य निशम्य मन्तुविमुखं, तत्पाज्ञवादव्रतम् ॥१०॥
▽यस्य श्रीखण्डपाण्डु-र्भ्रमति दशदिशः, कीर्त्तिरुत्साहिते वा
घाटं द्रष्टुं त्रिलोक्याः, सुरभितभुवनै-स्तैः पवित्रैश्चरित्रैः ।
तस्य श्रीधर्म्मसूरे-र्निरवधिधिषणा-शालिनः शिष्यलेशः,
स्मृत्यै स्वस्येदमल्पं, विवरणमकृत, श्रीयशोभद्रसूरिः ॥११॥
❀मृदुमतिपरिस्पन्दाद्यद्वावधानवियोगतो, यदिह वितथं किंचित्का-ऽपि स्वदर्शनबाधया ।
तदखिलमपि क्षुद्राचारा नुवृत्तिपराङ्मुखैः, विदितविशदाम्नायैः सम्यग्विशोध्यमशङ्कितैः ॥१२॥

॥ इति श्रीमद्यशोभद्रसूरिप्रणीतषडशीतिप्रकरणटीका समाप्ता ॥

× वसंततिलका । △ आर्या । + मालिनी । ▽ शार्दूलविक्रीडितम् । ❀ हरिणी "वृषभचरितं" इति वा "वृषभललित" इति वाऽपरनाम छन्दः । [1] "सुशिष्यः" इति वा । हस्तलिखितप्रत्यादिषु पुनः "सशुष्यतः" इति पाठ उपलब्धोऽस्ति । किन्तु सोऽशुद्धः प्रतिभाति ।

॥ इति श्रीयशोभद्रसूरिकृतवृत्त्युपेतः षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ॥

इति

श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीते

श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे

तृतीया श्रीयशोभद्रसूरिकृता टीका समाप्ता

×तस्याभवद्भुवनवल्लभभाग्यसम्प–त्सूरिर्द्धनेश्वर इति प्रथितः [1]स शिष्यः ।
अद्याऽप्यमन्दमतयो ननु यत्प्रतिष्ठा-मादित्सवः किमपि चेतसि चिन्तयन्ति ॥४॥
△सूक्ष्मार्थसार्द्धशतकप्रकरणविवरणमिषेण सम्यग्दर्शी ।
मलयजमिव लोकानां हृदयानि सुखानि भूषयति ॥५॥
△येन विविधशास्त्रादिप्रपञ्चपीयूषमर्पितं निपुणाः ।
के के पायं पायं न भवन्ति रुजार्त्तिनिर्मुक्ताः ॥६॥
△बाल्यादपि बलमांसल–भवरिपुपृतनापराभवारम्भः ।
अजनि नयविनयसदनं तयोर्विनेयेषु यस्तिलकः ॥७॥
×बोधावधारणविरोधनिरोधधर्मो पायप्रदर्शनपरोपकृतादिशक्त्या ।
यो रोचकं व्यरचयच्चतुराशयेषु, प्रायेण विश्रुतगुणेष्वपि सज्जनानां ॥८॥
+नृपतिरजयदेवो देवविद्वन्मनीष-मददलनविनोदैः कोविदैस्तुल्यकालं ।
स्थितिमुपधिविरुद्धां मागधीयामधत्ता-ऽस्खलितमखिलविद्या-ऽऽचार्यकं यस्य दृष्ट्वा ॥९॥
▽अर्णोराजनृपे सभां परिवृढे, श्रीदेवबोधादिषु,
प्राप्तानेकजयेषु साक्षिषु सदिग्-वासःशिरःशेखरः ।
सद्विद्योऽपि गुणेन्दुरन्तरुदित-क्षोभोद्भवद्वेपथु-
र्हेतुं यस्य निशम्य मन्तुविमुखं, तत्याज वादव्रतम् ॥१०॥
▽यस्य श्रीखण्डपाण्डु-भ्रमति दशदिशः, कीर्त्तिरुत्साहिते वा
घाटं द्रष्टुं त्रिलोक्याः, सुरभितभुवनै-स्तैः पवित्रैश्चरित्रैः ।
तस्य श्रीधर्मसूरे–र्निरवधिधिषणा–शालिनः शिष्यलेशः,
स्मृत्यै स्वस्येदमल्पं, विवरणमकृत, श्रीयशोभद्रसूरिः ॥११॥
❀मृदुमतिपरिस्पन्दाद्यद्वावधानवियोगतो, यदिह विवृतं किंचित्का-ऽपि स्वदर्शनबाधया ।
तदखिलमपि क्षुद्राचारा नुवृत्तिपराङ्मुखैः, विदितविशदाम्नायैः सम्यग्विशोध्यमशङ्कितैः ॥१२॥

॥ इति श्रीमद्यशोभद्रसूरिप्रणीतषडशीतिप्रकरणटीका समाप्ता ॥

× वसंततिलका । △ आर्या । + मालिनी । ▽ शार्दूलविक्रीडितम् । ❀ हरिणी 'वृषभचरितं' इति वा "वृषभललित" इति वाऽपरनाम छन्दः । १ "सुशिष्यः" इति वा । हस्तलिखितप्रत्यादिषु पुनः "सशुष्यतः" इति पाठ उपलब्धोऽस्ति । किन्तु सोऽशुद्धः प्रतिभाति ।

॥ इति श्रीयशोभद्रसूरिकृतवृत्त्युपेतः षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ॥

इति

श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीते

श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे

तृतीया श्रीयशोभद्रसूरिकृता टीका समाप्ता

×तस्याभवद् भुवनवल्लभभाग्यसम्प-त्सूरिर्द्धनेश्वर इति प्रथितः [1]स शिष्यः ।
अद्याऽप्यमन्दमतयो ननु यत्प्रतिष्ठा-मादित्सवः किमपि चेतसि चिन्तयन्ति ॥४॥
△सूक्ष्मार्थसार्द्धशतकप्रकरणविवरणमिषेण सम्यग्दृशां ।
मलयजमिव लोकानां हृदयानि मुखानि भूषयति ॥५॥
△येन विविधशास्त्रादिप्रपञ्चपीयूषमर्पितं निपुणाः ।
के के पायं पायं न भवन्ति रुजार्त्तिनिर्मुक्ताः ॥६॥
^बाल्यादपि बलमांसल-भवरिपुपृतनापराभवारम्भः ।
अजनि नयविनयसदनं तयोर्विनेयेषु यस्तिलकः ॥७॥
×बोधावधारणविरोधनिरोधधर्मोपायप्रदर्शनपरोपकृतादिशक्त्या ।
यो रोचकं व्यरचयश्चतुराशयेषु, प्रायेण विश्रुतगुणेष्वपि सज्जनानां ॥८॥
+नृपतिरजयदेवो देवविद्वन्मनीष-मददलनविनोदैः कोविदैस्तुल्यकालं ।
स्थितिमुपधिविरुद्धां मागधीयामधत्ता-ऽस्खलितमखिलविद्या-ऽऽचार्यकं यस्य दृष्ट्वा ॥९॥
∇अर्णोराजनृपे सभां परिवृढे, श्रीदेवबोधादिषु,
प्राप्तानेकजयेषु साक्षिषु सदिग्-वासःशिरःशेखरः ।
सद्विद्यो ऽपि गुणेन्दुरन्तरुदित-चोमोद्भवद्वेपथु-
र्हेतुं यस्य निशम्य मन्तुविमुखं, तत्याजवादव्रतम् ॥१०॥
∇यस्य श्रीखण्डपाण्डु-भ्रमति दशदिशः, कीर्त्तिरुत्साहिते वा
घाटं द्रष्टुं त्रिलोक्याः, सुरभितभुवने-स्तैः पवित्रैश्चरित्रैः ।
तस्य श्रीधर्मसूरे-र्निरवधिधिषणा-शालिनः शिष्यलेशः,
स्मृत्यै स्वस्येदमल्पं, विवरणमकृत, श्रीयशोभद्रसूरिः ॥११॥
❋मृदुमतिपरिस्पन्दाद्यद्वावधानवियोगतो, यदिह वितथं किंचित्का-ऽपि स्वदर्शनबाधया ।
तदखिलमपि क्षुद्राचारानुवृत्तिपराङ्मुखैः, विदितविशदाम्नायैः सम्यग्विशोध्यमशङ्कितैः ॥१२॥

॥ इति श्रीमद्यशोभद्रसूरिप्रणीतषडशीतिप्रकरणटीका समाप्ता ॥

× वसंततिलका । ^ आर्या । + मालिनी । ∇ शार्दूलविक्रीडितम् । ❋ हरिणी "वृषभचरितं" इति वा "वृषभललित" इति वाऽपरनाम छन्दः । [1] "सुशिष्यः" इति वा । हस्तलिखितप्रत्यादिषु पुनः "सशुष्यतः" इति पाठ उपलब्धोऽस्ति । किन्तु सोऽशुद्धः प्रतिभाति ।

॥ इति श्रीयशोभद्रसूरिकृतवृत्त्युपेतः षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ॥

॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीतः

षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ।

(अपरनाम—आगमिकवस्तुविचारसारप्रकरणम्)

"श्रीमद्रामदेवगणिविवृतविवरणेन विभूषितः ॥"

॥ नमो जिनागमाय ॥

सिरिपासजिणं नमिउं, वत्थुवियारस्स विवरणं भणिमो ।
इह आयसुमरणत्थं, गुरूवएसा समासेणं ॥१॥

तत्थ ताव पगरणकारो इट्ठदेवयानमोक्कारपुव्वं अभिधेयं पयोजणं च गाहादुगेण भणेइ—

निच्छिन्नमोहपासं पसरियविमलोरुकेवलपयासं ।
पणयजणपूरियासं पयओ पणमित्तु जिणपासं ॥ १ ॥
वोच्छामि जीवमग्गणगुणठाणुवओगजोगलेसाई ।
किंचि सुगुरूवएसा सन्नाणसुझाणहेउत्ति ॥ २ ॥

(राम०) निच्छिन्नो=तोडिओ मोहलक्खणो पासो=बंधणं जेण तं, पसरिओ=वित्थरिओ विमलो=निम्मलो उरू=बृहत्तरो केवलनाणस्स पयासो=अवलोयणं जस्स तं, पणयजणाणं=स्तावकलोकानां पूरिया=पयच्छिया आसा=इहलोगे परलोए य जा कावि वंछिया जेण तं, एवंविहविसेसणजुत्तं 'पयओ' उज्जमपरो पासजिणं 'पणमित्तु' नमिय वोच्छामि जीवट्ठाणाइ । तत्थ जीवट्ठाणेसु मग्गणट्ठाणेसु गुणट्ठाणेसु जे उवओगा जोगा लेसा, आइसद्दाओ जीवट्ठाणेसु गुणट्ठाणाणि मूलपयडीविसओ बंधो उदओ उदीरणा सत्ता य, तहा मग्गणट्ठाणेसु जीवट्ठाणगुणट्ठाणाणि अप्पबहुत्तं च, तहा गुण[1]ट्ठाणगेसु जीवट्ठाणाणि बंधहेयवो मूलपयडीसु

१. "°ट्ठाणेसु" इत्यपि पाठः ।

अथ
श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवप्रणीते
श्रीषडशीतिनाम्नि चतुर्थे प्राचीनकर्मग्रन्थे
चतुर्थी श्रीरामदेवगणिविहिता टीका प्रारभ्यते

(राम०) सन्निअपज्जत्तगस्स तिन्नि-मिच्छद्दिट्ठी सासायणो अविरयसम्मद्दिट्ठी य। सासायणस्स पुव्वुत्तो विही। अविरओ कहं? अपरिवडियसम्मत्तो कोइ एएसु उववज्जइ त्ति काउं। सन्निपज्जत्तयस्स सव्वे गुणट्ठाणा, जओ सव्वेसिं गुणट्ठाणाणं भायणोत्ति 'मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि' सुहुमअपज्जत्तपज्जत्तगस्स बायरएगिंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय असन्निपज्जत्तगेसु एगो मिच्छत्तगुणो। सुहुमअपज्जत्तगस्स [1]सासायणो कहं न होइ? [2]सासायणो जीवो जओ तेसु न उववज्जइ त्ति काउं ॥५॥

इयाणिं जोगमग्गणा, ते य पन्नरस, तं जहा—सच्चं मणं १, मोसं मणं २, मीसं मणं ३, असच्चमोसं मणं ४, सच्चभासा १, असच्चभासा २, मीसभासा ३, असच्चमोसा भासा ४, ओरालियं१, ओरालियमीसं २, वेउव्वियं१, वेउव्वियमीसं २, आहारगं १, आहारगमीसं २, [3]कम्मणं १, एवं जोगा १५।

एत्थ पसंगागयं भासाचउक्कस्स विवरणमाह—

"एगा सहावसच्चा मोसा दुइया तहेव नायव्वा। तइया सच्चामोसा, असच्चमोसा [4]चउत्थी उ॥२।
जणवयसम्मयठवणा नामे रूवे पडुच्च सच्चे य। ववहारभावजोगे, दसमे ओवम्मसच्चे य ॥३॥
जणवयसच्चं एत्थं देसियभासाएँ जत्थ जं रूढं। जह कुंकणे पसिद्धो पयसद्दो पाणिए चेव ॥४।
तामरसकुवलउप्पलपउमाणं पंकसंभवम्मि समे। तामरसमेव गोवाइसम्मयं सम्मया एसा ॥५।
अक्खरमुद्दाईहिं मासकाहावणे सहस्समिणं। जं ठाविज्जइ जियकप्पणाएँ तं ठवणे सच्चं ॥६॥
जत्थाऽपक्खो पक्खो अवुड्ढिकारी वि कुलधणाईणं। तव्वड्ढणो त्ति भन्नइ, नामेणऽभिहाणसच्चं तं ॥७।
[5]अणुगरणट्ठा वेसं, कवडेण व दंसणाइरूवं वा। तग्गुणहीणो विरयइ भन्नइ त रूवसच्चं ति ॥८॥
हीण हिएसु दुइएण वत्थुणा लहुय-गरुयभावेण। निच्छिज्जइ जो अत्थो, पडुच्च सच्चं तयं होइ ॥९॥
गिरिगयतणाइदाहे वि पव्वओ डज्झइ त्ति ववहारे। भायणगलणमणुदरा कन्ना नीरो मुरब्भा य। १०।
पंचण्ह वि वण्णाणं, विज्जंते संभवम्मि तह हे। सेया बलाहिया एत्थ भावसच्चं निएयव्वं ॥११॥
दंडाईणं जोगा, दंडी तं होइ जोगसच्चं ति। उवमासच्चं तु भवे समुद्दतुल्लं तलायं ति ॥१२॥
एसा सहावसच्चा दस भेया भासओ अदोसा य। एत्तो एगंतमुसं, तप्परिहारट्ठया वेमि ॥१३॥
कोहे माणे माया, लोभे पेज्जे तहेव दोसे य। हासभए अक्खाइय उवघाए निस्सिया दसमा ॥१४।
कोहाभिभूयचित्तो, असंभवादणयधुज्जिऊणं वा। पच्चायंतो अन्नं कयाइ सच्चे वि मोसे व ॥१५॥
माणम्मि अणणुभूयं ईसरियं अप्पणो पयासेइ। मायाए सगडाई, मुहपक्खेवा नयणमोहो ॥१६।
कूडप्पमाणसंकेयजोगवाणिज्जओ उ लोभगया। पेमम्मि वि दासोहं, अत्थविहूणं मुसं होइ ॥१७।
जं पुण अवन्नवाओ, तित्थगराण वि पओसियं एसा। नम्मेण हासमोसा चोरब्भेएण भयजणया ॥१८॥
संभवरहियं भासइ, कहासु अक्खाइ आगया होइ। उवघायनिस्सिया तह, अब्भक्खाणुब्भवा जाओ ॥१९॥
एत्तो उ तइयभासा, सच्चामोसा त्ति दसविहा होइ। सम्मं वियारिऊणं, परिहरियव्वा विवेईहिं ॥२०॥
उप्पन्नविगमउभया जीवाजीवुभयणंतयपरित्ता। अद्धा अद्धद्धा सह संगहमेत्तेण बोद्धव्वा ॥२१॥
जम्ममरणोभयाणं, संखा बालाइयाण जा नगरे। हीणाहिगा व तत्थ उ विसंवयती उ सच्चमुसा ॥२२॥

१ 'सासणो" इत्यपि। २ "ससासणो" इत्यपि। ३ "कम्मगं' इत्यपि। ४ "चउत्था' इत्यपि। ५ "अणुकर" इत्यपि"।

बंधाइ अप्पबहुत्तं च भणामि त्ति संबंधो 'किंचि' त्ति सुयसागराओ बिंदुमेत्तं [1]उद्धरिय, सुगुरूवएसा न [2]समईए विगप्पियं किं निमित्तं 'सज्झाणसज्झाणहेउ त्ति' त्ति तत्थ नाणं वत्थुगओ बोहो जीवाइपयत्थेसु ज्झाणं असुहमणवयणकायनिरोहो, जओ वुत्तं—

"भंगियसुयं गुणंतो, वट्टइ निसिद्धे वि झाणम्मि ॥

अत्थोझ्झाए तस्सेव मणो संमासणेण पुण वयणं । होइ थिय सुनिरूद्धो तल्लिहणाईहिँ पुण काओ ॥"

सोहणं जं नाणज्झाणं तस्स हेऊ तप्पओयणं जेण तं पयट्टइ त्ति ॥१-२॥

पुव्वं "जीवट्ठाणाईसु गुणट्ठाणाई वोच्छामि" त्ति वुत्तं, अओ पढमं ताव जीवट्ठाणाणि सरूवओ भणेइ—

इह सुहुमबायरेगिंदिबितिचउअसन्निसन्निपंचिंदी ।
अपजत्तापज्जत्ता कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥ ३ ॥

(राम०) सुहुमा एगिंदिया बायरा एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया असन्निपंचिदिया सन्निपंचिंदिया । एवं सत्त, सत्त वि दुविहा अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य एए चउदस जीवट्ठाणा ॥३॥

एएसु गुणट्ठाणाईणं कमेण मग्गणा कीरइ । तत्थ पढमं गुणट्ठाणमग्गणा, जस्स जत्तिया गुणट्ठाणा तं भण्णति—

सव्वभणियव्वमूलेसु तेसु गुणठाणगाइ ता भणिमो ।
पढमगुणा दो बायरबितिचउरअसन्निअपजत्ते ॥ ४ ॥

(राम०) इह पगरणे जे केइ अत्था भणियव्वा तेसिं सव्वेसिं जीवा मूलं, तेण "सव्वभणियव्वमूलेसु" त्ति वुच्चइ। अतो तेसु गुणठाणाईणि ताव भन्नंति । आइसद्दाओ जोगा उवओगा लेसा, बंधो उदओ उदीरणा सत्ता य मूलपयडीणं। पढमगुणा दो-मिच्छत्तं सासायणं च, बायरएगिंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियअसन्निअपज्जत्तगे[3]सु एएसु पंचसु दो गुणट्ठाणा लब्भंति। अपज्जत्तगाण सासायणो कहं? भण्णइ,—सन्निपंचिंदिया पुव्विं एएसु बद्धाउया अंते उवसमसम्मत्तं उप्पाइंति, अंते य नियमा वमेंति, तेसिं कोइ सासायणभावेण एएसु उववज्जइ, तओ किंचिकालं [4]सासायणभावो लब्भति ॥४॥

सन्निअपज्जत्ते मिच्छद्दिट्ठिसासाणअविरया तिन्नि ।
सव्वे सन्निपजत्ते मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि ॥ ५ ॥

---

१. 'उद्धरियं सुगुरूवएसाओ" इत्यपि । २. स्वमत्या । ३ "सु पंच०" इति "सु पचसु एए दो" इति वा पाठः । ४ "सासणभावो" इति वा ।

(राम०) सन्निअपज्जत्तगस्स तिन्नि-मिच्छद्दिट्ठी सासायणो अविरयसम्मद्दिट्ठी य। सासायणस्स पुव्वुत्तो विही। अविरओ कहं? अपरिवडियसम्मत्तो कोइ एएसु उववज्जइ त्ति काउं। सन्निपज्जत्तयस्स सव्वे गुणट्ठाणा, जओ सव्वेसिं गुणट्ठाणाणं भावणोत्ति 'मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि' सुहुमअपज्जत्तपज्जत्तगस्स बायरएगिंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय असन्निपज्जत्तगेसु एगो मिच्छत्तगुणो। सुहुमअपज्जत्तगस्स [1]सासायणो कहं न होइ? [2]सासायणो जीवो जओ तेसु न उववज्जइ त्ति काउं ॥५॥

इयाणिं जोगमग्गणा, ते य पन्नरस, तं जहा-सच्चं मणं १, मोसं मणं २, मीसं मणं ३, असच्चमोसं मणं ४, सच्चभासा १, असच्चभासा २, मीसभासा ३, असच्चमोसा भासा ४, ओरालियं१, ओरालियमीसं २, वेउव्वियं१, वेउव्वियमीसं २, आहारगं १, आहारगमीसं २, [3]कम्मणं १, एवं जोगा १५।

एत्थ पसंगागयं भासाचउक्कस्स विवरणमाह—

"एगा सहावसच्चा मोसा दुइया तहेव नायव्वा। तइया सच्चामोसा, असच्चमोसा [4]चउत्थी उ ॥२॥
जणवयसम्मयठवणा नामे रूवे पडुच्च सच्चे य। ववहारभावजोगे, दसमे ओवम्मसच्चे य ॥३॥
जणवयसच्चं एत्थं देसियभासाएँ अत्थ जं रूढं। जह कुंकणे पसिद्धो पयसद्दो पाणिए चेव ॥४॥
तामरसकुवलउप्पलपउमाणं पंकसंभवम्मि समे। तामरसमेव गोवाइसम्मयं सम्मया एसा ॥५॥
अक्खरमुद्दाईहिं मासकाहावणे सहस्समिणं। जं ठाविज्जइ जियकप्पणाएँ तं ठावणे सच्चं ॥६॥
सत्थागक्खो पक्खो अवुड्ढिकारी वि कुलवणाईणं। तव्वड्ढणो त्ति भन्नइ, नामेणऽभिहाणसच्चं तं ॥७॥
[5]अणुगरणट्ठा वेसं, कवडेया व दंसणाइरूवं वा। तग्गुणहीणो विरयइ भन्नइ तं रूवसच्चं ति ॥८॥
हीणाहिएसु दुइएण वत्थुणा लहुय-गरुयभावेण। निच्छिज्जइ जो अत्थो, पडुच्च सच्चं तयं होइ ॥९॥
गिरिगयतणाइदाहे वि पव्वओ डज्झइ त्ति ववहारे। भायणगलणमणुदरा कन्ना नीरोमुरव्मा य ॥१०॥
पंचण्ह वि वन्नाणं, विज्जंते संभवम्मि तह हि। सेया बलाहिया एत्थ भावसच्चं निदरिसियव्वं ॥११॥
दंडाईणं जोगा, दंडी तं होइ जोगसच्चं ति। उवमासच्चं तु भवे समुद्दतुल्लं तलायं ति ॥१२॥
एसा सहावसच्चा दस भेया भासओ अवोसा य। पत्तो एगंतमुसं, तप्परिहारट्ठया वेमि ॥१३॥
कोहे माणे माया, लोभे पेज्जे तहेव दोसे य। हासभए अक्खाइय उवघाए निस्सिया दसमा ॥१४॥
कोहाभिभूयचित्तो, असंभवाइणवयु ज्झऊणं वा। पच्चायंतो अन्नं कयाइ सच्चे वि मोसे व ॥१५॥
माणम्मि अणणुभूयं ईसरियं अत्तणो पयासेइ। मायाए सगडाई, मुहपक्खेवा नयणमोहो ॥१६॥
कूडपमाणसंकेयजोगवाणिज्जओ उ लोभगया। पेमम्मि वि दासोहं, अत्थविहूणं मुसं होइ ॥१७॥
जं पुण अब्भक्खाओ, तित्थगराण वि पओसियं एसा। नम्मेण हासमोसा चोरक्खेवण भयजणाया ॥१८॥
संभवरहियं भासइ, कहासु अक्खाइ भासया होइ। उवघायनिस्सिया तह, अब्भक्खाणुब्भवा जाओ ॥१९॥
एसो उ सच्चभासा, सच्चामोसा वि दसविहा होइ। सम्मं वियारिऊणं, परिहरियव्वा विवेईहिं ॥२०॥
उप्पन्नविगमउभया जीवाजीवुभयणंतयपरित्ता। अद्धा अद्धद्धा तह- संगहमेत्तेण बोद्धव्वा ॥२१॥
अस्समरणोभयाणं,संखा बालाइयाण जा नगरे। हीणाहिगा व तत्थ उ विसंवयंती उ सच्चमुसा ॥२२॥

१ "सासणो" इत्यपि। २ "ससासणो" इत्यपि। ३ "कम्मगं" इत्यपि। ४ "चउत्था" इत्यपि। ५ "अणुकर०" इत्यपि।

बंधाइ अप्पबहुत्तं च भणामि त्ति संबंधो 'किंचि' त्ति सुयसागराओ विंदुमेत्तं [1]उद्धरिय, सुगुरूवएसा न [2]समईए विगप्पियं किं निमित्तं 'सज्झाणसज्झाणहेउ त्ति' त्ति तत्थ नाणं वत्थुगओ बोहो जीवाइपयत्थेसु ज्झाणं असुहमणवयणकायनिरोहो, जओ वुत्तं—

"भंगियसुयं गुणंतो, वट्टइ तिविहे वि झाणम्मि ॥

अत्थोहाए तस्सेव मणो संमासणेण पुण वयणं । होइ थिय सुनिरूद्धो तल्लिहणाईहिं पुण काओ ॥"

सोहणं जं नाणज्झाणं तस्स हेऊ तप्पओयणं जेण तं पयट्टइ त्ति ॥१-२॥

पुव्वं "जीवट्ठाणाईसु गुणट्ठाणाई वोच्छामि" त्ति वुत्तं, अओ पढमं ताव जीवट्ठाणाणि सरूवओ भणेइ—

इह सुहुमबायरेगिंदिबितिचउअसन्निसन्निपंचिंदी ।

अपजत्तापज्जत्ता कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥ ३ ॥

(राम०) सुहुमा एगिंदिया बायरा एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया असन्निपंचिदिया सन्निपंचिंदिया । एवं सत्त, सत्त वि दुविहा अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य एए चउदस जीवट्ठाणा ॥३॥

एएसु गुणट्ठाणाईणं कमेण मग्गणा कीरइ । तत्थ पढमं गुणट्ठाणमग्गणा, जस्स जत्तिया गुणट्ठाणा तं भन्नति—

सव्वभणियव्वमूलेसु तेसु गुणठाणगाइ ता भणिमो ।

पढमगुणा दो बायरबितिचउरअसन्निअपजत्ते ॥ ४ ॥

(राम०) इह पगणे जे केइ अत्था भणियव्वा तेसिं सव्वेसिं जीवा मूलं, तेण "सव्वभणियव्वमूलेसु" त्ति वुच्चइ। अतो तेसु गुणठाणाईणि ताव भन्नंति । आइसद्दाओ जोगा उवओगा लेसा, बंधो उदओ उदीरणा सत्ता य मूलपयडीणं। पठमगुणा दो-मिच्छत्तं सासायणं च, बायर-एगिंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियअसन्निअपज्जत्तगे[3]सु एएसु पंचसु दो गुणट्ठाणा लब्भंति । अपज्जत्तगाण सासायणो कहं ? भन्नइ,—सन्निपंचिंदिया पुव्विं एएसु बद्धाउया अंते उवसमसम्मत्तं उप्पाइंति, अंते य नियमा वमेंति, तेसिं कोइ सासायणभावेण एएसु उववज्जइ, तओ किंचिकालं [4]सासायणभावो लब्भति ॥४॥

सन्निअपज्जत्ते मिच्छदिट्ठिसासाणअविरया तिन्नि ।

सव्वे सन्निपजत्ते मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि ॥ ५ ॥

---

१. 'उद्धरियं सुगुरूवएसाओ" इत्यपि । २. स्वमत्या । ३ "सु पंच०" इति "सु पंचसु एए दो" इति वा पाठः । ४ "सासणभावो" इति वा ।

(रा म०) सन्निअपज्जत्तगस्स तिन्नि-मिच्छद्दिट्ठी सासायणो अविरयसम्मद्दिट्ठी य। सासायणस्स पुव्वुत्तो विही। अविरओ कहं ? अपरिवडियसम्मत्तो कोइ एएसु उववज्जइ त्ति काउं। सन्निपज्जत्तयस्स सव्वे गुणट्ठाणा, जओ सव्वेसिं गुणट्ठाणाणं भायणोत्ति 'मिच्छं सेसेसु सत्तसु वि' सुहुमअपज्जत्तपज्जत्तगस्स बायरएगिंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय असन्निपज्जत्तगेसु एगो मिच्छत्तगुणो। सुहुमअपज्जत्तगस्स [1]सासायणो कहं न होइ ? [2]सासायणो जीवो जओ तेसु न उववज्जइ त्ति काउं ॥५॥

इयाणिं जोगमग्गणा, ते य पन्नरस, तं जहा—सच्चं मणं १, मोसं मणं २, मीसं मणं ३, असच्चमोसं मणं ४, सच्चभासा १, असच्चभासा २, मीसभासा ३, असच्चमोसा भासा ४, ओरालियं १, ओरालियमीसं २, वेउव्वियं १, वेउव्वियमीसं २, आहारगं १, आहारगमीसं २, [3]कम्मणं १, एवं जोगा १५।

एत्थ पसंगागयं भासाचउक्कस्स विवरणमाह—

"एगा सहावसच्चा मोसा दुइया तहेव नायव्वा। तइया सच्चामोसा, असच्चमोसा [4]चउत्थी उ ॥२।
जणवयसम्मयठवणा नामे रूवे पडुच्च सच्चे य। ववहारभावजोगे, दसमे ओवम्मसच्चे य ॥३॥
जणवयसच्चं एत्थं देसियभासाए जत्थ जं रूढं। जह कुंकणे पसिद्धो पयसद्दो पाणिए चेव ॥४।
तामरसकुवलउप्पलपउमाणं पंकसंभवम्मि समे। तामरसमेव गोवाइसम्मयं सम्मया एसा ॥५।
अक्खरमुद्दमाईहिं मासकाहावणे सहस्समिणं। जं ठाविज्जइ जियकप्पणाए तं ठावणे सच्चं ॥६॥
अत्थाविकलो पक्खो अवुड्ढिकारी वि कुलधणाईणं। तव्वड्ढणो त्ति भन्नइ, नामेणऽभिहाणसच्चं तं ॥७।
[5]अणुगरणट्ठा वेसं, कवडेण व दंसणाइरूवं वा। तग्गुणहीणो विरयइ भन्नइ त रूवसच्चं ति ॥८॥
हीणाहिएसु दुइएण वत्थुणा लहुय-गरुयभावेण। निच्छिज्जइ जो अत्थो, पडुच्च सच्चं तयं होइ ॥९॥
गिरिगयतणाइदाहे. वि पव्वओ डज्झइ त्ति ववहारे। भायणगलणमणुदरा कन्ना नीरो मुरम्मा य। १०।
पंचन्ह वि वन्नाणं, विज्जंते संभवम्मि तह हे। सेया बलाहिया एत्थ भावसच्चं निएयव्वं ॥११॥
दंडाईणं जोगा, दंडी सं होइ जोगसच्चं ति। ववमासच्चं तु भवे समुद्दतुल्लं तलायं ति ॥१२॥
एसा सहावसच्चा दस भेया भासओ अदोसा य। एत्तो एगंतमुसं, तप्परिहारट्ठया बेमि ॥१३॥
कोहे माणे माया, लोभे पेज्जे तहेव दोसे य। हासभए अक्खाइय उवघाए निस्सिया दसमा ॥१४॥
कोहाभिभूयचित्तो, असंभवादणवबुज्झिऊणं वा। पच्चायंतो अन्नं कयाइ सच्चे वि मोसे व ॥१५॥
माणम्मि अणणुभूयं ईसरियं अत्ताणो पयासेइ। मायाए सगडाई, मुहपक्खेवा नयणमोहो ॥१६।
कूडप्पमाणसंकेयजोगवाणिज्जओ उ लोभगया। पेमम्मि वि दासोहं, अत्थविहूणं मुसं होइ ॥१७॥
जं पुण अब्भक्खाओ, तित्थगराण वि पओसिणं एसा। नम्मेण हासमोसा चोरक्खेवेण भयजणाया ॥१८॥
संभवरहियं भासइ, कहासु अक्खाइ आगया होइ। उवघायनिस्सिया तह, अब्भक्खाणुब्भवा जाओ ॥१९॥
एत्तो उ सच्चमासा, सच्चामोसा त्ति दसविहा होइ। सम्मं वियारिऊणं, परिहरियव्वा विवेईहिं ॥२०॥
उप्पन्नविगमउभया जीवाजीवुभयणंतयपरित्ता। अद्धा अद्धद्धा तह संगहमेत्तेण बोद्धव्वा ॥२१॥
जम्मणमरणोभयाणं,संखा बालाइयाण जा नगरे। हीणाहिगा व तत्थ उ विसंवयंती उ सच्चमुसा ॥२२॥

१ 'सासणो" इत्यपि। २ "ससासणो" इत्यपि। ३ "कम्मगं' इत्यपि। ४ "चउत्था" इत्यपि।
५ "अणुकर"" इत्यपि"।

एस गुरुजीवरासी संखाई दंसणेण थोवाणं । तत्थ मयाणं मावा जीवविमिस्सा इमा नेया ॥२३॥
एत्थेव मया बहवो थोवा जीवंति सव्वमयभणणा । मिस्सा इमा अजीवेहिं होइ मासा उसच्चमुसा ॥२४॥
सव्वं मयममयं वा, उमयं नियमेण वागरंतस्स । जं तत्थ विसंवइयं, तमुमयमिस्सं निएयव्वं ॥२५॥
अण्णेण पंडुपत्तेण वा वि मीसं तु मूलगाईयं । दट्ठुं अणंतभणणे साहारणमीसिया होइ ॥२६॥
तं चेवुक्खयमेत्तं मिलाणममिलाणमेगरासिगयं । सव्व परित्तमेयं, भणओ मिस्सा परित्तेण ॥२७॥
तूरंतो अन्नजणं, विज्जंते चेव दिवसकालम्मि । जाया निसा पयट्टसु वयओ अद्धाए मिस्सेयं ॥२८॥
पढमम्मि चेव जामे, रयणिए वासरस्स वा वेइ । जायं इयं निसीहं, मज्झन्हो वा वि अद्धद्धा ॥२९॥
इन्ही असच्चमासा, तिण्हं पीमाण लक्खणा जोगा । नाऊण विगयदोसं, तिभासगातो पउंजंति ॥३०॥
आमंतणि आणवणी, जायणि तह पुच्छणी य पन्नवणी । पच्चक्खाणी मासा, मासा इच्छाणुलोमा य ॥३१॥
अणमिग्गहिया मासा, मासा य अमिग्गहम्मि बोधव्वा । संसयकरणी मासा, वोगडअवोगडा चेव ॥३२॥
जीए पविन्तिनिवित्तीउ नेय जायंति भासियाए वि । संबोहमेत्ताकरणी आमंतणिया भव मासा ॥३३॥
आणवणी कज्जनिओयणाए तह मग्गणेण जायणिया । संदेहविगमहेउं, चोयणओ पुच्छणी होइ ॥३४॥
पाणिवहाओ नियत्ता, दीहाऊरूवगुणजुया हुंति । एवं विणेयवग्गस्स देसणा होइ पण्णवणी ॥३५॥
अण्णम्मि जायमाणे, पच्चक्खाणी न देमि मासंते । तह चोयणा पडिच्छण ममऽणुमयमिणं वि अणु-
लोमा ॥३६॥
अभिधेयविगलसद्दो, हासपलावाइओ णभिग्गहिया । घडपडगाई [1]अत्थो विधेयमासा अभिग्गहिया ॥३७॥
नाणाविहत्थगहणी, सिंधवसद्दो व्व संसयकरीओ । नरवत्थतुरयपभिईसु वच्चमाणा जहिच्छाए । ३८ ।
सगडघडाइपसिद्धो, सद्दो सा वोगडा उ बोधव्वा । सल्लक्खरदुव्वोहा, अवोगडा होइ गंभीरा ॥३९.॥' इति ।

तत्थ—

जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो ।
वेउव्वियमीसजुया सन्निअपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

(राम०) सन्निअपज्जत्तगवज्जेसु छसु अपज्जत्तगेसु जोगा दो—कम्मइगं ओरालमीसं च । [2] ∆कम्मइगं विग्गहगईए पढमचरमविग्गहं मोत्तुं, ओरालमिस्सं सरीरपज्जत्तीए अपज्जत्तगस्स । ∆ सण्णिअपज्जत्तगस्स तिन्नि वेउव्वियमीसं १ ओरालियमिसं २ कम्मगं ३ च, जओ देवनेरइया सन्निणो उप्पत्तिकाले वेउव्वियमीसा ॥६॥

बिंति अपज्जत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।
बायरपज्जत्ते तिन्नि उरलवेउव्वियदुगं च ॥७॥

(राम०) पज्जत्तीओ छ होंति । तं जहा—[3]आहारपज्जत्ती १, शरीरपज्जत्ती २, इंदियपज्जत्ती ३, आणुपाणुपज्जत्ती ४, भासापज्जत्ती ५, मणपज्जत्ती ६ ।

---

१ "अत्थोमिवेयमासा" इत्यपि पाठः । २ ∆एतच्चिह्नद्वयमध्यगतः पाठः प्रत्यन्तरादर्शे नास्ति ।
३"आहारगपज्जत्ती एगा" इत्यपि ।

[1] 卐 आहारसरीरिंदियउरसासवओमणोमिनिव्वत्ती । होइ जओ दलियाओ, करणं पइ सा उ पज्जत्ती ॥
पज्जत्ती नाम सत्तीविसेसो । सो दलिओपचयाओ ओपज्जइ, जओ आहारियस्स दव्वस्स खलरसपरिणामणसत्ती आहारपज्जत्ती १ । सत्तधाउतया रसस्स परिणामणसत्ती सरीरपज्जत्ती २ । रस १ श्रोणित २ मांस ३ स्नायु ४ अस्थि ५ मज्जु ६ रेतु ७ इति सप्त धातवः । इंदियपज्जत्ती= पंचण्हमिंदियाणं जोगपुग्गले विचिणिय तब्भावनयणसत्ती, अत्थावबोहसत्ती य इंदियपज्जत्ती ३ । आणुपाणुजोगे बाहिरे पुग्गले घेत्तूण आणापाणुत्ताए परिणामित्ता ऊसासनीसासत्ताए निसरणसत्ती आणापाणुपज्जत्ती ४ । वयणजोगे पोग्गले घेत्तूण भासत्ताए परिणामित्ता वयणजोगत्ताए निसरणसत्ती भासापज्जत्ती ५ । मणजोगे पोग्गले घित्तूण मणत्ताए परिणामित्ता मणोजोगत्ताए निसिरणसत्ती मणपज्जत्ती ६ । एयाओ पज्जत्तीओ पज्जत्तगनामकम्मोदएण निव्वत्तिज्जन्ति, तं जेसिं अत्थि ते पज्जत्तगा । एयाओ चेव पज्जत्तीओ अपज्जत्तनामकम्मोदएण निव्वत्तिज्जंति, तं जेसिं अत्थि ते अपज्जत्तगा । 卐

तत्थ आइल्ला चत्तारि एगिंदियाणं, आइल्ला पंच विगलिंदियअसण्णीणं, छावि सण्णीणं । तत्थ [2] नियनियाहिं असमत्तीयाहिं अपज्जत्तगा समत्तियाहिं पुण पज्जत्तगा । सत्तसु अपज्जत्तगेसु सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तगेसु ओरालियसरीरं बेंति केई । तेसिं मएण तिन्नि जोगा—ओरालियं १ ओरालियमीसं २ कम्मगं च ३ । सन्निअपज्जत्तगस्स देव-नेरइए पडुच्च वेउव्वियं कहं न होइ ? प्र०—वेउव्वियसरीराणं सरीरपज्जत्ती अंतोमुहुत्तिया, सेसा पंच एगेगसामइगीओत्ति, तेण अप्पकालियस्स न विवक्खा कया । "बायरपज्जत्ते तिन्नि" त्ति बायरएगिंदियपज्जत्तगे तिन्नि जोगा—ओरालियं १ वेउव्वियं २ वेउव्वियमीसं च ३ । वेउव्विदुगं वाउकाइए पडुच्च ॥७॥

उरलं सुहुमे चउसु य भासजुयं पनरसा वि सन्निंमि ।
उवओगा दससु तओ अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥८॥

(राम०) सुहुमस्स पज्जत्तगस्स एगं ओरालियं । 'चउसु य भासजुयं' ति चउसु ठाणेसु बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-असण्णिपज्जत्तगेसु तं चेव ओरालियं असच्चमोसा भासा य । 'पणरसावि सन्निंमि' त्ति सण्णिपज्जत्तगस्स पन्नरसावि जोगा, जओ सव्वेसिं अहिगारि त्ति । कहं ? मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालियं वेउव्वियं एए दस समावत्थाणं मणुयतिरियनेरइयदेवाणं जहासंभवं लब्भंति । वेउव्वियमिस्सं देवनेरइयाणं उप्पत्तिकाले, जओ [3] लद्धीए पज्जत्तगा चेव उववज्जंति । [4] तहा सव्वेसिं उत्तरवेउव्वियारंभकाले कम्मणा सह, जओ ते वेउव्वियकरणकाले वेउव्वियसमुग्घायं [5] समोहन्नंति, समोग्घाए य कम्मणसरीरेण वेउव्वियपोग्गले आदायंति, आदाईएसु

१ स्वस्तिकद्विकान्तवर्ती पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति । २ "नियनिमाहिं" इत्यपि । ३ "लद्धीपज्जत्त०" इत्यपि । ४ "अहवा सव्वेसिं" इत्यपि । ५ "समोहण त्ति=संखेज्जाइं जोयणाइं निसिरिंति, समो०" इत्यपि ।

एस गुरुजीवरासी संखाई दंसणेण थोवाणं । तत्थ मयाणं भावा जीवविमिस्सा इमा नेया ॥२३॥
एत्थेव मया बहवो थोवा जीवति सच्चमयभणणा । मिस्सा इमा अजीवेहि होइ भासा उसच्चमुसा ॥२४॥
सव्वं मयममयं वा, उभयं नियमेण वागरंतस्स । जं तत्थ विसंवइयं, तमुभयमिस्सं निएयव्वं ॥२५॥
अण्णेण पंडुपत्तेण वा वि मीसं तु मूलगाईयं । दट्ठुं अणंतभणणे साहारणमीसिया होइ ॥२६॥
तं चेवुक्खयमेत्तं मिलाणममिलाणमेगरासिगय । सव्व परित्तमेयं, भणओ मिस्सा परित्तेण ॥२७॥
तूरंतो अन्नजणं, विज्जंते चेव दिवसकालम्मि । जाया निसा पयट्टसु वयओ अद्धाए मिस्सेयं ॥२८॥
पढमम्मि चेव जामे. रयणिए वासरस्स वा वेइ । जायं इयं निसीहं, मज्झन्हो वा वि अद्धद्धा ॥२९॥
इन्हीं असच्चमोसा, विण्हं पीमाण लक्खणा जोगा । नाऊण विगयदोसं. तिभासगातो पउंजंति ॥३०॥
आमंतणि आणवणी, जायणि तह पुच्छणी य पन्नवणी । पच्चक्खाणी भासा, भासा इच्छाणुलोमा य ॥३१॥
अणभिग्गहिया भासा, भासा य अभिग्गहम्मि बोधव्वा । संसयकरणी भासा, वोगडअवोगडा चेव ॥३२॥
जीऍ पचित्तिनिवित्तीउ नेय जायति भासियाए वि । संबोहमेत्ताकरणी आमंतणिया भव भासा ॥३३॥
आणवणी कज्जनिओयणाएँ तह मग्गणेण जायणिया । संदेहविगमहेउं, चोयणओ पुच्छणी होइ ॥३४॥
पाणिवहाओं नियत्ता, दीहाऊरूवगुणजुया हुंति । एवं विणेयवग्गस्स दंसणा होइ पण्णवणी ॥३५॥
अण्णम्मि जायमाणे, पच्चक्खाणी न देमि भासंते । तह चोयणा पडिच्छण ममऽणुमयमिणं ति अणु-
लोमा ॥३६॥
अभिधेयविगलसद्दो, हासपलावाइओ णभिग्गहिया । घडपडगाई [1]अत्थो विवेयभासा अभिग्गहिया ॥३७॥
नाणाविहत्थगहणी, सिंधवसद्दो व्व संसयकरीओ । नरवत्थतुरयपभिईसु वच्चमाणा जहिच्छाए । ३८।
सगडघडाइपसिद्धो, सद्दो सा वोगडा उ बोधव्वा । ललक्खरदुव्वोहा, अवोगडा होइ गंभीरा ॥३९॥' इति ।

तत्थ—

जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो ।
वेउव्वियमीसजुया सन्निअपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

(राम०) सन्निअपज्जत्तगवज्जेसु छसु अपज्जत्तगेसु जोगा दो—कम्मइगं ओरालमीसं च । [2]△कम्मइगं विग्गहगईए पढमचरमविग्गहं मोत्तुं, ओरालमिस्सं सरीरपज्जत्तीए अपज्जत्तगस्स । △ सण्णिअपज्जत्तगस्स तिन्नि वेउव्वियमीसं १ ओरालियमिसं २ कम्मगं ३ च, जओ देवनेरइया सन्निणो उप्पत्तिकाले वेउव्वियमीसा ॥६॥

बिंति अपज्जत्ताण वि तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।
वायरपज्जत्ते तिन्नि उरलवेउव्वियदुगं च ॥ ७॥

(राम०) पज्जत्तीओ छ होंति । तं जहा—[3]आहारपज्जत्ती १, शरीरपज्जत्ती २, इंदियपज्जत्ती ३, आणुपाणुपज्जत्ती ४, भासापज्जत्ती ५, मणपज्जत्ती ६ ।

---

१ "अत्थोभिधेयभासा" इत्यपि पाठः । २ △एतच्चिह्नद्वयमध्यगतः पाठः प्रत्यन्तरादर्शे नास्ति ॥
३ "आहारगपज्जत्ती एगा" इत्यपि ।

[1] 卐 आहारसरीरिंदियऊस्सासवओमणोमिनिव्वत्ती । होइ जओ दलियाओ, करणं पइ सा उ पज्जत्ती ॥

पज्जत्ती नाम सत्तीविसेसो । सो दलिओपचयाओ ओपज्जइ, जओ आहारियस्स दव्वस्स खलरसपरिणामणसत्ती आहारपज्जत्ती १ । सत्तधाउतया रसस्स परिणामणसत्ती सरीरपज्जत्ती २ । रस १ श्रोणित २ मांस ३ स्नायु ४ अस्थि ५ मज्जु ६ रेतु ७ इति सप्त धातवः । इंदियपज्जत्ती= पंचण्हमिंदियाणं जोगपुग्गले विचिणिय तब्भावनयणसत्ती, अत्थाववोहसत्ती य इंदियप-ज्जत्ती ३ । आणुपाणुजोगे बाहिरे पुग्गले घेत्तूण आणापाणुत्ताए परिणामित्ता ऊसासनीसासत्ताए निसरणसत्ती आणापाणुपज्जत्ती ४ । वयणजोगे पोग्गले घेत्तूण भासत्ताए परिणामित्ता वयणजोगत्ताए निसरणसत्ती भासापज्जत्ती ५ । मणजोगे पोग्गले घित्तूण मणत्ताए परिणामित्ता मणोजोगत्ताए निसिरणसत्ती मणपज्जत्ती ६ । एयाओ पज्जत्तीओ पज्जत्तगनामकम्मोदएण निव्वत्तिज्जन्ति, तं जेसिं अत्थि ते पज्जत्तगा । एयाओ चेव पज्जत्तीओ अपज्जत्तनामकम्मोदएण निव्वत्तिज्जंति, तं जेसिं अत्थि ते अपज्जत्तगा । 卐

तत्थ आइल्ला चत्तारि एगिंदियाणं, आइल्ला पंच विगलिंदियअसण्णीणं, छावि सण्णीणं । तत्थ [2] नियनियाहिं असमत्तीयाहिं अपज्जत्तगा समत्तियाहिं पुण पज्जत्तगा । सत्तसु अपज्जत्तगेसु सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तगेसु ओरालियसरीरं बेंति केई । तेसिं मएण तिन्नि जोगा—ओरालियं १ ओरालियमीसं २ कम्मगं च ३ । सन्निअपज्जत्तगस्स देव-नेरइए पडुच्च वेउव्वियं कहं न होइ ? म०—वेउव्वियसरीराणं सरीरपज्जत्ती अंतोमुहुत्तिया, सेसा पंच एगेगसामइगीओत्ति, तेण अप्प-कालियस्स न विवक्खा कया । "**बायरपज्जत्ते तिन्नि**" त्ति बायरएगिंदियपज्जत्तगे तिन्नि जोगा—ओरालियं १ वेउव्वियं २ वेउव्वियमीसं च ३ । वेउव्विदुगं वाउकाइए पडुच्च ॥७॥

उरलं सुहुमे चउसु य भासजुयं पनरसा वि सन्निमि ।
उवओगा दससु तओ अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥८॥

(राम०) सुहुमस्स पज्जत्तगस्स एगं ओरालियं । '**चउसु य भासजुयं**' ति चउसु ठाणेसु बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-असण्णिपज्जत्तगेसु तं चेव ओरालियं असच्चमोसा भासा य । '**पण-रसावि सन्निम्मि**' त्ति सण्णिपज्जत्तगस्स पन्नरसावि जोगा, जओ सव्वेसिं अहिगारि त्ति । कहं ? मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालियं वेउव्वियं एए दस सभावत्थाणं मणुयतिरियनेरइयदेवाणं जहासं-भवं लब्भंति । वेउव्वियमिस्सं देवनेरइयाणं उप्पत्तिकाले, जओ [3] लद्धीए पज्जत्तगा चेव उववज्जं-ति । [4] तहा सव्वेसिं उत्तरवेउव्वियारंभकाले कम्मणा सह, जओ ते वेउव्वियकरणकाले वेउव्विय-समुग्घायं [5] समोहन्नंति, समोग्घाए य कम्मणसरीरेण वेउव्वियपोग्गले आदायंति, आदाईएसु

---

१ स्वस्तिकद्विकान्तर्वर्ती पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति । २ "नियनियाहिं" इत्यपि । ३ "लद्धीपज्जत्त०" इत्यपि । ४ "अहवा सव्वेसिं" इत्यपि । ५ "समोहन्न'ति=संखेज्जाइं जोयणाइं निसिरिंति, समो०" इत्यपि ।

वि जाव सरीरपज्जत्ती न पूरइ ताव वेउव्वियमिस्सं सन्निस्स लब्भइ। अन्ने आयरिया भणंति-मणुय-तिरियाणं ओरालियेण सह विउव्वियमिस्सं विउव्वियारंभकाले,जओ ओरालि[1]यस्स,पयत्तो। तओ वुत्तं-'जोगो विरियं थामो उच्छाहपरक्कमो तहा चिट्ठा। सत्ती सामत्थं ति य जोगस्स हवंति पज्जाया।" तहा देवनेरइयाणं वि विउव्वियमीसं वेउव्विएण सह। आहारगमिस्सं एवं चेव, नवरं चोद्दस[2]पुव्वधरस्स आहारगारंभ[3]काले, तओ आहारगं निप्फज्जइ। ओरालियमिस्सं केवलिस्स समुग्घायगयस्स बीय-छट्ठ-सत्तमसमएसु। कम्मणसरीरं च तस्सेव ति-चउत्थ-पंचम-समएसु। एवं सन्निपज्जत्तगे सव्वे जोगा लब्भंति। अण्णेसिं मएण वेउव्वियाऽऽहारगसंहरगकाले ओरालियमिस्सं लब्भति। परं एयस्स सत्थयारेण न विवक्खा कया ॥

इयाणिं उवओगमग्गणा। ते य बारसविहा। तं जहा—मइनाणं सुयनाणं ओहिनाणं मणपज्जवनाणं केवलनाणं ५, मइअन्नाणं सुयअन्नाणं विभंगनाणं ३, चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओहिदंसणं केवलदंसणं ४ एवं बारस उवओगा। 'दससु तओ' त्ति जीवट्ठाणेसु चउरिंदिय-पज्जत्तगअसण्णिपज्जत्तग-सन्निपज्जत्ता-ऽपज्जत्तगवज्जेसु तिण्णि उवओगा मइअन्नाणं सुयअन्नाणं अचक्खुदरिसणं च ॥८॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्निपज्जत्तएसु ते चउरो।
मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्निअपजत्ते ॥ ९ ॥

(राम०) चउरिंदियपज्जत्तगस्स असन्निपज्जत्तगस्स य ते पुव्वुत्ता तिन्नि चक्खुजुया चत्तारि उवओगा। सण्णिपज्जत्तगस्स मणपज्जवनाणचक्खुदरिसणकेवलदुगवज्जा अट्ठ उवओगा। [4]एत्थ पढमं नाणतिगं ओहिदंसणं अविरयसम्मदिट्ठिं पडुच्च, अन्नाणतिगं मिच्छादिट्ठिं पडुच्च, अचक्खुदंसणं दोसु वि एवं अट्ठ ॥९॥

सव्वे सन्निसु पत्तो लेसाओ छावि दुविहसन्निंमि।
चउरो पढमा [5]बायरअपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

(राम०) सन्निपज्जत्तगस्स 'सव्वे' बारस वि उवओगा, जओ सव्वेसिं अहिगारि त्ति।

इओ लेसामग्गणा भण्णइ—ताओ छल्लेसाओ, तं जहा-किन्हलेसा-नीललेसा-काउलेसा तेउलेसा-पम्हलेसा-सुक्कलेसा 'लेसाओ छावि दुविहसन्निम्मि' सन्निपज्जत्ता-ऽपज्जत्त[6]गेसु छावि लेसाओ होंति। चउरो लेसा 'पढमा' आइमा बायरएगिंदियअपज्जत्तगस्सु, जओ पुढवि-आउवणस्सइकाएसु देवा वि ईसाणंता तेउलेसासमन्निया उववज्जंति, तेण किंचिकालं तेउलेसा

१ "यंपयत्तो" इत्यपि। २ "० पुव्विस्स" इत्यपि। ३ "०काले मिस्सं, समो" इत्यपि। ४ "तत्थ" इत्यपि। ५ "बायरऽपजत्ते" इत्यपि। ६ "०गे छावि" इत्यपि।

संभवति। इह सासण-नाणतिग-विभंग-अवहिदंसण-सम्मत्ततिग तेउ-पम्हसुक्कलेसाओ [1]अपज्जत्त-गेसु वि=करणअपज्जत्तगेसु लद्धीए पज्जत्तगेसु दट्ठव्वाओ। [2]सेसा एक्कारस जीवट्ठाणा, तेसु तिन्नि लेसा पढमा-किन्हलेसा नीललेसा काउलेसा ॥१०॥

इयाणिं मंदमइविबोहणत्थं सुत्ते अभणियमवि किंचि मग्गणट्ठाण-बंधहेउमग्गणालक्खणं जीवट्ठाणेसु वुच्चइ। तत्थ ताव मग्गणमूलभेया सव्वेसिं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दस वि होंति। उत्तर-भेया बासट्ठी। ते य कस्स जीवठाणस्स केत्तिया ? तन्निरूवणत्थं भण्णइ-

सुहुमअपज्जत्तगस्स उत्तरभेया। तं जहा-तिरियगई १ एगिंदियत्तं १ तसवज्जा पंच थावरकाया ५ कायजोगं १ नपुंसगवेयं १ कसायचउक्कं ४ मइअन्नाणं १ सुयअन्नाणं १ असंजमो १ अचक्खुदरिसणं १ पढमलेसतिगं ३ भव्वाभव्वदुगं २ मिच्छत्तं १ असण्णी १ आहार-ऽणाहार-दुगं २, एवं छव्वीसं भेया। सेसा छत्तीसं असंभविया। सुहु[3]मपज्जत्तगस्स वि एवं। णवरं अणा-हारगो न होइ, तेण पणवीसं भेया २५।

बादरअपज्जत्तगस्स उत्तरभेया। तं जहा-तिरियगई १ एगिंदियत्तं १ तसवज्जा पंच थावरकाया ५ कायजोगं १ नपुंसगवेयं १ कसायचउक्कं ४ मइअण्णाणं १ सुयअण्णाणं १ असंजमो १ अचक्खुदरिसणं १ पढमलेसचउक्कं ४ भव्वाभव्वदुगं २ सासायणं १ मिच्छत्तं १ असण्णी १ आहारदुगं २। एवं अट्ठावीसं। सेसा चउत्तीसं असंभविया। बायरपज्जत्तगस्स एए। नवरं सासायणो तेउलेसा अणाहारगो न होइ त्ति पणवीसा।

बेइंदियअपज्जत्तगस्स उत्तरभेया। तं जहा-तिरियगई १ बेइंदियत्तं १ तसकायं १ काय-जोगं १ नपुंसगं १ कसायचउक्कं ४ अन्नाणदुगं २ असंजमो १ अचक्खुदरिसणं १ पढमलेस-तिगं ३ भव्वाभव्वदुगं २ सासणो १ मिच्छदिट्ठी १ असण्णी १ आहारदुगं २ तेवीसं भेया। सेसा अउणयालीसं असंभविया। बेइंदियपज्जत्तस्स एवं। नवरं सासणो अणाहारगो न होइ, भासाजोगो य होइ बावीसा।

तेइंदिय-चउरिंदिय अपज्जत्ताण वि बेइंदिय अपज्जत्तवुत्ता तेवीसा। पज्जत्तगाणं पज्ज-त्तबावीसा, नवरं चउरिंदियस्स चक्खुदरिसणं तेवीसइमं। एत्थ य इंदियवुड्ढी आलावगो भाणियव्वो।

असण्णिपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उत्तरभेया। तं जहा-मणुयगई १ तिरियगई १ पंचिंदियत्तं १ तसकायं १ कायजोगं १ वेयतिगं ३ कसायचउक्कं ४ अन्नाणदुगं २ असंजमो १ अचक्खुदरिसणं १

---

१ "एएसु बारससु ठाणेसु अपज्जत्ता" " इत्यपि। २ 'सेसेसु' एक्कारसजीवट्ठाणेसु तिन्नि" इत्यपि।
३ "मस्स पज्ज०" इत्यपि।

पढमलेसतिगं ३ भव्वाभव्वादुगं २ सासणो १ मिच्छद्दिट्ठी १ असन्नी आहारदुगं २ छव्वीसं भेया । पज्जत्तगस्स सासणो अणाहारगो मणुयगई न होइ त्ति, चक्खुदरिसणं भासा य होइ त्ति पणवीसा ।

सन्निपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उत्तरभेया । तं जहा–गइचउक्कं ४ पंचेंदियत्तं १ तसकायं १ कायजोगं १ वेयतिगं ३ कसायचउक्कं ४ नाणतिगं ३ अन्नाणतिगं ३ असंजमो १ अचक्खुदरिसणं १ ओहिदरिसणं १ लेसछक्कं ६ भव्वाऽभव्वदुगं २ सम्मत्तपंचगं ५ मिस्साभावाओ सन्नी १ आहारदुगं २ उणयालीसं भेया, सेसा तेवीसं असंभविया ।

सन्निपज्जत्तगस्स उत्तरभेया । तं जहा–गइचउक्कं ४ पंचिंदियत्तं १ तसकायं १ जोगतिगं वेयतिगं ३ कसायचउक्कं ४ नाणपंचगं ५ अणाणतिगं ३ संजमसत्तगं ७ दंसणचउक्कं ४ लेसछक्कं ६ भव्वाभव्वदुगं २ सम्मत्तछक्कगं ६ सन्नी १ आहारदुगं २ बावन्नं भेया, सेसा दस असंभविया ।

उत्तरबंधहेयवो तं जहा—

तेत्तीसा बत्तीसा, तेत्तीसा तिण्ह होइ चउतीसा । दो दो एगुत्तरिया, उणयाला चत्त दुग एगे ॥१॥
मिच्छत्तमणाभोगं, अजतो छक्काय एगअक्खे य । तह सोलस य कसाया, हासाईछक्क अपुमं च ॥२॥
धुवहेऊ इगतीसं, सामण्णेणं तु जीवठाणेसु । सेसा उ अधुवहेऊ, बोच्छं जा जस्स संभविया ॥३॥
सत्तसु वि अपज्जेसु ओरालियमीस कम्मइग जोगा । इय इगतीसे पक्खित्त, इंदियवुड्ढी य संभविया ॥४॥
अस्सन्नीसन्नीसुं, पुरिसं थीवेय खिवसु असमत्ते । नवरं सन्निअपज्जे, वेउव्वियमीसयं खिवसु ॥५॥
उरलं सुहुमसमत्ते, वेउव्विदुगेण संजुमं थूले । उरलं भासा इंदियवुड्ढी सेसं अपज्जसमं ॥६॥
परभविया मिच्छत्ता संभविया तेसु हुंति सव्वेसु । मणविन्नाणअभावा एक्कस्स कया विवक्खा उ ॥७॥
[1]इह बारस जीवट्ठाणगेसु अन्नं वि बेंति वेयदुगं । तं लद्धिसंभवेणं, तणुपज्जत्तीएँ ओरालं ॥८॥
इह हेउमग्गणा इह, भणिया तेरससु जीवठाणेसु । सन्नीपज्जत्ते पुण, गुणठाणकमेण नायव्वा ॥९॥

संपयं मूलपयडीसु बंधट्ठाणाइं आह—

सत्तऽट्ठ अट्ठ सत्तऽट्ठ अट्ठ बन्धुदउदीरणा [2]सत्ता ।
तेरससु जीवठाणेसु सन्निपज्जत्तए ओघो ॥११॥

(राम०) तेरससु जीवठाणेसु बंधे अट्ठ कम्माणि, अहवा सत्त, आउकम्मं विणा । उदए अट्ठ कम्माणि । उदीरणाए वि अट्ठ, अहवा सत्त आउकम्मं विणा । सत्ताए अट्ठ वि कम्माणि । सण्णिपज्जत्तए ओघो । सो य इमो–

आउविहूणा सत्त उ, मोहणिया-ऽऽउयविणा उ छब्बंधे । वेयणियएगबंधे, चत्तारि य बंधठाणाइं ॥
मोहविहूणा सत्त उ, उदए चत्तारि घाइकम्मविणा । तिन्नेव उदयठाणा, एवं सत्ताइ तिन्नेव ॥

---

१ "इह आइमंतजीवट्ठा०" इत्यपि पाठः । २ "संता" इत्यपि ॥

'अद्धावलियासेसे सत्त उदीरिंति आउकम्मविणा । वेयणियाऽऽउ विणा छ उ, मोहविहूणा उ पंचेव ॥
दो चेव नाम-गोए, उदीरणाठाण होंति पंचेव । ओघेण ठाणसंखा, सन्नीपज्जत्तए होइ ॥" ॥११॥

भणियाणि जीवट्ठाणेसु गुणट्ठाणाईणि । इयाणिं मग्गणाठाणेसु जीवट्ठाणाईणि दंसेउं मग्गणाठाणाणि ताव दंसेइ—

एत्तो गइइंदियकायजोयवेए कसायनाणेसु ।
संजमदंसणलेसा भवसम्मे सन्निआहारे ॥१२॥

(राम०) संपयं सयमेव सुत्तकारो इमां दारगाहां विवरेइ—

सुरनरतिरिनिरयगई इगि-बि-ति-चउरिंदिश्रा य पंचेंदी ।
पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणसइतसा काया ॥१३॥

(राम०) देवगई मणुयगई तिरियगई निरयगई ४ दारं । एगिंदियं बेइंदियं तेइंदियं चउरिंदियं पंचिंदियं ५ दारं । पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणस्सइतसा काया ६ दारं ॥१३॥

मणवइकाया जोगा इत्थी पुरिसो नपुंसगो वेया ।
कोहो माणो माया लोभो चउरो कसायत्ति ॥१४॥

(राम०) मणजोगो वइजोगो कायजोगो ३ दारं । इत्थिवेओ पुरिसवेओ नपुंसगवेओ ३ दारं । कोहो माणो माया लोभो ४ दारं ॥१४॥

मइसुयओहीमणकेवलाणि मइसुयअनाणविब्भंगा ।
सामइयछेयपरिहारसुहुमअहखायदेसजइअजया ॥१५॥

(राम०) मइनाणं सुयनाणं ओहिनाणं मणपज्जवनाणं केवलनाणं मइअन्नाणं सुयअन्नाणं विभंगनाणं ८ दारं । सामाइयं छेओवट्ठावणियं परिहारविसुद्धियं सुहुमसंपरायं अहक्खायं देसविरओ अविरओ ७ दारं ॥१५॥

अचक्खु-चक्खु-ओही-केवलदंसणमओ य छल्लेसा ।
किण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा य सुक्का य ॥१६॥

(राम०) अचक्खुदरिसणं चक्खुदरिसणं ओहिदरिसणं केवलदरिसणं ४ दारं । किण्हलेसा नीललेसा काउलेसा तेउलेसा पम्हलेसा सुक्कलेसा ६ दारं ॥१६॥

---

१ "अप्पप्पणो आउगमद्धाए आवलियसेसे सत्त उदीरंति, कम्हा ? आउगं आवलियागयं न उदीरंति त्ति काउं।" इति प्रत्यन्तरे टिप्पनकम् ॥

भव्व-अभव्वा खउवसम-खइय-उवसमिय-मीस-'सासाणा।
मिच्छो य सन्नसन्नी आहारणहार इय भेया ॥१७॥

(राम०) भव्वो अभव्वो २ दारं। खाओवसमियं सम्मत्तं खाइयं सम्मत्तं उवसमियं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं सासायणं मिच्छद्दिट्ठी ६ दारं। सण्णी असण्णी २ दारं। आहारगो अणाहारगो २ दारं ॥१७॥

एए उत्तरभेया बावट्ठी, एएसु जीवट्ठाणा कस्स केत्तिया ? तं भण्णइ—

सुरनरए सन्निदुगं नरेसु तइओ असन्निपज्जत्तो।
तिरियगईए चउदस एगिंदिसु आइमा चउरो ॥१८॥

(राम०) देवगईए निरयगईए य दो जीवठाणा-सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य। मणुयगईए तिन्नि जीवट्ठाणा—सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो असण्णी अपज्जत्तगो य। तिरियगईए चउदस, सव्वे[2]सिं तिरियगइसंभवाओ। एगिंदिएसु 'आइमा चउरो' सुहुम–बायरा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य ॥१८॥

बितिचउरिंदिसु दो दो अंतिमचउरो पणिंदिसु हवन्ति।
थावरपणगे पढमा चउरो चरमा दस तसेसु ॥ १९॥

(राम०) बेइंदिएसु दो—बेइंदिओ पज्जत्तगो अपज्जतगो य। तेइंदिएसु दो–तेइंदिओ पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य। चउरिंदिएसु दो जीवठाणा—चउरिंदिओ पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य। अंतिमचउरो पणिंदिसु हवंति—असन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य। '**थावर-पणगे पढमा चउरो**' त्ति पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया थावरा पंच, तत्थ पत्तेयं पत्तेयं पढमा चउरो—सुहुम-बायरा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य। '**चरमा**' अंतिमा दस तसकाए, ते य इमे—बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया असन्निपंचिंदिया सन्नी य पज्जत्तगा, अपज्जत्तगा य ॥१९॥

विगलतिअसन्निसन्नी पज्जत्ता पंच हुंति वइजोगे।
मणजोगे सन्निक्को पुमित्थिवेए चरमचउरो ॥२०॥

(राम०) बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया एए विगला, असन्निपंचिंदिया सण्णिपंचेंदिया य पज्जत्ता पंच जीवट्ठाणा वइजोगे हुंति। मणजोगे एगो सण्णी पज्जत्तगो। पुरिसवेए इत्थीवेए

१ "°सासाणे" इत्यपि। २ "°सिं सं०" इत्यपि पाठः।

'चरमचउरो' असन्नी सन्नी य पज्जत्तगा-ऽपज्जत्तगभेएण[1] चउरो। असण्णिपज्जत्तापज्जत्तगाणं कहं पुरिसित्थिवेयसंभवो। जओ नपुंसगा एव सुत्ते पढिया। भन्नइ–आकारमात्रमाश्रित्य ॥२०॥

काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणअविरयअचक्खू।
आइतिलेसा भव्वियरमिच्छआहारगे सव्वे ॥ २१ ॥

(राम०) [2]काओगो १ नपुंसगवेओ २ कसायचउक्कं ६ मइअन्नाणं ७ सुयअण्णाणं ८ अविरओ ९ अचक्खुदरिसणं १० किन्हलेसा ११ नीललेसा १२ काउलेसा १३ भव्वो १४ अभव्वो १५ मिच्छदिट्ठी १६ आहारगो १७ य एएसिं सत्तरसण्हं दाराणं जीवट्ठाणा चउदस वि, जओ सव्वेसिं संभवो ॥२१॥

मइसुयओहिदुगविभंगपम्हसुक्कासु तिसु य सम्मेसु।
सन्निम्मि य दो ठाणा सन्निअपज्जत्तपज्जत्ता ॥ २२ ॥

(राम०) मइनाणं १ सुयनाणं २ ओहिदुगं ४ विभंगनाणं ५ पम्हेलेसा ६ सुक्कलेसा ७ **'तिसु य सम्मेसु'** त्ति वेयगसम्मत्तं ८ खाइयसम्मत्तं ९ उवसमसम्मत्तं १० सण्णिओ ११ य एएसिं एक्कारसण्ह दाराणं दो जीवट्ठाणा– सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य ॥२२॥

एत्थ चोयगो भणइ–"उवसमसम्मदिट्ठिस्स एगं चेव जीवट्ठाणं संभवइ, जओ पढमसुवसमसम्मत्तं उप्पाइंतस्स तिपुंजीकरणकाले सन्नी पज्जत्तगो चेव, अपज्जत्तगस्स तिपुंजीकरणनिसेहाओ। अह भणिस्ससि उवसंतो पडंतो कालं करेइ सो अणुत्तरसुरेसु उववज्जइ त्ति तत्थ देवो लब्भइ, तं न; जओ कम्मपयडीए भणियं–'पढमसमए वि देवेसु उववज्जंतस्स करणाणि उग्घाडियाणि होंति' इइ वयणाओ करणेहिं उग्घाडिएहिं वेयगो चेव, न [3]उवसंतस्स अपज्जत्तगस्स संभवो। तदजुत्तं, अभिप्पायाऽपरिन्नाणाओ। जओ पंचसंगहे सव्वकम्माणं उदयट्ठाणेसु भूओगार-अप्पयर-अवट्ठिय-अव्वत्तोदयविचारे मोहस्सेव अव्वत्तोदया भणिया न सेसकम्माणं ते य सव्वद्धा उवसंतस्स मोहणीयस्स ^ अद्धाखयस्स व वेयपरिवडिया पढमसमए ^ उदया अव्वत्तोदया △ जओ वोत्तं–

"एगादहिगे पढमो, एगाई ऊणगम्मि बीओ य। तत्तियमित्तो तइओ पढमे समए अवत्तव्वो॥" △

नाणाजीवापेक्खया पंच, तं जहा–एक्कोदओ, छलोदओ, सत्तोदओ, अट्ठोदओ, नवोदओ। तत्थ एक्कोदओ लोभस्स एक्कस्स सो य अद्धाक्खए परिवडंतस्स सुहुमसंपरायपढमसमए लब्भइ सेसा चत्तारि भवक्खए व सव्वट्ठसिद्धे देवस्स पढमसमए उववज्जंतस्स

१ "नं पत्तेयं पत्तयं चउरो" इत्यपि। २ काययोगः। ३ "उवसमसम्मत्तस्स अप०" इत्यपि पाठः।
^ एतच्चिह्नद्वयमध्यगतः पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति।

भव्व-अभव्वा खउवसम-खइय-उवसमिय-मीस-[1]सासाणा ।
मिच्छो य सन्नसन्नी आहारणहार इय भेया ॥१७॥

(राम०) भव्वो अभव्वो २ दारं । खाओवसमियं सम्मत्तं खाइयं सम्मत्तं उवसमियं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं सासायणं मिच्छद्दिट्ठी ६ दारं । सण्णी असण्णी २ दारं । आहारगो अणाहारगो २ दारं ॥१७॥

एए उत्तरभेया बावट्ठी, एएसु जीवट्ठाणा कस्स केत्तिया ? तं भण्णइ—

सुरनरए सन्निदुगं नरेसु तइओ असन्निपज्जत्तो ।
तिरियगईए चउदस एगिंदिसु आइमा चउरो ॥१८॥

(राम०) देवगईए निरयगईए य दो जीवठाणा-सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । मणुयगईए तिन्नि जीवट्ठाणा—सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो असण्णी अपज्जत्तगो य । तिरियगईए चउदस, सव्वे[2]सिं तिरियगइसंभवाओ । एगिंदिएसु 'आइमा चउरो' सुहुम—बायरा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य ॥१८॥

बितिचउरिंदिसु दो दो अंतिमचउरो पणिंदिसु हवन्ति ।
थावरपणगे पढमा चउरो चरमा दस तसेसु ॥ १९॥

(राम०) बेइंदिएसु दो—बेइंदिओ पज्जत्तगो अपज्जतगो य । तेइंदिएसु दो-तेइंदिओ पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । चउरिंदिएसु दो जीवठाणा—चउरिंदिओ पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । अंतिमचउरो पणिंदिसु हवंति—असन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । 'थावर-पणगे पढमा चउरो' त्ति पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया थावरा पंच, तत्थ पत्तेयं पत्तेयं पढमा चउरो—सुहुम-बायरा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । 'चरमा' अंतिमा दस तसकाए, ते य इमे—बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया असन्निपंचिंदिया सन्नी य पज्जत्तगा, अपज्जत्तगा य ।'१९॥

विगलतिअसन्निसन्नी पज्जत्ता पंच हुंति वइजोगे ।
मणजोगे सन्निक्को पुमित्थिवेए चरमचउरो ॥२०॥

(राम०) बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया एए विगला, असन्निपंचिंदिया सण्णिपंचेंदिया य पज्जत्ता पंच जीवट्ठाणा वइजोगे हुंति । मणजोगे एगो सण्णी पज्जत्तगो । पुरिसवेए इत्थीवेए

---

१ "°सासाणे" इत्यपि । २ "°सिं सं०" इत्यपि पाठः ।

'चरमचउरो' असन्नी सन्नी य पज्जत्तगा-ऽपज्जत्तगभेएण[1] चउरो। असण्णिपज्जत्तापज्जत्तगाणं कहं पुरिसित्थिवेयसंभवो। जओ नपुंसगा एव सुत्ते पढिया। भन्नइ—आकारमात्रमाश्रित्य ॥२०॥

काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणअविरयअचक्खू।
आइतिलेसा भव्वियरमिच्छआहारगे सव्वे ॥ २१ ॥

(राम०) [2]काओगो १ नपुंसगवेओ २ कसायचउक्कं ६ मइअन्नाणं ७ सुयअण्णाणं ८ अविरओ ९ अचक्खुदरिसणं १० किन्हलेसा ११ नीललेसा १२ काउलेसा १३ भव्वो १४ अभव्वो १५ मिच्छदिट्ठी १६ आहारगो १७ य एएसिं सत्तरसण्हं दाराणं जीवट्ठाणा चउदस वि, जओ सव्वेसिं संभवो ॥२१॥

मइसुयओहिदुगविभंगपम्हसुक्कासु तिसु य सम्मेसु।
सन्निम्मि य दो ठाणा सन्निअपज्जत्तपज्जत्ता ॥ २२ ॥

(राम०) मइनाणं १ सुयनाणं २ ओहिदुगं ४ विभंगनाणं ५ पम्हेलेसा ६ सुक्कलेसा ७ 'तिसु य सम्मेसु' त्ति वेयगसम्मत्तं ८ खाइयसम्मत्तं ९ उवसमसम्मत्तं १० सण्णिओ ११ य एएसिं एक्कारसण्ह दाराणं दो जीवट्ठाणा— सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य ॥२२॥

एत्थ चोयगो भणइ—"उवसमसम्मदिट्ठिस्स एगं चेव जीवट्ठाणं संभवइ, जओ पढमम्मुवसमसम्मत्तं उप्पाइंतस्स तिपुंजीकरणकाले सन्नी पज्जत्तगो चेव, अपज्जत्तगस्स तिपुंजीकरणनिसेहाओ। अह भणिस्ससि उवसंतो पडंतो कालं करेइ सो अणुत्तरसुरेसु उववज्जइ त्ति तत्थ देवो लब्भइ, तं न; जओ कम्मपयडीए भणियं—'पढमसमए वि देवेसु उववज्जंतस्स करणाणि उग्घाडियाणि होंति' इइ वयणाओ करणेहिं उग्घाडिएहिं वेयगो चेव, न [3]उवसंतस्स अपज्जत्तगस्स संभवो। तदजुत्तं, अभिप्पायाऽपरिन्नाणाओ। जओ पंचसंगहे सव्वकम्माणं उदयट्ठाणेसु भूओगार-अप्पयर-अवट्ठिय-अव्वत्तोदयविचारे मोहस्सेव अव्वत्तोदया भणिया न सेसकम्माणं ते य सव्वहा उवसंतस्स मोहणीयस्स ^ अद्धाखयस्स व वेयपरिवडिया पढमसमए ^ उदया अव्वत्तोदया △ जओ वोत्तं—

"एगादहिगे पढमो, एगाई ऊणगम्मि बीओ य। तत्तियमित्तो तइओ पढमे समए अव्वत्तव्वो ॥" △

नाणाजीवापेक्खया पंच, तं जहा—एक्कोदओ, छक्कोदओ, सत्तोदओ, अट्ठोदओ, नवोदओ। तत्थ एक्कोदओ लोभस्स एक्कस्स सो य अद्धाक्खए परिवडंतस्स सुहुमसंपरायपढमसमए लब्भइ सेसा चत्तारि भवक्खए व सव्वट्ठसिद्धे देवस्स पढमसमए उववज्जंतस्स

---

१ "णं पत्तेयं पत्तयं चउरो" इत्यपि। २ काययोगः। ३ "उवसमसम्मत्तस्स अप०" इत्यपि पाठः।
^ एतच्चिह्नद्वयमध्यगतः पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति।

लब्भंति। जओ "उवसंतो कालगओ सव्वट्ठे जाइ"त्ति भगवईसिद्धं । तत्थ छलोदओ अणंताणुबंधिवज्जकसाया [1]तिन्नि हासो रई य पुरिसवेओ य । सत्तोदओ भएण वा दुगुंछाए वा वेयगसम्मत्ते वा छुढे तिहा होइ । अट्ठोदओ वि तिहा भयदुगुंछाए भयवेयगेण दुगुंछावेयगेण व छुढे । नवोदओ भयदुगुंछावेयगेण तिहि वि [2]छुढेहि संभवइ । तत्थ एक्को छलोदओ दो य सत्तोदया वेयगरहिया एको अट्ठोदओ सो वि वेयगरहिओ एए चत्तारि उदया उवसमसम्मदिट्ठीणं [3]तहा एए चत्तारि उदया खाइगसम्मद्दिट्ठीणं च लब्भंति । तत्थ करणेसु उग्घाडिएसु वि कोइ कस्सइ जीवस्स उदयमागच्छइ । ते पुण पढमसमए अन्नत्तोदया । बीयाइसु अवट्ठिय-[4]सूओगाराईणि । तओ तत्थ उवसंतो कालगओ उवसमसम्मद्दिट्ठी अपज्जत्तगो लब्भइ । △अह भणिस्ससि खाइगदिट्ठिस्सेव वेयगरहिया उदया, तन्न, जओ पुढो विवक्खाभावो △ । जं पुण भणियं कम्मपगडीए पढमसमए करणाणि 'पढमसमए करणाणि उग्घाडियाणि' तं पि न विहडइ । जओ कस्सवि जीवस्स सत्तोदओ अट्ठोदओ नवोदओ वेयगसम्मत्तेण समं उदयमागच्छंति तं तं जीवं पडुच्च तदपि घडः-अन्नं च सत्तरीचुण्णीए भणियं— "पणवीससत्तावीसोदया देवनेरइए वेउव्विए पडुच्च नेरइया वेयगखाइयदिट्ठी देवा तिविहसम्मद्दिट्ठीवि । एए य पणवीससत्तावीसोदया अपज्जत्तोदया तेसु वि अपज्जत्तगो देवो उवसमसम्मद्दिट्ठी लब्भइ त्ति । अतो जुत्तमुत्तं सुत्तयारेण 'उवसमसम्मद्दिट्ठिस्स दो वि जीवट्ठाणा' । पज्जत्तं वित्थरेण ॥२२॥

पगयं भणामो—

मणपज्जवकेवलदुगसंजयदेसजइमीसदिट्ठीसु ।
सन्नी पज्जो चक्खुंमि तिन्नि छ व पज्जियरचरमा ॥२३॥

(राम०) मणनाणं 'केव लदुगं' केवलनाणं केवलंदसणं च, संजया पंच—सामाइयं छेओवट्ठावणियं परिहारविसुद्धीयं सुहुमसंपरायं अहक्खायं, देसविरओ सम्मामिच्छद्दिट्ठी य एएसिं दसण्हं दाराणं एगं जीवट्ठाणं सन्नी पज्जत्तगो । चक्खुदंसणे—चउरिंदिय-असण्णिपंचेंदिय-सन्निपंचेंदिया पज्जत्तगा तिन्नि । केसिंचि मएण [5]छज्जीवट्ठाणाणि—तिन्नि पज्जत्तगा "[6]इयरे' लद्धीए पज्जत्तगा करणेण अपज्जत्तगा य तिण्णि एवं छ ॥२३॥

सत्त उ मामाणे वायराइ छ अपज्जसन्निपज्जो य ।
तेउल्लेमे बायरअपजत्तो दुविहसन्नी य ॥२४॥

---

१ "तिण्णि द न्हं जुयलाणं एगयरं पुरिस°" इत्यपि पाठन्तरम् । २ "छुढे त्ति संभवइ" इत्यपि । ३ "तहा" इति प्रत्यन्तरे नास्ति । ४ "भूओगाराइ त्ति" इत्यपि पाठः । ५ "छ जीव°" इत्यपि । ६ "इयरे अपज्जत्तगा य" इत्यपि । △ एतच्चिह्नद्वयान्तर्गतः पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति ।

(राम०) सासायणसम्मत्ते सत्त जीवट्ठाणा–सुहुमपज्जत्तगवज्जा छ अपज्जत्तगा सन्नी पज्जत्तगो य। अपज्जत्तगेसु सासणो कहं ? भण्णइ–अपज्जत्तगा दुविहा-करणअपज्जत्तगा लद्धिअपज्जत्तगा य, लद्धिअपज्जत्तगेसु सासाणो न लब्भइ, करणअपज्जत्तेसु लद्धीए पज्जत्तगेसु सासणो जहण्णेणं एक्कं समयं; उक्कोसेणं किंचिऊणं छावलियकालं लब्भइ। किं निमित्तं कालनियमणं ? जओ एएसु △छसु अपज्जत्तगेसु △पुव्वं बद्धाउया उववज्जंति, तत्थ बायरेगिंदिएसु देवा ईसाणंता तिरियमणुया य कम्मभूमिजा उववज्जंति, विगलअसन्नीसु तिरियमणुया चेव △सण्णी△ कम्मभूमिजा उववज्जंति, सन्नीसु चउगइया वि उववज्जंति, न पुण [1]एए सु अपज्जत्तगेसु। सन्नीपज्जगस्स पुण उक्कोसेणं छावलियकालो वि लब्भइ। जओ सम्मत्तुप्पत्ती सासणभावो वि अत्थि। [2]तेउलेसे तिन्नि जीवट्ठाणाणि–बायरएगिंदिओ अपज्जत्तगो पुव्वुत्तविहीए सन्नी पज्जत्तोऽपज्जत्तगो य।

अस्सन्नि याइ बारस अणहारे अट्ठ सत्त अपजत्ता।
सन्नी पज्जत्तो तह इय गइयाइसु जियट्ठाणा ॥२५॥

(राम०) असण्णिम्मि आइमा बारस जीवट्ठाणा–सण्णिपज्जत्तापज्जत्तगवज्जा। अणाहारे अट्ठ जीवट्ठाणा-सत्त अपज्जत्तगा अंतरगईए, अट्ठमो केवलीसमुग्घाए तिचउत्थपंचमसमएसु ॥२५॥

गइयाइसु [3]जीवट्ठाणा मग्गिया। इयाणिं गुणठाणा मग्गिज्जंति, तत्थ ताव गुणठाणा दंसेइ–

मिच्छे सासणमिस्से अविरयदेसे पमत्तअपमत्ते।
नियटिअनियट्टिसुहुमुवसमखीणसजोगजोगिगुणा ॥२६॥

(राम०) मिच्छदिट्ठिगुणट्ठाणं सासायणगुणट्ठाणं सम्मामिच्छद्दिट्ठीगुणट्ठाणं अविरयसम्मदिट्ठिगुणट्ठाणं देसविरयगुणट्ठाणं पमत्तसजयगुणट्ठाणं अपमत्तसंजयगुणट्ठाणं अपुव्वकरणगुणट्ठाणं अनियट्टिबायरसंपरायगुणट्ठाणं सुहुमसंपरायगुणट्ठाणं उवसंतमोहगुणट्ठाणं खीणमोहगुणट्ठाणं सजोगिकेवलिगुणट्ठाणं अजोगिकेवलिगुणट्ठाणं ॥२६॥

एए गुणट्ठाणा कस्स मग्गणट्ठाणस्स केत्तिया तं भण्णइ—

चत्तारि देवनरएसु पंच तिरिएसु चउदस नरेसु।
इगिविगलेसु दो दो पंचिंदीसु चउद्दस वि ॥२७॥

(राव०) देवगईए निरयगईए पढमा चत्तारि गुणट्ठाणा। तिरियगईए पंचमो देसविरओ।

△ एतच्चिह्नद्वयमध्यगतः पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति। १ "एए छ अपज्जत्तगा" इत्यपि पाठः। २ "छसु सम्मत्तुप्पत्तो संभवइ।" इति पाठोऽप्यत्राधिकतयोपलभ्यते किन्तु सोऽत्र सगतो न भवतीति। ३ 'जियट्ठाणा" इत्यपि।

मणुयगईए चउद्दस वि । सव्वेसिं अहिगारि त्ति काउं । एगिंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं दो दो गुणट्ठाणा—मिच्छद्दिट्ठी सासायणो य । सासणस्स पुव्वुत्तो विही । पंचिंदिएसु चउदस वि । मणुस्साणं अंतब्भावाओ ।।२७।।

भूदगतरूसु दो एगमगणिवाऊसु चउदस तसेसुं ।
जोए तेरस वेए तिकसाए नव दस य लोभे ।।२८।।

(राम०) भू=पुढवी दग=आयुकाओ तरु=वणस्सइकाओ एएसिं दो गुणट्ठाणा—मिच्छद्दिट्ठी सासायणो य । तेउकाए वाउकाए एगो मिच्छद्दिट्ठी, तेसिं गुणांतरअसंभवाओ । तसकाए चउदस वि । मणुयगइअंतब्भावओ । जोए=जोगतिगे तेरस गुणट्ठाणा अजोगिवज्जा । वेए=वेयतिगे तिकसाए=कोहे माणे मायाए एएसिं छण्हं पढमा नव गुणट्ठाणा । लोभस्स एए नव, दसमो सुहुमसंपराओ ।।२८।।

मइसुयओहिदुगे नव अजयाइ जयाइ सत्त मणनाणे ।
केवलदुगंमि दो तिन्नि दो व पढमा अनाणतिगे ।। २९ ।।

(राम०) मइनाणं सुयनाणं ओहिनाणं ओहिदरिसणं एएसिं चउण्हं नव गुणट्ठाणा—अविरयसम्मत्ताओ आरब्भ जाव खीणमोहो । मणपज्जवनाणे सत्त गुणठाणा—पमत्तसंजयाओ जाव खीणमोहो । केवलनाणे केवलदरिसणे दो गुणठाणा-सजोगी अजोगी य । अन्नाणतिगे=मइअन्नाणे सुयअन्नाणे विभंगलक्खणे पढमा तिन्नि गुणट्ठाणा अहवा दोन्नि गुणठाणा-मिच्छद्दिट्ठी सासायणो य । केसिं मएण मिस्सो वि अन्नाणी भण्णइ, नाणकज्जाकरणाओ ।।२९।।

सामाइयछेएसुं चउरो परिहार दो पमत्ताई ।
देससुहुमे सगं पढमचरमचउअजयअहखाए ।। ३० ।।

(राम०) सामाइए छेओवट्ठावणिए य चत्तारि गुणट्ठाणा—पमत्तअपमत्तअपुव्वकरणअनियट्टि-बायरा । परिहारविसुद्धीए दो—पमत्तो अपमत्तो य । देसे देसविरओ । सुहुमे सुहुमसंपराओ । पढमा चत्तारि गुणट्ठाणा अविरयस्स । चरिमा उवसंतमोहाइया चत्तारि गुणट्ठाणा अहखायचरित्तस्स ।।३०।।

बारस अचक्खुचक्खुसु पढमा लेसासु तिसु छ दुसु सत्त ।
सुक्काए तेरस गुणा सव्वे भव्वे अभव्वेगं ।।३१।।

(राम०) बारस गुणट्ठाणा सजोगि-अजोगिवज्जा पढमा चक्खुस्स अचक्खुस्स य । लेसासु तिसु किन्हनीलकाऊसु पढमा छ गुणठाणा । तेउपम्हाए सत्तमो अप्पमत्तो । सुक्कलेसाए सव्वे अजोगिवज्जा तेरस । भव्वस्स चउदस वि गुणट्ठाणा । अभव्वस्स एगं मिच्छत्तं ।।३१।।

वेयग खइग उवसमे चउरो एक्कारसट्ठ तुरियाई ।
सेसतिगे सट्ठाणं सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥३२॥

(राम०) वेयगसम्मद्दिट्ठिस्स चत्तारि–अविरयसम्मद्दिट्ठी देसविरओ पमत्तो अपमत्तो य । खाइगसम्मद्दिट्ठिस्स एगारस–अविरयसम्माओ जाव अजोगिगुणट्ठाणं । उवसमसम्मद्दिट्ठिस्स अट्ठ-अविरयसम्मत्ताओ जाव उवसंतगुणट्ठाणं, अट्ठ गुणट्ठाणा उवसमसम्मत्ते । तत्थ अविरय-देशविरय-पमत्त-अपमत्ता उवसमसेढिं आरुहंति, कहं उवसमसम्मत्तं ? भन्नइ-मिच्छद्दिट्ठी अनियट्टिकरणट्ठिओ तहाविहविसुद्धिसमन्निओ उवसमसम्मत्तं चउण्हमेगयरं च पडिवज्जेइ। अविरओ देसो पमत्तो अपमत्तो वा । एवं उवसमसम्मत्तं । उक्तं च–

"सोलस मंदणुभागं संजमगुणत्तट्ठिओ जयइ । सोलस थीणगिद्धितिगमिच्छत्तापढमकसाया ॥"

'सेसतिगे सट्ठाणं' मीसे मीसं, सासायणे सासायणं, मिच्छे मिच्छत्तं । सन्निपंचेंदियस्स चउद्दस वि गुणट्ठाणा । असन्निस्स दो-मिच्छद्दिट्ठी सासायणो य ॥३२॥

आहारगेसु पढमा तेरसणाहारगेसु पंच इमे ।
[1]पढमंतदुगअविरया इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

(राम०) आहारगेसु सव्वे अजोगिकेवलिवज्जा तेरस । अणाहारगेसु पंच इमे पढमा दो=मिच्छद्दिट्ठी सासायणो य, अंतिमा दो=सजोगिकेवली समुग्घाए अजोगिकेवली य, अविरयसम्मद्दिट्ठी पंचमो य, विग्गहगईण पढमविग्गहं मोत्तुं ।

गइयाइसु बासट्ठिमेएसु इय भणियपयारेण गुणठाणा 'मग्गियत्ति सेसो ॥३३॥

इयाणिं जोगा मग्गिज्जंति । अओ पढमं ताव ते निदंसेइ—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं मणं तह वई य ।
उरलविउव्वाहारा मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥३४॥

(राम०) पुव्वमणिया जोगवियारणा इह दट्ठव्वा ॥३४॥

एक्कारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया ।
जोगा तिरियगईए तेरस आहारगदुगूणा ॥३५॥

(राम०) देवगईए निरयगईए एक्कारस जोगा, ओरालियदुगआहारदुगाणं एएसिं असंभवाओ । तिरियगईए तेरस जोगा, आहारगदुगस्स असंभवाओ ॥३५॥

---

१ "मग्गिया।" इत्यपि ।

मणुयगईए चउद्दस वि। सव्वेसिं अहिगारि त्ति काउं। एगिंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं दो दो गुणट्ठाणा—मिच्छद्दिट्ठी सासायणो य। सासणस्स पुव्वुत्तो विही। पंचिंदिएसु चउदस वि। मणुस्साणं अंतब्भावाओ ॥२७॥

भूदगतरूसु दो एगमगणिवाऊसु चउदस तसेसुं।
जोए तेरस वेए तिकसाए नव दस य लोभे ॥२८॥

(राम०) भू=पुढवी दग=आयुकाओ तरु=वणस्सइकाओ एएसिं दो गुणट्ठाणा—मिच्छद्दिट्ठी सासायणो य। तेउकाए वाउकाए एगो मिच्छद्दिट्ठी, तेसिं गुणांतरअसंभवाओ। तसकाए चउदस वि। मणुयगइअंतब्भावओ। जोए=जोगतिगे तेरस गुणट्ठाणा अजोगिवज्जा। वेए=वेयतिगे तिकसाए=कोहे माणे मायाए एएसिं छण्हं पढमा नव गुणट्ठाणा। लोभस्स एए नव, दसमो सुहुमसंपराओ ॥२८॥

मइसुयओहिदुगे नव अजयाइ जयाइ सत्त मणनाणे।
केवलदुगंमि दो तिन्नि दो व पढमा अनाणतिगे ॥ २९ ॥

(राम०) मइनाणं सुयनाणं ओहिनाणं ओहिदरिसणं एएसिं चउण्हं नव गुणट्ठाणा—अविरयसम्मत्ताओ आरब्भ जाव खीणमोहो। मणपज्जवनाणे सत्त गुणठाणा—पमत्तसंजयाओ जाव खीणमोहो। केवलनाणे केवलदरिसणे दो गुणठाणा-सजोगी अजोगी य। अन्नाणतिगे=मइअन्नाणे सुयअन्नाणे विभंगलक्खणे पढमा तिन्नि गुणट्ठाणा अहवा दोन्नि गुणठाणा-मिच्छद्दिट्ठी सासायणो य। केसिं मएण मिस्सो वि अन्नाणी भण्णइ, नाणकज्जाकरणाओ ॥२९॥

सामाइयछेएसुं चउरो परिहार दो पमत्ताई।
देससुहुमे सगं पढमचरमचउअजयअहखाए ॥ ३० ॥

(राम०) सामाइए छेओवट्ठावणिए य चत्तारि गुणट्ठाणा—पमत्तअपमत्तअपुव्वकरणअनियट्टि-बायरा। परिहारविसुद्धीए दो—पमत्तो अपमत्तो य। देसे देसविरओ। सुहुमे सुहमसंपराओ। पढमा चत्तारि गुणट्ठाणा अविरयस्स। चरिमा उवसंतमोहाइया चत्तारि गुणट्ठाणा अहखायचरित्तस्स ॥३०॥

बारस अचक्खुचक्खुसु पढमा लेसासु तिसु छ दुसु सत्त।
सुक्काए तेरस गुणा सव्वे भव्वे अभव्वेगं ॥३१॥

(राम०) बारस गुणट्ठाणा सजोगि-अजोगिवज्जा पढमा चक्खुस्स अचक्खुस्स य। लेसासु तिसु किन्हनीलकाउसु पढमा छ गुणठाणा। तेउपम्हाए सत्तमो अप्पमत्तो। सुक्कलेसाए सव्वे अजोगिवज्जा तेरस। भव्वस्स चउदस वि गुणट्ठाणा। अभव्वस्स एगं मिच्छत्तं ॥३१॥

वेयग खइग उवसमे चउरो एक्कारसट्ठ तुरियाई ।
सेसतिगे सट्ठाणं सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥३२॥

(राम०) वेयगसम्मद्दिट्ठिस्स चत्तारि–अविरयसम्मद्दिट्ठी देसविरओ पमत्तो अपमत्तो य । खाइगसम्मद्दिट्ठिस्स एगारस–अविरयसम्माओ जाव अजोगिगुणट्ठाणं । उवसमसम्मद्दिट्ठिस्स अट्ठ-अविरयसम्मत्ताओ जाव उवसंतगुणट्ठाणं, अट्ठ गुणट्ठाणा उवसमसम्मत्ते । तत्थ अविरय-देशवि-रय-पमत्त-अपमत्ता उवसमसेढिं आरुहंति, कहं उवसमसम्मत्तं ? भन्नइ-मिच्छद्दिट्ठी अनियट्टिकरण-ट्ठिओ तहाविहविसुद्धिसमन्निओ उवसमसम्मत्तं चउण्हमेगयरं च पडिवज्जेइ। अविरओ देसो पमत्तो अपमत्तो वा । एवं उवसमसम्मत्तं । उक्तं च–

"सोलस मंदणुभागं संजमगुणवट्टिओ जयइ । सोलस थीणगिद्धितिगमिच्छरापढमकसाया ॥"

'सेसतिगे सट्ठाणं' मीसे मीसं, सासायणे सासायणं, मिच्छे मिच्छत्तं । सन्निपंचेंदियस्स चउद्दस वि गुणट्ठाणा । असन्निस्स दो-मिच्छद्दिट्ठी सासायणो य ॥३२॥

आहारगेसु पढमा तेरसणाहारगेसु पंच इमे ।
[1]पढमंतदुगअविरया इय गइयाईसु गुणठाणा ॥३३॥

(राम०) आहारगेसु सव्वे अजोगिकेवलिवज्जा तेरस । अणाहारगेसु पंच इमे पढमा दो=मिच्छ-द्दिट्ठी सासायणो य, अंतिमा दो=सजोगिकेवली समुग्घाए अजोगिकेवली य, अविरयसम्मद्दिट्ठी पंचमो य, विग्गहगईण पढमविग्गहं मोत्तुं ।

गइयाइसु बासट्ठिभेएसु इय भणियपयारेण गुणठाणा 'मग्गियत्ति सेसो ॥३३॥

इयाणिं जोगा मग्गिज्जंति । अओ पढमं ताव ते निदंसेइ—

सच्चं मोसं मीसं असच्चमोसं मणं तह वई य ।
उरलविउव्वाहारा मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥३४॥

(राम०) पुव्वभणिया जोगवियारणा इह दट्ठव्वा ॥३४॥

एकारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया ।
जोगा तिरियगईए तेरस आहारगदुगूणा ॥३५॥

(राम०) देवगईए निरयगईए एक्कारस जोगा, ओरालियदुगआहारदुगाणं एएसिं असंभवाओ । तिरियगईए तेरस जोगा, आहारगदुगस्स असंभवाओ ॥३५॥

---

१ "मग्गिया।" इत्यपि ।

नरगइपणिंदितसतणुनरअपुमकसायमइसुओहिदुगे ।
अचक्खुछलेसाभव्वसम्मदुगसन्निसु य सव्वे ॥ ३६ ॥

(राम०) मणुयगईए १ पंचिंदिए २ तसकाए ३ कायजोगे ४ पुरिसवेए ५ नपुसंगवेए ६ कसायचउक्के वि १० मइनाणे ११ सुयनाणे १२ ओहिनाणे १३ ओहिदरिसणे १४ अचक्खुदरसिणे १५ लेसछक्के २१ भव्वे २२ वेयगसम्मत्ते २३ खाइगसम्मत्ते २४ सन्निए य २५, एएसिं पणवीसाए दाराणं पण्णरस वि जोगा । सव्वेसिं मणुयगईसंभवाओ ॥३६॥

एगिंदिएसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।
कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(राम०) एगिंदिएसु पंच जोगा—कम्मइगं ओरालियदुगं वेउव्वियदुगं च । वेउव्वियदुगं वाउए पडुच । कम्मइगं ओरालियदुगं असच्चमोसभासां य चत्तारि जोगा बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएसु ॥३७॥

कम्मुरलदुगं थावरकाए वाए विउव्विजुयलजुयं ।
पढमंतिममणवइदुगकम्मुरलदु केवलदुगंमि ॥३८॥

(राम०) कम्मगं ओरालियदुगं च तिन्नि जोगा थावरकाए । थावरकाओ पंचहा पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइ-कायो । वाए विउव्विदुगेण जुया ते चेव जोगा पंचेव । पढमं सच्चमणं सच्चभासा अंतिमं असच्चमोसमणं असच्चमोसा भासा य, कम्मणं ओरालियदुगं च सत्त जोगा केवलिदुगम्मि ॥३८॥

थीवेयअनाणोवसमअजयसासणअभव्वमिच्छेसु ।
तेरस मणवइमणनाणछेयसामइयचक्खुसु य ॥३९॥

(राम०) थीवेओ १ अन्नाणतिगं ४ उवसमसम्मत्तं ५ अविरओ ६ सासायणं ७ अभव्वं ८ मिच्छं ९ च, एएसु नवसु दारेसु तेरस जोगा । जओ आहारदुगस्सासंभवो । मणजोगो १ वइजोगो २ मणपज्जवनाणं ३ छेओवट्ठावणियं ४ सामाइयं ५ चक्खुदरिसणं ६ च एएसिं छण्हं दाराणं ओरालियमिस्सकम्मइगवज्जा तेरस जोगा । अपडिपुन्नो मिस्सो इति कहं वेउव्वाहारगमिस्सेसु चक्खुदरिसणं १ भाविनि भूतवदुपचारात् । भणियं च—
"थीमाइनवसु तेरस जोगाहारेसु हारगदुगूणा । कम्मुरलमीसऊणा मणमाईणं तु छण्हं पि ॥" ॥३९॥

परिहारे सुहुमे नव उरलवइमणा सकम्मुरलमिस्सा ।
अहखाए सविउव्वा मीसे देसे सविउवदुगा ॥ ४० ॥

(राम०) परिहारविसुद्धीए सुहुमसंपराए य नव नव जोगा मणचउक्कं वइचउक्कं ओरा-लियसरीरं च । ते य नवजोगा अहक्खाए ओरालियमीसकम्मगसरीरेण सह एक्कारस हवंति । अहक्खाए चारित्ते चत्तारि गुणट्ठाणा । तत्थ अजोगी अजोगो । उवसंतमोहखीणमोहे पडुच्च नव नव जोगा ।सजोगिकेवलिस्स केवलनाणभणिया सजोगे सत्त पुव्वुत्ता मिलिया अहक्खाए एक्कारस । ते नव पुव्वुत्ता वेउव्वियसरीरेण दस जोगा मीसे । नव पुव्वत्ता वेउव्वियदुगेण एक्का-रस जोगा देसविरयस्स ।।४०।।

कम्मुरलविउव्वदुगाणि चरम भासा य छ उ असन्निम्मि।
जोगा अकम्मगाहारगेसु कम्मणमणाहारे ॥ ४१ ॥

(राम०) कम्मगं ओरालियदुगं वेउव्वियदुगं असच्चमोसा भासा य छ जोगा असन्निस्स । जओ सव्वे असन्निपंचिंदियविगलिं [1]दियादओ असन्निगहणेण गहिया । जोगा चउदस आहारगस्स कम्मइगविणा । अणाहारगे एगो कम्मणजोगो । मग्गणठाणेसु जोगा मग्गिया ।।४१।।

इयाणिं उवओगा मग्गिज्जंति । जओ पढमं ते चेव निदंसेइ—

नाणं पंचविहं तह अन्नाणतिगं ति अट्ठ सागारा ।
चउदंसणमणगारा बारस जियलक्खणुवओगा ।।४२।।

(राम०) पंच नाणाणि, तिन्नि अन्नाणाणि; एए अट्ठ सागरोवओगा । चत्तारि दंसणाणि अणागारोवओगा । एवं बारस । एए जीवस्स लक्खणं=जीवावबोहस्स कारणं, एएहिं जीवो जाणिज्जइ त्ति जीवलक्खणुवओगा ।।४२।।

मणुयगईए बारस मणकेवलदुरहिया नवऽन्नासु ।
थावरइगबितिइंदिसु अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥ ४३ ॥

(राम०) मणुस्सगईए बारस वि उवओगा । जओ सव्वेसिं संभवो । मणपज्जवनाणकेव-लदुगवज्जिया नव अण्णासु तिसु गईसु । एएसिं तिण्हं उवओगाणं असंभवाओ । थावरकाया पंच, एगिंदिय-बेइंदिय तेइंदियाण य, एएसिं अट्ठण्हं दाराणं तिन्नि उवओगा—अचक्खुदंसणं मइअण्णाणं सुयअन्नाणं च ।।४३।।

---

१ "०दिय-एगिंदिया असन्नि०" इत्यपि ।

नरगइपणिंदितसतणुनरअपुमकसायमइसुओहिदुगे ।
अच्चक्खुछलेसाभव्वसम्मदुगसन्निसु य सव्वे ॥ ३६ ॥

(राम०) मणुयगईए १ पंचिदिए २ तसकाए ३ कायजोगे ४ पुरिसवेए ५ नपुंसगवेए ६ कमायचउक्के वि १० मइनाणे ११ सुयनाणे १२ ओहिनाणे १३ ओहिदरिसणे १४ अचक्खुदरसिणे १५ लेसछक्के २१ भव्वे २२ वेयगसम्मत्ते २३ खाइगसम्मत्ते २४ सन्निए य २५, एएसिं पणवीसाए दाराणं पण्णरस वि जोगा । सव्वेसिं मणुयगईसंभवाओ ॥३६॥

एगिंदिएसु पंच उ कम्मइगविउव्विउरलजुअलाणि ।
कम्मुरलदुगं अन्तिमभासा विगलेसु चउरोत्ति ॥३७॥

(राम०) एगिंदिएसु पंच जोगा—कम्मइगं ओरालियदुगं वेउव्वियदुगं च । वेउव्वियदुगं वाउए पडुच । कम्मइगं ओरालियदुगं असच्चमोसभासा य चत्तारि जोगा बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएसु ॥३७॥

कम्मुरलदुगं थावरकाए वाए विउव्विजुयलजुयं ।
पढमंतिममणवइदुगकम्मुरलदु केवलदुगंमि ॥३८॥

(राम०) कम्मगं ओरालियदुगं च तिन्नि जोगा थावरकाए । थावरकाओ पंचहा पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइ-कायो । वाए विउव्विदुगेण जुया ते चेव जोगा पंचेव । पढमं सच्चमणं सच्चभासा अंतिमं असच्चमोसमणं असच्चमोसा भासा य, कम्मणं ओरालियदुगं च सत्त जोगा केयलिदुगम्मि ॥३८॥

थीवेयअनाणोवसमअजयसासणअभव्वमिच्छेसु ।
तेरस मणवइमणनाणछेयसामइयचक्खुसु य ॥३९॥

(राम०) थीवेओ १ अन्नाणतिगं ४ उवसमसम्मत्तं ५ अविरओ ६ सासायणं ७ अभव्वं ८ मिच्छं ९ च, एएसु नवसु दारेसु तेरस जोगा । जओ आहारदुगस्सासंभवो । मणजोगो १ वइजोगो २ मणपज्जवनाणं ३ छेओवट्ठावणियं ४ सामाइयं ५ चक्खुदरिसणं ६ च एएसिं छण्हं दाराणं ओरालियमिस्सकम्मइगवज्जा तेरस जोगा । अपडिपुन्नो मिस्सो इति कहं वेउव्वाहारगमिस्सेसु चक्खुदरिसणं १ भाविनि भूतवदुपचारात् । भणियं च—
"थीमाइनवसु तेरस जोगाहारेसु हारगदुगूणा । कम्मुरलमीसऊणा मणमाईणं तु छण्हं पि ॥" ॥३९॥

परिहारे सुहुमे नव उरलवइमणा सकम्मुरलमिस्सा ।
अहखाए सविउव्वा मीसे देसे सविउवदुगा ॥ ४० ॥

(राम०) परिहारविसुद्धीए सुहुमसंपराए य नव नव जोगा मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालियसरीरं च । ते य नवजोगा अहक्खाए ओरालियमीसकम्मगसरीरेण सह एक्कारस हवंति । अहक्खाए चारित्ते चत्तारि गुणट्ठाणा । तत्थ अजोगी अजोगो । उवसंतमोहखीणमोहे पडुच्च नव नव जोगा ।सजोगिकेवलिस्स केवलनाणभणिया सजोगे सत्त पुव्वुत्ता मिलिया अहक्खाए एक्कारस । ते नव पुव्वुत्ता वेउव्वियसरीरेण दस जोगा मीसे । नव पुव्वुत्ता वेउव्वियदुगेण एक्कारस जोगा देसविरयस्स ।।४०।।

कम्मुरलविउव्वदुगाणि चरम भासा य छ उ असन्निम्मि ।
जोगा अकम्मगाहारगेसु कम्मणमणाहारे ॥ ४१ ॥

(राम०) कम्मगं ओरालियदुगं वेउव्वियदुगं असच्चमोसा भासा य छ जोगा असन्निस्स । जओ सव्वे असन्निपंचिंदियविगलिं [1]दियादओ असन्निगहणेण गहिया । जोगा चउदस आहारगस्स कम्मइगविणा । अणाहारगे एगो कम्मणजोगो । मग्गणठाणेसु जोगा मग्गिया ।।४१।।

इयाणिं उवओगा मग्गिज्जंति । अओ पढमं ते चेव निद्दंसेइ—

नाणं पंचविहं तह अन्नाणतिगं ति अट्ठ सागारा ।
चउदंसणमणगारा बारस जियलक्खणुवओगा ।।४२।।

(राम०) पंच नाणाणि, तिन्नि अन्नाणाणि; एए अट्ठ सागरोवओगा । चत्तारि दंसणाणि अणागारोवओगा । एवं बारस । एए जीवस्स लक्खणं=जीवाववोहस्स कारणं, एएहिं जीवो जाणिज्जइ त्ति जीवलक्खणुवओगा ।।४२।।

मणुयगईए बारस मणकेवलदुरहिया नवऽन्नासु ।
थावरइगबितिइंदिसु अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥ ४३ ॥

(राम०) मणुस्सगईए बारस वि उवओगा । जओ सव्वेसिं संभवो । मणपज्जवनाणकेवलदुगवज्जिया नव अण्णासु तिसु गईसु । एएसिं तिण्हं उवओगाणं असंभवाओ । थावरकाया पंच, एगिंदिय-वेइंदिय तेइंदियाण य, एएसिं अट्ठण्हं दाराणं तिन्नि उवओगा—अचक्खुदंसणं मइअण्णाणं सुयअन्नाणं च ।।४३।।

---

१ "०दिय-एगिंदिया असन्नि०" इत्यपि ।

चक्खुजुया चउरिंदिसु तं चिय बारस पणिंदितसकाए ।
जोए वेए सुक्काएँ भव्वसन्नीसु आहारे ॥ ४४ ॥

(राम०) "तं चिय"त्ति ते चेव तिन्नि चक्खुजुया चउरिंदिसु चउरो होंति । बारस उवओगा, पंचिंदिए १ तसकाए २ जोगतिगे ५ वेयतिगे ८ सुक्कलेसाए ९ भव्वे १० सण्णिए ११ आहारगे य १२ । एएसिं बारसण्हं दाराणं सव्वे वि उवओगा । जओ सव्वेसिं अहिगारिणो त्ति । कहं ? वेयतिगे बारस वि उवओगा, जाव दस एव संभवंति, जओ वेयत्तिगस्स अनियट्टिबायरे उदयवोच्छेओ, सच्चमेयं, परमाकारमात्रमाश्रित्य न दोषः ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुसु य ।
केवलदुगे नियदुगं खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(राम०) कसायचउक्के ४ लेसापणगे ९ चक्खु १० अचक्खुसु य ११, एएसिं एगारसण्हं दाराणं दस उवओगा, केवलिदुगअभावाओ । केवलिदुगे दो उवओगा, केवलनाणं दंसणं च । खइगे=खाइगसम्मत्ते नव उवओगा, अन्नाणतिगाभावाओ ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।
नाणचउदंसणतिगं केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(राम०) पढमनाणचउक्कं ४ पढमसंजमचउक्कं ८ वेयगसम्मत्तं ९ उवसमसम्मत्तं १० ओहिदंसणं च ११, एएसिं एगारसण्हं दाराणं सत्त उवओगा, नाणचउक्कं दंसणतिगं च । अहक्खायचारित्ते एए सत्त केवलदुगं च नव उवओगा ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे मीसे अनाणमीसं तं ।
केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥४७॥

(राम०) मइनाणं सुयनाणं ओहिनाणं ३ चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओहिदंसणं ६ च एए छ उवओगा देसविरयस्स । मीसे दंसणतिगं नाणतिगं अन्नाणमीसं । एवं केवलनाणदंसणं मणपज्जवनाणं विणा अविरए नव उवओगा । अविरओ सम्मद्दिट्ठी वा मिच्छद्दिट्ठी वा । सम्मद्दिट्ठिस्स नाणतिगं दंसणतिगं च एए छ । मिच्छद्दिट्ठिस्स अन्नाणतिगं दो दंसणा य । एवं नव ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।
दोदंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निंमि ॥ ४८ ॥

(राम०) अन्नाणतिगे ३ अभव्वे ४ सासायणे ५ मिच्छे य ६, एएसिं छण्हं दाराणं पंच

उवओगा, अन्नाणतिगं अचक्खुदंसणं चक्खुदंसणं च । एए चेव विभंगनाणं विण असण्णिस्स चत्तारि उवओगा ॥४८॥

मणनाणचक्खुरहिया दस उ अणाहारगेसु उवओगा ।
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥ ४९ ॥

(राम०) मणपज्जवनाणचक्खुदंसणरहिया अणाहारे दस उवओगा । जओ नाणतिगं अचक्खुदंसणं ओहिदंसणं च अविरयसम्मदिट्ठिस्स विग्गहगईए, अचक्खुदंसणं अन्नाणतिगं मिच्छदिट्ठिस्स विग्गहगईए लब्भइ । नणु विभंगनाणस्स अपज्जत्ते निसेहो दीसइ, कहं ? एत्थ तं भणियं । भण्णइ-"विभंगस्स भवट्ठि" इइ वयणाओ भणियविवाहपन्नत्तिमएण । जओ तत्थ वुत्तं-"अवहिं वा विभंगं वा अविग्गहे लब्भइ"त्ति वयणाओ न दोसो केवलदुगं केवलिसमुग्धाते तइय-चउत्थ-पंचमसमएसु लब्भइ । एवं अणाहारगस्स दस उवओगा ।

इय भणियपयारेण गइयाइएसु उवओगा मग्गिया ॥४९॥

इयाणिं पुण नयमएण मयंतरेण नाणत्तं इमं वक्खमाणं जोगेसु दट्ठव्वं । तमेव दंसेइ-

तणुवइमणेसु कमसो दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।
तेरसदुबारतेरस गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥ ५० ॥

(राम०) कायजोगे दो गुणट्ठाणा-मिच्छदिट्ठी सासायणो य । चत्तारि जीवट्ठाणा-सुहुमबायरएगिंदिया पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । तिन्नि उवओगा-मइअन्नाणं सुयअन्नाणं अचक्खुदंसणं च । पञ्च जोगा-कम्मणं ओरालियदुगं वेउव्वियदुगं च, वाउकाइए पडुच्च; जओ कायजोगस्स विवक्खा कया एगस्स । दारं । वइजोगे दो गुणट्ठाणा-मिच्छदिट्ठी सासायणो य । अट्ठ जीवट्ठाणा-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय असन्निपंचिंदिया अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य । एए चत्तारि वि अपज्जत्तगा करणेण चेव दट्ठव्वा । न उण लद्धीए । एवं अट्ठ जीवट्ठाणा । चत्तारि उवओगा-दो दंसणा दो अन्नाणा । एवं चत्तारि जोगा-कम्मइगं ओरालियदुगं असच्चमोसभासा य । एसा वइजोगस्स विवक्खा कया । दारं । मणजोगे तेरस गुणट्ठाणाअजोगिं विणा । दो जीवट्ठाणा-एगो सण्णी पज्जत्तगो, बीओ सो चेव करणअपज्जत्तगो लद्धीए पज्जत्तगो गहिओ । उवओगा बारस वि । जोगा तेरस-कम्मइगओरालियमीसरहिया । कहं ? केवलिस्स दव्वमणा-अविवक्खाओ । एवं मणवइकायविवक्खा कया । मणजोगो वइजोगो करणअपज्जत्तगाण कहं ? भण्णइ-भाविनि भूतवद् उपचारात् ॥५०॥

इयाणिं लेसामग्गणा भण्णइ । ताओ पुण मग्गणट्ठाणमज्झे वि भणियाओ । संपयं तेसिं चेव मग्गिज्जंति ।

चक्खुजुया चउरिंदिसु तं चिय बारस पणिंदितसकाए ।
जोए वेए सुक्काएँ भव्वसन्नीसु आहारे ॥ ४४ ॥

(राम०) "तं चिय"त्ति ते चेव तिन्नि चक्खुजुया चउरिंदिसु चउरो होंति । बारस उवओगा, पंचिंदिए १ तसकाए २ जोगतिगे ५ वेयतिगे ८ सुक्कलेसाए ९ भव्वे १० सण्णिए ११ आहारगे य १२ । एएसिं बारसण्हं दाराणं सव्वे त्रि उवओगा । जओ सव्वेसिं अहिगारिणो त्ति । कहं ? वेयतिगे बारस वि उवओगा, जाव दस एव संभवंति, जओ वेयत्तिगस्स अनियट्टिबायरे उदयवोच्छेओ, सच्चमेयं, परमाकारमात्रमाश्रित्य न दोषः ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस कसायपणलेसऽचक्खुचक्खुसु य ।
केवलदुगे नियदुगं खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

(राम०) कसायचउक्के ४ लेसापणगे ९ चक्खु १० अचक्खुसु य ११, एएसिं एगारसण्हं दाराणं दस उवओगा, केवलिदुगअभावाओ । केवलिदुगे दो उवओगा, केवलनाणं दंसणं च । खइगे=खाइगसम्मत्ते नव उवओगा, अन्नाणतिगाभावाओ ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।
नाणचउदंसणतिगं केवलदुजुयं अहक्खाए ॥४६॥

(राम०) पढमनाणचउक्कं ४ पढमसंजमचउक्कं ८ वेयगसम्मत्तं ९ उवसमसम्मत्तं १० ओहिदंसणं च ११, एएसिं एगारसण्हं दाराणं सत्त उवओगा, नाणचउक्कं दंसणतिगं च । अहक्खायचारित्ते एए सत्त केवलदुगं च नव उवओगा ॥४६॥

नाणतिगदंसणतिगं देसे मीसे अनाणमीसं तं ।
केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥४७॥

(राम०) मइनाणं सुयनाणं ओहिनाणं ३ चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओहिदंसणं ६ च एए छ उवओगा देसविरयस्स । मीसे दंसणतिगं नाणतिगं अन्नाणमीसं । एवं केवलनाणदंसणं मणपज्जवनाणं विणा अविरए नव उवओगा । अविरओ सम्मद्दिट्ठी वा मिच्छद्दिट्ठी वा । सम्मद्दिट्ठिस्स नाणतिगं दंसणतिगं च एए छ । मिच्छद्दिट्ठिस्स अन्नाणतिगं दो दंसणा य । एवं नव ॥४७॥

अन्नाणतिगअभव्वे सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।
दोदंसणतिअनाणा ते अविभंगा असन्निंमि ॥ ४८ ॥

(राम०) अन्नाणतिगे ३ अभव्वे ४ सासायणे ५ मिच्छे य ६, एएसिं छण्हं दाराणं पंच

उवओगा, अन्नाणतिगं अचक्खुदंसणं चक्खुदंसणं च। एए चेव विभंगनाणं विण असण्णिस्स चत्तारि उवओगा ॥४८॥

मणनाणचक्खुरहिया दस उ अणाहारगेसु उवओगा ।
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥ ४९ ॥

(राम०) मणपज्जवनाणचक्खुदंसणरहिया अणाहारे दस उवओगा। जओ नाणतिगं अचक्खुदंसणं ओहिदंसणं च अविरयसम्मद्दिट्ठिस्स विग्गहगईए, अचक्खुदंसणं अन्नाणतिगं मिच्छद्दिट्ठिस्स विग्गहगईए लब्भइ। नणु विभंगनाणस्स अपज्जत्ते निसेहो दीसइ, कहं? एत्थ तं भणियं। भन्नइ–"विभंगस्स भयणा" इइ वयणाओ भणियविवाहपन्नत्तिमएण। जओ तत्थ वुत्तं- "ओहिं वा विभंगं वा अविग्गहे लब्भइ"त्ति वयणाओ न दोसो केवलदुगं केवलिसमुग्घाते तइय-चउत्थ-पंचमसमएसु लब्भइ। एवं अणाहारगस्स दस उवओगा।

इय भणियपयारेण गइयाइएसु उवओगा मग्गिया ॥४९॥

इयाणिं पुण नयमएण मयंतरेण नाणत्तं इमं वक्खमाणं जोगेसु दट्ठव्वं। तमेव दंसेइ–

तणुवइमणेसु कमसो दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।
तेरसदुबारतेरस गुणजीवुवओगजोगत्ति ॥ ५० ॥

(राम०) कायजोगे दो गुणट्ठाणा–मिच्छद्दिट्ठी सासायणो य। चत्तारि जीवट्ठाणा–सुहुमबायरएगिंदिया पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य। तिन्नि उवओगा–मइअन्नाणं सुयअन्नाणं अचक्खुदंसणं च। पञ्च जोगा–कम्मणं ओरालियदुगं वेउव्वियदुगं च, वाउकाइए पडुच्च; जओ कायजोगस्स विवक्खा कया एगस्स। दारं। वइजोगे दो गुणट्ठाणा–मिच्छद्दिट्ठी सासायणो य। अट्ठ जीवट्ठाणा–बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय असन्निपंचिंदिया अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य। एए चत्तारि वि अपज्जत्तगा करणेण चेव दट्ठव्वा। न उण लद्धीए। एवं अट्ठ जीवट्ठाणा। चत्तारि उवओगा–दो दंसणा दो अन्नाणा। एवं चत्तारि जोगा–कम्मइगं ओरालियदुगं असच्चमोसभासा य। एसा वइजोगस्स विवक्खा कया। दारं। मणजोगे तेरस गुणट्ठाणाअजोगिं विणा। दो जीवट्ठाणा-एगो सण्णी पज्जत्तगो, बीओ सो चेव करणअपज्जत्तगो लद्धीए पज्जत्तगो गहिओ। उवओगा बारस वि। जोगा तेरस–कम्मइगओरालियमीसरहिया। कहं? केवलिस्स दव्वमणाअविवक्खाओ। एवं मणवइकायविवक्खा कया। मणजोगो वइजोगो करणअपज्जत्तगाण कहं? भण्णइ–भाविनि भूतवद् उपचारात् ॥५०॥

इयाणिं लेसामग्गणा भण्णइ। ताओ पुण मग्गणट्ठाणमज्झे वि भणियाओ। संपयं तेसिं चेव मग्गिज्जंति।

लेसा उ तिन्नि पढमा नारगविगलग्गिवाउकाएसु ।
एगिंदिभूतरूदगअसन्निसुं पढमिया चउरो ॥५१॥

(राम०) निरयगईए विगलतिगे तेउकाएवाउकाए य पढमाओ तिन्नि लेसाओ । एगिंदिय-पुढविकाय-वणस्सइकाय-आउकायअसन्नीणं पढमा चत्तारि लेसाओ । "असन्नीणं" ति बायर-एगिंदियअपज्जत्तगहणं, तस्स तेउलेससंभवो ॥५१॥

केवलजुयलअहक्खायसुहुमरागेसु सुक्कलेसेव ।
लेसासु छसु सठाणं गइयाइसु छावि सेसेसु ॥५२॥

(राम०) केवलनाणे केवलदंसणे अहक्खायचारित्ते सुहुमसंपरायचारित्ते एगा सुक्कलेसा । लेसासु छसु सट्ठाणं=स्वकीयं स्वकीयं स्थानम् । गइयाईणं सेसाणं एगचत्तालीसाए दाराणं सव्वेसिं छ लेसाओ । नणु जइ एगचत्तालीसाए दाराणं छ लेसा कहिया, कहं सामाइयाइसु किण्हाइलेसा ? जओ गुणलाभो सुहलेसाए न असुहा संभवो । भण्णइ– जओ एक्केकीए तारतमपरिणामभेएणं भेया असंखेज्जा । तेहिंतो जे मंदतरा परिणामविसेसा ते पडुच्च सामाइयाइसु वुत्ता । अओ भण्णइ मणपज्जवनाणसामाइयछेओवट्ठावणियपरिहारविसुद्धियदेसविरयाईसु वि ठाणेसु असुद्धलेसाणं न विरोहो उप्पत्तिकालं मोत्तूण । उक्तं च—

सम्मत्तसुयं सव्व सु लहइ सुद्धासु तिसु य चारित्तं । पुव्वपडिवण्णओ पुण, अण्णयरीए उ लेसाए ॥५२॥

इयाणिं अप्पाबहुयं भन्नइ

गइयाइसु अप्पबहुं भणामि सामन्नओ सठाणे वि ।
नरनिरयदेवतिरिया थोवा दुअसंखऽणंतगुणा ॥५३॥

(राम०) गइयाइसु चउदससु मग्गणद्दारेसु पत्तेयं पत्तेयं सट्ठाणे अप्पाबहुयं भणामि । सव्वथोवा मणुयगइजीवा, निरयगईए असंखगुणा, तओ देवगईए असंखेज्जगुणा, तिरियगईए अणंतगुणा जीवा । दारं ॥५३॥

पणचउतिदुएगिन्दी थोवा तिन्नि अहिया अणन्तगुणा ।
तसथावरपुढविजलवाउहरियकाया पुण कमेणं ॥५४॥

(राम०) थोवा पंचिंदिया १, । चउरिंदिया विसेसाहिया २, तेइंदिया विसेसाहिया ३, बेइंदिया विसेसाहिया ४, तओ एगिंदियजीवा अणंतगुणा ॥५४॥

थोवा असंखगुणिया तिन्नि विसेसाहिया अणंतगुणा ।
मणवयणकायजोगी थोवअसंखगुणणन्तगुणा ॥५५॥

(राम०) थोवा तसकाइया १, तेउकाइया असंखगुणा २, पुढविकाइया विसेसाहिया ३, आउकाइया विसेसाहिया ४, वाउकाइया विसेसाहिया ५, वणस्सइकाइया अणंतगुणा ६ दारं । थोवा मणजोगी १, वइजोगी असंखगुणा १, कायजोगी अणंतगुणा ३ । दारं ॥५५॥

पुरिसेहिंतो इत्थी संखेज्जगुणा नपुंसणन्तगुणा ।
माणी कोही मायी लोभी कमसो विसेसहिया ॥५६॥

(राम०) सव्वथोवा पुरिसवेया, इत्थिवेया संखेज्जगुणा । उक्तञ्च—

तिगुणा तिरूवअहिया तिरियाओ इत्थिओ मुणेयव्वा । सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिगा चेव ।
बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया य तह य देवीओ । देवाणं इइ वोत्तं सुत्ते जीवाभिगमनामे ॥

तेहिंतो नपुंसगा अणंतगुणा, जओ पंचेंदिया केई, एगिंदियविगलिंदिया सव्वे नपुंसगा १ दारं । सव्वथोवा माणकसाई १, कोहकसाई विसेसाहिया २, मायाकसाई विसेसाहिया लोभकसाई कमसो विसेसाहिया ४, सव्वजीवाणं कसाया पत्तेयं पत्तेयं अत्थित्ति कहं ऊणाहियत्तं ? भन्नइ,—उदयं पडुच्च माणोदए वट्टमाणा थोवा, सेसा कमेण विसेसाहिया, तेण अप्पबहुयं न दोसो । दारं ॥५६॥

मणपज्जविणो थोवा ओहीनाणी तओ असंखगुणा ।
मइसुयनाणी तत्तो विसेसअहिया समा दोवि ॥५७॥

(राम०) सव्वथोवा मणपज्जवनाणी, जओ ते मणुस्सा चरित्तिणो य; ओहिनाणी तओ असंखगुणा, जओ चउगइएसु वि ओहिनाणमत्थि; तओ मइनाणी सुयनाणी दो वि तुल्ला, पुव्वेहिंतो विसेसाहिया, जओ तिरियमणुया सम्मद्दिट्ठिणो ओहिं विणा केइ अत्थि, तेहिं साहिया ॥५७॥

विब्भंगिणो असंखा केवलनाणी तओ अणन्तगुणा ।
तत्तोऽणन्तगुणा दो मइसुयअन्नाणिणो तुल्ला ॥५८॥

(राम०) तओ विभंगनाणी असंखगुणा, एए वि चउगइया वि अत्थि, तओ केवलनाणी अणंतगुणा, जेण सिद्धा वि लब्भंति; तत्तो अणंतगुणा मइअन्नाणिसुयअन्नाणी, जओ एगिंदिया सव्वे वि लब्भंति; दोन्नि वि सट्ठाणओ तुल्ला । दारं ॥५८॥

सुहुमपरिहारअहखायछेयसामइयदेसजयअजया ।
थोवा संखेज्जगुणा चउरो अस्संखणन्तगुणा ॥५९॥

(राम०) सव्वथोवा सुहुमसंपरायचारित्ती, जेण उवसामग खवगा सुहुमलोभकिट्टिवेयगा घिप्पंति १, तओ संखेयगुणा परिहारविसुद्धीया, जओ विसिट्ठतवपडिवन्नगा भरहेरवयदससु खित्तेसु चरिमाइमतित्थयरतित्थेसु नवकगणट्ठिया घिप्पंति २, तओ अहक्खायचारित्ती संखेज्जगुणा, जओ उवसंतखीणमोहे केवली य सव्वे भवत्था घिप्पंति ३, तओ छेओवट्ठावणियचारित्ती संखेज्जगुणा, जओ पंचभरहे पंचएरवये पढमंतिमतित्थयरतित्थट्ठिया छेओवट्ठावणियचारित्तपडिवन्ना घिप्पंति ४, तओ संखगुणा सामाइयचारित्ती, जओ भरहएरवयमहाविदेहेसु सामाइयचारित्तट्ठिया घिप्पंति ५, देसविरया असंखेज्जगुणा, जओ तिरिएसु देसविरई अत्थि ६, तओ अविरया अणंतगुणा, जओ सव्वे एगिंदियादओ घेप्पंति, । दारं ॥५९॥

इय ओहिचक्खुकेवलअचक्खुदंसी कमेण विन्नेया ।
थोवा अस्संखगुणा अणन्तगुणिया अणन्तगुणा ॥६०॥

(राम०) सव्वथोवा ओहिदंसी १, चक्खुदंसी असंखगुणा २, केवलदंसी अणंतगुणा ३, सिद्धाणं पि दंसणमत्थित्ति । अचक्खुदंसी अणंतगुणा ४, एगिंदियाणं पि गहणाओ । दारं ॥६०॥

सुक्का पम्हा तेऊ काऊ नीला य किण्हलेसा य ।
थोवा दो संखगुणाऽणन्तगुणा दो विसेसहिया ॥६१॥

(राम०) सव्वथोवा सुक्कलेसा १, पम्हलेसा संखेयगुणा २, तेउलेसा संखेयगुणा ३, तओ काउलेसा अणंतगुणा ४, जओ एगिंदियादओ घेप्पंति, तओ नीललेसा विसेसाहिया ५, किण्हलेसा विसेसाहिया ६ । दारं ॥६१॥

थोवा जहण्णजुत्ताऽणंतयतुल्ल त्ति इह अभव्वजिया
तेहिंतोऽणंतगुणा भव्वा निव्वाणगमणरिहा ॥६२॥

(राम०) सव्वथोवा अभव्वा, ते य जहन्नं जुत्ताणंतयं, नवविहस्स अणंतस्स चउत्थं, तेण तुल्ला=समा इह=अप्पबहुत्ते, तेहिंतो भव्वा अणंतगुणा, केरिसा भव्वा ? आह–'**निव्वाण गमणरिह**' त्ति निव्वाणं=मोक्खो तत्थ गमणं अरिहंति=जोग्गा हुंति । जे ते निव्वाण गमणारिहा । दारं । ॥६२॥

सासाणउवसमियमिस्सवेयगक्खइगमिच्छद्दिट्ठी उ ।
थोवा दो संखगुणा असंखगुणिया अणंता दो ॥६३॥

(राम०) सव्वथोवा सासायणसम्मद्दिट्ठी १, उवसमसम्मद्दिट्ठी संखेज्जगुणा २. सम्मामिच्छद्दिट्ठी संखेयगुणिया ३, जं पुण उवरि सासायणाहिंतो मिस्सा असंखगुणिया भणिया तं गंथंतरमएण संभाविज्जइ. वेयगसम्मद्दिट्ठी असंखगुणा ४, खाइगसम्मद्दिट्ठी अणंतगुणा ५, सिद्धा वि गहिया, तओ मिच्छद्दिट्ठी अणंतगुणा ६, एगिंदियादओ गहिया । दारं । ॥६३॥

सन्नी थोवा तत्तो अणन्तगुणिया असन्निणो हुन्ति ।
थोवाणाहारजिया तदसंखगुणा सआहारा ॥६४॥

(राम०) सव्वथोवा सण्णी १, असण्णी अणंतगुणा २. जओ असन्निपंचेंदिया चउरिंदिया तेइंदिया वेइंदिया एगिंदिया य असन्निगहणेण गहिया। दारं । थोवा अणाहारजिया १, जओ विग्गइगइणो पढमविग्गहं मोत्तु तहा केवलीसमुग्घायगया सेलेसीपडिवन्ना य तहा सिद्धा अणाहारा, नो अन्ने, आहारगा असंखेज्जगुणा, जओ पुव्वुत्ता मोत्तूण सेसा सव्वे सआहारा जीवा । दारं ।

भणियं मग्गणठाणेसु अप्पबहुत्तं ॥६४॥

इयाणिं सीसमईवोहणत्थं सयमेव मग्गणट्ठाणेसु मग्गणट्ठाणमग्गणा बंधुत्तरहेउमग्गणा य कीरति—

तत्थ मूलभेया मग्गणाट्ठाणाण चउद्दस वि उत्तरभेएसु बासट्ठीए पाएणं संभवन्ति ।

उत्तरभेया पत्तेयं पत्तेयं कस्स वि केत्तिया १, तं भण्णइ—

तत्थ गइदारे-देवगईए देवगई पंचिंदियत्तं तसत्तं जोगतिगं पुरिसित्थिवेओ कसायचउक्कं नाणतिगं अन्नाणतिगं असंजमो दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वदुगं सम्मत्तछक्कं सन्नी आहारदुगं एवं एगुणचत्ता । मणुयगईए गइतिगं एगिंदिय विगलजाइचउक्कं थावरपणगं एए बारस वज्जित्ता पंचासा । तिरियगईए केवलदुगं गइतिगं मणपज्जवनाणं संजमपंचगं एए एक्कारस वज्जित्ता एक्कावन्ना । निरयगईए जहा देवगईए नवरं नपुंसवेओ एगो [1]सा य गई सुमलेसतिगं थीपुमं वज्जित्ता पणतीसा ।

इंदियदारे-एगिंदिएसु तिरियगई एगिंदियत्तं थावरपणगं कायजोओ नपुंसगवेओ कसायचउक्कं अन्नाणदुगं असंजमो अचक्खुदंसणं पढमलेसचउक्कं भव्वदुगं मिच्छत्तसासणे असण्णी आहारदुगं एवं अट्ठावीसा । विगलतिगे तिरियगई बेइंदियत्तं तसं कायजोगो वइजोगो नपुंसकवेओ कसायचउक्कं अन्नाणदुगं असंजमो अचक्खुदंसणं पढमलेसतिगं भव्वदुगं

१. "नरक०" टिप्पनकम्

सासणमिच्छत्ते असन्नी आहारदुगं एए चउवीसा । नवरं चउरिंदिए चक्खुदंसणं पणवीसा । पंचिंदिएसु एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं एए नव वज्जित्ता तेवन्ना होइ ।

कायदारे-पुढविकाए तिरियगई एगिंदियत्तं पुढविकाओ कायजोगो नपुंसगवेओ कसायचउक्कं अन्नाणदुगं असंजमो अचक्खुदंसणं पढमलेसचउक्कं भव्वदुगं सासणमिच्छत्ते असन्नी-आहारदुगं एया चउवीसा । एवं सेसेसु वि आउतेउवाउवणस्सईसु । नवरं तेउवाउकाए सासणतेउलेसे वज्जित्ता बावीसा । तहा आउकाए[1] इच्चाइ भाणियव्वं । तसकाए थावरपणगं एगिंदियजाई वज्जित्ता छप्पन्ना ।

जोगदारे-मणजोगे एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं असण्णी अणाहार एए एक्कारस वज्जित्ता एक्कावन्ना । वइजोगे विगलतिगेण असन्नी पणवन्ना । कायजोगे सव्वे ।

वेयदारे-पुरिसवेए एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं सुहुमसंपरायअहखायचारित्तं इत्थिनपुंसगवेयं असन्नी नरयगई वज्जित्ता पणयालीसा होइ । एवं इत्थिवेए वि । नवरं इत्थिवेओ भाणियव्वो पुरिसनपुंगवेयपरिहारविसुद्धिनिसेहो कायव्वो ४४ । नपुंसगवे इत्थिपुरिसवेओ केवलदुगं सुहुमसंपरायअहक्खायचारित्ते देवगई वज्जित्ता पणवन्ना ।

कसायदारे-कसायचउक्के वि पत्तेयं पत्तेयं तिन्नि कसाए केवलदुगं सुहुमसंपरायअहखायचारित्ते वज्जित्ता पणपन्ना होइ । नवरं लोभे सुहुमो वि होइ, एवं छप्पन्ना ।

नाणदारे-मइसुयओहिसु एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं अन्नाणतिगं मिच्छत्तसासणे अभव्वं असन्नी एए वज्जित्ता सेसा चोयालीसा। मणनाणे मणुयगई पंचिंदियत्तं तसत्तं जोयतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमपणगं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं सत्ततीसा होइ । केवलनाणे मणुयगई पंचिंदियत्तं तसत्तं जोगतिगं केवलनाणं अहक्खायचारित्तं केवलदंसणं सुक्कलेसा भव्वत्तं खाइगं सम्मत्तं सण्णी आहारगदुगं पनरस हुंति । मइअन्नाणसुयअन्नाणेसु नाणपंचगं संजमछक्कं केवलदंसणं ओहिदंसणं पढमसम्मत्तचउक्कं वज्जित्ता सेसा पणयालीसा । विभंगे एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं नाणपंचगं पढमसंजमछक्कं ओहिकेवलदंसणे पढमसम्मत्तचउक्कं असन्नी एए वज्जित्ता पणतीसा।

संजमदारे-सामाइयछेओवट्ठावणियपरिहारगेसु पत्तेयं पत्तेयं मणुयगई पंचिंदियत्तं तसं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं स्वं स्वं चारित्रं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं नवरं परिहारविसुद्धीए उवसमसम्मत्तं भयणा सन्नी आहारगं तेत्तीसा । नवरं परिहारविसुद्धिगे थीवेओ न होइ तओ बत्तीसा । सुहुमसंपराए मणुयगई पंचिंदियत्तं तसं जोगतिगं लोहकसाए

१. पुढविकाए तिरियगई इत्यादि पूर्वोक्त आलापकः । टिप्पनकम् ॥

नाणचउक्कं सुहुमसंपरायं दंसणतिगं केवलं विणा सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगं एकवीसा । अहखाए लोभं वज्जित्ता केवलदुगेण अनाहारगेण य तेवीसा । देसविरए मणुयतिरिय-गईओ पंचिंदियत्तं तसं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं मइसुयओहिनाणाणि देसविरई दंसणतिगं लेसाछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं एए तेत्तीसा । अविरए केवलदुगं मणपज्जवनाणं संजमछक्कं एए वज्जित्ता तेवन्ना ।

दंसणदारे–चक्खुदंसणे एगिंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-थावरपणगं केवलदुगं अणाहारं एए वज्जित्ता एक्कावन्ना । अचक्खुदंसणे केवलनाणदंसणे वज्जित्ता सट्ठी । ओहिदंसणे ओहिनाणवत् । केवलदंसणे केवलनाणवत् ।

लेसादारे–पढमलेसतिगे पत्तेयं पत्तेयं केवलदुगं अहखायं सुहुमसंपरायं विवक्खलेसापणगं वज्जित्ता तेवन्ना होइ । एवं तेउलेसे नवरं विगलजाइतिगं तेउकायवाउकाए निरयगई वज्जित्ता सत्तालीसा । पम्हसुक्कलेसाए वि एगिंदियपुढविआउवणस्सइअसण्णी वज्जित्ता बायालीसा । परं सुक्कलेसाए अहक्खायं सुहुमसंपरायं केवलदुगं पक्खिविय छायालीसा ।

भव्वदारे-भव्वे अभव्वं विणा सव्वे । अभव्वे नाणपंचकं संजमछक्कं दंसणदुगं भव्वं सम्मत्तपंचगं वज्जित्ता तेयालीसा ।

सम्मत्तदारे-वेयगउवसमसम्मत्तेसु एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं अन्नाणतिगं सुहुमसंपरायअहक्खायचारित्रमीससासणमिच्छत्ताणि सम्मत्तदुगं विवक्खं असन्नी अभव्वं वज्जित्ता पत्तेयं पत्तेयं ऊणचत्ता । नवरं उवसमसम्मत्ते सुहुमअहक्खायचारित्तेहि एक्कचत्ता । एवं खाइग-सम्मत्ते वि । परं केवलदुगे पक्खित्ते तेयालीसा । मिस्से गइचउक्कं पंचिंदियत्तं तसं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं अन्नाणतिगं नाणमीसं असंजमो दंसणतिगं लेसाछक्कं भव्वं मीसं सम्मत्तं सन्नी-आहारगं तेत्तीसा । सासणे वि नवरं एगिंदियजाइविगलिंदियजाइचउक्कं पुढविआउवणस्सइ-असन्नी अणाहारगं च पक्खिविय बायालीसा । मिच्छदिट्ठिस्स नाणपंचगं संजमछक्कं ओहिकेवल-दंसणे सम्मत्तपंचकं वज्जित्ता चउयालीसा ।

सन्निदारे–सन्निसु एगिंदियजाई विगलतिगं थावरपणगं असन्नी दस वज्जित्ता बावन्ना । असण्णिसु मणुयतिरियगई जाइपंचगं छक्काया कायजोगो वइजोगो नपुंसगवेओ कसायचउक्कं अन्नाणदुगं असंजमो चक्खुअचक्खुदंसणं पढमलेसचउक्कं भव्वदुगं सासणमिच्छत्ते असन्नी आहा-रदुगं छत्तीसा ।

आहारदारे–आहारे अणाहारगं विणा एगसट्ठी । अणाहारे संजमचत्तारि अहखायं विणा मीसदेसविरई मणनाणं आहारगं चक्खुदंसणं वज्जित्ता तेवन्ना ।

भणिया मग्गणट्ठाणेसु मग्गणठाणमग्गणा ।

सासणमिच्छत्ते असन्नी आहारदुगं एए चउवीसा । नवरं चउरिंदिए चक्खुदंसणं पणवीसा । पंचिंदिएसु एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं एए नव वज्जित्ता तेवन्ना होइ ।

कायदारे-पुढविकाए तिरियगई एगिंदियत्तं पुढविकाओ कायजोगो नपुंसगवेओ कसायचउक्कं अन्नाणदुगं असंजमो अचक्खुदंसणं पढमलेसचउक्कं भव्वदुगं सासणमिच्छत्ते असन्नीआहारदुगं एया चउवीसा । एवं सेसेसु वि आउतेउवाउवणस्सईसु । नवरं तेउवाउकाए सासणतेउलेसे वज्जित्ता बावीसा । तहा आउकाए[1] इच्चाइ भाणियव्वं । तसकाए थावरपणगं एगिंदियजाई वज्जित्ता छप्पन्ना ।

जोगदारे-मणजोगे एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं असण्णी अणाहार एए एक्कारस वज्जित्ता एक्कावन्ना । वइजोगे विगलतिगेण असन्नी पणवन्ना । कायजोगे सव्वे ।

वेयदारे-पुरिसवेए एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं सुहुमसंपरायअहखायचारित्तं इत्थिनपुंसगवेयं असन्नी नरयगई वज्जित्ता पणयालीसा होइ । एवं इत्थिवेए वि । नवरं इत्थिवेओ भाणियव्वो पुरिसनपुंगवे यपरिहारविसुद्धिनिसेहो कायव्वो ४४ । नपुंसगवे इत्थिपुरिसवेओ केवलदुगं सुहुमसंपरायअहक्खायचारित्ते देवगई वज्जित्ता पणवन्ना ।

कसायदारे-कसायचउक्के वि पत्तेयं पत्तेयं तिन्नि कसाए केवलदुगं सुहुमसंपरायअहखायचारित्ते वज्जित्ता पणपन्ना होइ । नवरं लोभे सुहुमो वि होइ, एवं छप्पन्ना ।

नाणदारे-मइसुयओहिसु एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं अन्नाणतिगं मिच्छत्तसासणे अभव्वं असन्नी एए वज्जित्ता सेसा चोयालीसा। मणनाणे मणुयगई पंचिंदियत्तं तसत्तं जोयतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमपणगं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं सत्ततीसा होइ । केवलनाणे मणुयगई पंचिंदियत्तं तसत्तं जोगतिगं केवलनाणं अहक्खायचारित्तं केवलदंसणं सुक्कलेसा भव्वत्तं खाइगं सम्मत्तं सण्णी आहारगदुगं पनरस हुंति । मइअन्नाणसुयअन्नाणेसु नाणपंचगं संजमछक्कं केवलदंसणं ओहिदंसणं पढमसम्मत्तचउक्कं वज्जित्ता सेसा पणयालीसा । विभंगे एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं नाणपंचगं पढमसंजमछक्कं ओहिकेवलदंसणे पढमसम्मत्तचउक्कं असन्नी एए वज्जित्ता पणतीसा।

संजमदारे-सामाइयछेओवट्ठावणियपरिहारगेसु पत्तेयं पत्तेयं मणुयगई पंचिंदियत्तं तसं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं स्वं स्वं चारित्रं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं नवरं परिहारविसुद्धीए उवसमसम्मत्तं भयणा सन्नी आहारगं तेत्तीसा । नवरं परिहारविसुद्धिंगे थीवेओ न होइ तओ बत्तीसा । सुहुमसंपराए मणुयगई पंचिंदियत्तं तसं जोगतिगं लोहकसाए।

---

१. पुढविकाए तिरियगई इत्यादि पूर्वोक्त आलापकः । टिप्पनकम् ॥

नाणचउक्कं सुहुमसंपरायं दंसणतिगं केवलं विणा सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगं एकवीसा । अहखाए लोभं वज्जित्ता केवलदुगेण अनाहारगेण य तेवीसा । देसविरए मणुयतिरिय-गईओ पंचिंदियत्तं तसं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं मइसुयओहिनाणाणि देसविरई दंसणतिगं लेसाछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं एए तेत्तीसा । अविरए केवलदुगं मणपज्जवनाणं संजमछक्कं एए वज्जित्ता तेवन्ना ।

दंसणदारे–चक्खुदंसणे एगिंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-थावरपणगं केवलदुगं अणाहारं एए वज्जित्ता एक्कावन्ना । अचक्खुदंसणे केवलनाणदंसणे वज्जित्ता सट्ठी । ओहिदंसणे ओहिनाणवत् । केवलदंसणे केवलनाणवत् ।

लेसादारे–पढमलेसतिगे पत्तेयं पत्तेयं केवलदुगं अहखायं सुहुमसंपरायं विवक्खलेसापणगं वज्जित्ता तेवन्ना होइ । एवं तेउलेसे नवरं विगलजाइतिगं तेउकायवाउकाए निरयगई वज्जित्ता सत्तालीसा । पम्हसुक्कलेसाए वि एगिंदियपुढविआउवणस्सइअसण्णी वज्जित्ता बायालीसा । परं सुक्कलेसाए अहक्खायं सुहुमसंपरायं केवलदुगं पक्खिविय छायालीसा ।

भव्वदारे-भव्वे अभव्वं विणा सव्वे । अभव्वे नाणपंचगं संजमछक्कं दंसणदुगं भव्वं सम्मत्तपंचगं वज्जित्ता तेयालीसा ।

सम्मत्तदारे-वेयगउवसमसम्मत्तेसु एगिंदियविगलजाइचउक्कं थावरपणगं केवलदुगं अन्नाणतिगं सुहुमसंपरायअहक्खायचारित्रमीससासणमिच्छत्ताणि सम्मत्तदुगं विवक्खं असन्नी अभव्वं वज्जित्ता पत्तेयं पत्तेयं ऊणचत्ता । नवरं उवसमसम्मत्ते सुहुमअहक्खायचारित्तेहिं एक्कचत्ता । एवं खाइग-सम्मत्ते वि । परं केवलदुगे पक्खित्ते तेयालीसा । मिस्से गइचउक्कं पंचिंदियत्तं तसं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं अन्नाणतिगं नाणमीसं असंजमो दंसणतिगं लेसाछक्कं भव्वं मीसं सम्मत्तं सन्नी-आहारगं तेत्तीसा । सासणे वि नवरं एगिंदियजाइविगलिंदियजाइचउक्कं पुढविआउवणस्सइ-असन्नी अणाहारगं च पक्खिविय बायालीसा । मिच्छदिट्ठिस्स नाणपंचगं संजमछक्कं ओहिकेवल-दंसणे सम्मत्तपंचकं वज्जित्ता चउयालीसा ।

सन्निदारे–सन्निसु एगिंदियजाई विगलतिगं थावरपणगं असन्नी दस वज्जित्ता बावन्ना । असण्णिसु मणुयतिरियगई जाइपंचगं छक्काया कायजोगो वइजोगो नपुंसगवेओ कसायचउक्कं अन्नाणदुगं असंजमो चक्खुअचक्खुदंसणं पढमलेसचउक्कं भव्वदुगं सासणमिच्छत्ते असन्नी आहा-रदुगं छत्तीसा ।

आहारदारे–आहारे अणाहारगं विणा एगसट्ठी । अणाहारे संजमचत्तारि अहखायं विणा मीसदेसविरई मणनाणं आहारगं चक्खुदंसणं वज्जित्ता तेवन्ना ।

भणिया मग्गणट्ठाणेसु मग्गणठाणमग्गणा ।

(राम०) इयाणिं बंधहेउमग्गणा गाहाहिं कीरइ—

मणुगइ १ पणिंदि २ तस ३ तणु ४ अचक्खु ५ सन्नी य६ आइच उलेसा १० ।
तह भव्वे ११ सव्वे वि हु ५७ सत्तावन्ना इगारससु ॥ १ ॥
ओराला २ हारदुगं २ मिच्छऽणाभोग १ नपुंस १ देवसु ।
[1]चय ५१ नारएसु ५० एवं नवरं नपुं खिवसु थीपुमं चयसु ॥ २ ॥
तिरियगइ १ अभव्व २ मिच्छे ३ अन्नाणतिगे य६ हारदुगऊणा ५५ ।
आहारि कम्मणूणा ५६ अणहारे [2]जोगचउदसहिं ४३ ॥ ३ ॥
वेयतिग ५५ चउकसाए ५४ पढियक्कवे मुत्तु संससंभविया ।
[3]आहारगं तु थीसुं ५३ मीसा ४१ साणा य ५० गुणगहिया ॥ ४ ॥
अण ४ मिच्छे ९ परिवज्जिय मइसुय२ ओहिदुग ४ रवइग ५ रवउवसमे ६-४८ ।
आहारगं च उवसमि ४६ गुणगहिओ देसविरओ य ३९ ॥ ५ ॥
मणवइ२चक्खुसु ३ हेऊ ५५ ओरालियमीसकम्मइगवज्जा ।
△नवर मणजोगि तइयं मणमोगं मिच्छ चउपन्ना ॥ ६ ॥
पणिंदिएसु हेऊ [4]घाउवमा तत्थ होंति छत्तीसा । △
सव्वे वि सुक्कपम्हसु २ अणभोगं मिच्छ१वज्जा हि ५६ ॥ ७ ॥
संजलण ४ जोगनवगं ९ हासाई ६ पुरिस १ अपुम २ वेयं च ।
परिहारि बंधहेऊ इगवीसं २१ जेण पुव्वधरो ॥ ८ ॥
वेउव्वाहारदुगं ४ थीवेयं पक्खिवाहि इगवीसे २६ ।
मण १ सामइए २ छेए ३ छव्वीसं तिसु वि पत्तेयं ॥ ९ ॥
केवलदुग, ७ अहखाए ११ ३ सुहुमसरागे १० य जोगपुव्वुत्ता ।
नवरं सुहुमसरागे दसमो लोभो य हेउ त्ति ॥ १० ॥
छक्कायवहो ६ फासो ७ हासाई १३ नपुम १४ सोलस कसाया ३० ।
अणभोगमिच्छ ३१ धुवया थावर ५इगिंदि विगल ९ असणाणं १० ॥ ११ ॥
कम्मणओरालदुगं थावरकाए ३४ [5]विउव्विजुय ५ वाए ३६ ।
[6]भासामणविगलणं, इंदियवुड्ढी य संभविया ॥ १२ ॥
इह अविरयम्मि हेऊ पण मिच्छा विरइ बारस कसाया ।
पणवीसं तह जोगा तेरस आहारगदुगूणा ॥ १३ ॥
संसइय अभिनिवेसा मणुए य पडुच्च पायसो होंति ।
अह सव्वेसु वि एए इह भविया अन्नभविया य ॥ १४ ॥

इयाणिं गुणट्ठाणेसु जीवट्ठाणाईणं मग्गणा भणइ—

---

१ "त्यज" इति टिप्पनकम् । २ "न्यूना" इति टिप्पनम् । ३ "आहारदुगं थीसु" इति जेसलमेर प्रतौ । ४ "घातोपमा" इति टिप्पनकम् । ५ "द्विकं गृहीतव्यम्" इति टिप्पनकम् । ६ "मासा विगलमणाणं" इति जेसलमेरप्रतौ । △ एतच्चिह्नद्वयगतः पाठो जेसलमेरप्रतौ नास्ति, तथा "सव्वे वि" इति स्थाने "मणजोग" इति पाठो दृश्यते ।

मिच्छे सव्वे छ अपज्ज सन्निपज्जत्तगो य सासाणे ।
सम्मे दुविहो सन्नी सेसेसु सन्निपज्जत्तो ॥६५॥

(राम०) मिच्छदिट्ठिस्स जीवट्ठाणा चउदस वि । सासायणस्स जीवट्ठाणा सत्त । छ अपज्जत्ता वायराई सन्निपज्जो य । सम्मो=अविरयसम्मद्दिट्ठी, तस्स दो जीवट्ठाणा-सन्नी पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य । सेसेसु एगारसमु गुणट्ठाणगेसु एगं जीवट्ठाणं सन्नी पज्जत्तओ ॥६५॥

इय जियठाणा गुणठाणगेसु जोगा य वोच्छमेत्ताहे ।
जोगाहारदुगूणा मिच्छे सासणअविरए य ॥६६॥

(राम०) मिच्छद्दिट्ठिसासायणअविरयसम्माद्दिट्ठीणं जोगा तेरस आहारगदुगूणा ॥६६॥

उरलविउव्ववइमणा दस मीसे ते विउव्विमीसजुया ।
देसजए एक्कारस साहारदुगा पमत्तेत्ते ॥६७॥

(राम०) ओरालियं विउव्वियं मणचउक्कं वइचउक्कं एए दसजोगा सम्मामिच्छद्दिट्ठिस्स । देसविरयस्स ते दस वेउव्विमीसजुया इक्कारस जोगा । पमत्तस्स ते इक्कारस आहारगदुगजुया जोगा तेरस ॥६७॥

एक्कारसप्पमत्ते, मणवइआहारगुरलवेउव्वा ।
अप्पुव्वाइसु पंचसु नव ओरालो मणवई य ॥६८॥

(राम०) एक्कारस अप्पमत्ते मणचउक्कं वइचउक्कं आहारगं ओरालियं वेउव्वियं मिस्सविरहेण । अपुव्वकरणा जाव खीणमोहो ताव पंचण्ह वि नव नव जोगा ओरालियं मणचउक्कं वइचउक्कं च ॥६८॥

चरिमाइममणवइदुगकम्मुरलदुगन्ति जोगिणो सत्त ।
गयजोगो य अजोगी वोच्छमओ बारसुवओगे ॥६९॥

(राम०) चरिमं असच्चमोसमणं आइमं सच्चमणं, एवं वई वि, चत्तारि, ओरालियं ओरालियमीसं कम्मइगसरीरं च, एए सत्त जोगा सजोगिकेवलिस्स । "गयजोगो य अजोगि" त्ति जोगनिरोहाओ अजोगिम्मि जोगा न होंति ॥६९॥

उवओगमग्गणा भण्णति—

अच्चक्खुचक्खुदंसणमन्नाणतिगं च मिच्छसासाणे ।
अविरयसम्मे देसे तिनाणदंसणतिगं ति छ उ ॥७०॥

(राम०) अचक्खुदंसणं चक्खुदंसणं अन्नाणतिगं च पंच उवओगा मिच्छे सासायणे य । अविरयसम्मे देसविरए य नाणतिगं दंसणतिगं छ उवओगा ॥७०॥

मीसे ते च्चिय मीसा सत्त पमत्ताइसुं समणनाणा ।
केवलियनाणदंसणउवओगा जोगजोगीसु ॥७१॥

(राम०) मिस्से ते च्चिय अण्णाणमिस्सा छच्चेव । सत्त पमत्ताईसु, एए छ मणनाणजुया सत्त उवओगा पमत्ताओ जाव खीणमोहो । सजोगिअजोगिकेवलीणं दो उवओगा–केवलनाणं केवलदंसणं च ॥७१॥

इयाणिं जे भावा सुत्ते भणिया वि इह न अहिगरिज्जंति ते दंसेइ—

सासणभावे नाणं विउव्विगाऽऽहारगे उरलमिस्सं ।
नेगिंदिसु सासाणोत्ति नेहहिगयं सुयमयंपि ॥७२॥

(राम०) इमाए गाहाए अयं भावत्थो–जहा– "सम्यग्दृष्टेर्ज्ञान' मिति वचनात् तत्त्वार्थादौ सासायणस्स वि नाणं भणियं, सासायणसम्मत्ताओ । तहा सुत्ते वेउव्वियलद्धिजुयतिरियमणुयाणं वेउव्वियारंभकाले वेउव्वियमीसं, संवरणकाले उ ओरालियमीसं भणियं, तहा आहारगकाले आहारगमीसं, संहरणकाले पुण ओरालियमीसं । तहा आवस्सए "उभयाभावो एगिंदिए" त्ति वचनाद् एगिंदिएसु सासाणसम्मत्तं निसिद्धं; एयं पुण वक्खाणं आगमे भणियमवि न अहिगयं=नादरियं इह पगरणे । कुतः ? जओ सासणस्स नाणं अणंताणुबंधिदूसियत्ताओ अप्पकालीणत्ताओ य न विवक्खियं, विउव्वियाहारउरलमिस्सं पुण सयगचुण्णिअभिप्पाएणं न विवक्खियं । तहा एगिंदिसु सासणभावो इह पगरणे भणिओ जीवसमासाऽभिप्पाएण, जओ तत्थ एगिंदियस्स वि सासणभावो भणिओ ॥७२॥

लेसाओ भणेइ ।

लेसा तिन्नि पमत्तं तेऊ पम्हा उ अप्पमत्तंता ।
सुक्का जाव सजोगी निरूद्धलेसो अजोगित्ति ॥७३॥

(राम०) मिच्छदिट्ठीओ जाव पमत्तसंजओ ताव छ लेसाओ, तिण्हं असुहलेसाणं पमत्ते अंतो । अप्पमत्तसंजयस्स लेसाओ तिण्णि, दोण्हं लेसाणं अपमत्तसंजओ अंतो । उवरिं सुक्कलेसा जाव सजोगिकेवली । अजोगी अलेसो ॥७३॥

इयाणिं गुणट्ठाणगेसु पसंगागया मग्गणट्ठाणमग्गणा सयमेव भण्णइ—

तत्थ सामन्नेण सव्वे मूलभेया पाएण सव्वेसु गुणट्ठाणगेसु संभवंति, उत्तरभेया पुण कस्स वि कित्तियप्पमाणा। अओ उत्तरभेयनिदंसणत्थं भन्नइ मिच्छादिट्ठिगुणट्ठाणाईसु। ते य भन्नंति—

तत्थ मिच्छद्दिट्ठिस्स उत्तरभेया—गइचउक्कं [1]इंदियपणगं कायछक्कं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं अन्नाणतिगं असंजमो दंसणदुगं लेसाछक्कं भव्वाभव्वदुगं मिच्छत्तं सन्निअसन्निदुगं आहारअणाहारदुगं एवं [3]चउयालीसा ४४, सेसा अट्ठारसा-ऽसंभविया।

सासायणस्य उत्तरभेया—गइचउक्कं जाइपणगं तेउकायवाउकायवज्जं कायचउक्कं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं अन्नाणतिगं असंजमो दंसणदुगं लेसछक्कं भव्वं सासायणसम्मद्दिट्ठी सन्नी असन्नी आहारगं अणाहारगं च एवं एगयालीसं ४१, इगवीसमसंभविया।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उत्तरभेया—गइचउक्कं पंचिंदियजाई तसकाओ जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणतिगं अन्नाणमिस्सं असंजमो दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मामिच्छद्दिट्ठी सन्नी आहारगं च एवं [4]तेत्तीसा ३३, एगूणतीसं असंभविया।

अविरयस्स उत्तरभेया—गइचउक्कं पंचिंदियजाई तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणतिगं असंजमो दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्तिगं सन्नी आहारअणाहारदुगं च एवं छत्तीसं ३६, छव्वीसं असंभविया।

देसविरयस्स उत्तरभेया—गइदुगं पंचिंदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणतिगं देससंजमो दंसणतिगं लेसाछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नीआहारगं एवं एते तेत्तीसं ३३, ऊणतीसं असंभविया।

पमत्तसंजयस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेंदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमतिगं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं एवं पणतीसं ३५ सत्तावीसं असंभविया।

अपमत्तसंजयस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेंदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमतिगं दंसणतिगं लेसतिगं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगो एवं बत्तीसं ३२, तीसं असंभविया।

अपुव्वकरणस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेंदियं तसकाओ जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमदुगं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगो एवं अट्ठावीसं २८, सेसा चउत्तीसं असंभविया। एवं अनियट्टीए वि।

सुहुमसंपरायस्स-मणुयगई पंचेंदियं तसकायं जोगतिगं वेयसुन्नं लोभं नाणचउक्कं सुहुमसंपराय-

---

१ "जाइपणगं" इत्यपि पाठः। २ "०निदंसणत्थं मि०" इत्यपि। ३ 'चउयालीसं' इति। ४ "तेत्तीसं" इत्यपि।

अचक्खुचक्खुदंसणमन्नाणतिगं च मिच्छसासाणे ।
अविरयसम्मे देसे तिनाणदंसणतिगं ति छ उ ॥७०॥

(राम०) अचक्खुदंसणं चक्खुदंसणं अन्नाणतिगं च पंच उवओगा मिच्छे सासायणे य । अविरयसम्मे देसविरए य नाणतिगं दंसणतिगं छ उवओगा ॥७०॥

मीसे ते च्चिय मीसा सत्त पमत्ताइसु समणनाणा ।
केवलियनाणदंसणउवओगा जोगजोगीसु ॥७१॥

(राम०) मिस्से ते च्चिय अण्णाणमिस्सा छच्चेव । सत्त पमत्ताईसु, एए छ मणनाणजुया सत्त उवओगा पमत्ताओ जाव खीणमोहो । सजोगिअजोगिकेवलीणं दो उवओगा-केवलनाणं केवलदंसणं च ॥७१॥

इयाणिं जे भावा सुये भणिया वि इह न अहिगरिज्जंति ते दंसेइ—

सासणभावे नाणं विउव्विगाऽऽहारगे उरलमिस्सं ।
नेगिंदिसु सासाणोत्ति नेहाहिगयं सुयमयंपि ॥७२॥

(राम०) इमाए गाहाए अयं भावत्थो—जहा— "सम्यग्दृष्टेर्ज्ञान' मिति वचनात् तत्त्वार्थावो सासायणस्स वि नाणं भणियं, सासायणसम्मत्ताओ । तहा सुत्ते वेउव्वियलद्धिजुयतिरियमणुयाणं वेउव्वियारंभकाले वेउव्वियमीसं, संवरणकाले उ ओरालियमीसं भणियं, तहा आहारगकाले आहारगमीसं, संहरणकाले पुण ओरालियमीसं । तहा आवस्सए "उभाय भावो एगिंदिए" त्ति वचनाद् एगिंदिएसु सासाणसम्मत्तं निसिद्धं; एयं पुण वक्खाणं आगमे भणियमवि न अहिगयं= नादरियं इह पगरणे । कुतः ? जओ सासणस्स नाणं अणंताणुबंधिदूसियत्ताओ अप्पकालीणत्ताओ य न विवक्खियं, विउव्वियाहारउरलमिस्सं पुण सयगचुण्णिअभिप्पाएणं न विवक्खियं । तहा एगिंदिसु सासणभावो इह पगरणे भणिओ जीवसमासाऽभिप्पाएण, जओ तत्थ एगिंदियस्स वि सासणभावो भणिओ ॥७२॥

लेसाओ भणेइ ।

लेसा तिन्नि पमत्तं तेऊ पम्हा उ अप्पमत्तंता ।
सुक्का जाव सजोगी निरुद्धलेसो अजोगित्ति ॥७३॥

(राम०) मिच्छद्दिट्ठीओ जाव पमत्तसंजओ ताव छ लेसाओ, तिण्हं असुहलेसाणं पमत्ते अंतो । अप्पमत्तसंजयस्स लेसाओ तिण्णि, दोण्हं लेसाणं अपमत्तसंजओ अंतो । उवरिं सुक्कलेसा जाव सजोगिकेवली । अजोगी अलेसो ॥७३॥

इयाणिं गुणट्ठाणगेसु पसंगागया मग्गणट्ठाणमग्गणा सयमेव भण्णइ—

तत्थ सामन्नेण सव्वे मूलभेया पाएण सव्वेसु गुणट्ठाणगेसु संभवंति, उत्तरभेया पुण कस्स वि कित्तियप्पमाणा। अओ उत्तरभेयनिदंसणत्थं भन्नइ मिच्छादिट्ठिगुणट्ठाणाईसु। ते य भन्नंति—

तत्थ मिच्छद्दिट्ठिस्स उत्तरभेया—गइचउक्कं [1]इंदियपणगं कायछक्कं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं अन्नाणतिगं असंजमो दंसणदुगं लेसाछक्कं भव्वाभव्वदुगं मिच्छत्तं सन्निअसन्निदुगं आहारअणाहारदुगं एवं [3]चउयालीसा ४४, सेसा अट्ठारसा-ऽसंभविया।

सासायणस्य उत्तरभेया—गइचउक्कं जाइपणगं तेउकायवाउकायवज्जं कायचउक्कं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं अन्नाणतिगं असंजमो दंसणदुगं लेसछक्कं भव्वं सासायणसम्मद्दिट्ठी सन्नी असन्नी आहारगं अणाहारगं च एवं एगयालीसं ४१, इगवीसमसंभविया।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उत्तरभेया—गइचउक्कं पंचिंदियजाई तसकाओ जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणतिगं अन्नाणमिस्सं असंजमो दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मामिच्छद्दिट्ठी सन्नी आहारगं च एवं [4]तेत्तीसा ३३, एगूणतीसं असंभविया।

अविरयस्स उत्तरभेया—गइचउक्कं पंचिंदियजाई तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणतिगं असंजमो दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारअणाहारदुगं च एवं छत्तीसं ३६, छव्वीसं असंभविया।

देसविरयस्स उत्तरभेया—गइदुगं पंचिंदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणत्तिगं देससंजमो दंसणत्तिगं लेसाछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं एवं एते तेत्तीसं ३३, ऊणतीसं असंभविया।

पमत्तसंजयस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेंदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमतिगं दंसणतिगं लेसछक्कं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगं एवं पणतीसं ३५ सत्तावीसं असंभविया।

अपमत्तसंजयस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेंदियं तसकायं जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमतिगं दंसणतिगं लेसतिगं भव्वं सम्मत्ततिगं सन्नी आहारगो एवं बत्तीसं ३२, तीसं असंभविया।

अपुव्वकरणस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेंदियं तसकाओ जोगतिगं वेयतिगं कसायचउक्कं नाणचउक्कं संजमदुगं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगो एवं अट्ठावीसं २८, सेसा चउत्तीसं असंभविया। एवं अनियट्टीए वि।

सुहुमसंपरायस्स-मणुयगई पंचेंदियं तसकायं जोगतिगं वेयसुन्नं लोभं नाणचउक्कं सुहुमसंपराय-

---

१ "जाइपणगं" इत्यपि पाठः। २ "०निदंसणत्थं मि०" इत्यपि। ३ 'चउयालीसं' इति। ४ "तेत्तीसं" इत्यपि।

चरित्तं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगं एवं एगवीसं२१, सेसा असंभविया ।

उवसंतस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेंदियं तसकायं जोगतिगं वेयसुन्नं कसायसुन्नं नाणचउक्कं उवसमियं चरित्तं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं सम्मदुगं सन्नी आहारगं एवं वीसं २०, सेसा असंभविया ।

खीणमोहस्स य—मणुयगई पंचिंदियत्तं तसकायं जोगतिगं वेयकसायसुन्नं नाणचउक्कं अहक्खायसंजमं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं खाइयसम्मत्तं सन्नी आहारगं एवं ऊणवीसा१९, सेसा असंभविया ।

सजोगिकेवलिस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचिंदियं तसकायं जोगतिगं वेयकसायसुन्नं नाणे केवलनाणं संजमं खाइयं दंसणं केवलदंसणं सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तं खाइयं सन्नी आहारणाहारं एवं पनरस १५, सेसा असंभविया ।

अजोगिकेवलिस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेंदियं तसकायं जोगवेयकसायसुन्नं केवलनाणं खाइयं संजमं केवलदंसणं लेसासुण्णं भव्वं खाइयं सम्मत्तं सन्नी अणाहारगं एवं दस १०, सेसा असंभविया ।

इयाणिं गुणट्ठाणगेसु बंधहेउ भणिउकामो पढमं ताव बंधस्स मूलभेया उत्तरभेया य दंसेइ—

बन्धस्स मिच्छअविरइकसायजोगत्ति हेयवो चउरो ।
पंच दुवालस पणुवीस पनरस कमेण भेया सिं ॥७४॥

(राम०) बंधो=कम्मबंधो, तस्स चत्तारि हेऊ, मिच्छत्तं ५, अविरई १२, कसाया २५, जोग १४ त्ति । एएसिं चउण्हं पि कमेणं जहासंखं पंच दुवालस पणुवीस पनरस भेया होंति ॥७४॥

ते य उत्तरभेए विवरेइ—

आभिग्गहियं अणभिग्गहं च तह अभिनिवेसियं चेव ।
संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पंचहा एवं ॥७५॥

(राम०) मिच्छत्तं पंचविहं—आभिग्गहियं मिच्छत्तं, अणभिग्गहियं मिच्छत्तं, अभिनिवेसियं मिच्छत्तं, संसइयं मिच्छत्तं, अणाभोगं मिच्छत्तं च ।

इयाणिं पंचविहस्स मिच्छत्तस्स वक्खाणं गाथाणुसारेण कीरइ सुत्ते अभणियमवि परोवयारनिमित्तं ।

तत्थ आभिग्गहियं कुदिट्ठिदिक्खियाणं गाढतरमेयं जीवाणं दीहसंसारियाणं पायसो होइ ॥१॥
अणभिग्गहियं पुण असंपत्तसम्मत्ताणं कुदिट्ठिअदिक्खियाणं मणुयतिरियाणं ॥२॥

अभिनिवेसियं तु संपत्तजिणवयणाणं एगेण सहायपरूपणाए कयाए मच्छराइणा तमन्नहा

वागरेमाणाणं कम्मि कारणे उस्सुत्ते वा पन्नविए [1]पडिनिवेसेण वा मया एस अत्थो मम-त्थणीओत्ति अणाभोगेण परूविए वा पच्छा नाए वि वत्थुतत्ते [2]सभणियपडिपवेसेण वा अजा-णंतो वा भावत्थं [3]पन्नवेइ, वारिओ वा न चिट्ठइ, एएसिं जीवाणं अभिनिवेसियं मिच्छत्तं ॥३॥

संसइयं पुण सुत्ते वा अत्थे वा उभयम्मि वा संकिओ परूवेइ। सो अन्नं न पुच्छइ। कहमहमेहहपरिवारो वि अन्नं पुच्छामि। पुच्छिज्जमाणो वा जाणेज्जा, एस एयं न जाणइ त्ति। अहवा जे मह भत्ता ते जाणिज्जा, एयाहिंतो वि एस वरतरओ, तत्तो पुच्छिज्जइ, तओ मं मोत्तूण एए इयं महस्संति, अओ अन्नं न पुच्छइ। तस्स संसइयं मिच्छत्तं ॥४॥

अणाभोगं एगिंदियाईणं। जम्हा आभोगो=नाणं=उवओगो भण्णई। एयं करिमं एयं व त्ति एसो पुण तेसिं नत्थि, तेण तेसिं अणाभोगं मिच्छत्तं। अहवा सुद्धं परूवइस्सामि अणुवओ-गाओ असुद्धं परूवियं तं पि अणाभोगं परेसिं मिच्छत्तकारणत्तेण ॥५॥

एयं पुण पंचविहं पि मिच्छत्तं थूलभावेण। परमत्थओ विवज्जासो सो पुण एयं न मए न मम पुव्वपुरिसेहिं वा कारियं एयं जिणाययणं; किं मम एत्थ पूयासक्काराइआयरेणं। अहवा मए एयं जिणबिंबं कारियं मम पुव्वपुरिसेहिं वा; ता इत्थ पूयाइयं निव्वत्तेमि। किं मम परकीएसु अव्वायरेणं। एवं तस्स न सव्वन्नुपच्चया पवित्ती। अन्नहा सव्वेसु वि बिंबेसु अरहं चेव ववइसिज्जइ। सो अरिहा जइ परकीओ ता पत्थरलेप्पपित्तलाइयं अप्पणिज्जयं, न पुण पत्थराईसु वंदिज्जमाणेसु कम्मक्खओ। किंतु तित्थयरगुणपक्खवाएणं। अन्नहा [4]संकरा-इबिंबेसु वि वंदिज्जमाणेसु कम्मक्खओ होज्जा। मच्छरेण वा परकारियचेइयालए विग्धं आय-रंतस्स महामिच्छत्तं न तस्स गंठिभेओ वि संभाविज्जइ। जे पासत्थाइकुदेसणाए वि मोहिया सुविहियाणं वा बाहाकरा भवंति। तेसिं पि महामिच्छत्तं। एयम्मि य विवज्जासरूवे मिच्छत्ते सइ सुबहुं पि पढंतो अन्नाणी चेव। न हि विवरीयमइणो नाणं कज्जसाहगं, तओ अन्नाणं, [5]एएसु य [6]हुंतेसु अइदुक्करा वि तवचरणकिरिया न मोक्खसाहिगा। जम्हा सो जीवरक्खामुसावायाइप-क्खाणं करेंतो वि अविरओ कहिज्जइ, पंचमगुणठाणे देसविरई, छट्ठगुणट्ठाणे सव्वविरई, न पढमगुणट्ठाणे, तस्स य अणंताणुबंधिपमुहा सोलस वि कसाया बज्झंति उइज्जंति य। तन्निमि त्ताओ असुहाओ दीहट्ठियाओ तिव्वाणुभागाओ कम्मपयडीओ बज्झंति। अओ मिच्छत्तं पढमो बंधहेऊ ॥७५॥

बारसविहा अविरई मणइंदियअनियमो छकायवहो।
सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥७६॥

---

१ "अहङ्कारेण" इति टिप्पनकम्। २ "स्वभणितप्रतिभणितप्रद्वेषेण" इति टिप्पनकम्। ३ "परूवेइ" इति वा पाठः। ४ "संकराइबिंबेसु" इत्यपि। ५ विपर्यासरूपेषु टिप्पनकम्। ६ "होंतेसु इत्यपि।

चरित्तं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तदुगं सन्नी आहारगं एवं एगवीसं २१, सेसा असंभविया ।

उवसंतस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेंदियं तसकायं जोगतिगं वेयसुन्नं कसायसुन्नं नाणचउक्कं उवसमियं चरित्तं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं सम्मदुगं सन्नी आहारगं एवं वीसं २०, सेसा असंभविया ।

खीणमोहस्स य—मणुयगई पंचिंदियत्तं तसकायं जोगतिगं वेयकसायसुन्नं नाणचउक्कं अहक्खायसंजमं दंसणतिगं सुक्कलेसा भव्वं खाइयसम्मत्तं सन्नी आहारगं एवं ऊणवीसा १९, सेसा असंभविया ।

सजोगिकेवलिस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचिंदियं तसकायं जोगतिगं वेयकसायसुन्नं नाणे केवलनाणं संजमं खाइयं दंसणं केवलदंसणं सुक्कलेसा भव्वं सम्मत्तं खाइयं सन्नी आहारणाहारं एवं पनरस १५, सेसा असंभविया ।

अजोगिकेवलिस्स उत्तरभेया—मणुयगई पंचेंदियं तसकायं जोगवेयकसायसुन्नं केवलनाणं खाइयं संजमं केवलदंसणं लेसासुण्णं भव्वं खाइयं सम्मत्तं सन्नी अणाहारगं एवं दस १०, सेसा असंभविया ।

इयाणिं गुणट्ठाणगेसु बंधहेउ भणिउकामो पढमं ताव बंधस्स मूलभेया उत्तरभेया य दंसेइ—

बन्धस्स मिच्छअविरइकसायजोगत्ति हेयवो चउरो ।
पंच दुवालस पणुवीस पनरस कमेण भेया सिं ॥७४॥

(राम०) बंधो=कम्मबंधो, तस्स चत्तारि हेऊ, मिच्छत्तं ५, अविरई १२, कसाया २५, जोग १४ त्ति । एएसिं चउण्हं पि कमेणं जहासंखं पंच दुवालस पणुवीस पनरस भेया होंति ॥७४॥

ते य उत्तरभेए विवरेइ—

आभिग्गहियं अणभिग्गहं च तह अभिनिवेसियं चेव ।
संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पंचहा एवं ॥७५॥

(राम०) मिच्छत्तं पंचविहं—आभिग्गहियं मिच्छत्तं, अणभिग्गहियं मिच्छत्तं, अभिनिवेसियं मिच्छत्तं, संसइयं मिच्छत्तं, अणाभोगं मिच्छत्तं च ।

इयाणिं पंचविहस्स मिच्छत्तस्स वक्खाणं गाथाणुसारेण कीरइ मुत्ते अभणियमवि परोवयारनिमित्तं ।

तत्थ आभिग्गहियं कुदिट्ठिदिक्खियाणं गाढतरमेयं जीवाणं दीहसंसारियाणं पायसो होइ ॥१॥
अणभिग्गहियं पुण असंपत्तसम्मत्ताणं कुदिट्ठिअदिक्खियाणं मणुयतिरियाणं ॥२॥

अभिनिवेसियं तु संपत्तजिणवयणाणं एगेण सहावपरूपणाए कयाए मच्छराइणा तमन्नहा

वागरेमाणाणं कम्मि कारणे उस्सुत्ते वा पन्नविए [1]पडिनिवेसेण वा मया एस अत्थो समत्थणीओत्ति अणाभोगेण परूविए वा पच्छा नाए वि वत्थुतत्ते [2]सभणियपडिप्पद्देसेण वा अजाणंतो वा भावत्थं [3]पन्नवेइ, वारिओ वा न चिट्ठइ, एएसिं जीवाणं अभिनिवेसियं मिच्छत्तं ॥३॥

संसइयं पुण सुत्ते वा अत्थे वा उभयम्मि वा संकिओ परूवेइ। सो अन्नं न पुच्छइ। कहमहमेद्दहपरिवारो वि अन्नं पुच्छामि। पुच्छिज्जमाणो वा जाणेज्जा, एस एयं न जाणइ त्ति। अहवा जे मह भत्ता ते जाणिज्जा, एयाहिंतो वि एस वरतरओ, तत्तो पुच्छिज्जइ, तओ मं मोत्तूण एए इयं मइस्संति, अओ अन्नं न पुच्छइ। तस्स संसइयं मिच्छत्तं ॥४॥

अणाभोगं एगिंदियाईणं। जम्हा आभोगो=नाणं=उवओगो भण्णई। एयं करिमि एयं व त्ति एसो पुण तेसिं नत्थि, तेण तेसिं अणाभोगं मिच्छत्तं। अहवा सुद्धं परूवइस्सामि अणुवओगाओ असुद्धं परूवियं तं पि अणाभोगं परेसिं मिच्छत्तकारणत्तेण ॥५॥

एयं पुण पंचविहं पि मिच्छत्तं थूलभावेण। परमत्थओ विवज्जासो सो पुण एयं न मए न मम पुव्वपुरिसेहिं वा कारियं एयं जिणाययणं; किं मम एत्थ पूयासक्काराइआयरेणं। अहवा मए एयं जिणबिंबं कारियं मम पुव्वपुरिसेहिं वा; ता इत्थ पूयाइयं निव्वत्तेमि। किं मम परकीएसु आयरेणं। एवं तस्स न सम्मन्नुपच्चया पवित्ती। अन्नहा सव्वेसु वि बिंबेसु अरहं चेव ववइसिज्जइ। सो अरिहा जइ परकीओ ता पत्थरलेप्पपित्तलाइयं अप्पणिज्जयं, न पुण पत्थराईसु वंदिज्जमाणेसु कम्मक्खओ। किंतु तित्थयरगुणपक्खवाएणं। अन्नहा [4]संकराइबिंबेसु वि वंदिज्जमाणेसु कम्मक्खओ होज्जा। मच्छरेण वा परकारियचेइयालए विग्घं आयरंतस्स महामिच्छत्तं न तस्स गंठिभेओ वि संभाविज्जइ। जे पासत्थाइक्कुदेसणाए वि मोहिया सुविहियाणं वा बाहाकरा भवंति। तेसिं पि महामिच्छत्तं। एयम्मि य विवज्जासरूवे मिच्छत्ते सइ सुबहुं पि पढंतो अन्नाणी चेव। न हि विवरीयमइणो नाणं कज्जसाहगं, तओ अन्नाणं, [5]एएसु य [6]हुंतेसु अइदुक्करा वि तवचरणकिरिया न मोक्खसाहिगा। जम्हा सो जीवरक्खामुसावायाइरक्खणं करेंतो वि अविरओ कहिज्जइ, पंचमगुणठाणे देसविरई, छट्ठगुणट्ठाणे सव्वविरई, न पढमगुणट्ठाणे, तस्स य अणंताणुबंधिपमुहा सोलस वि कसाया बंज्झति उइज्जंति य। तन्निमित्ताओ असुहाओ दीहट्ठियाओ तिव्वाणुभागाओ कम्मपयडीओ बज्झंति। अओ मिच्छत्तं पढमो बंधहेऊ ॥७५॥

बारसविहा अविरई मणइंदियअनियमो छकायवहो।
सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥७६॥

---

१ "अहङ्कारेण" इति टिप्पनकम्। २ "स्वभणितप्रतिभणितप्रद्वेषेण" इति टिप्पनकम्। ३ "परूवेइ" इति वा पाठः। ४ "संकराइदेवेसु" इत्यपि। ५ विपर्यासरूपेषु टिप्पनकम्। ६ "होंतेसु इत्यपि।

(राम०) पंचण्हं इंदियाणं मणस्स य अनियमो छण्हं कायाणं वहे अविरई एवं अविरइ बीओ बंधहेउ ॥२॥ सोलस कसाया नव नोकसाया पणवीसं एए तइओ बंधहेऊ ॥३॥ पणरस जोगा चउत्थो बंधहेऊ ॥४॥ एए सामन्नेण । उक्तं च–

"चउपच्चइओ बंधो, पढमे उवरिमतिगे तिपच्चइओ । मीसगबीओ उवरिमदुगं च देसिक्क देसम्मि ॥१॥
उवरिल्लपंचगे पुण दुपच्चओ जोगपच्चओ तिण्हं ।" ति ।

एए मूलहेऊ गुणट्ठाणगेसु । संपयं पुण सुत्तकारो तेसु चेव उत्तरबंधहेऊ दंसेइ—

पणपन्नपन्नतियछहियचत्तगुणचत्तछचउदुगवीसा ।
सोलस दस नव नव सत्त हेउणो न व अजोगिम्मि ॥७७॥

(राम०) पंचविहं मिच्छत्तं, बारसविहा अविरई, पणवीसं कसाया, जोगा तेरस, आहारगदुगूणा, एए पणपण्णं मिच्छादिट्ठिस्स बंधहयेवो १ । सासायणस्स मिच्छत्तं विणा पण्णासं २ । बारसविहा अविरई अणंताणुबंधिवज्जा एगवीसं कसाया मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालियं वेउव्वियं च सम्मामिच्छस्स तेयालीसं हेऊ ३ । वेउव्वियमीसओरालियमीसकम्मइग-जोगतिगे छूढे तेयालीसाए छायालीसं अविरयस्स ४ । तसविरइवज्जा एगारसविहा अविरई पढमबीयकसायट्ठगवज्जा सत्तरस कसाया मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालं सरीरं वेउव्वियदुगं च एए ऊणयालीसं देसविरयस्स ५ । संजलणचउक्कं नोकसायनवगं मणचउक्कं [1]वइचउक्कं आहार-दुगं [3]विउव्वियदुगं ओरालियं च छव्वीसं पमत्तसंजयस्स ६ । एसा चेव छव्वीसा वेउव्वियमीस-आहारगमिस्सवज्जा चउवीसं अप्रमत्तस्स । संजलणचउक्कं नोकसायनवगं मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालियसरीरं एवं बावीसं अपुव्वकरणस्स ८ । संजलणचउक्कं वेयतिगं जोगनवगं एवं सोलस बायरसंपरायस्स ९ । संजलणलोहं जोगनवगं दस सुहुमसंपरायस्स १० । उवसंतमोहक्खीण-मोहाणं नव नव जोगा बंधहेऊ ११-१२ । सजोगिस्स सत्त जोगा दट्ठव्वा १३ । अजोगिस्स बंधहेयवो न संति १४ ॥७७॥

एत्थ गाहाओ–

पणपण्णबंधहेऊ मिच्छद्दिट्ठिस्स [4]उवयओ होंति । आहारगदुगरहिया जेणं तं संजयस्स भवे १ ॥१॥
पन्नासा सासणे पंचगमिच्छत्तविरहिया होइ २ । मिस्से पुण तेयाला अणकम्मणमिस्सदुगरहिया ३ ॥२॥
तुरियम्मि उ छायाला कम्मणमिस्सदुगसंजुया जाण ४ । एगूणचत्त देसे बीयकसायाण भावाओ ॥३॥
तसअविरइउरलगमिस्सं कम्मइग जेण तत्थ ना सत्ता ५ । छव्वीसा य पमत्ते संजलणा ४ नोकसाया ९य ॥४॥
कम्मण उरलगमिस्सं वज्जित्ता सव्वजोगसब्भावे १३-६ । चउवीसं अपमत्ते वेउव्वाहारमिस्सविणा ७ ॥५॥
बावीसा उ अपुव्वे वेउव्वाहारविरहिया होइ ८ । अनियट्टीए सोलस हासच्छक्केण रहिया उ ९ ॥६॥
सुहुमे दसगं जाणसु तिवेयतिकसायविरहियं कार्ड १० । उवसंते खीणे पुण जोगा नव बंधहेउ त्ति ११-१२॥७॥
सज्जोगिकेवलिमि सच्चअसच्चामुसावइमणो य । [5]कम्मं उरलदुगेणं जोगा सत्तेव बंधस्स १३ ॥८॥

---

१. "त्ति" इत्यपि पाठः । २ "वय" इत्यपि । ३ "वेउव्विय" इत्यपि । ४ "मोहओ" इत्यपि । ५ "कम्मणमुरलदुग तह, जोगा" इति जे० ।

भणिया गुणट्ठाणगेसु बंधहेऊणं उत्तरभेया। बंधहेऊहिं पुणं कम्मं बज्झइ, अओ तस्स नामाणि संखं च निदंसेइ—

तो नाणदंसणावरणवेयणीयाणि मोहणिज्जं च।
आउयनामं गोयंतरायमिय अट्ठ कम्माणि ॥ ७८ ॥

(राम०) कंठा। एएसिं कम्माणं बंधो हवइ बंधे कडे सति उदयाइणा वि भवितव्वम्। जओ वुत्तं—

"बंधस्सुदयो उदए उदीरणा [1]तदवसेसयं संतं। तम्हा बंधविहाणे, मन्नंते इइ मणेयव्वं।।" ।।७८।।

अओ बंधस्स उदयस्स उदीरणा संतस्स वि ठाणाणि गुणठाणगेसु दंसेइ—

सत्तट्ठछेगबन्धा सन्तुदया अट्ठ सत्त चत्तारि।
सत्तट्ठछपंचदुगं तुदीरणाठाणसंखेयं ।।७९।।

(राम०) पुव्वमेव जीवट्ठाणेसु बंधोदओदीरणसंताणं ठाणाणि वक्खाणियाणि। तमेव वक्खाणं इत्थ दट्ठव्वं ।।७९।।

मिच्छदिट्ठिपमीईणं बंधट्ठाणपमाणमाह—

अपमत्तंता सत्तट्ठ मीसअप्पुव्वबायरा सत्त।
बन्धंति छ सुहुमा एगमुवरिमाऽबन्धगोऽजोगी ।।८०।।

(राम०) मिच्छदिट्ठिसासणअविरयदेसविरयपमत्तअपमत्तेसु एएसु छसु ठाणेसु अट्ठविहबंधगा अहवा आउयं मोत्तुं सत्तविहबंधगा। तहा सम्मामिच्छदिट्ठी अपुव्वकरणअनियट्टिकरणा आउयं मोत्तूण सत्तविहबंधगा। सुहुमसंपराया मोहाउयं मोत्तूण छविहबंधगा। उवसंतखीणमोहसजोगिकेवली एगविहवेयणियबंधगा। अबंधगो अजोगी ।।८०।।

मिच्छदिट्ठिपमिईणं उदयसत्ताट्ठाणपमाणमाह—

जा सुहुमो ता अट्ठ वि उदये संते य हुन्ति पयडीओ।
सत्तऽट्ठ व संते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसु ।।८१।।

(राम०) मिच्छदिट्ठीउ जाव सुहुमसंपराओ ताव उदए संते य अट्ठ कम्माणि। उवसंते उदए सत्त, मोहं मोत्तूणः सत्ताए अट्ठ कम्माणि। खीणमोहे उदए सत्ताए य मोहं मोत्तूण सत्त कम्माणि। सजोगिअजोगिकेवलीणं उदए सत्ताए य चत्तारि चत्तारि कम्मा अघाइणो ।।८१।।

---

१ तदभ्यां विरहितम्" इति टिप्पणकम्।

(राम०) पंचण्हं इंदियाणं मणस्स य अनियमो छण्हं कायाणं वहे अविरई एवं अविरइ बीओ बंधहेउ ॥२॥ सोलस कसाया नव नोकसाया पणवीसं एए तइओ बंधहेऊ ॥३॥ पणरस जोगा चउत्थो बंधहेऊ ॥४॥ एए सामन्नेण । उत्तं च–

"चउपच्चइओ बंधो, पढमे उवरिमतिगे तिपच्चइओ । मीसगबीओ उवरिमदुगं च देसिक्क देसम्मि ॥१॥ उवरिल्लपंचगे पुण दुपच्चओ जोगपच्चओ तिण्हं ।" ति ।

एए मूलहेऊ गुणट्ठाणगेसु । संपयं पुण सुत्तकारो तेसु चेव उत्तरबंधहेऊ दंसेइ—

पणपन्नपन्नतियछहियचत्तगुणचत्तछचउदुगवीसा ।
सोलस दस नव नव सत्त हेउणो न व अजोगिम्मि ॥७७॥

(राम०) पंचविहं मिच्छत्तं, बारसविहा अविरई, पणवीसं कसाया, जोगा तेरस, आहारगदुगूणा, एए पणपण्णं मिच्छाद्दिट्ठिस्स बंधहेयवो १ । सासायणस्स मिच्छत्तं विणा पण्णासं २ । बारसविहा अविरई अणंताणुबंधिवज्जा एगवीसं कसाया मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालियं वेउविव्वयं च सम्मामिच्छस्स तेयालीसं हेऊ ३ । वेउव्वियमीसओरालियमीसकम्मइग-जोगतिगे छूढे तेयालीसाए छायालीसं अविरयस्स ४ । तसविरइवज्जा एगारसविहा अविरई पढमबीयकसायट्ठगवज्जा सत्तरस कसाया मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालं सरीरं वेउव्वियदुगं च एए ऊणयालीसं देसविरयस्स ५ । संजलणचउक्कं नोकसायनवगं मणचउक्कं [2]वइचउक्कं आहार-दुगं [3]विउव्वियदुगं ओरालियं च छव्वीसं पमत्तसंजयस्स ६ । एसा चेव छव्वीसा वेउव्वियमीस-आहारगमिस्सवज्जा चउवीसं अप्रमत्तस्स । संजलणचउक्कं नोकसायनवगं मणचउक्कं वइचउक्कं ओरालियसरीरं एवं बावीसं अपुव्वकरणस्स ८ । संजलणचउक्कं वेयतिगं जोगनवगं एवं सोलस बायरसंपरायस्स ९ । संजलणलोहं जोगनवगं दस सुहुमसंपरायस्स १० । उवसंतमोहक्खीण-मोहाणं नव नव जोगा बंधहेऊ ११-१२ । सजोगिस्स सत्त जोगा दट्ठव्वा १३ । अजोगिस्स बंधहेयवो न संति १४ ॥७७॥

एत्थ गाहाओ–

पणपण्णबंधहेऊ मिच्छद्दिट्ठिस्स [4]उदयओ होंति । आहारगदुगरहिया जेणं तं संजयस्स भवे १ ॥१॥
पन्नासा सासणे पंचगमिच्छत्तविरहिया होइ २ । मिस्से पुण तेयाला अण कम्मणमिस्सदुगरहिया ३ ॥२॥
तुरियम्मि उ छायाला कम्मणमिस्सदुगसंजुया जाण ४ । एगूणचत्त देसे बीयकसायाण भावाओ ॥३॥
तसअविरइउरलामिस्सं कम्मइग जेण तत्थ ना सत्ता ५ । छव्वीसा य पमत्ते संजलणा ४ नोकसाया ९ य ॥४॥
कम्मण उरलगमिस्सं वज्जित्ता सव्वजोगसब्भावे १३-६ । चउवीसं अपमत्ते वेउव्वाहारमिस्सविणा ७ ॥५॥
बावीसा उ अपुव्वे वेउव्वाहारविरहिया होइ ८ । अनियट्टीए सोलस हासच्छक्केण रहिया उ ९ ॥६॥
सुहुमे दसगं जाणसु तिवेयतिकसायविरहियं कार्ड १० । उवसंते खीणे पुण जोगा नव बंधहेउ त्ति ११-१२॥७॥
सजोगिकेवलिंमि सच्चमसच्चामुसावइमणो य । [5]कम्मं उरलदुगेणं जोगा सत्तेव बंधस्स १३ ॥८॥

---

१. "त्ति" इत्यपि पाठः । २ "वय" इत्यपि । ३ "वेउव्विय" इत्यपि । ४ "मोहओ" इत्यपि । ५ "कम्मणमुरलदुग सह, जोगा" इति जे० ।

भणिया गुणट्ठाणगेसु बंधहेऊणं उत्तरभेया । बंधहेऊहिं पुणं कम्मं बज्झइ, अओ तस्स नामाणि संखं च निदंसेइ—

तो नाणदंसणावरणवेयणीयाणि मोहणिज्जं च ।
आउयनामं गोयंतरायमिय अट्ठ कम्माणि ॥ ७८ ॥

(राम०) कंठा । एएसिं कम्माणं बंधो हवइ बंधे कडे सति उदयाइणा वि भवितव्वम् । जओ वुत्तं—

"बंधस्सुदयो उदए उदीरणा [1]तदवसेसयं संतं । तम्हा बंधविहाणे, मन्नंते इइ मयेयव्वं ।।" ॥७८॥

अओ बंधस्स उदयस्स उदीरणा संतस्स वि ठाणाणि गुणठाणगेसु दंसेइ—

सत्तट्ठछेगबन्धा सन्तुदया अट्ठ सत्त चत्तारि ।
सत्तट्ठछपंचदुगं तुदीरणाठाणसंखेयं ॥७९॥

(राम०) पुव्वमेव जीवट्ठाणेसु बंधोदओदीरणसंताणं ठाणाणि वक्खाणियाणि । तमेव वक्खाणं इत्थ दट्ठव्वं ॥७९॥

मिच्छदिट्ठपमीईणं बंधट्ठाणपमाणमाह—

अपमत्तंता सत्तट्ठ मीसअपुव्वबायरा सत्त ।
बन्धंति छ सुहुमा एगमुवरिमाऽबन्धगोऽजोगी ॥८०॥

(राम०) मिच्छद्दिट्ठिसासणअविरयदेसविरयपमत्तअपमत्तेसु एएसु छसु ठाणेसु अट्ठविहबंधगा अहवा आउयं मोत्तुं सत्तविहबंधगा । तहा सम्मामिच्छद्दिट्ठी अपुव्वकरणअनियट्टिकरणा आउयं मोत्तूण सत्तविहबंधगा । सुहुमसंपराया मोहाउयं मोत्तूण छविहबंधगा । उवसंतखीणमोहसजोगिकेवली एगविहवेयणियबंधगा । अबंधगो अजोगी ॥८०॥

मिच्छद्दिट्ठिपभिईणं उदयसत्ताट्ठाणपमाणमाह—

जा सुहुमो ता अट्ठ वि उदये संते य हुन्ति पयडीओ ।
सत्तऽट्ठ व संते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसुं ॥८१॥

(राम०) मिच्छद्दिट्ठीउ जाव सुहुमसंपराओ ताव उदए संते य अट्ठ कम्माणि । उवसंते उदए सत्त, मोहं मोत्तूणः सत्ताए अट्ठ कम्माणि । खीणमोहे उदए सत्ताए य मोहं मोत्तूण सत्त कम्माणि । सजोगिअजोगिकेवलीणं उदए सत्ताए य चत्तारि चत्तारि कम्मा अघाइणो ॥८१॥

---

१ वाभ्यां विरहितम्" इति टिप्पणनकम् ।

उदीरणाठाणपमाणमाह—

सत्तऽट्ठ पमत्तंता कम्मे उइरिन्ति अट्ठ मीमो उ ।
वेयणियाउ विणा छ उ अपमत्तअपुव्वअणियट्टी ॥८२॥
सुहुमो छ पंच उइरेइ पंच उवसंतु पंच दो खीणो ।
जोगी उ नामगोए अजोगिअणुदीरणो भयवं ॥८३॥

(राम०) मिच्छद्दिट्ठी सासायणो अविरओ देसविरओ पमत्तो य एए पंच ठाणा अट्ठण्हं कम्माणं उदीरगा । अहवा अद्धावलियासेसाउया सत्तण्हं उदीरगा । जओ आवलियागयं कम्मं करणाईं न भवइ । सम्मामिच्छद्दिट्ठी अट्ठण्हं उदीरगो । जओ "न सम्मामिच्छो कुणइ कालं" इइ वयणाओ । तहा अपमत्तअपुव्वकरणअनियट्टिबादरा वेयणियआउए मोत्तूण छण्हं कम्माणं उदीरगा । तहा सुहुमो वेयणियआउए मोत्तुं छण्हं उदीरगो, तहा मोहे अद्धावलियासेसे पंचण्हं उदीरगो । जओ मोहोदीरणा लोहे किट्टीकए अद्धावलियासेसे थक्कइ त्ति । मणुयाउयवेयणियाणं पुण उदीरणा पमत्तविरए थक्कइ त्ति । तहा नाणावरणदंसणावरणअंतरायनामगोयाणं पंचण्हं उवसंतो उदीरगो। खीणमोहो वि एएसिं चेव पंचण्हं उदीरगो। तहा नाणावरणदंसणावरणविग्घेहि अद्धावलियसेस[1]भेत्तेहिं नामगोयाणं खीणमोहो चेव दोण्हं उदीरगो । सजोगिकेवली दुण्हं नाम-गोयाणं उदीरगो । अजोगिअणुदीरगो भयवं ॥८२-८३॥

गुणट्ठाणगेसु अप्पबहुत्तमाह—

उवसन्तजिणा थोवा संखेज्जगुणा उ खीणमोहजिणा ।
सुहुमनियट्टनियट्टी तिन्नि वि तुल्ला विसेसहिया ॥८४॥
जोगिअपमत्तइयरे संखगुणा देससासणा मिस्सा ।
अविरयअजोगिमिच्छा असंखचउरो दुवेऽनन्ता ॥८५॥

(राम०) सव्वत्थोवा उवसंतजिणा । तओ खीणमोहजिणा संखेज्जगुणा २ । सुहुमो अनि-यट्ठी नियट्ठी तिन्नि वि तुल्ला, पुव्वेहिंतो विसेसाहिया । तओ सजोगिकेवली संखेज्जगुणा । तओ अपमत्तसंजया संखेज्जगुणा । तओ पमत्तसंजया संखेज्जगुणा । तओ देसविरया असंखे-ज्जगुणा । जओ तिरिया वि गहिया । तओ सासायणा असंखेज्जगुणा । तओ सम्मामिच्छा-द्दिट्ठी असंखेज्जगुणा । तओ अविरय-सम्मदिट्ठी असंखेज्जगुणा । तओ अजोगिकेवली अणंत-गुणा । जओ सिद्धा वि गहिया । तओ मिच्छद्दिट्ठी अणंतगुणा ॥८४-८५॥

---

१ "मित्तेहिं" इत्यपि ।

संपयं पगरणकारो सयं सनामसंजुत्तं पणिहाणं करेइ

जिणवल्लहोवणीयं जिणवयणामयसमुद्दबिंदुमिमं ।
हियकंखिणो बुहजणा निसुणंतु गुणंतु जाणंतु ॥८६॥

(राम०) जिणा सव्वन्नुणो वल्लहा जेसिं जणाणं ते जिणवल्लहा जणा तेसिं अहवा जिणवल्लहायरिएहिं उवणीयं ढोकिनं सुयसागराओ इह दट्ठव्वं जिणवयणमेव अमयसमुद्दो तस्स बिंदुमिव बिंदु थोवत्ताओ इमं पगरणं हियकंखिणो=मोक्खाभिलासिणो बुहजणा=पंडिय-लोया णिसुणंतु सवणगहणाइणा, गुणंतु=अणवरयं परावत्तणेण परावत्तयंतु, इहाणेहलक्खणत्था-पसखावेण अन्थओ मुणंतु ॥८६॥

॥ सम्मत्तं वत्थुवियारस्स विवरणम् ॥

॥ अथ प्रशस्तिः ॥

नियगुरुवयणाउ सुयं सुयाउ जं सुमरियं तयं लिहियं ।
सुत्ते उस्सुत्तं जं, मिच्छामिह दुक्कडं तस्स ॥ १ ॥
ससमयपरसमयविसारयाण भवियजणकुमुयचंदाणं ।
पसमाइगुणगुरूणं, पयओ पणमामि पयपउमं ॥ २ ॥
सुगुरूणं सिरिजिणवल्लहाण सूरीण सूरिपवराणं ।
उज्झियनियकज्जाणं परोवयारेकरसियाणं ॥ ३ ॥
जेण कयं वत्थुवियारसारनामं ति पगरणं पवरं ।
अप्पग्गंथमहत्थं, तस्सेव गु विवरणं विहियं ॥ ४ ॥
तस्सिस्सलवेणं रामदेवगणिणा उ मंदमइणा वि ।
पाइयवयणेहि फुडं भव्वहियट्ठं समासेणं ॥ ५ ॥

॥ ग्रन्थाग्रम् ७५० ॥

॥ इति श्रीरामदेवगणिकृता षडशीतिप्रकरणवृत्तिः समाप्ता ॥

इति श्रीरामदेवगणिप्रणीतटीकायुतः षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः

इति
चत्वारः प्राचीनाः कर्मग्रन्थाः
समाप्ताः

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥

॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ।

सद्धर्मसंरक्षकश्रीमदाचार्यविजयकमलसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

परमगीतार्थश्रीमदाचार्यविजयहीरसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

[1]श्रीमच्चिरन्तनाचार्यप्रणीता

❁ सप्ततिका ❁

(सित्तरी)

"श्रीमद्रामदेवगणिना कृतेन टिप्पनकेन समलङ्कृता"

सिद्धपएहिँ महत्थं बन्धोदयसंतपगडिठाणाणं ।
वोच्छं सुण संखेवं निस्संदं दिट्ठिवायस्स ॥सू०-१॥ (१)[2]

कइ बंधंतो वेयइ कइ कइ वा पगडिठाणकम्मंसा ।
मूलुत्तरपयडीसु भंगविगप्पा बोद्धव्वा ॥सू०-२॥ (२)

सुगइगमसरलसरणिं, वीरं नमिऊण मोहतमतरणिं ।
सत्तरिए टिप्पेमी, किंची सुभीउ अणुसरिउं ॥१॥ (३) [१][3]

[4]संखेवा भंगाणं, सुमरणहेउ तह पगडिठाणाणं ।
पत्तेयं पगडीणं, नामग्गाहं च काहामि ॥२॥ (४) [२]

आउसमं अट्ठ भवे, आउविहूणा य सत्त बंधम्मि ।
मोहणियाऽऽउविणा छ उ, एगो वेयणियबंधो उ ॥३॥ (५) [३]

अट्ठुदओ बहुयाणं, मोहं मोत्तूण केसि सत्तुदओ ।
घाइविहूणा चउरो, तह ससाए वि तियठाणा ॥४॥ (६) [४]

---

१ अज्ञातनामाचार्यरचिता इत्यर्थः, न पुनश्चिरन्तनाभिधाचार्यविहिता इति । २ ( ) एतच्चिह्नान्तर्गतगाथाक्रमः ससूत्रकः L. D. (लालभाइ दलपतभाइ विद्यामंदिर) प्रत्यनुसारी । सूत्ररहितगाथाक्रमः पुनः J. (जेसलमेर) प्रतिप्रेसकोप्यपेक्षः । ३ [ ] एतच्चिह्नान्तर्गतगाथाक्रमः ससूत्रकः J. प्रतिप्रेसकोप्यधिकः । ४ "संखेवेणं इत्यपि ।

सामन्ना १ जीव २ गुणा ३, पत्तेयं मूलपयडिविसओ उ ।
नियनियमंगेहि समं, सुत्तऽणुसाराउ तं च इमं ।५।। (७) [५]

मूलप्रकृतौ सत्तास्थानानि–

अट्ठविह-सत्त-छब्बंधएसु अट्ठेव उदय संताइं ।
एगविहे तिविगप्पो, एगविगप्पो अबंधम्मि ।।सू०-३।। (८) [६]

पढमद्ध कंठं ।

सत्तऽट्ठ १ सत्त सत्त य २, चउरो चउरो य ३ उदयसंतंसा[1] ।
एगविहबंधगे इह, तह य अबंधम्मि चउ चउरो ।।६।। (९) [७]

सामन्ने ठवणा—

बन्धो	८	७	६	१	१	१	०
उदओ	८	८	८	७	७	४	४
सत्ता	८	८	८	८	७	४	४

जीवस्थानेपु मूलप्रकृतीनां वन्धोदयसत्तास्थानानि—

सत्तऽट्ठबंध अट्ठुदयसंत तेरससु जीवठाणेसु ।
एगम्मि पंच भंगा दो भंगा [2]होंति केवलिणो ।।सू०-४।। (१०) [८]

पढमद्धं कंठं । 'एगम्मि' सन्निट्ठाणे ।

अडसत्तछेगबंधा, उदए संते य पढमतिसु अट्ठ ।
एगम्मि सत्त अट्ठ य, तह सत्त य सत्त उदयंसा ।।७।। (११) [९]

सण्णिस्स ठवणा—

बन्धो	८	७	६	१	१
उदओ	८	८	८	७	७
सत्ता	८	८	८	८	७

तेरससु जीवठाणेसु ठवणा–

बं०	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८	७-८
उ०	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
स०	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
जीवट्ठाणा	सू. अप.	सू. प.	बा. अप.	बा. प.	बे. अप.	बे. प.	त्रि० अप	त्रि० प०	च. अ	च. प.	असं. अप.	असं. प.	सं. अप.

१ "संतंसा" इति वा पाठः । २ "हुंति" इत्यपि ।

केवलिठवणा—

बन्धो	१	०
उदओ	४	४
सत्ता	४	४

गुणस्थानकेषु मूलप्रकृतीनां बन्धोदयसत्तास्थानानि—

अट्ठसु एगविगप्पो, छस्सु [1]उ गुणसन्निएसु दुविगप्पो ।
पत्तेय पत्तेयं, बंधोदय-संतकम्माणं ॥सू०-५॥ (१२) [१०]

मिस्सअपुव्वा [2]बायर, सगबंधा छच्च बंधए सुहमो ।
[3]उवसंताई ३ एगं, अबंधगोऽजोगि एगेगं ॥८॥ (१३) [११]

मिच्छासासणअविरय–देसपमत्तअपमत्तया चेव ।
सत्तऽट्ठबंधगा इह, उदया संता य पुण एए ॥९॥ (१४) [१२]

जा सुहुमो ता अट्ठ उ, उदए संते य होंति पयडीओ ।
[4]सत्तऽट्ठ उवसंते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसु ॥१०॥ (१५) [१३]

ठवणा—

गुणठाणाणि	मिच्छ		सा०		मि०	अवि०		दे०म०		पम०		अपम०		अपू०	अणि०	सु०	उव०	खीण०	सजो०	अजो०
बंधो	८	७	८	७	७	८	७	८	७	८	७	८	७	७	७	६	१	१	१	०
उदओ	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४
सत्ता	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	४	४
	२		२		१	२		२		२		२		१	१	१	१	१	१	१

मूलपयडीसु भणिया बन्धोदयसंतठाणसविगप्पा ।
उत्तरपयडीसु तहा ते च्चिय पयडेमि पत्तेयं ॥ (१६)

उत्तरप्रकृतिषु बन्धोदयसत्तास्थानानि —

बंधोदयसंतंसा, नाणावरणंतराइए पंच ।
बंधोवरमे वि तहा, [5]उदयंसा होंति पंचेव ॥सू०–६॥ (१७) [१४]

१ "ति"इत्यपि । २ "बादर" अनिवृत्तिः । ३ उपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगिकेवलिनः । ४ 'सत्त-ऽट्ठुवसंते" इति L D. प्रतौ । ५ "उदसंता हुंति" इति ।

नाणावरणं मइ१सुय२ओहि३मणोनाण४केवलावरणा ५ ।
विग्घं दाणे १लाभे २, भोगु३वभोगे४ य विरिए य ५ ॥११॥ (१८) [१५]

सामन्नेणं गुणट्ठाणगेसु य बंधाइवोच्छेदमाह–

नाणंतरायबंधो, सुहुमे संतुदय [1]खीणचरिमम्मि ।
वोच्छिन्ना य कमेणं, दो दो भंगा उ दोण्हं पि ॥१२॥ (१९) [१६]

ठवणा—

	नाणावरण०		अंतराय०	
बंधो	५	०	५	०
उदओ	५	५	५	५
सत्ता	५	५	५	५

दर्शनावरणस्योत्तरप्रकृतीनां बन्धोदयसत्तास्थानानि–

बंधस्स य संतस्स य, पगइट्ठाणाणि तिन्नि तुल्लाइं ।
उदयट्ठाणाइँ दुवे, चउ पणगं दंसणावरणे ॥सू०-७॥ (२०) [१७]

नयणेयरोहि–केवल–दंसणआवरणयं भवे चउहा ।
निद्दा-पयलाहि छहा, निद्दाइ[2]दुरुत्त थीणद्धी ॥१३॥ (२१) [१८]

सामण्णे ठवणा-

	दंसणावरण०		
बंधो	९	६	४
उदओ	४		५
सत्ता	९	६	४

१ एतत्प्रतिपादनं सप्ततिकाचूर्णि–टीकाभ्यां समं (न) विरुध्यते, तद्यथा–'दो होंति दोसु ठाणेसु' त्ति उदयसंताणि दोण्णि, एयाणि उवसंतखीणकसायेसु दोसु भवंति, सुहुमरागचरिमसमए बंधो वोच्छिण्णो, छउमत्थत्ताओ उदयसंता अत्थि। ते य खीणकसायचरिमसमए दोवि खिज्जंति।'' (सप्ततिकाचूर्णिपत्र ३५ पृष्ठि २)। तथा 'द्वयोः पुनर्गुणस्थानकयोः उपशान्तमोह-क्षीणमोहरूपयोः 'द्वे' उदयसत्ते स्तः, न बन्ध, बन्धस्य सूक्ष्मसम्पराये व्यवच्छिन्नत्वात्। एतदुक्तं भवति बन्धाभावे उपशान्तमोहे क्षीणमोहे च ज्ञानावरणीयाऽन्तराययोः प्रत्येकं पञ्चविध उदयः पञ्चविधा च सत्ता भवतीति परत उदय-सत्तयोरप्यभावः। (कर्मग्रन्थद्वितीयविभागः पृ० २०७) २ आदिशब्दात् प्रचला ज्ञातव्या ।

नव छच्चउहा बंधे, तह [1]संता पंच चउर उदयम्मि ।
[2]सामण्णमिणं बीए, भंगा पुण [3]होंति [4]एक्कारा ॥१४॥ (२२) [१९]

बीयावरणे नव बंधएसु चउ पंच उदय नव संता ।
छ च्चउबंधे चेवं, चउ बंधुदए छलंसा य ॥सू०-८॥ (२३) [२०]
उवरयबंधे चउ पण, नवंस चउरुदय छच्च चउ संता ।
वेयणिया-ऽऽउय-गोए, विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥सू०-९॥ (२४) [२१]

नव छ च्चउविहबंधे, उदए चउ पंच संत नव छसु वि ।
चउबंधुदए [5]संता, [6]छच्चेव य होंति खवगस्स ॥१५॥ (२५) [२२]
बंधोवरमे चउ पंच उदय नव संत होंति उवसंते ।
खीणे उदयचउक्कम्मि छ च्च चत्तारि [7]संताओ ॥१६॥ (२६) [२३]

ठवणा–

बंधो	९	९	६	६	४	४	४	०	०	०	०
उदओ	५	४	५	४	५	४	४	५	४	४	४
सत्ता	९	९	९	९	९	९	६	९	९	६	४

[8]वेदणीयाउयगोए विभज्ज मोहं परं वोच्छं ।
वेदनीया-ऽऽयुर्गोत्राणामुत्तरप्रकृतीनां बंधोदयसत्तास्थानसंवेधभङ्गाः–

[1]**गोयम्मि सत्त भंगा, अट्ठ य भंगा भवंति वेयणिए ।**
पण नव नव पण भंगा, आउचउक्के वि कमसो उ ॥सू०-०॥ (२७) [२४]
नीयं बंधं नीयस्स उदय नीयस्स चेव संताओ ।
अनिलाऽनलजीवाणं इयरेसु अणंतरुव्वट्टे ॥१७॥ [२५]
अनला-ऽनिलजीवाणं एगो इय एसु केसिं चि ॥ (२८)
उद्धालियउच्चागोए तेउवाऊण णीयमिह संतं ।
इयरेसु च उव्वट्टे पज्जत्ती जा न पूरेइ ॥ (२९)

१-५-७ "सत्ता" इति L. D. प्रतौ । २ "सामन्न०" इति L. D. प्रतौ । ३ "हुंति" इति L. D. प्रतौ । ४ अत्र प्राचीनकर्मस्तवकारादिभिस्त्रयोदशभङ्गाः प्रतिपाद्यन्ते । यतस्तैः क्षपकाणामपि निद्राद्विकोदयं स्वीक्रियते । दृश्यतां प्राचीनकर्मस्तवे त्रयस्त्रिंशत्तमगाथापूर्वार्धं तट्टीका च ६ क्षपकाणां स्त्यानर्द्धित्रिकक्षयानन्तरं षड्विधा सत्ता बोद्धव्या । ८ अयं पाठः J० प्रतिप्रेसकोपयोः नास्ति । L. D. प्रतौ चास्ति । ९ "केनाऽपि विदुषा सप्ततिकामूलप्रकरणेऽर्थानुसन्धानार्थं प्रक्षिप्तमिदं गाथासूत्रम्, न तु मूलप्रकरणस्येद-मिति । एवमग्रेऽपि ज्ञेयम् ।

नाणावरणं मइ१सुय२ओहि३मणोनाण४केवलावरणा ५ ।
विग्घं दाणे १लाभे २, भोगु३वभोगे४ य विरिए य ५ ॥११॥ (१८) [१५]

सामन्नेणं गुणट्ठाणगेसु य बंधाइवोच्छेदमाह-

नाणंतरायबंधो, सुहुमे संतुदय [1]खीणचरिमम्मि ।
वोच्छिन्ना य कमेणं, दो दो भंगा उ दोण्हं पि ॥१२॥ (१९) [१६]

ठवणा—

	नाणावरण०		अंतराय०	
बंधो	५	०	५	०
उदओ	५	५	५	५
सत्ता	५	५	५	५

दर्शनावरणस्योत्तरप्रकृतीनां बन्धोदयसत्तास्थानानि-

बंधस्स य संतस्स य, पगइट्ठाणाणि तिन्नि तुल्लाइं ।
उदयट्ठाणाइँ दुवे, चउ पणगं दंसणावरणे ॥मू०-७॥ (२०) [१७]

नयणेयरोहि-केवल-दंसणआवरणयं भवे चउहा ।
निद्दा-पयलाहि छहा, निद्दाइ[2]दुरुत्त थीणद्धी ॥१३॥ (२१) [१८]

सामण्णे ठवणा-

दंसणावरण०			
बंधो	९	६	४
उदओ	४		५
सत्ता	९	६	४

१ एतत्प्रतिपादनं सप्ततिकाचूर्णि-टीकाभ्यां समं (न) विरुध्यते, तद्यथा-'दो होंति दोसु ठाणेसु' त्ति उदयसंताणि दोण्णि, एयाणि उवसंतखीणकसाएसु दोसु भवंति, सुहुमरागचरिमसमए बंधो वोच्छिण्णो, छउमत्थत्ताओ उदयसंता अत्थि। ते य खीणकसायचरिमसमए दोवि खिज्जंति।" (सप्ततिकाचूर्णिपत्र ३५ पृष्ठि २)। तथा 'द्वयोः पुनर्गुणस्थानकयोः उपशान्तमोह-क्षीणमोहरूपयोः 'द्वे' उदयसत्ते स्तः, न बन्धः, बन्धस्य सूक्ष्मसम्पराये व्यवच्छिन्नत्वात्। एतदुक्तं भवति बन्धाभावे उपशान्तमोहे क्षीणमोहे च ज्ञानावरणीयाऽन्तराययोः प्रत्येकं पञ्चविध उदयः पञ्चविधा च सत्ता भवतीति एतत उदय-सत्तयोरप्यभावः। (कर्मग्रन्थद्वितीयविभागः पृ० २०७) २ आदिशब्दात् प्रचला ज्ञातव्या।

मिच्छं कसायसोलस, भय कुच्छा तिण्ह वेयमन्नयरं ।
हास-रइ इयरजुयलं च बंधपयडी य बावीसं ॥२२॥ (३५) [३१]
इगवीसा [1]मिच्छविणा, [2]नपुवंधविणा उ सासणे बंधे ।
अणरहिया[3]सत्तरस न बंधि थिइं [4]तुरिअठाणम्मि ।२३॥ (३६) [३२]
बियसंपरायऊणा, तेरस तह तइयऊण नव बंधे ।
भय-कुच्छ-जुगलचाए, पण बंधे बायरे ठाणे ॥२४॥ (३७) [३३]
तह पुरिस-कोह-ऽहंकार-[5]माय-लोभस्स बंधवोच्छेए ।
चउ-ति-दुग-एगबंधे, कमेण मोहस्स दस ठाणा ॥२५॥ (३८) [३४]

ठवणा—२२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १ ॥एवं बंधे १०॥
मोहनीयस्योत्तरप्रकृतीनामुदयस्थानानि नव—

एगं च दो य चउरो, एत्तो एगाहिया दसुक्कोसा ।
ओहेण मोहणिज्जे, उदयट्ठाणाणि नव [6]होंति ॥सू०-११॥ (३९) [३५]
एगयरसंपरायं, वेयजुयं [7]दोण्णि जुयलजुय चउरो ।
पच्चक्खाणेगयरे, छद्दे पंचेव पयडीओ ॥२६॥ (४०) [३६]
छ बिइय ४ एगयरेगं, छद्दे सत्त य दुगुंछि भय अट्ठ ।
अणि नव मिच्छे दसगं, सामन्नेणं तु [8]नव उदया [9]॥२७॥ (४१) [३७]

ठवणा—१, २, ४, ५, ६, ७, ८, ९ १०।
मोहनीयस्योत्तरप्रकृतीनां सत्तास्थानानि पञ्चदश—

[10]अट्ठग-सत्तग-छ-च्चउ-तिग दुग एगाहिया भवे वीसा ।
तेरस [11]बारेक्कारस, एत्तो पंचाइएकूणा ॥सू०-१२॥ (४२) [३८]

---

१ "मिच्छूणा" इति L. D. प्रतौ । "मिच्छोणा" इति वा पाठः । २ अत्र पुं-स्त्रीवेदयोरन्यतरस्य बन्धः प्रक्षिप्यते । ३ "सत्तरसं न बंधि थिइ" इति L. D. प्रतौ । अत्र केवलं पुंवेदो बध्यते । ४ उपलक्षणात्तृतीयगुणस्थानके-ऽपि । ५ "माया०" इति वा । ६ "हुंति" इत्यपि । ७ वेदत्रिकादन्यतरवेदयुलम् ॥ ८ "दस" इति तु J० प्रतिप्रेसकोप्याम् । तेनोदयपदेन नवापेक्षयोदयस्थानानि, दशापेक्षया तूदयप्रकृतय इति सम्भाव्यते । ९ अत्राचार्यश्रीमलयगिरिपादाः सप्ततिकाटीकायामित्थं क्रमभेदेन व्याख्यानयन्ति "तत्र तत्र चतुर्णां संज्वलनानामन्यतमस्योदये एकमुदयस्थानम्, तदेव वेदत्रयान्यतमवेदोदयप्रक्षेपे द्विकम्, तत्रापि हास्यरतिरूपयुगलप्रक्षेपे चतुष्कम्, तत्रैव भयप्रक्षेपात् पञ्चकम्, जुगुप्साप्रक्षेपात् षट्कम्, तत्रैव चतुर्णां प्रत्याख्यानावरणकषायाणामन्यतमस्य प्रक्षेपे सप्तकम्, तत्रैव चाऽप्रत्याख्यानावरणकषायाणामन्यतमस्य प्रक्षेपेऽष्टकम्, तत्रैव चतुर्णामनन्तानुबन्धिकषायाणामन्यतमस्य प्रक्षेपे नवकम्, तत्रैव मिथ्यात्वप्रक्षेपे दशकम् ॥" (कर्मग्रन्थ द्वितीयविभागपत्र १६२) १० 'अट्ठयसत्तय" इति । ११ "बारिक्कारस" इति L. D. प्रतौ ।

नीउच्चं बंधुदए, विगप्प चत्तारि दोहिं संतेहिं ।
बंधोवरमे उच्चस्स उदय दो–एक्कसंताओ ॥१८॥ (३०) [२६]

ठवणा—

बंधो	नीयं	नीयं	नीय	उच्चं	उच्चं	०	०
उदओ	नीयं	नीयं	उच्चं	नीयं	उच्च	उच्चं	उच्चं
सत्ता	नीयं	२	२	२	२	२	उच्चं

सायाऽसाये दोसु, [1]चउभंगा बंध–उदइ दु दु संता ।
बंधोवरमे चउरो, संता दुसु दोन्नि दुसु एगं ॥१९॥ (३१) [२७]

ठवणा—

बंधो	असायं	असायं	सायं	सायं	०	०	०	०
उदओ	असायं	सायं	असायं	सायं	असायं	सायं	असायं	साय
सत्ता	२	२	२	२	२	२	१	१

एगो अ बंधपुव्वे, बंधे बंधुत्तरे य चउ चउरो ।
नरतिरियाणं आउयचउक्कबंधुदय–संतेहिं ॥२०॥ (३२) [२८]
सुर-नरयाणं पण पण, बंधे बंधुत्तरे य दो हुन्नि ।
जम्हा न तेसिं बंधो, सुर-निरयाऊण संभवइ ॥२१॥ (३३) [२९]

ठवणा—

देवाणं भंगा					
बंध.	०	म.	ति	०	०
उद.	दे	दे.	दे.	दे	दे.
सत्ता	१	२	२	२	२
कुल.	१	२	३	४	५

मणुयाणं भंगा									
बंध.	०	दे	म	ति	नि	०	०	०	०
उद.	म.	म	म.	म	म.	म.	म.	म	म.
सत्ता	१	१	२	२	२	२	२	२	२
कुल.	१	२	३	४	५	६	[illegible]	८	९

तिरियाणं भंगा									
बंध.	०	दे.	म.	ति,	नि	०	०	०	०
उद.	ति.	ति	ति.	ति.	ति.	ति	ति.	ति	ति.
सत्ता	१	२	२	२	२	२	२	२	२
कुल.	१	२	३	४	५	६	७	८	९

नेरइयाणं भगा					
बंध.	०	म.	ति	०	०
उद.	नि	नि	नि.	नि.	नि.
सत्ता	१	२	२	२	२
कुल.	१	२	३	४	५

मोहनीयस्योत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानानि दश—

बावीस एक्कवीसा, सत्तरसा तेरसेव नव पंच ।
चउतिगदुगं च एक्कं, बंध[2]ट्ठाणाणि मोहस्स ॥सू०-१०॥ (३४) [३०]

१ "चउभंगो" इति J० प्रतिप्रेसकोप्य म् । २"ट्ठाणाइ" इति L. D. प्रतौ ।

मिच्छं कसायसोलस, भय कुच्छा तिण्ह वेयमन्नयरं ।
हास-रइ इयरजुयलं च बंधपयडी य बावीसं ॥२२॥ (३५) [३१]
इगवीसा [1]मिच्छविणा, [2]नपुबंधविणा उ सासणे बंधे ।
अणरहिया[3]सत्तरस न बंधि थिइं [4]तुरिअठाणम्मि ।२३॥ (३६) [३२]
वियसंपरायऊणा, तेरस तह तइयऊण नव बंधे ।
भय-कुच्छ-जुगलचाए, पण बंधे बायरे ठाणे ॥२४॥ (३७) [३३]
तह पुरिस-कोह-ऽहंकार-[5]माय-लोभस्स बंधवोच्छेए ।
चउ-ति-दुग-एगबंधे, कमेण मोहस्स दस ठाणा ॥२५॥ (३८) [३४]

ठवणा—२२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १ ॥एवं बंधे १०॥

मोहनीयस्योत्तरप्रकृतीनामुदयस्थानानि नव—

एगं च दो य चउरो, एत्तो एगाहिया दसुक्कोसा ।
ओहेण मोहणिज्जे, उदयट्ठाणाणि नव [6]होंति ॥सू०-११॥ (३९) [३५]
एगयरसंपरायं, वेयजुयं [7]दोण्णि जुयलजुय चउरो ।
पच्चक्खाणेगयरे, छुद्धे पंचेव पयडीओ ॥२६॥ (४०) [३६]
छ विइय ४ एगयरेगं, छुद्धे सत्त य दुगुंछि भय अट्ठ ।
अणि नव मिच्छे दसगं, सामन्नेणं तु [8]नव उदया [9]॥२७॥ (४१) [३७]

ठवणा–१, २, ४, ५, ६, ७, ८, ९ १० ।

मोहनीयस्योत्तरप्रकृतीनां सत्तास्थानानि पञ्चदश–

[10]अट्ठग-सत्तग-छ-चउ-तिग दुग एगाहिया भवे वीसा ।
तेरस [11]बारेक्कारस, एत्तो पंचाइएक्कूणा ॥सू०-१२॥ (४२) [३८]

---

१ "मिच्छूणा" इति L. D. प्रतौ । "मिच्छोणा" इति वा पाठः । २ अत्र पुं-स्त्रीवेदयोरन्यतरस्य बन्धः प्रक्षिप्यते । ३ "सत्तरसं न बंधि थिइ" इति L. D. प्रतौ । अत्र केवलं पुंवेदो बध्यते । ४ उपलक्षणात्तृतीयगुणस्थानकेऽपि । ५ "माया०" इति वा । ६ "हुंति" इत्यपि । ७ वेदत्रिकाद्न्यतरवेदयुतम् ॥ ८ "दस" इति तु J० प्रतिप्रेसकोप्याम् । तेनोदयपदेन नवापेक्षयोदयस्थानानि, दशापेक्षया तूदयप्रकृतय इति सम्भाव्यते । ९ अत्राचार्यश्रीमलयगिरिपादाः सप्ततिकाटीकायामित्थं क्रमभेदेन व्याख्यानयन्ति "तत्र तत्र चतुर्णां संज्वलनानामन्यतमस्योदये एकमुदयस्थानम्, तदेव वेदत्रयान्यतमवेदोदयप्रक्षेपे द्विकम्, तत्रापि हास्यरतिरूपयुगलप्रक्षेपे चतुष्कम्, तत्रैव भयप्रक्षेपात् पञ्चकम्, जुगुप्साप्रक्षेपात् षट्कम्, तत्रैव चतुर्णां प्रत्याख्यानावरणकषायाणामन्यतमस्य प्रक्षेपे सप्तकम्, तत्रैव चाऽप्रत्याख्यानावरणकषायाणामन्यतमस्य प्रक्षेपेऽष्टकम्, तत्रैव चतुर्णामनन्तानुबन्धिकषायाणामन्यतमस्य प्रक्षेपे नवकम्, तत्रैव मिथ्यात्वप्रक्षेपे दशकम् ॥" (कर्मग्रन्थ द्वितीयविभागपत्र १६२) १० 'अट्ठयसत्तय" इति । ११ "बारिक्कारस" इति L. D. प्रतौ।

संतस्स पयडिठाणाणि ताणि मोहस्स [1]होंति पन्नरस ।
बंधोदयसंते पुण, भंगविगप्पे बहू जाण ॥सू०-१३॥ (४३) [३९]
नव नोकसाय सोलस, कसाय दंसणतिगं ति अडवीसा ।
सम्मत्तुव्वलणेणं, मिच्छे मीसे य सगवीसा ॥२८॥ (४४) [४०]
छव्वीसा पुण दुविहा, मीसुव्वलणे अणाइमिच्छत्ते ।
सम्म[2]दिट्ठिऽडवीसा, अण ४ खवए होइ चउवीसा । २९॥ (४५) [४१]
मिच्छे मीसे सम्मे ३, खीणे ति-दुवीस एक्कवीसा य ।
अट्ठकसाए तेरस, नपुक्खए होइ बारसगं ॥३०॥ (४६) [४२]
[3]थीवेयि खीणिगारस, हासाई ६ पंच चउ पुरिसखीणे ।
कोहे माणे माया, लोभे खीणे य कमसो उ ॥३१॥ (४७) [४३]
[4]तिग दुग एग असंतं, मोहे पन्नरस संतठाणाणि ।
बंधोदयसंवेहे भंगविगप्पे बहू जाण ॥३२॥ (४८) [४४]
ठवणा-२८, २७ २६, २४ २३, २२, २१ १३, १२, ११, ५, ४ ३ २,१।
[5]बंधसुदए पडुच्चा, जइवि पुणो मोहविवरणं वुत्तं ।
तह वि य सुहगुणणत्थं सुहसुमरणहेउ एगत्थ ॥३३॥ (४९) [४५]

मोहनीयस्य बन्धस्थानानां भङ्गाः-

छब्बावीसे चउ इगवीसे सत्तरसतेरसे दो दो ।
नवबंधए [6]उ दोन्नि उ, एक्केक्क[7]मओ परं भंगा ॥सू.-१४॥ (५०) [४६]
वेय३जुयलेहि चरिया, भंगा छच्चेव चउर नपुऊणा ।
जुयलेहि चउसु दो दो, सेसा एक्केक्क संभविया ॥३४॥ (५१) [४७]

ठवणा—

गुण—ठाणाणि	१	२	३	४	५	६	७	८	९ अनिवृत्ति०				
	मि.	सा.	मिश्र.	अवि.	देश.	प्र०	अप्र	अपू०	१	२	३	४	५
बंधट्ठाणाणि	२०	२१	१७	१७	१३	९	९	९	५	४	३	२	१
भंगा०	६	४	२	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१

१ 'हुन्ति' इति । २ ०"दिट्ठिडवी०"इति प्रतौ । ३ "थीवेयखीणिगारस" इत्यपि । ४ "तिगदुगएग-असंत" इति वा, 'तिग दुग य रुसं' इति L. D. प्रतौ । ५ "बंधंसगुणं पडु" इति प्रतौ । "बंधुरयगुण" इति L D प्रतौ । ६ "त्ति दुण्णि उ" इति । ७ "मकारस्त्वलाक्षणिकः" इति सप्ततिकाटीकायाम् ।

मिच्छाइ पमत्तंता जुयलगया वेयभंग उट्ठंति ।
दुच्छिअरइसोगा पमत्ति उवरिं तु एगेगा ॥ (५२)

[1]एवं गुणट्ठाणगेसु बंधभंगा ॥२५॥ इयाणिं उदयठाणाणं उदयगईविवरणमाह—

मोहनीयस्य बन्धस्थानेषूदयस्थानानि—

दस बावीसे नव इगवीसे सत्ताइ [2]उदयठाणाणि ।
छाई नव सत्तरसे तेरे पंचाइ अट्ठेव ॥सूत्रम्-१५॥ (५३) [४८]
चत्तारि आइ नवबंधएसु उक्कोस सत्त उदयसा ।
पंचविहबंधए पुण, उदओ दोण्हं मुणेयव्वो ॥सूत्रम्-१६॥ (५४) [४९]
एत्तो चउबंधाई, एक्केकुदया हवंति सव्वे वि ।
बंधोवरमे वि तहा, उदयाभावे वि वा होज्जा ॥सू०-१७॥ (५५) [५०]

ठवणा—

बंध	२२				२१			१७				१३				९				५	४	३	२	१	०
उदय	७	८	९	१०	७	८	९	६	७	८	९	५	६	७	८	४	५	६	७	२	१	१	१	१	१

मिच्छ-तिकसाय-वेयं, जुयलन्नयरेण २ सत्तगं तत्थ ।
वेयतिग-चउकसाए, जुयलन्नयरेण चउवीसा ॥३५॥ (५६) [५१]
वेएसु चउकसाया, कोहाइकमेण उदयओ हौंति ।
एक्केक्कम्मि चउचउरो, तिग-चउगुणिया उ बारसगं ॥३६॥ (५७) [५२]
ते हास-रईउदए, अरई-सोगपरियत्तउदए वा ।
दो मिलिया चउवीसं, [3]उदयगया मोहणीयस्स ॥३७॥ (५८) [५३]

एवं सव्वत्थ चउवीसिया चारणा ।

सत्तोदयम्मि एगा, अण-भय-कुच्छाण एगयरखेवे ।
अट्ठुदओ तिन्नि तहिं, दुगसंजोगम्मि तह नवए ॥३८॥ (५९) [५४]
तिगपक्खेव दसेगा, चउसु वि उदएसु अट्ठ चउवीसा (मिच्छे) ।
सासणमीसे तिगतिग भयकुच्छदुगेहिं चउचउरो ॥३९॥ [५५]
तिगपक्खेव दसेगा चउसु वि उदएसु अट्ठचउवीसा ।
मिच्छम्मि गुणट्ठाणे सेसगुणाणं च एस कमो ॥ (६०)
तिगतिग उदयट्ठाणा सासणमिस्से य सत्तअट्ठनवगं ।

---

१ अयं पाठः J. प्रतिप्रसकोष्ठ्यां नास्ति, L. D प्रतौ चास्ति । २ "उदयकम्मंसा" इति ॥ ३ "उदयत्तिगया य मोहस्स ॥५८॥" इति L D प्रतौ ।

एगदुगएगक्कमसो चउरो चउरो च पत्तेअं ॥ (६१)
छलउदयम्मी एगा भय-कुच्छा-सम्मखेवएगयरे ।
सत्तोदयम्मि तिन्नि उ, दुग-तिगपक्खेव मिच्छसमा ॥४०॥ (६२) [५६]
पत्तेय अट्ठ अट्ठ उ अविरय-देसे पमत्त-अपमत्ते ।
अप्पुव्वे पुण चउरो, सव्वे चावन्नमिच्छाई ॥४१॥ (६३) [५७]

चोयगो आह-
अणउदयरहियमिच्छो कम्मि जिए कित्तियं च से कालं ।
आह-तदुवलगसम्मदिट्ठिरस मिच्छुदयआवलियकालं ॥४२॥ (६४) [५८]
चउवीससंतकम्मी, मिच्छत्तगओ अणंतिणो बंधे ।
मुत्तु अवाहाकालं तदु उवरिं निक्खिवे दलियं ॥४३॥ (६५) [५९]
कहणंतबंधिउदओ आवलियाउवरि वुच्चए एवं ।
सव्वं पडिग्गहंते अन्नकसायाण संकमणे ॥४४॥ (६६) [६०]
जं पढमसमयदलियं, संकंतं तं च आवलियउवरिं ।
उदयंसे आगच्छइ, तम्मी से अट्ठ उदओ उ ॥४५॥ (६७) [६१]
अन्नं च तम्मि समए, उदीरणोवट्टणागयं दलियं ।
उदयम्मि खिवइ जीवो, अणंतिणो तेण आवलिआ ॥४६॥ (६८) [६२]
तं चेव सत्तगं भय-दुगुंच्छ-अणसहिय अट्ठनवदसगं ।
इत्थं चउवीसा होंति तिन्नि तन्नेग जहसंखं ॥४७॥ [६३]
चउवीसा पुव्वकमा कमेण उदएण जहसंखं ॥ (६९)
पुव्वुत्तसत्तगा मिच्छफेडणे खेवणे यऽणंताणं ।
सत्त य सासाणे तह-ऽड नव य मयकुच्छपक्खेवे ॥४८॥ (७०) [६४]
वेयतिकसायमीसं, जुयलन्नयरेण सत्त मीसम्मि ।
भयकुच्छाणन्नयरे, एगदुगेणं च अट्ठ नव ॥४९॥ (७१) [६५]
तिगसंपराय ३ वेयं १ जुयलभयरेण छच्च पयडीओ ।
भयकुच्छसम्मखेवे अविरयसत्तऽट्ठ नव [1]होंति ॥५०॥ (७२) [६६]
[2]अजउदयठाणचउरो (च्च) देसविरए य सव्वविरए य ।
नवरं कसायहाणी एक्केक्कं जाण जहसंखं ॥५१॥ (७३) [६७]

---

१ "हुंति" इति L. D. प्रतौ २ "अजउदयट्ठाणा तह चउरो देसे य" इति L. D. प्रतौ ।

इगसंपरायवेयं जुयलन्नयरेण चउरउदओ उ ।
अप्पुव्वे भयकुच्छा एगदुगेणं च पण छग्गं ॥५२॥ (७४) [६८]
इगवेयइगकसाए उदओ [1]दोण्हं तु बायरकसाए ।
एक्कुदयवेयखीणे बायरसुहुमाण [2]दोण्हं पि ॥५३॥ (७५) [६९]
[3]उदया इच्चाइ पए भणिया उवसंति तिन्नि संताओ ।
अडचउवीसउवसमे इगवीसं खंडसेढीए ॥५४॥ (७६) [७०]
बावन्नं ५२ चउवीसा गुणठाण पडुच्च इत्थ उद्दन्निया ।
बंधुदए पुण चत्ता ४० सामन्न पडुच्च उद्दंते ॥ (७७)

मोहनीयस्योदयस्थानानां भङ्गाः—

एक्कगछक्केक्कारस दस सत्तचउक्कएक्कगं चेव ।
एए चउवीसगया बारदुगिक्कम्मि एक्कारा ॥पं०-१८॥ (८१) [७१]

एईए विवरणं अंतगाहाओ—

एगो [4]दसोदओ नवुदयचउर तह अड पंच सग छक्कं ।
छत्तिग पण दुग चउ एग हुन्ति उदएसु ठाणाइं ॥५५॥ (८२) [७२]
दसगम्मि एग तिग पढमनवगि सेसेसु नवसु ३ एगेगं ।
पढमे अट्ठगि तिन्नि उ दुग दुग तिग एग चउवीसा ॥५६॥ (८३) [७३]
तिसु सत्तगेसु एगेग तिन्नी तिन्नि उ छट्ठए एगा ।
[5]सव्वुदए चउवीसा, तह एग तिगं तिगं छदुगं ॥५७॥ (८४) [७४]
पणउदइ एग १ बीयम्मि, तिन्नि चउरोदयम्मि एगा उ ।
बार दुगोदयभंगा एक्कोदय होंति एक्कारा ॥५८॥ (८५) [७५]

णा—

गुणठाणा	मि.	मि	सा.	मी.	अवि.	मि.	सा	मी.	अवि.	दे.	मि.	सा	मी.	अवि.	दे.	सं.
उदयठाणा	१०	९	९	९	९	८	८	८	८	८	७	७	७	७	७	७
चउवीसिया	१	३	१	१	१	३	२	२	३	१	१	१	१	३	३	१

-२ D. प्रतौ । अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकॉप्यामस्ति, ३ "उदयाभावे वि यादि- उवसंत तिन्नि चेव संताओ" इति L.D. प्रतौ । ४ "दसोदइ नवोदय" इति ।५ इति J. प्रतिप्रेसकॉप्याम् । "सव्वुदए" इत्यपि वा L. D. प्रतौ पाठः ।

एगदुगएगक्कमसो चउरो चउरो च पत्तेअं ॥ (६१)
छलउदयम्मी एगा भय-कुच्छा-सम्मखेवएगयरे ।
सत्तोदयम्मि तिन्नि उ, दुग-तिगपक्खेव मिच्छसमा ॥४०॥ (६२) [५६]
पत्तेय अट्ठ अट्ठ उ अविरय-देसे पमत्त-अपमत्ते ।
अप्पुव्वे पुण चउरो, सव्वे बावन्नमिच्छाई ॥४१॥ (६३) [५७]

चोयगो आह–
अणउदयरहियमिच्छो कम्मि जिए कित्तियं च से कालं ।
आह–तदुवलगसम्मदिट्ठिस्स मिच्छुदयआवलियकालं ॥४२॥ (६४) [५८]
चउवीससंतकम्मी, मिच्छत्तगओ अणंतिणो बंधे ।
मुत्तु अबाहाकालं तदु उवरिं निक्खिवे दलियं ॥४३॥ (६५) [५९]
कहणंतबंधिउदओ आवलियाउवरि वुच्चए एवं ।
सव्वं पडिग्गहंते अन्नकसायाण संकमणे ॥४४॥ (६६) [६०]
जं पढमसमयदलियं, संकंतं तं च आवलियउवरिं ।
उदयंसे आगच्छइ, तम्मी से अट्ठ उदओ उ ॥४५॥ (६७) [६१]
अन्नं च तम्मि समए, उदीरणोवट्टणागयं दलियं ।
उदयम्मि खिवइ जीवो, अणंतिणो तेण आवलिआ ॥४६॥ (६८) [६२]
तं चेव सत्तगं भय-दुगुंच्छ-अणसहिय अट्ठनवदसगं ।
इत्थं चउवीसा होंति तिन्नि तन्नेग जहसंखं ॥४७॥ [६३]
चउवीसा पुव्वकमा कमेण उदएण जहसंखं ॥ (६९)
पुव्वुत्तसत्तगा मिच्छफेडणे खेवणे यऽणंताणं ।
सत्त य सासाणे तह-ऽह नव य भयकुच्छपक्खेवे ॥४८॥ (७०) [६४]
वेयतिकसायमीसं, जुयलन्नयरेण सत्त मीसम्मि ।
भयकुच्छाणन्नयरे, एगदुगेणं च अट्ठ नव ॥४९॥ (७१) [६५]
तिगसंपराय ३ वेयं १ जुयलन्नयरेण छच्च पयडीओ ।
भयकुच्छसम्मखेवे अविरयसत्तऽट्ठ नव [1]होंति ॥५०॥ (७२) [६६]
[2]अजउदयठाणचउरो (व्व) देसविरए य सव्वविरए य ।
नवरं कसायहाणी एक्केक्कं जाण जहसंखं ॥५१॥ (७३) [६७]

१ "हुंति" इति L. D. प्रतौ २ "अजउदयट्ठाणा तह चउरो देसे य" इति L. D. प्रतौ ।

इगसंपरायवेयं जुयलन्नयरेण चउरउदओ उ ।
अप्पुव्वे भयकुच्छा एगदुगेणं च पण छक्कं ॥५२॥ (७४) [६८]
इगवेयइगकसाए उदओ [1]दोण्हं तु बायरकसाए ।
एक्कुदयवेयखीणे बायरसुहुमाण [2]दोण्हं पि ॥५३॥ (७५) [६९]
[3]उदया इच्चाइ पए भणिया उवसंति तिन्नि संताओ ।
अडचउवीसउवसमे इगवीसं खंडसेढीए ॥५४॥ (७६) [७०]
बावन्नं ५२ चउवीसा गुणठाण पडुच्च इत्थ उद्धरिया ।
बंधुदए पुण चत्ता ४० सामन्न पडुच्च उद्धंते ॥ (७७)

मोहनीयस्योदयस्थानानां भङ्गाः—

एक्कगछक्केक्कारस दस सत्तचउक्कइक्कगं चेव ।
एए चउवीसगया बारदुगिक्कम्मि एक्कारा ॥सू०-१८॥ (८१) [७१]

एईए विवरणं जंतगाहाओ—

एगो [4]दसोदओ नवुदयचउर तह अड पंच सग छक्कं ।
छत्तिग पण दुग चउ एग हुन्ति उदएसु ठाणाइं ॥५५॥ (८२) [७२]
दसगम्मि एग तिग पढमनवगि सेसेसु नवसु ३ एगेगं ।
पढमे अट्ठगि तिन्नि उ दुग दुग तिग एग चउवीसा ॥५६॥ (८३) [७३]
तिसु सत्तगेसु एगेग तिन्नी तिन्नि उ छट्टए एगा ।
[5]सव्वुदए चउवीसा, तह एग तिगं तिगं छदुगे ॥५७॥ (८४) [७४]
पणउदइ एग १ बीयम्मि, तिन्नि चउरोदयम्मि एगा उ ।
बार दुगोदयभंगा एक्कोदय होंति एक्कारा ॥५८॥ (८५) [७५]

ठवणा—

गुणठाणा	मि.	मि	सा.	मी.	अवि.	मि.	सा	मी.	अवि.	दे.	मि.	सा	मी.	अवि.	दे.	सं.
उदयठाणा	१०	९	९	९	९	८	८	८	८	८	७	७	७	७	७	७
चउवीसिया	१	३	१	१	१	३	२	२	३	१	१	१	१	३	३	१

१-२ "दुन्हं" इति L. D. प्रतौ । अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकोप्यामस्ति, ३ "उदयाभावे वि वाहि-ज्जिते-'इइ सुत्ताओ भणिया उवसंते तिन्नि चेव संताओ" इति L.D. प्रतौ। ४ "दसोदउ नवोदय" इति वा। ५ "सव्वुदए ...... छतिगे ॥"इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम्। "सत्तुदए" इत्यपि वा L. D. प्रतौ भाति । तथा J. प्रतावपि स्यात् ।

एगदुगएगक्रमसो चउरो चउरो च पत्तेअं ॥ (६१)
छलउदयम्मी एगा भय-कुच्छा-सम्मखेवएगयरे ।
सत्तोदयम्मि तिन्नि उ, दुग-तिगपक्खेव मिच्छसमा ॥४०॥ (६२) [५६]
पत्तेय अट्ठ अट्ठ उ अविरय-देसे पमत्त-अपमत्ते ।
अप्पुव्वे पुण चउरो, सव्वे बावन्नमिच्छाई ॥४१॥ (६३) [५७]
चोयगो आह-
अणउदयरहियमिच्छो कम्मि जिए कित्तियं च से कालं ।
आह-तदुवलगसम्मदिट्ठिरस मिच्छुदयआवलियकालं ॥४२॥ (६४) [५८]
चउवीससंतकम्मी, मिच्छत्तगओ अणंतिणो बंधे ।
मुत्तु अबाहाकालं तदु उवरिं निक्खिवे दलियं ॥४३॥ (६५) [५९]
कहणंतबंधिउदओ आवलियाउवरि वुच्चए एवं ।
सव्वं पडिग्गहंते अन्नकसायाण संकमणे ॥४४॥ (६६) [६०]
जं पढमसमयदलियं, संकंतं तं च आवलियउवरिं ।
उदयंसे आगच्छइ, तम्मी से अट्ठ उदओ उ ॥४५॥ (६७) [६१]
अन्नं च तम्मि समए, उदीरणोवट्टणागयं दलियं ।
उदयम्मि खिवइ जीवो, अणंतिणो तेण आवलिआ ॥४६॥ (६८) [६२]
तं चेव सत्तगं भय-दुगुंच्छ-अणसहिय अट्ठनवदसगं ।
इत्थं चउवीसा होंति तिन्नि तन्नेग जहसंखं ॥४७॥ [६३]
चउवीसा पुव्वकमा कमेण उदएण जहसंखं ॥ (६९)
पुव्वुत्तसत्तगा मिच्छफेडणे खेवणे यऽणंताणं ।
सत्त य सासाणे तह-ऽट्ठ नव य भयकुच्छपक्खेवे ॥४८॥ (७०) [६४]
वेयतिकसायमीसं, जुयलन्नयरेण सत्त मीसम्मि ।
भयकुच्छाणन्नयरे, एगदुगेणं च अट्ठ नव ॥४९॥ (७१) [६५]
तिगसंपराय ३ वेयं १ जुयलन्नयरेण छच्च पयडीओ ।
भयकुच्छसम्मखेवे अविरयसत्तऽट्ठ नव [1]होंति ॥५०॥ (७२) [६६]
[2]अजउदयठाणचउरो (व्व) देसविरए य सव्वविरए य ।
नवरं कसायहाणी एक्केक्कं जाण जहसंखं ॥५१॥ (७३) [६७]

---

१ "हुंति" इति L. D. प्रतौ २ "अजउदयट्ठाणा तह चउरो देसे य" इति L. D. प्रतौ ।

इगसंपरायवेयं जुयलक्खयरेण चउरउदओ उ ।
अप्पुव्वे भयकुच्छा एगदुगेणं च पण छक्कं ॥५२॥ (७४) [६८]
इगवेयइगकसाए उदओ [1]दोण्हं तु बायरकसाए ।
एक्कुदयवेयखीणे बायरसुहुमाण [2]दोण्हं पि ॥५३॥ (७५) [६९]
[3]उदया इच्चाइ पए भणिया उवसंति तिन्नि संताओ ।
अडचउवीसउवसमे इगवीसं खंडसेढीए ॥५४॥ (७६) [७०]
बावन्नं ५२ चउवीसा गुणठाण पडुच्च इत्थ उडुन्निया ।
बंधुदए पुण चत्ता ४० सामन्न पडुच्च उद्ठंते ॥ (७७)

मोहनीयस्योदयस्थानानां भङ्गाः—

एक्कगछक्केक्कारस दस सत्तचउक्कइक्कगं चेव ।
एए चउवीसगया बारदुगिक्कम्मि एक्कारा ॥सू०–१८॥ (८१) [७१]

एईए विवरणं अंतगाहाओ—

एगो [4]दसोदओ नवुदयचउर तह अड पंच सग छक्कं ।
छत्तिग पण दुग चउ एग हुन्ति उदएसु ठाणाइं ॥५५॥ (८२) [७२]
दसगम्मि एग तिग पढमनवगि सेसेसु नवसु ३ एगेगं ।
पढमे अट्ठगि तिन्नि उ दुग दुग तिग एग चउवीसा ॥५६॥ (८३) [७३]
तिसु सत्तगेसु एगेग तिन्नी तिन्नि उ छट्ठए एगा ।
[5]सव्वुदए चउवीसा, तह एग तिगं तिगं छद्दुगे ॥५७॥ (८४) [७४]
पणउदइ एग १ बीयम्मि, तिन्नि चउरोदयम्मि एगा उ ।
बार दुगोदयभंगा एक्कोदय होंति एक्कारा ॥५८॥ (८५) [७५]

ठवणा—

गुणठाणा	मि.	मि	सा.	मी.	अवि.	मि.	सा	मी.	अवि.	दे.	मि.	सा	मी.	अवि.	दे.	सं.
उदयठाणा	१०	९	९	९	९	८	८	८	८	८	७	७	७	७	७	७
चउवीसिया	१	३	१	१	१	३	२	२	३	१	१	१	१	३	३	१

१-२ "दुन्हं" इति L. D. प्रतौ । अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकोप्यामस्ति, ३ "उदयाभावे वि बाहि-ज्जिते-'इइ सुत्ताओ भणिया उवसंते तिन्नि चेव संताओ" इति L.D. प्रतौ। ४ "दसोदउ नवोदय" इति तथा J. प्रतावपि स्यात् । ५ "सव्वुदए ...... छतिगे ॥" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । "सत्तुदए" इत्यपि वा L. D. प्रतौ भाति ।

अवि.	दे.	सं.	दे.	सं.	सं.	दुगोदए भंगा १२
६	६	६	५	५	४	एक्कोदए भंगा ११
१	३	३	१	३	१	एवं चउवीसा ४०+भंगा २३

इय मोहरायसेन्ने चालीसकुडंब ४०वग्ग किल भिच्चा ।
वग्गे वग्गे य तहा चउवीसकुडुंविया अत्थि ॥५९॥ (७८) [७६]
तेहि य जगडिज्जंतं सव्वजगं कलकलेइ अणवरयं ।
[1]मोत्तुमपमत्तसिद्धा इय एवं मोहिया जीवा ॥६०॥ (७९) [७७]
[2]उदयपया य कुडुंवी माणुससंखा य इत्थ किल विंदा ।
सूरा य पयइमेया इयरि असंखा मुणेयव्वा ॥६१॥ (८०) [७८]

गुणठाणा	मिच्छ०				सासण०			मिस्स०			अविरय०				देस०			
बंधठाणा	२२				२१			१७			१७				१३			
उदयठाणा	७	८	९	१०	७	८	९	७	८	९	६	७	८	९	५	६	७	८
चउवीसिया	१	३	३	१	१	२	१	१	२	१	१	३	३	१	१	३	३	१
चउवीसियसंखा	८				४			४			८				८			

प्रमत्त०				अपमत्त०				अपुव्व०			अनिवृत्ति०					सू.	उप०
९				९				९			५	४	३	२	१	०	०
४	५	६	७	४	५	६	७	४	५	६	२	१	१	१	१	१	०
१	३	३	१	१	३	३	१	१	२	२	१२	४	३	२	१	१	
८				८				४									

[3]उदयपए पयविंदसंखामाह—

१ "मुत्तु अ०" इति L. D. प्रतौ। २ "उदयपयपयकुडुंबी" इति L. D. प्रतौ । ३ L. D. प्रतावयं पाठः, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

नवतेसीयसएहिं उदयविगप्पेहिँ मोहिया जीवा।
उणहत्तरि सीयाला पयविंदसएहिँ विन्नेया ॥सू०-१६॥ (८६) [७६]

चत्ता चउवीसाणं चउवीसगुणा य [1]होंति नवसट्ठा ।
तेवीसमंग मिलिया तेसीया नवसया [2]होंति ॥६२॥ (८७) [८०]

वेयतियचउकसाए अभयरुदएण भंगवारसगं ।
पणवंधे दुगउदओ चउबंधाई उ एक्कुदया ॥६३॥ (८८) [८१]

चउबंधे चउभंगा तिगमंगाईण भंगया छक्कं ।
उवरयबंधे एगो एक्कुदएक्कारमंगाओ ॥६४॥ [८२]

जे बंधइ ते वेयइ बंधे य पडुच्च इय दसगं ॥ (८६)

पयाणं संखा वुत्ता। इयाणिं पयविंदाणं संखा कहिज्जइ–

उवरयबंधे एगो तुरियकसायस्स सुहुमकिट्टुदए ।
संखा विवक्खिया इह एक्कुदएकारमंगाओ ॥ (९०)

जत्थुदए चउवीसा जत्तियसंखा स एव गुणकारो ।
चउराइदसंतुदया गुणिनियचउवीससंखाए ॥६५॥ (६१) [८३]

दस१०चउपन्न५४ट्ठासी८८सत्तरि७०वायाल४२वीस२०चउ४संखा ।
दुगउदयम्मी एगा एक्कुदइकारमंगाओ ॥६६॥ (९२) [८४]

चउवीसगुणा काउं पत्तेयं तेसि होइ इय संखा ।
चालीसा [3]दोन्नि सया२४०बारस छन्नउय १२९६ तह अन्ने ॥६७॥ ६३) [८५]

बारहिया इगवीसं२११२सोलस आसी य१६८०[4]सहस अट्ठहिया१००८
चउअसिया ४८०छन्नवई९६चउवी सि२४कार११भंगा ॥६८॥ (६४) [८६]

एवं सव्वविसुद्धेण ६६४७।

[5]उणहत्तरि छत्तीसा, एकारसमंग मिलिय सीयाला ।
अन्ने उ चउरबंधे दुगोदयं बिंति किल किंचि ॥६६॥ (६५) [८७]

[6] **नवपंचाणुसएहिं उदयविगप्पेहिँ मोहिया जीवा ।**
अउणत्तरि एगुत्तरि पयविंदसएहि विन्नेया ।।सूत्रम्-२०॥ (६६) [८८]

पुंवेयबंधवोच्छेय आवली एक्क दोण्ह उदओ उ ।

१-२ 'हुंति" इति L. D. प्रतौ । ३ "दुन्नि" इति L D. प्रतौ । ४"दस य अट्ठहिया १००८। इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ५ 'उणहत्तरि सीयाला पयविंदाणं तु हुन्ति मोहस्स" इति L D. प्रतौ । ६ "नवपंचाणउयसएहुदय-"इत्यपि ।

तेसि मए पयवारसविंदा चउवीस [1]तइ अहिया ।७१।। (९७) [८९]

मोहनीयस्य बन्धस्थानेषु सत्तास्थानानि-

तिन्नेव उ बावीसे इगवीसे अट्ठवीससत्तरसे ।
छच्चेव तेरनवबंधएसु पंचेव ठाणाणि ।।सूत्रम्-२१।। (९८) [९०]
[2] संतट्ठाणा संखा बंधे बंधे पडुच्च इह भणिया ।
तह वि य सुहगुणणत्थं गुणउदय पडुच्च संवेहो ।।७२।। (९९) [९१]
बंधगुणठाणगेसुं उदयट्ठाणाउ [3]सुत्तभणियमवि ।
पुणरवि सुमरणहेउं, तह [4]उदए संतसंखाओ ।।७३।। (१००) [९२]
चउठाणा मिच्छत्ते सासणमिस्से य तिगतिगं जाण ।
अजयाइ अप्पमत्तं चउचउठाणा उ उदयाणं ।।७४।। (१०१) [९३]
सत्तोदय अडवीसा सेसेसुदएसु तिगतिगं जाण ।
अडसत्तछक्कमहिया वीसा बावीसबंधम्मि ।।७५।। (१०२) [९४]
इगवीसे अडवीसा एक्का सत्ताइतिसु वि पत्तेयं ।
मीसम्मि संतठाणा अडसगचउअहियवीसाउ ।।७६।। [९५]
मीसम्मि संतठाणा तिगतिग उदएसु पत्तेयं ।। (१०३)
अडवीसा सगवीसा सम्मुव्वलणे य मीसउदयम्मि ।
चउवीससंतठाणं सेढिं उवरिं पडंतस्स ।। (१०४)
अजओदयम्मि पढमे अडचउइगअहियवीस २८, २४. २१, ठाणाइं ।
बीए तइए ते च्चिय तिवीसबावीसंजुत्ता २८,२४,२३,२२ २१।।७७।। (१०५) [९६]
इगवीस वज्ज तुरिए २८,२४,२३,२२जेणं सो वेयगस्स उदओ उ ।
एवं देस-पमत्ता-ऽपमत्तयाणं च दट्ठव्वं ।।७८।। [९७]
इगवीसवज्जतुरिए२८,२४,२३,२२ चउरो ठाणा उ तत्थ संतम्मि ।
सो वेयगदिट्ठीणं इगवीसा खवगदिट्ठीणं ।। (१०६)
तिगपणपणचउसंता सव्वे सत्तरसठाणसंखाए ।
एवं देसपमत्तापमत्तयाणं च दट्ठव्वं ।। (१०७)
देसविरओ य दुविहो तिरिमणुसामझपंचठाणाइं ।
अडवीसा चउवीसा तिरियाणं देसविरयाणं ।।७९।। (१०८) [९८]
इगवीसा बावीसा तिरियाणं भोगभूमि संभवइ ।

---

१. "इत्यहिया" इति L. D. प्रतौ । २ "संतंसठाणसंखा" इति L. D. प्रतौ । ३ "सुत्तमणियमवि" इति, J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ४ "उदया" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् ।

'जत्थ न विरईभावो ते वि य मणुखवगआयाआ ॥८०॥ (१०९) [९९]
अडचउइगेण अहिया वीसा अप्पुव्वि तिसु य पत्तेयं ।
उदएसु सत्ताओ, बायररागे अओ वोच्छं ॥८१॥ (११०) [१००]
पंचविहचउविहेसु छछक्कसेसेसु जाण पंचेव ।
पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि य बंधवोच्छेए ॥सूत्रम्-२२॥ (१११) [१०१,
पणगाइ५,४,३,२,१एगु संते तह य अबंधम्मि तिन्नि पत्तेयं ।
चउरट्ठइक्कवीसा २४,२८, २१,उवसमसेढि पडुच्चेए ।.८२। (११२) [१०२]
इगवीसा खवगम्मि वि पणगे बंधम्मि किंचि कालमिह ।
मज्झिल्लट्ठकसाएक्खय तेरस १३नपुमि बारसगं १२ ॥८३॥ (११३) [१०३]
थीवेयखीणिगारस पणगे किंची चउक्कबंधेवि ।
हासाइखीणि पणगं चउरो पुरिसम्मि चउबंधे ॥८४॥ (११४) [१०४]
तियबन्धे वि य संता संजलणचउक्क आवलिदुगूणा ।
कोहे खयम्मि तिन्नि उ ते चेव दुगम्मि खणमित्तं ॥८५॥ (११५) [१०५]
माणे खयम्मि तिन्नि उ तत्थेव दुगम्मि जाव अंतमुहू ।
ते चेव एक्कबंधे जाव न खीणा तिजयमाया ॥८६॥ (११६) [१०६]
मायाए खीणाए [3]लोभो बंधम्मि लोभसंता य ।
अब्बंधम्मि वि लोभो सव्वे तियजुत्तठाणाइं ॥८७॥ (११७) [१०७]

सत्ताठाण०	३				१			३			५				५			
गुणट्ठाण०	मिच्छद्दिट्ठि.				सासण०			मिस्स०			अविरय०				देसविरय०			
बन्धट्ठाण०	२२				२१			१७			१७				१३			
उदयट्ठाण०	७	८	९	१०	७	८	९	७	८	९	६	७	८	९	५	६	७	८
सत्ताठाणाणि	२८	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
		२७	"	"				२७	"	"	२४	"	"	"	"	"	"	"
		२६	"	"				२४	"	"	२१	"	"		"	"	२	
												२३	"	"		"	"	"
												२२	"	"		"	"	"
सव्वाणि	१०				३			९			१७				१७			

१ "तत्थ" इति L. D. प्रतौ । २ "चउमट्ठपक्क" इति L. D प्रतौ । ३ "लोभे" इति L. D. प्रतौ ।

सत्ताठाण०	५				५				३			६	६	५	५	५	४	३	
गुणट्ठाण	पमत्त				अपमत्त०				अपुव्व			अनियट्टि०					सु	उ०	
बंधट्ठाण०	९				९				९			५	४	३	२	१	०	०	
उदयट्ठाण०	४	५	६	७	४	५	६	७	४	५	६	२	१	१	१	१	१	०	
सत्ताट्ठाणाणि	२८	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
	२४	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
	२१	"	"		"	"	"		"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
		२३	"	"		"	"	"				१३	११	४	३	२	१		
		२२	"	"		"	"	"				१२	५	३	२	१			
												११	४						
सव्वाणि	१७				१७				९			२७					४	३	१३२

गुणठाणगउदएसुं संतट्ठाणाण संख इय वुत्ता ।
गुणठाणगपत्तेयं, [1]सव्वसंखा य इय भणिमो ॥८८॥ (११८) [१०८]

दसतिगनवमिच्छाइसु, अजयाई पंचगम्मि सगसयरी ।
छच्छक्क पणचउक्कम्मि पणपण सेसेसु चउतिग अबंधे ॥८९॥ (११९) [१०९]

[2]मोहे संवेहभणणा तेत्तीससयं तु संतठाणाणं ।
गुणठाणगे पडुच्चा बंधे पुण अट्ठ[3]नउई य ॥९०॥ (१२०) [११०]

दसतिगवीसा सत्तरस दुसु य पत्तेय संतठाणाइं ।
सगवीस पंचगाई चउर अबंधम्मि य ठाणाइं ॥९१॥ (१२१) [१११]

सगवीस मीसगम्मी सेसा सामन्न चउसु उदएसु ।
इय अजयमीसगाणं वीसं सत्तरसबंधम्मि ॥९२॥ (१२२) [११२]

दसनवपन्नरसाई बंधोदयसंतपयडिठाणाणि ।
भणियाणि मोहणिज्जे एत्तो नामं परं वोच्छं ॥सू० २३॥ (१२३) [११३]

१ "सव्वसंखं" इति L. D. प्रतौ । २ "मोहसंवे०" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ३ "नवई ॥१२०॥" इति L D. प्रतौ ।

दसनवपण्णरसाई इच्चाई विवरियं समासेण ।
[1]इत्तो य नामबंधा तेवीसाईणि विवरेमि ॥९२॥ (१२४) [११४]

नाम्न उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानानि

तेवीसपण्णवीसा छव्वीसा अट्ठवीसगुणतीसा ।
तीसेगतीसमेगं बंध[2]ट्ठाणाईं नामस्स ॥सू०-॥२४॥ (१२५) [११५]

ठवणा-२३, २५ २६, २८ २९, ३०, ३१, १,

वन्न१रस१गंध१फासा१ तेयग१कम्मइग१अगुरु१उवघायं ।
निम्मेण१-नाम-धुवया९ सेसा अट्ठवन्नअधुवाओ ॥९३॥ (१२६) [११६]
गइ ४ अणुपुव्वीचउ २ छ उ संघयणा६गी६तसाइवीसं२०च ।
जाइ५सरीरं३ गतिगं३ परघाचउ४ तित्थ विहगदुगं (१२७)

[3]अट्ठवन्नं अधुवाओ-

तग्गयणुपुव्विजाई थावरमाई उ दूसरविहूणा ।
धुवबंध९हुंडउरलं तेवीसअपज्जथावरए ॥९४॥ (१२८) [११७]
सासपरघायखेवे पणवीसा सुहुमबायराणं तु ।
छव्वीस आयवेणं उज्जोअपइट्ठित्ति बंधतिगं ॥९५॥ [११८]
अपजत्तं अवणित्ता पज्जत्तगखेव पज्जपाओगा ।
सासपरघायखेवे सो बंधो पज्जपाओगो ॥९६॥ [११९]
अपज्जत्तं अवणित्ता पज्जत्तगखेव सा उ तेवीसा ।
सासपरघायखेवे पणवीसा होइ पगईणं ॥ (१२९)
पुढवाइबायराणं पज्जाणं सुहुमबायराणं तु ।
छव्वीस आयवेणं अहवा उज्जोयपरियत्तो ॥ (१३०)

[4]बायरएगिंदिपाउग्गा एसा ॥ बंधतिगं थावराणेयं ॥
[5]सेसा बंधा य इय नेया ॥

गइजाइछेयपुव्वी धुवबंधा हुंडउरलदुगथूलं ।
दूसररहिया अथिराइ ५ तसअपज्जत्तपत्तेयं ॥९७॥ (१३१) [१२०]
बीया पणवीसेसा तसपाउग्गा तहा य सरसासे ।
विहगपरघायखेवे उणतीसा तीस उज्जोए ॥९८॥ (१३२) [१२१]

---

१ "एत्तो य" इति L. D. प्रतौ । २ "ठाणाणि" इति वा । ३-४ "अयं पाठः L. D. प्रतावस्ति,व J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । ५ "अयं पाठः L. D. प्रतौ नास्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां चास्ति ।

सत्ताठाण°	५				५				३			६	६	५	५	५	४	३
गुणट्ठाण	पमत्त°				अपमत्त°				अपुव्व			अनियट्टि°					सु	उ°
बंधट्ठाण°	९				९				९			५	४	३	२	१	०	०
उदयट्ठाण°	४	५	६	७	४	५	६	७	४	५	६	२	१	१	१	१	१	०
सत्ताठाणाणि	२८	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃
	२४	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃
	२१	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃	〃
		१३	〃	〃		〃	〃	〃				१३	११	४	३	२	१	
		१२	〃	〃		〃	〃	〃				१२	५	३	२	१		
												११	४					
सव्वाणि	१७				१७				९			२७					४	३	१३२

गुणठाणगउदएसुं संतट्ठाणाण संख इय वुत्ता ।
गुणठाणगपत्तेयं, [1]सव्वसंखा य इय भणिमो ॥८८॥ (११८) [१०८]
दसतिगनवमिच्छाइसु, अजयाई पंचगम्मि सगसयरी ।
छच्छक्क पणचउक्कम्मि पणपण सेसेसु चउतिग अबंधे ॥८९॥ (११९) [१०९]
[2]मोहे संवेहभणणा तेत्तीससयं तु संतठाणाणं ।
गुणठाणगे पडुच्चा बंधे पुण अट्ठ[3]नउई य ॥९०॥ (१२०) [११०]
दसतिगवीसा सत्तरस दुसु य पत्तेय संतठाणाइं ।
सगवीस पंचगाई चउर अबंधम्मि य ठाणाइं ॥९१॥ (१२१) [१११]
सगवीस मीसगम्मी सेसा सामन्न चउसु उदएसु ।
इय अजयमीसगाणं वीसं सत्तरसबंधम्मि ॥९२॥ (१२२) [११२]
दसनवपन्नरसाइं बंधोदयसंतपयडिठाणाणि ।
भणियाणि मोहणिज्जे एत्तो नामं परं वोच्छं ॥सू० २३॥ (१२३) [११३]

---

१ "स०असंखं" इति L. D. प्रतौ । २ "मोहसंवे०" इति J. प्रतिप्रेसकोप्यम् । ३ "नवई ॥१२०॥" इति L D. प्रतौ ।

दसनवपण्णरसाई इच्चाई विवरियं समासेण ।
[1]इत्तो य नामबंधा तेवीसाईणि विवरेमि ॥९२॥ (१२४) [११४]

नाम्न उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानानि

तेवीसपण्णवीसा छव्वीसा अट्ठवीसगुणतीसा ।
तीसेगतीसमेगं बंध[2]ट्ठाणाई नामस्स ॥सू०-॥२४॥ (१२५) [११५]

ठवणा-२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १,

वन्न१रस१गंध१फासा१ तेयग१कम्मइग१अगुरु१उवघायं ।
निम्मेण१-नाम-धुवयाइ सेसा अडवन्नअधुवाओ ॥९३॥ (१२६) [११६]
गइ४ अणुपुव्वीचउ २ छ उ संघयणा६गी६तसाइवीसं२०च ।
जाइ५सरीरं३ गतिगं३ परघाचउ४ तित्थ विहगदुगं (१२७)
[3]अडवन्नं अधुवाओ-
तग्गयणुपुव्विजाई थावरमाई उ दूसरविहूणा ।
धुवबंध९हुंडउरलं तेवीसअपज्जथावरए ॥९४॥ (१२८) [११७]
सासपरघायखेवे पणवीसा सुहुमबायराणं तु ।
छव्वीस आयवेणं उज्जोअपज्जत्ति बंधतिगं ॥९५॥ [११८]
अपजत्तं अवणित्ता पज्जत्तगखेव पज्जपाओगा ।
सासपरघायखेवे सो बंधो पज्जपाओगो ॥९६॥ [११९]
अपज्जत्तं अवणित्ता पज्जत्तगखेव सा उ तेवीसा ।
सासपरघायखेवे पणवीसा होइ पगईणं ॥ (१२९)
पुढवाइबायराणं पज्जाणं सुहुमबायराणं तु ।
छव्वीस आयवेणं अहवा उज्जोयपरियत्तो ॥ (१३०)
[4]बायरएगिंदिपाउग्गा एसा ॥ बंधतिगं थावराणेयं ॥
[5]सेसा बंधा य इय नेया ॥
गइजाइछेयपुव्वी धुवबंधा हुंडउरलदुगथूलं ।
दूसररहिया अथिराइ ५ तसअपज्जत्तपत्तेयं ॥९७॥ (१३१) [१२०]
बीया पणवीसेसा तसपाउग्गा तहा य सरसासे ।
विहगपरघायखेवे उणतीसा तीस उज्जोए ॥९८॥ (१३२) [१२१]

---

१ "एत्तो य" इति L. D. प्रतौ। २ "ठाणाणि" इति वा । ३-४ "अयं पाठः L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । ५ "अयं पाठः L. D. प्रतौ नास्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां चास्ति।

सत्ताठाण०	५				५				३			६	६	५	५	५	४	३	
गुणट्ठाण	पमत्त				अपमत्त०				अपुव्व			अनियट्टि०					सु	उ०	
बंधट्ठाण०	९				९				९			५	४	३	२	१	०	०	
उदयट्ठाण०	४	५	६	७	४	५	६	७	४	५	६	२	१	१	१	१	१	०	
सत्ताट्ठाणाणि	२८	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
	२४	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
	२१	"	"		"	"	"		"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	
		२३	"	"		"	"	"				१३	११	४	३	२	१		
		२२	"	"		"	"	"				१२	५	३	२	१			
												११	४						
सव्वाणि	१७				१७				९			२७					४	३	१३२

गुणठाणगउदएसु[1] संतट्ठाणाण संख इय वुत्ता ।
गुणठाणगपत्तेयं, सव्वसंखा य इय भणिमो ॥८८॥ (११८) [१०८]
दसतिगनवमिच्छाइसु, अजयाई पंचगम्मि सगसयरी ।
छच्छक्क पणचउक्कम्मि पणपण सेसेसु चउतिग अवंधे ॥८९॥ (११९) [१०९]
[2]मोहे संवेहमणणा तेत्तीससयं तु संतठाणाणं ।
गुणठाणगे पडुच्चा बंधे पुण अट्ठ[3]नउई य ॥९०॥ (१२०) [११०]
दसतिगवीसा सत्तरस दुसु य पत्तेय संतठाणाइं ।
सगवीस पंचगाई चउर अवंधम्मि य ठाणाइं ॥९१॥ (१२१) [१११]
सगवीस मीसगम्मी सेसा सामन्न चउसु उदएसु ।
इय अजयमीसगाणं वीसं सत्तरसबंधम्मि ॥९२॥ (१२२) [११२]
दसनवपन्नरसाई बंधोदयसंतपयडिठाणाणि ।
भणियाणि मोहणिज्जे एत्तो नामं परं वोच्छं ॥सू० २३॥ (१२३) [११३]

---

१ "सव्वसंखं" इति L. D. प्रतौ । २ "मोहसंवे०" इति J. प्रतिप्रेसकोपयाम् । ३ "नवई ॥१२०॥" इति L. D. प्रतौ ।

दसनवपण्णरसाई इच्चाई विवरियं समासेण ।
[1]इत्तो य नामबंधा तेवीसाईणि विवरेमि ॥९२॥ (१२४) [११४]

नाम्न उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानानि

तेवीसपण्णवीसा छव्वीसा अट्ठवीसगुणतीसा ।
तीसेगतीसमेगं बंध[2]ट्ठाणाइँ नामस्स ॥सू०-॥२४॥ (१२५) [११५]

ठवणा-२३, २५ २६, २८ २९, ३०, ३१, १,

वन्न१रस१गंध१फासा१ तेयग१कम्मइग१अगुरु१उवघायं ।
निम्मेण१-नाम-धुवयाद सेसा अडवन्नअधुवाओ ॥९३॥ (१२६) [११६]
गइ ४ अणुपुव्वीचउ २ छ उ संघयणा६गी६तसाइवीसं२०च ।
जाइ५सरीरं३ गतिगं३ परघाचउ४ तित्थ विहगदुगं (१२७)

[3]अडवन्नं अधुवाओ-

तग्गयणुपुव्विजाई थावरमाई उ दूसरविहूणा ।
धुववंध९हुंडउरलं तेवीसअपज्जथावरए ॥९४॥ (१२८) [११७]
सासपरघायखेवे पणवीसा सुहुमबायराणं तु ।
छव्वीस आयवेणं उज्जोअपल्लित्ति बंधतिगं ॥९५॥ [११८]
अपजत्तं अवणित्ता पज्जत्तगखेव पज्जपाओगा ।
सासपरघायखेवे सो बंधो पज्जपाओगो ॥९६॥ [११९]
अपज्जत्तं अवणित्ता पज्जत्तगखेव सा उ तेवीसा ।
सासपरघायखेवे पणवीसा होइ पगईणं ॥ (१२९)
पुढवाइबायराणं पज्जाणं सुहुमबायराणं तु ।
छव्वीस आयवेणं अहवा उज्जोयपरियत्तो ॥ (१३०)

[4]बायरपर्गिदिपाउग्गा पसा ॥ बंधतिगं थावराणेयं ॥
[5]सेसा बंधा य इय नेया ॥

गइजाइछेयपुव्वी धुवबंधा हुंडउरलदुगथूलं ।
दूसररहिया अथिराइ ५ तसअपज्जत्तपत्तेयं ॥९७॥ (१३१) [१२०]
बीया पणवीसेसा तसपाउग्गा तहा य सरसासे ।
विहगपरघायखेवे उणतीसा तीस उज्जोए ॥९८॥ (१३२) [१२१]

---

१ "एत्तो य" इति L. D. प्रतौ । २ "ठाणाणि" इति वा । ३-४ "अयं पाठः L. D. प्रतावधिक J. प्रतिप्रेसकोर्प्यां नास्ति । ५ "अयं पाठः L. D. प्रतौ नास्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां चास्ति ।

पणवीस अपज्जाणं उणतीसा तीस पज्जपाओगा ।
वितिचउरिंदियपंचिंदियाण तिरियाण वंधे उ ॥९९॥ (१३३) [१२२]
पणवीसा गुणतीसा तिरियसमा तीस तित्थसंजुत्ता ।
वंधतिगं मणुजोगं नेरइयअसुद्धअडवीसा ॥१००॥ (१३४) [१२३]

सा चेयं—

नरयदुगं २ परघायं १ सासं१दुहखगइ१सयल१हुंडं च१ ।
धुववंधि ९तमचउक्कं २ वेउव्विदुगं २ च अथिराई ६॥१०१॥ (१३५) [१२४]
देवदुगं २परघायं १ सासं १ सुमखगइ१सयल१चतुरंसं १ ।
धुववंधी९तसदसगं१०वेउव्विदुगं२च अडवीसा ।१०२॥ (१३६) [१२५]
सा तित्थे उणतीसाऽऽहारदुगे तीस तिसु य इगतीसा ।
चउठाणा देवाणं सेढिदुगे एग जसकित्ती ॥१०३॥ (१३७) [१२६]
चउ पणवीसा सोलस नव बाणउई सया [१]उ अडयाला ।
ईयालोत्तर छायालसया एक्केक्क बंधविही ॥सू०-२५॥(१३८) [१२७]

[३]ठवणा—

बंधठाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१
भंगा	४	२५	१६	९	९२४८	४६४१	१	१

बायरपत्तेगियरे भंगा चत्तारि बंधतेवीसे ।
पणवीसे पणवीसा छव्वीसे भंगसोलसगं ॥१०४॥ [१२८]

ठवणा—

बा	बा.	सु.	सु.
प०	सा	प.	सा
१	२	३	४

एस गमो सव्वेसिं भंगाणं चारणे होइ ॥ (१३९)
बायर-थिर-पत्तेया सुभ-जस-पडिवक्खभंगबत्तीसा ।
साहार-सुहमि जसवज्ज वीस बारस असंभविया ॥१०५॥ (१४०) [१२९]

---

१ 'च" इति वा । २ "इयलीसोत्तर" इति L. D. प्रतौ । ३ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति ।

बादर	बादर	बादर	बादर	बादर	बादर	बादर	बादर	बादर	बादर	बादर	बादर	बादर	बादर	बादर	बादर
पत्तेअ.	पत्तेअ.	पत्तेअ.	पत्तेअ.	पत्तेअ	पत्तेअ	पत्तेअ	पत्तेअ	साधा.	साधा	साधा.	साधा	साधा.	साधा.	सा.	सा.
थिर	थिर	थिर	थिर	अथिर	अथिर	अथिर	अथिर	थिर	थिर	थिर	थिर	अथिर	अथिर	अथिर	अथिर
सुभ	सुभ	असुभ	असुभ	सुभ	सुभ	असुभ	असुभ	सुभ	सुभ	असुभ	असुभ	सुभ	सुभ	असुभ	असुभ
जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस
१	२	३	४	५	६	७	८	०	९	०	१०	०	११	०	१२

सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम	सुहुम
पत्ते.	पत्ते.	पत्ते.	पत्ते.	पत्ते.	पत्ते	पत्ते.	पत्ते.	सा-धा०	सा-धा०	सा-धा०	सा-धा०	सा-धा०	सा-धा०	सा-धा०	सा-धा०
थिर	थिर	थिर	थिर	अथिर	अथिर	अथिर	अथिर	थिर	थिर	थिर	थिर	अथिर	अथिर	अथिर	अथिर
सुभ	सुभ	असुभ	असुभ	सुभ	सुभ	असुभ	असुभ	सुभ	सुभ	असुभ	असुभ	सुभ	सुभ	असुभ	असुभ
जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस
०	१३	०	१४	०	१५	०	१६	०	१७	०	१८	०	१९	०	२०

[1]साहारणस्स वा सुहुमस्स वा दोण्हं वा जसेण सह बंधो न भवइ।

असमत्तमणुय [तह] बितिचउपणिंदितिरियाण बंधि पणवीसे।
असुहपयडीण जेणं न तेसि परियत्ति एक्केक्को ॥ (१४१)

असमत्तमणुयबितिचउपणिंदितिरि पणवीसि तह पंच।
असुभपयडीण जेणं न तेसि परियत्ति संभवइ ॥१०६॥ [१३०]

उज्जोय—आयवेणं थिरसुभजससेयरेहि सोलसगं।
उज्जोवेणं अट्ठ उ आयवपरियत्ति अट्ठेव ॥१०७॥ (१४२) [१३१]

---

१ अयं पाठः L. D. प्रतावस्ति।

ठवणा—

थिर	थिर	थिर	थिर	अथिर	अथिर	अथिर	अथिर
सुभ	सुभ	असुभ	असुभ	सुभ	सुभ	असुभ	असुभ
जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस
१	२	३	४	५	६	७	८

एसा वि ठावणा इह वायरएगिंदिविगलदेवाणं ।
तह तीसे मणुजोगे पत्तेयं जस्स संभविया ॥१०८॥ (१४३) [१३२]
थिरसुभजसइयरेहिं वितिचउरिंदीण अट्ठ पत्तेयं ।
उणतीसतीसबंधे अडवीसे अट्ठ देवाणं ॥१०९॥ (१४४) [१३३]

[1]ठवणा—

बंधठा०	२५	२८	२९	३०
बेइं०	१		८	८
तेइं०	१		८	८
चउ०	१		८	८
देव०		८		

तीसा य मणुयजोगा उणतीसा तीस एगतीसा य ।
देवाण अट्ठ अट्ठ य एक्केक्को भंगमेएसु ॥११०॥ (१४५) [१३४]

ठवणा—

जोगा.	मणु	देव०		
बंधो	३०	२९	३०	३१
भंगा	८	८	१	१

थिरछक्कं सुभखगई सप्पडिवक्खेहि चारिया संता ।
गुणिया [2]संघयणा-ऽऽगीहिं भंगया सयलतिरियाणं ॥१११॥ (१४६) [१३५]

---

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति । २ "संघयण तहागिईहि [भंगया] (भंगा य) सयलतिरियाणं ॥१४६॥" इति L. D. प्रतौ ।

चत्तारि सहस्सा छस्सयाउ अट्ठुत्तराउ गुणतीसे ।
एवं उज्जोयतीसे मणुए [1]उणतीसि ते चेव ॥११२॥ (१४७) [१३६]

थिर	सुम	सुभग	सुसर	आइज्ज	जस	सुभख०	संघ०	संठा.	बंधठा०	२५	२९	३०
ऽथिर	ऽसुम	दुभग	दूसर	अणाइज्ज	ऽजस	ऽसुभख०	१२८ ×६	७६८ ×६	तिरि०	१	४६०८	४६०८
२	४	८	१६	३२	६४	१२८	७६८	४६०८	मणु०	१	४६०८	०

नारय अडवीसेगो एगो कित्तीए सेणिमासज्ज ।
तेरससहस्सनवसयपणयाला [2]सव्वपयडीणं ॥११३॥ (१४८) [१३७]
तेवीसाई ठाणा सवियप्पा अट्ठ विवरिया बंधे ।
एत्तो य सव्वनियबंधठाण पत्तेय मंगजंतइयं ॥ (१४९)

ठवणा— [3]

नामबंधठाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	सव्वसंखा
बंधठाणमंगा	४	२५	१६	९	९२४८	४६४१	१	१	१३९४५
एगिंदिय०	४	२०	१६	०	०	०	०	०	४०
विगलिंदिय	०	३	०	०	२४	२४	०	०	५१
पं०तिरिय०	०	१	०	०	४६०८	४६०८	०	०	९२१७
मणुयपाउ०	०	१	०	०	४६०८	८	०	०	४६१७
नरयपाउ०	०	०	०	१	०	०	०	०	१
देवपाउग्ग०	०	०	०	८	८	१	१	०	१८
अपाउग्ग०	०	०	०	०	०	०	०	१	१

एसो य उदयठाणा सव्वजियाणं च हुंति सामन्नं ।
ते बारस वीसाई जाव य अट्ठेव पज्जंता ॥ (१५०)

नाम्न उदयस्थानानि—

१ "उणतीसे" इति L. D. प्रतौ । २ "सव्वपिंडेणं ॥१४८॥" इति L. D. प्रतौ । ३ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति ।

ठवणा—

थिर	थिर	थिर	थिर	अथिर	अथिर	अथिर	अथिर
सुभ	सुभ	असुभ	असुभ	सुभ	सुभ	असुभ	असुभ
जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस
१	२	३	४	५	६	७	८

एसा वि ठावणा इह वायरएगिंदिविगलदेवाणं ।
तह तीसे मणुजोगे पत्तेयं जस्स संभविया ॥१०८॥ (१४३) [१३२]
थिरसुभजसइयरेहिं वितिचउरिंदीण अट्ठ पत्तेयं ।
उणतीसतीसबंधे अडवीसे अट्ठ देवाणं ॥१०९॥ (१४४) [१३३]

[1]ठवणा—

बंधठा०	२५	२८	२९	३०
वेइं०	१		८	८
तेइं०	१		८	८
चउ०	१		८	८
देव०		८		

तीसा य मणुयजोगा उणतीसा तीस एगतीसा य ।
देवाण अट्ठ अट्ठ य एक्केक्को भंगमेएसु ॥११०॥ (१४५) [१३४]

ठवणा—

जोग्ग.	मणु	देव०		
बंधो	३०	२९	३०	३१
भंगा	८	८	१	१

थिरछक्कं सुभखगई सप्पडिवक्खेहि चारिया संता ।
गुणिया[2]संघयणा-ऽऽगीहिं" भंगया सयलतिरियाणं ॥१११॥ (१४६) [१३५]

१ इदं यन्त्रं L. D प्रतावस्ति । २ "संघयणतहागिईहि [भंगया] (भंगा य) सयलतिरियाणं ॥१४६॥" ति L. D. प्रतौ ।

चत्तारि सहस्सा छस्सयाउ अट्ठुत्तराउ गुणतीसे ।
एवं उज्जोयतीसे मणुए [1]उणतीसि ते चेव ॥११२॥ (१४७) [१३६]

थिर	सुभ	सुभग	सुसर	आइज्ज	जस	सुभख०	संघ०	संठा०	बंधठा०	२५	२९	३०
ऽथिर	ऽसुभ	दुभग	दूसर	अणाइज्ज	ऽजस	ऽसुभख०	१२८ ×६	७६८ ×६	तिरि०	१	४६०८	४६०८
२	४	८	१६	३२	६४	१२८	७६८	४६०८	मणु०	१	४६०८	०

नारय अडवीसेगो एगो किंचीए सेणिमासज्ज ।
तेरससहस्सनवसयपणयाला [2]सव्वपयडीणं ॥११३॥ (१४८) [१३७]
तेवीसाई ठाणा सवियप्पा अट्ठ निवरिया बंधे ।
एत्तो य सव्वजियबंधठाण पत्तेय भंगजंतइयं ॥ (१४९)

ठवणा—

नामबंधठाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	सव्वसंखा
बंधठाणभंगा	४	२५	१६	९	९२४८	४६४१	१	१	१३९४५
एगिंदिय०	४	२०	१६	०	०	०	०	०	४०
विगलिंदिय	०	३	०	०	२४	२४	०	०	५१
पं०तिरिय०	०	१	०	०	४६०८	४६०८	०	०	९२१७
मणुयपाउ०	०	१	०	०	४६०८	८	०	०	४६१७
नरयपाउ०	०	०	०	१	०	०	०	०	१
देवपाउग्गा०	०	०	०	८	८	१	१	०	१८
अपाउग्गा०	०	०	०	०	०	०	०	१	१

एत्तो य उदयठाणा सव्वजियाणं च हुंति सामन्नं ।
ते बारस वीसाई जाव य अट्ठेव पज्जंता ॥ (१५०)

नाम्न उदयस्थानानि—

१ "उणतीसे" इति L. D. प्रतौ । २ "सव्वपिंडेणं ॥१४८॥" इति L. D. प्रतौ । ३ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति ।

वीसिगवीसाचउवीसगाइ एगतीसगत्ति एगहिया ।
उदयट्ठाणाणि भवे नव अट्ठ य [2]हुंति नामस्स॥सू.-२६॥ (१५१) [१३८]

तेवीसाई ठाणा सविगप्पा अट्ठ विवरिया बंधे ।
तह बारस उदयगया वीसाई अट्ठ पज्जंता ॥११४॥ [१३९]

ठवणा- २० । २१ । २४ । २५ ।२६ । २७ । २८ । २९ ।
३० । ३१ । ९ । ८ ॥

उदएसु जे सामी कित्तय उदया उ कस्स पत्तेयं ।
भंगा वि य पत्तेयं तेसिं [3]संखाइयं भणिमो ॥११५॥ (१५२) [१४०]

निम्मेण१थिरा१ऽथिर१तेय१कम्म१वन्नाइ४अगुरु१सुह१मसुहं१ ।
नामधुवोदय बारस १२ सेसा अधुवा उ पणपन्नं ॥११६॥ (१५३) [१४१]

तस४थावराइ४चउ चउ, तह सुभगा८दुभग४आगि६संघयणा६ ।
गइ४अणुपुव्वी४ य तहा, परघाचउ४ तित्थ१ उवघायं१ (१५४)

जाइ५सरीरो३वंगा३ विहदुग२ सव्वा वि पंचवन्नाओ ५५ ।
बारुदयठाणनामे पत्तेयं पयडि विवरेमि ॥ (१५५)

तसतिग-सुभगा-ऽऽइज्जा मणुगइ-सगल-जसकित्ति [4]तह धुवया ।
वीसा उ समुग्घाए [5]सेसा उ कमेण पक्खेवा ॥११७॥ (१५६) [१४२]

ओरालियदुग२वुसभं १ पत्ते१उवघाय१इयरसंठाणं ६ ।
छव्वीस सजोगिकेवलि ओरालियमीसि समुघाए ॥११८॥ [१४३]

ओरालियदुग२वुसभं १ पत्तेयु१वघाय१इयरसंठाणा ६ ।
वि य छक्क सत्तसमए छूढे छव्वीस समुघाए ॥ (१५७)

परघाय-सास-विहदुग-सरदुग-एगयरखेवि तीसुदओ ।
सामन्नकेवलि [6]तिगं तित्थयरे तित्थसंजुत्ता ॥११९॥ (१५८) [१४४]

सामन्नकेवलिउदया-२०, २६, २८, २९, ३०, ८ ॥
तित्थयरउदया-२१, २७, २९, ३०, ३१, ९ ॥

सद्दनिरोहे तीसा उणतीसा सासरोहि तित्थयरे ।

---

१ "च एगाहिया य इगतीसा" इति वा पाठः । २ "होंति" इति L. D. प्रतौ । ३ "संखा य इय" इति L D. प्रतौ । ४ "धुवउदया" इति L. D. प्रतौ । ५ "तइए चउपंचमे समए ॥१५६॥" इति L. D. प्रतौ । ६ "दुग" इति J. प्रतिप्रेसकोप्यामस्ति । किन्तु स सम्यग् न प्रतिभाति ।

उणतीसट्ठावीसा केवलि तह मयंतरेण इमं ॥१२०॥ [१४५]
तह सव्वरोहि नवगं छट्ठाणा हुन्ति उदएसु ॥ (१५९)
उणतीसट्ठावीसा केवलि तह सव्वरोहिं अडपयडी ।
अन्ने उ अट्ठ उदया मयंतरेणं तु उदएसु ॥ (१६०)
[1]सर-सास-परघा-रोधा विहगइ-पत्तेय-कमनिरोहेणं ।
तीसुदया गुणतीसाइ जाव पणवीसउदएणं ॥१२१॥ (१६१) [१४६]
उवघाए चउवीसा ओरालदुगेण होइ बावीसा ।
[2]उसभा-ऽऽगीण निरोहे वीसा धुवरोहि अट्ठेव ॥१२२॥ (१६२) [१४७]
सेलेसी आरंभे उदयट्ठाणाउ अट्ठ केवलिणो ।
सेलेसी पडिवन्ने अट्ठण्हं पयडिउदए उ ॥१२३॥ (१६३) [१४८]
एए सामण्णे केवलम्मि तित्थयरि तित्थजुयठाणा ।
लिहियाउ पंचसंगह–विवरण-अप्पयरठाणाउ ॥१२४॥ (१६४) [१४९]
गइजाइआणुपुव्वी थावरसुहुमं अपज्जधुवउदया ।
दुभगाणाइज्जाजस विग्गहगइ पगइइगवीसा ॥१२५॥ (१६५) [१५०]
सा आणुपुव्विरहिया अपज्जएगिंदिसुहुमइयराणं ।
हुंडु-वधा-पत्तेएहि [3]उरलदेहेहि चउवीसा ॥१२६॥ (१६६) [१५१]
पणवीसा छव्वीसा सत्तावीसा य [4]होइ सा चेव ।
परघाय-सास-आयव कमेण एगिंदुदयठाणा ॥१२७॥ (१६७) [१५२]
गइजाइआणुपुव्वी तसतिगणाइज्जअजसदुभगं च ।
धुवउदया सव्वे वि हु अंतरगइ पगइइगवीसा ॥१२८॥ (१६८) [१५३]
सा आणुपुव्विरहिया संघयण-तहा-ऽऽगि-एगयरखेव ।
तह पत्ते-उवधाए ओरालदुगेण छव्वीसा ॥१२९॥ (१६९) [१५४]
[5]एसा पुण छव्वीसा मणु-तिरि-विगलाण उदयपाओगा ।
लद्धिअपज्जापज्जाण करणे नियमा अपज्जाण ॥१३०॥ (१७०) [१५५]
परघाय जत्थ खेवे उदए जीवाण ते उ पज्जाण ।

---

१ "सर१सास १ परघायं विहगइ' इति L D. प्रतौ। २. 'वज्रर्षभसंघयणसमचतुरस्रसंस्थानयोर्निरोधे' इत्यर्थः । ३ "उरलपरदेहि" इति L. D. प्रतौ । ४ "हुन्ति ता" इति L. D प्रतौ । ५ "एए उ दुवे उदया" इति L D. प्रतौ ।

वीसिगवीसाचउवीसगा`इ एगतीसगत्ति एगहिया ।
उदयट्ठाणाणि भवे नव अट्ठ य `हुंति नामस्स॥सू.-२६॥ (१५१) [१३८]

तेवीसाई ठाणा सविगप्पा अट्ठ विवरिया बंधे ।
तह बारस उदयगया वीसाई अट्ठ पज्जंता ॥११४॥ [१३९]

ठवणा- २०।२१। २४। २५ ।२६। २७।२८।२९।
३०।३१।९।८॥

उदएसु जे सामी कित्तय उदया उ कस्स पत्तेयं ।
भंगा वि य पत्तेयं तेसिं [3]संखाइयं भणिमो ॥११५॥ (१५२) [१४०]

निम्मेण१थिरा१ऽथिर१तेय१कम्म१वन्नाइ४अगुरु१सुह१मसुहं१ ।
नामधुवोदय बारस १२ सेसा अधुवा उ पणपन्नं ॥११६॥ (१५३) [१४१]

तस४थावराइ४चउ चउ, तह सुभगा८दुभग४आगि६संघयणा६ ।
गइ४अणुपुव्वी४ य तहा, परघाचउ४ तित्थ१ उवघायं१ (१५४)

जाइ५सरीरो३वंगा३ विहदुग२ सव्वा वि पंचवन्नाओ ५५ ।
बारुदयठाणनामे पत्तेयं पयडि विवरेमि ॥ (१५५)

तसतिग-सुभगा-ऽऽइज्जा मणुगइ-सगल-जसकित्ति [4]तह धुवया ।
वीसा उ समुग्घाए [5]सेसा उ कमेण पक्खेवा ॥११७॥ (१५६) [१४२]

ओरालियदुग२समुसमं १ पत्ते१उवघाय१इयरसंठाणं ६ ।
छव्वीस सजोगिकेवलि ओरालियमीसि समुघाए ॥११८॥ [१४३]

ओरालियदुग२समुसमं १ पत्तेगु१वघाय१इयरसंठाणा ६ ।
वि य छक्क सत्तसमए छूढे छव्वीस समुघाए ॥ (१५७)

परघाय-सास-विहदुग-सरदुग-एगयरखेवि तीसुदओ ।
सामन्नकेवलि [6]तिगं तित्थयरे तित्थसंजुत्ता ॥११९॥ (१५८) [१४४]

सामन्नकेवलिउदया-२०, २६, २८, २९, ३०, ८॥

तित्थयरउदया-२१, २७, २९, ३०, ३१, ९॥

सद्दनिरोहे तीसा उणतीसा सासरोहि तित्थयरे ।

---

१ "उ एगाहिया य इगतीसा" इति वा पाठः। २ "होंति" इति L. D. प्रतौ। ३ "संखा य इय" इति L. D. प्रतौ। ४ "धुवउदया" इति L. D. प्रतौ। ५ "तइए चउपंचमे समए॥१५६॥" इति L. D. प्रतौ। ६ "दुग" इति J. प्रतिप्रेसकोप्यामस्ति। किन्तु स सम्यग् न प्रतिभाति।

उणतीसट्ठावीसा केवलि तह मयंतरेण इमं ॥१२०॥ [१४५]
तह सव्वरोहिं नवगं छट्ठाणा हुन्ति उदएसु ॥ (१५९)
उणतीसट्ठावीसा केवलि तह सव्वरोहिं अडपयडी ।
अन्ने उ अट्ठ उदया मयंतरेणं तु उदएसु ॥ (१६०)
[1]सर-सास-परघा-रोधा विहगइ-पत्तेय-कमनिरोहेणं ।
तीसुदया गुणतीसाइ जाव पणवीसउदएणं ॥१२१॥ (१६१) [१४६]
उवघाए चउवीसा ओरालदुगेण होइ बावीसा ।
[2]उसमा-ऽऽगीण निरोहे वीसा धुवरोहि अट्ठेव ॥१२२॥ (१६२) [१४७]
सेलेसी आरंभे उदयट्ठाणाउ अट्ठ केवलिणो ।
सेलेसी पडिवन्ने अट्ठण्हं पयडिउदए उ ॥१२३॥ (१६३) [१४८]
एए सामण्णे केवलम्मि तित्थयरि तित्थजुयठाणा ।
लिहियाउ पंचसंगह–विवरण-अप्पयरठाणाउ ॥१२४॥ (१६४) [१४९]
गइजाइआणुपुव्वी थावरसुहुमं अपज्जधुवउदया ।
दुभगाणाइज्जाजस विग्गहगइ पगइइगवीसा ॥१२५॥ (१६५) [१५०]
सा आणुपुव्विरहिया अपज्जएगिंदिसुहुमइयराणं ।
हुंड-घया-पत्तेएहि [3]उरलदेहेहि चउवीसा ॥१२६॥ (१६६) [१५१]
पणवीसा छव्वीसा सत्तावीसा य [4]होइ सा चेव ।
परघाय-सास-आयव कमेण एगिंदुदयठाणा ॥१२७॥ (१६७) [१५२]
गइजाइआणुपुव्वी तसतिगणाइज्जअजसदुभगं च ।
धुवउदया सव्वे वि हु अंतरगइ पगइइगवीसा ॥१२८॥ (१६८) [१५३]
सा आणुपुव्विरहिया संघयण-तहा-ऽऽगि-एगयरसेव ।
तह पत्ते-उवघाए ओरालदुगेण छव्वीसा ॥१२९॥ (१६९) [१५४]
[5]एसा पुण छव्वीसा मणु-तिरि-विगलाण उदयपाओग्गा ।
लद्धिअपज्जापज्जाण करणे नियमा अपज्जाण ॥१३०॥ (१७०) [१५५]
परघाय जत्थ सेवे उदए जीवाण ते उ पज्जाण ।

---

१ "सर१सास १ परघायं विहगइ' इति L. D. प्रतौ। २. 'वज्रर्षभसंघयणसमचतुरस्रसंस्थानयोर्निरोधे' इत्यर्थः। ३ "उरलपरदेहिं" इति L. D. प्रतौ। ४ "हुन्ति ता" इति L. D प्रतौ। ५ "एए उ दुवे उदया" इति L. D. प्रतौ।

तणुपज्जत्ती नियमा इयरा [1]उ कमेण पज्जत्ती ॥१३१॥ (१७०) [१५६]
विहगइ-परघायजुया अट्ठावीसा ससासउणतीसा ।
उज्जोएणं तीसा सरेण सा एगतीसा उ ॥१३२॥ (१७१) [१५७]
संघयणूणा सव्वे तएव तिरिओदया य देवेसु ।
पढमं चिय संठाणं वेउव्विदुगं च इट्ठखगइसरा ॥१३३॥ (१७२) [१५८]
एगिंदियाण पंच उ छछक्क सुरविगलसगलतिरियाणं ।
मणुए उज्जोऊणा उदयट्ठाणाउ [2]सव्वेवि ॥१३४॥ (१७४) [१५९]

एगिंदियाणं–२१,२४,२५,२६, २७। देवाण–२१, २५, २७,२८,२९,३० ।
विगलसगलाणं–२१, २६, २८, २९, ३०, ३१ । मणुयाण उदयठाणा–२१,२६,२८,२९,३० ॥

इगवीसूणा पंच उ तिरिजइवेउव्विहारगाणं च ।
अविरयमणुवेउव्विय उज्जोऊणा य चत्तारि ॥१३५॥ (१७५) [१६०]
नेरइयाणं [3]तिरिसम संघयणुज्जोयवज्ज पंचेव २५,२७,२८,२९,३०
असुहपयडीण उदया अविवक्खा भंगया पंच ॥१३६॥ (१७६) [१६१]
जे उदएसु सामी उदयप्पयडीण विवरणं विहियं ।
इत्तो [4]पत्तेय इहं भंगाणं चारणं [5]भणिमो ॥१३७॥ (१७७) [१६२]
अप्पज्जसुहुमअजसा सेयरमिलिएहिं अट्ठ उ विगप्पा ।
सुहुमअपज्जे य जसं वज्जित्ता पंच संभविया ॥१३८॥ (१७८) [१६३]

ठवणा—

अप.	अप.	अप.	अप.	प.	प.	प.	प.
सु.	सु.	बा.	बा.	सु.	सु	बा.	बा.
अज.	ज.	अज.	ज.	अज	ज.	अज.	ज.
५	०	४	०	[2]३	०	२	१

अप्पज्जसुहुमसाहार अजसइयरेहिं भंगसोलसगं ।
सुहुमअपज्जे जसउदयवज्ज छक्कं असंभवियं ॥१३९॥ (१७९) [१६४]

१ "जे अत्थ संभविया ॥१७३॥" इति L. D. प्रतौ । २ "पक्खेव ॥१७४॥" इति L D प्रतौ । ३ "सुरसमउज्जोऊणा य उदयपक्खेव ।" इति L. D. प्रतौ । ४ "कुणिमो" इति L. D. प्रतौ ।

एगिंदियठवणा—

ऽप.	ऽप.	ऽप.	ऽप	ऽप.	ऽप.	ऽप.	ऽप.	पज्ज.	पज्ज.	पज्ज.	पज्ज.	पज्ज.	पज्ज.	पज्ज.	पज्ज.
सु.	सु	सु.	सु.	बा.	बा.	बा.	बा.	सु.	सु.	सु.	सु.	बा.	बा.	बा.	बा.
सा.	सा.	प.	प	सा.	सा.	प.	प.	सा.	सा.	प.	प.	सा.	सा.	प.	प.
ऽज.	ज.	ऽज.	ज.	ऽज.	ज.	ऽज	ज.	ऽज	ज.	ऽज.	ज.	ऽज.	ज.	ऽज.	ज.
१०	०	९	०	८	०	७	०	६	०	५	०	४	३	२	१

बायरपत्तेयजसा सप्पडिवक्खेहि अट्ठ उ विगप्पा ।
सुहुमे वज्जेज्ज जसं उदए छच्चेव संभविया ॥१४०॥ (१८०) [१६५]

एगिंदियपणुवीसाठवणा—

बायर	बायर	बायर	बायर	सुहुम	सुहु.	सुहु.	सुहु.
पत्ते.	पत्ते.	साहारण	साहा.	पत्ते.	पत्ते.	साहा.	साहा.
ऽजस	जस	ऽजस	जस	ऽजस	जस	ऽजस	जस
१	२	३	४	५	०	६	०

छव्वीसा वि य तिविहा सासुज्जोए य आयवेगयरे ।
सासे छा पुव्वुत्ता पत्तेयजसेयरेहि चउज्जोए ॥१४१॥ (१८१) [१६६]

ठवणा—

उज्जोय	उज्जो.	उज्जो.	उज्जोय
पत्तेय	पत्तेय	साहा	साहा.
जस	ऽजस	जस	ऽजस
१	२	३	४

आयवछव्वीसाए पत्तेयजसाजसेहिं दो चेव ।
वाए विउव्विकरणा चउवीसाइसु य एक्केक्कं ॥१४२॥ (१८२) [१६७]
सास छवीसे छूढे आयवसगवीस अहव उज्जोए ।
पुव्वुत्ता छब्भंगा पिंडे एगिंदियायाला ॥१४३॥ (१८३) [१६८]

एगिंदिय उदयठवणा—

उदय० → ↓	२१	२४	२५	२६	२७	
सामन्न०	५	१०	६	६	०	भंगा
उज्जोय०	०	०	०	४	४	
आयव०	०	०	०	२	२	
विउव्वि०	०	१	१	१	०	एवं
कुलभङ्गा →	५	११	७	१३	६	४२

बेइंदियइगवीसे पज्जत्तजसेयरेहिँ चत्तारि ।
अपजत्ते जसवज्जा तिन्नि उ छव्वीसि एमेव ॥१४४॥ (१८४) [१६९]
पज्जत्तजसजसेहिं अट्ठावीसम्मि भंगया दोन्नि ।
एव गुणतीसतीसे एक्कत्तीसे य ते चेव ॥१४५॥ (१८५) [१७०]
नवरं दो अणुतीसा सासे छूढे य अहव उज्जोए ।
तह तीसाओ तिन्नि उ सरदुगउज्जोयएगयरे ॥१४६॥ (१८६) [१७१]
सरदुगएगयरेणं दो इगतीसाउ भंगबावीसं ।
बेइंदिय–तेइंदिय–चउरिंदिय मिलिय छावट्ठी ॥१४७॥ (१८७) [१७२]

विगलठवणा—

उदय	२१	२६	२८	२९	३०	३१	एवं ↓
भंगा	६	९	६	१२	१८	१२	६६

सुभगाइज्जजसेहिं सप्पडिवक्खेहि अट्ठ उ विगप्पा ।
अप्पज्जदुभगणाइज्जअजस एगो य इय नवगं ॥१४८॥ (१८८) [१७३]
पज्जत्तसुभगआइज्जकित्ति तह सेयराहिँ सोलसगं ।
असमत्ते य सुभतिगं वज्जिय नव होंति संभविया ॥१४९॥ [१७४]

इयाणिं पंचिंदियवियारणाठवणा—

ऽपज्ज ↓	पज्जत्त →	सुभग	सुभग	सुभग	सुभग	दुभग	दुभग	दुभग	दुभग
दुभग		आइज्ज	आइज्ज	ऽणाइज्ज	ऽणाइज्ज	आइज्ज	आइज्ज	ऽणाइ	अणाइज्ज
अणाइ •		जस	ऽजस	जस	ऽजस	जस	ऽजस	जस	ऽजस
ऽजस १	→ ←भंगा	२	३	४	५	६	७	८	९

इगवीसुदयविगप्पा संघयण तहागि गुणिय छव्वीसे ।
एग असमत्तभंगो अट्ठासीया सया [1]दोन्नि ॥१५०॥ (१८६) [१७५]
विहदुगपरियत्तेणं [2]अट्ठावीसम्मि सुद्धया दुगुणा ।
[3]सासुज्जोउणतीसे बावन्नेक्कारस मया उ ॥१५१॥ (१९०) [१७६]
सुरदुगउज्जोएणं [4]एगयरेण परिवत्ति तीसुदए ।
पंचसया छावत्तर तिगुणा सत्तरस अडवीसा ॥१५२॥ (१९१) [१७७]
सरदुगएगयरेणं छूढे इगतीसि भंगया एए ।
एक्कारसबावण्णा पणिंदितिरिउदयठाणेसु ॥१५३॥ (१९२) [१७८]
नव उणनउया दोसय छावत्तरपंच दुगुण तह तिगुणा ।
दुगुणा इगतीसाए उणवन्न छलुत्तरा पिंडे ॥१५४॥ (१९३) [१७९]

पणिंदितिरियठवणा—

उदय	२१	२६	२८	२९	३०	३१	एवं
भंगा	९	२८९	२८८ १८८	५७६ ५७६	५७६ ५०६ ५७६	५७६ ५७६	४९०६

एवं मणुयगईए मणुयगई इत्थ होइ वत्तव्वा ।
नवरं उज्जोयरहिया उदया पंचेव सवियप्पा ॥१५५॥ (१९४) [१८०]
नव उणनउया दोसय छावत्तरपंच दुसु य पत्तेयं ।
[5]बावण्णेक्कारउया छव्वीसदुरुत्तरा पिंडो ॥१५६॥ (१९५) [१८१]

मनुयठवणा—

उदय	२१	२६	२८	२९	३०	एवं ↓
भंगा	९	२८९	२८८ २८८	५७६	५७६ ५७६	२६०२

वीसोदयम्मि एगो छच्च छवीसे य तीसचउवीसा ।
[6]विहगा सरसंठाणेहिं एगो अट्ठोदए भंगो ॥१५७॥ (१९६) [१८२]
पढमंतिमदोभंगा गहिया सेसाउ मणुयगहणेण ।
तित्थोदय एक्कोक्को सव्वे तित्थयरि छच्भंगा ॥१५८॥ (१९७) [१८३]

१ "दुन्नि" इति L. D. प्रतौ । २ "छावत्तरपंच उदयअडवीसा ।" इति L. D प्रतौ । ३ "सासुज्जोयुणतीसे" इति L. D. प्रतौ । ४ "एगोगयरपरि०" इति L. D. प्रतौ । ५ "बावन्ने०" इति L. D. प्रतौ । ६ "विह १-सर१-संठाणेहिं एगो" इति L. D. प्रतौ ।

केवलितित्थयरठवणा—[1]

उदय.→	२०	२१	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८	भंगा ↓
केव०	१	०	(६)	(१२)	(१२)	०	(२४)	०	०	१	२(५६)
तित्थ.	०	१	०	१	०	१	१	१	१	०	६

दूभगणाइज्जाजससेयरमिलिएहिँ अट्ठ उ विगप्पो ।
पत्तेयं पत्तेयं उदएसुं छसु वि देवाणं ॥१५९॥ (१९८) [१८४]

ठवणा-

दूभग	दुभग	दुभग	दुभग	सुभग	सुभग	सुभग	सुभग
अणाइज्ज	अणाइज्ज	आइज्ज	आइज्ज	अणाइज्ज	अणाइज्ज	आइज्ज	आइज्ज
अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस	अजस	जस
१	२	३	४	५	६	७	८

सासुज्जोएगयरे तह सरउज्जोयएगयरसहिया ।
अट्ठावीसुणतीसे दुगुणा चउसट्ठि सव्वे वि ॥१६०॥ (१९९) [१८५]
एवं विउव्वितिरिए इगवीसूणेसु भंगछप्पन्ना ।
तह मणुए वेउव्वि य उज्जोयविणा उ बत्तीसं ॥१६१॥ (२००) [१८६]

उज्जोयरहियतीसा मोत्तूणं चउसु उदएसु ।

ठवणा-

उदय०→	२१	२५	२७	२८	२९	३०	सव्वे ↓
देवभंगा	८	८	८	१६	१६	८	६४
वेउव्वियति.	०	८	८	१६	१६	८	५६
,, म	०	८	८	८	८	०	३२

आहारगउदएसुं भंगा सत्तेव तिरियसारिच्छा ।
आहारदुगं खिविउं वेउव्विदुगं तु अवणेहिं ॥१६२॥ (२०१) [१८७]

१. J. प्रतिप्रेसकोप्यां २७-२८ उदयस्थानद्वये केवलिसत्का भङ्गा न दर्शिता। L. D. प्रतौ पुनः ६-६ षड् षड् भङ्गा दर्शिता। तथा ऽप्यत्रा-ऽन्यतरविहायोगतेरुदयत्वाद् द्वादशानां भङ्गानां सम्भव इति हेतोर्द्वादश भङ्गा निरूपिताः, तथैवा-ऽन्यत्र दर्शितत्वात् ।

तिरियसरिच्छा जेणं दुभगऽणाइज्ज अजसपयडीओ ।
अविरयवोच्छिन्ना ते न तेसि उदओ जईणं तु (२०२)
एवं जइवेउव्वे नवरं उज्जोयभंगया तिण्णि ।
सेसा उ मणुयगहणे नेरइयअसुद्धपंचेव ॥१६३॥ (२०३) [१८८]

ठवणा—

उदय.	२१	२५	२७	२८	२९	३०	सव्वे
आहारग०	०	१	१	२	२	१	७
जति०	०	१	१	२	२	१	७
नारकिय०	१	१	१	१	१	०	५

नाम्न उदयस्थानानां भङ्गाः—

एगबियालिक्कारस तेत्तीसा छस्सया य तेत्तीसा ।
बारससत्तरससयाणऽहिगाणि [1] बिपंचसीईहिं ॥सू.२७॥ (२०४) [१८९]
[2] उणतीसेक्कारसयाणऽहिगा सत्तरसपंचसट्ठीहिं ।
एक्केक्कगं च वीसादट्ठुदयंतेसु उदयविही ॥सू.-२८॥ (२०५) [१९०]

ठवणा—

उदय	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८
भंगा	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२९१७	११६५	१	१

एएसिं विवरणं—

पण नव नव नव अट्ठग एगं एग इइ उदयइगवीसे ।
इगिविगलतिरियमणुए सुरनारयतित्थि बायाला ॥१६४॥ (२०६) [१९१]
छच्चारि य एगं बायरसुहुमे य पवणवेउव्वे ।
एगिंदियाण भंगा एक्कारस [3] होंति चउवीसे ॥१६५॥ (२०७) [१९२]
सत्तऽट्ठ अट्ठ अट्ठ य एगो एग तह उदयपणवीसे ।
एगिंदिसुरविउव्वियतिरिमणुआहारनेरइए ॥१६६॥ (२०८) [१९३]
तेरस नव इगि विगले दोसय उणनउय मणुय तह तिरिए ।
छच्च सया छव्वीसे उदए भंगाण एगत्थ ॥१६७॥ (२०९) [१९४]

१ "दुपंच०" इत्यपि । २ "उणतीसिक्कारस" इत्यपि । ३ "हुंति" इति L. D. प्रतौ ।

छच्चट्ठ अट्ठ अट्ठ य एगो एग तह एग सगवीसे ।
एगिंदिविक्किक्तिरिनरसुरनारयतित्थआहारे ॥१६८॥ (२१०) [१९५]

छक्कं पणसयछावत्तराइँ दुसु तह य दुसु य सोलसगं ।
नव दुग एगं भंगा अट्ठावीसम्मि उदयम्मि ॥१६९॥ (२११) [१९६]

विगलतिरिमणुयदेवा तिरिनरवेउव्विहारनेरइए ।
इह बारसय दुरुत्तर मिलिया एगत्थ पिंडेणं ॥१७०॥ (२१२) [१९७]

एक्कारस बावन्ना छावत्तरपंच [1]दुसु य सोलसगं ।
नवबारसदुगभंगा इक्केक्ककमेण उणतीसे ॥१७१॥ (२१३) [१९८]

तिरिनरदेवा तिरिनर [2]वेउव्वियविगलहारगजईण ।
तित्थे नारयकमसो मिलिया सत्तारपणसीया ॥१७२॥ (२१४) [१९९]

सतरस सय अडवीसा अट्ठारस तह इगार बावन्ना ।
अट्ठट्ठ एग एगं तह एगं तीसउदयम्मि ॥१७३॥ (२१५) [२००]

तिरिविगलमणुयदेवा तिरिनरवेउव्विहारतित्थयरे ।
इय मिलिया भंगाणं उणतीससयाउ [3]सत्तरस ॥१७४॥ (२१६) [२०१]

एक्कारस बावन्ना बारस एक्को य भंग इगतीसे ।
तिरिविगलतित्थमिलिया सव्वे पणसट्ठ[4]इक्कारा ॥१७५॥ (२१७) [२०२]

वीस नव अट्ठ उदएसु भंग[5]मेक्केक्क ते य केवलिणो ।
इय संखा उदएसु बारमसु कमेण पत्तेयं ॥१७६॥ (२१८) [२०३]

बायाला छावट्ठी उणवण्णसया छलुत्तरविगप्पा ।
इगिविगलतिरिपणिंदिसु छव्वीस दुरुत्तरा मणुए ॥१७७॥ (२१९) [२०४]

चउसट्ठी पण सुरनारयाण छप्पण्ण तिरियवेउव्वे ।
पणतीस मणुविउव्विसु सत्तट्ठ य हारकेवलिणो ॥१७८॥ (२२०) [२०५]

इय सव्वुदयविगप्पा एक्काणउया सया उ सगसयरी ७७९१ ।
एसो संतट्ठाणा ते बारस होंति नामस्स ॥१७९॥ (२२१) [२०६]

---

१ "दुदुसु" इति J. प्रतिप्रेसकोप्यां किन्तु स सम्यग न भाति । २ "विउव्वि तह विगल०" इति जे. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ३ "सत्तारा" इति L D. प्रतौ । ४ 'एक्कारा' इति L D. प्रतौ । ५ "एक्के-क्कु" इति L. D प्रतौ ।

मऽवुदयविगप्पठवणा—

नामउदयठाणा →	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८	भंग-संखा
उदए सव्वभंगा →	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२९१७	११६५	१	१	७७९१
एगिंदियभंगा →	०	५	११	७	१३	६	०	०	०	०	०	०	४२
विगलिंदिय ,, →	०	९	०	०	९	०	६	१२	१८	२	०	०	६६
पंचिंदियतिरिय ,, →	०	९	०	०	२८९	०	५७६	११५२	१७२८	११५२	०	०	४९०६
मनुज ,, →	०	९	०	०	२८९	०	५७६	५७६	११५२	०	०	०	२६०२
वेउव्वियतिरिय ,, →	०	०	०	८	०	८	१६	१६	८	०	०	०	५६
,, मणुज ,, →	०	०	०	८	०	८	८	८	०	०	०	०	३२
देवाण ,, →	०	८	०	८	०	८	१६	१६	८	०	०	०	६४
तित्थयर ,, →	०	१	०	०	०	१	०	१	१	१	१	०	६
केवलीणं ,, →	१	०	०	०	(म.६)	०	(म.) ६	(म.) ६	(म.) ६	०	०	१	२
वेउव्वियजइ ,,	०	०	०	०	०	०	१	१	१	०	०	०	३
आहारग ,, ,, →	०	०	०	१	०	१	२	२	१	०	०	०	७
नारक ,, →	०	१	०	१	०	१	१	१	०	०	०	०	५

नाम्नः सत्तास्थानानि-

तिदुणउई [1]उगुणउई अट्ठच्छलसी असीइ उगुसीई ।
अट्ठच्छप्पन्नत्तरि नव अट्ठ य नामसंताणि॥ सूत्रम्-२६॥ (२२२) [२०७]

ठवणा:—९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५, ९, ८।

गइ-अणुपुव्वी चउ चउ बंधण-संघाय-जाइ-वन्न-रसा ५ ।
तणु ५ पत्तेयं पण पण अंगतिगं अट्ठ फासा य ॥१८१॥ (२२३) [२०८]
छागी छस्संघयणा विहदुग-दुगगंध सेयरा वीसं ।
पत्तेया अट्ठ भवे तेणउई नामसंताओ ॥१८२॥ (२२४) [२०९]

१ "इगुनउइ" इति वा, "गुणनउई। अडसी छलसी असीइ गुणसीई। मट्ठय०" इति वा।

तित्थूणा बाणउई तेणउई चेवहारचउऊणा ।
सत्ताए गुणनउई अट्ठासी होइ तित्थूणा ॥१८२॥ (२२५) [२१०]
नेरइयसुरदुगाणं एगयरूव्वलणि होइ छासीई ।
[1]तत्तो विउव्विचउसुरदुगाण आसीइ उव्वलणो ॥१८३॥ (२२६) [२११]
मणुदुगउव्वलणेणं अट्ठत्तरि तेउवाउसंतमिणं ।
पढमचउक्का तेरस—खएण चत्तारि खवगस्स ॥१८४॥ (२२७) [२१२]
साहारसुहुमचउजाइ थावरं आयवं च निरयदुगं ।
तिरियदुगं उज्जोयं तेरस अनियट्टिवोच्छेए ॥१८५॥ (२२८) [२१३]
मणुयगइजाइतसबायरं च पज्जत्तसुभगआएज्जं ।
जसकित्ती तित्थयरं अजोगि जिणसंति नव होंति ॥१८६॥ (२२९) [२१४]
ता तित्थूणा अट्ठ उ केवलिसामन्नसंतए [2]होंति ।
[3]इत्तो बंधुदयाणं संतट्ठाणाण संवेहो ॥१८७॥ (२३०) [२१५]
बंधुदयसंतठाणा एगत्थ परूविया वि सव्वत्थ ।
न विसेसो पगईसु कायव्वो ठाणमासज्ज ॥१८८॥ (२३१) [२१६]

नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानानि–

नव पंच उदयसंता तेवीसे पन्नवीस छव्वीसे ।
अट्ठ चउरट्ठवीसे [4]नवसत्तगुणीसतीसम्मि ॥सूत्रम्-३१॥ (२३२) [२१७]

ठवणा–

बन्ध०	२३	२५	२६	२८	२९	३०
उदय०	९	९	९	८	९	९
सत्ता.	५	५	५	४	७	७

तेवीस पन्नवीसा छव्वीसुणतीसतीस[5]बंधम्मि ।
नव नव उदयट्ठाणा वीसा नव अट्ठ [6]मोत्तूणं ॥१८९॥ (२३३) [२१८]

ठवणा—२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१,

इगिविगला सविगप्पा तिरिमणु सामन्न तह सवेउव्वा ।
नियनियउदयविगप्पेहि सव्वे बंधंति संभविया ॥१९०॥ (२३४) [२१९]

---

१ "णिरसुरदुगचउविउव्वियअट्ठासी आसीइ उव्वलणे ॥ (२२६)" इति L. D. प्रतौ। २ "हुंति" इति L D प्रतौ। ३ "एत्तो" इति L. D. प्रतौ। ४ 'नगि गुण ती०" इत्यपि। ५ "बंधेसु" इति L. D. प्रतौ। ६ "मुत्तूण" इति L D. प्रतौ।

नवरं इह पडिसेहो तिरिमणुयाणं च भोगभूमीणं ।
तणुयकसायत्तणओ अट्ठावीसं च बंधंति ॥१९१॥ (२३५) [२२०]
ते पज्जत्ता एत्थ य अपज्जि गुणतीसमवि य बंधंति ।
जम्हा ते देवेसुं न अन्नगइ जंति पाएणं ॥१९२॥ (२३६) [२२१]
तह ईसाणंतसुरा पज्जत्तेगिंदियाण पाओगा ।
बंधंति मिच्छदिट्ठी पणवीसा तह य छव्वीसा ॥१९३॥ (२३७) [२२२]
गुणतीसतीसबंधा सव्वे देवा य तह य नेरइया ।
नियनियउदयविगप्पेहिं [1]सम्ममिच्छाइ जहजोग्गं ॥१९४॥ (२३८) [२२३]

ठवणा–

बंधट्ठाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०
उदयट्ठाणा	९	९	९	८	९	९
सत्ताट्ठाणा	५	५	५	४	७	७

नव नव उदयट्ठाणा बंधे बंधे य हुंति पत्तेयं ।
[2]सवियप्पाई वुत्ता अट्ठावीसम्मि पुण एए ॥१९५॥ (२३९) [२२४]
अट्ठावीसे बंधे उदयट्ठाणा उ अट्ठ नायव्वा ।
केवलितिगचउवीसं चउरो [3]मोत्तूण सवियप्पा ॥१९६॥ (२४०) [२२५]
इगवीसे छव्वीसे उदए जे वट्टमाणया जीवा ।
खाइगवेयगदिट्ठी नियमा बंधंति न उ अन्ने ॥१९७॥ (२४१) [२२६]
सेसेसुं उदएसुं सम्मदिट्ठि तह मिच्छदिट्ठी य ।
अज्झत्थवसा बंधहि सुरनारयजोग्गनरतिरिया ॥१९८॥ (२४२) [२२७]
२८ बंधे ८ उदयट्ठाणा-२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।
उदएसुं जे जीवा वट्टंता बंधगा उ ते भणिया ।
तेसिं तु संतठाणा किंत्तिय के कस्स तं भणिमो ॥१९९॥ (२४३) [२२८]
(१)इगि(२)विगल (३)सगल पंचंसिगा उ चत्तारि आइए उदया ।
(१)उणवीस(२)ऽट्ठारस(३)दुसयअट्ठनउआ उ न उ अन्ने
(सुभीगाहा) ॥२००॥ (२४४) [२२९]
(१)उणवीस(२)ऽट्ठारस (३)दुसय अट्ठनउया य हुन्ति संगाणं ।

१ "सम्ममिच्छा य" इति L. D. प्रतौ । २ "सविगप्पा इय" L. D. प्रतौ । ३ "मुत्तूण" इति L. D. प्रतौ ।

(१)इगि (२)विगल(३)सगलतिरिए पणतीसा तिन्नि सव्वे वि ३३५॥२०१॥ (२४५) [२३०

[1]ठवणा–

उदय	२१	२४	२५	२६	सव्वे भंगा		
सू० अप०	१	२			३	१६	एगिंदिय
सू० प०	१	२	१	१	५		
बा अप०	१	२			३		
बा. प०	२	४	१	१	८		
वि० अप०	३			३	६	१८	विगल०
वि० प०	६			६	१२		
पं० ति० अप०	१			१	२		पणिंदितिं०
पं० ति० प०	८			२८८	२९६	२९८	
सत्ताठा०	५	५	५	५	२०	३३५	

[2]सेसा उ सव्वभंगा अट्ठुत्तरिसंतवज्जिया नेया ।
चउगइ जियसंभविया ७४५६ पणसंतट्ठाण पुण एए ॥२०२॥ (२४६) [२३१]
वाणउई अट्ठासी, अट्ठुत्तरि असि य होइ [3]छासीइ ।
चउपढमेसुदएसु अट्ठुत्तरिवज्ज सेसेसु ॥२०३॥ (२४७) [२३२]
इय एवं संवेहो बंधट्ठाणेसु पंचसु वि भणिओ ।
नव पंच उदयसंता वुत्ता सेमं च [4]वोच्छामि ॥२०४॥ (२४८) [२३३]

नव पंच उदय संतगाण २

ठवणा–

बंधट्ठाणा	२३	२५	२६	२९	३०
उदयट्ठाणा	९	९	९	९	९
संतट्ठाणा	४०	४०	४०	४०	४०

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति । J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । २ "सेसा अट्ठुत्तरि संतवज्जिया भंगा ७४५६ ॥ इय एव सव्वभंगा अट्ठुत्तरिसंतवज्जिया नेया" । इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ३ "छासीया" इति L. D. प्रतौ । ४ "वुच्छामि" इति L. D. प्रतौ ।

उणतीसतीसबंधे संतट्ठाणा उ सत्त पत्तेयं ।
पण पण इह पुव्वुत्ता तित्थजुया दुन्नि पुण एए ॥ (२४९)
चउवीसं इगतीसं उदए [1]मोत्तु उणतीसबंधम्मि ।
[2]दो दो य संतठाणा तेणउई अउणनउई य ॥२०५॥ (२५०) [२३४]
एवं तीसे बंधे नवरं छव्वीस मुत्तु छट्ठाणा ।
इय संवेहो वुत्तो नव सत्तुगतीसतीसम्मि ॥२०६॥ (२५१) [२३५]

बंधट्ठाणा	२९	३०	
उदयट्ठाणा	७	६	दो दो संतट्ठाणा-९३-८९
सत्ताठाणा	१४	१२	

अट्ठावीसे बंधे संवेहो अट्ठ उदय चउसंता ।
बाणउई अट्ठासी छासी तह अउणनउई य ॥२०७॥ (२५२) [२३६]
छसु आइएसु दो दो बाणउई अट्ठसी य ठाणाइं ।
तीसे चउरो ठाणा उणनउई मुत्तु इगतीसे ॥२०८॥ (२५३) [२३७]

अट्ठवीसबंधट्ठाणे ठवणा—

	उदयठाणाणि	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	एवं
	सत्ताठाणाणि	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	१९
		८८	८८	८८	८८	८८	८८	८९	८८	
								८८	८६	
								८६		

तीसोदय उणनउई अट्ठावीसे कहं भवे बंधे ।
आचार्यः प्राह-मणुतित्थसंतगम्मी मिच्छगए निरयमिच्छहम्मि ॥२०९॥ (२५४) [२३८]
तित्थयरसंतकम्मी सम्मदिट्ठी उ बंधए णियमा ।
उणतीसं तित्थजुयं वेयगबंधा उ नो अन्ने ॥ (२५५)

---

१ "मुत्तु" इति L. D. प्रतौ । △ पेज नं० ५२ △ एतच्चिह्नगतं टिप्पनकं द्रष्टव्यम् ।

वेयगसम्मद्दिट्ठी णिरयाभिमुहो वमेइ सम्मत्तं ।
तेण मुहुत्तं भिन्नं उणनउई मिच्छसंता उ ॥ (२५६)

संतट्ठाणाण संखामाह–

आइतिए वीमसयं उणवीसा तह य होइ चउपण्णा ।
बावन्ना वि य कमसो सत्ताठाणाइं छण्हं पि ॥२१०॥ (२५७) [२३९]

ठवणा–

वंधट्ठाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०
उदयट्ठाणा	९	९	९	८	९	९
सत्ताठाणा	४०	४०	४०	११	५४	५२

एगेगमेगतीसे एगे एगुदय अट्ठ संतम्मि ।
उवरयबंधे दस दस वेअगसंतंमि ठाणाइं । सूत्रम् ३२॥ (२५८) [२४०]
इगतीसे बंधम्मी उदओ तीसन्ह तेणवइसत्ता ।
तह एगबंधि उदयं ३० संतट्ठाणाइँ तहि अट्ठ ॥२११॥ [२४१]
जसकित्ति बंधु तीसन्ह उदय तह संतठाण अट्ठे व ॥ (२५९)
पढमा चउरो ठाणा ते चिय पत्तेय तेरसविहूणा ।
इय अट्ठ संतठाणा जसकित्तीबंधसंवेहो ॥२१२॥ (२६०) [२४२]
उवरयबंधे दस उदयठाण तह दस य संतठाणाइं ।
चउवीसा पणवीसा छलसी अट्ठत्तरी मुत्तुं ॥२१३॥ (२६१) [२४३]

[1]ठवणा–

बधठा०	३१	१	०
उदय०	१	१	१०
सत्ता०	१	८	१०

वीसछव्वीसा तीसा केवलिणो पुव्ववुत्त उदयाउ ।
सरसाससव्वरोहे नवअट्ठयअहियवीस अट्ठेव ॥२१४॥ (२६२) [२४४]
दो दो य संतठाणा उणसी पन्नत्तरी य सव्वेसु ।
अट्ठोदयम्मि संतं ते चिय अट्ठेव संतम्मि ॥२१५॥ (२६३) [२४५]

---

१ इदं यन्त्रं L D. प्रतावस्ति, J प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

एए केवलिउदया तित्थजुया ते य छच्च तित्थयरे ।
दो दो संतट्ठाणा आसी [1]छाहत्तरी तह य ॥२१६॥ (२६४) [२४६]
छट्ठुदए नवपयडी ते चिय संतम्मि चरिमसमयम्मि ।
तित्थयरकेवलिस्सा तइयं ठाणं तु संतम्मि ॥२१७॥ (२६५) [२४७]
उवसंते चउ पढमा तीसे उदयम्मि तह य तित्थयरे ।
एसणं केवलिनियरे उवरयवंधम्मि संवेहो ॥२१८॥ [२४८]
तेरस तेरस भेया केवलितित्थयर तह य उवसंते ।
चउ पढमा तीसुदए उवरयवंधम्मि संवेहो ॥ (२६६)

*उवरयवंधे ठवणा—

उदयठाण०	२०	२१	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८	सव्वे
सत्ताठाण०	२	२	२	२	२	४	८	७	३	३	३०

सामान्येन नाम समाप्तम् ॥

मूलुत्तरपगईसुं बंधोदयसंतठाण इय भणिया ।
जीवगुणठाणगेसुं तह उत्तरपगइसुं भणिमो ॥२१९॥ (२६७) [२४९]
तिविगप्प पगइठाणेहि जीवगुणसण्णिएसु ठाणेसुं ।
भंगा पउंजियव्वा जत्थ जहासंभवो भवइ ॥सू०–३३॥ (२६८) [२५०]
तिविगप्पा बोधव्वा बंधं उदयं च संतठाणतिगं ।
भंगा पउंजियव्वा जियगुणठाणाण संभविया ॥२२०॥ (२६९) [२५१]

चतुर्दशजीवस्थानेषु ज्ञानावरणान्तराययोर्बन्धोदयसत्तास्थानभङ्गाः-

तेरससु जीवसंखेवएसु नाणंतरायतिविगप्पो ।
एक्कम्मि तिदुविगप्पो करणं पइ [2]एत्थ अविगप्पो ॥सू०-३४॥(२७०) [२५२]

*नाणावरणंतरायठवणा—

जीवट्ठाणा	१३	सण्णी	
बं.	५	५	०
उदय.	५	५	५
सत्ता.	५	५	५

१ . 'तहाहारयचउरहिया" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । २-४ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेस-कोप्यां नास्ति । ३ "इत्थ" इति L. D प्रतौ ।

करणं पइत्ति जोगी मणमाईणि उ हवंति करणाइं ।
सञ्चखओ दुण्हं पि हु करणं पइ तेण अविगप्पो ॥२२१॥ (२७१) [२५३]

जीवस्थानेषु दर्शनावरणीयस्य बन्धोदयसत्तास्थानभङ्गाः-

तेरे नव चउ पणगं नवसंतेगम्मि भंग [1]मेक्कारा ।
[2]वेयणियाउं गोए विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥सू.-३५॥ (२७२) [२५४]

नववंधं नवसंतं चउपण उदयम्मि दंसणावरणे ।
[3]तेरससु आइमेसुं सण्णी पुव्वुत्त[4]एक्कारा ॥२२२॥ (२७३) [२५५]

[5]ठवणा-

बंधठाणा	९	९	६	६	४	४	४	०	०	०	०
उदयठाणा	४	५	४	५	४	५	४	४	५	४	४
सत्ताठाणा	९	९	९	९	९	९	६	९	९	६	४

जीवस्थानेषु वेदनीयगोत्रयोर्बन्धादिस्थानानां भङ्गाः-

पज्जत्तगसन्नियरे अट्ठ चउक्कं च वेयणियभंगा ।
सत्तग तिगं च गोए पत्तेयं जीवठाणेसु ॥ सूत्रम्-०॥ (२७४) [२५६]

ठवणा-

बंधो	अ-सा०	अ-सा०	सा-य०	सा-य०	०	०	०	०
उदओ	अ-सा०	सा-य०	अ० सा०	सा-य०	अ-सा०	सा-य०	अ-सा०	सा-य०
सत्ता	२	२	२	२	२	२	१	१

पढमा दुग तह तुरिओ गोए वेयणियभंगचत्तारि ।
तेरससु आइमेसुं सन्नीपज्जत्ति पुव्वुत्ता ॥२२३॥ (२७५) [२५७]

[6]तेरससु जीवठाणेसु ठवणा—

बंध०	नी	नी.	उच.
उदय०	नी.	नी.	नी.
सत्ता	नी	२	२

---

१ "मिक्कारा" इति L. D प्रतौ। २ 'वेयणियाउय गोए" इति L. D प्रतौ । ३ "तेरससुं पि इमासु'" इति L D. प्रतौ। ४ इक्कारा" इति L. D. प्रतौ। ५-६-७ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति।

[1]सण्णिपज्जत्तगस्स ठवणा—

बंधो	नीय०	नीय०	नीय०	उच्च	उच्च	०	०
उदओ	नीय०	नीय०	उच्च०	नीय	उच्च	उच्च	उच्च
सत्ता	नीय०	२	२	२	२	२	१

सण्णिम्मि सत्त भंगा पढमो कह जेण तेउवाऊणं ।
[2]भण्णइ पढमु[3]ववण्णे तेहिंतो तिरियसण्णिम्मि ॥२२४॥ (२७६) [२५८]

जीवस्थानेष्वायुषो बन्धादिस्थानभङ्गाः

पज्जत्ता-ऽपज्जत्तगसमणे पज्जत्तअमण-सेसेसु ।
अट्ठावीसं दसगं नवगं पणगं च आउस्स ॥सू.– ०॥ (२७७) [२५९]

सण्णिअपज्जमणुतिरिय मणुतिरिजोगं च आउ बंधंति ।
[4]एक्केक्कु बंधपुव्वे बंधु[4]त्तर[4] चउर इय दसओ ॥२२५॥ (२७८) [२६०]
सन्नी पज्जे भंगा अट्ठवीसं पुव्ववुत्त आउम्मि ।
पज्जाऽमण तिरियसमा पण [5]इक्कारे य[5] देवसमा ॥२२६॥ (२७९) [२६१]

[6]ठवणा—

११ जीवठा०	५
प० असं०	९
अप० सं०	१०
प० सं०	२८

जीवस्थानेषु मोहनीयबन्धादिस्थानभङ्गाः–

अट्ठसु पंचसु एगे एगदुगं दस य मोहबंधगए ।
तियचउनवउदयगए तिग तिग पण्णरससंतम्मि ॥सू.–३६॥ (२८०) [२६२]

१-६ इदं यन्त्रं L. D. प्रत्यावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति, २ 'भमइ' इति L. D. प्रतौ । ३ "०ववन्ने" इति L. D. प्रतौ । ४ "एगो अबंधपुव्वे" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ५ "एक्कारे" इति L. D. प्रतौ ।

बादरपज्ज	बे.पज्ज	ते पज्ज	च.पज्ज	ऽसं-पज्ज.	बा पज्ज	बे.पज्ज	ते.पज्ज	च.पज्ज	ऽसं.पज्ज
२२	२२	२२	२२	२२	२१	२१	२१	२१	२१
६	६	६	६	६	४	४	४	४	४
८, ६, १०	८, ६, १०	८, ६, १०	८, ६, १०	८, ६, १०	७, ८, ९	७, ८, ६	७, ८, ९	७, ८, ६	७, ८, ९
१, २, १	१, २, १	१, २, १	१, २, १	१, २, १	१, २, १	१, २, १	१, २, १	१, २, १	१, २, १
८	८	८	८	२४	८	८	८	८	२४

= ५६ अट्ठगा + १६ चउवीसा=८३२ उदयविगप्पा।

उदए-ऽट्ठगा	३२	३२	३२	३२	३२	१६	१६	३२	३२	३२	३२	३२	१६	३२	३२	३२	३२	१६
पए-ऽट्ठगा-चउवीसिया वा	३६	३६	३६	३६	२६	२६	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३२	३२	३२	३२	१२
पयविंदा	११५२	११५२	११५२	११५२	११५२	५७६	५७६	११५२	११५२	११५२	११५२	११५२	५७६	१०२४	१०२४	१०२४	१०२४	१९२

इगि विगल अपज्जत्ता सुहुमो पज्जो य छच्च जियठाणा ।
तह विगल बारपज्जा उदइ नपुंसेण ए दस उ ॥२३५॥ (२१४) [२७१]

* अस्सन्निसन्निपज्जा तह य अपज्जा य चउर जियठाणा ।
* तिगवेयपरावत्तो उदए आसज्ज चउसुंपि ॥२३६॥ (२१५) [२७२]

तेरससु जीवठाणेसु संतट्ठाणसंखमाह—

इगवीसबंधगाणं सासणभावम्मि पंचजियठाणा ।
उदएसुं पत्तेयं एगा अडवीस संतम्मि ॥२३७॥ (२१६) [२७३]

बावीसबंधतेरस बंधे बंधे य तिगतिगं उदया ।
उदएसुं पत्तेयं तिगतिगसंता उ पुव्वुत्ता ॥२३८॥ (२१७) [२७४]

---

* इह ग्रन्थे लब्ध्यपर्याप्तानां,संज्ञ्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणामपि वेदत्रयमङ्गीकृत्य यत्प्ररूपणं कृतं तत्तु सर्वस्या-ऽपि लब्ध्यपर्याप्तस्य नपुंसकवेदित्वाच्चिन्त्यम्, यतश्चूर्णिकारैरपि लब्धिपर्याप्तसंज्ञिनीव लब्धिपर्याप्तासंज्ञिन्येव वेदत्रयमङ्गीकृतम्, न पुनर्लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिनोरपि, यदुक्तम्–"एक्केक्कम्मि उदयम्मि नपुंसगवेदेणं चेव अट्ठ अट्ठ भंगा। सेसा न संभवंति .... । असन्निपज्जत्तगस्स तिहिं वि वेदेहिं उट्ठावेयव्वा।" इति। किञ्च सिद्धान्ताभिप्रायेण पर्याप्तोऽपर्याप्तो वा सर्वोऽप्यसंज्ञी नपुंसक एव, यदुक्तं

श्रीप्रज्ञप्तौ-"ते णं भंते ! असन्निपंचिंदितिरिक्खजोणिया किं इत्थिवेयगा पुरिसवेयगा नपुंसगवेयगा ? नो इत्थिवेयगा नो पुरिसवेयगा नपुंसगवेयगा" इति । एतत्सिद्धान्ताभिप्रायेण च श्रीमन्मलयगिरिपादैः सप्ततिकायाः षट्त्रिंशत्तमगाथावृत्तौ पर्याप्तासंज्ञिनि नपुंसकवेद एव दर्शित, तत्राऽपि चूर्णिकाराभिप्रायेण वेदत्रयम्, एवं सप्ततिकाभाष्यपञ्चाशत्तमगाथावृत्तौ श्रीमेरुतुङ्गाचार्यैरपि । तेनाकारमात्रमङ्गीकृत्य कार्मग्रन्थिकमतामिप्रायेण लब्धिपर्याप्तासंज्ञिनि वेदत्रयं संभवति, तथैव बहुभिर्वृत्तिकारैः समर्थितत्वात् । चूर्णिकारास्तु विपाकोदयापेक्षया वेदत्रयमसंज्ञिनि लब्धिपर्याप्ते स्वीकुर्वन्ति, न पुनः केवलमाकारमात्रेणेति विशेषः । न पुनर्लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिनोरपि ।

न च "चउ चउ पुमित्थिवेए" इति पञ्चमसंग्रहवचनम्, "पुमत्थिवेए चरम चउरो ॥" इति प्राचीनषडशीतिवचनम्, "थीणरपणिंदि चरमा चउ" इति नव्यषडशीति वचनम्, इत्यादिवचनैस्तथा श्रीरामदेवगणिनैव प्राचीनषडशीतिदशमगाथाविवरणे जीवस्थानेषु मार्गणास्थानानि दर्शयता-"असण्णिअपज्जत्तगस्स उत्तरभेया । तं जहा ....वेयतिगं .... । सण्णिपंचिंदियस्स अपज्जगस्स उत्तरभेया । तं जहा-गइ चउक्कं .... वेयतिगं॥" इत्यादिना पर्याप्ता-ऽपर्याप्तसंज्ञिद्वया-ऽसंज्ञिद्वयलक्षणेषु चतुर्ष्वपि जीवस्थानेषु वेदत्रयं प्रतिपादितम्, अतः कथं लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिनोस्तन्निषिध्यते भवतेति वाच्यम्, अभिप्राया-ऽपरिज्ञानात्, यतस्तत्र सर्वत्रा-ऽप्यपर्याप्तः करणेना-ऽपर्याप्तो विवक्षित इति न कश्चिदपि दोषः, भवत्वत्रा-ऽपि करणा-ऽपर्याप्त इति चेत्, सत्यम्, तदेहा-ऽप्यदोष एव, किन्तु सो-ऽत्र विवक्षितो नास्ति, यतो लब्ध्यपर्याप्तस्यैवा-ऽत्र विवक्षितत्वेन समस्तेष्वप्यपर्याप्तेषु प्रथमगुणस्थानादिकमेव दर्शितम्, अन्यथा द्वितीयगुणस्थानादिकमपि दर्शितं स्यात् ।

ननु यथा भाववेदमाश्रित्य सप्ततिकाभाष्य-५६-५७ तमगाथावृत्तौ मेरुतुङ्गाचार्यैर्विपाकोदयतो देवनारकाणां वेदत्रयस्य संभवो दर्शितः तथा च तद्ग्रन्थः-"यद्यप्याकृत्या देवानां क्लीबवेदो नारकाणां च पुंस्त्रीवेदौ न स्तस्तथा-ऽपि विपाकोदयतो वेदत्रयमपि संभवति" इति । तथा लब्ध्या-ऽपर्याप्तयोः संज्ञ्यसंज्ञिनोरपि स्यादिति चेत्, न, तत्रैव सप्ततिकाभाष्य ५५ तमगाथावृत्तौ तैरेव मेरुतुङ्गाचार्यैर्लब्धिपर्याप्तव्यतिरिक्तानां त्रयोदशानामपि जीवभेदानां केवलस्य नपुंसकवेदस्यैवोदयस्य प्रतिपादनात्, एवमन्यत्रा-ऽपि । अन्यथा यथा "उदयविगप्पा जे जे उदीरणाए वि होंति ते ते उ । अंतमुहुत्तियउदया समयादारब्भ भंगा य ॥३३॥" इति पञ्चसंग्रहसत्कसप्ततिकागाथास्वोपज्ञवृत्तौ-"युग्मेन वेदेन वा-ऽवश्यमन्तर्मुहूर्तादरतः परावर्त्तितव्यम्" (पञ्चसंग्रहप्रथमभागपत्र-२४३-१) इति स्ववचनमाहत्य पञ्चसंग्रहकारैर्जीवस्थानेषु बन्धहेतून् दर्शयद्भिश्चतुर्दशस्वपि जीवस्थानेषु वेदत्रयं प्रतिपादितम्, (पञ्चसंग्रहप्रथमभागपत्र-१७१-१८२) तथा चूर्णिकार-भाष्यवृत्तिकारादिभिरपि चतुर्दशस्वपि जीवभेदेषु वेदत्रयस्य विधानं कृतं भवेत्, तुल्यन्यायत्वात्, न च तैस्तथा विहितम्, एवं प्रस्तुतग्रन्थे-ऽपि, तथा श्रीमन्मलयगिरिपादैरपि 'उदयविगप्पा ...' (पञ्चसंग्रहसप्ततिका ३३ गाथा प्रथमभागपत्र-२४२-२) इति गाथावृत्तौ 'युग्मेन वेदेन वाऽवश्यं मुहुत्तादारतः परावर्तितव्यम्" इति पञ्चसंग्रहकारवचनं पुरस्कृत्य भावनाया विहितत्वे-ऽपि जीवभेदेषु बन्धनिरूपणावसरे तदनाहतम्" उक्तं च तैस्तत्र-"इह संज्ञिपञ्चेन्द्रियव्यतिरिक्ताः शेषाः सर्वे-ऽपि संसारिणो जीवाः परमार्थतो नपुंसकाः, केवलमसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः स्त्रीपुंलिङ्गाकारमात्रमधिकृत्य पुंस्त्रीवेदे प्राप्यन्ते" (पञ्चसंग्रह प्रथमभागपत्र १८३-) इति । ततो वेदत्रयपरावृत्तिमतमप्रधानं प्रतिभाति । किञ्च लब्ध्यपर्याप्तः सर्वो-ऽपि नपुंसक एवेति हेतोरत्र लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिनोर्वेदत्रयस्य यत्प्रतिपादनं तद् विचारणीयम् ।

बादरपज्ज			वे.पज्ज			ते.पज्ज			च.पज्ज			ऽसं.पज्ज.			बा पज्ज			वे.पज्ज			ते.पज्ज			च.पज्ज			ऽसं.पज्ज		
२२			२२			२२			२२			२२			२१			२१			२१			२१			२१		
६			६			६			६			६			४			४			४			४			४		
८	९	१०	८	९	१०	८	९	१०	८	९	१०	८	९	१०	७	८	९	७	८	९	७	८	९	७	८	९	७	८	९
१	२	१	१	२	१	१	२	१	१	२	१	१	२	१	१	२	१	१	२	१	१	२	१	१	२	१	१	२	१
८			८			८			८			२४			८			८			८			८			२४		

= ५६ अट्ठगा + १६ चउवीसा=८३२ उदयविगप्पा ।

उदए-ऽट्ठगा	३२	३२	३२	३२	३२	१६	१६	३२	३२	३२	३२	३२	१६	३२	३२	३२	३२	१६
पए-ऽट्ठगा-चउवीसिया वा	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३६	२२	२२	२२	२२	२२
पयविंदा	११५२	११५२	११५२	११५२	११५२	५७६	५७६	११५२	११५२	११५२	११५२	११५२	५७६	७०४	७०४	७०४	७०४	३५२

इगि विगल अपज्जत्ता सुहुमो पज्जो य छच्च जियठाणा ।
तह विगल बारपज्जा उदइ नपुंसेण ए दस उ ॥२३५॥ (२१४) [२७१]

* अस्सन्निसन्निपज्जा तह य अपज्जा य चउर जियठाणा ।
* तिगवेयपरावत्तो उदए आसज्ज चउसुंपि ॥२३६॥ (२१५) [२७२]

तेरससु जीवठाणेसु संतट्ठाणसंखमाह—

इगवीसबंधगाणं सासणभावम्मि पंचजियठाणा ।
उदएसुं पत्तेयं एगा अडवीस संतम्मि ॥२३७॥ (२१६) [२७३]

बावीसबंधतेरस बंधे बंधे य तिगतिगं उदया ।
उदएसुं पत्तेयं तिगतिगसंता उ पुव्वुत्ता ॥२३८॥ (२१७) [२७४]

---

* इह ग्रन्थे लब्ध्यपर्याप्तानां संज्ञ्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणामपि वेदत्रयमङ्गीकृत्य यत्प्ररूपणं कृतं तत्तु सर्वस्या-ऽपि लब्ध्यपर्याप्तस्य नपुंसकवेदित्वाच्चिन्त्यम्, यतश्चूर्णिकारैरपि लब्धिपर्याप्तसंज्ञिनीव लब्धिपर्याप्तासंज्ञिन्येव वेदत्रयमङ्गीकृतम्, न पुनर्लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिनोरपि, यदुक्तम्–"एक्केक्कम्मि उदयम्मि नपुंसगवेदेणं चेव अट्ठ अट्ठ भंगा । सेसा न संभवंति .... । असन्निपज्जत्तगस्स तिहिं वि वेदेहिं उट्ठावेयव्वा ।" इति । किञ्च सिद्धान्ताभिप्रायेण पर्याप्तोऽपर्याप्तो वा सर्वोऽप्यसंज्ञी नपुंसक एव, यदुक्तं

श्रीप्रज्ञप्तौ-"ते णं भंते ! असण्णिपंचिंदितिरिक्खजोणिया किं इत्थिवेयगा पुरिसवेयगा नपुंसगवेयगा ? नो इत्थिवेयगा नो पुरिसवेयगा नपुंसगवेयगा" इति । एतत्सिद्धान्ताभिप्रायेण च श्रीमन्मलयगिरिपादैः सप्ततिकायाः षड्त्रिंशत्तमगाथावृत्तौ पर्याप्तासंज्ञिनि नपुंसकवेद एव दर्शित, तत्राऽपि चूर्णिकाराभिप्रायेण वेदत्रयम्, एवं सप्ततिकाभाष्यपञ्चपञ्चाशत्तमगाथावृत्तौ श्रीमेरुतुङ्गाचार्यैरपि । तेनाकारमात्रमङ्गीकृत्य कार्मग्रन्थिकमताभिप्रायेण लब्धिपर्याप्तासंज्ञिनि वेदत्रयं संभवति, तथैव बहुभिर्वृत्तिकारैः समर्थितत्वात् । चूर्णिकारास्तु विपाकोदयापेक्षया वेदत्रयमसंज्ञिनि लब्धिपर्याप्ते स्वीकुर्वन्ति, न पुनः केवलमाकारमात्रेणेति विशेषः । न पुनर्लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिनोरपि ।

न च "चउ चउ पुमित्थिवेए" इति पञ्चमसंग्रहवचनम्, "पुमत्थिवेए चरम चउरो ॥" इति प्राचीनषडशीतिवचनम्, "थीणरपणिंदि चरमा चउ" इति नव्यषडशीति वचनम्, इत्यादिवचनैस्तथा श्रीरामदेवगणिनैव प्राचीनषडशीतिदशमगाथाविवरणे जीवस्थानेषु मार्गणास्थानानि दर्शयता-"असण्णिअपज्जत्तगस्स उत्तरभेया। तं जहा ....वेयतिगं .... । सन्निपंचिंदियस्स अपज्जगस्स उत्तरभेया। तं जहा-गइ चउक्कं .... वेयतिगं॥" इत्यादिना पर्याप्ता-ऽपर्याप्तसंज्ञिद्वया-ऽसंज्ञिद्वयलक्षणेषु चतुर्ष्वपि जीवस्थानेषु वेदत्रयं प्रतिपादितम्, अतः कथं लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिनोस्तन्निषिध्यते भवतेति वाच्यम्, अभिप्राया-ऽपरिज्ञानात्, यतस्तत्र सर्वत्रा-ऽप्यपर्याप्तः करणेना-ऽपर्याप्तो विवक्षित इति न कश्चिदपि दोषः, भवत्वत्रा-ऽपि करणा-ऽपर्याप्त इति चेत्, सत्यम्, तदेहा-ऽप्यदोष एव, किन्तु सो-ऽत्र विवक्षितो नास्ति, यतो लब्ध्यपर्याप्तस्यैवा-ऽत्र विवक्षितत्वेन सप्तस्वप्यपर्याप्तेषु प्रथमगुणस्थानादिकमेव दर्शितम्, अन्यथा द्वितीयगुणस्थानादिकमपि दर्शितं स्यात् ।

ननु यथा भाववेदमाश्रित्य सप्ततिकाभाष्य-५६-५७ तमगाथावृत्तौ मेरुतुङ्गाचार्यैर्विपाकोदयतो देवनारकाणां वेदत्रयस्य संभवो दर्शितः तथा च तद्ग्रन्थः-"यद्यप्याकृत्या देवानां क्लीबवेदो नारकाणां च पुंस्त्रीवेदौ न स्तस्तथा-ऽपि विपाकोदयतो वेदत्रयमपि संभवति" इति । तथा लब्ध्या-ऽपर्याप्तयोः संज्ञ्यसंज्ञिनोरपि स्यादिति चेत्, न, तत्रैव सप्ततिकाभाष्य ५५ तमगाथावृत्तौ तैरेव मेरुतुङ्गाचार्यैर्लब्धिपर्याप्तव्यतिरिक्तानां त्रयोदशानामपि जीवभेदानां केवलस्य नपुंसकवेदस्यैवोदयस्य प्रतिपादनात्, एवमन्यत्रा-ऽपि । अन्यथा यथा "उदयविगप्पा जे जे उदीरणाए वि होंति ते ते उ । अंतमुहुत्तियउदया समयाइकम भंगा य ॥३३॥" इति पञ्चसंग्रहसप्ततिकागाथास्वोपज्ञवृत्तौ-"युग्मेन वेदेन वा-ऽवश्यमन्तर्मुहूर्तादरतः परावर्त्तितव्यम्" (पञ्चसंग्रहप्रथमभागपत्र-२४२-१) इति स्ववचनमास्त्य पञ्चसंग्रहकारैर्जीवस्थानेषु बन्धहेतून् दर्शयद्भिश्चतुर्दशस्वपि जीवस्थानेषु वेदत्रयं प्रतिपादितम्, (पञ्चसंग्रहप्रथमभागपत्र-१७६-१८२) तथा चूर्णिकार-भाष्यवृत्तिकारादिभिरपि चतुर्दशस्वपि जीवभेदेषु वेदत्रयस्य विधानं कृतं भवेत्, तुल्यन्यायत्वात्, न च तैस्तथा विहितम्, एवं प्रस्तुतग्रन्थे-ऽपि, तथा श्रीमन्मलयगिरिपादैरपि 'उदयविगप्पा . ." (पञ्चसंग्रहसप्ततिका ३३ गाथा प्रथमभागपत्र-२४२-२) इति गाथावृत्तौ 'युग्मेन वेदेन वाऽवश्यं मुहूर्त्तादारत. परावर्त्तितव्यम्" इति पञ्चसंग्रहकारवचनं पुरस्कृत्य भावनाया विहितत्वे-ऽपि जीवभेदेषु बन्धनिरूपणावसरे तदनादृतम्" उक्तं च तैस्तत्र-"इह संज्ञिपञ्चेन्द्रियव्यतिरिक्ताः शेषाः सर्वे-ऽपि संसारिणो जीवाः परमार्थतो नपुंसकाः, केवलमसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः स्त्रीपुंलिङ्गाकारमात्रमधिकृत्य पुंस्त्रीवेदे प्राप्यन्ते" (पञ्चसंग्रह प्रथमभागपत्र १८३-) इति । ततो वेदत्रयपरावृत्तिमतमप्रधानं प्रतिभाति । किञ्च लब्ध्यपर्याप्तः सर्वो-ऽपि नपुंसक एवेति हेतोरत्र लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिनोर्वेदत्रयस्य यत्प्रतिपादनं तद् विचारणीयम् ।

इगवीसे ते पणरस सत्तरसयं तु बंधि बावीसे ।
बत्तीसं संतसयं सन्नी सामन्नगहणेण ॥२३९॥ (२६८) [२७५]

ठवणा—

बंध०	२२			२२			२२			२२			२२			२२			२२			२२			२२		
उदय.	८	६	१०	८	९	१०	८	६	१०	८	६	१०	८	६	१०	८	९	१०	८	६	१०	८	६	१०	८	९	१०
सत्ता	२८/२७	३	३	६			६			९			६			६			६			९			६		

२२			२२			२२			२२			२१			२१			२१			२१			२१		
८	६	१०	८	६	१०	८	६	१०	८	९	१०	७	८	९	७	८	६	७	८	९	७	८	९	७	८	९
६			९			९			६			३			३			३			३			३		

इति जीवस्थानेषु मोहः समाप्तः ॥

जीवस्थानेषु नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानानि—

❀ पणदुगपणगं पणचउ पणगं पणगा हवंति तिन्नेव ।
पणछप्पणगं छच्छप्पणगं अट्ठट्ठदसगं ¹च ॥मू.—२७॥ (२६९) [२७६]

❀ एतद्गाथाद्वयस्य विवरणे L. D. प्रतौ गाथाप्रतीकानुसारेण पूर्वं सप्तस्वप्यपर्याप्तजीवभेदेषु नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानानि प्रतिपाद्य ततः पर्याप्तसूक्ष्मजीवभेदे, पर्याप्तबादरजीवभेदे, पर्याप्तविकलेन्द्रियभेदत्रये पर्याप्ताऽसंज्ञिजीवभेदे च क्रमेण भणितानि । J. प्रतिप्रेसकोप्यां पुनः प्राक् त्रयोदशस्वपि जीवभेदेषु बन्धस्थानानि, तत उदयस्थानानि त्रयोदशजीवभेदेषु, ततः सत्तास्थानान्यपि त्रयोदशसु जीवभेदेषु प्रतिपादितानि इति गाथाभेदः गाथाक्रमभेदश्च J. प्रतिप्रेसकोप्यपेक्षया विवरणगाथा-२४१ तः २८३ सन्ति । L. D. प्रतौ विवरणगाथा-२०१ तः ३५० भवन्ति ।

तथा L. D. प्रतौ त्रयोविंशतिबन्धकत्वं वैक्रियोदयवतां पञ्चविंशति-सप्तविंशत्युदयस्थानद्वयगतानां प्रतिषिद्धम् , J. प्रतिप्रेसकोप्यां न निषिद्धम् , नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने एकविंशतिषड्विंशत्युदयस्थानयोस्त्रिनवतिसत्स्थानं J. प्रतिप्रेसकोप्यां निषिद्धमपि L. D. प्रतौ न प्रतिसिद्धम् । तेन J. प्रतिप्रेसकोप्यपेक्षया L. D. प्रतौ त्रयोविंशतिबन्धस्थाने पञ्चविंशतिषड्विंशत्युदयस्थानयोः प्रत्येकं द्वे द्वे सत्तास्थाने इति चत्वारि सत्तास्थानानि न्यूनानि, एकोनत्रिंशद्बन्धस्थान एकविंशति-षड्विंशत्युदयस्थानयोः प्रत्येकं त्रिनवतिसत्स्थानमिति द्वे सत्कर्मस्थाने अधिके । ततः पर्याप्तसंज्ञिजीवभेदे बन्धाऽबन्धस्थानवत्युदयस्थानगतानि समुदितानि सर्वाणि सत्तास्थानानि L. D. प्रतौ अष्टोत्तरशतद्वयम् २०८, J. प्रतिप्रेसकोप्यां दशाधिकद्विशते २१० सन्तीति विशेषः ।

१ "ति" इत्यपि पाठः ।

सत्तेव अपज्जत्ता सामी [1]सुहुमो व बायरो चेव ।
विगलिंदिया उ तिन्नि य तह य असन्नी य सन्नी य ॥सू.–२८॥ (३००)[२७७]

[2]पणदुगपणगंति एएसिं विवरणं ॥ पणबंधट्ठाणा ते य इमे—

तिग२३पणवीस२५छवीसा२६गुणतीसा२९तीस३०बंधठाणा उ ।
पढमम्मि जीवठाणे इय नेयं जाव तेरससु ॥२२०॥ [२७८]
पढमम्मि जीवठाणे इय णेयं जाव सत्तसु य । (३०१)
भंगा इह मिच्छसमा चारणाहिट्ठा उ कया ॥
चउ ४ पणवीसा २५ सोलस १६ बाणवइसया वि हुंति चालीसा १२४०
छायालं बत्तीसा ४६३२ सत्तअपज्जेसु पत्तेयं ॥ (३०२)
अमणम्मी पज्जत्ते [3]छद्धा अडवीसबंधिमागच्छे ।
सन्नी पज्जत्ते पुण अट्ठेव य होंति पुव्वुत्ता ॥२४१॥ [२७९]
भंगा इह पुव्वुत्ता सव्वत्थ वि जीवठाणबंधेसु ।
पत्तेयं जोइज्जा जे जत्थ व होंति संभविया ॥२४२॥ [२८०]
इगचउवीसेगिंदिसु २१।२४ छवीसइगवीस २६।२१ पंचसु तसेसु ।
दो दो उदयअपज्जे[सु] भंगा सव्वे वि [4]पंचंसा ॥२४३॥ (३०३) [२८१]
इगवीसे दो भंगा बायरसुहुमेहि [5]एक्कइक्केण ।
[6]बायरपत्तेगियरे चउरो चउवीसि अजसेण ॥२४४॥ (३०४) [२८२]
अप्पज्जपणतसाणं सव्वासुभपगइमिलिय[7]मेक्केक्कं ।
इगवीसे छव्वीसे पण . पण पत्तेय [8]दुण्हं पि ॥२४५॥ (३०५) [२८३]
नवरं मणुयअपज्जे भंगा चउ चउरसंतकम्मंसा ।
अट्ठत्तरी न तेसिं सेसा चत्तारि संभविया ॥२४६॥ (३०६) [२८४]
एत्थ अपज्जत्ताणं असन्निसन्नीण भंगया दो दो ।
इगवीसे छव्वीसे मणुजोगे चउरए हुंति ॥२४७॥ [२८५]
पणचउपणगं सुहमे बंधे भंगा अपज्जसमसव्वे ।
उदएसु पुण भंगा चउसु वि उदएसु पत्तेयं ॥ (३१०)

---

१ "तह सुहमबायरा चेव" इत्यपि, "सुहुमा य बायरा चेव" इत्यपि, "सुहुमो य बायरो चेव" इत्यपि, वा पाठः । २ अयं पाठः L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । ३ "छट्ठा" इति वा । ४ "पणसंना ॥ (३०३)" इति L. D. प्रतौ । ५ "एक्कमेक्केण" इति L. D. प्रतौ । ६ "तह पत्तेगियरेहिं दो दो" इति L. D. प्रतौ । ७ "एक्केक्को" इति L. D. प्रतौ । ८ "भंगा उ" इति L. D. प्रतौ ।

पज्जत्त[1]सुहुम एगो इगवीसे दुगदुगं च इयरेसु ।
साहा[2]रणइयरेहिं भंगा पण पंचसंतंसा ॥२४८॥ (३११) [२८६]
इगवीसे चउवीसे इग दुग पणसंतभंगया तिन्नि ।
तह पणवीसछव्वीसे इक्केक्को अजसउदएणं ॥२४६॥ [२८७]
पणवीसे छव्वीसे इक्केक्को पंच संतंसो ॥ (३१२)
[3]दो इह भंगा अन्ने साहारणि [4]पण्णवीस छव्वीसे ।
अट्ठुत्तरी न तेसिं तेऊवाऊण संभवइ ॥२५०॥ (३१३) [२८८]
सुहमे पज्जे उदया चउरो पत्तेय पंच संतंसा ।
चउ पंचा इह वीसं बंधे बंधे य पत्तेयं ॥ (३१४)

[5]सुहमेगिंदियपज्जत्तठवणाजंतइयं-

सुहुमे पज्जे पणचउपणगं ति पणबंधा चउउदया पणसंता				
उदयठा०	२१	२४	२५	२६
पणसंता	१	२	प्र.१	प्र.१
चउसंता	०	०	सा.१	सा.१
सत्तठाणा-	९२	९२	९२	९२
पणसंता	८८	८८	८८	८८
चउभंगा,	८६	८६	८६	८६
चउसंता	८०	८०	८०	८०
दुन्निभंगा।	७८	७८	७८	७८

बंधठाणा	बंधभंगा	उदय-भंगा	सत्ता-ठाणा
२३	४	७	२०
२५	२५	७	२०
२६	१६	७	२०
२९	९२४०	७	२०
३०	४६३२	७	२०
सव्वे-	१३९१७	३५	१००

सुहुमपज्जत्तबंधभंगसंखा १३९१७

पणगा तिन्नेव त्ति ।

तिविगप्प बायराणं बंधोदयसंत पणग पत्तेयं ।
बंधा उ अपज्जसमा उदया पंचेव पुण एए ॥ (३१५)
बायरइगवीसाए दो भंग जसेयरेहि पणसंता ।
जसपत्तेइयरेहिं चउरो चउवीसि तह चेव ॥२५१॥ (३१६) [२८९]

---

१ "०सुहुमि" इति L. D. प्रतौ । २ "०रणेय०" इति L. D. प्रतौ । ३ "दो भंगा इह" इति । ४ "पन्नवीसि" इति च L. D. प्रतौ । ५ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

ते पणवीसछव्वीसे चउरो चउरो य एसि [1]दुगभंगा ।
पत्तेयअजसचरिया पण संता [2]हुंति नायव्वा ॥२५२॥ (३१७) [२९०]

एगिंदिअपज्जाणं छब्भंगा सुहमि पज्जि पंचेव ।
अड बायरपज्जत्ते सव्वे उणवीस [3]पंचंसा ॥२५३॥ (३१६) [२९१]

[4]सेसा उज्जोयचरिया चउरो दो आयवेण भंगा उ ।
छव्वीसे सगवीसे तिगवाउविउव्वि पुव्वुत्ता ॥२५४॥ (३१८) [२९२]

पंचेव उदयठाणा चउरो पणसंत एगु पणसंतो ।
चउवीससंतभेया वंधे वंधे य पत्तेयं ॥ (३२०)

उणवीसं पणसत्ता सेसा तेवीस चउरसंता उ ।
बायालीसविगप्पा एगिंदियसयलउदएसुं ॥२५५॥ [२९३]

पज्जत्तजसजसेहिं [5]दो दो इगवीसि तह य छव्वीसे ।
बेइंदियतियचउरिंदियाण पण पण संतंस पत्तेयं ॥२५६॥ [२९४]

विगलअपज्जत्ताणं तिगतिग इगवीसि तह य छव्वीसे ।
पुव्वुत्ता भंगा बारस पुण एए (त्ति) अट्ठारा ॥२५७॥ [२९५]

सुभगआएज्जजसेयरेहिं अट्ठेव पज्जइगवीसे ।
संघयणागिइ भणिया उदए छव्वीसए भंगा ॥२५८॥ [२९६]

इय सन्निअसन्नीणं तिरियाणं पंच अंसिया नेया ५७६ ।
सेसा उ सव्वभंगा अट्ठसरिवज्ज संभविया ॥२५९॥ [२९७]

नामे इह संवेहे जीवठाणेसु बंधसंखाओ ।
बंधेसु उदयसंखा उदएसु य संतसंखा उ ॥२६०॥ (३०९) [२९८]

---

१ "एक्केक्के" इति L. D. प्रतौ । २ "सेसचउसंता" इति L. D. प्रतौ । ३ "पणसंता" इति L. D. प्रतौ । ४ "अन्ने" इति L. D. प्रतौ । ५ "दुसु वि उदएसु दुन्नि पत्तेयं" इति L. D. प्रतौ ।

[1]सत्तअपज्जेसु ठवणा—

सत्तअपज्जेसु पण दुग पणगं ति, पण बंधठाणा, दो उदयठाणा, पण संतठाणा।														
जीवठाणा	सुहु० अ०		बाद० अ०		बेइं० अ०		तेइं० अ०		चउ० अ०		असं० अ०		सं० अ०	
उदयठाणा	२१	२४	२१	२४	२१	२६	२१	२६	२१	२६	२१	२६	२१	२६
उदयभंगा	१	२	१	२	१	१	१	१	१	१	ति.१ म.१	ति.१ म.१	ति.१ म.१	ति.१ म.१
सत्ताठाणा	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२
पंचसत्ता	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८
	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६
	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०
	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८ ति.	७८ ति.	७८ ति.	७८ ति.

बंधठाणा	बंधभंगा	उदय-ठाणा	उदय-भंगा	सत्ता-ठाणा
२३	४	२	१६	७०
२५	२५	२	१६	७०
२६	१६	२	१६	७०
२९	९२४०	२	१६	७०
३०	४६३२	२	१६	७०
सव्वे →	१३९१७		८०	३५०
सत्तअपज्जेसु पत्तेयबंधभंगा १३९१७				

तिगपणवीसछव्वीसे उणतीसे तीसबंधठाणेसु ।
नव नव उदयट्ठाणा केवलिए उदय मुच्चूणं ॥२९१॥ [२९९]
इगिबितिचउरपणिंदियतिरिमणुसचिउव्व पाय बंधंति ।
नियनियउदयविगप्पे सव्वे जे जस्स संभविया ॥२९२॥ [३००]

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्या नास्ति ।

एगिंदितिरित्तसेसु तेऊवाऊणणंतरूप्पन्ना ।
पज्जत्तीअसमत्ता अट्ठत्तरिसंत केसिं वि ॥२६३॥ (३२१) [३०१]

[1]पज्जत्तबायरेगिंदियठवणा जंतइयं—

बायरपज्जे पणगा हुवंति तिन्नेव पण बंधा, पण उदया, पण संता ।					
उदयठाणा	२१	२४	२५	२६	२७
पणसंतभंगा	२	४	१	१	०
चउसंतभंगा	०	१	४	१०	६
सत्ताठाणा	५	५	५	५	४
अट्ठभंगा पणसंता अट्ठारस चउसंता, वेउव्विभंगा ३ तिसंता					

बंधठाणा	बंधभंगा	उदय-भंगा	सत्ता-ठाणा
२३	४	२६	२४
२५	२५	२६	२४
२६	१६	२६	२४
२९	९२४०	२६	२४
३०	४६३२	२६	२४
(सव्वे →	१३९१७	१४५	१२०)
बायरएगिंदियपज्जत्तबंधभंगा ॥१३९१७॥			

पण छप्पण विगलाणं तिविगप्पा एसि हुंति पत्तेयं ।
पण बंध अपज्जसमा उदया छच्चेव पुव्वुत्ता ॥ (३२२)
पज्जत्तनसजसेहिं दुसु वि उदएसु दुन्नि पत्तेयं ।
नवरं दो उणतीसा सासुज्जोयाण एगयरे ॥ (३२३)
तह तीसाओ तिन्नि उ सरदुगउज्जोयएगयरखेवे ।
सुरदुगएगयरेणं इगतीसा दुन्नि उदएसु ॥ (३२४)
छह्गुणा बारसगं दो गुणतीसे य चउर तीसुदए ।
दो इगतीसे अहिया सव्वे विगलाण सट्ठि त्ति ॥ (३२५)
बितिचउरिंदियपज्जे दो दो पत्तेय भंग छच्छक्कं ।
इगवीसे छव्वीसे पणसंता सेसचउसंता ॥ (३२६)
एए बितिचउरिंदिय उदया सव्वे वि हुंति पत्तेयं ।
दो पढमा पणसंता चउरुदया चउरसंता उ ॥ (३२७)
बंधेसुं जे भंगा उदया भंगा उ जे उ बंधम्मि ।
उदएसुं जे सत्ता पत्तेयं मग्गणा होइ ॥ (३२८)

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

[1]सत्तअपज्जेसु ठवणा—

सत्तअपज्जेसु पण दुग पणगं ति, पण बंधठाणा, दो उदयठाणा, पण संतठाणा।														
जीवठाणा	सुहु० अ०		बाद० अ०		बेइं० अ०		तेइं० अ०		चउ० अ०		असं० अ०		सं० अ०	
उदयठाणा	२१	२४	२१	२४	२१	२६	२१	२६	२१	२६	२१	२६	२१	२६
उदयभंगा	१	२	१	२	१	१	१	१	१	१	ति.१ म.१	ति १ म.१	ति.१ म १	ति१ म.१
सत्ताठाणा	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२
पंचसत्ता	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८
	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६	८६
	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०	८०
	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८	७८ ति.	७८ ति.	७८ ति.	७८ ति.

बंधठाणा	बंधभंगा	उदयठाणा	उदयभंगा	सत्ताठाणा
२३	४	२	१६	७०
२५	२५	२	१६	७०
२६	१६	२	१६	७०
२९	९२४०	२	१६	७०
३०	४६३२	२	१६	७०
सव्वे →	१३९१७		८०	३५०
सत्तअपज्जेसु पत्तेयबंधभंगा १३९१७				

तिगपणवीसछव्वीसे उणतीसे तीसबंधठाणेसु ।
नव नव उदयट्ठाणा केवलिए उदय सुत्तूणं ॥२९१॥ [२९९]
इगिबितिचउरपणिंदियतिरिमणुसविउव्वि पाय बंधंति ।
नियनियउदयविगप्पे सव्वे जे जस्स संभविया ॥२९२॥ [३००]

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्या नास्ति ।

एगिंदितिरितसेसु तेऊवाऊणणंतरूप्पन्ना ।
पज्जत्तीअसमत्ता अट्ठचरिसंत केसिं वि ॥२६३॥ (३२१) [३०१]

[1]पज्जत्तबायरेगिंदियठवणा जंतइयं—

बायरपज्जे पणगा हवंति तिन्नेव पण बंधा, पण उदया, पण संता।					
उदयठाणा	२१	२४	२५	२६	२७
पणसंतभंगा	२	४	१	१	०
चउसंतभंगा	०	१	४	१०	६
सत्ताठाणा	५	५	५	५	४
अट्ठभंगा पणसंता अट्ठारस चउसता, वेउव्विभंगा ३ तिसंता					

बंधठाणा	बंधभंगा	उदय-भंगा	सत्ता-ठाणा
२३	४	२६	२४
२५	२५	२६	२४
२६	१६	२६	२४
२९	९२४०	२६	२४
३०	४६३२	२६	२४
(सव्वे →	१३९१७	१४५	१२०)
बायरएगिंदियपज्जत्तावंधभंगा ॥१३९१७॥			

पण छप्पण विगलाणं तिविगप्पा एसि हुंति पत्तेयं ।
पण बंध अपज्जसमा उदया छच्चेव पुव्वुत्ता ॥ (३२२)
पज्जत्तजसजसेहिं दुसु त्ति उदएसु दुन्नि पत्तेयं ।
नवरं दो उणतीसा सासुज्जोयाण एगयरे ॥ (३२३)
तह तीसाओ तिन्नि उ सरदुगउज्जोयएगयरखेवे ।
सुरदुगएगयरेणं इगतीसा दुन्नि उदएसु ॥ (३२४)
छद्गुणा बारसगं दो गुणतीसे य चउर तीसुदए ।
दो इगतीसे अहिया सव्वे विगलाण सट्ठि त्ति ॥ (३२५)
बितिचउरिंदियपज्जे दो दो पत्तेय भंग छच्छक्कं ।
इगवीसे छव्वीसे पणसंता सेसचउसंता ॥ (३२६)
एए बितिचउरिंदिय उदया सव्वे वि हुंति पत्तेयं ।
दो पढमा पणसंता चउरुदया चउरसंता उ ॥ (३२७)
बंधेसु जे भंगा उदया भंगा उ जे उ बंधम्मि ।
उदएसु जे सत्ता पत्तेयं मग्गणा होइ ॥ (३२८)

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

[१]ठवणा–

पण छप्पण विगळाणं ति । पण बंधा छ उदया पणसंतठाणा विगलेसु						
उदयठा०	२१	२६	२८	२९	३०	३१
पणसंता	२	२	०	०	०	०
चउसंता	०	०	२	४	६	४
विगलभंगा	६	६	६	१२	१८	१२
सत्ताठाणा	५	५	४	४	४	४
एवं बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण पज्जाण पत्तेयं						

बंधठाणा	बंधभंगा	उदय-भंगा	सत्ता-ठाणा
२३	४	२०	२६
२५	२५	२०	२६
२६	१६	२०	२६
२९	९२४०	२०	२६
३०	४६३२	२०	२६
(सव्वे→	१३९१७	१००	१३०)
बंधे पत्तेयविगलभंगा ॥१३९१७॥			

छ छप्पणगं ति ॥

पज्जामण विगलसमा उदयविगप्पा उ सन्निसारिच्छा ।
बंधेसु संतसंखा विगलाण व तस्स तीससयं (३२९)
तह अडवीसा अन्ना सवियप्पा बंध अमणाणं ।
देवनिरयगइजुग्गा अंतिल्लेहिं दोहिं उदएहिं ॥ (३३०)
अट्ठासी वाणउई सत्ताठाणा उ दोन्नि पुव्वुत्ता ।
छासीई होइ तहिं दोसु वि उदएसु छस्संता (३३१)

[२]ठवणा–

छछप्पणगं ति छ बंधा, (छ) उदया (पण)सत्ताठाणा छ असणपज्जे						
उदयठाणा→	२१	२६	२८	२९	३०	३१
पणसंतभंगा→	८	२८८	०	०	०	०
चउसंतभंगा→	०	०	५७६	११५२	१७२८	११५२
सत्ताठाणा→	५	५	४	४	४	४

बंधठाणा	बंधभंगा	उदयभंगा	संतठाणा
२३	४	४९०४	२६
२५	२५	४९०४	२६
२६	१६	४९०४	२६
२८	९	२८८०	६
२९	९२४०	४९०४	२६
३०	४६३२	४९०४	२६
(सव्वे→	१३९२६	२७४००	१३६)

१–२ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

अप्पज्जे पणबंधा दुगदुग उदयाउ पंच[1]सत्तंसा ।
पंचुद्या दसठाणा बंधे बंधे य पत्तेयं ॥२६४॥ (३०७) [३०२]
पंचगुणा पंचासा सत्त अपज्जत्त [2]तेहि गुणकारो ।
तिन्नि सया [3]पन्नासा संतट्ठाणाण उदएसु ॥२६५॥ (३०८) [३०३]
सुहुमेयर पज्जाणं ठाणा चउ १००पंच१२०उदयसंखाए ।
चउ चउ पणसंतंसा एगे चउसंतकम्मंसो ॥२६६॥ [३०४]
बेइंदियाइपज्जत्तयाण छच्चुदयठाण जा अमणा ।
आइमदुग पणसंता अट्ठत्तरि वज्जिया सेसा ॥२६७॥ [३०५]
दुसु दस चउ सोलसगं बंधे बंधे य मिलिय तीससयं ।
बेइंदियाइ अमणे मिलिया सयपंच वीसहिया ॥२६८॥ [३०६]
तह अट्ठवीसबंधे अमणाणं दुन्नि उदयअंतिल्ला ।
बाणउई अट्ठासी छलसी पत्तेय दोसु छट्ठाणा ॥२६९॥ [३०७]
तिण्णि सया पंचासा सयमेगं तह सयं च वीसहियं ।
अप्पज्जसुहुमबारे विगलामण पंचछव्वीसा ॥२७०॥ [३०८]
छन्नउय सहस्सेगं संतट्ठाणाणि जीवठाणेसु ।
तेरससु आइमेसुं अट्ठट्ठदसगाण ई भणिमो ॥२७१॥ [३०९]

अट्ठट्ठदसगं ति

पुव्वुचबंधठाणा अट्ठ उ उदया उ चउर मुत्तूण ।
केवलितिगचउवीसं [4]दस संता अट्ठ नव मुत्तु ॥२७२॥ (३३२) [३१०]
एगिंदियबायाला विगले छावट्ठि केवलीणट्ठ ।
चउरो य अपज्जाणं मोत्तुं सेसा उ ७६७१ सण्णिस्स ॥२७३॥ (३३३) [३११]

संतट्ठाणा भणइ-

विगलसमा सन्नीसुं छसु वि उदएसु संतठाणाइं ।
पणवीसे सगवीसे दुग दुग । १२ ।८८ । एए विउव्वीणं ॥२७४॥ (३३४) [३१२]

[5]ठवणा-

उदय-ठाणा →	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	संखा ↓
उदयभंगा→	२९	२९	५७६	२६	११९६	१७७२	२८९८	११५२	७६७१
सत्ताठाणा→	५	२	५	२	४	४	४	४	३०

१ "संतंसा" इति L. D. प्रतौ। २ "तेहिं" इति L. D. प्रतौ। ३ "पंचासा" इति L. D प्रतौ।
४ 'संता दस' इति L. D. प्रतौ। ५ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिभेसकोप्यां नास्ति।

तेवीसबंधगाणं छव्वीसा हुंति संतठाणाणि ।
पणसगवीसे वज्जिय सेसा उदया जओ तेसिं ॥ (३३५)
तेवीसे छव्वीसं तीसं बंधेसु चउसु पत्तेयं ।

[1]ठवणा–

बंधठाणा	२३	२५	२६	२९	३०	एवं सत्ता ॥१४६॥
बंधभंगा	४	२५	१६	१२४८	३६४१	(१३१३४)
सत्ताठाणा	२६	३०	३०	३०	३०	(१४६)

उणवीसा पुव्वुत्ता सत्ताठाणा उ अडवीसे ॥ (३३६)
तीसं तु संतठाणा पंचसु बंधेसु होंति पत्तेयं ।
१५० उणवीसा पुव्वुत्ता ११ सत्ताठाणा उ अडवीसे ॥७५॥ [३१३]
तह उणतीसे बंधे सत्त उ उदया उ मणुयमासज्ज ।
तेणवई उणनवई पत्तेयं संतठाणाइं ॥२७६॥ (३३७) [३१४]
मणुतित्थसंतियाणं सत्तसु उदएसु वट्टमाणाणं ।
उणतीस बंधठाणं पंचसु दो । ९३ ८९ । △दोसु उणनवई ॥२७७'। [३१५]

---

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति।
△ नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने मनुष्याणामेव २५-२७-२८-२९-३० प्रकृत्यात्मकेषु पञ्चस्वेवोदयस्थानेषु वर्तमानानां त्रिनवतिसत्तास्थानस्थानं प्राप्यते, नेतरोदयस्थानेषु वर्तमानानाम्, यतो नारकेषु जिननामा-ऽऽहारकसप्तकोभययुगपत्सत्कर्मकाभावात्तिर्यक्षु जिननामसत्ताया एवा-ऽऽभावाद्देवेषु नाम्नस्त्रिनवतिसत्कर्मणामेकोनत्रिंशद्बन्धस्थानस्या--ऽभावान्मनुष्या-ऽतिरिक्तगतित्रयगतानां जीवानां नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने नाम्नस्त्रिनवतिसत्कर्मस्थानं ना-ऽवाप्यते, चतुर्विंशत्युदयस्थानस्य केवलानामेकेन्द्रियाणामेव प्रायोग्यत्वेन मनुष्यप्रायोग्याण्युदयस्थानान्येकादश, तत्रा-ऽष्टनव-विंशत्ये-कत्रिंशत्प्रकृत्यात्मकोदयस्थानचतुष्कस्य केवलिनामेव सम्भवान्नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने वा त्रिनवतिसत्कर्मणि वा तदुदयस्थानचतुष्कं नैव प्राप्यते, ततो नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० प्रकृत्यात्मकानि सप्तैवोदयस्थानानि, सन्ति. तत्रा-ऽपि २१-२६, एकविंशति-षड्विंशतिप्रकृत्यात्मकवर्जेशेषेषु पञ्चस्वेवोदयस्थानेषु नाम्नस्त्रिनवतिसत्ता प्राप्यते, २१-२६ एकविंशति षड्विंशतिप्रकृत्यात्मकोदयस्थानद्वये त्रिनवतिसत्कर्मता कथं न प्राप्यते इति चेत्, उच्यते–जिननामा-ऽऽहारकसप्तकोभयसत्कर्मणां मनुष्याणां नियमतो वैमानिकदेवेष्वेवोत्पादो ऽस्ति । तेषाञ्च सम्यग्दृष्टित्वेन जघन्यतोऽपि साधिकपल्योपमस्थितिकेष्वेवोत्पादस्य सम्भवेन वैमानिकभवस्थितेरपि जघन्यतः पल्योपमप्रमाणत्वेन च पल्योपमतो न्यूनस्थितेरनुत्पादादा-"ऽऽहारकसप्तकोद्वलनं कृत्वैव" पुनर्मनुष्येषूत्पादो भवति, तेन तदानीमपर्याप्ताऽवस्थायामेकविंशति–षड्विंशतिप्रकृत्यात्मकोदयस्थानयोर्वर्तमानानां मनुष्याणामेकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने त्रिनवतिसत्ता नामकर्मणो नैव भवति, आहारकसप्तक-जिननामोभयसत्कर्मताया अभावात्, आहारकसप्तकस्य जिननाम्नो वा नूतनबन्धस्य तत्राऽसद्भावाच्च ।

देवगईपाउग्गं उणतीसं बंधमाणाणं ॥ (३३८)

[1]सत्ता सव्वेसु दो दो ९३,८९ ॥
ठवणा—

२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०
२	२	२	२	२	२	२

एवं तीसे बंधे नवर सुग मणुयजोग बंधंति ।
छसु निएसु उदएसु बारसठाणाइँ संतस्स १२ ॥२७८॥ (३३९) [३१६]

[2]ठवणा—

उदयठाणा	२१	२५	२७	२८	२९	३०
सत्ताठाणा	२	२	२	२	२	२

बंधम्मि एगतीसे उदओ [3]तीसाइ तिणवई [4]संता ।
तह एगबंधि उदओ सत्ताठाणाइं अट्ठेव ॥२७९॥ (३४०) [३१७]
छायालं सयमेगं छव्वीसुणवीस तह य नव ठाणा ।
अब्बंधि अट्ठ सव्विसु दो सय अट्ठुत्तरा सव्वे २०८॥ (३४१)

[5]ठवणा—

बंधठाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	०
उदयठाणा	८	८	८	८	८	८	१	१	१
सत्ताठाणा	२६	३०	३०	११	३० १४	३० १२	१	८	८

(२०८)

छव्वीस केवलीणं तिगतिग सत्ता नवऽट्ठ उदएसु ।
तित्था-ऽतित्थगराणं दो दो सेसेसु सव्वेसु ॥ (३४२)

मतान्तरेण सिद्धान्ता-ऽभिप्रायेण पुनः सम्यग्दृष्टीनां पल्योपमाऽसङ्ख्येयभागादिन्यूनस्थितेष्वपि भवनपत्यादिदेवेषूत्पादोऽस्ति, ततस्तत्रा-ऽऽहारकसप्तकजिननामोभयसत्कर्मा मनुष्यस्तत्पश्चा-ऽऽहारकसप्तकेऽनुद्वलिते सत्येव पुनर्मनुष्यो भवति, तदा तस्य नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धे एकविंशति-षड्विंशत्युदयस्थानद्वये त्रिनवतिसत्कर्मता लभ्यते, एतदभिप्रायेणैव सप्ततिकामूल-चूर्णि वृत्तिषु तथा-ऽत्रैव ग्रन्थे प्राग् ॥२०६॥ दयस्थानद्वये (२५०) तमगाथायामनन्तरं ॥२७६॥ तमगाथायाञ्च नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने सप्तोदयस्थानेषु त्रिनवति सत्कर्मता प्रतिपादितेति सम्भाव्यते । L. D. प्रतौ पुनरत्राऽपि-त्रिनवतिसत्कर्मता एकविंशति षड्विंशत्युदयस्थानद्वये निषिद्धा । १-२-५ इदं यन्त्रं L. D. प्रतौ । ३ "तीसन्ह" इति L. D. प्रतौ । ४ "संतं" इति L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रे सकोष्ठ्यां नास्ति ।

तेवीसबंधगाणं छव्वीसा हुंति संतठाणाणि ।
पणसगवीसे वज्जिय सेसा उदया जओ तेसिं ॥ (३३५)
तेवीसे छव्वीसं तीसं बंधेसु चउसु पत्तेयं ।

[1]टवणा–

बंधठाणा	२३	२५	२६	२९	३०	
बंधभंगा	४	२५	१६	९२४८	४६४१	(१३९३४)
सत्ताठाणा	२६	३०	३०	३०	३०	(१४६)

एवं सत्ता ॥१४६॥

उणवीसा पुव्वुत्ता सत्ताठाणा उ अडवीसे ॥ (३३६)
तीसं तु संतठाणा पंचसु बंधेसु होंति पत्तेयं ।
१५० उणवीसा पुव्वुत्ता १९ सत्ताठाणा उ अडवीसे ॥७५॥ [३१३]
तह उणतीसे बंधे सत्त उ उदया उ मणुयमासज्ज ।
तेणवई उणनवई पत्तेयं संतठाणाइं ॥२७६॥ (३३७) [३१४]
मणुतित्थसंतियाणं सत्तसु उदएसु वट्टमाणाणं ।
उणतीस बंधठाणं पंचसु दो । ९३ ८९ । △दोसु उणनवई ॥२७७॥ [३१५]

---

१ इदं यन्त्रं *L. D.* प्रतावस्ति, *J.* प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति।

△ नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने मनुष्याणामेव २५-२७-२८-२९-३० प्रकृत्यात्मकेषु पञ्चस्वेवोदयस्थानेषु वर्तमानानां त्रिनवतिसत्तास्थानस्थानं प्राप्यते, नेतरोदयस्थानेषु वर्तमानानाम्, यतो नारकेषु जिननामा-ऽऽहारकसप्तकोभययुगपत्सत्कर्मकाभावात्तिर्यक्षु जिननामसत्ताया एवा-ऽऽभावाद् देवेषु नाम्नस्त्रिनवतिसत्कर्मणामेकोनत्रिंशद्बन्धस्थानस्या--ऽभावान्मनुष्या-ऽतिरिक्तगतित्रयगतानां जीवानां नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने नाम्नस्त्रिनवतिसत्कर्मस्थानं ना-ऽवाप्यते, चतुर्विंशत्युदयस्थानस्य केवलानामेकेन्द्रियाणामेव प्रायोग्यत्वेन मनुष्यप्रायोग्याण्युदयस्थानान्येकादश, तत्राऽष्टनव-विंशत्ये-कत्रिंशत्प्रकृत्यात्मकोदयस्थानचतुष्कस्य केवलिनामेव सम्भवान्नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने वा त्रिनवतिसत्कर्मणि वा तदुदयस्थानचतुष्कं नैव प्राप्यते, ततो नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० प्रकृत्यात्मकानि सप्तैवोदयस्थानानि, सन्ति. तत्रा-ऽपि २१-२६, एकविंशति-षड्विंशतिप्रकृत्यात्मकवर्जेशेषेषु पञ्चस्वेवोदयस्थानेषु नाम्नस्त्रिनवतिसत्ता प्राप्यते. २१-२६ एकविंशति षड्विंशतिप्रकृत्यात्मकोदयस्थानद्वये त्रिनवतिसत्कर्मता कथं न प्राप्यते इति चेत् . उच्यते–जिननामा-ऽऽहारकसप्तकोभयसत्कर्मणां मनुष्याणां नियमतो वैमानिकदेवेष्वेवोत्पादो ऽस्ति । तेषाञ्च सम्यग्दृष्टित्वेन जघन्यतोऽपि साधिकपल्योपमस्थितिकेष्वेवोत्पादस्य सम्भवेन वैमानिकभवस्थितेरपि जघन्यतः पल्योपमप्रमाणत्वेन च पल्योपमतो न्यूनस्थितेरनुत्पादाद्-"ऽऽहारकसप्तकोद्वलनं कृत्वैव" पुनर्मनुष्येषूत्पादो भवति, तेन तदानीमपर्याप्ताऽवस्थायामेकविंशति--षड्विंशतिप्रकृत्यात्मकोदयस्थानयोर्वर्तमानानां मनुष्याणामेकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने त्रिनवतिसत्ता नामकर्मणो नैव भवति, आहारकसप्तक-जिननामोभयसत्कर्मताया अभावात् , आहारकसप्तकस्य जिननाम्नो वा नूतनबन्धस्य तत्राऽसद्भावाच्च ।

देवगईपाउग्गं उणतीसं बंधमाणाणं ॥ (३३८)

[1]सत्ता सव्वेसु दो दो ९३,८९ ॥
ठवणा—

२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०
२	२	२	२	२	२	२

एवं तीसे बंधे नवर सुरा मणुयजोग बंधंति ।
छसु निएसु उदएसु बारसठाणाइँ संतस्स १२ ॥२७८॥ (३३९) [३१६]

[2]ठवणा—

उदयठाणा	२१	२५	२७	२८	२९	३०
सत्ताठाणा	२	२	२	२	२	२

बंधम्मि एगतीसे उदओ [3]तीसाइ तिणवई [4]संता ।
तह एगबंधि उदओ सत्ताठाणाइं अट्ठेव ॥२७९॥ (३४०) [३१७]
छायालं सयमेगं छव्वीसुणवीस तह य नव ठाणा ।
अब्बंधि अट्ठ सन्निसु दो सय अड्डुत्तरा सव्वे २०८॥ (३४१)

[5]ठवणा—

बंधठाणा	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	०	
उदयठाणा	८	८	८	८	८	८	१	१	१	
सत्ताठाणा	२६	३०	३०	१९	३० १४	३० १२	१	८	८	(२०८)

छव्वीस केवलीणं तिगतिग सत्ता नवऽट्ठ उदएसु ।
तित्था-ऽतित्थगराणं दो दो सेसेसु सव्वेसु ॥ (३४२)

मतान्तरेण सिद्धान्ता-ऽभिप्रायेण पुनः सम्यग्दृष्टीनां पल्योपमाऽसङ्ख्येयभागादिन्यूनस्थितेष्वपि भवनपत्यादिदेवेषूत्पादोऽस्ति, ततस्तत्रा-ऽऽहारकसप्तकजिननामोभयसत्कर्मा मनुष्यस्तत्रा-ऽऽहारकसप्तकेऽनुद्वलिते सत्येव पुनर्मनुष्यो भवति, तदा तस्य नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धे एकविंशति-षड्विंशत्युदयस्थानद्वये त्रिनवतिसत्कर्मता लभ्यते, एतदभिप्रायेणैव सप्ततिकामूल-चूर्णि-वृत्तिषु तथा-ऽत्रैव ग्रन्थे प्राग् ॥२०६॥ दयस्थानद्वये (२५०) तमगाथायामनन्तरं ॥२७६॥ तमगाथायाश्च नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने सप्तोदयस्थानेषु त्रिनवति सत्कर्मता प्रतिपादितेति सम्भाव्यते । L. D. प्रतौ पुनरत्राऽपि-त्रिनवतिसत्कर्मता एकविंशति षड्विंशत्युदयस्थानद्वये निषिद्धा । १-२-५ इदं यन्त्रं L. D. प्रतौ । ३ "तीसन्ह" इति L. D. प्रतौ । ४ "संतं" इति L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिमे सकोष्ठां नास्ति ।

[1]ठवणा—

अट्ठट्ठदसग नि अट्ठ वंधठाणा अट्ठ उदयट्ठाणा सत्ताठाणा दस सन्निम्मि									वंधठाण	वंधभंगा	उदय भंगा	सत्ताठाणा
उदयठाणा	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	२३	४	७५६९	२६
सन्नितिरिभंगा	८	०	२८८	०	५७६	११५२	५२८	११५२	२५	२५	७६५६	३०
मणुयभंगा	८	०	२८८	०	५७६	५७६	११५२	०	२६	१६	७६५६	३०
विउव्वितिरिय.	०	८	०	८	१६	१६	८	०	२८	६	४१२३	१६
आहारकभंगा	०	१	०	१	२	२	१	०	२९	६२४८	७६७१	४४
देवाण भंगा	८	८	०	८	१६	१६	८	०	३०	४६४१	७६६७	४२
नारकाण भंगा	१	१	०	१	१	१	०	०	३१	१	(१४४)	१
विउव्विमणु,.	०	८	०	८	९	६	१	०	१	१	७२	८
सत्ताठाणा	५	२	५	२	४	४	४	४	(सव्वे→	१३७४५	४२-५८१	२००)
सतित्थयरसंता	६३ ८६	९३ ८९	६३ ८६	९३ ८६	६३ ८६	६३ ८६	६३ ८६		सामन्न तिरियमणुयचउसु उदएसु भगा चुन्नीए न भणियत्ति न लिहिया			

अट्ठावीसं वंधं वंधहि तिरिमणुय निययउदएहि ।
सुरनिरगइपाउग्गं विसुद्ध तह किस्समाणा उ । (३४३)
करणि अपज्जत्ता उण आइमचउउदय वट्टमाणा उ ।
सुद्धिगया अडवीसं इयरा उणतीस वंधंति ॥ (३४४)
इह आइम चउउदया इगवीसछवीस तह य अडवीसा ।
उणतीसा विय कमसो वियप्प जे जस्स संभविया ॥ (३४५)

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेमकोप्यां नास्ति । अत्र L. D प्रतौ "उदयट्ठ" इति पाठो दृश्यते किन्तु सम्यग् न ज्ञायते इति कृत्वा-ऽस्माभिरेकत्रिंशदुबन्धसत्कमेकं त्रिंशत्प्रकृत्यात्मकमुदयस्थानमाश्रित्य भङ्गाः १४४ दर्शिता इति ज्ञेयम् । यदि केषाञ्चिदाचार्याणामभिप्रायेण पुनरुत्तरवैक्रियमनुष्या आहारकमनुष्याश्चापि प्रकृतबन्धकतया विवक्ष्यन्ते तदैकोनत्रिंशदुदयस्थानमप्यधिकतया लभ्येत, तथैकोनत्रिंशदुदयस्थानसत्कमङ्गद्वयं त्रिंशदुदयस्थानसम्बन्धिमङ्गद्विकमिति चतुर्णां मङ्गानामधिकतया लाभात्सर्वे उदयमङ्गाः १४८ स्युः ।

न य विवरियं पुढो इह भंगा अडवीमि उदयसंभविया ।
चुन्निदुगे वि हु लहुए अहवा न हु अवगया सम्मं ॥ (३४६)
तेण न भंगपमाणं अडवीसम्मि चउउदयसंभवियं ।
तिरिमणुसामन्नाणं इयरुदएसुं च पुण एए ॥ (३४७)
पणतीसमणुविउव्विसु छप्पन्नं तह तिरिक्खभंगा ।
तीसिगतीसे उदए तिरिमणुसामन्न जे भंगा ॥ (३४८)
पणतीसं छप्पन्ना चालीससया उ अहिय बत्तीसा ।
४०३२ भंगाणं तु पमाणं विउव्विदुगउदयअंतेसु ॥ (३४९)

अट्ठावीसबंधजंतइयं–

[1]ठवणा–

उदय-ठाणा	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	भंग-संख्या
माणुस०	०	०	०	०	०	०	११५२	०	(११५२)
तिरिय०	०	०	०	०	०	०	१७२८	११५२	(२८८०)
मणुवेउव्विय०	०	८	०	८	९	९	१	०	(३५)
तिरिवेउव्विय०	०	८	०	८	१६	१६	८	०	(५६)

सामन्नमणुयतिरियभंगा सम्यग् न ज्ञा(यन)ते चउसु उदएसु ॥
जीवस्थानेषु नाम समाप्तम् ॥

चउपढमट्ठाणाइं ४ तेरसहीणाइं ४ जाव पत्तेयं । [३१८]
एवं उवरयबंधे सन्नीपज्जत्तसंवेहो ॥२८०॥
पंचासं सयमेगं चउवीसगुवीस तइय सत्तरस ।
दुन्नि सया य दहोत्तर सन्नीपज्जत्तठाणाणि ॥२८१॥ [३१९]
भणियाउ [2]जीवठाणे बंधोदयसंतविवरणं किंचि ।
गुणठाणगेसु [3]तं चिय भणामि किंचि समासेणं ॥२८२॥ (३५०) [३२०]

गुणस्थानकेषु ज्ञानावरणा-ऽन्तराययोर्दर्शनावरणस्य बन्धोदयसत्तास्थानानां भङ्गाः–

नाणंतरायतिविहमवि दससु दो [4]होंति दोसु ठाणेसु ।
[5]मिच्छासाणे बीए नव चउ पण नव य संतंसा ॥सू.–३९॥ (३५१) [३२१]

---

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । २ "जीवठाणेसु" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ३ "तेच्चिय" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम् । ४ 'हुंति" इति L. D. प्रतौ । ५ "मिच्छासाणा" इति L. D. प्रतौ ।

[1]मीमाइनियट्टीओ छच्चउ पण नव य सन्तकम्मंसा।
चउबंधतिगे चउपणनवंस दुसु जुयल छस्संता॥सू.-४०॥ (३५२) [३२२]

उवसंते चउपणनव खीणे चउरुदय छच्च चउसंता ।
वेयणियाउयगोए विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥सू.-४१॥ (३५३) [३२३]

नाणंतरायगाहातिगस्स विवरणं पुव्वुत्तं ॥

दुसु जुयले छस्संता एएण पएण सूइया खवगा ।
तेसिं विसेसं विवरे किंची गाहानुसारेण ॥२८३॥ (३५४) [३२४]

अच्चंतविसुद्धत्ता निद्दाउदओ न खवगसेढीए ।
अप्पुव्वाई चउबंधगेसु चउरोदओ तेण ॥२८४॥ (३५५) [३२५]

अप्पुव्वपढमभागे छक्कं उवरिं तु चउरबंधुदए ।
जा सुहुमो सत्ताए बायरसंखंस नवसंता ॥२८५॥ (३५६) [३२६]

थीणतिगखविय उवरिं छस्संता जाव सुहुमरागंतो ।
बंधोवरमे चउरुदय खीणि संता उ छच्चउरो ॥२८६॥ (३५७) [३२७]

गुणस्थानकेषु वेदनीयगोत्रयोर्बन्धस्थानादिभङ्गाः

चउ छस्सु दोन्नि सत्तसु एगे चउ गुणिसु वेयणियभंगा ।
गोए पणचउ दो तिसु एगट्ठसु दोन्नि एगम्मि ॥सू.-०॥ (३५८) [३२८]

छसु आइमेसु पढमा चउरो बंधे य अंतिमा दो दो ।
वेयणिए इय सत्तसु बंधोवरमे चउर एगे ॥२८७॥ (३५९) [३२९]

बंधोवरमि अजोगे सायासायाण उदउ को कस्स ।
जाव दुचरिमो दो दो [3]चरिमे एक्केक्क संताओ ॥२८८॥ (३६०) [३३०]

सायं बंधं तह उदय साय तह सायबंधि दुक्खुदओ ।
दो दो संता दोसु वि इय भंगा सत्तसु गुणेसु ॥२८९॥ (३६१) [३३१]

पढमम्मि पढम पंच उ बीए पढमं विवज्जिया चउरो ।
उच्चं बंधं नीचुच्च उदय दो संत भंगदुगं ॥२९०॥ (३६२ [३३२]

एगेसि मयं नीयं वयगहणे नेव होइ उदयम्मि ।
नीया वि हु जइजाई तह वि य ते उच्च वेयंति ॥२९१॥ (३६३) [३३३]

---

१ "मिस्साइ०" इति L. D. प्रतौ । २ "अंतरिउ" इति L. D. प्रतौ । ३ "चरमे" इति L. D. प्रतौ ।

संजयपमत्तठाणाउ जा चरिमो सुहुमरागसमओ उ ।
[1]बंधोदयम्मि उच्चं संता दुस उच्च-नीयाणं ॥२९२॥ (३६३) [३३४]
उवरयबंधे उच्चं उदए [2]संताइ दो वि जाजोगी ।
अज्जोगि [3]चरमसमए [4]उदए संता य उच्चस्स ॥२९३॥ (३६४) [३३५]

गुणस्थानकष्वायुषो बन्धादिस्थानभङ्गा –

अट्ठच्छाहिगवीसा सोलस वीसं च बार छद्दोसु ।
दो चउसु तीसु एक्क मिच्छाइसु आउगे भगा ॥सू.-०॥ (३६६) [३३६]
अट्ठावीसं २८ पढमे २६ बीए नरयाउ नरतिरि न बंधे ।
तइए बंधविवज्जा १६ चउत्थए वीस इय [7]होंति ॥२९४॥ (३६७) [३३७]
अविरयसम्मा जीवा तिरिमणु देवाउ[एक]मेव बंधंति ।
नारयसुर मणुयाउं अट्ठ उ भंगा असंमत्रिया ॥२९५॥ (३६८ [३३८]
[8]नरतिरियदेसविरया देवाउं एक्कमेव बंधंति ।
[9]पुव्वुत्ता दस जुत्ता भंगविगप्पा उ वारस उ ॥२९६॥ (३६९) [३३९]
[10]मणुसरिस पमद्त्तियरे ६ उवरिं मणुउदयमणुयसंताओ ।
खवगे पडुच्च एगं वि य सेढी चउसु सुरसंता ॥२९७॥ (३७०) [३४०]

[11]ठवणा –

गुणठाणा	०	मि०	सा०	मी०	अ०	दे०	प०	ऽप०
नाणावरण० अंतराय०	बंध	५	५	५	५	५	५	५
	उदय	५	५	५	५	५	५	५
	सत्ता	५	५	५	५	५	५	५
दंसणावरण०	बंध	९	९	६	६	६	६	६
	उदय	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५
	सत्ता	९	९	९	९	९	९	९
वेदनीय०	भंगा	४	४	४	४	४	४	२
गोत्र०	भंगा	५	४	२	२	२	१	१
आउय०	भंगा	२८	२६	१६	२०	१२	६	६

१ "बंधे उदए" इति L. D. प्रतौ । २ "दो" इति L D. प्रतौ । ३ "सत्ताए" इति L D. प्रतौ । ४ "चरिम०" इति L. D. प्रतौ । ५ "उदओ" इति L. D. प्रतौ । ६ "बन्धाभावा" इति L D. प्रतौ । ७ "हुंति" इति L. D. प्रतौ । ८ "अविरयसम्मा [जीवा] तिरिमणु देवाउं एगमेव" इति L. D. प्रतौ । ९ "पुव्वुत्तदसं जुत्तं" इति L. D. प्रतौ । १० 'मणुभंग" इति L. D प्रतौ । ११ इदं यन्त्रं L D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

[1]भीमाइनियट्टीओ छच्चउ पण नव य सन्तकम्मंसा ।
चउबंधतिगे चउपणनवंस दुसु जुयल छस्संता ॥मू.-४०॥ (३५२) [३२२]
उवसंते चउपणनव खीणे चउरुदय छच्च चउसंता ।
वेयणियाउयगोए विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥मू.-४१॥ (३५३) [३२३]

नाणंतरायगाहातिगस्स विवरणं पुव्वुत्तं ॥

दुसु जुयले छस्संता एएण पएण सूइया खवगा ।
तेसि विसेसं विवरे किंची गाहानुसारेण ॥२८३॥ (३५४) [३२४]
अच्चंतविसुद्धत्ता निद्दाउदओ न खवगसेढीए ।
अप्पुव्वाई चउवंधगेसु चउरोदओ तेण ॥२८४॥ (३५५) [३२५]
अप्पुव्वपढमभागे छक्कं उवरिं तु चउरवंधुदए ।
जा सुहुमो सत्ताए वायरसंखंस नवसंता ॥२८५॥ (३५६) [३२६]
थीणतिगखविय उवरिं छस्संता जाव सुहुमरागंतो ।
बंधोवरमे चउरुदय खीणि संता उ छच्चउरो ॥२८६॥ (३५७) [३२७]

गुणस्थानकेषु वेदनीयगोत्रयोर्बन्धस्थानादिसङ्गाः

चउ छस्सु दोन्नि सत्तसु एगे चउ गुणिसु वेयणियभंगा ।
गोए पणचउ दो तिसु एगट्ठसु दोन्नि एगम्मि ॥मू.-०॥ (३५८) [३२८]
छसु आइमेसु पढमा चउरो बंधे य अंतिमा दो दो ।
वेयणिए इय सत्तसु बंधोवरमे चउर एगे ॥२८७॥ (३५९) [३२९]
बंधोवरमि अजोगे सायासायाण उदउ को कस्स ।
जाव दुचरिमो दो दो [2]चरिमे एक्केक्क संताओ ॥२८८॥ (३६०) [३३०]
सायं बंधं तह उदय साय तह सायबंधि दुक्खुदओ ।
दो दो संता दोसु वि इय भंगा सत्तसु गुणेसु ॥२८९॥ (३६१) [३३१]
पढमम्मि पढम पंच उ बीए पढमं विवज्जिया चउरो ।
उच्चं बंधं नीचुच्च उदय दो संत भंगदुगं ॥२९०॥ (३६२ [३३२]
एगेसि मयं नीयं वयगहणे नेव होइ उदयम्मि ।
नीया वि हु जइजाई तह वि य ते उच्च वेयंति ॥२९१॥ (३६३) [३३३]

---

१ "मिस्साइ०" इति L. D. प्रतौ । २ "अंतरिउ" इति L. D. प्रतौ । ३ 'चरमे" इति L. D. प्रतौ ।

संजयपमत्तठाणाउ जा चरिमो सुहुमरागसमओ उ ।
[1]बंधोदयम्मि उच्चं संता दुस उच्च-ीयाणं ॥२९२॥ (३६३) [३३४]
उवरयवंध उच्चं उदए [2]संताइ दो वि जाजोगी ।
अज्जोगि [3]चरमसमए [4]उदए संता य उच्चस्स ॥२९३॥ (३६४) [३३५]

गुणस्थानकष्वायुषो बन्धादिस्थानभङ्गा –

अट्ठच्छाहिगवीसा सोलस वीसं च बार छद्दोसु ।
दो चउसु तीसु एक्क मिच्छाइसु आउगे भगा ॥सू.-०॥ (३६६) [३३६]

अट्ठावीसं २८ पढमे २६ बीए नरयाउ नरतिरि न बंधे ।
तइए बंधविवक्खा १६ चउत्थए वीस इय [7]होंति ॥२९४। (३६७) [३३७]
अविरयसम्मा जीवा तिरिमणु देवाउ[एक]मेव बंधंति ।
नारयसुर मणुयाउं अट्ठ उ भंगा असंभविया ॥२९५॥ (३६८ [३३८]
[8]नरतिरियदेसविरया देवाउं एक्कमेव बंधंति ।
[9]पुव्वुत्ता दस जुत्ता भंगविगप्पा उ बारस उ ॥२९६॥ (३६९) [३३९]
[10]मणुसरिस पमदत्तियरे ६ उवरिं मणुउदयमणुयसंताओ ।
खवगे पडुच्च एगं वि य सेढी चउसु सुरसंता ॥२९७॥ (३७०) [३४०]

[11]ठवणा –

गुणठाणा		मि०	सा०	मी०	अ०	दे०	प०	ऽप०
नाणावरण० अंतराय०	वंध	५	५	५	५	५	५	५
	उदय	५	५	५	५	५	५	५
	सत्ता	५	५	५	५	५	५	५
दंसणावरण०	बंध	९	९	६	६	६	६	६
	उदय	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५	४/५
	सत्ता	९	९	९	९	९	९	९
वेदनीय०	भंगा	४	४	४	४	४	४	२
गोत्र०	भंगा	५	४	२	२	२	१	१
आउय०	भंगा	२८	२६	१६	२०	१२	६	६

१ "बंधे उदए" इति L. D. प्रतौ । २ 'दो" इति L D. प्रतौ । ३ "सत्ताए" इति L D. प्रतौ । ४ "चरिम०" इति L D. प्रतौ । ५ "उदओ" इति L. D. प्रतौ । ६ "बन्धाभावा" इति L D. प्रतौ । ७ "हुति" इति L. D. प्रतौ । ८ "अविरयसम्मा [जीवा] तिरिमणु देवाउं एगमेव" इति L. D. प्रतौ । ९ "पुव्वुत्तदसं जुत्तं" इति L. D. प्रतौ । १० 'मणुभंग" इति L. D प्रतौ । ११ इदं यन्त्रं L D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति ।

नि०	ऽनि०	सु०	उ०	खी०	स०	अजो.	०
५	५	५	०	०	०	०	०
५	५	५	५	५	०	०	०
५	५	५	५	५	०	०	०
९/४	४	४	०	०	०	०	०
४/५	४/५	४/५	४/५	४	०	०	०
६	९/६	९/६	६	६/४	०	०	०
२	२	२	२	२	२	४	०
१	१	१	१	१	१	२	०
२	२	२	२	१	१	१	०

गुणस्थानकेषु मोहनीयस्य बन्धस्थानानि–

गुणठाणगेसु अट्ठसु एक्केक्कं मोहबंधठाणं तु ।
पंचानियट्टिठाणे बंधोवरमो परं तत्तो ॥सूत्रम्-४२॥ (३७१) [३४१]

गुणस्थानकेषु मोहनीयोदयस्थानानि–

सत्ताइ दस उ मिच्छे सासायणमीसए नवुक्कोसा ।
छाई नव उ अविरए देसे पंचाइ अट्ठेव ॥सूत्रम्-४३॥ (३७२) [३४२]
विरए खओवसमिए चउराई सत्त छच्चऽपुव्वम्मि ।
अनियट्टिबायरे पुण एक्को व दुवे व उदयंसा ॥सू.-४४॥ (३७३) [३४३]
एगं सुहुमसरागो वेएइ अवेयगा भवे सेसा ।
भंगाणं च पमाणं पुव्वुद्दिट्ठेण नायव्वं ॥सूत्रम् ४५॥ (३७४) [३४४]

"गुणठाणगेसु अट्ठसु" इत्यादिगाथात्रयस्य विवरणं पुव्वं च वट्टव्वं ॥

जइ वि इह मोहविवरण गुणठाण पडुच्च हिट्ठओ भणियं ।
संपइ पुण कमपत्तं तस्सऽणुसारेण जंतव्वं ॥ (३७५)

ठवणा–

गुणठाणा	मिच्छदिट्ठि				सासादन			मीस.			अविरयसम्म				देसवि.				पमत्त.			
बंधट्ठाणा	२२				२१			१७			१७				१३				९			
बंधभंगा	६				४			२			२				२				२			
उदयट्ठाणा	७	८	९	१०	७	८	९	७	८	९	६	७	८	९	५	६	७	८	४	५	६	७
चउवीसिया	१	३	३	१	१	२	१	१	२	१	१	३	३	१	१	३	३	१	१	३	३	१
उदयपद	१९२				९६			९६			१९२				१९२				१९२			

ठवणा–

अपमत्त				अपुव्व०			अनियट्टिबायर०					सु.	०
९				९			५	४	३	२	१	०	०
१				१			१	१	१	१	१	०	०
४	५	६	७	४	५	६	२	१	१	१	१	१	०
१	३	३	१	१	२	१	१२	१	१	१	१	१	०
१९२				९६			१२ मोहिया जीवा						

मिच्छाइ गुणट्ठाणगेसु उदयसंखामाह—

[1]ठवणा–

उदयठाणा	चउवीसि	मि०	सा०	मी०	अवि०	दे०	प०	अप०	नि०	अनि०	सु०
१०	१	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०
९	६	३	१	१	१	०	०	०	०	०	०
८	११	३	२	२	३	१	०	०	०	०	०
७	११	१	१	१	३	३	१	१	०	०	०
६	११	०	०	०	१	३	३	३	१	०	०
५	९	०	०	०	०	१	३	३	२	०	०
४	३	०	०	०	०	०	१	१	१	०	०
२	१२ भं-	एवं बावन्न चउवीसिया॥ उदयपया चउवीस-							दुगोदयभं० १२		
१	५ ,,	गुणा १२४८ ॥ दुगोदयएगोदयपया १७॥							एगोदयभं० ५		

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति।

पत्तेयं गुणठाणे पडुच्च मोहुदयपयविंदसंखामाह—

[1]ठवणा—

गुणठाणा	मिच्छ	सा. मा०	मीस०	ऽवि-रत०	देम-वि०	पमत्त	ऽपम०	निय.	ऽनियट्टि०					सु०
मोहोदय.	१९२	९६	९६	१९२	१९२	१९२	१९२	९६	१२	१	१	१	१	१
पयविंद चउवीसिया	६८	३२	३२	६०	५२	४४	४४	२०	१	भं. १	भं. १	भं १	भं. १	भं. १
पयविंदा	१६३२	७६८	७६८	१४४०	१२४८	१०५६	१०५६	४८०	२८					१

एवं मोहोदय१२६५। एवं पयविंदचउवीसिया ३५२॥ पयविंदा २१॥ एवं सव्वे पयविंदा ८४७७॥

ठवणा—

गुणठाणा	मिच्छ०	सा०	मी०	ऽविरय०	देमवि०	पमत्त०	ऽपम०
पदचउवीसिया	८	४	४	८	८	८	८
पदविंदचउ-वीसिया	६८	३२	३२	६०	५२	४४	४४
पदविंदा	१६३२	७६८	७६८	१४४०	१२४८	१०५६	१०५६
सत्ताठाणा	२८,२७,२६	२८	२८,२७ २४	२८,२४ २३,२२.२१	२८,२४ २३,२२,२१	२८ २४ २३,२२,२१	२८,२४ २३,२२,२१

[2]ठवणा—

नि०	अनियट्टि०					सु.	उ.	
४	१२	१	१	१	१	०	०	उदयपया १२६५॥
२०	भं २४	१	१	१	१	१	०	पयविंदचउवीसिया ३५२, भंगा २१॥
४८०	२४	१	१	१	१	१	०	पयविंदा ८४७७॥
२८,२४ २१	२८,२४, २१, १३, १२,११, ५ ४, ३, २,१					२८ २४ २१ १	२८ २४ २१	

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्योर्नास्ति। २ इदं यन्त्रं J. प्रतिप्रेसकोप्यामस्ति, L. D. प्रत्यौ नास्ति।

मोहनीयस्योदयस्थानभङ्गाः—

एक्क[1] छक्केक्कारेक्कारसेव इक्कारसेव नवनिन्नि ।
एए चउवीसगया बारदुगे पंच [2]एगम्मि ॥सूत्रम्-४६॥ (३७६) [३४५]
बारसपण[3]सट्ठिसया उदयविगप्पेहि मोहिया जीवा ।
[4]चुलसीयसत्तसत्तरिपयविंदसएहि विन्नेया ॥सू-०॥ (३७७) [३४६]

गुणस्थानेषु मोहनीयोदयस्थानभङ्गाः—

अट्ठगचउचउचउरट्ठगा य चउरो य [5]हुंति चउवीसा ।
मिच्छाइ अपुव्वंता बारसपणगं च अनियट्टी ॥सू.-०॥ (३७८) [३४७]
दसगम्मि एग मिच्छे तिग तिग नवअट्ठगम्मि सत्तेगा ।
एगदुग एग साणे नवअट्ठगसत्तगे कमसो ॥२६८॥ (३७९) [३४८]
तह मीसगम्मि एवं अविरयसम्मे छडेग चउवीसा ।
तिगतिग सत्तग अट्ठग एगा नवगम्मि बोधव्वा ॥२९९॥ (३८०) [३४९]
पंचोदयम्मि एगा तिगतिग छस्सत्तगे य अट्ठेगा ।
देसविरयम्मि एवं अट्ठग चउवीस उदएसु ॥३००॥ (३८१) [३५०]
चउरोदयम्मि एगा तिग तिग पणछक्कगम्मि सत्तेगा ।
संजयपमत्तउदए अपमत्ते तह य एवं तु ॥३०१॥ (३८२) [३५१]
अप्पुव्वे चउरेगा पणगे दो छक्कगम्मि एक्का उ ।
मिच्छाइ अपुव्वंते बावभा सव्वचउवीसा ॥३०२॥ (३८३) [३५२]
चउवीसगुणा एए बारस अडयाल हुंति मोहुदया ।
दुग एग उदयभंगा नवमे ते जाण सोलसगं ॥३०३॥ (३८४) [३५३]
बंधोवरमे सुहुमे एगुदओ लोभसुहुमकिट्टीणं ।
इय सव्वुदयविगप्पा बारसपणसट्ठ मोहस्स ॥३०४॥ (३८५) [३५४]
आह कह एक उदए [6]हेट्ठा एक्कारभंग नणु वुत्ता ।
इह पुण पंचेव कहं पुव्विं बंधो इहं उदओ ॥३०५॥ (३८६) [३५५]
जे बंधइ ते वेयइ बंधविवक्खाइ भंगएक्कारा ।
उदयविवक्खाइ पुणो एक्कुदए पंच भंगा उ ॥ (३८७)

ठवणा-पेज नं० ५१ ॥

---

१. "०छट्टिक्का०" इति L.D प्रतौ । २. "एक्कम्मि" इति L.D. प्रतौ । ३. "सट्ठ०" इति L. D. प्रतौ । ४ "चुलसीइ सत्तुत्तरिपय०" इति । ५ "हुंति" इति वा । ६ "उवरिं" इति L. D. प्रतौ ।

अट्ठट्ठी [1]बत्तीसा बत्तीसा सट्ठिमेव बावन्ना ।
चोयाल दोसु [2]वीसा मिच्छामाईसु सामन्ने ॥सू.-०॥ (३८८) [३५६]
मिच्छे जो चउवीसा उदयगुणा ते उ मिलिय अट्ठट्ठी ।
बत्तीसाइ कमेणं एस गमो जा अपुव्वंते ॥३०६॥ (३८९) [३५७]
[3]एए सव्वेगट्ठा चउवीसाए गुणित्तु कयरासी ।
उणतीसमंगसहिया चुलसी सतहुत्तरा एवं ॥३०७॥ (३९०) [३५८]
ठवणा–पेज नं० ६० ॥
जोगोवओगलेसाइएहि गुणिया हवंति कायव्वा ।
जे जत्थ गुणट्ठाणे हवंति ते तत्थ गुणकारा ॥सू.-४७॥ (३९१) [३५९]

[4]मोहुदयजोगपयविंदाणं च विवरणमाह—

मोहुदयपयविगप्पा गुणि(आ) गुणठाणजोगसंखाए ।
सामन्नं नव जोगा सव्वेसिं अहिय केसिंचि ॥३०८॥ (३९२) [३६०]
नव गुणिया उदयपया इक्कारसहस्स तिन्नि पणसीया ११३८५ ।
अन्ने वि चउर जोगा मिच्छे साणे य सम्मम्मि ॥३०९॥ (३९३) [३६१]
तह मीसपमत्तेसु एगो दो जोगअहियया कमसो ।
इत्थ वि लद्धविगप्पा खेप्पिज्जा पुव्वरासिम्मि ॥३१०॥ (३९४) [३६२]
वेउव्विय तह वेउव्विमीसओरालमीसकम्मइया ।
मिच्छम्मि सासणम्मि य अविरयसम्मम्मि ए अहिया ॥३११॥ (३९५) [३६३]
अडचउवीसा वेउव्वियम्मि चउचउरसेसतिगमिच्छे ।
अणउदयरहियउदया न [5]होंति सत्ताइनवगेसु ॥३१२॥ (३९६) [३६४]

॥जओ [6]वुत्तं॥

अणउदयरहियमिच्छे जोगा दस कुणइ जं न सो कालं ।
अणणुदओ पुण तदुवलग सम्मदिट्ठिस्स मिच्छुदए ॥३१३॥ (३९७) [३६५]
सासणमीसे चउरो वेउव्वियजोगि दुसु य पत्तेयं ।
तह उरलमीसकम्मणि सासणभावम्मि चउचउरो ॥३१४॥ (३९८) [३६६]
वेउव्विमीसनरए अहोमुहो नेव सासणो गच्छे ।
देवा न संढवेया विउव्विमीसम्मि नपुंऊणा ॥३१५॥ (३९९) [३६७]

१ "बत्तीसं बत्तीसं" इति। २ "वीसा वि अमिच्छमा०" इति। ३ "एसव्वे एगत्था" इति L. D. प्रतौ J प्रतिप्रेसकोप्यामपि । ४ "अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति, किन्तु L. D. प्रतावस्ति । ५ 'हुन्ति' इति L. D प्रतौ। ६ "वोत्तं" इति L. D. प्रतौ ।

सोलहया तेण चत्तारि ॥

अविरयसम्मे अट्ठ उ वेउव्वियकायजोगि चउवीसा ।
तह मीसकम्मणेसुं नवरं थीवेयपडिसेहो ॥३१६॥ (४००) [३६८]
इह सम्मदिट्ठिजीवो न थीसु उववज्जइत्ति ववहारे ।
अच्छेरउत्ति होज्जा अहवा सुत्तस्स वाहुल्ला ॥३१७॥ (४०१) [३६९]
नपुवेय कहं भण्णइ वेयगरहियाउ जेण तिन्नुदया ।
तह वेयगेण तिन्नि उ नरएसुववज्जमाणाणं ॥३१८॥ (४०२) [३७०]
इत्थ य नपुंसवेओ इयरगईउ पुमवेय संभविया ।
संभावयामि इत्थं नपुंसथीवेयपडिसेहो ॥३१९॥ (४०३) [३७१]
ओरालमीसि सम्मे पुरिसवेएण चेव उववाओ ।
अह तित्थं थीवेए इत्थ[1]वि अच्छेरसंभवओ ॥३२०॥ (४०४) [३७२]
अट्ठट्ठ य सोलहया वेउव्वियमीसकम्मइगजोगे ।
ओरालमीसि चउरो वेउव्विय अट्ठ चउवीसा ॥३२१॥ (४०५) [३७३]
आहारयदुगजोगे सोलहया अट्ठअट्ठउदएसु ।
जम्हा पुव्वधरी वा विक्कियलद्धी य नो इत्थी ॥३२२॥ (४०६) [३७४]
इय वीसं २० तह बारस १२ चउरो अट्ठ च [2]मिलिय चउवीसा ।
मिच्छाइ अविरयंते तह सासणि चउर सोलहिया ॥३२३॥ (४०७) [३७५]
अविरयसम्मे वीसं पमत्तविरियम्मि सोलसोल हया ।
चउवीससोलहेहिं गुणिया खिव पुव्वरासिम्मि ॥३२४॥ (४०८) [३७६]
तेरससहस्स तह इक्कसी य जोग[3]पयसव्वपिंडेण ।
(१३०८१) इय अणुसारा विंदा गुणिज्ज इह सव्वजत्तेणं ॥३२५॥ (४०९) [३७७]
पुव्वं व जोगगुणिया पयविंदा ते हवंति इह दंडा ।
तेणउया [4]दोन्निसया सहस्सछावत्तरी नवहि (७६२९३) ॥३२६॥ (४१०) [३७८]
वेउव्वियअडट्ठी बत्तीसा इयरजोग पत्तेयं ।
छावत्तरसयमेगं चउवीसियमिच्छदिट्ठिम्मि ॥३२७॥ (४११) [३७९]
सासायण वेउव्वियओरालियमीसकम्मइगजोगे ।
बत्तीसं पत्तेयं वेउव्वियमीस सोलहया ॥ (४१२)

---

१ "व" इति L. D. प्रतो । २ "मेलि" इति L. D. प्रतौ । ३ "मय०" इति L. D. प्रतौ । ४ "दुन्नि" इति L. D. प्रतौ ।

अट्ठट्ठी [1]बत्तीसा बत्तीसा सट्ठिमेव बावन्ना ।
चोयाल दोसु [2]वीसा मिच्छामाईसु सामन्ने ॥सू.-०॥ (३८८) [३५६]
मिच्छे जो चउवीसा उदयगुणा ते उ मिलिय अट्ठट्ठी ।
बत्तीसाइ कमेणं एस गमो जा अपुव्वंते ॥३०६॥ (३८९) [३५७]
[3]एए सव्वेगट्ठा चउवीसाए गुणित्तु कयरासी ।
उणतीसभंगसहिया चुलसी सतहुत्तरा एवं ॥३०७॥ (३९०) [३५८]
ठवणा-पेज नं० ६० ॥
जोगोवओगलेसाइएहिं गुणिया हवंति कायव्वा ।
जे जत्थ गुणट्ठाणे हवंति ते तत्थ गुणकारा ॥सू.-४७॥ (३९१) [३५९]
[4]मोहुदयजोगपयविंदाणं च विवरणमाह—
मोहुदयपयविगप्पा गुणि(आ) गुणठाणजोगसंखाए ।
सामन्नं नव जोगा सव्वेसिं अहिय केसिंचि ॥३०८॥ (३९२) [३६०]
नव गुणिया उदयपया इक्कारसहस्स तिन्नि पणसीया ११३८५ ।
अन्ने वि चउर जोगा मिच्छे साणे य सम्मम्मि ॥३०९॥ (३९३) [३६१]
तह मीसपमत्तेसुं एगो दो जोगअहियया कमसो ।
इत्थ वि लद्धविगप्पा खेप्पिज्जा पुव्वरासिम्मि ॥३१०॥ (३९४) [३६२]
वेउव्विय तह वेउव्विमीसओरालमीसकम्मइया ।
मिच्छम्मि सासणम्मि य अविरयसम्मम्मि ए अहिया ॥३११॥ (३९५) [३६३]
अडचउवीसा वेउव्वियम्मि चउचउरसेसतिगमिच्छे ।
अणउदयरहियउदया न [5]होंति सत्ताइनवगेसुं ॥३१२॥ (३९६) [३६४]
॥अओ [6]वुत्तं॥
अणउदयरहियमिच्छे जोगा दस कुणइ जं न सो कालं ।
अणणुदओ पुण तदुवलग सम्मद्दिट्ठिस्स मिच्छुदए ॥३१३॥ (३९७) [३६५]
सासणमीसे चउरो वेउव्वियजोगि दुसु य पत्तेयं ।
तह उरलमीसकम्मणि सासणभावम्मि चउचउरो ॥३१४॥ (३९८) [३६६]
वेउव्विमीसनरए अहोमुहो नेव सासणो गच्छे ।
देवा न संढवेया विउव्विमीसम्मि नपुंऊणा ॥३१५॥ (३९९) [३६७]

१ "बत्तीसं बत्तीसं" इति । २ "वीसा वि अमिच्छमा०" इति । ३ "एसव्वे एगट्ठा" इति L. D. प्रतौ J प्रतिप्रेसकोप्यामपि । ४ "अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति, किन्तु L. D. प्रतावस्ति । ५ 'हुन्ति' इति L. D. प्रतौ । ६ "बोत्तं" इति L. D. प्रतौ ।

सोलहया तेण चत्तारि ॥

अविरयसम्मे अट्ठ उ वेउव्वियकायजोगि चउवीसा ।
तह मीसकम्मणेसुं नवरं थीवेयपडिसेहो ॥३१६॥ (४००) [३६८]
इह सम्मदिट्ठिजीवो न थीसु उववज्जइत्ति ववहारे ।
अच्छेरउत्ति होज्जा अहवा सुयस्स बाहुल्ला ॥३१७॥ (४०१) [३६९]
नपुवेय कहं भण्णइ वेयगरहियाउ जेण तिन्नुदया ।
तह वेयगेण तिन्नि उ नरएसुववज्जमाणाणं ॥३१८॥ (४०२) [३७०]
इत्थ य नपुंसवेओ इयरगईउ पुमवेय संभविया ।
संभावयामि इत्थं नपुंसथीवेयपडिसेहो ॥३१९॥ (४०३) [३७१]
ओरालमीसि सम्मे पुरिसवेएण चेव उववाओ ।
अह तित्थं थीवेए इत्थ वि अच्छेरसंभवओ ॥३२०॥ (४०४) [३७२]
अट्ठट्ठ य सोलहया वेउव्वियमीसकम्मइगजोगे ।
ओरालमीसि चउरो वेउव्विय अट्ठ चउवीसा ॥३२१॥ (४०५) [३७३]
आहारयदुगजोगे सोलहया अट्ठअट्ठउदएसु ।
जम्हा पुव्वधरी वा विक्कियलद्धी य नो इत्थी ॥३२२॥ (४०६) [३७४]
इय वीसं २० तह बारस १२ चउरो अट्ठे व [1]मिलिय चउवीसा ।
मिच्छाइ अविरयंते तह सासणि चउर सोलहिया ॥३२३॥ (४०७) [३७५]
अविरयसम्मे वीसं पमत्तविरियम्मि सोलसोल हया ।
चउवीससोलहेहिं गुणिया खिव पुव्वरासिम्मि ॥३२४॥ (४०८) [३७६]
तेरससहस्स तह इक्कसी य जोग[3]पयसव्वपिंडेण ।
(१३०८१) इय अणुसारा विंदा गुणिज्ज इह सव्वजत्तेणं ॥३२५॥ (४०९) [३७७]
पुव्वं व जोगगुणिया पयविंदा ते हवंति इह दंहा ।
तेणउया [4]दोन्नि सया सहस्सछावत्तरी नवहि (७६२९३)॥३२६॥ (४१०) [३७८]
वेउव्वियअट्ठट्ठी बत्तीसा इयरजोग पत्तेयं ।
छावत्तरसयमेगं चउवीसियमिच्छदिट्ठिम्मि ॥३२७॥ (४११) [३७९]
सासायण वेउव्वियओरालियमीसकम्मइगजोगे ।
बत्तीसं पत्तेयं वेउव्वियमीस सोलहया ॥ (४१२)

---

१ "व" इति L. D. प्रतौ । २ "मेलि" इति L. D. प्रतौ । ३ "मय०" इति L. D. प्रतौ । ४ "दुन्नि" इति L. D. प्रतौ ।

मीसे विउव्विजोगे बत्तीसं होंति विंदचउवीसा ।
अविरयसम्मे सट्ठी वेउव्वियकायजोगम्मि ॥ (४१३)
तह मीसकम्मणेसु सोलहया सट्ठि होंति पत्तेयं ।
ओरालियमीसम्मी तंसट्ठी अट्ठया जाण ॥ (४१४)
आहारग तह आहारमीस संजयपमत्तउदयम्मि ।
चोयालं पत्तेयं सोलहया दोसु जोगेसु ॥ (४१५)
एए गुणित्तु सव्वे नियनियठाणेहिं पुव्वरासिम्मि ।
पक्खिवसु सव्वउत्तो संपुन्ना जेण सा रासी ॥ (४१६)
मोहोदयपयविंदा गुणजोगवियारणाअ उवउत्तो ।
संखा पुण उणनवई सहस्स तह तिन्नि उणपन्ना ॥ (८९३४९) (४१७)

[1]ठवणा—

गुणठाणा→	मि०	सा.	मी.	अवि.	देस.	प्रमत्त.	अपम.	अपुव्व	अनिय.	सु.	
जोगठाणा→	१३	१३	१०	१३	९	११	९	९	९/१६	६/१	(सव्वे) ↓
जोगपया→	२२०८	१२१६	९६०	२२४०	१७८	११८४	१७२८	८६४	१४४	६	१३०८१
जोगपयविंदा	१८-६१२	६७२८	७६८०	१६-८००	११२-३२	१०९-१२	६५०४	५३२०	२५२	६	८९३४६

मोहोदयपयविंदा गुणिजोगवियारणा तइयसंखा ।
जाया सहस्स उणनवइ तिण्णि सया अउणपण्णा य ८९३४९ ॥३२८॥ [३८०]

भणिया जोगपयदंडमग्गणा, इयाणिं उवओगपयदंडमग्गणा [2]मण्णइ—

पढमे बीए पंच उ तइए चउ पंचमे व छच्च भवे ।
सेसे सत्तुवओगा मोहुदएहिं गुणिज्जाहि ॥३२९॥ (४१८) [३८१]
मिच्छे जा चउवीसा उवओगगुणा हवंति तेसि पया ।
नवसयसट्ठा ९६० सव्वे [3]सेसेसु य एस होइ कमो ३३० । (४१९) [३८२]
जइवि चउवीससंखा गुणिया उवओग इत्थ [4]पयवुत्ता ।
तहवि य चउवीसगुणा मोहपया [5]एत्थ दट्ठव्वा ३३१ । (४२०) [३८३]

---

१ इदं यन्त्र L D प्रतावस्ति, J प्रतिप्रेमकोप्यां नास्ति । २ 'भण्णइ' इति L D प्रतौ । ३ 'सेसगुणाणं च एस कमो । ४ "पुव्वुत्ता" इति L. D प्रतौ । ५ 'इत्थ' इति L D. प्रतौ ।

साणे चउसयमीया ४८० मीसे छावत्तरा य पंच भवे ५७६ ।
अविरयसम्मे ११५२ देसे ११५२ क्कारसवावण्ण इक्केक्के॥३३२॥(४२१) [३८४]
उवओगपय पमत्ते तेरस चोयाल १३४४ तहय इयरे य १३४४ ।
छव्वावत्तरपुव्वे ६७२ अनियट्टिसयं तु बारहियं ११२॥३३३॥ (४२२) [३८५]
सुहमे बंधोवरमे एक्कुदए सत्त हुंति उवओगा ।
सव्वे सत्त सहस्सा नवनउया होंति सत्तसया (७७९९) ॥ (४२३)
अट्ठट्ठी बत्तीसा इय अणुसारेण सेसचउवीसा ।
नियउवओगगुणा ते पयदंडा हुंति सव्वे वि ॥ (४२४)
चउवीस पंचभंगा सत्तगुणा ते वि खिवसु रासिम्मि ।
एक्कावन्नसहस्सा तेसीया हुंति सव्वे वि ॥ (५१०८३) (४२५)

उपयोगपयदंडा—

[1]ठवणा—

गुणठाणा →	मि॰	सा॰	मी॰	अवि॰	देस॰	प॰	अप॰	अपु॰	अनि॰	सु॰	
उवओगा →	५/८ चो॰	५/४	६/४	६/८	६/८	७/८	७/८	७/४	७/१६भं	७/१ भं॰	(सव्वे) ↓
उपओगपया →	९६०	४८०	५७६	११५२	११५२	१३४४	१३४४	६७२	११२	७	७७९९
उपओगपयविंदा →	८१६०	३८४०	४६०८	८६४०	७४८८	७३९२	७३९२	३३६०	१९६	७	५१०८३

इयाणिं लेसपया लेसदंडा य भण्णति—

पढमचउक्के छक्कं उवरि तिगे तिन्नि होंति लेसाओ ।
सेसेसु सुक्कलेसा मोहुदएहिं गुणिज्जाहि ॥ (४२६)
मिच्छम्मि लेसउदया इक्कारसया इवंति बावन्ना ११५२ ।
अविरयसम्मे तेच्चिय लेसगुणा होंति ते उदया ११५२ ॥३३४॥ (४२७) [३८६]
सासण ५७६ मीसे ५७६ देसे इयरे य होंति लेसुदया ।
छावत्तरपंचसया ५७६ पत्तेयं पुव्वि छन्नउई ९६ ॥३३५॥ (४२८) [३८७]
सोलस १६ अनियट्टिम्मी सुहुमे एक्को य संखसव्वे वि ।
नउया बावन्नसया सत्त उ भंगा उ पिंडेण ५२९७ ॥३३६॥ (४२९) [३८८]
अट्ठट्ठी इच्चाई गुणिया सव्वे वि लेसदंडाओ ।
अट्ठत्तीससहस्सा दोन्नि सया सत्ततीसाउ ३८२३७ ॥३३७॥ (४३०) [३८९]

१ इद यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । २ "तिच्चिय" L. D. इति प्रतौ ।

[1]ठवणा—

गुणठाणा →	मि.	सा.	मी.	अवि.	देस.	पमत्त	अप०	अपु०	अनि०	सु.	उ.
लेसा →	६	६	६	६	३	३	३	१	१	१	१
लेसापया →	११५२	५७६	५७६	११५२	५७६	५७६	५७६	९६	१६	१	सव्वसंख० ↓ →(५२९७
लेसापयदंडा →	९७९२	४६०८	४६०८	८६४०	३७४४	३११८	३११८	४८०	२८	१	→३८२३७
स. ठा. संख्या।	३	१	३	५	५	५	५	३	११	४	३
सत्ताठाणा →	२८,२७,२६	२८	२८,२७,२४	२८,२४,२३ २२,२१,	२८,२४,२३ २२,२१,	२८,२४,२३ २२,२१,	२८,२४ २३ २२,२१,	२८,२४ २१,	२८,२४,२१ १३,१२,११ ५,४,३,२,	२८,२४ २१,१	२८,२४,२१

गुणस्थानकेषु मोहनीयसत्तास्थानानि

[2]गुणठाणगेसु सत्तासंखामाह–

तिन्नेगे एगेगं तिगमिस्से पंच चउसु तिगपुव्वे ।
एक्कारबायरम्मी सुहुमे चउ तिन्नि उवसंते ॥सू.-४८॥ (४३१) [३९०]

तिन्नेगे एगेगं गाहा पुव्वभणिया सत्तट्ठाणा व [3]मोहे गुणट्ठाणमासज्ज—

इयाणिं नामस्स भण्णइ—

गुणस्थानकेषु नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानानि—

छन्नवछक्कं, तिगसत्तदुगं दुगतिगदुगं, तिगट्ठचऊ ।
दुगछच्चउ दुगपणचउ चउदुगचउ पणगएगचऊ ॥सू.-४९॥ (४३२) [३९१]
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ छउमत्थकेवलिजिणाणं ।
एगं चउ एगं चउ अट्ठ चउ दुछक्कमुदयंसा ॥सू.-५०॥ (४३३) [३९२] ।

एएसिं विवरणं [4]भण्णइ—

१ इदं यन्त्रं L. D. प्रतावस्ति, J प्रतिप्रेसकाप्यां नास्ति । २ 'अयं पाठः J. प्रतिप्रेसकोप्यां नास्ति । ३ "मोहमासज्ज" इति L. D. प्रतौ । ४ "जंतइयं" इति L D. प्रतौ ।

नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानभङ्गाः

ठवणा—

गुणठाणा→	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
बंधट्ठाणा→	६	३	२	३	२	२	४	५	१	१	०	०	०	०
उदयठाणा→	९	७	३	८	६	५	२	१	१	१	१	१	८	२
संतट्ठाणा→	६	२	२	४	४	४	४	४	८	८	४	४	४	६

तीसंत छच्च बंधा उदया नव केवलीण मोत्तूण ।
पणसंता पुव्वुत्ता उणनवई मिच्छदिट्ठिस्स ॥३३८॥ (४३४) [३९३]

बंधभंगा—

चउ पणवीसा सोलस नव बाणउई सया य चत्तोला ।
बत्तीसुत्तरछायालसया मिच्छस्स बंधविही ॥सू.–०॥ (४३५) [३९४]

बंधभंगा १३९२६॥

ससट्ठहारकेवलि [1]भंगतिगं जइ विउव्वि संभविया ।
[2]मोत्तूण सेस सव्वे मिच्छद्दिट्ठिस्स संभविया ॥३३९॥ (४३६) [३९५]
संवेहो उदएसु[3] बंधे बंधे य संतचालीसा ।
नवर उणतीसबंधे [4]नेरइय पडुच्च उणनउइ ॥३४०॥ (४३७) [३९६]
इगवीसे पणवीसे सगवीसे अट्ठवीसउणतीसे ।
उणतीसबंधगा ए पंचसु उदएसु नेरइया ॥ (४३८)
तित्थयरसंतकम्मी नरए बंधाउ अंतरमुहुत्तं ।
मिच्छत्तवेयगो सो पंचसु नेरइयउदएसु ॥३४१॥ (४३९) [३९७]
अट्ठावीसे बंधे अंतिल्ला दोन्नि उदय मिच्छस्स ।
चउतिगसत्ताठाणा पुव्वुत्ता सत्त सव्वेवि ॥३४२॥ (४४०) [३९८]
पणबंधेसु[5] दोसय अडवीसे सत्त पंच उणतीसे ।
दोन्नि सय बारसुत्तर सत्ताट्ठाणाइं मिच्छम्मि ॥३४३॥ (४४१) [३९९]

ठवणा—

बंध०	२३	२५	२६	२८	२९	३०	
सत्ता०	४०	४०	४०	७	४०/५	४०	२१२ ।
उदय०	९	९	९	८	९	९	

(छअत्रछक्कं ति गयं ॥१॥ इति प्रथमगुणस्थानके)

१ "बीस अट्ठ नव मुत्तु ।" इति L. D. प्रतौ । २ "भंगा तिग" इति L. D. प्रतौ । ३ "मुत्तूण" इति L. D. प्रतौ । ४ "अहिया उणनवइ पणमेया ॥४३७॥" इति L. D. प्रतौ ।

अडवीसुगुतीसतीसा　वंधा साग़म्मि　वंधभंगा उ　।
अड　चउसट्ठिसयाइं वत्तीससयाइँ　कमसो उ　॥३४४॥ (४४२) [४००]

वंधट्ठाणा	२८	२९	३०
भंगा	८	६४००	३२००

छेवट्टहुंड मुत्तं पणपणगेणं गुणिज्ज थिरगाई　।१२८।
जम्हा न सासणम्मी हुंड़ं छेवट्ट　वज्झंति　॥३४५॥ (४४३) [४०१]
तेण उणतीसवंधे चउसट्ठिसया उ　मणुयतिरिएसु　।
[1]उज्जोयतीसि भंगा वत्तीससया उ　तिरियाणं　॥३४६॥ (४४४) [४०२]
चउपढम तिन्नि चरिमा मिच्छगनवगाउ सासणे　सत्त　।
अट्ठासी बाणउई　सत्ताट्ठाणा उ　साणम्मि ॥३४७॥ (४४५) [४०३]
पढमा उ　चउरउदया　इगिविगलपणिंदिलद्धिपज्जाणं　।
पुव्वभवायायाणं　करणि　अपज्ञाण　संभविया　॥३४८॥ (४४६) [४०४]
चउ पढमा एगिंदिसु　चउवीसं मुत्तु ते च्चिय तसेसु　।
णवरि पणवीसउदओ सुरेसु　पुव्वुत्त　एगिंदी　॥ (४४७)
तिण्णुदया जे चरिमा उवसमसम्मम्मि अणउदय　भणिया ।
पज्जत्तचउगईसु　जे　तस्स य केइ संभविया　॥३४९॥ (४४८) [४०५]

भंगा उदएसु के कस्स तं भण्णइ–

वत्तीस [2]दोन्नि अट्ठ य बासी य सया य पच नव उदया।
बारहिगा तेवीसं बावन्नेकारस [3]सया य ॥सूत्रम्–०॥(४४९) [४०६]
दो २ छक्क ६ अट्ठ ८ अट्ठग ८ तह अट्ठग ८ सासणम्मि इगवीसे ।
इगि १ विगल २ सगल ३ मणु ४ सुर ५ पज्जत्ताणं च संभविया
॥३५०॥ (४५०) [४०७]
बायरपत्तेयवणे　पज्जत्तजसाजसेहि　दो　भंगा　।
इगवीसे चउवीसे २४ अट्ठय ८ पणवीसि देवाणं ॥३५१॥ (४५१) [४०८]

---

१ "उज्जोयतीसवंधे" इति L. D. प्रतौ । २ "दुन्निअट्ठ य बासीइ" इत्यपि । ३ "०सयाइं" ॥ L. D. प्रतौ ।

दोसय अट्ठासीया मणु तह तिरियाण छच्च विगलाणं ।
पंचसया बासीया ५८२ उदए छव्वीसि सव्वे वि ॥३५२॥ (४५२) [४०९]
एगो य अट्ठभंगा नारयदेवाण उदइ उणतीसे ।
तीसुदइ तिरियमणुसुर तेवीससया उ बारहिया ॥३५३॥ (४५३) [४१०]
उज्जोयतीसि अट्ठ उ कारसबावन्न ते य सरतीसे ।
देव तह तिरिय भंगा ते च्चिय मणुयाण तिरियसमा ॥३५४॥ (४५४) [४११]
उज्जोयतीसउदओ मिच्छद्दिट्ठिस्स न उण साणस्स ।
उज्जोयएगतीसा सासणभावम्मि कह एवं ॥३५५॥ (४५५) [४१२]
जं मिच्छदिट्ठिभणियं [1]सासणतीसम्मि तस्स पक्खेवा ।
अपजत्ति संभवो तहि साणं भासाइपज्जत्ते ॥३५६॥ (४५६) [४१३]
इगतीसा तिरिउदए सासणभावम्मिकार [2]बावण्णा ।
चउसहस्ससत्तनवई ४०९७ सासणगुणसव्व पिंडेण ॥३५७॥ (४५७) [४१४]
संवेहो य इयाणिं सासणभावम्मि बंधि अडवीसे ।
दो उदया अंतिल्ला तिगसंत न तिरिय बाणउई ॥३५८॥ (४५८) [४१५]
मणुतीसुदए सत्ता बाणवई जेण कोइ सेढीओ ।
चुयहारगकम्मंसी सासणभावम्मि गच्छेज्जा ॥३५९॥ (४५९) [४१६]
अडसी तिरिमणुयाणं नियनियउदएसु वट्टमाणाणं ।
अडवीसबंधगाणं तिगठाणा संत संवेहो ॥३६०॥ (४६०) [४१७]
उव्वलियसेसहारगउवसमसम्मं लहित्तु जेसि मयं ।
तत्तो सासणभावं बाणवई तिरिय न विरोहो ॥३६१॥ (४६१) [४१८]

कहं भण्णइ —

जो गंठिं ता पढमो गंठिं समईअओ भवे बीयं ।
अनियट्टीकरणं पुण सम्मत्तपुरक्खडे जीवे ॥ (४६२)
[3]तस्स य अंते उवसमसम्मं तिगपुंज कुणइ मिच्छस्स । (४६३)
वेयगसम्मद्दिट्ठी अणंतरं सव्वविरइ लहिऊण ।
तत्तो विसुज्झमाणो आहारचऊ समज्जेइ ॥ (४६४)
अडवीससंतकम्मी मोहे बाणवइ नाम संतंसी ।

१ "सासुणती०" इति L. D. प्रतौ । २ "०बावण्णा" इति L. D. प्रतौ । ३ "एषा गाथा-ऽपूर्णा लेखकदोषात् L. D. प्रतावस्तीति सम्भाव्यते । एतद्गाथोत्तरार्धम्-"तव्वसहिओ पुण गच्छइ सम्मे मीसाइ मिच्छे वा ॥ (४६३)" इत्येवंविधं स्यादन्यथा वेत्यपि संभावना क्रियते ।

परिवडिउं मिच्छत्तं तह गच्छइ चउसु वि गईसु ॥ (४६५)
मिच्छत्तगओ तिन्नि वि सम्मं मीसं च हारचउपयडी ।
उव्वलिउं आढवई उव्वलइ च संखपल्लंसे ॥ (४६६)
छव्वीससंतकम्मी पुण स च करणेहिँ उवसमं पावे ।
तस्संते अणउदए सासायणभाव गच्छेज्जा ॥ (४६७)
आहारचउव्वलिए अट्ठासी संतकम्म णामस्स ।
अहवा वि पढमसम्मे अंते साणो व अट्ठासी ॥ (४६८)
अन्नेसि मयं तिन्निवि उव्वलियं आढवेइ समकालं ।
उव्वलइ कमेण तहा पल्लासंखंसभागेण ॥ (४६९)
उव्वलिए दिट्ठिदुगे हारगसंतम्मि उव्वलियपाए ।
इत्थंतरम्मि उवसमकरणेहिँ उवसमइ पावं ॥ (४७०)
तस्संते अणउदए पढमं साणो व वुच्चए सो च ।
बाणवइसंतकम्मं साणे तिरियाण न विरोहो ॥ (४७१)
जे उणतीसं बंधहि सासायणमणुयतिरियपाउग्गं ।
अडसीइसंतठाणं सत्तसु उदएसु तह [1]तीसे ॥३६२॥ (४७२) [४१९]
नवं तिरिपाउग्गं उज्जोयसहियं तु बंधमाणाणं ।
तिगअट्ठअट्ठठाणा सव्वे उणवीस पिंडेण ॥३६३॥ (४७३) [४२०]
उणतीसतीसबंधे नियनियउदएसु संत बाणउई ।
पुव्वं व भणियविहिणा तिरिमणुय मयंतरेणेह ॥३६४॥ (४७४) [४२१]

तिगसत्तदुगं ति गयं ॥ २॥ (इति द्वितीयगुणस्थानके)

उणतीसअट्ठवीसा बंधे उदएसु तीसउणतीसा ।
तह एगतीस उदए दो ठाणा संत मीसस्स ॥३६५॥ (४७५) [४२२]
बंधेसु भंगसोलस उदए चउतीस [2]होंति पणसट्ठा ।३४६५।
भंगा इह संभविया चउगइयाणं च पज्जाणं ॥३६६॥ (४७६) [४२३]
एगं अट्ठ य भंगा नारयदेवाण अउणतीसम्मि ।
तेवीसं चउरुत्तर २३०४ नरतिरियाणं च तीसुदए ॥३६७॥ (४७७) [४२४]
इगतीसा तिरियाणं तिरिय विगप्पा [3]इकार बावन्ना ।११५२।
एवं चउतीससया पणसट्ठा मिस्सभंगाणं ॥३६८॥ (४७८)[४२५]

---

१ "तीसि" इति L. D. प्रतौ । २ "हुंति" इति L. D. प्रतौ । ३ "य कार" इति J. प्रतिप्रेसकोप्यां

संवेहो बंधेसुं उदयं उदयं पडुच्च दो ठाणा १२११ ।
अडवीसि दुअंतिल्ला इयरे [1]उणतीसउदओ उ ॥३६९॥ (४७९) [४२६]

एवं संतट्ठाणा[2] ६ ॥ दुगतिगदुगं ति गयं ॥३॥ (इति तृतीयगुणस्थानके)

तिगबंधठाण अजए अडवीसु गुतीसु तह य तीसा य ।
थिरसुभजसइयरेहिं भंगा अट्ठट्ठ पत्तेयं ॥३७०॥ (४८०) [४२७]
अट्ठ उ उदयट्ठाणा जे पुव्वुत्ता उ बंधि अडवीसे ।
उदयविगप्पा सव्वे जे जेसिं हुंति संभविया ॥३७१॥ (४८१) [४२८]

चउगई उ पडुच्च संतठाणसामित्तसंभवमाह—

संतट्ठाणा चउरो पढमा तेणवइ मणुयदेवाणं ।
अपमत्तसंजओ बंधिऊण अजसो मणुस्सदेवो वा ॥३७२॥ (४८२) [४२९]
तं च कहं अपमत्तो अपुव्वकरणो य बंधि इगतीसं ।
परिवडिऊण असंजय मणुओ देवो व मरिउ उववन्नो ॥३७३॥ (४८३) [४३०]
बाणउइ संतकम्मी आहारग बंधिऊण चउगइया ।
ते उव्वलिंति अजया अणउव्वलिए य बाणउई ॥३७४॥ (४८४) [४३१]
उणनवइ देवमणुए नेरइयाणं च सम्मदिट्ठीणं ।
तिरिए न तित्थसंता निरिमणुमिच्छाण अंतमुहू ॥३७५॥ (४८५) [४३२]
अडसीइ संतठाणं चउसुं वि गईसुं सम्ममिच्छाणं ।
मणुतिरियाणं सेसा जा जस्स य होइ संभविया ॥३७६॥ [४३३]
तेरसहीणा चउरो पढमाइकमेण खवगाणं ॥ (४८६)
नव तित्थि अट्ठ केवलि सत्ता पयडी अजोगिगुणठाणे ।
छासी तह सीई तिरिमणु अट्ठत्तरि गइतसाणं च ॥ (४८७)

संवेहो भण्णइ ।

अट्ठावीसे बंधे अट्ठ उ उदया उ संत दो ठाणा ।
अट्ठासी बाणउई दुग दुग पत्तेय उदएसु १६ ॥३७७॥ (४८८) [४३४]
उणतीसबंधगाणं सामन्नेणं तु सत्त उदया उ ।
इगतीसं वज्जेत्ता तिरियाण न मणुयपाउग्गा ॥३७८॥ (४८९) [४३५]
दुविहोणुतीसबंधो मणुगइपाउग्गा तह सुराणं च ।
देवगईपाउग्गं मणुया बंधंति तित्थजुयं ॥३७९॥ (४९०) [४३६]

[1] "तिन्नेव" उदया उ" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम्। [2] "य" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम्।

परिवड्ढिउं मिच्छत्तं तह गच्छइ चउसु वि गईसु ॥ (४६५)
मिच्छत्तगओ तिन्नि वि सम्मं मीसं च हारचउपयडी ।
उव्वलिउं आढवई उव्वलइ च संखपल्लंसे ॥ (४६६)
छव्वीससंतकम्मी पुण स च करणेहिँ उवसमं पावे ।
तस्संते अणउदए सासायणभाव गच्छेज्जा ॥ (४६७)
आहारचउव्वलिए अट्ठासी संतकम्म णामस्स ।
अहवा वि पढमसम्मे अंते साणो व अट्ठासी ॥ (४६८)
अन्नेसि मयं तिन्निवि उव्वलियं आढवेइ समकालं ।
उव्वलइ कमेण तहा पल्लासंखंसभागेण ॥ (४६९)
उव्वलिए दिट्ठिदुगे हारगसंतम्मि उव्वलियपाए ।
इत्थंतरम्मि उवसमकरणेहिं उवसमइ पावं ॥ (४७०)
तस्संते अणउदए पढमं साणो व वुच्चए सो च ।
बाणवइसंतकम्मं साणे तिरियाण न विरोहो ॥ (४७१)
जे उणतीसं बंधहि सासायणमणुयतिरियपाउग्गं ।
अडसीइसंतठाणं सत्तसु उदएसु तह [1]तीसे ॥३६२॥ (४७२) [४१९]
नव तिरिपाउग्गं उज्जोयसहियं तु बंधमाणाणं ।
तिगअट्ठअट्ठठाणा सव्वे उणवीस पिंडेण ॥३६३॥ (४७३) [४२०]
उणतीसतीसबंधे नियनियउदएसु संत बाणउई ।
पुव्वं व भणियविहिणा तिरिमणुय मयंतरेणेह ॥३६४॥ (४७४) [४२१]

तिगसत्तदुगं त्ति गयं ॥ २॥ (इति द्वितीयगुणस्थानके)

उणतीसअट्ठवीसा बंधे उदएसु तीसउणतीसा ।
तह एगतीस उदए दो ठाणा संत मीसस्स ॥३६५॥ (४७५) [४२२]
बंधेसु भंगसोलस उदए चउतीस [2]होंति पणसट्ठा ।३४६५।
भंगा इह संभविया चउगइयाणं च पज्जाणं ॥३६६॥ (४७६) [४२३]
एगं अट्ठ य भंगा नारयदेवाण अउणतीसम्मि ।
तेवीसं चउरुत्तर २३०४ नरतिरियाणं च तीसुदए ॥३६७॥ (४७७) [४२४]
इगतीसा तिरियाणं तिरिय विगप्पा [3]इकार बावन्ना ।११५२।
एवं चउतीससया पणसट्ठा मिस्सभंगाणं ॥३६८॥ (४७८) [४२५]

---

१ "तीसि" इति L. D. प्रतौ । २ "हुंति" इति L. D. प्रतौ । ३ "य कार" इति J. प्रतिप्रेसकोप्यां

संवेहो बंधेसुं उदयं उदयं पडुच्च दो ठाणा ९२११ ।
अडवीसि दुअंतिल्ला इयरे [1]उणतीसउदओ उ ॥३६९॥ (४७९) [४२६]

एवं संतट्ठाणा[2] ६ ॥ दुगतिगदुगं ति गयं ॥३॥ (इति तृतीयगुणस्थानके)

तिगबंधठाण अजए अडवीसु गुतीसु तह य तीसा य ।
थिरसुभजसइयरेहिं भंगा अट्ठट्ठ पत्तेयं ॥३७०॥ (४८०) ४२७]
अट्ठ उ उदयट्ठाणा जे पुव्वुत्ता उ बंधि अडवीसे ।
उदयविगप्पा सव्वे जे जेसिं हुंति संभविया ।।३७१।। (४८१) [४२८]

चउगई उ पडुच्च संतठाणसामित्तसंभवमाह–

संतट्ठाणा चउरो पढमा तेणवइ मणुयदेवाणं ।
अपमत्तसंजओ बंधिऊण अजसो मणुस्सदेवो वा ॥३७२॥ (४८२) [४२९]
तं च कहं अपमत्तो अपुव्वकरणो य बंधि इगतीसं ।
परिवडिऊण असंजय मणुओ देवो व मरिउ उववन्नो ॥३७३॥ (४८३) [४३०]
बाणउइ संतकम्मी आहारग बंधिऊण चउगइया ।
ते उव्वलिंति अजया अणउव्वलिए य बाणउई ॥३७४॥ (४८४) [४३१]
उणनवइ देवमणुए नेरइयाणं च सम्मदिट्ठीणं ।
तिरिए न तित्थसंता निरिमणुमिच्छाण अंतमुहू ॥३७५॥ (४८५) [४३२]
अडसीइ संतठाणं चउसुं वि गईसुं सम्ममिच्छाणं ।
मणुतिरियाणं सेसा जा जस्स य होइ संभविया ॥३७६॥ [४३३]
तेरसहीणा चउरो पढमाइकमेण खवगाणं ॥ (४८६)
नव तित्थि अट्ठ केवलि सत्ता पयडी अजोगिगुणठाणे । .
छासी तह सीई तिरिमणु अट्ठत्तरि गइतसाणं च ॥ (४८७)

संवेहो भण्णइ ।

अट्ठावीसे बंधे अट्ठ उ उदया उ संत दो ठाणा ।
अट्ठासी बाणउई दुग दुग पत्तेय उदएसु १६ ॥३७७॥ (४८८) [४३४]
उणतीसबंधगाणं सामन्नेणं तु सत्त उदया उ ।
इगतीसं वज्जेत्ता तिरियाण न मणुयपाउग्गा ॥३७८॥ (४८९) [४३५]
दुविहोणुतीसबंधो मणुगइपाउग्गा तह सुराणं च ।
देवगईपाउग्गं मणुया बंधंति तित्थजुयं ॥३७९॥ (४९०) [४३६]

१ "तिन्नेव" उदया उ" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम्। २ "य" इति J. प्रतिप्रेसकोप्याम्।

इह पंचसु उदएसु तेणउई ९३ तहय होइ उणनवई ।
इगवीसे १ छव्वीसे १ उणनवई संतएगाउ ॥३८०॥ (४९१) [४३७]

कई भन्नइ ॥

इह आहारचउक्कं अविरइ[ए]पत्तो य उव्वलेमाणो ।
उव्वलइ कमेण तहा पलियासंखंसभागेण ॥३८१॥ (४९२) [४३८]
तित्थयरसंतकम्मी देवा मणुएसु चविउ उववण्णा ।
नाहारसंतकम्मं बंधाभावाउ इह तेसिं ॥३८२॥ (४९३) [४३९]
इगवीसा छव्वीसा दुन्नि उ उदया सरीरअसमत्ते ।
उणतीसबंधगाणं सम्मद्दिट्ठीण मणुयाणं ॥३८३॥ (४९४) [४४०]
मणुयगईपाउग्गं सुरनेरइया य सम्मदिट्ठी य ।
अट्ठासी बाणउई नियनियउदएसु दो ठाणा १२ ॥३८४॥ (४९४) [४४१]
एवं सुरनेरइया तित्थजुया तीसठाण बंधंति ।
तित्थाहारगसंता जेणं बंधि त्ति उववन्ना ॥३८५॥ (४९५) [४४२]
मणुगइजोग्गं तीसं सुरनेरइया उ तित्थजुयबंधे ।
तित्थाहारगसंता जेणं बंधे त्ति उववन्ना ॥ (४९५)
तेणवई उणनवई उदयं उदयं पडुच्च देवाणं ।१३॥
निरये नोभयसंता तेणं उणनवइ उदएसु ॥३८६॥ (४९६) [४४३]
सोलस तह चउवीसा बारसठाणा उ तीसु वि कमेण ।
बावन्न संतठाणा अविरयसम्मस्स बंधेसु ॥३८७॥ (४९७) [४४४]

तिअट्ठचउ त्ति गयं ॥४॥ (इति चतुर्थगुणस्थानके)

अडवीसा उणतीसा बंधा उदया उ चउर वेउव्वे ।
इगतीसतीसउदया सामन्नं देसविरयाणं ॥३८८॥ (४९८) [४४५]
पुव्वुत्तबंधभंगा उदयविगप्पा उ सरखगइ चरिया ।
संघयणतहागिहया चोयालसयं तु पत्तेयं ॥३८९। (४९९) [४४६]
तीसोदयम्मि तिरिमणु इगतीसे तिरियदेसविरयाणं ।
[1]पणुउदयतिरिविउव्विय ५, चउरो मणुयाण४ इक्केक्कं
४४१ ॥३९०॥ (५००) [४४७]

---

१ 'पण" इति L. D. प्रतो ।

ठवणा—

उदयठाणा →	२५	२७	२८	२९	३०	३१	
उव्वितिरि. →	१	१	१	१	१	०	
वेउव्विमणु० →	१	१	१	१	०	०	
सा. तिरि. →	०	०	०	०	१४४	१४४	
सा. मणु. →	०	०	०	०	१४४	०	४४१

इय संवेहो भन्नइ अट्ठावीसा य तिविह बंधंति ।
मणुतिरियकम्मभूमग पलिभागिय देसविरया य ॥३६१॥ (५०१) [४४८]
छच्चेव उदय इत्थं दो दो ठाणाडसी य बाणउई ।
इगतीस न मणुएसुं बारस ठाणा उ उदएसु ॥३६२॥ (५०२) [४४९]
तह देसविरयमणुया अडवीसा तित्थसहिय उणतीसा ।
तेणवई उणनवई पंचसु उदएसु पत्तेयं ॥ (५०३)
बारस तह दस सत्ता सव्वे बावीस देसविरयाणं ।
दुग छच्चउ त्ति गयं ॥५॥ (इति पञ्चमगुणस्थानके)
अन्नो उदयविसेसो सत्तय वेउव्वि तह य आहारे ।
चोयालसयं तेरस अट्ठावन्नं सयं १५८ संखा ॥ (५०५)
दुगपणचउ त्ति गयं ॥६॥ (इति षष्ठगुणस्थानके)
चउबंधा अपमत्ते अट्ठावीसाइ जाव इगतीसा ।
[1]इक्केक्कमंगमेसिं दो उदया तीसउणतीसा ॥३६३॥ (५०६) [४५०]
[2]इक्केक्कं च विउव्विसु तह [3]इक्केक्कं च हारगजईणं ।
चोयालसयं तीसे अडयालसयं तु पिंडेणं ॥३६४॥ (५०७) [४५१]
संवेहसंतसंखा दो दो उदया उ बंधि पत्तेयं ।
[4]इक्केक्क संतठाणं सव्वे अट्ठेव उदएसुं ॥३९५॥ (५०८) [४५२]
तित्थाहारगसंता [5]इहेउसमावा तमेव बंधंति ।
सम्मअपमत्तसंजय इक्केक्कं तेण उदएसु ॥३६६॥ (५०९) [४५३]

१·२ ३·४·६ "एक्के" इति L. D. प्रतौ । ५ "इहेउसम।वे" इति L D. प्रतौ ।

ठवणा—

बंधठाणा→	२८		२९		३०		३१	
उदयठाणा →	२९	३०	२९	३०	२९	३०	२९	३०
सत्ताठाणा →	८८	८८	८९	८९	९२	९२	९३	९३

चउदुगचउत्ति गयं ॥७॥ (इति सप्तमगुणस्थानके)

बंधा जहाऽपमत्ते अपुव्वकरणि जसकित्तिपंचमिया ।
तीसुदओ तह भंगा ७२ पढमतिसंघयणसंभविया ॥३९७॥ (५१०) [४५४]
एगयरे संठाणे सरदुगखगईहिँ होइ चउवीसा ।
पढमतिसंघयणहया बाहत्तरि भंग सव्वे ॥ (५११)
चउपढम संतठाणा अपुव्वकरणस्स एक्कउदयम्मि ।
एत्तो य नवरि वोच्छं जसकीत्ती बंधउदएसुं ॥३९८॥ (५१२) [४५५]
जसकित्तीए बंधे उदओ तीसन्ह चउर सत्ताओ ।
एवं सत्ताठाणा अट्ठेव अपुव्वकरणम्मि ॥ (५१३)

चणएगचउ त्ति गयं ॥८॥ (इत्यष्टमगुणस्थानके)

एगेगमट्ठ एयं बायरसुहुमाण दुण्ह पत्तेयं ।
जसकित्तिबंधु तीसण्ह उदउ तह संतठाणाइं ॥३९९॥ (५१४) [४५६]
चउपढमा उवसामग खवगा य पडुच्च बायरकसाए ।
तह तेरस खविएहिं चउरो खवगाण अट्ठट्ठ ॥४००॥ (५१५) [४५७]

एगेगमट्ठ त्ति गयं ॥९-१०॥ (इति नवम-दशमगुणस्थानकयोः)

बंधोवरमे उवसंत खीण तीसण्ह उदय पत्तेयं ।
चउचउरसंतठाणा उवसमखीणम्मि पुव्वुत्ता ॥४०१॥ (५१६) [४५८]
सरखगइविवक्खेहिं चउरो चउवीस आगिई गुणिया ।
ते संघयणतिगेणं बाहत्तरि [1]होंति उवसंते ॥४०२॥ (५१७) [४५९]
सरखगइविपक्खेहिं चउरो चउवीस आगिई गुणिया ।
खीणम्मि भंगसंखा नेया पढमम्मि संघयणे ॥ (५१८)

(एग चउ त्ति ॥११-१२॥ इत्येकादश-द्वादशगुणस्थानकयोः)

केवलिसुजोगिजोगिसु अट्ठ उ दो उदयठाण जहसंखं ।
दो दो संतट्ठाणा तित्थातित्थाण जोगिस्स ॥४०३॥ (५१९) [४६०]
जे चउरो इह संता आसी छावत्तरी य [2]दो तिन्नि ।

१ "हुंति" इति L. D. प्रतौ । २ "तित्थयरे" इति L. D. प्रतौ ।

सामन्नकेवलिदुगं उणसी [1]पण्णत्तरी दुन्नि ॥४०४॥ (५२०) [४६१]
पण पण उदएसु इहं संतट्ठाणाइ वीस जोगिस्स ।
अज्जोगिकेवलिम्मी पगई नव अट्ठ उदओ उ ॥४०५॥ (५२१) [४६२]
नवउदए दो संता तित्थजुया नव य संत इह तिन्नि ।
अट्ठोदयम्मि एए तित्थविहूणा य इय (६) छच्च ॥४०६॥ (५२२) [४६३]
(अट्ठ चउ त्ति दुछक्कं ति य गयं ॥१३-१४॥ (इति त्रयोदश-चतुर्दशगुणस्थानकयोः)
चउतीससंतठाणा उवरयबंधम्मि सव्वउदएसु ।
भणियाउ विवरणा इह गुणठाणगगाहदुगनामे ॥४०७॥ (५२३) [४६४]
दोछक्कट्ठचउक्कं इच्चाई मग्गणा उ चोद्दस वि ।
सुइ[य] इह सत्थयारेण तेसिं पि करेज्ज अणुसारा ॥४०८॥ (५२४) [४६५]
दोछक्कऽट्ठचउक्कं पणनवएक्कारछक्क बंधुदया ।
नेरइयाइसु संता ति पंच एक्कारस चउक्कं ॥सूत्रम्-५१॥ (५२५)

ठवणा—

जीवभेदा →	निरि.	तिरि.	मणु.	देव
बंधठाणा →	२	६	८	४
उदयठाणा →	५	९	११	६
सत्ताठाणा →	३	५	११	४

निरयगइ दुन्नि बंधा उणतीसा तीस तिरियमणुजोग्गा ।
भंगा इह पुव्वुत्ता संघयणतहागिगुणियाउ ॥ (५२६)
अट्ठुत्तर छायाला उणतीसे दुन्ह तीसि जोयजुये ।
तह तीसे तित्थजुये मणुजोगे अट्ठ भंगा उ ॥ (५२७)

ठवणा—

बंधठाणा →	२९	३०	(सव्वे) ↓
तिरिजोग्गा भं	४६०८	४६०८	(९२१६)
मणु जोग्गा भं०	४६०८	८	(४६१६)
			(१३८३२)

१ "पन्नत्तरी" इति L. D. प्रतौ ।

ठवणा—

बंधठाणा→	२८		२९		३०		३१	
उदयठाणा →	२९	३०	२९	३०	२९	३०	२९	३०
सत्ताठाणा ➡	८८	८८	८९	८९	९२	९२	९३	९३

चउदुगचउत्ति गयं ॥७॥ (इति सप्तमगुणस्थानके)

बंधा जहाऽपमत्ते अपुव्वकरणि जसकित्तिपंचमिया ।
तीसुदओ तह भंगा ७२ पढमतिसंघयणसंभविया ॥३९७॥ (५१०) [४५४]
एगयरे संठाणे सरदुगखगईहिँ होइ चउवीसा ।
पढमतिसंघयणहया बाहत्तरि भंग सव्वे ॥ (५११)
चउपढम संतठाणा अपुव्वकरणस्स एक्कउदयम्मि ।
एत्तो य नवरि वोच्छं जसकीत्ती बंधउदएसु ॥३९८॥ (५१२) [४५५]
जसकित्तीए बंधे उदओ तीसन्ह चउर सत्ताओ ।
एवं सत्ताठाणा अट्ठेव अपुव्वकरणम्मि ॥ (५१३)

पणएगचउ त्ति गयं ॥८॥ (इत्यष्टमगुणस्थानके)

एगेगमट्ठ एयं बायरसुहुमाण दुण्ह पत्तेयं ।
जसकित्तिबंधु तीसण्ह उदउ तह संतठाणाइं ॥३९९॥ (५१४) [४५६]
चउपढमा उवसामग खवगा य पडुच्च बायरकसाए ।
तह तेरस खविएहिं चउरो खवगाण अट्ठट्ठ ॥४००॥ (५१५) [४५७]

एगेगमट्ठ त्ति गयं ॥९-१०॥ (इति नवम-दशमगुणस्थानकयोः)

बंधोवरमे उवसंत खीण तीसण्ह उदय पत्तेयं ।
चउचउरसंतठाणा उवसमखीणम्मि पुव्वुत्ता ॥४०१॥ (५१६) [४५८]
सरखगइविवक्खेहिं चउरो चउवीस आगिई गुणिया ।
ते संघयणतिगेणं बाहत्तरि [1]होंति उवसंते ॥४०२॥ (५१७) [४५९]
सरखगइविपक्खेहिं चउरो चउवीस आगिई गुणिया ।
खीणम्मि भंगसंखा नेया पढमम्मि संघयणे ॥ (५१८)

(एगं चउ त्ति ॥११-१२॥ इत्येकादश-द्वादशगुणस्थानकयोः)

केवलिसजोगिजोगिसु अट्ठ उ दो उदयठाण जहसंखं ।
दो दो संतट्ठाणा तित्थातित्थाण जोगिस्स ॥४०३॥ (५१९) [४६०]
जे चउरो इह संता आसी छावत्तरी य [2]दो तिन्नि ।

---

१ "हुंति" इति L. D. प्रतौ । २ "तित्थयरे" इति L. D. प्रतौ ।

सामन्नकेवलिदुगं उणसी ¹पणत्तरी दुन्नि ॥४०४॥ (५२०) [४६१]
पण पण उदएसु इहं संतट्ठाणाइ वीस जोगिस्स ।
अज्जोगिकेवलिम्मी पगई नव अट्ठ उदओ उ ॥४०५॥ (५२१) [४६२]
नवउदए दो संता तित्थजुया नव य संत इइ तिन्नि ।
अट्ठोदयम्मि एए तित्थविहूणा य इय (६) छच्च ॥४०६॥ (५२२) [४६३]
(अट्ठ चउ त्ति दुछक्कं ति य गयं ॥१३-१४॥ (इति त्रयोदश-चतुर्दशगुणस्थानकयोः)
चउतीससंतठाणा उवरयबंधम्मि सव्वउदएसु ।
भणियाउ विवरणा इह गुणठाणगगाहदुगनामे ॥४०७॥ (५२३) [४६४]
दोछक्कट्ठचउक्कं इच्चाई मग्गणा उ चोद्दस वि ।
वुइ[य] इह सत्थयारेण तेसिं पि करेज्ज अणुसारा ॥४०८॥ (५२४) [४६५]
दोछक्कऽट्ठचउक्कं पणनवएक्कारछक्क बंधुदया ।
नेरइयाइसु संता ति पंच एक्कारस चउक्कं ॥सूत्रम्–५१॥ (५२५)

ठवणा—

जीवभेदा →	निरि.	तिरि.	मणु.	देव.
बंधठाणा →	२	६	८	४
उदयठाणा →	५	९	११	६
सत्ताठाणा →	३	५	११	४

निरयगइ दुन्नि बंधा उणतीसा तीस तिरियमणुजोग्गा ।
भंगा इह पुव्वुत्ता संघयणतहागिगुणियाउ ॥ (५२६)
अट्ठुत्तर छायाला उणतीसे दुन्ह तीसि जोयजुये ।
तह तीसे तित्थजुये मणुजोगे अट्ठ भंगा उ ॥ (५२७)

ठवणा—

बंधठाणा →	२९	३०	(सव्वे) ↓
तिरिजोग्गा भं.	४६०८	४६०८	(९२१६)
मणु जोग्गा भं०	४६०८	८	(४६१६)
			(१३८३२)

१ "पन्नत्तरी" इति L. D. प्रतौ ।

तिरियगई छब्बन्धा तेवीसाई य तीसपज्जंता ।
भंगा इह मिच्छसमा मणुगइ अट्ठेव ओघुत्ता ॥ (५२८)

ठवणा—

बंधट्ठाणा→	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	(सव्वे)
तिरियबंधठाणभं.	४	२५	१६	९	९२४०	४६३२	०	०	(१३९२६)
मणुयबंधठाणभं.	४	२५	१६	९	९२४८	४६३३	१	१	(१३९३७)

पणवीसा छव्वीसा उणतीसा तीस चउर सुग्बंधा ।
आइदुगिगिंदिवायरइयरे मणुतिरियपाउग्गा ॥ (५२९)
पणवीसे अड भंगा छव्वीसे दुगुण आयवुज्जोए ।
बायरएगिंदिगया दोसु य नरयव्व उट्टंति ॥ (५३०)

ठवणा—

बंधट्ठाणा	२५	२६	२९	३०	सव्वे
तिरियजोग्गभं.	८	१६	४६०८	४६०८	(९२४०)
मणुयजोग्गभं	०	०	४६०८	८	(४६१६)
					(१३८५६)

देवेक्कट्ठचउक्कं वि गयं ॥ (इति नरकादिगतिचतुष्के नाम्नो बन्धस्थानानि)
इगवीसा पणवीसा सगवीसा अट्ठवीस उणतीसा ।
नेरइय पंच उदया एक्केक्को भंगमेएसु ॥ (५३१)

ठवणा—

उदयठाणा→	२१	२५	२७	२८	२९
भंगा →	१	१	१	१	१

पण उदया एगिंदिसु विगले सगले य छच्च पत्तेयं ।
सामन्नतिरि विउव्विय देवुदया पंच न य पढमो ॥ (५३२)
बायाला छावट्ठी इगविगले निययनियय उदएसुं ।
सगलेसुं छच्चुदया उणपन्न छछुत्तरा पिंडे ॥ (५३३)
छप्पन्न तिरिविउव्विसु पिंडे पणसहस्ससयरिजुयउदया ।
तिरियगइ सव्वभंगा ठावणसिद्धं तु जंतइयं ॥ (५३४)

ठवणा—

उदयठाणा →	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	(सव्वे) ↓
एगिंदिभं →	५	११	७	१३	६	०	०	०	०	४२
विगलभं. →	९	०	०	९	०	६	६ ६	१८	१२	६६
सगल तिरिभं.	९	०	०	२८९	०	५७६	५७६ ५७६	५७६ ५७६ ५७६	५७६ ५७६	४९०६
वेउव्वितिरि.	०	०	८	०	८	१६	१६	८	०	५६

सामन्नमणुयउदया इगवीस छवीस तह य अडवीसा ।
उणतीसा तीसा तह छव्वीस दुउत्तरा पिंडे ॥ (५३५)
सेसा उ छच्च ठाणा केवलिआहार तह विउव्वाणं ।
अड सत्ता पणतीसा भंगा पुव्वुत्त मणुउदए ॥ (५३६)

ठवणा—

उदयठाणा →	२०	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८	सव्व भंगा ↓
मणुभंग० →	०	९	०	२८९	०	५७६	५७६	११५२	०	०	०	२६०२
आहारभंग०→	०	०	१	०	१	२	२	१	०	०	०	७
सामन्नके० →	१	०	०	म. ६	०	म. १२	म. १२	म. २४	०	०	१	शेष० २
तित्थयर० →	०	१	०	०	१	०	१	१	१	१	०	६
वेउव्वि०	०	०	८	०	८	९	९	१	०	०	०	३५

इगवीसा पणवीसा सत्तावीसाइ जाव तीसुदओ ।
छच्चुदया देवेसु भंगा चउसट्ठि सव्वेवि ॥ (५३७)

ठवणा—

उदयठाणा →	२१	२५	२७	२८	२९	३०
उदयभंगा →	८	८	८	१६	१६	८
सव्वभंगा	६४॥					

तिरियगई छव्वन्धा तेवीसाई य तीसपज्जंता ।
भंगा इह मिच्छसमा मणुगइ अट्टेव ओघुत्ता ॥ (५२८)

ठवणा—

वंधट्ठाणा→	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	(सव्वे)
तिरियवंधठाणभं.	४	२५	१६	६	६२४०	४६३२	०	०	(१३६२६)
मणुयवंधठाणभं.	४	२५	१६	६	६२४८	४६३३	१	१	(१३६३७)

पणवीसा छव्वीसा उणतीसा तीस चउर सुरबंधा ।
आइदुगिगिंदिवायरइयरे मणुतिरियपाउग्गा ॥ (५२९)
पणवीसे अट्ठ भंगा छव्वीसे दुगुण आयवुज्जोए ।
वायरएगिंदिगया दोसु य नरयव्व उद्धंति ॥ (५३०)

ठवणा—

वंधट्ठाणा	२५	२६	२९	३०	सव्वे
तिरियजोग्गभं.	८	१६	४६०८	४६०८	(६२४०)
मणुयजोग्गभं	०	०	४६०८	८	(४६१६)
					(१३८५६)

होळक्कट्ठचउक्कं ति गयं ॥ (इति नरकादिगतिचतुष्के नाम्नो बन्धस्थानानि)

इगवीसा पणवीसा सगवीसा अट्ठवीस उणतीसा ।
नेरइय पंच उदया एक्केक्को भंगमेएसु ॥ (५३१)

ठवणा—

उदयठाणा—	२१	२५	२७	२८	२९
भंगा →	१	१	१	१	१

पण उदया एगिंदिसु विगले सगले य छच्च पत्तेयं ।
सामन्नतिरि विउव्विय देवुदया पंच न य पढमो ॥ (५३२)
बायाला छावट्ठी इगविगले नियमनियमउदएसुं ।
सगलेसुं छच्चुदया उणपन्न छच्चुत्तरा पिंडे ॥ (५३३)
छप्पन्न तिरिमिउव्विसु पिंडे पणसहस्ससयरिजुयउदया ।
तिरियगइ सव्वमंगा ठावणसिष्टं तु जंतइयं ॥ (५३४)

ठवणा—

उदयठाणा →	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	(सव्वे) ↓
एगिंदिभं →	५	११	७	१३	६	०	०	०	०	४२
विगलसं. →	९	०	०	९	०	६	६ ९	१८	१२	६६
सगल निग्भिं.	९	०	०	२८९	०	५७६	५७६ ५७६	५७६ ५७६ ५७६	५७६ ५७६	४९०९
वेउव्विंतिरि.	०	०	८	०	८	१६	१६	८	०	५६

सामन्नमणुयउदया इगवीस छवीस तह य अडवीसा ।
उणतीसा तीसा तह छव्वीस दुउत्तरा पिंडे ॥ (५३५)
सेसा उ छच्च ठाणा केवलिआहार तह विउव्वाणं ।
अड सत्त- पणतीसा भंगा पुव्वुत्त मणुउदए ॥ (५३६)

ठवणा—

उदयठाणा →	२०	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८	सव्व भंगा ↓
मणुभंग० →	०	९	०	२८९	०	५७६	५७६	११५२	०	०	०	२६०२
आहारभंग० →	०	०	१	०	१	२	२	१	०	०	०	७
सामन्नके० →	१	०	०	म. ६	०	म. १२	म. १२	म. २४	०	०	१	शेष० २
तित्थयर० →	०	१	०	०	१	०	१	१	१	१	०	६
वेउव्वि०	०	०	८	०	८	९	९	१	०	०	०	३५

इगवीसा पणवीसा सत्तावीसाइ जाव तीसुदओ ।
छच्चुदया देवेसुं भंगा चउसट्ठि सव्वेवि ॥ (५३७)

ठवणा—

उदयठाणा →	२१	२५	२७	२८	२९	३०
उदयभंगा →	८	८	८	१६	१६	८
सव्वभंगा	६४॥					

पण नव एक्कार छक्क त्ति गयं ॥(इति नरकादिगतिचतुष्के नाम्न उदयस्थानानि)

बाणउई अट्ठासी उणनवई निरय तिन्नि संताओ ।
तिरियगइ पंच संता सामन्नेणं तु इय एवं ॥ (५३८)
बाणउई अट्ठासी छलसी अट्ठत्तरी य चत्तारि ।
तह पंचमिया आसी अट्ठत्तरिवज्ज मणुएसु ॥ (५३९)

मणुयसत्ताठाणा—९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७६, ७५, ९, ८ ।

देवगइ चउर संता तिणवइ बाणवइ तह य अट्ठासी ॥
उणनवई संत भवे इओ(त्तो) संवेहु एएसु ॥ (५४०)

(तिपंचएक्कारसचउक्कं ति गयं ॥ इति गतिचतुष्के नाम्नः सत्तास्थानानि)
(अथ गतिमार्गणाचतुष्के नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानसंवेधः)

उणतीसे बंधम्मी पंचसु उदएसु निरय दुगसंतं ।
बाणवई अट्ठासी तिरिजुग्गे संतया दस उ ॥ (५४१)
तह तीसे उज्जोए उणतीसे तह य मणुयजुग्गम्मि ।
दस दस संतट्ठाणा उणनवई दोसु पणपणगं ॥ (५४२)
तित्थयरसंतकम्मी मिच्छद्दिट्ठी उ अंतमुहुकालं ।
उणतीसबंध संतं उणनवइ नेरइयउदएसु ॥ (५४३)
तह तीसबंधि एवं सम्मद्दिट्ठी उ निरयबंधेसु ।
आयमचउअंतमुहू चरिमे निरयाइयं संतं ॥ (५४४)
इय संवेहो वुत्तो नारयबंधुदयसंत चालीसं ।
तिरियगई संवेहो इय अणुसारेण वोच्छामि ॥ (५४५)

ठवणा—

बंधठाणे २९, उदएसु संतठाणा तु एवं सव्वा २५॥						बंधठाणे ३०, उदएसु संतठाणा				
उदयठाणा	२१	२५	२७	२८	२९	२१	२५	२७	२८	२९
सगलतिरिजुग्गे	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८
मणुयगइजुग्गे	२	२	२	२	२	८९	८६	८९	८६	८६
तित्थयरसंतकम्मी	१	१	१	१	१	एवं सव्वेवि १५॥				

तिरियगइसंवेहो भणइ—

पणबंधा हिट्ठसमा बंधे बंधे य नव उदयठाणा ।
आइमचउ पणसंता चरिमा नियमा उ चउसंता ॥ (५४६)

चालीससंतठाणा बंधे बंधे य होंति पत्तेयं ।
दुन्निसय संतभेया अट्ठावीसम्मि पुण एए ॥ (५४७)
अट्ठावीसे बंधे उदयट्ठाणा उ अट्ठ पुव्वुत्ता ।
इह कम्मभोगभूमियवेउव्वियतिरियमासज्ज ॥ (५४८)
दो दो संतट्ठाणा अट्ठसु उदएसु होंति पत्तेयं ।
नवरं दोअंतिल्लिसु छलसी अट्ठार सव्वेवि ॥ (५४९)

मणुयगइसंवेहमाह-

मणुउदया पुण सत्त उ उदए उदए य चउर संताउ ।
बाणवई अट्ठासी छलसी तहऽसीइ तुरिया उ ॥ (५५०)
नवरं दो वेउव्विय दो दो पढमाउ संतभेया उ ।
बाणउई अट्ठासी पणवीसे तह य सगवीसे ॥ (५५१)
संवेहो बंधेसुं बंधे बंधे य सत्त सव्वुदया ।
चउवीस संतठाणा पंचसु बंधेसु पत्तेयं ॥ (५५२)
पढमतिगबंधु मिच्छे उणतीसा तीस सम्म तह मिच्छे ।
सव्वेसु संतठाणा चउवीसे पंच गुणिया उ ॥ (५५३)
तित्थयरसंतियाणं तिणवइ उणनवइ दुन्नि उदएसु ।
उणतीस बंधठाणे सत्तसु उदएसु पत्तेयं ॥ (५५४)
अट्ठावीसे बंधे सत्तसु उदएसु संतसोलसगं ।
तीसे तह इगतीसे बाणउई तह य तेणउई ॥ (५५५)
जसकित्तिबंध अट्ठ उ उवरयबंधम्मि तीस पुव्वुत्ता ।
नउयसयसंतसंखा मणुयगई नामसंवेहो ॥ (५५६)

(देवगइसंवेहमाह-)

देवगई संवेहो बंधे बंधे य सव्वुदयठाणा ।
बाणउई अट्ठासी दो दो संता उ उदएसुं ॥ (५५७)
तित्थयरसंतिया जे मणुयगईजोग्गतीस बंधंता ।
तेणउई उणनवई छसुं वि उदएसु पत्तेयं ॥ (५५८)
तेणवइसंतकम्मं पलियासंखंसआउवोलीणो ।
न घडइ देवगईए आहारचउक्क उव्वलइ ॥ (५५९)
केसिंचि मए एवं आहारुव्वलिय सचरमखंडस्स ।
संता अहिया बिंतु तेणवई तेण बहुकालं ॥ (५६०)

पण नव एक्कार छक्क त्ति गयं ॥(इति नरकादिगतिचतुष्के नाम्न उदयस्थानानि)

बाणउई अट्ठासी उणनवई निरय तिन्नि संताओ ।
तिरियगइ पंच संता सामन्नेणं तु इय एवं ॥ (५३८)
बाणउई अट्ठासी छलसी अट्ठत्तरी य चत्तारि ।
तह पंचमिया आसी अट्ठत्तरिवज्ज मणुएसु ॥ (५३९)

मणुयसत्ताठाणा—९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७६, ७५, ९, ८ ।

देवगइ चउर संता तिणवइ बाणवइ तह य अट्ठासी ॥
उणनवई संत भवे 'इओ(त्तो) संवेहु एएसु ॥ (५४०)

(तिपंचएक्कारसचउक्कं ति गयं ॥ इति गतिचतुष्के नाम्नः सत्तास्थानानि)

(अथ गतिमार्गणाचतुष्के नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानसंवेध.)

उणतीसे बंधम्मी पंचसु उदएसु निरय दुगसंतं ।
बाणवई अट्ठासी तिरिजुग्गे संतया दस उ ॥ (५४१)
तह तीसे उज्जोए उणतीसे तह य मणुयजुग्गम्मि ।
दस दस संतट्ठाणा उणनवई दोसु पणपणगं ॥ (५४२)
तित्थयरसंतकम्मी मिच्छदिट्ठी उ अंतमुहुकालं ।
उणतीसबंध संतं उणनवइ नेरइयउदएसु ॥ (५४३)
तह तीसबंधि एवं सम्मद्दिट्ठी उ निरयबंधेसु ।
आयमचउअंतमुहू चरिमे निरयाइयं संतं ॥ (५४४)
इय संवेहो वुत्तो नारयबंधुदयसंत चालीसं ।
तिरियगई संवेहो इय अणुसारेण वोच्छामि ॥ (५४५)

ठवणा—

बंधठाणे २९, उदएसु संतठाणा तु एवं सव्वा २५॥						बंधठाणे ३०, उदएसु संतठाणा				
उदयठाणा	२१	२५	२७	२८	२९	२१	२५	२७	२८	२९
सगलतिरिजुग्गे	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८	९२ ८८
मणुयगइजुग्गे	२	२	२	२	२	८९	८९	८९	८९	८९
तित्थयरसंतकम्मी	१	१	१	१	१	एवं सव्वेवि १५॥				

तिरियगइसंवेहो भणइ—

पणबंधा हिट्ठसमा बंधे बंधे य नव उदयठाणा ।
आइमचउ पणसंता चरिमा नियमा उ चउसंता ॥ (५४६)

चालीससंतठाणा बंधे बंधे य होंति पत्तेयं ।
दुन्निसय संतभेया अट्ठावीसम्मि पुण एए ॥ (५४७)
अट्ठात्तीसे बंधे उदयट्ठाणा उ अट्ठ पुव्वुत्ता ।
इह कम्मभोगभूमियवेउव्वियतिरियमासज्ज ॥ (५४८)
दो दो संतट्ठाणा अट्ठसु उदएसु होंति पत्तेयं ।
नवरं दोअंतिल्लिसु छलसी अट्ठार सव्वेवि ॥ (५४९)

मणुयगइसंवेहमाह-

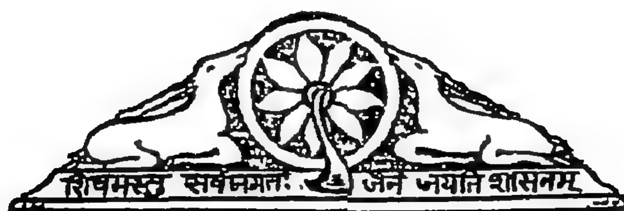
मणुउदया पुण सत्त उ उदए उदए य चउर संताउ ।
बाणवई अट्ठासी छलसी तहऽसीइ तुरिया उ ॥ (५५०)
नवरं दो वेउव्विय दो दो पढमाउ संतभेया उ ।
बाणउई अट्ठासी पणवीसे तह य सगवीसे ॥ (५५१)
संवेहो बंधेसु बंधे बंधे य सत्त सव्वुदया ।
चउवीस संतठाणा पंचसु बंधेसु पत्तेयं ॥ (५५२)
पढमतिगबंधु मिच्छे उणतीसा तीस सम्म तह मिच्छे ।
सव्वेसु संतठाणा चउवीसे पंच गुणिया उ ॥ (५५३)
तित्थयरसंतियाणं तिणवइ उणनवइ दुन्नि उदएसु ।
उणतीस बंधठाणे सत्तसु उदएसु पत्तेयं ॥ (५५४)
अट्ठावीसे बंधे सत्तसु उदएसु संतसोलसगं ।
तीसे वह इगतीसे बाणउई तह य तेणउई ॥ (५५५)
जसकित्तिबंध अट्ठ उ उवरयबंधम्मि तीस पुव्वुत्ता ।
नउयसयसंतसंखा मणुयगई नामसंवेहो ॥ (५५६)

(देवगइसंवेहमाह-)

देवगई संवेहो बंधे बंधे य सव्वुदयठाणा ।
बाणउई अट्ठासी दो दो संता उ उदएसु ॥ (५५७)
तित्थयरसंतिया जे मणुयगईजोग्गतीस बंधंता ।
तेणउई उणनवई छसु वि उदएसु पत्तेयं ॥ (५५८)
तेणउइसंतकम्मं पलियासंखंसआउवोलीणे ।
न घडइ देवगईए आहारचउक्क उव्वलइ ॥ (५५९)
केसिंचि मए एवं आहारुव्वलिय सचरमखंडस्स ।
संता अहिया विहु तेणवई तेण बहुकालं ॥ (५६०)

दो छक्कट्ठचउक्कं इच्चाइट्ठाण गइचउक्कस्स ।
बंधोदयसवियप्पा संतट्ठाणा य इय वुत्ता ॥ (५६१)
इय अणुसारेण तहा नेया इह मग्गणाण तेरससु ।
बंधोदयसंतगया भेयवियप्पाउ सव्वत्थ ॥ (५६२)
इय एउ सुमरणत्थं टिप्पणमित्तं पि किंचि उद्धरियं ।
लक्खणछंदवियारो न य कायव्वो य को वि इहं ॥ (५६३) [१६६]
इत्थ य सुत्तविवन्नं मइमोहा किंचि उद्धरिय होज्जा ।
सोहिंतु जाणमाणा मज्झ य मिच्छुक्कडं होउ ॥ (५६४) [४६७]
सिरिजिणवल्लहसूरी आसी सूरुव्व भुवणविक्खाओ ।
तस्सेव विणेएणं उद्धरियं रामदेवेणं ॥ (५६५)

॥ इति श्रीरामदेवगणिकृतं सप्ततिकाटिप्पनकं समाप्तम् ॥



इगिविगलिंदिय सगले पण पंच य अट्ठ बंधठाणाणि।
पण छक्केकारुदया पण पण बारसगसंताणि ॥सूत्रम्-५२॥
इय कम्मपगडिठाणाणि सुट्ठु बंधुदयसंतकम्मंसा।
गइआइएहिँ अट्ठसु चउप्पगारेण नेयाणि ॥सूत्रम्-५३॥
गइ १ इंदिए २ य काए ३ जोए ४ वेए ५ कसाय ६ नाणे य।
संजम ८ दंसण ९ लेसा १० भव ११ सम्मे १२ सन्नि
१३ आहारे १४ ॥सूत्रम्-०॥
संतपयपरूवणया १ दव्वपमाणं च २ खेत्त ३ फुसणा य।
कालं ५ तरं च ६ भावो ७ अप्पाबहुयं च ८ दाराइं ॥सूत्रम्-०॥
×उदयस्सुदीरणस्स य सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो।
मुत्तूणं इयालं सेसाणं सव्वपयडीणं ॥सूत्रम्-५४॥
×नाणंतरायदसगं १० दंसण नव ९ वेयणिज्ज मिच्छत्तं।
सम्मत्त १ लोभ १ वेया ३ उयाणि ४ नवनाम ९ उच्चं १ च ॥सूत्रम्-०॥
मणुयगइजाइतसबायरं च पज्जत्तसुभगमाइज्जं।
जसकित्ती तित्थगरं नामस्स हवंति नव एया ॥सूत्रम्-०॥
तित्थयराहारगविरहिया उ अज्जेइ सव्वपयडीओ।
मिच्छत्तवेयगो सासणो वि उगवीससेसाओ ॥सूत्रम्-५६॥
छायालसेस मीसो अविरयसम्मो तियालपरिसेसं।
तेवन्न देसविरओ विरओ सगवन्नसेसाओ ॥सूत्रम्-५७॥
इगुसट्ठिमप्पमत्तो बंधइ देवाउगस्स इयरो वि।
अट्ठावन्नमपुव्वो छप्पन्नं वावि छव्वीसं ॥सूत्रम्-५८॥
बावीसा एगूणं बंधइ अट्ठारसंत्ति अनियट्टी।
सत्तर सुहुमसरागो, सायममोहो सजोगि त्ति ॥सूत्रम्-५९॥

× उदयस्सु गाहा ॥ नाणंतरायगाहा ॥ निद्दापणगाणं सरीरपज्जत्तीए पज्जयाणं बीयसमयाउ आढ-त्तिउ उदओ हवइ उदीरणाए विणा ताव जाव इंदियपज्जत्तीए पज्जत्तगु त्ति तओ बीयसमयपभिइ दोवि हुंति त्ति ॥ मिच्छत्तस्स पढमसम्मत्तमुप्पइंतेण अंतरकरणं कयं तत्थ पढमठिईअ आवलियसेसाए उदीरणा नत्थि उदओ चेव ॥ सम्मत्तस्स बावीससंतकम्मे आवलियसेसे उदओ चेव ॥ अहवा उवसमसेढिं पडिवज्जंतस्स अंतरकरणे कए पढमठिईए आवलियसेसाए उदओ चेव ॥ तिण्हं वेयाणं जेण वेएण सेढिं पडिवन्नस्स अंतरकरणे कए पढमठिईए आवलियासेसाए उदओ चेव ॥

एसो उ बंधसामित्तोघो गइयाइएसु वि तहेव ।
ओहाओ साहिज्जा जत्थ जहा पयडिसब्भावो ॥सूत्रम्-६०॥
तित्थयरदेवनिरयाउयं च तिसु तिसु गईसु बोधव्वं ।
अवसेसा पयडीओ हवंति सव्वासु वि गईसु ॥सूत्रम्-६१॥
पढमकसायचउक्कं दंसणतिगसत्तया वि उवसंता ।
अविरयसम्मत्ताओ जावऽनियट्टित्ति नायव्वा ॥सूत्रम्-६२॥
सत्तट्ठ नव य पन्नरस सोलस अट्ठारसेव इगुवीसा ।
एगाहिदुचउवीसा पणवीसा बायरे जाण ॥सूत्रम्-०॥
सत्तावीसं सुहुमे अट्ठावीसं वि मोहपयडीओ ।
उवसंतवीयरागे उवसंता हुंति नायव्वा ॥सूत्रम्-०॥
पढमकसायचउक्कं एत्तो मिच्छत्तमीससम्मत्तं ।
अविरयसम्मे देसे [1]पमत्तअपमत्त खीयंति ॥सूत्रम्-६३॥
अनियट्टिबायरे थीणगिद्धितिगनिरयतिरियनामाउ ।
संखिज्जइमे सेसे तप्पाओगा उ खीयंति ॥सूत्रम्-०॥
एत्तो हणइ कसायट्ठगं पि पच्छा णपुंसगं इत्थी ।
तो णोकसायछक्कं पि छुहइ संजलणकोहम्मि ॥सूत्रम्-०॥
पुरिसं कोहे कोहं माणे माणं च छुहइ मायाए ।
मायं च छुहइ लोभे लोभं सुहुमं पि तो हणइ ॥सूत्रम्-६४॥
खीणकसायदुचरिमे निद्दं पयलं च हणइ छउमत्थो ।
आवरणमंतराए छउमत्थो चरिमसमयम्मि ॥सूत्रम्-०॥
संभिन्नं पासंतो लोगमलोगं य सव्वओ सव्वं ।
तं नत्थि जं न पासइ भूयं भव्वं भविस्सं य ॥सूत्रम्-०॥
देवगइसहगयाओ दुचरिमसमयभवियम्मि खीयंति ।
सविवागेयरनामा नीयागोयंपि तत्थेव ॥सूत्रम्-६५॥
अन्नयरवेयणिज्जं मणुयाऊ उच्चगोय नामे य ।
वेएइ अजोगिजिणो उक्कोस जहन्न एक्कारं ॥सूत्रम्-६६॥
मणुयगइजाइतसबायरं च पज्जत्तसुभगमाएज्जं ।
जसकित्ती तित्थयरं नामस्स हवंति नव एया ॥सूत्रम्-६७॥

---

१. "पमत्तअपमत्तगे य खीयंति" इति पाठः ।

तच्चाणुपुव्विसहिया तेरस भवसिद्धियस्स चरिमम्मि ।
सन्तंसगमुक्कोसं जहन्नयं बारस हवन्ति ॥सूत्रम्-६८॥
मणुयगइसहगयाओ भवखित्तविवागजीववागत्ति ।
वेयणिअन्नयरुच्चं च चरिमसमयम्मि खीयंति ॥सूत्रम्-६९॥
अह सुचिरसयलजयसिहरमरुयनिरुवमसहावसिद्धिसुहं ।
अणिहणमव्वाबाहं तिरयणसारं अणुहवंति ॥सूत्रम्-७०॥
दुरहिगमणिउण परमत्थरुइरबहुभंगदिट्ठिवायाओ ।
अत्था अणुसरियव्वा बंधोदयसंतकम्माणं ॥सूत्रम्-७१॥
जो जत्थ अपडिपुन्नो अत्थो अप्पागमेण बद्धोत्ति ।
तं खमिऊण बहुसुया पूरेऊणं परिकहिंतु ॥सूत्रम्-७२॥
गाहग्गं सयरीए चंदमहत्तरयथाणुसारीए ।
टीकाएँ नियमियाणं पगूणा होइ नउईओ ॥सूत्रम्-०॥

॥ सप्ततिका समाप्ता ॥



इति

श्रीप्राचीनाचार्यप्रणीते

श्रीसप्ततिकाभिधे षष्ठे कर्मग्रन्थे

श्रीरामदेवगणिविरचितं

टिप्पनकं समाप्तम्

॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवविरचितं

सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणम्

(अपरनाम—सार्धशतकप्रकरणम्)

श्रीमद्रामदेवगणिकृतटिप्पनकेन विराजितम् ॥



॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥

सिद्धत्थसुयं नमिउं सुहुमत्थवियारटिप्पणं किंचि ।
सुगुरुवएसेण अहं भणामि सरणत्थमप्पस्स ॥

तत्थ पगरणकारो मंगलाभिधेयाणं पडिपायणनिमित्तं इमां गाहामाह—

मयलंतरारिवीरं वंदिय वरनाणलोयणं वीरं ।
वोच्छं जहासुयमहं कम्माइवियारसारलवं ॥१॥

सयला=सव्वे अंतरा=कायमज्झवत्तिणी जे अरिणो=वेरिणो केवलनाणाइगुणपरमपाणघायगत्तेण, अन्नाणरागदोसकोहमाणमायालोभाइणो, तेसिं वीरो=सूरो, जहा वीरपुरिसो कोइ पभूयवलजुत्तो वेरिणो निज्झिणाइ अप्पपरक्कमेण, तहा भगवया वि ते अंतरवेरिणो अन्नाणाई या निज्झिया इइ कट्टु सयलंतरारिवीरो, तं, वंदिय=पणमिय वीरं=चरमतित्थयरं उत्तरपएण संबंधो । तहा 'वरनाणलोयणं' ति, वरे=प्रधाने अशेषाऽऽवरणक्षयात्, नाणं=केवलनाणं लोयणं=केवलदंसणं च, "लोक दर्शने" इति वचनात्, वरनाणलोयणो जस्स, तं तहा, वोच्छं=भणिस्सामि, कहं ? जहासुयं=सुयाणुसारेण 'अहं' ति, अप्पनिद्देसो, किं भणिहिसि ? कम्माणि वक्खमाणाणि । आइसद्दाओ गुणसेढि-पुग्गलपरावत्ताइया । तेसिं वियारो=पन्नवणा, तस्स सारो=पहाणो अट्ठो, तस्सेव लओ=अंसो, तं वोच्छामित्ति संबंधः ॥१॥

इयाणिं पढमं ताव कम्मं परूवेइ—

कीरइ जिएण हेऊहि पयइठिइरसपएसओ जं तं।
मूलुत्तरट्ठ अडवन्नसयपभेयं भवे कम्मं ॥२॥

करीइ=निप्फाइज्जइ, जीवेण=संसारिणा 'हेऊहि' त्ति मिच्छत्त५-अविरइ१२-कसाय-२५-जोगे१५हिं बंधहेऊहिं चउहिं कम्मं बज्झइ। तं च कम्मवग्गणाहिं कज्जलसमुग्गउव्व निचिओ लोगो ते य कम्मत्ताए जीवेण गहिया कम्मंति वुच्चंति। जओ वुत्तं—
"जीवज्झवसायाओ कम्मत्ता पोग्गला परिणमंति। पुग्गलकम्मनिमित्तं जीवो वि तहेव परिणमइ॥"
तं च चउविहं, पगइबंधो ठिइबंधो अणुभागबंधो पएसबंधो। तत्थ आईए पगइबंधो उद्दिट्ठो। तं पुण दुविहं, मूलपगइविसयं उत्तरपगइविसयं च। मूलपगइविसयं अट्ठविहं। उत्तरपगइ-विसयं अडवन्नसयपभेयं॥२॥

मूलपगईणं नामाणि एक्केक्काए मूलपयडीए उत्तरपयडिसंखं च दंसेइ—

दंसण[१] नाणा[२] वरणंतराय[३] मोहा[४] उ[५] गोय[६] वेयणियं[७]।
नामं[८] च नव[१] पण[२] पण[३] ऽट्ठवीस[४] चउ[५] दु[६] दु[७] बियालविहं[८]॥३॥

दंसणाइपयाणं नवाइसंखाए सह जहसंखं संबंधो कायव्वो। तं जहा—दंसणावरणं नवविहं १, नाणावरणं पंचविहं २, अंतराइयं पंचविहं ३, मोहणीयं अट्ठावीसविहं ४, आउयं चउविहं ५, गोयं दुविहं ६, वेयणियं दुविहं ७, नामं बायालीसविहं ८॥३॥

सव्वासिं मूलपयडीणं उत्तरपयडिनामाणि दंसेइ—

नयणेयरोहिकेवलदंसणआवरणयं भवइ चउहा।
निद्दापयलाहि छहा निद्दाइदुरुत्तथीणद्धी ॥४॥

नयणं ति चक्खुदंसणं, इयरं ति अचक्खुदंसणं, तं पुण चत्तारि इंदियाइं चक्खुवज्जाइं, मणो य, आवरणसद्दो पत्तेयं संबज्झइ, तओ चक्खुदंसणावरणं १, अचक्खुदंसणावरणं २, ओहिदंसणावरणं ३, केवलदंसणावरणं ४, निद्दा ५, पयला ६, निद्दाइदुरुत्तति, निद्दानिद्दा ७, आइसद्दाओ पयलापयला ८, थीणद्धि ९, त्ति॥४॥

नाणावरणं मइसुयओहिमणोनाणकेवलावरणं।
विग्घं दाणे लाभे भोगुवभोगेसु विरिए य ॥५॥

नाणावरणं पंचविहं । मइनाणावरणं, सुयनाणावरणं, ओहिनाणावरणं, मणपज्जव-नाणावरणं, केवलनाणावरणं । विग्घं ति अंतरायकम्मं पंचहा । दाणंतराइयं, लाभंतराइयं, भोगंतराइयं, उपभोगंतराइयं, वीरियंतराइयं ॥५॥

सोलसकसाय–नवनोकसाय–दंसणतिगं ति मोहणियं ।
निरयतिरिनरसुराऊ नीउच्चं सायमस्सायं ॥६॥

कसाया अणंताणुवंधिणो कोहमाणमायालोभा चत्तारि, एवं अपच्चक्खाणावरण ४, पच्चक्खाणावरण ४, संजलण ४, एए चत्तारि चउक्का सोलस । नव नोकसाया, पुरिसवेओ, इत्थीवेओ, नपुंसगवेओ, हासं, रई, अरई, सोगो, भयं, दुगुंछत्ति । दंसणतिगं ति, मिच्छत्तं, सम्मामिच्छत्तं, सम्मत्तं, मोहणीयं अट्ठावीसविहं ।

निरियाऊ तिरियाऊ मणुयाऊ देवाऊ त्ति, आउकम्मं चउब्भेयं । नीयागोयं उच्चा-गोयं ति, गोयं दुविहं । सायावेयणियं असायावेयणियं ति, वेयणियं दुविहं ॥६॥

गइ [१] जाइ [२] तणु [३] उवगा [४] बंधण [५] संघायणाणि [६] संघयणा [७] ।
संठाण [८] वन्न [९] गध [१०] रस [११] फास [१२] अणुपुव्वि [१३] विहगगई [१४] ॥७॥
पिंडपयडि त्ति, चउदस परघा [१] उज्जोय [२] आयवु [३] स्सायं [४] ।
अगुरुलहु [५] तित्थ [६] निमिणो [७] वघाय [८] मिय अट्ठ पत्तेया ॥८॥

गइनामं १, जाइनामं २, सरीरनामं ३, अंगोवंगनामं ४, बंधणनामं ५, संघायनामं ६, संघयणनामं ७ संठाणनामं ८, वन्ननामं ९, गंधनामं १०, रसनामं ११, फासनामं १२, अणु-पुव्विनामं १३, विहायगइनामं ॥१४॥ पिंडपयडि त्ति, त्ति, पिंडो=बहुपयडिसमुदाओ, पिंडपहाणा पगईओ पिंडपगईओ चउदस=चउदससंखाओ, एएसिं चउदसण्हं पयडिभेयाणं ति त्ति गब्भत्थो । परघायनामं, उज्जोयनामं, आयवनामं, ऊसासनामं, अगुरुलहुनामं, तित्थयरनामं, निम्माणनामं, उवघायनामं, एए अट्ठ पत्तेया, पडिमेयाभावाओ नापि सविवक्खाओ वक्खमाणा इव ॥७–८॥ पिंडपयडीओ पत्तेयपयडीओ य दंसियाओ ।

इयाणिं सविवक्खाओ पगईओ दंसेइ—

तसबायरपज्जत्तं पत्तेयं थिरसुभं च सुभगं च ।
सुसराइज्ज जसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥९॥

इयाणिं पढमं ताव कम्मं परूवेइ—

कीरइ जिएण हेऊहि पयइठिइरसपएसओ जं तं ।
मूलुत्तरट्ठ अडवन्नसयपभेयं भवे कम्मं ॥२॥

करीइ=निप्फाइज्जइ, जीवेण=संसारिणा 'हेऊहिं' त्ति मिच्छत्त५-अविरइ१२-कसाय-२५-जोगे१५हिं बंधहेऊहिं चउहिं कम्मं बज्झइ। तं च कम्मवग्गणाहिं कज्जलसमुग्गउव्व निचिओ लोगो ते य कम्मत्ताए जीवेण गहिया कम्मंति वुच्चंति । जओ वुत्तं—
"जीवज्झवसायाओ कम्मत्ता पोग्गला परिणमंति । पुग्गलकम्मनिमित्तं जीवो वि तहेव परिणमइ ॥"

तं च चउविहं, पगइबंधो ठिइबंधो अणुभागबंधो पएसबंधो । तत्थ आईए पगइबंधो उद्दिट्ठो। तं पुण दुविहं, मूलपगइविसयं उत्तरपगइविसयं च । मूलपगईविसयं अट्ठविहं । उत्तरपगइ-विसयं अडवन्नसयपमेयं ॥२॥

मूलपगईणं नामाणि एक्केक्काए मूलपयडीए उत्तरपयडिसंखं च दंसेइ—

दंसण १ नाणा २ वरणंतराय ३ मोहा ४ उ ५ गोय ६ वेयणियं ७ ।
नामं ८ च नव १ पण २ पण ३ ऽट्ठवीस ४ चउ ५ दु ६ दु ७ बियालविहं ८ ॥३॥

दंसणाइपयाणं नवाइसंखाए सह जहसंखं संबंधो कायव्वो । तं जहा—दंसणावरणं नवविहं १, नाणावरणं पंचविहं २, अंतराइयं पंचविहं ३, मोहणीयं अट्ठावीसविहं ४, आउयं चउविहं ५, गोयं दुविहं ६, वेयणियं दुविहं ७, नामं बायालीसविहं ८ ॥३॥

सव्वासिं मूलपयडीणं उत्तरपयडिनामाणि दंसेइ—

नयणेयरोहिकेवलदंसणआवरणयं भवइ चउहा ।
निद्दापयलाहि छहा निद्दाइदुरुत्तथीणद्धी ॥४॥

नयणं ति चक्खुदंसणं, इयरं ति अचक्खुदंसणं, तं पुण चत्तारि इंदियाइं चक्खुवज्जाइं, मणो य, आवरणसद्दो पत्तेयं संबज्झइ, तओ चक्खुदंसणावरणं १, अचक्खुदंसणावरणं २, ओहिदंसणावरणं ३, केवलदंसणावरणं ४, निद्दा ५, पयला ६, निद्दाइदुरुत्तति, निद्दानिद्दा ७, आइसद्दाओ पयलापयला ८, थीणद्धि ९, त्ति ॥४॥

नाणावरणं मइसुयओहिमणोनाणकेवलावरणं ।
विग्घं दाणे लाभे भोगुवभोगेसु विरिए य ॥५॥

नाणावरणं पंचविहं। मइनाणावरणं, सुयनाणावरणं, ओहिनाणावरणं, मणपज्जवनाणावरणं, केवलनाणावरणं। विग्घं ति अंतरायकम्मं पंचहा। दाणंतराइयं, लाभंतराइयं, भोगंतराइयं, उपभोगंतराइयं, वीरियंतराइयं ॥५॥

सोलसकसाय–नवनोकसाय–दंसणतिगं ति मोहणियं।
निरयतिरिनरसुराऊ नीउच्चं सायमस्सायं ॥६॥

कसाया अणंताणुबंधिणो कोहमाणमायालोभा चत्तारि, एवं अपच्चक्खाणावरण ४, पच्चक्खाणावरण ४, संजलण ४, एए चत्तारि चउक्का सोलस। नव नोकसाया, पुरिसवेओ, इत्थीवेओ, नपुंसगवेओ, हासं, रई, अरई, सोगो, भयं, दुगुंछत्ति। दंसणतिगं ति, मिच्छत्तं, सम्मामिच्छत्तं, सम्मत्तं, मोहणीयं अट्ठावीसविहं।

निरियाऊ तिरियाऊ मणुयाऊ देवाऊ त्ति, आउकम्मं चउब्भेयं। नीयागोयं उच्चागोयं ति, गोयं दुविहं। सायावेयणियं असायावेयणियं ति, वेयणियं दुविहं ॥६॥

गइ[१] जाइ[२] तणु[३] उवगा[४] बंधण[५] संघायणाणि[६] संघयणा[७]।
संठाण[८] वन्न[९] गध[१०] रस[११] फास[१२] अणुपुव्वि[१३] विहगगई[१४] ॥७॥
पिंडपयडि त्ति, चउदस परघा[१] उज्जोय[२] आयवु[३] स्सायं[४]।
अगुरुलहु[५] तित्थ[६] निमिणो[७] वघाय[८] मिय अट्ठ पत्तेया ॥८॥

गइनामं १, जाइनामं २, सरीरनामं ३, अंगोवंगनामं ४, बंधणनामं ५, संघायनामं ६, संघयणनामं ७ संठाणनामं ८, वन्ननामं ९, गंधनामं १०, रसनामं ११, फासनामं १२, अणुपुव्विनामं १३, विहायगइनामं ॥१४॥ **पिंडपयडि त्ति**, त्ति, पिंडो=बहुपयडिसमुदाओ, पिंडपहाणा पगईओ पिंडपगईओ चउदस=चउदससंखाओ, एएसिं चउदसण्हं पयडिभेयाणं ति त्ति गब्भत्थो। परघायनामं, उज्जोयनामं, आयवनामं, ऊसासनामं, अगुरुलहुनामं, तित्थयरनामं, निम्माणनामं, उवघायनामं, एए अट्ठ पत्तेया, पडिभेयाभावाओ नापि सविवक्खाओ वक्खमाणा इव ॥७–८॥ पिंडपयडीओ पत्तेयपयडीओ य दंसियाओ।

इयाणिं सविवक्खाओ पगईओ दंसेइ—

तसबायरपज्जत्तं पत्तेयं थिरसुभं च सुभगं च।
सुसराइज्ज जसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥९॥

थावरसुहुमअपज्जं माहारणमथिरमसुभदुभगाणि ।
दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥१०॥

तसं १ बायरं २ पज्जत्तगं ३ पत्तेयं ४ थिरं ५ सुभं ६ सुभगं ७ सूसरं ८ आदेयं ९ जसं १० एयं तसदसगं; थावरदसगं पुण एयं-थावरं १ सुहुमं २ अपज्जत्तगं ३ साहारणं ४ अथिरं ५ असुभं ६ दूभगं ७ दूसरं ८ अणादेयं ९ अजसं १० इति; नामे =नामकम्मणि सेयर त्ति, सविवक्खा वीसं=वीससंखाउ पगईओ, पिंड-पत्तेय तसथावरदसग-पगईओ मिलिया बायालीसं नामकम्माणि पगईओ होंति ॥ ९-१० ॥

संपयं एयासु तसाइसविवक्खाइपगईसु पुव्वायरियभणियाओ सन्नाओ दंसेइ—

तसचउथिरछक्कं अथिरछक्कसुहुमतिगथावरचउक्कं ।
सुभगतिगाइविभासा पयडीण तदाइसंखाहिं ॥११॥

तसचउक्कं, थिरछक्कं, अथिरछक्कं, सुहुमतिगं, थावरचउक्कं, सुभगतिगं । आइसद्दाओ दुभगतिगं । सुभपंचगं पुव्वुत्तमेव तसदसगं थावरदसगं च । एवं रूवा जा विभासा सन्नाऽभिहिय-लक्खणा सा सन्चा किं ? तदाइसंखाहिं ति, सा=तसथिराइया पयडी, आइ=पढमा जाम्मि संखाणं चउक्कगाईण, ता तदाइयाओ संखाओ । ताहिं तदाइसंखाहिं भाणियव्वा । तत्थ तसं बायरं पज्जत्तं पत्तेयमिति तसचउक्कं । थिरं सुहं सुभगं सूसरं आएज्जं जसकित्ती-त्ति थिरछक्कं । अथिरं असुहं दूभगं दूसरं अणाएज्जं अज्जसं ति अथिरछक्कं । सुहुमं अपज्जत्तं साहारणं सुहुमतिगं । थावरं सुहुमं अपज्जत्तगं साहारणं ति थावरचउक्कं । सूभगं सूसरं आदेयं ति सुभगतिगं । दूभगं दूसरं अणाएज्जं दूभगतिगं । सुभपंचगं पुण सुभं सुभगं सूसरं आएज्जं जसकित्ती त्ति ॥११॥

इयाणिं चोदसण्हं पिंडपगईणं पत्तेयं पत्तेयं उत्तरभेयसंखा निरूवणत्थं भण्णइ—

गइयाईण य कमसो चउ[1] पण[2] पण[3] ति[4] पण[5] पंच[6] छ[7] च्छक्कं[8] ।
पण[9] दुग[10] पण—[11] ऽट्ठ[12] चउ[13] दुग[14]मिय उत्तरभेयपणसट्ठी ॥१२॥

एसा य दारगाहा, अणंतरमेव गाहाछक्केण सुत्तकारो वक्खाणिस्सइ त्ति, न वक्खाणिज्जइ ॥१२॥

निरयतिरिनरसुरगई इगबिय[1] तियचउपणिंदिजाईओ ।
ओरालियवेउव्वियआहारगतेय[2]कम्मइया ॥१-॥

१ "सियचउर८" इत्यपि पाठः । २ "०कम्मइगा" इत्यपि ।

निरयगई, तिरियगई, मणुयगई, देवगई, ॥ दारं ॥ एगिंदियजाई, बेइंदियजाई, तेइंदियजाई, चउरिंदियजाई, पंचिंदियजाई ॥ दारं ॥ ओरालियसरीरं, वेउव्वियसरीरं, आहारगसरीरं, तेयगसरीरं, कम्मगसरीरं ॥१३॥

पढमतितणुणुवंगा बंधणसंघायणा य तणुनाम ।
सुत्ते सत्तिविसेसो संघयणमिहऽट्ठिनिचउत्ति ॥१४॥

पढमाणं तिन्हं तणूणं उवंग त्ति अंगोवंगाणि भवंति । न पुण तेयसकम्मइगाणं । त जहा ओरालियअंगोवंगं वेउव्वियअंगोवंगो आहारगअंगोवंगं ॥ दारं ॥ बंधणसंघायणा य तणु नामत्ति, तणूणं=सरीराणं एगदेसअणुसरणाओ नाम=अभिहाणं जेसिं बंधणसंघायणाणं ते तहा भाणियव्वा । जहा ओरालिययसरीरबंधणं एवं वेउव्वियबंधणं, आहारगबंधणं, तेयगबंधणं, कम्मइगबंधणं ॥ दारं ॥ तहा ओरालियसरीरसंघायं, वेउव्वियसंघायं, आहारगसंघायं, । तेयगसरीरसंघायं । कम्मणसरीरसंघायं ॥ दारं ॥ संघयणे मयविसेसं दंसेइ—सुत्ते=जीवाभिगमाइआगमे सत्तिविसेसो=सामत्थभेओ संघयणं इह=कम्मविचारे अट्ठिनिचओ=अट्ठिसंठाणं ति ॥१४॥

छद्धा संघयणं वज्जरिसभनाराय[1] वज्जनारायं[2] ।
नाराय[3] मद्धनाराय[4] खीलिया[5] तह य छेवट्ठं ॥१५॥

वज्जरिसभनारायं, वज्जनारायं, नारायं, अद्धनारायं, खीलिया, छेवट्ठं संघयणं ॥ दारं ॥१५॥

समचउरंसं नग्गोहसाइखुज्जाणि वामणं हुंडं ।
संठाणा वन्ना किन्हनीललोहियहालिद्दसिया ॥१६॥

समचउरंसं संठाणं, नग्गोहमंडलसंठाणं, साइसंठाणं खुज्जसंठाणं, वामणसंठाणं, हुंडसंठाणं ॥ दारं ॥ किण्हवन्नो, नीलवन्नो, लोहियवन्नो, हालिद्दवन्नो, सुक्किलवन्नो, ॥दारं॥ ॥१६॥

सुरभिदुरभी रसा [1]पुण तित्तकडुकसायअंबिला [2]महुरा ।
फासा गुरुलहुमिउखरसीउण्हसिणिद्धरुक्खऽट्ठ ॥१७॥

सुरभिगंधो, दुरभिगंधो ॥ दारं ॥ तित्तरसो, कडुयरसो, कसायरसो, अंबिलरसो, महुररसो ॥ दारं ॥ गरुयफासो, लहुफासो, मिउफासो, कक्कसफासो, सीयफासो । उन्हफासो, निद्धफासो, रुक्खफासो ॥ दारं ॥ ॥१७॥

---

१ "पण" इत्यपि । २ "महुरो" इत्यपि ।

चउह गइव्वणुपुव्वी दुविहा य सुहासुहा य [1] विहयगई ।
गइअणुपुव्वीओ दुगं तिगं तु तं चिय नियाउजुअं ॥१८॥

निरयाणुपुव्वी, तिरियाणुपुव्वी, मणुयाणुपुव्वी, देवाणुपुव्वी ॥ दारं ॥ सुहविहायगई दुहविहायगई ॥ दारं ॥ दारगाहा वक्खाणिया ।

संपयं कित्तियाणं पगईणं मिलियाणं सन्नाविसेसं दंसेइ—

गइआणुपुव्वीओ दुगंति अप्पणीया गई आणुपुव्वी य एया दो वि निरयदुगं तिरियदुगं मणुयदुगं देवदुगसद्देहिं वुच्चंति । तिगं पुण तं चिय नियनियाउजुयं, तत्थ देवगई देवाणुपुव्वी देवाउयं तिगं वुच्चइ ॥१८॥एवं सव्वत्थ नामपगईओ एयाओ केणावि संखाविसेसेण कत्थ वि सत्थंतरे ववहरिज्जंति । तओ तमवि संखा विसेसं दंसेइ—

इय [2] तेणवई संते बंधणपन्नरसगेण तिसयं वा ।
वन्नाइभेयबंधणसंघायविणा उ सत्तट्ठी ॥१९॥

पिंडपगईणं चउदसन्हं पडिभेया पणसट्ठी पत्तेय अट्ठगेण तसदसेण थावरदसगेण य तेणवई संजाया । संति त्ति, सा संते=सत्ताहिगारे उवजुज्जइ । सा वि तेणवई बंधणपन्नरसगेण वेउव्वाहारोरालियाइ इच्चाइ गाहाए वक्खमाणेण पक्खित्तेण तिसयं=तिउत्तरं सयं संजायं । एयं संते उदए उदीरणाए य कम्मपयडिसंगहणीए अहिगिज्जइ । इह पुण बंधुदए सत्तट्ठी॥१९॥

सा सयं चेव सुत्तयारो दंसेइ —

सा बंधुदए बंधण-संघाया नियतणुग्गहणगहिया ।
वन्नाइविगप्पा वि हु न य बंधे सम्ममीसाइं ॥२०॥

सा सत्तसट्ठी नामपयडीण बंधे=बंधाहिगारे उदए=उदयाहिगारे य उवजुज्जइ त्ति । बंधणं ति बंधणाणि पंच पनरस वा, संघाया य पंच, नियतणुग्गहणेण गहिया । जस्स ओरालियाइसरीरस्स बंधणसंघाया ते तेणेव सरीरेण सह गहिया । तहा वन्नगंधरस-फासाणं जे सोलसविगप्पा ते वि वण्णाइसामण्णेण गहिया । बंधणपत्थावादेव जेसिं कम्माणं बंधो न हवइ, ताणि निदंसेइ बंधे=बंधाहिगारे न सम्मं मीसं च । जओ बंधे विसुत्तरसयमेव होइ ॥

उक्तं च—बंधे विसुत्तरसयं सयबावीसं च होइ उदयम्मि । एवं उदीरणाए अडयालसयं तु संतंमि ॥

तत्थ तेवन्ना सेसकम्माणं सम्ममीसूणा, जओ मिच्छत्तस्सेव बंधो, न सम्मत्तसम्म-मिच्छत्ताणं । तहाहि—तेसिं उप्पत्ती जीवेणं विसुद्धज्झवसायपरिणएणं करणपओगाइपओगेणं

१ 'विहगगई' इत्यपि । २ 'तेणवई' इत्यपि ।

अनियट्टीकरणचरमसमये वट्टमाणेणं ते चेव मिच्छत्तपोग्गला तिहा कया सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं मिच्छत्तं च वुच्चंति । सत्तट्ठीए नामस्स विसुत्तरं सयं होइ । उदयाइसु पुण सम्ममीसे वि होंति, तओ बावीसं सयं । अडयालं सयं पुण पणपन्नाए तेणउईए य होइ ॥२०॥

संपयं बंधणपन्नरसगं वक्खाणेइ—

वेउव्वाहारोरालियाण सगतेयकम्मजुत्ताणं ।
नव बंधणाणि इयरदुसहियाणं तिन्नि तेसिं च ॥२१॥

वेउव्वाहारोरालियाणं सरीराणं सगेणं=अप्पणा सह तेयगेणं कम्मणा य सरीरेणं जुत्ताणं नवबंधणाणि होंति, जहा-वेउव्वियपुग्गलमईयस्स वेउव्वियपोग्गलेहिं सह बंधणं वेउव्वियवेउव्वियबंधणं १, एवं वेउव्वियतेयबंधणं २, वेउव्वियकम्मगबंधणं ३, तहा आहारगआहारगबंधणं एवं तेयगकम्मणा वि ३, तहा ओरालियओरालियबंधणं एवं तेयकम्मेहिं ३, तहा इयरेहिं कम्मगतेयगेहि दोहि सहियाणं ओरालियाइसरीराणं पत्तेयं पत्तेयं एक्केक्कं एयं एयाणि तिन्नि होंति, जहा वेउव्वियतेयकम्मगबंधणं १, आहारगतेयकम्मबंधणं २, ओरालियतेयकम्मगबंधणं ३, तेसिं च तेयकम्माणं तिन्नि बंधणाणि जहा तेयगतेयगबंधणं १, तेयगकम्मबंधणं २, कम्मगकम्मगबंधणं ३, सव्वाणि पन्नरस ॥२१॥

संपयं वन्नाईणं लाघवत्थं सुभासुभाणं सन्नाविसेसं करेइ—

नीलकसिणं दुगंधं तित्तं[1] कडुअ गुरुं खरं रुक्खं ।
सीयं च असुभनवगं एक्कारसगं सुभं सेसं ॥२२॥

नीलो कसिणो य दो वन्ना,' दुगंधो=असुहगंधो एगो, तित्तो कडुओ य रसा दो, गरुयं खरं रुक्खं सीयं चत्तारि फासा, एए नव असुहनवगं भन्नन्ति। सेसा भेया एक्कारसगं (सुहं)भन्नन्ति। तं जहा—लोहियहालिद्दसुक्किला वन्ना तिन्नि, सुरभिगंधो एगो, कसायअंबिलमहुररसा तिन्नि, मिउलहुयनिद्धउण्हफासा चत्तारि ॥२२॥

इयाणिं धुवबंधि-अधुवबंधि-उदयाइवियारं सुत्तयारो निद्दंसेइ—

धुवबंधो[1]दय[2] संता[3] सव्वेयरघाइ[4] सुभ[5] अपरियत्ता[6] ।
छद्दा वि सपडिवक्खा चउद्दहविवागा य पयडीओ ॥२३॥

धुवो सव्वकालमवट्ठिओ बंधो मिच्छत्ताविरईकसायजोगेहिं जीवपएसाणं कम्मवग्गणापुग्गलेहिं सह खीरनीरनाएण संबंधो बंधो । उदओ तेसिं चेव विवागपत्ताणं कम्मपुग्गलाणं

---

१ "कटुकं" इत्यपि ।

विवागेण निज्जरणं अणुभवो वा एगट्ठा । सत्त त्ति जं कम्मं बंधागयं संकमागयं वा जाव ऽज्ज वि केणइ परिणामविसेसेण न खेज्जइ, ताव तस्स कम्मस्स संतं त्ति वुच्चइ । जओ वुत्तं—

'कम्पमसुहं सुहं वा बद्धं पि न जाव वेइय अहवा । करणंतरेण न विजोजियं ति तं भन्नई संतं ॥'' त्ति ।

धुवसद्दो पत्तेयं संबज्जइ तओ धुवबंधिणीओ सत्तचालीसा पगईओ भाणियव्वाओ । तहा छट्ठा वि सपडिवक्खा त्ति वयणाओ अधुवबंधिणीओ वि तिहत्तरी भाणियव्वाओ त्ति एयं पयं सव्वत्थ दट्ठव्वं । अधुवधुवाण सरूवं—

"नियहेउसमवेवि हु भयणिज्जो ज ण होइ पयडीणं । बंधो ता अधुवाओ धुवा अभयणिज्जबंधाओ ।"

तहा धुवोदया सत्तावीसा, अधुवोदया पंचाणउई । एएसिं सरूवं—

"अव्वुच्छिन्नो उदओ जाणं पयडी ता धुवोदइया । वोच्छिन्नो वि हु संभवइ जाण अधुवोदया ताओ ॥"

तहा धुवसत्ताओ पगईओ तीसअहियं सयं, अधुवसत्ताओ अट्ठावीसं । एएसिं सरूवं—

"कम्ममसुभं सुभं वा बद्धं पि न जाव वेइयं अहवा । करणंतरेण न विजोइयं ति तं भन्नइ संतं ।"

सव्वं कसिणं घायंति सव्वघायणीओ वीसं, इयर त्ति देसं घायंति देसघायणीओ पंचवीसं । एएसिं सरूवं—

पयडीओ विघित्ताओ देसं सव्वं हणंति घाईओ । एयासि नियसरूवं सकज्जकरणाओ विण्णेयं ।

पडिवक्खे अघायणीओ पंचहत्तरी

तहा सुभाओ पुण्णसरूवाओ, बायालीसं असुभाओ पावसरूवाओ वासीई । उक्तं च—

"बायालीसा पयडीण सुहसरूवाण पुन्नमक्खायं । बासीती असुहाओ पावं दुहहेउभावाओ ॥"

तहा अपरियत्तमाणीओ जाओ पगईओ वज्झमाणाओ वेइज्जमाणाओ वा न अन्नासि पगईणं बंधं उदयं वा खलंति, तेसिं च अभाए पगईए न बंधो उदओ वा पडिखलिज्जइ ताओ अपरियत्तमाणीओ अउणतीसं । परियत्तमाणीओ पुण जाओ पगईओ विवक्खभूयाणं बंधं उदयं वा निरुंधित्ता बंधे उदए य आगच्छंति, ताओ मन्नंति । जहा साए वज्झमाणे असायं निरुज्झइ त्ति, असाए वज्झमाणे सायं निरुज्झइ । वुत्तं च—

"विणिवारिय जा गच्छइ बंधं उदयं च अन्नपगईणं । सा हु परियत्तमाणी अणिवारिंती अपरियत्ता ॥"

तहा चउहविवागा य पयडीओ त्ति चउहविवागो=पोग्गलभवखेत्तजीवरूवो जासिं पयडीणं ताओ भाणियव्वा उत्ति ॥ तत्थ पुग्गलेसु=ओरालियाइसरीररूवेसु विवागेण वेयणं जासिं ताओ पोग्गलविवागिणीओ छत्तीसं । भवे=देवाइलक्खणे विवागो जासिं ताओ भवविवागिणीओ चत्तारि । खेत्ते=परभवगमणकालभावि वकलक्खणे विवागो जासिं ताओ खेत्तविवागिणीओ चत्तारि । जीवे जीवपएसेसु विवागो जासिं ताओ जीवविवागिणीओ अट्ठहत्तरी ॥२३॥

इयाणिं इमा दारगाहा छत्तीसाए गाहाहिं विवरेइ । तत्थ ताव "जहोद्देसं निद्देस" इति धुवबंधिणीओ भणेइ—

धुवबंधी भयकुच्छाकसाय[१६] मिच्छंतराय आवरणा[१४] ।
वन्नचउतेयकम्मागुरुलहुनिमिणोवधाया य ४७ ॥२४॥

धुवो बंधो विवक्खियगुणट्ठाणं च पडुच्च जासिं निरंतरं होइ, ताओ धुववंधिणीओ । ताओ इमाओ–भयं, 'कुच्छ' त्ति दुगंच्छा, कसाया सोलस, मिच्छत्तं, अंतरायपणगं, नाणावरण-पणगं, दंसणावरणनवगं, वन्नगंधरसफासा चत्तारि, तेयगं, कम्मइगं, अगुरुलहुयं, निम्मेणं । उवघायं च । पडिवक्खे अधुववंधिणीओ । ताओ इमाओ गाहादुगेण भणिज्जंति—

"उरलविउव्वाहारगदुगाणि६ गइ४जाइ५खगइ२अणुपुव्वी४ ।
संघयणागीद्दतसवीसु २०सासतित्थायवुज्जोयं ॥
परघायवेयणीय।उगोयहासाइदुजुयलतिवेयं ।
विग्घावरण विणा इय तेवत्तरिमधुववंधाओ ॥"

संपयं बंधपत्थावादेव जाओ जे जीवा न बंधंति, ताओ तेसिं दंसेइ—

बंधंति न इगि विगला वेउव्वियछक्कदेवनरयाउं ।
तिरिया तित्थाहारं गईतसा नरतिगुच्चं च ॥२५॥

जइवि विगलाण गहणं पढमा पंचिंदिय त्ति वत्तव्वा । तित्थाहारदुगूणा ओघा (१२०) अट्ठन्ह परिहाणी ॥

बंधंति न एगिंदिया बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिया वेउव्विछक्कं, तच्चेतत् देवदुगं २ नरयदुगं २ वेउव्विसरीरं ५ अंगुवंगं च ६ वेउव्विछक्कमेयं, निरयसुराऊहिं सह अट्ठ, तहा देवाउयं निरयाउयं च । तओ तेसिं बंधे नवोत्तरं सयं १०९ । तहा तिरिया तित्थयरं आहारदुगं च न बंधंति, तेसिं बंधे सत्तरुत्तरसयं ११७ । तहा गईतसा=तेउवाऊ नरतिगं=नरगइ-नराणुपुव्वी-नराउ-लक्खणं उच्चागोयकम्मं च न बंधंति, तेसिं बंधे पंचोत्तरसयं १०५ । एए सव्वे भवपच्चयादेव एयाओ पगईओ न बंधंति ॥२५॥ तहा—

नरयसुरसुहुमविगलत्तिगाणि आहारदुगविउव्विदुगं ।
बंधहि न सुरा सायावथावरेगिंदि नेरइया ॥२६॥

नरयतिगं=नरयगई-नरयाणुपुव्वि-नरयाउलक्खणं, एवं सुरतिगं, सुहुमं अपज्जत्तं साहारणं सुहुमतिगं, बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय विगलतिगं, आहारदुगं आहारसरीरं अंगोवंगलक्खणं, एवं वेउव्वियदुगं १६ बंधंति न सुरा=देवाः भवपच्चयाओ तेसिं बंधे चउरुत्तरसयं १०४ ।

तहा एयाओ सोलसपयडीओ सह आयावथावरएगिंदियजाईए उणवीसं नेरइया भवपच्चएणं न बंधंतिः तेसिं बंधे एकोत्तरसयं १०१॥२६॥

बंधपत्थावादेव जेसिं पयडीणं बंधकालो अबंधकालो य तं दंसेइ—

त्रिवागेण निज्जरणं अणुभवो वा एगट्ठा । सत्त त्ति जं कम्मं वंधागयं संकमागयं वा जाव ऽज्ज वि केणइ परिणामविसेसेण न खेज्जइ, ताव तस्स कम्मस्स संत त्ति वुच्चइ । जओ वुत्तं—

'कम्ममसुहं सुहं वा बद्धं पि न जाव वेइय अहवा । करणंतरेण न विजोजियं ति तं मन्नई संत ॥" त्ति ।

धुवसद्दो पत्तेयं संबज्जइ तओ धुवबंधिणीओ सत्तचालीसा पगईओ भाणियव्वाओ । तहा छब्बा वि सपडिवक्खव त्ति वयणाओ अधुवबंधिणीओ वि तिहत्तरी भाणियव्वाओ त्ति एयं पयं सव्वत्थ दट्ठव्वं । अधुवधुवाण सरूवं—

"नियहेउसमवेयंमि हु भयणिज्जो ज ण होइ पयडीणं । बंधो ता अधुवाओ धुवा अभयणिज्जबंधाओ ।"

तहा धुवोदया सत्तावीसा, अधुवोदया पंचाणउई । एएसिं सरूवं—

"अव्वुच्छिन्नो उदओ जाणं पयडी ता धुवोदइया । वोच्छिन्नो वि हु संभवइ जाण अधुवोदया ताओ ॥"

तहा धुवसत्ताओ पगईओ तीसअहियं सयं, अधुवसत्ताओ अट्ठावीसं । एएसिं सरूवं—

"कम्ममसुभं सुभं वा बद्धं पि न जाव वेइयं अहवा । करणंतरेण न विजोइयं ति तं भन्नइ संतं ।"

सव्वं कसिणं घायंति सव्वघायणीओ वीसं, इयर त्ति देसं घायंति देसघायणीओ पंचवीसं । एएसिं सरूवं—

पयडीओ विचित्ताओ देसं सव्वं हणंति घाईओ । एयासि नियसरूवं सकज्जकरणाओ विण्णेयं । पडिवक्खे अघायणीओ पंचहत्तरी

तहा सुभाओ पुण्णसरूवाओ, बायालीसं असुभाओ पावसरूवाओ बासीई । उक्तं च—

"बायालीसा पयडीण सुहसरूवाण पुन्नमक्खायं । ब.यासी असुहाओ पावं दुहहेउभावाओ ॥"

तहा अपरियत्तमाणीओ जाओ पगईओ बज्झमाणाओ वेइज्जमाणाओ वा न अन्नासि पगईणं बंधं उदयं वा खलंति, तेसिं च अभाए पगईए न बंधो उदओ वा पडिखलिज्जइ ताओ अपरियत्तमाणीओ अउणतीसं । परियत्तमाणीओ पुण जाओ पगईओ विवक्खभूयाणं बंधं उदयं वा निरुंभित्ता बंधे उदए य आगच्छंति, ताओ भन्नंति । जहा साए बज्झमाणे असायं निरुज्झइ त्ति, असाए बज्झमाणे सायं निरुज्झइ । वुत्तं च—

"विणिवारिय जा गच्छइ बंधं उदयं च अन्नपगईणं । सा हु परियत्तमाणी अणिवारिंती अपरियत्ता ॥"

तहा चउहविवागा य पयडीओ त्ति चउहविवागो=पोग्गलभवखेत्तजीवरूवो जासिं पयडीणं ताओ भाणियव्वा उत्ति ॥ तत्थ पुग्गलेसु=ओरालियाइसरीररूवेसु विवागेण वेयणं जासिं ताओ पोग्गलविवागिणीओ छत्तीसं । भवे=देवाइलक्खणे विवागो जासिं ताओ भवविवागिणीओ चत्तारि । खेत्ते=परभवगमणकालभावि वक्कलक्खणे विवागो जासिं ताओ खेत्तविवागिणीओ चत्तारि । जीवे जीवपएसेसु विवागो जासिं ताओ जीवविवागिणीओ अट्ठहत्तरी ॥२३॥

इयाणिं इमा दारगाहा छत्तीसाए गाहाहिं विवरेइ । तत्थ ताव "अट्ठोद्देसं निद्देस" इति धुवबंधिणीओ भणेइ—

धुवबंधी भयकुच्छाकसाय[१६] मिच्छंतराय आवरणा[१४] ।
वन्नचउतेयकम्मागुरुलहुनिमिणोवधाया य ४७ ॥२४॥

धुवो बंधो विवक्खियगुणट्ठाणं च पडुच्च जासिं निरंतरं होइ, ताओ धुवबंधिणीओ । ताओ इमाओ–भयं, 'कुच्छ' त्ति दुगंच्छा, कसाया सोलस, मिच्छत्तं, अंतरायपणगं, नाणावरणपणगं, दंसणावरणनवगं, वन्नगंधरसफासा चत्तारि, तेयगं, कम्मइगं, अगुरुलहुयं, निम्मेणं । उवघायं च । पडिवक्खे अधुवबंधिणीओ । ताओ इमाओ गाहादुगेण भणिज्जंति—

"उरलविउव्वाहारगदुगाणि६ गइ४जाइ५खगइ२अणुपुव्वी४ ।
संघयणागीई६तसवीसु २०सासविरत्थायवुज्जोयं ॥
परघायवेयणीयाउगोयहासाइदुजुयलतिवेयं ।
विग्घावरण विणा इय तेवत्तरिमधुवबंधाओ ॥"

संपयं बंधपत्थावादेव जाओ जे जीवा न बंधंति, ताओ तेसिं दंसेइ—

बंधंति न इगि विगला वेउव्वियछक्कदेवनरयाउं ।
तिरिया तित्थाहारं गईतसा नरतिगुच्चं च ॥२५॥

जइवि विगलाण गहणं पढमा पंचिंदिय त्ति वत्तव्वा । तित्थाहारदुगूणा ओघा (१२०) अट्ठन्ह परिहाणी ॥

बंधंति न एगिंदिया बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिया वेउव्विछक्कं, तच्चेतत् देवदुगं २ नरयदुगं २ वेउव्विसरीरं ५ अंगुवंगं च ६ वेउव्विछक्कमेयं, निरयसुराऊहिं सह अट्ठ, तहा देवाउयं निरयाउयं च । तओ तेसिं बंधे नवोत्तरं सयं १०९ । तहा तिरिया तित्थयरं आहारदुगं च न बंधंति, तेसिं बंधे सत्तरुत्तरसयं ११७ । तहा गईतसा=तेउवाऊ नरतिगं=नरगइ-नराणुपुव्वी-नराउ-लक्खणं उच्चागोयकम्मं च न बंधंति, तेसिं बंधे पंचोत्तरसयं १०५ । एए सव्वे भवपच्चयादेव एयाओ पगईओ न बंधंति ॥२५॥ तहा—

नरयसुरसुहुमविगलत्तिगाणि आहारदुगविउव्विदुगं ।
बंधहिं न सुरा सायावथावरेगिंदि नेरइया ॥२६॥

नरयतिगं=नरयगई-नरयाणुपुव्वि-नरयाउलक्खणं, एवं सुरतिगं, सुहुमं अपज्जत्तं साहारणं सुहुमतिगं, बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय विगलतिगं, आहारदुगं आहारसरीरं अंगोवंगलक्खणं, एवं वेउव्वियदुगं १६ बंधंति न सुरा=देवाः भवपच्चयाओ तेसिं बंधे चउरुत्तरसयं १०४ ।

तहा एयाओ सोलसपयडीओ सह आयावथावरएगिंदियजाईए उणवीसं नेरइया भवपच्चएणं न बंधंतिः तेसिं बंधे एक्कोत्तरसयं १०१॥२६॥

बंधपत्थावादेव जेसिं पयडीणं बंधकालो अबंधकालो य तं दंसेइ—

तिरिनिरयतिगुज्जोयाण सचउपल्लं तिसट्ठमयरसयं ।
इगिविगलजाइआयवथावरचउसुं तु पणसीयं ॥२७॥

तिरियतिगस्स नरयतिगस्स उज्जोयस्स चउहिं पल्लेहिं अहियं तिसट्ठीए सागरोवमाण य अहियं सयं अबंधकाओ । तहा एगिंदिय वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियजाईणं आयवस्स थावरसुहुम-अपज्जसाहारणाणं च पणसीए सागरोवमाणं अहियं सचउपल्लं सागरोपमाणं सयं । सव्वेसिं अंतरालभाविनरभवा य अबंधकालो होइ, वक्खमाणगाहाए संवज्झइ ।।२७।। तहा—

बत्तीसं सासाऽणंतबंधसेसपणुवीसपयडीणं ।
नरभवसहियं परमो पणिंदिसु अबंधकालो सिं ॥२८॥

बत्तीसाए अहियं सयं सागरोवमाणं अबंधकालो सासाणंतसेसपणुवीसपयडीणं होइ । तहा—"मिच्छनपुंसगवेयं निरयाउं तह य चेव निरयदुगं" इच्चाइगाहाचउक्केण मिच्छदिट्ठि-सासणेसु दोसु गुणट्ठाणगेसु वोच्छिन्ना जाओ पयडीओ, ताओ सासाणंता वुच्चंति । सासणे अंतो=बंधवुच्छेओ तेसिं ति कट्टु । ताओ एकचत्तालीसं । तासिं मज्झाओ "तिरिनिरयतिगुज्जोयाण" इच्चाइगाहाए भणिया जाओ तासिं अन्ना सेसा पणुवीसा पयडी । तासिं बत्तीसं सयं नरभव-सहियं ति=नरभवे जाओ पुव्वकोडीओ पुहुत्तपमाणाओ ता अहियं परमो=उक्किट्ठो पणिंदिसु=पंचेंदिएसु अबंधकालो होइ । ताओ पुण पंचवीसाओ इमाओ—

"थीणतिग३ दुभगतिग३ अपढमसंठाण४खगइ १संघयणं ५ ।
अणनीय१नपुंसित्थी मिच्छं ति य सेसपणुवीसा ॥" ।।२८।।

संपयं जहा एसो अबंधकालो निप्फज्जइ तहा दंसेइ—

बत्तीसं विजयाइसु गेवेज्जाईसु तेसु तेसट्ठं ।
तमपुढविजुएसु गयस्स तेसु पणसीयमयरसयं ॥२९॥

इह कोइ जीवो अहापवत्ताइणा करणेण सम्मत्तं सव्वविरइं लभिय विजएसु विवज्जइ; तत्थ तेत्तीसं सागरोवमाइदेवाउयं परिपालइ, तओ उवट्टित्ता, चरणं परिपालिय, पुणो वि तहेव परिवालइ; तओ छासट्ठी होइ; भविय मणुस्सो, मिस्सं अंतोमुहुत्तं, पुणो वि सम्मत्तं सव्वविरइं च, अच्चुयदेवलोए उववज्जइ; तत्थ बावीसं सागरोवमाइं, एवं पुणो वि सम्मत्तं सव्वविरइं च, अच्चुयदेवलोए उववज्जइ; तत्थ बावीसं सागरोवमाइं, तओ चोयालीसा, पुणो वि तेणेव रूवेण अच्चुए, तओ बीया छावट्ठी होइ । वुत्तं च—

"दोवारे विजयाइसु गयस्स तिन्नच्चुए अहव ताइं । अइरेगं नरभवियं नाणाजीवेहिं सव्वद्धं ॥१॥

एवं बत्तीसं सागरोवमसयं । सम्मत्तस्स मिस्संतरियस्स उक्कोसो ट्ठीकालो, भोग-भूमिअबंधकालो पल्लतियं भवपच्चएण, तहा पल्लोवमं १ सोहम्मे, गुणपच्चएणं, नवमे गेविज्जे सागरएगत्तीसं भवपच्चएणं, अबंधिय पुव्वुत्तं बत्तीसं सागरोवमसयं चउपल्लाहियं सव्वं तिसट्ठं सागरोवमसयं । अओ वुत्तं-"गेविज्जाईसु तेसु तेसट्ठं" ति "तमपुढविजुएसु" त्ति,

तहा-कोइ जीवो छट्ठपुढवीए बावीसं सागरोवमाइं परिवालिय, उव्वट्टित्ता, देसविरइं पडिवज्जिय, तओ सोहम्मे, तओ पुव्वकम्मेण नवमगेविज्जे सागरो एगत्तीसं अबंधित्ता, तओ अणुत्तराइसु सागरोवमसयं बत्तीसं अबंधित्ता, एवं पंचासीयं सचउपल्लं । अयं अबंधकालो एगचत्तालीसाए पयडीणं । उक्तं च—

भवपच्चइओ बंधो न भोगभूमिसु तिपलिय सत्तण्हं । अंते सम्मत्तेण पलियसुरो चविय मणुएसु ॥१॥
सव्वविरइं पवज्जिय पालिय मणुयाउ नवमगेविज्जे । इगतीससागराऊ मिच्छत्तेणं वसे तत्थ ॥२॥
चरिमे अंतमुहुत्ते सम्मत्तं लहिय चविय मणुएसु । सम्मत्तं च अछड्डिय अच्चुयसुरमणुयवारतिगं ॥३॥
छावट्ठी अणुपालिय अंतमुहुत्तं च मीसभावेण । पुणरवि सम्मत्तेणं विजयदुवारं च छावट्ठिं ॥४॥
चउपल्ला इगतीसा इग छावट्ठी पुणो वि छावट्ठी । तेवट्ठं उदहिसयं अहियं पुण चउहिँ पल्लेहिं ॥५॥
छट्ठीए नेरइओ बावीसं सागराइँ पालेइ । भवपच्चओ न बंधो थावरचउजाइआयावे ॥६॥
तत्तो उव्वट्टित्ता सम्मत्तं देसविरइ सोहम्मे । चउपलिय मणुय विरई पालिय देवत्तइगतीसा ॥७॥
तत्तो पुव्वकमेणं दो छावट्ठी उ पालए सम्मे । अइरेगा मणुयभवा पंचासीयं सचउपल्लं ॥८॥
अहवा गेवेज्जाणुत्तरेसु छावट्ठि पालए सम्मे । पच्छा य अच्चुयसुरो छावट्ठी पूरए एवं ॥९॥
सत्तसु नवपयडीसुं गुणभवपच्चय अबंधु उक्कोसो । अहियं न होइ आणाछिहियं पुण कम्मपयडीए ॥१०॥
पणुवीसाएँ अबंधो उक्कोसो होइ सम्मगुणजुत्तो । बे छावट्ठी ते पुण अहिया सव्वत्थ मणुयभवा ॥११॥
एसिं अबंधकालो सुहपयडीणं च बंधकालो य । पणसीयं बत्तीसं उदहिसयं होइ केसिं च ॥१२॥
एसो अबंधकालो य बंधकालो य होइ सण्णिस्स । उक्कोसो थिण्णेओ न य सेसजियाण एस विही ॥१३॥

इयाणिं निरंतरं बंधकालो अधुवबंधिणीणं भणइ—

समयादसंखकालं जा परमो नीयतिरयदुगबंधो ।
सुरदुगविउव्वियदुगे तिपल्लमाउसु मुहुत्तंतो ॥३०॥

नीयागोयस्स तिरियदुगस्स जहन्नओ समयं, उक्कोसओ असंखकालमिति निरंतरं बंधकालो हवइ । तेउकायवाउकाइयाणं एसो; जओ तेउवाउकाइयाणं कायट्ठिई असंखकालपमाणा, तीए एयतिगस्स न परावत्तो होइ । सुरदुगस्स देवगइ-देवाणुपुव्वीसरूवस्स वेउव्वियदुगस्स सरीरअंगोवंगलक्खणस्स जहण्णओ समओ, उक्कोसो पलिओवमतिगं; जओ देवकुरुउत्तरकुरूसु देवगइपाउग्गं बंधं बज्झइ, नो अन्नं । आउचउक्के उक्कोसओ वि अंतोमुहुत्तं ॥३०॥

तसचउपणिंदिपरघाउस्सासेसु पणसीयमुदहिसयं ।
बत्तीसं सुभगतिगुच्चपुरिससुभखगइचउरंसे ॥३१॥

तसचउक्कपणिंदिजाइपरघायनामऊसासनामाणं सययं वंधकालो। जघन्यः समयः। उक्कोसं सागरोवमसयं पणासीयं पल्लचउक्कं च । जओ पडिवक्खस्स अवंधकालो सो एएसिं वंधकालो। उस्सासपरघाया पत्तेया कहं पडिवक्खा ? भण्णइ, परघायनामं ऊसास-नामं च पज्जत्तगेण समं वज्झंति, एएण कारणेणं पज्जत्तगो पडिवक्खो। तहा सुभगतिगं उच्चागोयं पुरिसवेयं सुहविहायगई चउरंससंठाणं, एएसिं वंधकालः जघन्यः समयः, उक्कोसं सागरोवमसयं वत्तीसं पडिवक्खसंभवाओ ॥३१॥

उरले असंखपोग्गलपरियट्टा साय पुव्वकोडूणा ।
तेत्तीसयरा नरदुगतित्थुमइउरालुवंगेसु ॥३२॥

ओरालियसरीरे वंधकालो जघन्यः समयः, उक्कोसो सततं असंखपुग्गलपरियट्टा। उक्तं च-"एगिंदिय हरियंतिय पुग्गलपरियट्टया असंखिज्जा" इत्यादि। सायावेयणियस्स वंधकालो जघन्यः समयः, उक्कोसं देसूणा पुव्वकोडी; जओ केवलि सायावेयणियं चेव वंधइ, तस्स। मणुयदुगं तित्थयरनामं वज्जरिसभसंघयणं ओरालियअंगोवंगं एएसि तित्थयरवज्जाणं वंधकालो जघन्यः समयः, तित्थयरस्स अंतोमुहुत्तं जघन्यः, उक्कोसं पंचण्ह वि सागरोवमतेत्तीसं [1]अणुत्तरविमाणेसु ॥३२॥

समयादंतमुहुत्तं सेसाणं ४३ तह जहण्णबंधो वि ।
तित्थाउसु अंतमुहू धुवबंधीणं ४७ तु भंगतिगं ॥३३॥

जओ नेहुत्तरी अधुववंधणीओ तासि वंधकालो वत्तीसं अणंतरमेव पन्नवियाओ। "सेसाणं" ति अवासिं एकचत्तालीसाए पगईणं वंधकालो जघन्यः समयः। उक्कोसं अंतोमुहुत्तं। ता य इमाओ

थिरसुभजसथावरदस१०असुभागी५ खगइ१ जाइ४ संघयणा ५ ।
निरया२हारदु२गायव १ असाय१नपुमि१त्थि१दुजुयलु४ज्जोयं १ ॥

थिरनामं सुहनामं जसनामं थावरदसगं असुहसंठाणपंचगं असुहविहायगइ असुहजाइ-चउक्कं असुहसंघयणपंचगं निरयदुगं आहारगदुगं आयवनामं असायवेयणीयं नपुंसगवेयं इत्थिवेयं हासरइजुयलं अरइसोगजुयलं उज्जोयं च। एवं एकत्तालीसं ४१। तथा तित्थयर-नामस्सआउचउक्कस्स जहन्नवंधकालो अंतोमुहुत्तं। तित्थयरनामस्स जघन्यः वंधकालो कहं लब्भइ ? भन्नइ-तित्थयरनामवंधगो उवसमसेढिं आरुहइ, अनियट्टी जावउवसंतो अवंधगो, परि-वडिओ, पुणो वंधइ अंतोमुहुत्तं, पुणो सेढिं आरुहइ, पुणो वि अनियट्टी अवंधगो, परिवडिओ पुणो वंधइ । उक्तं च—"एगभवे दुक्खुत्तो चरित्तमोहं उवसमिज्जा'

---

१ अत्रौदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नोऽनुत्तरसुरापेक्षया सम्पूर्णत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणो बन्धकालः प्राप्यमाणो-ऽप्युत्कृष्टबन्धकालचिन्तायां तु सप्तमनरकनारकापेक्षयाऽन्तर्मुहूर्ताभ्यधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममानः स लभ्यते, सप्तमनरकान्निर्गतस्याऽप्यन्तर्मुहूर्तं यावत्तद्बन्धलाभात् ।

एवं अधुवबंधिणीणं साइसंतो य बंधो धुववंधिणीणं का वार्ता इत्याह–"**धुवबंधीणं तु भंगतिगं**" कहं १, अणादिअपज्जवसिओ १ अभव्वाणं, अणादिसपज्जवसिओ २ भव्वाणं, साइअपज्जवसिओ बंधं पइ असंभविओ, सादिसपज्जवसिओ ३ प्राप्तगुणानां, स च जघन्येन अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणं अवड्ढपुग्गलं। एयं भंगतिगं धुववंधिणीणं। इयरासिं च भणिओ भव्वाणं जोग्गाणं बंधकालो ॥३३॥

संपयं धुवोदयाणं इयरासिं च उदयविभागो भन्नइ—

निम्मेणथिराथिर तेय कम्मवण्णाइ अगुरुसुहुमसुहं।
नाणंतरायदसगं दंसणचउ मिच्छ धुवउदया ॥३४॥

निम्माणनामं थिरनामं अथिरनामं तेयगसरीरं कम्मगसरीरं वण्णाइचउक्कं अगुरुलहुनामं सुहनामं असुहनामं नाणावरणपणगं अंतरायपणगं दंसणचउक्कं मिच्छत्तं च, एए धुवोदया सत्तावीसं। पडिवक्खोऽधुवोदया, ताओ इमाओ— "गइ४ आणुपुव्वि ४

सुभगा ४ दुभगा ४ आउचउ ४ थावर ४ चउक्कं। संघयणा ६ गी ६ विहगदुगनीउच्चं सायमस्सायं ॥१॥
उज्जोयायवपरघाउसचउऊसासतित्थउवघायं। उरलविउव्वाहारगदुग ६ पणजाई पणनिद्दं ॥२॥
सोलसकसायनवनोकसायमोह तह सम्ममीसं च। अधुवोदयपणनउई सत्तावीसं धुवोदइया ॥३॥" ॥३४॥

इयाणिं धुवोदयाणं अधुवोदयाणं च भंगविभागं निदंसेइ—

उदयो धुवउदयाणं अणायणंतो अणाइसंतो य।
अधुवाण साइसंतो मिच्छस्स उ भंगतिगमेयं ॥३५॥

जहा–अणाइअणंतो १, अणाइसंतो १, अणाइओ अपज्जवसिओ अभव्वाणं १, अणाइओ सपज्जवसिओ भव्वाणं होइ छव्वीसाए धुवोदयाणं। अधुवोदयाणं ९५ पुण साइओ संतो होइ जहासंभवं भव्वाणमभव्वाण य। मिच्छस्स पुण भंगतिगं एयं अणंतरुत्तं, साइसंतो य ॥३५॥

भणिया धुवोदया अधुवोदया य।

इयाणिं धुवसंतदारं भणिउकामो थोवत्ताओ अधुवसंताओ भणेइ—

वेउव्वेक्कारससम्ममीसतित्थुच्चमणुदुगाउचऊ।
आहारसत्त अधुवा २८ धुवसंता सेस तीससयं ॥३६॥

निरयदुगं २, देवदुगं ३, वेउव्वियसरीरं १, अंगोवंगं १, संघायं १, वेउव्वियचउबंधणं ४, वेउव्विक्कारसयं, सम्मत्तं, सम्मामिच्छत्तं, तित्थयरनामं, उच्चागोयं, मणुयदुगं, आउचउक्कं, आहारगसरीरं, आहारगअंगोवंगं, आहारगसंघायं, आहारगबंधणचउक्कं, एवं आहारगसत्तगं; एए अट्ठावीसं अधुवसंताओ। पडिवक्खो धुवसंताओ। ता य इमा–

"संघयणछक्कतिरिदुगतेयग ७ ओरालसत्तयदुगं च। वण्णाई २० संठाणा ६ तसाइवीसा य नायव्वा ॥१॥
सायासायं विहगदुगनीयं पणजाइ अतित्थपयडीयं। पणयालधाइपयडी धुवसंते तीससयमेवं ॥२॥" ॥३६॥

संपयं जेसु गुणट्ठाणगेसु जाओ मोहनामपगईओ नियमेण विगप्पेण य संभवंति, ताओ दंसेइ—

तिसु मिच्छत्तं नियमा अट्ठसु गुणठाणएसु भयणिज्जं ।
सासायणम्मि नियमा संतं सम्मं दससु भज्जं ॥३७॥

मिच्छदिट्ठिसासायणसम्मामिच्छत्तेसु मिच्छत्तं संतं नियमेण हवइ । "**अट्ठसु गुणठाण-गेसु भयणिज्जं**"ति अविरयाइ जाव उवसंतकसाओ ताव भयणिज्जं=भजनीयं, कयाइ होइ, कयाइ न होइ । कहं भयणिज्जं ? जया तेवीससंतकम्मिओ बावीससंतकम्मिओ एगवीससंतकम्मिओ जहासंभवं एएसु गुणट्ठाणगेसु आरुहइ, तया नो मिच्छत्तसंतकम्मी हवइ । जया पुण अट्ठावीस-संतकम्मिओ चउवीससंतकम्मिओ एएसु गुणट्ठाणगेसु आरुभइ, तया मिच्छत्तसंतकम्मिओ जीवो । एवं मिच्छत्तस्स भयणा होइ । अहवा "**तिसु मिच्छत्तं नियम**" त्ति तिसु गुणट्ठाण-गेसु मिच्छत्तं नियमा अत्थि तं मिच्छदिट्ठि सासायण-सम्मामिच्छदिट्ठीसु । अट्ठसु अविरयाओ जाव उवसंतकसाओ ताव भइयव्वं=होइ, वा नवा । उवसमसेणिं पडुच्च होइ, खाइगसम्मदिट्ठिं पडुच्च न होइ । "**सासायणम्मि नियमा संतं सम्मं**"ति ॥ सासायणसम्मदिट्ठिम्मि सम्मत्तं नियमा अत्थि जेण उवसनसम्मत्तऽद्धाए सासायणो सो य अट्ठावीससंतकम्मिओ "**दससु भ[यणि]ज्जं**" ति आइमेसु सासायणवज्जेसु जाव उवसंतकसाओ एएसु दससु सम्मत्तं भयणिज्जं । कहं ? भन्नइ,—मिच्छदिट्ठिणि उव्वलियं अणुप्पाइयं वातं पडुच्च नत्थि, अट्ठावीस-संतकम्मियस्स अत्थि । सम्ममिच्छदिट्ठिम्मि उव्वलियं पडुच्च नत्थि, जओ सम्मत्ते उव्वलिए वि सम्मामिच्छदिट्ठी लब्भइ; अणुव्वलियसम्मत्तस्स अत्थि । सेसेसु खाइगसम्मदिट्ठिं पडुच्च नत्थि, इहरहा अत्थि ॥३७॥

सासणमीसे मीसं संतं नियमेण नवसु भइयव्वं ।
नियमा मिच्छासाणे पढमकसाया नवसु भज्जा ॥३८॥

सासायणे मीसे य सम्मामिच्छत्तं नियमा अत्थि । कहं ? भन्नइ,—सासायणे नियमा अट्ठावीससंतकम्मिगो । सम्मामिच्छदिट्ठी पुण सम्ममिच्छत्तेण विणा न होइ त्ति काउं । गुणठाण-नवगम्मि भयणिज्जं=मिच्छदिट्ठी असंजयसम्मदिट्ठी जाव उवसंतकसाओ एएसु नवसु होज्ज वा नवा । कहं ?, भन्नइ,—मिच्छदिट्ठिस्स अट्ठावीससंतकम्मियस्स सत्तावीससंतकम्मियस्स अत्थि, छव्वीससं-तकम्मियस्स नत्थि । सेसेसु खाइगसम्मदिट्ठीं पडुच्च नत्थि, इयरहा अत्थि । तहा नियमा मिच्छदिट्ठिस्स सासणस्स य पढमकसाया अणंताणुबंधिणो होंति, जेण एए अणंताणुबंधिणो नियमा बंधंति । '**नवसु भज्ज**''त्ति सम्ममिच्छदिट्ठी जाव उवसंतकसाओ एएसु नवसु ठाणेसु अणंतानुबंधे संतं भइयव्वं । कहं ?, भन्नइ,—उव्वलियं पडुच्च नत्थि, अन्नहा अत्थि । अन्ने

आयरिया पंचसु भयणिज्जं, इइ व्याख्यानयंति । जओ तेसिं मएण अट्ठावीससंतकम्मिओ न उवसमसेढी(अ) आरुहइ, तओ अपमत्तं जाव भयणिज्जा अणंताणुबंधिणो होंति ॥३८॥

सव्वगुणे साहारं सासणमिस्सरहिएसु वा तित्थं ।
नोभयसंते मिच्छे अंतमुहुत्तं भवे तित्थे ॥३९॥

सव्वेसु गुणट्ठाणगेसु आहारसत्तगस्स संतं संभवइ। तित्थयरनामं पुण मीससासायणवज्जेसु संतं होइ । वासद्दाओ केसु वि गुणट्ठाणगेसु भवइ वा नवा । तित्थयरस्स आहारसत्तगस्स य उभयसंता हवइ, तया मिच्छत्तं न गच्छइ । "अंतमुहुत्तं भवे तित्थे" त्ति, तित्थयरनामसंतं मिच्छद्दिट्ठिम्मि अंतमुहुत्तं लब्भइ । कहं ?, भण्णइ—नरए बद्धाउओ वेयगसम्मत्तं पडिवज्जइ विसुज्झमाणो तित्थयरनामं बंधइ, अंतकाले सम्मत्तं चमेइ, मिच्छत्तं गच्छइ, नरएसु उववज्जइ, पज्जत्तिभावं गओ सम्मत्तं पडिवज्जइ। एवं मिच्छदिट्ठिम्मि तित्थयरनामं अंतोमुहुत्तं संता लभइ ॥३९॥

संपयं धुववंधोदयसंताइ भणियं ।

संपयं सव्वेयरघाइदारं सपडिवक्खं भण्णइ । तत्थ ताव पढमं सव्वघाइणीओ, ता य इमा—

केवलियनाणदंसणआवरणं बारसाइमकसाया ।
मिच्छत्त निद्दपणगं इय वीसं सव्वघाईओ ॥४०॥

केवलनाणावरणं१, केवलदंसणावरणं२, आइमा अणंताणुबंधिअपच्चक्खाणपच्चक्खाण लक्खणा कसाया बारस, मिच्छत्तं, निद्दापणगं च, इय वीसं सव्वघाईओ ॥४०॥

संपयं सव्वघाइत्तं देसघाइत्तं भावेइ—

सम्मत्तनाणदंसणचरित्तघाइत्तणाउ घाईओ ।
तस्सेस देसघाइत्तणाउ पुण देसघाईओ ॥४१॥

सम्मत्तनाणदंसणचरित्तस्स य सव्वहा हणणसीलत्तणेण सव्वघाइणीओ । तत्थ मिच्छत्तं अणंताणुबंधिणो य सम्मत्तस्स जीवाजीवाइसद्दहणरूवस्स घाइगा । केवलणाणकेवलदंसणावरणे पुण केवलनाणकेवलदंसणाणं सव्वहा घाइगे । उक्तं च—"परं सुट्ठु वि मेहसमुदए होइ पहा चंदसूराणं"॥ ति वचनात् जीवलक्खणभूयस्स अणंतिमकेवलभागस्स अणावरणमेव । अन्नहा जीवो अजीवत्तणं पावेज्ज त्ति । निद्दापणगं खाओवसमचक्खुदंसणाईण घाइगं, बीयकसाया देसविरईए, तइयकसाया सव्वविरईए चरित्तस्स घाइगा ॥४१॥

संजलणनोकसाया चउनाणतिदंसणावरणविग्घा ।
पणवीसदेसघाई सेसअघाई सरूवेण ॥४२॥

संपयं जेसु गुणट्ठाणगेसु जाओ मोहनामपगईओ नियमेण विगप्पेण य संभवंति, ताओ दंसेइ—

तिसु मिच्छत्तं नियमा अट्ठसु गुणठाणएसु भयणिज्जं ।
सासायणम्मि नियमा संतं सम्मं दससु भज्जं ॥३७॥

मिच्छदिट्ठिसासायणसम्मामिच्छत्तेसु मिच्छत्तं संतं नियमेण हवइ । "अट्ठसु गुणठाणगेसु भयणिज्जं"ति अविरयाइ जाव उवसंतकसाओ ताव भयणिज्जं=भजनीयं, कयाइ होइ, कयाइ न होइ । कहं भयणिज्जं ? जया तेवीससंतकम्मिओ बावीससंतकम्मिओ एगवीससंतकम्मिओ जहासंभवं एएसु गुणट्ठाणगेसु आरुहइ, तया नो मिच्छत्तसंतकम्मी हवइ । जया पुण अट्ठावीससंतकम्मिओ चउवीससंतकम्मिओ एएसु गुणट्ठाणगेसु आरुभइ, तया मिच्छत्तसंतकम्मिओ जीवो । एवं मिच्छत्तस्स भयणा होइ । अहवा "तिसु मिच्छत्तं नियम" त्ति तिसु गुणट्ठाणगेसु मिच्छत्तं नियमा अत्थि तं मिच्छदिट्ठि सासायण-सम्मामिच्छद्दिट्ठीसु । अट्ठसु अविरयाओ जाव उवसंतकसाओ ताव भइयव्वं=होइ, वा नवा । उवसमसेणिं पडुच्च होइ, खाइगसम्मदिट्ठिं पडुच्च न होइ । "सासायणम्मि नियमा संतं सम्मं"ति ।। सासायणसम्मद्दिट्ठिम्मि सम्मत्तं नियमा अत्थि जेण उवसमसम्मत्तऽद्धाए सासायणो सो य अट्ठावीससंतकम्मिओ "दससु भ[यणि]ज्जं" ति आइमेसु सासायणवज्जेसु जाव उवसंतकसाओ एएसु दससु सम्मत्तं भयणिज्जं । कहं ? भण्णइ,—मिच्छदिट्ठिणि उव्वलियं अणुप्पाइयं वा तं पडुच्च नत्थि, अट्ठावीससंतकम्मियस्स अत्थि । सम्मामिच्छद्दिट्ठिम्मि उव्वलियं पडुच्च नत्थि, जओ सम्मत्ते उव्वलिए वि सम्मामिच्छद्दिट्ठी लब्भइ; अणुव्वलियसम्मत्तस्स अत्थि । सेसेसु खाइगसम्मद्दिट्ठिं पडुच्च नत्थि, इहरहा अत्थि ॥३७॥

सासणमीसे मीसं संतं नियमेण नवसु भइयव्वं ।
नियमा मिच्छासाणे पढमकसाया नवसु भज्जा ॥३८॥

सासायणे मीसे य सम्मामिच्छत्तं नियमा अत्थि । कहं ? भण्णइ,—सासायणे नियमा अट्ठावीससंतकम्मिगो । सम्मामिच्छद्दिट्ठी पुण सम्मामिच्छत्तेण विणा न होइ त्ति काउं । गुणठाणनवगम्मि भयणिज्जं=मिच्छद्दिट्ठी असंजयसम्मदिट्ठी जाव उवसंतकसाओ एएसु नवसु होज्ज वा नवा। कहं ?, भण्णइ,—मिच्छदिट्ठिस्स अट्ठावीससंतकम्मियस्स सत्तावीससंतकम्मियस्स अत्थि, छव्वीससंतकम्मियस्स नत्थि । सेसेसु खाइगसम्मद्दिट्ठिं पडुच्च नत्थि, इयरहा अत्थि । तहा नियमा मिच्छद्दिट्ठिस्स सासणस्स य पढमकसाया अणंताणुबंधिणो होंति, जेण एए अणंताणुबंधिणो नियमा बंधंति । 'नवसु भज्ज"त्ति सम्मामिच्छद्दिट्ठी जाव उवसंतकसाओ एएसु नवसु ठाणेसु अणंतानुबंधे संतं भइयव्वं । कहं ?, भण्णइ,—उव्वलियं पडुच्च नत्थि, अन्नहा अत्थि । अन्ने

नाणंतरायदंसणचउक्कपरघायतित्थउस्सासं ।
नामधुवबंधिनवमिच्छभयदुगुंछा अपरियत्ता ॥४७॥

नाणावरणपणगं, अंतरायपणगं, दंसणावरणचउक्कं, परघायं, तित्थयरनामं, उस्सासं नामं, धुवबंधिणीओ य नवसंखाओ, ता इमा—वण्णचउतेयकम्मागुरुलहुनिमिणोवघाया य, मिच्छत्तं, भयं, दुगुंछा य । एयाओ अपरियत्तमाणीओ अउणतीसं ।

परियत्तमाणीओ पुण इमाओ—

"गइ४ जाइ५तितणु३वंगा३ संघयणा६गीइ६विहग२अणुपुव्वी४। तसथावराइवीसं आउचऊ सायमस्सायं ॥१॥
सोळसकसायनवनोमयकुच्छविणा उ निद्दपणगं च। उज्जोआयवनीउच्च होंति परियत्तइगनउई॥२॥" ॥४७॥

अह च ओहविवागा पयडीओ दंसेइ गाहादुगेण—

संठाणा संघयणा सरीरुवंगाणि आयवुज्जोया ।
नामधुवोदय साहारणियरउवघायपरघाया ॥४८॥
उदइयभावा पोग्गलविवागिणो आउभवविवागीणि ।
खेत्तविवागणुपुव्वी जीवविवागीओ सेसाओ ॥४९॥

संठाणछक्कं, संघयणछक्कं, सरीरतिगं, अंगोवंगतिगं, आयवं, उज्जोयं, नामधुवोदया य, ता उ इमाओ—निम्मेणथिराथिरतेयकम्मवण्णाइचउअगुरुलहुसुहमसुहं १२। साहारणं, पत्तेयं, उवघायं, परघायं च, एयाओ छत्तीसं। "उदइयभावा" उदओ=विवागो तओ उदओ जस्स अत्थि सो उदइओ, उदइओ भावो जासिं ताओ उदइयभावाओ। तहा एयाओ चेव पोग्गलविवागिणीओ वुच्चंति। आऊणि पुण चत्तारि भवविवागीणि भन्नंति। आणुपुव्वीओ चत्तारि खेत्तविवागिणीओ वुच्चंति। सेसाओ सव्वाओ वि जीवविवागिणीओ होंति। ता इमा—

"चउगइ४विहदुग२जाई५ तसतिग३उस्सासस्सुभग४दुभगचउ४। थावरसुहुमअपज्जं नीउच्चं सायमस्सायं ॥१॥
तित्थं सम्मं मीसं पणयालीसं च घायपयडीओ । इय अठ्ठत्तरिपयडी जीवविवागा मुणेयव्वा ॥२॥"

जा वि पोग्गलाइविवागिणीओ ता वि जीवविवागिणी च्चेव। परं पोग्गलाण संजोगेण विवागं देंति, अओ पोग्गलविवागत्ताइनामेण भणियाउ त्ति न दोसो । पोग्गलविवागाइसद्दत्थो दारगाहाए सूचिओ ॥४८-४९॥

इयाणिं उदयभावाहिगारादेव सव्वे भावे परूवेइ—

भावा उवसमिय १ खइय २ खओवसम ३ उदय ४ परिणामा ५ ।
दु १ नव २ ऽट्ठारि ३ गवीसा ४ तिग ५ भेया सन्निवाओ य ॥५०॥

संजलणचउक्कं, नोकसायनवगं, मइनाणावरणं, सुयनाणावरणं, ओहिनाणावरणं, मणपज्जवनाणावरणं, चक्खुदंसणावरणं, अचक्खुदंसणावरणं, ओहिदंसणावरणं, अंतरायपणगं च, एए पणवीसं देसघाइणीओ। सेसाओ उद्धरियाओ अघायणीओ, सरूवेण=सहावेण। ता य इमा ७५-

"तसवीसं२०पत्तेयाऽ,वेयणियदुगं च२, आउ चत्तारि४।
गइ४ जाइ४ तणु उवंगा३ संघयणा६ गीय ६ नी१ उच्चं १॥
वन्नरसगंधफासा४ देवनरतिरियनिरियपुव्वीओ।
सुह असुह। विहगगई अघाइ पयडीओ पणसयरी॥१-२॥"

इयाणिं सुभासुभाओ पयडीओ दंसेइ—

नरतिरिसुराउमुच्च सायं परघायआयवुज्जोयं।
तित्थोसासनिमेणं पणिंदिवइरुसभचउरसं ॥४३॥

मणुयाउयं, देवाउयं, तिरियाउयं तं सुभं पुण भोगभूमी पडुच्च संभवियं, उच्चागोयं, सायावेयणियं, परघायनामं, आयवनामं, उज्जोयनामं, तित्थयरनामं, उस्सासनामं, निम्माणनामं, पणिंदिजाई, वज्जरिसभनारायं संघयणं, समचउरंससंठाणं ॥४३॥

तसदस चउवण्णाई सुरमणुदुगपंचतणुउवंगतिगं।
अगुरुलहुपढमखगई बायालीसं ति सुहपयडी ॥४४॥

तसदसगं, वण्णाइचउक्कं, देवदुगं, मणुयदुगं, सरीरपंचगं, उवंगतिगं, अगुरुलहुयं, सुभखगई, एया बायालीसं, इतिशब्दः समाप्तौ, सुहपयडीओ भन्नंति ॥४४॥

सेसा पडिवक्खओ असुहपयडीओ निदंसेइ—

थावरदसचउजाई अपढमसंठाणखगइसंघयणा।
तिरिनरयदुगुवघायं वन्नचऊ नामचउतीसा ॥४५॥

थावरदसगं, पंचिंदिजाइवज्जाओ चत्तारि जाईओ, असुभसंठाणपंचगं, असुभा खगई असुभसंघयणपंचगं, तिरियदुगं, निरयदुगं, उवघायं, असुभपयडीओ दोसु वि वण्णाइचउक्कगहणेण असुभवण्णाइचउक्कं, एवं नाम चउतीसा।४५॥

निरयाउनीयअस्सायघाइपणयालसहियबासीई।
असुभपयडी उ दोसु वि वन्नाइचउक्कगहणेण ॥४६॥

निरयाउयं, नीयगोयं, असायवेयणीयं, पणयालीसं घाइपयडीओ, एवं असुभपयडी बियासी। दोसु वि वन्नाइचउक्कं सुभासु सुभं असुभासु असुभं ति ॥४६॥

इयाणिं अपरियत्तमाणीओ परियत्तमाणीओ य भन्नंति—

नाणंतरायदंसणचउक्कपरघायतित्थउस्सासं ।
नामधुवबंधिनवमिच्छभयदुगुंछा अपरियत्ता ॥४७॥

नाणावरणपणगं, अंतरायपणगं, दंसणावरणचउक्कं, परघायं, तित्थयरनामं, उस्सासं नामं, धुवबंधिणीओ य नवसंखाओ, ता इमा–वण्णचउतेयकम्मागुरुलहुनिमिणोवघाया य, मिच्छत्तं, भयं, दुगुंछा य । एयाओ अपरियत्तमाणीओ अउणतीसं ।

परियत्तमाणीओ पुण इमाओ–

"गइ४ जाइ५तितणु३वंगा३ संघयणा६गीइ६विहग२आणुपुव्वी४। तसथावराइवीसं आउचऊ सायमस्सायं ॥१॥
सोळसकसायनवनोभयकुच्छविणा उ निद्दपणगं च। उज्जोआयवनीउच्च होंति परियत्तइगनउई॥२॥" ॥४७॥

अह च ओहविवागा पयडीओ दंसेइ गाहादुगेण—

संठाणा संघयणा सरीरुवंगाणि आयवुज्जोया ।
नामधुवोदय साहारणियरउवघायपरघाया ॥४८॥
उदइयभावा पोग्गलविवागिणो आउभवविवागीणि ।
खेत्तविवागणुपुव्वी जीवविवागीओ सेसाओ ॥४९॥

संठाणछक्कं, संघयणछक्कं, सरीरतिगं, अंगोवंगतिगं, आयवं, उज्जोयं, नामधुवोदया य, ता उ इमाओ–निम्मेणथिराथिरतेयकम्मवण्णाइचउअगुरुलहुसुहमसुहं १२। साहारणं, पत्तेयं, उवघायं, परघायं च, एयाओ छत्तीसं। "उदइयभावा" उदओ=विवागो तओ उदओ जस्स अत्थि सो उदइओ, उदइओ भावो जासिं ताओ उदइयभावाओ। तहा एयाओ चेव पोग्गलविवागिणीओ वुच्चंति । आऊणि पुण चत्तारि भवविवागीणि मन्नंति । आणुपुव्वीओ चत्तारि खेत्तविवागिणीओ वुच्चंति । सेसाओ सव्वाओ वि जीवविवागिणीओ होंति । ता इमा—

"चउगइ४विहदुग२जाई५ तसतिग३उस्साससुभग४दुभगचउ ४। थावरसुहुमअपज्जं नीउच्चं सायमस्सायं ॥१॥
तित्थं सम्मं मीसं पणयालीसं च घायपयडीओ । इय अट्ठत्तरिपयडी जीवविवागा मुणेयव्वा ॥२॥"

जा वि पोग्गलाइविवागिणीओ ता वि जीवविवागिणी चेव । परं पोग्गलाण संजोगेण विवागं देंति, अओ पोग्गलविवागत्ताइनामेण भणियाउ त्ति न दोसो । पोग्गलविवागाइसद्दत्थो दारगाहाए सूचिओ ॥४८-४९॥

इयाणिं उदयभावाहिगारादेव सव्वे भावे परूवेइ—

भावा उवसमिय १ खइय २ खओवसम ३ उदय ४ परिणामा ५ ।
दु १ नव २ ऽट्ठारि ३ गवीसा ४ तिग ५ भेया सन्निवाओ य ॥५०॥

भवंति=संपज्जंति भावा=जीवपरिणामविसेसा ते य छसंखा समन्निया । तत्थ उवसमिओ १, खाइओ २, खओवसमिओ ३, उदइओ ४, पारिणामिओ ५, एए पंचेव जहसंखं दुमेय-नवमेय-अट्ठारसमेय-इगवीसमेय-तिमेया होंति । छट्ठो पुण सन्निवाओ=मेलावओ ॥५०॥

इयाणिं जे सम्मत्ताइगुणा जत्थ भावे संभवंति ते तत्थ दंसेइ—

सम्मचरणाणि पढमे, बीए वरनाणदंसणचरित्ता ।
तह दाणलाभभोगोवभोगविरयाणि सम्मं च ॥५१॥

उवसमियं चरित्तं, उवसमियं सम्मत्तं: एए पढमे होंति । केवलनाणं १, केवलदरिसणं १, खाइयं चरणं १, दाणलद्धी १, लाभलद्धी १, भोगलद्धी १, उवभोगलद्धी १, वीरियलद्धी १, एए सव्वक्खएण पंचलद्धीओ, खाइयसम्मत्तं १, एए बीए खाइयभावे ॥५१॥

चउनाणऽन्नाणतिगं दंसणतिगपंचदाणलद्धीओ ।
सम्मत्तं चारित्तं च संजमासंजमो तइए ॥५२॥

नाणचउक्कं, अन्नाणतिगं, दंसणतिगं, पंचदाणलद्धीओ, एए देसखएणं, सम्मत्तं, चारित्तं, "**संजमासंजमो**" त्ति देसविरओ एए तइए खाओवसमियभावे ॥५२॥

चउगइचउक्कसाया लिंगतिगं लेसछक्कमण्णाणं ।
मिच्छत्तमसिद्धत्तं असंजमो चोत्थभावम्मि ॥५३॥

गइचउक्कं, कसायचउक्कं, वेदतिगं, लेसछक्कं, अन्नाणं, मिच्छत्तं, "**असिद्धत्तं**" ति संसारित्तं "**असंजमो**" त्ति देसओ सव्वओ वा अनियमो १, एए चउत्थे=उदइयभावे एगवीसं ॥५३॥

पंचमगम्मि य भावे जीवाभव्वत्तभव्वयाईणि ।
पंचण्ह वि भावाणं भेया एमेव तेवण्णा ॥५४॥

जीवत्तं भव्वत्तं अभव्वत्तं आइसद्दाओ असंखेयपए सत्ताइया ।

इयाणिं पुव्वमेयाणं संपिंडियाणं संखा निदंसेइ—पंचण्ह वि भावाणं तेवण्णं भेया होंति । एवं पुव्वकम्मेण दोण्हं नवण्हं अट्ठारसण्हं एगवीसाए तिन्हं च संजोयणेण ॥५४॥

संपयं सन्निवाइयभावे भेए संभविणो असंभविणो य दंसेइ—

उदइयखाओवसमियपरिणामेहिं चउरो गइचउक्के ।
खइयजुएहिं वि चउरो तदभावे उवसमजुएहिं ॥५५॥

उदइयं मणुयत्तं, खाओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामियं जीवत्तं, एस तिगजोगो १ एक्को; अन्ने तिगजोगा नेरइयतिरिक्खदेवत्तणे पक्खित्ते मणुयत्ते उस्सारिए होंति। गइभेएण चत्तारि तिगजोगा। तहा एए उदइयखाओवसमियपारिणामियभेया खइयसम्मत्तेण चउजोगो। सो वि चउगइभेएण चत्तारि चउजोगा। अहवा खाइयं उस्सारिय उवसमसम्मत्तेण पक्खित्तेण चउजोगो ३। ते वि गइचउक्कभेएण चत्तारि चउजोगा। एवं सव्वे बारस होंति ॥५५॥

एक्केक्को उवसमसेढिसिद्धकेवलिसु एवमविरुद्धा ।
पन्नरस सन्निवाइयभेया वीसं असंभविणो ॥५६॥

उवसमिय–खाइय-खाओवसमिय-ओदइय-पारिणामिएहिं पणजोगे उवसमसेढीए भंगेक्को मणुस्साणं १। खाइय-पारिणामिएहिं दुगजोगे भंगेक्को य सिद्धाणं २। खाइय-ओदइय-पारिणामिएहिं तिगजोगे भंगेक्को केवलीणं ३। एवं एए भंगा संभविया पुव्वुत्ता भंगा बारस उवसम-सेढि-सिद्ध-केवलिभंगा तिन्नि ३। एवं सन्निवाइगभावे पण्णरस भंगा। वीसं असंभविया। ते य इमे-उवसमियं खाइयं १, उवसमियं खाओवसमियं २, उवसमियं उदइयं ३, उवसमियं पारिणामियं ४, खाइयं खाओवसमियं ५, खाइयं उदइयं ६, खाइयं परिणामियं, (१) सिद्धभंगो; उवसमियं उदइयं ७, खाओवसमियं पारिणामियं ८, उदइयं पारिणामियं ९ दुगजोगे नव भंगा, असंभविया; उवसमियं खाइयं खाओवसमियं १, उवसमियं खाइयं ओदइयं २, उवसमियं खाइयं पारिणामियं ३. उवसमियं खाओवसमियं उदइयं ४, उवसमियं खाओवसमं पारिणामियं ५, उवसमियं उदइयं पारिणामियं ६, खाइयं खाओवसमियं उदइयं ७, खाइयं खाओवसमं पारिणामियं ८, तिगजोगे अट्ठ असंभविया। खाइयं उदइयं पारिणामियं (२) केवलिभंगो सुद्धो, खाओवसमियं उदइयं पारिणामियं (३) गइचउक्कभंगो ४, एवं तिगजोगे भंगा अट्ठ असंभविया, उवसमियं खाइयं खओवसमियं उदइयं १, उवसमियं खाइयं खाओवसमियं पारि-णामियं २, उवसमियं खाइयं उदइयं पारिणामियं ३, उवसमियं खाओवसमियं उदइयं पारि-णामियं (४) गइचउक्कभंगो ४, खाइयं खाओवसमं उदइयं पारिणामियं (५) गइचउक्कभंगो ४। एवं चउक्कजोगे तिन्नि असंभविया। सव्वे वि वीसं असंभविया। उवसमियं खाइयं खाओवसमियं उदइयं पारिणामियं (६) उवसमसेढिभंगो। एवं भंगा २६। संभविया भंगा ६। असंभविया भंगा २० ॥५६॥

इयाणि संभविणो जे छन्भंगा ते विसेसओ दंसेइ—

दुगजोगो सिद्धाणं केवलिसंसारियाण तिगजोगो ।
चउजोगजुयं चउसु वि गईसु मणुयाण पणजोगो ॥५७॥

भवंति=संपज्जंति भावा=जीवपरिणामविसेसा ते य छसंखा समक्खिया । तत्थ उवसमिओ १, खाइओ २, खओवसमिओ ३, उदइओ ४, पारिणामिओ ५, एए पंचेव जहसंखं दुभेय-नवभेय-अट्ठारसभेय-इगवीसभेय-तिभेया हौंति । छट्ठो पुण सन्निवाओ=मेलावओ ॥५०॥

इयाणिं जे सम्मत्ताइगुणा जत्थ भावे संभवंति ते तत्थ दंसेइ—

सम्मचरणाणि पढमे, बीए वरनाणदंसणचरित्ता ।
तह दाणलाभभोगोवभोगविरयाणि सम्मं च ॥५१॥

उवसमियं चरित्तं, उवसमियं सम्मत्तंः एए पढमे होंति । केवलनाणं १, केवलदरिसणं १, खाइयं चरणं १, दाणलद्धी १, लाभलद्धी १, भोगलद्धी १, उवभोगलद्धी १, वीरियलद्धी १, एए सव्वक्खएण पंचलद्धीओ, खाइयसम्मत्तं १, एए बीए खाइयभावे ॥५१॥

चउनाणऽन्नाणतिगं दंसणतिगपंचदाणलद्धीओ ।
सम्मत्तं चारित्तं च संजमासंजमो तइए ॥५२॥

नाणचउक्कं, अन्नाणतिगं, दंसणतिगं, पंचदाणलद्धीओ, एए देसखएणं, सम्मत्तं, चारित्तं, "**संजमासंजमो**" त्ति देसविरओ एए तइए खाओवसमियभावे ॥५२॥

चउगइचउक्कसाया लिंगतिगं लेसछक्कमण्णाणं ।
मिच्छत्तमसिद्धत्तं असंजमो चोत्थभावम्मि ॥५३॥

गइचउक्कं, कसायचउक्कं, वेदतिगं, लेसछक्कं, अन्नाणं, मिच्छत्तं, "**असिद्धत्तं**" ति संसारित्तं "**असंजमो**" त्ति देसओ सव्वओ वा अनियमो १, एए चउत्थे=उदइयभावे एगवीसं ॥५३॥

पंचमगम्मि य भावे जीवाभव्वत्तभव्वयाईणि ।
पंचण्ह वि भावाणं भेया एमेव तेवण्णा ॥५४॥

जीवत्तं भव्वत्तं अभव्वत्तं आइसद्दाओ असंखेयपए सत्ताइया ।

इयाणिं पुव्वभेयाणं संपिंडियाणं संखा निदंसेइ—पंचण्ह वि भावाणं तेवण्णं भेया होंति । एवं पुव्वकम्मेण दोण्हं नवण्हं अट्ठारसण्हं एगवीसाए तिन्हं च संजोयणेण ॥५४॥

संपयं सन्निवाइयभावे भेए संभविणो असंभविणो य दंसेइ—

उदइयखाओवसमियपरिणामेहिँ चउरो गइचउक्के ।
खइयजुएहिँ वि चउरो तदभावे उवसमजुएहिं ॥५५॥

उदइयं मणुयत्तं, खाओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामियं जीवत्तं, एस तिगजोगो १ एक्को; अन्ने तिगजोगा नेरइयतिरिक्खदेवत्तणे पक्खित्ते मणुयत्ते उस्सारिए होंति । गइभेएण चत्तारि तिगजोगा । तहा एए उदइयखाओवसमियपरिणामियभेया खइयसम्मत्तेण चउजोगो । सो वि चउगइमेएण चत्तारि चउजोगा । अहवा खाइयं उस्सारिय उवसमसम्मत्तेण पक्खित्तेण चउजोगो ३ । ते वि गइचउक्कमेएण चत्तारि चउजोगा । एवं सव्वे बारस होंति ॥५५॥

एक्केक्को उवसमसेढिसिद्धकेवलिसु एवमविरुद्धा ।
पन्नरस सन्निवाइयभेया वीसं असंभविणो ॥५६॥

उवसमिय—खाइय-खाओवसमिय-ओदइय-पारिणामिएहिं पणजोगे उवसमसेढीए भंगेक्को मणुस्साणं १ । खाइय-पारिणामिएहिं दुगजोगे भंगेक्को य सिद्धाणं २ । खाइय-ओदइय-पारिणामिएहिं तिगजोगे भंगेक्को केवलीणं ३ । एवं एए भंगा संभविया पुव्वुत्ता भंगा बारस उवसमसेढि-सिद्ध-केवलिभंगा तिन्नि ३ । एवं सन्निवाइगभावे पण्णरस भंगा । वीसं असंभविया । ते य इमे-उवसमियं खाइयं १, उवसमियं खाओवसमियं २, उवसमियं उदइयं ३, उवसमियं पारिणामियं ४, खाइयं खाओवसमियं ५, खाइयं उदइयं ६, खाइयं परिणामियं, (१) सिद्धभंगो; उवसमियं उदइयं ७, खाओवसमियं पारिणामियं ८, उदइयं पारिणामियं ९ दुगजोगे नव भंगा, असंभविया; उवसमियं खाइयं खाओवसमियं १, उवसमियं खाइयं ओदइयं २, उवसमियं खाइयं पारिणामियं ३. उवसमियं खाओवसमियं उदइयं ४, उवसमियं खाओवसमं पारिणामियं ५, उवसमियं उदइयं पारिणामियं ६, खाइयं खाओवसमियं उदइयं ७, खाइयं खाओवसमं पारिणामियं ८, तिगजोगे अट्ठ असंभविया । खाइयं उदइयं पारिणामियं (२) केवलिभंगो सुद्धो, खाओवसमियं उदइयं पारिणामियं (३) गइचउक्कभंगो ४, एवं तिगजोगे भंगा अट्ठ असंभविया, उवसमियं खाइयं खओवसमियं उदइयं १, उवसमियं खाइयं खाओवसमियं पारिणामियं २, उवसमियं खाइयं उदइयं पारिणामियं ३, उवसमियं खाओवसमियं उदइयं पारिणामियं (४) गइचउक्कभंगो ४, खाइयं खाओवसमं उदइयं पारिणामियं (५) गइचउक्कभंगो ४ । एवं चउक्कजोगे तिन्नि असंभविया । सव्वे वि वीसं असंभविया । उवसमियं खाइयं खाओवसमियं उदइयं पारिणामियं (६) उवसमसेढिभंगो । एवं भंगा २६ । संभविया भंगा ६ । असंभविया भंगा २० ॥५६॥

इयाणि संभविणो जे छब्भंगा ते विसेसओ दंसेइ—

दुगजोगो सिद्धाणं केवलिसंसारियाण तिगजोगो ।
चउजोगजुयं चउसु वि गईसु मणुयाण पणजोगो ॥५७॥

तत्थ खाइय-पारिणामिएहिं दुहिं जोगो सिद्धाणं। उदइय-खाइय-पारिणामिएहिं केवलीणं। संसारियाणं पुण चउगइयाण वि तिगजोगो उदइय-खाओवसमिय-पारिणामिएहिं। चउजोगो दुविहो चउसु वि गईसु। तत्थ एसो तिगजोगो खाइएण वा उवसमिएण वा चउजोगो। मणुयाण खाइगसम्मदिट्ठीणं उवसमसेढिपज्जंतपत्ताणं पंचन्ह वि भावाणं जोगो लब्भइ ॥५७॥

इयाणिं छण्हं भावाणं अट्ठकम्मेसु जो जहिं संभवइ तं दंसेइ—

मोहस्सेव उवसमो खाओवसमो चउण्ह घाईणं।
उदयक्खयपरिणामा अट्ठन्ह वि होंति कम्माणं ॥५८॥

मोहणीयस्सेव ओवसमिओ भावो, न पुण अन्नेसिं कम्माणं। नाणवरणदंसणावरणमोहणीयअंतराइयाणं घाइकम्माणमेव खाओवसमिओ भावो। उदइयखाइयपारिणामिया तिन्नि भावा अट्ठण्ह वि होंति कम्माणं ॥५८।

इयाणिं गुणट्ठाणगेसु मिच्छदिट्ठिपमिईसु एए चेव भावे दंसेइ--

सम्माइचउसु तिगचउभावा चउपणुवसामगुवसंते।
चउ खीणेऽपुव्वे तिन्नि सेसगुणठाणगेगजिए ॥५९॥

अविरयसम्मदिट्ठिदेसविरयपमत्तअपमत्तेसु चउसु वि खाओवसम-उदइय--पारिणामिया भावा तिन्नि। अहवा उवसमिय-खाइयाणं एगयरे छूढे चत्तारि भावा। "**चउपणउवसामगुवसंते**" त्ति। अनियट्टिसुहुमसंपराया उवसामगा, उवसंतमोहो उवसंतो। एएसिं तिण्हं उवसमियं खाओवसमियं उदइयपरिणामा भावा चत्तारि। अहवा पंच खाइयसम्मत्तेण। "चउ खीणेऽपुव्वे" त्ति उदइय-खाओवसमिय-परिणामा खीणमोहस्स अपुव्वकरणस्स य तिन्नि भावा। खीणे चउत्थो खाइओ। अपुव्वकरणस्स पुण चउत्थो खाइगो उवसमिओ वा। "**तिन्नि सेस०**" त्ति। तिन्नि भावा सेसाणं गुणट्ठाणगाणं होंति। तत्थ सजोगिअजोगिकेवलीणं खाइय-उदइय-पारिणामिया भावा मिच्छसासणसम्ममिच्छाणं उदइय-खाओवसमिय-पारिणामिया तिन्नि हवंति। "एगजिए" त्ति एक्कस्स जीवस्स एए सव्वे वि भावा। न उण तग्गुणट्ठाणगयाण अणेगजीवाणं।

संपयं गुणट्ठाणगेसु पत्तेयं उत्तरभावभेयसंखा भण्णइ। ते पुण एए—

"पणअंतरायअन्नाणतिन्नि अचक्खुचक्खु दस एए। मिच्छे साणे य हवंति मीसए अंतरायपण ॥१॥
नाणतिगदंसणतिगं [1]मीसं सम्मं च बारस हवंति। एवं च अविरयंमि वि नवरं तहिं दंसणं सुद्धं ॥२॥
देसे [2]देसविरई तेरसमा तह पमत्तअपमत्ते। मणपज्जवपक्खेवा चउदस अप्पुव्वकरणे य ॥३॥

१ "मीसगसम्मं" इत्यपि पाठः। २ "य देसविरई तेरसमं" इत्यपि पाठः।

वेयगसम्मेण विणा तेरस जा सुहुमसंपराउ त्ति । ते च्चिय उवसमखीणे चरित्तविरहेण बारस उ ॥४।
खाओवसमिगभावाण कित्तणा गुणगए पडुच्च कया । ओदइयभावमिण्हिं ते चेय पडुच्च दसेमि ॥५॥
[1]चउगइयाइगवीसं मिच्छे साणे य होंति वीसं च । मिच्छेण विणा मीसे इगुणीसमनाणविरहेण ॥६॥
एमेव अविरयम्मी सुरनारयगइ वियोगओ देसे । सत्तरस होंति [2]ते च्चिय तिरियगइ असंजम.माव्वा ॥७॥
पन्नरस पमत्तम्मी अपमत्ते आइलेसतिगविरहे । [3]ते च्चिय बारस सुक्केगलेसओ दस अपुव्वम्मि । ८॥
एवं अनियट्टिम्मि वि सुहुमे संजलणलोभमणुयगई । अंतिमलेसअसिद्धत्तभावओ जाण चउभाश्रा ॥९॥
संजलणलोभविरहा उवसंतक्खीणकेवलीण तिगं । लेसाभावा जाणसु अजोगिणो भावदुगमेव ॥१०॥
अविरयसम्मा उवसंतु जाव खवसमगखइयगा सम्मा । अनियट्टीओ उवसंतु जाव उवसामियं चरणं ॥११॥
[4]परं उपशमश्रेणिं प्रतिपततो न घटतः ॥
खीणम्मि खइयसम्मं चरणं च दुगं पि जाण समकालं । नव नव खइगा भावा [5]जाण सजोगे अजोगे य ॥१२
जीवत्तमभव्वत्तं भव्वत्तं पि हु [6]गुणाहि मिच्छम्मि । साणाई खीणते [7]दोन्नि अभव्वत्तवज्जा उ ॥१३॥
सजोगि अजोगिम्मी जीवत्तं चेव मिच्छमाईण । ससभावमीलणाओ [8]भावे मुण सन्निवायम्मि ॥१४॥
चउदुगतिगपणचउतिगतीसा तीसा सगट्ठदुगवीसा । बीसिगुणवीस तेरस बारस मुण सन्निवायम्मि ॥१५॥"५६॥

इयाणिं एए चेव भावे अजीवेसु भणिउकामो पढमं ताव अजीवट्ठाणाणि चउदस भणेइ—

धम्माधम्मनभा तिन्नि दव्वदेसप्पएसओ तिविहा ।
गइठाणऽवगाहगुणा अरूविणो कालसमओ य ॥६०॥

धम्मत्थिकायदव्वे पडिपुण्णो धम्मत्थिकाओ १, धम्मत्थिकायदव्वदेसे तस्सेव दुभागत्तिभागाई २, धम्मत्थिदव्वे पएसा निव्विभागा भागा ३। एवमन्नेसु वियाणियव्वं । अधम्मत्थिकायदव्वे १, अधम्मत्थिकायदव्वदेसे २, अधम्मत्थिकायदव्वप्पएसे ३ । आगासत्थिकायदव्वे १, आगासत्थिकायदव्वदेसा २, आगासत्थिकायदव्वपएसा ३। "गइट्ठाणअवगाहगुणा" त्ति जहासंखं संबंधो गुणपरिणामः । धम्मत्थिकाए गइगुणे । अधम्मत्थिकाए ठाणगुणे । आगासत्थिकाए अवगाहगुणे । "अरूविणो" त्ति अरूविया रूवरसगंधफासरहिया एए नव अजीवठाणा तहा "कालसमओ" काललक्खणो समओ कालसमओ अरूवी एवं १०॥६०॥

संपयं कालसरूवं रूविअजीवसरूवं च भणेइ—

सो वत्तणाइलिंगो रूविअजीवा उ हुंतिमे चउरो ।

---

१ "चउगइयाई इगवीस मिच्छसा(स)णे य हुंति" इत्यपि पाठः । २–३ 'तिच्चिय' इत्यपि । ४ "यद्यप्युपशान्तमोहगुणस्थानक एवौपशमिकं चारित्रमस्ति, तत्रैव सर्वथा चारित्रमोहोपशमात्, तथाऽपि नवम-दशमगुणस्थानकद्वये कतिपयचारित्रमोहनीयप्रकृत्युपशमाद् "राजाहं कुमारो राजा" इति भाव्युपचाराद्वोपशमश्रेणिं चटतो जीवस्याऽपि नवम-दशमगुणस्थानद्वये औपशमिकं चरणं संभवति, तथाऽप्यत्र प्रतिपततो जीवस्य चारित्रमोहनीयस्य नियमत उपशमितत्वेन केवलं भूतोपचारन्यायमाश्रित्यैतदुक्तं सम्भाव्यते। ५ "जिणे" इत्यपि । ६ "गुणेसु" इत्यपि । ७ "दु त्ति" इत्यपि पाठः। ८ "भावं मुण संनिवायं ॥१४॥" इत्यपि ।

तत्थ खाइय-पारिणामिएहिं दुहिं जोगो सिद्धाणं। उदइय-खाइय-पारिणामिएहिं केवलीणं। संसारियाणं पुण चउगइयाण वि तिगजोगो उदइय-खाओवसमिय-पारिणामिएहिं। चउजोगो दुविहो चउसु वि गईसु। तत्थ एसो तिगजोगो खाइएण वा उवसमिएण वा चउजोगो। मणुयाण खाइगसम्मद्दिट्ठीणं उवसमसेढिपज्जंतपत्ताणं पंचन्ह वि भावाणं जोगो लब्भइ ॥५७॥

इयाणिं छण्हं भावाणं अट्ठकम्मेसु जो जहिं संभवइ तं दंसेइ——

मोहस्सेव उवसमो खाओवसमो चउण्ह घाईणं ।
उदयक्खयपरिणामा अट्ठन्ह वि होंति कम्माणं ॥५८॥

मोहणीयस्सेव ओवसमिओ भावो, न पुण अन्नेसिं कम्माणं। नाणवरणदंसणावरणमोहणीयअंतराइयाणं घाइकम्माणमेव खाओवसमिओ भावो। उदइयखाइयपारिणामिया तिन्नि भावा अट्ठण्ह वि होंति कम्माणं ॥५८।

इयाणिं गुणट्ठाणगेसु मिच्छद्दिट्ठिपभिईसु एए चेव भावे दंसेइ——

सम्माइचउसु तिगचउभावा चउपणुवसामगुवसंते ।
चउ खीणेऽपुव्वे तिन्नि सेसगुणठाणगेगजिए ॥५९॥

अविरयसम्मद्दिट्ठिदेसविरयपमत्तअपमत्तेसु चउसु वि खाओवसम-उदइय--पारिणामिया भावा तिन्नि। अहवा उवसमिय-खाइयाणं एगयरे छूढे चत्तारि भावा। "चउपणउवसामगुवसंते" त्ति। अनियट्टिसुहुमसंपराया उवसामगा, उवसंतमोहो उवसंतो। एएसिं तिण्हं उवसमियं खाओवसमियं उदइयपरिणामा भावा चत्तारि। अहवा पंच खाइयसम्मत्तेण। "चउ खीणेऽपुव्वे" त्ति उदइय-खाओवसमिय-परिणामा खीणमोहस्स अपुव्वकरणस्स य तिन्नि भावा। खीणे चउत्थो खाइओ। अपुव्वकरणस्स पुण चउत्थो खाइगो उवसमिओ वा। "तिन्नि सेस०" त्ति। तिन्नि भावा सेसाणं गुणट्ठाणगाणं होंति। तत्थ सजोगिअजोगिकेवलीणं खाइय-उदइय-पारिणामिया भावा मिच्छसासणसम्ममिच्छाणं उदइय-खाओवसमिय-पारिणामिया तिन्नि हवंति। "एगजिए" त्ति एक्कक्कस्स जीवस्स एए सव्वे वि भावा। न उण तग्गुणट्ठाणगयाण अणेगजीवाणं।

संपयं गुणट्ठाणगेसु पत्तेयं उत्तरभावभेयसंखा भण्णइ। ते पुण एए—

"पणअंतरायअन्नाणतिन्नि अचक्खुचक्खु दस एए। मिच्छे साणे य हवंति मीसए अंतरायपण ॥१॥
नाणतिगदंसणतिगं [1]मीसं सम्मं च बारस हवंति। एवं च अविरयम्मि वि नवरं तहिं दंसणं सुद्धं ॥२॥
देसे [2]देसविरई तेरसमा तह पमत्तअपमत्ते। मणपज्जवपक्खेवा चउदस अप्पुव्वकरणे य ॥३॥

१ "मीसगसम्मं" इत्यपि पाठः। २ "य देसविरई तेरसमं" इत्यपि पाठः।

वेयगसम्मेण विणा तेरस जा सुहुमसंपराउ त्ति । ते च्चिय उवसमखीणे चरित्तविरहेण बारस उ ॥४॥
खाओवसमिगभावाण कित्तणा गुणाए पडुच्च कया । ओदइयभावमिण्हि ते चेव पडुच्च दंसेमि ॥५॥
[1]चउगइयाइगवीसं मिच्छे साणे य होंति वीसं च । मिच्छेण विणा मीसे इगुणीसमनाणविरहेण ॥६॥
एमेव अविरयम्मी सुरनारयगइ वियोगओ देसे । सत्तरस होंति [2]ते च्चिय तिरियगइ असंजम भावा ॥७॥
पन्नरस पमत्तम्मी अपमत्ते आइलेसतिगविरहे । [3]ते च्चिय बारस सुक्केगलेसओ दस अपुव्वम्मि ॥८॥
एवं अनियट्टिम्मि वि सुहुमे संजलणलोभमणुयगई । अंतिमलेसअसिद्धत्तभावओ जाण चउभावा ॥९॥
संजलणलोभविरहा उवसंतक्खीणकेवलीण तिगं । लेसाभावा जाणसु अजोगिणो भावदुगमेव ॥१०॥
अविरयसम्मा उवसंतु जाव उवसमगखइयगा सम्मा । अनियट्टीओ उवसंतु जाव उवसामियं चरणं ॥११॥
[4]परं उपशमश्रेणिं प्रतिपततो न घटतः ॥
खीणम्मि खइयसम्मं चरणं च दुगं पि जाण समकालं । नव नव खइगा भावा [5]जाण सजोगे अजोगे य ॥१२
जीवत्तामभव्वत्तं भव्वत्तं पि हु [6]गुणाहि मिच्छम्मि । साणाई खीणंते [7]दोन्नि अभव्वत्तवज्जा उ ॥१३॥
सजोगि अजोगिम्मी जीवत्तं चेव मिच्छमाईण । ससभावमीलणाओ [8]भावे गुण सन्निवायम्मि ॥१४॥
चउदुगतिगपणचउतिगतीसा तीसा सगट्ठदुगवीसा । वीसिगुणवीस तेरस बारस गुण सन्निवायम्मि ॥१५॥"५९॥

इयाणिं एए चेव भावे अजीवेसु भणिउकामो पढमं ताव अजीवट्ठाणाणि चउदस भणेइ—

धम्माधम्मनभा तिन्नि दव्वदेसप्पएसओ तिविहा ।
गइठाणऽवगाहगुणा अरूविणो कालसमओ य ॥६०॥

धम्मत्थिकायदव्वे पडिपुण्णो धम्मत्थिकाओ १, धम्मत्थिकायदव्वदेसे तस्सेव दुभागतिभागाई २, धम्मत्थिदव्वे पएसा निव्विभागा भागा ३। एवमन्नेसु वियाणियव्वं । अधम्मत्थिकायदव्वे १, अधम्मत्थिकायदव्वदेसे २, अधम्मत्थिकायदव्वप्पएसे ३ । आगासत्थिकायदव्वे १, आगासत्थिकायदव्वदेसा २, आगासत्थिकायदव्वपएसा ३। "गइट्ठाणअवगाहगुण" त्ति जहासंखं संबंधो गुणपरिणामः । धम्मत्थिकाए गइगुणे । अधम्मत्थिकाए ठाणगुणे । आगासत्थिकाए अवगाहगुणे । "अरूविणो" त्ति अरूविया रूवरसगंधफासरहिया एए नव अजीवठाणा तहा "कालसमओ" काललक्खणो समओ कालसमओ अरूवी एवं १०॥६०॥

संपयं कालसरूवं रूविअजीवसरूवं च भणेइ—

सो वत्तणाइलिंगो रूविअजीवा उ हुंतिमे चउरो ।

१ "चउगइयाई इगवीस मिच्छसा(स)णे य हुंति" इत्यपि पाठः । २-३ 'तिच्चिय' इत्यपि । ४ "यद्यप्युपशान्तमोहगुणस्थानक एवौपशमिकं चारित्रमस्ति, तत्रैव सर्वथा चारित्रमोहोपशमात्, तथाऽपि नवम-दशमगुणस्थानकद्वये कतिपयचारित्रमोहनीयप्रकृत्युपशमाद् "राजार्हः कुमारो राजा" इति मान्युपचारादुपशमश्रेणिं चटतो जीवस्याऽपि नवम-दशमगुणस्थानद्वये औपशमिकं चरणं संभवति, तथाऽप्यत्र प्रतिपततो जीवस्य चारित्रमोहनीयस्य नियमत उपशमितत्वेन केवलं भूतोपचारन्यायमाश्रित्यैतदुक्तं ॥१४॥" इत्यपि । ५ "जिणे" इत्यपि । ६ "गुणेसु" इत्यपि । ७ "दु त्ति" इत्यपि पाठः । ८ "भावं गुण संनिवायं

खंधा देसपएसा केवलअणवो य ते य पुण ॥६१॥

सोत्ति कालो वत्तणाइलिंगो=परावत्तणाइलक्खणो । आइसद्दाओ अईयाणागयाइ लब्भइ । रूविणो अजीवा चत्तारि । ते य इमे–खंधो दुपएसाइ अणंतपएसिओ जाव, देसपएसा पूर्ववत् केवलं खंधपरिणामरहिया अणवो परमाणवो चउत्थो । पुव्वेहिं सह सव्वे चउदस ॥६१॥

तहा चउविहा वि रूविणो अजीवा किं गुणा ?, इइ जाणत्थं गाहा दंसेइ—

वण्णाइगुणा बंधाइकारणं इय अजीवचउदसगं ।
सव्वे वि हु परिणामे भावे खंधा उदइए वि ॥६२॥

"वन्नाइगुण" त्ति वन्नगंधरसफासपरिणया बंधाइकारणं कहं ?, भन्नइ, कम्मजोग्गत्ताए परिणया खंधा जीवा बंधंति ? आइसद्दाओ उदए उदीरणाए सत्ताए य ठविंति । एवं बंधाइकारणं । एए चउदस वि अजीवद्व्वाणा कम्मि भावे वट्टंति?, भण्णइ, सव्वे वि हु पारिणामिए भावे, खंधा उदइए वि भावे वट्टंति । कहं खंधा एव न सेसा ? भन्नइ जओ खंधसंबंधिणो अद्धस्स तिभागस्स वा चउत्थभागस्स वा देसविवक्खा, पएसा निव्विभागा भागा, तस्सेव न जुया देसपएसविवक्खा । कोहोदए जीवस्स कम्मखंधा एव पडिपुन्ना उदए आगच्छंति, न देसपएसा । परमाणवो पुण न कम्मत्ताए परिणमंति । एवं खंधा उदइए भावे, न सेसा । तहा अविसद्दाओ खयखओवसम-उवसमेसु वि कम्मखंधा वट्टंति कम्मरूवपरिणया । एवं पगइबंधो । पसंगागयं च भणियं ॥६२॥

पोग्गला कम्मबंधकारणं भणिया, अओ तेसिं मूलपगडित्तेण उत्तरपगतित्तेण बद्धाणं ठिइं जहण्णुक्कोसं भणिउकामो पढमं ताव मूलपगडीणं उक्कोसठिई भण्णइ—

मोहे कोडाकोडीउ सत्तरिं वीस नामगोयाणं ।
तीसियराण चउण्हं तेत्तीसयराइँ आउस्स ॥६३॥

मोहणीयस्स सत्तरिकोडाकोडी उक्कोसो ठीइ बंधो, नामस्स गोयस्स य वीसं कोडाकोडी उक्कोसो ठिइबंधो. तीसं पुण इयराणं नाणावरणीयवेयणीयअंतरायाणं उक्कोसो ठिइबंधो, "तेत्तीस-यराइ"त्ति, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि "आउस्स"त्ति आउकम्मस्स उक्कोसो ठिइबंधो ॥६३॥

इयाणिं मूलपगडीणं जहन्ना ठिई दंसइ—

मोत्तु मकसाय हस्सा ठिइ वेयणियस्स बारस मुहुत्ता ।
अट्ठट्ठ नामगोयाण सेसयाणं मुहुत्तंतो ॥६४॥

अकसाइणो=उवसंतमोह-खीणमोह सजोगिकेवलिणो मुत्तु=परिवज्जिय एएसिं वेयणियठिई, सेसाणं बंधगाणं वेयणीयस्स ठिई हस्सा=जहन्ना बारस मुहुत्ता । जओ तेसिं सामइओ बंधो । एसा य पुण जहन्नट्ठीई बंधगस्स सुहुमसंपरायस्स अंते लब्भइ । नामस्स गोयस्स य अट्ठट्ठमुहुत्त ।

सेसाणं नाणावरणदंसणावरणअंतरायमोहणीयआयुष्काणां अंतमुहुत्तं जहन्नो टिइबंधो ॥६४॥

इयाणिं पत्तेयं पत्तेयं उक्कोसा ठिई उत्तरपयडीणं भन्नइ—

तीसं कोडाकोडी असायआवरणअंतरायाणं ।
मिच्छे सत्तरि मित्थीमणुदुगसायाण पन्नरस ॥६५॥

असायवेयणीयस्स नाणावरणपणगस्स दंसणावरणनवगस्स अंतरायपणगस्स य तीसं कोडाकोडी उक्कोसो ठिइबंधो। इत्थीवेयस्स मणुयदुगस्स सायावेयणीयस्स य पन्नरस कोडाकोडी उक्कोसो ठिइबंधो ॥६५॥

संघयणे संठाणे पढमे दस उवरिमेसु दुगवुड्ढी ।
चालीस कसाएसु अट्ठारस विगलसुहुमतिगे ॥६६॥

पढमाणं वज्जरिसभनारायसमचउरंसाणं कोडाकोडी दस उक्कोसो ठिइबंधो। उवरिमेसु दुगेण सागरोवमाण कोडाकोडीणं वुड्ढी कायव्वा। जहा वज्जनारायनग्गोहाणं कोडाकोडी बारस। नारायसंघयणसाइसंठाणाणं कोडाकोडी चउदस। अद्धनारायसंघयणखुज्जसंठाणाणं कोडाकोडी सोलस। खीलियसंघयणवामणसंठाणाणं तहा उत्तरद्धनिद्दिट्ठाणं विगलसुहुमतिगाणं कोडाकोडी अट्ठारस उक्कोसो ठीइबंधो। सोलसण्हं कसायाणं पुण कोडाकोडीओ चालीसं ॥६६॥

दस दस सुक्किलमहुराण सुरभिनिद्धुण्हमिउलहूणं च ।
अड्ढाइज्जपवुड्ढा ते हालिद्दंबिलाईणं ॥६७॥

सुक्किलवण्णमहुररससुरभिगंधनिद्धफासउण्हफासमउयफासलहुयफासाणं दस दस कोडाकोडी उक्कोसो ठिईबंधो। "अड्ढाइज्जपवुड्ढ" त्ति अड्ढाइज्जाहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं पवुड्ढिमागया 'ते' त्ति सुक्किलाईणं ठिईविसेसा दससागरोवमलक्खणा, हालिद्दअंबिलाईणं दुण्हं ॥ उक्कोसा ठिई भवइ। तहाहि—हालिद्दवन्नअंबिलरसाणं कोडाकोडी सड्ढबारस उक्कोसा ठिई। लोहियवन्नकसायरसाणं कोडाकोडी पन्नरस नीलवन्नकडुयरसाणं कोडाकोडी सड्ढसत्तरस ॥६७॥

हासरइपुरिसउच्चे सुभखगइथिराइछक्कदेवदुगे ।
दस सेसाणं वीसा एवइयाबाहवाससया ॥६८॥

हासरई पुरिसवेओ उच्चागोयं सुभखगई, थिराइछक्कं, देवदुगं, एएसिं दसकोडाकोडी उक्कोसो ठिईबंधो। एए तियासी पगइओ।

इयाणिं उद्धरियपगईणं उक्कोसो ठिईबंधो दंसेइ—"सेसाणं वीस" त्ति सेसाणं तसचउक्काईणं वीसं कोडाकोडी उक्कोसो ठिईबंधो होइ। ता य पगईओ इमाओ—

तसचउ ४ तिरि ९ निरयदुगा तेयविउव्वुरलसत्तगा हुंडं । पढमंतजाइ२ कुखग१ कुवन्ननवगं अकडुनीलं ।।
पत्तेया य अतित्था थावरअथिराइछक्केवट्ठं । सोगारइमयकुच्छानपुंसनिगसट्ठिवीसिक्का ।।

'नि' त्ति नीयागोयं, "इगसट्ठिसिक्क" त्ति एयाए एगसट्ठीए पयडीणं वीसं सागरोवम-कोडाकोडी उक्कोसो ठिइबंधो । "एवइयाबाहवाससय" त्ति जस्स जत्तियाओ सागरोवम-कोडाकोडीओ उक्कोसा ठीई तस्स कम्मस्स तेत्तिया वाससया अबाहा=अणुदयकालो । एस उक्कोसो वुच्चइ । अन्नहा पओगोदये तस्सेव बंधावलियाए गयाए उदीरणाकरणेण उदय-संभवाओ ।।६८।।

अंतोकोडाकोडी तित्थाहाराण जेट्ठठिइबंधो ।
अंतमुहुत्तमबाहा इयरो संखेज्जगुणहीणो ।।६९।।

तित्थयरनामस्स आहारसत्तगस्स य अंतो=मज्झे कोडाकोडीए उक्कोसो ठिईबंधो । "अंतमुहुत्तं"ति अबाहा पुण अंतोमुहुत्तमेव । तहा इयरो=जहन्नो बंधो पुण एसो य अंतो-कोडाकोडीरूवो संखेज्जगुणकारेण हीणो कओ होइ । ननु तित्थयरनामस्स अंतोमुहुत्तं कहं अबाहा ? / 'याव ता बज्झइ तं तु भगवओ तइयभवोसक्कइत्ताणं ति' 'ति वचनात् , संख्यातोऽसंख्या-तोऽपि कालो लहइ त्ति कहं ? भन्नइ-तित्थयरनामस्स पओगेण उदिन्नस्स आणाईसरियाइओ लद्धीओ, अन्नजीवेहिंतो थिरेसतराओ होंति त्ति एएण कारणेण संभवइ । अन्नहा कहं अंतोमुहुत्तं अबाहा । अओ संभाविज्जइ बद्धस्स अणुदीरणा कालो अबाहा । अन्नो अभिप्पाओ सुयकेव-लिणो मुणंति । तित्थयरस्स उक्कोसो अविरए । अपमत्ते पुण उक्कोसो आहारस्स जहन्नो दोण्ह वि अपुव्वकरणे ठिइबंधो ।।६९।।

तेत्तीसुदही सुरनारयाउ नरतिरियआउ पल्लतिगं ।
निरुवकमाण छ मासा अबाह सेसाण भवतंसो ।।७०।।

तेत्तीसं सागरोवमाइं उक्कोसो ठिइबंधो सुराणं नारयाणं होइ । नराणं तिरियाणं च आउस्स उक्कोसो ठिइबंधो पल्लतिगं=तिन्नि पलिओवमाणि । तहा निरुवमकमाणं=सुरनारयाणं असंख-वासाऊणं मणुयतिरियाणं च परभवियआउयस्स बद्धस्स छमासा यावत् अबाहाकालो । सेसाणं= नरतिरियाणं संखिज्जवासाउयाणं पुण नियनियभवस्स तंसो=तृतीयभागः । अबाहाकालो उक्कोसो ।।७०।।

संपयं असन्निपंचेंदियाई जे जीवा परभवियं आउं बंधंति, तं दंसेइ—

तह पुव्वकोडिपरओ इगिविगलिंदी न बंधए आउं ।
आउचउ परभबंधो पल्लासंखंसममणेसु ।।७१।।

तहा पुव्वकोडीए परतो=अग्रतः एगिंदिया विगलिंदिया य न बंधंति आउं परभवजोग्गं । तहा चउण्हं आऊणं परमो=उक्कोसो पलिओवमस्स असंखभागो असणेसु=असन्निपंचिंदिएसु उक्कोसो ठीबंधो । एवं तियासी ८३, एगसट्ठि ६१, आहारसत्तग ७, तित्थयरनामं १, आउचउक्कं ४ चः एवं छावन्नपयडिसयस्स ठिइबंधो भणिओ । न य बंधे सम्ममीसाई ।।७१।।

उक्कोसो ठिइबंधो सम्मत्तो ॥

भणिओ सव्वपयडीए उक्कोसो बंधो । इयाणिं जहन्नो भण्णइ—

दंसणचउविग्घावरणलोभसंजलणहस्सठिइबंधो ।
अंतमुहुत्तं ते [1]अट्ठ जसुच्चे बारस य साए ।।७२।।

दंसणावरणचउक्कस्स "विग्घं" ति अंतरायपणगस्स नाणावरणपंचगस्स संजलणलोहस्स "हस्स"त्ति जहन्नो ठिइबंधो अंतोमुहुत्तं "ते" त्ति अंतोमुहुत्ता अट्ठसंखा जसकित्तीए उच्चागोए य बारस पुण अंतमुहुत्ता सायवेयणीयस्स ।।७२।।

दो मासा, अद्धऽद्धं संजलणतिगे पुमट्ठ वरिसाणि ।
सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिईए जं लद्धं ।।७३।।

दो मासा, अद्धं मासो, मासस्स वि अद्धं पक्खो, जहासंखं संजलणतिगे कोहमाणमाया-लक्खणेः पुरिसवेयस्स अट्ठ विरिसाणि, जहन्नो ठिइबंधो सव्वत्थ संबज्झइ । "सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिईए जं लद्ध"ति ताव पढमं एगिंदियाणं सव्वेसिं उक्कोसो ठिइबंधो । भन्नइ बावीसा खवगभणियाणं सेसस्स इगारसुत्तरसयस्स तं च इमं—

"बारसकसायपढमा१२, निद्दापणनीयहासछक्कं च । मिच्छत्तमसायं १ थी १ नपुंस १ नामस्स वा य इमा ।।१।।
ओराल ५तेय ७सत्तगसंघयण।६गीइ६वीसवन्नाइं २० । पत्तेया य अविरथा७जसवज्जतसाइ १९ पया जाई ।।२।।
खगई२ तिरि२मणुय२दुगा सव्वे मिलिया तितीससयमेगं । सेसा भणिवज्जमाणा, तेवीसं इत्थ दट्ठव्वा ।।३"

एयासिं तित्तीससयसंखाणं पयडीणं ठियाउ उक्कोसो ठिइबंधो उ मिच्छ-पट्ठीए सत्तरिकोडाकोडीलक्खणाए भागे हरिए जं लब्भइ, सो एगिंदियस्स उक्कोसगो ठिबंधो । तओ पलिओवमस्स असंखेज्जभागऊणो संतो जहन्नो ठिईबंधो हवइ । एवं एगिंदि-यस्स उक्कोसजहन्नो भणिओ सामन्नेणं । विसेसेणं भन्नइ—तत्थ पढमं बारसकसायाणं उक्कोसिया ठिई चालीसं कोडाकोडीओः तीसे सत्तरि कोडाकोडीहिं भागे हरिए, ४००००००००००००००० / ७००००००००००००००० समसुन्नाणं पाडणे, जं उव्वरियं तं सत्तहिं गुणिय सत्तहा किरंति, सत्तहिं भागे हरिए सत्तहा लब्भंतिः लद्धं चत्तारि सत्तभागा सायरस्स ४/७ । तहा निद्दापणगस्स असाय-

१ "अठ जसउच्चे" इति पा ।

वेयणीयस्स तीसं कोडाकोडीओ; तेसिं सत्तरिकोडाकोडीभागे हरिए, समसुन्नाण पाडणे, लद्धा तिन्नि सागरस्स सत्तभागा ३/७ । तहा मिच्छत्तस्स उक्कोसा ठिई सत्तरि कोडाकोडीओ, तीसे ठिईए सत्तरिकोडाकोडीहिं चेव भागो होरइ; सुन्नाणि सुन्नेहिं जंति; तओ पच्छा जेहिं सत्तहिं भागेहिं सागरोवमं होइ, ते सत्त भागा होंति । ७/७ सागरोवममेगं ति भावत्थो । तहा सियवण्ण १ महुर २ सुरही ३ मिउ ४ लहु ५ निद्धु६ण्ह ७ तहेव सुभगं खगई ८ हास ९ रइ १० उसभ ११ चउरंस १२ थिरपण १७ दस कोडाकोडीओ, तेसिं पुव्वुत्तभागहारेण लद्धो [1]एओ सागरोवमसत्तभागो १/७ । तहा रिसभनारायनग्गोहाणं दुवालसकोडाकोडी सत्तरिकोडाकोडीए भागे हरिए, १२०००·०००००००००० / ७००००००००·००००००० दुण्ह रासीणं समसुन्नाण पाडणे, उपरि बारह अहो सत्तरि १२/७०; तओ [2]सागरस्स एगो सत्तभागो लब्भइ, तहा सागरस्स जेहिं वीसहिं भागेहिं सागरोवमसत्तभागो होइ ते चत्तारि भागा लद्धा १/७ । ४/२० । तहा नारायसाईणं चउदसकोडाकोडीओ उक्कोसिया ठिई भागे हरिए, जाया उवरि चउदस अहो य सत्तरी १४/७०; इत्थ वि एगो सत्त भागो सागरस्स, तहेव सत्त भागस्स वीसभागा अट्ठ होंति १/७ । ८/२० । तहा अद्धनारायवामणाणं सोलसकोडाकोडीओ भागे हरिए उवरि सोलस अहो य सत्तरि १६/७०; इत्थ वि लद्धं एगो सत्तभागो सागरसत्तभागस्स वीसभागा बारस १/७ । १२/२० । तह कीलियहुंडाण सुहमतिगस्स विगलतिगस्स य अट्ठारस कोडाकोडीओ उक्कोसिया ठिई भागे हरिए जाया उवरि अट्ठारस अहो सत्तरि १८/७०; एत्थ वि एगो सत्तभागो सागरस्स; तहा जेहिं वीसहिं भागेहिं सागरसत्तभागो ते सोलस १/७ । १६/२० । तहा हालिद्दअंबिलाणं वन्नरसाणं सड्ढ दुवालसकोडाकोडीओ ठिई तहेव भागे हरिए उव्वरियं उवरि पणवीसं सयं हेट्ठा । पुण सत्तसयाणि १२५/७००; तओ सागरस्स एगो सत्तभागो । अन्नं च सागरसत्तभागस्स पंच वीसभागा १/७ । ५/२० । एवं लोहियकसायाणं इत्थिवेयमणुयदुगाणं च पन्नरस कोडाकोडीओ तेसिं भागे हरिए उव्वरियं उवरि पन्नरस अहो सत्तरि १५/७०. इत्थ अवस्सियं एगो सत्तभागो, सत्तभागस्स दस वीसभागा १/७ । १०/२० । नीलवन्न-कडुयरसाणं उक्कोसिया ठिई सड्ढासत्तरस कोडाकोडीओ, तेसिं भागे हरिए, उव्वरियं पंचहत्तरसयं हेट्ठा सत्तसयाणि १७५/७००; तओ एगो सत्तभागो, पन्नरस वीसभागा सत्तभागस्स १/७ । १५/२० । सेसाणं पयडीणं वीसं कोडाकोडी उक्कोसिया ठिई; ताओ पुव्वुत्ताओ "वसचउ तिरिनिरय" इच्चाइ गाहादुगेण भणियाओ निरयदुगविउव्वियसत्तगवज्जियाओ, तासिं जा उक्कोसिया ठिई, तीए

१ एतच्च सिद्धान्ताभिप्रायेण. कार्मप्रकृत्यादि कार्मग्रन्थिकाभिप्रायेण तु स्ववर्गोत्कृष्टस्थितेः सप्ततिकोटाकोट्या भागे हृते यल्लभ्यते, तावत्प्रमाणो भवति तनात्र ७/७ सागरोपमं भवति । एवमन्यत्रा-ऽपि । २ द्वादशानां सप्तभिर्गुणने जात ८४, सप्तत्या हृते लब्धं सप्तभागः १, उद्धरिताः १४, ये विंशत्या गुण्यन्ते, जात २८०, पुनः सप्तत्या भागे हृते लब्धं सागरोपमसप्तभागस्य विंशतिभागाश्चत्वारः एवं सर्वस्थितिष्वपि ।

मिच्छत्तठिईए भागे हरिए, लद्धा दोन्नि सागरसत्तभागा $\frac{2}{7}$ । एसो य मिच्छत्तठिईभागलद्धो ठीबंधो एगिंदियाणं भणिओ उक्कोसो, जहन्नगो पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगो, १२३ सन्निस्स उक्कोसो जहन्नो, एगिंदियस्स उक्कोसजहन्नो भणिओ[1] ॥७३॥

इयाणिं तेवीसाए भणियसेसाए तहा विगलिंदियअसन्निपज्जवसाणाणं जेण कम्मेण उक्कोसो जहन्नओ य होइ तं दंसेइ—

एसेगिंदियजिट्ठो पलियाऽसंखंसहीण लहुबंधो ।
पणुवीसा पन्नासा सयं सहस्सं च गुणकारो ॥७४॥
कमसो विगलअसन्नीण पल्लसंखंसऊणओ डहरो ।
सुरनरयाउ समा दस सहस्स सेसाउ खुड्डभवं ॥७५॥

तहा "एसो"त्ति उवलक्खणं । जओ जासिं पुव्वं खवगमासज्ज "दंसणचउविग्घावरण" इच्चाइ बावीसं पयडी भणियाओ. तासिं एगिंदियाणं पि मिच्छत्तठिईए भागे हरिए जं लब्भइ, सो उक्कोसजहन्नो ठिइबंधो हवइ । तत्थ दंसणचउक्कस्स उक्कोसो ठिइबंधो तीसं कोडाकोडीओ मिच्छत्तठिईए भागे हरिए लद्धा तिन्नि सागरसत्तभागा $\frac{3}{7}$ । अंतरायनाणावरणाणं पुण तीसं कोडाकोडीओ तेसिं मिच्छत्तठिईए भागे हरिए लद्धा तिन्नि सागरसत्तभागा $\frac{3}{7}$ । संजलनचउक्कस्स पुव्वुत्ता चत्तारि भागा कसायदारेण पुरिसवेयजसकित्तिउच्चगोयाणं दसकोडाकोडीओ उक्कोसठिईबंधो, तस्स भागे हरिए लद्धो एगो सत्तभागो $\frac{1}{7}$ सायरस्स पन्नरसकोडाकोडीओ, तीसे भागे हरिए लद्धो एगो सत्तभागो. जहिं वीसहिं भागेहिं सागरसत्तभागो होइ, ते दस भागा $\frac{1}{7}$ । $\frac{10}{20}$ । तहा एसो चेव एगिंदियजेट्ठो ठिइबंधो, पणुवीसाए पन्नासाए सएण सहस्सेण गुणिओ कमसो परिवाडीए बेइंदियतेइंदियचउरिंदियअसन्नीणं उक्कोसो ठिइबंधो हवइ । तत्थ पणुवीसाए गुणिओ बेइंदियाणं; तत्थ जे चत्तारि सागरसत्तभागा, ते पंचवीसाए गुणिया जायं सयं सागरसत्तभागाणं १००; तओ सत्तहिं भागे हरिए लद्धाणि चउदस सागरोवमाणि दो सत्तभागा $14\frac{2}{7}$ । जत्थ पुण तिन्नि, तत्थ पंचवीसाए गुणिया जाया पंचहत्तरी ७५; तओ सत्तहिं भागे हरिए लद्धाणि दस सागरोवमाणि पंच सागरसत्तभागा $10\frac{5}{7}$ । जत्थ सत्त सत्तभागा, ते वि पणवीसाए गुणिया जायं पंचहत्तरं सयं; तओ भागे हरिए जायाणि पंचवीसं सागरोवमाणि २५ । तहा सत्तदसण्हं पयडीणं जो सागरसत्तभागो सो पणुवीसाए गुणिओ जाया पणवीसं २५; तओ सत्तहिं भागे हरिए लद्धाणि तिन्नि सागरोवमाणि चत्तारि सत्तभागा $3\frac{4}{7}$ । जत्थ पुण एगो सत्तभागो चत्तारि सागरसत्तभागस्स वीसभागा संति; तत्थ ताव एगो भागो पणुवीसाए गुणिय सत्तहिं

1 मूलप्रकृतिमाश्रित्य ।

हरिया; लद्धाणि सागरोवमाणि तिन्नि चत्तारि सत्त भागा य । तहा वीस चत्तारि भागा गुणिया जायं सयं; तओ वीसाए भागे हरिए लद्धा पंच सागरसत्तभागा; तओ पुव्वुव्वरिय चउहिं सह नव सव्वे तओ सत्तहि भागे एगं सागरोवमं दो य सत्तभागेण ट्ठिया सव्वं मिलियं चत्तारि सागरोवमाणि दो सागरसत्तभागा ४ २/७ । एवं एएण कमेण जत्थ एगो सत्तभागो सत्तभागस्स वीसभागा य अट्ठ; तत्थ पंचसागरोवमाणि होंति ५ । तहा जत्थ एगो सत्तभागो सत्तभागस्स वीसभागा बारस; तत्थ पंचसागरोवमाणि पंच सत्तभागा ५ ५/७ । तहा जत्थ एगो सत्तभागो सत्तभागस्स सोलसवीसभागा; तत्थ छ सागरोवमाणि तिन्नि सत्तभागा ६ ३/७ । जत्थ पुण एगो सत्तभागो सत्तभागस्स वीसभागा पंच; तत्थ चत्तारि सागरोवमाणि तिन्नि भागा, सत्तभागस्य वीसभागा पंच ४ ३/७ । ५/२० । जत्थ पुण एगो सत्तभागो दस वीसभागा; तत्थ पंच सागरोवमाणि दोन्नि सत्तभागा दस वीसभागा ५ २/७ । १०/२० । जत्थ पुण एगो सत्तभागो पन्नरस वीसभागा; तत्थ छ सागरोवमाणि एगो सत्तभागो पन्नरस वीसभागा ६ १/७ । १५/२० । तहा जत्थ दोण्णि सत्तभागा; तत्थ सत्त सागरोवमाणि एगो सत्तभागो ७ १/७ । तहा जत्थ एगो सत्तभागो तत्थ तिन्नि सागरोवमाणि चत्तारि सत्तभागा ३ ४/७ । एवं एएसु वि सागरोवमसत्तभागेसु सागरोवमसत्तभागवीसभागेसु वा पन्नासाए सएण सहस्सेण य गुणिएसु जे रासीओ उप्पज्जंति, जहासंभवं भागे पाडिए; ते गणियगणनकुसलेण सयमेव उप्पाइयव्वा । तहा सुराणं नारयाणं च आउयं जहन्नं दसवरिससहस्साणि । सेसाणं नरतिरियाणं आउयस्स जहन्नो बंधो खुड्डभवो वक्खमाणो ।।७४-७५।।

संपयं वेउव्विछक्कस्स मयंतरेणं तित्थाहाराणं च जहन्नियं ठिइं दंसेइ–

सहसगुणेगिंदिठिई विउव्विछक्के जओ अमन्निसु तं ।

केसिं च सुराउसमं तित्थं आहारगंतमुहू ।।७६।।

एयाए गाहाए वक्खाणं इह जइ वि 'सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिईए जं लद्धं।।७३।।" ति वयणाओ वेउव्वियछक्कस्स सामन्नेण एगिंदियाणं ठिइबंधो लब्भइ, तहा वि सो एगिंदियठिईबंधो सहस्सगुणो होंति "वेउव्वियछक्कस्स" त्ति वेउव्वियएक्कारसगस्स हवइ । कम्हा ? जओ "असन्निसु" त्ति संमुच्छिमेसु तं वेउव्वियएक्कारसं बंधमागच्छइ, न एगिंदियाणं । तत्थ देवदुगस्स एगम्मि सत्तभाए सहस्सेण गुणिए सत्तहि भइए लद्धं सयमेगं बिचत्तालं सागरोवमाणं छच्च सत्तभागा य सागरस्स १४२ । ६/७ । निरयदुगस्स वेउव्वियसत्तगस्स य दोसु सत्तभागेसु सहस्सगुणिए सत्तहिं भइएसु लद्धं एयं चेव दुगुणं २८५ । ५/७ । तहा केसिं च आयारियाणं मएणं सुराउसमं=देवाउतुल्लं=दसवरिससहस्स त्ति गमत्थो, तित्थंकरनामगुत्तं वज्झइ । आहारगस्स "अंतमुहुत्तं" ति, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ठिई होइ त्ति ।।७६।।

इयाणिं ठिइबंधो जहन्नओ जस्स अबाहाकालो जो होइ तं दंसेइ–

भिन्नमुहुत्तमबाहा सव्वासिं सव्वहिं डहरबंधे ।
आउसु जेट्ठे वि जओ संखेप्पद्धा भवइ तेसु ॥७७॥

'भिन्नमुहुत्त' ति अंतोमुहुत्तं अबाहा=अणुदओ सव्वासिं=मूलुत्तरपगईणं 'सव्वहिं' ति सव्वेसु जीवट्ठाणाईसु ''डहरबंधे''त्ति जहन्नबंधे पुव्वभणिए । आउए पुण अबाहाए ''आउसु जेट्ठि''त्ति आऊणं जेट्ठे वि=उक्कोसे वि ठिइबंधे अंतोमुहुत्तं कम्हा ? जओ ''असंखेप्पि'' त्ति असंखेप्पा=संकोचिउमशक्या अद्धा=कालो भवइ तेसु=आउसु । तहाहि–इह परभवियाउस्स बंधो इहभवाउयतिभागे तदभावे सेसस्स तिभाए एवं तिभागा तिभागा कप्पणाए जाव अंतो तिभागो सो य असंखेप्पद्धा भवइ ॥७७॥

तिरियमणुयाणं ठिइबंधो जहन्नो खुड्डभवप्पमाणो भणिओ । अओ इयाणिं खुड्डभवं पन्नवेइ–

खुड्डभवा साहीया सत्तरस भवंति एगपाणुम्मि ।
पाणू एगमुहुत्ते तिसत्तरीसत्ततीससया ॥७८॥

खुड्डभवा=खुड्डागभवलक्खणा, सत्तरससंखा समहिया किंचित्, साहिया चउणवइ-आवलिएहिं किंचि अहिएहिं, कत्थ ?, ''एगपाणुम्मि'' त्ति एगे ऊसासनिसासे । तहा ''पाणू'' त्ति ऊसासनिसासा एकम्मि मुहुत्ते दुघडियपमाणे ''तिसत्तरि'' त्ति तिसत्तरीए अहियाणि सत्ततीसं सयाणि भवंति ॥७८॥

संपयं मुहुत्ते खुड्डभवप्पमाणमाह–

पणसट्ठिसहस्सपणसय छत्तीसा इगमुहुत्तखुड्डभवा ।
दो य सया छप्पन्ना आवलियाणेगखुड्डभवे ॥७९॥

एगम्मि मुहुत्ते पणसट्ठिसहस्सा पंचसया छत्तीसा य खुड्डभवा होंति । तहा दो य सया-छप्पन्ना आवलियाणं एकस्मिन् खुड्डभवे होंति ।

इयाणिं जहा एगम्मि पाणुम्मि सत्तरस खुड्डभवा साहिया होंति, तहा कहिज्जइ–इह कहियस्स एयस्स ६५५३६ मुहुत्ते ठियखुड्डगभवगहणरासिस्स सत्ततीसाए सएहिं तिहत्तरेहिं ऊसासाणं भागो हीरइ । तत्थ लब्भहिं सत्तरसखुड्डभवा । सेसं उव्वरियं तेरस सया पंचाणउया अंसाणं । इह अयं भावत्थो–जेसिं अंसाण तिहिं सहस्सेहिं सत्तहिं सएहिं तिहत्तरीए य खुड्डगभवग्गहणं होइ ते एए अंसा । तत्र स्थापना $\frac{१३९५}{३७७३}$ । तओ एए अंसा दोहिं सएहिं छप्पन्नेहिं खुड्ड-भवप्पमाणेहिं आवलियाणं गुणिय आवलियाओ कीरंति । ३५७१२० । मुहुत्तऊसासेहिं भागो

हीरइ । लद्धा आवलि ६४ । आवलिभागा ३४५६/३७७३ । एवं सत्तरस भवा साहीया हवंति । मुहुत्तावलियाओ मुहुत्तखुड्डभवावलियाहि गुणिया । ताओ दो सयाणि सोलहुत्तराणि सत्तहत्तरि सहस्सा सत्तसट्ठी लक्खा एगा कोडी य १६७७७२१६ हवंति । उक्तं च–

"सोलुत्तरदोन्निसया सत्तत्तरिसहस्सलक्खसयसट्ठी । एगा कोडी आवलियाणं भणिया मुहुत्तम्मि ॥१॥"

संपयं स्थितिप्रस्तावादेव किंपि गुणट्ठाणगेसु भणेइ—

अयरंतकोडिकोडीओ अहिगो सासणाइसु न वंधो ।
हीणो न अपुव्वंतेसु नेव य अभव्वसन्निम्मि ॥८०॥

अयराणं=सागरोवमाणं अंतोकोडाकोडीओ=कोडाकोडीमज्झाओ अहिओ कोडाकोडीरूवो न हवइ वंधो सासायणपमुहगुणट्ठाणगेसु, विसोहिवसेण तहाविहठिइवंधाभावाओ । कोइ भणिज्जा अंतोकोडाकोडीए वि न हवेज्जा, अओ निसेहइ । हीणो=पडिओ अंतोकोडाकोडीओ न होइ । तहा विसोहिवसओ कमेण संखेज्जगुणहीणो पायसो भविज्जा। सो वि अंतोकोडाकोडीओ चेव । अपुव्वंतेसु=अपुव्वकरणगुणट्ठाणं जाव, तहा "नेव य अभव्वसंन्निम्मि" त्ति अभव्वसन्निपज्जत्तेवि अंतोकोडाकोडीओ हीणो वंधो न होइ। सो वि अन्नेसिं संखेज्जगुणो पाएण ॥८०॥

संपयं संजयाणं उक्कोसओ देसविरयाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं अविरयसम्मदिट्ठीणं सन्नीणं च ठिइवंधो जहन्नो उक्कोसो य भिन्नो भिन्नो भण्णइ–

अमणुक्कोसाओ विरयउक्कोसो देसविरयहस्सियरो ।
चउसम्मसन्निचउरो ठिइवंधाऽणुकमसंखगुणो ॥८१॥

"अमणुक्कोसाओ" इइ भणंतेण सुत्तकारेण अन्ने वि ठिईओ जहन्नुक्कोसठिईवंधगा सव्वे वि सूइया । जहा कम्मपयडीए छत्तीसं पयाणं कम्मस्स ठिइवंधो उक्कोसजहन्नओ भणिओ । इत्थ पुण सुत्तयारेण अंतिल्लाण एक्कारसन्हं चेव पयाणं उक्कोसो जहन्नो वि ठिइवंधो भणिओ । अओ पढमं ताव आइल्लाणि पणवीसपयाणि दंसिज्जंति । तओ पच्छा गाहा वक्खाणेज्जिही सो य इमो—

"थोवो इह ठिइवंधो संजयजीवस्स सो य अंतमुहु १,। तत्तो असंखगुणिओ बायरएगिंदियजहन्नो ॥१॥
तत्तो सुहुमि समत्ते २,बायर ४,सुहुमे अपज्जय ५,जहन्नो । कमसो विसेसअहिओ सुहुमि ६,यरि ७,अपज्जजेट्ठो य॥२॥
सुहुमे ८,यर ९,पज्जेसु कमसो विसेसमहिओ ठिई वंधो। तत्तो संखेज्जगुणो बेंदिय १० पज्जत्तयजहन्नो ॥३॥
अप्पज्जत्त ११,जहन्नो तस्सेवुक्कोसगो य १२,ठीवंधो । पज्जत्तेसुक्कोसो कमसो अहिओ य तिण्हंपि ।४॥
एवं तिचउ अमणिंदियाण पढमे पयम्मि संखगुणो । सेसेसु विसेसहिओ नेयव्वो जाव पणवीसं ॥५॥"

पसंगागयं सव्वजीवट्ठाणेसु सव्वासिं जहन्नुक्कोसठिईणं अप्पाबहुगं भन्नइ—

तत्थ सव्वत्थोवो संजयस्स जहन्नगो ठिइबंधो सो य अंतमुहुत्तपमाणो १, एगिंदियबायर पज्जत्तगस्स जहन्नओ ठिइबंधो असंखेज्जगुणो २, सुहुमस्स पज्जत्तगस्स जहन्नगो ठिइबंधो विसेसाहिओ ३, बायरअपज्जत्तगस्स जहन्नो विसेसाहिओ ४, सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नगो विसेसाहिओ ५, तस्सेवुक्कोसठिइबंधो विसेसाहिओ ६, बायरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ ७, सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ ८, बायरस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ ९ तत्थ बेइंदिय पज्जत्तगस्स जहन्नगो संखेयगुणो १०, अपज्जत्तगस्स जहन्नगो विसेसाहिओ ११. तस्सेव य उक्कोसगो विसेसाहिओ १२, बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसओ विसेसाहिओ १३, तेइंदियस्स पज्जत्तगस्स जहन्नो संखिज्जगुणो १४, तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहन्नगो विसेसाहिओ १५, तस्सेव य उक्कोसो विसेसाहिओ १६, तेइंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ १७, चउरिंदियस्स पज्जत्तगस्स जहन्नो संखेज्जगुणो १८, अपज्जत्तगस्स जहन्नो विसेसाहिओ १९, तस्सेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ २०, चतुरिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ २१, असन्निपंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स जहन्नगो ठिइबंधो संखेज्जगुणो २२, तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहन्नो विसेसाहिओ २३, तस्सेवुक्कोसगो विसेसाहिओ २४, असन्निपंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो ठिइबंधो विसेसाहिओ २५ ।

इयाणिं गाहा वक्खाणिज्जइ—

तत्थ असणाणं=असन्नीणं पज्जत्ताणं 'उक्कोसठिइबंधा विरयस्स=संजयस्स ठिइबंधो उक्कोसगो संखेज्जगुणो २६,**देसविरयहस्सियरो**" त्ति संजयठिइबंधाओ देसविरयस्स हस्सो=जहन्नो संखेज्जगुणो २७, '**इयरो**' त्ति तस्सेव देसविरयस्स इयरो=उक्कोसो संखेज्जगुणो २८, "**सम्मचउ**" त्ति असंजयसम्मद्दिट्ठी पज्जत्तअपज्जत्तगाणं जहन्नुक्कोसगं ति भणियं होइ, देसविरयउक्कोसओ असंजयसम्मद्दिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स जहन्नो ठिइबंधो संखेज्जगुणो २९, तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहन्नो संखेज्जगुणो ३०, तस्सेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसओ संखेज्जगुणो ३१, तओ असंजयसम्मद्दिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसो संखेज्जगुणो ३२, **सन्निचउरो** त्ति पज्जत्तापज्जत्तसन्नीणं उक्कोसजहन्नभेएण चउण्हं, तओ, असंजयसम्मद्दिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसगाओ ठिइबंधाओ सन्निपज्जत्तस्स जहन्नो ठिइबंधो संखेज्जगुणो ३३, तओ तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहन्नो संखेज्जगुणो ३४, तओ तस्सेव अपज्जउक्कोसो संखेज्जगुणो ३५, कोडाकोडीए अब्भिंतरे चेव जइ वि कमेण वुड्ढिभागओ तहा वि सन्निस्स पज्जत्तगस्स अपज्जत्तुक्कोसाओ उक्कोसो संखेज्जगुणो ३६, एवं संजयस्स उक्कोसाओ आढत्तो कोडाकोडीओ अब्भिंतरओ भवइ पणतीसं जाव उक्कोसो सन्निस्स होइ पज्जत्तग-

१ मिथ्यात्वमधिकृत्य सागरोपमसहस्रलक्षणात् ।

स्सेवत्ति। पुव्वं सामन्नेण जो उक्कोसगो ठिइबंधो भणिओ, सो सन्निस्स पज्जत्तगस्स मिच्छ द्दिट्ठिस्स चेव भवइ ॥८०॥

ठिईबंधपरूपणा भणिया। ताणं उक्कोसाणं जहन्नाणं जे सामिणो ते इयाणिं भन्नंति–

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसं सन्निणो कुणंति ठिई।
एगिंदिया जहन्नं असन्निखवगा य काणं पि ॥८२॥

सव्वाण वि सुभाणं असुभाणं पयडीणं मूलुत्तराणं उक्कोसं ठिइबंधं सन्निणो कुणंति=निव्वत्तंति, न सेसा जीवा। भणियं च- 'उक्कोसो सन्निस्स होइ पज्जत्तगस्सेव' जओ तेसिं चेव तहाविहपरिणामसब्भावो। तहा जहन्नं पुण ठिइबंधं एगिंदियपज्जत्तगा निव्वत्तिंति एगारसुत्तरपयडिसयस्स छप्पन्नसयस्स मज्झाओ। तहा "असन्निणो" त्ति "काणंपि" त्ति संबज्झइ सव्वत्थ। तओ असन्निणो पंचेंदिया वेउव्विक्कारसगस्स पुव्वभणियस्स जहन्नं ठिइं, तहा खवगा "दंसणचउविग्घावरण" इच्चाइ बावीसपयडीणं जहन्नं ठिइं कुणंति। चकारात् तु अपुव्वकरणो आहारसत्तगस्स तित्थयरनामस्स य, तिरिमणुया आउयचउक्कस्स जहन्नठिइबंधगा। उक्तं च–

"आहारयतित्थयरं नियट्टि अनियट्टि पुरिससंजलणा। बंधइ सुहुमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं ॥१॥
छन्हमसन्नी कुणइ जहन्नठिइमाउगाणमन्नयरो। सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो ॥२॥" ॥८२॥

संपयं एयासिं ठिईणं जेण परिणामेण सुभाणं वा असुभाणं वा सब्भावो तं भन्नइ–

सव्वाणुक्कोसठिई असुभा सा जमइसंकिलेसेणं।
इयराउ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मुत्तुं ॥८३॥

सव्वाणं पुन्नरूपाणं पावरूवाणं च उक्कोसा जा ठिई सा सव्वा असुभा। जं अइसंकिलेसेण=अइतिव्वकसाउदएण असुभा वज्झइ। जओ मिच्छद्दिट्ठी आहारगसत्तगस्स तित्थयरनामदेवाउयमणुयतिरियाउवज्जाणं सव्वपयडीणं सुभाणं असुभाणं वा उक्कोसं संकिलिट्ठो ठी बंधइ। तत्थ असुभपयडीणं ठिई तिव्वरसा कडुविवागा असुभफलरसेणेव कडुविवागवत्। सुभाणं पुण वालुयकवलोपमा नीरसा तत्तओ असुभा चेव तहा तित्थयरनामस्स अविरयसम्मद्दिट्ठी, आहारसत्तगस्स अपमत्तसंजओ तप्पाओगसंकिलिट्ठो उक्कोसठिइं बंधइ। संकिलेसो=कसाओदओ सो असुभो चेव। इयरा पुण जहन्ना ठिई, सा य विसोहीए [1]बंधं पडुच्च कसायहासरूवा एसा सुभा। असुभाणं असुभा चेव तहा वि विसोहीए निंबरसबहुओउदगमीसरसलवत्त् सुभा इव लक्खिज्जइ। अओ सुभासुभाणं सुभा चेव। इक्खुरसबहुपाणियरसवत् "सुरनरतिरियाउए मुत्तु" ति देवमणुयति-

१ देवद्विक-नरकद्विक वैक्रियद्विकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनाम्। २ स्वकीयं बन्धमाश्रित्य।

रियाउआण विवरीयं, कहं विवरीयं ? भन्नइ,—एएसिं जा जा उ ठिई उक्कोसा सा विसोहीए चेव भवइ। जहन्ना पुण संकिलेसेण त्ति। देवाउयस्स सव्वट्ठे, मणुयतिरियाउयाणं उत्तरकुरुभोगभूमीए, सा सुभा चेव; अओ वुत्तं, सुरनरतिरियाउए मुत्तुं=परिवज्जिय ॥८३॥

पसंगागयं भन्नइ। एयाउ ठिईओ योगसहिएणं जीवनियवीरिएणं बज्झंति। अओ जीवठाणेसु जस्स जेत्तिया जोगवुड्ढी, तस्स अप्पबहुत्तं दंसेइ—

सुहुमनिगोयाइखणे जोगो थोवो तओ असंखगुणो।
बायर[1]बितियचउरमणसन्निअपज्जत्तगजहन्नो ॥८४॥
पढमदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो य कमा।
असमत्ततसुक्कोसो पज्जत्तजहन्नजेट्ठो य ॥८५॥

सुहुमनिगोयस्स=साहारणसुहुमस्स लद्धीए अप्पज्जत्तगस्स आइक्खणे=पढमसमए वट्टमाणस्स अप्पविरियलद्धिस्स जहन्नओ जोगो सो य थोवो। तओ बायरएगिंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नो जोगो असंखेज्जगुणो। तओ बेइंदियस्स अपज्जत्तगजहन्नो असंखेज्जगुणो। तओ तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नो असंखगुणो। एवं चउरिंदियअपज्जत्तगस्स असन्निपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स सन्निपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स भाणियव्वं पढमदुगुक्कोस त्ति पढमदुगं जाइदुगं सुहुमबायरएगिंदिया अपज्जत्तगा, तेसिं उक्कोसो। तओ परिवाडीए सन्निअपज्जत्तजहन्नाओ सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसो जोगो असंखेज्जगुणो। तओ बायरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो। "सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो य कमा" त्ति तेसिं चेव सुहुमबायराणं पज्जत्तगाण करणं पडुच्च जहन्नो इयरो=उक्कोसो य कमेण असंखेज्जगुणो। जहा तओ सुहुमस्स पज्जत्तगस्स जहन्नओ जोगो असंखेज्जगुणो। (तओ) बायरस्स पज्जत्तगस्स जहन्नओ असंखेज्जगुणो। तओ सुहुमपज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो। तओ बायरपज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो। "असमत्ततसुक्कोसु" त्ति असमत्ता=अपर्याप्ता जे तसा=बेइंदियतेइंदियाइणो तेसिं उक्कोसो जहक्कमं असंखेज्जगुणो नेयव्वो। जहा बायरपज्जत्तगस्स उक्कोसाओ बेइंदियअपज्जत्तगस्स उक्कोसओ जोगो असंखेज्जगुणो। एवं तेइंदियअपज्जत्तगचउरिंदियअपज्जत्तगअसन्निपंचिंदियअपज्जत्तगसन्निपंचिंदियअपज्जत्ताणं कमेण असंखेज्जगुणो उक्कोसो जोगो होइ। एए सव्वे लद्धिपज्जत्तगा चेव गहिया। "पज्जत्तजहन्नजेट्ठो य" त्ति तेसामेव बेइंदियाईणं पज्जत्ताणं जहन्नो 'जेट्ठो य' त्ति उक्कोसो जोगो कमेण असंखिज्जगुणो कायव्वो। जहा सन्निपंचेंदियअपज्जत्तउक्कोसाउ बेइंदियपज्जत्तस्स जहन्नजोगो असंखेज्जगुणो। तओ तेइंदियपज्जत्तजहन्नो असंखेज्जगुणो।

---

1. "बियतियचउमण" इत्यपि।

स्सेवत्ति। पुव्वं सामन्नेण जो उक्कोसगो ठिइबंधो भणिओ, सो सन्निस्स पज्जत्तगस्स मिच्छद्दिट्ठिस्स चेव भवइ ॥८०॥

ठिईबंधपरूपणा भणिया। ताणं उक्कोसाणं जहन्नाणं जे सामिणो ते इयाणिं भन्नंति—

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसं सन्निणो कुणंति ठिई।
एगिंदिया जहन्नं असन्निखवगा य काणं पि ॥८२॥

सव्वाण वि सुभाणं असुभाणं पयडीणं मूलुत्तराणं उक्कोसं ठिइबंधं सन्निणो कुणंति=निव्वत्तंति, न सेसा जीवा। भणियं च- 'उक्कोसो सन्निस्स होइ पज्जत्तगस्सेव" जओ तेसिं चेव तहाविहपरिणामसब्भावो। तहा जहन्नं पुण ठिइबंधं एगिंदियपज्जत्तगा निव्वत्तिंति एगारसुत्तरपयडिसयस्स छप्पन्नसयस्स मज्झाओ। तहा "असन्निणो" त्ति "काणंपि" त्ति संबज्झइ सव्वत्थ। तओ असन्निणो पंचेंदिया वेउव्विक्कारसगस्स पुव्वभणियस्स जहन्नं ठिइं, तहा खवगा "दंसणचउविग्घावरण" इच्चाइबावीसपयडीणं जहन्नं ठिइं कुणंति। चकारात् तु अपुव्वकरणो आहारसत्तगस्स तित्थयरनामस्स य, तिरिमणुया आउयचउक्कस्स जहन्नठिइबंधगा। उक्तं च—

"आहारयतित्थयरं नियट्टि अनियट्टि पुरिससंजलणा। बंधइ सुहुमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं ॥१॥
छन्हमसन्नी कुणइ जहन्नठिइमाउगाणमन्नयरो। सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो ॥२॥" ॥८२॥

संपयं एयासिं ठिईणं जेण परिणामेण सुभाणं वा असुभाणं वा सब्भावो तं भन्नइ—

सव्वाणुक्कोसठिई असुभा सा जमइसंकिलेसेणं।
इयराउ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मुत्तुं ॥८३॥

सव्वाणं पुन्नरूपाणं पावरूवाणं च उक्कोसा जा ठिई सा सव्वा असुभा। जं अइसंकिलेसेण=अइतिव्वकसाउदएण असुभा बज्झइ। जओ मिच्छद्दिट्ठी आहारगसत्तगस्स तित्थयरनामदेवाउयमणुयतिरियाउवज्जाणं सव्वपयडीणं सुभाणं असुभाणं वा उक्कोसं संकिलिट्ठो ठी बंधइ। तत्थ असुभपयडीणं ठिई तिव्वरसा कडुविवागा असुभफलरसेणेव कडुविवागवत्। सुभाणं पुण वालुयकवलोपमा नीरसा तत्तओ असुभा चेव तहा तित्थयरनामस्स अविरयसम्मद्दिट्ठी, आहारसत्तगस्स अपमत्तसंजओ तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो उक्कोसठिइं बंधइ। संकिलेसो=कसाओदओ सो असुभो चेव। इयरा पुण जहन्ना ठिई, सा य विसोहीए [2]बंधं पडुच्च कसायहासरूवा एसा सुभा। असुभाणं असुभा चेव तहा वि विसोहीए निंबरसबहुओउदगमीसरसलववत् सुभा इव लक्खिज्जइ। अओ सुभासुभाणं सुभा चेव। इक्खुरसबहुपाणियरसवत् "सुरनरतिरियाउए मुत्तुं" ति देवमणुयति-

१ देवद्विक-नरकद्विक वैक्रियद्विकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनाम्। २ स्वकीयं बन्धमाश्रित्य।

रियाउआण विवरीयं, कहं विवरीयं ? भन्नइ,—एएसिं जा जा उ ठिई उक्कोसा सा विसोहीए चेव भवइ। जहन्ना पुण संकिलेसेण त्ति। देवाउयस्स सव्वट्ठे, मणुयतिरियाउयाणं उत्तरकुरुभोगभूमीए, सा सुभा चेव; अओ वुत्तं, सुरनरतिरियाउए मुत्तु=परिवज्जिय ॥८३॥

पसंगागयं भन्नइ। एयाउ ठिईओ योगसहिएणं जीवनियवीरिएणं बज्झंति। अओ जीवठाणेसु जस्स जेत्तिया जोगवुड्ढी, तस्स अप्पबहुत्तं दंसेइ—

सुहुमनिगोयाइखणे जोगो थोवो तओ असंखगुणो।
बायर[1]बितियचउरमणसन्निअपज्जत्तगजहन्नो ॥८४॥
पढमदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो य कमा ।
असमत्ततसुक्कोसो पज्जत्तजहन्नजेट्ठो य ॥८५॥

सुहुमनिगोयस्स=साहारणसुहुमस्स लद्धीए अप्पज्जत्तगस्स आइक्खणे=पढमसमए वट्टमाणस्स अप्पविरियलद्धिस्स जहन्नओ जोगो सो य थोवो। तओ बायरएगिंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नो जोगो असंखेज्जगुणो। तओ बेइंदियस्स अपज्जत्तगजहन्नो असंखेज्जगुणो। तओ तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नो असंखगुणो। एवं चउरिंदियअपज्जत्तगस्स असन्निपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स सन्निपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स भाणियव्वं **पढमदुगुक्कोस** त्ति पढमदुगं जाइदुगं सुहुमबायरएगिंदिया अपज्जत्तगा, तेसिं उक्कोसो। तओ परिवाडीए सन्निअपज्जत्तजहन्नाओ सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसो जोगो असंखेज्जगुणो। तओ बायरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो। **"सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो य कमा"**त्ति तेसिं चेव सुहुमबायराणं पज्जत्तगाण करणं पडुच्च जहन्नो इयरो=उक्कोसो य कमेण असंखेज्जगुणो। जहा तओ सुहुमस्स पज्जत्तगस्स जहन्नओ जोगो असंखेज्जगुणो। (तओ) बायरस्स पज्जत्तगस्स जहन्नओ असंखेज्जगुणो। तओ सुहुमपज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो। तओ बायरपज्जत्तगस्स उक्कोसो असंखेज्जगुणो। **"असमत्ततसुक्कोसु"** त्ति असमत्ता=अपर्याप्ता जे तसा=बेइंदियतेइंदियाइणो तेसिं उक्कोसो जहक्कमं असंखेज्जगुणो नेयव्वो। जहा बायरपज्जत्तगस्स उक्कोसाओ बेइंदियअपज्जत्तगस्स उक्कोसओ जोगो असंखेज्जगुणो। एवं तेइंदियअपज्जत्तगचउरिंदियअपज्जत्तगअसन्निपंचिंदियअपज्जत्तगसन्निपंचिंदियअपज्जत्ताणं कमेण असंखेज्जगुणो उक्कोसो जोगो होइ। एए सव्वे लद्धिपज्जत्तगा चेव गहिया। **"पज्जत्तजहन्नजेट्ठो य"**त्ति तेसामेव बेइंदियाईणं पज्जत्ताणं जहन्नो **'जेट्ठो य'** त्ति उक्कोसो जोगो कमेण असंखिज्जगुणो कायव्वो। जहा सन्निपंचेंदियअपज्जत्तउक्कोसाउ बेइंदियपज्जत्तस्स जहन्नजोगो असंखेज्जगुणो। तओ तेइंदियपज्जत्तजहन्नो असंखेज्जगुणो।

१. "बियतियचउमण" इत्यपि।

तओ चउरिंदियपज्जत्तगजहन्नो असंखेज्जगुणो। तओ असन्निपंचिंदियस्स पज्जत्तगजहन्नो असंखेज्जगुणो। तओ सन्निपंचिंदियपज्जत्तजहन्नो जोगो असंखेज्जगुणो । एए सव्वे करणपज्जत्तीए पज्जत्तगा दट्ठव्वा। तओ सन्निपंचिंदियपज्जत्तगजहन्नजोगाउ वेइंदियपज्जत्तगउक्कोसगो असंखेज्जगुणो। तओ तेइंदियपज्जत्तगउक्कोसो असंखेज्जगुणो। तओ चउरिंदियपज्जत्तगउक्कोसो असंखेज्जगुणो। तओ पंचिंदियअसन्निपज्जत्तगउक्कोसो असंखेज्जगुणो। तओ सन्निपंचिंदियपज्जत्तगउक्कोसो जोगो असंखेज्जगुणो ॥८४-८५॥

इयाणिं ठिइठाणाणं अप्पबहुत्तं भन्नइ। एयाओ ठिईओ कसायसहिएणं जीवेणं निव्वत्तिज्जंति। अओ चउदसण्हं जीवठाणाणं विसेसं दंसेइ—

एवं चिय ठिइठाणा अपज्जपज्जक्कमेण संखगुणा।
नवरमसमत्तबिंदिय[1]एक्कपए ते असंखगुणा ॥८६॥

"एवं चिय"त्ति जोगपरूवणानाएण "ठिइठाण"त्ति ठिईणं जहण्णुक्कोसमेयभिन्नाणं बंधठाणाणं जहन्निगं ठिइं आइं काउं जाव उक्कोसिगा ठिई तेसिं मज्झे जत्तिया ठिईविगप्पा ते उक्कोसियाए ठिईए समं ठीठाणाणि वुच्चंति। "अपज्जपज्जक्कमेण"त्ति अपज्जत्तगपज्जत्तगपरिवाडीए संखगुणा होंति। "नवरं"ति केवलं असमत्ते=अपर्याप्ते बेइंदियठाणे एगत्थ पए ताणि ठिईबंधठाणाणि असंखगुणाणि होंति। तत्थ ताव सव्वत्थोवाणि ठिइबंधठाणाणि सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स। तओ बायरस्स अपज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि। तओ सुहुमस्स पज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि। तओ बायरस्स पज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि, पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमित्ताणि। तओ बायरपज्जगठिइबंधठाणेहिंतो बेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स ठिईबंधठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। कहं ? भन्नइ,—बेइंदियाण ठिइबंधठाणाणि पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमित्ताणि त्ति काउं। तस्सेव पज्जत्तगस्स संखेज्जगुणियाणि। तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि। तस्सेव पज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि। तओ चउरिंदियस्स अपज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि। तस्सेव पज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि। असन्निपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि। तस्सेव पज्जत्तगस्स संखेज्जगुणाणि। तओ सन्निपंचिंदियस्स अपज्जत्तठिइठाणाणि संखेज्जगुणाणि। तस्सेव पज्जत्तगस्स ठिइठाणाणि संखेज्जगुणाणि ॥८६॥

एएसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ताणं अन्नं किं पि विसेसं दंसेइ—

सव्वे वि अपज्जत्ता [2]होंति पइक्खणमसंखगुणविरिया।
संखगुणूणा सुहुमेसु बायरेसु य असंखगुणा ॥८७॥

---

१. "इक्कपए"इत्यपि। २. "हुंति"इत्यपि।

सव्वे वि=सव्व वि अपज्जत्ता पइक्खणं=पढमसमयादारब्भसमए समए असंखगुणवीरियवुड्ढीए वट्टंति जाव अपज्जत्तचरमसमओ। पज्जत्तेन नियमो। जओ सो अवट्ठियवीरिओ होइ हीणवीरिओ वा, अहियवीरिओ वा। तहा अपज्जत्तगाणं अप्पबहुयं भन्नइ–"संखगुणूणा सुहुमेसु" त्ति संखेज्जगुणेणं ऊणा=हीणा सुहुमेसु=पज्जत्तगेसु तो सुहुमअपज्जत्तगा जीवा। बायरेसु पुण असंखगुणा अपज्जत्ता जीवा पज्जत्तेहिंतो हुंति ॥८७॥

जीवट्ठाणेसु परूवियाणि ठिइबंधठाणाणि। ताओ कसाओदयमेएसु निव्वत्तिज्जंति। अओ तेसिं चेव संखानिरूवणत्थं भणेइ—

ठिइबंधे ठिइबंधे अज्झवसाया असंखलोगसमा।
कमसो विसेसअहिया सत्तासु आउसु असंखगुणा ॥८८॥

तत्थ सव्वकम्माण जहन्नियाओ ठिइबंधाओ आरब्भ जाव उक्कोसिया ठिई, तासिं मज्झे जाओ समयवुड्ढीए ठिईओ तासिं एक्केक्कम्मि ठिइबंधे एगिंदियाइजीवपाओग्गे अज्झवसाया संकिलेसा असंखलोयसमा=असंखलोगेसु जेत्तिया आगासपएसा तेत्तियपमाणा होंति। कालमेएण एगजीवं पडुच्च, एगम्मि वि कालो अणेगजीवे पडुच्च लब्भंति। एए गुणअज्झवसाया कमसो=परिवाडीए सत्तसु नाणावरणाइकम्मेसु जे जहन्नाओ ठिबंधाओ उत्तरोत्तरा ठिइबंधा तेसु विसेसेण किंचित्साधिकत्वेनाधिका भवंति। अज्झवसायठाणाणं दुविहा वुड्ढीपरूवणा। तं जहा–अणंतरोवणिहियाए, परंपरोवणिहियाए। तत्थ अणंतरोवणिहियाए इस्सा विसेसवड्ढि त्ति सत्तन्हं कम्माणं पढमाए ठिईए ठिइबंधज्झवसाया थोवा। बिइयाए विसेसाहिया। एवं तइयाए जाव उक्कोसा ठिइत्ति। परंपरोवणिहियाए सत्तन्हं कम्माणं पल्लासंखेज्जभागं २, गंतुं दुगुणाणि, पुणो पल्लअसंखेज्जइभागं गंतुं दुगुणवड्ढियाणि; एवं जाव उक्कोसिया ठिइत्ति। आउसु दुविहा वि असंखगुणा "आउसु असंखगुण" त्ति आऊणं पुण विसेसो, जओ चउसु वि आउसु जहन्ने ठीबंधे जे बंधज्झवसायट्ठाणा, ते सव्वे थोवा, असंखेज्जलोगागासपएसमेत्ता। तेहिं वि समयाणं उत्तराए ठिईए असंखेज्जगुणा। एवं ताव नेयं जाव नियनिया उक्कोसिया ठिइत्ति ॥८८॥

संपयं दंसणावरणाईणं असुभसुभाणं कम्माणं जारिसेण अज्झवसाएण जारिसो अणुभागो उप्पाइज्जइ तं कहेइ—

असुहाण संकिलेसेण होइ तिव्वे सुहाण सोहीए।
अणुभागो मंदो पुण विवज्जए सव्वपयडीणं ॥८९॥

असुहाणं=पावपगईणं संकिलेसेण=कसाओदएण "अणुभागो"त्ति संबज्झइ होइ=भवइ तिव्वो=उक्कोसो महाविसोवमो। सुभाणं पुण=पुण्णपगईणं विसोहीए=कसायपरिहाणीए अणुभागो

तिव्वो अमयरसोवमो होइ। तह 'मंदो'त्ति जहन्नअणुभागो सव्वपयडीणं सुभासुभाणं विवज्जएण विवरीयत्तणेण भवइ। तहाहि-असुभपगईणं विसोहीए मंदो, सुभपगईणं संकिलेसेण मंदरसो॥८९॥

इयाणिं जाओ पयडीओ जेत्तियरसविसेससमन्नियाओ ताओ दंसेइ—

सतरस पयडी संजलण ४ विग्ध ५ पुंदेसधाइआवरणा७।
चउठाणरसपरिणया दुतिचउठाणा उ सेसाओ ॥९०॥

सत्तरसपयडीओ संजलणचउक्कं अंतरायपणगं पुरिसवेयं केवलनाणवज्जा चत्तारि नाणावरणा केवलदंसणावरणवज्जा तिन्नि दंसणावरणरूवाओ चउठाणरसपरिणयाओ नायव्वा। तत्थ चत्तारि ठाणाणि एगट्ठाणदुट्ठाणाईणि वक्खमाणाणि जस्स सो चउठाणो रसो, तेण एगाइमेयभिन्नेण चउट्ठाणेण परिणयाओ। एगट्ठाणिओ वा दुट्ठाणिओ वा तिट्ठाणिओ वा चउट्ठाणिओ वा। कहं सत्तरस संखा एव चउट्ठाणिओ, न सेसाणं? भन्नइ,—अनियट्टिअद्धकंते बंधो एयाण सुहुमरागे य। अन्नेसिं न असुभाणं तेणिगठाणाणि सत्तरस, सेसाओ पुण पयडीओ बायालीसं पुन्नपगईओ, पणसट्ठी पावपगईओ य दुतिचउठाणाओ=दुइज्जतिइज्जचउत्थरसठाणपरिणयाओ होंति ॥९०॥

इयाणिं जारिसेहिं कसाएहिं एगठाणाइया रसविसेसा निप्फज्जंति तं भन्नइ—

पव्वयभूमी वालुयजलरेहासरिससंपराएहिं ।
चउठाणाई असुहाण वव्वयाओ सुहाणं तु ॥९१॥

असुभपयडीणं चउट्ठाणाइया रसविसेसा होंति। एएहिं संपराएहिं जहा पव्वयरेहासरिसकोहेणं चउठाणिओ रसो बज्झइ। भूमीरेहासरिसेण तिट्ठाणिओ, वालुयरेहासरिसेण दुट्ठाणिओ रसो बज्झइ। जलरेहासरिसकोहेण य एगठाणिओ। सेसाणं माणमायालोमाणं उवलक्खणं दट्ठव्वं। तहा थंभ-वंसिमूल-किमरागसरिसेहिं जहासंखं माण-माया-लोमेहिं चउठाणिओ, अट्ठिमिंठसिंग-कद्दमरायसरिसेहिं तिट्ठाणाइओ, कट्ठ-गोमुत्तिया-खंजणरायसन्निमेहिं दुट्ठाणियो, तिणसलय-अवालहिय-हलिद्दरागसन्निमेहिं एगट्ठाणिओ असुभाणं रसो बज्झइ। सुभाणं=पुन्नपगईणं "वव्वयाउ"त्ति विवज्जएण अणुभागो होइ जलरेहासरिसेण चउट्ठाणिओ, वालुयरेहासरिसेण तिट्ठाणिओ, भूमिरेहासरिसेण दुट्ठाणिणो, पव्वयरेहा सरिसेण एगट्ठाणिओ। एवं माणमायालोमेहिं पुव्वुत्तं विवरीयं भणियव्वं ॥९१॥

इयाणिं एगठाणाईणं रसाणं दिट्ठेण सरूवं सुभासुभपयडीसु दंसेइ—

घोसाडइनिंबुवमो असुहाण सुहाण खीरखंडुवमो ।
एगट्ठाणो उ रसो अणंतगुणिया कमेणियरे ॥९२॥

घोसाडइ-निंबेहिं उवमा=सरिसत्तं जस्स सो घोसाडइ-निंबोवमो रसो असुभाणं एगट्ठाणिओ रसो। सुहाणं खीरखंडेहिं उवमा जस्स रसस्स सो खीरखंडोवमो रसो एगट्ठाणिओ होइ। इयरे पुण दुट्ठाणाइया कमेण अणंतगुणिया। एगट्ठाणियाओ दुट्ठाणिओ अणंतगुणो। एवं दुट्ठाणियाओ तिट्ठाणिओ अणंतगुणो। तिट्ठाणियाओ चउट्ठाणिओ अणंतगुणो। नणु पुव्वं सुभाणं एगट्ठाणिओ निसिद्धो, कहं पुणरवि भणिओ? भन्नइ,—दुट्ठाणाइरससाहणनिमित्तं न पुण एगंसि एगट्ठाणो बंधमागच्छइ ॥९२॥

संपयं एगट्ठाणियरसाओ जहा दुट्ठाणाइया रसा उववज्जंति, तहा भन्नइ—

निंबुच्छुरसाईणं दुतिचउभागा पुढो कढिज्जंता ।
किर एक्कभागसेसा दुतिचउठाणा रसा कमसो ॥९३॥

निंबाईणं उच्छाईणं च जो सभावत्थो रसो, सो एगट्ठाणिओ; तस्सेव दुन्नि भागा तिन्नि भागा चउरो भागो "पुढो" त्ति पत्तेयं २ कढिज्जंता "किर"ति आप्तसंसूचकार्थः, एगो भागो जो सो उव्वरिओ जेसु दुतिचउभागेसु ते एक्कभागसेसा दुतिचउभागा रसा होंति कमसो। जहा दोहि भागेहिं कढिज्जमाणेहिं एगे उव्वरिए दुट्ठाणिओ। एवं तिहि एगे भागे उव्वरिए तिट्ठाणिओ। चउहिं कढिज्जमाणेहिं एगे उव्वरिए चउट्ठाणो ॥९३॥

अणुभागबंधो सम्मत्तो ।

इयाणिं पएसबंधं भणिउकामो पढमं ताव वग्गणासरूवं वंमणेइ—

इगदुअणुगाइ जा अभवणंतगुणसिद्धणंतभागाणू ।
खंधा उरलोचियवग्गणाओ तह अगहणंतरिया ॥९४॥
कमसो विउव्वियाहारतेयभासाणुपाणुमणकम्मे ।
इय वग्गणावगाहो ऊणूणंगुलअसंखंसो ॥९५॥

एगाणूणं दव्वाणं वग्गणा सा अग्गहणपाउग्गा एगा। दुयऽणुगाणं खंधाणं वग्गणा सा वि अग्गहणपाउग्गा एगा तिअणुगाणं खंधाणं वग्गणा सावि अग्गहणपाउग्गा। एवं एगेगपएसवुड्ढीए ताव खंधा भाणियव्वा, जाव "अभवणंतगुणसिद्धणंतभागाणु" त्ति अभव्वेहिंतो अणंतगुणा सिद्धाणं अणंतभागपमाणा अणवो=परमाणवो जेसु ते भवंति अभव्वाणंतगुणसिद्धाणंतभागाणू। एयारिसा खंधा किम्? इत्याह—"उरलोचियवग्गणाउ"त्ति ओरालियसरीरजोग्गाओ वग्गणाओ भवंति। वग्गणा नाम एगजाईयदव्वसमुदायरूवा। किं भणियं होइ? परमाणवो पोग्गलाणं एगपएसदव्ववग्गणा अग्गहणपाउग्गा। एवं दुपएसियाण वि,

तिपएसियाण वि, चउपएसियाण वि, जाव दसपएसियाण वि। एवं चेव संखेज्जपएसियाण वि, संखेज्जाओ वग्गणाओ सव्वाउ वि अग्गहणपाउग्गाओ। असंखेज्जपएसियाण वि असंखेज्जाउ वग्गणाओ सव्वाओ अग्गहणपाउग्गाओ। अणंतपएसियाणं अणंताओ वग्गणाओ सव्वाओ अग्गहणपाउग्गाओ चेव। अणंताणंतपएसियाणं अणंताणंताओ वग्गणाओ, ताउ किं गहणपाउग्गाउ अग्गहणपाउग्गाउ वा? भन्नइ—काओ वि गहणपाउग्गाओ, काओ वि अग्गहणपाउग्गाउ। तासिं अणंताणंतपएसियाणं दव्ववग्गणाणं अग्गहणपाउग्गाणं उवरिं एगे रूवे छूढे ओरालियशरीरवग्गणा। जाणि दव्वाणि घेत्तूण जीवा ओरालियसरीरत्ताए परिणमंति, ताणि य दव्वाणि सिद्धाणमणंतभागो अभव्वसिद्धियाणं अणंतगुणाणि एवइयाणं परमाणूणं समुदाओ एगो खंधो। सा ओरालियदव्ववग्गणा जहन्ना। ताओ एगपएसुत्तरा बीया वग्गणा। एवं एगेगपएसुत्तराओ अणंताओ वग्गणाओ जाव उक्कोसा ओरालियसरीरदव्ववग्गणा। जहन्नाओ उक्कोसा विसेसाहिया। को विसेसो जहन्नाए चेव अणंतिमो भागो त्ति। "तह" त्ति वत्तव्वंतरसूयणत्थो। "अग्गहणंतरिय"त्ति अग्गहणवग्गणाविरहियाओ। किम्? इत्याह,—कमसो=परिवाडीए वेउव्वियआहारगतेयभासा आणुपाणमणकम्मे विसयभूए। "इय" त्ति एवं वग्गणा भाणियव्वा। किं भणियं होइ? ओरालियसरीरउक्कोसवग्गणाउ उवरिं एगे रूवे च्छूढे अगहणवग्गणा जहन्ना। तेसिं जहन्नाईणि एगेगपएसुत्तराणि अणंताणंताणि ठाणाणि जाव उक्कोसा ओरालियसरीरअग्गहणवग्गणा। जहन्नाओ उक्कोसा अणंतगुणा। को गुणाकारो?, भन्नइ-, अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धाणं अणंतभागो त्ति। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे जहन्ना वेउव्वियसरीरवग्गणा। वेउव्वियसरीरवग्गणा नाम जाणि दव्वाणि घेत्तूणं वेउव्वियसरीरत्ताए परिणामेंति जीवा। तेसिं अणंताणं ताओ वग्गणाओ एगेगपएसुत्तराओ। जहन्नाओ वेउव्वियसरीरदव्ववग्गणाओ उक्कोसिया वेउव्वियसरीरवग्गणा विसेसाहिया। को विसेसो? तीसे चेव अणंतिमो भागो। तओ तस्स उवरिं एगे रूवे च्छूढे जहन्निया वेउव्वियअग्गहणवग्गणा। तासिं जहन्नाईणि उक्कोसपज्जवसाणाणि अणंताणंताणि अग्गहणवग्गणाठाणाणि। जहन्नाओ उक्कोसा अणंतगुणा। गुणकारो भन्नइ—अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धाणं अणंतिमो भागो। ताए उवरिं एगे रूवे छूढे जहन्ना आहारयसरीरवग्गणा तासिं जहन्नाईणि पएसुत्तराणि अणंताणंताणि ठाणाणि जाव उक्कोसा। जहन्नाओ उक्कोसा विसेसाहिया। को विसेसो? तस्सेव अणंतिमो भागो त्ति। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे जहन्निया आहारयसरीरअग्गहणा वग्गणा। तासिं अणंताणंताण वग्गणाठाणाणि। जाव उक्कोसा आहारयसरीरअग्गहणवग्गणा। जहन्नाओ उक्कोसा अणंतगुणा। को गुणकारो? अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धाणमणंतभागो त्ति। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे तेयसदव्ववग्गणा जहन्ना। तेजसदव्ववग्गणा नाम जाणि दव्वाणि घेत्तूणं

तेजससरीत्ताए परिणामंति जीवा। तेसिं अणंताणंताओ वग्गणाओ पएसुत्तराओ। जाव उक्कोसा तेजोदव्ववग्गणा। जहन्नाओ उक्कोसा केवइया ? विसेसाहिया। को विसेसो ? भन्नइ,—तस्सेव अणंतिमो भागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे तेयगसरीरअग्गहणदव्ववग्गणा जहन्ना। तासिं जहन्नाईणि पएसुत्तराणि अणंताणंताणि वग्गणाठाणाणि। जाव उक्कोसा तेजोअग्गहणदव्ववग्गणा। जहन्नाओ उक्कोसा अणंतगुणा। को गुणकारो ? भन्नइ, अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धाणं अणंतिमो भागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे भासादव्ववग्गणा जहन्ना। तत्थ भासा चउव्विहा। तं सच्चामोसा, मीसा, असच्चामोसा। जाइं दव्वाइं घेत्तूण सच्चादिभासत्ताए परिणामेउं तीरंति जीवा, ताणि दव्वाणि भासादव्ववग्गणा। तासिं जहन्नाईणि पएसुत्तराणि अणंताणि ठाणाणि। जाव उक्कोसा। जहन्नाओ उक्कोसा विसेसाहिया। को विसेसो तस्सेवऽणंतिमो भागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे भासाअग्गहणदव्ववग्गणा जहन्ना। भासाअग्गहणदव्ववग्गणा नाम भासावग्गणं अतिच्छिया आणापाणुवग्गणं अपत्ता। तासिं जहन्नाईणि पएसुत्तराणि अणंताणंताणि भासाअग्गहणदव्ववग्गणाठाणाणि। जाव उक्कोसा भासाअग्गहणदव्ववग्गणा। जहन्नाओ उक्कोसा अणंतगुणा। को गुणकारो?, भन्नइ, अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धाणं अणंतभागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे आणापाणुदव्ववग्गणा जहन्ना। (जहा) भासादव्ववग्गणा परूविया तहा आणापाणुवग्गणा वि परूवेयव्वा। जाव जहन्नाओ उक्कोसा विसेसाहिया। को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे आणापाणुअग्गहणदव्ववग्गणा जहन्ना। तासिं जहन्नाईणि पएसुत्तराणि अणंताणंताणि आणापाणुअग्गहणदव्ववग्गणाठाणाणि जाव उक्कोसा आणपाणुदव्वअग्गहणवग्गणा। जहन्नाओ उक्कोसा अणंतगुणा। को गुणकारो ? भन्नइ,—अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धाणमणंतभागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे मणदव्ववग्गणा जहन्ना। जहा आणपाणुवग्गणा परूविया तह मणदव्ववग्गणा वि परूवेयव्वा। जाव जहन्नाओ उक्कोसा विसेसोहिया। को विसेसो ? भन्नइ—तस्सेवाणंतिमो भागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे मणअग्गहणदव्ववग्गणा जहन्ना। मणअग्गहणदव्ववग्गणा नाम मणदव्ववग्गणं अतिच्छिया, कम्मइगवग्गणा अपत्ता। तासिं जहन्नाईणि जहा ओरलियअग्गहणदव्ववग्गणाए तहा भाणियव्वाणि। जाव तस्स उवरिं एगे रूवे छूढे कम्मइगदव्ववग्गणा जहन्ना। कम्मइगसरीरदव्ववग्गणा नाम जाणि दव्वाणि घेत्तूणं नाणावरणिज्जत्ताए जाव अंतराइयत्ताए परिणामंति जीवा। ताणि दव्वाणि कम्मइगसरीरदव्ववग्गणा। जा जहन्नाई एगेगपएसुत्तरा। जाव उक्कोसा। जहन्नाओ उक्कोसा विसेसाहिया। को विसेसो ? भन्नइ—तस्सेव अणंतिमो भागो। एयासिं च वग्गणाणं ओरालियाइग्गहणपाओग्गाणं अग्गहणपाउग्गाणं च अवगाहनिरूवणत्थं भन्नइ। अवगाहो=अवगाहखेत्तं "ऊणंगुलअसंखंसो" त्ति ओरालियाइवग्गणाणमट्ठन्हं

सत्तन्हं च अंतरालगयाणं कमेण ऊणो ऊणो अंगुलस्स असंखेज्जइभागो उत्तरउत्तराणं वग्गणाठाणाणं बहुबहुतरबहुतमपएसनिप्फन्नत्तणेण सुहुमसुहुमतरसुहुमतमसरूवत्ताउत्ति ॥९४-९५॥

संपयं एएसु चेव वग्गणाठाणेसु जहन्नुक्कोसाणं वग्गणाणं विसेसं सयमेव निरूवेंतो भणेइ–

एगुत्तरा अभव्वाणंतगुणा अंतरेसु अग्गहणा ।
सव्वहिं जोगजहन्ना नियणंतंसाऽहिया जेट्ठा ॥९६॥

एसा य गाहा वग्गणापरूवणापत्थावे भावियत्था न पुणो वि भाविज्जइ । नवरं "**सव्वहिं जोगजहन्ना नियणंतंसाहिया जेट्ठा**" त्ति । सव्वेसु वग्गणाठाणेसु जा जहन्नगहणपाउग्गवग्गणा सा नियनियएण अणंतभागेण अब्भहिया उक्कोसिया गहणपाउग्गवग्गणा होइ त्ति ॥९६॥

इयाणिं वग्गणादव्वाणं उप्पत्तिं दंसेइ–

जोगणुरूवं गेन्हिय सोचियदलियं जिओ परिणमेइ ।
भासाणुपाणुमणोचियं च अवलंबए दव्वं ॥९७॥

जस्स जीवस्स जावइओ जहन्नाइभेयभिन्नो जोगो=वीरियं तस्स अणुरूवं गेन्हिय "**सोचिय**" त्ति ओरालियाइसरीरस्य दंसणावरणाइअट्ठविहकम्मस्स य जस्स जस्स अप्पणुप्पणो उचियं=पाउग्गं दलियं तस्स तं जीवो परिणामेइ । जीवपएसेहिं सह तब्भावत्ताए परिणामेइ । जहा अग्गणी इंघणं पक्खित्तं अगणित्ताए परिणामेइ, तहा भासाए आणुपाणूणं मणस्स य जं उचियं दलियं तं अवलंबते=अवट्ठंभइः न उण जीवपएसेहिं सह तब्भावत्ताए परिणमेइ । जहा पायाइविगलो उट्ठाणचंकमणाईणि काउकामो लट्ठिं अवलंबइ मुयइ य कारणं पडुच्च । एवं जीवो वि भासाईणि दव्वाणि अवलंबित्ता भासाआणुपाणुमणत्तेण य परिणामिय मुयइ त्ति भणियं होइ ॥९७॥

संपयं दंसणावरणाईणं उक्कोसजहन्नाणं पएसबंधाणं अट्ठन्हं कम्माणं पएसबंधं निदंसेइ—

अप्पयरपयडिबंधी उक्कडजोगी य सन्निपज्जत्तो ।
कुणइ पएसुक्कोसं जहन्नयं तस्स वच्चासो ॥९८॥

"**अप्पयरपयडिबंधी**" सव्वजहन्नमूलुत्तरविसयपयडिबंधी "**उक्कडजोगो**" सव्वुक्कोसजोगी सन्निपज्जत्तो एयविसेसणजुत्तो जीवो "**कुणइ पएसुक्कोसं**" ति उक्कोसं पएसबंधं करेदि । जहन्नयं पुण पएसबंधं तस्स=पुव्वुत्तजीवस्स वच्चासो=विवरीओ ॥ उक्तं च—

"सुहुमनिगोया पज्जत्तगस्स पढमे जहन्नगे जोगे । सत्तण्हं पि जहन्नो आउगबंधो वि आउस्स" ॥८६॥"

संपयं जुगवमेव दंसणाईणं अट्ठन्ह वि बज्झमाणाणं पएसबंधागयस्स दलियस्स कस्स केत्तिओ भागो होइ त्ति दंसेइ—

गहियदलियस्स भागो बहुठिइकम्मेसु होइ कमवुड्ढो ।
वेयणिए सव्वोवरि तस्स फुडत्तं न जेणऽप्पे ॥९९॥

गहियस्स दलियस्स बज्झमाणपगडिसंखाए विभज्जमाणस्स भागो=अंसो "बहुठी-कम्मेसु" त्ति बहुठिइयाणि जाणि कम्माणि तेसु कमवुड्ढी=परिवाडीए वुड्ढिभागओ भवइ । नवरं वेयणीए दुविहे वि सव्वेसिं कम्माणं "उवरि" त्ति बहुवुड्ढो भवइ, जेण कारणेण तस्स वेयणियस्स फुडत्तं सकज्जसाहणत्तं न होइ, अप्पे=थोवे सति दुहं वा सुहं वा । अप्पदलिएण न वेइज्जइ त्ति। तत्थ अट्ठविहबंधगे आउस्स थोवो भागो । तओ नामगोयाणं दोण्ह वि भागो तुल्लो, आउयभागओ विसेसाहिओ । तओ नाणावरणीयदंसणावरणीयअंतराइयाणं तिन्ह वि कम्माणं तुल्लो भागो, पुव्वभागाओ विसेसाहिओ । तओ मोहणीयस्स विसेसाहिओ । तओ वेयणीयस्स विसेसाहिओ ॥९६॥

इयाणिं इममेव कम्मदलियं दंसणावरणाइउत्तरपयडीसु विभज्जइ—

पयडीण सव्वघाईण होइ नियजाइदलअणंतमो ।
बज्झंतीण विभज्जइ सेसं समाणमणुसमयं ॥१००॥

सव्वघाइपयडीणं केवलदंसणावरणाईणं वीससखाणं नियजाइदलस्स दंसणावरणाइभागा-गयस्स अणंतमो अंसो होइ । परं बज्झंतीणं बंधे आगच्छंतीणं विभज्जइ=विभागमावज्जइ । "सेसं" ति उव्वरियं सेसाणं=देसघाईणं पयडीणं "अणुसमयं" ति निरंतरं । तत्थ दंसणावरणीयस्स नव उत्तरपयडीओ, छ सव्वघाईओ, ताहिं लद्धं अणंतिमो भागो; देसघाइणीओ तिन्नि, सेसं तेसिं अणंतगुणं । नाणावरणस्स पयडीओ पंच, केवलनाणावरणं सव्वघाई, तीए लद्धं सव्वथोवं; सेसं मइनाणावरणाईण चउहिं भागेहिं अणंतगुणं । अंतराइए पयडीओ पंच, सव्वाओ देसघाइणीओ, सव्वेसिं तुल्लो भागो । मोहणीयस्स उत्तरपयडीओ छव्वीसं; सव्वघाईओ तेरस, ताहिं भाग-लद्धं अणंतिमो भागो; कहं? भण्णइ,— सव्वकम्मपएसाणं जे निद्धयरा पुग्गला सव्वकम्मद-व्वाणंतुत्ति, एएण कारणेण अणंतिमो भागो, ते सव्वघाइजोग्गा नियनियसव्वघाईसु उववु-ज्जंति; देसघाइणीओ तेरस, तेसिं भागो अणंतगुणो । आउयस्स पयडीओ चत्तारि, बज्झंतियस्स भागो । एवं गोयवेयणीयाणं पि बज्झंतीणं भागो । नामस्स अट्ठ बंधठाणाणि—तेवीसा, पणवीसा, छव्वीसा, अट्ठावीसा, गुणतीसा, तीसा, इगतीसा, एगा जसकित्ती । जं बंधट्ठाणं जया बज्झइ तस्स भागो दट्ठव्वो । नवरं वण्णाईणं विसेसो । वण्णस्स पंचभागा सलद्धभागस्स । गंधस्स दो । एवं रसफासाईण वि संभवियमेएसु भाणियव्वं ॥१००॥

भणिओ पगइठिईरसपएसजुत्तो कम्मविचारसारलवो । पएसबंधो वुत्तो । ते य पएसा गुणसेढीकमेण पायसो बहुतरा निज्जरिज्जंति । अओ गुणसेढीओ इक्कारस, ते य दंसेइ--

सम्मत्तदेस२संपुन्नविरइ३उप्पत्तिअणविसंजोए ४ ।
दंमणखवगे ५ मोहस्स समग६उवसंत७खवगे य ८ ॥१०१॥
खीणाइतिसु य ११ [1]संखगुणूणं अंतोमुहुत्तकालाओ ।
गुणसेढीओ इगारस कमादसंखगुणदलियाओ ॥१०२॥

उप्पत्तिसद्दो तिसु संबज्झइ, तओ सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेढी १, देसविरयउप्पत्तिगुणसेढी २, "संपुन्नविरय" त्ति सव्वविरयउप्पत्तिगुणसेढी ३, अणंताणुबंधिविसंजोयणगुणसेढी ४, इह अणंताणुबंधिविसंजोयणं अपमत्तस्स अइसयसुद्धिमावन्नस्स विवक्खियं; अन्नहा अविरयप्रमत्त-जया वि अणंताणुबंधि विजोजिंति दंसणतिगं खवंति त्ति न तेसिं तारिसा विसुद्धी; जारिसा अपमत्तस्स; जओ अणंताणुबंधिगुणसेढीनिज्जराओ दंसणतिगगुणसेढिनिज्जरा असंखगुणा दिट्ठा; दंसणमोहखवगगुणसेढी ५, एसा वि अपमत्तस्स, परं अणंताणुबंधिअणंतरं विसुद्धिमागओ खवइ; एयाओ पंचगुणसेढीओ असेढिगयस्स लब्भंति । "मोहस्स समगउवसंत" त्ति मोहो =चरित्तमोहो पत्तेयं संबज्झइ, तओ चरित्तमोहउवसामगगुणसेढी ६, एसा अनियट्टिकरणाईसु । तओ चरित्तमोहउवसंतगुणसेढी ७, एसा उवसंतमोहे । खवगगुणसेढी ८, एसा वि अनियट्टिकरणाईसु । "खीणाइतिसु य" त्ति खीणमोहसजोगिकेवलिअजोगिसु, तिसु कमेण, जहा खीणमोहगुणसेढी ९, सजोगिकेवलिगुणसेढी १०, अजोगिकेवलिगुणसेढी ११ । संखगुणेण ऊणो अंतोमुहुत्तकालो पढमाए गुणसेढीए जाव संखगुणूणं अंतोमुहुत्तं । जहा सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेढीए पभूओ कालो । इयरा सेसा कमेण संखगुणहीणा ठवणा एसा पढमा, सेसाउ एत्तो उव्वत्तेणं संखेज्जगुणहीणाओ संखेज्जगुणहीणाओ उवरि पुहुत्तेणं विसालाओ कायव्वाओ जाव अजोगिगुणसेढीए । "गुणसेढीओ" त्ति वक्खमाणलक्खणाओ, ताओ एगारससंखा, ओघकमेण=परिवाडीए असंख-गुणं दलियं जासु ताओ । तहा सव्वत्थोवं सम्मत्तुप्पायगुणसेढीए दलियं तओ देसविरइउप्पाय-गुणसेढीए असंखेज्जगुणं । एवं ताव नेयं जाव अजोगिगुणसेढी । कहं असंखगुणं असंखगुणं दलियं ? भण्णइ,–उवरिं उवरिं विसुज्झमाणत्ताओ ॥१०१-१०२॥

इयाणिं पुव्वुद्दिट्ठाणं गुणसेढीणं रूवं फलं च दंसेइ—

गुणसेढी दलरयणाऽणुसमयमुदयादसंखगुणणाए ।
एयगुणा पुण कमसो असंखगुणनिज्जरा जीवा ॥१०३॥

१. "संखगुणूणंतोमुहुत्तकालओ । गुणसेढी इक्कारस" इत्यपि ।

गुणेण=असंखेज्जगुणकारेण वुड्ढिमागया जा सेढी=उत्तरोत्तरपरिवाडी, सा य गुणसेढी, कम्मदलरयणा=कम्मपएसाणं विरयणा, अणुसमयं=पइक्खणं उदयाओ=उदयक्खणाओ उवरिं उवरिं असंखगुणणाए=असंखेज्जगुणकारेण असंखगुणकारेण दलरयणा ।

उक्तं च सम्यक्त्वाऽधिकारे सत्तरीबृहत्चूर्ण्यां गुणसेणिलक्खणम्—

"उवरिल्लठिईहिंतो घेत्तूणं पोग्गले उ सो खिवइ । उदयसमयम्मि थोवा तत्तो य असंखगुणिया उ ॥१॥
बीयम्मि खिवइ समए तइए तत्तो असंखगुणियाओ । एवं समए समए अंतमुहुत्तं तु जा पुन्नं ॥२॥
दलियं पि गिण्हमाणो पढमे समयम्मि थोवयं गिन्हे । उवरिल्लठिईहिंतो बीयम्मि असंखगुणियं तु ॥३॥
गिण्हइ समए दलियं तइए समए असंखगुणियं तु । एवं समए समए जा चरमो अंतसमउत्ति ॥४॥
सेढीएँ कालमाणं दुन्हवि करणाण समहियं जाण । खिज्जइ सा उदएणं जं सेसं तम्मि निक्खेवो ॥५॥"

सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेढी अधिकारे बृहत्सत्तरीचुण्णीओ उद्धरियं ।

"एस कमो सेसाण वि दलरयणाए गुणाण सेढीणं । अत्थि विसेसो कत्थवि सो पुण सुत्ताउ विन्नेओ । ६ ।"

एयगुणाओ=गुणसेढिगुणाओ पुण कमसो=परिवाडीए असंखेज्जगुणेण कम्मपुग्गले निज्जरिज्जंति जे, ते असंखगुणनिज्जरा जीवा होंति, सम्मत्तलद्धाइणो अजोगिपज्जवसाणा ॥१०३॥

इयाणिं गुणट्ठाणगाणं जहन्नुक्कोसमंतरं निद्दिसेइ—

पलियासंखंतमुहू सासणइयरगुणअंतरं हस्सं ।
मिच्छस्स बेछसट्ठी इयरगुणे [1]पोग्गलद्धंतो ॥१०४॥

इह जहासंखं संबंधो कायव्वो । पलिओवमस्स असंखिज्जं भागं अंतरं 'जहण्णं" ति, जहण्णं सासयगुणट्ठाणगस्स । अंतमुहुत्तं इयराणं मिच्छदिट्ठिपभिईणं उवसंतमोहपज्जवसाणाणं दसण्ह जहन्नं अंतरं । सासायणस्स कहं पलियस्स असंखेज्जइभागो अंतरं ? भन्नइ,—कोइ जीवो मिच्छदिट्ठी छव्वीससंतकम्मिओ जहापवत्ताइकरणेहिं सम्मत्तुप्पत्तिकाले तिपुंजं करिय, तओ उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियसेसाए उक्कोसिएणं जहन्नेणं एक्कं समयं सासायणगुणो । तओ मिच्छत्तं गच्छइ । तओ मिच्छत्तं गओ अणंतरं सम्मत्तपुंजं उव्वलेउं आढवेइ । तओ उव्वलणकमेण पलिओवमस्स असंखिज्जइभाएणं उव्वलेइ । एवं सम्मामिच्छत्तपुंजंपि । तओ छव्वीससंतकम्मिओ जाओ पुणो वि अहापवत्तकरणाइणा उवसमसम्मदिट्ठी एसो बीयाए जाओ पुव्वुत्तो "पुव्वं व सासणं" ति । पुव्वं व सासणभावं गच्छइ । एवं सासयणस्स पलिओवमस्स असंखिज्जइभागो जहन्नं अंतरं । तहा मिच्छदिट्ठिस्स उक्कोसं अंतरं दो छावट्ठीओ सागरोवमाणं । कहं ? [2]उक्कोससम्मत्तकालो । इयरगुणाणं सासायणसम्मदिट्ठिपभिईणं दसण्हं उक्कोसअंतरं पोग्गलपरियट्टस्सद्धं ॥१०४॥

पुव्वं "पुग्गलद्धंतो" त्ति वुत्तं, अओ पुग्गलपरावत्तसरूवमेव भणेइ—

१. "पुग्गलद्धंतो॥" इत्यपि । २. मिश्रगुणस्थकान्तरितसम्यक्त्वोत्कृष्टकालो बोध्यः, सम्यक्त्वोत्कृष्टकालस्य षट्षष्टिसागरोपमप्रमाणत्वात् ।

दव्वे खेत्ते काले भावे चउह दुह बायरो सुहुमो ।
होइ अणंतुस्सप्पिणिपरिमाणो पोग्गलपरट्टो ॥१०५॥

दव्वओ पोग्गलपरियट्टो, खेत्तओ पोग्गलपरियट्टो, कालओ पोग्गलपरियट्टो, भावओ पोग्गलपरियट्टो । एवं चउव्विहो पोग्गलपरियट्टो । एसो चउव्विहो वि दुविहो बायरो सुहुमो य । तहा एसो कालपमाणेणं अणंताओ उस्सप्पिणीओ । उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ विणा न होंति । अओ ताओ वि अणंताउ तत्तियपमाणो पुग्गलपरियट्टनामो ॥१०४॥

इयाणिं एसो जहा चउव्विहो बायरसुहुमभेयभिन्नो हवइ, तहा भणेइ—

चउतणुमणवइपाणुत्तणेण परिणमिय मुयइ सव्वअणू ।
एगजिओ भवभमिरो जत्तियकालेण सो थूलो ॥१०६॥

"**चउतणु**" त्ति चत्तारि सरीराणि । तं जहा ओरालियसरीरं, वेउव्वियसरीरं, तेयगसरीरं, कम्मगसरीरं । आहारगसरीरं न घेप्पइ । जओ उक्कोसेण चत्तारि वारा होइ । मणं वयणं 'पाण' त्ति ऊसासा एएणं चउतणुत्ताईण परिणामेण परिणमिय=परिणामित्ता "**मुयइ**" त्ति छड्डइ । "**सव्वअणु**" त्ति सव्वलोयपोग्गले एगो जीवो विवक्खियकालाओ भवेसु नरनरगाइ-लक्खणेसु भमिओ=भममाणो जावइयकालेण अणंतोसप्पिणिलक्खणेण सो कालो थूलो नायव्वो पोग्गलपरियट्टो ॥१०६॥

सत्तण्हऽण्णयरेण उ इय फुसणे सुहुमदव्वपरियट्टो ।
अण्णे चउतणुसु कमेणिमेण तं बेंति दुविहं पि ॥१०७॥

"**सत्तण्ह**" त्ति चउण्हं तणूणं तिण्हं मणाईणं मज्झाओ अण्णयरेण=एकतरेण एगजीवो परिणामेत्ता "**इय**" त्ति थूलपोग्गलपरियट्टनाएण फुसणे सव्वदव्वपोग्गलाणं "**सुहुमदव्वपरिय-ट्टो**" त्ति सुहुमो दव्वओ पोग्गलपरियट्टो हवइ। अन्ने **आयरिया** पुण चउसु तणुसु ओरालिया-इवट्टमाणेण कमेणिमेण पुव्वभणियपोग्गलपरियट्टनाएण जया चउहिं सरीरेहिं सव्वे पोग्गला परिणामित्ता मुक्का हवंति, तया बायरो दव्वपुग्गलपरियट्टो जया उ चउण्ह एगयरेणं तया तं सुहुमपोग्गलपरियट्टं बेंति=भणंति ॥१०७॥

लोगपएसोसप्पिणिसमया २ अणुभागबंधठाणा ३ य ।
पुट्ठा मरणेण जया कमुक्कमा बायरोत्ति तया ॥१०८॥

लोगो चउदसरज्जुपमाणो तस्स आगासपएसा, तहा उसप्पिणित्ति उस्सप्पिणिगहणेण अवसप्पिणि वि गहिया । जहा दिवसे गहिए राई वि गहिज्जइ तेसिं जेत्तिया समया, तहा अणु-

भागबंधठाणाणि वक्खमाणाणि । एए सव्वे पुट्ठा फासिया एगजीवेण चाउरंतसंसारं भमन्तेण जया कमसरणेण अकमसरणेण य विवक्खियमरणठाणं पडुच्च तया बायरो जहासंभवं खेत्तकालभावपोग्गलपरियट्टो हवइ ॥१०८॥

पुट्ठाणंतरमरणेण पुण जया ते तया भवे सुहुमो ।
पोग्गलपरियट्टो खेत्त २ कालभावेहिँ ३ इय नेयो ॥१०९॥

जया पुण ते चेव लोगपएसा उस्सप्पिणिसमयं अणुभागबंधट्ठाणा अणंतरमरणेण कमसरणेणेव फासिया होंति, तया सुहुमो जहासंखं खेत्तकालभावपोग्गलपरियट्टो हवइ। भावणा--जहा एगो आगासपएसो विवक्खिज्जइ, तत्थ पएसे जीवो मओ पुणो जइ तस्सेव अणंतरे मरेइ, तओ लेक्खए गणिज्जइ, अन्नत्थ मओ न गणिज्जइ, एवं अणंतरमरणेण जया सव्वलोगासपएसा य फासइ, तया खेत्तओ सुहुमो पोग्गलपरियट्टो । तहा उस्सप्पिणीउ पढमसमए मओ तओ समयऊणाओ वीससागरोवमकोडाकोडीओ अइक्कंताओ बीयसमए जइ मरइ तहा तत्थ लेक्खए लग्गइ । अण्णेसु समएसु मओ न उ गणिज्जइ । एवं अणंतरमरणेण जया उस्सप्पिणिअवसप्पिणिसमया पुट्ठा होंति तया कालओ सुहुमो ।

इयाणि भावपोग्गलपरियट्टस्स भावणावसरो । सो य वक्खमाणगाहाए वक्खाणियाए जाणिज्जइ । जओ तत्थ अणुभागबंधठाणाणं माणं भणियं । अणुभागबंधठाणेसु य भावपोग्गलपरियट्टो परूविओ। अओ पढमं ताव सा गाहा इत्थ वक्खाणिय भाविज्जइ । सा य एसा--

समयभवसुहुमअगणी. असंखलोगा तओ असंखगुणा । तेऊ तक्कायठिई कमसो अणुभागठाणा य ॥११०॥

एगसमए भवा=जाया=उप्पन्ना एगट्ठं असंखेज्जाणं लोगाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया, के सुहुमअग्गणिकाइया ते य थोवा विवक्खिया तेहिंतो तेउकाइया जीवंतगा असंखेज्जगुणा। तओ तेहिंतो "तक्काठिइ" त्ति तेउकाइयाणं कायठिई पुणो तत्थेव काए उप्पन्नाणं ठीइलक्खणा सा य असंखेज्जोस्सप्पिणिओसप्पिणिसमयपमाणा असंखेज्जगुणा । तओ कमसो= परिवाडीए तेउकाइयठिईहिंतो अणुभागबंधट्ठाणा असंखेज्जगुणा । तओ अणुभागट्ठाणसद्दस्स को अत्थो ?, भण्णइ,-एगसमए जे जीवेण कम्मपएसखंधा गहिया, तेसिं जो रसो तं अणुभागट्ठाणं तु वुच्चइ, एएसिं तु अणुभागबंधट्ठाणाणं जं जहण्णं अणुभागबन्धज्झवसाणठाणगं तं विवक्खिज्जइ, तओ तस्सोदए मओ पढमं, ताव बीयं अणुभागट्ठाणं पुव्वाओ अणुभागपलिच्छेएहिं विसेसियतरं, तओ जइ तत्थ अणंतरमेव मओ तो लेक्खए गणिज्जइ, अन्नत्थ मओ न गणिज्जइ । एवं बीयाओ तइयं अणुभागबंधट्ठाणं अणुभागपलिच्छेएहिं विसेसियतरं । एवं तइयाओ चउत्थं । चउत्थाओ पंचमं । जाव उक्कोसं अणुभागबंधठाणं। एवं अणुभागबंधज्झवसायठाणेहिं अणंतरमरणेण

जया फासियाणि हवंति, तया सुहुमो पोग्गलपरियट्टो भावओ होइ। पोग्गलपरियट्टो नाम "खेत्तकालभावेहिं इय नेउ"त्ति, खेतओ कालओ भावओ य इय भणियपयारेण पोग्गलपरियट्टो नेयो=जाणेयव्वो। एक्केक्को वि अणंताहिं उस्सप्पिणिअवसप्पिणीहिं निप्फज्जइ। भणिया पोग्गलपरियट्टपरूवणा ॥१०९॥

इयाणिं भावे पोग्गलपरियट्टे ठिइबंधज्झवसायठाणा भणिया। ते य केहिंतो बहुया, केहिंतो थोवा, तप्पसंगेणं जोगठाणाईणं सत्तण्हं पयत्थाणं अप्पाबहुयं भणिउकामो गाहाजुयलेण भणेइ—

जोगट्ठाणा [1]सेढीअसंखभागो तओ असंखगुणा।
पयडीभेया तत्तो [2]ठीभेयाणुक्कमेण तओ ॥११०॥
[3]ठीबंधज्झवसाया तत्तो अणुभागबंधठाणाणि।
तोऽणंतगुणा [4]कम्मपएसा तत्तो रसच्छेया ॥१११॥

"जोगट्ठाणा सेढी असंखभागो" त्ति।

"जोगो विरियं थामो उच्छाहपरक्कमो तहा चेट्ठा। सत्ती सामत्थं ति य जोगस्स हवंति पज्जाया। ॥"

तस्स ठाणाणि जोगठाणाणि सहावओ चेव अप्पवीरियलद्धिगस्स साहारणसुहुमअप्पज्जत्तस्स तब्भवपढमसमयगस्स सव्वजहन्नाओ जोगट्ठाणाओ आढवेत्तु अणंतरगणंतराणं विसेसाहियं जोगट्ठाणं। एयाए जोगवुड्ढीए ताव गयं जाव उक्कोसगं जोगठाणं पज्जत्तगस्स सण्णिणो सव्वमहल्लविरियलद्धिस्स। ते य जोगठाणा "सेढीअसंखभागो"त्ति, घणीकयलोयस्स तिरियंपि सत्तरज्जुप्पमाणीए एगपएसिगाए सेढीए जावइओ असंखेज्जइमो भागो तावइया भवंति। किं भणियं होइ? लोगसेढीए असंखेज्जइमे भागे जत्तिया आगासपएसा, तत्तियाणि जोगट्ठाणाणि हवंति "तओ असंखगुणा पयडीभेया"त्ति तेहिं जोगठाणेहिंतो असंखेज्जगुणा पयडीभेया=पयडीणं विगप्पा। कहं?, भण्णइ.-

पयडीणं असंखेज्जा जं ओहिदुगे वि तारतम्मेण। अस्संखलोगखपएसपमाणा हुंति किल भेया ॥११४॥

ओहिनाणओहिदंसणाणं भेया असंखेज्जलोगागासपएसमित्ता। अओ तदावारगाणं नाणावरणदंसणावरणाण वि तत्तिया चेव पयडीभेया। जओ तक्खओवसमेण ते लब्भंति त्ति। चउण्हं आणुपुव्वीनामाणं असंखेज्जाओ पगईओ लोगस्स संखेइज्जमे भागे जेत्तिया आगासप्पएसा तत्तियाओ, सेसाणं भेया पसिद्धा, एए अहिगिच्च जोगठाणेहिंतो असंखेज्जगुणा पगइ

---

१. "सेढीमसंखमागो" इति मुद्रितप्रतौ। २ 'ठिइ' इति खंभातशांतिनाथभंडारसत्कहस्तलिखिततालप्रतौ। तथैव मुद्रितप्रतावपि। ३. "ठिइ" इत्यपि। ४ "कम्मप्पएस तत्तो य रसछेया॥" इति मुद्रितप्रतौ।

भेया । एक्केक्के जोगट्ठाणे वट्टमाणो सव्वाओ एयाओ बंधइ त्ति काउं । "तत्तो ठीभेयगाणुक्कमेणं" त्ति पयडीभेएहिंतो कम्मठीभेया अणुक्कमेण=परिवाडीए असंखेज्जगुणा हवंति । कहं ? भन्नइ—

आजिट्ठठिईओ हस्सठिई समउत्तरा ठिईठाणा । सव्वपयडीसु एवं सव्वजियाणं पि ठिइभेया ॥११५॥

एक्केक्काए पगईए जहन्नाओ ठिइठाणाओ आढविउं ताव जाव उक्कोसिया ठिई एयासि मज्झे तत्तियाणि तरतमजोगेण समउत्तरवड्ढियाणि ठीठाणाणि ताणि पगइसमूहेहिंतो असंखेज्जगुणाणि । एक्केक्कम्मि असंखेज्जा भेया लब्भंति त्ति काउं । तओ=ठिइभेएहिंतो "ठीबंधज्झवसाय"त्ति, ठीबंधज्झवसायठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । कहं ? भन्नइ—

ठिइठाणे ठिइठाणे कसायउदया असंखलोगसमा । अणुभागबंधठाणा इय इक्केक्के कसाउदए ॥११६॥

ठिइं निव्वत्तंति जाणि अज्झवसाणठाणाणि ताणि ठीबंधज्झवसाणठाणाणि; कसाउदया वि वुच्चंति । ताणि अंतोमुहुत्तमित्तकालपरिमाणठीईणि । ताइं च जहन्नगे ठिइठाणे असंखेज्जलोगागासपएससेत्ताणि । तत्थ वि सव्वजहण्णे सव्वो थोवो संकिलेसो । तओ आढवेत्तु उवरिमाणि [1]छट्ठाणवड्ढियाणि । एवं समउत्तराए ठिईए ठीबंधज्झवसाणठाणाणि अन्नाणि असंखेज्जलोगागासपएसमित्ताणि । तओ विसेसाहियाणि । तओ विसमउत्तराए ठीबंधज्झवसाणठाणाणि अपुव्वाणि असंखेज्जलोगागासपएसमित्ताणि । तेहिंतो विसेसाहियाणि । एवं कमेण नेयव्वा जाव उक्कोसिया ठिई । जेण कारणेण एक्केक्के ठीठाणे असंखेज्जलोगागासप्पएसमित्ताणि ठीबंधज्झवसाणठाणाणि लब्भंति । तेण ठीविसेसेहिंतो ठीबंधज्झवसायठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । "तत्तो अणुभागबंधठाणाणि"त्ति ठीबंधज्झवसाणठाणेहिंतो अणुभागबंधठाणाणि असंखेज्जगुणाणि कहं ? भन्नइ—ठीबंधज्झवसायठाणं हि नाम कसाउदयपरिणामो गामनगराइपरिणामवत् । तेसु ठीबंधज्झवसाणठाणेसु तिव्वमंदमज्झिमपरिणामाणि अणेगभेयभिन्नाणि जहन्नेणेकसमयपरिमाणाणि उक्कोसेण अट्ठसमयपरिमाणाणि अणुभागबंधज्झवसाणठाणाणि वुच्चंति, गामनगराइ चेव उत्तमनीयमज्झिमकुटुंबविभवविशेषवत् । ताणि असंखेज्जलोगागासप्पएसमेत्ताणि । एक्केक्कम्मि ठीबंधज्झवसाणठाणे तेण अणुभागबंधज्झवसाणठाणाणि असंखेज्जगुणाणि भवंति त्ति । "तोऽणंतगुणा कम्मपएस"त्ति अणुभागबंधज्वसाणठाणेहिंतो कम्मपएसा=कम्मपोग्गला अणंतगुणा । कहं ? भन्नइ,—कम्मपोग्गलग्गहणसमए जो परिणामो सो अणुभागबंधज्झवसाणठाणबंधु वुच्चति । किं कारणं ? भन्नइ,—तओ परिणामविसेसाओ तेसु पोग्गलेसु रसविसेसो भवइ त्ति, कम्मपोग्गला अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणा सिद्धाणमणंतभागमेत्ता एक्कम्मि समए गहणम्मि त्ति । एवमणुसमयं एक्केक्कम्मि परिणामे

---

१ अणंतभागु, असंख्यातभागु, संख्यातभागु संख्यगुणु, असंख्यातगुणु, अणंतगुणु ।

अणंताणंता कम्मपोग्गला लब्भंति त्ति काउं, अज्झवसाणठाणेहिंतो कम्मपोग्गला अणंतगुणा भवन्ति त्ति। "तत्तो रसच्छेय" त्ति कम्मपोग्गलेहिंतो रसपलिच्छेया अणंतगुणा । कहं ? भन्नइ– जहा अद्दहणविसेसाउ सित्थेसु रसविसेसो दिट्ठो, तहा अज्झवसाणविसेसाउ कम्मखंधेसु रसविसेसो भवइ । अज्झवसाणाइं अद्दहणतुल्लाइं, तंदुलत्थाणीया कम्मप्पएसा, जो एक्कम्मि सित्थे रसो विभज्जमाणो भागं न देइ सो अविभागपलिच्छेओ । एवं कम्मखंधेसु जो अणुभागरसो सो केवलनाणेण विभज्जमाणो विभज्जमाणो भागं न देइत्ति अविभागपलिच्छेओ वुच्चइ। तारिसा अविभागा पलिच्छेया एक्केक्कम्मि कम्मप्पएसम्मि सव्वजीवाणं अणंतगुणा लब्भंति । तेण कम्मपएसेहिंतो अविभागपलिच्छेया अणंतगुणा सिज्झंति ॥१११॥

पुव्वं "जोगट्ठाणा सेढीअसंखभागो" त्ति भणियं । अओ सेढीमेव पन्नवेउकामो । आगासपएसाणं अईवसुहुमत्तं ताव दंसेइ–

[1]खेत्तं सुहुमं कालाउ जेण अंगुलपएससेढीए ।
समयपएसऽवहारे असंखओसप्पिणी हुंति ॥११२॥

खेत्तं आगाससुहुमकालाओ अद्धाकाललक्खणाओ । कोऽत्र हेतुरित्युच्यते । जेण कारणेणं अंगुलपमाणाए पएससेढीए संबंधिणो जे पएसा तेसिं मज्झाओ समयपएसावहारे=समए एक्केक्कपएसावहारे किज्जमाणे असंखओसप्पिणी होंति । असंखेज्जासु ओसप्पिणीसु जावइयसमया तावइया तत्थ पएसा हवंति ॥११२॥

चउदसरज्जुलोगो बुद्धिकओ होइ सत्तरज्जुघणो ।
तद्दीहेगपएसा सेढी पयरो य तव्वग्गो ॥११३॥

सुगमा चेव एसा गाहा । परं 'पयरो य तव्वग्गो'' त्ति सेढी सेढीए चेव गुणिया पयरो भवइ । एसो य एत्थ अणुवजुज्जमाणो वि पसंगेण भणिओ त्ति ॥११३॥

पयडीउ असंखेज्जा जं ओहिदुगे वि तारतम्मेणं ।
अस्संखलोगखपएसपमाणा [2]होंति किल भेया ॥११४॥
आजेट्ठठिई हस्सट्ठिईउ समउत्तरा ठिईठाणा ।
सव्वपयडीसु एवं सव्वजियाणं पि [3]ठीभेया ॥११५॥
[4]ठीठाणे ठीठाणे कसायउदया असंखलोगसमा ।

१. "खित्तं" इत्यपि । २. 'हुंति" इत्यपि । ३ "ठिइभेया" इत्यपि । ४. 'ठिइठाणे ठिइठाणे" इत्यपि ।

अणुभागबंधठाणा इय [1]एक्केक्के कसाउदए ॥११६॥

एयाओ तिन्नि वि गाहाओ पुव्वुत्ताणं चेव पयडिभेयाईणं चउण्हं अत्थाणं सरुवनिवगाऊ पुव्वमेव भावियत्थाओ त्ति न वक्खाणिज्जंति ॥११४-११५-११६॥

पुव्वं एक्केक्के कसाउदए ठीवंधज्झवसाणलक्खणे असंखेज्जलोगागासप्पएसप्पमाणा अणुभागवंधज्झवसाणठाणा भणिया। ते किं सव्वत्थ समा ? अह अन्नह ? त्ति भण्णइ,— अन्नहा, जओ—

थोवाऽणुभागठाणा जहन्नठिइपढमवंधहेउम्मि ।
बीयाइ विसेसहिया जा चरमाए चरमहेऊ ॥११७॥

नाणावरणीयस्स जहण्णठिईए निव्वत्तगो जो सव्वजहन्नो कसायउदयभेओ सो जहन्नठिईए पढमो बंधहेऊ वुच्चइ। तत्थ थोवाऽणुभागवंधज्झवसायठाणा। "बीयाइ विसेसहिय" त्ति। बीयाए वि हेऊए विसेसाहिया। तइयाए हेऊए विसेसाहिया। चउत्थाए हेऊए विसेसाहिया। एवं विसेसाहिआ विसेसाहिआ जाव नाणावरणीयस्स जहन्नठिईए चरमो हेऊ। [2](तत्थ विसेसाहिया चरिमाओ वीयठीईए पढमो हेऊ तत्थ विसेसाहिओ एवं जाव निरंतरं विसेसाहियो जाव बीय-ठीईए चरमो हेऊ एवं निरंतरं विसेसाहिओ विसेसाहियो जाव नाणावरणस्स उक्कोराठिईए जो चरिमो ठीभेओ तत्थ जो चरिमो वंधहेऊ।) तत्थ विसेसाहिओ ॥११७॥

इय असुभाण सुभाण उ विवरीयं जेट्ठठिइचरमहेऊ ।
आरब्भ निज्ज आउसु ठिइं ठिइं पइ असंखगुणा ॥११८॥

एवं असुभपयडीणं, सुहपयडीण "विवरीयं" ति किं विवरीयं ? भण्णइ,— "जेट्ठठिईए" त्ति उक्कोसं कसाओदयं आरब्भ=आइं काउं नेज्जा ताव जाव जहन्नठिईए पढमो बंधहेऊ कसाओदओ जहा सायावेयणियस्स पन्नरससागरोवमकोडाकोडीओ उक्कोसा ठिई तस्स जो चरिमो ठीभेओ तस्स य जो चरिमो वंधहेऊ तत्थ सव्वथोवा अणुभागवंधज्झवसाणठाणा। दुचरिमे विसेसाहिया तिचरिमे विसेसाहिया। एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जा चरिमाए ठिईए पढमो बंधहेऊ एवं दुचरिमाए ठिईए जो चरिमो बंधहेऊ। तत्थ विसेसाहिया। एवं विसेसाहिया २, जाव तस्सेव पढमो हेऊ। एवं कमेण ओसरमाणाओ ओसरमाणाओ जाव सायावेयणीयस्स जहन्नाए ठिईए पढमो बंधहेऊ, तत्थ सव्वुक्कोसं अणुभागवंधठाणं। एवं सुहपयडीसु। आउयस्स "ठिइं

---

१ "इक्केक्के" इत्यपि। २. ( ) एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः प्रत्यन्तरे नास्ति।

ठिइं पइ असंखगुण"त्ति आउयठिईए एगअणुभागठाणस्स वीयं असंखगुणं, न उण विसेसाहियं। एवं सव्वाण विसेसाहियाइं ॥११८॥

संपयं अणुभागठाणपरिमाणनिमित्तं इयं गाहा—

समयभवखुड्डमअगणी असंखलोगा तओ असंखगुणा।
तेऊ तक्कायठिई कमसो अणुभागठाणा य ॥११९॥

एसा पुव्वं चेव चउत्थपोग्गलवक्खाणसमए वक्खाणिय त्ति न पुणो वक्खाणिज्जइ॥११९॥

इयाणिं जीवो मिच्छत्ताइकारणेहिं केरिसं दलियं कम्मत्ताए परिणामेइ तं भन्नइ—

अंतिमचउफासदुगंधपंचवण्णरसकम्मइगखंधे।
अभवियअणंतगुणिए गेण्हइ तत्तियअणू समए॥१२०॥

एक्कं दव्वं अणंतपएसियं अणंतपरमाणूणं संघाओ कियत्परिमाण इति चेत् ?, अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणा, सिद्धाण अणंतिमो भागो, एत्तियाणं परमाणूणं समुदाओ एगो खंधो। अंतिमफासा चत्तारि, अट्ठन्हं फासाणं अंतिल्ला णिद्धलुक्खसीयउसिणा, दो गंधा, पंच वन्ना रसा य, जेसु कम्मइगखंधेसु अंतिमचउफासदुगंधपंचवन्नरसकम्मइगखंधा ते य संखाए अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणा सिद्धाणमणंतभागमेत्ता खंधा एगसमएणं गहणकम्मत्ताए इति। एवं अणुभागबंधज्झवसाणठाणेहिंतो कम्मपएसा अणंतगुणा॥१२०॥

एएसु कम्मखंधेसु पइपएसं जीवो रसाणू कियंतो निव्वत्तेइ त्ति दंसेइ—

गहणसमए य जीवो नियपरिणामेण जणयइ रसाणू।
सव्वजियाणंतगुणे कम्मपएसेसु सव्वेसु ॥१२१॥

कम्मपुग्गलेहिंतो अविभागपलिच्छेया अणंतगुणिया। कहं ? भन्नइ—जहा अद्दहणविसेसाओ सित्थेसु रसविसेसो दिट्ठो, तहा अज्झवसाणविसेसाओ कम्मखंधेसु रसविसेसो हवइ। अज्झवसाणाइं अद्दहणतुल्लाइं, तंदुलथाणीया कम्पएसा, जो एगम्मि सित्थे रसो सो विभज्जमाणो विभज्जमाणो भागं न देइ, सो अविभागपलिच्छेओ वुच्चइ। एवं कम्मखंधेसु जो अणुभागरसो सो केवलनाणेणं विभज्जमाणो २, भागं न देइत्ति सो अविभागपलिच्छेओ वुच्चइ। तारिसा अविभागपलिच्छेया एक्केक्कम्मि कम्मपएसम्मि सव्वजीवाणंतगुणा लब्भंति। अओ भन्नइ—गहणसमए=कम्मखंधगहणसमए जीवो नियपरिणामेण सव्वाणं जीवाणं अणंतगुणारसाणू जणयइ=उप्पाएइत्ति सव्वेसु वि कम्मपएसेसु=कम्मपुग्गलेसु, तेण कम्मपएसेहिंतो अविभागपलिच्छेया अणंतगुणा॥१२१॥

एए जोगठाणाईया सत्त पयत्था अप्पबहुत्तसंखाए भणिया ।

अओ संखेज्जअसंखेज्जअणंतमेयजाणावणत्थं गणणासंखाणं परूवेइ—

संखिज्जेगमसंखं परित्तिजुत्तनियपयजुयं तिविहं ।
एवमणंतं पि तिहा जहन्नमज्झुक्कसा सव्वे ॥१२२॥

संखेज्जं एगविहं । एगविहं पि तिविहं "जहन्नमज्झुक्कसा सव्वे ॥१२२॥" त्ति वयणाओ । तं जहा—जहण्णं मज्झिमं उक्कोसं ३ । असंखेज्जं तिविहं । परित्तासंखेज्जं, जुत्तासंखेज्जं असंखा-संखेज्जं एक्केक्कं पि य तिविहं । एवं अणंतं पि तिहा । "जहन्नमज्झुक्कसा सव्वे" एक्केक्कं पुण तिविहं । जहन्नयं मज्झिमं उक्कोसं ॥१२२॥

पढमं ताव संखिज्जगं उद्दिट्ठं, तं चेव जहन्नमज्झिमुक्कोससरूवओ भणेइ—

संखेज्जगं जहन्नं [1]दोच्चिय मज्झिममओ परं बहुहा ।
जा उक्कोसं तं पुण चउपल्लपरूवणाइ इमं ॥१२३॥

संखेज्जयं दुविहं । गणणासंखेज्जयं, उवमासंखेज्जयं । गणणासंखेज्जयं अणेगविहं । तत्थ जहण्णयं दो च्चिय, मज्झिममओ परं बहुहा=अणेगमेयभिन्नं जाव सयं सहस्सा लक्खं जाव चुलसीई लक्खा पुव्वंगं भवइ । पुव्वंगगुणिया कमेण पत्तेयं २, सत्तावीसं ठाणा । ते य इमे-पुव्वंगं १ पुव्वं २ तुडियंगं ३ तुडियं ४ अडडंगं ५ अडडं ६ अववयंगं ७ अववयं ८ हुहुयंगं ९ हुहुयं १० उप्पलंगं ११ उप्पलं ११ पउमंगं १३ पउमं १४ नलिणंगं १५ नलिणं १६ अत्थनिउरंगं १७ अत्थनिउरं १८ अउयंगं १९ अउयं २० नउयंगं २१ नउयं २२ मउयंगं २३ मउयं २४ चूलियंगं २५ चूलियं २६ सीसपहेलियंगं २७ जाव सीसपहेलियं २८ । गणणसंखाणयं चउणउयं अंकट्ठाणसयं । अओ परं उवमासंखेज्जयं अणेगविहं जाव उक्कोसगं संखेज्जयं । तं पुण चउपल्लपरूपणाइ इमं वक्खमाणं ॥१२३॥

जंबुद्दीवपमाणा चउरो जोयणसहस्समोगाढा ।
रयणपहरयणकंडं भिंदिय पुट्ठा वहरकंडं ॥१२४॥

जंबुद्दीवपमाणा चत्तारि पल्ला ठविज्जंति जोयणसहस्सं अवगाहो रयणप्पहाए पढमं रयण-कंडं जोयणसहस्सं भिंदित्ता रयप्पहाए बीयं वयरकंडं तस्स उवरितलं पुट्ठा ॥१२४॥

---

१. "दुच्चिय" इत्यपि ।

पल्ला ऽणवट्ठिय १ सलाग २ पडिसलागा ३ महासलागक्खा ।
सव्वे सवेइयंता उवरिं ससिहा य भरियव्वा ॥१२५॥

पल्लसद्दो पत्तेयं संबज्झइ, अणवट्ठियपल्लो १, सलागपल्लो २, पडिसलागपल्लो ३, महासलागपल्लो ४, "सव्वे" त्ति चत्तारि वि जोयणलक्खं आयामविक्खंभेण तिउणं सविसेसं परिरएणं, जोयणसहस्सं ओगाहेणं, "सवेइय" त्ति, अट्ठजोयणियाए वेइयाए उच्चत्तेणं, उवरि सिहा [पउम] (पुण्णा) भरियव्वा ॥१२५॥

तो कप्पणाइ केणइ सुरेण पढमो धरित्तु वामकरे ।
एक्केक्कं दीवुदहीसु सरिसवं खिविय निट्ठविओ ॥१२६॥

"तो" त्ति चउपल्लपरूवणाणंतरं कप्पणाए केणइ सुरेण पढमं अणवट्ठियपल्लं भरित्ता वामहत्थे धरित्ता ओखिवित्ता एगा सलागा दीवे एगा समुद्दे पुणो एगा सलागा दीवे एगा सलागा समुद्दे ताव पक्खिविया जाव एक्केक्काए निट्ठविओ ॥१२६॥

दीवे जत्थुदहिम्मि व तदंतमेव पढमं व तं भरियं ।
पुरओ खिव एक्केक्कं दीवुदहिसु निट्ठिए तम्मि ॥१२७॥

दीवे वा समुद्दे वा जत्थ चरिमा सलागा ठिया तं चेव तत्तियपमाणं अणवट्ठियपल्लं, जोयणसहस्सं ओगाहेणं, अट्ठजोयणाणि उच्चत्तेणं, तदंतमेव=निट्ठाणपत्तदीवसमुद्दपेरंतमेव, पढमं व=जंबुदीवपमाणपढमपल्लमिव भरित्ता "पुरओ खिव एक्केक्क" त्ति जत्थ दीवे वा समुद्दे वा चरिमा सलागा ठिया, तओ पुरओ एगा सलागा दीवे एगा सलागा समुद्दे पक्खिव जाव एक्केक्काए निट्ठिओ । १२७॥

खिवसु सलागा पल्ले सरिसवमेगं पुणो तदंतं तं ।
पुव्वं व भरसु खिवसु य पुरओ पुण तम्मि निट्ठविए ॥१२८॥

सलागापल्ले एगं सरिसवं खिव, पुणो तदंतं तं दीवे वा समुद्दे वा जत्थ चरिमा सलागा ठिया पुणो तत्तियपमाणं अणवट्ठियपल्लं, पुव्वं व=पढमवारमिवं भरसु सरिसवाणं खिवसु य पुरओ जत्थ चरिमा सरिसवसलागा ठिया तओ पुरओ तओ तम्मि निट्ठविए पल्ले किं ? ॥१२८॥

बीयं सलागपल्ले खिव सरिसवमेवमेव पुण तइयं ।
इय पुणरुत्तणवट्ठियभरणविरेयणसलागाहिं ॥१२९॥

१. "य" इत्यपि ।

बीयं सरिसवं सलागपल्ले खिवसु। एवमेव पुणो तइयं 'इय'' त्ति एवं 'पुणरुत्तणव-ट्ठियभरणविरेयणसलागाहिं'' ति, पुणरुत्तं=पुणो पुणो अणवट्ठियभरणविरेयणं तेण जाओ सलागाओ ताहिं सलागाहिं ॥१२९॥

पुन्नो सलागपल्लो पुव्वकमागयणवट्ठिओ य तओ।
[1]सो च्चिय सलागपल्लो उक्खिप्पइ खिप्पइ य पुरओ ॥१३०॥

सलागपल्लो पुन्नो भरिओ, पुव्वकमेण य आगओ जो अणवट्ठियपल्लो सो वि भरिओ, जाहे सलागापल्लो सरिसवं न पडिच्छइ, ताहे सो च्चिय सलागपल्लो उक्खिप्पइ, वामकरे संठविय खिप्पइ य, तग्गओ सरिसवरासी अणवट्ठियपल्लस्स य पुरओ जत्थ सलागा न पयडिया ॥१३०॥

पुव्वकमनिट्ठिए तहिमेगं खिव सरिसवं तइयपल्ले।
पुव्वं व निट्ठियंते अणवट्ठियपल्लमेव खिव ॥१३१॥

पुव्वकमनिट्ठिए सलागपल्ले ''तइय'' त्ति पडिसलागापल्ले एगा सलागा खिवसु, ''पुव्वं व निट्ठियंते'' त्ति जत्थ चरिमा सलागा ठिया सलागापल्लस्स तत्तियपमाणं अणवट्ठियपल्लं भरित्ता खिवसु ॥१३१॥

पुण तम्मि निट्ठिए खिव सलागपल्लम्मि सरिसवं [2]एक्कं।
अण्णोण्णऽणवट्ठियओ सलागपल्लं पुणो भरसु ॥१३२॥

पुण तम्मि अणवट्ठियपल्ले निट्ठिए खिवसु सलागपल्ले एगं सरिसवं। ''अण्णोण्ण-ऽणवट्ठियउ'' त्ति, अण्णोण्णाओ अणवट्ठियपल्लाओ सलागापल्लं सरिसवेहिं पुणो भरसु=बीयवारं पडिपुण्णं कुणसु ॥१३२॥

तेण पुण पडिसलागापल्ले भरियम्मि दोसु य तमेव।
उद्धरिय पुव्वविहिणा सरिसवमेगं खिव चउत्थे ॥१३३॥

तेण सलागापल्लेण कमेण पडिसलागापल्ले तइयठाणठिए भरियम्मि समाणे ''दोसु य'' त्ति, अणवट्ठियपल्लसलागापल्लेसु वि भरिएसु, तओ ''तमेव'' त्ति पडिसलागापल्लं भरिय, उद्धरिय, वामकरे संठविय, पुव्वविहिणा=जत्थ न पडिया सलागा तस्स पुरओ निक्खिवणेण। एगं सरिसवं चउत्थे महासलागपल्ले खिवसु ॥१३३॥

इय पढमेहिं बीयं [3]तेहि य तइयं तु तेहि य चउत्थं।
भरणुद्धरणविकरणं ता कज्जं जाफुडा चउरो ॥१३४॥

---

१ ''सुचिय'' इत्यपि। २ 'इक्कं'' इत्यपि। ३ ''तेहिं तइयं तु तेहि अ'' इत्यपि।

"इय"त्ति दरिसियकमेण पढमेहिं अणवट्ठियपल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए सलागपल्लं भरसु, बीएहिं सलागपल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए पडिसलागपल्लं भरसु, तइएहिं पडिसलागापल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए महासलागापल्लं भरसु, भरणं तिण्हं पल्लाणं उद्धरणं देवेण वामकरधरणलक्खणं विकिरणं दीवसमुद्देसु पुरओ निक्खिवणं ताव कज्जं जाव कमेण चत्तारि वि पुण्णा ॥१३४॥

पढमतिपल्लुद्धरिया दीवुदहीपल्लचउसरिसवा य ।
सव्वो वि एस रासी रूवूणो परमसंखेज्जं ॥१३५॥

पढमेहिं तिहिं पल्लेहिं दीवसमुद्देसु जे पक्खित्ता सरिसवा ते उद्धरिया । "**चउपल्लसरिसवा य सव्वो वि एस रासो रूवूणो परमस**खेज्जो"त्ति सव्वो सरिसवनिचओ रूवूणो परमं उपमासंखेज्जयं जिट्ठं सव्वुक्कोसं हवइ ॥१३५॥

इय तिविहं संखेज्जं असंखय[1]मिओ उ जेट्ठसंखेज्जं ।
रूवजुयं संजायइ जहण्णयपरित्तयासंखं ॥१३६॥

इय=एवं भणियपयारेण तिविहमवि=जहन्नं मज्झिमं उक्कोसं संखेज्जं भणियं । इओ य तं पुण जेट्ठसंखेज्जयं अणंतरमेव दंसियं रूवेण जुयं संजायइ, किं ? जहण्णयपरित्तासंखं= जहन्नगं परित्तयनामं असंखेज्जं ॥१३६॥

तं विवरिय एक्केक्के ठाणे ठावेसु तत्तियं रासिं ।
अन्नोन्नब्भासे ताण होइ चउत्थं असंखिज्जं ॥१३७॥

जावइया सरिसवा तावइया पत्तेयं २, रासीओ ठविज्जंति । ताओ कप्पणाए दसदससरिसवाओ दस रासीओ कीरंति । तओ अण्णुण्णब्भासे[2] ताण होइ कोडीसहस्सं तु १०००००००००००॥१३७॥

तं पुण जहन्नजुत्तं आवलियाए वि [3]तत्तिया समया ।
एयकमा बितिचउपंचमे य अन्नोन्नअब्भासे ॥१३८॥

"**तं पुण**" त्ति चउत्थं असंखेज्जं "**जहन्नं जुत्तं**"ति जहन्नं जुत्तासंखेज्जगं होइ ।

तहा पत्थावाओ अयं संखापमाणं अन्नं किं पि दंसेइ–जावइया जहन्नजुत्तासंखेज्जगे सरिसवा आवलियाए वि तत्तियपमाणा समया लब्भंति । "एयकम"त्ति एएण कमेण जहन्नपरित्तासंखेज्जगदरिसियअन्नोन्नब्भासेण नेयव्वा बीए तइयचउत्थे य पंचमे य । कम्मि ?

---

१ "मओ उ जिट्ठ०" इत्यपि । २ "अण्णुण्णा०" इत्यपि । ३ "पत्तिया" इत्यपि ।

इत्याह-अन्नोन्नब्भासे कए किं निप्फज्जइत्ति ॥१३८॥ अओ भणेइ—

सत्तमअसंखपढमचउसत्तमाऽणंतया य होंति कमा ।
रूवजुया ते मज्झा रूवूणा पच्छिमुक्कोसा ॥१३९॥

"सत्तमअसंख"त्ति सत्तमं असंखिज्जगं तं च जहन्नं असंखेज्जासंखेज्जगं भन्नइ । "पढमचउसत्तमाणंतया य होंति कमा ।" त्ति पढमं अणंतकं तं च परित्ताणंतनामगं । "चउ" त्ति चउत्थगं जहण्णगं जुत्ताणंतगं । "सत्तमाणंतया य"त्ति सत्तमं जहन्नमणंताणंतगं चासद्दो उक्तसमुच्चये होंति= संपज्जंति कमेण=परिवाडीए । तहा "रूवजुय"त्ति एगेण रूवेण जुया 'ते' त्ति जहन्नगजुत्तासंखेज्जाइया पुव्वरासिणो अण्णोन्नब्भाससमुप्पण्णा "मज्झ"त्ति मज्झिमसनामगा होंति। "रूवूणा पच्छिमुक्कोस"त्ति ते चेव अन्नोन्नब्भासकया चउत्थाइया रूवेण ऊणा कया पच्छिमुक्कोसा होंति । एएसिं चेव संखाठाणाणं जे पच्छिमासंखाठाणा ते उक्कोसा होंति । किं भणियं होइ—जहा जहन्नपरित्तासंखेज्जगं नियमवपमाणेसु ठाणेसु, ठावेऊण तो तेसिं रासीणं अन्नोन्नब्भासो कज्जइ. तओ चउत्थं जहन्नजुत्तासंखेज्जं होइ । तं चेव रूवजुत्तं मज्झिमं जुत्तासंखेज्जगं । रूवूणं पुण तं चेव किं ? होइ पच्छिमं जं परित्तासंखेज्जगं तं उक्कोसं होइ । एवं सव्वत्थ भावणा सयं कायव्वा । नवरं अणंताणंतगं उक्कोसो न होइ त्ति ॥१३९॥

[1]एत्तियमुत्तं सुत्ते अण्णमयमओ चउत्थयमसंखं ।
वग्गियमिक्कसि जायइ जहन्नयमसंखयासंखं ॥१४०॥

एत्तियं सुत्ते=आगमे उत्तं । अन्नस्स आयरियस्स मएणं चउत्थं असंखेज्जं ति । जहन्नं जुत्तासंखेज्जगं एक्कवारवग्गियं सत्तमं जहन्नं असंखासंखं भवइ ॥१४०॥

रूवजुय तं मज्झं सव्वाहि रूवूणमाइमुक्कोसं ।
तं वग्गिउं तिवारं दस पक्खेवे खिवसु एए ॥४१॥

पुव्वद्धं पढिअसिद्धं । नवरं तत्थ जहन्नं असंखेज्जासंखेज्जं तं कप्पणाए सयं १००, एक्कवारवग्गियं जाया दससहस्सा १००००, बीयवारवग्गियं १००००००००, तइयवारवग्गियं १००००००००००००००००। तह वि उक्कोसं न भवइ। तओ दस पक्खेवा खिप्पयंति। ते य इमे—

लोगागासपएसा १ धम्मा२धम्मे३गजीवदेसा य ४ ।
दव्वट्ठिया निगोया ५ पत्तेया चेव ६ बोद्धव्वा ॥१४२॥

---

१ 'इत्तियमित्तं' इत्यपि ।

ठिइबंधज्झवसाया ७ अणुभागा ८ जोगछेयपलिभागा ९।
[1]दोण्ह समाण य समया १० असंखपक्खेवया दसउ ॥१४३॥

चउदसरज्जू लोगो तस्स पएसा पढमं १, धम्मत्थिकायपएसा बीयं २, अधमत्थिकायपएसा तइयं ३, एगजीवपएसा चउत्थं ४, एए चत्तारि वि तुल्ला पत्तेयं लोगपएसपमाणा। "दव्वट्ठिय"त्ति, दव्वट्ठियायरसुहुमनिगोयपज्जत्तगचउक्कसरीररासी पंचमं "पत्तेय" त्ति पत्तेयसरीरा, ते य अट्ठावीसाए जीवट्ठाणेसु जीवरासी छट्ठं ६, "ठीबंधज्झवसाय"त्ति कसाउदयभेदा सत्तमं ७ "अणुभाग"त्ति अणुभागबंधज्झवसाया अट्ठमं ८। "जोगच्छेयपलिभाग"त्ति जोगो=जीववीरियंसो बुद्धीए छिज्जमाणो जाहे भागं न देइ ताहे सो जोगपलिभागो वुच्चइ त्ति। ते य एगजीवस्स असंखेज्जाणं लोगाणं जावइया आगासपएसा तावइया अविभागा=पलिच्छेया दिट्ठा। उक्तं च—

'पन्नाच्छेयणछिन्ना लोगासंखेज्जगपएससमा। अविभागा एक्केक्के होंति पएसे जहन्नेण॥"

नवमं ९ 'दोह समाण य"त्ति दोण्ह समो उस्सप्पिणिओसप्पिणीओ तासिं समयरासी=एस दसमो १०, एए दस पक्खेवा पक्खित्ता तह वि उक्कोसं न भवइ।

पुण वग्गिए तिक्खुत्तो तम्मि भवे लहुपरित्तयाऽणंतं।
तो तत्तियवाराओ तत्तिय मेत्तो ठवसु रासी ॥१४४॥

तो पुव्वकमेण तिन्नि वारा वग्गिज्जइ, तओ तं उक्कोसं असंखिज्जासंखिज्जगं लंघिऊण जहन्ने च परित्तयाणंतए पडियं।

ताणऽण्णोण्णब्भासे जुत्ताऽणंतं जहन्नयं भवइ।
एवइयअभव्वजिया रासिम्मि य वग्गिए तम्मि ॥१४५॥

ताण=तत्तियपमाणरासीणं अन्नोन्नब्भासे जुत्ताणंतयं जहण्णयं होइ। अणंतगपन्नवण्णाए चउत्थं अणंतगं। एवइयत्ति एतत्प्रमाणा अभव्वा=निव्वाणगमणअजोग्गा जीवा होंति। तहा रासिम्मि य त्ति पुणरवि वग्गिए कयवग्गे तम्मि जहन्नजुत्ताणंतगपमाणे किं होइ?॥१४५॥ अओ भणेइ—

जायमणंताणं तं जहन्नयं तत्र वग्गसु तिवारं।
तह वि परं तं न भवे ता खिवसु इमे छ पक्खेवे ॥१४६।

जायं=संपन्नं अणंताणं तं सत्तमं संखाणं जहन्नं तं च पुणरवि वग्गसु तिन्नि वाराओ। तहवि वग्गिए वि परं उक्कोसं अणंताणंतगं न भवे=न होइ। 'तो'त्ति तयणंतरं खिवसु पक्खिव छपक्खेवा वक्खमाणा॥१४६॥

---

१ "दोण्ह य समाण समया इत्यपि। २ "०भित्त" इत्यपि।

सिद्धा १, निगोयजीवा २, वणस्सई ३, काल ४, पोग्गला ५ चेव ।
सव्वम'लोयागासं ६, छप्पेएणंतपक्खेवा ॥१४७॥

सिद्धा अणंता तेसिं रासी पढमो पक्खेवो १, "निगोयजीव" त्ति सुहुमबायरनिगोय पज्जत्तापज्जत्तगरासी चउक्कजीवरासी बीओ पक्खेवो २, "वणस्सइ" त्ति निगोयचउक्कजीवा पत्तेयवणस्सइउया वणस्सई वुच्चंति एस तइओ पक्खेवो ३, "काल" त्ति अईयाणागयभेयभिन्नो चउत्थो पक्खेवो ४, "पोग्गल" त्ति सव्वो पोग्गलरासी पंचमो ५, "सव्वमलोगागासं" ति लोगस्स अलोगस्स य जे आगासपएसा एस छट्ठो पक्खेवो ६ । एए अणंताणं रासीणं पक्खेवा ॥१४७॥

पुण तिक्खुत्तो वग्गिय केवलवरनाणदंसणे खित्ते ।
भवइ अणंताणंतं 'जेट्ठं ववहरइ पुण मज्झं ॥१४८॥

पुणरवि तिन्नि वाराओ वग्गिय पुव्वक्कमेण एवं छपक्खेवजुत्तं रासिं तओ तत्थ केवलवर-नाणकेवलदंसणाणं जो नेयविसओ सो सव्वो खिप्पइ । तओ खित्ते सइ अणंताणंतं जेट्ठं हवइ । ववहरइ पुण सव्वेसु ववहारेसु मज्झं=मज्झिमं; जेट्ठाणंतगपसेयस्स रासिस्सेवाभावाउ ॥१४८॥

॥१५॥ संपयं असंखाणंतपरूवणाए ऽण्णायरियमएण किंचि विसेसं भणेइ–

अन्नोन्नब्भाससमं वग्गियसंवग्गियं 'ति तो केइ ।
सत्तमऽसंखअणंते तिवग्गठाणे तमाहु तिहा ॥१४९॥

जो पुव्विल्लेसु परित्तजुत्तसीमिएसु असंखेज्जगठाणेसु अणंतगसंखाठाणेसु य अन्नोन्नब्भासो भणिओ तस्स इमं तुल्लं वग्गियसंवग्गियं मन्नइ—ताणं दोण्ह रासीणं परोप्परगुणणं "ति" समासी "तो" त्ति तओ केइ आयरिया सत्तमे असंखेज्जगे जहन्नए असंखेज्जसंखेज्जनामगे तहा सत्तमे अणंतगे जहन्नाणंताणंतगनामगे । तिवग्गट्ठाणे सो चेव रासी तेण रासिणा गुणिओ वग्गो हवइ १ एवं बुइज्जतिइज्जवारासु वग्गे कए तिन्नि वग्गा होंति । तेसिं तिन्हं वग्गाणं उवरिं तिअन्नो-न्नब्भासं आहु—भणंति "तिह" त्ति तिसु ठाणेसु । भावणा-जहा जे पुव्विं कया दस पक्खेवा पक्खित्ता तओ ते पुणरवि तिन्नि वारकयं । एवं छसु ठाणेसु पत्तेयं २ अन्नोन्नब्भासं कारयंति । एवं अणंते वि परं तत्थ छच्चेव पक्खेवा ॥१४९॥

---

१ "०लोगा०" इत्यपि । २ "जिट्ठं" इत्यपि । ३ "वन्नो केइ" इत्यपि ।

इयाणिं पगरणकारो पणिहाणं करेइ—

नेयअइगहणयाए निबिडजडत्तेण नियमईएँ तहा ।
जमिहुस्सुत्तं [1]वोत्तं मिच्छामिह दुक्कडं तस्स ॥१५०॥

नेयस्स=कम्माइवियारस्स अइगहणयाए=अइगंभीरत्तयाए तहा "निबिडजडत्तेण"त्ति निविडजडत्तं=अणववोहसत्ती तेण, नियमईए=मम पण्णाए जं इह पगरणे उस्सुत्तं=सुत्तवज्जं वुत्तं=भणियं मिच्छा=अलियं होइ मम दुक्कडं=आगमासायणाइदोसरूवं तस्स उस्सुत्तभणण-संबंधि ॥१५०॥

संपयं पगरणकारो नामं कहिंतो विसेसेण पणिहाणं करेइ—

जिणवल्लहगणिलिहियं सुहमत्थवियारलवमिणं सुयणा ।
निसुणंतु मुणंतु सयं परे वि [2]बोहंतु सोहिंतु ॥१५१॥

जिणवल्लहगणिनामगेण पगरणकारेण लिहिअं सुआ=आगमसमुद्दाओ उद्धरियं । सुहुमा=सुहुमबुद्धिगम्मा जे अत्था, तेसिं वियारो=परूवणं, तस्स लवो=अंसो तं इमं पुव्वपरूवियं अहो सुयणा निसुणंतु सवणगहणाइणा, मुणंतु=ईयापोहलक्खणनाणविसेसवावारेण अत्थओ जाणंतु सयं=अप्पणा, परेवि=अन्नेवि भव्वा बोहिंतु=एयपगरणत्थवियारा य कुव्वंतु । तहा जं किंचि अणाभोगओ अणुचियं लिहियं तं सोहिंतु=अवणेतु, अन्नं च संजोजयंतु एयस्स उचियं ति ॥१५१॥

॥ इति सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणस्य टिप्पनकं समाप्तमिति ॥ ग्रन्थाग्रं १४५० ॥

॥ श्रीरामदेवगणिकृतटिप्पनकेन समलङ्कृतं ॥
॥ श्रीमज्जिनवल्लभगणिरचितं ॥
॥ श्री सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणं समाप्तम् ॥

---

१ "वुत्तं मिच्छा मे" इत्यपि । २ "बोहिंतु" इत्यपि ।

इति

श्रीमज्जिनवल्लभगणिरचिते

श्रीसूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणे

(अपरनाम–सार्धशतकप्रकरणे)

श्रीमद्रामदेवगणिप्रणीतं टिप्पनकं समाप्तम्

अथ

श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवकृते

श्री सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणे

(अपरनाम—सार्धशतकप्रकरणे)

अज्ञातकर्तृका टीका प्रारभ्यते

ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥
सद्धर्मसंरक्षकश्रीमदाचार्यविजयकमलसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥
सकलागमरहस्यवेदिश्रीमदाचार्यविजयदानसूरीश्वरपादेभ्यो नमः ॥
कर्मसाहित्यनिष्णातश्रीमदाचार्यविजयप्रेमसूरीश्वरपादेभ्यो नमः ॥
परमगीतार्थश्रीमदाचार्यविजयहीरसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः ॥

श्रीमज्जिनवल्लभगणिपुङ्गवविहितं

श्री सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणम्

(अपरनाम—सार्धशतकप्रकरणम्)

[1]अज्ञातकर्तृकया टीकया विभूषितम्

॥ ॐ नमः सर्वज्ञाय ॥

सयलंतरारिवीरं वंदिय वरनाणलोयणं वीरं ।
वोच्छं जहासुयमहं कम्माइवियारसारलवं ॥१॥
कीरइ जिएण हेऊहि पयइठिइरसपएसओ जं तं ।
मूलुत्तरट्ठ अडवन्नसयपभेयं भवे कम्मं ॥२॥

एयं वक्खाणं—जीवेण तहाविहअज्झवसाणपरिणएण कीरइ त्ति जं तं कम्मं । तं च अंजणचुण्णपुन्नसमुग्गाउव्व सुहुमथूलाइअणेगविहपरिणामपरिणएहिं अणंतेहिं पोग्गलेहिं निरंतरं निचिढलोगो । परिच्छिन्ना एव पोग्गला कम्मपरिणामणजोग्गा बज्झमाणा जीवपरिणामपच्चएण चा-ऽट्ठ, नाणाइलद्धिघाइणो ३ सुहदुक्ख ४ सुभासुभाउ ५ नाम६ उच्चनीयगोत्तं७तराय८ पोग्गला कम्मं ति वुच्चई ।

---

१ यद्यपि चैषा टीका-ऽज्ञातकर्तृका भणिता तथा-ऽपि श्रीमद्रामदेवगणिकृता टीकैषाऽपि सम्भाव्यते । यतः श्रीमद्रामदेवगणिविहितषडशीतिप्रकरणवृत्तिप्रशस्तौ या प्रथमगाथा विद्यते सैव गाथा-ऽत्रा-ऽपि प्रशस्तितयाऽन्ते विद्यते ।

"जीवपरिणामहेऊ कम्मत्ता पोग्गला परिणमंति । पोग्गलकम्मणिमित्तं जीवो वि तहा विपरिणमइ ॥"

तमट्ठविहं कम्मं केहिं हेऊहिं बज्झइ त्ति

तत्थ कम्मबन्धहेयवो चत्तारि । तं जहा-मिच्छत्तं ५, अविरई १२, कसाया २५, जोगा १५। मिच्छत्तं पंचविहं ५-अभिग्गहियमिच्छत्तं १, अणभिग्गहियमिच्छत्तं २, आभिणिवेसियमिच्छत्तं ३, संसइयमिच्छत्तं ४, अणाभोगमिच्छत्तं ५ । तत्थ आभिग्गहियं कुदिट्ठिदिक्खियाणं हवइ। गोढयरमेयं च जीवाणं दीहतरसंसारियाण पायसे संभवइ ॥१॥ अणभिग्गहियं पुण असंपत्तसम्मत्ताणं कुदिट्ठअदिक्खियाणं मणुयतिरियाईणं ॥२॥ आभिनिवेसियं तु संपत्तजिणवय(णा)णं एगेण सब्भावप्परूवणाए कयाए मच्छराइणा तमण्णहा वागरेमाणेणं पडिनिवेसेण वामया एसो अत्थो समत्थणीउत्ति । अणभोगपरूविए वा पच्छा नाए वि सच्चतत्ते समणियपडिप्पवेसेण, अजाणं वा मावत्थं, परूवेइ; वारिओ वि न चिट्ठई। एएसिं जीवाणं आभिणिवेसियं मिच्छत्तं ॥३॥ संसइयं पुण सुत्ते वा अट्ठे वा उभयम्मि वा संकिओ परूवेइ, सो य अन्नं न पुच्छइ; कहमहमेद्दहपरिवारो वि अन्नं पुच्छामि, पुच्छिज्जमाणो वा जाणिज्जा एस एयं न याणइत्ति, अहवा जे मह भत्ता जाणिज्जा, एयाहिंतो वि एस वरतरओ, जओ पुच्छिज्जाइ, तओ मं मोत्तूण एए एयं भइस्संते, अओ अन्नं न पुच्छइ; तस्स संसइयमिच्छत्तं ॥४॥ अणाभोगं एगिंदियाईणं, जम्हा आभोगो=नाणं=उवओगो भण्णइ; एयं केरिसं एयं व त्ति एसो पुण तेसिं नत्थि, तेण तेसिं अणाभोगमिच्छत्तं । अहवा सुद्धं परूवइस्सामि, अणुवओगाउ असुद्धं [1]पभवियं, तं वि अणाभोगं परेसिं मिच्छत्तकारणत्तेण ॥५॥

एयं पुण पंचविहं मिच्छत्तं थूएभावेण । परमत्थओ विवज्जासो । सो पुण-एयं न मए न मम पुव्वपुरिसेहिं वा कारियं एयं जिणाययणं, किं मम एत्थ पूयासत्काराई आयरेणं । अहवा मया एयं जिणबिंबं कारियं मम पुव्वपुरिसेहि वा, ता एत्थ पूयाइयं निव्वत्तेमि, किं मम परकीएसु अन्नायरेणं । एवं च तस्स न सव्वन्नुपच्चया पवित्ती; अन्नहा सव्वेसु (वि बिंबेसु) अरिहं चेव ववइसिज्जइ; सो अरहा जइ परकीओ तो पत्थरलेप्पपित्तलाइयं अप्पणिज्जं, न पुण पत्थराईसु वंदिज्जमाणेसु, कम्मक्खओ, किंतु तित्थयरगुणपक्खवाएणं; अन्नहा संकराइबिंबेसु वि पासाणाइसब्भावाओ तेसु वि वंदिज्जमाणेसु कम्मक्खओ होज्जा । मच्छरेण वा परकारियचेइयालए विग्घं आयरंतस्स महामिच्छत्तं; न तस्स गंट्ठिभेओ वि संभाविज्जइ । जे पासत्थाइकुदेसणाए वि मोहिया सुविहियाणं वा वाहाकरा भवन्ति, ते वि; जे वि जाइनाइपक्खवाएण साहुवंदणाइसु पयट्टंति, न गुणागुणचिंताए, ते वि;

---

१ "परूवियं" इत्यपि ।

तहेव महामिच्छदिट्ठी । एवं विवज्जासरूवे मिच्छत्ते सइ सुयहुं पि पढंतो अन्नाणी चेव । न हि विवरीयमइणो नाणं कज्जसाहगं, अतो अन्नाणं तं, एएसु होंतेसु अइदुक्करा वि तवचरण-किरिया न मोक्खसाहिगा । जम्हा सो जीवरक्खामुसावायाइवज्जणं करेंतो वि अविरओ कहिज्जइ। पंचमगुणट्ठाणे देसविरई, छट्ठगुणट्ठाणे सव्वविरई, न पढमगुणट्ठाणे । तस्स च अणंताणुबंधि-पमुहा सोलस वि कसाया बज्झंति उइज्जंति य । तन्निमित्ताओ असुहाओ दीहट्ठिईओ तिव्वाणु-भागाओ पयडीओ बज्झंति । तासिं च उदए नरयतिरियक्कुमाणुसत्तदेवगइरूवो संसारो तन्निबन्ध-णाणि य भूरिदुक्खाइं पिट्ठओ अणुसज्जंति । एवं च संविग्गमुणिगणग्गेसरसिरिसूरिजिणेसर-विरइयकहाणयकोसाओ लिहियमिणं एवं मिच्छत्तं बन्धहेऊ ॥१॥

[1]बारसविहा अविरई, तं जहा– [2]मणइंदियअनियमो छकायवहो ॥२॥

[3]पणवीस कषाया, तं जहा–सोलस कसाया नवनोकसाय पणवीसं ॥३॥

जोगा य पन्नरस, तं जहा–मणचउक्कं, वइचउक्कं, ओरालियं ओरालियमीसं, वेउ-व्वियं, वेउवियमीसं, आहारगं, आहारगमीसं, कम्मइगं चः एवं पण्णरस जोगा ॥४॥

एवं बंधहेयवो चउरो ।

कम्मबंधो चउव्विहो । पगइबंधो ठिईबंधो रसबंधो पएसबंधो य । तत्थ पगइबंधो दुविहो, मूलपयडीबंधो उत्तरपगइबंधो य । मूलपगइबंधो अट्ठविहो । उत्तरपगइबंधो अट्ठवन्नसय-पभेओ । तत्थ जहासुयाणुसारेण कम्मवियारसरूवमित्तपरिकहणेणं आयसुमरणं पत्थणामि, नेह सद्दावसद्दाइछलो घेत्तव्वो ॥१-२॥

दंसण१नाणा२ वरणंतराय३ मोहा४उ५गोय६वेयणीयं७ ।
नामं८च नव१पण२पण३ऽट्ठवीस४चउ५दु६दु७बियालविह८॥३॥

दंसणावरणं नवविहं१,नाणावरणं पंचविहं २, अंतराइयं पंचविहं ३, मोहणिज्जं अट्ठावीस-विहं ४, आउयं चउव्विहं ५, गोयं दुविहं ६, वेयणिज्जं दुविहं ७, नामं बायालीसविहं ८॥३॥

एयाओ मूलपयडीओ उत्तरपयडिभेयेणं विसेसिज्जमाणीओ अणेगविहाओ भवंति ।

तत्थ पढमं ताव दंसणावरणस्स नाणाइप्पडिणीयादिभावोवचियाओ पावपोग्गलनिप्फन्नाओ दरिसणोवघायकारियाओ नव उत्तरपयडीओ भवंति । तं जहा—

नयणेयरोहिकेवलदंसणआवरणयं भवइ चउहा ।
निद्दापयलाहि छहा निद्दाइदुरुत्तथीणद्धी ॥४॥

१-२ अविरतादिबन्धहेतुभेदप्रतिपादका गाथा चेमा—"बारसविहा अविरई मणइंदियअनियमो छकाय-वहो ।सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥७६॥" । प्रतौ "सोलसकसाया तं जहा–नवनोक-साय पणवीसं" इति पाठः । किन्तु स सम्यग् न भाति ।

"जइ इत्थ कुंभयारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ निंद पावइ अकए वि मज्जम्मि ।
जह एत्थ कुंभकारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ पूयं पावइ इह पुण्णकलसाई ॥
एवं कुलालसमाणं गोयं कम्मं तु एत्थ जीवस्स । उच्चानीय[1]विभागो जहा होइ तहा निसामेह ॥
अघणो बुद्धि(विउत्तो रूव)विहूणो वि जस्स उदएणं । लोगम्मि लहइ पूयं उच्चागोयं तयं होइ ॥
सघणो रूवेण जुओ, बुद्धीनिउणो वि जस्स उदएणं । लोगम्मि लहइ निन्दं एय पुण होइ नीयं तु ॥"

तत्थ वेयणियस्स दो उत्तरपयडीओ । तं जहा—सायं असायं च । अणुकम्पाइसुसुद्ध-भावोवचियं सुभलक्खणं (सायं) । तव्विवरियभावोवचियं दुहलक्खणं असायं । भणियं च—

"महुलित्तनिसियकरवाल धारजीहाइ जारिस लिहणं । तारिसयं वेयणियं सुहदुहउप्पायगं [2]भणियं ॥"

कहं ?

"महुआसायणसरिसो सायावेयस्स होइ [3]परिणामो । जं असिणा तहि छिज्जइ सो [4]परिणामो असायस्स" ॥६॥

नामं बायालीसविहं, अहवा तेणवइभेयं, अहवातिउत्तरसयभेयं, अहवा सत्तसट्ठिभेयं ।

गइ१ जाइ२ तणु३ उवंगा४ बंधण५ संघायणाणि६ संघयणा७ ।
संठाण८ वन्न९ गंध१० रस११ फास१२ अणुपुव्वि१३ विहगगइ१४ ॥७॥

गइनामं, जाइनामं, सरीरनामं, अंगोवंगनामं, बंधणनामं, संघायनामं संघयणनामं, संठाणनामं, वण्णनामं, गंधनामं, रसनामं, फासनामं, आणुपुव्विनामं, (विहायोगइनामं) । एवं पिंडपयइ त्ति च चउदस ॥७॥

पिंडपयडि त्ति, चउदस परघा१ उज्जोय२ आयवु३ सासं४ ।
अगुरुलहु५ तित्थ६ निमिणो७ वघाय८मिय अट्ठ पत्तेया ॥८॥

परघायनामं, उज्जोयनामं, आयवनामं, (उस्सासनामं,) अगुरुलहुनामं, तित्थयरनामं, निम्माणनामं, उवघायनामं, एवं अट्ठ पत्तेया ॥८॥

तसबायरपज्जत्तं पत्तेयं थिरसुभं च सुभगं च ।
सुसराइज्जजसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥९॥

तसनामं, १ बादरनामं २, पज्जत्तनामं ३, पत्तेयनामं ४, थिरनामं ५, सुहनामं ६, सुभगनामं ७, सूसरनामं ८, आदेयनामं ९, जसकित्तिनामं च १० ॥९॥

थावरसुहुमअपज्जं साहारणमथिरमसुभदुभगाणि ।
दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥१०॥

---

१ "०विवागो" इत्यपि । २ "भुणह" इत्यपि । ३ "हु विवागो" इत्यपि । ४ "च विवागो" इत्यपि ।

थावरनामं १, सुहुमनामं २, अपज्जत्तनामं ३, साहारणनामं ४, अथिरनामं ५, असुभनामं ६, दूभगनामं ७, दूसरनामं ८, अणादेयनामं ९, अजसकित्तिनामं १०, इय नामे सेयरा वीसं ॥१०॥

तसचउथिरछक्कं अथिरछक्कसुहुमतिगथावरचउक्कं ।
सुभगतिगाइविभासा पयडीण तहाइसंखाहिं ॥११॥

तसं, बादरं, पज्जत्तगं, पत्तेयं; एयं तसचउक्कं। थिरं, सुभं, सुभगं, सुस्सरं, आदेयं, जसं; एवं थिरछक्कं। अथिरं, असुभं, दूभगं, अणाइज्जं, अजसं; एवं अथिरछक्कं। सुहुमं, अपज्जत्तगं, साहारणं; एवं सुहुमतिगं। अहवा थावरेण समं, थावरचउक्कं। सुभगतिगाइ विभासा, विविधा भासा विभासा। जहा सुभगं, सुस्सरं, आदेयं; एवं सुभगतिगं। विवरीयं दूभगतिगं आइपयडीविवक्खया तिगं चउक्कं पंचगं वा नेअं ॥११॥

एवं बायालीसविहं नामं। अहुणा तेणवइ भण्णइ—

गइयाईण य कमसो चउ१पण२पण३ति४पण५पंच६छ७च्छक्कं ८ ।
पण९दुग१०पण११ट्ठ१२चउ१३दुग१४मिय उत्तरभेयपणसट्ठी॥१२॥

गइ ४, जाइ ५, सरीर ५, अंगोवंग ३, बंधण ५, संघाय ५, संघयण ६, संठाण ६, वण्ण ५, गंध २, रस ५, फास ८, अणुपुव्वी ४, विहायगइ ५, एवं पणसट्ठी ६५ ॥१२॥

एएसिं विवरणं—

निरयतिरिनरसुरगई इगिबियतियचउपणिंदिजाईओ ।
ओरालियवेउव्वियआहारगतेयकम्मइया ॥१३॥

निरयगई, तिरियगई, मणुयगई, देवगई जीए उदएण जीवो नेरइओ होइ नरयपुढवीए सा भणिया नरयगई। सेसगईउ वि एमेव। जाइनिप्फत्तिअभिहाणकारणं जाइनामं। तं जहा—एगिंदियजाई, बेइंदियजाई, तेइंदियजाई, चउरिंदियजाई, पंचिंदियजाई त्ति। एएसिं भेया—एगिंदियजाइनामं पंचहा भवइ। तं जहा—पुढविकाइ एगिंदियजाइनामं। एएसिं एक्केकीए अणेगभेया जहा पन्नवणाए। एवं बेइंदियतेइंदियचउरिंदियपंचिंदियजाइनामाण य अणेगा भेया जहा पण्णवणाए। एवमेयं जाइनामं विवरणओ अणेगकोडिसो भणियव्वं। अणेगा उ कुलकोडीओ संक्खेवेण पुण पंच उत्तरपगईओ वण्णिज्जिहिंति ।

"एगिंदिएसु जीवो जस्सिह कम्मस्स होइ उदएणं। सा एगिंदियजाई बहुभेओ तीअ परिणामो ॥"

एवं बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाइओ पंचिंदियाण वि तहा बहवो भेया होंति एक्केक्काए ॥

"जह इत्थ कुंभयारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ निंद पावइ अकए वि मज्जम्मि ।
जह एत्थ कुंभकारो पुढवोए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ पूयं पावइ इह पुण्णकलसाई ॥
एवं कुलालसमाणं गोयं कम्मं तु एत्थ जीवस्स । उच्चानीय[1]विभागो जह होइ तहा निसामेह ॥
अधणी वुद्धि(विउत्तो रूव)विहूणो वि जस्स उदएणं । लोगम्मि लहइ पूयं उच्चागोयं तयं होइ ॥
सघणो रूवेण जुओ, वुद्धीनिउणो वि जस्स उदएणं । लोगम्मि लहइ निन्दं एयं पुण होइ नीयं तु ॥"

तत्थ वेयणियस्स दो उत्तरपयडीओ । तं जहा—सायं असायं च । अणुकम्पाइसुसुद्ध-भावोवचियं सुभलक्खणं (सायं) । तव्विवरियभावोवचियं दुहलक्खणं असायं । भणियं च—

"महुलित्तनिसियकरवाल धारजीहाइ जारिस लिहणं । तारिसयं वेयणियं सुहदुहउप्पायगं [2]भणियं ॥"

कहं ?

"महुआसायणसरिसो सायावेयस्स होइ [3]परिणामो । जं असिणा तहि छिज्जइ सो [4]परिणामो असायस्स" ॥६॥

नामं बायालीसविहं, अहवा तेणवइभेयं, अहवातिउत्तरसयभेयं, अहवा सत्तसट्ठिभेयं ।

गइ१जाइ२तणु३उवंगा४बंधण५संघायणाणि६संघयणा७ ।
संठाण८वन्न९गंध१०रस११फास१२अणुपुव्वि१३विहगगइ१४ ॥७॥

गइनामं, जाइनामं, सरीरनामं, अंगोवंगनामं, बंधणनामं, संघायनामं संघयणनामं, संठाणनामं, वण्णनामं, गंधनामं, रसनामं, फासनामं, आणुपुव्विनामं, (विहायोगइनामं) । एवं पिंडपयइ त्ति च चउदस ॥७॥

पिंडपयडि त्ति, चउदस परघा१उज्जोय २आयवु३सासं४ ।
अगुरुलहु ५तित्थ६निमिणो ७ वघाय८मिय अट्ठ पत्तेया ॥८॥

परघायनामं, उज्जोयनामं, आयवनामं, (उस्सासनामं,) अगुरुलहुनामं, तित्थयरनामं, निम्माणनामं, उवघायनामं, एवं अट्ठ पत्तेया ॥८॥

तसबायरपज्जत्तं पत्तेयं थिरसुभं च सुभगं च ।
सुसराइज्जजसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥९॥

तसनामं, १ बादरनामं २, पज्जत्तनामं ३, पत्तेयनामं ४, थिरनामं ५, सुहनामं ६, सुभगनामं ७, सुसरनामं ८, आदेयनामं ९, जसकित्तिनामं च १० ॥९॥

थावरसुहुमअपज्जं साहारणमथिरमसुभदुभगाणि ।
दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥१०॥

---

१ "०विवागो" इत्यपि । २ "मुणह" इत्यपि । ३ "हु विवागो" इत्यपि । ४ "उ विवागो" इत्यपि ।

थावरनामं १, सुहुमनामं २, अपज्जत्तनामं ३, साहारणनामं ४, अथिरनामं ५, असुभनामं ६, दूभगनामं ७, दूसरनामं ८, अणादेयनामं ९, अजसकित्तिनामं १०, इय नामे सेयरा वीसं ॥१०॥

तसचउथिरछक्कं अथिरछक्कसुहुमतिगथावरचउक्कं ।
सुभगतिगाइविभासा पयडीण तहाइसंखाहिं ॥११॥

तसं, बादरं, पज्जत्तगं, पत्तेयं; एयं तसचउक्कं । थिरं, सुभं, सुभगं, सूसरं, आदेयं, जसं; एवं थिरछक्कं । अथिरं, असुभं, दूभगं, अणाइज्जं, अजसं; एवं अथिरछक्कं । सुहुमं, अपज्जत्तगं, साहारणं; एवं सुहुमतिगं । अहवा थावरेण समं, थावरचउक्कं । सुभगतिगाइ विभासा, विविधा भासा विभासा । जहा सुभगं, सूसरं, आदेयं; एवं सूभगतिगं । विवरीयं दूभगतिगं आइपयडीविवक्खया तिगं चउक्कं पंचगं वा नेअं ॥११॥

एवं बायालीसविहं नामं । अहुणा तेणवइ भण्णइ—

गइयाईण य कमसो चउ१पण२पण३ति४पण५पंच६छ७छक्कं ८ ।
पण९दुग१०पण११ट्ठ१२चउ१३दुग१४मिय उत्तरभेयपणसट्ठी॥१२॥

गइ ४, जाइ ५, सरीर ५, अंगोवंग ३, बंधण ५, संघाय ५, संघयण ६, संठाण ६, वण्ण ५, गंध २, रस ५, फास ८, अणुपुव्वी ४, विहायगइ ५, एवं पणसट्ठी ६५ ॥१२॥

एएसिं विवरणं—

निरयतिरिनरसुरगई इगिबियतियचउपणिंदिजाईओ ।
ओरालियवेउव्वियआहारगतेयकम्मइया ॥१३॥

निरयगई, तिरियगई, मणुयगई, देवगई जीए उदएण जीवो नेरइओ होइ नरयपुढवीए सा भणिया नरयगई । सेसगईउ वि एमेव । जाइनिप्फत्तिअभिहाणकारणं जाइनामं । तं जहा—एगिंदियजाई, बेइंदियजाई, तेइंदियजाई, चउरिंदियजाई, पंचिंदियजाई त्ति । एएसिं भेया—एगिंदियजाइनामं पंचहा भवइ । तं जहा—पुढविकाइ एगिंदियजाइनामं । एएसिं एक्केकीए अणेगभेया जहा पन्नवणाए । एवं बेइंदियतेइंदियचउरिंदियपंचिंदियजाइनामाण य अणेगा भेया जहा पण्णवणाए । एवमेयं जाइनामं विवरणओ अणेगकोडिसो भणियव्वं । अणेगा उ कुलकोडीओ संक्खेवेण पुण पंच उत्तरपगईओ वण्णिज्जिहिंति ।

"एगिंदिएसु जीवो वस्सिहइ कम्मस्स होइ उदएणं । सा एगिंदियजाई बहुभेओ तीअ परिणामो ॥"

एवं बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाइओ पंचिंदियाण वि तहा बहवो भेया होंति एक्केक्काए ॥

"जह इत्थ कुंभयारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ निंदं पावइ भकए वि मज्जम्मि ।
जह एत्थ कुंभकारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं । जं लोयाओ पूयं पावइ इह पुण्णकलसाई ॥
एवं कुलालसमाणं गोयं कम्मं तु एत्थ जीवस्स । उच्चानीय[1]विभागो जह होइ तहा निसामेह ॥
अधणो वुद्धि(विउत्तो रूव)विहूणो वि जस्स उदएणं । लोगम्मि लहइ पूयं उच्चागोयं तयं होइ ॥
सघणो रूवेण जुओ, बुद्धीनिहणो वि जस्स उदएणं । लोगम्मि लहइ निन्दं एयं पुण होइ नीयं तु ॥"

तत्थ वेयणियस्स दो उत्तरपयडीओ । तं जहा—सायं असायं च । अणुकम्पाइसुसुद्ध-भावोवचियं सुभलक्खणं (सायं) । तव्विवरियभावोवचियं दुहलक्खणं असायं । भणियं च—

"महुलित्तनिसियकरवाल धारजीहाइ जारिसं लिहणं । तारिसयं वेयणियं सुहदुहउप्पायगं [2]भणियं ॥"

कहं ?

"महुआसायणसरिसो सायावेयस्स होइ [3]परिणामो । जं असिणा तहि छिज्जइ सो [4]परिणामो असायस्स" ॥६॥

नामं बायालीसविहं, अहवा तेणवइभेयं, अहवातिउत्तरसयभेयं, अहवा सत्तसट्ठिभेयं ।

गइ१जाइ२तणु३उवंगा४बंधण५संघायणाणि६संघयणा७ ।
सठाण८वन्न९गंध१०रस११फास१२अणुपुव्वि१३विहगगइ१४ ॥७॥

गइनामं, जाइनामं, सरीरनामं, अंगोवंगनामं, बंधणनामं, संघायनामं संघयणनामं, संठाणनामं, वण्णनामं, गंधनामं, रसनामं, फासनामं, आणुपुव्विनामं, (विहायोगइनामं) । एवं पिंडपयइ त्ति च चउदस ॥७॥

पिंडपयडि त्ति, चउदस परघा१उज्जोय२आयव३सासं४ ।
अगुरुलहु५तित्थ६निमिणो७वघाय८मिय अट्ठ पत्तेया ॥८॥

परघायनामं, उज्जोयनामं, आयवनामं, (उस्सासनामं,) अगुरुलहुनामं, तित्थयरनामं, निम्माणनामं, उवघायनामं, एवं अट्ठ पत्तेया ॥८॥

तसबायरपज्जत्तं पत्तेयं थिरसुभं च सुभगं च ।
सुसराइज्जजसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥९॥

तसनामं, १ बादरनामं २, पज्जत्तनामं ३, पत्तेयनामं ४, थिरनामं ५, सुहनामं ६, सुभगनामं ७, सूसरनामं ८, आदेयनामं ९, जसकित्तिनामं च १० ॥९॥

थावरसुहुमअपज्जं साहारणमथिरमसुभदुभगाणि ।
दूसरणाएज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥१०॥

---

१ "०विभागो" इत्यपि । २ "भुणह" इत्यपि । ३ "हु विभागो" इत्यपि । ४ "च विभागो" इत्यपि ।

थावरनामं १, सुहुमनामं २, अपज्जत्तनामं ३, साहारणनामं ४, अथिरनामं ५, असुभनामं ६, दूभगनामं ७, दूसरनामं ८, अणादेयनामं ९, अजसकित्तिनामं १०, इय नामे सेयरा वीमं ॥१०॥

तसचउथिरछक्कं अथिरछक्कसुहुमतिगथावरचउक्कं ।
सुभगतिगाइविभासा पयडीण तहाइसंखाहिं ॥११॥

तसं, बादरं, पज्जत्तगं, पत्तेयं; एयं तसचउक्कं। थिरं, सुभं, सुभगं, सूसरं, आदेयं, जसं; एवं थिरछक्कं। अथिरं, असुभं, दूभगं, अणाइज्जं, अजसं; एवं अथिरछक्कं। सुहुमं, अपज्जत्तगं, साहारणं; एवं सुहुमतिगं। अहवा थावरेण समं, थावरचउक्कं। सुभगतिगाइ विभासा, विविधा भासा विभासा। जहा सुभगं, सूसरं, आदेयं; एवं सूभगतिगं। विवरीयं दूभगतिगं आइपयडीविवक्खया तिगं चउक्कं पंचगं वा नेअं ॥११॥

एवं बायालीसविहं नामं। अहुणा तेणवइ भण्णइ—

गइयाईण य कमसो चउ१पण२पण३ति४पण५पंच६छ७छक्कं ८ ।
पण९दुग१०पण११ट्ठ१२चउ१३दुग१४मिय उत्तरभेयपणसट्ठी॥१२॥

गइ ४, जाइ ५, सरीर ५, अंगोवंग ३, बंधण ५, संघाय ५, संघयण ६, संठाण ६, वण्ण ५, गंध २, रस ५, फास ८, अणुपुव्वी ४, विहायगइ ५, एवं पणसट्ठी ६५ ॥१२॥

एएसिं विवरणं—

निरयतिरिनरसुरगई इगिबियतियचउपणिंदिजाईओ ।
ओरालियवेउव्वियआहारगतेयकम्मइया ॥१३॥

निरयगई, तिरियगई, मणुयगई, देवगई जीए उदएण जीवो नेरइओ होइ नरयपुढवीए सा भणिया नरयगई। सेसगईउ वि एमेव। जाइनिप्फत्तिअभिहाणकारणं जाइनामं। तं जहा—एगिंदियजाई, बेइंदियजाई, तेइंदियजाई, चउरिंदियजाई, पंचिंदियजाई त्ति। एएसिं भेया—एगिंदियजाइनामं पंचहा भवइ। तं जहा—पुढविकाइ एगिंदियजाइनामं। एएसिं एक्केकीए अणेगभेया जहा पन्नवणाए। एवं बेइंदियतेइंदियचउरिंदियपंचिंदियजाइनामाण य अणेगा भेया जहा पण्णवणाए। एवमेयं जाइनामं विवरणओ अणेगकोडिसो भणियव्वं। अणेगा उ कुलकोडीओ संक्खेवेण पुण पंच उत्तरपगईओ वण्णिज्जिहिंति।

"एगिंदिएसु जीवो वस्सिह कम्मस्स होइ उदएणं। सा एगिंदियजाई बहुभेओ तीअ परिणामो ॥"

एवं बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाइओ पंचिंदियाण वि तहा बहवो भेया होंति एक्केक्काए ॥

ओरालियसरीरं, वेउव्वियसरीरं, आहारगसरीरं, तेजइगसरीरं, कम्मगसरीरं । तत्थ उदारपोग्गलनिप्फण्णं उदारं, (उदारं) नाम थूरं । विविहप्पकारकारयं वेउव्वियं जं अपमत्तसंजएण उवचियं पमत्तसंजयस्स उदयगयं भवइ । उक्कोसदलियणिप्फयमाणं संदेहाइपुच्छनिमित्तं सव्वण्णुसमीवं गमणजोगं आहारगसरीरं, चउदसपुव्वधरस्सेव । आहारपागतेयनिस्सग्गकारि तेयगसरीरं । कम्मपुग्गलमयं कम्मगसरीरं । भणियं च–

"ओरालियं सरीरं उदएणं होइ जस्स कम्मस्स । तं ओरालियनामं [1]बहुभेओ तस्स परिणामो ॥
एवं विउव्वहारगतेयगकम्मे य होइ जहकमसो । होंति विसेसिज्जंते एक्केक्के बहुविहा भेया ॥" ॥१३॥

पढमतितणुवंगा बंधणसंघायणा य तणुनामा ।
सुत्ते सत्तिविसेसो, संघयणमिहऽट्ठिनिचउत्ति ॥१४॥

ओरालियअंगोवंगं, वेउव्वियअंगोवंगं, आहारगअंगोवंगं । तत्थ इमाणि अट्ठ अंगाणि,
"दोहत्था दोपाया सीसं पट्ठी उरं च उदरं च । एए अट्ठंगा खलु सेसाणि उ होंति वंगाणि ॥"
भणियं च–"अंगोवंगविभागो उदएणं होइ जस्स कम्मस्स । तं अंगुवंगनामं [2]तस्स बहुभेया इमे होंति ॥
सीसमुरो य [3]पट्ठी दो बाहू ऊरुया य अट्ठंगा । अंगुलिमाइ उवंगा अंगोवंगाइं सेसाइं" ॥
ओरालियबंधणं, वेउव्वियबंधणं, आहारगबंधणं, तेयगबंधणं, कम्मगसरीरबंधणं । उक्तं च–

"ओरालपुग्गला इह बद्धा जीवेण जे उरालत्ते । अन्ने उ बज्झमाणा ओरालियपुग्गला जे य ॥
तेसिं जं संबंधं अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ । तं जउसरिसं जाणसु ओरालियबंधणं पढमं ॥"

एवं सव्वत्थ नामे नाणत्तं ॥ ओरालियसंघायं, वेउव्वियसंघायं, आहारगसंघायं, तेयगसंघायं, कम्मइगसंघायं । उक्तं च–

"ओरालाई जे देहपुग्गला होंति जम्मि ठाणम्मि । [4]तिट्ठंति तम्मि ठाणे संघायणकम्मुणो उदए ॥६॥"

सुत्ते वा आगमे सत्तिविसेसो संघयणं । तं च देवा किर वज्जरिसभसंघयणी । इह अट्ठिनिचओ=अट्ठिसंघाओ । अट्ठियं अट्ठिसंघायबंधनिव्वत्तजणगं, तं संघयणनामं ॥१४॥

छद्धा संघयणं वज्जरिसहनाराय१वज्जनारायं २ ।
नाराय३मद्धनाराय४कीलिया ५ तह य छेवट्ठं ॥१५॥

वज्जरिसभनारायं, नारायं अद्धनारायं खीलियसंघयणं, छेवट्ठं । उक्तं च–
"नंगलियपट्टकीलियपट्टरिए. पट्टकोलियारहियं । एगदुबंधे य तहा छट्ठं पुण कोडिए मिलियं ॥" ॥१५॥

जं संठाणनिव्वत्तिजणगं तं संठाणनामं—

---

१ प्राचीनप्रथमकर्मग्रन्थे पुन "सेससरीरा वि एमेव ॥" । इति पाठः २ प्राचीनप्रथमकर्मग्रन्थे पुनः "तस्स विभागो इमो होइ॥" इति पाठः । ३ "पिट्ठी" इत्यपि । ४ "ते ठंति" इति, "ते हुंति" इत्यपि वा पाठः ।

समचउरंसं नग्गोहसाइखुज्जाणि वामणं हुंडं ।
संठाणा वन्ना किन्हनीललोहियहलिद्दसिया ॥१६॥

समचउरंसं, नग्गोहमंडलं, साइसंठाणं, खुज्जसंठाणं वामणसंठाणं, छेवट्ठसंठाणं ।

"जस्सुदएणं जीवे चउरंसं नाम होइ संठाणं । [1]तं बहुविहप्पगारे देइ वियागं सरीरम्मि ॥"

एवं नग्गोहाईसु पसत्थापसत्थवण्णजणगं वण्णनामं । एवं गंधरसफासा वि भाणियव्वा । किण्हवण्णं नीलवण्णं लोहियवण्णं हालिद्दवण्णं सुक्किलवण्णं । भणियं च—

"किण्हा नीला लोहिय हालिद्दा सुक्किला य वन्नेगं । एयाणुदए जीवो होइ सरीरेण तव्वन्नो ॥
जस्सुदएणं जीवे सरीरगं होइ किण्हवण्णं तु । तं किण्हवण्णनामं सेसगवन्ना वि एमेव ॥"॥१६॥

सुरभिदुरभी रसा पण तित्तकडुकसायअंबिला महुरा ।
फासा गुरुलहुमिउखरसीउण्हसिणिद्धरुक्खऽट्ठ ॥१७॥

सुरभिगंध, दुरभिगंधं ।

"जस्सुदएणं जीवे दुग्गंधं अहव सुरभिगंधं वा । होइ सरीरं सो इह परिणामो गंधनामस्स ॥"

रसा पण—तित्तरसं, कडुयरसं, कसायरसं, अंबिलरसं, महुरसं ।

"जस्सुदएणं जीवो तित्तं साएण होइ हु शरीरं । तं तित्तनामकम्मं सेसा उ रसा उ एमेव ॥"

फासा—गरुयफासं, लहुयफासं, मउयफासं, कक्खसफासं, सीयफासं, उण्हफासं, निद्धफासं, रुक्खफासं ।

"जस्सुदएणं जीवे गरुयं लहुयं च तह य मिउ कठिणं । होइ सरीरे फासं सुहमसुहं तं भवे दुविहं ॥
जस्सुदएणं जीवे निद्धं रुक्खं च तह य सीउण्हं । फासं होइ सरीरे सुहमसुहं तं भवे दुविहं ॥" ॥१७।

चउहगइव्वणुपुव्वी दुविहा य सुहासुहा य[1]विहयगई ।
गइअणुपुव्वीओ दुगं तिगं तु तं चिय नियाउजुअं ॥१८॥

निरयाणुपुव्वी, तिरियाणुपुव्वी, मणुयाणुपुव्वी, देवाणुपुव्वी । जं अंगोवंगादीणं सरीरावयवविसेसाणं विणिवेसकारयं भवंतरे य वट्टमाणस्स जीवस्स जीवपएसाणुपुव्विववत्थावगं तं आणुपुव्विनामं । भणियं च—

"अंगोवंगावयवा कुणइ विसेसाउ जं सरीरस्स । कुणइ अणुपुव्विपएसो निरयाई आणुपुव्वीओ ॥
नारयतिरियनरामरभवेसु जंतस्स अतरगईए । भवइ हु जस्स विवागो तं अणुपुव्वी हवइ कम्मं ॥"

सिक्खालद्धिद्धिपच्चयस्स आगासगमणस्स जणगं विहाइगइनामं । तं दुविहं सुहविहायगई, दुहविहायगई । भणियं च—

---

१ 'तं चउरंसं नामं सेसा वि हु एव संठाणा ॥" इति प्राचीन प्रथमकर्मग्रन्थे पाठः । (गा० ११३)

"जस्सुदएणं जीवो वरवसमगईय गच्छइ गईए। सा सुहया विहयगई तीइ विवागो सरीरम्मि ॥"

पञ्चत्तगस्सेव,

"जस्सुदएणं जीवो अमभिट्ठाए उ गच्छइ गईए । सा असुहया विहगई तीइ विवागो सरीरम्मि ॥"

पञ्चत्ते गइअणुपुव्वीदुगं तु देवगई देवाणुपुव्वी, एवं मणुयदुगं, तिरियदुगं, नरयदुगं । "तिगं" ति तं चेव नियथाउयजोगा तिगं ति भण्णइ ॥१८॥ भणियं च पिंडपयडिविवरणं ।

पत्तेयविवरणं कीरइ—परेसिं घायजणगं परघायनामं। जओ एयं पुग्गलविवागी। भणियं च-

"देहम्मि वट्टमाणो अंगावयवो उ जो उ [1]अण्णेहिं । जीवाण कुणइ घायं तं परघायं हवइ कम्मं ॥"

अण्णे भणंति—परघायनामं जं परेण आउहाइणा हणिऊणं खेयं अरुगं वा [अरुगं सद्यमुखःप्रहारस्तामदादीनां (?)] कीरइ तं पराघायनामं ।

पगासजणगं उज्जोयनामं ।जहा अग्गिमणीदिणयरचन्दविमाणखज्जोयमाइयाणं उज्जोओ ।

अण्णे भणंति—अणुसिणो पगासो जस्सोदयाउ भवइ तं उज्जोयनामं खज्जोयमाइयाणं; न तु अग्गिस्स आइच्चस्स वा । जओ अग्गिस्स फासो उसिणनामोदयाउ, रूवं लोहियनामं ति । भणियं च—

"जस्सुदएणं जीवो अणुसिणदेहेण कुणइ उज्जोयं । तं उज्जोयं नामं जाणसु खज्जोयमाईणं ॥"

आयवनामं जहासत्ती तावकरी । जहा अग्गिदिणयरविमाणमाइयाणं आयावो ।

अण्णे भणंति—आइच्चमंडलपुढविकाइएसु चेव विवागो नन्नत्थ । भणियं च—

"जस्सुदएणं जीवे होइ सरीरं तु ताविलं इत्थ । त आयवमिह नामं तस्स विवागो उ रविबिंबे ॥"

ऊसासो=अणुपाणु । भणियं च—

"जस्सुदएणं जीवे निप्फत्ती होइ आणुपाणूणं । तं ऊसासं नामं तस्सुदओ पज्जत्तजीवम्मि ॥"

सरीराईसु अगुरुलहुपरिणामकारयं अगुरुलहुनामं । भणियं च-

न य गरुयं न य लहुयं उदएणं होइ जस्स कम्मस्स । जीवस्स इह शरीरं तं नामं अगरुलहुगं तु ॥

जं तित्थयरसिद्धपवयणपरिपथेरबहुस्सुयतवस्सिभत्तिवच्छल्लो अभिक्खनाणोवओगा दंसणविणयआवस्सचरिऊ निरयारखणलवतवरामतित्थपभावणा अपुव्वनाणग्रहणं सुयभत्ती वेयावच्चं समाहिसंवेगवरभावोवचियं तं पुन्नपुग्गलनिप्फण्णं तित्थयरभावगं तित्थयरनाम । जओ आह-

उदए जस्स सुरासुरनरवइनिवहेहि पूइओ जोए । तं तित्थयरं कम्मं केवलिणो तस्स उदओ उ ॥६॥

जाइलिंगआगीववत्थावनं निम्माणनामं । जओ आह-

देहंगावयवाणं लिंगागीजाइ नियमणं जेण । तं सुत्तहारसरिसं निमेणनामं वियाणाहि ॥

अप्पणोवघायणगमा उवघायनामं । जओ एसो पुग्गलविवागी । भणियं च-

देहम्मि वट्टमाणो अंगावयवो उ अप्पणो जो उ । वट्टइ इह उवघाए तं उवघायं भवइ कम्मं ॥

---

[1] "अण्णेर्सिं" इति वा ।

एवं पत्तेयविवरणा।

इयाणिं सेयरविवरणा भन्नइ-तसभावनिव्वत्तयं तसनामं। थावरभावनिव्वत्तयं थावरनामं। तसकम्मुदए जीवो वेइन्दियमाइजाइजीवेसु। थावरकम्मुदएणं पुढवीमाईसु सो जाइ।

बायरसरीरनिव्वत्तयं बायरनामं। सुहुमसरीरनिव्वत्तयं सुहुमनामं। भणियं च-

"बायरकम्मुदएणं बायरकाएसु होइ सो नियमा। सुहुमेण सुहुमकाए अंतमुहुत्ताउओ होइ॥"

पज्जत्तजीवसरीरभावनिव्वत्तयं पज्जत्तनामं। अपज्जत्तभावनिव्वत्तयं चापज्जनामं।

जओ आह-

आहारसरीरिंदियपज्जत्ती आणपाणुभासमणे। चत्तारि पंच छप्पिय एगिंदियविगलसण्णीणं॥
एयासिं निप्फत्ती उदएणं होइ जस्स कम्मस्स। तं पज्जत्तयनामं इयरुदए नत्थि निप्फत्ती॥

जं एगमेगं जीवं पइ सरीरनिव्वत्तयं तं पत्तेयसरीरनामं। जं अणेगजीवसामण्णसरीर-निवत्तयं तं साहारणसरीरनामं।

जओ आह—

"(एक्केक्कयम्मि जीवे) एक्केक्कं जस्स होइ उदएणं। [1]ओरालियं सरीरं तं नामं होइ पत्तेयं॥
जीवाणमणंताणं एक्कं ओरालियं इह सरीरं। हवइ हु जस्सुदएणं तं साहारं हवइ नामं॥"

देहावयवाणं थिरभावजणगं थिरनामं। जओ आह-

"दंतट्ठाइथिराणं अंगावयवाण जस्स उदएणं। निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ थिरनामं॥
जीहामसुहाईणं अंगावयवाण जस्स उदयेणं। निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं अथिरनामं तु॥"

नामं तु पुग्गलविवागी। जओ आह-

सिरमाईण सुहाणं अंगावयवाण जस्स उदएणं। निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ सुहनामं॥
पायाई असुहाणं अंगावयवाण जस्स उदएणं। निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं असुहनामं तु॥

सोहग्गजणगं सुभगनामं। दोहग्गजणगं दुभगनामं। जओ आह-

"सूभगकम्मुदएणं हवइ हु जीवो उ सव्वजणइट्ठो। दूभगकम्मुदएणं पुण दुभगो सो सव्वलोयस्स॥"

सूसरत्तभावं सूसरनामं। दूसरत्तभावं दूसरनामं। जओ आह-

"सूसरकम्मुदएणं सूसरसद्दो उ होइ इह जीवो। दूसरउदए विसरो जंपंतो होइ जणवेसो॥"

उज्जभावजणगं आदेयनामं। अणुज्ज(भावज)णगं अणादेयनामं। अहवा आदेज्जं पमाणी-करणं। अणाइज्जं (अपमाणीकरणं)। जओ आह-

"आइज्जकम्मउदए चिट्ठा जीवाण भासणं जं च। तं बहु मण्णइ लोओ अबहुमयं इयरउदएणं॥"

कित्तिभावगं जसकित्तिनामं। अजसकित्तिभावगं अजसकित्तिनामं। जओ आह—

"जस्सुदएणं जीवो लहइ हु कित्ती जसं च लोगम्मि। तं जसनामं कम्मं विवरीयं लहइ इयरुदए॥"

एवं सेयरविवरणा कया।

---

१ "ओरालाइसरीरं" इत्यपि प्राचीनप्रथमकर्मग्रन्थे पाठः।

इय तेणउई संते बंधणपन्नरसगेण तिसयं वा ।
वन्नाइभेयबंधणसंघायविणा उ सत्तट्ठी ॥१९॥

एवं पणसट्ठी पिंडुत्तरपगई । अट्ठ पत्तेया । सेयरा वीसं । एवं तेणउई । बंधणपन्नरसगेण तिसयं वा । बंधणपन्नरसगे छूढे तेणउई तिउत्तरसयं भवइ । वण्णाइभेया वीसं एक्केक्कं मुत्तूणं सेसा सोलस, तहा बंधणपण्णरसावि, संघायपञ्चवि, एवं छत्तीसाए, तिउत्तरसयाओ अवणीआ सत्तट्ठी ॥ १९॥

सा बंधुदए बंधण-संघाया नियतणुग्गहणगहिया ।
वन्नाइविगप्पा वि हु न य बंधे सम्ममीसाइं ॥२०॥

एवं नामकम्मपयडी । सत्तट्ठी बंधे उदए उदीरणाए य बंधणपण्णरसगं संघायपणगं नियनियसरीरगहणेण गहिया । वण्णाइविगप्पा सोलस सजाइगहणेण गहिया । उक्तं च—

"ससरीरंतरभूया बंधणसंघायणा य बंधुदए । वन्नाइविगप्पा वि हु वन्वे नो सम्ममीसाई ॥"

"न य बंधे सम्ममीसाई" एएण सूइयं सेसाणं सत्तण्हं कम्माणं उत्तरपयडी बंधे य तेवन्नं, उदए उदीरणाए सत्ताए य पणवन्नं । उक्तं च—

"बंधे वीसोत्तरसयं बावीससयं तु होइ उदयम्मि । एवं उईरणाइ वि अडयालसयं तु संतम्मि ॥"

	बन्ध.	उदय.	उदीरणा	सत्ता.
नामकम्मस्स	६७	६७	६७	९३
सेसकम्माण	५३	५५	५५	५५

॥२०॥

बंधणपण्णरस इति कहं ?-

वेउव्वाहारोरालियाण सगतेयकम्मजुत्ताणं ।
नव बंधणाणि इयरदुसहियाणं तिन्नि तेसिं च ॥२१॥

वेउव्वियवेउव्वियं १, वेउव्वियतेयगं २, वेउव्वियकम्मगं ३। आहारगआहारगं १, आहारगतेयगं २, आहारगकम्मगं ३,(ओरालिय)ओरालियं १, ओरालियतेयगं (२, ओरालियकम्मगं) ३। एवं नव बंधणाणि ९। "इयरदुसहियाणं" ति वेउव्वियतेयगकम्मगं १, आहारगतेयगकम्मगं २, ओरालियतेयगकम्मगं ३ । एवं "तिण्णि तेसिं च" ३ तेयगतेयगं १, तेयगकम्मगं २, कम्मगकम्मगं ३ । एवं पन्नरस बंधणाणि १५ ॥२१॥

नीलकसिणं दुगंधं तित्तं कडुयं गुरुं खरं रुक्खं ।
सीयं च असुभनवगं एक्कारसगं सुभं सेसं ॥२२॥

नीलवण्णं, कसिणवण्णं; दुग्गंधं; तित्तरसं, कडुयरसं; गुरुफासं, कक्कसफासं, रुक्खफासं, सीयफासं; एवं कुवण्णनवगं । लोहियवन्नं, हालिद्दवण्णं, सुक्किलवन्नं; सुरभिगंधं; कसायरसं, अंबिलरसं, महुररसं मउफासं, लहुयफासं, निद्धफासं, उण्हफासं; एवं सुभवण्णेक्कारसगं ॥२२॥

धुवबंधो१दय२सत्ता३सव्वेयरघाइ ४सुभ५अपरियत्ता६ ।
छद्धा वि सपडिवक्खा चउहविवागा य पयडीओ ॥२३॥

दारगाहा ॥ धुववंधिनी ४७, धुवउदया २७, धुवसत्ता १३०, सव्वघाई २०, देसघाई २५, सुभपयडी ४२, अपरियत्ता २९ । "छद्धा वि सपडिवक्ख"त्ति, अधुववंधिनी ७३, अधुवउदया ९५, अधुवसत्ता २८, अघाई पयडी ७५, असुभा ८२, परिवत्तमाणी ९१ । एवं सपडिवक्खा ६ ।

"चउहविवागा य पयडीओ" पुग्गलविवागिणी ३६, खेत्तविवागिणी ४, भवविवागिणी४, जीवविवागिणी ७८ ॥२३॥

एएसिं नामग्गहणेण, विवरणा कीरइ--

"नियहेउसम्भवे वि हु भयणिज्जो जाण होइ पयडीणं । बंधो ता अधुवाओ, धुवा अभयणिज्जबंधाओ॥"

धुवबंधी भय१कुच्छा१कसाय१६मिच्छं१तराय५आवरणा१४ ।
वन्नचउ४तेय१कम्मा१गुरुलहु१निमिणो१वघाया १ य ४७॥२४॥

भयमोहं १, दुगुंच्छामोहं १, कसायमोहं १६, मिच्छत्तमोहणीयं १, अंतरायपणगं५, नाणावरणपणगं ५, दंसणावरणनवगं ९, नामधुवबंधी ९,-वण्णाइचउक्कं ४, तेजइगं १, कम्मणं१, अगरुलहुयं १, निम्माणनामं १, उवघायं १ । एवं धुवबंधी ४७ ॥२४॥

पडिवक्खे अधुवबंधिणीओ । ताओ च इमा—

उरलविउव्वाहारगदुगाणि६गइ४जाइ५खगइ२अणुपुव्वी४ ।
संघयणागी६तसवीसु २० सासतित्थायवुज्जोयं ॥२५॥ (प्रक्षेपगाथा)

ओरालदुगं वेउव्विदुगं आहारदुगं गइचउक्कं जाइपंचगं विहायगइदुगं अणुपुव्वीचउक्कं संघयणछक्कं संठाणछक्कं तसाइदसगं थावराइदसगं ऊसासं तित्थयरं आयवं उज्जोयं च ॥२५॥

परघायवेयणीयाउगोयहासाइदुजुयलतिवेयं ।
विग्घावरणा विणा इय तेवत्तरिमधुवबंधाओ ॥२६॥ (प्रक्षेपगाथा)

परघायं वेयणियदुगं गोयदुगं आउचउक्कं हासरइदुगं अरइसोगं च वेयतिगं । एवं तेवत्तरि अधुवबंधाओ ॥२६॥

बंधाधिकारे गईसु बंधसंखामाह–

बंधंति न इगिविगला वेउव्वियछक्कदेवनरयाउं ।
तिरिया तित्थाहारं गईतसा णरतिगुच्चं च ॥२५॥२७॥[1]

मणुयगईए बंधे वीसोत्तरसयं: सव्वेसिं गुणाणं भयणा त्ति काउं । तिरियगईए बंधे सत्तरहोत्तरसयं: तित्थयरस्स गइपच्चएणं, आहारदुगस्स संजमाभावात्, तित्थयरनाम आहारगदुगं न बंधति । एगिंदियविगलिंदियजाइ बंधे नवुत्तरसयं: देवदुगं निरयदुगं वेउव्वियदुगं, एवं वेउव्विछक्कं देवाउयं निरयाउयं न बंधति । गईतसा=तेऊवाऊ बंधे पंचोत्तरसयं: मणुयतिगं उच्चागोयं न बंधति ॥२५॥२७॥

नरयसुरसुहमविगलत्तिगाणि आहारदुगविउव्विदुगं ।
बंधहि न सुरा सायावथावरेगिंदि नेरइया ॥२६॥२८॥

देवगईए बंधे चउरुत्तरसयं: देवतिगं निरयतिगं सुहुमविगलतिगं आहारदुगं वेउव्वियदुगं न बंधति । निरयगईए बंधे एक्कोत्तरसयं: आयवनामं थावरनामं एगिंदियजाई देवसोलसगं न बंधति ॥२६॥२८॥

बंधाधिकारे अबंधकालो एगयालीसाए पगईणं भण्णइ—

तिरि३नरय३तिगुज्जोयाण सचउपल्लं तिसट्ठमयरसयं ।
इग १ विगलजाइ ३ आयव १ थावरचउगेसु पणासीयं ॥२७॥२९॥

तिरियतिगं निरयतिगं उज्जोयं च एवं, अबंधकालो सागरोवमतिसट्ठसयं पल्लचउक्कं च । तहा इगिविगलजाइचउक्कं आयवं थावरचउक्कं एवं नव, अबंधकालो सागरोवमपणसीयसयं पल्लचउक्कं च ॥२७॥२९॥

बत्तीसं सासाणंतबन्धसेसपणवीसपयडीणं ।
नरभवसहियं परमो पणिंदिसु अबंधकालो सिं ॥२८॥३०॥

मिच्छसोलस—पणवीससासणाइबंधवोच्छेओ एए एक्कचत्तालीसं ४१ ॥ सोलस पुव्वभणियाउ सेसा पणवीसं २५ ॥२८॥३०॥ ता य इमा—

---

१ इत आरभ्य: प्रक्षेपगाथारहिता: प्रक्षेपगाथा सहिताश्च द्विविधा गाथाङ्का दर्शिता ज्ञेया: ।

थीणतिगं३दुभगतिगं३अपढमसंघयण५खगइ१संठाण५ ।
अण४नीय१नपुंसि१त्थी१मिच्छं१ति अ सेसपणुवीसा ॥३१॥(प्रक्षेपगाथा)

थीणतिगं दुभगतिगं अपढमसंघयणपणगं कुखगइ अपढमसंठाणपणगं अणंताणुबंधी चउक्कं नीयगोयं नपुंसगइत्थिवेयं मिच्छत्तं एवं पणवीसं, अबंधकालो सागरोवमसयं बत्तीसं ॥३१॥

बत्तीसं विजयाइसु गेविज्जाईसु तेसु तेसट्ठं ।
तमपुढविजुएसु ग नरस्स तेसु पणासीयमुदहिसयं ॥२६॥३२॥

उक्तं च–
"दो वारे विजयाईसु गयस्स तिण्णच्चुए अहवा ताइं । अइरेगं नरभवियं नाणाजीवेहिं सव्वद्धं ॥"

एवं बत्तीसं सयं सागरोवमाणं अबंधकालो । एवं बत्तीसं सागरोवमसयं सम्मत्तस्स मिस्सं-तरियस्स उक्कोसो ठीकालो, तहा भोगभूमिअबंधकालपल्लतियं भवपच्चएणं, पल्लोवमं सोहम्मे गुणभवपच्चएणं, नवमगेवेज्जे सागरएगत्तीसं भवपच्चएणं, अबंधे य पुव्वुत्तं बत्तीसं सागरो-वमसयं, अबंधिय, एवं गेविज्जाईसु तिसट्ठसयं सागरोवमाणं । "तमपुढविजुएसु" त्ति, छट्ठपुढवीए सागरोवमबावीसं भवपच्चएणं, तओ मणुओ देसविरइ पलियचउठिपढमकप्पे गुण-भवपच्चएहिं, तओ पुव्वकम्मेण नवमगेवेज्जे सागरएगत्तीसं अबंधित्ता, तओ अणुत्तराईसु सागरोवमसयं बत्तीसं अबंधित्ताः एवं पञ्चासीयं सचउपल्लं। एवं (अ)बंधकालो एगचत्तालीसाए॥

अहवा-"पलियाइ तिण्णि भोगावणिम्मि भवपच्चयं पलियमेयं। सोहम्मे सम्मत्तेण नरभवे सव्वविरईए ॥१॥
मिच्छो भवपच्चयओ गेवेज्जे सागराइं इगतीसं । अंतमुहुत्तूणाइं सम्मत्तं तम्मि लद्धिऊण ॥२॥
विरयनरभवंतरिओ अच्चु(य)देवो उ अयरछासट्ठी । मिस्सं मुहुत्तमेगं फासिय मणुओ पुणो विरओ ॥३॥
छासट्ठी अयराणं अणुत्तरे विरयनरभवंतरिओ । तिरिनरयतिगुज्जोयाण एस कालो अबंधम्मि ॥४॥
छट्ठीए नेरइओ भवपच्चयओ उ अयरबावीसं। देसविरइओ भविओ पलियचउक्कं पढमकप्पे ॥५॥
पुव्वुत्तकालजोगा पंचासीयं सयं सचउपल्लं । आयवथावरचउविगलतियगएगिंदियअबंधो ॥६॥
पणतीसाए अबंधो उक्कोसो होइ सम्मगुणजुत्ते । बत्तीसं सयमयराण हुंति अहिया मणुस्सभवा ॥७॥
आसिं अबंधकालो सुहपयडीणं तु बंधकालो उ । पणसीयं बत्तीसं उदहिसयं होइ कासिं चि ॥८॥
बंधाबंधववत्था जुत्तिनिओगाउ आसि संठविया । दट्ठूण पंचसंगहो नियय वियप्पो न मंतव्वो । ९॥
एवमिह बंधकालो अबंधकालो वि होइ सविसेस। उक्कोसो विन्नेओ न उ सव्वजियाण एस विही ॥१०॥"
॥२६॥३२॥

बंधाधिकारे एव बंधकालो अध्रुवबंधिणीणं भण्णइ–

समयादसंखकालं जा परमो नीयतिरियदुगबंधो ।
सुरदुगविउव्वियदुगे तिपलमाउसु मुहुत्तंतो ॥३०॥३३॥

नीयागोयस्स तिरियदुगस्स य सययं बंधकालो समयं १ जघन्यं, उक्कोसं जाव तेउवाउ-कायट्ठीइ एवं असंखकालं। सुरदुगविउव्वियदुगे पलिओवमतिगं जओ देवकुरुसु देवगइपाउग्गं बंधंति न अण्णं। आउचउक्के वि उक्कोसं अंतोमुहुत्तं ॥३०॥३३॥

तसचउपणिंदिपरघाउस्सासेसु पणसीयमुदहिसयं ।
बत्तीसं सुभगतिगुच्चपुरिससुभखगइचउरंसे ॥३१॥३४॥

तसचउक्कं पणिंदिजाइ परघायनामं उसासनामं च। सययं बंधकालो जघन्नं समयं १, उक्कोसो सागरोवमसयं पंचासीयं पल्लचउक्कं च। जत्थ परिपक्खस्स (अ)बंधकालो सो एएसिं बंधकालो। आयवनामं थावरेण समं, परघायनामं ऊसासनामं पज्जत्तगेण बघ्नन्ति। एवं पडिवक्खविवक्खा। तहा सुभगतिगउच्चागोयं पुरिसवेयं च सुभविहायगइ चउरंससंठाणं; एएसिं बंधकालः जघन्यः समयः, उक्कोसो सागरोवमसमयं बत्तीसं; पडिवक्खसंभवाओ ॥३१॥३४॥

उरले असंखपुग्गलपरियट्टा साय पुव्वकोडूणा ।
तेत्तीसयरा नरदुगतित्थुसभउरालुवंगेसु ॥३२॥३५॥

ओरालियसरीरबंधकालो जघन्यः समयः, उक्कोसो सययं असंखपुग्गलपरियट्टा। उक्तं च—"पणिंदियहरियंतियपोग्गलपरियट्टया असंखेज्जा" इत्यादि। सायावेयणियस्स बंधकालो जघन्यः समयः, उक्कोसं देसूणपुव्वकोडी, केवली सायावेयणियं चेव बंधइ। मणुयदुगं तित्थयरनामं वज्जरिसभसंघयणं ओरालियअंगोवंगं, एएसिं बंधकालो जघन्यः समयः। तित्थयरस्स अंतोमुहुत्तं जघन्यः, उक्कोसं पंचण्ह वि सागरोवमतेत्तीसं, अणुत्तरविमाणेसु। एवं बत्तीसं पगईओ॥३२॥३५॥

समयादंतमुहुत्तं सेसाणं तह जहन्नबंधो वि ।
तित्थाउसु अंतमुहू धुवबंधीणं तु भंगतिगं ॥३३॥३६॥

सेसाणं एकचत्तालीसाए पगईणं बंधकालो जघन्यःसमयः १, उक्कोसं अंतोमुहुत्तं॥३३॥३६॥

थिरसुभजसथावरदस१०असुभागी५खगइ१जाइ४संघयणा ।
णिरया२हारदुगायव१असाय१अपुमि१त्थि१दुजुयलु४ज्जोयं
१॥३७॥ (प्रक्षेपगाथा)

थिरनामं, सुभनामं, जसनामं, थावरदसगं, असुभसंठाणपंचगं, असुभविहायगई, असुभजाइचउक्कं, असुभसंघयणपंचगं, निरयदुगं, आहारदुगं, आयवनामं, असायवेय-णीयं, नपुंसगवेयं, इत्थिवेयं, हासरइजुयलं, अरइसोगजुयलं, उज्जोयं च; एवं एकचत्तालीसं।

"तह जहन्नबंधो वि ।" तित्थयरनामस्स आउचउक्कस्स जहण्णबंधकालो अंतोमुहुत्तं । तित्थयरनामस्स जघन्यः बंधकालो कहं?—तित्थयरनामबंधगो उवसमसेढि आरुहइ, अनियट्टीओ जाव उवसंतो ताबाऽबंधगो, परिवडिओ, पुणो बंधइ अंतोमुहुत्तं, पुणो सेढिं आरुहइ, अबंधगो, परिवडिओ पुणो बंधइ । उक्तं च—"एगभवे दुक्खुत्तो चरित्तमोहं उवसमिज्जा" इति श्रुतिः ।

"धुवबंधीणं तु भंगतिगं" कहं? अणादिअपज्जवसियं १, अणादिसपज्जवसियं २, सादिअपज्जवसियं बंधं पइ असंभवियं, सादिसपज्जवसियं ३, एयं भंगतिगं ॥३७॥ दारं ॥

"अव्वोच्छिन्नो उदओ जाणं पयडीण ता धुवोदयिया । वोच्छिन्नो वि हु संभवइ जाण अधुवोदया ताओ ॥ दव्वं खेत्तं कालं भव च भाव च हेयवो पंच । हेउसमासेणुदओ जायइ सव्वाण पयडीणं ॥"

निम्मेणथिराथिरतेयकम्मवन्नाइ अगुरुसुहमसुहं ।
नाणंतरायदसगं दंसणचउ मिच्छ धुवउदया ॥३४॥३८॥

निमाणनामं, थिरनामं, अथिरनामं, तेयगसरीरं, कम्मगसरीरं, वण्णाइचउक्कं, अगरुलहुनामं, सुभनामं, असुभनामं, नाणावरणपणगं, अंतरायपणगं, दंसणचउक्कं, मिच्छत्तं च; एए धुवोदया सत्तावीसं ।

पडिवक्खे अधुवोदया । ता य इमा-गइचउक्कं, जाइपणगं, सरीरतिगं, अंगोवंगतिगं, संघयणछक्कं, संठाणछक्कं, तसचउक्कं, थावरचउक्कं, आणुपुव्वीचउक्कं, सुभगाइचउक्कं, दुभगाइचउक्कं, आउचउक्कं, निद्दापणगं, चरित्तमोहं पणवीसं, विहाइगइदुगं, गोअदुगं, वेयणियदुगं, परघायं, उज्जोयं, आयवं, ऊसासं, तित्थयरं, उवघायं, सम्मत्तं, मीसं च । एवं अधुवोदयाणं ॥३४॥३८॥

उदओ धुवोदयाणं अणाइणंतो अणाइसंतो य ।
अधुवाण साइसंतो मिच्छस्स उ भंगतिगमेयं ॥३५॥३९॥

अणादिअपज्जवसियं १, अणादिसपज्जवसियं २, एवं भंगदुगं छव्वीसाए धुवोदयाणं । सादिसपज्जवसियं एगं भंगं अधुवोदयाणं ९५। मिच्छस्स तिण्णेव भंगाओ ॥३५॥३९॥दारं॥

"कम्ममसुभं सुभं वा बद्धं पि न जाव वेअयं अहवा । करणंतरेण वि वियोयियं न ता भण्णए संतं ॥"

वेउव्विकारससम्ममीसतित्थुच्चमणुदुगाउचऊ ।
आहारसत्त अधुवा धुवसंता सेस तीससयं ॥३६॥४०॥

देवदुगनिरयदुगं, वेउव्वियसरीरं, वेउव्वियअंगोवंगं, वेउव्वियसंघायं, वेउव्वियबंधणचउक्कं, एवं वेउव्विएक्कारसं; सम्मत्तं, सम्मामिच्छत्तं, तित्थयरनामं, उच्चागोयं, मणुयदुगं, आउचउक्कं, आहारगसरीरं, आहारगअंगोवंगं, आहारगसंघायं, आहारगबंधणचउक्कं, एवं आहारगसत्तगं; एवं अट्ठावीसं अधुवसंताओ ।

पडिवक्खे धुवसंताओ। ता य इमा—संघयणछक्कं, तिरियदुगं, ओरालियसत्तगं, तेजइ-सत्तगं, वण्णाइवीसं, संठाणछक्कं, तमाइदसगं, थावराइदसगं, घाइपयडीउ पणयालं, वेयणीयदुगं, विहायगइदुगं, नीयागोयं, जाइपंचगं, अतित्थपत्तेयसत्तगं; एवं धुवसंततीसमयं ॥३६॥४०॥

गुणठाणगेसु विसेससत्तामाह—

तिसु मिच्छत्तं नियमा [1]अट्ठसु गुणठाणएसु भयणिज्जं।
[2]आसाणे सम्मत्तं नियमा भज्जं दससु होइ ॥३७॥४१॥

मिच्छदिट्ठिसासायणसम्मामिच्छत्ताणं मिच्छत्तं संतं नियमेण हवइ। "**अट्ठसु गुणठाणगेसु भयणिज्जं**" कहं? अट्ठ=अविरयसम्माउ जाव उवसंतं। जया तेवीससंतकम्मिगो बावीस-संतकम्मिओ एगवीससंतकम्मिओ जहासंभवं एए(सु) गुणट्ठाणगेसु हवइ। तया नो मिच्छत्तसंत-कम्मिओ चउवीससंतकम्मिओ एए(सु) गुणट्ठाणगे(सु) आरुहइ तया मिच्छत्तसंतकम्मिओ सो जीवो एवं। अट्ठसु गुणट्ठाणगेसु भयणिज्जो। अहवा "**तिसु मिच्छत्तं नियम**"त्ति, तिसु ठाणगेसु मिच्छत्तं नियमा अत्थि। तं मिच्छदिट्ठिसासायणसम्मामिच्छद्दिट्ठीसु। "**अट्ठसु ठाणेसु भइयव्वं**" ति, असंजयाइ जाव उवसंतकसाओ ताव होज्ज वा नवा। खाइय-सम्मदिट्ठिं पडुच्च नत्थि, सेसेसु अत्थि। "**आसाणे सम्मत्तं नियम**"त्ति सासायणसम्म-दिट्ठिम्मि सम्मत्तं नियमा अत्थि। तेण उवसमसम्मत्ताद्धाए सासायणो हवइ। "**भज्जं दससु होइ**"त्ति आइमेसु सासायणवज्जेसु जाव उवसंतकसाओ एएसु दससु सम्मत्तं भयणिज्जं। कहं?, भण्णइ,—मिच्छदिट्ठिम्मि उव्वलियं न उप्पाइयं व तं पडुच्च नत्थि। अट्ठावीससंतकम्मियस्स अत्थि। सम्मामिच्छद्दिट्ठिम्मि उव्वलियं पडुच्च नत्थि। सम्मत्ते उव्वलिए वि सम्मामिच्छदिट्ठी लभइ। अणुव्वलियस्स अत्थि। सेसेसु खाइगसम्मद्दिट्ठिं पडुच्च नत्थि। इहरहा अत्थि ॥३७॥४१॥

[3]सासणमिस्से मिस्सं संतं नियमेण नवसु भइयव्वं।
निअमा मिच्छासाणे पढमकसाया नवसु भज्जा ॥३८॥४२॥

"**बीयतइएसु मीसं नियम**"त्ति सासायणमीसेसु सम्मामिच्छत्तं नियमा अत्थि। कहं?, भण्णइ,—सासायणे नियमा अट्ठावीससंतकम्मिगो। सम्मामिच्छद्दिट्ठी सम्मामिच्छत्तेण विणा न होइ त्ति काउं। "**ठाणनवगम्मि भयणिज्जं**" मिच्छदिट्ठी, असंजयसम्मद्दिट्ठी जाव उवसंतकसाओ; एएसु नवसु होज्ज वा नवा। कहं?, भण्णइ,—मिच्छद्दिट्ठिस्स अट्ठावीस-

---

१. "अट्ठसु ठाणेसु भइयव्वं।" इत्यपि पाठः सम्भाव्यते। एतत्पाठानुसारेण "अहवा" इत्यादिना-द्वितीयव्याख्यावसरे व्याख्यातम्। २. "सासायणम्मि नियमा संत सम्मं दससु भज्जं॥" इत्यपि पाठः। ३. व्याख्या पुनः "बीअतइएसु मीसं नियमा ठाणनवगम्मि भयणिज्जं। संजोयणा उ नियमा दुसु पंचसु होइ भइयव्वं॥" इति गाथापाठानुसारेण।

संतकम्मियस्स सत्तावीससंतकम्मियस्स अत्थि। छव्वीससंतकम्मियस्स नत्थि। सेसेसु खाइग-सम्मद्दिट्ठिं पडुच्च नत्थि। इयरहा अत्थि। "संजोयणा उ नियमा दुसु"त्ति अणंताणु-बंधिणो मिच्छद्दिट्ठिसासायणेसु अत्थि नियमा; जेण एए अणंताणुबंधिणो नियमा बंधंति। "पंचसु होइ मइयव्वं"ति, सम्मामिच्छद्दिट्ठी जाव अपमत्तसंजओ एएसु पंचसु ठाणेसु अणंताणुबंधिसंतं भइयव्वं। कहं?, भण्णइ,—उव्वलियं पडुच्च नत्थि, अण्णहा अत्थि।

अण्णे—नवसु भयणिज्जं। तेसिं मएणं अट्ठावीससंतकम्मिओ वि उवसमसेढीं आरुहइ। तेसिं मएण अत्थि अणंतानुबंधि, उव्वलिएसु नत्थि। एवं गज्जं ॥३८॥४२॥

सव्वगुणेसाहारा सासणमिस्सरहिएसु वा तित्थं।
नोभयसंते मिच्छो अंतमुहुत्तं भवे तित्थे ॥३९॥४३॥

सव्वेसु गुणगेसु आहारसत्तगस्स संतं संभवइ। तित्थयरनामस्स मीससायणवज्जेसु संतं वियप्पेण भवइ। जया आहारगतित्थयरस्स उभयसंता हवइ, तया मिच्छत्तं न गच्छइ। "अंतमुहुत्तं भवे तित्थे" कहं?, भण्णइ,—नरयबंधाउओ वेयगसम्मत्तं पडिवज्जइ। विसुज्झ-माणो तित्थयरनामं बंधइ। अंतकाले सम्मत्तं ठवेइ। नरएसु उववज्जइ। पज्जत्तिभावं गओ सम्मत्तं लहइ। एवं मिच्छदिट्ठिस्स तित्थयरनामं अंतोमुहुत्तं सत्ता लब्भइ॥३९॥४३॥ दारं॥

"पयडीओ विवत्ताओ देसं सव्वं हणंति घाईओ। एयासि निरुसरूवं सकज्जकरणाओ विन्नेयं॥"

केवलियनाण१दंसण१आवरणं बारसाइमकसाया।
मिच्छत्त १ निद्दपणगं ५ इय वीसं सव्वघाईओ ॥४०॥४४॥

केवलनाणावरणं, केवलदंसणावरणं पढमं कसायबारसगं मिच्छत्तं निद्दापणगं च; इय वीसं सव्वघाईओ ॥४०॥४४॥

सम्मत्तनाणदंसणचरित्तघाइत्तणाउ घाईओ।
तस्सेस देसघाइत्तणाउ पुण देसघाईओ ॥४१॥४५॥

मिच्छत्तं अणंताणुबंधिचउक्कं सम्मत्तस्स घाई। केवलनाणावरणं केवलनाणस्स घाई। केवल-दंसणावरणं केवलदंसणस्स घाई। निद्दापणगं खाओवसमदंसणस्स घाई। बीयकसाया देसविर-इघाई। तइयकसाया सव्वविरइचरित्तघाई। "तस्सेस"त्ति, सव्वघाईउव्वरियं तं घाएइ देसघाई। उक्तं च— "सुट्ठु वि मेहसमुदए होइ पहा चंदसूराणं।" तस्स कुदिट्ठिदुगाई आवारगा॥४१॥४५॥

संजलण४नोकसाया ९ चउनाण४तिदंसणावरण३विग्घा ५।
पणुवीस देसघाई, सेस अघाई सरूवेण ॥४२॥४६॥

संजलणचउक्कं, नोकसायनवगं, मइनाणावरणं, सुयनाणावरणं, ओहिनाणावरणं, मणपज्जवनाणावरणं, चक्खुदंसणावरणं, अचक्खुदंसणावरणं, ओहिदंसणावरणं, अंतरायपणगं च; एवं पणवीस देसघाई।

"सेस अघाई सव्वेण" कहं ?, "पलिभाग"त्ति, अघाइपयईओ घाइणीसहचरिओ घाइत्तं पडिवज्जंति; जह अचोरो वि चोरवसा।

पडिवक्खम्मि अघाई। ता य इमा-गइचउक्कं, जाइपणगं, सरीरपणगं, अंगोवंगतिगं, संघयणछक्कं, संठाणछक्कं वण्णाइचउक्कं, आणुपुव्विचउक्कं, विहायगइदुगं, तसदसगं, थावराइदसगं, पत्तेयअट्ठगं, आउचउक्कं, वेयणियदुगं, गोयदुगं च; आघाइपयडी पणसयरी ७५ ॥४२॥४६॥ दारं ॥

"बायालीसं पयडीण सुहसरूवाण पुण्णमक्खायं। बायासी असुभाओ पावं दुहहेउभावाओ ॥"

नरतिरिसुराउमुच्चं सायं परघायआयवुज्जोयं।
तित्थुस्सासनिमेणं पणिंदिवइरुसहचउरंसं ॥४३॥४७॥
तसदस चउवण्णाई सुरमणुदुगपचतणुउवंगतिगं।
अगुरुलहुपढमखगई बायालीस ति सुहपयडी ॥४४॥४८॥

मणुयाउं, देवाउं, तिरियाउं; उच्चागोयं, सायावेयणियं, परघायनामं, आयवनामं, उज्जोयनामं, तित्थयरनामं, उस्सासनामं, निम्माणनामं, पणिंदिजाइ, वज्जरिसभसंघयणं, समचउरंससंठाणं तसदसगं; वण्णाइचउक्कं, देवदुगं, मणुयदुगं, सरीरपंचगं, उवंगतिगं, अगरुलहुयं, सुभखगइ, बायालीसं ति सुहपयडी ॥४३-४४॥४७-४८॥

पडिपक्खे असुहपयडी। ता य इमा–

थावरदस चउजाई अपढमसंठाणखगइसंघयणा।
तिरिनिरयदुगुवघायं वन्नचऊ नामचउतीसा ॥४५॥४९॥

थावरदसगं, असुभजाइचउक्कं, असुभसंठाणपंचगं, असुभखगई, असुभसंघयणपंचगं, तिरियदुगं, निरयदुगं, उवघायनामं, असुभवण्णाइचउक्कं; एवं नामचउतीसा ॥४५॥४९॥

नरयाउनीयमस्सायघाइपणयालसहियबासीइ।
असुहपयडी उ दोसु वि वन्नाइचउक्कगहणेणं ॥४६॥५०॥

असायवेयणियं, नीयगोयं, निरयाउयं, पणयालीसं घाइपयडीओ; एवं असुभपयडी-बयासी। दोसु वि वण्णाइचउक्कं सुभं सुभियाण, असुभं असुभियाण य गहणेणं ॥४६॥५०॥ दारं॥

"थिणिमारिय जा गच्छइ बंधं उदयं व अण्णपगईए। सा हु परिअत्तमाणी, अनिवारिंसी अपरिअत्ता ॥"

नाणंतरायदंसणचउक्कपरघायतित्थउस्सासं ।
नामधुवबन्धिनवमिच्छभयदुगंछा अपरियत्ता ॥४७॥५१॥

नाणावरणपणगं, अंतरायपणगं, दंसणावरणचउक्कं, परघायतित्थयरनामं, उस्सासं, नामधुववंधी नव, मिच्छत्तं, भयं, दुगुंच्छा यः अपरियत्तामाणीउ उणतीसं ।

पडिवक्खे परियत्तमाणीओ । ता य इमा--गइचउक्कं, जाइपणगं, सरीरतिगं, अंगोवंगतिगं, संघयणछक्कं, विहायगईदुगं, आणुपुव्विचउक्कं, तसदसगं, थावरदसगं, आउचउक्कं, वेयणियदुगं, कसायसोलसगं, हासरइदुगं, अरइसोगदुगं, वेयतिगं, निद्दापणगं, उज्जोयआयवं, गोयदुगं चः परियत्तमाणीओ इगनउई ॥४७-५१॥ दारं ॥

"**चउहविवागा य पयडीउ**"त्ति, पुग्गलविवागिणीओ, जीवविवागिणीओ, खित्त-भवविवागिणीओ —

संघयणा ६ संठाणा ६ सरीरु ३ वंगाणि ३ आयवु १ ज्जोया १ ।
नामधुवोदय १२ साहार१णियर१उवघाय१परघाया १ ॥४८॥५२॥

संघयणछक्कं, संठाणछक्कं, सरीरतिगं, तेयगकम्मइगे धुवोदयगहणेण गहियाः अंगोवंगतिगं, आयवं, उज्जोयं, नामधुवोदयाः, साहारणं, पत्तेयं, उवघायं, परघायं चः छत्तीसा । एवं पुग्गलविवागीणि ॥४८॥५२॥

उदइयभावा पुग्गलविवागिणो आउ भवविवागीणि ।
खित्तविवागणुपुव्वी जीवविवागी उ सेसाउ ॥४९॥५३॥

भवविवागी आउयचउक्कं । खेत्तविवागी अणुपुव्वीचउक्कं । जीवविवागीओ सेसाओ । ता य इमा—गइचउक्कं, विहायगइदुगं, जाइपणगं, तसतिगं, थावरतिगं, उस्सासं, सुभगाइचउक्कं, दुभगाइचउक्कं, गोयदुगं, वेयणियदुगं, तित्थयरं, सम्मत्तं, सम्मामिच्छत्तं, घाइपयडीओ पणयालंः एवं अट्ठहत्तरि जीवविवागीणि ॥४९॥५३॥

"**उदइयभावा पुग्गलविवागिणो**"इति, भावा कत्तिया कित्तियमेया य तं जाण-णत्थं भणइ—

भावा छ्वोवसमिय१खइय२खओवसम३उदय४परिणामा ५ ।
दु१नव२ट्ठारि३गवीसा४तिग५भेया सन्निवाओ य ६ ॥५०॥५४॥

उवसमियं२, खाइयं९, खाओवसमिओ१९, ओदइयं२१, परिणामियं३, सण्णिवायं च ५३ ॥५०॥५४॥

सम्मचरणाणि पढमे बीए वरनाणदंसणचरित्ता ।
तह दाणलाभभोगोवभोगविरियाणि सम्मं च ॥५१॥५५॥

उवसमियं चरित्तं, उवसमियं सम्मत्तं, एए दुगभेया ॥ दारं ॥ केवलनाणं १, केवलदरिसणं १, खाइयं चरणं १; दाणलद्धी १, लाहलद्धी १, भोगलद्धी १, उवभोगलद्धी १, वीरियलद्धी १, खाइयसम्मत्तं १; एए नव खाइयभावा ॥५१॥५५॥ दारं ॥

चउनाणऽन्नाणतिगं दंसणतिगपंचदाणलद्धीओ ।
सम्मत्तं चारित्तं च संजमासंजमो तइए ॥५२॥५६॥

नाणचउक्कं, अन्नाणतिगं, दंसणतिगं, पंचदाणद्धीओ, सम्मत्तं, चरित्तं, देसविरयं च । एवं अट्ठारस खाओवसमियभावा ॥५२॥५६॥ दारं ॥

चउगइचउकसाया लिंगतिगं लेसछक्कमन्नाणं ।
मिच्छत्तमसिद्धत्तं असंजमो चोत्थभावम्मि ॥५३॥५७॥

गइचउक्कं, कसायचउक्कं, वेदतिगं, लेसछक्कं, अण्णाणं, मिच्छत्तं असिद्धत्तं, असंजमो चउत्थभावम्मि । एवं उदइयभावा एगवीसं ॥५३॥५७॥ दारं ॥

पंचमगम्मि य भावे जीवाभव्वत्तभव्वयाईणि ।
पंचण्ह वि भावाणं भेया एमेव तेवन्ना ॥५४॥५८॥

जीवत्तं, भव्वत्तं, अभव्वत्तं; एवं पारिणामिया भावा३ ॥ दारं ॥ सन्निवायस्स भेया तेवण्णं सव्वं भावाणं ॥५४॥५८॥ दारं ॥

उदइयखाओवसमियपरिणामेहिँ चउरो गइचउक्के ।
खइयजुएहिँ वि चउरो तदभावे उवसमजुएहिं ॥५५॥५९॥

उदयं १, खओवसमियं २, पारिणामियं ३; एवं तिगजोगो चउसु गईसु भंगो १। खाइयं१, ओदइयं २, खाओवसमियं ३, पारिणामियं ४; एवं चउक्कजोगो चउगईसु भंगो २। अहवा उवसमियं१, उदयं२, खाओवसमियं३, पारिणामियं४; एवं चउक्कजोगो चउसु गईसु भंगो ३ ॥५५॥५९॥

इक्विक्को उवसमसेढिसिद्धकेवलिसु एवमविरुद्धा ।
पन्नरस सन्निवाइअभेया वीसं असंभविणो ॥५६॥६०॥

उवसमियं १, (खाइअं २,) खाओवसमियं (३, ओदइअं)४, पारिणामियं ५, एवं पंचजोगो, उवसमसेढीए भंगेक्को मणुस्साणं ४। खाइयं १, पारिणामियं २; एवं दुगजोगो भंगेक्को य सिद्धाणं५। खाइयं१, (ओदइयं२,) पारिणामियं३, एवं तिगजोगे भंगेक्को केवलीणं६। एवं एए छभंगा संभविया। भंगतिगे चउसु गईसु भंगा बारस, उवसमसेढीभंगेक्को१, सिद्धभंगेक्को१, केवलीभंगेक्को१; एवं सान्निवाइयभावा पण्णरस। भंगा वीसं असंभविया॥ ते य इमे-उवसमियं खाइयं१, उवसमियं खाओवसमं२, उवसमियं ओदइयं३, उवसमियं पारिणामियं४, खाइयं खाओवसमियं५, खइयं ओदइयं ६, खाइयं पारिणामियं, सिद्धभंगो (१); खाओवसमियं ओदइयं ७, खाओवसमियं पारिणामियं ८, ओदइयं पारिणामियं ९; दुगजोगे नवभंगा असंभविया॥ उवसमियं खाइयं खाओवसमियं १, उवसमियं खाइअं ओदइयं २, उवसमियं खाइअं पारिणामियं ३, उवसमिय खाओवसमियं ओदइयं४, उवसमियं खाओवसमं, पारिणामियं ५, उवसमियं ओदइयं पारिणामियं ६, खाइयं खाओवसमं, ओदइयं ७, खाइयं खाओवसमं पारिणामियं ८, खाइयं ओदइयं पारिणामियं, केवलीभंगो सुद्धो (२); खाओवसमं ओदइयं पारिणामियं, गइचउक्कभंगो (३); एवं तिगजोगे भंगा अट्ठ असंभविया॥ उवसमियं खाइयं खाओवसमियं ओदइयं१, उवसमियं खाइयं खाओवसमियं पारिणामियं २, उवसमियं खाइयं ओदइयं पारिणामियं ३, उवसमियं खाओवसमियं ओदइयं पारिणामियं, गइचउक्कभंगो (४); खाइयं खाओवसमं ओदइयं पारिणामियं, गइचउक्कभंगो (५), चउक्कजोगे भंगा तिन्नि असंभविया॥ उवसमियं खाइयं खाओवसमियं ओदइयं पारिणामियं (६), उवसमसेढीभंगो॥ एवं भंगा २६। संभविया भंगा ६। असंभविया भंगा २०। एवं वीस असंभविया॥५६॥६०॥

दुगजोगो सिद्धाणं केवलिसंसारियाण तिगजोगो।
चउजोगजुगं चउसु वि गईसु मणुयाण पणजोगो॥५७॥६१॥

कंठ्या॥५७॥६१॥

मोहस्सेव उवसमो खाओवसमो चउण्ह घाईणं।
उदयक्खयपरिणामा अट्ठण्ह वि हुंति कम्माणं॥५८॥६२॥

मोहणीयस्स उवसमिओ भावो॥१॥ नाणावरणं, दंसणावरणं, मोहणीयं, अंतराइयं च; एए घाइकम्मा खाओवसमिए भावे। ओदइयं, खाइयं, पारिणामियं एए तिण्णि भावा अट्ठण्हं वि होंति कम्माणं॥५८॥६२॥

सम्माइचउसु तिगचउभावा चउपणुवसामगुवसंते।
चउ खीणाऽपुव्वे तिन्नि सेसगुणठाणगेगजिए॥५९॥६३॥

अविरयसम्मद्दिट्ठि देसविरयं पमत्तं अपमत्तं च चउसु वि खाओवसम-उदइय-पारिणामिय-भावा तिण्णि। अहवा उवसमिय-खाइआण एगयरे छूढे, चत्तारि भावा। "चउपणउवसामग"त्ति, अनियट्टिसुहुममंपराया उवसामगा, उवसंतमोहो उवसंतो, एएसिं भावा चत्तारि पुव्वुत्ता। अहवा पंच, तिन्नि पुव्वुत्ता, उवसमिय-खाइया खिप्पंति; एवं पंच। खीणमोहस्स भावा तिण्णि पुव्वुत्ता; खाइयं चउत्थं। अपुव्वकरणस्स चत्तारि पुव्वुत्ता। सजोगि-अजोगि-केवलीणं खाइय-ओदइय-पारिणामिया तिण्णि भावा। मिच्छसासणसम्मामिच्छस्स तिण्णि पुव्वुत्ता ॥५९॥६३॥

एएसु गुणट्ठाणगेसु पत्तेयं पत्तेयं उत्तरभावा भेया कस्स कित्तिया तं भण्णइ–

पण अंतराय अन्नाण तिण्णि अचक्खुचक्खु दस एग। मिच्छे साणे य हवंति मीसए अंतराय पण ॥१॥
नाणतिगदंसणतिगं मीसमं सम्मं च। बारस हवंति। एवं च अविरयम्मि वि नवरं तहिँ दंसणं सुद्धं ॥२॥
देसे देसव्विरई तेरसमा तह पमत्तअपमत्ते। मणपज्जवपक्खेवे चउदस अपुव्वकरणे य ॥३॥
वेयगसम्मेण विणा तेरस जा सुहुमसंपराओ त्ति। तेच्चिय उवसमखीणे चरित्तविरहेण बारस उ ॥४॥
खाओवसमिगभावाण कित्तिणा गुणपए पडुच्च कया ओदइयभावमिण्हि ते चेव पडुच्च दंसेमि ॥५॥
चउगइयाई इगवीस मिच्छि साणे य होंति वीसं च। मिच्छेण विणा, मिस्से इगुणीससनाणविरहेण ॥६॥
एमेव अविरयम्मी सुरनारयगइविओगओ देसे। सत्तरस होंति ते च्चिय तिरियगइअसंजमाभावा ॥७॥
पण्णरस पमत्तम्मी अपमत्ते आइलेसतिगविरहे। ते च्चिय बारस सुक्केगलेसओ दस अपुव्वम्मि ॥८॥
एवं अनियट्टिम्मि वि सुहुमे संजलणलोभमणुयगई। अंतिमलेसअसिद्धत्तभावओ जाण चउभावा ॥९॥
संजलणलोभविरहा उवसंतक्खीणकेवलीण तिगं लेसाभावा जाणसु अजोगिणो भावदुगमेव ॥१०॥
अविरयसम्मा उवसतु जाव उवसमिगखइयगा वा वि। अनियट्टी उवसंतो जाणसु उवसामिय चरणं ॥११॥
खीणम्मि खइयसम्मं चरणं च दुगं पि जाण समकालं। नव नव खइगा भावा जाण सजोगे अजोगे य ॥१२॥
जीवत्तमभव्वत्तं भव्वत्तं वि हु मुणाहि मिच्छम्मि। साणाई खीणंते दोण्णि अभव्वत्तवज्जाओ ॥१३॥
सज्जोगि अजोगिम्मी जीवत्तं चेव मिच्छमाईणं। ससभावमीलणाओ भावे पुण सन्निवायम्मि ॥१४॥

तिसु ठाणगेसु भावा चत्तारि। अहवा पंच। कहं ? ओदइयो खाओवसमियं पारिणामिओ, एवं तिण्णि भावा ठप्पा। खाइयं सम्मत्तं, एए चत्तारि भावा खीणमोहस्स १। भावा ३, खाइयं सम्मत्तं, उवसमियं चरित्तं; एए पंच भावा उवसंतस्स सेढीए पडंतस्स वा। भंग २। भावा ३, उवसमियं सम्मत्तं, खाइयं चरणं; एस भंगो असंभविओ ३। भावा तिन्नि, उवसमियं सम्मत्तं, उवसमियं चरणं; एए चत्तारि भावा उवसंतस्स सेढीए पडंतस्स वा। एए चत्तारि भंगा सम्माइ-चउसु गाहा-ऽणुसारेण भणियव्वा॥ [1]"कम्माइ" आइसद्दाओ अजीवट्ठाणाइ भणिज्जंति।

धम्माधम्मनभा तिन्नि दव्वदेसप्पएसओ तिविहा।
गइठाणावगाहगुणा अरूविणो कालसमओ य ॥६०॥६४॥

---

१ प्रथमगाथासत्कोऽयं प्रतिकः।

धम्मत्थिकायदव्वे १, धम्मत्थिकायदव्वदेसे २, धम्मत्थिकायदव्वपएसा ३ । अधम्मत्थिकायदव्वे १, अधम्मत्थिकायदव्वदेसे २, अधम्मत्थिकायदव्वपएसा ३ । आगासत्थिकायदव्वे १, आगासत्थिकायदव्वदेसे २, आगासत्थिकायदव्वपएसा ३ । धम्मत्थिकाए गइगुणो, अधम्मत्थिकाए ठाणगुणे, आगासत्थिकाए अवगाहगुणे । अरूविया एए नव अजीवट्ठाणा, कालसमओ वि अरूवी, एवं दस ॥६०॥६४॥

सो वत्तणाइलिंगो रूविअजीवा उ हुंति मे चउरो ।
खंधा देसपएसा केवलअणवो य ते य पुणो ॥६१॥६५॥

कालो वत्तणाइगुणो । रूविणो अजीवा वि चत्तारि । ते य इमे—खंधा, खंधदेसा, खंधपएसा, एगे परमाणू ॥६१॥६५॥

वण्णाइगुणा बंधाइकारणं इय अजीवचउदसगं ।
सव्वे वि हु परिणामे भावे खंधा उदइए वि ॥६२॥६६॥

वण्णाइगुणा=वण्णगंधरसफासपरिणया चत्तारि वि दव्वा बंधाइकारणं । कहं ? भण्णइ—कम्मजोगत्ताए परिणया खंधा जीवा बंधति बंधे; उदये उदीरणाए य इंति; सत्ताए पट्ठ चिंतिः एवं बंधाइकारणं । एए चउदस वि अजीवट्ठाणा कम्मि य भावे वट्टंति?, भण्णइ—सव्वे वि हु पारिणामिए भावे; खंधा उदइए वि । खंधा उदए कहं ?, भण्णइ—खंधस्स अद्धस्स तिभागस्स वा चउत्थभागस्स वा देसविवक्खा । पएसा निव्विभागा भागा तस्सेव । न विभिन्ना देसपएसविवक्खा । कोहोदए जीवस्स कम्मखंधा उदए । एगे परमाणू न कम्मत्ताए परिणमइ । एवं खंधा ओदइए भावे न सेसा ॥६२॥६६॥ एव पगइबंधो पसंगागउ त्ति भणिओ ॥

इयाणिं ठीबंधो । सो दुविहो, मूलपगइट्ठीबंधो य उत्तरपगइट्ठिइबंधो य । एक्केक्को य दुविहो उक्कोसट्ठीबंधो जहण्णट्ठीबंधो य । मूलपयडीट्ठीबंधो भण्णइ—

मोहे कोडाकोडीउ सत्तरी वीस नामगोयाणं ।
तीसयराण चउण्हं तित्तीसयराइँ आउस्स ॥६३॥६७॥

मोहणीयस्स सत्तरिकोडाकोडी उक्कोसो ठीइबंधो । नाणावरणीयदंसणावरणीयअंतरायाण य वेयणीयस्स य तीसं कोडाकोडी उक्कोसो ठीइबंधो । नामगोयाण य वीसं कोडाकोडी उक्कोसो ट्ठीइबंधो । आउयस्स तेत्तीसं सागरोवमाइ उक्कोसो ठीइबंधो ॥६३॥६७॥

मोत्तुमकसाई हस्सा ठिइ वेयणियस्स बारसमुहुत्ता ।
अट्ठट्ठ नामगोयाण सेसयाणं मुहुत्तंतो ॥६४॥६८॥

अकसाई=उवसंतमोहा सजोगकेवली, एए मोत्तुं, जओ एसिं इरियावहपच्चओ सामइगो ठिइबंधो, सेसाणं संपरायगो वि, तओ अकसाई मुत्तूण वेयणीयस्स बारस मुहुत्ताः नामस्स य

गोयस्स य अट्ठट्ठ मुहुत्ता। सेसाणं पंचण्हं अंतोमुहुत्तं। जहण्णट्ठिइबंधो ॥६४॥६८॥

इयाणिं उत्तरपयडीणं भन्नइ—

तीसं कोडाकोडी असायआवरणअंतरायाणं ।
मिच्छे सत्तरिमित्थीमणुदुगसायाण पन्नरस ॥६५॥६९॥

असायवेयणीयस्स नाणावरणपणगस्स दंसणावरणनवगस्स अंतरायपणगस्स य तीसं कोडाकोडी उ उक्कोसो ठीइबंधो। मिच्छादंसणस्स सत्तरिकोडाकोडी उक्कोसो ठीइबंधो। इत्थीवेयस्स मणुयदुगस्स सायावेयणीयस्स पण्णरसकोडाकोडी उक्कोसो ठीईबंधो ॥६५॥६९॥

संघयणे संठाणे पढमे दस उवरिमेसु दुगवुड्ढी ।
चालीसकसाएसुं अट्ठारस विगलसुहुमतिगे ॥६६॥७०॥

वज्जरिसभनाराय—समचउरंसस्स य कोडाकोडी दस । वज्जनाराय-नग्गोहस्स य कोडाकोडी बारस। नाराचसंघयण-साइसंठाणस्स य कोडाकोडी चउदस। अद्धनारायसंघयण-खुज्जसंठाणस्स य कोडाकोडी सोलस, खीलियसंघयण-वामणसंठाण-सुहुमतिग-विगलतिगाणं कोडाकोडी अट्ठारस उक्कोसो ठीइबंधो। कसायसोलसगे कोडाकोडीओ चालीसं ॥६६॥७०॥

दस दस सुक्किलमहुराण सुरभिनिग्धुण्हमिउलहूणं च ।
अड्ढाइज्जपवुड्ढा ते हालिद्दविलाईणं ॥६७॥७१॥

सुक्किलवण्ण-महुररस सुरभिगंध-निद्धफास-उण्हफास-मउयफास-लहुयफासाण य दस कोडाकोडी उक्कोसो ठीईबंधो। हालिद्दवन्न-अंबिलरसस्स कोडाकोडी सड्ढबारस उक्कोसो ठिईबंधो। लोहियवण्ण—कसायरसस्स कोडाकोडी पण्णरस। नीलवण्ण-कडुयरसस्स कोडाकोडी सड्ढसत्तरस ॥६७॥७१॥।

हासरइपुरिसउच्चे सुभखगइथिराइछक्कदेवदुगे ।
दस सेसाणं वीसा एवइयाबाहवाससया ॥६८॥७२॥

हासरइ-पुरिसवेय-उच्चागोय-सुभखगइ-थिराइछक्क-देवदुगस्स य दस कोडाकोडी उक्कोसो ठीवंधो। एए तियासी पगईओ। सेसाणं वीसकोडाकोडी उक्कोसो ठीइबंधो। ता य इमा—तिरियदुगं किण्हवन्नं तित्तरसं दुग्गंध गुरुफासं कक्कसफासं सीयफासं रुक्खसफासं अतित्थपत्तेय-सत्तगं तेजइगसत्तगं ओरालियसत्तगं तसाइचउक्कं अथिराइछक्कं थावरनामं एगिंदियजाई पंचिंदियजाई हुंडसंठाणं छेवट्ठसंघयणं भयं दुगंछा अरई सोगा य नीयगोयं नपुंसगवेयं असुभखगई वेउव्वियसत्तगं निरयदुगं य। एए एगसट्ठिपयडीओ। जस्स जेत्तिया सागरोवम-कोडाकोडीओ उक्कोसा ठी, तस्स तेत्तिया वाससया अबाहा ॥६८॥७२॥

अंतोकोडाकोडी तित्थाहाराण जिट्ठठिइबंधो ।
अंतमुहुत्तमबाहा इयरो संखिज्जगुणहीणो ॥६९॥७३॥

तित्थयरनामस्स आहारगसत्तगस्स य, अंतोकोडाकोडी उक्कोसो ठीइबंधो । अंतमुहुत्तं अबाहा । इयरा जहण्णा सा संखेज्जगुणहीणा । सा वि अंतोकोडाकोडी । तित्थयरनामस्स कहमंतोमुहुत्तमेत्तमबाहा ?, जओ–"बज्झइ तं तु भगवओ तइअभवोसक्कइत्ताणं" ति । भण्णइ– तित्थयरनामस्स पओगओ उहण्णस्स आणेसरियाइलद्धीओ अण्णजीवेहिंतो विसेसियतराओ संभवंति । तेणेवं होइत्ति संभावयामि ॥६९॥७३॥

तेत्तीसुदही सुरनारयाउ नरतिरियाउ पल्लतिगं ।
निरुवक्कमाण छ मासा अबाह सेसाण भवतंसो ॥७०॥७४॥

देवाउयस्स निरयाउयस्स य तेत्तीसं सागरोवमाइं उक्कोसो ठिईबंधो । निरुवक्कमाणं परभवाउयं बद्धं छहिं मासेहिं उदयं एइ । एवइया अबाहा । सेसाणं मणुयतिरियाणं संखेज्जवासाउयाणं भवतंसो भवस्स तिभागो उक्कोसिया अबाहा ॥७०॥७४॥

तह पुव्वकोडिपरओ इगविगलिंदी न बंधए आउं ।
आउचउ परमबंधो पल्लासंखंसममणोसु ॥७१॥७५॥

एगिंदिया विगलिंदिया परभवाउयं पुव्वकोडि उक्कोसं ठिइं बंधतिः न परओ । तिरियमणुयाउमेव बंधति त्ति काउं । असण्णिपंचिंदियस्स आउ(चउ)क्के वि पलिओवमस्सासंखेज्जभागं उक्कोसो ठिईबंधो । एवं तियासी ८३ एगसट्ठि ६१ आहारसत्तगं ७ तित्थयरनामं १ आउचउक्कं च । एवं छप्पण्णपयडिसयस्स ठिईबंधो भणिओ । न य बंधे सम्ममीसाइं ॥७१॥७५॥ उक्कोसठ्ठीईबंधो समत्तो ॥ इयाणिं जहण्णठ्ठीबंधो भण्णइ–

दंसणचउविग्घावरणलोहसंजलणहस्सठिइबंधो ।
अंतमुहुत्तं ते अट्ठ जसुच्चे बारस य साए ॥७२॥७६॥

दंसणावरणचउक्कं अंतरायपणगं नाणावरणपणगं लोभसंजलणस्स य अंतोमुहुत्तं जहण्णट्ठीईबंधो । जसकित्तीउच्चगोयस्स य अट्ठ मुहुत्ता जहण्णट्ठीईबंधो । सायावेयणियस्स बारस मुहुत्ता ॥७२॥७६॥

दो मासा अद्धद्धं संजलणतिगे पुमट्ठ वरिसाणि ।
सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिईअ जं लद्धं ॥७३॥७७॥

कोहसंजलणाए दो मासा, माणसंजलणाए एगो मासो, मायासंजलणाए पण्णरसदिणाणि, पुरिसवेयस्स अट्ठवरिसाणि जहण्णट्ठीईबंधो । "सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिईअ जं लद्धं"

कहं ? भण्णइ-मिच्छत्तस्स सत्तरिकोडाकोडी उक्कोसा ठीई तीए सत्तरीए भागो हरिज्जइ । लद्धा सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा । कसायाणं चालीसं कोडाकोडी उउक्कोसो ठीवंधो; सत्तरीए भागे पाडिए लद्धा चत्तारि सत्तभागा सागरोवमस्स । नाणावरण-दंसणावरण-वेयणियाणं अंतरायस्स य तीसं कोडाकोडी उक्कोसो ठीवंधो । तीसे सत्तरीए भागे पाडिए लद्धा तिन्नि सत्तभागा सागरोवमस्स । नामगोयाण य वीसं कोडाकोडी उक्कोसो ठीईबंधो वीसाए सत्तरीए भागे पाडिए लद्धा दुण्णि सत्तभागा सागरस्स ।।७३।।७७।।

एसेगिंदियजेट्ठो पलियासंखंसहीणलहुबंधो ।
पणुवीसं पन्नासा सयं सहस्सं य गुणकारो ।।७४।।७८।।

एगिंदियस्स उक्कोसगो ठिईबंधो सव्वकम्माणं जहण्णगो पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगो । एयं सामन्नेण जहण्णबंधो ।

एवं मूलपयडीणं । उत्तरपयडीणं य एयाणुसारेण । जहा मणुयदुगस्स पण्णरससागरोवमकोडाकोडीओ, उक्कोसा ठीई । जहन्ना तस्सेव सत्तरिभागे पाडिए लद्धं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं । एवं सागरोवमस्स सहस्रं । एवं सव्वेसिं अणुसारो वि भइयव्वो । एवं एगिंदियस्स ठिईबंधो । एयाउ बेइंदियस्स पणवीसगुणो, एगिंदियाउ तेइंदियस्स पन्नासगुणो, एगिंदियाउ चउरिंदियस्स सयगुणो, एगिंदियाओ असण्णिपंचिंदियस्स सहस्सगुणो ।।७४।।७८।।

कमसो विगलअसण्णीण पल्लसंखंसऊणओ डहरो ।
सुरनिरयाउ समा दस सहस्स सेसाउ खुड्डभवं ।।७५।।७९।।

पलिओवमस्स संखेयभागूणो जहन्नो चउण्हं पि । देवाउयनरयाउयस्स य जहन्नट्ठीवंधो दसवरिससहस्साणि । "सेसाउ" मणुयाउयं तिरियाउयं जहण्णट्ठीबंधो खुड्डगभवं ।।७५।।७९।।

सहसगुणेगिंदिठिई विउव्विछक्कके जओ असन्निसु तं ।
केसिंचि सुराउसमं तित्थं आहारगंतमुहू ।।७६।।८०।।

वेउव्वियछगस्स एगिंदियाओ सहस्सगुणा बन्धइ । जओ असन्निपंचिंदियस्स जहन्नेण वि वेउव्वियछक्कगस्स बंधो; न एगिंदिय-विगलिंदियाणं । केसिंचि आयरियाणं मएण तित्थयरनामस्स दसवाससहस्साइं जहण्णो ठीईबंधो; आहारगस्स अंतमुहुत्तं ।।७६।।८०।।

भिन्नमुहुत्तमबाहा सव्वासिं सव्वहिं डहरबंधे ।
आउसु जिट्ठे वि जओ संखेप्पद्धा भवे तेसुं ।।७७।।८१।।

अंतोमुहुत्तं आबाहा सव्वासिं पयडीणं सव्वहिं जहण्णठीबंधे । आउयस्स विवरीयं; जओ जेट्ठे वि जहण्णा अबाहा, जहण्णे वि उक्कोसा अबाहा; एत्थ चउभंगो ।।७७।।८

खुड्डभवा साहीया सत्तरस हवंति एगपाणुम्मि ।
पाणू एगमुहुत्ते तिसत्तरा सत्ततीससया ॥७८॥८२॥

पाणू=ऊसासनीसासो । तत्थ एगे ऊसासे खुड्डभवा सत्तरसा साहिया, केत्तिएण १. आवलियाए चउणवईए साहियाए । "पाणू" एगमुहुत्ते सत्ततीससया तिहत्तरा पाणूणं भवंति ॥७८॥८२॥

पणसट्ठिसहस्स पणसय छत्तीसा इगमुहुत्त खुड्डभवा ।
दोय सया छप्पन्ना आवलियाएगखुड्डभवे ॥७९॥८३॥

मुहुत्ते दो नालिआओ । तत्थ खुड्डभवग्गहणा पणसट्ठिसहस्स पंचसया छत्तीसा भवंति । एगम्मि खुड्डभवग्गहणे आउमाणं दोसया छप्पण्णाए आवलियाणं । पणसट्ठीसहस्साणं पंचण्हं सयाणं छत्तीसाणं खुड्डभवग्गहणेणं । दोहिं सएहिं छप्पण्णेहिं गुणित्तु आवलियाओ कीरंति । पुणो सत्ततीसाए सएहिं तिहत्तरेहिं ऊसासाणं भागो हीरइ । लद्धाओ चउणवइआवलियाओ साहियाओ । एवं सत्तरस खुड्डभवा साहिया ऊसासे हवंति ॥७९॥८३॥

अयरंतकोडिकोडीओ अहिगो सासणाइसु न बंधो ।
हीणो ण अपुव्वंतेसु णेव य अभव्वसन्निम्मि ॥८०॥८४॥

आसायणाइ जाव अपुव्वकरणो अंतोकोडाकोडिट्ठीईबंधो तारतम्मेण नाहिगो न हीणो अपुव्वंतेसु । अभव्वसण्णिस्स अंतोकोडाकोडी ठीबंधो जहण्णो वि न हीणयरो ॥८०॥८४॥

अमणुक्कोसाओ विरउक्कोसो देसविरयहस्सियरो ।
सम्मचउसन्निचउरो ठिइबंधाणुकमसंखगुणा ॥८१॥८५॥

पसंगागयं सव्वजीवट्ठाणेसु सव्वासिं जहण्णुक्कोसट्ठिईणं अप्पाबहुगं भण्णइ । तत्थ सव्वत्थोवो संजयस्स जहण्णगो ठ्ठितिबंधो १ । (एगिंदिबायरपज्जत्तगस्स जहण्णओ ठिइबंधो असंखेज्जगुणो २ । सुहमस्स पज्जत्तगस्स जहण्णओ विसे० ३ ।) एगिंदियबादरस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णो वि विसेसा० ४ । सुहुमस्स प० जह० विसे० ५ । तस्सेवुक्कस्सट्ठितीबंधो विसे० ६ । बादरस्स अपज्जत्तगस्स उक्को० विसे० ७ । सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्क० विसे० ८ । बादरस्स पज्जत्तगस्स उक्क० विसे० ९ । ततो बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स जह० संखेज्जगु० १० । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जह० विसेसा० ११ । तस्सेवुक्कस्स विसे० १२ । बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्को० विसे० १३ । तेइंदियस्स पज्जगस्स जहण्णो संखेज्जगुणो १४ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहण्णगो विसेसाहिओ १५ । तस्सेव उक्कोसो विसेसाहिओ १६ । तेइंदियपज्जत्तगस्स उक्क० विसेसा० १७ । चउरिंदियस्स पज्जत्तस्स जहण्णो संखेज्जगुणो १८ । अपज्जत्तगस्स जह० विसेसाहिओ १९ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसो विसेसाहिओ २० । चउरिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्क० विसे० २१ ।

असण्णिपंचेंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो २२ । तस्सेव अप० जहं० वसेसो० २३ । तस्सेवुक्कस्सगो विसे० २४ । असण्णिपंचेंदियस्स पज्जत्तगस्स (उक्क०) ठिईबंधो विसेसाहिओ २५ । ततो संजयस्स उक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो २६ । "विरए देसअड्ढुगे सम्मचउक्के य संखगुणे" त्ति, ततो देसविरयस्स जहण्णओ ठिईबंधो संखेज्जगुणो २७ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो २८ । "देसजतिदुगे" त्ति, देसविरयस्स जहण्णुक्कोस्स त्ति भणियं होइ । "सम्मचक्के य" त्ति, अस्संजयसम्मदिट्ठी । पज्जत्तापज्जत्तयाणं जहण्णुक्कोसगं ति भणियं होति । देसविरयस्स उक्कोससाओ ठितिबंधाओ असंजयसम्मादिट्ठिस्सपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो २९। तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो ३० । तस्सेवुक्कस्सओ ठितिबं० संखेज्जगुणो ३१। असंजयसम्मादिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो ३२। "सण्णीपज्जत्तियरेसु" त्ति । अस्संजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाओ ठितिबंधाओ सण्णिपंचिंदियपज्जत्तगस्स जहण्णओ ठितीबंधो० (संखगुणो) ३३ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जह० संखेज्ज० ३४ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो ३५। "अब्भितरओ उ कोडाकोडीए" त्ति । एवं संजयस्स उक्कोसाओ आढत्तं कोडाकोडीओ अब्भंतरओ भवंति । "उक्कसो सण्णिस्स होइ पज्जत्तगस्सेव" त्ति पुव्वं सामण्णेण उक्कोसगो भणिओ, सो सण्णियस्स पंचिंदियस्स पज्जगस्स मिच्छादिट्ठिस्स चेव भवइ ३६।। ।।८१।।८५।। **ठितिबंधठाणपरूवणा भणिया ।।**

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसं सन्निणो कुणंति ठिई ।
एगिंदिया जहन्नं असन्निखवगा य काणं वि ।।८२।।८६।।

सव्वासिं पयडीणं उक्कोसो ठिइबंधो सण्णिस्स न सेसाणं । उक्तं च-"उक्कसो सण्णिस्स होइ पज्जत्तगस्सेव" । "**एगिंदिया जहण्णं**" जहण्णं=जहण्णठीबंधं एगिंदियाइ नवोत्तरपयडिसयस्स । असण्णिपंचिंदिया वेउव्वियएक्कारसगस्स जहण्णट्ठिइबन्धगा । खवगा बावीसाए पयडीणं जहण्णट्ठीबन्धगा । चकारात् अपुव्वकरणो आहारसत्तगस्स तित्थयरनामस्स य; तिरियमणुया आउयचउक्कस्स जहण्णट्ठीबन्धगा । उक्तं च-

"आहारगतित्थयरं नियट्टि अनियट्टि पुरिससञ्जलणा । बन्धइ सुहुमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं ।।१।।
छण्हमसण्णी कुणइ जहण्णं ठीमाउगाणमण्णयरो । सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो ।।२।।"

सव्वाणुक्कोसठिई असुभा सा जमइसंकिलेसेणं । ।।८२।।८३।।
इयरा उ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मोत्तुं ।।८३।।८७।।

सव्वाणं वि पयडीणं उक्कोसा ठीई असुभा । जओ सव्वसंकिलिट्ठो मिच्छदिट्ठी आहारसत्तगतित्थयरनाम-देवाउय-मणुयाउय-तिरियाउयवज्जाणं सव्वपयडीणं उक्कोसंठिइं बंधइ । नवरं सुभपयडीणं तप्पाउग्गसंकिलिट्ठो । सा असुभा असुभरुक्खफलविवागवत् असुभपयडीणं सुभपयडीणं बाहुयकमलोवमानीरसा तओ असुभा । तित्थयरनामस्स अविरयसम्मदिट्ठी आहारसत्तगस्स

अपमत्तसंजओ तप्पाओगसंकिलिट्ठो उक्कोसं ठीइं बंधइ । संकिलेसो=कसाओदओ सो असुभो । देवाउस्स विसुद्धो उक्कोसं ठीइं बंधइ। जओ सुहपरिणामेण देवाउयस्स बंधो। मणुयतिरिया-उयाण वि विसोहीए उक्कोसो ठीबंधो जओ तप्पाओगविसुद्धा बंधइ । इयरा जहण्णं विसुद्धो सव्व-पयडीणं ठीइं बंधइ। आउयविवरीयं आउगाणं तप्पाओगसंकिलिट्ठो जहण्णट्ठीं बंधइ ॥८३॥८७॥

पसंगागयं भण्णइ—

सुहुमनिगोयाइखणो जोगो थोवो तओ असंखगुणो ।
बायरबियतियचउमणासण्णिअपज्जत्तगजहन्नो ॥८४॥८८॥

साहारणस्स सुहुमस्स लद्धीए अपज्जत्तगस्स पढमसमए वट्टमाणस्स अप्पवीरियलद्धिस्स जहण्णओ जोगो सव्वत्थोवो। "बायरबिगतिगचउमणअसण्णिअपज्जत्तगजहण्णो" त्ति ततो बादरएगिंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । बेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्स असन्निपंचिंदियस्स सन्नि-पंचेंदियाणं पज्जत्तअपज्जत्तगाणं जहण्णगो जोगो कमसो असंखेज्जगुणो ॥८४॥८८॥

[1]पढमदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो अ कमा ।
असमत्ततसुक्कोसो पज्जत्तजहन्नजिट्ठो य ॥८५॥८९॥

आदिदुगुक्कोसो त्ति, आदिदुगं=सुहुमबायरएगिंदिया अपज्जत्तगा, तेसिं उक्कोसो । ततो परिवाडीए असंखेज्जगुणो । सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । बादरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो अ। "सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कम" त्ति, तेसिं चेव सुहुमबायराणं पज्जत्तगाणं करणं पडुच्च जहण्णुक्कोसगा जोगा कमेण असंखेज्जगुणा । तओ सुहुमस्स य पज्जत्तगस्स जहण्णजोगो असंखेज्जगुणो। बादरस्स पज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । ततो सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसगो असंखेज्जगुणो। बादरपज्जत्तउक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो। "उक्कस्सजहण्णियरो असमत्तियरे असं[खेज्ज](ख)गुणो" त्ति, 'उक्कोसगं' ति बेइंदियाईणं अपज्जत्तगाणं उक्कोसो, "जहन्नियरो" त्ति तेसिं चेव पज्जत्तग जहण्णगो "इयरो" उक्कोसो "असमत्तियरेसु" त्ति अपज्जत्तगपज्जत्तगेसु असंखेज्जगुणो नेयव्वो । बादरएगिंदिय-त्ति पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाउ बेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सगो जोगो असंखेज्जगुणो । तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगोऽसंखेज्जगुणो। चउरिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोस्सगो जोगो असंखेज्ज० । असण्णिपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । सन्निपंचिंदियअपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगो असंखगुणो । एते सव्वे लद्धीए पज्जत्तगा गहिया ।

---

१ व्याख्यानं पुनः "आदिदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कमा। उक्कस्सजहण्णियरो असमत्ति-यरे असंखगुणो ॥८५॥८९॥' इति गाथानुसारेण कृतम् ।

असण्णिपंचेंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो २२ । तस्सेव अप० जहं० वसेसो० २३ । तस्सेवुक्कस्सगो विसे० २४ । असण्णिपंचेंदियस्स पज्जत्तगस्स (उक्क०) ठिईबंधो विसेसाहिओ २५ । ततो संजयस्स उक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो २६ । "विरए देसजइदुगे सम्मचउक्के य संखगुणे" त्ति, ततो देसविरयस्स जहण्णओ ठिईबंधो संखेज्जगुणो २७ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो २८ । "देसजतिदुगे" त्ति, देसविरयस्स जहण्णुकोस्स त्ति भणियं होइ । "सम्मचक्के य" त्ति, अस्संजयसम्मदिट्ठी । पज्जत्तापज्जत्तयाणं जहण्णुक्कोसगं ति भणियं होति । देसविरयस्स उक्कोस्साओ ठितिबंधाओ असंजयसम्मादिट्ठिस्सपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो २९ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो ३० । तस्सेवुक्कस्सओ ठितिबं० संखेज्जगुणो ३१ । असंजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो ३२ । 'सण्णीपज्जत्तियरेसु' त्ति । अस्संजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाओ ठितिबंधाओ सण्णिपंचिंदियपज्जत्तगस्स जहण्णओ ठितीबंधो० (संखगुणो) ३३ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जह० संखेज्ज० ३४ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो ३५ । "अब्भिंतरओ उ कोडाकोडीए" त्ति । एवं संजयस्स उक्कोसाओ आढत्तं कोडाकोडीओ अब्भंतरओ भवंति । "उक्कसो सण्णिस्स होइ पज्जत्तगस्सेव" त्ति पुव्वं सामण्णेण उक्कोसगो भणिओ, सो सण्णियस्स पंचिंदियस्स पज्जगस्स मिच्छादिट्ठिस्स चेव भवइ ३६ ।। ।।८१।।८५।। **ठितिबंधठाणपरूवणा भणिया ॥**

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसं सन्निणो कुणंति ठिई ।
एगिंदिया जहन्नं असन्निखवगा य काणं वि ॥८२॥८६॥

सव्वासिं पयडीणं उक्कोसो ठिइबंधो सण्णिस्स; न सेसाणं । उक्तं च-"उक्कसो सण्णिस्स होइ पज्जत्तगस्सेव" । **"एगिंदिया जहण्णं"** जहण्णं=जहण्णगठीबंधं एगिंदियाइ नवोत्तरपयडिसयस्स । असण्णिपंचिंदिया वेउव्वियएक्कारसगस्स जहण्णठिइबन्धगा । खवगा बावीसाए पयडीणं जहण्णट्ठीबन्धगा । चकारात् अपुव्वकरणो आहारसत्तगस्स तित्थयरनामस्स य; तिरियमणुया आउयचउक्कस्स जहण्णट्ठीबन्धगा । उक्तं च–

"आहारगतित्थयरं नियट्टि अनियट्टि पुरिससंजलणा । बन्धइ सुहुमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं ॥१॥
छण्हमसण्णी कुणइ जहण्णं-ठीमाउगाणमण्णयरो । सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो ॥२॥" ॥८२॥८३॥

सव्वाणुक्कोसठिई असुभा सा जमइसंकिलेसेणं ।
इयरा उ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मोत्तुं ॥८३॥८७॥

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसा ठीई असुभा । जओ सव्वसंकिलिट्ठो मिच्छदिट्ठी आहारसत्तगतित्थयरनाम-देवाउय-मणुयाउय-तिरियाउयवज्जाणं सव्वपयडीणं उक्कोसंठिइं बंधइ । नवरं सुभपयडीणं तप्पाउगसंकिलिट्ठो । सा असुभा असुभरुक्खफलविवागवत् असुभपयडीणं सुभपयडीणं वालुयकवलोवमानीरसा तओ असुभा । तित्थयरनामस्स अविरयसम्मदिट्ठी आहारसत्तगस्स

अपमत्तसंजओ तप्पाओगसंकिलिट्ठो उक्कोसं ठीइं बंधइ । संकिलेसो=कसाओदओ सो असुभो । देवाउस्स विसुद्धो उक्कोसं ठीइं बंधइ। जओ सुहपरिणामेण देवाउयस्स बंधो। मणुयतिरिया- उयाण वि विसोहीए उक्कोसो ठीबंधो जओ तप्पाओगविसुद्धा बंधइ । इयरा जहण्णं विसुद्धो सव्व- पयडीणं ठीइं बंधइ। आउयविवरीयं आउगाणं तप्पाओगसंकिलिट्ठो जहण्णट्ठीं बंधइ ॥८३॥८७॥

पसंगागयं भण्णइ—

सुहुमनिगोयाइखणे जोगो थोवो तओ असंखगुणो ।
बायरबियतियचउमणसण्णिअपज्जत्तगजहन्नो ॥८४॥८८॥

साहारणस्स सुहुमस्स लद्धीए अपज्जत्तगस्स पढमसमए वट्टमाणस्स अप्पवीरियलद्धिस्स जहण्णओ जोगो सव्वत्थोवो। "बायरबिगतिगचउमणअसण्णिअपज्जत्तगजहण्णो" त्ति ततो बादरएगिंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्स असन्निपंचिंदियस्स सन्नि- पंचेंदियाणं पज्जत्तअपज्जत्तगाणं जहन्नगो जोगो कमसो असंखेज्जगुणो ॥८४॥८८॥

[1]पढमदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो अ कमा।
असमत्ततसुक्कोसो पज्जत्तजहन्नजिट्ठो य ॥८५॥८९॥

आदिदुगुक्कोसो त्ति, आदिदुगं=सुहुमबायरएगिंदिया अपज्जत्तगा, तेसिं उक्कोसो । ततो परिवाडीए असंखेज्जगुणो । सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । बादरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो अ। "सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कम" त्ति, तेसिं चेव सुहुमबायराणं पज्जत्तगाणं करणं पडुच्च जहण्णुक्कोसगा जोगा कमेण असंखेज्जगुणा । तओ सुहुमस्स य पज्जत्तगस्स जहण्णजोगो असंखेज्जगुणो। बादरस्स पज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । ततो सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसगो असंखेज्जगुणो। बादरपज्जत्तउक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो। "उक्कस्सजहण्णियरो असमत्तियरे असं[खेज्ज](ख)गुणो" त्ति, 'उक्कोसगं' ति बेइंदियाईणं अपज्जत्तगाणं उक्कोसो, "जहन्नियरो" त्ति तेसिं चेव पज्जत्तग जहन्नगो "इयरो" उक्कोसो "असमत्तियरेसु" त्ति अपज्जत्तगपज्जत्तगेसु असंखेज्जगुणो नेयव्वो । बादरएगिंदिय- त्ति पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाउ बेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सगो जोगो असंखेज्जगुणो । तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगोऽसंखेज्जगुणो। चउरिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोस्सगो जोगो असंखेज्ज० । असण्णिपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । सन्निपंचिंदियअपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगो असंखगुणो । एते सव्वे लद्धीए पज्जत्तगा गहिया ।

---

१ व्याख्यानं पुनः "आदिदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कमा। उक्कस्सजहण्णियरो असमत्तियरे असंखगुणो ॥८४॥८९॥' इति गाथानुसारेण कृतम् ।

असण्णिपंचेंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो २२ । तस्सेव अप० जहं० वसेसो० २३ । तस्सेवुक्कस्सगो विसे० २४ । असण्णिपंचेंदियस्स पज्जत्तगस्स (उक्क०) ठिईबंधो विसेसाहिओ २५ । ततो संजयस्स उक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो २६ । "विरए देसअइदुगे सम्मचउक्के य संखगुणे" त्ति, ततो देसविरयस्स जहण्णओ ठिईबंधो संखेज्जगुणो २७ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो २८ । "देसजतिदुगे" त्ति, देसविरयस्स जहण्णुक्कोस्स त्ति भणियं होइ । "सम्मचक्के य" त्ति, अस्संजयसम्मदिट्ठी । पज्जत्तापज्जत्तयाणं जहण्णुक्कोसगं ति भणियं होति । देसविरयस्स उक्कोस्साओ ठितिबंधाओ असंजयसम्मादिट्ठिस्सपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो २९ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जहं० ठिति० संखेज्जगुणो ३० । तस्सेवुक्कस्सओ ठितिबं० संखेज्जगुणो ३१ । असंजयसम्मादिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो ३२ । "सण्णीपज्जत्तियरेसु" त्ति । अस्संजयसम्मदिट्ठिस्स पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाओ ठितिबंधाओ सण्णिपंचिंदियपज्जत्तगस्स जहण्णओ ठितीबंधो० (संखगुणो) ३३ । तस्सेव अपज्जत्तगस्स जह० संखेज्ज० ३४ । तस्सेवुक्कस्सगो ठितिबंधो संखेज्जगुणो ३५ । "अब्भितरओ उ कोडाकोडीए" त्ति । एवं संजयस्स उक्कोसाओ आढत्तं कोडाकोडीओ अब्भंतरओ भवंति । "उक्कसो सण्णिस्स होइ पज्जत्तगस्सेव" त्ति पुव्वं सामण्णेण उक्कोसगो भणिओ, सो सण्णियस्स पंचिंदियस्स पज्जगस्स मिच्छादिट्ठिस्स चेव भवइ ३६ ॥ ॥८१॥८५॥ ठितिबंधठाणपरूवणा भणिया ॥

सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसं सन्निणो कुणंति ठिई ।
एगिंदिया जहन्नं असन्निखवगा य काणं वि ॥८२॥८६॥

सव्वासिं पयडीणं उक्कोसो ठिइबंधो सण्णिस्स न सेसाणं । उक्तं च-"उक्कसो सण्णिस्स होइ पज्जत्तगस्सेव" । "एगिंदिया जहण्णं" जहण्णं=जहण्णगठीबंधं एगिंदियाइ नवोत्तरपयडिसयस्स । असण्णिपंचिंदिया वेउव्वियएक्कारसगस्स जहण्णट्ठिइबन्धगा । खवगा बावीसाए पयडीणं जहण्णट्ठीबन्धगा । चकारात् अपुव्वकरणो आहारसत्तगस्स तित्थयरनामस्स य; तिरियमणुया आउयचउक्कस्स जहण्णट्ठीबन्धगा । उक्तं च-

"आहारगतित्थयरं नियट्टि अनियट्टि पुरिससंजलणा । बन्धइ सुहुमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं ॥१॥
छउमसण्णी कुणइ जहण्णं ठीमाउगाणमण्णयरो । सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो ॥२॥"

सव्वाणुक्कोसठिई असुभा सा जमइसंकिलेसेणं । ॥८३॥८३॥
इयरा उ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मोत्तुं ॥८३॥८७॥

सव्वाणं वि पयडीणं उक्कोसा ठीई असुभा । जओ सव्वसंकिलिट्ठो मिच्छदिट्ठी आहारसत्तगतित्थयरनाम-देवाउय-मणुयाउय-तिरियाउयवज्जाणं सव्वपयडीणं उक्कोसंठिइं बंधइ । नवरं सुभपयडीणं तप्पाउग्गसंकिलिट्ठो । सा असुभा असुभरुक्खफलविवागभवं असुभपयडीणं सुभपयडीणं वालुयकवलोवमानीरसा तओ असुभा । तित्थयरनामस्स अविरयसम्मदिट्ठी आहारसत्तगस्स

अपमत्तसंजओ तप्पाओगसंकिलिट्ठो उक्कोसं ठीइं बंधइ । संकिलेसो=कसाओदओ सो असुभो । देवाउस्स विसुद्धो उक्कोसं ठीइं बंधइ। जओ सुहपरिणामेण देवाउयस्स बंधो। मणुयतिरिया-उयाण वि विसोहीए उक्कोसो ठीबंधो जओ तप्पाओगविसुद्धा बंधइ । इयरा जहण्णं विसुद्धो सव्व-पयडीणं ठीइं बंधइ। आउयविवरीयं आउगाणं तप्पाओगसंकिलिट्ठो जहण्णट्ठीं बंधइ ॥८३॥८७॥

पसंगागयं भण्णइ—

सुहुमनिगोयाइखणो जोगो थोवो तत्रो असंखगुणो ।
बायरवियतियचउमणासण्णि अपज्जत्तगजहन्नो ॥८४॥८८॥

साहारणस्स सुहुमस्स लद्धीए अपज्जत्तगस्स पढमसमए वट्टमाणस्स अप्पवीरियलद्धिस्स जहण्णओ जोगो सव्वत्थोवो। "बायरबिगतिगचउमणअसण्णिअपज्जत्तगजहण्णो" त्ति ततो बादरएगिंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो। वेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्स असन्निपंचिंदियस्स सन्नि-पंचेंदियाणं पज्जत्तअपज्जत्तगाणं जहन्नगो जोगो कमसो असंखेज्जगुणो ॥८४॥८८॥

[1]पढमदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो अ कमा ।
असमत्ततसुक्कोसो पज्जत्तजहन्नजिट्ठो य ॥८५॥८९॥

आदिदुगुक्कोसो त्ति, आदिदुगं=सुहुमबायरएगिंदिया अपज्जत्तगा, तेसिं उक्कोसो । ततो परिवाडीए असंखेज्जगुणो । सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । बादरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो अ । "सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कम" त्ति, तेसिं चेव सुहुमबायराणं पज्जत्तगाणं करणं पडुच्च जहण्णुक्कोसगा जोगा कमेण असंखेज्जगुणा । तओ सुहुमस्स य पज्जत्तगस्स जहण्णजोगो असंखेज्जगुणो। बादरस्स पज्जत्तगस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो । ततो सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसगो असंखेज्जगुणो । बादरपज्जत्तउक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो। "उक्कस्सजहण्णियरो असमत्तियरे असं[खेज्ज](ख)गुणो" त्ति, 'उक्कोसगं' ति वेइंदियाईणं अपज्जत्तगाणं उक्कोसो, "जहन्नियरो" त्ति तेसिं चेव पज्जत्तग जहन्नगो "इयरो" उक्कोसो "असमत्तियरेसु" त्ति अपज्जत्तगपज्जत्तगेसु असंखेज्जगुणो नेयव्वो । बादरएगिंदिय-त्ति पज्जत्तगस्स उक्कस्सगाउ वेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सगो जोगो असंखेज्जगुणो । तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगोऽसंखेज्जगुणो । चउरिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोस्सगो जोगो असंखेज्ज० । असण्णिपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । सन्निपंचिंदियअपज्जत्तगस्स उक्कस्सजोगो असंखगुणो । एते सव्वे लद्धीए पज्जत्तगा गहिया ।

---

१ व्याख्यानं पुनः "आदिदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहण्णगेयरे य कमा। उक्कस्सजहण्णियरो असमत्ति-यरे असंखगुणो ॥८५॥८९॥' इति गाथानुसारेण कृतम् ।

वेइंदियस्स पज्जत्तगस्स जहन्नगो असंखगुणो । करणेण पज्जत्तगस्स । ततो हिट्ठिल्ला ठाणा लद्धिपज्जत्तगस्स करणेणं अपज्जत्तगस्स भवंति । ततो वेइंदियस्स पज्ज० जह० जोगो असंखगुणो । तेइंदियपज्ज०जह०जोगो असंखगुणो । चउरिंदियपज्ज० जह० असंगु० । असण्णिपंचेंदियस्स पज्ज० (जह०)जोगो असंखगुणो । सन्निपंचिंदियस्स पज्ज० जह० जोगो असंखेज्जगुणो । सव्वे करणपज्जत्तीए पज्जत्तगा । ततो वेइंदियपज्ज० उक्कस्सजोगो असंखगु० । तेइंदियपज्जत्तगस्स उक्कोसो जोगो असंखगु० । चउरिंदियपज्ज० उक्को० जोगो असंखगु० । असण्णिपज्जत्तगस्स उक्कोसगो जोगो असंखेज्जगुणो । सण्णिपज्जत्तगस्स उक्को० जोगो असंखेज्जगुणो ॥८५॥८६॥ ठीवंधाधिकार एवं भणइ–

एवं चिय ठिइठाणा अपज्जपज्जक्कमेण संखगुणा ।
नवरमसमत्तबिंदियइक्कपए ते असंखगुणा ॥८६॥१०॥

ठितीवंधट्ठाणाइं ठितीवंधट्ठाणाइं । जहण्णिगट्ठितिं आदिं काऊणं जाव उक्कस्सिगट्ठिइं । तेसिं मज्झे जत्तिया ठितिविगप्पा ते उक्कसियाए ठितीए समं ठितिवंधट्ठाणा वुच्चंति । ताणि सव्वथोवाणि सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स ठितिवंधट्ठाणाणि । वादरस्स अपज्जगस्स ट्ठितिवंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । सुहुमस्स पज्जत्तगस्स ठितिवंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । वादरस्स पज्जत्तगस्स ठितिवंधट्ठाणाणि संखेज्जगुण० । एवं तेसिं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागमेत्ताणि ठितिवंधट्ठाणाणि । ततो वेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स ठितिवंधट्ठाणाणि, असंखेज्जगुणाणि । कहं ? तं वेइंदियाईणं ठितिवंधट्ठाणाणि । पलिओवमस्स संखेज्जतिभागमेत्ताणि काउं । तस्सेव पज्जत्तगस्स ठितीवंध० संखेज्जगुण० । (तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स ठितिवंध० संखेज्जगुण० । तस्सेव पज्जत्तगस्स ठितिवंध० संखेज्जगु० । चउरिंदियस्स अपज्जत्तगस्स ठितिवंध०संखेज्जगुण० । तस्सेव पज्जत्तगस्स ठितिवंध० संखेज्जगुण० । असण्णिपंचिदियस्स अपज्जत्त० ठितिवंध० संखेज्जगु० । तस्सेव पज्जत्तगस्स ठितिवंध०संखेज्जगु० । सण्णिपंचिंदियअपज्ज०ठितिवंधट्ठा०संखेज्जगु० । तस्सेव पज्जत्तगस्स ठितिवंधठाणाइं संखेज्जगुणाइं ॥८६॥१०॥

सव्वे वि अपज्जत्ता हुंति पइक्खणमसंखगुणविरिया ।
संखगुणूणा सुहुमेसु बायरेसु य असंखगुणा ॥८७॥११॥

सव्वे वि अपज्जत्ता समए समए असंखगुणविरियवुड्ढीए वड्ढंति । जाव उक्कोसगो अपज्जत्तगो पज्जत्तगो अवट्ठियवीरिओ हीणवीरिओ वा अहिगवीरिओ वा संभवइ । "संखगुणूणा सुहमेसु" त्ति सव्वत्थोवा सुहुमा अपज्जत्तगा सुहमपज्जत्तगा संखेज्जगुणा । "बायरेसु य असंखगुण" त्ति । सव्वत्थोवा बादरपज्जत्तगा । बादरअपज्जत्तगा असंखगुणा ॥८७॥११॥

[1]ठिइबंधे ठिइबंधे अज्झवसाया असंखलोगसमा ।

---

१ व्याख्यानं पुनः "ठिइबंधे ठिइबंधे अज्झवसाणाणऽसंखिया लोगा । हस्सा विसेसवुड्ढी आउणमसंखगुणवुड्ढी ॥८८॥१२॥" इति गाथानुसारेण लिखितम् ।

कमसो विसेसअहिया सत्तसु आउसु असंखगुणा ॥८८॥९२॥

तत्थ पगणाए "ठितिवधे ठिइबधे अज्झवसाणाणऽसंखिया लाग" त्ति, नाणावरणिज्जस्स जहण्णियाए ठिईए ठितिबंधज्झवसाणाणं ठाणाणि असंखलोगागासपएसमेत्ताणि। बितियाए ठिईए जाव असंखेज्जलोगागासपएसमेत्ताणि। ततियाए वि असंखेज्जलोगागासपएसमेत्ताणि । एवं जाव उक्कसिया ठिति त्ति। एवं आउगवज्जाणं सत्तण्ह वि कम्माणं। तेसिं अज्झवसाणट्ठाणाणं दुविहा वड्ढिपरूवणा। तं (जहा-)अणंतरोवणिहिया परंपरोवणिहिया य । तत्थ अणंतरोवणिहियाए "कमसो विसेसवड्ढि" त्ति नाणावरणिज्जस्स जहण्णियाए ठिईए ठितिबंधज्झवसाणठाणाणि थोवाणि। बितियाए ठिईए ठितिबंधज्झवसाणट्ठाणाणं विसेसाहियाणि। ततियाए वि विसेसा०। एवं विसेसा० २ जाव उक्कस्सिगा ठिति त्ति। एवं आउगवज्जाणं सतण्हं कम्माणं। "आऊणमसंखगुणवड्ढि" त्ति, आउगस्स जहण्णियाए ठिईए ठितिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि थोवाणि। बितियाए असंखगुणाणि। ततियाए असं०। एवं असंखेज्जगुणाणि २ जाव उक्कस्सिया ठिति त्ति। "परंपरोवणिहियाए। पल्लासंखियभागं गंतुं दुगुणाणि जाव उक्कस्स ॥" त्ति। परंपरोवणिहियाए नाणावरणिज्जस्स जहण्णियाए ठिईए ठितिबंधज्झवसाणट्ठाणेहिंतो पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं गंतूणं दुगुणवड्ढियाणि अज्झवसायट्ठाणाणि। तओ पुणो पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं गंतूणं दुगुणवड्ढि०। एवं दुगुणवड्ढिया२ जाव उक्कसिया ठिति त्ति ॥८८॥९२॥ "ठीबंधो पसंगागओ वि समत्तो ॥

इयाणिं अणुभागबंधो भण्णइ—

असुभाण संकिलेसेण होइ तिव्वो सुहाण सोहीए।
अणुभागो मंदो पुण विवज्जए सव्वपयडीणं ॥८९॥९३॥

असुभपयडी बायासीई। सव्वसंकिलिट्ठो सव्वुक्कोसं अणुभागबंधं बंधइ असुभपयडीणं। सुभपयडी बायालीसा। सव्वविसुद्धो सव्वुक्कोसं अणुभागं बंधंति। अणुभागो मंदो पुण विवज्जए सव्वपयडीणं। असुहाण विसोहीए मंदो, सुहाण संकिलेसेण जहन्नं अणुभागं बज्झइ ॥८९॥९३॥

सतरस पयडी संजलण ४ विग्घ ५ पुं देसघाइ आवरणा ७।
चउठाणरसपरिणाया दुतिचउठाणा उ सेसा उ ॥९०॥९४॥

संजलणचउक्कं अंतरायपंचगं पुरिसवेयं देसघाइआवरणा=नाणचउक्कं दंसणतिगं; एवं सत्तरस, चउट्ठाणरसपरिणया। कहं?, चउट्ठाणियं वा, तिट्ठाणियं वा, दुट्ठाणियं वा, एगट्ठाणियं वा रसं बंधति। सेसाणं पयडीणं दुट्ठाणं वा, तिट्ठाणं वा, चउट्ठाणं वा ॥९०॥९४॥

पव्वयभूमी वालुयजलरेहासरिससंपराएहिं ।
चउठाणाई असुहाण वच्चयाओ सुहाणं तु ॥९१॥९५॥

असुहपयडीणं, पव्वयसरिससंपराएहिं चउट्ठाणिओ, भूमीसरिसतिट्ठाणिओ.

वालुयसरिसदुट्ठाणिओ, जलरेहासरिससंपराएहिं एगट्ठाणिओ । उक्तं च—"एयाओ सत्तरसकम्मपयडीओ चउविहभावपरिणय" त्ति, एगट्ठाण-दुट्ठाण-तिट्ठाण-चउट्ठाणभावसंजुत्ता। कहं? अनियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गएसु एएसिं कम्माणं एगट्ठाणिगो रसबंधो हवइ। सेसा तिण्णि वि संसारत्थाणं। पव्वयराय समाणकोहस्स चउठाणिगो रसो। भूमीराइसमाणस्स तिट्ठाणिगो रसो। वालुयउदगराइसरिसस्स दुट्ठाणिगो ॥ विवरीयं सुहपयडीणं जलरेहा-वालुय-रेहासरिसचउठाणिओ रसबंधो भूमीरेहासरिसतारतम्मेन तिठाणिओ रसबंधो पव्वयरेहासरिस-दुट्ठाणिओ रसबंधो। असुहपयडिपणसट्ठीणं एवं चेव; नवरं विवरीयं भाणियव्वं ॥११।६५॥

घोसाडइनिंबुवमो असुभाण सुभाण खीरखंडुवमो ।
एगट्ठाणो उ रसो अणंतगुणिया कमेणियरे ॥१२॥६६॥

असुभपयडीणं घोसाडीरसं निंबरसं अद्दहणे निदरिसणं । सुभपयडीणं इच्छुरसं माहिसं खीरं अद्दहणे निदरिसणं । विवागेण सव्वथोवो विवागो एगट्ठाणिए १। दुट्ठाणिए अणंतगुणो २। तिट्ठाणिए अणंतगुणो ३। चउट्ठाणिए अणंतगुणो ४। उक्तं च—घोसाडइनिंबाण जाइरसतुल्लो एग-ठाणिरसो। तस्स वि य रोगभेया। जहा पाणीयदुभागतिभागचउभागसंमिस्साइ जाव अंतिमो रसलवो बहुपाणीयमिस्सो व ॥१३॥६६।

निंबुच्छुरसाईणं दुतिचउभागा पुढो कढिज्जंता ।
किल इक्कभागसेसा दुतिचउठाणा रसा कमसो ॥१३॥६७॥

निंबरसो उच्छुरसो समावत्थो एगट्ठाणिओ। दो भागा कढिज्जंति, एगभागसेसो दुट्ठाणिओ। तयो भागा कढिज्जंति, एक्कभागसेसो तिट्ठाणिओ रसो। चत्तारि भागा कढिज्जंति एकभागसेसो चउट्ठाणिओ ॥६३॥६७॥ अणुभागबंधो समत्तो ॥

इयाणिं पएसबंधो भण्णइ—

इगदुगणुगाइ जा अभवणंतगुणासिद्धणंतभागाणू ।
खंधा उरलोचियवग्गणाउ तह अगहणंतरिया ॥१४॥६८॥

एगपरमाणू, दो परमाणू, तिण्णि परमाणू, जाव दसपरमाणू खंधो; संखेज्जपरमाणू असंखेज्जपरमाणू खंधो; अणंतपरमाणू खंधो। ते सव्वे अग्गहणजोगा। अणंताणंतपरमाणू खंधो अग्गहणजोगा जाव अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणो खंधो। सा उरालियगहणजोगा वग्गणा जहण्णा परमाणुवुड्ढीए अणंताओ वग्गणाओ जाव उक्कोसो । तस्सुवरिं ओरालियअग्गहणवग्गणा एगोत्तरियाओ जाव अणंताओ ॥६४॥६८॥

कमसो विउव्विआहारतेअभासाणपाणमणकम्मे ।

इय वग्गणाऽवगाहो ऊणूणंगुलअसंखंसो ॥९५॥९९॥

तस्सुवरिं वेउव्वियगहणवग्गणा । तस्सुवरिं वेउव्वियअग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं आहारगगहणवग्गणा । तस्सुवरिं आहारगअग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं तेयगसरीरगहणवग्गणा । तस्सुवरिं तेयगसरीरअग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं भासागहणवग्गणा । तस्सुवरिं भासाअग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं आणपाणुग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं आणुपाणुअग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं मणजोगग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं मणअग्गहणवग्गणा । तस्सुवरिं कम्मगसरीरजोगा गहणवग्गणा । इय वग्गणा । "इयवग्गणावगाहो"त्ति, ओरालियवग्गणाणं अंगुलअसंखेज्जभागो अवगाहो । सेसाणं ऊणयरो, जाव कम्मइगसरीरवग्गणाओ ॥९५॥९९॥

एगोत्तरा अभव्वाणंतगुणा अंतरेसु अग्गहणा ।
सव्वहि जुग्गजहन्ना नियगांतंसाहिया जिट्ठा ॥९६॥१००॥

"एगोत्तर"त्ति, ते ओरालियसरीरजहण्णवग्गणं आदिं काऊण एगोत्तरवुड्ढीए ताव गया जाव कम्मणसरीरउक्कोसा वग्गणा । 'अभव्वाणंतगुण'त्ति, अंतरंतरे य अग्गहणपाउग्गाओ वग्गणाओ जहण्णाओ वग्गणा उक्कोसा अणंतगुणा । को गुणकारो ? । अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धाणमणंतिमो भागो । एवं सव्वत्थ । "सव्वहिँ जोगजहण्ण"त्ति, सव्वेसिं जोग्गवगणाणं जहण्णाओ उक्कोसा विसेसाहिया । को विसेसो ? । तस्सेव अणंतिमो भागो । एवं सव्वत्थ । उक्तं च–"जाव तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे । कम्मगसरीरदव्ववग्गणा जहन्नाइपएसोत्तरा जाव उक्कोसा । जहण्णा उक्कोसा विसेसाहिया । को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो ।" कम्मइगसरीरदव्ववग्गणा नाम अट्ठविहस्स कम्मस्स गहणं पवत्तइ । तं जहा–नाणावरणीयस्स दंसणावरणीयस्स, वेयणीयस्स, मोहणीयस्स, आउयस्स, नामस्स, गोयस्स, अंतरायस्स जाणि य दव्वाणि घेत्तूण नाणावरणीयत्ताए जाव अंतराइत्ताए परिणामिंति जीवा ताणि दव्वाणि कम्मगसरीरदव्ववग्गणा ॥९६-१००॥

[1]जोगणुरूवं गिण्हिय सुच्चिय दलियं जिओ परिणामेइ ।
भासाणापाणुमणोचियं च अवलंबए दव्वं ॥९७॥१०१॥

जोगेहिं पुव्वुत्तेहिं. तदणुरूवं ति, तेसिं अणुरूवं तदणुरूवं ति भण्णमाणा ओरालियादओ संबज्झंति । अहवा जोगेहिं तदणुरूवं ति उक्कोसाणुक्कोसजहण्णजोगे पुग्गले वा । किं भणियं होइ ?, भण्णइ,–जहण्णजोगजोगिस्स थोवा पुग्गला गहणमिंति । उक्कोसजोगिस्स बहुगा पुग्गला गहणमेंतित्ति भणियं होइ । 'परिणामिय गिण्हिऊण पंचतणु'"त्ति "परिणामेइ"त्ति तब्भावत्ताए परिणामेइ । जोगेहिं तेसिं अणुरूवे पोग्गले घेत्तूण ओरालाईहिं सरीरेहिं परिणामेइ। जहा

---

१ विवरणं पुनः 'जोगेहि तयणुरूवं परिणामिय गिण्हिऊण पंचतणू । पाओग्गे चालंबइ भासाणुपाणुमणत्तणे खंधे ॥९७।१०१॥" इति गाथापाठमनुसृत्य कृतम् ।

अगणिवर्णं परिखित्तं अगणित्ताए परिणामेइ, तहा जीवो वि जोगेहिं तप्पाओगे पोग्गले घेत्तूणं ओरालियाइसरीरत्ताए परिणामेइ । "पाओगे चालंबइ"त्ति, भासाइपाउग्गे पोग्गले अवलंबइ । जहा पायाइविगलो उट्ठाणचंकमणाईणि काउकामो लट्ठिं अवलंबइ सुयइ य कारणं पडुच्च; एवं जीवो वि "भासाणुपाणुमणत्तणं खंघे" त्ति, भासाआणुपाणुमणुजोगे य खंधे अवलंबित्ता भासाआणुपाणुमणत्ते य परिणामिय छुयंइ त्ति भणियं होइ ॥९७॥१०१॥

अप्पयरपयडिबंधी उक्कडजोगी य सन्निपज्जत्तो ।
कुणइ पएसुक्कोसं, जहन्नयं तस्स वच्चासे ॥९८॥१०२॥

मूलपयडी वा उत्तरपयडी वा जो थोवाउ बंधइ, उक्कडजोगी=उक्कोसजोगी सण्णी पज्जत्तगो सव्वविसुद्धो उक्कोसगं पएसं बंधइ । जहण्णयं तस्स विवरीयं । उक्तं च—
"सुहुमनिगोया पज्जत्तगस्स पढमे जहण्णगे जोगे। सत्तण्हं पि जहण्णो आउगबंधे वि आउस्स"॥९८॥१०२॥

अट्ठविहबंधगस्स अट्ठहिं भागेहिं दलियं कीरइ । तस्स अप्पाबहुयं—

गहियदलियस्स भागो बहुठिइकम्मेसु होइ कमवुड्ढो ।
वेयणिए सव्वोवरि तस्स फुडत्तं न जेणप्पे ॥९९॥१०३॥

आउयस्स थोवभागलद्धं । जओ तेत्तीसं सागरोवमाइं उक्कोसट्ठी । नामस्स गोयस्स दोण्हावि तुल्लो विसेसाहिओ । जओ वीसं सागरोवमकोडाकोडी उक्कोसा ठिई । नाणावरणीयस्स दंसणावरणीयस्स अंतरागस्स तिण्ह वि तुल्लो विसेसाहिओ । जओ तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ उक्कोसट्ठीई । मोहणीयस्स विसेसाहिओ । जओ सत्तरिकोडाकोडी उक्कोसा ठीई । वेयणीयस्स विसेसाहिओ । जओ तस्स फुडत्तं न जेण अप्पा । सुहं वा दुहं वा अप्पदलिएण न अणुहविज्जइ ॥९९॥१०३॥

उत्तरपयडीणं भण्णइ—

पयडीण सव्वघाईण होइ नियजाइदलअणंतंसो ।
बज्झंतीण विभज्जइ सेसं सेसाणमणुसमयं ॥१००॥१०४॥

दंसणावरणीयस्स नव उत्तरपयडीओ; सव्वघाई छ पयडीओ, भागलद्धं दलियं सव्वत्थोवं; देसघाई तिण्णि पयडीओ, भागलद्धं दलियं अणंतगुणं । नाणावरणीयस्स उत्तरपयडीओ पंच; एगा पयडी सव्वघाई, भागलद्धं दलियं सव्वत्थोवं देसघाइपयडी चत्तारि, भागलद्धं दलियं अणंतगुणं । अंतरायस्स उत्तरपयडीओ पंच; पंच वि देसघाई, पंचण्हं पि भागो । मोहणीयस्स उत्तरपयडीओ छव्वीसं; सव्वघाई तेरह, भागलद्धं दलियं सव्वत्थोवं। देसघाई वि तेरह, भागलद्धं दलियं अणंतगुणं । "बज्झंतीणं" ति, आउयस्स उत्तरपयडीओ चत्तारि; बज्झंतियस्स य भागो । नामस्स अट्ठबंधट्ठाणा । तेवीसा, पणवीसा, छव्वीसा, अट्ठावीसा, उगुणतीसा, तीसा, एगतीसा एगा जसकित्ती १। बज्झंतस्स भागो ॥१००॥१०४।

'धीरइ जिएण हेऊहिं पगईठिइरसपएसओ जं त । मूलुत्तरट्ठ अडवण्णसयपभेयं भवे कम्म ॥"

एयं जहाजोग्गं पाए वक्खायं ।

इयाणि जहावगमेण पसंगागयं आइमदेसे व लखियं सम्मत्तदेसविरयाइ भणइ—

सम्मत्त१देस२संपुन्नविरइउप्पत्ति३अणविसंजोए ४ ।

दंसणखवए ५ मोहस्स समग६उवसंत७खवगे य ८ ॥१०१॥१०५॥

सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेढी १, सावगगुणसेढी २, संजयगुणसेढी ३, अणंताणुबंधिविसंजोजण गुणसेढी ४, दंसणमोहखवगगुणसेढी ५, चरित्तउवसामगगुणसेढी ६, उवसंतकसायगुणसेढी ७, खवगगुणसेढी ८॥१०१॥१०५॥

खीणाइतिसु य ११ संखगुणूणंतोमुहुत्तकालाउ ।

गुणसेढी इक्कारस कमादसंखगुणदलियाउ ॥१०२॥१०६॥

खीणमोहगुणसेढी ९, सजोगिकेवलिगुणसेढी १०, अजोगिकेवलिगुणसेढी ११। "असंखगुणसेढिउदय" त्ति, सव्वत्थोवं सम्मत्तुप्पायगुणसेढीए दलियं। सावगगुणसेढीए असंखेज्जगुणं, जाव सजोगिकेवलिगुणसेढीए असंखेज्जगुणं, अजोगिकेवलिगुणसेढीए दलियं असंखेज्जगुणं । तम्हा उदयं पि पडुच्च असंखेज्जगुणं । एवं "तव्विवरीओ कालो असंखेज्जगुणसेढि" त्ति, कालं पडुच्च विवरीयाउ । सव्वत्थोवो अजोगिकेवलिगुणसेढिकालो । सजोगिकेवलिगुणसेढिकालो संखेज्जगुणो । एवं संखेज्जगुणो । संखेज्जगुणो जाव सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेढिकालो । ठवणा-★ एसा पढमा । सेसाओ एत्तो उच्चत्तेणं संखेज्जगुणहीणाओ संखेज्जगुणहीणाओ; उवरि पोहत्तेण विसालाओ विसालाओ कायव्वाओ; जाव अजोगिकेवलिस्स । ठवणा-(१) । कहं ? असंखेज्जगुणं २ दलियं । भण्णइ,-सम्मत्तउप्पाइगो मिच्छद्दिट्ठी सो कम्मदव्वं थोवं थोवं खवेइ सम्मत्तनिमित्तं । सम्मत्तं पडिवन्नस्स तओ असंखेज्जतमाए सेढीए भवइ । तओ देसविरयगुणसेढी असंखेज्जगुणा, देसोवरयत्ताओ । तओ संजयगुणसेढी असंखेज्जगुणा, सव्वोवरयत्ताओ । अणंताणुबंधिगुणसेढी असंखेज्जगुणा । हेट्ठिल्लाणं तिण्हं । तत्थ संजमं पडुच्च तिगरणसहिओ अणंताणुबंधिणो खवेइ त्ति काउं । तओ दंसणमोहखवगगुणसेढी असंखेज्जगुणा । जेण अणंताणुबंधिणो खवित्तु विसुद्धयरो दंसणतिगं खवेइ । एए सव्वे असेढिगयस्स लब्भंति । कसायउवसामगस्स गुणसेढीपडिवण्णा समए समए अणंतगुणविसोहीए चटंति । उवसंतगुणसेढी असंखेज्जगुणा । सव्वठीइउव्वट्टणाए लद्धमिति काउं । गुणसेढीणं परूवणा भणिया कम्मपयडिसंगहणिचुण्णीओ ॥१०२-१०६॥

गुणसेढी दलरयणाऽणुसमयमुदयादसंखगुणणाए ।

एयगुणा पुण कमसो असंखगुणनिज्जरा जीवा ॥१०३॥१०७॥

एवं गुणसेढीदलरयणविहिमाह—उक्तं च—

एत्तगइयरेण उ इय फुसणे सुहुमदव्वपरियट्टो ।
अग्णे चउतणुसु कमेणिमेण तं विंति दुविहं पि ॥१०७॥१११॥

चउण्हं सरीराणं, तिण्हं मणवइपाणूए, एगयरेणं सव्वलोयपुग्गला परिणामित्ता एगजीवेणं मुक्का ठवेज्जा तया सुहुमो दव्वपरियट्टो । 'अण्णे चउतणुसु" अण्णे आयरिया जया चउहि सरीरेहिं सव्वपुग्गला परिणामिय २ मुक्का हवेज्जा, तया बायरो दव्वपरियट्टो । जया चउण्ह एगयरेणं, तया सुहुमपोग्गलपरियट्टो ॥१०७॥१११॥

लोगपएसो १ सप्पिणिसमया २ अणुभागबंधठाणा य ३ ।
पुट्ठा मरणेण जया कमुक्कमा बायरत्ति तया ॥१०८॥११२॥

लोगो चउद्दसरज्जू, तस्स आगासपएसा । ओसप्पिणिगहणतो अवसप्पिणि वि गहिया । जहा दिवसे गहिए राई वि गहिया । तेसिं जत्तिया समया । अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणा । लोगपएसा अणंतरपरंपरअपुणरुत्तं जया मरणेण फासिया ठवेज्जा, तया बायरो खेत्तपुग्गलपरियट्टो । एवं ओसप्पिणिसमया फासिया हवेज्जा, तया बायरो कालपुग्गलपरियट्टो । एवं अणुभागट्ठाणा वि । नवरं सव्वेसु अणुभागबंधट्ठाणेसु अणंतरपरंपरअपुणरुत्तं उदए वट्टमाणो मरिज्जा, तया बायरो भावपुग्गलपरियट्टो ॥१०८॥११२॥

पुट्ठाणंतरमरणेण पुण जया ते तया भवे सुहुमे ।
पोग्गलपरियट्टो खित्तकालभावेहिं इय नेओ ॥१०९॥११३॥

"अणंतरमरणेणं' ति एसो आगासपएसो विवक्खिज्जइ । तत्थ पएसे स उ पुणो तस्सेव अणंतरं जइ मरइ, तओ तस्स लेखए गणिज्जइ । अण्णत्थ मओ न गणिज्जइ । एवं अणंतरमरणेण सव्वलोगआगसपएसा फासिया हवेज्जा; तओ सुहुमो खेत्तपोग्गलपरियट्टो । "ओसप्पिणिसमय" त्ति ओसप्पिणीए पढमसमओ विवक्खिज्जइ । तओ समऊणाओ वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ अइक्कंताओ बीयसमए मरणवारओ जइ तत्थ तओ लेखए गणिज्जइ । अन्नत्थ मओ न गणिज्जइ । एवं अणंतरमरणेण वीसाणं सागरोवमकोडाकोडीणं जत्तिया समया । जया सव्वे अणंतरमरणेण फासिया हवेज्जा; तओ सुहुमो कालपुग्गलपरियट्टो । ठवणा (१) ॥१०९॥११३॥

समयभवसुहुमअगणी असंखलोगा तओ असंखगुणा ।
तेऊ तक्कायठिई कमसो अणुभागठाणा य ॥१११॥१२३॥

एगसमए भवा=जाया=उप्पणा एगट्ठं । असंखेज्जाणं लोगाणं जत्तिया आगासपएसा, तत्तिया सुहुमअगणिकाइया एगसमएण उप्पज्जंति मरंति य; ते विवक्खया थोवा १ । तेहिंतो तेओकाइया जीवंतगा असंखेज्जगुणा २ । तओ तेउकायकायठिई असंखेज्जगुणा ३ । तओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणा असंखेज्जगुणा ४ । तेसिं जहण्णगमज्झिमउक्कोसमेयाणं अणेगा

मेया । कहं ?, भण्णइ–बाहुल्लओ । चउसमयट्ठाई, तओ अहिया जाव अट्ठसमयट्ठाई । तओ हीणा जाव उक्कोसगा दुसमयट्ठाई । उक्तं च–

चउराई जावट्ठगमेत्तो जावं दुगं तु समयाणं । पज्जत्तजहण्णाइ जावुक्कोसं ति उक्कोसं ॥ १ ॥

चउसमयट्ठाई असंखेज्जा पत्तेयं पत्तेयं जाव दुसमयट्ठाई वि असंखेज्जा । अओ भण्णइ अणेगा मेया । एएसिं जो जहण्णगो अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो सो विवक्खिज्जइ । तस्सोदए मओ; बीओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो अणुभागपलिछेएहिं विसेसियरो; जइ तत्थ मओ; लेखए गणिज्जइ; अण्णत्थ मओ न गणिज्जइ । एवं बीयाउ तइओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो अणुभागपलिछेएहिं विसेसियरो । एवं तइयाओ चउत्थो, चउत्थाओ पंचमो, जाव उक्कोसगो अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो । एवं अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणा अणंतरमरणेण जया फासिया हवंति, तया सुहुमो भावपुग्गलपरियट्टो । एक्केक्को अणंताहिं उवसप्पिणिअवसप्पिणीहिं निट्ठाइ ॥११६॥१२३॥

भणिया पुग्गलपरियट्टपरूवणा लेसओ किंचि । इयाणिं पसंगागयं जोगट्ठाणा भण्णइ–

जोगट्ठाणा सेढीअसंखभागो तओ असंखगुणा ।
पयडीभेया तत्तो ठिइभेयाणुक्कमेण तओ ॥११०॥११४॥

सव्वत्थोवा जोगट्ठाणा १।तओ पयडीभेया असंखगुणा २।तओ ठीभेया असंखगुणा ३ ॥११०॥११४॥

ठिइबंधज्झवसाया तत्तो अणुभागबंधठाणाणि ।
तोऽणंतगुणा कम्मपएसा तत्तो य रसछेया ॥१११॥११५॥

तओ ठीइबंधज्झवसायट्ठाणा असंखगुणा ४। तओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणा असंखगुणा ५। तओ कम्मपएसा अणंतगुणा ६। तओ अणुभागपलिच्छेया अणंतगुणा ॥१११॥११५॥ दारगाहाओ । जोगट्ठाणा कहं ?––

खेत्तं सुहुमं कालाउ जेण अंगुलपएससेढीए ।
समयपएसवहारे असंखओसप्पिणी हुंति ॥११२॥११६॥

सुगमा ॥११२॥११६॥

चउदसरज्जू लोगो बुद्धिकओ होइ सत्तरज्जुघणो ।
तद्दीहेगपएसा सेढी पयरो य तव्वग्गो ॥११३॥११७॥

सुगमा । सेढीए असंखेयभागो जोगट्ठाणाणि सव्वाणि त्ति ।

जोगो विरिय थामो उच्छाहपरक्कमो तहा चेट्ठा । सत्ती सामत्थं ति य जोगस्स हवंति पज्जाया ॥ ' "

तेसिं ठाणाणि जोगठाणाणि । सव्वजहण्णाओ जोगठाणाओ आढवित्तु अणंतराणंतरं विसेसाहियं जोगठाणं । एयाए जोगवुड्ढीए ताव गयं जाव उक्कोसगं जोगठाणं ति । "सेढिअसंखेज्जइमो"त्ति, ताणि सव्वाणि जोगठाणाणि केत्तियाणि ?, लोगसेढीए असंखेज्जइमे भागे

जत्तिया आगासपएसा तत्तियाणि जोगठाणाणि सव्वाणि वि ॥११३॥११७॥ दारं ।

पयडीउ असंखिज्जा जं ओहिदुगे वि तारतम्मेणं ।
असंखलोगखपएसपमाणा हुंति किल भेआ ॥११४॥११८॥

"जोगो हि जीवविरियं, तं भेया होंति फुडमसंखेज्जा । तत्तो वि पगडिभेया असंखगुणिया विणिद्दिट्ठा । जम्हा ओहिविसओ उक्कोसो सव्वबहुयसिहिसूई । जेत्तिअमेत्तं फुसइ तेत्तियमेत्तंगमसमा ॥ सत्तारतम्मभेया जेण बहू होंति आवरणजणिया । तेणासंखगुणत्तं पयडीणं जोगओ जाण ।" उक्तं च-"सव्वबहुअगणिजीवा निरंतरं जत्तियं भवेज्जासु । खेत्तं सव्वदिसागं परमोहीखेत्तनिद्दिट्ठो ॥"

॥११४॥११८॥ दारं ।

आ जिट्ठठिई हस्सट्ठिईउ समउत्तरा ठिईठाणा ।
सव्वपयडीसु एवं सव्वजियाणं, पि ठिइभेया ॥११५॥११९॥

कहं ? एक्केक्काए पगईए जहण्णट्ठीउ आढवेत्तु, ताए जाव उक्कोसिया ठीई । एएमि मज्झे जत्तियाणि तारतम्मजोगेण समउत्तरवड्ढियाणि ठीठाणाणि, ताणि पगइसमूहेहिंतो असंखेज्जगुणाणि । एक्केक्कम्मि असंखेया भेया लब्भंति त्ति काउं ॥११५॥११९॥ दारं ।

ठिइठाणे ठिइठाणे कसायउदया असंखलोगसमा ।
अणुभागबंधठाणा इअ इक्केक्के कसाउदए ॥११६॥१२०॥

नाणावरणीयस्स जहन्नियाए ठीईए ठीइनिव्वत्तगा कसायउदयभेया असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया । बीयाए ठीईए ठीनिव्वत्तगा कसायउदयभेया असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासापएसा तत्तिया । पुव्वेहिंतो विसेसहिया । तइयाए ठीईए ठीनिव्वत्तगा कसाउदयभेया असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तियागासपएसा तत्तिया । पुव्वेहिंतो विसेसहिया । एवं ठीईए ठीईए निव्वत्तगा नाणावरणीयस्स जाव उक्कोसियाए ठीए ठीनिव्वत्तगा कसाउदयभेया असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया; कमसो विसेसाहिया । एवं सव्वकम्माणं सव्वपयडीणं जहण्णठीइं आइं काऊण समउत्तराए समउत्तराए जाव उक्कोसियठीईए ठीनिव्वत्तगा कसायउदयभेया असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया कमसो विसेसाहिया । नवरं आउयस्स ठीए ठीए असंखेज्जगुणा । एवं ठीएहिंतो ठीबंधज्झवसाया असंखेज्जगुणा ॥दारं॥

"अणुभागबंधठाणा इय एक्केक्के कसाउदए"त्ति, नाणावरणीयस्स जहण्णट्ठीनिव्वत्तगो जो सव्वजहण्णो कसाउदओ; तत्थ अणुभागबंधट्ठाणा असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया । बीइए कसायउदए अणुभागबंधट्ठाणा असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया । तइए कसाओदए असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तियं आगासपएसमाणं तत्तिया । एवं जहण्णट्ठीनिव्वत्तगाणं कमेण कसाउदयभेयाणं जाव उक्कोसओ कसायउदयभेओ । तत्थ

मेया । कहं ?, भण्णइ-बाहुल्लओ । चउसमयट्ठाई, तओ अहिया जाव अट्ठसमयट्ठाई । तओ हीणा जाव उक्कोसगा दुसमयट्ठाई । उक्तं च-

चउराई जावट्ठगमेत्तो जावं दुगं तु समयाणं । पज्जत्तजहण्णाइ जावुक्कोसं ति उक्कोसं ॥ १ ॥

चउसमयट्ठाई असंखेज्जा पत्तेयं पत्तेयं जाव दुसमयट्ठाई वि असंखेज्जा । अओ भण्णइ अणेगा भेया । एएसिं जो जहण्णगो अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो सो विवक्खिज्जइ । तस्सोदए मओ: बीओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो अणुभागपलिछेएहिं विसेसियरो; जइ तत्थ मओ; लेखए गणिज्जइ; अण्णत्थ मओ न गणिज्जइ । एवं बीयाउ तइओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो अणुभागपलिछेएहिं विसेसियरो । एवं तइयाओ चउत्थो, चउत्थाओ पंचमो, जाव उक्कोसगो अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणो । एवं अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणा अणंतरमरणेण जया फासिया हवंति, तया सुहुमो भावपुग्गलपरियट्टो । एक्केक्को अणंताहिं उवसप्पिणिअवसप्पिणीहिं निट्ठाइ ॥११६॥१२३॥

भणिया पुग्गलपरियट्टपरूवणा लेसओ किंचि । इयाणिं पसंगागयं जोगट्ठाणा भण्णइ-

जोगट्ठाणा सेढीअसंखभागो तओ असंखगुणा ।
पयडीभेया तत्तो ठिइभेयाणुक्कमेण तओ ॥११०॥११४॥

सव्वत्थोवा जोगट्ठाणा १।तओ पयडीभेया असंखगुणा २।तओ ठीभेया असंखगुणा ३ ॥११०॥११४॥

ठिइबंधज्झवसाया तत्तो अणुभागबंधठाणाणि ।
तोऽणंतगुणा कम्मपएसा तत्तो य रसछेया ॥१११॥११५॥

तओ ठीइबंधज्झवसायट्ठाणा असंखगुणा ४। तओ अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणा असंखगुणा ५। तओ कम्मपएसा अणंतगुणा ६। तओ अणुभागपलिच्छेया अणंतगुणा ॥१११॥११५॥ दारगाहाओ । जोगट्ठाणा कहं ?—

खेत्तं सुहुमं कालाउ जेण अंगुलपएससेढीए ।
समयपएसवहारे असंखओसप्पिणी हुंति ॥११२॥११६॥

सुगमा ॥११२॥११६॥

चउदसरज्जू लोगो बुद्धिकओ होइ सत्तरज्जुघणो ।
तद्दीहेगपएसा सेढी पयरो य तव्वग्गो ॥११३॥११७॥

सुगमा । सेढीए असंखेयभागो जोगट्ठाणाणि सव्वाणि त्ति ।

जोगो विरिय थामो उच्छाहपरक्कमो तहा चेट्ठा । सत्ती सामत्थं ति य जोगस्स हवंति पज्जाया ॥ ' ”

तेसिं ठाणाणि जोगठाणाणि । सव्वजहण्णाओ जोगठाणाओ आढवित्तु अणंतराणंतरं विसेसाहियं जोगठाणं । एयाए जोगवुड्ढीए ताव गयं जाव उक्कोसगं जोगठाणं ति । “सेढिअसंखेज्जइमो”त्ति, ताणि सव्वाणि जोगठाणाणि केत्तियाणि ?, लोगसेढीए असंखेज्जइमे भागे

असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासप्पएसा तत्तिया । एवं नाणावरणीयस्स जहण्णट्ठीइं आदिं काऊणं सव्वठीइठाणेसु जाव उक्कोसिया ठी । ठीईए जहण्णकसायउदयं आइं काऊण जाव उक्कोसियाए ठिईए उक्कोसओ कमाउदओ । तत्थ अणुभागबंधट्ठाणा असंखेज्जाणं लोयाणं जत्तिया आगासपएसा तत्तिया । एवं सव्वकम्मपयडीणं । अओ भण्णइ—ठीबंधज्झवसाणट्ठाणेहिंतो अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखगुणा ॥११६॥१२०॥दारं॥

थोवाणुभागठाणा जहणाठिइपढमबंधहेउम्मि ।
बीयाइ विसेसहिया जा चरमाए चरमहेऊ ॥११७॥१२१॥

नाणावरणीयस्स जहण्णट्ठीईए निव्वत्तगो जो सव्वजहन्नो कसाउदयभेओ सो जहण्णट्ठिईए पढमो बंधहेऊ वुच्चइ । तत्थ थोवाणुभागबंधज्झवसायट्ठाणा "बीयाइ विसेसहिय" त्ति, बीयहेउए विसेसहिया (तइअए) चउत्थए हेउए विसेसाहिया विसेसाहिया जाव णाणावरणीयस्स जहण्णट्ठीईए चरमो हेऊ । तत्थ विसेसाहिया । चरिमाओ बीयट्ठीईए पढमो हेऊ । तत्थ विसेसाहिया । एवं जाव निरंतरं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव बीयट्ठीईए चरमो हेऊ । एवं निरंतरं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव नाणावरणस्स उक्कोसट्ठिईए जो चरिमो ठीभेओ । तत्थ जो चरिमो बंधहेऊ । तत्थ विसेसाहिया ॥११७॥१२१॥

इय असुभाण सुभाण उ विवरीयं जिट्ठठिइचरमहेऊ ।
आरब्भ निज्ज आउसु ठिइं ठिइं पइ असंखगुणा ॥११८॥१२२॥

एवं असुभपयडीणं । "सुहपयडीणं विवरीयं" ति, सायावेयणीयस्स पण्णरस सागरोवमकोडाकोडी उक्कोसा ठिई । तस्स जो चरिमो ठीभेओ । तस्स य जो चरिमो बंधहेऊ । तत्थ य सव्वत्थोवा अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणा । दुचरिमाए विसेसाहिया, तिचरिमाए विसेसाहिया, एवं विसेसाहिया जाव चरिमाए पढमो बंधहेऊ । एवं दुचरिमाए ठीईए जाव चरिमो बंधहेऊ । तत्थ विसेसाहिया । एवं विसेसाहिया २ जाव तस्सेव पढमहेऊ । एवं कमेण ओसरमाणा ओसरमाणा जाव सायावेयणीयस्स जहण्णाए ठीईए पढमबंधहेऊ । तत्थ सव्वुक्कोसा अणुभागट्ठाणा । एवं सव्वसुहपयडीसु । आउयस्स ठीईए ठिईए असंखेज्जगुणा । अओ भण्णइ ठिइबंधज्झवसायट्ठाणेहिंतो अणुभागबंधज्झवसायट्ठाणा असंखगुणा ॥११८॥१२२॥

अंतिमचउफासदुगंधपंचवन्नरसकम्मइगखंधे ।
अभविअणंतगुणाए गिण्हइ तत्तियअणू समए ॥१२१॥१२४॥

निद्धुण्हं निसीयलं, लुक्खुण्हं, लुक्खसीयलमिति अंतिमचउफासाई दुन्नि गंधाइं, पंच वण्णाइं, पंच रसाइं । "दविय" ति, एक्कं बद्धं अणंतपएसियं अणंतपरमाणूणं संघायं । तं

कियत्परिमाणमिति चेद्,-अभवियसिद्धिएहिं अणंतगुणा, सिद्धाणमणंतिमो भागो, एत्तियाणं परमाणूणं समुदाओ एए खंधे सव्वे वि तल्लखणा भणिया । कित्तिया ते ? । अभवियाणं अणंतगुणा, सिद्धाणमणंतभागमेत्तखंधा एगसमएणं गहणं कम्मत्ता इंति । एवं अणुभाग-बंधज्झवसाणट्ठाणाहिंतो कम्मपएसा अणंतगुणा ॥१२०॥१२४॥दारं॥

गहणसमए अ जीवो निअपरिणामेण जणयइ रसाणू ।
सव्वजिआणंतगुणो कम्मपएसेसु सव्वेसु ॥१२१॥१२५॥

कम्मपुग्गलेहिंतो वि अविभागपलिच्छेया अणंतगुणिया । कहं ?, भण्णइ,-जहा अद्दण-विसेसाओ सित्थेसु रसविसेसो दिट्ठो, तहा अज्झवसाणविसेसाओ कम्मखंधेसु रसविसेसो हवइ । अज्झवसाणाइं अद्दहणतुल्लाइं । तंदुलधाणिया कम्मपएसा । जो एगम्मि सित्थे रसो विभ-ज्जमाणो २ भागं न देइ सो अविभागपलिच्छेओ । एवं कम्मखंधेसु जो अणुभागरसो सो केवलना-णेणं विभज्जमाणो भागं न देइ त्ति सो अविभागपलिच्छेओ वुच्चइ । तारिसा अविभागपलिच्छेया एक्केक्कम्मि कम्मपएसम्मि सव्वजीवाणंतगुणा लब्भंति । उक्तं च—

गहणसमयम्मि जीवो उप्पाएइ उ गुणे सपच्चयओ । सव्वजियाणंतगुणे कम्मपएसेसु सव्वेसु ॥

तेण कम्मपएसेहिंतो अविभागपलिच्छेया अणंतगुणा ॥१२१॥१२५॥ दारं॥

इयाणिं गणणासंखाणमाह—

संखिज्जेगमसंखं परित्तजुत्तनिअपयजुयं तिविहं ।
एवमणंतं पि तिहा जहण्णमज्झुक्कसा सव्वे ॥१२२॥१२६॥

संखेज्जं एगविहं । एगविहं पि तिविहं । तं जहा-जहण्णं मज्झिमं उक्कोसं । असंखेज्जं तिविहं । परित्तासंखेज्जं, जुत्तासंखेज्जं, असंखासंखेज्जं । एक्केक्कं पि य तिविहं । जहण्णयं मज्झिमं उक्कोसं । एवं अणंतं पि तिविहं । परित्ताणंतयं, जुत्ताणंतयं, अणंताणंतयं । एक्केक्कं पुण तिविहं । जहण्णयं मज्झिमं उक्कोसं च ॥१२२॥१२६॥

संखेज्जगं जहण्णं दुच्चिअ मज्झिममओ परं चहुहा ।
जा उक्कोसं तं पुण चउपल्लपरूवणाइ इमं ॥१२३॥१२७॥

संखेज्जयं दुविहं । गणणासंखेज्जयं, उवमासंखेज्जयं । गणणासंखेज्जयं अणेगविहं । तत्थ जहण्णयं दोच्चिय । मज्झिममओ परं बहुहा अणेगमेयभिन्नं जाव सयं सहस्सं लक्खं जाव चुलसी लक्खा पुव्वंगं भवइ । पुव्वंगगुणिया कमेण पत्तेयं पत्तेयं सत्तावीसं ठाणा । ते य इमे-पुव्वं २ तुडि-यंगं ३, तुडियं ४, अडडंगं ५, अडडं ६, अववंगं ७, अववं ८, हुहुयंगं ९, हुहुयं १०, उप्पलंगं ११, उप्पलं १२, पउमंगं १३, पउमं १४, णलिणंगं १५, णलिणं १६, अत्थनिउरंगं १७, अत्थ-निउरं १८, अउयंगं १९, अउयं २०, नउयंगं २१, नउयं २२, मउयंगं २३, मउयं २४,

चूलियंगं २५, चूलियं २६, सीसपहेलियंगं २७, जाव सीसपहेलियंते गणणासंखाणयं चउणउयं अंकट्ठाणसयं । अओ परं उवमासंखेज्जयं अणेगविहं जाव चउपल्लपरूवणाइ इमं ॥१२३॥१२७॥

जंबुद्दीवपमाणा चउरो जोयणसहस्समोगाढा ।
रयणपहरयणकंडं भिंदिय पुट्ठा वइरकंडं ॥१२४॥१२८॥

जंबुद्दीवप्पमाणा चत्तारि पल्ला ठविज्जंति । जोयणसहस्सं अवगाहो रयणप्पहाए पढमं रयणकंडं जोयणसहस्सं भिंदित्ता रयणप्पहाए बीयं वइरकंडं तस्स उवरितलं पुट्ठा ॥१२४॥१२८॥

पल्लाणवट्ठियसलागपडिसलागामहासलागक्खा ।
सव्वे सवेइयंता उवरिं ससिहा य भरियव्वा ॥१२५॥१२९॥

अणवट्ठियपल्लं १।सलागापल्लं २।पडिसलागापल्लं ३।महासलागापल्लं ४ । "सव्वे"त्ति, चत्तारि वि जोयणलक्खं आयामविक्खंभेणं तिउणं सविसेसं परिरएणं, जोयणसहस्सं ओगाहेणं, "सवेइय"त्ति, अट्ठजोयणियाए वेइयाए उच्चत्तेणं उवरिं सिहाए समं भरियव्वा ॥१२५॥१२९॥

तो कप्पणाइ केणइ सुरेण पढमो धरेत्तु वामकरे ।
इक्किक्कं दीवुदहीसु सरिसवं खिविय णिट्ठविओ ॥१२६॥१३०॥

तओ कप्पणाए केणइ सुरेण पढमं अणवट्ठियपल्लं भरित्ता, वामहत्थे धरित्ता, उक्खित्तो । एगा सलागा दीवे, एगा समुद्दे, पुणा एगा सलागा दीवे, एगा समुद्दे, जाव एक्केक्केण निट्ठिओ ॥१२६॥१३०॥

दीवे जत्थुदहिम्मि य तदंतमेव पढमं व तं भरिउं ।
पुरओ खिव इक्किक्कं दीवुदहिसु निट्ठिए तम्मि ॥१२७॥१३१॥

दीवे वा समुद्दे वा जत्थ चरिमा सलागा ठिया तं चेव तत्तियपमाणं अणवट्ठिअपल्लं जोयणसहस्सं ओगाहेणं, अट्ठजोयणाणि उच्चत्तेणं, "तदंतमेव पढमं व तं भरिउं"ति, तं चेव अणवट्ठिय पल्लं पढमं भरित्ता पुरओ खिवइ । "एक्केक्के"त्ति, जत्थ दीवे वा समुद्दे वा चरिमा सलागा ठिया । तओ परओ एगा सलागा दीवे एगा समुद्दे जाव एक्केक्केण निट्ठिओ ॥१२७॥१३१॥

खिवसु सलागापल्ले सरिसवमेगं पुणो तदंतं तं ।
पुव्वं व भरिसु खिवसु अ पुरओ पुणा तम्मि निट्ठविए ॥१२८॥१३२॥

सलागापल्ले एगं सरिसवं खिव । "पुणो तदंतं" दीवे वा समुद्दे वा जत्थ चरिमा सलागा ठिया पुणो तत्तियपमाणं अवट्ठियपल्लं भरसु खिवसु य पुरओ । जत्थ चरिमा सरिसवा ठिया ताओ पुरओ खिव । तम्मि निट्ठिए ॥१२८॥१३२॥

बीयं सलागपल्ले खिव सरिमवमेवमेव पुण तइयं ।
इअ पुणरुत्तणवट्ठिअभरणविरेअणसलागाहि ॥१२६॥१३३॥

बीयं सरिसवं सलागपल्ले खिवसु । एवमेव पुणो तइयं पुणरुत्तं अणवट्ठियं, सलागा, पुणरुत्तं अणवट्ठियं, सलागा, पुणरुत्तं अणवट्ठियं भरणविरेयणसलागाहिं ॥१२९॥१३३॥

पुरणो सलागपल्लो पुव्वकमागयणवट्ठिओ अ तओ ।
सुच्चिअ सलागपल्लो उक्खिप्पइ खिप्पइ अ पुरओ ॥१३०॥१३४॥

सलागपल्लो भरिओ । पुव्वकमेण आगओ अणवट्ठिओ वि भरिओ । जाहे सलागपल्लो सरिसवं न पडिच्छइ, ताहे सो वि य सलागपल्लो उक्खिप्पइ खिप्पइ य पुरओ जत्थ सलागा न पडिया ॥१३०॥१३४॥

पुव्वकमनिट्ठिए तहिमेगं खिव सरिसवं तइअपल्ले ।
पुव्वं व निट्ठिअंते अणवट्ठिअपल्लमेव खिव ॥१३१॥१३५॥

पुव्वकमनिट्ठिए सलागपल्ले, पडिसलागापल्ले एगा सलागा खिवसु "पुव्वं व निट्ठियन्ते" जत्थ चरिमा सलागा ठिया (तओ परओ) [तत्तियपमाणं] अणवट्ठियपल्लं [भरित्ता] खिवसु ॥१३१॥१३५॥

पुण तम्मि निट्ठिए खिव सलागपल्लम्मि सरिसवं इक्कं ।
अन्नुन्नणवट्ठियओ सलागपल्लं पुणो भरह ॥१३२॥१३६॥

पुव्वकमेण निट्ठिए, सलागा सलागपल्ले खिवसु । एवं अणवट्ठिओ । सलागपल्लो पुणो भरसु । तदंतं अणवट्ठियपल्लं भरित्ता खिवसु, सलागा खिवसु । पुणो तदंतं अणवट्ठियपल्लं भरित्ता खिवसु । एवं पुणरुत्तं जाव पुण्णं ॥१३२॥१३६॥

तेण पुण पडिसलागापल्ले भरियम्मि दोसु अ तमेव ।
ऊद्धरिअ पुव्वविहिणा सरिसवमेवं खिव चउत्थे ॥१३३॥१३७॥

तेण सलागापल्लेण कमेण पडिसलागापल्लं भरियं । "दोसु य"त्ति अणवट्ठियपल्लं सलागापल्लं च दो वि भरिया । "उद्धरिय"त्ति ताहे पडिसलागापल्लं, उक्खिप्पइ पुव्वकमेण जत्थ न पडिया सलागा, तस्स परओ खिप्पइ, पुव्वकमेण निट्ठिए, एगा सलागा खिव चउत्थपल्ले ॥१३३॥१३७॥

इअ पढमेहिं बीअं तेहिं तइअं तु तेहि अ चउत्थं ।
भरणुद्धरणविकिरणं ता कज्जं जा फुडा चउरो ॥१३४॥१३८॥

पढमेहिं=अणवट्ठियपल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए सलागापल्लं भरसु । बीएहिं सलागापल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए पडिसलागापल्लं भरसु । तइएहिं पडिसलागापल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए महासलागापल्लं भरसु । भरित्ता उक्खिप्पंति उक्खिविता एगा दीवे एगा समुद्दे विक्किरिज्जंति, जाव कमेण चत्तारि वि पुण्णा । १३४॥१३८॥

पढमतिपल्लुद्धरिया दीवुदही पल्लचउसरिसवा च ।
सव्वो वि एस रासी रूवूणो परमसंखिज्जं ॥१३५॥१३९॥

पढमे तिहिं तिहिं पल्लेहिं दीवसमुद्देसु जे पक्खित्ता सरिसवा, ते उद्धरिया, चउपल्लसरिसवा य । "सव्वो वि एस रासी रूवूणो परमसंखेज्जो" एस सरिसवनिचओ रूवूणो परमसंखेज्जयं जेट्ठं । एमेव रूवजुओ परित्ताऽसंखयं जहण्णं ॥१३५॥१३९॥

[1]तं विवरिय इक्किक्के ठाणे ठवेसु तत्तिअं रासिं ।
अण्णुण्णब्भासे ताण होइ चउत्थं असंखिज्जं ॥१३७॥१४०॥

जावइया सरिसवा तावइया पत्तेयं पत्तेयं रासीओ ठविज्जंति । ताओ कप्पणाए दस दस सरिसवा उ दस रासीओ कीरंति । अण्णुण्णब्भासे ताण होइ कोडीसहस्सं तु ॥१३७॥१४०॥

तं पुण जहण्णजुत्तं आवलियाए वि एत्तिआ समया ।
एअकमा बितिचउपंचमे अ अण्णुण्णअब्भासे ॥१३८॥१४१॥

चउत्थं । "*एयकमा बितिचउपंचमे य अण्णुण्णअब्भासे*", चउत्थस्स अण्णुण्णब्भासे सत्तमं असंखासंखयं होइ । सत्तमस्स अण्णोण्णब्भासे पढमं परित्ताणंतयं होइ । पढमस्स अण्णोण्णब्भासे चउत्थं जुत्ताणंतयं होइ । चउत्थस्स अण्णोण्णब्भासे सत्तमं अणंताणंतयं होइ ॥१३८॥१४१॥

[2]एत्तियमुत्तं सुत्ते अन्नमयमओ चउत्थयमसंखं ।
वग्गियमिक्कसि जायइ जहन्नयमसंखयासंखं ॥१४०॥१४२॥

एत्तियं सुत्ते । अण्णस्स आयरियस्स मएणं चउत्थं असंखेज्जं एक्कवारवग्गियं सत्तमं असंखासंखयं भवइ ॥१४०॥१४३॥

रूवजुअं तं मज्झं सव्वहि रूवूणमाइमुक्कोसं ।
तं वग्गिउं तिवारं दस पक्खेवे खिवसु एए ॥१४१॥१४३॥

---

१. "इय तिविहं संखेज्जं असंखयमिओ उ जेट्ठसंखेज्जं रूवजुयं संजायइ जहण्णयपरित्तासंखं ॥१३६॥ इति गाथा-ऽन्यत्रास्ति, इह पुनर्वृत्तौ नाधिकृतेति । २. 'सत्तमअसंखपढमचउसत्तमा-ऽणंतया य । होंति कमा रूवजुया ते मज्झा रूवूणा पच्छिमुक्कोसा ॥१३९॥ इति गाथा-ऽन्यत्र विद्यते, अत्र वृत्तौ नाधिकृतेति ।

"तं वग्गियं तिवारं"ति तं कप्पणाए मयं १००। एक्कवारवग्गियं १००००। बीयवार-वग्गियं १००००००००। तइयवारवग्गियं १००००००००००००००००। तह वि उक्कोसो न भवइ तओ दसपक्खेवा खिप्पंति । ते य इमे ॥१४१॥१४३॥

लोगागासपएसा १ धम्मा२धम्मे३गजीवदेसा य ४ ।
दव्वट्ठिया णिगोया ५ पत्तेआ चेव बोधव्वा ६ ॥१४२॥१४४॥

चउदसरज्जू लोगो, तस्स पएसा पढमं १ । धम्मत्थिकायपएसा बीयं २ । अधम्मत्थिकाय-पएसा तइयं ३ । एगजीवप्पएसा चउत्थं ४ । 'दव्वट्ठिय'त्ति बायर-सुहुमनिगोयपज्जत्ता-ऽपज्जत्तग-चउक्कसरीररासी पंचमं ५ । 'पत्तेय'त्ति पत्तेसरीरा ते य अट्ठावीसाए जीवट्ठाणेसु जीवरासी छट्ठं ६ ॥१४२॥१४४॥

ठिइबंधज्झवसाया ७ अणुभागा ८ जोगछेअपलिभागा ९ ।
दोण्ह य समाण समया १० असंखपक्खेवया दस वि ॥१४३॥१४५॥

"ठिइबंधज्झवसाय"त्ति कसायोदयभेया सत्तमं ७ । 'अणुभाग'त्ति, अणुभागबंधज्झ-वसाया अट्ठमं ८ । "जोगछेयपलिभाग"त्ति, जोगो जीवविरियं; सो बुद्धीए छिज्जइ; छिज्जमाणो छिज्जमाणो जाहे भागं न देइ ताहे सो जोगपलिभागो वुच्चइत्ति । ते य एगजीवस्स असंखेज्जाणं लोगाणं जावइया आगासप्पएसा तावइया अविभागापलिच्छेया दिट्ठा । उक्तं च—

"पण्णाछेयणछिण्णा लोगासंखेज्जगप्पएससमा । अविभागा एक्केक्के होंति पएसे जहण्णेणं ॥"॥९॥

"दोण्ह समाण य समय"त्ति दोण्हि, ओसप्पिणीउस्सप्पिणीओ, तासिं जा समयरासी; एस दसमो १० । एए दस पक्खेवा पक्खित्ता तह वि उक्कोसं न भवइ ॥१४३॥१४५॥

पुण वग्गिए तिखुत्तो तम्मि भवे लहुपरित्तयाणंतं ।
तो तत्तिअवाराओ तत्तिअमित्ते ठवसु रासी ॥१४४॥१४६॥

तो पुव्वक्कमेण तिण्णि वारा वग्गिज्जइ । तओ उक्कोसं असंखेज्जासंखेज्जओ लंघिऊण जहण्णे परित्ताणंतए पडियं ॥१४४॥१४६॥

ताणण्णोण्णब्भासे जुत्ताणंतं जहण्णयं भवइ ।
एवइअ अभव्वजिआ रासिम्मि अ वग्गिए तम्मि ॥१४५॥१४७॥

कंठा ॥१४५॥१४७॥

जायमणंताणंतं जहण्णयं तं य वग्गसु तिवारं ।
तह वि परं तं न भवे, तो खिवसु इमे छ पक्खेवे ॥१४६॥१४८॥

पढमेहिं=अणवट्ठियपल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए सलागापल्लं भरसु । बीएहिं सलागापल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए पडिसलागापल्लं भरसु । तइएहिं पडिसलागापल्लेहिं एक्केक्काए सलागाए महासलागापल्लं भरसु । भरित्ता उक्खिप्पंति उक्खिवित्ता एगा दीवे एगा समुद्दे विक्खिरिज्जंति, जाव कमेण चत्तारि वि पुण्णा । १३४॥१३८॥

पढमतिपल्लुद्धरिया दीवुदही पल्लचउसरिसवा च ।
सव्वो वि एस रासी रूवूणो परमसंखिज्जं ॥१३५॥१३९॥

पढमे तिहिं तिहिं पल्लेहिं दीवसमुद्देसु जे पक्खित्ता सरिसवा, ते उद्धरिया, चउपल्लसरिसवा य । "सव्वो वि एस रासो रूवूणो परमसंखेज्जो" एस सरिसवनिचओ रूवूणो परमसंखेज्जयं जेट्ठं । एमेव रूवजुओ परित्ताऽसंखयं जहण्णं ॥१३५॥१३९॥

[1]तं विवरिय इक्किक्के ठाणे ठवेसु तत्तिअ रासिं ।
अणुणण्णब्भासे ताण होइ चउत्थं असंखिज्जं ॥१३७॥१४०॥

जावइया सरिसवा तावइया पत्तेयं पत्तेयं रासीओ ठविज्जंति । ताओ कप्पणाए दस दस सरिसवा उ दस रासीओ कीरंति । अण्णुण्णब्भासे ताण होइ कोडीसहस्सं तु ॥१३७॥१४०॥

तं पुण जहण्णजुत्तं आवलियाए वि एत्तिआ समया ।
एअकमा बितिचउपंचमे अ अणुणणअब्भासे ॥१३८॥१४१॥

चउत्थं । "एयकमा बितिचउपंचमे य अण्णुण्णअब्भासे", चउत्थस्स अण्णुण्णब्भासे सत्तमं असंखासंखयं होइ । सत्तमस्स अण्णोण्णब्भासे पढमं परित्ताणंतयं होइ । पढमस्स अण्णोण्णब्भासे चउत्थं जुत्ताणंतयं होइ । चउत्थस्स अण्णोण्णब्भासे सत्तमं अणंताणंतयं होइ ॥१३८॥१४१॥

[2]एत्तियमुत्तं सुत्ते अन्नमयमओ चउत्थयमसंखं ।
वग्गियमिक्कसि जायइ जहन्नयमसंखयासंखं ॥१४०॥१४२॥

एत्तियं सुत्ते । अण्णस्स आयरियस्स मएणं चउत्थं असंखेज्जं एक्कवारवग्गियं सत्तमं असंखासंखयं भवइ ॥१४०॥१४३॥

रूवजुअं तं मज्झं सव्वहिं रूवूणमाइमुक्कोसं ।
तं वग्गिउं तिवारं दस पक्खेवे खिवसु एए ॥१४१॥१४३॥

---

१. "इय तिविहं संखेज्जं असंखयमिओ उ जेट्ठसंखेज्जं रूवजुयं संजायइ जहण्णयपरित्तासखं ॥१३६॥ इति गाथा-ऽन्यत्रास्ति, इह पुनर्वृत्तौ नाधिकृतेति । २. 'सत्तमअसंखपढमचउत्थसत्तमा-ऽणंतया य । होंति कमा रूवजुया ते मज्झा रूवूणा पच्छिमुक्कोसा ॥१३९॥ इति गाथा-ऽन्यत्र विद्यते, अत्र वृत्तौ नाधिकृतेति ।

"तं वग्गियं तिवारं"ति तं कप्पणाए सयं १००। एक्कवारवग्गियं १००००। बीयवारवग्गियं १००००००००। तइयवारवग्गियं १००००००००००००००००। तह वि उक्कोसो न भवइ तओ दसपक्खेवा खिप्पंति। ते य इमे ॥१४१॥१४३॥

लोगागासपएसा १ धम्मा२धम्मे३गजीवदेसा य ४।
दव्वट्ठिया णिगोया ५ पत्तेया चेव बोधव्वा ६।।१४२॥१४४॥

चउदसरज्जू लोगो, तस्स पएसा पढमं १। धम्मत्थिकायपएसा बीयं २। अधम्मत्थिकायपएसा तइयं ३। एगजीवप्पएसा चउत्थं ४। 'दव्वट्ठिय'त्ति बायर-सुहुमनिगोयपज्जत्ता-ऽपज्जत्तगचउक्कसरीररासी पंचमं ५। 'पत्तेय'त्ति पत्तेसरीरा ते य अट्ठावीसाए जीवट्ठाणेसु जीवरासी छट्ठं ६ ॥१४२॥१४४॥

ठिइबंधज्झवसाया ७ अणुभागा ८ जोगछेअपलिभागा ९।
दोण्ह य समाण समया १० असंखपक्खेवया दस वि ॥१४३॥१४५॥

"ठिइबंधज्झवसाय"त्ति कसायोदयभेया सत्तमं ७। 'अणुभाग'त्ति, अणुभागबंधज्झवसाया अट्ठमं ८। "जोगछेयपलिभाग"त्ति, जोगो जीवविरियं; सो बुद्धीए छिज्जइ; छिज्जमाणो छिज्जमाणो जाहे भागं न देइ ताहे सो जोगपलिभागो वुच्चइत्ति। ते य एगजीवस्स असंखेज्जाणं लोगाणं जावइया आगासप्पएसा तावइया अविभागापलिच्छेया दिट्ठा। उक्तं च—

"पण्णाछेयणछिण्णा लोगासंखेज्जगप्पएससमा। अविभागा एक्केक्के होंति पएसे जहण्णेणं॥"॥९॥

"दोण्ह समाण य समय"त्ति दोण्हि, ओसप्पिणीउस्सप्पिणीओ, तासिं जा समयरासी; एस दसमो १०। एए दस पक्खेवा पक्खित्ता तह वि उक्कोसं न भवइ ॥१४३॥१४५॥

पुण वग्गिए तिखुत्तो तम्मि भवे लहुपरित्तयाणंतं।
तो तत्तिअवाराओ तत्तिअमित्ते ठवसु रासी ॥१४४॥१४६॥

तो पुव्वक्कमेण तिण्णि वारा वग्गिज्जइ। तओ उक्कोसं असंखेज्जासंखेज्जओ लंघिऊण जहण्णे परित्ताणंतए पडियं ॥१४४॥१४६॥

ताणण्णोण्णब्भासे जुत्ताणंतं जहण्णयं भवइ।
एवइअ अभव्वजिआ रासिम्मि अ वग्गिए तम्मि ॥१४५॥१४७॥

कंठा ॥१४५॥१४७॥

जायमणंताणंतं जहण्णयं तं य वग्गसु तिवारं।
तह वि परं तं न भवे, तो खिवसु इमे छ पक्खेवे ॥१४६॥१४८॥

पुव्वकमेण तिवारा वग्गिज्जइ; तह वि उक्कोसं न भवइ। तओ छ पक्खेवा खिप्पंति ॥१४६॥१४८॥

सिद्धा १ निगोअजीवा २ वणस्सई ३ काल४पुग्गला चेव ५ ।
सव्वमलोगागासं ६ छप्पेऽणंतपक्खेवा ॥१४७॥१४९॥

सिद्धाणंताः तेसिं रासी पढमं १। "निगोयजीव" त्ति सुहुमबायरनिगोयपज्जत्तापज्जत्तग-चउक्कजीवरासी बीयं २। "वणस्सइ"ति निगोयचउक्कजीवा पत्तेयवणा य वणस्सई वुच्चई तइयं। "काल"त्ति, अईयअणागयद्धासमयरासी चउत्थं ४। "पुग्गल"त्ति, सव्वपुग्गलरासी पंचमं ५। सव्वमलोगागासं"ति, लोगस्स च अलोगस्स च आगासपएसा। एए छ अणंतरासी उक्खिप्पंतिः तह वि उक्कस्सं न भवइ ॥१४७॥१४९॥

पुण तिक्खुत्तो वग्गिअ केवलवरनाणदंसणे खित्ते ।
भवइ अणंताणंतं जिट्ठं ववहरइ पुण मज्झं ॥१४८॥१५०॥

पुव्वकमेण तिण्णि वारा उ वग्गिज्जइ; तह वि उक्कोसं न भवइ। तओ केवलनाणदंसणस्स य जो नेयविसओ, सो खिप्पए। एवं उक्कोसं भवइ ॥१४८॥१५०॥

'अन्नुन्नब्भासस्समं वग्गिअसंवग्गिअं तओ केइ ।
सत्तमअसंखणंते तिवग्गठाणे तमाहु तिहा ॥१४९॥१५१॥

'जा विही अण्णुण्णब्भासे, सा विही वग्गियसंवग्गिए' इति अण्णे आयरिया। तहा "सत्तमअसंखणंते"ति, वग्गट्ठाणेसु तं आहु—उक्तवन्तः। तिण्णि वारा वग्गियं दसपक्खेवा, पुणो तिण्णि वारा वग्गियं। एवं ६ छसु वारासु पत्तेयं पत्तेयं कमेण अण्णुण्णब्भासं कारविंति। एवं सत्तमअणंते वि छसु वि वारासु अण्णुण्णब्भासं कारविंति ॥१४९॥१५१'॥

नियगुरुवयणाउ सुयं सुयाउ जं सुमरियं च तं लिहियं ।
जं पुण उस्सुत्तमिहं मिच्छामिह दुक्कडं तस्स ॥छ॥६०३॥

॥ टीकया समलङ्कृतं ॥ श्रीमज्जिनवल्लभगणिप्रणीतं ॥

॥ श्री सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणं समाप्तम् ॥

---

१ अत्रा-ऽनधिकृतमप्यन्यत्र विद्यमानं व्याख्यातव्येदं गाथायुग्ममन्ते लिख्यते—
"नेयअइगहणयाए निविडअण्णाणेण नियमईए तहा । जमिहुस्सुत्तं वुत्तं मिच्छा मे दुक्कडं तस्स ॥१५०॥
जिणवल्लभगणिलिहियं सुहुमत्थवियाररलयमिणं सुयणा । निसुणंतु सुणंतु सयं परे वि बोहिंतु सोहिंतु ॥ १५१॥"

अथ

❋ प्रथमे परिशिष्टे ❋

षडशीतिप्रकरणसत्कान्येकादश यन्त्रकानि

स्थान योगोपयोग-लेश्या-बन्धो-दयो दीरणा-सत्तास्थान-बन्धहेत्व-ऽल्पबहुत्वप्रदर्शियन्त्रकम् (प्रा० ४ कर्म गाथा

योगाः	१२	उपयोगाः	६	लेश्याः	बन्ध-स्था०	उदय-स्था०	उदीर-णास्था०	सत्ता-स्था०	बन्धहेतवः →	५७
औ०मि० कार्मण०	३	मत्यज्ञान० श्रुताज्ञान० अचक्षुर्दर्शन०	३	अशुभाः	७-८	८	७-८	८	ध्रुव० ३१ +२ योग० ✡	३३
,,	३	,,	४	३+तेजसी		...	...	...	,, + २ ,,	३३
,,	३	,,	३	अशुभा.	...	...	...	....	,, + २ ,,+ १ इन्द्रिय०	३४
,,	३	,,	३	,,	.	...	.	...	,, + २ ,, +२ ,,	३५
,,	३	,,	३	,,	...	....	..		,, + २ ,, +३ ,,	३६
,,	३	,,	३	,,	...	...	....	...	,, + २ ,,+ ४ ,, +२वेद. ▽	३९
१२+ वै० मि०	८	ज्ञानत्रयमज्ञानत्रय चक्षुरचक्षु.	६	सर्वा	....	....	...	....	,, + ३ ,,+ ४ ,,+ २ ,,	४०
औदा-रिक०	३	अज्ञानत्रयम-चक्षुर्दर्शनम्	३	अशुभा	...	....	..	...	,, + १ ,,	३२
औदा०+ वैक्रि०२	३	,,	३	,,	...	...	...	...	,, + ३ ,,	३४
३+वचो०	३	,,	३	,,	...	...	.	...	,, + ४ ,,+१,,	३४
,,	३	,,	३	,,	...		...		,, + ४ ,+२,,	३५
,,	४	३+चक्षुर्द०	३	,,	...	.	...	...	,, + ४ ,,+३,,	३६
,,	४	,,	३	,,	...	...	....	....	,, + ४ ,,+४,,+२ वेद० ▽	३९
सर्वे	१२	सर्वे	६	सर्वाः	७-८-६-१	८-७-४	८-७-६-५-२	८-७-४	सर्वे	५७
६-७-८		८-९-१०		१०	११	११	११	११	१०-श्रीरामदेवगणिकृतवृत्तौ	

१, षट्कायस्पर्शेन्द्रियाविरतिसप्तकं ७, षोडशकषायाः १६, हास्यषट्कं ६ नपुंसकवेदश्चेत्येकत्रिंशद् ध्रुवबन्धहेतवोऽत्र बोध्याः।
ज्ञेयम् । प्रस्तुतचतुर्थकर्मग्रन्थे तस्याऽदर्शितत्वात् । △ अस्माकमागमपाठस्यानुपलम्भात्। ▽ पर्याप्तेऽपर्याप्ते चासंज्ञिनि वेदद्वयमाकार

चतुर्दशजीवस्थानेषु मार्गणास्थानप्रदर्शियन्त्रकम्

(चतुर्दशस्वपि जीवस्थानेषु मूलमार्गणास्थानानि चतुर्दशा-ऽपि सन्ति) (प्रा० ४ कर्म० गा० १० श्रीरामदेवगणिप्रणीतवृत्तौ पृष्ठ०-७-८)

मार्गणा० → जीवस्थानानि ↓	गतिः	इन्द्रियम्	कायः	योगः	वेदः	कषाय	ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेश्या	भव्य	सम्य०	संज्ञी	आहा	सभ्रिताः	असभ्रिताः
अप. सूक्ष्मैके०	तिर्यग. १	एकेन्द्रिय. १	स्थावरकाया ५	काययोग० १	नपु.०१	कषा० ४	अज्ञानद्वयम्-२	असंयम. १	अचक्षु०१	प्रथमाः ३ अशुभाः	भव्या-ऽभव्यौ २	मिथ्यात्व १	असंज्ञि०१	आहा० अना. २	२६	३६
प. ,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	आहा १	[illegible]	३७
❀ अप. बादरैके०	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	प्रथमा ४	,,	मिथ्या० सास्वा० २	,,	२	२८	३५
प० ,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मिथ्या० १	,,	आहा०	२५	३७
❀ अप० द्वीन्द्रिय०	,,	द्वीन्द्रिय.-१	त्रसका -१	,,	,,	,,	,,	,,	,,	प्रथमाः ३	,,	मिथ्या० सास्वा० २	,,	२	२३	३९
प. ,,	,,	,,	,,	काययो. वचोयो. २	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मिथ्या० १	,,	आहा०	२२	४०
❀ अप. त्रीन्द्रिय०	,,	त्रीन्द्रिय. १	,,	काययो० १	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मिथ्या० सास्वा० २	,,	२	२३	३६
प. ,,	,,	,,	,,	काययो. २ वचोयो	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मिथ्या०	,,	आहा०	२२	४०
❀ अप० चतुरिन्द्रिय०	,,	चतुरिन्द्रिय० १	,,	काययो. १	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मिथ्या० सास्वा० २	,,	२	२३	३६
प. ,,	,,	,,	,,	काययो. २ वचोयो.	,,	,,	,,	,,	चक्षुरचक्षु. २	,,	,,	मिथ्या० १	,,	आहा०	२३	३९
अप. असंज्ञिपञ्चे० ❀	मनु तिर्य. △ २	पञ्चेन्द्रिय० १	,,	काययो. १	वेदत्रिकम् † ३	,,	,,	,,	अचक्षुर्द० १	,,	,,	मिथ्या० सास्वा० २	,,	२	२६	३६
प. ,,	तिर्यग. १	,,	,,	काययो. २ वचोयो०	† ,,	,,	,,	,,	चक्षुरचक्षुर्द० २	,,	,,	मिथ्या०	,,	आहा०	२५	३७
अप. संज्ञिपञ्चे० ❀	गतिचतुष्कम्	,,	,,	काययो० १	,,	,,	ज्ञानत्रिकमज्ञानत्रिकम् ६	,,	चक्षुरवधिद० २	सर्वाः ६	,,	मिश्रं विना ५	संज्ञि० १	२	३६	२३
प. ,,	,,	,,	,,	योगत्रिकम् ३	,,	,,	ज्ञान० ५ अज्ञान० ३	सर्वभेदाः ७	दर्शनचतुष्कम् ४	,,	,,	सर्वभेदाः ६	,,	,,	५२	१०

❀ इहा-ऽपर्याप्ताः करणापर्याप्ता विवक्षिता ज्ञेयाः । तेनापर्याप्तबादरैकेन्द्रिये लेश्याचतुष्कम् , अपर्याप्तबादरैकेन्द्रियाद्यपर्याप्तजीवभेदषट्के सास्वादनं च संगतं बोध्यम् ।

† असंज्ञिपञ्चेन्द्रिये वेदत्रिकं तु आकारमात्रमाश्रित्य विज्ञेयम् , अन्यथा केवलं नपुंसकवेदः । △ अपर्याप्तासंज्ञिपञ्चेन्द्रिये मतान्तरेण मनुष्यगतिर्न भवति ।

गुणस्थान योगोपयोग-लेश्या-बन्धो-दयो-दीरणा-सत्तास्थान-बन्धहेतुत्व-ऽल्पबहुत्वप्रदर्शियन्त्रकम् (प्रा० ४ कर्म गा:

१५	योगाः	१२	उपयोगाः	६	लेश्याः	बन्ध-स्था०	उदय-स्था०	उदीर-णास्था०	सत्ता-स्था०	बन्धहेतवः →	५७
२	औ०मि० कार्मण०	३	मत्यज्ञान० श्रुताज्ञान० अचक्षुर्दर्शन०	३	अशुभाः	७-८	८	७-८	८	ध्रुव० ३१ +२ योग० ✶	३३
२	,,	३	,,	४	३+तेजसी	...	...	...	...	,, + २ ,,	३३
२	,,	३	,,	३	अशुभा.	...	...	...	....	,, + २ ,,+ १ इन्द्रिय०	३४
२	,,	३	,,	३	,,	...	...	...	...	,, + २ ,, +२ ,,	३५
२	,,	३	,,	३	,,	...	....	...	...	,, + २ ,, +३ ,,	३६
२	,,	३	,,	३	,,	...	...	....	...	,, + २ ,,+ ४ ,,+२वेद. ▽	३८
३	२+ वै० मि०	८	ज्ञानत्रयमज्ञानत्रय चक्षुरचक्षु.	६	सर्वा	...	....	...	....	,, + ३ ,,+ ४ ,,+ २ ,,	४०
१	औदा-रिक०	३	अज्ञानद्वयम-चक्षुर्दर्शनम्	३	अशुभा.	...	....	...	...	,, + १ ,,	३[illegible]
३	औदा०+ वैक्रि०२	३	,,	३	,,	...	...	...	....	,, + ३ ,,	३[illegible]
४	३+वचो०	३	,,	३	,,	...	...	...	...	,, + ४ ,,+१,,	३[illegible]
४	,,	३	,,	३	,,	...		...		,, + ४ , +२,,	३[illegible]
४	,,	४	३+चक्षुर्द०	३	,,	...	...	...	...	,, + ४ ,,+३,,	३[illegible]
४	,,	४	,,	३	,,	...	...	....	....	,, + ४ ,,+४,,+२ वेद० ▽	३[illegible]
१५	सर्वे	१२	सर्वे	६	सर्वाः	७-८-६-१	८-७-४	८-७-६ ५-२	८-७-४	सर्वे	५[illegible]
६-७-८		८-९-१०		१०		११	११	११	११	१०-श्रीरामदेवगणिकृतवृत्तौ	

[illegible]थ्यात्व १, षट्कायस्पर्शेन्द्रियाविरतिसप्तक ७, षोडशकषायाः १६, हास्यषट्क ६, नपुंसकवेदवर्जैरयेकत्रिंशद् ध्रुवबन्धहेतवोऽत्र बोध[illegible]
[illegible]रेणोक्त ज्ञेयम् । प्रस्तुतचतुर्थकर्मग्रन्थे तस्याऽविवक्षितत्वात् । △ अस्माकमागमपाठस्यानुपलम्भात्। ▽ पर्याप्ते ऽपर्याप्ते चासंज्ञिनि वेदद्वया[illegible]

चतुर्दशजीवस्थानेषु मार्गणास्थानप्रदर्शियन्त्रकम्

(चतुर्दशस्वपि जीवस्थानेषु मूलमार्गणास्थानानि चतुर्दशाऽपि सन्ति) (प्रा० ४ कर्म० गा० १० श्रीरामदेवगणिप्रणीतवृत्तौ पृष्ठ ८-९-८)

मार्गणा० → जीवस्थानानि ↓	गतिः	इन्द्रियम्	कायः	योगः	वेद	कषाय	ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेश्या	भव्य.	सम्य०	सञ्ज्ञी	आहा.	समभिताः	असमभिताः
अप. सूक्ष्मैके०	तिर्यग. १	एकेन्द्रिय. १	स्थावरकाया ५	काययोग० १	नपुं.०१	कषा० ४	अज्ञानद्वयम्-२	असंयम १	अचक्षु०१	प्रथमाः ३ अशुभाः	भव्या-ऽभव्यौ २	मिथ्यात्व १	असंज्ञि०१	आहा० अना.२	२६	३६
प. ,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	आहा १	२५	२७
❀ अप. बादरैके०	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मिथ्या० सास्वा० २	,,	२	२८	३४
प० ,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	प्रथमा. ४	,,	मिथ्या० १	,,	आहा०	२५	३७
❀ अप० द्वीन्द्रिय०	,,	द्वीन्द्रिय.-१	त्रसका -१	,,	,,	,,	,,	,,	,,	प्रथमा. ३	,,	मिथ्या० सास्वा० २	,,	२	२३	३९
प. ,,	,,	,,	,,	काययो वचोयो. २	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मिथ्या० १	,,	आहा०	२२	४०
❀ अप. त्रीन्द्रिय०	,,	त्रीन्द्रिय १	,,	काययो० १	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मिथ्या० सास्वा० २	,,	२	२३	३६
प. ,,	,,	,,	,,	काययो २ वचोयो	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मिथ्या०	,,	आहा०	२२	४०
❀ अप० चतुरिन्द्रिय०	,,	चतुरिन्द्रिय० १	,,	काययो. १	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मिथ्या० सास्वा० २	,,	२	२३	३६
प. ,,	,,	,,	,,	काययो. २ वचोयो.	,,	,,	,,	,,	चक्षुरचक्षु० २	,,	,,	मिथ्या० १	,,	आहा०	२३	३९
अप. असंज्ञिपञ्चे० ❀	मनु तिर्य. △ २	पञ्चेन्द्रिय० १	,,	काययो. १	वेदत्रिकम् ↑ ३	,,	,,	,,	अचक्षुर्दं० १	,,	,,	मिथ्या० सास्वा० २	,,	२	२६	३६
प. ,,	तिर्यग्ग. १	,,	,,	काययो. २ वचोयो०	↑ ,,	,,	,,	,,	चक्षुरचक्षुर्द० २	,,	,,	मिथ्या०	,,	आहा०	२५	३७
अप. संज्ञिपञ्चे० ❀	गतिचतुष्कम्	,,	,,	काययो० १	,,	,,	ज्ञानत्रिकमज्ञानत्रिकम् ६	,,	चक्षुरचक्षुर्द० २	सर्वाः ६	,,	मिश्रत्वाभावात् ५	संज्ञि० १	२	३६	२३
प. ,,	,,	,,	,,	योगत्रिकम् ३	,,	,,	ज्ञान० ५ अज्ञान० ३	सर्वभेदाः ७	दर्शनचतुष्कम् ४	,,	,,	सर्वभेदाः ६	,,	,,	५२	५०

❀ इहा-ऽपर्याप्ताः करणापर्याप्ता विवक्षिता ज्ञेयाः। तेनापर्याप्तबादरैकेन्द्रिये लेश्याचतुष्कम्, अपर्याप्तबादरैकेन्द्रियाद्यपर्याप्तजीवभेदषट्के सास्वादनं च दर्शितं बोध्यम्। असंज्ञिपञ्चेन्द्रिये वेदत्रिकं तु आकारमात्रमाश्रित्य विज्ञेयम्, अन्यथा केवलं नपुंसकवेदः। △ अपर्याप्तासंज्ञिपञ्चेन्द्रिये मतान्तरेण मनुष्यगतिर्भणिता ।

मार्गणास्थानेषु जीवस्थानप्रदर्शियन्त्रकम् (चतुर्थप्राचीनकर्मग्रन्थे गा० १८ तः २४)

...यम्	कायः	योगः	वेदः	कषायः	ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेश्याः	भव्यः	सम्यक्त्वम्	संज्ञी	आहारी
					ज्ञान.३विभङ्ग ४		अवधि.१	पद्म० शुक्ला०२		उप क्षायो क्षा० ३	संज्ञी १	
		काययो० १	नपुंस. १	सर्वे ४	अज्ञानद्वय० २	अविरत० १	अचक्षु० १	अशुभाः ३	भव्याभव्यौ२	मिथ्या०१		आहा. १
...द्रिय. १	पृथिव्यादि ५			–								
...द्रिय० १												
...य. १												
...न्द्रिय.१												
...य.१			स्त्रीपुंसौ २									
	त्रसका. १											
		मनोयो० १			मन प० केवल० २	शेष० ६	केवल०१			मिश्र० १		
		वचोयो० १										
				–			चक्षुद० १					
								तेजो०१				
										सास्वादन. १		
											असं १	
												अनाहा.१

...विद्वादशमार्गणासु संज्ञ्यपर्याप्तः करणत एव बोध्यः, न तु लब्धितः । ✶ मनुष्यगतौ लब्धित एवापर्याप्तासञ्ज्ञी विज्ञेय. । × स्त्र...
...त एव । ▽ तेजोलेश्यामार्गणायामपर्याप्तो बादरैकेन्द्रियसञ्ज्ञी करणत एव । !# सास्वादने पञ्चप्यऽपर्याप्ता. करणापर्याप्ता अ...
...। ।

मार्गणास्थानेषु गुणस्थानप्रदर्शियन्त्रकम् (प्राचीनचतुर्थकर्मग्रन्थे गाथा २७ तः ३३)

संख्या	मार्गणा← ←गुणस्था	गतिः	इन्द्रियम	कायः	योगः	वेदः	कषायः	ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेश्याः	भव्यः	सम्यक्त्वम्	संज्ञी	आहारी	मार्गणा संख्या	गाथाङ्काः
४	१त.४ ↓	नरकदेव०२							असंयम० १							३	२७-३०
५	१त:५	तिर्य०१														१	२७
१४	सर्वाणि *	मनुष्य० १	पञ्चे.१	त्रसका०१								भव्य.१		संज्ञी१		५	२७-२८-३१
२	१-२		शेष०४	पृथ्व्यब्वन० ३										असं.१		८	२७ २८-३०
१	१			तेजोवायु०२								अभ.१	मिथ्या०१			४	२८-३१-३०
१३	१त १३				सर्वे ३,						शुक्ला०१				आहा१	५	२८-३१-३३
९	१त ९					सर्वे३,	शेष०३									६	२८
१०	१त:१०						लोभः									१	२८
९	४त.१२							ज्ञान०३		अव.१						४	,,
७	६त १२							मन.प०१								१	,,
२	१३-१४							केवल०१		के.१						२	,,
३	१त:२/३वा							अज्ञान०३								३	,,
४	६त ९								सामा.छेदो २							२	३०
२	६-७								परिहार०१							१	,,
१	५								देश० १							१	,,
१	१०								सूक्ष्म० १							१	,,
४	११त:१४								यथाख्यात०१							१	,,
१२	१त १२									शेष०२						२	३१
६	१त.६ △										प्रथमा ३					३	,,
७	१त:७										तेज पद्म २					२	,,
४	४त ७												वेदक०१			१	३०
११	४त १४												क्षायक १			१	,,
८	४त:११												उपशम: १			१	,,
१	३												मिश्र०१			१	,,
१	२												सास्वा.१			१	,,
५	१-२-४-१३-१४														अना-हा०१	१	३३

* संज्ञिनि द्रव्यमनोऽपेक्षया सयोगिकेवलिगुणस्थानम् , प्राचीनद्रव्यमनोऽपेक्षया-ऽयोगिकेवलिगुणस्थानम् । △ मतान्तरे–१ तः ४ गुणस्थानानि ।

मार्गणास्थानेषु योगप्रदर्शियन्त्रकम् (प्राचीनचतुर्थकर्मग्रन्थे गा० ३४ त० ४१)

[...]-ऽसत्या-ऽमृषामनश्चतुष्कवचश्चतुष्कौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विककार्मणकाययोगलक्षणाः पञ्चदश योगाः (गा[...]

इन्द्रियम्	कायः	योगः	वेद.	कषायः	ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेश्या	भव्यः	सम्यक्त्वम्	संज्ञी	आहारक.	मार्गणा संख्या
													२
			स्त्री० १		अज्ञान० ३	असंयम० १			अभव्य १	मिथ्या. ३ सास्वा० उपशम०			१०
पञ्चे० १	त्रस. १	काय. १	शेष० २	सर्व. ४	ज्ञान० ३		अचक्षुरवधि २	सर्वा: ६	भव्य० १	क्षा०, क्षायो० २	सञ्ज्ञा १		२५
एके० १	वायु. १												२
शेष० ३													३
	शेष० ४												४
		शेष० २			मन.पर्यव. १	सामा० छेदो० २	चक्षु० १						६
					केवल० १		केवल० १						२
						परिहार० सूक्ष्म० २							२
						यथाख्यात. १							१
						देश० १							१
										मिश्र० १			१
											असंज्ञी १		१
												आहा. १	१
												अना. १	१

मार्गणास्थानेषूपयोग–लेश्याप्रदर्शियन्त्रकम् (प्राचीनचतुर्थकर्मग्रन्थे गाथा ४२ तः ५२)

ओघतो ज्ञानपञ्चक-ऽज्ञानत्रिक-दर्शनचतुष्करूपा द्वादश उपयोगाः कृष्ण-नील कापोत-तेजः-पद्म शुक्ललेश्यालक्षणाः षड् लेश्याश्च

संख्या	मार्गणा० → ← उपयोगाः ↓	गतिः	इन्द्रियम्	कायः	योगः	वेदः	कषायः	ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेश्याः	भव्यः	सम्यक्त्वम्	संज्ञी	आहारक.	सर्वा.	गाथाङ्काः
											शुक्ला १	भव्य. १		संज्ञी १	आहा१	१३	४२-४४
१२	सर्वे	मनु०१	पञ्चे.१	त्रस०१	सर्वे २,	सर्वे ३.										४	४२-४७
९	१२-केवल०२, मनःप०,	शेष० ३							असंयम० १							८	४३
३	अज्ञानद्वयमचक्षु०		शेष०३	शेष०५										असं. १		२	४४-४८
४	अज्ञान०२ चक्षुर-चक्षु०		चतुरि०१														
१०	१२-केवलद्विक०						सर्वे४			चक्षुरचक्षु २	शेषा.५					११	४५
७	ज्ञान०४ दर्शन०४							ज्ञान०४	संयमाः ४	अवधि०१			वेदक.उप. २			११	४६
२	केवलद्विकम्							केवल०१		केवल १						२	४५
५	अज्ञान०३चक्षुरचक्षु							अज्ञानत्रय. ३				अभव्य	सास्वा० मिथ्या २			६	४८
२	ज्ञानपञ्चक,दर्शन०३								यथाख्यात०१				क्षायिक. १			२	४५-४६
६	ज्ञान०३, दर्शन० ३								देश० १							१	४७
६	,, (अज्ञानमिश्र०)												मिश्र०१			१	४७
१०	१२-मनःप०,चक्षु०														अना.१	१	४६
	← लेश्याः ↓																
३	अशुभा	नरक०१	विकले. ३	तेजोवा०२												७	५०
६	सर्वाः	शेष० ३	पञ्चे०१	त्रस०१	सर्वे ३	सर्वे३	सर्वे४	शेष०७	शेष० ५	शेष०२		सर्वे०२	सर्वे ६	सञ्ज्ञी	सर्वे०२	४१	५०
४	पद्मशुक्लवर्जाः		एके० १	शेष०३										असंज्ञी		५	५१
१	शुक्ला							केवल०१	सूक्ष्म० यथाख्या० २	केवल० १						४	५२
१	स्वीया										सर्वा ६					६	५२

मार्गणास्थानेष्वल्पबहुत्वप्रदर्शियन्त्रकम् (प्राचीनचतुर्थकर्मग्रन्थे गाथा ५३ तः ६४)

यम्	कायः		योगः		वेदः		कषायः		ज्ञा
सर्वाल्पाः	त्रसकायाः	सर्वाल्पाः	मनो०	सर्वाल्पाः	पुरुषाः	सर्वाल्पाः	मानिनः	सर्वाल्पाः	मनःपर्य०
विशेषाधिकाः	तेजःकायाः	असंख्यगुणाः	वचो०	असंख्यगुणाः	स्त्रियः	संख्यगुणाः	क्रोधवन्तः	विशेषाधिकाः	अवधि०
,,	पृथ्वीकायाः	विशेषाधिकाः	काय०	अनन्तगुणाः	नपुंसकाः	अनन्तगुणाः	मायिनः	,,	मति०
,,	अप्कायाः	,,					लोभवन्तः	,,	श्रुत०
अनन्तगु०	वायुकायाः	,,							विभङ्ग०
	वनस्पति०	अनन्तगुणाः							केवल०
									मत्य०
									श्रुता०
	५४-५५		५५		५६		५६		५७-

नम्	लेश्या		भव्यः		सम्यक्त्वम्		संज्ञी		आ
सर्वाल्पाः	शुक्ल०	सर्वाल्पाः	अभ०	सर्वाल्पाः	सास्वादन०	सर्वाल्पाः	संज्ञिनः	सर्वाल्पाः	अनाहारकाः
असङ्ख्य-गुणाः	पद्म०	संख्यगुणाः	भव्याः	अनन्तगुणाः	उपशम०	संख्यगुणाः	असंज्ञिनः	अनन्तगुणाः	आहारकाः
अनन्त-गुणाः	तेजो०	,,			मिश्र०	,,			
,,	कापोत०	अनन्तगुणाः			वेदक०	असंख्यगुणाः			
	नील०	विशेषाधिकाः			क्षायिक०	अनन्तगुणाः			
	कृष्ण०	,,			मिथ्या०	,,			
०	६१		६२		६३		६४		

मार्गणास्थानेषु बन्धहेतवः (प्राचीनचतुर्थकर्मग्रन्थे गाथा ६४ श्रीरामदेवगणिवृत्तौ पृष्ठ २३)

बन्धहेतवः		गतिः	इन्द्रियम	कायः	योगः	वेदः	कषाय	ज्ञानम	संयमः	दर्शनम	लेश्या	भव्यः	सम्यक्त्वम	संज्ञी	आहारी	सर्वा
																१
अना.मि ,औपु ,औ २आ २विना	५०	नरक०१										अभव्य	मिथ्या.			७
आहारकद्विक विना	५५	तिर्यं०१						अज्ञानत्र ३	असंयम १	अचक्षु	प्रथमा:४	भव्यः		सञ्ज्ञी		११
सर्वे	५७	मनुष्य०१	पञ्चे०१	त्रस०१	काय.१											१
अना.मि.,नपु . औ.२आहा.२विना	५२	देव०१														२
ध्रुव.३१+औ २,वै.२,काम १	२६		एके० १	वायु १												१
ध्रुव३१+औ.२ का,+१इन्द्रिय+वच	३६		द्वीन्द्रिय०१													१
ध्रुव.३१+,, ,, + २ ,, ,,	३७		त्रीन्द्रिय.१													१
,, + ,, ,, +३ ,+ ,,	३८		चतुरि०१													
,, + ,, ,,	३४			शेष०४												४
औ.. मि., कार्मण० विना	५५				वचो १					चक्षु.						२
अना मि , औमि . का:विना	५४				मनो १											१
पञ्चवक्त्र.२,आहा.२ विना	५३					स्त्री.१										१
,, × ,,	५५					शेष २										२
,, ३ ,,	५४						सर्वे४									४
मिथ्या.५, . अनं ४ ,,	४८							मतिश्रुता-वधि.		अवधि			क्षायि० क्षयो० २			६
सज्व ४,नोक९,औ.मि.,का विना योग १३	२६							मन पर्यव० १	सामा०छेदो २							३
मनो.२, वचो., २औ. २ का.	७							केवल०		केवल						१
सं.४,नोक.८,मनो ४.वचो ४,औ.८	२१								परिहार०१							१
मनो.४,वचो.४,औ २, का.,	११								यथाख्यात१							१
,, ,, औ ,स.लो.	१०								सूक्ष्म० १							१
अवि.११ क.८,नोक ७,यो.१३	३९								देश०१							७
अना० मि० विना	५६															७
५७-मि .५ अन ४,आहा.२	४६										पद्म-शुक्ल.					
उपशम ४६-औ.मि.,वै मि.,का०	४३												उपशम०			१
५७-मिथ्या ५, आहा.२	५०												मिश्र०१			१
चतुरि०३८+१इन्द्रिय,वेद २	४२												सास्वा० १			१
[illegible]र्मण विना	५६													मन.गी		१
अवि.१२,क.२६ कार्म..	४३														आहा.१	७
															अना.१	७

मार्गणास्थानेष्वल्पबहुत्वप्रदर्शियन्त्रकम् (प्राचीनचतुर्थकर्मग्रन्थे गाथा ४३ तः ६४)

म्	कायः		योगः		वेदः		कषाय.		ज्ञान
सर्वाल्पा	त्रसकायाः	सर्वाल्पा	मनो०	सर्वाल्पा.	पुरुषा	सर्वाल्पाः	मानिन.	सर्वाल्पाः	मनःपर्य०
विशेषाधिका	तेजःकायाः	असंख्यगुणा	वचो०	असंख्यगुणाः	स्त्रिय.	संख्यगुणा	क्रोधवन्त.	विशेषाधिकाः	अवधि.
,,	पृथ्वीकायाः	विशेषाधिकाः	काय०	अनन्तगुणाः	नपुंसकाः	अनन्तगुणा.	मायिनः	,,	मति०
,,	अप्कायाः	,,					लोभवन्तः	,,	श्रुत०
णन्तगु०	वायुकाया.	,,							विभङ्ग०
	वनस्पति०	अनन्तगुणाः							केवल०
									मत्य०
									श्रुता०
	५४-५५		५५		५६		५६		५७-५

[	लेश्या		भव्य.		सम्यक्त्वम्		संज्ञी		आहार
र्वाल्पाः	शुक्ल	सर्वाल्पाः	अभ.	सर्वाल्पा.	सास्वादन०	सर्वाल्पा.	संज्ञिन.	सर्वाल्पा	अनाहारकाः
संख्य-गुणा.	पद्म.	संख्यगुणाः	भव्याः	अनन्तगुणाः	उपशम०	संख्यगुणाः	असंज्ञिनः	अनन्त गुणाः	आहारका
अनन्त-गुणाः	तेजो.	,,			मिश्र०	,,			
,,	कापोत०	अनन्तगुणा.			वेदक०	असंख्यगुणा			
	नील०	विशेषाधिकाः			क्षायिक०	अनन्तगुणा			
	कृष्ण०	,,			मिथ्या०	,,			
	६१		६२		६३		६४		६५

ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेश्याः	भव्यः	सम्यक्त्वम्	संज्ञी	आहारी	संभवित्ता.	असंभवित्ता.
ज्ञान०३,अज्ञा०३, ६	असंयम० १	केवल० विना ३	अशुभाः ३	सर्व० २	सर्वाणि ६	संज्ञी	सर्व० २	३५	२७
,, ,, ६	,,+देशसं० २	,, ,, ३	सर्वाः ६	,, २	,, ६	सर्व०२	,, २	५१	११
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि ४	,, ६	,, २	,, ६	,, २	,, २	५०	१२
ज्ञान०३,अज्ञा०३ ६	असयम १	केवल० विना ३	,, ६	,, २	,, ६	संज्ञी १	,, २	३६	२३
अज्ञानद्विक० २	,, १	अचक्षु० १	प्रथमाः ४	,, २	सास्वा० मिथ्या० २	असंज्ञी १	,, २	२८	३४
,, ,, २	,, १	,, १	अशुभा ३	,, २	,, ,, २	,, १	,, २	२४	३८
,, ,, २	,, १	चक्षुरचक्षु०२	,,	,, २	,, ,, २	,, १	,, २	२५	३७
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि४	सर्वाः ६	,, २	सर्वाणि ६	सर्व० २	,, २	५३	९
अज्ञानद्वय० २	असंयम०१	अचक्षु० १	प्रथमाः ४	,, २	सास्वा० मिथ्या० २	असंज्ञी १	,, २	२४	३८
,, २	,, १	,, १	अशुभा. ३	,, २	मिथ्या० १	,, १	,, २	२२	४०
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि४	सर्वाः ६	,, २	सर्वाणि ६	सर्व० २	,, २	५६	६
,, ८	,, ७	,, ४	,, ६	,, २	,, ६	संज्ञी १	आहा०१	५१	११
,, ८	,, ७	,, ४	,, ६	,, २	,, ६	सर्व० २	,, १	५५	७
,, ८	,, ७	,, ४	,, ६	,, २	,, ६	,, २	सर्व० २	६२	०
ज्ञान०४,अज्ञा.३- ७	सूक्ष्म.यथा. विना ५	केवल०विना ३	,, ६	,, २	,, ६	संज्ञी १	,, २	४५	१७
,, ,, ७	परि० सू० यथा० ,,४	,, ,, ३	,, ६	,, २	,, ६	,, १	,, २	४४	१८
,, ,, ७	सूक्ष्म० यथा० विना ५	,, ,, ३	,, ६	,, २	,, ६	सर्व०२	,, २	५५	७
,, ,, ७	,, ,, ,, ५	,, ,, ३	,, ६	,, २	,, ६	,, २	,, २	५५	७
,, ,, ७	× ,, ,, ६	,, ,, ३	,, ६	,, २	,, ६	,, २	,, २	५६	६
,, × ४	सर्वे ७	,, ,, ३	,, ६	भव्य.१	सम्यक्त्वत्रिक. मिश्र० ४	संज्ञी १	,, २	४४	१८
,, × ४	संयमपञ्चकम् ५	,, ,, ३	,, ६	,, १	सम्यक्त्वत्रिक. ३	,, १	आहारी१	३७	२५
केवल०	यथाख्यात० १	केवल० १	शुक्ला०१	,, १	क्षायिक०१	,, १	सर्व०२	१५	४७
अज्ञानत्रिकम् ३	असंयम०१	चक्षुरचक्षु०२	सर्वाः ६	सर्व० २	सास्वा० मिथ्या० २	सर्व० २	,, २	४५	१७
,, ३	,,	,, २	,, ६	,, २	,, ,, २	संज्ञी० १	,, २	३५	२७

मूल० → ↓	संख्या	मार्गणास्थानानि उत्तर० ↘ ↓	गतिः	इन्द्रियम्	कायः	योगः	वेदः	कषायः
गतिः	१	नरक०	स्वीया० १	पञ्चे० १	त्रस०१	सर्वे ३	नपुं० १	सर्वे ४
	१	तिर्यग्गति०	,, १	सर्वाणि ५	सर्वे ६	,, ३	सर्वे ३	,, ४
	१	मनुष्य० ※	,, १	पञ्चे० १	त्रस०१	,, ३	,, ३	,, ४
	१	देव०	,, १	,, १	,, १	,, ३	स्त्रीपुंसो० २	,, ४
इन्द्रियम्	१	एकेन्द्रिय०	तिर्य.१	स्वीयम् १	त्रस० विना ५	काय १	नपुं० १	,, ४
	२	द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय	,, १	,, १	त्रस० १	काय-वचो०२	,, १	,, ४
	१	चतुरिन्द्रिय०	,, १	,, १	,, १	,, २	,, १	,, ४
	१	पञ्चेन्द्रिय०	सर्वा.४	,, १	,, १	सर्वे ३	सर्वे ३	,, ४
कायः	३	पृथ्व्य०वनस्पति०	तिर्य १	एकेन्द्रिय० १	स्वीयः १	काय.१	नपुं० १	,, ४
	२	तेजोवायु०	,, १	,, १	,, १	,, १	,, १	,, ४
	१	त्रस०	सर्वाः४	एके० विना ४	,, १	सर्वे ३	सर्वे ३	,, ४
योगः	१	मनो०	,, १	पञ्चे०१	त्रस० १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	वचो०	,, १	एके० विना ४	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	काय०	,, १	सर्वाणि ५	सर्वे ६	,, ३	,, ३	,, ४
वेदः	१	पुरुष० ×	नरक० विना३	पञ्चे.१	त्रस०१	,, ३	स्वीयः १	,, ४
	१	स्त्री० ×	,, ,, ३	,, १	,, १	,, ३	,, १	,, ४
	१	नपुं०	देव० ,, ३	सर्वाणि ५	सर्वे ६	,, ३	,, १	,, ४
कषायः	३	क्रोध-मान माया०	सर्वा. ४	,, ५	,, ६	,, ३	सर्वे ३	स्वीयः१
	१	लोभ०	,, ४	,, ५	,, ६	,, ३	,, ३	,, १
ज्ञानम्	३	मतिश्रुतावधि.△	,, ४	पञ्चे० १	त्रस०१	,, ३	,, ३	सर्वे ४
	१	मन.पर्यव०	मनुष्य० १	,, १	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	केवल०	,, १	,, १	,, १	,, ,,	०	०
	२	अज्ञानद्वय०	सर्वाः४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	,, ३	सर्वे ३	सर्वे ४
	१	विभङ्ग०	,, ४	पञ्चे० १	त्रस०१	,,	,, ३	,

केवलोन ज्ञान० ४	स्वीय: १	केवल०विना३	,, ६	भव्य १	सम्यक्त्वत्रय ३	,, १	आहा० १	३३	२६
,, ,, ४	,, १	,, ३	,, ६	,, १	,, ३	,, १	,, १	३०	३२
,, ४	,, १	,, ३	शुक्ला०१	,, १	उप. क्षायि २	,, १	,, १	२९	४१
सर्वज्ञानानि ५	,, १	सर्वाणि४	,, १	,, १	,, ,, २	,, १	सर्व० २	२३	३१
ज्ञान ०३,	,, १	केवल० विना ३	सर्वा: ६	,, १	सम्यक्त्वत्रिक. ३	,, १	आहा० १	३३	२६
ज्ञान.३ अज्ञा.३.६	,, १	,, ,, ३	,, ६	सर्व० २	सर्वाणि ६	सर्व० २	सर्व० २	५३	१
ज्ञा० ४ ,, ७	सर्व ७	,, ,, ३	,, ६	,, २	,, ६	,, २	,, २	५१	११
,, ,, ७	,, ७	,, ,, ३	,, ६	,, २	,, ६	,, २	,, २	६०	२
,, ×५	,, ७	,, ,, ३	,, ६	भव्य: १	त्रीणि सम्यक्त्वानि मिश्र.	संज्ञी १	,, २	४५	१८
केवल०	यथाख्यात० १	केवल० १	शुक्ला०१	,, १	क्षायिक०१	,, १	,, २	१५	४७
ज्ञान ४, अज्ञा०३, ७	सूक्ष्म.यथा. विना ५	केवल०विना३	स्वीया १	सर्व० २	सर्वाणि ६	सर्व० २	,, २	५३	१
,, ,, ७	,, ,, ५	,, ,, ३	,, १	,, २	,, ६	,, २	,, २	४७	१५
,, ,, ७	,, ,, ५	,, ,, ३	,, १	,, २	,, ६	संज्ञी १	,, २	४२	२०
सर्वाणि ८	सर्व ७	सर्वाणि४	,, १	,, २	,, ६	,, १	,, २	४६	१६
,, ८	,, ७	,, ४	सर्वा ६	भव्य० १	,, ६	सर्व० २	,, २	६१	१
अज्ञानत्रय० ३	असंयम०१	चक्षुरचक्षु०२	,, ६	अभव्य०	मिथ्यात्व०१	,, २	,, २	४३	१९
केवलोनज्ञान०४	सूक्ष्म० यथा० विना ५	केवल०विना३	,, ६	भव्य० १	स्वीयं १	संज्ञी १	,, २	३९	२३
,, ४	,, ७	,, ,, ३	,, ६	,, १	,, १	,, १	,, २	४१	२१
ज्ञानपञ्चक०५	सर्व ७	सर्वाणि ४	,, ६	,, १	,, १	,, १	,, २	४३	१९
ज्ञानमिश्राज्ञान ३	असंयम० १	केवलवर्ज० ३	,, ६	,, १	,, १	,, १	आहा०१	३३	२९
अज्ञानत्रय० ३	,, १	,, ३	,, ६	,, १	,, १	,, २	सर्व० २	४२	२०
,, ,, ३	१ ,,	चक्षुरचक्षु०२	,, ६	सर्व०२	,, १	सर्व०२	,, २	४४	१८
सर्वाणि ८	सर्व ७	सर्वाणि ४	,, ६	,, २	सर्वाणि ६	संज्ञी	,, २	५२	१०
अज्ञानद्विक० २	असंयम०१	चक्षुरचक्षु०२	प्रथमा० ४	,, २	सास्वा० मिथ्या० २	असंज्ञी १	,, २	३६	२६
सर्वाणि ८	सर्व ७	सर्वाणि ४	सर्वा. ६	,, २	सर्वाणि ६	सर्व० २	आहारि. १	६१	१
मन:प०विना ७	यथा.सं.,असं० २	चक्षुर्वर्ज०३	,, ६	,, २	मिश्र०विना५	,, २	अनाहा०१	५३	१९

❀ मनुष्यगतौ मतान्तरेणा-ऽसंज्ञी नास्ति । × अत्र वेदत्रयेऽसंज्ञी स्त्रीपुरुषवेदाकारमाश्रित्यैव ।

संयम	२	सामा० छेदोप०	मनुष्य० १	,, १	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	परिहारविशुद्धि०	,, १	,, १	,, १	,, ३	पुं०नपुं०२	,, ४
	१	सूक्ष्मसंपराय०	,, १	,, १	,, १	,, ३	०	लोभ
	१	यथाख्यात०	,, १	,, १	,, १	,, ३	०	०
	१	देश०	तिर्यग्मनु० २	,, १	,, १	,, ३	सर्वे ३	सर्वे ४
	१	असंयम०	सर्वा ४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	३ ,,	,, ३	,, ४
दर्शनम्	१	चक्षु०	,, ४	चतु० पञ्चे०२	त्रस०१	,, ३	,, ३	,, ४
	१	अचक्षु०	,, ४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	,, ३	,, ३	,, ४
	१	अवधि० △	,, ४	पञ्चे० १	त्रस० १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	केवल०	मनुष्य० १	,, १	,, १	,, ३	०	०
लेश्या	३	अप्रशस्ताः	सर्वा ४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	,, ३	सर्वे ३	सर्वे ४
	१	तेजो०	नरक० विना ३	एके० पञ्चे० २	तेजोवायु वि. ४	,, ३	,, ३	,, ४
	१	पद्म०	,, ,, ३	पञ्चे० १	त्रस० १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	शुक्ल०	,, ,, ३	,, १	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
भव्यः	१	भव्य०	सर्वा ४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	,, ३	,, ३	,, ४
	१	अभव्य०	,, ४	,, ५	,, ६	,, ३	,, ३	,, ४
सम्यक्त्वम्	१	वेदक०	,, ४	पञ्चे० १	त्रस० १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	उपशम०	,, ४	,, १	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	क्षायिक०	,, ४	,, १	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	मिश्र०	,, ४	,, १	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	सास्वादन०	,, ४	सर्वाणि ५	तेजोवायु० ४ विना ४	,, ३	,, ३	,, ४
	१	मिथ्यात्व०	,, ४	,, ५	सर्वे ६	,, ३	,, ३	,, ४
संज्ञी	१	संज्ञि०	,, ४	पञ्चे० १	त्रस० १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	असंज्ञि	तिर्यग्मनु० २	सर्वाणि ५	सर्वे ६	काय-वचो०२	नपुं० १	,, ४
आहारी	१	आहारि०	सर्वाः ४	,, ५	,, ६	सर्वे ३	सर्वे ३	,, ४
	१	अनाहारि० १	,, ४	,, ५	,, ६	,, ३	,, ३	,, ४

△ मति-श्रुता-ऽवधिज्ञानत्रया-ऽवधिदर्शनमार्गणाचतुष्के, मिश्रदृष्टेर्ज्ञानित्वस्वीकृतमताभिप्रायेण मिश्रसम्यक्त्वं दर्शितं ज्ञेयम् । अन्यथाऽज्ञानमिश्रत्वेन तस्य ज्ञानित्वास्वीकृताभिप्रायेण पुनर्मिश्रसम्यक्त्वं विना त्रिचत्वारिंशन्मार्गणास्थानान्युक्तमार्गणाचतुष्टये भवन्ति ।

केवलोन ज्ञान० ५	स्वीय: १	केवल०विना३	. ६	भव्य १	सम्यक्त्वत्रय ३	,, १	आहा०१	३३	२६
,, ,, ४	,, १	,, ३	,, ६	,, १	,, ३	,, १	,, १	[illegible]	[illegible]
,, ४	,, १	,, ३	शुक्ला०१	,, १	उप. क्षायि २	,, १	,, १	[illegible]	४१
सर्वज्ञानानि ५	,, १	सर्वाणि४	,, १	,, १	,, ,, २	,, १	सर्व० २	[illegible]	२१
ज्ञान ०३,	,, १	केवल० विना ३	सर्वा: ६	,, १	सम्यक्त्वत्रि T. ३	,, १	आहा०१	२३	२६
ज्ञान.२ अज्ञा.३.६	,, १	,, ,, ३	,, ६	सर्व० २	सर्वाणि ६	सर्व० २	सर्व० २	५३	१
ज्ञा० ४ ,, ७	सर्वे ७	,, ,, ३	,, ६	,, २	,, ६	,, २	,, २	[illegible]	[illegible]
,, ,, ७	,, ७	,, ,, ३	,, ६	,, २	,, ६	,, २	,, २	६०	२
,, ×५	,, ७	,, ,, ३	,, ६	भव्य: १	त्रीणि सम्यक्त्वानि मिश्र.	संज्ञी १	,, २	४५	१८
केवल०	यथाख्यात० १	केवल० १	शुक्ला०१	,, १	क्षायिक०१	,, १	,, २	१५	४७
ज्ञान ४, अज्ञा०३, ७	सूक्ष्म.यथा. विना ५	केवल०विना३	स्वीया १	सर्व० २	सर्वाणि ६	सर्व० २	,, २	५३	१
,, ,, ७	,, ,, ५	,, ,, ३	,, १	,, २	,, ६	,, २	,, २	४७	१५
,, ,, ७	,, ,, ५	,, ,, ३	,, १	,, २	,, ६	संज्ञी १	,, २	४०	२०
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि४	,, १	,, २	,, ६	,, १	,, २	४६	१६
,, ८	,, ७	,, ४	सर्वा. ६	भव्य० १	,, ६	सर्व० २	,, २	६१	१
अज्ञानत्रय० ३	असंयम०१	चक्षुरचक्षु०२	,, ६	अभव्य०	मिथ्यात्व०१	,, २	,, २	४३	१९
केवलोनज्ञान०४	सूक्ष्म० यथा० विना ५	केवल०विना३	,, ६	भव्य० १	स्वीयं १	संज्ञी १	,, २	३९	२३
,, ४	,, ७	,, ,, ३	,, ६	,, १	,, १	,, १	,, २	४१	२१
ज्ञानपञ्चक०५	सर्वे ७	सर्वाणि ४	,, ६	,, १	,, १	,, १	,, २	४३	१९
ज्ञानमिश्राज्ञान ३	असंयम० १	केवलवर्ज० ३	,, ६	,, १	,, १	,, १	आहा०१	३३	२९
अज्ञानत्रय० ३	,, १	,, ३	,, ६	,, १	,, १	,, २	सर्व० २	४२	२०
,, ,, ३	१ "	चक्षुरचक्षु०२	,, ६	सर्व०२	,, १	सर्व०२	,, २	४४	१८
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि ४	,, ६	,, २	सर्वाणि ६	संज्ञी	,, २	५२	१०
अज्ञानद्विक० २	असंयम०१	चक्षुरचक्षु०२	प्रथमा ४	,, २	सास्वा० मिथ्या० २	असंज्ञी १	,, २	३६	२६
सर्वाणि ८	सर्वे ७	सर्वाणि ४	सर्वा. ६	,, २	सर्वाणि ६	सर्व० २	आहारि. १	६१	१
मन:प०विना ७	यथा.स.,असं० २	चक्षुर्वर्ज०३	,, ६	,, २	मिश्र०विना५	,, २	अनाहा०१	५३	९

ॐ मनुष्यगतौ मतान्तरेणा-ऽसंज्ञी नास्ति । × अत्र वेदत्रयेऽसंज्ञी स्त्रीपुरुषवेदाकारमाश्रित्यैव ।

संयम	२	सामा० छेदोप०	मनुष्य० १	,, १	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	परिहारविशुद्धि०	,, १	,, १	,, १	,, ३	पुंनपुं०२	,, ४
	१	सूक्ष्मसंपराय०	,, १	,, १	,, १	,, ३	०	लोभ
	१	यथाख्यात०	,, १	,, १	,, १	,, ३	०	०
	१	देश०	तिर्यग्मनु० २	,, १	,, १	,, ३	सर्वे ३	सर्वे ४
	१	असंयम०	सर्वा ४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	३	,, ३	,, ४
दर्शनम्	१	चक्षु०	,, ४	चतु० पञ्चे०२	त्रस०१	,, ३	,, ३	,, ४
	१	अचक्षु०	,, ४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	,, ३	,, ३	,, ४
	१	अवधि० △	,, ४	पञ्चे० १	त्रस० १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	केवल०	मनुष्य० १	,, १	,, १	,, ३	०	०
लेश्या	३	अप्रशस्ता:	सर्वा ४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	,, ३	सर्वे ३	सर्वे ४
	१	तेजो०	नरक० विना ३	एके० पञ्चे० २	तेजोवायु वि. ४	,, ३	,, ३	,, ४
	१	पद्म०	,, ,, ३	पञ्चे० १	त्रस० १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	शुक्ल०	,, ,, ३	,, १	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
भव्य:	१	भव्य०	सर्वा ४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	,, ३	,, ३	,, ४
	१	अभव्य०	,, ४	,, ५	,, ६	,, ३	,, ३	,, ४
सम्यक्त्वम्	१	वेदक०	,, ४	पञ्चे०१	त्रस०१	,, ३	,, ३	,, ४
	१	उपशम०	,, ४	,, १	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	क्षायिक०	,, ४	,, १	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	मिश्र०	,, ४	,, १	,, १	,, ३	,, ३	,, ४
	१	सास्वादन०	,, ४	सर्वाणि ५	तेजोवायु० ४ विना ४	,, ३	,, ३	,, ४
	१	मिथ्यात्व०	,, ४	,, ५	सर्वे ६	,, ३	,, ३	,, ४
संज्ञी	१	संज्ञि०	,, ४	पञ्चे० १	त्रस०१	,, ३	,, ३	,, ४
	१	असंज्ञि	तिर्यग्मनु० २	सर्वाणि ५	सर्वे ६	काय-वचो०२	नपुं० १	,, ४
आहारी	१	आहारि०	सर्वा:४	,, ५	,, ६	सर्वे ३	सर्वे ३	,, ४
	१	अनाहारि० १	,, ४	,, ५	,, ६	,, ३	,, ३	,, ४

△ मति-श्रुता-ऽवधिज्ञानत्रया-ऽवधिदर्शनमार्गणाचतुष्के, मिश्रदृष्टेर्ज्ञानित्वस्वीकृतमताभिप्रायेण मिश्रसम्यक्त्वं दर्शितं ज्ञेयम्। अन्यथाऽज्ञानमिश्रत्वेन तस्य ज्ञानित्वास्वीकृताभिप्रायेण पुनर्मिश्रसम्यक्त्वं विना मिश्रस्याऽरिंशन्मार्गणास्थानान्युक्तमार्गणाचतुष्टये भवन्ति ।

बन्धस्थानानि	उदयस्थानानि	उदीरणास्थानानि	सत्तास्थानानि	मूल०	उत्तर०	← बन्धहेतवः	अल्पबहुत्वम् →	अनुक्रम०
७-८	८	७·	८	४	५५	आहारकद्विकं विना	अनंतगु०	१४
७-८	८	७-८	८	३	५०	५५-मिथ्यात्वपञ्चकम्	असं० गु०	१०
७	८	८	८	३	४३	५०-अनं०४, औ० मि०, वै० मि० का०	"	११
७-८	८	७-८	८	३	४६	४३+औ० मि०, वै० मि० कार्मण०	"	१२
७-८	८	७-८	८	३	३९	४६-त्रसका०,अप्रत्या०४, औदा० मि० कार्मण०,	"	९
७-८	८	७-८	८	२	२६	३९-अवि०, ११, प्रत्या०४, + आहा० २,	संख्यगु०	८
७-८	८	६	८	२	२४	२६–आ. मि., वै० मि०,	"	७
७	८	६	८	२	२२	२४–आहा०, वैक्रिय०,	तुल्याः	५
७	८	६	८	२	१६	२२–हास्यषट्कम्	तुल्याः	४
६	८	६-५	८	२	१०	१६-सज्वलनत्रिक-वेदत्रिकं०	विशेषाधिकाः	३
१	७	५	८	१	१	१०–सज्वलन लोभ०	सर्वाल्पाः	१
१	७	५-२	७	१	१	"	संख्यगु०	२
१	४	२	४	१	७	प्रथमान्तिममनोद्वय० " " वचो " औ.,औ.मि.कार्मण,	"	६
०	४	०	४	०	०	०	अनंतगु० ×	१३
८०	८	८२-८३	८१	७४-७५-७६-७७			८४-८५	

× शिष्टा अप्यत्र संगृहीता द्रष्टव्याः △ मतान्तरेऽशुभलेश्यात्रयं चतुर्थगुणस्थानं यावत्सम्भवेन पञ्चम-षष्ठ-गुणस्थानद्वये न सन्ति ।

गुणस्थानानि ↓	१४	जीवस्थानानि	१५	योगाः	१२	उपयोगा	६	लेश्याः
मिथ्यात्व०	१४	सर्वाणि	१३	आहारकद्विकोनाः	५	अज्ञानत्रय० चक्षुर-चक्षुर्द०	६	सर्वाः
सास्वादन०	७	सू०विना षडपर्या. ❀ पर्या. सञ्ज्ञि० ❀	१३	,,	५	▽ ,,	६	,,
मिश्रदृष्टि०	१	पर्या० सञ्ज्ञि०	१०	मन०४, वचो० ४ औदा०, वै०	६	ज्ञानत्रय० दर्शनत्रय० (अज्ञानमिश्र)	६	,,
अविरतसम्य०	२	द्विविध सञ्ज्ञि.	१३	आहारकद्विकोनाः	६	ज्ञानत्रय० दर्शनत्रय०	६	,,
देशविरत०	१	पर्या. संज्ञि.	११	मन०४ वचो०४ औ०, वै० २	६	,,	६ △	,,
प्रमत्तसंयत०	१	,,	१३	औ. मि., कार्म०विना	७	ज्ञान० ४ दर्शन० ३	६ △	,,
अप्रमत्तसं०	१	,,	११	मनो०४, वचो०४, औ०, वै०, आ०,	७	,,	३	शुभाः
अपूर्वकरण०	१	,,	९	मनो०४, वचो०४ औ०	७	,,	१	शुक्लाः
अनिवृत्तिबादर०	१	,,	९	,,	७	,,	१	,,
सूक्ष्मसंपराय०	१	,,	९	,,	७	,,	१	,,
उपशान्तकषाय०	१	,,	९	,,	७	,,	१	,,
क्षीणकषाय०	१	,,	९	,,	७	,,	१	,,
सयोगिकेव०	१	,,	७	सत्य०, व्य० मनो०२ ,, ,, वचो०२ औ०२ कार्म०	२	केवलज्ञानम् ,, दर्शनम्	१	,,
अयोगिकेव०	१	,,	०	०	२	,,	१	,,
गाथाङ्का →		६५		६६-६७-६८-६९		७०-७१		७२

❀ इहा-ऽपर्याप्ता· करणापेक्षया ज्ञेयाः, लब्ध्यपेक्षया पुन. पर्याप्ता एव । ❀ सिद्धान्तमतेऽत्रैकेन्द्रिया न भवन्ति ।

▽ सिद्धान्तमते ज्ञानत्रयमिह स्वीकृतम् ।

बन्धस्थानानि	उदयस्थानानि	उदीरणास्थानानि	सत्तास्थानानि	मूल०	उत्तर०	← बन्धहेतवः	अल्पबहुत्वम →	अनुक्रम०
७-८	८	७	८	४	५५	आहारकद्विकं विना	अनंतगु०	१४
७-८	८	७-८	८	३	५०	५५-मिथ्यात्वपञ्चकम्	असं० गु०	१०
७	८	८	८	३	४३	५०-अनं०४, औ० मि०, वै० मि० का०	"	११
७-८	८	७-८	८	३	४६	४३+औ० मि०, वै० मि० कार्मण०	"	१२
७-८	८	७-८	८	३	३९	४६-त्रसका०,अप्रत्या०४, औदा० मि० कार्मण०,	"	९
७-८	८	७-८	८	२	२६	३९-अवि०, ११, प्रत्या०४, + आहा० २,	संख्यगु०	८
७-८	८	६	८	२	२४	२६–आ. मि., वै० मि०,	"	७
७	८	६	८	२	२२	२४–आहा०, वैक्रिय०,	तुल्याः	५
७	८	६	८	२	१६	२२–हास्यषट्कम्	तुल्याः	४
६	८	६-५	८	२	१०	१६-सज्वलनत्रिक-वेदत्रिकं०	विशेषाधिकाः	३
१	७	५	८	१	१	१०–सज्वलन लोभ०	सर्वाल्पाः	१
१	७	५-२	७	१	१	"	संख्यगु०	२
१	४	२	४	१	७	प्रथमान्तिममनोद्वय० " " वचो " औ.,औ.मि.कार्मण,	"	६
०	४	०	४	०	०	०	अनंतगु० ×	१३
८०	८	८२-८३	८१	७४-७५-७६-७७			८४-८५	

× सिद्धा अप्यत्र संगृहीता द्रष्टव्याः △ मतान्तरेऽशुभलेश्याश्रयं चतुर्थगुणस्थानं यावत्सम्भवेन पञ्चम-षष्ठ-गुणस्थानद्वये न सन्ति ।

गुणस्थानकेषु मार्गणास्थानप्रदर्शियन्त्रकम् (प्राचीनचतुर्थकर्मग्रन्थे गाथा ७३ तमायां श्रीरामदेवगणिकृतवृत्तौ पृष्ठ २९-३०)

मार्गणा → गुणस्थानानि ↓	गति.	इन्द्रियम्	काय.	योगः	वेदः	कषायः	ज्ञानम्	संयमः	दर्शनम्	लेश्या	भव्यः	सम्यक्त्वम्	संज्ञी	आहारकः	समन्विताः	असमन्विताः
मिथ्यात्व०	सर्वा ४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	सर्वे ३	सर्वे ३	सर्वे ४	अज्ञानत्रिकम् ३,	असयमः	चक्षुरचक्षु. २	सर्वा ६	सर्वे०२	मिथ्या० १	सर्वे०२	सर्वे० २	४४	१८
सास्वादन० *	,,	,,	तेजोवायु० विना ४	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	भव्य०१	सास्वा० १	,,	,,	४१	२१
मिश्र०	,,	पञ्चे० १	त्रस०	,,	,,	,,	अज्ञानमिश्रज्ञान ३	,,	केवल० विना ३	,,	,,	मिश्र० १	सञ्ज्ञी १	आहा० १	३३	२९
अविरतसम्य०	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मतिश्रुतावधि. ३	,,	,,	,,	,,	सम्यक्त्व-त्रयम् ३	,,	सर्व० २	३६	२६
देश० △	तिर्यग्मनु २	,,	,,	,,	,,	,,	,,	देशस० १	,,	,,	,,	,,	,,	आहा० १	३३	२९
प्रमत्त० △	मनुष्य०१	,,	,,	,,	,,	,,	केव०विना ज्ञान०४	सामा०छेदो० परि० ३	,,	,,	,,	,,	,,	,,	३५	२७
अप्रमत्त०	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	शुभा: ३	,,	,,	,,	,,	३२	३०
अपूर्व०	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	सामा०छेदो० २	,,	शुक्ला०	,,	उप०क्षायि.२	,,	,,	२८	३४
अनिवृत्ति०	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	२८	३४
सूक्ष्म०	,,	,,	,,	,,	०	लोभ १	,,	सूक्ष्म०१	,,	,,	,,	,,	,,	,,	२१	४१
उपशान्तमो०	,,	,,	,,	,,	०	०	,,	यथाख्यात०१	,,	,,	,,	,,	,,	,,	२०	४२
क्षीणमो०	,,	,,	,,	,,	०	०	,,	,,	,,	,,	,,	क्षायिक. १	,,	,,	१९	४३
सयोगि०	,,	,,	,,	,,	०	०	केवल०१	,,	केवल०	,,	,,	,,	,,	सर्व.२	१५	४७
अयोगि०	,,	,,	,,	,,	०	,,	,,	,,	,,	०	,,	,,	,,	अना.१	१०	५२

* इह सास्वादनगुणस्थानके सिद्धान्ताभिप्रायेणैकेन्द्रिया न सन्ति, ज्ञानत्रिकञ्चास्ति; न त्वज्ञानत्रिकम् । जीवसमासाविग्रन्थाभिप्रायेणैकेन्द्रियविकलेन्द्रिया-ऽसञ्ज्ञिनो न सन्ति । △ मतान्तरेण देशविरति प्रमत्तसंयतगुणस्थानद्वयेऽशुभलेश्यात्रयं नास्ति ।

अथ

द्वितीयं परिशिष्टं

प्राचीनकर्मग्रन्थषट्कमूलगाथा-द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठकर्मग्रन्थभाष्यगाथाः सप्ततिका-सारगाथास्तथा सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणमूलभाष्यगाथाः ।

गुणस्थानकेषु मार्गणास्थानप्रदर्शियन्त्रकम् (प्राचीनचतुर्थकर्मग्रन्थे गाथा ७२ तमायां श्रीरामदेवगणिकृतवृत्तौ पृष्ठ २९-३०)

मार्गणा → गुणस्थानानि ↓	गतिः	इन्द्रियम	कायः	योगः	वेदः	कषायाः	ज्ञानम	संयम	दर्शनम्	लेश्या	भव्यः	सम्यक्त्वम	संज्ञी	आहारकः	सम-न्विताः	असम-न्विताः
मिथ्यात्व०	सर्वा ४	सर्वाणि ५	सर्वे ६	सर्वे ३	सर्वे ३	सर्वे ४	अज्ञानत्रिकम् ३,	असंयमः	चक्षुरचक्षु० २	सर्वाः ६	सर्वे० २	मिथ्या० १	सर्वे० २	सर्वे० २	४४	१८
सास्वादन० *	,,	,,	तेजोवायु० विना ४	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	भव्य० १	सास्वा० १	,,	,,	४१	२१
मिश्र०	,,	पञ्चे० १	त्रस०	,,	,,	,,	अज्ञानमिश्र-ज्ञान ३	,,	केवल० विना ३	,,	,,	मिश्र० १	संज्ञी १	आहा० १	३३	२९
अविरतसम्य०	,,	,,	,,	,,	,,	,,	मतिश्रुतावधि० ३	,,	,,	,,	,,	सम्यक्त्वत्रयम् ३	,,	सर्वे० २	३६	२६
देश० △	तिर्य-मनु० २	,,	,,	,,	,,	,,	,,	देशस० १	,,	,,	,,	,,	,,	आहा० १	३३	२९
प्रमत्त० △	मनु० १	,,	,,	,,	,,	,,	केव० विना ज्ञान० ४	सामा० छेदो० परि० ३	,,	,,	,,	,,	,,	,,	३५	२७
अप्रमत्त०	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	शुभाः ३	,,	,,	,,	,,	३२	३०
अपूर्व०	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	सामा० छेदो० २	,,	शुक्ला० १	,,	उप० क्षायि० २	,,	,,	२८	३४
अनिवृत्ति०	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	२८	३४
सूक्ष्म०	,,	,,	,,	,,	०	लोभ १	,,	सूक्ष्म० १	,,	,,	,,	,,	,,	,,	२१	४१
उपशान्तमो०	,,	,,	,,	,,	०	०	,,	यथाख्यात० १	,,	,,	,,	,,	,,	,,	२०	४२
क्षीणमो०	,,	,,	,,	,,	०	०	,,	,,	,,	,,	,,	क्षायिक० १	,,	,,	१९	४३
सयोगि०	,,	,,	,,	,,	०	०	केवल० १	,,	केवल०	,,	,,	,,	,,	सर्वे २	१५	४७
अयोगि०	,,	,,	,,	,,	०	,,	,,	,,	,,	०	,,	,,	,,	अना० १	१०	५२

* इह सास्वादनगुणस्थानके सिद्धान्ताभिप्रायेणैकेन्द्रिया न सन्ति, ज्ञानत्रिकञ्चास्ति; न त्वज्ञानत्रिकम् । जीवसमासादिग्रन्थाभिप्रायेणैकेन्द्रियविकलेन्द्रिया-ऽस-ंज्ञिनो न सन्ति । △ मतान्तरेण देशविरति प्रमत्तसंयतगुणस्थानद्वयेऽशुभलेश्यात्रयं नास्ति ।

अथ

द्वितीये परिशिष्टे

प्राचीनकर्मग्रन्थषट्कमूलगाथा–द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठकर्मग्रन्थभाष्यगाथाः सप्ततिका-
सारगाथास्तथा सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणमूलभाष्यगाथाः ।

।। श्री आत्मानन्द-कमल-दान-प्रेमसूरिसद्गुरुभ्यो नमः ।।

।। अर्हम् ।।

श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्गर्गमहर्षिविरचितः

कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः

ववगयकम्मकलंकं, वीरं नमिऊण कम्मगइकुसलं ।
वोच्छं कम्मविवागं, गुरूवइट्ठं समासेणं ।।१।।
कीरइ जओ जिएणं, मिच्छत्ताईहिं चउगइगएणं ।
तेणिह भण्णइ कम्मं, अणाइयं तं पवाहेणं ।।२।।
तस्स उ चउरो भेया, पगईमाईउ हुंति नायव्वा ।
मोयगदिट्ठंतेणं पगईभेओ इमो [1]होइ ।।३।।
मूलपयडीउ अट्ठ उ, उत्तरपयडीण अट्ठवन्नसयं ।
तासिं सभावभेया, हुंति हु भेया इमे सुणह ।।४।।
पढमं नाणावरणं, बीयं [2]पुण दंसणस्स आवरणं ।
तइयं च वेयणीयं, तहा चउत्थं च मोहणियं ।।५।।
[3]आऊ नामं गोयं, [4]अट्ठमयं अंतराइयं होइ ।
मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ कित्तेमि ।।६।।
पंचविहनाणवरणं, नव भेया दंसणस्स दो वेए ।
अट्ठावीसं मोहे, चत्तारि [*]य आउए हुंति ।।७।।
नामे तिउत्तरसयं, दो गोए अंतराइए पंच ।
एएसिं भेयाणं, [5]होइ विवागो इमो सुणह ।।८।।
पडपडिहारसिमज्जाहडिचित्तकुलालभंडगारीणं ।
जह एएसिं भावा, [6]कम्माण वि जाण तह [7]चेव ।।९।।
सरउग्गयससिनिम्मलयरस्स जीवस्स छायणं जमिह ।
नाणावरणं कम्मं, पडोवमं होइ एवं तु ।।१०।।

" इत्यपि पाठः । २ "पुण होइ दंसणावरणं" । ३ "आउ य नामं" । ४-५ "चरिमं पुण अंत०" भेया इमे सुणह" । ६ "कम्माणं तह मुणेयव्वा" इत्यपि । ७ "माया" इति ।

॥ श्री आत्मानन्द–कमल-दान-प्रेमसूरिसद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ अर्हम् ॥

श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्गर्गमहर्षिविरचितः

कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः

ववगयकम्मकलंकं, वीरं नमिऊण कम्मगइकुसलं ।
वोच्छं कम्मविवागं, गुरूवइट्ठं समासेणं ॥१॥
कीरइ जओ जिएणं, मिच्छत्ताईहिं चउगइगएणं ।
तेणिह भण्णइ कम्मं, अणाइयं तं पवाहेणं ॥२॥
तस्स उ चउरो भेया, पगईमाईउ हुंति नायव्वा ।
मोयगदिट्ठंतेणं पगईभेओ इमो [1]होइ ॥३॥
मूलपयडीउ अट्ठ उ, उत्तरपयडीण अट्ठवन्नसयं ।
तासिं समासभेया, हुंति हु भेया इमे सुणह ॥४॥
पढमं नाणावरणं, बीयं [2]पुण दंसणस्स आवरणं ।
तइयं च वेयणीयं, तहा चउत्थं च मोहणियं ॥५॥
[3]आऊ नामं गोयं, [4]अट्ठमयं अंतराइयं होइ ।
मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ कित्तेमि ॥६॥
पंचविहनाणवरणं, नव भेया दंसणस्स दो वेए ।
अट्ठावीसं मोहे, चत्तारि [5]य आउए हुंति ॥७॥
नामे तिउत्तरसयं, दो गोए अंतराइए पंच ।
एएसिं भेयाणं, [6]होइ विवागो इमो सुणह ॥८॥
पडपडिहारसिमज्जाहडिचित्तकुलालभंडगारीणं ।
जह एएसिं भावा, [7]कम्माण वि जाण तह [8]चेव ॥९॥
सरउग्गयससिनिम्मलयरस्स जीवस्स छायणं जमिह ।
नाणावरणं कम्मं, पडोवमं होइ एवं तु ॥१०॥

। २ "पुण होइ दंसणावरणं" । ३ "आउ य नामं" । ४ "चरिमं पुण अंत०" " । ६ "कम्माणं तह मुणेयव्वा" इत्यपि । ७ "भावा" इति ।

॥ श्री आत्मानन्द-कमल-दान-प्रेमसूरिसद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ अर्हम् ॥

श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्गर्गमहर्षिविरचितः

कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः

ववगयकम्मकलंकं, वीरं नमिऊण कम्मगइकुसलं ।
वोच्छं कम्मविवागं, गुरूवइट्ठं समासेणं ॥१॥
कीरइ जओ जिएणं, मिच्छत्ताईहिं चउगइगएणं ।
तेणिह भण्णइ कम्मं, अणाइयं तं पवाहेणं ॥२॥
तस्स उ चउरो भेया, पगईमाईउ हुंति नायव्वा ।
मोयगदिट्ठंतेणं पगईभेओ इमो [1]होइ ॥३॥
मूलपयडीउ अट्ठ उ, उत्तरपयडीण अट्ठवन्नसयं ।
तासिं समासभेया, हुंति हु भेया इमे सुणह ॥४॥
पढमं नाणावरणं, बीयं [2]पुण दंसणस्स आवरणं ।
तइयं च वेयणीयं, तहा चउत्थं च मोहणियं ॥५॥
[3]आऊ नामं गोयं, [*]अट्ठमयं अंतराइयं होइ ।
मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ कित्तेमि ॥६॥
पंचविहनाणवरणं, नव भेया दंसणस्स दो वेए ।
अट्ठावीसं मोहे, चत्तारि [4]य आउए हुंति ॥७॥
नामे तिउत्तरसयं, दो गोए अंतराइए पंच ।
एएसिं भेयाणं, [5]होइ विवागो इमो सुणह ॥८॥
पडपडिहारसिमज्जाइहडिचित्तकुलालभंडगारीणं ।
जह एएसिं भावा, [6]कम्माण वि जाण तह [7]भेव ॥९॥
सरउग्गयससिनिम्मलयरस्स जीवस्स छायणं जमिह ।
नाणावरणं कम्मं, पडोवमं होइ एवं तु ॥१०॥

---

१ "सुणह" इत्यपि पाठः । २ "पुण होइ दंसणावरणं" । ३ "आउ य नामं" । * "चरिमं पुण अंत०" ४ "उ" । ५ "हुंति हु भेया इमे सुणह" । ६ "कम्माणं तह मुणेयव्वा" इत्यपि । ७ "भावा" इति ।

॥ श्री आत्मानन्द-कमल-दान-प्रेमसूरिसद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ अर्हम् ॥

श्वेताम्बराग्रण्यश्रीमद्गर्गमहर्षिविरचितः

कर्मविपाकाख्यः प्रथमः कर्मग्रन्थः

ववगयकम्मकलंकं, वीरं नमिऊण कम्मगइकुसलं ।
वोच्छं कम्मविवागं, गुरूवइट्ठं समासेणं ॥१॥
कीरइ जओ जिएणं, मिच्छत्ताईहिं चउगइगएणं ।
तेणिह भण्णइ कम्मं, अणाइयं तं पवाहेणं ॥२॥
तस्स उ चउरो भेया, पगईमाईउ हुंति नायव्वा ।
मोयगदिट्ठंतेणं पगईभेओ इमो [1]होइ ॥३॥
मूलपयडीउ अट्ठ उ, उत्तरपयडीण अट्ठवन्नसयं ।
तासिं समासभेया, हुंति इ भेया इमे सुणह ॥४॥
पढमं नाणावरणं, बीयं [2]पुण दंसणस्स आवरणं ।
तइयं च वेयणीयं, तहा चउत्थं च मोहणियं ॥५॥
[3]आऊ नामं गोयं, [*]अट्ठमयं अंतराइयं होइ ।
मूलपयडीउ एया, उत्तरपयडीउ कित्तेमि ॥६॥
पंचविहनाणवरणं, नव भेया दंसणस्स दो वेए ।
अट्ठावीसं मोहे, चत्तारि [4]य आउए हुंति ॥७॥
नामे तिउत्तरसयं, दो गोए अंतराइए पंच ।
एएसिं भेयाणं, [5]होइ विवागो इमो सुणह ॥८॥
पडपडिहारसिमज्जाहडिचित्तकुलालभंडगारीणं ।
जह एएसिं भावा, [6]कम्माण वि जाण तह [7]चेव ॥९॥
सरउग्गयससिनिम्मलयरस्स जीवस्स छायणं जमिह ।
नाणावरणं कम्मं, पडोवमं होइ एवं तु ॥१०॥

---

१ "सुणह" इत्यपि पाठः । २ "पुण होइ दंसणावरणं" । ३ "आउ य नामं" । * "चरिमं पुण अंत०" ४ "इ" । ५ "हुंति इ भेया इमे सुणह" । ६ "कम्माणं तह मुणेयव्वा" इत्यपि । ७ "भावा" इति ।

जइ निम्मलावि चक्खू, पडेण केणावि छाइया संती ।
मंदं मंदतरागं, पिच्छइ सा निम्मला जइवि ॥११॥
तह मइसुयणाणाणं, [1]ओहीमणकेवलाण आवरणं ।
जीवं निम्मलरूवं, आवरइ इमेहिं भेएहिं ॥१२॥
अट्ठावीसइभेयं, मइनाणं इत्थ वण्णियं समए ।
तं आवरेइ जं तं, मइआवरणं हवइ पढमं ॥१३॥
[2]चोद्दसभेएसु गयं, सुयनाणं इत्थ वण्णियं सम्मए ।
तस्सावरणं जं पुण, सुयआवरणं हवइ बीयं ॥१४॥
अणुगामिवड्ढमाणयभेयाइसु वण्णिओ इहं ओही ।
तं आवरेइ [3]जं तं अवहीआवरणयं जाण ॥१५॥
रिउमइविउलम[4]ईहिं, मणपज्जवनाणव[5]ण्णणं समए ।
तं आवरिय जेणं, [6]तं पि हु मणपज्जवावरणं ॥१६॥
लोयालोयगएसुं, भावेसुं जं गयं महाविमलं ।
तं आवरियं जेणं, केवलआवरणयं [7]तंपि ॥१७॥
[8]एवं पंचविअप्पं, नाणावरणं समासओ भणियं ।
बीयं दंसणवरणं, नवभेयं भण्णए सुणह ॥१८॥
दंसणसीले जीवे, दंसणघायं करेइ जं कम्मं ।
तं पडिहारसमाणं, दंसणवरणं भवे बीयं ॥१९॥
जइ रन्नो पडिहारो, अणभिप्पेयस्स सो उ लोगस्स ।
रण्णो तहिं दरिसावं, न देइ दट्ठुं पि कामस्स ॥२०॥
जह राया तह जीवो, पडिहारसमं तु दंसणावरणं ।
तेणिह विबंधएणं, न पिच्छए सो [9]घडाईयं ॥२१॥
निद्दापणगं तत्थ उ, चउभेया दंसणस्स आवरणे ।
[10]सुहपडिबोहो निद्दा, बीया पुण [11]निद्दनिद्दा य ॥२२॥
सा दुक्खबोहणीया, पयला पुण जा ठियस्स उद्धाइ ।
पयलापयल चउत्थी, तीए उदओ उ चंकमणे ॥२३॥

---

१ "ओहिमणोके०" इति । २ "चउदस" इति ३ "जं पि य, ओहीआवरणयं तंपि" "जं पुण ओ०" इति वा पाठः । ४ "०मईहि य" इति ५ "०भियं समए।" इति । ६ "तं पुण" । ७ "तं तु" । ८ "एयं"। ९ "घडाईयं" । १० "सुहपडिबोहा" ११ । "निद्दनिद्दत्ति" ।

थीणद्धी पुण दिणचिंतियस्स अत्थस्स साहणी पायं ।
सा संकिलिट्ठकम्मस्स उदयओ होइ नियमेणं ॥२४॥
निद्दापणगं एयं, चक्खू आवरइ चक्खुआवरणं ।
सेसिंदियआवरणं, होइ अचक्खुस्स आवरणं ॥२५॥
सामन्नुवओगं जं, वरेइ तं ओहिदंसणावरणं ।
केवलसामन्नं जं, वरेइ तं केवलस्स भवे ॥२६॥
भणियं दंसणवरणं, तइयं कम्मं तु होइ वेयणियं ।
तं असिधारासरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥२७॥
महुलित्तनिसियकरवालधारजीहाइ [1]जारिसं लिहणं ।
तारिसयं वेयणियं, सुहदुहउप्पायगं मुणह ॥२८॥
महुआसायणसरिसो, सायावेयस्स होइ हु विवागो ।
जं असिणा तहि छिज्जइ, सो उ विवागो असायस्स ॥२९॥
[2]एयं सुहदुक्खकरं चउगइभावभयाण जीवाणं ।
सामन्नेणं भणिमो, सुहदुक्खं दुसु दुसु गईसु ॥३०॥
देवेसु य मणुएसु य, तत्थ विसिट्ठेसु कामभोगेसु ।
जं [3]उवभुं जइ जीवो, सो उ विवागो [4]उ सायस्स ॥३१॥
[5]नरएसु य तिरिएसु य, तेसु य दुक्खाइँ णेगरूवाइं ।
जं [6]उवभुं जइ जीवो, सो [7]उ विवागो असायस्स ॥३२॥
एयमिह वेयणीयं, चउत्थकम्मं तु होइ मोहणियं ।
तं मज्जपाणसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥३३॥
जह मज्जपाणमूढो, लोए पुरिसो परव्वसो होइ ।
तह मोहेणवि मूढो, जीवोवि परव्वसो होइ ॥३४॥
मोहेइ मोहणीयं, तं पि समासेण [8]भण्णए दुविहं ।
दंसणमोहं पढमं, चरित्तमोहं भवे बीयं ॥३५॥
दंसणमोहं तिविहं, सम्मं मीसं च तह य मिच्छत्तं ।
सुद्धं अद्धविसुद्धं, अविसुद्धं तं जहाकमसो ॥३६॥

---

१ "जारिसयलिहणं" इति "जारिसं लेहणं" इत्यपि दृश्यते । २ "एवं" इत्यपि । ३-६ "तं भुंजइ" इति "तहिं भुंजई"इत्यपि । ४-७ "च" इति । ५ "तिरिएसु य नरएसु य तेसिं" । ८ "होइ दुविहं तु ।" इति

जह निम्मलावि चक्खू, पडेण केणावि छाइया संती ।
[1]दं मंदतरागं, पिच्छइ सा निम्मला जहवि ॥११॥
तह मइसुयणाणाणं, [1]ओहीमणकेवलाण आवरणं ।
जीवं निम्मलरूवं, आवरइ इमेहिं भेएहिं ॥१२॥
अट्ठावीसइभेयं, मइनाणं इत्थ वण्णियं समए ।
तं आवरेइ जं तं, मइआवरणं हवइ पढमं ॥१३॥
[2]चोद्दसभेएसु गयं, सुयनाणं इत्थ वण्णियं सम्मए ।
तस्सावरणं जं पुण, सुयआवरणं हवइ बीयं ॥१४॥
अणुगामिवड्ढमाणयभेयाइसु वण्णिओ इहं ओही ।
तं आवरेइ [3]जं तं अवहीआवरणयं जाण ॥१५॥
रिउमइविउलम[4]ईहिं, मणपज्जवनाणव[5]ण्णणं समए ।
तं आवरिय जेणं, [6]तं पि हु मणपज्जवावरणं ॥१६॥
लोयालोयगएसुं, भावेसु जं गयं महाविमलं ।
तं आवरियं जेणं, केवलआवरणयं [7]तंपि ॥१७॥
[8]एवं पंचविअप्पं, नाणावरणं समासओ भणियं ।
बीयं दंसणवरणं, नवभेयं भण्णए सुणह ॥१८॥
दंसणसीले जीवे, दंसणघायं करेइ जं कम्मं ।
तं पडिहारसमाणं, दंसणवरणं भवे बीयं ॥१९॥
जह रण्णो पडिहारो, अणभिप्पेयस्स सो उ लोगस्स ।
रण्णो तहिं दरिसावं, न देइ दट्ठुं पि कामस्स ॥२०॥
जह राया तह जीवो, पडिहारसमं तु दंसणावरणं ।
तेणिह विबंधएणं, न पिच्छए सो [9]घडाईयं ॥२१॥
निद्दापणगं तत्थ उ, चउभेया दंसणस्स आवरणे ।
[10]सुहपडिबोहो निद्दा, बीया पुण [11]निद्दनिद्दा य ॥२२॥
सा दुक्खबोहणीया, पयला पुण जा ठियस्स उद्धाइ ।
पयलापयल चउत्थी, तीए उदओ उ चंकमणे ॥२३॥

१ "ओहिमणोके०" इति । २ "चउदस" इति ३ "जं पि य, ओहीआवरणयं तंपि" "जं पुण ओ०" इति वा पाठः । ४ "०मईहि य" इति ५ "०भियं समए ।" इति । ६ "तं पुण" । ७ "तं तु" । ८ "एयं" । ९ "पडाईयं" । १० "सुहपडिबोहा" ११ । "निद्दनिद्दत्ति" ।

थीणद्धी पुण दिणचिंतियस्स अत्थस्स साहणी पायं ।
सा संकिलिट्ठकम्मस्स उदयओ होइ नियमेणं ॥२४॥
निद्दापणगं एयं, चक्खू आवरइ चक्खुआवरणं ।
सेसिंदियआवरणं, होइ अचक्खुस्स आवरणं ॥२५॥
सामन्नुवओगं जं, वरेइ तं ओहिदंसणावरणं ।
केवलसामन्नं जं, वरेइ तं केवलस्स भवे ॥२६॥
भणियं दंसणवरणं, तइयं कम्मं तु होइ वेयणियं ।
तं असिधारासरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥२७॥
महुलित्तनिसियकरवालधारजीहाइ [1]जारिसं लिहणं ।
तारिसयं वेयणियं, सुहदुहउप्पायगं मुणह ॥२८॥
महुआसायणसरिसो, सायावेयस्स होइ हु विवागो ।
जं असिणा वहि छिज्जइ, सो उ विवागो असायस्स ॥२९॥
[2]एयं सुहदुक्खकरं चउगइमावन्नयाण जीवाणं ।
सामन्नेणं भणिमो, सुहदुक्खं दुसु दुसु गईसु ॥३०॥
देवेसु य मणुएसु य, तत्थ विसिट्ठेसु कामभोगेसु ।
जं [3]उवभुंजइ जीवो, सो उ विवागो [4]उ सायस्स ॥३१॥
[5]नरएसु य तिरिएसु य, तेसु य दुक्खाइं णेगरूवाइं ।
जं [6]उवभुंजइ जीवो, सो [7]उ विवागो असायस्स ॥३२॥
एयमिह वेयणीयं, चउत्थकम्मं तु होइ मोहणियं ।
तं मज्जपाणसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥३३॥
जह मज्जपाणमूढो, लोए पुरिसो परव्वसो होइ ।
तह मोहेणवि मूढो, जीवोवि परव्वसो होइ ॥३४॥
मोहेइ मोहणीयं, तं पि समासेण [8]भण्णए दुविहं ।
दंसणमोहं पढमं, चरित्तमोहं भवे बीयं ॥३५॥
दंसणमोहं तिविहं, सम्मं मीसं च तह य मिच्छत्तं ।
सुद्धं अद्धविसुद्धं, अविसुद्धं तं जहाकमसो ॥३६॥

१ "जारिसयछिहणं" इति "जारिसं लेहणं" इत्यपि दृश्यते । २ "एवं" इत्यपि । ३-६ "तं भुंजइ" इति "वहिं भुंजई" इत्यपि । ४-७ "व" इति । ५ "तिरिएसु य नरएसु य तेसिं" । ८ "होइ दुविहं तु ।" इति ।

जह निम्मलावि चक्खू, पडेण केणावि छाइया संती ।
[1]इंदं मंदतरागं, पिच्छइ सा निम्मला जइवि ॥११॥
तह मइसुयणाणाणं, [1]ओहीमणकेवलाण आवरणं ।
जीवं निम्मलरूवं, आवरइ इमेहिं भेएहिं ॥१२॥
अट्ठावीसइभेयं, मइनाणं इत्थ वण्णियं समए ।
तं आवरेइ जं तं, मइआवरणं हवइ पढमं ॥१३॥
[2]चोद्दसभेएसु गयं, सुयनाणं इत्थ वण्णियं सम्मए ।
तस्सावरणं जं पुण, सुयआवरणं हवइ बीयं ॥१४॥
अणुगामिवड्ढमाणयमेयाइसु वण्णिओ इहं ओही ।
तं आवरेइ [3]जं तं अवहीआवरणयं जाण ॥१५॥
रिउमइविउलम[4]ईहिं, मणपज्जवनाणव[5]ण्णणं समए ।
तं आवरिय जेणं, [6]तं पि हु मणपज्जवावरणं ॥१६॥
लोयालोयगएसु, भावेसु जं गयं महाविमलं ।
तं आवरियं जेणं, केवलआवरणयं [7]तंपि ॥१७॥
[8]एवं पंचविअप्पं, नाणावरणं समासओ भणियं ।
बीयं दंसणवरणं, नवभेयं भण्णए सुणह ॥१८॥
दंसणसीले जीवे, दंसणघायं करेइ जं कम्मं ।
तं पडिहारसमाणं, दंसणवरणं भवे बीयं ॥१९॥
जह रन्नो पडिहारो, अणभिप्पेयस्स सो उ लोगस्स ।
रण्णो तहिं दरिसावं, न देइ दट्ठुं पि कामस्स ॥२०॥
जह राया तह जीवो, पडिहारसमं तु दंसणावरणं ।
तेणिह विबंधएणं, न पिच्छए सो [9]घडाईयं ॥२१॥
निद्दापणगं तत्थ उ, चउभेया दंसणस्स आवरणे ।
[10]सुहपडिबोहो निद्दा, बीया पुण [11]निद्दनिद्दा य ॥२२॥
सा दुक्खबोहणीया, पयला पुण जा ठियस्स उद्धाइ ।
पयलापयल चउत्थी, तीए उदओ उ चंकमणे ॥२३॥

---

१ "ओहिमणोके०" इति । २ "चउदस" इति ३ "जं पि य, ओहीआवरणयं तंपि" "जं पुण ओ०" इति वा पाठः । ४ "०मईहि य" इति ५ "०भियं समए ।" इति । ६ "तं पुण" । ७ "तं तु" । ८ "एयं" । ९ "घडाईयं" । १० "सुहपडिबोहा" ११ । "निद्दनिद्दत्ति" ।

नव नोकसाय भणिमो, वेया तिन्नेव हासछक्कं च ।
इत्थीपुरिसनपुंसग, तेसिं सरूवं इमं होइ ॥५०॥
पुरिसं पइ अहिलासो, उदएणं होइ जस्स कम्मस्स ।
सो फुंफुमदाहसमो, इत्थीवेयस्स उ विवागो ॥५१॥
इत्थीए पुण उवरिं, [1]जस्सिह उदएण [2]रागमुप्पज्जे ।
सो तणदाहसमाणो, होइ विवागो [3]पुरिसवेए ॥५२॥
इत्थीपुरिसाणुवरिं, [4]जस्सिह उदएण [5]रागमुप्पज्जे ।
नगरमहादाहसमो, [6]सो उ विवागो [7]अपुमवेए ॥५३॥
[8]तिण्ह वि होइ विवागो, मिच्छाओ जाव बायरो ताव ।
हासरईअरइभयं, सोगदुगुंच्छा [9]उ अह भणिमो ॥५४॥
सनिमित्तऽनिमित्तं वा, जं हासं होइ [10]इत्थ जीवस्स ।
सो हासमोहणीयस्स होइ कम्मस्स उ विवागो ॥५५॥
सचित्ताचित्तेसु, य बाहिरदव्वेसु जस्स उदएणं ।
होइ रई रइमोहे, [11]सो उ विवागो वियाणाहि ॥५६॥
सचित्ताचित्तेसु य, बाहिरदव्वेसु जस्स उदएणं ।
अरई होइ हु जीवे सो उ विवागो अरइमोहे ॥५७॥
भयवज्जियंमि जीवे, जस्सिह उदएण हुंति कम्मस्स ।
सत्तवि भयठाणाइं, भयमोहे सो विवागो उ ॥५८॥
सोगरहियंमि जीवे, [12]जस्सिह उदएण होइ कम्मस्स ।
अक्कंदणाइसोगो, तं [13]जाणह सोगमोहणियं ॥५९॥
दुग्गंधमलिणगेसु य, [14]अब्भिंतरबाहिरेसु दव्वेसु ।
जेण विलीयं जीवे उप्पज्जइ सा दुगुंछा [15]उ ॥६०॥
छण्हवि [16]होइ विवागो, मिच्छाओ जा अपुव्वकरणस्स ।
चरमसमउ त्ति परओ, नत्थि विवागो [17]उ छण्हं पि ॥६१॥
भणिओ मोहविवागो, आउयकम्मं [18]तु पंचमं भणिमो ।
[19]तं होइ चउपयारं, नरतिरिमणुदेवभेएहिं ॥६२॥

१-४ "जस्सुदएणं तु" इति। २-५ "राग उप्पज्जे" इति। ३ "उ पुमवेए" इति। ६ "होइ" इति 'जाण' इति वा ७- "नपुंसस्स" इति। ८ "तिण्हवि जाण विवागो" इति। ९-१६-१८ "य" इति। १० "एत्थ" इति। ११ "तं तु विवागं वियाणाहि" "सो उ विवागो मुणेयव्वो" इति। १२ "जस्स उ" इति। १३ "जाणसु" इति। १४ "सब्भिन्तर०" इति। १५ "दुगंछा" इति। १७ "जाण" इति। १९ "च"। २० "तंपि हु चउप्पयारं" इति।

केवलनाणुवलद्धे, जीवाइपयत्थ सद्दहे जेणं ।
तं संमत्तं कम्मं, सिवसुहसंपत्तिपरिणामं ॥३७॥
रागं नवि जिणधम्मे, [1]नवि दोसं जाइ जस्स उदएणं ।
सो मीसस्स विवागो, अंतमुहुत्तं [2]भवे कालं ॥३८॥
[3]जिणधम्मंमि पओसं, वहइ य हियएण जस्स उदएणं ।
तं मिच्छत्तं कम्मं, संकिट्ठो तस्स उ विवागो॥३९॥
जं पि य चरित्तमोहं, [4]तं पि हु दुविहं समासओ होइ ।
सोलस जाण कसाया, नव भेया नोकसायाणं ॥४०॥
कोहो माणो माया, लोभो चउरो वि हुंति चउभेया ।
अणअप्पच्चक्खाणा, पच्चक्खाणा य संजलणा ॥४१॥
कोहो माणो माया लोभो पढमा [5]अणंतबंधी उ ।
एयाणुदए जीवो, इह संमत्तं न पावेइ ॥४२॥
जं परिणामो किट्ठो मिच्छाओ जाव सासणो ताव ।
संमामिच्छाईसु, एसिं उदओ [6]अओ नत्थि ॥४३॥
कोहो माणो माया, लोभो बीया अपच्चखाणा उ ।
एयाणुदए जीवो, विरयाविरइं न पावेइ ॥४४॥
एसिं [7]जाण विवागो, मिच्छाओ जाव अविरओ ताव ।
परओ देसजयाइसु, नत्थि विवागो चउण्हंपि ॥४५॥
कोहो माणो माया, लोभो तइया उ पच्चखाणा उ ।
एयाणुदए जीवो, पावेइ न [8]सव्वविरइं तु ॥४६॥
एसिं [9]जाण विवागो, मिच्छाओ जाव विरयविरओ [10]उ ।
परओ पमत्तमाइसु, नत्थि विवागो चउण्हंपि ॥४७॥
कोहो माणो माया, लोभो चरिमा उ हुंति संजलणा ।
एयाणुदए जीवो, न लहइ अहखायचारित्तं ॥४८॥
एसिं [11]जाण विवागो, मिच्छाओ जाव बायरो तिण्हं ।
लोभस्स जाव सुहुमो, होइ विवागो न परओ [12]उ ॥४९॥

---

१ "न य" इति । २ "हवइ" इति । ३ "जिणधम्मस्स पओसं वहई उदएण जस्स कम्मस्स" । ४ "तंपि समासेण होइ दुविहं तु ।" इत्यपि । "तं पि समासेण दुविह भणियं तु ।" इत्यपि । ५ "अणंतबंधीउ" इत्यपि । ६ "अओ" इति । ७-९-११ "जेण" इति । ८ "सव्वविरई उ" इति ।१०/१२ "य" इति ।

केवलनाणुवलद्धे, जीवाइपयत्थ सद्दहे जेणं ।
तं संमत्तं कम्मं, सिवसुहसंपत्तिपरिणामं ॥३७॥
रागं नवि जिणधम्मे, [1]नवि दोसं जाइ जस्स उदएणं ।
सो मीसस्स विवागो, अंतमुहुत्तं [2]भवे कालं ॥३८॥
[3]जिणधम्मंमि पओसं, वहइ य हियएण जस्स उदएणं ।
तं मिच्छत्तं कम्मं, संकिट्ठो तस्स उ विवागो॥३९॥
जं पि य चरित्तमोहं, [4]तं पि हु दुविहं समासओ होइ ।
सोलस जाण कसाया, नव भेया नोकसायाणं ॥४०॥
कोहो माणो माया, लोभो चउरो वि हुंति चउभेया ।
अणअप्पच्चक्खाणा, पच्चक्खाणा य संजलणा ॥४१॥
कोहो माणो माया लोभो पढमा [5]अणंतबंधी उ ।
एयाणुदए जीवो, इह संमत्तं न पावेइ ॥४२॥
जं परिणामो किट्ठो मिच्छाओ जाव सासणो ताव ।
संमामिच्छाईसु, एसिं उदओ [6]अओ नत्थि ॥४३॥
कोहो माणो माया, लोभो बीया अपच्चखाणा उ ।
एयाणुदए जीवो, विरयाविरइं न पावेइ ॥४४॥
एसिं [7]जाण विवागो, मिच्छाओ जाव अविरओ ताव ।
परओ देसजयाइसु, नत्थि विवागो चउण्हंपि ॥४५॥
कोहो माणो माया, लोभो तइया उ पच्चखाणा उ ।
एयाणुदए जीवो, पावेइ न [8]सव्वविरइं तु ॥४६॥
एसिं [9]जाण विवागो, मिच्छाओ जाव विरयविरओ [10]उ ।
परओ पमत्तमाइसु, नत्थि विवागो चउण्हंपि ॥४७॥
कोहो माणो माया, लोभो चरिमा उ हुंति संजलणा ।
एयाणुदए जीवो, न लहइ अहखायचारित्तं ॥४८॥
एसिं [11]जाण विवागो, मिच्छाओ जाव बायरो तिण्हं ।
लोभस्स जाव सुहुमो, होइ विवागो न परओ [12]उ ॥४९॥

---

१ "न य" इति । २ "हवइ" इति । ३ "जिणधम्मस्स पओसं वहई उदएण जस्स कम्मस्स" । ४ "तंपि समासेण होइ दुविहं तु ।" इत्यपि । "तं पि समासेण दुविह भणियं तु ।" इत्यपि । ५ "अणंतबंधीउ" इत्यपि । ६ "जओ" इति । ७-९-११ "जेण" इति । ८ "सव्वविरई उ" इति ।१०/१२ "य" इति ।

नव नोकसाय भणिमो, वेया तिन्नेव हासछक्कं च ।
इत्थीपुरिसनपुंसग, तेसिं सरूवं इमं होइ ॥५०॥
पुरिसं पइ अहिलासो, उदएणं होइ जस्स कम्मस्स ।
सो फुंफुमदाहसमो, इत्थीवेयस्स उ विवागो ॥५१॥
इत्थीए पुण उवरिं, [1]जस्सिह उदएण [2]रागमुप्पज्जे ।
सो तणदाहसमाणो, होइ विवागो [3]पुरिसवेए ॥५२॥
इत्थीपुरिसाणुवरिं, [4]जस्सिह उदएण [5]रागमुप्पज्जे ।
नगरमहादाहसमो, [6]सो उ विवागो [7]अपुमवेए ॥५३॥
[8]तिण्ह वि होइ विवागो, मिच्छाओ जाव बायरो ताव ।
हासरईअरइभयं, सोगदुगुंच्छा [9]उ अह भणिमो ॥५४॥
सनिमित्तऽनिमित्तं वा, जं हासं होइ [10]इत्थ जीवस्स ।
सो हासमोहणीयस्स होइ कम्मस्स उ विवागो ॥५५॥
सच्चित्ताचित्तेसु, य बाहिरदव्वेसु जस्स उदएणं ।
होइ रई रइमोहे, [11]सो उ विवागो वियाणाहि ॥५६॥
सच्चित्ताचित्तेसु य, बाहिरदव्वेसु जस्स उदएणं ।
अरई होइ हु जीवे सो उ विवागो अरइमोहे ॥५७॥
भयवज्जियंमि जीवे, जस्सिह उदएण हुंति कम्मस्स ।
सत्तवि भयठाणाइं, भयमोहे सो विवागो उ ॥५८॥
सोगरहियंमि जीवे, [12]जस्सिह उदएण होइ कम्मस्स ।
अक्कंदणाइसोगो, तं [13]जाणह सोगमोहणियं ॥५९॥
दुग्गंधमलिणगेसु य, [14]अब्भिंतरबाहिरेसु दव्वेसु ।
जेण विलीयं जीवे उप्पज्जइ सा [15]दुगुंछा [16]उ ॥६०॥
छण्हवि [17]होइ विवागो, मिच्छाओ जा अपुव्वकरणस्स ।
चरमसमउ त्ति परओ, नत्थि विवागो [18]उ छण्हं पि ॥६१॥
भणिओ मोहविवागो, आउयकम्मं [19]तु पंचमं भणिमो ।
[20]तं होइ चउपयारं, नरतिरिमणुदेवभेएहिं ॥६२॥

१-४ "जस्सुदएणं तु" इति। २-५ "राग उप्पज्जे" इति। ३ "उ पुमवेए" इति। ६ "होइ" इति 'जाण" इति वा ७- "नपुंसस्स" इति। ८ "तिण्हवि जाण विवागो" इति। ९-१६-१८ "य" इति। १० "एत्थ" इति। ११ "तं तु विवागं वियाणाहि" "सो उ विवागो मुणेयव्वो" इति। १२ "जस्स उ" इति। १३ "जाणसु" इति। १४ "सब्भिंतर०" इति। १५ "दुगंछा" इति। १७ "जाण" इति। १९ "च"। २० "तंपि हु चउप्पयारं" इति।

दुक्खं न देइ आउं [1]नेय सुहं देइ चउसुवि गईसु ।
दुक्खसुहाणाहारं, धरेइ देहट्ठियं जीवं ॥६३॥
जं नेरइयं नारयभवम्मि तहिं धरइ उव्वियंतं पि ।
जाणसु तं निरयाउं हडिसरिसो तस्स उ विवागो ॥६४॥
एवं तिरियं मणुयं देवं तिरियाइएसु [2]भावेसु ।
जं धरइ तब्भवगयं तं तेसिं आउयं भणियं ॥६५॥
भणियं आउयकम्मं, छट्ठं कम्मं [3]तु भण्णए नामं ।
तं चित्तगरसमाणं, [4]जह होइ तहा निसामेह ॥६६॥
जह चित्तयरो निउणो, अणेग[5]रूवाइँ कुणइ रूवाइं ।
सोहणमसोहणाइं, [6]चुक्खाचुक्खेहिँ वण्णेहिं ॥६७॥
तह नामं पि य कम्मं, अणेगरूवाइँ कुणइ जीवस्स ।
सोहणमसोहणाइं, इट्ठाणिट्ठाइँ लोयस्स ॥६८॥
गइयाइए[7]सु जीवं, नामइ भेएसु जं तओ नामं ।
तस्स [8]उ बायालीसं, भेया अहवावि सत्तट्ठी ॥६९॥
अहवावि [9]हु तेणउई, भेया पयडीण [10]हुंति नामस्स ।
अहवा तिउत्तरसयं, सव्वेवि जहक्कमं भणिमो ॥७०॥
पढमा बायालीसा, गइजाइसरीरअंगुवंगे य ।
बंधणसंघायणसंघयणसंठाणनामं च ॥७१॥
तह वण्णगंधरसफासनामअगुरुलहुयं च बोधव्वं ।
उवघायपराघायाणुपुव्विउस्सासनामं च ॥७२॥
आयावुज्जोयविहायगई तसथावराभिहाणं च ।
बायरसुहुमं पज्जत्तापज्जत्तं च नायव्वं ॥७३॥
पत्तेयं साहारण, थिरमथिर[11]सुभासुभं च नायव्वं ।
[12]सूभगदूभगनामं, सूसर तह दूसरं चेव ॥७४॥
आइज्जमणाइज्जं, जसकित्तीनाममजसकित्ती य ।
निम्माणं तित्थयरं, भेयाणवि हुंतिमे भेया ॥७५॥

---

१ "नेव" इति "न विय" इति वा पाठः । २ "भेएसु" इति । ३ "उ" । ४ "अणेगरूवं जियं कुणइ" इति । ५ "भेयाइ" । ६ "चुक्खमचोक्खेहिँ" "चोक्खाचोक्खेहिँ" इत्यपि वा पाठः । ७ "–सुं य जियं" इति । ८ "य" इति । ९ "उ तेणउइं वि" इति । १० "होंति" इति । ११ "सुहासुहं" इति । १२ "सूहगदूहग" इति ।

गइ होइ [1]चउब्भेया, [2]जाईवि य पंचहा मुणेयव्वा ।
पंच य हुंति सरीरा, अंगोवंगाइँ [3]तिन्नेव ॥७६॥
छस्संघयणा जाणसु, संठाणावि य [4]हवंति छच्चेव ।
वण्णाईण चउक्कं, अगुरुलहुवघायपरघायं ॥७७॥
अणुपुव्वी चउभेया, उस्सासं आयवं च उज्जोयं ।
सुहअसुहविहायगई, तसाइवीसं च निम्माणं ॥७८॥
तित्थ[5]यरेण य सहिया, सत्तट्ठी एव हुंति पयडीओ ।
सम्मामीसेहिँ विणा, तेवन्ना सेसकम्माणं ॥७९॥
एवं विसुत्तरसयं [6]बंधे पयडीण होइ नायव्वं ।
बंधणसंघायावि य, सरीरगहणेण इह गहिया ॥८०॥
बंधणभेया पंच उ, संघायावि य हवंति पंचेव ।
पण वण्णा दो गंधा, पंच रसा अट्ठ फासा य ॥८१॥
दस सोलस छव्वीसा, एया मेलेहि सत्तसट्ठीए ।
तेणउई होइ तओ, बंधणभेया उ [7]पण्णरस ॥८२॥
सव्वेहिँ वि छूढेहिँ, तिगअहियसयं तु होइ नामस्स ।
एएसिं तु विवागं, वुच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥८३॥
नारयतिरियनरामरगइभेया चउविहा गई होइ ।
एसा खलु ओदइए, होइ हु भावे जओ आह ॥८४॥
जीए उदएण जीवो, नेरइओ होइ नरयपुढवीए ।
सा भणिया नरयगई, सेसगईओ वि एमेव ॥८५॥
इगदुगतिगचउरिंदियजाई पंचिंदियाण पंच[8]भेया ।
खयउवसमिए भावे, हुंति हु [9]एया जओ आह ॥८६॥
एगिंदिएसु जीवो, जस्सिह उदएण [10]होइ कम्मस्स ।
सा एगिंदियजाई, जाईओ एव [11]सेसा उ ॥८७॥
ओरालियवेउव्वियआहारयतेयकम्मए [12]चेव ।
एवं पंच सरीरा, तेसिँ विवागो इमो होइ ॥८८॥

---

१ "चउप्पयारा" इत्यपि । २ "जाईविह" इत्यपि । ३ "तिण्णेव" इति । ४ "तहेव" इति पाठः । ५ "०यरेणं स०" इति । ६ "बंधणपयडीण" इति । ७ "पन्नरस" इति । ८ "०विहा" इति । ९ "भेया" इति । १० "जाइ" इति । ११ "सेसावि" इति । १२ "चेवं । पंचेव सरीरा तेसिं च विभागं इमं सुणह" इत्यपि पाठः

दुक्खं न देइ आउं [1]नेय सुहं देइ चउसुवि गईसु ।
दुक्खसुहाणाहारं, धरेइ देहट्ठियं जीवं ॥६३॥
जं नेरइयं नारयभवम्मि तहिं धरइ उव्वियंतं पि ।
जाणसु तं निरयाउं हडिसरिसो तस्स उ विवागो ॥६४॥
एवं तिरियं मणुयं देवं तिरियाइएसु [2]भावेसु ।
जं धरइ तब्भवगयं तं तेसिं आउयं भणियं ॥६५॥
भणियं आउयकम्मं, छट्ठं कम्मं [3]तु भण्णए नामं ।
तं चित्तगरसमाणं, [4]जह होइ तहा निसामेह ॥६६॥
जह चित्तयरो निउणो, अणेग[5]रूवाइं कुणइ रूवाइं ।
सोहणमसोहणाइं, [6]चुक्खाचुक्खेहिं वण्णेहिं ॥६७॥
तह नामं पि य कम्मं, अणेगरूवाइं कुणइ जीवस्स ।
सोहणमसोहणाइं, इट्ठाणिट्ठाइं लोयस्स ॥६८॥
गइयाइए[7]सु जीवं, नामइ भेएसु जं तओ नामं ।
तस्स [8]उ बायालीसं, भेया अहवावि सत्तट्ठी ॥६९॥
अहवावि [9]हु तेणउई, भेया पयडीण [10]हुंति नामस्स ।
अहवा तिउत्तरसयं, सव्वेवि जहक्कमं भणिमो ॥७०॥
पढमा बायालीसा, गइजाइसरीरअंगुवंगे य ।
बंधणसंघायणसंघयणसंठाणनामं च ॥७१॥
तह वण्णगंधरसफासनामअगुरुलहुयं च बोधव्वं ।
उवघायपराघायाणुपुव्विउस्सासनामं च ॥७२॥
आयावुज्जोयविहायगई तसथावराभिहाणं च ।
बायरसुहुमं पज्जत्तापज्जत्तं च नायव्वं ॥७३॥
पत्तेयं साहारण, थिरमथिर[11]सुभासुभं च नायव्वं ।
[12]सुभगदूभगनामं, सूसर तह दूसरं चेव ॥७४॥
आइज्जमणाइज्जं, जसकित्तीनाममजसकित्ती य ।
निम्माणं तित्थयरं, भेयाणवि हुंतिमे भेया ॥७५॥

---

१ "नेव" इति "न विय" इति वा पाठः । २ "भेएसु" इति । ३ "उ" । ४ "अणेगरूवं जियं कुणइ" इति । ५ "भेयाइ" । ६ "चुक्खमचोक्खेहिं" "चोक्खाचोक्खेहिं" इत्यपि वा पाठः । ७ "–सु य जियं" इति । ८ "य" इति । ९ "उ तेणउइ वि" इति । १० "होंति" इति । ११ "सुहासुहं" इति । १२ "सूहगदूहग" इति ।

गइ होइ [1]चउब्भेया, [2]जाईवि य पंचहा मुणेयव्वा ।
पंच य हुंति सरीरा, अंगोवंगाइं [3]तिन्नेव ॥७६॥
छस्संघयणा जाणसु, संठाणावि य [4]हवंति छच्चेव ।
वण्णाईण चउक्कं, अगुरुलहुवघायपरघायं ॥७७॥
अणुपुव्वी चउभेया, उस्सासं आयवं च उज्जोयं ।
सुहअसुहविहायगई, तसाइवीसं च निम्माणं ॥७८॥
तित्थ[5]यरेण य सहिया, सत्तट्ठी एव हुंति पयडीओ ।
सम्मामीसेहि विणा, तेवन्ना सेसकम्माणं ॥७९॥
एवं विसुत्तरसयं [6]बंधे पयडीण होइ नायव्वं ।
बंधणसंघायावि य, सरीरगहणेण इह गहिया ॥८०॥
बंधणभेया पंच उ, संघायावि य हवंति पंचेव ।
पण वण्णा दो गंधा, पंच रसा अट्ठ फासा य ॥८१॥
दस सोलस छव्वीसा, एया भेलेहि सत्तसट्ठीए ।
तेणउई होइ तओ, बंधणभेया उ [7]पण्णरस ॥८२॥
सव्वेहिं वि छूढेहिं, तिगअहियसयं तु होइ नामस्स ।
एएसिं तु विवागं, वुच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥८३॥
नारयतिरियनरामरगइभेया चउविहा गई होइ ।
एसा खलु ओदइए, होइ हु भावे जओ आह ॥८४॥
जीए उदएण जीवो, नेरइओ होइ नरयपुढवीए ।
सा भणिया नरयगई, सेसगईओ वि एमेव ॥८५॥
इगदुगतिगचउरिंदियजाई पंचिंदियाण पंच[8]विहा ।
खयउवसमिए भावे, हुंति हु [9]एया जओ आह ॥८६॥
एगिंदिएसु जीवो जस्सिह उदएण [10]होइ कम्मस्स ।
सा एगिंदियजाई जाईओ एव [11]सेसा उ ॥८७॥
ओरालियवेउव्वियआहारयतेयकम्मए [12]चेव ।
एवं पंच सरीरा, तेसिं विभागो इमो होइ ॥८८॥

१ "चउपयारा" इत्यपि । २ "जाईविह" इत्यपि । ३ "तिण्णेव" इति । ४ "तहेव" इति पाठः । ५ "०यरेणं स०" इति । ६ "बंधणपयडीण" इति । ७ "पन्नरस" इति । ८ "०विहा" इति । ९ "भेया" इति । १० "जाइ" इति । ११ "सेसावि" इति । १२ "चेवं । पंचेव सरीरा तेसिं च विभागं इमं सुणह" इत्यपि पाठः ।

ओरालियं सरीरं, उदएणं होइ जस्स कम्मस्स ।
तं ओरालियनामं, सेससरीरा वि एमेव ॥८९॥
अंगोवंगविभागो, उदएणं [1]होइ जस्स कम्मस्स ।
तं अंगुवंगनामं, तस्स विवागो इमो होइ ॥९०॥
सीसमुरोयरपिट्ठी दो बाहू ऊरुया य अट्ठंगा ।
अंगुलिमाइउवंगा, अंगोवंगाइं सेसाइँ ॥९१॥
आइल्लाणं तिण्हं, हुंति सरीराण अंगुवंगाइं ।
[2]नो तेयगकम्माणं, बंधणनामं इमं होइ ॥९२॥
ओरालियओरालिय ओरालियतेयबंधणं बीयं ।
ओरालकम्मबंधण, तिण्हवि जोगे चउत्थं तु ॥९३॥
ओरालपुग्गला, इह, बद्धा जीवेण जे उरालत्ते ।
अन्ने [3]उ बज्झमाणा, ओरालियपुग्गला जे [4]य ॥९४॥
तेसिं जं संबंधं, [5]अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।
तं जउसरिसं जाणसु, ओरालियबंधणं पढमं ॥९५॥
एवोरालियतेयग, ओरालियकम्मबंधणं तह य ।
ओरालतेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥९६॥
वेउव्वियवेउव्विय, वेउव्वियतेयबंधणं बीयं ।
वेउव्विकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥९७॥
वेउव्विपुग्गला इह, बद्धा जीवेण जे विउव्वित्ते ।
अन्ने य बज्झमाणा, वेउव्वियपुग्गला जे उ ॥९८॥
तेसिं जं संबंधं, [6]अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।
तं जउसरिसं जाणसु, वेउव्वियबंधणं पढमं ॥९९॥
एवं विउव्वितेयग, वेउव्वियकम्मबंधणं तह य ।
वेउव्वितेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥१००॥
आहारगआहारग, आहारगतेयबंधणं बीयं ।
आहारकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥१०१॥
आहारपुग्गला इह, आहारत्तेण जे निबद्धा उ ।
अन्ने य बज्झमाणा, आहारगपुग्गला जे उ ॥१०२॥

१ "जस्स होइ" इत्यपि । २ "णो" इति । ३-४ "व" इति । ५-६ "अवरुप्पर" इति ।

तेसिं जं संबंधं, [1]अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।
तं जउसरिसं जाणसु, आहारगबंधणं पढमं ॥१०३॥
एवाहारगतेयग, आहारगकम्मबंधणं तह य ।
आहारतेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥१०४॥
एवं तेयगतेयग, तेयग [2]कम्मे य बंधणं तह य ।
[3]कम्मइगे कम्मइगं, बंधण[4]नामं पि पनरसमं ॥१०५॥
संघायनाम[5]महुणा, संघायइ जेण तेण संघायं ।
ओरालियसंघायं, वेउव्विय जाव [6]कम्मइगं ॥१०६॥
ओरालाई जे देहपुग्गला [7]होंति जंमि ठाणंमि ।
ते [8]ठंति तंमि ठाणे, संघायण[9]कम्मणो उदए ॥१०७॥
वज्जरिसहनारायं, [10]रिसहं नारायमद्धनारायं ।
कीलिय तह छेवट्ठं, तेसिं सरूवं इमं होइ ॥१०८॥
रिसहो [11]य होइ पट्टो, वज्जं पुण कीलिया मुणेयव्वा ।
उभओ [12]मक्कडबंधं, नारायं तं वियाणाहि ॥१०९॥
जस्सुदएणं जीवे, संघयणं होइ वज्जरिसहं तु ।
तं वज्जरिसहनामं सेसावि हु एव संघयणा ॥११०॥
समचउरंसे नग्गोहमंडले साइवामणे खुज्जे ।
हुंडे वि य [13]संठाणे, तेसि सरूवं इमं होइ ॥१११॥
तुल्लं वित्थडबहुलं, उस्सेहबहुं च मडह[14]कोट्ठं च ।
हिट्ठिल्लकायमडहं, सव्वत्थासंठियं हुंडं ॥११२॥
जस्सुदएणं जीवे, चउरंसं नाम होइ संठाणं ।
तं चउरंसं नामं, सेसावि हु एव संठाणा ॥११३॥
किण्हा नीला लोहिय, हालिद्दा तह य हुंति [15]सुक्किलया ।
जियदेहाणं वण्णा, उदएणं वण्णनामस्स ॥११४॥
गंधेण सुरभिगंधं, अहवा गंधेण दुरभिगंधं तु ।
होइ जिया[16]णं देहं, उदएणं गंधनामस्स ॥११५॥

---

१ "अवरुप्परपोग्गलाण" इत्यपि । २ "कम्मयगबंधणं" इत्यपि । ३ "कम्मइयं कम्मइयं" इत्यपि । ४ "°नामं तु पन्नरसं" इति । ५ "महुणा" इत्यपि । ६ "कम्मइय" इत्यपि । ७–८ "हुंति" । ९ "०कम्मुणो" इत्यपि । १० "पढमं बीयं च रिसहनारायं । नारायमद्धनारायकीलिया तह य छेवट्ठं ॥" इति पाठः । ११ "अ" इति वा । १२ "मक्कडबंधो;" इति ॥ १३ "संठाणा जीवाणं छ मुणेयव्वा" इत्यपि । १४ "कुट्ठं" इति वा । १५ "सुक्का य" इति । १६ "°ण सरीरं" इति ।

ओरालियं सरीरं, उइण्णं होइ जस्स कम्मस्स ।
तं ओरालियनामं, सेससरीरा वि एमेव ॥८९॥
अंगोवंगविभागो, उइण्णं [1]होइ जस्स कम्मस्स ।
तं अंगुवंगनामं, तस्स विवागो इमो होइ ॥९०॥
सीसमुरोयरपिट्ठी दो बाहू ऊरुया य अट्ठंगा ।
अंगुलिमाइउवंगा, अंगोवंगाइं सेसाइं ॥९१॥
आइल्लाणं तिण्हं, हुंति सरीराण अंगुवंगाइं ।
[2]जो तेयगकम्माणं, बंधणनामं इमं होइ ॥९२॥
ओरालियओरालिय ओरालियतेयबंधणं बीयं ।
ओरालकम्मबंधण, तिण्हवि जोगे चउत्थं तु ॥९३॥
ओरालपुग्गला, इह, बद्धा जीवेण जे उरालत्ते ।
अन्ने [3]उ बज्झमाणा, ओरालियपुग्गला जे [4]य ॥९४॥
तेसिं जं संबंधं, [5]अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।
तं जउसरिसं जाणसु, ओरालियबंधणं पढमं ॥९५॥
एवोरालियतेयग, ओरालियकम्मबंधणं तह य ।
ओरालतेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥९६॥
वेउव्वियवेउव्विय, वेउव्वियतेयबंधणं बीयं ।
वेउव्विकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥९७॥
वेउव्विपुग्गला इह, बद्धा जीवेण जे विउव्वित्ते ।
अन्ने य बज्झमाणा, वेउव्वियपुग्गला जे उ ॥९८॥
तेसिं जं संबंधं, [6]अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।
तं जउसरिसं जाणसु, वेउव्वियबंधणं पढमं ॥९९॥
एवं विउव्वितेयग, वेउव्वियकम्मबंधणं तह य ।
वेउव्वितेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥१००॥
आहारगआहारग, आहारगतेयबंधणं बीयं ।
आहारकम्मबंधण, तिण्हवि जोए चउत्थं तु ॥१०१॥
आहारपुग्गला इह, आहारत्तेण जे निबद्धा उ ।
अन्ने य बज्झमाणा, आहारगपुग्गला जे उ ॥१०२॥

---

१ 'जस्स होइ' इत्यपि । २ "जो" इति । ३-४ "उ" इति । ५-६ "अवरुप्पर" इति ।

तेसिं जं संबंधं, [1]अवरोप्परपुग्गलाणमिह कुणइ ।
तं जउसरिसं जाणसु, आहारगबंधणं पढमं ॥१०३॥
एवाहारगतेयग, आहारगकम्मबंधणं तह य ।
आहारतेयकम्मगबंधणनामं पि एमेव ॥१०४॥
एवं तेयगतेयग, तेयग [2]कम्मे य बंधणं तह य ।
[3]कम्मइगं कम्मइगं, बंधण[4]नामं पि पनरसमं ॥१०५॥
संघायनाम[5]महुणा, संघायइ जेण तेण संघायं ।
ओरालियसंघायं, वेउव्विय जाव [6]कम्मइगं ॥१०६॥
ओरालाई जे देहपुग्गला [7]होंति जंमि ठाणंमि ।
ते [8]ठंति तंमि ठाणे, संघायण[9]कम्मणो उदए ॥१०७॥
वज्जरिसहनारायं, [10]रिसहं नारायमद्धनारायं ।
कीलिय तह छेवट्ठं, तेसिं सरूवं इमं होइ ॥१०८॥
रिसहो [11]य होइ पट्टो, वज्जं पुण कीलिया मुणेयव्वा ।
उभओ [12]मक्कडबंधं, नारायं तं वियाणाहि ॥१०९॥
जस्सुदएणं जीवे, संघयणं होइ वज्जरिसहं तु ।
तं वज्जरिसहनामं सेसावि हु एव संघयणा ॥११०॥
समचउरंसे नग्गोहमंडलं साइवामणे खुज्जे ।
हुंडे वि य [13]संठाणे, तेसि सरूवं इमं होइ ॥१११॥
तुल्लं वित्थडबहुलं, उस्सेहबहु च मडह[14]कोट्ठं च ।
हिट्ठिल्लकायमडहं, सव्वत्थासंठियं हुंडं ॥११२॥
जस्सुदएणं जीवे, चउरंसं नाम होइ संठाणं ।
तं चउरंसं नामं, सेसावि हु एव संठाणा ॥११३॥
किण्हा नीला लोहिय, हालिद्दा तह य हुंति [15]सुक्किलया ।
जियदेहाणं वण्णा, उदएणं वण्णनामस्स ॥११४॥
गंधेण सुरभिगंधं, अहवा गंधेण दुरभिगंधं तु ।
होइ जिया[16]णं देहं, उदएणं गंधनामस्स ॥११५॥

---

१ "अवरुप्परपोग्गलाण" इत्यपि । २ "कम्मयगबंधणं" इत्यपि । ३ "कम्मइयं कम्मइयं" इत्यपि ।
४ "°नामं तु पन्नरसं" इति । ५ "अहुणा" इत्यपि । ६ "कम्मइय" इत्यपि । ७-८ "हुंति" । ९ "०कम्मुणो"
इत्यपि । १० "पढमं बीयं च रिसहनारायं । नारायमद्धनारायकीलिया 'तह य छेवट्ठं' ॥" इति पाठः ।
११ "अ" इति वा । १२ "मक्कडबंधो;" इति ॥ १३ "संठाणा जीवाणं छ मुणेयव्वा " इत्यपि । १४ "कुट्ठं"
इति वा । १५ "सुक्का य" इति । १६ "°ण सरीरं" इति ।

[1]तित्तगकडुयकसाया, अंबिलमहुरा [2]रसावि [3]पंच भवे ।
तेवि हु जियदेहाणं, रसनामुदएण खज्जंता ॥११६॥
गुरुलहुमिउकढिणावि य. निद्धा लुक्खा य होंति सीउण्हा ।
जियदेहाणं फासा, उदएणं फासनामस्स ॥११७॥
गुरुअं न होइ देहं, न य लहुयं होइ सव्वजीवाणं ।
होइ हु अगुरुयलहुयं, अगुरुलहुयनामउदएणं ॥११८॥
अंगावययो पडिजिब्भिया [4]इ जो अप्पणो उवग्घायं ।
कुणइ हु देहंमि ठिओ, सो उववायस्स उ विवागो ॥११९॥
तयविसदंतविसाई, अंगावयवो [5]य जो उ अन्नेसिं ।
जीवाण कुणइ घायं, सो परवायस्स उ विवागो ॥१२०॥
नारयतिरियनरामरभवेसु जंतस्स अंतरगईए ।
अणुपुव्वीए उदओ, सा चउहा [6]सुणसु जह होइ ॥१२१॥
नरयाउयस्स उदए, नरए वक्केण गच्छमाणस्स ।
नरयाणुपुव्वियाए, [7]तहि उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२२॥
एवं तिरिमणुदेवे, तेसुवि वक्केण गच्छमाणस्स ।
तेसिमणुपुव्वियाणं, [8]तहि उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२३॥
जस्सुदएणं जीवे, निप्फत्ती होइ आणपाणूणं ।
तं [9]ऊसासं नामं, तस्स विवागो सरीरम्मि ॥१२४॥
जस्सुदएणं जीवे, होइ सरीरं तु ताविलं इत्थ ।
सो आयवे विवागो, जह रविविंबे तहा जाण ॥१२५॥
[10]न भवइ तेयसरीरे, जेण उ तेयस्स उसिणफासस्स ।
होइ हु उदओ नियमा, तह लोहियवण्णनामस्स ॥१२६॥
जस्सुदएणं जीवो, अणुसिणदेहेण कुणइ उज्जोयं ।
तं उज्जोयं नामं, जाणसु खज्जोयमाईणं ॥१२७॥
जस्सुदएणं जीवो, वर[11]वसभगईएँ गच्छइ गईए ।
[12]सा सुहया विहगगई, हंसाईणं भवे सा उ ॥१२८॥

१ "तित्ताकडुया कसाया" इत्यपि पाठः । २ "रसा य" इति । ३ "पंचविहा" इति । ४ "०य जो अत्तणो उ उवघाय" इति वा । ५ "उ" इति वा । ६ "सुणह" इति ७ ८ "उदओ तहिं" इति वा । ९ "उस्सासं" इति । १० "किं नथि तेयसरीरे; भण्णइ तेयस्स" इति पाठः "किम हु" इति वा । ११ "वसह°" इति वा । १२ "सा य सुहा" इति ।

जस्सुदएणं जीवो, [1]असमणिट्ठाए उ गच्छइ गईए ।
सा असुहा विहगगई, उट्टाईणं भवे सा उ ॥१२९॥
तस-बायर-पज्जत्तं, पत्तेय-थिरं सुभं च सुभगं च ।
सूसर-आइज्ज-जसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥१३०॥
आइम्मि तसचउक्कं, थिराइछक्कं तु उवरिमं होइ ।
थावरदसगं अहुणा, [2]थावर-सुहुमं अपज्जत्तं ॥१३१॥
होइ तहा साहारं, अथिरं असुभं च दूभगं चेव ।
दूसरणाइज्जेहिं अ, अजसेहिं य बीयदसगं तु ॥१३२॥
आइम्मि थावरचऊ, सुहुमतिगं उवरिमं भवे इत्थ ।
अथिराइछक्कमुवरिं, [3]विवागभेअं अओ भणिमो ॥१३३॥
तसनामुदए जीवो, बेइंदियमाइ जाइ [4]जीवेसु ।
थावरनामुदए [5]पुण, पुढवीमाईसु सो जाइ ॥१३४॥
बायरनामुदएणं, बायरकाओ [6]उ होइ सो नियमा ।
सुहुमेण सुहुमकाओ, अंतमुहुत्ताउओ होइ ॥१३५॥
आहारसरीरिंदियपज्जत्तीआणपाणभासमणे ।
चत्तारि पंच छप्पि य, एगिंदियविगलसन्नीणं ॥१३६॥
एयासिं निप्फत्ती, उदएणं जस्स होइ कम्मस्स ।
तं पज्जत्तं नामं, इयरुदए नत्थि निप्फत्ती ॥१३७॥
इक्किक्कयंमि जीवे, इक्किक्कं जस्स होइ उदएणं ।
[7]ओरालाइसरीरं, तं नामं होइ पत्तेयं ॥१३८॥
जीवाणमणंताणं, इक्कं ओरालियं इह सरीरं ।
हवइ [8]हु जस्सुदएणं, तं साहारं [9]हवइ नामं ॥१३९॥
दंतट्ठाइथिराणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।
निप्फत्ती उ सरीरे, [10]जायइ तं होइ थिरनामं ॥१४०॥
जीहाभमुहाईणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।
निप्फत्ती उ सरीरे, जायइ तं अथिरनामं तु ॥१४१॥

---

१ "भमणीहाए य" इति। २ 'थावरसुहुमं च साहारं ॥१३१॥ तह होइ अपज्जत्तं" इति ॥ ३ "विवागभेओ इमो भणिओ" इति, "विवागभेओ इमो होइ" इति वा पाठः। ४ "जाईसु" इति। ५ "णं" इति। ६-८ "य" इति। ७ "ओरालियं सरीरं" इति। ९ "भवे" इति ॥ १० "जायं" इत्यपि पाठः।

[1]तित्तगकडुयकसाया, अंबिलमहुरा [2]रसावि [3]पंच भवे ।
तेवि हु जियदेहाणं, रसनामुदएण खज्जंता ॥११६॥
गुरुलहुमिउकढिणावि य. निद्धा लुक्खा य होंति सीउण्हा ।
जियदेहाणं फासा, उदएणं फासनामस्स ॥११७॥
गुरुअं न होइ देहं, न य लहुयं होइ सव्वजीवाणं ।
होइ हु अगुरुयलहुयं, अगुरुलहुयनामउदएणं ॥११८॥
अंगावयवो पडिजिब्भिया [4]इ जो अप्पणो उवग्घायं ।
कुणइ हु देहंमि ठिओ, सो उववायस्स उ विवागो ॥११९॥
तयविसदंतविमाई, अंगावयवो [5]य जो उ अन्नेसिं ।
जीवाण कुणइ घायं, सो परघायस्स उ विवागो ॥१२०॥
नारयतिरियनरामरभवेसु जंतस्स अंतरगईए ।
अणुपुव्वीए उदओ, सा चउहा [6]सुणसु जह होइ ॥१२१॥
नरयाउयस्स उदए, नरए वक्केण गच्छमाणस्स ।
नरयाणुपुव्वियाए, [7]तहिं[7] उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२२॥
एवं तिरिमणुदेवे, तेसुवि वक्केण गच्छमाणस्स ।
तेसिमणुपुव्वियाणं, [8]तहिं[8] उदओ अन्नहिं नत्थि ॥१२३॥
जस्सुदएणं जीवे, निप्फत्ती होइ आणपाणूणं ।
तं [9]ऊसासं नामं, तस्स विवागो सरीरम्मि ॥१२४॥
जस्सुदएणं जीवे, होइ सरीरं तु ताविलं इत्थ ।
सो आयवे विवागो, जह रविविंवे तहा जाण ॥१२५॥
[10]न भवइ तेयसरीरे, जेण उ तेयस्स उसिणफासस्स ।
होइ हु उदओ नियमा, तह लोहियवण्णनामस्स ॥१२६॥
जस्सुदएणं जीवो, अणुसिणदेहेण कुणइ उज्जोयं ।
तं उज्जोयं नामं, जाणसु खज्जोयमाईणं ॥१२७॥
जस्सुदएणं जीवो, वर[11]वसभगईऍ गच्छइ गईए ।
[12]सा सुहया विहगगई, हंसाईणं भवे सा उ ॥१२८॥

१ "तित्तकडुया कसाया" इत्यपि पाठः। २ "रसा य" इति। ३ "पंचविहा" इति। ४ "०य जो अप्पणो उ उवघाय" इति वा। ५ "उ" इति वा। ६ "सुणह" इति ७ ८ "उदओ तहिं" इति वा। ९ "उस्सासं" इति। १० "किं नत्थि तेयसरीरे; भण्णइ तेयस्स" इति पाठः "किन्न हु" इति वा। ११ "वसह०" इति वा। १२ "सा य सुहा" इति।

[1]सघणो रूवेण जुओ, वुद्धीनिउणो वि जस्स उदएणं ।
[2]लोयंमि लहइ निंदं, एयं पुण होइ नीयं तु ॥१५५॥
[3]गोयं भणियं अहुणा, अट्ठमयं [4]अंतरायय होइ ।
तं भंडारियसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥१५६॥
जह राया इह भंडारिएण विणिएण कुणइ [5]दाणाई ।
तेण उ पडिकूलेणं, न कुणइ सो [6]दाणमाईणि ॥१५७॥
जह राया तह जीवो, भंडारी जह [7]तहंतरायं [8]च ।
तेण उ विबन्धएणं, न कुणइ सो [9]दाणमाईणि ॥१५८॥
तं दाणलाभभोगोवभोगविरियंतराय [10]पंचमयं ।
एएसिं तु विवागं, [11]वोच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥१५९॥
सइ फासुयंमि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई[12]अउलं ।
बंभच्चेराइजुयं, पत्तं पि य विज्जए[13]तत्थ ॥१६०॥
दाउं नवरि न सकइ, दाणविघायस्स [14]कम्मणो उदए ।
दाणंतरायमेयं, लामे वि य भण्णए विग्घं ॥१६१॥
जइ वि पसिद्धो दाया, जायणनिउणो वि जायगो जइ वि ।
न लहइ जस्सुदएणं, एयं पुण लाभविग्घं तु ॥१६२॥
मणुयत्ते वि [15] य पत्ते, लद्धे वि [16]हु भोगसाहणे विभवे ।
[17]भुत्तुं नवरि न सकइ, विरइविहूणो वि जस्सुदए ॥१६३॥
[18]भोगस्स विग्घमेयं, उवभोगे आवि [19]विग्घमेवेव ।
भोगुवभोगाणेसिं, नवरि विसेसो इमो होइ ॥१६४॥
सइ भुञ्जइ त्ति भोगो, सो [20]पुण आहारपुप्फमाईओ ।
उवभोगो [21]य पुणो पुण, उवभुञ्जइ भवणविलियाई ॥१६५॥

१ "सघणी" इति । २ "लोगम्मि" इत्यपि पाठः । ३ "गुत्त" इत्यपि । ४ "अंतराइयं भणिमो" इति । ५ "दाणाइं" इत्यपि । ६ "दाणमाई उ" इति । ७ "तहंतराईयं" इति । ८ "तु" इत्यपि । ९ "दानमाई उ" इति । १० "पंचविहं" इति । ११ "वुच्छामि" इति, "भणामि य" इत्यपि वा । १२ "विउलं" इति । १३ "इत्थ" इति । १४ "कम्मुणो" इत्यपि । १५ "हु" इति वा । १६ "य" इति । १७ "उवभुंजिउं न सक्कइ" इति । १८ "उवभोगविग्घमेयं, भोगेवि हु एवमेव विग्घं तु" । इति पाठः । १९ "विग्घ एमेव" इति । २० "पुणु आहारपुप्फमाईणं" इत्यपि । २१ "उ" इत्यपि ।

सिरमाईण सुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।
निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ सुभनामं ॥१४२॥
पायाई असुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।
निप्फत्ती उ सरीरे जायइ तं असुभनामं तु ॥१४३॥
सूभगकम्मुदएणं [1]हवइ हु जीवो उ सव्वजणइट्ठो ।
[2]दूहगकम्मुदए पुण, दुहओ सो [3]सयललोयस्स ॥१४४॥
सूसरकम्मुदएणं, सूसरसद्दो [4]य होइ इह जीवो ।
दूसरउदए [5]विसरो जंपंतो होइ जणवेसो ॥१४५॥
आएज्जकम्मउदए चिट्ठा जीवाण भासणं जं च ।
तं बहु मन्नइ लोओ, [6]अबहुमयं इयरउदएणं ॥१४६॥
जस्सुदएणं जीवो लहइ हु [7]कित्ति जसं च लोगम्मि ।
तं जसनामं कम्मं अजसुदए लहइ विवरीयं ॥१४७॥
देहंगावयवाणं लिंगागिइ जाइ नियमणं जं च ।
तहिं [8]सुत्तहारसरिसो निम्माणे होइ हु विवागो ॥१४८॥
उदए जस्स सुरासुरनरवइनिवहेहिं पूइओ [9]होइ ।
तं तित्थयरं नामं तस्स विवागो [10]उ केवलिणो ॥१४९॥
भणियं नामं कम्मं अहुणा गोयं तु सत्तमं भणिमो ।
तं पि कुलालसमाणं दुविहं जह होइ[11]तह भणिमो ॥१५०॥
जह इत्थ कुंभकारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं ।
जं लोयाओ पूयं, पावइ इह पुण्णकलसाई ॥१५१॥
सुंसुलमाई अन्नं, सो च्चिय पुढवीएँ कुणइ रूवं तु ।
जं लोयाओ निंदं, पावइ अकएवि मज्जंमि ॥१५२॥
एव कुलालसमाणं, गोयं कम्मं तु [11]होइ जीवस्स ।
उच्चानीयविवागो जह होइ तहा निसामेह ॥१५३॥
[12]अधणी बुद्धिविउत्तो, रूवविहूणोवि जस्स उदएणं ।
[13] लोयंमि लहइ पूयं, उच्चागोयं तयं होइ ॥१५४॥

१ "होइ हु" इति । २ 'दूसगकम्मुदएणं, दुब्भगओ' इति "दूभगकम्मुदएणं दुभगो सो सव्वलोगस्स" इति वा । ३ "सव्वलोगस्स" इति । ४ "च" इति । ५ "विरसो" इति । ६ "अवमन्नइ" इति । ७ "कित्तीजस" इत्यपि पाठः । ८ "लोए" इति । ९ "य" इति । १० "तं" इत्यपि । ११ "इत्थ" इति । १२ "अधणो" इति पाठः । १३ "लोगम्मि" इति ।

[1]सघणो रूवेण जुओ, बुद्धीनिउणो वि जस्स उदएणं ।
[2]लोयंमि लहइ निंदं, एयं पुण होइ नीयं तु ॥१५५॥

[3]गोयं भणियं अहुणा, अट्ठमयं [4]अंतरायय़ं होइ ।
तं भंडारियसरिसं, जह होइ तहा निसामेह ॥१५६॥

जह राया इह भंडारिएण विणिएण कुणइ [5]दाणाई ।
तेण उ पडिकूलेणं, न कुणइ सो [6]दाणमाईणि ॥१५७॥

जह राया तह जीवो, भंडारी जह [7]तहंतरायं [8]च ।
तेण उ विबन्धएणं, न कुणइ सो [9]दाणमाईणि ॥१५८॥

तं दाणलाभभोगोवभोगविरियंतराय [10]पंचमयं ।
एएसिं तु विवागं, [11]वोच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥१५९॥

सइ फासुयंमि दाणे, दाणफलं तह य बुज्झई [12]अउलं ।
बंभच्चेराइजुयं, पत्तं पि य विज्जए [13]तत्थ ॥१६०॥

दाउं नवरि न सक्कइ, दाणविघायस्स [14]कम्मणो उदए ।
दाणंतरायमेयं, लाभे वि य भण्णए विग्घं ॥१६१॥

जइ वि पसिद्धो दाया, जायणनिउणो वि जायगो जइ वि ।
न लहइ जस्सुदएणं, एयं पुण लाभविग्घं तु ॥१६२॥

मणुयत्ते वि [15] य पत्ते, लद्धे वि [16]हु भोगसाहणे विभवे ।
[17]भुत्तुं नवरि न सक्कइ, विरइविहूणो वि जस्सुदए ॥१६३॥

[18]भोगस्स विग्घमेयं, उवभोगे आवि [19]विग्घमेवेव ।
भोगुवभोगाणेसिं, नवरि विसेसो इमो होइ ॥१६४॥

सइ भुज्जइ त्ति भोगो, सो [20]पुण आहारपुप्फमाईओ ।
उवभोगो [21]य पुणो पुण, उवभुज्जइ भवणविलियाई ॥१६५॥

---

१ "सघणी" इति । २ "लोगम्मि" इत्यपि पाठः । ३ "गुत्त" इत्यपि । ४ "अंतराइयं भणिमो" इति । ५ "दाणाइं" इत्यपि । ६ "दाणमाई उ" इति । ७ "तहंतराईयं" इति । ८ "तु" इत्यपि । ९ "दानमाई उ" इति । १० "पंचविहं" इति । ११ "वुच्छामि" इति, "भणामि य" इत्यपि वा । १२ "विउलं" इति । १३ "इत्थ" इति । १४ "कम्मुणो" इत्यपि । १५ "हु" इति वा । १६ "य" इति । १७ "उवभुंजिउं न सक्कइ" इति । १८ "उवभोगविग्घमेयं, भोगेवि हु एवमेव विग्घं तु" । इति पाठः । १९ "विग्घ एमेव" इति । २० "पुणु आहारपुप्फमाईणं" इत्यपि । २१ "उ" इत्यपि ।

सिरमाईण सुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।
निष्फत्ती उ सरीरे जायइ तं होइ सुभनामं ॥१४२॥
पायाई असुहाणं, अंगावयवाण जस्स उदएणं ।
निष्फत्ती उ सरीरे जायइ तं असुभनामं तु ॥१४३॥
सूभगकम्मुदएणं [1]हवइ हु जीवो उ सव्वजणइट्ठो ।
[2]दूहगकम्मुदए पुण, दुहओ सो [3]सयललोयस्स ॥१४४॥
सूसरकम्मुदएणं, सूसरसद्दो [4]य होइ इह जीवो ।
दूसरउदए [5]विसरो जंपंतो होइ जगवेसो ॥१४५॥
आएज्जकम्मउदए चिट्ठा जीवाण भासणं जं च ।
तं बहु मन्नइ लोओ, [6]अवहुमयं इयरउदएणं ॥१४६॥
जस्सुदएणं जीवो लहइ हु [7]कित्तिं जसं च लोगम्मि ।
तं जसनामं कम्मं अजसुदए लहइ विवरीयं ॥१४७॥
देहंगावयवाणं लिंगागिइ जाइ नियमणं जं च ।
तहिँ सुत्तहारसरिसो निम्माणे होइ हु विवागो ॥१४८॥
उदए जस्स सुरासुरनरवइनिवहेहिँ पूइओ [8]होइ ।
तं तित्थयरं नामं तस्स विवागो [9]उ केवलिणो ॥१४९॥
भणियं नामं कम्मं अहुणा गोयं तु सत्तमं भणिमो ।
तं पि कुलालसमाणं दुविहं जह होइ [10]तह भणिमो ॥१५०॥
जह इन्थ कुंभकारो पुढवीए कुणइ एरिसं रूवं ।
जं लोयाओ पूयं, पावइ इह पुण्णकलसाई ॥१५१॥
सुंसुलमाई अन्नं. सो च्चिय पुढवीएँ कुणइ रूवं तु ।
जं लोयाओ निंदं, पावइ अकएवि मज्जंमि ॥१५२॥
एव कुलालसमाणं, गोयं कम्मं तु [11]होइ जीवस्स ।
उच्चानीयविवागो जह होइ तहा निसामेह ॥१५३॥
[12]अधणी बुद्धिविउत्तो, रूवविहूणोवि जस्स उदएणं ।
[13] लोयंमि लहइ पूयं, उच्चागोयं तयं होइ ॥१५४॥

---

१ "होइ हु" इति । २ 'दूमगकम्मुदएणं, दुब्मगओ" इति "दूमगकम्मुदएणं दुमगो सो सव्वलोगस्स" इति वा । ३ "सव्वलोगस्स" इति । ४ "उ" इति । ५ "विरसो" इति । ६ "अवमन्नइ" इति । ७ "कित्तीजस" इत्यपि पाठः । ८ "लोए" इति । ९ "य" इति । १० "तं" इत्यपि । ११ "इत्थ" इति । १२ "अधणो" इति पाठ. । १३ "लोगम्मि" इति ।

॥ अर्हम् ॥

॥ कर्मस्तवाख्यः द्वितीयः कर्मग्रन्थः ॥

नमिऊण जिणवरिंदे, तिहुयणवरनाणदंसणपईवे ।
बंधुदयसंतजुत्तं, वोच्छामि थयं निसामेह ॥१॥
*मिच्छद्दिट्ठी सासायणे य तह सम्ममिच्छदिट्ठी य ।
अविरयसम्मदिट्ठी, विरयाविरए पमत्ते य ॥२॥
तत्तो य अप्पमत्ते, नियट्टिअनियट्टिबायरे सुहुमे ।
उवसंतखीणमोहे, होइ सजोगी अजोगी य ॥३॥
मिच्छे सीलस पणुवीस सासणे अविरए य दस पयडी ।
चउछक्कमेग देसे, विरए य कमेण वोच्छिन्ना ॥४॥
दुगतीसचउरपुव्वे, पंच नियट्टिमि बंधवोच्छेओ ।
सोलस सुहुमसरागे, साय सजोगी जिणवरिंदे ॥५॥
पण नव [1]इग सत्तरसं, अड पंच य चउर छक्क छ च्चेव ।
[2]इग दुग सोलस तीसं, बारस उदए अजोगंता ॥६॥
पण नव [3]इग सत्तरसं, अट्ठट्ठ य चउर छक्क छ च्चेव ।
[4]इग दुग सोल गुयालं, उदीरणा होइ जोगंता ॥७॥
अणमिच्छमीससम्मं, अविरयसम्माइअप्पमत्तंता ।
सुरनरयतिरियआउं, निययभवे सव्वजीवाणं ॥८॥
सोलस [5]अट्ठेक्केक्कं, [6]छक्केक्केक्कक्क खीणमनियट्टी ।
एगं सुहुमसरागे, खीणकसाए य सोलसगं ॥९॥
बावत्तरिं दुचरिमे, तेरस चरिमे अजोगिणो खीणे ।
अडयालं पयडिसयं, खविय जिणं निव्वुयं वंदे ॥१०॥
नाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउयनामं गोयं, तहंतरायं च पयडीओ ॥११॥
पंच नव[7] दोन्नि अट्ठावीसा चउरो तहेव बायाला ।
[8]दोण्णि य पंच य भणिया, पयडीओ उत्तरा चेव ॥१२॥

* २ ३ एतद्गाथायुग्मं टीकाग्रन्थेषु विवृतं न दृश्यते । १-२-३-४ "इगि" इत्यपि । ५ 'अट्ठिक्किक्क" इत्यपि । ६ "छक्किक्किक्किक्क" इत्यपि । ७-८ "दुन्नि" इत्यपि ।

बलवं रोगविउत्तो, वयसंपण्णो वि जस्स उदएणं ।
विरिएण होइ हीणो, वीरियविग्घं तु पंचमयं ॥१६६॥

एवं पंच वियप्पं, अट्ठमयं अंतराइयं होइ ।
भणिओ कम्मविवागो, समासओ गग्गरिसिणा उ ॥१६७॥

एयं गाहाण सयं, अहियं छावट्ठिए उ पढिऊणं ।
जो गुरु पुच्छइ नाही, कम्मविवागं च सो अइरा ॥१६८॥

॥ इति महर्षिगर्गर्षिप्रणीतः कर्मविपाकनामा प्रथमः कर्मग्रन्थः ॥

॥ अर्हम् ॥

॥ कर्मस्तवाख्यः द्वितीयः कर्मग्रन्थः ॥

नमिऊण जिणवरिंदे, तिहुयणवरनाणदंसणपईवे ।
बंधुदयसंतजुत्तं, वोच्छामि थयं निसामेह ॥१॥
*मिच्छद्दिट्ठी सासायणे य तह सम्ममिच्छदिट्ठी य ।
अविरयसम्मदिट्ठी, विरयाविरए पमत्ते य ॥२॥
तत्तो य अप्पमत्ते, नियट्टिअनियट्टिबायरे सुहुमे ।
उवसंतखीणमोहे, होइ सजोगी अजोगी य ॥३॥
मिच्छे सोलस पणुवीस सासणे अविरए य दस पयडी ।
चउछक्कमेग देसे, विरए य कमेण वोच्छिन्ना ॥४॥
दुगतीसचउरपुव्वे, पंच नियट्टिंमि बंधवोच्छेओ ।
सोलस सुहुमसरागे, साय सजोगी जिणवरिंदे ॥५॥
पण नव [1]इग सत्तरसं, अड पंच य चउर छक्क छ च्चेव ।
[2]इग दुग सोलस तीसं, बारस उदए अजोगंता ॥६॥
पण नव [3]इग सत्तरसं, अट्ठट्ठ य चउर छक्क छ च्चेव ।
[4]इग दुग सोल गुयालं, उदीरणा होइ जोगंता ॥७॥
अणमिच्छमीससम्मं, अविरयसम्माइअप्पमत्तंता ।
सुरनरयतिरियआउं, नियभवे सव्वजीवाणं ॥८॥
सोलस [5]अट्ठेक्केक्कं, [6]छक्केक्केक्केक्क खीणमनियट्टी ।
एगं सुहुमसरागे, खीणकसाए य सोलसगं ॥९॥
बावत्तरिं दुचरिमे तेरस चरिमे अजोगिणो खीणे ।
अडयालं पयडिसयं, खविय जिणं निव्वुयं वंदे ॥१०॥
नाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउयनामं गोयं, तहंतरायं च पयडीओ ॥११॥
पंच नव[7] दोन्नि अट्ठावीसा चउरो तहेव बायाला ।
[8]दोण्णि य पंच य भणिया, पयडीओ उत्तरा चेव ॥१२॥

---

* २ ३ एतद्गाथायुग्मं टीकाग्रन्थेषु विवृतं न दृश्यते । १-२-३-४ "इगि" इत्यपि । ५ 'अट्ठिक्किक्क' इत्यपि । ६ "छक्किक्किक्किक्क" इत्यपि । ७-८ 'दुन्नि" इत्यपि ।

मिच्छनपुंसगवेयं, नरयाउं तह य चेव नरयदुगं ।
इगविगलिंदिय[1]जाई, हुंडमसंपत्तमायावं ॥१३॥
थावर सुहुमं च तहा, साहारणयं तहा अपज्जत्तं ।
एया सोलस पयडीः मिच्छंमि य बंधवोच्छेओ ॥१४॥
थीणतिगं इत्थी वि य, अण तिरियाउं तहेव तिरियदुगं ।
मज्झिम चउ संठाणं, मज्झिम चउ चेव संघयणं ॥१५॥
उज्जोयमप्पसत्था, [2]विहायगइ दूभगं अणाएज्जं ।
दूसर नीयागोयंः सासणसम्मंमि वोच्छिन्ना ॥१६॥
बीयकसायचउक्कं, मणुयाउं मणुय[3]दुग य ओरालं ।
तस्स य अंगोवंगं, संघयणाई अविरयंमि ॥१७॥
तइयकसायचउक्कं, विरयाविरयंमि बंधवोच्छेओ ।
[4]अस्सायमरइ सोयं, तह चेव य अथिरमसुभं च ॥१८॥
अजसकित्ती य तहा, पमत्तविरयंमि बंधवोच्छेओ ।
[5]देवाउयं च एगं, नायव्वं अप्पमत्तंमि ॥१९॥
निद्दापयला य तहा, अपुव्वपढमंमि बंधवोच्छेओ
देवदुगं पंचिंदिय उरालवज्जं चउसरीरं ॥२०॥
समचउरं वेउव्वियआहारयअंगुवंगनामं च ।
वण्णचउक्कं च तहा, अगुरुयलहुयं च चत्तारि ॥२१॥
तस चउ पसत्थमेव य, विहायगइ थिर सुभं च नायव्वं ।
सुहयं सुस्सरमेव य आएज्जं चेव निमिणं च ॥२२॥
तित्थयरमेव तीसं, अपुव्वछब्भाग बंधवोच्छेओ ।
हासरइभयदुगुंछा, अपुव्व[6]चरमंमि वोच्छिन्ना ॥२३॥
पुरिसं चउसंजलणं, पंच य पयडीओ पंच भागंमि ।
अनियट्टीअद्धाए, जहक्कमं बंधवोच्छेओ ॥२४॥
नाणंतरायदसगं, दंसण चत्तारि उच्च जसकित्ती ।
एया सोलस पयडी, [7]सुहुमकसायंमि वोच्छिन्ना ॥२५॥

१ "जाइं" इत्यपि । २ "विहागइदूभयं" इत्यपि । ३ "०दुयय" इत्यपि । ४ "अस्साइ अरइ सोग" इत्यपि । ५ "देवाउगं च एक्कं तहापमत्तम्मि नायव्वं" इत्यपि । ६ "०चरिमम्मि" इत्यपि । ७ "सुहुमसरागम्मि" इत्यपि ।

उवसंतखीणमोहे, जोगिंमि उ सायवंधवोच्छेओ ।
नायव्वो पयडीणं, वंधस्संतो अणंतो य ॥२६॥

॥ बंधो सम्मत्तो ॥

मिच्छत्तं आयावं, सुहुम अपज्जत्तया य तह चेव ।
साहारणं च पंच य, मिच्छंमि य उदयवोच्छेओ ॥२७॥
अण एगिंदियजाई, विगलिंदियजाइमेव थावरयं ।
एया नव पयडीओ, सासणसम्मंमि वोच्छिन्ना ॥२८॥
सम्मामिच्छत्तेगं, सम्मामिच्छंमि उदयवोच्छेओ ।
बीयकसायचउक्कं, तह चेव य नरयदेवाऊ ॥२९॥
मणुयतिरियाणुपुव्वी, वेउव्वियछक्क [1]दूहयं चेव ।
अणएज्जं चेव तहा, अजसकित्ती अविरयंमि ॥३०॥
तइयकसायचउक्कं, [2]तिरियाऊ तह य चेव तिरियगई ।
उज्जोय [3]नीयगोयं, विरयाविरयंमि वोच्छिन्ना ॥३१॥
थीणतिगं चेव तहा, आहारदुगं पमत्तविरयंमि ।
सम्मत्तं संघयणं, अंतिमतिगमप्पमत्तंमि ॥३२॥
तह नोकसायछक्कं, अपुव्वकरणंमि उदयवोच्छेओ ।
वेयतिगकोह[4]माणामायासंजलणमनियट्टी ॥३३॥
संजलणलोभमेगं, [5]सुहुमकसायंमि उदयवोच्छेओ ।
तह [6]रिसहं नारायं, नारायं चेव उवसंते ॥३४॥
निद्दा पयला य तहा, खीणदुचरिमंमि उदयवोच्छेओ ।
नाणंतरायदसगं, दंसण चत्तारि चरिमंमि ॥३५॥
[7]अन्नयरवेयणीयं, ओरालिय-तेय-कम्मनामं च ।
छ च्चेव य संठाणा, ओरालियअंगुवंगं च ॥३६॥
आइमसंघयणं खलु, वण्णचउक्कं च दो विहायगती ।
अगुरुयलहुयचउक्कं, पत्तेय थिराथिरं चेव ॥३७॥

---

१ "दूहिय" इत्यपि । २ "तिरियावं तह य चेव तिरियगई" इत्यपि । ३ "निच्च०" इत्यपि । ४ "माणय०" इत्यपि । ५ "सुहुमसरागम्मि" इत्यपि । ६ "रिसहना०" इत्यपि । ७ "अन्नयरं वेमणीयं" इत्यपि ।

सुभसुस्सरजुयला वि य, निमिणं च तहा हवंति नायव्वा ।
एया तीसं पयडी, सजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥३८॥
[1]अन्नयरवेयणीयं, मणुयाऊ मणुयगइ य बोद्धव्वा ।
पंचिंदियजाई वि य, तस सुभगा[2]एज्ज पज्जत्तं ॥३९॥
बायर जसकित्ती वि य, तित्थयरं उच्चगोययं चेव ।
एया बारस पयडी, अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥४०॥

॥ उदओ सम्मत्तो ॥

•

उदयस्सुदीरणाए, सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।
मोत्तूण तिन्नि ठाणे, पमत्त–जोगी अजोगी य ॥४१॥
तीसं बारस उदए, केवलिणो मेलणं च काऊण ।
सायासायं च तहा, मणुयाउं अवणियं किच्चा ॥४२॥
सेसं इगुयालीसं, [3]जोगिंमि उदीरणा य बोद्धव्वा ।
अवणीय तिन्नि पयडी, [4]पमत्तउदयंमि पक्खित्ता ॥४३॥
तह चेव अट्ठ पयडी, पमत्तविरए उदीरणा होइ ।
नत्थि त्ति अजोगिजिणे, उदीरणा होइ नायव्वा ॥४४॥

॥ उदीरणा सम्मत्ता ॥

•

अणमिच्छमीससम्मं [5]अविरयसम्माइअप्पमत्तंता ।
सुरनरयतिरियआउं, निययभवे सव्वजीवाणं ॥४५॥
थीणतिगं चेव तहा, नरयदुगं चेव तह य तिरियदुगं ।
इगिविगलिंदियजाई, आयावुज्जोयथावरयं ॥४६॥
साहारण सुहुमं [6]चिय, सोलस पयडीओ [7]होंति नायव्वा ।
बीयकसायचउक्कं, तइयकसायं च [8]अट्ठेव ॥४७॥
एग नपुंसगवेयं, इत्थीवेयं तहेव एगं च ।
तह नोकसायछक्कं, पुरिसं [9]कोहं च माणं च ॥४८॥
मायं चिय अनियट्टीभागं गंतूण संतवोच्छेओ ।
लोहं चिय संजलणं, [10]सुहुमकसायंमि वोच्छिन्ना ॥४९॥

१: "अन्नयरं वेयणीयं मणुयाउं मणुयगती य" इत्यपि । २ "०इज्ज०" इत्यपि । ३ "सजोगम्मि" इत्यपि । ४ "पमत्तविरयम्मि" इत्यपि । ५ "अविरइ" इत्यपि । ६ "चि य" इत्यपि । ७ "हुंति" इत्यपि । ८ "अट्ठ च" इत्यपि । ९ "कोहा य माणा य" इत्यपि । १० "सुहुमसरागम्मि" इत्यपि ।

खीणकसायदुचरिमे, [1]निद्दं पयलं च हणइ छउमत्थो ।
नाणंतरायदसगं, दंसण चत्तारि चरिमंमि ॥५०॥
देवदुग पणसरीरं, पंचसरीरस्स बंधणं चेव ।
पंचेव य संघाया, संठाणा तह य छक्कं च ॥५१॥
तिन्नि य अंगोवंगा, संघयणं तह य होइ छक्कं च ।
पंचेव य [2]वण्णरसा, दो गंधा अट्ठ फासा य ॥५२॥
अगुरुयलहुयचउक्कं, विहायगइदुग थिराथिरं चेव ।
[3]सुहसुस्सरजुयला वि य, पत्तेयं दूभगं अजसं ॥५३॥
अणएज्जं निमिणं चिय, अपज्जत्तं तह य [4]नीयगोयं च ।
[5]अन्नयरवेयणियं, अजोगिदुचरमंमि वोच्छिण्णा ॥५४॥
[6]अन्नयरवेयणीयं, मणुयाऊ मणुयदुवय बोद्धव्वा ।
पंचिंदियजाई वि य, तससुभगाएज्जपज्जत्तं ॥५५॥
बायरजसकित्ती वि य, तित्थयरं उच्चगोययं चेव ।
एया तेरस पयडी, अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥५६॥

॥ सत्ता सम्मत्ता ॥

•

सो मे तिहुयणमहिओ, सिद्धो बुद्धो निरंजणो निच्चो ।
दिसउ वरणाणलंभं, दंसणसुद्धिं समाहिं च ॥५७॥

॥ इति कर्मस्तवाख्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः समाप्तः ॥

---

१ "निद्दा पयला हणइ" इत्यपि । २ "वन्नरसा" इत्यपि । ३ "सुभसुस्सरजुगलदुगं पत्तेयं दूहगं" इत्यपि । ४ "नीयगुत्तं च" इत्यपि । ५ "अन्नयरं वेअणीयं अजोगिदुचरिमम्मि वोच्छिन्ना" इत्यपि । ६ "अन्नयरं" इत्यपि ।

सुभसुस्सरजुयला वि य, निमिणं च तहा हवंति नायव्वा ।
एया तीसं पयडी, सजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥३८॥
[1]अन्नयरवेयणीयं, मणुयाऊ मणुयगइ य बोद्धव्वा ।
पंचिंदियजाई वि य, तस सुभगा[2]एज्ज पज्जत्तं ॥३९॥
बायर जसकित्ती वि य, तित्थयरं उच्चगोययं चेव ।
एया बारस पयडी, अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥४०॥

॥ उदओ सम्मत्तो ॥

उदयस्सुदीरणाए, सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।
मोत्तूण तिन्नि ठाणे, पमत्त-जोगी अजोगी य ॥४१॥
तीसं बारस उदए, केवलिणो मेलणं च काऊण ।
सायासायं च तहा. मणुयाउं अवणियं किच्चा ॥४२॥
सेसं इगुयालीसं, [3]जोगिंमि उदीरणा य बोद्धव्वा ।
अवणीय तिन्नि पयडी, [4]पमत्तउदयंमि पक्खित्ता ॥४३॥
तह चेव अट्ठ पयडी, पमत्तविरए उदीरणा होइ ।
नत्थि त्ति अजोगिजिणे, उदीरणा होइ नायव्वा ॥४४॥

॥ उदीरणा सम्मत्ता ॥

अणमिच्छमीससम्मं [5]अविरयसम्माइअप्पमत्तंता ।
सुरनरयतिरियआउं, नियभवे सव्वजीवाणं ॥४५॥
थीणतिगं चेव तहा, नरयदुगं चेव तह य तिरियदुगं ।
इगिविगलिंदियजाई, आयावुज्जोयथावरयं ॥४६॥
साहारण सुहुमं [6]चिय, सोलस पयडीओ [7]होंति नायव्वा ।
बीयकसायचउक्कं, तइयकसायं च [8]अट्ठेव ॥४७॥
एग नपुंसगवेयं, इत्थीवेयं तहेव एगं च ।
तह नोकसायछक्कं, पुरिसं [9]कोहं च माणं च ॥४८॥
मायं चिय अनियट्टीभागं गंतूण संतवोच्छेओ ।
लोहं चिय संजलणं, [10]सुहुमकसायंमि वोच्छिन्ना ॥४९॥

---

१ "अन्नयरं वेयणीयं मणुयाउं मणुयगती य" इत्यपि । २ "०इज्ज०" इत्यपि । ३ "सजोगम्मि" इत्यपि । ४ "पमत्तविरयम्मि" इत्यपि । ५ "अविरइ" इत्यपि । ६ "वि य" इत्यपि । ७ "हुंति" इत्यपि । ८ "अट्ठ च" इत्यपि । ९ "कोहा य माणा य" इत्यपि । १० "सुहुमसरागम्मि" इत्यपि ।

खीणकसायदुचरिमे, [1]निद्दं पयलं च हणइ छउमत्थो ।
नाणंतरायदसगं, दंसण चत्तारि चरिमंमि ॥५०॥
देवदुग पणसरीरं, पंचसरीरस्स बंधणं चेव ।
पँचेव य संघाया, संठाणा तह य छक्कं च ॥५१॥
तिन्नि य अंगोवंगा, संघयणं तह य होइ छक्कं च ।
पंचेव य [2]वण्णरसा, दो गंधा अट्ठ फासा य ॥५२॥
अगुरुयलहुयचउक्कं, विहायगइदुग थिराथिरं चेव ।
[3]सुहसुस्सरजुयला वि य, पत्तेयं दूभगं अजसं ॥५३॥
अणएज्जं निमिणं चिय, अपजत्तं तह य [4]नीयगोयं च ।
[5]अन्नयरवेयणियं, अजोगिदुचरमंमि वोच्छिण्णा ॥५४॥
[6]अन्नयरवेयणीयं, मणुयाऊ मणुयदुवय बोद्धव्वा ।
पंचिंदियजाई वि य, तससुभगाएज्जपज्जत्तं ॥५५॥
बायरजसकित्ती वि य, तित्थयरं उच्चगोययं चेव ।
एया तेरस पयडी, अजोगिचरिमंमि वोच्छिन्ना ॥५६॥

॥ सत्ता सम्मत्ता ॥

सो मे तिहुयणमहिओ, सिद्धो बुद्धो निरंजणो निच्चो ।
दिसउ वरणाणलंभं, दंसणसुद्धिं समाहिं च ॥५७॥

॥ इति कर्मस्तवाख्यो द्वितीयः कर्मग्रन्थः समाप्तः ॥

१ "निद्दा पयला हणइ" इत्यपि । २ "वन्नरसा" इत्यपि । ३ "सुभसुस्सरजुगलदुगं पत्तेयं दूहग" इत्यपि । ४ "नीयगुत्तं च" इत्यपि । ५ "अन्नयरं वेयणीयं अजोगिदुचरिमम्मि वोच्छिन्ना" इत्यपि । ६ "अन्नयरं" इत्यपि ।

॥ अर्हम् ॥

॥ बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः ॥

नमिऊण वद्धमाणं, [1]गइयाईठाणदेसयं सिद्धं ।
गइयाइएसु [2]वोच्छं, बंधस्सामित्तमोघेणं ॥१॥

गइ ४ इंदिए ५ य काए ६, जोए १५ वेए ३ कसाय ४ नाणे ८ य ।
संजम १७ दंसण ४ लेसा ६, भव २ सम्मे ३ सण्णि २ आहारे ॥२॥

गुणठाणा सुरनिरए, चउ पण [3]तिरिएसु चउदस नरेसु ।
जीवट्ठाणा तिरिए, चउदस सेसेसु [4]दुग दुगं जाण ॥३॥-

निरयतिगं मिच्छत्तं, नपुंस [5]इगविगलजाइआयावं ।
[6]छेवट्ठ थावरचऊ, हुंडं चिय मिच्छदिट्ठिम्मि ॥४॥

थीणतिगित्थी अण तिरितिग [7]कुविहगई य नीयमुज्जोयं ।
[8]दूभगतिग पणुवीसा, मज्झिमसंठाणसंघयणा ॥५॥

थावरचउ जाई चउ, विउवाहारदुग सुरनिरतिगाणि ।
आयवजुयाऽऽहिं ऊणं, एगहियसयं नरयबंधे ॥६॥

तित्थोणं सय मिच्छा, साणा नपुहुंड[9]छेयमिच्छोणं ।
मीसा नराउपणुवीसोणं सम्मा नराउतित्थजुयं ॥७॥

पंकाइसु तित्थोणं, नराउहीणं सयं तु सत्तमिए ।
मणुदुगउच्चेहिं विणा, मिच्छा बंधंति [10]छण्णउइं ॥८॥

हुंडाईचउरहियं, साणा तिरियाउणा य [11]इगनउइं ।
इगुणपणुवीसरहिया, सनरदुगुच्चा सयरि मीसे ॥९॥

तित्थाहारदुगूणा, तिरिया बंधंति सव्वपयडीओ ।
पज्जत्ता तह मिच्छा, [12]साणा उण सोलसविहीणा ॥१०॥

---

१ "गइयाइठा०" इत्यपि । २ "वुच्छं" इत्यपि । ३ "तिरिये चउद्दस" इत्यपि । ४ "जाण दुगं" इत्यपि । ५ "इगि" इत्यपि । ६ "सेवट्ठ" इत्यपि । ७ "कुविहगगई" इत्यपि । ८ "दुभगतिगं" इत्यपि । ९ "छेव०" इत्यपि । १० "छन्नउई" इत्यपि । ११ "इगनउई" इत्यपि । १२ "सासा उण सोलसविहूणा" इत्यपि ।

नरतिगसुराउउसमं, उरलदुगं [1]मोत्तु पणवीसं च ।
अणुहत्तरिं तु मीसा, सुराउणा सत्तरी सम्मा ॥११॥
[2]बीयकसायूणा देस अपजत्ता सयं नवग्गं तु ।
मोत्तूणमोघबन्धा, निरसुरआउं विउव्विछक्कं च ॥१२॥
तिरिया व नरा पयडी, बंधंती मिच्छमाइया पंच ।
अजयाइ पंच तित्थं, अपमत्तनियट्टि आहारं ॥१३॥
कम्मत्थयबंधसमो, पमत्तमाईण होइ बन्धो उ ।
अप्पजत्ता मणुया, तिरिया व सयं [3]नवग्गं तु ॥१४॥
वेउव्वाहारदुगं, नारयसुरसुहुमविगलजाइतिगं ।
[4]मोत्तुं चउरग्गसयं, देवा बंधंति ओहेणं ॥१५॥
तित्थोणं तं मिच्छा, साणा छेवट्ठहुंडनपुमिच्छं ।
एगिंदिथावरायवपयडी [5]मोत्तूण छन्नउइं ॥१६॥
ओघुत्तं पणुवीसं, नराउजुत्तं विवज्जिउं मीसा ।
बंधंति सयरिमजया, तित्थनराऊहिं विगसयगी ॥१७॥
मिच्छाइअविरयंता, देवोघं तित्थहीण बंधंति ।
भवणवणजोइदेवा, देवीओ चेव सव्वाओ ॥१८॥
सामन्नदेवभंगो, सोहम्मीसाण मिच्छमाईणं ।
सहसारंता इगिथावरायवोणं सणंकुमाराई ॥१९॥
रयणानारयसरिसा, सहसारंता सणंकुमाराई ।
इगिथावरायवतिरितिगुज्जोऊणं तु आणयाईया ॥२०॥
तित्थं [6]नपुचउ तिरितियउज्जोऊण [7]पणवीस सनराउं ।
मोत्तूण मिच्छमाई, नराउतित्थेहिं अजया उ ॥२१॥
तित्थाहारं निरयसुराउं [8]मोत्तुं विउव्विछक्कं च ।
[9]इगविगलिंदी बंधहिं, नपुसरं ओघ मिच्छा य ॥२२॥

---

१ "मुत्तु" इत्यपि । २ "बीयकसायविहूणा देसअपज्जत्तसयनवग्गं तु । मुत्तूण ...." इत्यपि । ३ "नवन्महियं" इत्यपि । ४ "मुत्तुं" इत्यपि । ५ "मुत्तूण" इत्यपि । ६ "नपुंसचउ०" इत्यपि । ७ पणुवीस-सनराओ । मुत्तूण" इत्यपि । ८ "मुत्तु" इत्यपि । ९ "इगि" इत्यपि ।

साणा बंधहिं सोलस, [1]निरतिगहीणा य [2]मोत्तु छन्नउइं ।
ओघेणं वीसुत्तरसयं च पंचिंदिया बंधे ॥ २३ ॥
[3]इगिविगलिंदी साणा, तणुपज्जत्तिं न जंति जंतेण ।
निरतिरियाउअबंधा, मयंतरेणं तु [4]चउणउइं ॥ २४ ॥

भूदगवणकाया एगिंदिसमा मिच्छसाणदिट्ठीओ ।
मणुयतिगुच्चं [5]मोत्तुं, सुहुमतसा ओघ थूलतसा ॥२५॥

[6]मणवइजोगचउक्के, ओघो उरले वि ओघनरभंगो ।
निरतिगसुराउआहारगं [7]तु हिच्चा उ [8]तंमीसे ॥२६॥

सुरदुग[9]विउव्वियदुगं, तित्थं हिच्चा सयं नवग्गं तु ।
बंधंति उरलमिस्से, मिच्छा उ सजोगिणो सायं ॥२७॥
निरतिगहीणा सोलस, तिरिनरआउं पि [10]मोत्तु साणा वि ।
तिरियाउविहीणं पणतीसमुज्झित्तु अविरए [11]बंधे ॥२८॥

तित्थं वेउव्विदुगं, सुरदुगसहियं उरलमिस्से ।
सामन्नदेवनारयबंधो नेओ विउव्विजोगे वि ॥२९॥
वेउव्वियमीसम्मि वि, तिरियनराऊहिं वज्जियासेसा ।
तित्थोणा ता मिच्छा, बंधहिं साणा उ चउणउइं ॥३०॥

एगिंदिथावरायवसंठाइचउक्कवज्जिया सेआ ।
तिरियाऊणं पणुवीस [12]मोत्तु अजया सतित्था उ ॥३१॥

तेवट्ठाहारदुगे, जहा पमत्तस्स कम्मणे बंधो ।
आउतिगं निरयतिगं, आहारय वज्जिउं ओघो ॥३२॥

सुरदुगतित्थविउव्वियदुगाणि [13]मोत्तूण बंधहिं मिच्छा ।
निरतिगहीणा सोलस, वज्जित्ता सासणा कम्मे ॥३३॥

तिरियाऊणं पणवीस [14]मोत्तु सुरदुगविउव्विदुगजुत्तं ।
अजया तित्थेण समं, सजोगि सायं समुग्घाए ॥३४॥

---

१ "निरि०" इत्यपि । २ "मुत्तु छन्नउई" इत्यपि । ३ "इग०" इत्यपि । ४ "चउणउई" ५ "मुत्तु" इत्यपि । ६ "मणवय०" इत्यपि । ७ "च" इत्यपि । ८ "तम्मिस्से" इत्यपि । ९ "वेउव्विदुगं" १० "मुत्तु" इत्यपि । ११ "बंधो" इत्यपि । १२ "मुत्तु" इत्यपि । १३ "मुत्तूण" इत्यपि । १४ 'मुत्तु" इत्यपि ।

देयतिएवोघेणं, वंधो जा वायरो हवइ ताव ।
कोहाइसु चउसोघो, मिच्छाओ जाव [1]अनियट्टिं ॥३५॥
अण्णाणतिएवोघो, मिच्छासाणेसु नवसु नाणतिए ।
मणपज्जवे वि सत्तसु ओघं दुसु [2]केवलिस्सावि ॥३६॥
सामाइयछेएसुं, पमत्तमाईसु चउसु ओघो त्ति ।
परिहारस्स पमत्ते, अपमत्ते सुहुम सट्ठाणे ॥३७॥
उवसंताइसु अहखाय देसविरयस्स होइ सट्ठाणे ।
[3]मिच्छाईसुं चउसुं, ओघो अस्संजयस्सावि ॥३८॥
चक्खुअचक्खू ओघो, मिच्छाई खीणमोह ओहिस्स ।
अजयाइनवसु केवलदंसण केवलिदुगे चेव ॥३९॥
छसुचउसु तिण्णि तीसुं, छण्हं सुक्का अजोगि अल्लेसा ।
आहारूणा आइतिलेसी वंधंति सव्वपयडीओ ॥४०॥
मिच्छा तित्थोणा ता, साणा उण सोलसविहूणा ।
सुरनरआऊ [4]पणवीस मोत्तु वंधंति मीसा उ ॥४१॥
सुरनरआउयसहिया अविरयसम्मा उ [5]होंति नायव्वा ।
तित्थयरेण जुया तह, तेउल्लेसे [6]परं वोच्छं ॥४२॥
विगलतिगंनिरयतिगंसुहुमतिगूणं सयं तु [7]एक्कारं ।
तित्थाहारूणा मिच्छ साण इगितिगनपुचऊणा ॥४३॥
मीसाई पंचगुणा, ओघं वंधंति पम्हलेसावि ।
विगलतिगं निरयतिगं, सुहुमतिगेगिंदिथावरायावं ॥४४॥
हिच्चा सयमट्ठहियं, तित्थाहारदुगहीण मिच्छाओ ।
संढाइचउक्कोणं, साणा मीसाइ पणगओघं तु ॥४५॥
वंधंति सुक्कलेसा, नारयतिरिसुहुमविगलजाइतिगं ।
[8]इगिथावरायवुज्जोय वज्जिय सयं तु चउरहियं ॥४६॥
तित्थाहारदुगूणं, एगहियसयं तु वंधई मिच्छा ।
संढाइचउक्कोणं, साणा वंधंति [9]सगनउइं ॥४७॥

१ "अनियट्टी" इत्यपि । २ "केवलस्सावि ।।" इत्यपि । ३ "मिच्छाईसु चऊसु" इत्यपि । ४ "पणुवीस मुत्तु" इत्यपि । ५ "हुंति" इत्यपि । ६ "परे वुच्छं" इत्यपि । ७ "इक्कारं" इत्यपि । ८ "इग०" इत्यपि । ९ "सगणवई" इत्यपि ।

तिरितियउज्जोऊणं, पणुवीसं [1]मोत्तु सुरनराउजुयं ।
चउहत्तरिं तु मीसा, वंधहिं कम्माण पयडीओ ॥४८॥

तित्थयरसुरनराउयसहिया अजयम्मि होइ सगसयरी ।
देसाइनवसु ओघो, भव्वेसु वि सो अभव्व मिच्छसमा ॥४९॥

ओघो वेयगसम्मे, अजयाइचउक खाइगेव्वोघो ।
अजयादजोगि जाव उ, ओघो उवसामिए होइ ॥५०॥

[2]उवसम्मे वट्टंता, चउण्हमिक्कंपि आउयं [3]नेय ।
वंधंति तेण अजया, सुरनरआऊहिं ऊणं तु ॥५१॥

ओघो देसजयाइसु, सुराउहीणो उ जाव उवसंतो ।
ओघो सण्णिसु नेओ, मिच्छाभंगो असण्णीसु ॥५२॥

साणे वि असण्णिस्सा, भंगा [4]सण्णुब्भवा मुणेयव्वा ।
आहारगेसु ओघो, इयरेसु य [5]कम्मणो भंगो ॥५३॥

इय पुव्वसूरिकय [6]पगरणेसु जडबुद्धिणा [7]मए रइयं ।
वंघस्सामित्तमिणं, नेयं कम्मत्थयं सोउं ॥५४॥

॥ समाप्तश्चायं बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः ॥

तिरितियउज्जोऊणं, पणुवीसं [1]मोत्तु सुरनराउजुयं ।
चउहत्तरिं तु मीसा, बंधहिँ कम्माण पयडीओ ॥४८॥

तित्थयरसुरनराउयसहिया अजयम्मि होइ सगसयरी ।
देसाइनवसु ओघो, भव्वेसु वि सो अभव्व मिच्छसमा ॥४९॥

ओघो वेयगसम्मे, अजयाइचउक्क खाइगेव्वोघो ।
अजयाइजोगि जाव उ, ओघो उवसामिए होइ ॥५०॥

[2]उवसम्मे वट्टंता, चउण्हमिक्कं पि आउयं [3]नेय ।
बंधंति तेण अजया, सुरनरआऊहिँ ऊणं तु ॥५१॥

ओघो देसजयाइसु, सुराउहीणो उ जाव उवसंतो ।
ओघो सण्णिसु नेओ, मिच्छाभंगो असण्णीसु ॥५२॥

साणे वि असण्णिस्सा, भंगा [4]सण्णुब्भवा मुणेयव्वा ।
आहारगेसु ओघो, इयरेसु य [5]कम्मणो भंगो ॥५३॥

इय पुव्वसूरिकय [6]पगरणेसु जडबुद्धिणा [7]मए रइयं ।
बंधस्सामित्तमिणं, नेयं कम्मत्थयं सोउं ॥५४॥

॥ समाप्तश्चायं बन्धस्वामित्वाख्यस्तृतीयः कर्मग्रन्थः ॥



॥ अर्हम् ॥

॥ षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ॥

निच्छिन्नमोहपासं, पसरियविमलोरुकेवलपयासं ।
पणयजणपूरियासं, पयओ पणमित्तु जिणपासं ॥१॥

वोच्छामि जीवमग्गणठाणुवओगजोगलेसाई ।
किंचि सुगुरूवएसा, सन्नाणसुझाणहेउत्ति ॥२॥

[1]इह सुहुमबायरेगिंदिबितिचउअसन्निसन्निपंचिंदी ।
अपजत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥३॥

सव्वभणियव्वमूलेसु तेसु गुणठाणगाइ ता भणिमो ।
पढमगुणा दो बायरबितिचउरअसन्नि अपजत्ते ॥४॥

सन्निअपज्जत्ते मिच्छदिट्ठिसासाणअविरया तिन्नि ।
सव्वे सन्निपजत्ते, मिच्छं सेसेसु सत्तसु त्ति ॥५॥

जोगा छसु अप्पज्जत्तएसु कम्मइगउरलमिस्सा दो ।
वेउव्वियमीसजुया, सन्निअपज्जत्तए तिन्नि ॥६॥

बिंति अपज्जत्ताण वि, तणुपज्जत्ताण केइ ओरालं ।
बायरपज्जत्ते तिन्नि उरल वेउव्वियदुगं च ॥७॥

उरलं सुहुमे चउसु य, भासजुयं पनरसावि सन्निम्मि ।
उवओगा दससु तओ, अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥८॥

चक्खुजुया चउरिंदियअसन्निपज्जत्तएसु ते चउरो ।
मणनाणचक्खुकेवलदुगरहिया सन्निअपजत्ते ॥९॥

सव्वे सन्निसु एत्तो, लेसाओ छावि दुविहसन्निम्मि ।
चउरो पढमा बायर-अपजत्ते तिन्नि सेसेसु ॥१०॥

सत्तट्ठ १ अट्ठ २ सत्तट्ठ ३ अट्ठ ४ बंधु १ दयु २ दीरणा ३ [2]संता ४ ।
तेरससु जीवठाणेसु सन्निपज्जत्तए ओघो ॥११॥

---

१ चउदसजियठाणेसुं गुणजोगुवओगलेसबंधुदया । उदीरणाया सत्ता वत्तव्वा अट्ठपयकमसो ॥२॥" इत्यधिका प्रक्षिप्तगाथा हस्तलिखितप्रतौ दृश्यते । २ "सत्ता" इत्यपि ।

एत्तो गइइंदियकायजोयवेए कसायनाणेसु ७ ।
संजमदंसणलेसाभवसम्मे सन्निआहारे ॥१२॥
सुरनरतिरिनरयगई, [1]इगबितिचउरिंदिया य [2]पंचिंदी ।
पुढवीआऊतेऊवाऊवणसइतसा काया ॥१३॥
मण[3]वइकाया जोगा, इत्थी पुरिसो [4]नपुंसगो वेया ।
कोहो माणो माया, लोभो चउरो कसाय त्ति ॥१४॥
मइसुयओहीमणकेवलाणि मइसुयअनाणविभंगा ।
सामाइयछेयपरिहारसुहुमअहखायदेसजयअजया ॥१५॥
अन्चक्खुचक्खुओही, केवलदंसणमओ य छल्लेसा ।
किण्हा नीला काऊ, तेऊ पम्हा य सुक्का य ॥ १६ ॥
भव्वअभव्वा खउवसमखइयउवसमियमीस[5]सासाणं ।
मिच्छो य [6]सन्नसन्नी, आहारणहार इय भेया ॥ १७ ॥
सुरनिरए सन्निदुगं, नरेसु तइओ असन्निअपजत्तो ।
तिरियगईए चउदस, एगिंदिसु, आइमा चउरो ॥ १८ ॥
बितिचउरिंदिसु दो दो, अंतिम चउरो पणिंदिसु [7]भवंति ।
थावरपणगे पढमा, चउरो चरमा दस तसेसु ॥ १९ ॥
विगलतिअसन्निसन्नी, पज्जत्ता पंच होंति [8]वइजोगे ।
मणजोगे [9]सन्निक्को, पुमित्थिवेए चरम चउरो ॥ २० ॥
काओगिनपुंसकसायमइसुयअनाणअविरयअचक्खु ।
आइतिलेसा भव्वियरमिच्छ आहारगे सव्वे ॥ २१ ॥
मइसुयओहिदुगविभंगपम्हसुक्कासु तिसु [10]य सम्मेसु ।
सन्निम्मि [11]य दो ठाणा, सन्निअपज्जत्तपज्जत्ता ॥ २२ ॥
मणपज्जवकेवलदुगसंजयदेसजयमीसदिट्ठीसु ।
सन्नी पज्जो चक्खुंमि तिन्नि छ व पज्जि[12]यरचरमा ॥ २३ ॥

---

१ "इगि०" इत्यपि । २ "पंचेंदी" इत्यपि । ३ "वय०" इत्यपि । ४ "नपुंसगो" इत्यपि । ५ "सासाणा" इत्यपि । ६ "सन्नि०" इत्यपि । ७ "हवंति" इत्यपि । ८ "वय०" इत्यपि । ९ 'सन्नेक्को" इत्यपि । १० "वि" इत्यपि । ११ "व" इत्यपि । १२ "०मर०" इत्यपि पाठः ।

सत्त उ सासाणे बायराइ छ अपज्ज सन्निपज्जो य ।
तेउल्लेसे बायरअपजत्तो दुविहसन्नी य ॥ २४ ॥

अस्सन्नि आइ बारस, अणहारे अट्ठ सत्त अपजत्ता ।
सन्नी पज्जत्तो तह, इय [1]गइयाइसु जियट्ठाणा ॥ २५ ॥

मिच्छे सासण [2]मीसे, अविरयदेसे पमत्तअपमत्ते ।
[3]नियट्टि अनियट्टिसुहुमुवसमखीणसजोगअजोगिगुणा ॥२६॥

चत्तारि देवनरएसु पंच तिरिएसु चउदस नरेसु ।
इगिविगलेसुं दो दो, पंचिंदीसुं चउद्दस त्ति ॥ २७ ॥

[4]भूदगतरूसु दो एगमगणिवाऊसु चउदस तसेसु ।
जोए तेरस वेए, तिकसाए नव दस य लोभे ॥२८॥

मइसुयओहिदुगे नव, अजयाइजयाइ सत्त मणनाणे ।
केवलदुगंमि दो तिन्न दो व पढमा अनाणतिगे ॥ २९ ॥

सामाइयछेएसुं, चउरो परिहार दो पमत्ताई ।
देससुहुमे सगं पढमचरमचउ अजयअहखाए ॥ ३० ॥

बारस अचक्खुचक्खुसु, पढमा लेसासु तिसु छ दुसु सत्त ।
सुक्काएँ तेरस गुणा, सव्वे भव्वे अभव्वेगं ॥ ३१ ॥

वेयगखइगउवसमे, चउरो एक्कारसट्ठ तुरियाई ।
सेसतिगे सट्ठाणं, सन्निसु चउदस असन्निसु दो ॥ ३२ ॥

आहारगेसु पढमा, तेरसऽणाहारगेसु पंच इमे ।
[5]पढमंतिमदुगअविरय, गइयाइसु इय गुणट्ठाणा ॥ ३३ ॥

सच्चं मोसं मीसं, असच्चमोसं मणं तह वई य ।
उरलविउव्वाहारा, मीसा कम्मइगमिय जोगा ॥३४॥

एक्कारस सुरनारयगईसु आहारउरलदुगरहिया ।

---

१ "गइयाईसु जियठाणा" इत्यपि। २ "मिस्से" इत्यपि। ३ "नियट्टिअनियट्टिसुहुमुवसमखीणसजोगि-अजोगिगुणा ॥२६॥" इत्यपि पाठो मुद्रितप्रतौ हस्तलिखितमूलगाथाप्रतौ च दृश्यते। किन्तु तत्र छन्दभङ्गोऽस्ति सुखावगमार्थमेवंभूतः पाठः कृतः सम्भाव्यते । हस्तलिखितयशोभद्रसूरिवृत्तियुतगाथाप्रतौ पुनरस्माद्भिन्न उपरि दर्शितेन तुल्यश्च पाठो लभ्यते। ४ अत्राऽपि पूर्ववन्मुद्रितप्रतिहस्तलिखितमूलगाथाप्रत्यादिषु 'भूद-गतरूसु दो दो इगमगणिवाउसु चउदस तसेसु ।" इत्यपि पाठः प्राप्यते । श्रीमन्मलयगिरिपादैरेतत्पाठा-नुसारेणैव वृत्तिर्विहिता दृश्यते। ५ "पढमंतदुगअविरया इय गइयाईसु गुणठाणा" इत्यपि ।

जोगा तिरियगईए, तेरस आहारगदुगूणा ॥ ३५ ॥
नरगइपणिंदितसतणुनरअपुमकसायमइसुओहिदुगे ।
[1]अचक्खुछलेसाभव्वसम्मदुगसन्निसु य सव्वे ॥ ३६ ॥

एगिंदिएसु पंच उ. कम्मइगविउव्विउरलजुयलाणि ।
कम्मुरलदुगं अंतिमभासा विगलेसु चउरो त्ति ॥ ३७ ॥

कम्मुरलदुगं थावरकाए वाए विउव्विजुयलजुयं ।
पढमंतिममणवइदुगकम्मुरलदु केवलदुगंमि ॥ ३८ ॥

[2]थीवेअन्नाणोवसमअजयसासणअभव्वमिच्छेसु ।
तेरस मणवइमणनाणछेयसामइयचक्खुसु य ॥ ३९ ॥

[3]परिहारे सुहुमे नव, उरलवइ[4]मणा सकम्मुरलमिस्सा ।
अहखाए सविउव्वा, मीसे देसे सविउविदुगा ॥४०॥

कम्मुरलविउव्विदुगाणि चरमभासा य छ उ असन्निम्मि ।
जोगा अकम्मगाहारगेसु कम्मणमणाहारे ॥ ४१ ॥

नाणं पंचविहं तह, अन्नाणतिगं ति अट्ठ सागारा ।
चउदंसणमणगारा, बारस, जियलक्खणुवओगा ॥ ४२ ॥

मणुयगईए बारस, मणकेवलदुरहिया नवन्नासु ।
थावरइगिबितिइंदिसु अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥४३॥

चक्खुजुयं चउरिंदिसु, तं चिय बारसपणिंदितसकाए ।
जोए वेए सुक्काएँ भव्वसन्नीसु आहारे ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस, कसायपणलेसचक्खुचक्खूसु ।
केवलदुगे नियदुगं, खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।
नाणचउदंसणतिगं, केवलदुजुयं अहक्खाए ॥ ४६ ॥

नाणतिगदंसणतिगं, देसे मीसे अनाणमीसं तं ।
केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥ ४७ ॥

---

१ "अचक्खु छल्लेसा०" इत्यपि । २ "थीवेयमनाणो०" इत्यपि । तथा "जोगाऽऽहारदुगूणा तेरस थीमाइनवसु ठाणेसु । ओरालमिस्सकम्मणरहिया मणमाइछण्हं पि ॥ ॥" इति प्रक्षिप्तगाथाऽधिकतया हस्तलिखितप्रतौ दृश्यते । ३ "परिहारसुहुम्मे" इत्यपि पाठः । ४ "०मणा ते सकम्म०" इति पाठः ।

अन्नाणतिगअभव्वे, सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।
दोदंसणतियनाणा, ते अविभंगा असन्निम्मि ॥४८॥

मणनाणचक्खुरहिया, दस उ अणाहारगेसु उवओगा ।
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥४९॥

[1]तणुवइमणेसु कमसो, दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।
तेरसदुबारतेरस, गुणजीवुवओगजोग त्ति ॥५०॥

लेसा उ तिन्नि पढमा, नारगविगलग्गिवाउकाएसु ।
एगिंदिभूतरूदगअसन्निसुं पढमिया चउरो ॥५१॥

केवलजुयलअहक्खायसुहुमरागेसु सुक्कलेसेव ।
लेसासु छसु सठाणं, गइयाइसु छावि सेसेसु ॥५२॥

गइयाइसु अप्पबहुं, भणामि सामन्नओ सठाणे वि ।
नरनिरयदेवतिरिया, थोवा दुअसंखणंतगुणा ॥५३॥

पणचउतिदुएगिंदी, थोवा तिन्न अहिया अणंतगुणा ।
तसतेउपुढविजलवाउहरियकाया पुण कमेणं ॥५४॥

थोवा असंखगुणिया, तिन्न विसेसाहिया अणंतगुणा ।
मणवयणकायजोगी, थोवा संखगुणणंतगुणा ॥५५॥

पुरिसेहिंतो इत्थी, संखेज्जगुणा नपुंसणंतगुणा ।
माणी कोही [2]मायी, लोभी कमसो विसेसहिया ॥५६॥

मणपज्जविणो [3]थोवा, ओहीनाणी तओ असंखगुणा ।
मइसुयनाणी तत्तो, विसेसअहिया समा दो वि ॥५७॥

विब्भंगिणो असंखा, केवलनाणी तओ अणंतगुणा ।
तत्तोऽणंतगुणा दो, मइसुयअन्नाणिणो तुल्ला ॥५८॥

---

१ "केवलतणुजोगंमि दो गुणचउजीवआइमा हुंति । मइसुअअन्नाणदुगं अचक्खू तिन्नि उवओगा ॥१॥ वेउव्वियउरलजुयला कम्मणजोगो य पंच जोगम्मि । अमणवईए पढमा दो गुण जिय अट्ठ चउ उवरिं ॥२॥ चक्खुअचक्खू मइसुयअनाण चत्तारि हुंति उवओगा । कम्मण उरालजुयलं असच्चमोसा य पंच जोगा ॥३॥ तेरस गुण मणजोगे अंतिम दो जीव बार उवओगा । तेरसजोगा य तहा कम्मोरलमिस्सवज्ज त्ति ॥४॥" एतद्गाथाचतुष्कं प्रक्षिप्ततयाऽधिकं दृश्यते हस्तलिखितमूलगाथाप्रतौ । २ "माई लोभी" इत्यपि । ३ "थोवा ओहिन्नाणी" इत्यपि ।

जोगा तिरियगईए, तेरस आहारगदुगूणा ॥ ३५ ॥
नरगइपणिंदितसतणुनरअपुमकसायमइसुओहिदुगे ।
[1]अचक्खुछलेसाभव्वसम्मदुगसन्निमु य सव्वे ॥ ३६ ॥

एगिंदिएसु पंच उ. कम्मइगविउव्विउरलजुयलाणि ।
कम्मुरलदुगं अंतिमभासा विगलेसु चउरो त्ति ॥ ३७ ॥

कम्मुरलदुगं थावरकाए वाए विउव्विजुयलजुयं ।
पढमंतिममणवइदुगकम्मुरलदु केवलदुगंमि ॥ ३८ ॥

[2]थीवेअन्नाणोवसमअजयसासणअभव्वमिच्छेसु ।
तेरस मणवइमणनाणछेयसामइयचक्खुसु य ॥ ३९ ॥

[3]परिहारे सुहुमे नव, उरलवइ[4]मणा सकम्मुरलमिस्सा ।
अहखाए सविउव्वा, मीसे देसे सविउविदुगा ॥४०॥

कम्मुरलविउव्विदुगाणि चरमभासा य छ उ असन्निम्मि ।
जोगा अकम्मगाहारगेमु कम्मणमणाहारे ॥ ४१ ॥

नाणं पंचविहं तह, अन्नाणतिगं ति अट्ठ सागारा ।
चउदंसणमणगारा, बारस, जियलक्खणुवओगा ॥ ४२ ॥

मणुयगईए बारस, मणकेवलदुरहिया नवन्नासु ।
थावरइगिवितिइंदिसु अचक्खुदंसणमनाणदुगं ॥४३॥
चक्खुजुयं चउरिंदिसु, तं चिय बारसपणिंदितसकाए ।
जोए वेए सुक्काए भव्वसन्नीसु आहारे ॥४४॥

केवलदुगहीणा दस, कसायपणलेसचक्खुचक्खूसु ।
केवलदुगे नियदुगं, खइगे नव नो अनाणतिगं ॥४५॥

पढमचउनाणसंजमवेयगउवसमियओहिदंसेसु ।
नाणचउदंसणतिगं, केवलदुजुयं अहक्खाए ॥ ४६ ॥

नाणतिगदंसणतिगं, देसे मीसे अनाणमीसं तं ।
केवलदुगमणपज्जववज्जा अस्संजयंमि नव ॥ ४७ ॥

---

१ "अचक्खु छल्लेसा०" इत्यपि। २ "थीवेयअनाणो०" इत्यपि। तथा "जोगाऽऽहारदुगूणा तेरस थीमाइनवसु चारेसु। ओरालमिस्सकम्मणरहिया मणमाइछण्हं चि॥ ॥" इति प्रक्षिप्तगाथाऽधिकतया हस्तलिखितप्रतौ दृश्यते। ३ "परिहारसुहुम्मे" इत्यपि पाठः। ४ "०मणा ते सकम्मु०" इति पाठः।

अन्नाणतिगअभव्वे, सासणमिच्छे य पंच उवओगा ।
दोदंसणतियनाणा, ते अविभंगा असन्निम्मि ॥ ४८॥

मणनाणचक्खुरहिया, दस उ अणाहारगेसु उवओगा ।
इय गइयाइसु नयमयनाणत्तमिणं तु जोगेसु ॥४९॥

[1]तणुवइमणेसु कमसो, दुचउतिपंचा दुअट्ठचउचउरो ।
तेरसदुबारतेरस, गुणजीवुवओगजोग त्ति ॥ ५० ॥

लेसा उ तिन्नि पढमा, नारगविगलग्गिवाउकाएसु ।
एगिंदिभूतरूदगअसन्निसुं पढमिया चउरो ॥ ५१ ॥

केवलजुयलअहक्खायसुहुमरागेसु सुक्कलेसेव ।
लेसासु छसु सठाणं, गइयाइसु छावि सेसेसु ॥ ५२ ॥

गइयाइसु अप्पबहुं, भणामि सामन्नओ सठाणे वि ।
नरनिरयदेवतिरिया, थोवा दुअसंखणंतगुणा ॥ ५३ ॥

पणचउतिदुएगिंदी, थोवा तिन्न अहिया अणंतगुणा ।
तसतेउपुढविजलवाउहरियकाया पुण कमेणं ॥ ५४ ॥

थोवा असंखगुणिया, तिन्न विसेसाहिया अणंतगुणा ।
मणवयणकायजोगी, थोवा संखगुणणंतगुणा ॥ ५५ ॥

पुरिसेहिंतो इत्थी, संखेज्जगुणा नपुंसणंतगुणा ।
माणी कोही [2]मायी, लोभी कमसो विसेसहिया ॥५६॥

मणपज्जविणो [3]थोवा, ओहीनाणी तओ असंखगुणा ।
मइसुयनाणी तत्तो, विसेसअहिया समा दो वि ॥ ५७ ॥

विब्भंगिणो असंखा, केवलनाणी तओ अणंतगुणा ।
तत्तोऽणंतगुणा दो, मइसुयअन्नाणिणो तुल्ला ॥ ५८ ॥

---

१ "केवलतणुजोगंमि दो गुणचउजीवआइमा हुंति । मइसुअअन्नाणदुगं अचक्खू तिन्नि उवओगा ॥१॥ वेउव्विउरलजुयला कम्मणजोगो य पंच जोग त्ति । अमणवईए पढमा दो गुण जिय अट्ठ चउ उवरिं ॥२॥ चक्खुअचक्खू मइसुयअनाण चत्तारि हुंति उवओगा । कम्मण उरालजुयलं असच्चमासा य चउ जोगा ॥३॥ तेरस गुण मणजोगे अंतिम दो जीव बार उवओगा । तेरसजोगा य तहा कम्मोरलमिस्सवज्ज त्ति ॥४॥" एतद्गाथाचतुष्कं प्रक्षिप्ततयाऽधिकं दृश्यते हस्तलिखितमूलगाथाप्रतौ । २ "माई लोभी" इत्यपि । ३ "थोवा ओहिन्नाणी" इत्यपि ।

सुहुमपरिहारअहखायछेयसामइयदेसजइअजया ।
थोवा संखेज्जगुणा, चउरो अस्संखणंतगुणा ॥ ५९ ॥
इय ओहिचक्खुकेवलअचक्खुदंसी कमेण विन्नेया ।
थोवा अस्संखगुणा, अणंतगुणिया अणंतगुणा ॥ ६० ॥
सुक्का पम्हा तेऊ, काऊ नीला य किण्हलेसा य ।
थोवा दोऽसंखगुणाऽणंतगुणा दो विसेसहिया ॥ ६१ ॥
थोवा जहन्नजुत्ताणंतयतुल्ल त्ति इह अभवजिया ।
तेहिंतोऽणंतगुणा, भव्वा निव्वाणगमणरिहा ॥ ६२ ॥
सासाणउवसमियमिस्सवेयगखइयमिच्छदिट्ठीओ ।
थोवा दो संखगुणा, असंखगुणिया अणंता दो ॥ ६३ ॥
सन्नी थोवा तत्तो, अणंतगुणिया असन्निणो [1]होंति ।
थोवाणाहारनिया, तदसंखगुणा [2]सआहारा ॥ ६४ ॥
मिच्छे सव्वे छ अपज्ज सन्निपज्जत्तगो य सासाणे ।
सम्मे दुविहो सन्नी, सेसेसुं सन्निपज्जत्तो ॥ ६५ ॥
इय जियठाणा गुणठाणएसु जोगाइ वोच्छमेत्ताहे ।
जोगाहारदुगूणा, मिच्छे सासणअविरए य ॥ ६६ ॥
उरलविउव्व[3]वइमणा, दस मीसे ते विउव्विमीसजुया ।
देसजए एक्कारस, साहारदुगा पमत्ते ते ॥ ६७ ॥
[4]एक्कारस अपमत्ते, मणवइआहारउरलवेउव्वा ।
अप्पुव्वाइसु पंचसु, नव ओरालो मणवई य ॥ ६८ ॥
चरमाइममणवइदुगकम्मुरलदुगं [5]ति जोगिणो सत्त ।
गयजोगो य अजोगी, वोच्छमओ बारसुवओगे ॥ ६९ ॥
अचक्खुचक्खुदंसणमन्नाणतिगं च मिच्छसासाणे ।
अविरयसम्मे देसे, तिनाणदंसणतिगं ति छ उ ॥ ७० ॥
मीसे ते [6]चिय मीसा, सत्त पमत्ताइसुं समणनाणा ।
केवलियनाणदंसणउवओगा जोगजोगीसु ॥ ७१ ॥

---

१ "हुंति" इत्यपि । २ "ऽ साहारा" इत्यपि । ३ "वय०" इत्यपि । ४ एक्कारस-ऽप्पमत्ते" इत्यपि । ५ "तु" इत्यपि । ६ "तिच्चिय" इत्यपि ।

सासणभावे नाणं, विउव्विगाहारगे उरलमिस्सं ।
नेगिंदिसु [1]सासाणो, नेहाहिगयं सुयमयं पि ॥ ७२ ॥

लेसा तिन्नि पमत्तं, तेऊपम्हा उ अप्पमत्तंता ।
सुक्का जाव सजोगी, निरुद्धलेसो अजोगि त्ति ॥ ७३ ॥

बंधस्स मिच्छअविरइकसायजोग त्ति हेयवो चउरो ।
पंच दुवालस पणुवीस पनरस कमेण भेया सिं ॥ ७४ ॥

[2]आभिग्गहियं अणभिग्गहं च तह अभिनिवेसियं चेव ।
संसइयमणाभोगं, मिच्छत्तं पंचहा एवं ॥७५ ॥

बारसविहा अविरई, मणइंदियअनियमो छकायवहो ।
सोलस नव य कसाया, पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥ ७६ ॥

पणपन्नपन्नतियछहिय,[3]चत्तउणचत्त छचउदुगवीसा ।
सोलसदसनवनवसत्त हेउणो न उ अजोगिम्मि ॥ ७७ ॥

तो नाणदंसणावरणवेयणीयाणि मोहणिज्जं च ।
आउयनामं गोयंतरायमिह अट्ठ कम्माणि ॥ ७८ ॥

सत्तट्ठछेगबंधा, संतुदया अट्ठ सत्त चत्तारि ।
सत्तट्ठछपंचदुगं, उदीरणाठाणसंखेयं ॥ ७९ ॥

अपमत्तंता सत्तट्ठ मीसअप्पुव्वबायरा सत्त ।
बंधंति छ सुहुमो एगमुवरिमा बंधगोऽजोगी ॥८० ॥

आ सुहुमो ता अट्ठ वि, उदए संते य [4]होंति पयडीओ ।
सत्तट्ठुवसंते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसु ॥ ८१ ॥

सत्तट्ठ पमत्तंता, कम्मे उइरिंति अट्ठ मीसो उ ।
वेयणियाउ विणा छ उ, अपमत्तअपुव्वअनियट्टी ॥ ८२ ॥

सुहुमो छ पंच उइरेइ पंच उवसंतु पंच दो खीणो ।
जोगी उ नामगोए, अजोगिअणुदीरगो भयवं ॥ ८३ ॥

---

१ "सासाणो त्ति नेहाहिगयं" इत्यपि । २ 'आभिग्गहियं किल दिक्खियाणमणभिग्गहं तु इयराणं । गुट्ठामाहिलमाईण जं आभिनिवेसि यं तं तु ॥१॥ संसइयं मिच्छत्तं जा संका जिणवरुत्ततत्तेसु । विगलिंदियाण जं पुण समणाभोगं विणिदिट्ठं ॥२॥ इति गाथायुग्ममधिकं प्रक्षिप्तगाथात्वेन ७५-७६ गाथाद्वयमध्ये दृश्यते हस्तलिखितप्रतौ । ३ "चत्तिगुणचत्त०" इत्यपि । ४ "हुन्ति" इत्यपि ।

उवसंतजिणा थोवा, संखेज्जगुणा उ खीणमोहजिणा ।
[1]सुहुमनियट्टिनियट्टी, तिन्नि वि तुल्ला विसेसहिया ॥ ८४ ॥
जोगिअपमत्तइयरे, संखगुणा देमसासणा मिस्सा ।
अविरयअजोगिमिच्छा, असंखचउरो दुवेऽणंता ॥ ८५ ॥
जिणवल्लहोवणीयं, जिणवयणामयसमुद्दबिंदुमिमं ।
हियकंखिणो बुहजणा निसुणंतु गुणंतु जाणंतु ॥ ८६ ॥

१ "सुहुमनियट्टिनियट्टी" इत्यपि ।

॥ समाप्तोऽयं जिनवल्लभगणिप्रणीतः षडशीतिनामा चतुर्थः कर्मग्रन्थः ॥

॥ अर्हम् ॥

पूर्वधरवाचकवरश्रीशिवशर्मसूरिप्रणीतः

॥ शतकसंज्ञकः पञ्चमः कर्मग्रन्थः ॥

अरहंते भगवंते अणुत्तरपरकम्मे पणमिऊणं ।
बंधसयगे निबद्धं संगहमिणमो पवक्खामि ॥१॥
सुणह इह जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ ।
वोच्छं कइवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवायाओ ॥२॥
(प्रक्षेपगाथा)

उवयोगा जोगविही जेसु य ठाणेसु जत्तिआ अत्थि ।
[1]जप्पच्चइओ बंधो होइ [2]जहा जेसु ठाणेसु ॥२॥३॥
बंधं [3]उदयमुदीरणविहिं च तिण्हं पि तेसिं संजोगं ।
बंधविहाणे य तहा किंचि समासं पवक्खामि ॥३॥४॥
एगिंदिएसु चत्तारि हुंति विगलिंदिएसु छच्चेव ।
पंचिंदिएसु [4]वि तहा चत्तारि हवंति [5]ठाणाणि ॥४॥५॥
तिरियगईए [6]चोद्दस, हवन्ति सेसासु जाण दो दो उ ।
मग्गणठाणेसेवं, नेयाणि समासठाणाणि ॥५॥६॥
गइइन्दिए य काए, जोए वेए कसायनाणे य ।
संजमदंसणलेसा, भवसम्मे सन्निआहारे ॥७॥ (प्र०)
एक्कारसेसु [7]तिय तिय दोसु चउक्कं च बारसेगम्मि ।
जीवसमासेसेवं उवओगविही मुणेयव्वा ॥६॥८॥
[8]णवसु चउक्के एक्के जोगा एक्को य [9]दोन्नि पन्नरस ।
तब्भवगएसु एए भवन्तरगएसु काओगो ॥७॥९॥
उवओगा जोगविही जीवसमासेसु वन्निया [10]एवं ।
एत्तो गुणेहि सह [11]परिगयाणि ठाणाणि [12]मे सुणह ॥८॥१०॥
मिच्छद्दिट्ठी सासणमिस्से अजए य देसविरए य ।
नव संजएसु [13]एवं चउदस गुणनाम [14]ठाणाणि ॥९॥११॥

---

१. "जप्पच्चईउ" इत्यपि । २ "जया" इत्यपि । ३. "उदयोदीरण." इत्यपि । ४. "य" इत्यपि । ५. "ठाणाइं" इत्यपि । ६. "चउदस" इत्यपि । ७. "तिगतिग" इत्यपि । ८ "नवसु" इत्यपि । ९, "दुन्नि" इत्यपि । १०. "एए" इति वा पाठः । ११. "संगयाणि" इत्यपि । १२. "मे" इत्यपि । १३. "एए" इत्यपि । १४. "नेयाणि" इत्यपि ।

सुरनारएसु चत्तारि [1]हुंति तिरिएसु जाण पंचेव ।
मणुयगईए वि तहा [2]चोद्दस गुणनामठाणाणि ॥१०॥१२॥
[3]दोण्हं पंच उ छच्चेव दोसु एक्कंमि होंति वा मिस्सा ।
सत्तुवओगा सत्तसु दो चेव य दोसु ठाणेसु ॥११॥१३॥
[4]तिसु तेरस एगे दस नवसत्तसिगम्मि हुन्ति [5]एगारा ।
एगम्मि सत्त जोगा, अजोगिठाणं हवइ एक्कं ॥१२॥१४॥
तेरस चउसु दसेगे पंचसु नव दोसु होन्ति एगारा ।
एगम्मि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवइ [6]एगं ॥१३॥१५॥
चउपच्चइओ बन्धो पढमे उवरिमतिगे तिपच्चइओ ।
मीसग बीओ उवरिमदुगं च देसिक्कदेसम्मि ॥१४॥१६॥
उवरिल्लपंचके पुण दुपच्चओ जोगपच्चओ तिण्हं ।
सामन्नपच्चया खलु अट्ठण्हं होन्ति कम्माणं ॥१५॥१७॥
[7]पडिणीयअन्तराइयउवधाए तप्पओसनिन्हवणे ।
आवरणदुगं भूओ बन्धइ अच्चासणाए य ॥१६॥१८॥
भूयाणुकम्पवयजोगउज्जओ खन्तिदाणगुरुभत्तो ।
बन्धइ भूओ सायं विवरीए बन्धए इयरं ॥१७॥१९॥
[8]अरहन्त-सिद्ध-चेइअ-तव-सुय-गुरु-साहु-संघ पडणीओ ।
बन्धइ दंसणमोहं अणन्तसंसारिओ जेणं ॥१८॥२०॥
तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणओ रागदोससंजुत्तो ।
बन्धइ चरित्तमोहं दुविहंपि चरित्तगुणघाई ॥१९॥२१॥
मिच्छद्दिट्ठी महारम्भपरिग्गहो तिव्व [9]लोभनिस्सीलो ।
निरयाउयं निबंधइ पावमई रुद्दपरिणामो ॥२०॥२२॥
उम्मग्गदेसओ मग्गनासओ गूढहिययमाइल्लो ।
सढसीलो य ससल्लो तिरियाउं बन्धए जीवो ॥२१॥२३॥
पयईअ तणुकसायो दाणरओ सीलसंजमविहूणो ।
मज्झिमगुणेहि जुत्तो मणुयाउं बन्धए जीवो ॥२२॥२४॥

---

१ "होंति" इत्यपि । २ "चउदस" इत्यपि । ३ "दुण्हं" इत्यपि । ४ "तिसु तेरस एगे दस नव योगा हुन्ति सत्तसु गुणेसु । एक्कारस य पमत्ते सत्त सयोगे अयोगिक्कं" इति पाठान्तरे । ५ "एक्कारा" इत्यपि । ६ "एक्कं" इत्यपि । ७ "पडिणीयमन्तराइय०" इत्यपि । ८ "अरिहन्त०" इत्यपि । ९ "०लोहनीसीलो" इत्यपि ।

अणुव्वयमहव्वए[1]हि य बालतवाकामनिज्जराए य ।
देवाउयं निबन्धइ सम्मद्दिट्ठी [2]उ जो जीवो ॥२३॥२५॥
मणवयणकायवंको माइल्लो गारवेहि पडिबद्धो ।
असुहं बन्धइ [3]कम्मं तप्पडिवक्खेहि सुहनामं ॥२४॥२६॥
अरहन्ताइसु भत्तो सुत्तरुई पयणुमाण–गुणपेही ।
बन्धइ उच्चागोयं विवरीए बन्धए इयरं ॥२५॥२७॥
[4]पाणवहाईसु रओ जिणपूआमोक्खमग्गविग्घकरो ।
अज्जेइ अन्तरायं न लहइ जेणिच्छियं लाभं ॥२६॥२८॥
बंधट्ठाणा चउरो तिन्नि य उदयस्स हुन्ति ठाणाणि ।
पंच य उदीरणाए संजोयमओ परं वुच्छं ॥२६॥ (प्र०)
छसु ठाणगेसु सत्तट्ठविहं बन्धन्ति तिसु य सत्तविहं ।
छव्विहमेगो तिन्नेगबन्धगाऽबन्धगो एगो ॥२७॥३०॥
सत्तट्ठविह छ (विह) बन्धगावि वेएन्ति अट्ठगं नियमा ।
एगविह[5]बन्धगा पुण चत्तारि व सत्त वेएन्ति ॥२८॥३१॥
मिच्छद्दिट्ठिप्पभिई अट्ठ उदीरन्ति जा पमत्तो त्ति ।
अद्धावलियासेसे तहेव सत्तेवुदीरन्ति ॥२६॥३२॥
[6]वेयणियाउवज्जे छकम्म उदीरयन्ति चत्तारि ।
अद्धावलियासेसे [7]सुहुमो उदीरेइ पञ्चेव ॥३०॥३३॥
वेयणियाउयमोहे वज्ज उदीरेन्ति दोन्नि पंचेव ।
अद्धावलियासेसे नामं गोयं च अकसाई ॥३१॥३४॥
उइरेइ नामगोए छकम्मविवज्जिया सजोगो [8]य ।
वट्टन्तो य अजोगी न किञ्चि कम्मं उदीरेइ ॥३२॥३५॥
अणुईरन्त अजोगी अणुहवइ चउव्विहं गुणविसालो ।
इरियावहं न बन्धइ आसन्नपुरक्खडो सन्तो ॥३३॥३६॥
इरियावहमाउत्ता चत्तारि व सत्त चेव वेदेन्ति ।
[9]उईरन्ति दुन्नि पञ्च य संसारगयम्मि मयणिज्जा ॥३४॥३७॥

---

१ '०हिं वा०" इत्यपि । २ "य" इत्यपि । ३ "नामं" इत्यपि । ४ "पाणि०" इत्यपि । ५ "०बन्धग" इत्यपि । ६ "वेयणियाउय०" इत्यपि वा । ७ "सुहुमु उदीरेइ" इत्यपि । 'सुहुमोदीरेइ" इत्यपि । ८ " इत्यपि । ९ "उईरिन्ति" इत्यपि ।

सुरनारएसु चत्तारि [1]हुंति तिरिएसु जाण पंचेव ।
मणुयगईए वि तहा [2]चोद्दस गुणनामठाणाणि ॥१०॥१२॥
[3]दोण्हं पंच उ छच्चेव दोसु एक्कंमि होंति वा मिस्सा ।
सत्तुवओगा सत्तसु दो चेव य दोसु ठाणेसु ॥११॥१३॥
[4]तिसु तेरस एगे दस नवसत्तसिगम्मि हुन्ति [5]एगारा ।
एगम्मि सच जोगा, अजोगिठाणं हवइ एक्कं ॥१२॥१४॥
तेरस चउसु दसेगे पंचसु नव दोसु होन्ति एगारा ।
एगम्मि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवइ [6]एगं ॥१३॥१५॥
चउपच्चइओ बन्धो पढमे उवरिमतिगे तिपच्चइओ ।
मीसग बीओ उवरिमदुर्ग च देसिक्कदेसम्मि ॥१४॥१६॥
उवरिल्लपंचके पुण दुपच्चओ जोगपच्चओ तिण्हं ।
सामन्नपच्चया खलु अट्ठण्हं होन्ति कम्माणं ॥१५॥१७॥
[7]पडिणीयअन्तराइयउवधाए तप्पओसनिन्हवणे ।
आवरणदुर्ग भूओ बन्धइ अच्चासणाए य ॥१६॥१८॥
भूयाणुकम्पवयजोगउज्जओ खन्तिदाणगुरुभत्तो ।
बन्धइ भूओ सायं विवरीए बन्धए इयरं ॥१७॥१९॥
[8]अरहन्त-सिद्ध-चेइअ-तव-सुय-गुरु-साहु-संघ पडणीओ ।
बन्धइ दंसणमोहं अणन्तसंसारिओ जेणं ॥१८॥२०॥
तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणओ रागदोससंजुत्तो ।
बन्धइ चरित्तमोहं दुविहंपि चरित्तगुणधाई ॥१९॥२१॥
मिच्छद्दिट्ठी महारम्भपरिग्गहो तिव्व [9]लोमनिस्सीलो ।
निरयाउयं निबंधइ पावमई रुद्दपरिणामो ॥२०॥२२॥
उम्मग्गदेसओ मग्गनासओ गूढहियियमाइल्लो ।
सढसीलो य ससल्लो तिरियाउं बन्धए जीवो ॥२१॥२३॥
पयईअ तणुकसायो दाणरओ सीलसंजमविहूणो ।
मज्झिमगुणेहि जुत्तो मणुयाउं बन्धए जीवो ॥२२॥२४॥

---

१ "होंति" इत्यपि । २ 'चउदस" इत्यपि । ३ "दुण्हं" इत्यपि । ४ "तिसु तेरस एगे दस नव योगा हुन्ति सत्तसु गुणेसु । एक्कारस य पमत्ते सत्त सयोगे अयोगिक्कं" इति पाठान्तरे । ५ "एक्कारा" इत्यपि । ६ "एक्कं" इत्यपि । ७ "पडिणीयमन्तराइय०" इत्यपि । ८ "अरिहन्त०" इत्यपि । ९ "०लोभनीसीलो" इत्यपि ।

अणुव्वयमहव्वए[1]हिं य बालतवाकामनिज्जराए य ।
देवाउयं निबन्धइ सम्मद्दिट्ठी [2]उ जो जीवो ॥२३॥२५॥
मणवयणकायवंको माइल्लो गारवेहि पडिबद्धो ।
असुहं बन्धइ [3]कम्मं तप्पडिवक्खेहि सुहनामं ॥२४॥२६॥
अरहन्ताइसु भत्तो सुत्तरुई पयणुमाण-गुणपेही ।
बन्धइ उच्चागोयं विवरीए बन्धए इयरं ॥२५॥२७॥
[4]पाणवहाईसु रओ जिणपूआमोक्खमग्गविग्घकरो ।
अज्जेइ अन्तरायं न लहइ जेणिच्छियं लाभं ॥२६॥२८॥
बंधट्ठाणा चउरो तिन्नि य उदयस्स हुन्ति ठाणाणि ।
पंच य उदीरणाए संजोयमओ परं वुच्छं ॥२६॥ (प्र०)
छसु ठाणगेसु सत्तट्ठविहं बन्धन्ति तिसु य सत्तविहं ।
छव्विहमेगो तिन्नेगबन्धगाऽबन्धगो एगो ॥२७॥३०॥
सत्तट्ठविह छ (विह) बन्धगावि वेएन्ति अट्ठगं नियमा ।
एगविह[5]बन्धगा पुण चत्तारि व सत्त वेएन्ति ॥२८॥३१॥
मिच्छद्दिट्ठिप्पभिई अट्ठ उदीरन्ति जा पमत्तो त्ति ।
अद्धावलियासेसे तहेव सत्तेवुदीरन्ति ॥२९॥३२॥
[6]वेयणियाउववज्जे छकम्म उदीरयन्ति चत्तारि ।
अद्धावलियासेसे [7]सुहुमो उदीरेइ पञ्चेव ॥३०॥३३॥
वेयणियाउयमोहे वज्ज उदीरेन्ति दोन्नि पंचेव ।
अद्धावलियासेसे नामं गोयं च अकसाई ॥३१॥३४॥
उइरेइ नामगोए छकम्मविवज्जिया सजोगो [8]य ।
वट्टन्तो य अजोगी न किञ्चि कम्मं उदीरेइ ॥३२॥३५॥
अणुईरन्त अजोगी अणुहवइ चउव्विहं गुणविसालो ।
इरियावहं न बन्धइ आसन्नपुरक्खडो सन्तो ॥३३॥३६॥
इरियावहमाउत्ता चत्तारि व सत्त चेव वेदेन्ति ।
[9]उईरन्ति दुन्नि पञ्च य संसारगयम्मि भयणिज्जा ॥३४॥३७॥

---

१ '०हिं बा०" इत्यपि । २ "य" इत्यपि । ३ "नामं" इत्यपि । ४ "पाणि०" इत्यपि । ५ "०बन्धगो" इत्यपि । ६ "वेयणियाउय०" इत्यपि वा । ७ "सुहुमु उदीरेइ" इत्यपि । 'सुहुमोदीरेइ" इत्यपि । ८ "उ" इत्यपि । ९ "उईरिन्ति" इत्यपि ।

छप्पञ्च उदीरन्तो बन्धइ सो छव्विहं तणुकसाओ ।
अट्ठविहमणुहवन्तो सुक्कज्झाणा [1]डहइ कम्मं ॥३५॥३८॥
अट्ठविहं वेयन्ता छविहमुईरन्ति सत्त बन्धन्ति ।
अनियट्टी य नियट्टी अपमत्तजई य ते तिन्नि ॥३६॥३९॥
अवसेसट्ठविहकरा वेयन्ति उदीरगा वि अट्ठण्हं ।
सत्तविहगा वि वेइन्ति अट्ठगमुईरणे भज्जा ॥३७॥४०॥
णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउयनामं गोयं तहंतरायं च पयडीओ ॥३८॥४१॥
पञ्च नव [2]दोन्नि अट्ठावीसा चउरो तहेव बायाला ।
[3]दोन्नि य पञ्च य भणिया पयडीओ उत्तरा चेव ॥३९॥४२॥
साइअणाई धुवअद्धुवो य बन्धो य कम्मछक्कस्स ।
तइए [4]साइयसेसो अणाइधुवसेसओ आऊ ॥४०॥४३॥
उत्तरपयडीसु तहा धुविगाणं बन्धचउविगप्पो य ।
[5]साई अद्धुवियाओ सेसा परियत्तमाणीओ ॥४१॥४४॥
चत्तारि पयडिठाणाणि तिन्नि भूगारअप्पतरगाणि ।
मूलपयडीसु एवं अवट्ठिओ चउसु नायव्वो ॥४२॥४५॥
एगादहिगे पढमो एगादी ऊणगम्मि बीओ य ।
तत्तियमित्तो तइओ पढमे समये अवत्तव्वो ॥४६॥(प्र०)
तिन्नि दस अट्ठ ठाणाणि दंसणावरणमोहनामाणं ।
एत्थ [6]य भूओगारो सेसेसेगं हवइ ठाणं ॥४३॥४७॥
तेवीसपण्णवीसाछव्वीसाअट्ठवीसइगुतीसा ।
तीसेगतीस एगं बन्धट्ठाणाइ नामस्स ॥४८॥(प्र०)
सव्वासिं [7]पगईणं मिच्छद्दिट्ठी उ बंधओ भणिओ ।
तित्थयराहारदुगं [8]मोत्तूणं सेसपयडीणं ॥४४॥४९॥
सम्मत्तगुणनिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं ।
बज्झंति सेसियाओ मिच्छत्ताईहि हेऊहिं ॥४५॥५०॥

---

१ "दहइ" इत्यपि । २-३ "दुन्नि" इत्यपि । ४ "साइगवज्जो" इत्यपि । ५ "साइग" इत्यपि पाठः । ६ "व" इत्यपि । ७ "पयडीणं" इत्यपि । ८ "मुत्तुं सतरुत्तरसयस्सा ॥" इत्यपि ।

सोलस मिच्छत्तंता पणुवीसं होइ सासणंताओ ।
तित्थयराउदुसेसा अविरइअंताउ मीसस्स ॥४६॥५१॥
अविरयअंताओ दस विरया[1]विरयंतया उ चत्तारि ।
छच्चेव पमत्तंता एगा पुण अप्पमत्तंता ॥४७॥५२॥
दो [2]तीसं चत्तारि य, भागे भागेसु संखसण्णाए ।
चरमे य जहासंखं, अपुव्वकरणंतिया होंति ॥४८॥५३॥
संखेज्जइमे सेसे, आढत्ता बायरस्स [3]चरिमंतो ।
पंचसु एक्केक्कंता, सुहुमंता सोलस हवंति ॥४९॥५४॥
सायंतो जोगंते एत्तो परओ उ नत्थि [4]बंधो य ।
नायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अणंतो य ॥५०॥५५॥
इगयाइएसु एवं तप्पाओग्गाणमोघसिद्धाणं ।
सामित्तं नेयव्वं पयडीणं ठाणमासज्ज ॥५१॥५६॥
सत्तरिकोडाकोडी अयराणं होइ मोहणीयस्स ।
तीसं आइतिगंते वीसं नामे य गोए य ॥५७॥(प्र०)
तेत्तीसुदही आउम्मि केवला होइ एवमुक्कोसा ।
मूलपयडीण एत्तो ठिई जहन्नं निसामेह ॥५८॥(प्र०)
मूलठिईण-ऽजहन्नो सत्तण्हं साइयाइओ बंधो ।
सेसतिगे दुविगप्पो आउचउक्केवि [5]दुविकप्पो ॥५२॥५९॥
अट्ठारसपयडीणं अजहन्नो बंध चउविगप्पो य ।
[6]साईअअधुवबंधो सेसतिगे होइ बोद्धव्वो ॥५३॥६०॥
उक्कोसाणुक्कोसो [7]जहन्नमजहन्नगो य ठिइबंधो ।
[8]साईअअधुवबंधो सेसाणं होइ पयडीणं ॥५४॥६१॥
सव्वासिं पि ठिईओ सुभासुभाणंपि होंति असुभाओ ।
माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥५५॥६२॥
[9]सव्वट्ठिईणमुक्कोसगो उ उक्कोससंकिलेसेणं ।
विवरीए उ जहन्नो आउगतिगवज्जसेसाणं ॥५६॥६३॥

१ "०विरयंतियाउ" इत्यपि । २ "तीसा" इत्यपि । ३ "चरमंते" इत्यपि । ४ "बन्धोत्ति" इत्यपि । ५ "दुविगप्पो" इत्यपि । ६–८ "साइयअधुव०" इत्यपि । ७ "जहन्नमजहन्नो" इत्यपि । ९ "सव्वठिईणं उ०" इत्यपि ।

[1]सव्वुक्कोसठिईणं मिच्छादिट्ठी उ बंधओ भणिओ ।
आहारगतित्थयरं देवाउं वा वि मुत्तूणं ॥५७॥६४॥
देवाउयं पमत्तो आहारगमप्पमत्तविरओ [2]उ ।
तित्थयरं च मणुस्सो अविरयसम्मो समज्जेइ ॥५८॥६५॥
पन्नरसण्हं ठिइमुक्कोसं बंधंति मणुयतेरिच्छा ।
छण्हं सुरनेरइया ईसाणंता सुरा तिण्हं ॥५९॥६६॥
सेसाणं चउगइया ठिइ[3]मुक्कस्सं करेंति पगईणं ।
उक्कोससंकिलेसेण ईसिमहमज्झिमेणावि ॥६०॥६७॥
आहारगतित्थयरं नियट्टिअनियट्टि पुरिससंजलणं ।
बंधइ सुहुमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं ॥६१॥६८॥
छण्हमसन्नी कुणइ [4]जहन्नठिइं आउगाणमन्नयरो ।
सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो ॥६२॥६९॥
धाईणं अजहन्नोऽणुक्कोसो वेयणीयनामाणं ।
[5]अजहन्नमणुक्कोसो गोए अणुभागबंधम्मि ॥६३॥७०॥
[6]साई अणाई धुवअद्धुवो य बन्धो उ मूलपयडीणं ।
सेसंमि उ दुविगप्पो आउचउक्के वि दुविगप्पो ॥६४॥७१॥
अट्ठण्हमणुक्कोसो तेयालाणमजहन्नगो बंधो ।
णेओ हि चउविगप्पो सेसतिगे होइ दुविगप्पो ॥६५॥७२॥
उक्कोसमणुक्कोसो जहन्नमजहन्नगो [7]य अणुभागो ।
साईअद्धुवबंधो पयडीणं होइ सेसाणं ॥६६॥७३॥
सुभपयडीण विसोहीइ तिव्वमसुहाण संकिलेसेणं ।
विवरीए उ जहन्नो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥६७॥७४॥
बायालंपि पसत्था विसोहिगुणउक्कडस्स तिव्वाओ ।
बासीइमप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥६८॥७५॥
आयवनामुज्जोयं माणुसतिरियाउगं पसत्थासु ।
मिच्छस्स हुंति तिव्वा सम्मदिट्ठिस्स सेसाओ ॥६९॥७६॥

---

१ 'सव्वोक्कोस०' इत्यपि । २ 'य' इत्यपि । ३ "मुक्कोसं करंति" इत्यपि । ४ "जहन्न' ठिइमा०" इत्यपि । ५ "अजहन्नमणु०" इत्यपि । ६ 'साइअणाई" इत्यपि । ७ "वि" इत्यपि ।

देवाउमप्पमत्तो तिव्वं खवगा [1]करिंति बत्तीसं ।
बन्धंति तिरयमणुया एक्कारस मिच्छभावेणं ॥७०॥७७॥
पंच सुरसम्मदिट्ठी सुरमिच्छो तिन्नि जयइ पयडीओ ।
उज्जोयं तमतमगा सुरनेरइया भवे तिण्हं ॥७१॥७८॥
सेसाणं चउगइया तिव्वणुभागं [2]करिंति पयडीणं ।
मिच्छद्दिट्ठी नियमा तिव्वकसाउक्कडा जीवा ॥७२॥७९॥
चोद्दस [3]सरागचरिमे पंचगमनियट्टि नियट्टिएक्कारं ।
सोलस मंदणुभागं संजमगुणपत्थिओ जयइ ॥७३॥८०॥
आहारमप्पमत्तो पमत्तसुद्धो उ अरइसोगाणं ।
सोलस माणुसतिरिया सुरनारगतमतमा तिन्नि ॥७४॥८१॥
एगिंदियथावरयं मंदणुभागं [4]करेंति तिगईया ।
परियत्तमाणमज्झिमपरिणामा नेरइयवज्जा ॥७५॥८२॥
आसोहम्मायावं अविरइमणुओ [5]य जयइ तित्थयरं ।
चउगइउक्कडमिच्छो पन्नरस दुवे विसोहीए ॥७६॥८३॥
सम्मद्दिट्ठी मिच्छो व अट्ठ परियत्तमज्झिमो जयति ।
परियत्तमाणमज्झिममिच्छद्दिट्ठी उ तेवीसं ॥७७॥८४॥
केवलनाणावरणं दंसणछक्कं च मोहबारसगं ।
ता सव्वघाइसन्ना हवंति मिच्छत्तवीसइमं ॥७८॥८५॥
नाणावरणचउक्कं दंसणतिग[6]मंतराइए पंच ।
पणुवीसदेसघाई संजलणा नोकसाया य ॥७९॥८६॥
अवसेसा पयडीओ अघाइया [7]घाइयाहि पलिभागा ।
ता एव पुन्नपावा सेसा पावा मुणेयव्वा ॥८०॥८७॥
आवरणदेसघायंतरायसंजलणपुरिससत्तरस ।
चउविहभावपरिणया तिविहपरिणया भवे सेसा ॥८१॥८८॥
चउपच्चएगमिच्छत्तसोलसदुपच्चया य पणतीसं ।
सेसा तिपच्चया खलु तित्थयराहारवज्जाओ ॥८२॥८९॥
पंच य [8]छत्तिन्नि छ पंच दोन्नि पंच य हवंति अट्ठेव ।
सरिराई फासंता पयडीओ आणुपुव्वीए ॥८३॥९०॥

१ "करंति" इत्यपि । २ "कुणंति" इत्यपि । ३ "सरागचरमो" इत्यपि । ४ "करंति तेगइया" इत्यपि । ५ "उ" इत्यपि । ६ "अंतराइयं" इत्यपि । ७ "घाइयाइपलि०" इत्यपि । ८ "छत्तिगछप्पंच" इत्यपि ।

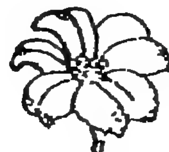
[1]अगुरुलहुग उवघायं परघा उज्जोयआयव[2]निमेणं ।
पत्तेयथिरसुभेयरनामाणि य [3]पोग्गलविवागा ॥८४॥९१॥
आऊणि भवविवागा खित्तविवागा [4]य आणुपुव्वीओ ।
अवसेसा पयडीओ जीवविवागा मुणेयव्वा ॥८५॥९२॥
एगपएसोगाढं सव्वपएसेहि [5]कम्मणो जोगं ।
बंधइ जहुत्तहेउं साईयमणाइयं वा वि ॥८६॥९३॥
पंचरसपंचवन्नेहि [6]संजुयं दुविहगंधचउफासं ।
दवियमणंतपएसं सिद्धेहि अणंतगुणहीणं ॥८७॥९४॥
आउगभागो थोवो णामे गोए समो तओ अहिओ ।
आवरणमंतराए [7]तुल्लो अहिगो य मोहे वि ॥८८॥९५॥
सव्वुवरि [8]वेयणीए भागो अहिगो [9]अ कारणं किंतु ।
सुहदुक्खकारणत्ता ठिईविसेसेण सेसाणं ॥८९॥९६॥
छण्हंपि अणुक्कोसो पएसबंधो चउव्विहो बंधो ।
सेसतिगे दुविगप्पो मोहाउ य सव्वहिं चेव ॥९०॥९७॥
तीसण्हमणुक्कोसो उत्तर[10]पयडीसु चउविहो बंधो ।
सेसतिगे दुविगप्पो[11]सेसासु य चउविगप्पो वि ॥९१॥९८॥
आउक्कस्स पएसस्स पंच मोहस्स सत्त ठाणाणि ।
सेसाणि तणुकसाओ बंधइ उक्कोसगे जोगे ॥९२॥९९॥
सुहुमनिगोयाऽपज्जत्तगस्स पढमे जहन्नगे जोगे ।
सत्तण्हं [12]तु जहन्नं आउगबंधे वि आउस्स ॥९३॥१००॥
[13]सत्तर सुहुमसरागो पंचगमनियट्टि सम्मगो नवगं ।
अजई[14]बितियकसाए देसजई तइयए जयइ ॥९४॥१०१॥
तेरस बहुप्पएसं सम्मो मिच्छो व कुणइ पयडीओ ।
आहारमप्पमत्तो सेसपएसुक्कडं मिच्छो ॥९५॥१०२॥

१ "अगुरुलहू"। २ "निम्मेणं" इत्यपि। ३ "पुग्गल०" इत्यपि। ४ "उ" इत्यपि। ५ "कम्मुणो" इत्यपि। ६ "परिणयं" इत्यपि पाठः। ७ "सरिसो" इत्यपि पाठः। ८ "वेयणीयं" इत्यपि। ९ "उ" इत्यपि। १० "॰पयडीण" इत्यपि। ११ 'सेसाणं' इत्यपि। १२ "पि जहण्णो" इत्यपि। "सतरस" इत्यपि। १४ 'बीअकसाए' इत्यपि

सन्नी उक्कडजोगी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पयरो ।
कुणइ पएसुक्कोसं जहन्नगं जाण विवरीए ॥९६॥१०३॥
थोलणजोगिअसन्नी बंधइ चउ [1]दोन्नि अप्पमत्तो उ ।
[2]पंचासंजयसम्मो भवाइ सुहुमो भवे सेसा ॥९७॥१०४॥
जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ ।
कालभवखित्तपेक्खो उदओ सविवागअविवागो ॥९८॥१०५॥
सेढिअसंखेज्जइमे जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि ।
[3]तेसिमसंखिज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो ॥९९॥१०६॥
तासिमसंखिज्जगुणा ठिईविसेसा हवंति नायव्वा ।
[4]ठिइबंधज्झवसायाणिऽसंखगुणियाणि एत्तो उ॥१००॥१०७॥
तेसिमसंखिज्जगुणा अणुभागे होंति बंधठाणाणि ।
एत्तो अणंतगुणिया कम्मपएसा मुणेयव्वा ॥१०१॥१०८॥
अविभाग पल्लिछेया[5] अणंतगुणिया [6]भवंति एत्ता उ ।
सुयपवरदिट्ठिवाए विसिट्ठ [7]मतओ परिकहिंति ॥१०२॥१०९॥
एसो बंधसमासो [8]बिंदुक्खेवेण वन्निओ कोइ ।
कम्मप्पवायसुय[9]सागरस्स णिस्संदमेत्ताओ ॥१०३॥११०॥
बंधविहाणसमासो रइओ अप्पसुयमंदमइणा उ ।
तं बंधमोक्खणिउणा पूरेऊणं[10]परिकहेंति ॥१०४॥१११॥
इय कम्मपयडिपगयं [11]संखेवुद्दिट्ठ णिच्छियमहत्थं ।
जो[12]उवजुज्जइ बहुसो सो णाहिति बंधमोक्खट्ठं ॥१०५॥११२॥

---

१ "दुन्नि" इत्यपि । २ "पंच असं०" इत्यपि । ३ "तेसि असं०" इत्यपि । ४ "ठिइबन्धज्झवसायट्ठाणाणि असंखगुणिआणि ॥" इत्यपि । ५ "पलिच्छेआ" इत्यपि । ६ "हवन्ति इत्तो उ" इत्यपि । ७ "०मयओ परिकहन्ति" इत्यपि । ८ "पिण्डक्खेवेण वण्णिओ" इत्यपि । ९ "०सायरस्स निस्संदमित्तो उ" इत्यपि । १० "परिकहन्तु" इत्यपि । ११ "संखेवुद्दिट्ठनिच्छयमहत्थं" इत्यपि । १२ "उ पउंजइ बहुसो सो नाहिइ बन्धमोक्खत्थ" ॥ इत्यपि ।



* सप्ततिकाभिधः षष्ठः कर्मग्रन्थः

सिद्धपएहि महत्थं, बंधोदयसंत [1]पयडिठाणाणं ।
[2]वुच्छं सुण संखेवं, [3]नीसंदं दिट्ठिवायस्स ॥ १ ॥
कइ बंधंतो वेयइ, कइ कइ वा [4]संतपयडिठाणाणि ।
मूलुत्तर[5] पगईसु, भंगविगप्पा [6]उ बोद्धव्वा ॥ २ ॥
अट्ठविहसत्तछब्बंध [7]एसु, अट्ठेव उदय [8]संतंसा ।
एगविहे तिविगप्पो, एगविगप्पो अबंधंमि ॥ ३ ॥
सत्तट्ठबंध अट्ठुदय-संत तेरससु जीवठाणेसु ।
एगंमि पंच भंगा, दो भंगा [9]हुंति केवलिणो ॥ ४ ॥
अट्ठसु एगविगप्पो, छस्सु वि गुणसन्निएसु दुविगप्पो ।
पत्तेअं पत्तेअं, बंधोदयसंतकम्माणं ॥ ५ ॥
पंच नव [10]दुन्नि अट्ठा--वीसा चउरो तहेव बायाला ।
[11]दुन्नि [12]अ पंच य भणिया, पयडीओ आणुपुव्वीए ॥ ६ ॥
(प्रक्षेपगाथा)
बंधोदयसंतंसा, नाणावरणंतराइए पंच ।
बंधोवरमेवि [13]उदय, संतंसा हुंति पंचेव ॥ ६ ॥ ७ ॥

---

* सप्ततिकाख्यस्य षष्ठस्य कर्मग्रन्थस्य मूलगाथाः सप्ततिकाचूर्णिवेकसप्ततिसङ्ख्याका गृहीताः सन्ति । ताश्चात्रा-ऽङ्कतो दर्शिताः तथा-ऽन्या अपि प्रक्षिप्तगाथा मुद्रितपुस्तकेपूपलभ्यन्ते ता अप्यत्र संगृहीताः, ताभिः प्रक्षिप्तगाथाभिः सह मूलगाथानां क्रमाङ्क एकनवतिसङ्ख्यान्तः प्रदर्शितः स च मुद्रित-पुस्तकेषु दृश्यते । हस्तलिखितप्रतौ पुनरेकनवतिगाथोक्तक्रमानुसारेण ६६-६७ तमगाथयोर्मध्ये द्वे गाथे अधिकतया स्तः, ६२ तमगाथा नास्ति, ६८-६९ तमगाथयोर्मध्येऽधिकतयैकगाथा-ऽस्ति, तेन हस्तलिखित-प्रतौ सर्वा गाथास्त्रिनवतिर्भवति । मुद्रितपुस्तकापेक्षया हस्तलिखितप्रतौ २१--२ तमगाथयोः, २७-२८ तमगाथयोः, ५५-५६ तमगाथयोश्च क्रमव्यत्ययोऽस्ति । ८६ तमगाथा च भिन्नैवास्ति । तथा श्रीमन्म-लयगिरिपादकृतवृत्तावपि चूर्णिवन्मूलगाथाः सन्ति, केवलं तत्र २४-२५ तमगाथयोर्मध्ये भाष्यसत्का-ऽशीतितमा गाथा २५ तमगाथातयाऽधिका प्रक्षिप्ता विद्यते, तेन तत्र सर्वा गाथा द्वासप्ततिर्भवति ।

१. "पगइ" इति वा "पगडि" इति वा । २. "वोच्छं" इत्यपि । ३. "निस्संदं" इत्यपि । ४ "संति पगडिठाणाणि" इति वा, "पयडिसंतठाणाणि" इति वा "पयइठाणकम्मंसा" इति वा "पयडिठाणसंतंसा" इति वा पाठः । ५. "पयडीसु" इति वा, "पयडीणं" इति वा पाठः । ६. "उ बोधव्वा" इति वा "मुणेयव्वा" इति वा पाठः । ७. "०गेसु" इति वा । ८ "संताइं" इत्यपि । ९. "होंति" इत्यपि । १०-११. "दोन्नि" इत्यपि । १२ "य" इत्यपि । १३. तहा उदसंता होंति पंचेव ॥६॥' इति वा, "तहा उदसंता हुंति पञ्चेव ॥६॥" इति वा, "पुणो पञ्चेव य उदयसंतंसा ॥७॥ इति वा ।

बंधस्स य संतस्स य, [1]पगइट्ठाणाइँ तिण्णि तुल्लाइं ।
[2]उदयट्ठाणाइँ दुवे, चउ पणगं दंसणावरणे ॥ ७ ॥ ८ ॥
बीआवरणे नवबंध[3]एसु, चउपंचउदय नवसंता ।
छच्चउबंधे चेवं, चउबंधुदए छलंसा य ॥ ८ ॥ ९ ॥
उवरयबंधे चउ [4]पण, नवंस चउरुदय [5]छच्च चउ संता ।
वेअणिआउयगोए, विभज्ज मोहं परं [6]वुच्छं ॥ ९ ॥ १० ॥
गोअंमि सत्त भंगा, अट्ठ य भंगा हवंति वेअणिए ।
पण नव नव पण भंगा, आउचउक्के वि कमसो [7]उ ॥११॥(प्र०)
बावीस [8]इक्कवीसा, [9]सत्तरसं तेरसेव नव पंच ।
चउ तिग दुगं च [10]इक्कं, बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥१०॥१२॥
[11]एगं व दो व चउरो, एत्तो [12]एगाहिआ दसुक्कोसा ।
ओहेण मोह[13]णिज्जे, उदय[14]ट्ठाणाणि नव हुंति ॥११॥१३॥
[15]अट्ठय-सत्तय-छ-च्चउ-तिग-दुग-[16]एगाहिआ भवे वीसा ।
तेरस [17]बारिक्कारस, [18]इत्तो पंचाइ [19]एगूणा ॥१२॥१४॥
संतस्स[20]पयडिठाणाणि, ताणि मोहस्स[21]हुंति पन्नरस ।
बंधोदयसंते पुण, भंग[22]विगप्पा [23]बहू जाण ॥१३॥१५॥
छब्बावीसे चउ इगवीसे, सत्तरस तेरसे दो दो ।
[24]नवबंधगे वि[25]दुण्णि उ, [26]इक्किक्कमओ परं भंगा ॥१४॥१६॥
दस बावीसे नव [27]इगवीसे, सत्ताइ उदय[28]कम्मंसा ।
छाई नव सत्तरसे, तेरे पंचाइ अट्ठेव ॥१५॥१७॥

---

१. "पगईठाणाणि तिन्नि तुल्लाणि" इति वा, "पगडिट्ठाणाणि तिन्नि सरिसाणि ।" इति वा । २. "उदयट्ठाणाणि" इति वा । ३. "०गेसु" इति वा । ४. 'पंच उदय नवसंत छच्च चउजुयलं ।" इत्यपि पाठः । ५. "छ चउसंताइं" इत्यपि । ६. "वोच्छं" इति वा । ७. "य" इत्यपि । ८. "एक्कवीसा" इत्यपि । ९ "सत्तरसा" इत्यपि । १०. "एक्कं" इति वा 'एगं" इति वा । ११. "एक्कं" इति वा, "एक्को" इति वा, "एको" इति वा, "एगं च दो य चउरो" इति वा । १२. "एकाहिया" इत्यपि । १३. "०णिज्जा" इति वा । १४. "०ट्ठाणा नव हवंति" इत्यपि । १५ "अट्ठगसत्तग" इति । १६. "एक्का०" इत्यपि । १७ "बारेक्कारस" इति वा "बारेक्कारा" इति वा । १८ "एत्तो" इति वा । १९. "एक्कूणा" इत्यपि, "एकूणा" इत्यपि वा । २०. "पगडि०" इति वा, "पगइ०" इति वा, "पगइठाणाइँ" इति वा । २१. 'होंति" इति वा । २२. "०विगप्पे" इति वा । २३. "बहुं" इत्यपि । २४. "पाव०" इत्यपि । २५. "दोन्नि" इत्यपि । २६. "एक्केक्क०" इत्यपि । २७. "इक्कवीस" इति वा "एगवीस" इति वा । २८ "ठाणाणि" इति वा "०ठाणाइं" इति वा ।

* सप्ततिकाभिधः षष्ठः कर्मग्रन्थः

सिद्धपएहिं महत्थं, बंधोदयसंत [1]पयडिठाणाणं ।
[2]वुच्छं सुण संखेवं, [3]नीसंदं दिट्ठिवायस्स ॥ १ ॥
कइ बंधंतो वेयइ, कइ कइ वा [4]संतपयडिठाणाणि ।
मूलुत्तर[5]पगईसुं, भंगविगप्पा [6]उ बोद्धव्वा ॥ २ ॥
अट्ठविहसत्तछब्बंध [7]एसु, अट्ठेव उदय [8]संतंसा ।
एगविहे तिविगप्पो, एगविगप्पो अबंधंमि ॥ ३ ॥
सत्तट्ठबंध अट्ठुदय-संत तेरससु जीवठाणेसु ।
एगंमि पंच भंगा, दो भंगा [9]हुंति केवलिणो ॥ ४ ॥
अट्ठसु एगविगप्पो, छस्सु वि गुणसन्निएसु दुविगप्पो ।
पत्तेअं पत्तेअं, बंधोदयसंतकम्माणं ॥ ५ ॥
पंच नव [10]दुन्नि अट्ठा--वीसा चउरो तहेव बायाला ।
[11]दुन्नि [12]अ पंच य भणिया, पयडीओ आणुपुव्वीए ॥ ६ ॥
(प्रक्षेपगाथा)
बंधोदयसंतंसा, नाणावरणंतराइए पंच ।
बंधोवरमेवि [13]उदय, संतंसा हुंति पंचेव ॥ ६ ॥ ७ ॥

---

* सप्ततिकाख्यस्य षष्ठस्य कर्मग्रन्थस्य मूलगाथाः सप्ततिकाचूर्णावेकसप्ततिसङ्ख्याका गृहीताः सन्ति । ताश्चात्रा-ऽङ्कतो दर्शिताः तथा-ऽन्या अपि प्रक्षिप्तगाथा मुद्रितपुस्तकेपूपलभ्यन्ते ता अप्यत्र संगृहीताः, ताभिः प्रक्षिप्तगाथाभिः सह मूलगाथानां क्रमाङ्क एकनवतिसङ्ख्यान्तः प्रदर्शितः स च मुद्रित-पुस्तकेषु दृश्यते । हस्तलिखितप्रतौ पुनरेकनवतिगाथोक्तक्रमानुसारेण ६६-६७ तमगाथयोर्मध्ये द्वे गाथे अधिकतया स्तः, ६२ तमगाथा नास्ति, ६८-६९ तमगाथयोर्मध्येऽधिकतयैकगाथा-ऽस्ति, तेन हस्तलिखित-प्रतौ सर्वा गाथास्त्रिनवतिर्भवति । मुद्रितपुस्तकापेक्षया हस्तलिखितप्रतौ २१--२ तमगाथयोः, २७-२८ तमगाथयोः, ५५-५६ तमगाथयोश्च क्रमव्यत्ययोऽस्ति । ८६ तमगाथा च भिन्नैवास्ति । तथा श्रीमन्म-लयगिरिपादकृतवृत्तावपि चूर्णिवन्मूलगाथाः सन्ति, केवलं तत्र २४-२५ तमगाथयोर्मध्ये भाष्यसत्का-ऽशीतितमा गाथा २५ तमगाथातयाऽधिका प्रक्षिप्ता विद्यते, तेन तत्र सर्वा गाथा द्वासप्ततिर्भवति ।

१. "पगइ" इति वा "पगडि" इति वा । २. "वोच्छं" इत्यपि । ३. "निस्संदं" इत्यपि । ४ "संति पगडिठाणाणि" इति वा. "पयडिसंतठाणाणि" इति वा "पयइठाणकम्मंसा" इति वा "पयडिठाणसंतंसा" इति वा पाठः । ५. "पयडीसुं" इति वा, "पयडीणं" इति वा पाठः । ६. "उ बोधव्वा" इति वा "मुणेयव्वा" इति वा पाठः । ७. "०गेसु" इति वा । ८. "संताइं" इत्यपि । ९. "होंति" इत्यपि । १०-११. "दोन्नि" इत्यपि । १२ "य" इत्यपि । १३. तहा उद-सत्ता होंति पंचेव ॥६॥' इति वा, 'तहा उदसंता हुंति पञ्चेव ॥६॥" इति वा, "पुणो पञ्चेव य उदयसंतंसा ॥७॥ इति वा ।

बंधस्स य संतस्स य, [1]पगइट्ठाणाइँ तिण्णि तुल्लाइं ।
[2]उदयट्ठाणाइँ दुवे, चउ पणगं दंसणावरणे ॥ ७ ॥ ८ ॥
बीआवरणे नवबंध[3]एसु, चउपंचउदय नवसंता ।
छच्चउबंधे चेवं, चउबंधुदए छलंसा य ॥ ८ ॥ ९ ॥
उवरयबंधे चउ [4]पण, नवंस चउरुदय [5]छच्च चउ संता ।
वेअणिआउयगोए, विभज्ज मोहं परं [6]वुच्छं ॥ ९ ॥ १० ॥
गोअंमि सत्त भंगा, अट्ठ य भंगा हवंति वेअणिए ।
पण नव नव पण भंगा, आउचउक्के वि कमसो [7]उ ॥ ११ ॥ (प्र०)
बावीस [8]इक्कवीसा, [9]सत्तरमं तेरसेव नव पंच ।
चउ तिग दुगं च [10]इक्कं, बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥ १० ॥ १२ ॥
[11]एगं व दो व चउरो, एत्तो [12]एगाहिआ दसुक्कोसा ।
ओहेण मोह[13]णिज्जे, उदय[14]ट्ठाणाणि नव हुंति ॥ ११ ॥ १३ ॥
[15]अट्ठय-सत्तय-छ-च्चउ-तिग-दुग-[16]एगाहिआ भवे वीसा ।
तेरस [17]बारिक्कारस, [18]इत्तो पंचाइ [19]एगूणा ॥ १२ ॥ १४ ॥
संतस्स[20]पयडिठाणाणि, ताणि मोहस्स[21]हुंति पन्नरस ।
बंधोदयसंते पुण, भंग[22]विगप्पा [23]बहू जाण ॥ १३ ॥ १५ ॥
छब्बावीसे चउ इगवीसे, सत्तरस तेरसे दो दो ।
[24]नवबंधगे वि[25]दुण्णि उ, [26]इक्किक्कमओ परं भंगा ॥ १४ ॥ १६ ॥
दस बावीसे नव [27]इगवीसे, सत्ताइ उदय[28]कम्मंसा ।
छाई नव सत्तरसे, तेरे पंचाइ अट्ठेव ॥ १५ ॥ १७ ॥

---

१. "पगईठाणाणि तिन्नि तुल्लाणि" इति वा, "पगडिट्ठाणाणि तिन्नि सरिसाणि ।" इति वा । २. "उदयट्ठाणाणि" इति वा । ३. "०गेसु" इति वा । ४. 'पंच उदय नवसंत छच्च चउजुयलं ।'' इत्यपि पाठः । ५ "छ चउसंताइं'' इत्यपि । ६. "वोच्छं" इति वा । ७. "य" इत्यपि । ८. "एक्कवीसा" इत्यपि । ९. "सत्तरसा" इत्यपि । १०. "एक्कं" इति वा "एगं" इति वा । ११. "एक्कं" इति वा, "एक्को" इति वा, "एको" इति वा, "एगं च दो य चउरो" इति वा । १२. "एक्काहिया" इत्यपि । १३. "०णिज्जा" इति वा । १४. "०ट्ठाणा नव हवंति" इत्यपि । १५. "अट्ठगसत्तग" इति । १६. "एक्का०" इत्यपि । १७ "बारेक्कारस" इति वा "बारेक्कारा" इति वा । १८. "एत्तो" इति वा । १९. "एक्कूणा" इत्यपि, "एकूणा" इत्यपि वा । २०. "पगडि०" इति वा, "पगइ०" इति वा, "पगइठाणाइँ" इति वा । २१. 'होंति" इति वा । २२. "०विगप्पे" इति वा । २३. "बहुं" इत्यपि । २४. "पात्र०" इत्यपि । २५. "दोन्नि' इत्यपि । २६. "एक्केक्क०" इत्यपि । २७. "इक्कवीस" इति वा "एगवीस" इति वा । २८ "ठाणाणि" इति वा "०ठाणाइं" इति वा ।

चत्तारि [1]आइ [2]नवबंध [3]एसु [4]उक्कोस सत्तमुदयंसा ।
पंचविहबंधगे पुण, उदओ [5]दुण्हं मुणेअव्वो ॥१६॥१८॥

[6]इत्तो चउ [7]बंधाई, [8]इक्किक्कुदया हवंति सव्वेवि ।
बंधोवरमे वि तहा, उदयाभावे वि [9]वा [10]हुज्जा ॥१७॥१९॥

[11]इक्कग छक्किक्कारस, दस सत्त चउक्क [12]इक्कगं चेव ।
एए चउवीसगया, [13]चउवीस दुगेक्कमेक्कारा ॥१८॥२०॥

[14][15]नवतेसीइसएहिं, उदय[15]विगप्पेहि मोहिआ जीवा ।
[16]अउणुत्तरिसीआला, पय[17]विंदसएहिं विन्नेआ ॥२०॥२१॥

नवपंचा[18]णउअसए, उदयविगप्पेहिं [19]मोहिआ जीवा ।
[20]अउणुत्तरि एगुत्तरि, पयविंदसएहिं विन्नेआ ॥१९॥२२॥

[21]तिन्नेव य बावीसे, इगवीसे अट्ठवीस [22]सत्तरसे ।
छच्चेव तेर[23]नव-बंध[24]एसु पंचेव [25]ठाणाणि ॥२१॥२३॥

पंचविहचउविहेसुं, छछक्क सेसेसु जाण पंचेव ।
[26]पत्तेअं, पत्तेअं चत्तारि [27]अ बंध[28]वुच्छेए ॥२२॥२४॥

दसनवपन्नरसाइं, बंधोदयसंत[29]पयडिठाणाणि ।
[30]भणिआणि मोहणिज्जे, [31]इत्तो [32]नामं परं [33]वुच्छं ॥२३॥२५॥

---

१ "०साइ" इति वा । २ "णव०" इति वा । ३ "०गेसु" इति वा । ४ 'सत्तुक्कमेण उदयंसा" इति वा "उक्कोससत्त उदयसा" इति वा । ५. "दोण्हं" इति वा । ६ 'एत्तो' इति वा । ७ "बंधादी" इत्यपि । ८ "एक्कुक्कु" इत्यपि, "इक्केक्कु०" इत्यपि वा । ९. "ता होज्जा ॥१९।" इति वा । १०. "होज्जा" इत्यपि । ११. 'एक्का छक्केक्कारस" इत्यपि । १२. "एक्कगा" इति वा, "एक्कग" इति वा । १३. 'चउवीसदुगेक्कमिक्कारा ॥१८॥" इत्यपि, "चउवीस दुगिक्कमिकारा ॥२०॥" इत्यपि वा, "बार दुगिक्कंमि इक्कारा ॥२०॥" इत्यपि वा । १४. इयं गाथा हस्तलिखितप्रतौ द्वाविंशतितमी द्वाविंशतितमी चैकविंशतितमीति व्यत्ययः । १५ "विगप्पेहिं मोहिया" इत्यपि । १६. "अउणतरिसीयाला" इत्यपि । १७ "०वंद०" इत्यपि । १८. '०णउयसए" इति वा, '०णउइसएहुदय०" इति वा, "०णुयसएहिं" इति वा । १९. "मोहिया" इत्यपि । २०. "अउणत्तरि" इति वा, "अउणत्तरि एगुत्तरि" इति वा । २१. "तिण्णेव उ" इति वा, "तिन्नेव उ" इति वा । २२. "कम्मंसा । सत्तरसे छस्संते तेरस नवबंधए पच ॥२३॥" इति हस्तलिखितप्रतौ । २३ "णव०" इति वा । २४ "०गेसु" इति वा । २५. "ठाणाइं ॥२१॥" इति वा २६ "पत्तेयं पत्तेयं" इत्यपि । २७ "य" इति वा, 'उ' इति वा । २८ "वोच्छेए" इत्यपि । २९. "०पगइ०" इति वा, "०पयइ०" इत्यपि वा । ३०. "भणियाइँ" इत्यपि ३१. "एत्तो" इति वा । ३२ "णामं" इति वा । ३३ "वोच्छं" इत्यपि ।

तेवीस [1]पणवीसा, छव्वीसा अट्ठवीस [2]गुणतीसा ।
[3]तीसेगतीस [4]मेगं, बंध [5]ट्ठाणाणि नामस्स ॥२४॥२६॥
[6]चउ पणवीसा सोलस नव बाणउईसया य अडयाला ।
एयालुत्तरछाया--लसया [7]इक्किक्क बंधविही ॥२७॥(प्र०)
वीसिगवीसा चउवीसग्गा उ एगाहिआ य इगतीसा ।
उदयट्ठाणाणि भवे नव अट्ठ य [9]हुंति नामस्स ॥२५॥२८॥
[10]इक्क बिआलिक्कारस, [11]तित्तीसा छस्सयाणि [12]तित्तीसा ।
बारससत्तरससयाण -हिगाणि बिपंचसीईहिं ॥२६॥२९॥
अउणत्ती[13]सिक्कारसयाणिहिअसतरपंचसट्ठीहिं ।
[14]इक्किक्कगं च वीसा-दट्ठुदयंतेसु उदयविही ॥२७॥३०॥
तिदुनउई [15]गुणनउई, [16]अडसी छलसी असीइ [17]गुणसीई ।
[18]अट्ठयछप्पन्नत्तरि, नव अट्ठ य [19]नामसंताणि ॥२८॥३१॥
अट्ठ य बारस बारस, बंधोदय[20]संतपयडि[21]ठाणाणि ।
ओहेणाएसेण य, जत्थ जहासंभवं [22]विभजे ॥२९॥३२॥
नव [23]पणगोदयसंता, तेवीसे [24]पन्नवीस छव्वीसे ।
अट्ठ चउरट्ठवीसे, नव [25]सगि गुणतीस तीसंमि ॥३०॥३३॥
[26]एगेगमेगतीसे, एगे एगुदय अट्ठ संतंमि ।
उवरयबंधे दस दस, वेअगसंतंमि [27]ठाणाणि ॥३१॥३४॥

---

१. "पन्नवीसा" इत्यपि । २ "गुणतीसा" इति, "उगुतीसा" इत्यपि वा । ३ 'तीसिक्क०" इत्यपि, "तीसेक्क०" इत्यपि । ४ "०मेक्कं" इत्यपि । ५. "०ट्ठाणाई" इत्यपि । ६. इयं गाथा मूलगाथातया चूर्णौ नास्ति, श्रीमन्मलयगिरिविहितवृत्त्युपेतसप्ततिकायां चाऽस्ति । २७-२८ तमगाथयोर्हस्तलिखितप्रतौ व्यत्ययोऽस्ति । २७ तमगाथास्थानेऽष्टाविंशतितमी गाथा, अष्टाविंशतितम्याः स्थाने सप्तविंशतितमीति । ७ "एक्केक्क०"इत्यपि । ८. "०गाइ इगतीसगंत एगहिया" इत्यपि । "०गादि इगतीसगं ति एगहिया ।" इत्यपि, "०गाति एगहिया उ इगतीसा ।" इत्यपि, "०गाइ एगाहिया उ इगतीसा" इत्यपि वा । ९ "होंति" इत्यपि । १०. "एगबियालेक्कारस" इत्यपि, एगबियारेक्कारस" इत्यपि वा । ११-१२ "तेत्तीसा" इत्यपि । १३ "०सेक्कारससयऽहिगसत्तरस पंच०" इत्यपि, "०सेक्कारससयाहिगा सतरसपंच०" इत्यपि, "सेक्कारससयाणहिगसतरपंच०" इत्यपि वा । १४. "इक्केक्कगं" इत्यपि, "एक्केक्कगं" इत्यपि वा । १५. "इगु०" इत्यपि, 'उगु०" इत्यपि वा । १६. "अट्ठच्छलसी" इत्यपि, "अट्ठयच्छलसी" इत्यपि वा । १७. "उगु०" इत्यपि । १८. 'अट्ठयछप्पणत्तरि" इत्यपि, "अट्ठच्छप्पणत्तरि" इत्यपि । १९ "णाम०" इत्यपि । २०. "सत्तपगडिठाणाइं" इत्यपि । २१. "०ठाणाइं" इत्यपि । २२. "विभए" इत्यपि । २३. "पंचोदय०" इत्यपि, "पंच उदय०" इत्यपि । २४. "पण्णवीस" इत्यपि । २५. "सत्तुगतीस०" इत्यपि, "सत्तगुतीस" इत्यपि, "सत्तिगुतीस०" इत्यपि वा । २६. "एगेगं इगतीसे" इत्यपि । २७ "ठाणाइं" इत्यपि ।

तिविगप्पपगइठाणेहिं, जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु ।
भंगा पउंजियव्वा, जत्थ जहा संभवो [1]भवइ ॥३२॥३५॥
तेरससु जीवसंखेवएसु, नाणंतरायतिविगप्पो ।
[2]इक्कंमि तिदुविगप्पो, करणं पइ [3]इत्थ अविगप्पो ॥३३॥३६॥
तेरे नव चउ पणगं, नव संतेगंमि भंगमिक्कारा ।
वेअणिआउगगोए, विभज्ज मोहं परं [4]वुच्छं ॥३४॥३७॥
पज्जत्तगसन्नि[5]अरे, अट्ठ चउक्कं च [6]वेअणियभंगा ।
[7]सत्त य तिगं च गोए, [8]पत्तेअं जीवठाणेसु ॥३८॥(प्र०)
पज्जत्ताऽपज्जत्तग, समणे पज्जत्तअमण सेसेसु ।
अट्ठावीसं दसगं, नवगं पणगं च आउस्स ॥३९॥(प्र०)
अट्ठसु पंचसु एगे, एग दुगं दस य मोहबंधगए ।
तिग चउ नव उदयगए, तिग तिग पन्नरस संतंमि ॥३५॥४०॥
पण दुग पणगं पण चउ, पणगं पणगा हवंति तिन्नेव ।
पण छप्पणगं छच्छ,-प्पणगं अट्ठट्ठ दसगं ति ॥३६॥४१॥
सत्तेव अपज्जत्ता, सामी [9]सुहुमा य बायरा चेव ।
विगलिंदिआ [10]उ तिन्नि उ, तह य असन्नी [11]अ सन्नी [12]अ ॥३७॥४२॥
नाणंतराय तिविहमवि, दससु दो [13]हुंति दोसु ठाणेसु ।
मिच्छा[14]साणे [15]बीए, नव चउ पण नव य [16]संतंसा ॥३८॥४३॥
[17]मिस्साइ [18]नियट्टीओ, छ च्चउ पण नव य संतकम्मंसा ।
चउबंध तिगे चउपण, नवंस दुसु जुअल[19]छस्संता ॥३९॥४४॥
उवसंते चउ पण नव, खीणे चउरुदय छच्च चउ[20]संता ।
वेअणिआउअगोए, विभज्ज मोहं परं [21]वुच्छं ॥४०॥४५॥
चउ छस्सु दुन्नि सत्तसु, एगे चउगुणिसु वेअणिअभंगा ।
गोए पण चउ दो तिसु, एगट्ठसु [22]दुन्नि इक्कंमि ॥४६॥(प्र०)

---

१. "होइ" इत्यपि । २. "एक्कम्मि" इत्यपि । ३. "एत्थ" इत्यपि । ४. "वोच्छं" इत्यपि । ५ "०यरे" इत्यपि । ६. "वेय०" इत्यपि । ७. "सत्तग०" इत्यपि । ८ "पत्तेयं" इत्यपि । ९ "तह सुहुमबायरा०" इत्यपि । १०. "य" इत्यपि । ११ १२. "य" इत्यपि । १३ "होंति" इत्यपि । १४. "सासण" इत्यपि । १५. "बिइए" इत्यपि । १६ "सत्तंसा" इत्यपि । १७. "मीसाइ" इत्यपि । १८. "नियट्टीए" इत्यपि । १९. "छस्संतं" इत्यपि । २०. "संतं" इत्यपि । २१. "वोच्छं" इत्यपि । २२. "दोन्नि" इत्यपि ।

अट्ठ[1]च्छाहिगवीसा, सोलस वीसं च [2]बारस छ दोसु ।
दो चउसु तीसु इक्कं, [3]मिच्छाइसु आउए भंगा ॥४७॥(प्र०)
गुणठाणएसु अट्ठसु, इक्किक्कं मोह [4]बंधगाणं तु ।
[5]पंच अनिअट्टिठाणे, बंधोवरमो परं तत्तो ॥४१॥४८॥
सत्ताइ दस उ मिच्छे, सासायणमीसए [6]नवुक्कोसा ।
छाई [7]नव उ अविरए, देसे पंचाइ अट्ठेव ॥४२॥४९॥
विरए खओवसमिए, चउराई सत्त छच्चऽपुव्वंमि ।
[8]अनिअट्टिबायरे पुण, [9]इक्को व दुवे व उदयंसा ॥४३॥५०॥
एगं सुहुमसरागो, वेएइ अवेअगा भवे सेसा ।
भंगाणं च पमाणं, पुव्वुद्दिट्ठेण नायव्वं ॥४४॥५१॥
[10]इक्क छडिक्कारिक्का-रसेव इक्कारसेव [11]नव तिन्नि ।
एए चउवीसगया, बार दुगे पंच [12]इक्कंमि ॥४५॥५२॥
बारसपणसट्ठिसया, उदयविगप्पेहिँ [13]मोहिआ जीवा ।
चुलसीई सत्तुत्तरि, पय[14]विंदसएहिँ [15]विन्नेआ ॥५३॥(प्र०)
अट्ठग चउ चउ चउरट्ठगा य, चउरो [16]अ हुंति चउवीसा ।
मिच्छाइअपुव्वंता, बारस पणगं च [17]अनिअट्टी ॥५४॥(प्र०)
[18]जोगोवओगलेसा,-इएहिँ गुणिआ हवंति [19]कायव्वा ।
जे जत्थ [20]गुणट्ठाणे, हवंति ते तत्थ गुणकारा ॥४६॥५५॥
अट्ठट्ठी बत्तीसं, बत्तीसं सट्ठिमेव [21]बावन्ना ।
[22]चोआल दोसु वीसा, [23]विअ मिच्छमाईसु [24]सामन्नं ॥५६॥(प्र०)

---

१. "च्छाहिय०" इत्यपि । २. "बार छ दोसु" इत्यपि । ३. "मिच्छाइसु आउगे" इत्यपि । ४. "०बंधठाणं" इत्यपि । ५. 'पंचानि०" इत्यपि । ६. "पावु०" इत्यपि । ७. "णव" इत्यपि । ८. "अणि०' इत्यपि । ९. 'एक्को" इत्यपि । १०. "एक्कछक्केक्कारसेव एक्कारसेव" इत्यपि । ११. "णव" इत्यपि । १२. "एक्कम्मि" इत्यपि । १३. "मोहिया" इत्यपि । १४. "०बंधसएहिँ" इत्यपि । १५ "विन्नेया" इत्यपि । १६. 'य" इत्यपि, "य होंति" इत्यपि वा । १७. "अनियट्टे" इत्यपि, "अणियट्टे" इत्यपि वा । १८ ५५-५६ तमगाथयोर्हस्तलिखितप्रतौ व्यत्ययोऽस्ति । १९. "नायव्वा" इत्यपि । २०. "गुणट्ठाणेसु हुंति" इत्यपि । "गुणट्ठाणेसु होंति" इत्यपि । २१. "बावण्णा' इत्यपि । २२. "चोयालु" इत्यपि । "चोयालं चोयलं बीसा विय मिच्छमाईसु ॥" इत्यपि । २३. "मिच्छामाईसु" इत्यपि । २४ "सामण्णं" इत्यपि ।

[1]तिन्नेगे एगेगं, तिग मीसे पंच [2]चउसु तिगऽपुव्वे ।
[3]इक्कार बायरंमि उ, सुहुमे चउ तिन्नि उवसंते ॥४७॥५७॥
[4]छन्नव छक्कं तिग सत्त, दुगं दुग तिग दुगं ति अट्ठ चउ ।
दुग[5]छच्चउदुगपणचउ, चउदुगचउपणगएगचऊ ॥४८॥५८॥
एगेगमट्ठ एगे- गमट्ठ छउमत्थकेवलिजिणाणं ।
एग चऊ एग चऊ, अट्ठ चऊ दु छक्कमुदयंसा ॥४९॥५९॥
चउ [6]पणवीसा सोलस, नव चत्ताला सया य बाणउई ।
बत्तीसुत्तरछायाल-सया मिच्छस्स बंधविही ॥६०॥(प्र.)
अट्ठ [7]सया चउसट्ठी, बत्तीससयाइँ सासणे भेआ ।
अट्ठावीसाईसुं, सव्वाणऽट्ठहिग [8]छन्नउई ॥६१॥(प्र.)
[9]इगचत्तिगार बत्तीस, छसय इगतीसिगारनवनउई ।
सतरिगसि गुतीसचउद इगारचउसट्ठि मिच्छुदया ॥६२॥(प्र.)
बत्तीस [10]दुन्नि अट्ठय बासीइसया य पंच नव उदया ।
[11]बारहिआ तेवीसा, [12]बावन्निक्कारस सया य ॥६३॥(प्र.)
दो छक्कट्ठ चउक्कं, पण [13]नव इक्कार छक्कगं उदया ।
[14]नेरइआइसु [15]सत्ता, ति पंच इक्कारस चउक्कं ॥५०॥६४॥
[16]इग विगलिंदिअ सगले, पण पंच य अट्ठ बंधठाणाणि ।
पण [17]छक्किक्कारुदया, पण पण बारस य संताणि ॥५१॥६५॥
[18]इअ कम्मपगइठाणाणि, सुट्ठु बंधुदय संतकम्माणं ।
[19]गइआइएहिं अट्ठसु, [20]चउप्पयारेण नेयाणि ॥५२॥६६॥[21]

---

१. तिण्णगे" इत्यपि । २. "अयमेव पाठः समीचीनोऽस्ति । तथाऽप्यत्र चूर्णिकारैः टीकाकृद्भिश्च "चउसु नियट्टिए तिन्नि" इति पाठो विधृतः । हस्तलिखितप्रतौ पुनः "पंच" इतिशब्दो नास्ति तथा "चउसु पुण नियट्टितिगं" इति पाठ उपलभ्यते । ३. "एक्कार बायरम्मी" इत्यपि । ४. "छण्णव" इत्यपि । ५ "छक्क चऊ . पणेगचऊ ॥५८॥" इत्यपि । ६ "पणु०" इत्यपि । ७. "य सय चोवट्ठिं बत्तीससया य" इत्यपि । ८ "छण्णउई" इत्यपि । ९. इयं गाथा हस्तलिखितप्रतौ नास्ति मुद्रितपुस्तकेषूपलभ्यते । १०. "दोन्नि" इत्यपि । ११ "बारहिगा" इत्यपि । १२. "बावन्ने०" इत्यपि । १३. "नवगेक्कार" इत्यपि । "नवएक्कार" इत्यपि वा । १४ "०याइ८" इत्यपि । १५ "संता" इत्यपि । १६ "इगि" इत्यपि । १७ "छक्के०" इत्यपि । १८ "इय कम्मपगडि०" इत्यपि, "इय कम्मपगइठाणाइँ" इत्यपि । १९ "गइयाइएसु" इत्यपि, "गइयाइएहिँ" इत्यपि । २० "चउप्पगारेण" इत्यपि ।

२१ "गइइंदिए य काए जोए वेए कसायनाणे य । संजमदंसणलेसा भवसम्मे सन्निआहारे ॥ ॥
संतपयपरूवणया दव्वपमाणं च खित्तफुसणा य । कालंतरं च भावो अप्पाबहुयं च दायव्वं । ॥
इति गाथाद्वयं ६६-६७ समगाथायोर्मध्येऽधिकतया हस्तलिखितप्रतौ प्रक्षिप्त दृश्यते ।

उदयस्सुदीरणाए, [1]सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।
[2]मुत्तूण य [3]इगयालं, सेसाणं सव्व[4]पयडीणं ॥५३॥६७॥
नाणंतरायदसगं, दंसणनव वेअणिज्जमिच्छत्तं ।
सम्मत्त लोभ वेआ-उआणि नवनाम उच्चं च ॥५४॥६८॥[5]
[6]तित्थयराहारग [7]विरहिआओ, अज्जेइ सव्व[8]पयडीओ ।
मिच्छत्त[9]वेअगो सा—सणो[10]वि गुणवीससेसाओ ॥५५॥६९॥
छायालसेसमीसो, अविरयसम्मो [11]तिआल[12]परिसेसा ।
[13]तेवन्न देसविरओ, विरओ [14]सगवन्नसेसाओ ॥५६॥७०॥
[15]इगुणट्ठिमप्पमत्तो, बंधइ देवा[16]उअस्स इअरो वि ।
[17]अट्ठावन्नमपुव्वो, [18]छप्पन्नं वावि छव्वीसं ॥५७॥७१॥
बावीसा एगूणं, बंधइ [19]अट्ठारसंतमनिअट्टी ।
[20]सतरस सुहुमसरागो, सायममोहो[21]सजोगुत्ति ॥५८॥७२॥
एसो उ बंध[22]सामित्त,-ओहो गइआइ[23]एसु वि तहेव ।
ओहाओ [24]साहिज्जइ, जत्थ जहा [25]पगइसब्भावो ॥५९॥७३॥
तित्थयरदेवनिरया-[26]उअं च तिसु तिसु गईसु [27]बोधव्वं ।
अवसेसा [28]पयडीओ, हवंति सव्वासु वि गईसु ॥६०॥७४॥
पढमकसायचउक्कं, दंसण[29]तिग सत्तगा वि उवसंता,
[30]अविरयसम्मत्ताओ, जाव [31]निअट्टित्ति नायव्वा ॥६१॥७५॥

---

१. "सामित्ताए" इत्यपि । २. "मोत्तूण" इत्यपि । ३. "ईयालं" इत्यपि, "इगुयालं" इत्यपि वा । ४ "०पगडीणं" इत्यपि, 'पगईणं" इत्यपि । ५ "मणुयगइजाइतसबायरं च पज्जत्तसुभगमाएज्जं । जसकित्ती तित्थयरं नामस्स हवंति नवए य ॥ ॥" इतिगाथा । ६८-६९ तमगाथयोर्मध्येऽधिकतया हस्तलिखितप्रतौ प्रक्षिप्ता दृश्यते । ६ "तित्थगरा०" इत्यपि । ७ '०विरहिआउ" इत्यपि, "०वज्जियाउ" इत्यपि । ८ "पगईओ" इत्यपि, "पगडीओ" इत्यपि वा । ९ "०वेयगो" इत्यपि । १० "वि उगुवीससेसाओ" इत्यपि "वि इगुवीससेसाओ' इत्यपि, "उ उणवीससेसाओ" इत्यपि वा । ११ "तियाल०" इत्यपि । १२ "०परिसेस" इत्यपि । १३ 'तेवण्ण-" इत्यपि, । "तेपन्न०" इत्यपि वा । १४ "सगवण्ण०" इत्यपि, "सगपन्न०" इत्यपि । १५ ' इगुसट्ठि०" इत्यपि, "उगुसट्ठि०" इत्यपि वा । १६ "०उयस्स इयरो वि" इत्यपि, "०अं च इयरो वि' इत्यपि वा । १७ "अट्ठावण्ण०" इत्यपि । १८ "छप्पण्णं" इत्यपि । १९ 'अट्ठारस त्ति अनियट्टी" इत्यपि, ' अट्ठारसं ति अनियट्टी" इत्यपि वा । २० "सत्तर" इत्यपि । २१ "सजोगित्ति" इत्यपि । २२ 'सामित्तोहो" इत्यपि, "सामित्तओघो" इत्यपि । २३ "०ए वि तह चेव" इत्यपि । २४ "साहेज्जा" इत्यपि । २५ "पगइ०" इत्यपि । २६ "०अं च" इत्यपि, "०यं च" इत्यपि वा । २७ "बोद्धव्वं" इत्यपि । २८ "पगडीओ" इत्यपि । २९ "तिय सत्तया वि" इत्यपि । ३० "अविरत०" इत्यपि । ३१ ' नियट्टी" इत्यपि ।

[1]तिन्नेगे एगेगं, तिग मीसे पंच [2]चउसु तिगऽपुव्वे ।
[3]इक्कार बायरंमि उ, सुहुमे चउ तिन्नि उवसंते ॥४७॥५७॥
[4]छन्नव छक्कं तिग सत्त, दुगं दुग तिग दुगं ति अट्ठ चउ ।
दुग[5]छच्चउदुगपणचउ, चउदुगचउपणगएगचऊ ॥४८॥५८॥
एगेगमट्ठ एगे- गमट्ठ छउमत्थकेवलिजिणाणं ।
एग चऊ एग चऊ, अट्ठ चऊ दु छक्कमुदयंसा ॥४९॥५९॥
चउ [6]पणवीसा सोलस, नव चत्ताला सया य बाणउई ।
बत्तीसुत्तरछायाल-सया मिच्छस्स बंधविही ।६०॥(प्र.)
अट्ठ [7]सया चउसट्ठी, बत्तीससयाइं सासणे भेआ ।
अट्ठावीसाईसुं, सव्वाणऽट्ठहिग [8]छन्नउई ॥६१॥(प्र.)
[9]इगचत्तिगार बत्तीस, छसय इगतीसिगारनवनउई ।
सतरिगसि गुतीसचउद इगारचउसट्ठि मिच्छुदया ॥६२॥(प्र.)
बत्तीस [10]दुन्नि अट्ठय बासीइसया य पंच नव उदया ।
[11]बारहिआ तेवीसा, [12]बावन्निक्कारस सया य ॥६३॥(प्र.)
दो छक्कट्ठ चउक्कं, पण [13]नव इक्कार छक्कगं उदया ।
[14]नेरइआइसु [15]सत्ता, ति पंच इक्कारस चउक्कं ॥५०॥६४॥
[16]इग विगलिंदिअ सगले, पण पंच य अट्ठ बंधठाणाणि ।
पण [17]छक्किक्कारुदया, पण पण बारस य संताणि ॥५१॥६५॥
[18]इअ कम्मपगइठाणाणि, सुट्ठु बंधुदय संतकम्माणं ।
[19]गइआइएहि अट्ठसु, [20]चउप्पयारेण नेयाणि ॥५२॥६६॥[21]

---

१. तिण्णगे" इत्यपि । २. "अयमेव पाठः समीचीनोऽस्ति । तथाऽप्यत्र चूर्णिकारैः टीकाकृद्भिश्च "चउसु नियट्टि१ तिन्नि" इति पाठो विवृतः । हस्तलिखितप्रतौ पुनः "पंच" इतिशब्दो नास्ति तथा "चउसु पुण नियट्टितिगं" इति पाठ उपलभ्यते । ३. "एक्कार बायरम्मी" इत्यपि । ४. "छण्णव" इत्यपि । ५ "छक्क चउ ... पणेगचऊ ॥४८॥" इत्यपि । ६ "पणु०" इत्यपि । ७ "य सय चोवट्ठिं बत्तीससया य" इत्यपि । ८. "छण्णउई" इत्यपि । ९. इयं गाथा हस्तलिखितप्रतौ नास्ति मुद्रितपुस्तकेपूपलभ्यते । १०. "दोन्नि" इत्यपि । ११ "बारहिगा" इत्यपि । १२. "बावन्ने०" इत्यपि । १३. 'नवगेक्कार" इत्यपि । "नवएक्कार" इत्यपि वा । १४ "०ओर०" इत्यपि । १५ "संता" इत्यपि । १६ "इगि" इत्यपि । १७ "छक्के०" इत्यपि । १८ "इय कम्मपगडि०" इत्यपि, "इय कम्मपगइठाणाइँ" इत्यपि । १९ "गइयाइएसु" इत्यपि, "गइयाइएहिं" इत्यपि । २० "चउप्पगारेण" इत्यपि ।
२१ "गइइंदिए य काए जोए वेए कसायनाणे य । संजमदंसणलेसा भवसम्मे सन्निआहारे ॥ ॥
संतपयपरूवणया दव्वपमाणं च खित्तफुसणा य । कालंतरं च भावो अप्पाबहुयं च दारयं ॥ ॥
इति गाथाद्वयं ६६-६७ हस्तलिखितप्रतौ प्रक्षिप्तं दृश्यते ।

उदयस्सुदीरणाए, [1]सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।
[2]मुत्तूण य [3]इगयालं, सेसाणं सव्व[4]पयडीणं ॥५३॥६७॥
नाणंतरायदसगं, दंसणनव वेअणिज्जमिच्छत्तं ।
सम्मत्त लोभ वेआ-उआणि नवनाम उच्चं च ॥५४॥६८॥[5]
[6]तित्थयराहारग [7]विरहिआओ, अज्जइ सव्व[8]पयडीओ ।
मिच्छत्त[9]वेअगो सा—सणो[10]वि गुणवीससेसाओ ॥५५॥६९॥
छायालसेसमीसो, अविरयसम्मो [11]तिआल[12]परिसेसा ।
[13]तेवन्न देसविरओ, विरओ [14]सगवन्नसेसाओ ॥५६॥७०॥
[15]इगुणट्ठिमप्पमत्तो, बंधइ देवा[16]उअस्स इअरो वि ।
[17]अट्ठावन्नमपुव्वो, [18]छप्पन्नं वावि छव्वीसं ॥५७॥७१॥
बावीसा एगूणं, बंधइ [19]अट्ठारसंतमनिअट्टी ।
[20]सतरस सुहुमसरागो, सायममोहो[21]सजोगुत्ति ॥५८॥७२॥
एसो उ बंध[22]सामित्त,—ओहो गइआइ[23]एसु वि तहेव ।
ओहाओ [24]साहिज्जइ, जत्थ जहा [25]पगइसब्भावो ॥५९॥७३॥
तित्थयरदेवनिरया-[26]उअं च तिसु तिसु गईसु [27]बोधव्वं ।
अवसेसा [28]पयडीओ, हवंति सव्वासु वि गईसु ॥६०॥७४॥
पढमकसायचउक्कं, दंसण[29]तिग सत्तगा वि उवसंता,
[30]अविरयसम्मत्ताओ, जाव [31]निअट्टित्ति नायव्वा ॥६१॥७५॥

---

१. "सामित्ताए" इत्यपि । २. "मोत्तूण" इत्यपि । ३. "ईयालं" इत्यपि, "इगुयालं" इत्यपि वा । ४ "०पगडीणं" इत्यपि, "पगईणं" इत्यपि । ५ "मणुयगइजाइतसबायरं च पज्जत्तसुभगमाएज्जं । जसकित्ती तित्थयरं नामस्स हवंति नवए य ॥ ॥" इतिगाथा । ६८-६९ समगाथयोर्मध्येऽधिकतया हस्तलिखितप्रतौ प्रक्षिप्ता दृश्यते । ६ "तित्थगरा०" इत्यपि । ७ '०विरहिआउ" इत्यपि, "०वज्जियाउ" इत्यपि । ८ "पगईओ" इत्यपि, "पगडीओ" इत्यपि वा । ९ "०वेयगो" इत्यपि । १० "वि इगुवीसेसाओ" इत्यपि "वि इगुवीससेसाओ" इत्यपि, "उ उणवीससेसाओ" इत्यपि वा । ११ "तियाल०" इत्यपि । १२ "०परिसेस" इत्यपि । १३ 'तेवण्ण०" इत्यपि, । "तेपन्न०" इत्यपि वा । १४ "सगवण्ण०" इत्यपि, "सगपन्न०" इत्यपि । १५ ' इगुसट्ठि०" इत्यपि, "उगुसट्ठि०" इत्यपि वा । १६ "०उयस्स इयरो वि" इत्यपि, "०अं च इयरो वि' इत्यपि वा । १७ "अट्ठावण्ण०" इत्यपि । १८ "छप्पण्णं" इत्यपि । १९ ' अट्ठारस त्ति अनियट्टी" इत्यपि, ' अट्ठारसं ति अनियट्टी" इत्यपि वा । २० "सत्तर" इत्यपि । २१ "सजोगित्ति" इत्यपि । २२ 'सामित्तोहो" इत्यपि, "सामित्तओघो" इत्यपि । २३ "०ए वि तह चेव" इत्यपि । २४ "साहेज्जा" इत्यपि । २५ "पगडि०" इत्यपि । २६ "०अं च" इत्यपि, "०उयं च" इत्यपि वा । २७ "बोद्धव्वं" इत्यपि । २८ "पगडीओ" इत्यपि । २९ "तिय सत्तया वि" इत्यपि । ३० "अविरत०" इत्यपि । ३१ ' नियट्टी" इत्यपि ।

[1]तिन्नेगे एगेगं, तिग मीसे पंच [2]चउसु तिगऽपुव्वे ।
[3]इक्कार बायरंमि उ, सुहुमे चउ तिन्नि उवसंते ॥४७॥५७॥
[4]छन्नव छक्कं तिग सत्त, दुगं दुग तिग दुगं ति अट्ठ चउ ।
दुग[5]छच्चउदुगपणचउ, चउदुगचउपणगएगचऊ ॥४८॥५८॥
एगेगमट्ठ एगे- गमट्ठ छउमत्थकेवलिजिणाणं ।
एग चऊ एग चऊ, अट्ठ चऊ दु छक्कमुदयंसा ॥४९॥५९॥
चउ [6]पणवीसा सोलस, नव चत्ताला सया य बाणउई ।
बत्तीसुत्तरछायाल-सया मिच्छस्स बंधविही ॥६०॥(प्र.)
अट्ठ [7]सया चउसट्ठी, बत्तीससयाइँ सासणे भेआ ।
अट्ठावीसाईसुं, सव्वाणऽट्ठहिग [8]छन्नउई ॥६१॥(प्र.)
[9]इगचत्तिगार बत्तीस, छसय इगतीसिगारनवनउई ।
सतरिगसि गुतीसचउद इगारचउसट्ठि मिच्छुदया ॥६२॥(प्र.)
बत्तीस [10]दुन्नि अट्ठय बासीइसया य पंच नव उदया ।
[11]बारहिआ तेवीसा, [12]बावन्निक्कारस सया य ॥६३॥(प्र.)
दो छक्कट्ठ चउक्कं, पण [13]नव इक्कार छक्कगं उदया ।
[14]नेरइआइसु [15]सत्ता, ति पंच इक्कारस चउक्कं ॥५०॥६४॥
[16]इग विगलिंदिअ सगले, पण पंच य अट्ठ बंधठाणाणि ।
पण [17]छक्किक्कारुदया, पण पण बारस य संताणि ॥५१॥६५॥
[18]इअ कम्मपगइठाणाणि, सुट्ठु बं[ध]ुदय संतकम्माणं ।
[19]गइआइएहिं अट्ठसु, [20]चउप्पयारेण नेयाणि ॥५२॥६६॥[21]

१. तिण्णगे" इत्यपि । २. "अयमेव पाठः समीचीनोऽस्ति । तथाऽप्यत्र चूर्णिकारैः टीकाकृद्भिश्च "चउसु नियट्टिए तिन्नि" इति पाठो विवृतः । हस्तलिखितप्रतौ पुनः "पंच" इतिशब्दो नास्ति तथा "चउसु पुण नियट्टितिगं" इति पाठ उपलभ्यते । ३. "एक्कार बायरम्मी" इत्यपि । ४. "छण्णव" इत्यपि । ५ "छक्क चऊ - पणेगचऊ ॥५८॥" इत्यपि । ६ "पणु०" इत्यपि । ७ "य सय चोवट्ठि बत्तीससया य" इत्यपि । ८ "छण्णउई" इत्यपि । ९. इयं गाथा हस्तलिखितप्रतौ नास्ति मुद्रितपुस्तकेषूपलभ्यते । १०. "दोन्नि" इत्यपि । ११ "बारहिगा" इत्यपि । १२. "बावन्ने०" इत्यपि । १३. 'नवगेक्कार" इत्यपि । "नवएक्कार" इत्यपि वा । १४ "०योर०" इत्यपि । १५ "संता" इत्यपि । १६ "इगि" इत्यपि । १७ "छक्के०" इत्यपि । १८ "इय कम्मपगडि०" इत्यपि, "इय कम्मपगइठाणाइँ" इत्यपि । १९ "गइयाइएसु" इत्यपि, "गइयाइएहिँ" इत्यपि । २० "चउप्पगारेण" इत्यपि ।
२१ "गइइंदिए य काए जोए वेए कसायनाणे य । संजमदंसणलेसा भवसम्मे सन्निआहारे ॥ ॥
संतपयपरूवणया दव्वपमाणं च खित्तफुसणा य । कालंतरं च भावो अप्पाबहुयं च दारयव्वं । ॥
इति गाथाद्वयं ६६-६७ तमगाथायोर्मध्येऽधिकतया हस्तलिखितप्रतौ प्रक्षिप्त दृश्यते ।

उदयस्सुदीरणाए, [1]सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।
[2]मुत्तूण य [3]इगयालं, सेसाणं सव्व[4]पयडीणं ॥५३॥६७॥
नाणंतरायदसगं, दंसणनव वेअणिज्जमिच्छत्तं ।
सम्मत्त लोभ वेआ-उआणि नवनाम उच्चं च ॥५४॥६८॥[5]
[6]तित्थयराहारग [7]विरहिआओ, अज्जेइ सव्व[8]पयडीओ ।
मिच्छत्त[9]वेअगो सा—सणो[10]वि गुणवीससेसाओ॥५५॥६९॥
छायालसेससमीसो, अविरयसम्मो [11]तिआल[12]परिसेसा ।
[13]तेवन्न देसविरओ, विरओ [14]सगवन्नसेसाओ ॥५६॥७०॥
[15]इगुणट्ठिमप्पमत्तो, बंधइ देवा[16]उअस्स इअरो वि ।
[17]अट्ठावन्नमपुव्वो, [18]छप्पन्नं वावि छव्वीसं ॥५७॥७१॥
बावीसा एगूणं, बंधइ [19]अट्ठारसंतमनिअट्टी ।
[20]सतरस सुहुमसरागो, सायममोहो[21]सजोगुत्ति ॥५८॥७२॥
एसो उ बंध[22]सामित्त,–ओहो गइआइ[23]एसु वि तहेव ।
ओहाओ [24]साहिज्जइ, जत्थ जहा [25]पगइसब्भावो ॥५९॥७३॥
तित्थयरदेवनिरया-[26]उअं च तिसु तिसु गईसु [27]बोधव्वं ।
अवसेसा [28]पयडीओ, हवंति सव्वासु वि गईसु ॥६०॥७४॥
पढमकसायचउक्कं, दंसण[29]तिग सत्तगा वि उवसंता,
[30]अविरयसम्मत्ताओ, जाव [31]निअट्टित्ति नायव्वा ॥६१॥७५॥

---

१. "सामित्ताए" इत्यपि । २. "मोत्तूण" इत्यपि । ३. "ईयालं" इत्यपि, "इगुयालं" इत्यपि वा । ४ "०पगडीणं" इत्यपि, 'पगईणं" इत्यपि । ५ "मणुयगइजाइतसबायरं च पज्जत्तसुभगमाएज्जं । जसकित्ती तित्थयरं नामस्स हवंति नवए य ॥ ॥" इतिगाथा । ६८-६९ तमगाथयोर्मध्येऽधिकतया हस्तलिखितप्रतौ प्रक्षिप्ता दृश्यते । ६ "तित्थगरा०" इत्यपि । ७ ' ०विरहिआउ" इत्यपि, "०वज्जियाउ" इत्यपि । ८ "पगईओ" इत्यपि, "पगडीओ" इत्यपि वा । ९ "०वेयगो" इत्यपि । १० "वि उगुवीसेसाओ" इत्यपि "वि इगुवीससेसाओ" इत्यपि, "इ उणवीससेसाओ" इत्यपि वा । ११ "तियाल०" इत्यपि । १२ "०परिसेस" इत्यपि । १३ 'तेवण्ण०" इत्यपि, । "तेपन्न०" इत्यपि वा । १४ "सगवण्ण०" इत्यपि, "सगपन्न०" इत्यपि । १५ ' इगुसट्ठि०" इत्यपि, "उगुसट्ठि०' इत्यपि वा । १६ "०उयस्स इयरो वि" इत्यपि, "०उअं च इयरो वि' इत्यपि वा । १७ "अट्ठावण्ण०" इत्यपि । १८ "छप्पण्णं" इत्यपि । १९ 'अट्ठारस त्ति अनियट्टी" इत्यपि, ' अट्ठारसं ति अनियट्टी" इत्यपि वा । २० "सत्तर" इत्यपि । २१ "सजोगित्ति" इत्यपि । २२ 'सामित्तोहो" इत्यपि, "सामित्तओघो" इत्यपि । २३ "०ए वि तह चेव" इत्यपि । २४ "साहेज्जा" इत्यपि । २५ "पगइठि०" इत्यपि । २६ "०उअं च" इत्यपि, "०उयं च" इत्यपि वा । २७ "बोद्धव्वं" इत्यपि । २८ "पगडीओ" इत्यपि । २९ "विय सत्तया वि" स्यपि । ३० "अविरत०" इत्यपि । ३१ "नियट्टी" इत्यपि ।

सत्तट्ठ नव य पनरम, सोलस अट्ठारसेव [1]गुणवीसा ।
एगाहि दु [2]चउवीसा, [2]पणवीसा बायरे जाण ॥७६॥(प्र॰)
सत्तावीसं सुहुमे, अट्ठावीसं [3]च मोह [4]पयडीओ ।
उवसंत [5]वीअराए, उवसंता [6]हुंति नायव्वा ॥७७॥(प्र.)
पढमकसायचउक्कं, [7]इत्तो मिच्छत्तमीससम्मत्तं ।
[8]अविरयसम्मे देसे, [9]पमत्ति अपमत्ति खीअंति ।६२॥७८॥
अनिअट्टिबायरे थीण-गिद्धितिगनिरय[10]-तिरिअनामाओ ।
[11]संखिज्जइमे सेसे, तप्पाउग्गाओ [12]खीअंति ॥७९॥(प्र.)
[13]इत्तो हणइ कसाय-ट्ठगंपि पच्छा [14]नपुंसगं इत्थी ।
तो [15]नोकसायछक्कं, [16]छुहेइ संजलणकोहंमि ॥८०॥(प्र.)
पुरिसं कोहे कोहं, माणे माणं च छुहइ मायाए ।
मायं च छुहइ [17]लोहे, लोहं सुहमंपि तो हणइ ॥६३॥८१॥
खीणकसायदुचरिमे, [18]निद्दं पयलं च हणइ छउमत्थो ।
आवरणमंतराए, छउमत्थो चरमसमयंमि ॥८२॥(प्र.)
देवगइसहगयाओ, दुचरमसमयभविअंमि [19]खीअंति ।
सविवा[20]गेअरनामा, [21]नीआगोअं पि तत्थेव ॥६४॥८३॥
अन्नयर[22]वेयणीअं, मणुआ[23]उअमुच्चगोअ[24]नवनामे ।
वेएइ अजोगिजिणो, उक्कोसजह[25]न्नमिक्कारा ॥६५॥८४॥
[26]मणुअगइजाइतसबायरं च, पज्जत्तसुभग[27]माइज्जं ।
जसकित्ती तित्थयरं, [28]नामस्स हवंति नव एआ ॥६६॥८५॥

---

१ "इगुवीसा" इत्यपि, "उगुवीसा" इत्यपि, "उगवीसा" इत्यपि । २ "पणुवीसा" इत्यपि । ३ "पि" इत्यपि । ४ "पगडीओ" इत्यपि । ५ "वीयरागे" इत्यपि । ६ "होंति" इत्यपि । ७ "एत्तो" इत्यपि । ८ "अविरय देसे विरए" इत्यपि। "अविरयदेसे विरयपमत्तऽप्पमत्ते य" इत्यपिच॥ ९ "पमत्तअपमत्त खीयंति" इत्यपि । १० "तिरिय०" इत्यपि, "०तिरियणामाउ" इत्यपि । ११ "सखे०" इत्यपि । १२ "खीयंति" इत्यपि । १३ "एत्तो" इत्यपि । १४ "णपुं०" इत्यपि । १५ "णो०" इत्यपि । १६ "छुभइ" इत्यपि । १७ "लोभे लोभ" इत्यपि । १८ "निद्दा पयला य" इत्यपि । १९ "खीयंति" इत्यपि । २० "०गेयर०" इत्यपि । २१ "नीया गोयं०" इत्यपि । २२ "वेयणीयं" इत्यपि, "वेयणिज्जं" इत्यपि । २३ "०उय उच्चगोय०" इत्यपि । २४ "णामं च" इत्यपि, "नाम नव" इत्यपि । २५ "०मएक्कारं ॥" इत्यपि, "मिक्कारे ॥" इत्यपि । २६ "मणुय०" इत्यपि । २७ "०माएज्जं" इत्यपि । २८ "णामस्स हवंति णव एया" इत्यपि ।

[1]तच्चाणुपुव्विसहिआ, तेरस भवसिद्धि[2]अस्स चरमंमि ।
संतंसगमुक्कोसं, [3]जहन्नयं बारस हवंति ॥६७॥८६॥
[4]मणुअगइसहगयाओ, भवखित्तविवा[5]गजिअविवागाओ ।
[6]वेअणिअन्नयरुच्चं, [7]चरमसमयंमि खीअंति ॥६८॥८७॥
अह [8]सुइअसयल जगसिहर–[10]मरुअ[11]निरुवम[12]सहा–
वसिद्धिसुहं ।
[13]अनिहणमव्वाबाहं, तिरयणसारं अणुहवंति ॥६९॥८८॥
दुरहिगम- -निउण--परमत्थ--[14]रुइरबहुभंगदिट्ठिवायाओ ।
अत्था अणुसरिऊव्वा, बंधोदयसंतकम्माणं ॥७०॥८९॥
जो जत्थ अपडिपुन्नो, अत्थो अप्पागमेण बद्धोत्ति ।
तं खमिऊण बहु[15]सुआ, पूरेऊणं परि[16]कहंतु ॥७१॥९०॥
गाहग्गं [17]सयरीए, चंदमहत्तरमयाणुसारीए ।
[18]टीगाइनिअमिआणं, एगूणा होइ [19]नउईओ ॥९१॥(प्र.)

---

१ अस्या गाथायाः स्थाने हस्तलिखितप्रतौ निम्ना गाथा दृश्यते । "ता एव हुंति नेया वारस भवसिद्धिगस्स चरमंते । संतस्स उ उक्कोसं जहन्न एक्कारस हवंति ।८८॥" इति । २ "०यस्स" इत्यपि, '०गस्स" इत्यपि वा । ३ "उहन्नग" इत्यपि । ४ "मणुय०" इत्यपि । ५ "०गजियविवागाओ ।" इत्यपि, "०गजीवविवागुत्ति ।" इत्यपि, "०गजीवपागत्ति" इत्यपि, "हवंति भवजीवपावकम्मंसा" इत्यपि । ६ "वेयणिय०" इत्यपि । ७ ' चरिमे समयम्मि खीयंति ॥७१॥" इत्यपि, "च चरिमभवियस्स खीयंति ॥६९॥ ६८॥" इत्यपि, "अचरिमसमयम्मि खीयंति ॥६८॥" इत्यपि । ८ "सुइय०" इत्यपि "सुइरसइजलमसिहरं । ९ "जय०" इत्यपि । १० "मरुय०" इत्यपि । ११ ' णिरुवम" इत्यपि । १२ "०समाव०" इत्यपि । १३ "अणि०" इत्यपि । १४ "रुइछ०" इत्यपि । १५ "०सुया" इत्यपि । १६ '०कहिंतु" इत्यपि । १७ सत्तरिए" इत्यपि, "ससरीए" इत्यपि वा । १८ "टीकाए नियमियाणं" इत्यपि, "टिक्काएँ णियमियाणं" इत्यपि । १९ "णउईउ" इत्यपि ।



॥ अर्हम् ॥

*कर्मस्तवभाष्यम्

वंधे [1]वीमुत्तरसयं, मयवावीमं तु होइ उदयंमि ।
उईरणाइ एवं, अडयालसयं तु संतंमि ॥ १ ॥ १ ॥

वीसं वंधे वंधणसंघाया नियतणुग्गहणगहिया ।
वन्नाईविगप्पा वि हु, न य वंधे [2]सम्ममीसाइ ॥ २ ॥

सामन्नेणं एयं, सत्तरससयं [3]तु होइ मिच्छस्स ।
तित्थयराहारदुगं, न वंधए फिट्टए तेणं ॥ ३ ॥ ३ ॥

सम्मामिच्छद्दिट्ठी, आऊणि न वंधए [4]जओ ताणि ।
फिट्टंति [5]तेण तस्स उ, अज्झवसाओ जओ नत्थि ॥ ४ ॥ ४ ॥

तित्थयरं पक्खिप्पइ, सम्मद्दिट्ठिंमि वंधए जेण ।
सम्मत्तस्स [6]गुणेण य, आऊण वि तत्थ खिप्पंति ॥ ५ ॥ ५ ॥

आहारमप्पमत्ते, पक्खिप्पइ जेण संजमो तस्स ।
उदए सत्तरससयं, मिच्छे पंचेहिं रहियं तु ॥ ६ ॥ ६ ॥

सम्मं सम्मामिच्छं, आहारदुगं तहेव तित्थयरं ।
पंच पयडी उ एया, मिच्छंमि उ जाव फिट्टंति ॥ ७ ॥ ७ ॥

नरयाणुपुव्वियाए, सासणसम्मंमि होइ न हु उदओ ।
नरयंमि जं न गच्छइ, अवणिज्जइ तेण सा तस्स ॥ ८ ॥ ८ ॥

सम्मामिच्छत्तं पुण, पक्खिप्पइ, सम्मामिच्छठाणंमि
अणुपुव्वीओ फिट्टंति जेण न हु अंतरा गच्छे ॥ ९ ॥ ९ ॥

सम्मत्तं पक्खिप्पइ, सम्मद्दिट्ठिम्मि जेण तस्सुदओ ।
अणु[8]पुव्वीण वि एवं, तेणं ताओ वि खिप्पंति ॥ १० ॥ १० ॥

---

* कर्मस्तवोपरि भाष्यद्वयं प्राप्यते । तत्र प्रथमं द्वात्रिंशद्गाथात्मकं द्वितीयं च त्रयोविंशत्या चतुर्विंशत्या च गाथाभिः संकलितम् । तत्र ताडपत्रपुस्तकेषु पत्रमयपुस्तकेषु च द्वितीयं भाष्यं दृश्यते, प्रथमं तु केषुचित्पत्रमयेष्वेव । तथापि द्वयोर्न सर्वथा भेदः । द्वितीयं प्रथमेऽन्तर्भवति । किन्तु गाथानां मूलक्रमो भिद्यतेऽनः प्रथमभाष्यीयगाथक्रमेण सार्द्धं द्वितीयभाष्यगाथाक्रमो नोपेक्षितोऽस्माभिः । एका च द्वितीयभाष्यगाथा प्रथमे न दृश्यते याऽग्रे वक्ष्ये क्षिप्यते । द्वयोरपि कर्त्रोर्नाम नोपलभ्यते । १ 'विसुत्तरसयं" इत्यपि । २ "उदीरणावि" इत्यपि पाठः । ३ "सम्ममीसाइं" इत्यपि । ४ 'तु वधए मिच्छो' इति । ५ "तओ" इति । ६ "जेण" इति । ७ "गुणेणं, आ०" इति ॥ ८ " "पुव्वी वि हु एवं" इति ।

आहारदुगं खिप्पइ, पमत्तविरयम्मि जेण तस्सुदओ ।
तित्थयरं केवलिणो, उदीरणा होइ एमेव ॥ ११ ॥ ११ ॥

[2] नवरं पमत्तविरए, [3]पयडीओ तिन्नि चेव खिप्पंति ।
केवलिउदया घित्तुं, तम्मि य [4]ताओऽवि धक्कंति ॥१२॥१२

मीसं उदयइ मीसे, सम्मत्तं चउसु अविरयाईसु ।
आहारं च पमत्ते, जोगिजिणिंदंमि तित्थयरं ॥ १३ ॥

सत्तरसुत्तरमेगुत्तरं च चउहत्तरी य सगसयरी ।
सत्तट्ठी तिगसट्ठी, उणसट्ठी अट्ठवन्ना य ॥१४॥१७॥

निद्ददुगे छप्पन्ना, छव्वीसा नामतीसविरयंमि ।
हासरइभयदुगुंछाविरमे बावीसऽपुव्वम्मि ॥ १५ ॥ १८ ॥

पुंवेयकोहमाइसु, अवज्झमाणेसु पंच ठाणाइं ।
बायरसुहुमे सत्तरपगईओ सायमियरेसु ॥ १६ ॥ १९ ॥

उदयसङ्ख्यामाह–

सत्तरसं एक्कारं, सयमेगं चउहिं संजुयं सम्मे ।
सत्तासी एक्कासी, छसत्तरि बिसत्तरि छसट्ठी ॥ १७ ॥ २० ॥

सट्ठी उणसट्ठी वि य, सगवन्न वियाल बारसं उदए ।
मिच्छाइ जा पमत्तो, उईरणा उदयसरिसाओ ॥१८॥२१॥

तेहत्तरि गुणहत्तरि, तेवट्ठी ससवन्न छप्पन्ना ।
चउपन्ना इगुयाला, अपमत्ताओ उईरणया ॥ १९ ॥ २२ ॥

जाव पमत्तो [5]सत्तट्ठउईरगो वेयआउवज्जाणं ।
सुहुमो मोहेण य जाव खीणतप्परउ नामगोयाणं ॥ २० ॥

मिच्छे सासण अविरय देस पमत्तापमत्त सत्तट्ठ ।
मीस नियट्टिऽनियट्टि य, सग सुहुमे छच्च बंधकमा ॥ २१ ।

एगविहबंध सेसा, उदओ तिसु ठाणगेसु अट्ठण्हं ।
एगविहबंधठाणे, सत्त य चउरो य वेयंति ॥ २२ ॥

मिच्छे अडयालसयं, सासणमीसेसु तित्थयरहीणं ।
ससयरहियं [6]चउसुं अडतीसं दोसु संतंमि ॥ २३ ॥ २३ ॥

---

१ "°णा उदयसरिसाओ;" इति । २ एषा गाथा त्रयोविंशतिगाथात्मके भाष्ये नास्ति ततो द्वादशो गाथाङ्कस्त्रयोदशस्थाने । एवमग्रेऽपि न्यूनः कार्यः ॥ ३ "पयडीओ तत्थ तिन्नि खिप्पंति" इति । ४ "ता चेव थक्कंति" इति । ५ "सत्तट्ठुईर°" इत्यपि पाठः सम्भाव्यते । ६ "चउसु वि" इति ।

सुहुमे दुरुत्तरसयं, अडयालमिगुत्तरं च पंचासी ।
[1]पंचासी य अजोगे, पयडीणं संतवोच्छेओ ॥ २४ ॥ २४ ॥
तित्थयरेण विहीणं, सीयालसयं तु संतए होइ ।
सासायणंमि [2]उ गुणे, सम्मामिच्छे य पयडीणं ॥२५॥*१४॥
अणतिरिनारयरहियं बायाल[3]सयं वियाण संतंमि ।
उवसामगस्स ऽपुव्वानियट्टिसुहुमोवसं[4]तस्स ॥ २६ ॥ १६॥
सव्वेसु वि आहारं, सासणमिस्सेयरे न वा तित्थं।
उभये संति न मिच्छे तित्थयरे अंतरमुहुत्तं ॥ २७ ॥
जा सुहुमसंपराओ, उइन्नसंताइँ ताइँ सव्वाइं ।
सत्तट्ठुवसंते खीण सत्त सेसेसु चत्तारि ॥ २८ ॥
संते अडयालसयं, खवगं तु पडुच्च होइ पणयालं।
आउतिगं नत्थि तहिं, सत्तगखीणंमि अडतीसं ॥ २९॥ १२ ॥
मिच्छत्तअविरई तह, कसायजोगा य हेयवो भणिया ।
ते पंच दुवालस पन्नवीस पन्नरस भेइल्ला ॥ ३० ॥
पणपन्नपन्नतियछहिय[5]चत्तगुणचत्तछचउदुगवीसा ।
सोलस दस नव नव सत्त हेउणो न उ अजोगंमि ॥ ३१ ॥
अहिनवगहणं बंधो, उदओ हु विवागवेयणं तस्स ।
अविवागेणणुभवणं, अणुदयपत्तस्सुईरणया ॥ ३२ ॥ १ ॥

---

१ "नायव्वा अणुभागे पयडीणं संतवोच्छेओ॥२४॥" इत्यपि । २ "य" इति । *एतद्भाष्ये या गाथा नास्ति सा चैतदनन्तरमेषा–"पणयालं अडतीसं, अविरयसम्माओ जाव अपमत्तो । अप्पुव्वे अडतीसं, नवरं खवगंमि बोधव्वं ॥१५॥" इति । ३ 'सयं तु संतए जाण" इति । ४"०तेसु' इति । ५ "चत्तिगुण०" इत्यपि ।

॥ समाप्तमिदं कर्मस्तवभाष्यम् ॥

॥ अर्हम् ॥

॥ षडशीतिभाष्यम् ॥

जीवाइपयत्थेसुं, जिणोवइट्टेसु जा असद्दहणा ।
सद्दहणा वि य मिच्छा, विवरीयपरूवणा जा य ॥ १ ॥
संसयकरणं जं पि य, जो तेसु अणायरो पयत्थेसु ।
तं पंचविहं मिच्छं, तद्दिट्ठी [1]मिच्छदिट्ठी य ॥ २ ॥
उवसमअद्धाइ ठिओ, मिच्छमपत्तो तमेव गंतुमणो ।
सम्मं आसायंतो, सासायणगो मुणेयव्वो ॥ ३ ॥
जह गुडदहीणि [2]विसमाइभावसहियाणि [3]हुंति मिस्साणि ।
भुंजंतस्स तहोभय, [4]तद्दिट्ठी मिस्सदिट्ठी य ॥ ४ ॥
तिविहे वि हु सम्मत्ते, [5]थोवा वि न विरइ जस्स कम्मवसा ।
सो अविरउ त्ति भण्णइ, [6]देसो पुण देसविरईए ॥ ५ ॥
विकहाकसायनिद्दासद्दाइरओ भवे [7]पमत्तु त्ति ।
पंचसमिओ तिगुत्तो, अपमत्तजई मुणेयव्वो ॥ ६ ॥
अप्पुव्वं अप्पुव्वं, जहुत्तरं जो करेइ ठिइखंडं ।
रसखंडं तग्घायं, सो होइ [8]अपुव्वकरणु त्ति ॥ ७ ॥
विणिवट्टंति विसुद्धिं, [9]समयपविट्ठा वि जत्थ [10]अन्नुन्नं ।
[11]तं तु नियट्टिट्ठाणं, विवरीयमओ य [12]अनियट्टी ॥ ८ ॥
थूलाण लोभखंडाण वेयओ बायरो मुणेयव्वो ।
सुहुमाण होइ सुहुमो, उवसंतेहिं तु उवसंतो ॥ ९ ॥
खीणंमि [13]मोहणीए, खीणकसाओ सजोगजोगि त्ति ।
होइ पउत्ता य तओ, अपउत्तो होइ हु अजोगी ॥ १० ॥
जीवाणमभव्वाणं, मिच्छत्तमणाइअनिहणं नेयं ।
भवियाणमिणमणाई संतं पत्तंमि सम्मत्तं ॥ ११ ॥

---

१ "सिच्छदिट्ठीओ" इत्यपि । २ "विसयाभावरहियाणि" इत्यपि । ३ 'होंति" इत्यपि । ४ "दिट्ठीए
मीसदिट्ठीओ" इत्यपि । ५ "थेवे" इत्यपि । ६ "देसे पुण देसविरईओ ॥" इत्यपि । ७ "पमत्तोत्ति" इत्यपि ।
८ "अपुव्वकरणो त्ति ॥" इत्यपि । ९ "समगपइट्ठा" इति "समयपइट्ठा" इति वा पाठः । १० "अन्नोन्नं"
इत्यपि । ११ "तत्तो" इत्यपि । १२ "अनियट्टि" इत्यपि । १३ "मोहणिज्जे" इत्यपि ।

सासाणं छावलियं, तुरियं [1]तित्तीमसागग अहिया ।
पंचममह तेरसमं, देसूणा पुव्वकोडी [2]य ॥ १२ ॥
चरिमं ह्रस्सपणक्खरउग्गिरणपमाणयं भवत्थाणं ।
सिद्धाणमणंतद्धं, अंतमुहुत्तं तु सेसाणि ॥ १३ ॥
समओ उ जहन्नेणं, पमत्तसासणुवसंतमोहाणं ।
देससजोगिअसंजयमिच्छत्ताणं मुहुत्तंतो ॥ १४ ॥
अस्संखाउयतिरिया, विमाणिणो पढमपुढविनेरइया ।
मणुया य तिसम्मत्ता, वेयगउवसामगा सेसा ॥ १५ ॥
अप्पज्जत्तमणुस्सा, वेउव्विय[3]मीसमीसदिट्ठी य ।
तह सुहुमसंपराया, परिहारियछेयचारित्ता ॥ १६ ॥
अप्पुव्वकरणअनियट्टिचायरा तहुवसंतमोहा य ।
आहारग[4]मीसो वि य, सासणदिट्ठी य मयणिज्जा ॥१७॥
सामन्नेणं एवं, सत्तावन्ना विसेसहेऊणं ।
सा आहारदुगूणा, पणवन्ना मिच्छदिट्ठिस्स ॥ १८ ॥
मिच्छत्तपंचगूणा, सासणदिट्ठिस्स होइ पन्नासा ।
परलोगगमणविरहा, सम्मामिच्छस्स पुण एसा ॥ १९ ॥
ओरालमिस्सवेउव्वमिस्सकम्मणसरीरजोगेहिं ।
तह अणंताणुवंधीहि विरहिया होइ तेयाला ॥ २० ॥
पुव्वुत्तजोगजुत्ता, स च्चिय पुणरवि य मरणसब्भावा ।
अविरयसम्मद्दिट्ठिस्स बंधहेऊण छायाला ॥ २१ ॥
ओरालमिस्सकम्मणजोगा तससंजमेहिं परिहीणा ।
बीयकसाएहिं च्चिय, विरयाविरयम्मि गुणचत्ता ॥ २२ ॥
अविरइमिक्कारसहा, पच्चक्खाणे य चयय तत्थेव ।
पक्खिवियाहारदुगं, पमत्तविरयस्स छव्वीसा ॥ २३ ॥
वेउव्विमिस्सआहारमिस्सवज्जाऽपमत्ति चउवीसा ।
वेउव्वियआहारगरहिया बावीसऽपुव्वस्स ॥ २४ ॥

---

१ "तेत्तीस०" इत्यपि । २ "च" इत्यपि । ३ "मिस्सो" इत्यपि । ४ "मिस्सो वि" इत्यपि ।

हामच्छक्कविमुक्का, सोलस अनियट्टिबायरस्स भवे।
संजलणवेअतियवज्जियत्ति दस सुहुमरागस्स ॥२५॥
लोभूणा नव उवसंतगस्स ते चेव खीणमोहस्स।
चरमाहममणवइदुगकम्मुरलदुगं सजोगिस्स ॥ २६ ॥
अट्ठेव य संताउगरहिया छम्मोहआउयविउत्ता।
सायं एगं एयं, चउरो ठाणाणि बंधस्स ॥ २७ ॥
अड सत्त मोहरहिया, चउरो [1]विज्जाउनामगोया य।
सत्ताए उदए च्चिय, तिन्नि य ठाणाणि पत्तेयं ॥ २८ ॥
अड सत्ताउविणाऽणाउविज्ज छ प्पण अमोहविज्जाऊ।
दो नामं गोयं तह, इय पंच उईरणा ठाणा ॥ २९ ॥
जीवस्स पुग्गलाण य, [2]जुग्गाण परुप्परं अभेएणं।
मिच्छाइहेउविहिया, जा घडणा इत्थ सो बंधो ॥ ३०॥
करणेण सहावेण व, ठिइवचए तेसिमुदयपत्ताणं।
जं वेयणं विवागेण सो उ उदओ जिणाभिहिओ ॥ ३१ ॥
कम्माणूणं जाए, करणविसेसेण ठिइवचयभावे।
जं उदयावलियाए, पवेसणमुदीरणा सेह ॥ ३२ ॥
बंधणसंकमलद्धत्तलाहकम्मस्स रूवअविणासो।
निज्जरणसंकमेहिं, सब्भावो जो य सा सत्ता ॥ ३३ ॥
बंधणसंकमणुव्वट्टणा य ओवट्टणा उईरणया।
उवसामणा निहत्ती, निकायणा च्चत्ति करणाइं ॥ ३४ ॥
बन्धनकरणं बन्ध एव ।
पयइठिइरसपएसाणमन्नकम्मसरूवेण [3]य ठियाणं।
जं अन्नकम्मरूवसठावणं संकमो एसो ॥ ३५ ॥
तं उव्वट्टणकरणं, जं ठिइरसवुड्ढिपयाडियपहुसं।
ठिइरसहस्सीकरणं, करणं अपवट्टणं जाण ॥ ३६ ॥

---

१ "वेज्जाउनामगोयाणि" इत्यपि। २ "जोगाण" इत्यपि। ३ "च ठियाण" इत्यपि।

उदीरणोक्तैव ।

उदयनिहत्तिनिकायणउदीरणाणं अजोग्गअत्तेण ।
कम्माणं जं ठावण, उवसमणा सा विणिद्दिट्ठा ॥ ३७ ॥
उव्वट्टणापवर्त्तणियरकरणा [1]जुग्गयाइ कम्माणं ।
संठावणं निहत्ती, निकायणा करणणुचियत्तं ॥ ३८ ॥

---

१ "जोग्गयाए" इत्यपि पाठः ।

॥ इति षडशीतिभाष्यम् ॥

❀ शतकभाष्यम् ❀

नमिऊण जिणं वुच्छामि बंधसयगे चउन्ह बंधाण ।
दाराणि तहा संखामित्तनिबद्धाउ पयडीओ ॥१॥
[1]पढमवए पगई १ साइआइ २ भुयगारमाइ ३ सामित्तं ४ ।
[2]ठिइ १ साइआइ २ सुहअसुह पच्चयं ३ सामिणो ४ बीए ॥२॥
तह साइआइ १ पच्चय २ [3]सुहासुह ३ रसामि ४ घाइयअघाई ५ ।
भन्नंति ठाण ६ पच्चय ७ विवाग ८ भेया य रसबंधे ॥३॥
कम्मपएस [4]गहविहिं १ भागो २ तह साइआइ३ सामित्तं ४ ।
भन्नहि पएसबंधे ठिइबंधेऽट्ठारस इमाउ ॥४॥
संजलण४-नाण५-दंसणचउक्क४-विग्घाणि-५ पन्नरस एया ।
नरतिरिनरयाउ३—विगल३—सुहुमतिग३—विउव्वछक्काणि ॥५॥
छेवट्ठं उज्जोयं तिर२ओरालिय२दुगाणि छप्पयडी ।
तिन्नि पयडीउ आयवथावरएगिंदिजाईओ ॥६॥
छप्पयडीउ विउव्वियछक्कं इत्तोऽणुभागबंधम्मि ।
अगुरुलहु-कम्म-तेयग-सुवन्नचउ-निमिण अट्ठ इमा ॥७॥
मिच्छ-कसाय१६-दुगंछा भय-दंसण ९-नाण ५-विग्घ ५-उवघाया ।
असुभा चउवन्नाई तेयालीसा इमा होइ ॥८॥
साय-तिरिमणुसुराउग३-नरदुग२-सुरदुग२-पणिंदि-तणुपणग ५ ।
[5]समचउर-वज्जरिसभं-गुवंगतिग ३ पवरवन्नाई ॥९॥
सासु-ज्जोया-ऽऽयव-तित्थ-निमिण-परघाय-उच्च-अगुरुलहू ।
सुखगइ—तसाइदसगं इय बायालीस सुहपयडी ॥१०॥
नरयाउ-नरय२—तिरिदुग२- [6]विगलिगजाई ४ अ दुखगइअसाया ।
उववायथावरदसगमपढमसंठाण५संघयणा ५ ॥११॥
नीयं तह सम्मामीसरहियघाईणि [7]णिट्ठवन्नाई ।
इय असुभा बासीई पणिंदि [8]ऊसास देवदुगा ॥१२॥

---

१ "पढमपए पगइए (पगइबन्धे) साइआई भुयग्गारमाइ" इति मुद्रितप्रतौ । २ "साई आई सुहअसुहप-च्चयं" इति मु० प्रतौ । ३ "सुहासुहं सामि" इति मु० प्रतौ । ४ "°ग्गहणविहि भाग तह" इति मु० प्रतौ । ५ "(समचउरंसमगुरुलहुसुखगइपरघायउज्जोयं॥९॥ तित्थगरोस्सासायवणिम्मणुवंगाणि तह आइसंघयणं। सुपसत्थवन्नचउतसदसोच्चगोयं ति बायाला॥१०॥) [समचउ (....)गुरुलहुसुखगइतसाइदसगं इय बायालीस सुहपयडी ॥]" इति मु० प्रतौ । ६ "(इग) विगलजाइअसुहखगइऽसाया" इति मु० प्रतौ । ७ "तहऽ-निट्ठ" इति मु० प्रतौ । ८ "उस्सास०" इत्यपि ।

तणुअंगुवंगओरा[1]लराहयतमदसग १० सायममचउरं ।
निमिणुच्चतित्थपरघायअगुरुवरखगइवन्नचऊ ॥१३॥
इय वत्तीसेगारम नरतिरिनिरयाउ २ विगल ३ सुहुमतिगा ३ ।
नरयदुग २ पंच [2]आइमसंघय[3]णं मणुय दुउरालं ॥१४॥
आयवइगिंदिथावर तिन्नि उ छेवट्ठ तिग्दिुगा तिन्नि ।
चउदस चउ दंसणनाण ५ विग्घ ५ पण पुरिस संजलणा ४ ॥१५॥
इक्कारस निद्दुगं २ कुवन्नचउ४-हास-रइ-भय-दुगुंछा ।
तह उवघायं सोलस मिच्छा-ऽऽइमवारसकसाया ॥१६॥
तह थीणतिगं ३ सोलस विउव्विछक्का-ऽऽउ४-सुहुम३-विगलतिगा ३ ।
सुर-नारयाण उज्जोय-उरलदुग तिन्नि [4]मंदरसा ॥१७॥
तिरियदुग-नीय तिन्नि उ मंदरसाओ कुणंति तमतमगा ।
तसचउ-सुवन्नचउ-तेय-कम्म-पंचिंदि-परघाया ॥१८॥
अगुरुलहु-निमिणि-सासा पनरस नपु-मिच्छि दुन्नि जस-साया ।
थिरसुभसेयर अट्ठ उ तेवीसं खगइ-मणुयदुगा ॥१९॥
आइज्ज२-सुभग२-सूसर२-सेयर-संठाण-संघयण-उच्चं ।
एगं सायं सोलस मिच्छम्मि उ वंधु वुच्छिण्णा ॥२०॥
सासण-अविरय-वुच्छिन्न-वंध पणतीस तह य सरिराई ।
कमसो तणु-संठाणं-गुवंग-संघयण-वन्नाई ॥२१॥
थीणतिगवज्जदंसण ६ अणरहियकसाय १२ भयदुगुंछा य ।
नाणं५—तराय५ तीसं पएसवंधम्मि पुण नेया ॥२२॥
वहुदलियाउग-मोहे घिणंति पण सग न मीससासाणा ।
सुहमचयजोग सतरस पण पुं-संजलण नव तित्थं ॥२३॥
निद्दुगं हासछगं तेरस समचउर-वज्जरिसहाणि ।
सूसर-सुभगा-ऽऽइज्जा विउव्वि२—सुरदुग—सुरनराऊ ॥२४॥
सुखगइ असाय [5]चउरो सुराउ—नरयाउ—नारयदुगाणि ।
दुन्नि [6]उ आहारदुगं पंच सुर२—विउव्विदुग२—तित्थं ॥२५॥

---

१ '"लियरेहिं तसदसगाय०" इति मु० प्रतौ । २ "आयम० इति । ह० प्रतौ । ३ "ण" मणुयदुउरालं ।" इति मुद्रितप्रतौ पाठान्तरम् । ४ 'मेचिरिसा (सुरनिरया) । इति मु० प्रतौ । ५ "चवहा" इति मु० प्रतौ । ६ 'य" इत्यपि मु० प्रतौ ।

॥ समाप्तमिदं शतकभाष्यम् ॥

* सप्ततिकाभाष्यम् *

णमिऊण महावीरं कम्मट्ठपरूवणं करिस्सामि ।
वंधोदयसंतेहिं सत्तरियाचुन्निअणुसारा ॥१॥
णाणंतरायदंसणवरणे वेयणियआउगोयाणं ।
सुगमित्ति किंपि दंसिय सेसंपि समासओ वोच्छं ॥२॥
णाणंतरायदसगं [1]वंधहि मिच्छाउ जाव सुहुमोत्ति ।
उदसंतं जा खीणो आवरणं दंसणस्सित्तो ॥३॥
जा सायणु नव [2]वंधी मिच्छा उवरिं छवंधि जाऽपुव्वो ।
अप्पुव्वा जा सुहुमो निद्दादुगविरहिचउवंधी ॥४॥
मिच्छा जा उवसंतं नवसंतं उदयचारिपणगं वा ।
खवगाण वि नवसन्तं जा वायर[3]भागसंखेज्जो ॥५॥
उवरिं खीणदुवरिमं जा छ उ चउ संति चरिमि खीणस्स ।
उदए पुण खवगाणं चत्तारि उ दंसणावरणे ॥६॥
चउपणगं वा उदए खीणदुचरिमं तु जाव अन्ने उ ।
भणियं दंसणवरणं संपइ पमणामि वेयणियं ॥७॥
जाव पमत्तु असायं सायं जोगंत [4]जयहि मिच्छादी ।
अस्सायं सायं वा उदए दो संति भंगचऊ ॥८॥
वंधविणा उ अजोगी जाव दुचरिमं दुसंति ते वुदया ।
चरिमे वि ते वि उदया उदयगयं [5]संति भंगचऊ ॥९॥
आउस्सेगं वंधे एगं उदयम्मि संति दो हुंति ।
जा वंधो उदएगं दो संतं वंधविरमम्मि ॥१०॥
एवं नरतिरियाणं दुसंत अट्ठट्ठभंग चउगइसु ।
आउचए [6]जोग्गाणं नेरइयसुराण पुण एवं ॥११॥
भंगचऊ पत्तेयं जं ते वंधंति आउदुगमेव ।
सव्वेसिम्मुदयसंतं एगेगं वंधपुव्विं तु ॥१२॥

---

१ "वंधहिँ" इत्यपि । २ "वंधा" इत्यपि । ३ "भागसंखिज्जो इत्यपि मुद्रितप्रतौ । ४ "वयहिँ" इत्यपि ।
५ "संत" इत्यपि । ६ "जुग्गाणं" इत्यपि ।

(गतिः समाप्ता)

अट्ठच्छाहिगवीसा सोलस वीसं च बार छा दोसु ।
दो चउसु तीसु [1]एक्कं मिच्छाइसु आउगे भंगा ॥१३॥
गुणठाणेसु आउस्स भंगा इति ॥
आऊ अडवीसविहं भणियं पभणामि [2]संपयं गोयं ।
बंधोदयसंतेहिं णीयं तिग्गियाण मिच्छाण ॥१४॥
ते वि हु तेऊ वाऊ तत्तो वा आगया पुढविमाई ।
जाव न उच्चागोयं बंधहि तावेस भंगो उ ॥१५॥
दो संतं नीयबंधं नीउच्चं उदइ सासणो जाव ।
उच्चं बंधं नीयं च वेयए जाव देसोत्ति ॥१६॥
दो [3]संतमुच्चबंधं उच्चं उदयम्मि जाव सुहुमोत्ति ।
दो संतमुच्चमुदयं उवसंताओ अजोगंतं ॥१७॥
उदसंतं उच्चं चिय अजोगिचरिमम्मि सत्तमो भंगो ।
भणियं गोयं संपइ भणामि मोहं समासेणं ॥१८॥
बावीस [4]एगवीसा सत्तरसं तेरसेव नव पंच ।
चउतिगदुगं च एगं बंधट्ठाणाणि दस मोहे ॥१९॥
मिच्छं कसायसोलस भयं दुगंछा तिवेय[5]अन्नयरं ।
हासरई इयरे वा छ भंग मिच्छस्स बावीसा ॥२०॥
मिच्छनपुंसगरहिया इगवीसा सासणस्स चउभंगा ।
अणइत्थिरहिय सतरस दो भंगा मीसअजयाण ॥२१॥
दुतियकसायविहूणा तेरस देसम्मि नव य विरयम्मि ।
दो दो भंगा नवरं अपमत्ताईण एगेगो ॥२२॥
जं ते हासरइदुगं [6]बंधहि नन्नं तु [7]जाव अप्पुव्वो ।
हासरइभयदुगुंछारहिया पंचेव ते हुंति ॥२३॥
तो पुंकोहाईणं कमेण वोच्छेइ सेसठाणाइं ।
अनियट्टि पंच बंधइ न सेस उदयं च [8]एत्तो य ॥२४॥
एको [9]व दो [10]व चउरो [11]एत्तो एकाहिया दसुक्कोसा ।
ओहेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणाणि नव हुंति ॥२५॥

---

१ "इक्क" इत्यपि । २ "संपइं" इत्यपि । ३ "संत उ" इत्यपि । ४ "इक्कवीसा सत्तरसा" इत्यपि । ५ "मन्नयरं" इत्यपि । ६ "बंधहिं" इत्यपि । ७ "जाइ" इत्यपि । ८-११ "इत्तो" इत्यपि । ९-१० "य" इत्यपि । ११ "इत्तो इक्काहिया" इत्यपि ।

चउ कोहाइ अणाई दुजुयल हासरइअरइसोगाणं ।
वेयतियं एएहिं भंगा चउवीसतिजनामा ॥२६॥

इति संज्ञाकरणम् ॥

अणविगु तिन्नि कसाया जुयलन्नयरं तिवेयअन्नयरं ।
मिच्छं च सत्त उ चउ मिच्छे भंगा तिजा हुंति ॥२७॥
चउवीस संतु सम्मी मिच्छं गंतुं अणंतचयमाणो
बंधावलिया पढमा तत्थुदओ नत्थि णंताणं ॥२८॥
भयगुच्छअणंताणं एगयरे अट्ठ नव य पुण हुंति ।
दुगजोगतिण्हमेगयरखिवणि–तिगुणा ३ तिजा दुसुवि ॥२९॥
दस तिण्हं पि हु खिवणे तिजभंगा २४ अट्ठ सव्वि हुंति तिजा ।
॥२४-८॥
सत्तट्ठनवा एवं सासणमिस्से य नवरं तु ॥३०॥
मिच्छाठाणेणंताणुबंधे मिस्सं च खिवसु जहसंखं ।
चउ चउ तिजा य[1] दोसु वि मिच्छविणासम्मि छक्कुदओ ॥३१॥
भयगुच्छवेयगाणेगयरे सग ७ अट्ठ ८ एगदुगखिवणे ।
तिण्हं दुगजोगाणं[2] ति३ तिज २४ नव तिहिं वि एगतिजो ॥३२॥
सव्वट्ठ तिजा २४ । एवं बिइयकसाएहिं विरहिया देसे ।
पंचाई अट्ठंता उदया[3] सव्वेऽट्ठ तिज हुंति ॥३३॥
तइयकसायविहूणा विरए चउराइ सत्तगंता उ ।
उदया[4] सव्वट्ठ तिजा २४-८ तत्थ उ सम्मे विसेसो यं ॥३४॥
जा वेयगसम्मधरा उदया ताणं तु हुंति न [5]उ पढमा ।
खइयगउवसमियाणं चउत्थउदया नवि य हुंति ॥३५॥
पणबंधि बार भंगा कसायवेएहिं दुन्ह उदयम्मि ।
पंचाओ य चउक्कं संकममाणस्स [6]ते भन्ने ॥३६॥
जावइया[7] बज्झंती तस्समभंगा य तत्थ य हवंति ।
एगो अबंधगस्स उ एगारस सव्वि एगुदए ॥३७॥
चउरो जईउ देसाउ पंच अजयाउ छा उ जाऽपुव्वा ।
सत्तापमत्त देसट्ठ नव उ अजयंत मिच्छाउ ॥३८॥

---

१ "दो वि हु मिस्स विणा" इत्यपि । २ "ति वि तिज नव तिहिं वि" इत्यपि । ३ "सव्व-ऽट्ठ" इत्यपि । ४ "सव्वेऽट्ठ" इत्यपि । ५ "हु" इत्यपि । ६ "ते वऽन्ने" इत्यपि । ७ "बंधंती इत्यपि ।

दस मिच्छे अनियट्टी वेयइ दो एगु वा सहुमु एगं ।
उदया गुणेसु एवं भंगविगप्पा इमे तेसु ॥३९॥
अट्ठ य चउ चउ चउरट्ठगा य चउरो य हुंति तिज२४ नामा ।
चउतीस भंग ८ एगो ९ सुहुमंता हुंति जहसंखं ॥४०॥

उदओ सम्मत्तो ॥

अट्ठग सत्तग छच्चउ[1] तियदुगएक्काहिया भवे वीसा ।
तेरस बारेक्कारस एत्तो पंचाइ एगूणा ॥४१॥
मोहो सव्वो अडवीस सम्मि [2]उव्वलिइ होइ सगवीसा ।
मिस्सुव्वलिए छव्वीस अणाइमिच्छस्स वा होइ ॥४२॥
जहसंखं अणचउ ४ मिच्छ[3]मिस्स २ सम्मं च अट्ठ य कसाया८।
नपु१२ [4]मित्थिहासछप्पुं खविए मोहाउ २८ जा चउरो ॥४३॥
[5]एक्केक्कम्मि य खीणे संजलणे सेस संत जावेगो ।

गुणस्थानेषु सत्तास्थानान्याह—

मिच्छे जा छव्वीसा अट्ठावीसा य सासाणे ॥४४॥
चउवीसंता छव्वीसवज्जिया मिस्सि हुंति संताउ ।
अडचउतिदुएगहिया वीसा अजयाइचउसु पि ॥४५॥
तो अडचउएगहिया वीसा[6] उवसंत जाव सव्वेसिं ।
तेराइ खवगि बायरि एगंता [7]एगु सुहुमम्मि ॥४६॥
अडवीससंतकम्मो सम्मं उव्वलिय जाइ मीसम्मि ।
[8]मिच्छादिट्ठी एवं सत्तावीसा हवइ मीसे ॥४७॥

सांप्रतं गुणस्थानविषयबन्धोदयेषु सत्तास्थानान्याह—

जे गुणठाणगसंता ते ते ताणं पि बंधउदएसु ।
[9]मोत्तुं बायरखवगो अणसम्मविसेसिउदए वि ॥४८॥
[10]इयवीसाई चउरो पणचइ चउचइ इगार पण चारि ।
तिब्बंधाइसु संतं बंधसमं एगअहियं च ॥४९॥

---

१ "तिगदुगएगाहिया" इत्यपि । २ "उव्वलिए" इत्यपि । ३ "०मीस०" इत्यपि । ४ "इत्थि" इत्यपि । ५ "इक्किक्कम्मि उ" इत्यपि । ६ "उवसंतु" इत्यपि । ७ "एग" इत्यपि । ८ 'मिच्छदि०" इत्यपि । ९ "अणसम्मविसेसुदए बायरखवगं च मुत्तणा ॥४८॥" इति मुद्रितप्रतौ पाठान्तरम् । १० इयं गाथाद्वयी हस्तलिखितप्रतौ, मुद्रितप्रतौ पुनरित्थं दृश्यते । 'मिच्छुदए अणरहिए अट्ठावीसे च हुंति संतम्मि । सम्मजुइ उदइ इगवीस नत्थि तिदुवीससम्मिघिणा ॥४९॥ इगवीसाई चउरो पणचइ चउचइ इगार पण चारि । तियबंधाइसु संतं बंधसमं एगअहियं च ॥५०॥ इति ।

सम्मजुय उदइ इगवीस नत्थि तिदुवीस नत्थि विणा ।
मिच्छुदए अणरहिए अट्ठावीसेव संतम्मि ॥५०॥
पुंचयनपित्थिसंते जुगवं थक्के अन्नेइ एक्कुदओ ।
चउबंध संतिगारस जुगवं सत्तक्खए चउरो ॥५१॥
पंढगपट्ठवगेयं एवं थीए वि नवरि नपि खीणे ।
[1]ता इत्थिउदयसंतं पुंबंधं जुगवुच्छेएइ ॥५२॥
पुरिसो पट्ठवगो पुण सव्विगवीसाइफासए कमसो ।
हासछगखवणकाले पुंबंधुदया परं थक्का ॥५३॥
सम्म विणा उदएसुं संतविभागो उ अजयमाईणं ।
चउरट्ठवीस उवसंतसम्मि खीणम्मि इगवीसा ॥५४॥

जीवस्थानेषु बन्धादीनाह—

अट्ठसु पंचसु एगे जियठाणे एग दुन्नि दस बंधा ।
तिग चउ नव उदयम्मि उ तिग तिग पन्नरस संतम्मि ॥५५॥

गतिषु बंधादीनाह—

बंधट्ठाणा तिन्नि उ पढमा सुरनारएसु चउ तिरिसु ।
सुरनारयाण छाई तिरि पंचाई दसंतुदया ॥५६॥
इगवीसंता तेवीसवज्जिया छावि संति तिसु गइसु ।
मणुयगईए सव्वे बंधोदयसंतठाणाणि ॥५७॥

मोहो सम्मत्तो ॥

तेवीसपन्नवीसा छव्वीसा अट्ठवीस गुणतीसा ।
[2]तीसेगतीसमेगं बंधट्ठाणाणि नामस्स ॥५८॥
वन्नचउतेयकम्मा निम्माणुवघायमगुरुलहुयं च ।
नव धुवबंधा एए सव्वत्थ मिलंति जा बंधो ॥५९॥
थिरसुभ२ सुस्सर३ सुखगइ४ सुभग५ जसा६ देय७ सियरसत्तदुगा
संघयणा ६ संठाणा छद्धा-पिंडा हवंतेए ॥६०॥
[3]नवगाविरुद्धगहणे तज्जा भंगा हवंति सव्वत्थ ।
छायालसयाणि अट्ठुत्तराणि अविसेसिए धुवओ ॥६१॥

१ "तो इत्थिउदय सन्त पुबंधं जुगव छेएइ" इति पाठो मुद्रितप्रतौ दृश्यते । किन्तु स छन्दभङ्गादिहेतुना ऽशुद्धः प्रतिभाति। २ "तिसिक्कतिसमेगं" इति मुद्रितप्रतौ पाठोऽस्ति, किन्तु सोऽशुद्धः । ३ "नवप वि०" इत्यपि ।

जत्थ य अट्ठ य भंगा तत्थ य थिरसुभर जसेहिँ३ सियरेहिँ ३ ।
उट्ठिंति संकरहिया आयवउज्जोय [1]दुगि दुगुणा ॥६२॥

बंधस्थानानि विवरयन्नाह गाथाष्टादशकेन–

नियगइदुगनियजाई उरलं हुंडं च थावरं अथिरं ।
अणएज्ज असुभदूभग अपज्जनवधुवय अजसं च ॥६३॥
पत्तेयदुगेगयरं सुहुमदुगेगयरिगिंदितेवीसा ।
[2]एगिंदियाइतिरिनर बंधहिं मिच्छेण चउभंगा ॥६४॥
सोसासपराधाए खित्ते पणुवीसिगिंदिपज्जस्स ।
[3]पत्तेयसुहुमसुभथिर जसजुयलिहिँ वीस भंगाओ ॥६५॥

विरुद्धपरित्यागेन ज्ञेयाः ।

नेरइयवज्ज मिच्छो बंधइ एसा वि होइ छव्वीसा ।
उज्जोयआयवाणं एगयरे भंगसोलसगं ॥६६॥
साहारणसुहमेहिं उज्जोयजसायवा न [4]वज्झंति ।
अपजत्तेणं च तहा पसत्थपरियत्तमाणीओ ॥६७॥
[5] एगिंदिवज्जतिरिमणुअपज्ज पणवीस एत्थ पणभंगा ।
तसबायरउरलदुगं सेवट्टं तह य पत्तेयं ॥६८॥
[6] तेवीससेससहियं नरतिरिएगिंदियाइ बंधंति ।
नारयअडवीसेवं बंधहि तिरिमणुयपंचिंदी ॥६९॥

सा एवं–

नियगइदुगनियजाईबायरपरघाय[7]पज्जपत्तेयं ।
नवधुव सासु तसं चिय वेउव्विदुगं च हुंडं च ॥७०॥
अपसत्थपिंडसहिया संघयणं [8]मोत्तु मिच्छ बंधेइ ।
भंग विणा मिच्छाई पुव्वंता सा वि सुरजोग्गा ॥७१॥
नवरं भंगा अट्ठ उ समचउरंसं पसत्थपिंडं च ।
सा तित्थि इगुणतीसा [9]बंधहिँ अजयाइणो अहवा ॥७२॥

---

१ "दुखि" इत्यपि ह० प्रतौ । २ एगिंदिया य तिरि०" इत्यपि । ह० प्रतौ ३ "बायरपत्तेयथिरासुभजसि सियरेहिँ वीसांसा ॥६५॥" इत्यपि मुद्रितप्रतौ पाठान्तरम् । ४ 'बंधंति" इति मु० प्रतौ । ५ "अपिअत्तेविगलतिरिमणुयजुगपणवीसइत्थ पण भंगा" इति मुद्रितप्रतौ पाठान्तरम । ६ "सेसतेवीस०" इति मुद्रितप्रतौ पाठोऽस्ति परं तु स छन्दभङ्गकारणेना-ऽशुद्धो भाति । ७ "पज्जत्त०" इति तु मुद्रितप्रतौ पाठोऽपि, किन्तु स न सम्यक्, छन्दोभङ्गत्वात् । ८ "मुत्तु मिच्छु" इत्यपि । ९ "बंधइ" इति मु० प्रतौ ।

नियगइदुगनियजाई उरलदुगं बायरं पराघायं ।
पत्तेय पज्ज नव धुव नवपिंडा उ तसं सासं ॥७३॥
नरतिरिय [1]जोग्गमिच्छाइ [2]दोन्नि बंधंति पिंडगा भंगा ।
विगलट्ठभंग हुंडं [3]सेवट्ठं हीणपिंडिल्ला ॥७४॥
संघयणा संठाणा छावि हु मिच्छाण हुंति बंधम्मि ।
[4]सेवट्ठहुंडविरहे पण सासणि तयणुभंगा उ ॥७५॥
[5]पढमं सुरनेरइया मिस्साइजया नराण पाउग्गं ।
अडभंग [6]सत्थपिंडा एस विसेसो इगुणतीसे ॥७६॥
नरइगुणतीस तीसा तित्थेणं होइ [7]अजउ बंधेइ ।
अहवु [8]ज्जोयण तीसा तिरि गुण[9]तीसाइ तह सव्वं ॥७७॥
अहवा सुरअडवीसाऽऽ[10]हारगदुजुया अभंग वरतीसा ।
तित्थेणं इगतीसा [11]बंधहि अपमत्तअपुव्वा ॥७८॥
जसकित्तिमपुव्वाई [12]बंधहि उवसंतमाइ न उ नामं ।
इय नामबंध[13]ठाणाइ भंगसंखा इमा तेसु ॥७९॥
चउ४[14]पणवीसा२५सोलस१६नव९ बाणउई सया य अडयाला ।
[15]इगयाउत्तरछायालसया४६४१[16]एक्केक्कबंधविही ॥८०॥

गुणस्थानेषु बन्धस्थानान्याह–

मिच्छो छ उ तीसंता सासणु[17]अजया य तिन्नि तीसंता ।
देसपमत्ता मीसा बंधहि[*] वीसा नवट्ठहिया ॥८१॥
अडवीसाई चउरो बंधइ अपमत्तु पंच अप्पुव्वो ।
एगमनियट्टिसुहुमा सेसा नामं न बंधंति ॥८२॥

जीवस्थानेषु बन्धस्थानान्याह–

एगेगतीस सन्नी पज्जो अडवीस पज्जु अमणो वि ।
सेसा उ पंचठाणा [18]बंधइ सव्वे वि जियठाणा ॥८३॥

---

१. "जुग०" इत्यपि । २. "दुन्नि" इत्यपि । ३. "छेवट्ठं" इत्यपि । ४. "छेवट्ठ०" इत्यपि । ५. बंधहि सुरनेरइया मिस्सा अजया य मणुयपाउग्गं ।" इति मुद्रितप्रतौ पाठान्तरम् । ६. "०पसत्थ०" इति मु० प्रतौ । ७. "अजय" इति मु० प्रतौ । ८. "ज्जोयण०" इत्यपि मु० प्रतौ । ९. "०तीसाइ" इत्यपि मु० प्रतौ । १०. "०हारदुगजुया" इत्यपि मु० प्रतौ । ११-१२. "बंधहिं" इत्यपि मु० । १३. "०ठाणाई" इत्यपि मु० । १४. "पणु०" इत्यपि मु० । १५. "इगुयालुत्तर०" इत्यपि मु० । १६. "इक्किक्क०" इत्यपि मु० । १७. "अजओ" इत्यपि मु० । १८. "बंधहिं" इत्यपि मु० ।

जत्थ य अट्ठ य भंगा तत्थ य थिरसुभ२ जसेहिं३ सियरेहिं ३ ।
उद्विंति संकरहिया आयवउज्जोय [1]दुगि दुगुणा ॥६२॥

वंधस्थानानि विवरयन्नाह गाथाष्टादशकेन–

नियगइदुगनियजाई उरलं हुंडं च थावरं अथिरं ।
अणएज्ज असुभदूभग अपज्जनवधुवय अजसं च ॥६३॥
पत्तेयदुगेगयरं सुहुमदुगेगयरिगिंदितेवीसा ।
[2]एगिंदियाइतिरिनर वंधहिं मिच्छेण चउभंगा ॥६४॥
सोसासपराघाए खित्ते पणुवीसिगिंदिपज्जस्स ।
[3]पत्तेयसुहुमसुभथिर जसजुयलिहिं वीस भंगाओ ॥६५॥

विरुद्धपरित्यागेन ज्ञेयाः ।

नेरइयवज्ज मिच्छो वंधइ एसा वि होइ छव्वीसा ।
उज्जोयआयवाणं एगयरे भंगसोलसगं ॥६६॥
साहारणसुहमेहिं उज्जोयजसायवा न [4]वज्झंति ।
अपजत्तेणं च तहा पसत्थपरियत्तमाणीओ ॥६७॥
[5] एगिंदिवज्जतिरिमणुअपज्ज पणवीस एत्थ पणभंगा ।
तसवायरउरलदुगं सेवट्ठं तह य पत्तेयं ॥६८॥
[6] तेवीससेससहियं नरतिरिएगिंदियाइ वंधंति ।
नारयअडवीसेवं वंधहि तिरिमणुयपंचिंदी ॥६९॥

सा एवं–

नियगइदुगनियजाईवायरपरघाय[7]पज्जपत्तेयं ।
नवधुव सासु तसं चिय वेउव्विदुगं च हुंडं च ॥७०॥
अपसत्थपिंडसहिया संघयणं [8]मोत्तु मिच्छ वंधेइ ।
भंग विणा मिच्छाई पुव्वंता सा वि सुरजोग्गा ॥७१॥
नवरं भंगा अट्ठ उ समचउरंसं पसत्थपिंडं च ।
सा तित्थि इगुणतीसा [9]वंधहिं अजयाइणो अहवा ॥७२॥

---

१ "दुवि" इत्यपि ह० प्रतौ । २ एगिंदिया य तिरि०" इत्यपि । ह० प्रतौ ३ "बायरपत्तेयथिरासुभजसि सियरेहिं वीसांसा ॥६५॥" इत्यपि मुद्रितप्रतौ पाठान्तरम् । ४ ' बधंति" इति मु० प्रतौ । ५ "अपिजत्तविगलतिरिमणुयजुग्गपणवीसइत्थ पण मंगा" इति मुद्रितप्रतौ पाठान्तरम । ६ "सेसतेवीस०" इति मुद्रितप्रतौ पाठोऽस्ति परं तु स छन्दभङ्गकारणेना-ऽशुद्धो भाति । ७ "पज्जत्त०" इति तु मुद्रितप्रतौ पाठोऽस्ति, किन्तु स न सम्यक्, छन्दोभङ्गत्वात् । ८ "मुत्तू मिच्छु" इत्यपि । ९ "वंधइ" इति मु० प्रतौ ।

नियगइदुगनियजाई उरलदुगं बायरं पराघायं ।
पत्तेय पज्ज नव धुव नवपिंडा उ तसं सासं ॥७३॥
नरतिरिय [1]जोग्गमिच्छाइ [2]दोन्नि बंधंति पिंडजा भंगा ।
विगलइभंग हुंडं [3]सेवट्ठं हीणपिंडिल्ला ॥७४॥
संघयणा संठाणा छावि हु मिच्छाण हुंति बंधम्मि ।
[4]सेवट्ठहुंडविरहे पण सासणि तयणुभंगा उ ॥७५॥
[5]पढमं सुरनेरइया मिस्साइजया नराण पाउग्गं ।
अडभंग [6]सत्थपिंडा एस विसेसो इगुणतीसे ॥७६॥
नरइगुणतीस तीसा तित्थेणं होइ [7]अजउ बंधेइ ।
अहवु [8]ज्जोयण तीसा तिरि गुण[9]तीसाइ तह सव्वं ॥७७॥
अहवा सुरअडवीसाऽऽ[10]हारगदुजुया अभंग बरतीसा ।
तित्थेणं इगतीसा [11]बंधहि अपमत्तअप्पुव्वा ॥७८॥
जसकित्तिमपुव्वाई [12]बंधहि उवसंतमाइ न उ नामं ।
इय नामबंध[13]ठाणाइ भंगसंखा इमा तेसु ॥७९॥
चउ ४[14]पणवीसा २५सोलस१६नव९ बाणउई सया य अडयाला ।
[15]इगयाउत्तरछायालसया४६४१[16]एक्के क्कबंधविही ॥८०॥

गुणस्थानेषु बन्धस्थानान्याह–

मिच्छो छ उ तीसंता सासणु[17]अजया य तिन्नि तीसंता ।
देसपमत्ता मीसा बंधहिं वीसा नवट्ठहिया ॥८१॥
अडवीसाई चउरो बंधइ अपमत्तु पंच अप्पुव्वो ।
एगमनियट्टिसुहुमा सेसा नामं न बंधंति ॥८२॥

जीवस्थानेषु बन्धस्थानान्याह–

एगेगतीस सन्नी पज्जो अडवीस पज्जु अमणो वि ।
सेसा उ पंचठाणा [18]बंधइ सव्वे वि जियठाणा ॥८३॥

१. "जुग्ग०" इत्यपि । २. "दुन्नि" इत्यपि । ३. "छेवट्ठं" इत्यपि । ४. "छेवट्ठ०" इत्यपि । ५. बंधहि सुरनेरइया मिस्सा अजया य मणुयपाउग्गं ।" इति मुद्रितप्रतौ पाठान्तरम् । ६. "०पसत्थ०" इति मु० प्रतौ । ७. "अजय" इति मु. प्रतौ । ८. "ज्जोइण०" इत्यपि मु. प्रतौ । ९. "०तीसाई" इत्यपि मु० प्रतौ । १०. "०हारदुगजुया" इत्यपि मु० प्रतौ । ११-१२. "बंधहिं" इत्यपि मु० । १३. "०ठाणाई" इत्यपि मु० । १४. "पणु०" इत्यपि मु० । १५. "इगुयालुत्तर०" इत्यपि मु० । १६. "इक्कि०" इत्यपि मु० । १७. "अजओ" इत्यपि मु० । १८ "बंधहिं" इत्यपि मु० ।

गतिषु तान्याह-

मणुएसु सव्वि बंधा पणछन्नववीस तीस देवेसु ।
तिरिएसु छ६ तीसंता नरए गुणतीसतीसा य ॥८४॥
पणयाल सव्वि नरि सत्ततीस तेरस सहस्स नव य सया ।
तिरि पज्जि असणि मिच्छे ते छव्वीसा असम्मजया ॥८५॥
ते सतरसहिय [1]जियबारसेसु अट्ठसय तेरस सहस्सा ।
छप्पन्नहिय सुरेसु बत्तीसहिया य ते नरए ॥८६॥
छन्नवइसयट्ठहिया सोलस बत्तीस सोल सोलस य ।
चउ पंच एगमेगं साणाइसु भंग जा सुहुमो ॥८७॥

॥ इति जीवस्थानादिषु भङ्गाः ॥

॥ बंधो समत्तो ॥

वीसिगवीसा चउवीसि [2]गाउ इगतीसमंत एगहिया ।
उदयट्ठाणाणि भवे नव अट्ठ य हुंति नामस्स ॥८८॥
[3]तेयाकम्मागुरुलहु थिरसुभजुयलाणि निम्म वन्नचउ ।
एया बारस पयडी धुवोदया हुंति नामस्स ॥८९॥
[4]संघयणा६संठाणा६सुभगं१आदेय१जस१ति३जुयलाणि ।
[5]रासीगुणेण भंगा अडसीया दो सया हुंति ॥९०॥ करणं ॥
पज्जत्तजसादेयं सुभगजुयलेहि[7] नव य भंगाओ ।
अपसत्थेसु अपज्जे पज्जट्ठ उ करणजवहिल्लं ॥९१॥
[6]साहारणे ण आयवु-जोयजसायव अपज्जसुहुमेहिं ।
साहारुज्जोयजसायवे य नोदिंति सुहुमतसे ॥९२॥

उदयस्थानानि विवरयन्नाह त्रिंशद्भिर्गाथाभिः-

नियगइदुगनियजाई थावरनादेय[7]दुहयधुवपयडी ।
सुहुमापज्जजसाणं दुगदुग[8]एगयरिं पणभंगा ॥९३॥
थावरइगवीसेसा अवणिय अणुपुव्वि [9]घत्तियं एयं ।
पत्तेयदुगेगयरं हुंडं उरलं [10]उवग्घायं ॥९४॥

१. "०बारसजिएसु" इत्यपि मु० । २. "०गाइ०" इत्यपि । ३ "इयं गाथा हस्तलिखितप्रतौ नास्ति । ४ संघयणं संठाणं सुभगआ०" इति मु. प्रतौ । ५ "रासिगुणयो" इति मु. प्रतौ । ६ "साहारणे न" इति मु० प्रतौ । ७ "दुभग०" इत्यपि मु. । ८ "एगयरे य" इति ह. प्रतौ । ९ "घित्तिउं" इत्यपि मु. प्रतौ । १० "च उवघायं" इत्यपि मु. प्रतौ ।

दस भंगा [1]उरलम्मी विउव्विपज्जेगु [2]जाण चउवीसे।
[3]बायरविउव्विदेहं पत्तेयं [4]वित्थ य विसेमो ॥९५॥
पज्जचउवीस पणुवीस होइ परघाय सत्त तहिं भंगा।
पत्तेय१सुहुम२जसजुयलि [5]छाओ एक्को य वेउव्वे ॥९६॥
ऊसासे छव्वीसा तत्थ वि ते सत्त अहव [6]उज्जोयं।४।
अहवा वि आयवेणं २ चउरो ४ दो२ गिंदि [7]छव्वीसा ॥९७॥
सासछव्वीसमज्झे आयवउज्जोयएगयरि छूढे।
सत्तावीस छ ६ भंगा एगिंदियभंगबायालं ॥९८॥
जा इगवीसा एगिंदियस्स विगलाण होइ सा चेव।
किंतु तसबायरं चिय पाठो भंगा य [8]तिन्नेवं ॥९९॥
अपसत्थपज्जभंगो एगो नरएसु अट्ठ वि सुरेसु।
नव तिरिनरेसु जवडिल्लि भंग सेसो उ विगलकमो ॥१००॥
विगलइग [9]वीसि अणुपुव्विविरहिए खिवसु हुंडसेवट्टे।
उरलदुगं उवघायं पत्तेयं चेव छव्वीसा ॥१०१॥
तं भंगतियं सा वि हु दुखगइ [10]परघायखिवणि अडवीसा।
भंगा य [11]दोन्नि इत्थं अपज्जभंगा जओ नत्थि ॥१०२॥
ऊसासुज्जोयाणेक्कयरे गुणतीस भंग चत्तारि।
सासगुणतीसतीसा सुरदुगउज्जोय एगयरे ॥१०३॥
[12]छब्भंगा सर तीसा इगतीसोज्जोयएण भंगचऊ।
बेइंदियबावीसा छावट्ठी सव्वविगलाणं ॥१०४॥
सगलाणं छव्वीसा एवं नवरं तु रासिजा भंगा २८८।
अप्पज्जभंग अप्पसत्थजुत्त १ अडवीस पुण एवं ॥१०५॥
खगईदुगएगयरे परघाए खिव्वि रासिजा २८८ दुगुणा।
रासिज२८८भंग चउगुणा४ गुणतीसे सासि जोए वा ॥१०६॥
ऊसासे गुणतीसे सरदुगउज्जोयएगयरखेवे।

---

१ 'उरलम्मि उ' इत्यपि मु। २ "जाणि" इति ह. प्रतौ। ३ "बायर०" इति मु। ४ "इत्थ" इत्यपि मु०। ५ "छा इक्को उ" इति मु०। ६ "उज्जोए" इत्यपि मु.। ७ "छव्वीसे" इत्यपि। ८ "तिन्नेव" इत्यपि मु.। ९ "०वीस" इति मु.। १० "परिघा०" इति मु.। ११ "दुन्नि" इति मु। १२ "छ य" इत्यपि मु.।

[1]छग्गुणरासिजभंगा२८८ तीसाइ पुणो वि सरतीसा ॥१०७॥
उज्जोएणिगतीसा चउग्गुणा ४ रासिजा उ उदयंसा ।
छलहियगुणवन्नसया भंगा पंचिंदितिरियाणं ॥१०८॥
उज्जोयरहियतिरिविहि सामन्ननराण अत्थि सव्वो वि ।
दुगहियछव्वीससया भंगाणं ताण तो हुंति ॥१०९॥
वेउव्वियपणुवीसा वेउव्विदुगं समंतचउरंसं ।
पत्तेयं उवघायं सिगवीसणुपुव्विरहिया य ॥११०॥
अडभंग सत्तवीस वि सुखगइ [2]परघायसंजुय तहेव ।
सासुज्जोएगयरे अडवीस दु अट्ठ २।८ जवड्डिल्ला ॥१११॥
उज्जोयम्सरेगयरि सास अडवीस होइ गुणतीसा ।
जवडिल्ला दो य अठा उज्जोए तीस जवडट्ठा ॥११२॥
तिरि छप्पन्नं भंगा नरेसु एमेव भंगपणतीसा ।
जं उज्जोओ जईणं तहि [3]पसत्था य जवडिल्ला ॥११३॥
आहारसंजयाण वि एवं आहारगं तहिं वच्चं ।
[4]एक्केक्को वि य भंगा सव्वत्थ वि सत्त मिलिया वि ॥११४॥
नरगइपणिंदिजाई तसवायरपज्जसुभगधुवपयडी ।
आदेयजसा वीसं तित्थेणिगवीस केवलिणो ॥११५॥
उरलदुगं सट्ठाणं [5]पत्तेगुवघायवज्जरिसहं च ।
सह वीसाए छव्वीसा सत्तवीसा य तित्थेणं ॥११६॥
स च्चेव य छव्वीसा परघाउस्सासगइसरेगयरं ।
पक्खिविय भवे तीसा एगत्तीसा य तित्थेणं ॥११७॥
केवलिणो तीसुदए सरंमि रुद्धे भवे इगुणतीसा ।
अडवीस सासरोहे अहवा तित्थयर इगतीसा ॥११८॥
सररोहि तीस सासम्मि गूणिया एवमट्ठ मणुयगई ।
तससुहयपज्जवायरपणिंदिया-ऽऽ[6]एज्जयजसेहिं ॥११९॥
नव तित्थिण केवलिणो सव्वे भंगट्ठ पुव्वगइयोण ।
मणुयाण सव्वि भंगा छव्वीससया उ बावन्ना ॥१२०॥

---

१ "छग्गुणा" इत्यपि मु. । २ "०परिघाय०" इति ह. प्रतौ । ३ "च सत्था" इति ह. । ४ "इक्किक्को विय" इत्यपि मु । ५ "पत्तेयु०" इत्यपि मु. । ६ "०इज्ज०" इत्यपि मु. ।

नियएगवीसजुत्ता विउव्वितिरिसरिस हुंति देवुदया ।
चउसट्ठि देवभंगा अपसत्था पंच नरएसु ॥१२१॥

उदयेषु भङ्गसंख्या ॥

इग बेयालिक्कारस तेत्तीसा छस्सयाणि तेत्तीसा ।
बारस सत्तरससयाणहिगाणि विपंचसीईहिं ॥१२२॥
अउणत्तीसेगारससयहियसत्तरसपंचसट्ठीहिं ।
एक्केक्कगं च वीसादट्ठुदयंतेसु उदयविही ॥१२३॥

उदयस्थान.	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८
भङ्गाः	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२९१७	११६५	१	१

बन्धस्थानेषु उदयानाह-

इगतीसंता इगवीसमाइणो सव्वि उदय विज्जंति ।
तीसंतबंधगेसु[1] चउवीसा [2]मोत्तु अडवीसे ॥१२४॥
गुणतीसतीस उदया इगतीसे एगबंधि तीसेव ।
चउवीसा [3]पणवीसा [4]मोत्तुमबंधम्मि दस सेसा ॥१२५॥

सांप्रतं सर्वोदयभङ्गसंख्यापूर्वकं सर्वस्थानेषु संभवितोदयभङ्गसंख्यामाह-

सत्तत्तरी सयाइं एकाणउयाइं सव्वभंगाणं ७७९१।
जइ१८सुर६४नरय५विहूणा तेवीसे बंधि सेसुदया७७०४॥१२६॥
[5]नारय५जई१८विहूणा पुण छव्वीसे य पणवीसे य ७७६८।
केवलिरहिया८उदया गुणतीसे तीसबंधे य ७७८३॥१२७॥
पणसया [6]बासीया ५०८२ अडवीसे बंधि जमिह तिरिउरला ।
देहेणापज्जिपुणा पढमे संघयणसंठाणे ॥१२८॥
अडयालं भंगसयं१४८इगतीसे एगबंधि दुगसयरी ।७२
अट्ठाणवई सव्वे अबंधए हुंति उदयंसा ॥१२९॥

॥ इति बन्धस्थानेषु उदयभङ्गसंख्या ॥

सांप्रतं गुणस्थानेषु उदयस्थानान्याह-

१ "मुत्तु" इत्यपि मु । २ "०अदमो" इत्यपि हृ० । ३ "पणु०" इत्यपि मु । ४ "मुत्तु" इत्यपि मु० । ५ "नरयजइविहूणा पुण छव्वीसे पणवीसबंधे य" । इत्यपि मुद्रितप्रतौ । ६ "बासीती" इत्यपि मु. ।

इगतीसंता इगवीसमाइणो मिच्छि सव्वि उदयाओ ।
[2]छव्वीसरहिया ते चेव उ सत्त सासाणे ॥१३०॥
[2]णतीसाई तिन्नि उ इगतीसंता उ मिस्सगुणठाणे ।
चउवीसरहिय अजए देसे चउछेग-२४-२६-२१-वीसूणा॥१३१॥
विरए चेवं नवरं इगतीसाए य रहिय अपमत्तो ।
गुणतीसतीस पुव्वा जा खीणो तीस जोगेवं ॥१३२॥
चउपणअहिया वीसा नव अट्ठ य [1]मोत्तु अट्ठ उदयाओ ।
नव अट्ठ अजोगंमी भंगोवाओ इमो तेसु ॥१३३॥
सुहुमतिगं सुहुमतसा मिच्छे इगविगल जाव सासाणे ।
उदया [2]वि न संतेए सासाणे नरगइगवीसा ॥१३४॥
[3]एगिंदिसु छव्वीसा नरतिरि गुणतीसतीस वुज्जोई ।
सुरवज्जा पणवीसा इगतीसा तिरिसगलसेसा ॥१३५॥

मिश्रे विशेषमाह–

नरतिरिए गुणतीसा तीस वि जोएण नत्थिणमीसाण ।
अण[4]एज्जदुहयमजसं देसाईणं न य उदेइ ॥१३६॥
गुणतीसंतुद[5]एहिं संजयदेसा न हुंतुरलदेहा ।
आहारनरूज्जोया जइस्सऽपुव्वऽट्ठ केवलिणो ॥१३७॥
संघयणे पढमे च्चिय सेढी तिन्नाइ अन्नि उवसमगे ।
तित्थयरे समचउरं सरखगई सुप्पसत्थिच्चि ॥१३८॥
नियउदयभंगसंखा अन्नोग्गरहिया भवे निययसंखा ।
गुणठाणे गुणठाणे भंग च्चिय [6]संपयं वुच्छं ॥१३९॥
सत्तत्तरितेवत्तरि ७७७३ भंगसया मिच्छसासणे एवं ।
चारि सहस्सा सगनउय ४०९७मीसि चउतीस पणसट्ठा३४६५
॥१४०॥
अजए इगवन्नसया इगचत्ता ५१४१देसि चउसयतिचत्ता४४३ ।
अट्ठवन्नसयं छट्ठे १५८ अडयालसयं १४८ तु अपमत्ते ॥१४१॥

---

१ "मुत्तु" इत्यपि मु०। २ "य" इत्यपि मु०। ३ इयंगाथा मुद्रितप्रतावित्थम्–'सगलतिरिसेसइगतीस असुरपणुवीसिगिंदि छव्वीसा । तिरिजोई विगलतीसा तिरिमणुयाणं च गुणतीसा" इति । ४ "मणुइज्ज" इत्यपि मु० । ५ "०एसु" इत्यपि मु० । ६ "संपइं" इत्यपि मु० ।

उवरिं जा उवसंतो विसत्तरी ७२ खीणमोहि चउवीसा ७४ ।
अडचत्त ४८ सजोगम्मी दो भंगा चरिमगुणठाणे ॥१४२॥

जीवस्थानेपूदयानाह—

छव्वीसंता सुहुमे सगवीसंता य बायरे उदया ।
इगतीसंता चउवीसहीण समणेगवीसाई ॥१४३॥
विगलासमणेसु ते वि हु पणुवीसा सत्तवीस विणु छाओ ।
पज्जि [1]अपज्जाणं निज दो दो उरलोदया पढमा ॥१४४॥

जीवस्थानेषु उदयस्थानकभङ्गसंख्यामाह—

सुहमेयरेसु तिय तिय ३ अपज्जि पज्जेसु सत्त गुणतीसं ।
सन्नि अपज्जे चउरो दो दो सेसेसु ऽपज्जेसु ॥१४५॥
छावत्तरि इगसत्तरि समणे विगलेसु वीस पत्तेयं ।
असणे गुणवन्नसया चउसट्ठिया जीवउदयंसा ॥१४६॥

गतिषूदयस्थानान्याह—

इगपणसगट्ठनवहियवीसा नरगे सुरेसु तीसा वि ।
नरुदय--चउवीसूणा नवट्ठवीसूण--तिरिएसु ॥१४७॥
उदयंस पंच नरए तिरिए पण सहस सयरि भंगाणं ।
देवेसुं चउसट्ठी नरेसु छव्वीसबावन्ना ॥१४८॥

गुणस्थानजीवस्थानगतीनां बन्धेषूदयानतिदिशन्नाह—

गुणतीसंता उदया अडवीसे नत्थि जाव मीसोत्ति ।
निगतीस तित्थबंधे इगतीसचयाइ ३१ गुणसरिसा ॥१४९॥
पणसगअहिया वीसा तेवीसचए न होइ सगलाणं ।
गुणजियगईण सरिसावसेसबंधेसु उदयाओ ॥१५०॥

मिश्रस्यैकोनत्रिंशद्बन्धे एकोनत्रिंशदुदयः ॥

॥ उदओ सम्मत्तो ॥

तिदुनवई गुणनवई [2]अट्ठच्छडसी असी य गुणसी य ।
अट्ठयछप्पन्नसयरि नव अट्ठ य नामसंताणि ॥१५१॥
[3]पडिपुन्नु नासु तिणवइ तित्थविणा दुणवई य सा होइ ।
चउआहारगरहिया ता ९३-९२ गुणनवई य अडसीया ॥१५२॥

१ "अपज्जत्ताणं निय दो" इत्यपि । २ 'अडसी छडसी असीइ गुणसीइ ।" इत्यपि मु० । ३ "पडिपुन्न" इत्यपि मु० ।

[1]सुरदुगनरयदुगे वा एगयरे नासिए हवइ छासी ।
असइ विउव्विचउक्के दुगअन्नयरे य उव्वलिए ॥१५३॥
मणुयदुगे उव्वलिए [2]अडसत्तरिं सत्तखवणरहियाण ।
खवगाणं पुण सव्वे छासी [3]अडसत्तरी मोत्तुं ॥१५४॥
तेणवइमाइयाओ चउरो नामस्स तेरसे खविए ।
जायंति असी गुणसी छसयरि पणसयरि जहसंखं ॥१५५॥
नरयदुगं तिरियदुगं विगलिगजाई य थावरं सुहुमं ।
आयावं उज्जोयं [4]साहारण तेरस इमाओ ॥१५६॥
दुणवइअडसीयाओ उवसंतो जाव संति मिच्छाओ ।
तिणवइ गुणणवईओ दो वि हु अजयाउ अट्ठण्हं ॥१५७॥
गुणनवइ असी छासी [5]अडसत्तरि मिच्छि थूलखवगाओ ।
पणछन्नवहियसत्तरि असी अजोगंतऽणुवसंते ॥१५८॥
नव अट्ठ अजोगि[6]म्मी सत्ता गुणठाणगेसु इय भणिया ।
गुणबंधुदएसेवं नवरं तत्थ य विसेसोयं ॥१५९॥
अडवीसचयं [7]मोत्तुं दुणवइ छडसी८६ असी८८य सव्वत्थ ।
छव्वीसंतुदएसुं अडसयरी पंचमी मिच्छो ॥१६०॥
गुणतीसचए नरगोदएसु२१ २५, २७, २८, २९नवसी वि बंधि अडवीसे।
दुणवइ नवइछासी नवसी विणु एक्कतीसुदए ॥१६१॥
सासणि तीसे तुदए दुणवइ [8]अडसी य सेसि पुण अडसी ।
अजए गुणतीसचए तिनवइ नवसी छवीसुदए ॥१६२॥
[9]देसपमत्ति गुण[10]तीसे २६ चइ अजए तीसि तिणवई नवसी ।
अडवीसचए दुणवइ अडसी अजयाइतिण्हंपि ॥१६३॥
अडसी नवसी दुणवइ तिणवइ संता कमेण बंधेसु ।
अपमत्तअपुव्वाणं इगतीसंतेसु चउसुं पि ॥१६४॥

१ "अस्या गाथायाः स्थाने मुद्रितप्रसाधियं गाथाऽस्ति । "छासीइ असइ सुरदुगि नरगोव्वियछक्को असइ असिई । सुरदुगि नरयदुगेण व छक्कचए सइ पुणो छासी ।।" इति । २ "अट्ठत्तरि" इत्यपि मु० । ३ 'अडहत्तरि मुत्तुं ॥" इत्यपि मु० । ४ "साहारणु" इत्यपि मु० । ५ अडहत्तरि इत्यपि मु० । ६ "०म्मि उ" इत्यपि मु० । ७ "मुत्तु दुनवई छडसी असीइ" इत्यपि मु० । ८ "अडसीइ" इत्यपि मु० ९ "देसि" इत्यपि मु० । १० "०सिसे" इत्यपि मु० ।

तित्थविणा उदएसु अतित्थसंताइँ हुंति केवलिणो ।
तित्थेण सतित्थाइं सेसा संता गुणकमेण ॥१६५॥

जीवस्थानेषु सत्तामाह–

दुणवइ अडसी छासी असीइ अडहत्तरी य तेरससु ।
पन्नत्तरिपज्जंता दस संता सन्निपज्जत्ते ॥१६६॥

जीवस्थानविषयबन्धोदयेषु सत्तामाह–

[1]वंधोदइ तेरेवं नवरं उरलोदए छवीसंते ।
अडसयरि संति वंधे अडवीसि अतित्थि मिच्छविही ॥१६७॥
छव्वीसंतचएसु सन्निम्मि वि होइ विगलविहि नवरं ।
पणसगवीसुदएसु दुणवइ अडसी अ तेवीसा ॥१६८॥
अडवीसाई तीसंतबंधि संताइँ निययउदएसु ।
अजयजुयमिच्छविहिणा छलसीमाई उरलि चेव ॥१६९॥
इगतीसएगवंधे अवंधि उदएसु जइविही होइ ।
करणं पइ सन्निम्मि वि विहि केवलिणो निरवसेसो ॥१७०॥

गतिषु सत्तामाह–

एगचउ पंच छहिए वीसे उदयम्मि जे तिरियउरला ।
तेसिं चेवडसयरी तिरिजोग्गचईण नवरं तु ॥१७१॥
छप्पणवीसुदएसु अडसयरी नत्थिगिंदिपज्जस्स ।
तससाहारणआयवउज्जोएहिं तु मिस्सेसु ॥१७२॥
दुणवइ अडसी चउगइ [2]असी य छासी य मणुयतिरिएसु ।
सुरणर तिणवइ नरगे वि गुणवई पंच नरि सेसा ॥१७३॥

गतिविषयबन्धोदयेषु सत्तामाह–

बंधोदएसु गइविहि णारयतिरिएसु णवरि अडसयरी ।
[3]जीवे व्व तिरिगईए अडवीसि अतित्थि सन्निविही ॥१७४॥
तिरि सयलि२९८विगलि१८सव्वे [4]पणंसिगा एगवीसछव्वीसे ।
उरलेगिंदियभंगा एवं इगवीसचउवीसे ॥१७५॥
पत्तेयअजसभंगा दो दो छव्वीसपणवीसेसु ।
एवं च पंच [5]सत्तिगतिन्निसया [6]होंति पणतीसा ॥१७६॥

१ "बन्धोदय" इति मु० प्रतौ । २ " असीइ छासीइ" इत्यपि मु० ३ "जीवव्व" इत्यपि मु० । ४ "पणं-सगा" इति वा । ५ "संतिग" इत्यपि मु० । ६ "हुंति" इत्यपि मु० ।

मणुएसु वि सन्निविही णवरं अडसयरि नत्थि तह तीसे ।
बंधे तिनवइ नवसी इगतीसुदओ नसइ बंधो ॥१७७॥
देवाण तीसबंधे संता चउरो वि नियमउदएसु[1] ।
दुनवइ अडसी संता सेसेसु बंधउदएसु ।१७८॥
सव्वत्थ वि अडसयरी अन्ने तिरियाण उरलउदएसु ।
पणसगवीसुदएसु तेवीसचयं नरे विंति ॥१७९॥

सामान्येन सर्वबन्धेषु सत्तास्थानान्याह—

वीसंतऽडवीसविणा बंधेसुदएसु एगतीसंते ।
इगवीसाइसु दुणवइ अडसी छासी असी ठवसु ॥१८०॥
छव्वीसंतुदएसु अडसयरी[2] पंचमी तहा ठवसु ।
गुणनवई तह तिणवइ ठवेसु एएसु उदएसु ॥१८१॥
गुणतीसबंधगस्स उ चउवीसिगतीसवज्जि सेसेसु ।
[3]छच्चउअहिया वीसिगतीसा वज्जित्तु तीसचए ॥१८२॥
इगतीसबंधि उदया गुणतीसा तीस संति तेणवई ।
इगबंधिअबंधीणं तीसुदए अट्ठ संताणि ॥१८३॥
तिदुनवई गुणनवई[4] अडसी य असी य तह य गुणसीया ।
छप्पणहत्तरि[5] एत्तो अबंधि सेसेसु उदएसु ॥१८४॥
वीसछव्वीसऽडवीसे गुणसी पन्नत्तरी य संताइं ।
गुणतीसे इगुणासी छप्पणसयरी असी चेव ॥१८५॥
णवउदए संताइं असीइ छावत्तरी य नव चेव ।
अट्ठुदए ते चेव उ एगूणा तित्थनामेणं ॥१८६॥
असीइ छसयरि दुन्नि उ इगवीसिगतीससत्तवीसाए ।
अडवीसे पुण बंधे नवइ[6]अडसी य सव्वत्थ ॥१८७॥
इगतीसुदए छासी छासी गुणनवइ[7]तीसुदयअहिया ।
गुणनवइ कस्स भन्नइ मिच्छद्दिट्ठिस्स नभस्स ॥१८८॥

१ "तेवीसचओ वि मणुएसु ॥" इत्यपि मुद्रितप्रतौ पाठः । २ "पंचमं" इति मु० प्रतौ । ३. "छच्चउअहियवी०" इत्यपि मु० । ४ "अडमी[ई]इ असीइ तह य गुणसीइ ॥" इत्यपि मु० । ५. "इत्तो" इत्यपि मु० । ६ "अडसीइ सव्वत्थ" इत्यपि मु० । ७ 'तिसुदए अहिया ।" इत्यपि मु० ।

गुणनवइ कहं भन्नइ चियतित्थो [1]वेयगे गओ मिच्छं ।
बंधेइ नरगजो[2]ग्गा अडवीसा तीसउदयंमि ॥१८९॥
पच्चस्स तस्स नगरे उदइगवीसाइ बंधि गुणतीसा ।
अन्तमुहुत्तं तत्तो सतित्थ[3]तीसा चिणइ सम्मे ॥१९०॥
इय सव्वकम्मबंधाइरूवणा लेसओ मए भणिया ।
संतंताताणंतं अत्तपुरं इच्छमाणेण ॥१९१॥

१ "वेयगो" इत्यपि मु० । २ "ऽग्गं अडवीसं" इत्यपि मु० । ३ "वीसं" इत्यपि । "अमयपुरं" अपि ।

इति सप्ततिकाभाष्यं समाप्तम्

॥ सप्ततिकासारम् ॥

सिरिवीरजिणं नमिऊण भणियनीसेससत्थसारत्थं ।
वुच्छामि सत्तरीए सारमिणं संगहेऊण ॥१॥
वंधे उदए संते पण पण पढमंतिमेसु कम्मेसु ।
वेयणियाउयगोए वंधे उदए य एक्किक्कं ॥२॥
संतम्मि दोन्नि एक्कं व हुज्ज अह दंसणस्स आवरणे ।
नव छच्चउरो वंधे संतम्मि य उदय चउ पण वा ॥३॥
बावीस इक्कवीसा सतरस तेरस हवंति नव पंच ।
चउ तिग दुग एक्कं वि य वंधट्ठाणाणि दस मोहे ॥४॥
मिच्छं कसायसोलस वेओ एको भयं दुगंछा य ।
जुयलेगेण दुवीसा इगवीसा मिच्छविगमम्मि ॥५॥
अणवंधविगमि सतरस तेरस विगमे अपच्चखाणाणं ।
पच्चक्खाणाभावे नव हासाईचउकस्स ॥६॥
वोच्छेए पणवंधे पुमवेयाविगमओ य चत्तारि ।
कोहाई य कसाए केवलए वंधए तत्तो ॥७॥
कोहे विगए वंधइ संजलणतिगं दुगं तु माणम्मि
मायाविगमे वंधइ अनियट्टी लोभमेगं तु ॥८॥
दस नव अट्ठ य सत्त य छ पंच चउ दुन्नि एक्क मोहुदया ।
मिच्छ कसायचउक्कं वेओ जुयलं भयदुगुंछा ॥९॥
एए दस अणविगमे भयदुगुंछाण वेगविगमम्मि ।
नवउदए दुगविगमे अट्ठ य सत्त उ तिगाविगमे ॥१०॥
अणरहियकसायतिगं वेओ जुयलं छलोदए एवं ।
आइल्लबीयरहिया दुन्नि कसाया य पुमवेओ ॥११॥
जुयलेण य पणगुदए चउरुदओ पुणिक्कयम्मि संजलणे ।
वेएण य जुयलम्मि य दुगोदओ जुयलविगमम्मि ॥१२॥
वेयस्स पुणो विगमे संजलणकसायमेगमुदयम्मि ।
इय दिसिमित्तं भणिया एगेगपगारओ उदया ॥१३॥
अट्ठग-सत्तय-छ-च्चउ-तिग-दुग-इक्काहिया भवे वीसा ।
तेरस बारिक्कारस पण चउ ति दु इक्क मोहस्स ॥१४॥

संतट्ठाणा पनरस अडवीसा ताव इत्थ सुपसिद्धा ।
सम्मत्ते उव्वलिए सगवीसा होइ संतम्मि ॥१५॥
मीसम्मि उ छव्वीसा अणाइमिच्छस्स अहविमो नेया ।
अणुवंधीणुव्वलणे चउवीसा मिच्छपुंजम्मि ॥१६॥
खवियंमी तेवीसा वावीसा मिस्सपुंजखवणम्मि ।
सम्मत्तपुंजखवणे इगुवीसा खवगसम्मस्स ॥१७॥
अट्ठकसाए खविए तेरस बारस नपुंसवेयखए ।
थीवेयखएक्कारस खीणे छक्कम्मि पंचेव ॥१८॥
पुमवेयखए चउरो तिन्नि उ कोवम्मि दुन्नि माणम्मि ।
मायाखयम्मि एक्को इय भणियं सयलमोहणियं ॥१९॥
तेवीस पन्नवीसा छव्वीसा अट्ठवीस इगुतीसा ।
तीसेगतीसमेगं बंधट्ठाणाणि नामस्स ॥२०॥
तेवीसा पणवीसा छन्नवहिय वीस तीस एयाणि ।
मिच्छद्दिट्ठी बंधइ तिरियगईए निमित्ताइं ॥२१॥
एगिंदियपाउग्गाणि बंधठाणाणि तिन्नि पढमाणि ।
तत्थ च तेयगकम्मगवन्नाइचउक्कयं चेव ॥२२॥
अगुरुलहू उवघायं निम्माणं नव इमाउ धुवबंधा ।
तिरियगई एगिंदियजाई ओरालियं हुंडं ॥२३॥
तिरियाणुपुव्विथावरबायरसुहुमाण दुन्हमेगयरं ।
अप्पज्जत्तगपत्तेयइयरमेगियरथिरगं च ॥२४॥
असुभं दूभगअणइज्जअजसधुवबंधिणीहि सुह एसा ।
अप्पज्जत्तगएगिंदियाण पाउग्गतेवीसा ॥२५॥
परघाउस्साससमा पज्जत्तेगिंदिजोग्गपणवीसा ।
आयावुज्जोए वा तज्जोगा चेव छव्वीसा ॥२६॥
पणवीसा गुणतीसा तीसा बेइंदियाण पाउग्गा ।
तेवीसाए पुव्वोइयाए खित्तम्मि सेवट्ठे ॥२७॥
अंगोवंगे य तहा अप्पज्जत्तस्स जोग्गपणवीसा ।
नवरि तसं वेइंदियजाई च्चिय इत्थ भणियव्वा ॥२८॥
परघाउस्सासअणिट्ठगमणदूसरसमेयगुत्तीसा ।

नवरं एसा पज्जत्तगस्स जोग्गा मुणेयव्वा ॥२९॥
एवं चिय तीसा वि हु नवरं उज्जोयबंधगस्सेसा ।
एवं जा चउरिंदी बंधतिगं होइ एयं पि ॥३०॥
पंचिंदियतिरियाणं मणुयाणं तह य होइ पाउग्गं ।
एयं चिय बंधतिगं संघयणाईहि नाणत्तं ॥३१॥
अन्नं चुज्जोएणं तीसा न हु होइ मणुयपाउग्गा ।
किं तु सुरा निरया वि य तित्थयरसमं कुणंति तयं ॥३२॥
अडवीसे गुणतीसा तीसा इगतीसमेव एयाणि ।
देवाणं पाउग्गाणि बंधठाणाणि चत्तारि ॥३३॥
देवगई पंचिंदियजाई वेउव्वियं च चउरंसं ।
अंगोवंगं च तहा देवाणुपुव्वी य नायव्वा ॥३४॥
परघाऊसासपसत्थगमणतसचायरं च पज्जत्तं ।
पत्तेयं च थिराथिरसुभासुभाणं च एगयरं ॥३५॥
सुभगं सुस्सरमेव य आइज्जजसाण दुन्हमेगयरं ।
धुवबंधिणीण नवगम्मि मीलिए होइ अडवीसा ॥३६॥
[1]तित्थयरेणुगतीसा आहारदुगेण होइ पुण तीसा ।
तित्थयराहारदुगे य मीलिए हवइ इगतीसा ॥३७॥
नेइइयाणं जोग्गा [2]एक्कविय वज्जए उ अडवीसा ।
साहे सुराण भणिया नाणत्तं निरयसहाई ॥३८॥
वीसा एक्कग चउ पण छ सत्त अट्ठ नवसमहिया वीसा ।
तीसेगतीस नव अट्ठ उदयठाणाणि बारस उ ॥३९॥
तेणउई बाणउई नवट्ठछहिं समहिया असी असिई ।
नवअट्ठछपन्नत्तरि नवट्ठ बारस वि संताणि ॥४०॥
ओहेणं भणियाइं अप्पाउग्गाणि बंधठाणाणि ।
तह उदयसंताणिंह वोच्छं चउगइविसेसेण ॥४१॥
एगुणतीसा तीसा वि य बंधठाणाणि दुन्नि निरयाणं ।
इगवीस पणवीसा सत्तट्ठनवाहिया वीसा ॥४२॥

---

१ "तित्थयरे गुणतीसा" इत्यपि वा । २ "एक्कविहा" इत्यपि वा ।

उदयट्ठाणाणि इमाणि पंच संताणि हुंति पुण तिन्नि ।
बाणउई य नवासी अट्ठासी तत्थ बंधदुगं ॥४३॥
जह पुव्विं निद्दिट्ठं पंचिंदियतिरियमणुयपाउग्गं ।
तह इहइं विन्नेयं उदयट्ठाणाणि पुण वुच्छं ॥४४॥
तेयइगं कम्मइगं वन्नाइचउक्कअगुरुलहुयं च ।
थिरमथिरं सुभमसुभं निम्मेण धुवोदया एए ॥४५॥
निरयगई पंचिंदियजाई निरयाणुपुव्वि तसनामं ।
बायर तह पज्जत्तग दूभग अणइज्जमजसं च ॥४६॥
बारस धुवोदयाओ इय इगवीसा भवंतरालम्मि ।
हुंहं वेउव्विदुगं उवघायं तह य पत्तेयं ॥४७॥
एयाहिं पणवीसा सरीरपत्तस्स आणुपुव्वि विणा ।
तत्तो सरीरपज्जत्तगस्स परघायगमणा य ॥४८॥
पक्खित्ते सगवीसा ऊसासे अट्ठवीस इगुतीसा[1] ।
सरसहिया अह संते बाणउया ताणि वोच्छामि ॥४९॥
गइचउगजाइपणगं पंच सरीराणि पंच संघाया ।
पंचेव बंधणाइं छस्संठाणाणि तह चेव ॥५०॥
अंगोवंगाण तिगं छस्संघयणाणि वन्नगंधरसा ।
फासा सव्वे वीसं विहायदुदु चउरो य अणुपुव्वी ॥५१॥
अगुरुलहु उवघायं परघाऊसासआयवुज्जोयं ।
तसबायरपज्जत्तं पत्तेयथिरं सुभं सुभगं ॥५२॥
सूसरआइज्जजसं थावरदसगं तसाइपडिवक्खो ।
निम्माणेणं सहिया बाणउई नामसंतम्मि ॥५३॥
आहारगं सरीरं बंधणसंघायअंगुवंगं च ।
एएहि चउहिं रहिया तित्थयरसमा नवासी य ॥५४॥
तित्थयरनामरहिया अट्ठासी अवसिया य निरयगई ।
इत्तो तिरियगईए वोच्छं बंधुदयसंताणि ॥५५॥
तेवीस पणवीसा छव्वीसा इगुणतीस तीसा य ।
एयाणि पंच एगिंदियाण बंधस्स ठाणाणि ॥५६॥

---

१ "गुणतीसा" इत्यपि ।

नवरं एसा पज्जत्तगस्स जोग्गा मुणेयव्वा ॥२९॥
एवं चिय तीसा वि हु नवरं उज्जोयवंधगस्सेसा ।
एवं जा चउरिंदी वंधतिगं होइ एयं पि ॥३०॥
पंचिंदियतिरियाणं मणुयाणं तह य होइ पाउग्गं ।
एयं चिय वंधतिगं संघयणाईहि नाणत्तं ॥३१॥
अन्नं चुज्जोएणं तीसा न हु होइ मणुयपाउग्गा ।
किं तु सुरा निरया वि य तित्थयरसमं कुणंति तयं ॥३२॥
अट्ठवीसे गुणतीसा तीसा इगतीसमेव एयाणि ।
देवाणं पाउग्गाणि वंधठाणाणि चत्तारि ॥३३॥
देवगई पंचिंदियजाई वेउव्वियं च चउरंसं ।
अंगोवंगं च तहा देवणुपुव्वी य नायव्वा ॥३४॥
परघाउस्सासपसत्थगमणतसवायरं च पज्जत्तं ।
पत्तेयं च थिराथिरसुभासुभाणं च एगयरं ॥३५॥
सुभगं सुस्सरमेव य आइज्जजसाण दुन्हमेगयरं ।
धुववंधिणीण नवगम्मि मीलिए होइ अट्ठवीसा ॥३६॥
[1]तित्थयरेणुगतीसा आहारदुगेण होइ पुण तीसा ।
तित्थयराहारदुगे य मीलिए हवइ इगतीसा ॥३७॥
नेइइयाणं जोग्गा [2]एकच्चिय वज्झए उ अट्ठवीसा ।
साहे सुराण भणिया नाणत्तं निरयसद्दाई ॥३८॥
वीसा एकग चउ पण छ सत्त अट्ठ नवसमहिया वीसा ।
तीसेगतीस नव अट्ठ उदयठाणाणि बारस उ ॥३९॥
तेणउई बाणउई नवट्ठछहिं समहिया असी असिई ।
नवअट्ठछपन्नत्तरि नवट्ठ बारस वि संताणि ॥४०॥
ओहेणं भणियाइं जप्पाउग्गाणि बंधठाणाणि ।
तह उदयसंताणिहिं वोच्छं चउगइविसेसेण ॥४१॥
एगुणतीसा तीसा वि य बंधठाणाणि दुन्नि निरयाणं ।
इगवीस पनवीसा सत्तट्ठनवाहिया वीसा ॥४२॥

---

१ "तित्थयरे गुणतीसा" इत्यपि पा । २ "एकविहा" इत्यपि पा ।

उदयट्ठाणाणि इमाणि पंच संताणि हुंति पुण तिन्नि ।
बाणउई य नवासी अट्ठासी तत्थ बंधदुगं ॥४३॥
जह पुव्विं निद्दिट्ठं पंचिंदियतिरियमणुयपाउग्गं ।
तह इहइं विन्नेयं उदयट्ठाणाणि पुण वुच्छं ॥४४॥
तेयइगं कम्मइगं वन्नाइचउक्कअगुरुलहुयं च ।
थिरमथिरं सुभमसुभं निम्मेण ध्रुवोदया एए ॥४५॥
निरयगई पंचिंदियजाई निरयाणुपुव्वि तसनामं ।
बायर तह पज्जत्तग दूभग अणइज्जमजसं च ॥४६॥
बारस ध्रुवोदयाओ इय इगवीसा भवंतरालम्मि ।
हुंडं वेउव्विदुगं उवघायं तह य पत्तेयं ॥४७॥
एयाहिं पणवीसा सरीरपत्तस्स आणुपुव्वि विणा ।
तत्तो सरीरपज्जत्तगस्स परघायगमणा य ॥४८॥
पज्जित्ते सगवीसा ऊसासे अट्ठवीस [1]इगुतीसा ।
सरसहिया अह संते बाणउया ताणि वोच्छामि ॥४९॥
गइचउगजाइपणगं पंच सरीराणि पंच संघाया ।
पंचेव बंधणाइं छस्संठाणाणि तह चेव ॥५०॥
अंगोवंगाण तिगं छस्संघयणाणि वन्नगंधरसा ।
फासा सव्वे वीसं विहायुदु चउरो य अणुपुव्वी ॥५१॥
अगुरुलहु उवघायं परघाऊसासआयवुज्जोयं ।
तसबायरपज्जत्तं पत्तेयथिरं सुभं सुभगं ॥५२॥
सुसरआइज्जजसं थावरदसगं तसाइपडिवक्खो ।
निम्माणेणं सहिया बाणउई नामसंतम्मि ॥५३॥
आहारगं सरीरं बंधणसंघायअंगुवंगं च ।
एएहिं चउहिं रहिया तित्थयरसमा नवासी य ॥५४॥
तित्थयरनामरहिया अट्ठासी अवसिया य निरयगई ।
इत्तो तिरियगईए वोच्छं बुंधुदयसंताणि ॥५५॥
तेवीस पन्नवीसा छव्वीसा इगुणतीस तीसा य ।
एयाणि पंच एगिंदियाण बंधस्स ठाणाणि ॥५६॥

---

१ "गुणतीसा" इत्यपि ।

इगवीसा चउवीसा पंचगछगसत्तसमहिया वीसा ।
उदयट्ठाणाणि इमाणि पंच वाणउय अट्ठासी ।।५७।।
छलसी असी य अट्ठत्तरी य एयाणि पंच संताणि ।
तिरिमणुपाउग्गाइं बंधट्ठाणाइँ जहपुव्विं ।।५८।।
उदयट्ठाणिगवीसा जहपुव्वं नारयाण निद्दिट्ठा ।
नवरिंगिंदियजाईपमुहं नाणत्तमिह नेयं ।।५९।।
तत्तो सरीरपत्ते ओरालसरीरहुंडउवघायं ।
साहारणपत्तेयाणमेगा अणुपुव्विविगमम्मि ।।६०।।
चउवीसुदओ तत्तो सरीरपज्जत्तगस्स परघाए ।
खित्तम्मि पन्नवीसा ऊसासुदयम्मि छव्वीसा ।।६१।।
आयावुज्जोए वा खित्ते सगवीस संतठाणेसु ।
वाणउई अट्ठासी जह निरयाणं तहेहं पि ।।६२।।
देवदुगे उव्वलिए तत्तो अट्ठत्तरी य संतम्मि ।
तेवीसपन्नवीसा छन्नवहियवीसतीसा य ।।६३।।
विगलिंदियाण तिण्हं पि बंधठाणाणि पंच एयाणि ।
इगछक्कगअडनवहियवीसा तीसा य इगतीसा ।।६४।।
उदयट्ठाणाणि इमाणि छच्च एगिंदियाण जह भणिया ।
नवरं इगवीसाओ अणुपुव्वि विणा सरीरत्थे ।।६५।।
ओरालदुगे हुंडे उवघाए तह य चेव सेवट्टे ।
पत्तेयम्मि य खित्ते छव्वीसा होइ उदयम्मि ।।६६।।
परघाए गमणम्मि य अट्ठावीसा तओ य उस्सासे ।
इगुतीसा तीसा उण सरम्मि उज्जोइ इगतीसा ।।६७।।
वाणउई अट्ठासी छलसी य असी य अट्ठसयरी य ।
संताण पंच एगिंदियाण जह पुव्वभणियाणि ।।६८।।
तिगपंचगछगअट्ठगनवाहिया वीस तह य तीसा य ।
छ इमाणि बंधठाणाणि हुंति पंचिंदितिरियाणं ।।६९।।
एयाणि जहा विगलिंदियाण पाएण नवरि इत्थहिया ।
अट्ठावीसा नेया सुरनेरइयाण पाउग्गा ।।७०।।
एकगछक्कगअट्ठगनवाहिया वीस तीस इगवीसा ।

उदयट्ठाणा छव्विय पागयपंचिंदितिरियाणं ॥७१॥
एयाणि अह विगलिंदियाण नाणत्तु जाइमाईहिं ।
पंचगसत्तगअट्ठगनवाहिया वीस तीसा य ॥७२॥
वेउव्वियतिरियाणं उदयट्ठागाणि पंच एयाणि ।
अस्संघयणी वेउव्वियत्ति नो एगहीणत्ति ॥७३॥
इगपंचछसत्तट्ठगनवाहिया वीस तीस इगतीसा ।
अट्ठुदया सामन्नेण हुंति पंचिंदितिरियाणं ॥७४॥
एएसिं संताण वि पंच जहेगिंदियाण भणियाणि ।
सम्मत्ता तिरियगई इत्तो वुच्छामि मणुयगई ॥७५॥
तत्थ मणुयाण अट्ठ वि बंधट्ठाणाणि पुव्वभणियाणि ।
चउवीसविरहियाइं एक्कारस उदयठाणाणि ॥७६॥
अट्ठत्तरिवज्जाइं एक्कारस हुंति संतठाणाणि ।
सामन्नमिणं वुच्छं विसेसओ उदयसंताणि ॥७७॥
इगवीसा छव्वीसा अडवीसा एगूणतीस तीसा य ।
पागयमणुयाण इमाणि उदयठाणाणि पंचेव ॥७८॥
पंचगसत्तगअट्ठगनवाहिया वीस तीस जहपुव्विं ।
पंचिंदियतिरियजुग्गा तहित्थ वेउव्विमणुयाणं ॥७९॥
वीसेगवीस छस्सत्तअट्ठनवअहिय वीस तीसा य ।
इगतीस नवट्ठ भवे दस उदया केवलिजिणाणं ॥८०॥
मणुयगई पंचिंदियजाई तसबायरं च पज्जत्तं ।
सुभगआइज्जजसं धुवोदएहिं समा वीसा ॥८१॥
सामन्नकेवलिस्स य इमा समुग्घायवट्टमाणस्स ।
तित्थयरस्सिगवीसा छव्वीसा देहपत्तस्स ॥८२॥
केवलिणो पक्खित्ते ओरालदुगोवघायपत्तेए ।
संघयणे संठाणे सत्तावीसा य तित्थयरे ॥८३॥
छव्वीसाए खित्ते परघाऊसासगइसरेगयरे ।
ओरालकायजोगे तीसा सामन्नकेवलिणो ॥८४॥
सरऊसासनिरोहे तीसा उण केवलिस्स अडवीसा ।
ऊसासे अनिरुद्धे सरे निरुद्धम्मि इगुतीसा ॥८५॥

तीसा उ सहावत्थस्स होइ तह इक्कतीस तित्थयरे ।
गइजाइतसं बायरपज्जत्तं सुभगमाइज्जं ॥८६॥
जसतित्थयरेहिमसो नवोदओ पुण इमो अजोगिस्स ।
तित्थयरनामरहिओ अट्ठुदओ होइ तस्सेव ॥८७॥
तेणउई बाणउई नवट्ठछहि समहिया असी असिई ।
अक्खवगाणं छ इमा हवंति नामस्स संताणि ॥८८॥
तेरसनामे खविए चउन्ह आइल्लसंतठाणाणं ।
तत्तो कमेण जाणसु खवगाणं केवलीणं च ॥८९॥
असिई अउणासीई छावत्तरि पन्नसत्तरी चेव ।
हुंति अजोगिजिणाणं पुव्वुत्तनवट्ठसंताणि ॥९०॥
देवाणं पणवीसा छवीसिगुत्तीस तीस चउबंधा ।
एगिंदियपंचिंदियतिरियाण नराण पाउग्गा ॥९१॥
उदयट्ठाणाणि पुणो पंच जहा नारयाण भणियाणि ।
छट्ठं तु इहं तीसा उज्जोएणं समा नेया ॥९२॥
तेणउई बाणउई नवअट्ठहि समहिया असीई य ।
संतट्ठाणाणि पुणो देवाण इमाणि चत्तारि ॥९३॥
एयाहिँ जहा पुव्विं भणियाइँ तहा इहं पि नेयाणि ।
इय बंधोदयसंताणि वन्नियाइं समासेणं ॥९४॥
इय सत्तरीएँ सुत्तस्स तह य चुन्नीएँ सारमुद्धरियं ।
सीसाण हियट्ठाए भणियं सिरिहेमसूरीणं ॥९५॥
जो पढइ इमं जीवो तस्स फुडं सत्तरीयचुन्नीए ।
सारत्थो हिययत्थो विप्फुरइ सया सनामं व ॥९६॥

॥ इय सत्तरीसारं सम्मत्तं ॥

इति सप्ततिकासारं समाप्तम्

श्रीमज्जिनवल्लभगणिप्रणीतम्

॥ सार्धशतकनामप्रकरणम् ॥

(अपरनाम-सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धारप्रकरणम्)

सयलंतरारिवीरं वंदिय वरनाणलोयणं वीरं ।
[1]वोच्छं जहासुयमहं कम्माइवियारसारलवं ॥१॥
कीरइ जिएण हेऊहिँ पयइठिइरसपएसओ जं तं ।
मूलुत्तरट्ठअडवन्नसयपभेयं भवे कम्मं ॥२॥
दंसणनाणावरणंतरायमोहाउगोयवेयणियं ।
नामं च नव–पण–पण-ऽट्ठवीस–चउ–दु–दु–बियालविहं ॥३॥
नयणेयरोहिकेवलदंसणआवरणयं भवे चउहा ।
निद्दापयलाहिँ छहा निद्दाइदुरुत्तथीणद्धी ॥४॥
नाणावरणं मइसुयओहिमणोनाणकेवलावरणं ।
विग्घं दाणे लाभे भोगुवभोगेसु विरए य ॥५॥
सोलस कसाय नव नोकसाय दंसणतिगं ति मोहणियं ।
नरयतिरिनरसुराऊ नीउच्चं सायमस्सायं ॥६॥
गइजाइतणुउवंगा बंधणसंघायणाणि संघयणा ।
संठाण[2]वन्नगंधं रसफासणुपुव्विविहगगई ॥७॥
पिंडपयडत्ति चउदस परघाउज्जोय आयवुस्सासं ।
अगुरुलहुतित्थनिमिणोवघायमिइ अट्ठ पत्तेया ॥८॥
तसबायरपज्जत्तं पत्तेयथिरं सुभं च सुभगं च ।
सुसरा[3]एज्जजसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥९॥
थावरसुहुमअपज्जं साहारणमथिरमसुभदुभगाणि ।
दुसरणाएज्जाजस[4]मिइ नामे सेयरा वीसं ॥१०॥
तसचउ थिरछक्कं अथिरछक्क सुहुमतिग थावरचउक्कं ।

---

१ "वुच्छं" इत्यपि । २ "०वण्णगंधरसफास अणु०" इत्यपि । ३ "०इज्ज०" इत्यपि । ४ "०मिय" इत्यपि ।

सुभगतिगाइविभासा पयडीण तयाइसंखाहिं ॥११॥
गइयाईण य कमसो चउ१पण२पण३ति४पण५पंच६छ७च्छक्कं८ ।
पण९दुग१०पण११ट्ठ१२चउ१३दुग१४मिय उत्तरभेय पणसट्ठी ॥१२॥
[1]नरयतिरिनरसुरगई [2]इगिबियतियचउपणिंदिजाईओ ।
ओरालियवेउव्वियआहारगतेयकम्मइगा ॥१३॥
पढमतितणूणुवंगा [3]बंधणसंघायणा य तणुनामा ।
सुत्ते सत्तिविसेसो संघयणमिहऽट्ठिनिचओ त्ति ॥१४॥
छद्धा संघयणं वज्जरिसहनाराय १ वज्जनारायं ।
नाराय ३ मद्धनाराय ४ कीलिया ५ तह य छेवट्ठं ६ ॥१५॥
समचउरंसं नग्गोह साइखुज्जाणि वामणं हुंडं ।
संठाणा वन्ना किण्हनीललोहियहलिद्दसिया ॥१६॥
सुरमिदुरमी रसा [4]पुण तित्तकडुकसायअंबिला महुरो ।
फासा गुरुलहुमिउखर सीउण्हसिणिद्ध रुक्खट्ठा ॥१७॥
चउह गइव्वणुपुव्वी दुविहा य सुहासुहा [5]विहायगई ।
गइअणुपुव्वी उ दुगं तिगं तु तं चिय नियाउजुयं ॥१८॥
इय तेणउई संते बंधणपन्नरसगेण तिसयं वा ।
[6]वन्नाइभेयबंधणसंघाय विणा उ सत्तट्ठी ॥१९॥
सा बंधुदए बंधणसंघाया नियतणुग्गहणगहिया ।
[7]वन्नाइविगप्पा वि हु न य बंधे सम्ममीसाइं ॥२०॥
वेउव्वाहारोरालियाण सगतेयकम्मजुत्ताणं ।
नवबंधणाणि इयरदुसहियाणं तिन्नि तेसिं च ॥२१॥
नीलकसिणं दुगंधं तित्तं कडुयं गुरुं खरं रुक्खं ।
सीयं च असुभनवगं एक्कारसगं सुभं सेसं ॥२२॥
धुवबंधोदय[8]संता सव्वेयरघाइसुभअपरियत्ता ।
छद्धावि सपडिवक्खा चउहविवागा च पयडीओ ॥२३॥
सीयालीसं धुवबंधिणीओ तेवत्तरी अधुवबंधा ।
सत्तावीस धुवुदया अधुवुदया हुंति पणनउई ॥२४॥

---

१ "निरय०" इत्यपि । २ "इगबियतिचतुरपणिंदि" इत्यपि । ३ "बंधन०" इत्यपि । ४ "पण" इत्यपि । ५ "य विगइगई" इत्यपि । ६-७ "वण्णाइ" इत्यपि । ८ "सत्ता" इत्यपि ।

धुवसंता तीससयं अट्ठाणीसा य अधुवसंता य ।
बायालीस सुभाओ बासीई हुंति असुभाओ ॥२५॥
पणसत्तरि पयडीओ अघाइया घाइयाउ पणयाला ।
पणवीस देसघाई सव्वे घाईउ वीसं तु ॥२६॥
तेणउइ परावत्ता अपरावत्ताउ अगुणतीसं तु ।
पुग्गलविवागिणीओ छत्तीसं हुंति पयडीओ ॥२७॥
चत्तारि भवविवागा खित्तविवागाउ हुंति चत्तारि ।
अट्ठुत्तरि जीवविवागिणीउ पयडीउ नायव्वा ॥२८॥
धुवबंधी भयकुच्छा कसायमिच्छंतरायआवरणा ।
वन्नचउतेयकम्मागुरुलहुनिमिणोवघाया य ॥२४॥२९॥
उरलविउव्वाहारगदुगाणि ६ गइ ४ जाइ ५ खगइ २ अणुपुव्वी ४।
संघयणागिइ ६ तसवीस २० सासतित्थायवुज्जोयं ॥३०॥
परघायं वेयणिया२ऽऽउ४गोय२ हासाइदुजुयलतिवेयं ।
इय तेवत्तरि पयडी उ अधुवबंधा विणिद्दिट्ठा ॥३१॥
बंधंति न इगिविगला वेउव्वियछक्कदेवनर[1]याऊ ।
तिरिया तित्थाहारं गईतसा नरतिगुच्चं च ॥२५॥३२॥
नरयसुरसुहुमविगलत्तिगाणि आहारदुगविउव्विदुगं ।
[2]बंधहि न सुरा सायावथावरेगिंदि नेरइया ॥२६॥३३॥
तिरिनरयतिगुज्जोयाण सचउपल्लं तिसट्ठमयरसयं ।
[3]इगिविगलजाइआयवथावर[4]चउसु तु पणसीयं ॥२७॥३४॥
बत्तीसं सासाणंत बंधसेस [5]पणुवीसपयडीणं ।
नरभवसहियं परमो पणिंदिसु अबंधकालो सिं ॥२८॥३५॥
थीणतिगं दुभगतिगं ३ [6]अपढमसंठाण ५ खगइ १ संघयणा ५ ।
अण ४ नीय १ नपुंसित्थी १ मिच्छं ति य सेसपणुवीसा ॥२९॥३६॥
बत्तीसं विजयाइसु गेविज्जाईसु तेसु तेसट्ठं ।
तमपुढविजुएसु गयस्स तेसु पणसीय [7]मयरसयं ॥३०॥३७॥
समयादसंखकालं जा परमो नीयतिरियदुगबंधो ।

१ "०याउं" इत्यपि । २ "बंधहि" इत्यपि । ३ "इग०" इत्यपि । ४ "चउगेसु पणसीयं" इत्यपि ।
५ "पणतीस" इत्यपि । २ "अपढमसंघयण ५ खगइ १ संठाणा ६ ।" इत्यपि । ७ "०मुदहि०" इत्यपि ।

सुरदुग[1]वेउव्विदुगे तिपल्लमाउसु मुहुत्तंतो ॥३१॥३८॥
तसचउपणिंदिपरघाउस्सासेसु पणसीयमुदहिसयं ।
बत्तीसं सुभगतिगुच्चपुरिससुभखगइ चउरंसे ॥३२॥३९॥
उरले असंख[2]पोग्गलपरियट्टा साय पुव्वकोडूणा ।
तेत्तीसयरा नरदुग [3]तित्थुसभउरालुवंगेसु ॥३३॥४०॥
थिर१सुभ१जस१थावरदस१असुभागिइ५खगइ१जाइ४ संघयणा ।
निरया२हारदुगायव १ असाय १ अपुमि१त्थि १ दुजुयलुज्जोयं ॥४१॥
समयादंतमुहुत्तं सेसाणं १ तह [4]जहन्नबंधो वि ।
तित्थाउसु अंतमुहू धुवबंधीणं तु भंगतिगं ॥३४॥४२॥
निम्मेणथिराथिरतेयकम्मवन्नाइअगुरुसुहमसुहं ।
नाणंतरायदसगं दंसणचउ मिच्छ धुवउदया २७॥३५॥४३॥
उदओ धुवोदयाणं अणाइणंतो अणाइसंतो य ।
अधुवाण साइसंतो मिच्छस्स उ भंगतिगमेयं ॥३६॥४४॥
पणनउईयममिच्छो मोहो निद्दाउगोयवेयणीयं ।
गइजाइतितणुवंगा संघयणणुपुव्विसंठाणा ॥४५॥
खगइदुगं पत्तेया अधुवुदया अगुरुनिमिणपरिहीणा ।
पयडीणं तसुवीसं थिराथिरसुभासुभविहीणं ॥४६॥दारं ।
वेउव्वेकारससम्ममीसतित्थुच्चमणुदुगाउचऊ ।
आहारसत्तअधुवा धुवसत्ता सेस तीससयं ॥३७॥४७॥
मोहो असम्ममीसो विग्घावरणाणि नीयवेयणियं ।
संघयणागिइतसवन्नवीस पणजाइखगइदुगं ॥४८॥
तिरियदुग२तेयसत्तु७रलसत्तगा ७ तित्थहीणपत्तेया ।
अट्ठावन्नसयाओ धुवसत्ता एय तीससयं ॥४९॥
तिसु मिच्छत्तं नियमा अट्ठसु गुणठाणएसु भयणिज्जं ।
सासायणम्मि नियमा संतं सम्मं दससु भज्जं ॥३८॥५०॥
सासणमीसे मीसं संतं नियमेण नवसु भइयव्वं ।
नियमा मिच्छासासाण पढमकसाया नवसु भज्जा ॥५१॥

१ "०विउव्वियदुगे" इत्यपि । २ "०पुग्गल०" इत्यपि । ३ "तित्तीस०" इत्यपि । ४ "तित्थुसह" इत्यपि । ५ "जहण्ण०" इत्यपि ।

सव्वगुणेसाहारं सासणमिस्सरहिएसु वा तित्थं ।
नोभयसंते मिच्छो अंतमुहुत्तं भवे तित्थो ॥४०॥ ॥५२॥ दारं ।३।
केवलियनाणदंसणआवरणं बारसाइमकसाया ।
मिच्छत्त निद्दपणगं इय वीसं सव्वघाई उ ॥४१॥ ५३ ॥
सम्मत्त नाणदंसणचरित्तघाइत्तणाउ घाईओ ।
तस्सेसदेसघाइत्तणाउ पुण देसघाईओ ॥४२॥५४॥
संजलणनोकसाया चउनाणतिदंसणावरणविग्घा ।
पणुवीस देसघाई सेस अघाई सरूवेण ॥४३॥५५॥ दारं ।४।
नरतिरिसुराउ[2]उच्चं सायं परघाय[3]आयवुज्जोयं ।
तित्थुस्सासनिमाणं पणिंदिवइरुसहचउरंसं ॥४४॥५६॥
तसदसचउवन्नाई सुरमणुदुगपंच तणुउवंगतिगं ।
अगुरु[4]लहुपढमखगई बायालीसं ति सुहपयडी ॥४५॥५७॥
थावरदसचउजाई अपढमसंठाणखगइसंघयणा ।
तिरिनरयदुगुवघायं वन्नचऊ नामचउतीसा ॥४६॥५८॥
नरयाउनीय[5]अस्साय घाइपणयालसहिय बासीई ।
असुहपयडीउ दोसु वि वन्नाइचउक्कगहणेणं ॥४७॥५९॥ दारं ।
निद्दाउ ४ गोय २ वेयण २ कसाय १६ हासाइदुजुयल ४ तिवेयं ३ ।
अणुपुव्वि ४ तितणु ३ वंगा ३ गिइ ६ गइ ४ संघयण ६ जाई उ ५ ॥६०॥
तसवीसु २० ओयायव १ खगई २ परवत्तिणी उ इगनउई ।
पडिवक्खुदयं बंधं व रुंधिउं जा उ वट्टंति ॥६१॥
नाणंतरायदंसणचउक्क[6]परिघायतित्थमुस्सासं ।
नामधुववंधिनवमिच्छ भयदुगंछा अपरियत्ता ॥४८॥६२॥ दारं ।
संठाणा संघयणा सरीरुवंगाणि आयवुज्जोया ।
नामधुवोदयसाहारणियरउवघायपरघाया ॥४९॥६३॥
उदइयभावा[7]पोग्गलविवागिणो आउ भवविवागीणि ।
खित्तविवागणुपुव्वी जीवविवागी उ सेसाउ ॥५०॥६४॥

१"०घरओ" इत्यपि । २ "मुच्चं" इत्यपि । ३"०मायवु०" इत्यपि ।४ "०लहु०" इत्यपि । ५"०मस्साय" इत्यपि । ६"परघाय" इत्यपि । ७"पुग्गल०" इत्यपि ।

नाणंतरायदमगं १० दंसणनव ९ मोहणीयअड्डवीसं ।
वेयणिय२गोयजुयला जीववियागीउ नामे उ ॥६५॥
सत्तावीसं गइ४जाइ५खगइ२भेयाउ तित्थसुस्सासं ।
सेयरपत्तेयतिगं ३ सुत्तं पडिवक्खचउदसगं ॥६६॥
भावा छच्चोवसमिय १ खइय २ खओवसम ३ उदय ४ परिणामा ५ ।
दु १ नव २ ट्ठारि ३ गवीसा ४ तिगभेया सन्निवाओ य । ५१॥६७॥
सम्मचरणाणि पढमे बीए वरणाणदंसणचरित्ता ।
तह दाणलाभभोगोवभोगविरयाणि सम्मं च ॥५२॥६८॥
चउनाण-ऽन्नाणतिगं दंसणतिग पंच दाणलद्धीओ ।
सम्मत्तं चारित्तं च संजमासंजमो तइए ॥५३॥६९॥
चउगइ चउकसाया लिंगतिगं लेसछक्कमन्नाणं ।
मिच्छत्तमसिद्धत्तं असंजमो चउत्थभावम्मि ॥५४॥७०॥
पंचमगम्मि य भावे जीवाभव्वत्तभव्वयाईणि ।
पंचण्ह वि भावाणं भेया एमेव तेवन्ना ॥५५॥७१॥
उदइयखाओवसमियपरिणामेहिं चउरो गइचउक्के ।
खइय[1]जुएहिं व चउरो तदभावे उवसमजुएहिं ॥५६॥७२॥
[2]एक्केक्को उवसमसेढिसिद्धकेवलिसु एवमविरुद्धा ।
पन्नरस सन्निवाइयभेया वीसं असंभविणो ॥५७॥७३॥
दुगजोगो सिद्धाणं केवलिसंसारियाण तिगजोगो ।
चउजोगजुयं चउसु वि गईसु मणुयाण पणजोगो ॥५८॥७४॥
मोहस्सेवोवसमो खाओवसमो चउण्ह घाईणं ।
उदयक्खयपरिणामा अट्ठण्ह वि [3]होंति कम्माणं ॥५९॥७५॥
सम्माइचउसु तिगचउभावा चउ पणुवसामगुवसंते ।
चउ खीणापुव्वे तिन्नि सेसगुणठाणमेगजिए ॥६०॥७६॥
धम्माधम्मनभा तिन्नि दव्वदेसप्पएसओ तिविहा ।
गइठाणवगाहगुणा अरूविणो कालसमओ य ॥६१॥७७॥
सो वचणाइलिंगो रूवि अजीवा उ होंति से चउरो ।

१ "०जुएहिं चउरो" इत्यपि । २ "इक्किक्को" इत्यपि । ३ "हुंति" इत्यपि ।

खंधा देसपएसा केवलअणवो य ते य पुणो ॥६२॥७८॥
वन्नाइगुणा बंधाइकारणं इय अजीवचउदसगं ।
सव्वेवि हु परिणामे भावे खंधा उदइए वि ॥६३॥७९॥
मोहे कोडाकोडीउ सत्तरी वीस नामगोयाणं ।
तीसयराण चउण्हं तेत्तीसयरा उ आउस्स ॥६४॥८०॥
मोत्तुमकसायहस्सा ठिइ वेयणियस्स बारस मुहुत्ता ।
अट्ठट्ठ नामगोयाण सेसयाणं मुहुत्तंतो ॥६५॥८१॥
तीसं कोडाकोडी असायआवरणअंतरायाणं ।
मिच्छे सत्तरिमित्थीमणुदुगसायाण पन्नरस ॥६६॥८२॥
संघयणे संठाणे पढमे दस उवरिमेसु दुगवुड्ढी ।
चालीस कसाएसुं अट्ठारस सुहुमविगलतिगे ॥६७॥८३॥
दस दस सुकिलमहुराण सुरभिनिद्धुण्हमिउलहूणं च ।
अड्ढाइज्जपवुड्ढा ते हालिद्दंबिलाईणं ॥६८॥८४॥
हासरइपुरिसउच्चे सुभखगइथिराइछक्कदेवदुगे ।
दस सेसाणं वीसा एवइयाबाहवाससया ॥६९॥८५॥
तसचउतिरिनिरयदुगा तेयविउव्वुरलसत्तगं हुंडं ।
पढमंतजाइकुखगइ कुवन्नवगं अकडुनीलं ॥८६॥
पत्तेया (य) अतित्था थावरअथिराइछक्कछेवट्ठं ।
सोगारइभयकुच्छा नपुनीए (त्ति) इगसट्ठि वीसिका ॥८७॥
अंतोकोडाकोडी तित्थाहाराण जिट्ठठिइबंधो ।
अंतमुहुत्तमबाहा इयरो संखेज्जगुणहीणो ॥७०॥८८॥
तित्तीसुदही सुरनारयाउ नरतिरियआउ पल्लतिगं ।
निरुवकमाण छमासा अबाह सेसाण भवतंसो ॥७१॥८९॥
तह पुव्वकोडिपरओ इगिविगलिंदी न बंधए आउं ।
आउचउपरमबंधो पल्लासंखंसममणेसु ॥७२॥९०॥
दंसणचउविग्घावरणलोहसंजलणहस्सठिइबंधो ।
अंतमुहुत्तं ते अट्ठ जसुच्चे बारस य साए ॥७३॥९१॥
दो मासा अद्धद्धं संजलणतिगे पुमट्ठवरिसाणि ।
सेसाणुक्को[1]साइ मिच्छत्तठिईइ जं लद्धं ॥७४॥९२॥

---

१ "०साउ मिच्छत्तठिईइ" इत्यपि ।

निद्दापणगमसायं संजलणपुमेहि वज्जिओ मोहो ।
वेउव्वेक्कारसतित्थकित्तिआहारसगरहिया ॥६३॥
नामस्स य तेयाम्मि नीएण समं सयं तु इक्कारं ।
नियनियउक्कोसाओ मिच्छत्तठिईए हरसु भागं ॥९४॥
एसेगिंदियजिट्ठो [1]पलियअसंखंसहीणलहुबंधो ॥
[2]पणुवीसा पन्नासा सयं सहस्सं च गुणकारो ॥७५॥९५॥
कमसो विगलअसन्नीण पल्लसंखंसऊणओ डहरो ।
सुर[3]नरयाउ समा दस सहस्स सेसाउ खुड्डभवं ॥७६॥९६॥
सहसगुणेगिंदिठिई विउव्विछक्के जओ असन्निसु तं ।
केसिंचि सुराउसमं तित्थं आहारगंतमुहू ॥७७॥ ९७॥
भिन्नमुहुत्तमबाहा सव्वासिं सव्वहिं [4]डहरबंधो ।
आउसु जिट्ठो वि जओ संखिप्पद्धा भवे तेसु ॥९८॥
खुड्डभवा [5]साहीया सत्तरस भवंति एगपाणुम्मि ।
पाणू एगमुहुत्ते तिसत्तरा सत्ततीससया ॥७९॥९९॥
पणसट्ठिसह[स्]स पणसय छत्तीसा इगमुहुत्तखुड्डभवा ।
दो य सया छप्पन्ना आवलिया.णेगखुड्डभवे ॥८०॥१००॥
अयरंतकोडिकोडीओ अहिगो सासणाइसु न बंधो ।
हीणो न अपुव्वंतेसु नेव य अभव्वस.न्निम्मि ।।८१॥१०१॥
अमणुक्कोसाउ विरयउक्कोसो देसविरयहस्सियरो ।
सम्मचउसन्निचउरो ठिइबंधाणुकमसंखगुणा ॥८२॥१०२॥

एतत् स्थितिबन्धयंत्रकं 'अमणुक्कोसाउ विरय०" इत्यादिगाथाभिर्विवृतम् ।

१	संयतस्य स्थितिबन्धः जघन्यः स्तोकः				७	बाद०	अप०	उ०	विशे० ।
२	बाद०	प०	ज०	असं०गुणः ।	८	सू०	प०	उ०	विशे० ।
३	सूक्ष्म०	प०	ज०	विशे० ।	९	बादर	पर्या०	उ०	विशे० ।
४	बा०	अप०	ज०	विशे० ।	१०	बे०	प०	ज०	विशे० ।
५	सू०	अप०	ज०	विशे० ।	११	बे०	अप०	ज०	विशे० ।
६	सू०	अप०	उ०	विशे० ।	१२	बे०	अप०	उ०	विशे० ।

१ "पलियासं०" इत्यपि । २ "पणुवीसं" इत्यपि । ३ "निरयाउ' इत्यपि । ४ "डहरबंधे । आउसु जिट्ठे वि"इत्यपि । ५ "साहिया" इत्यपि हस्तलिखितप्रतौ ।

१३	बे०	प०	उ०	विशे० ।	२५	असं.	प.	उ.	विशे. ।
१४	ते०	प०	ज०	विशे० ।	२६	संयतस्य उ०	स्थितिवन्धः		संख्ये. ।
१५	ते०	अप०	ज०	विशे० ।	२७	देशवि.		ज.	संख्ये. ।
१६	ते०	अप०	उ०	विशे० ।	२८	देशवि.		उत्कृ.	संख्ये. ।
१७	तेइं०	प०	उ०	विशे० ।	२९	अवि.	प.	ज.	संख्ये. ।
१८	चउ०	प०	ज०	विशे० ।	३०	अवि.	अप.	ज.	संख्ये. ।
१९	चउ०	अप०	ज०	विशे. ।	३१	अवि.	अप.	उ.	संख्ये. ।
२०	चउ.	अप.	उ०.	विशे. ।	३२	अवि.	प.	उ.	संख्ये. ।
२१	चउ.	प.	उ.	विशे. ।	३३	संज्ञि पंचे.	प.	ज.	संख्ये. ।
२२	असं.	प.	ज.	संख्या. ।	३४	संज्ञि पंचे.	अप.	ज.	संख्ये. ।
२३	असं.	अप.	ज.	विशे. ।	३५	संज्ञि पंचे.	अप.	उ.	संख्ये. ।
२४	असं.	अप.	उ.	विशे. ।	३६	संज्ञि पंचे.	प.	उ.	संख्ये. ।

बारस सुत्ते त्तुचो संमविमेया हवंति चउवीसं ।
लिंग अमणे विरएगो वीसं एगिंदितिगलाणं ॥१०३॥
पढमो थोवो बीओ असंखगुणो सत्तगं विसेसहियं ।
दसमो संखिज्जगुणो इक्कारसगं विसेसहियं ॥१०४॥
बावीसो संखगुणो तिन्नि विसेसाहिया तओ सेसा ।
एक्कारस संखगुणा छत्तीसा भंगपविभागा ॥१०५॥
पज्जत्तगो जहन्नो ततो अपज्जत्तगो जहन्नो य ।
अपज्जत्तगमुक्कोसो ततो पज्जत्तगुक्कोसो ॥१०६॥
सव्वाण वि पयडीणं उक्कोसं सन्निणो कुणंति ठिइं ।
एगिंदिया जहन्नं असन्निखवगा य काणं पि ॥८३॥१०७॥
सेउव्विक्कारसगं असन्निखवगाण तह य बावीसा ।
दंसणजसविग्घावरणसायपुरिसुच्चसंजलणा ॥१०८॥
सव्वाणुक्कोसठिई असुभा सा जमइसंकिलेसेण ।
इयरा उ विसोहीए सुरनरतिरियाउए मोत्तुं ॥८४॥१०९॥
सुहुमनिगोयाइखणे सोगो थोवो तओ असंखगुणो ।
बायरबियतियचउमणसन्निअपज्जत्तगजहन्नो ॥८५॥११०॥

पढमदुगुक्कोसो सिं पज्जत्तजहन्नगेयरो य कमा ।
असमत्ततसुक्कोसे पज्जत्तजहन्नजिट्ठो य ॥८६॥१११॥
एवं चिअ ठिइठाणा अपज्जपज्जा कमेण संखगुणा ।
नवरमसमत्तवेंदिय एक्कपए ते असंखगुणा ॥८७॥११२॥
सव्वे वि अपज्जत्ता होंति पइक्खणमसंखगुणविरिया ।
संखगुणूणा सुहुमेसु बायरेसु य असंखगुणा ॥८८॥११३॥
ठिइबंधे ठिइबंधे अज्झवसाया असंखलोगसमा ।
कमसो विसेसअहिया सत्तसु आउसु असंखगुणा ॥८९॥११४॥

एतत् योगयंत्रकं "सुहुमनिगोयाइखणे" इत्यादिगाथाभिर्विवृतम् ।

१	सूक्ष्म	अप०	जघ०	स्तोक	१५	तेइं०	,,	,,	असं०
२	बाद०	,,	,,	असं०	१६	चउ०	,,	,,	,,
३	बे०	,,	,,	,,	१७	असं०	,,	,,	,,
४	ते०	,,	,,	,,	१८	संज्ञि	,,	,,	,,
५	चउ०	,,	,,	,,	१९	बेइं०	पर्या०	जघ०	,,
६	असं०	,,	,,	,,	२०	तेइं०	,,	,,	,,
७	सं०	,,	,,	,,	२१	चउ०	,,	,,	,,
८	सूक्ष्म	,,	उत्कृष्ट	,,	२२	असं०	,,	,,	,,
९	बाद०	,,	,,	,,	२३	संज्ञि	,,	,,	,,
१०	सूक्ष्म	प०	जघ०	,,	२४	बेइं०	पर्या०	उत्कृ०	,,
११	बाद०	,,	,,	,,	२५	तेइं०	,,	,,	,,
१२	सूक्ष्म	,,	उत्कृ०	,,	२६	चउ०	,,	,,	,,
१३	बाद०	,,	,,	,,	२७	असं०	,,	,,	,,
१४	बेइं०	अप०	,,	,,	२८	संज्ञि	,,	,,	,,

[1]असुभाण संकिलेसेण होइ तिव्वो सुहाण सोहीए ।
अणुभागो मंदो पुण विवज्जए सव्वपयडीणं ॥९०॥११५॥
सतरस पयडी संजलण ४ विग्घ ५ पुंदेसघाइआवरणा ।

१ "असुहाण" इत्यपि ।

चउठाणरसपरिणया दुतिचउठाणाउ सेसाउ ॥९१॥११६॥
पव्वयभूमीवालुयजलरेहासरिससंपराएहिं
चउठाणाई असुहाण चउचआओ सुहाणं तु ॥९२॥११७॥
घोसाडइनिंबुवमो [1]असुहाण सुहाण खीरखंडुवमो
एगट्ठाणो [2]य रसो अणंतगुणिया कमेणियरे ॥९३॥११८॥
निंबुच्छुरसाईणं दुतिचउभागा पुढो कढिज्जंता
[3]किर एक्कभागसेसा दुतिचउठाणा रसा कमसो ॥९४॥११९॥
इगदुअणुगाइ जा अभवणंतगुणसिद्धऽणंतभागाणू
खंधा उरलोचियवग्गणाउ तह अगहणंतरिया ॥९५॥१२०॥
कमसो विउव्विआहार[4]तेयभासाणपाणमणकम्मे
इय वग्गाणवगाहो ऊणूणंगुलअसंखंसो ॥९६॥१२१॥
एगुत्तरा अभव्वाणंतगुणा अंतरेसु अग्गहणा
सव्वहिं [5]जोग्गजहन्ना नियणंतंसाहिया जिट्ठा ॥९७॥१२२॥
जो मणुएवं गिण्हिय सोच्चिय दलियं जिओ परिणमेइ
भासाणा[6]पाणमणोचियं च अवलंबए दव्वं ॥९८॥१२३॥
अप्पयरपयडिबंधो उक्कडजोगी य सन्निपज्जत्तो
कुणइ पएसुक्कोसं जहन्नयं तस्स वच्चासे ॥९९॥१२४॥

एतत् स्थितिस्थानयंत्रकं "एवं चिय ठिई" त्यादि गाथया निष्पन्नम् ।

१	सूक्ष्म	अप.	स्तोक	८	तेइं.	पर्या.	संख्या.
२	बाद.	"	संख्या.	९	चउ.	अप.	"
३	सूक्ष्म	पर्या.	"	१०	"	पर्या.	"
४	बाद.	"	"	११	असं.	अप.	"
५	बेइं.	अप.	असं.	१२	"	पर्या.	"
६	"	पर्या.	संख्या.	१३	संज्ञि.	अप.	"
७	तेइं.	अप.	"	१४	"	पर्या.	"

१ "असुभाण सुभाण" इत्यपि । २ "व" इत्यपि । ३ "किल इक्क०" इत्यपि । ४ "तेयभासापाणु०" इत्यपि । ५ "जुग्ग०" इत्यपि । ६ "०पाणु०" इत्यपि ।

गहियदलियस्स भागो बहुठिइकम्मेसु होइ कमवुड्ढो ।
वेयणिए सव्वोवरि तस्स फुडत्तं न जेणप्पे ॥१००॥१२५॥
पयडीण सव्वघाईण होइ नियजाइदलअणंतंसो ।
बज्झंतीण विभज्जइ सेसं सेसाणमणुसमयं ॥१०१॥१२६॥
सम्मत्त १ देस २ संपुन्नविरइ ३ उप्पत्ति अणविसंजोए ४ ।
दंसण[1]खवगे५ मोहस्स समग६ उवसंत७ खवगे य ८ ॥१०२॥१२७॥
[2]खीणाइतिसु य ११ संखगुणूणूणंतोमुहुत्तकालाओ ।
गुणसेढी[3]उ इगारस कमादसंखगुणदलियाओ ॥१०३॥१२८॥
गुणसेढी दलरयणाणुसमयमुदयादसंखगुणणाए ।
एयगुणा पुण कमसो असंखगुणनिज्जरा जीवा ॥१०४॥१२९॥
पलियासंखंतमुहू सासणइयरगुणअंतरं हस्सं ।
मिच्छस्स बे छसट्ठी इयरगुणे पुग्गलद्धंतो ॥१०५॥१३०॥
दव्वे खेत्ते काले भावे चउह दुह बायरो सुहुमो ।
होइ अणं[4]तोसप्पिणिपरिमाणो पोग्गल[5]परिट्टो ॥१०६॥१३१॥
चउतणुमणवइपाणुत्तणेण परिणमिय मुयइ सव्वाणू ।
एगजिओ भवममिरो जत्तियकालेण सो थूलो ॥१०७॥१३२॥
सत्तण्हण्णयरेण उ इय फुसणा सुहुमदव्वपरियट्टो ।
अन्ने चउ तणुसु कमेणिमेण तं विंति दुविहं[6]ति ॥१०८॥१३३॥
कम्मइयतेयओरालपाणुमणवइविउव्विएहिं कमा ।
पत्तेयमणंतगुणो पोग्गलपरियट्टकालो य ॥१३४॥
एगो चि निरुवचरिओ त्ति बायरो दव्वपोग्गलपरिट्टो ।
घेप्पइ तत्तो सुहुमेणं[7] वच्छदोसो छसुवयारो ॥१३५॥
लोगपएसोसप्पिणिसमया अणुभागबंधठाणाइं ।
पुट्ठा मरणेण जया कमुक्कमा बायरो त्ति तया ॥१०९॥१३६॥
पुट्ठाणंतरमरणेण पुण जया ते तया भवे सुहुमो ।
पोग्गलपरियट्टो खेत्तकालभावेहिं इय नेओ ॥११०॥१३७॥
जोगट्ठाणा सेढीअसंखभागे तओ असंखगुणा ।

---

१ "खवए" इत्यपि । २ "खीणातितिसु" इत्यपि । ३ "इक्कारस" इत्यपि । ४ "०तुस्स०" इत्यपि ५"परट्टो" इत्यपि । ६ "अण्णे" इत्यपि । ७ "पि" इत्यपि ।

पयडीभेया तत्तो ठिइभेयाणुक्कमेण तओ ॥१११॥१३८॥
ठिइबंधज्झवसाया तत्तो अणुभागबंधठाणाणि ।
तोणंतगुणा[1] कम्मपएसा तत्तो[2] रसच्छेया ॥११२॥१३९॥
[3] खेत्तं सुहुमं कालाउ जेण अंगुलपएससेढीए ।
समयपएसवहारे असंखओसप्पिणी[4] होंति ॥११३॥१४०॥
चउदसरज्जू[5] लोको बुद्धिकओ होइ सत्तरज्जुघणो ।
तद्दीहेगपएसा सेढी पयरो य तव्वग्गो ॥११४॥१४१॥
पयडीओ असंखेज्जा जं ओहिदुगे वि तारतम्मेणं ।
अस्संखलोगखपएसपमाणा हुंति [6]खलु भेया ॥११५॥१४२॥
आजिट्ठट्ठिठई हस्सट्ठिठईउ समउत्तरा ठिईठाणा ।
सव्वपयडीसु एवं सव्वजिआणं पि ठिइभेया ॥११६॥१४३॥
ठिइठाणे ठिइठाणे कसायउदया असंखलोगसमा ।
अणुभागबंधठाणा इय [7]एक्केक्के कसाउदए ॥११७॥१४४॥
थोवाणुभागठाणा जहन्नठिइपढमबंधहेउम्मि ।
[8]बीया विसेसअहिया जा चरमाए चरमहेऊ ॥११८॥१४५॥
इय असुभाण सुभाण उ विवरीयं जिट्ठठिइचरमहेऊ ।
आरब्भ निज्ज आउसु ठिइं ठिइं पइ असंखगुणा ॥११९॥१४६॥
समयभवसुहुमअगणी असंखलोगा तओ असंखगुणा ।
तेऊ तक्कायठिई कमसो अणुभागठाणा य ॥१२०॥१४७॥
अंतिमचउफासदुगंधपंचवन्नरसकम्मइगखंधे ।
अभवियअणंतगुणिए गिण्हइ तच्चिय[9] मणू समए ॥१२१॥१४८॥
गहणसमए य जीवो नियपरिणामेण जणयइ रसाणू ।
सव्वजियाणंतगुणे कम्मपएसेसु सव्वेसु ॥१२२॥१४९॥
संखेज्जेगमसंखं परित्तजुत्तनियपयजुयं तिविहं ।
एवमणंतंपि तिहा जहन्नमज्झुक्कसा सव्वे ॥१२३॥१५०॥
संखेज्जगं जहन्नं [10]दोच्चिय मज्झिममओ परं जहुहा ।

---

१ "कम्मप्पएस" इत्यपि । २ 'य रसछेया' इत्यपि । ३ 'खित्तं" इत्यपि । ४ "हुंति" इत्यपि । ५ "लोगो" इत्यपि । ६ "किल" इत्यपि । ७ "इक्किक्के" इत्यपि । ८ "बीयाइ विसेसहिया" इत्यपि । ९ "अणू" इत्यपि । १० "दुच्चिय" इत्यपि ।

जा उक्कोसं तं पुण चउपल्लपरूवणाइ इमं ॥१२४॥१५१॥
जंबुद्दीवपमाणा चउरो जोयणसहस्समोगाढा ।
रयणपहरयणकंडं भिंदिय पुट्ठा वइरकंडं ॥१२५॥१५२॥
पल्लाणवट्ठियसलागपडिसलागामहासलागक्खा ।
सव्वे सवेइयंता उवरिं ससिहा य भरियव्वा ॥१२६॥१५३॥
तो कप्पणाइ केणइ सुरेण पढमो धरित्तु वामकरे ।
[1]एक्केक्कं दीवुदहीसु सरिसवं खिविय निट्ठविओ ॥१२७॥१५४॥
दीवे जत्थुदहिम्मि[2]व तदंतमेव पढमं व तं भरिउ ।
परओ खिव [3]एक्केक्कं दीवुदहिसु निट्ठिए तम्मि ॥१२८॥१५५॥
खिवसु सलागापल्ले सरिसवमेगं पुणो तयं तं तं ।
पुव्वं व भरसु खिवसु य पुरओ पुण तम्मि निट्ठविए ॥१२९॥१५६॥
बीयं सलागपल्ले खिव सरिसवमेव (मेव) पुण तइयं ।
इय पुणरुत्तणवट्ठियभरणविरेयणसलागाहिं ॥१३०॥१५७॥
[4]पुन्नो सलागपल्लो पुव्वक्कमागयणवट्ठिओ य तओ ।
[5]सो चिय सलागपल्लो उक्खिप्पइ [6]खिप्पई पुरओ ॥१३१॥१५८॥
पुव्वकमनिट्ठिए तहिमेगं खिव सरिसवं [7]व तियपल्ले ।
पुव्वं व निट्ठियंते अणवट्ठियपल्लमेव खिव ॥१३२॥१५९॥
पुण तम्मि निट्ठिए खिव सलागपल्लम्मि सरिसवं [8]एक्कं ।
अन्नन्नणव [9]ट्ठियओ सलागपल्लं पुणो [10]भरसु ॥१३३॥१६०॥
तेण पुण पडिसलागापल्ले भरियम्मि दोसु य तमेव ।
उद्धरियपुव्वविहिणा सरिसवमेवं खिव चउत्थे ॥१३४॥१६१॥
इय पढमेहिं बीयं तेहिं तइयं तु तेहिं य चउत्थं ।
भरणुद्धरणविकिरणं ता कज्जं जा फुडा चउरो ॥१३५॥१६२॥
पढमतिपल्लुद्धरिया दीवुदहीपल्लचउसरिसवा य ।
सव्वो वि एस रासी रूवोणो परम[11]संखिज्जो ॥१३६॥१६३॥

१-३ "इक्किक्कं" इत्यपि । २ "य" इत्यपि । ४ "पुण्णो" इत्यपि । ५ "सुक्खिवम" इत्यपि । ६ "खिप्प अ" इत्यपि । ७ "तइअ०" इत्यपि । ८ "इक्कं" इत्यपि । ९ "ठियाओ" इत्यपि । १० "भरह" इत्यपि । ११ "०संखिज्जं" इत्यपि ।

[1]अन्नोन्नब्भाससमं वग्गियसंवग्गियं [2]तु तो केई ।
सत्तमअसंखणंते तिवग्गठाणे तमाहु तिहा ॥१५०॥१७७॥
नेयअइगहणयाए निबिडजडत्तेण नियमईए तहा ।
जमिहुस्सुत्तं वुत्तं मिच्छा[3]मिह दुक्कडं तस्स ॥१५१॥१७८॥
जिणवल्लहगणिलिहियं सुहुमत्थवियारलवमिणं सुयणा ।
निसुणंतु मुणंतु सयं परेवि बोहिंतु सोहिंतु ॥१५२॥१७९॥

१ "अन्नुन्न०" इत्यपि । २ "तओ केइ" इत्यपि । ३ "मे" इत्यपि ।

समाप्तं चेदं सार्द्धशतकनामप्रकरणं ॥



[1]अन्नोन्नब्भाससमं वग्गियसंवग्गियं [2]तु तो केई ।
सत्तमअसंखणंते तिवग्गठाणे तमाहु तिहा ॥१५०॥१७७॥
नेयअइगहणयाए निबिडजडत्तेण नियमईए[3] तहा ।
जमिहुस्सुत्तं वुत्तं मिच्छा मिह दुक्कड़ं तस्स ॥१५१॥१७८॥
जिणवल्लहगणिलिहियं सुहुमत्थवियारलवमिणं सुयणा ।
निसुणंतु मुणंतु सयं परेवि बोहिंतु सोहिंतु ॥१५२॥१७९॥

---

१ "अनुन्न०" इत्यपि । २ "तओ केइ" इत्यपि । ३ "मे" इत्यपि ।

समाप्तं चेदं सार्द्धशतकनामप्रकरणं ॥



॥ सार्द्धशतकभाष्यम ॥

नियहेउसंभवे वि हु भयणिज्जो जाण होइ पयडीणं ।
बंधो ता अधुवाओ धुवाउ अभयणिज्जबंधाउ ॥१॥
अव्वोच्छिन्नो उदओ जाणं पयडीण ता धुवोदइया ।
वोच्छिन्नो वि हु संभवइ जाण अधुवोदया ताओ ॥२॥
विणिवारिय जा गच्छइ बंधं उदयं च अन्नपगईए ।
सा हु परियत्तमाणी अणिवारिंति अपरित्तत्ता ॥३॥
मिच्छत्ता संकंती अविरुद्धा होइ सम्ममीसेसु ।
मीसाओ वा दंसु सम्मामिच्छं न उण मीसं ॥४॥
पलियाणि तिन्नि भोगावणिम्मि भवपच्चयं पलियमेगं ।
सोहम्मे सम्मत्तेण नरभवे सव्वविरईए ॥५॥
मिच्छो पच्चइयाओ गेविज्जे सागराइँ इगतीसं ।
अंतमुहुत्तूणाइं सम्मत्तं तम्मि लहिऊणं ॥६॥
विरयनरभवंतरिओ अणुत्तरसुरो य अयरछावट्ठी ।
मिस्सं मुहुत्तमेगं फासिय मणुओ पुणो विरओ ॥७॥
छासट्ठी अयराणं अच्चुयए विरयनरभवंतरिओ ।
तिरिनरयतिगुज्जोयाण एस कालो अबंधम्मि ॥८॥
छट्ठीए नेरइओ भवपच्चयओ य अयरबावीसं ।
देसविरओ य भविउं पलियचउक्कं पढमकप्पे ॥९॥
पुव्वुत्तकालजोगा पंचासीयं सयं सव्वउपल्लं ।
आयवथावरचउविगलतियगएगिंदियअबंधो ॥१०॥
पणवीसाए अबंधो उक्कोसो होइ सम्मगुणजुत्तो ।
बत्तीसं सयमयराण हुंति अहिया मणुस्सभवा ॥११॥
एयासिं पयडीणं अबंधकालो य होइ समिस्स ।
उक्कोसो विन्नेओ न उ सव्वजियाण एस विही ॥१२॥
देवदुगं २ नरयदुगं २ विउव्वितिग ३ तस्स बंधणा चउरो ।
आहारसत्त एवं वेउव्वेकारसं नेयं ॥१३॥
पण अंतरायअन्नाणतिन्नि चक्खू अचक्खु दस एए ।

मिच्छे साणे य हवंति मीसए अंतराय पण ॥१४॥
दंसणतियनाणतियं मीसगसम्मं च वारस हवंति ।
एवं च अविरयम्मि वि नवरं तहिँ दंसणं सुद्धं ॥१५॥
देसे देसव्विरई तेरसमा तह पमत्त अपमत्तो ।
मणपज्जवपक्खेवा चउदस अप्पुव्वकरणाओ ॥१६॥
वेयगसम्मेण विणा तेरस जा सुहुमसंपराओत्ति ।
ति च्चिय उवसमखीणे चरित्तविरहेण वारस उ ॥१७॥
खाओवसमगभावाण कित्तणा गुणपए पडुच्च कया ।
ओदइयभावमिण्हिं ते चेव पडुच्च दंसेमि ॥१८॥
चउगइयाई इगवीस मिच्छे साणे य हुंति वीमं च ।
मिच्छेण विणा मीसे इगुणीसमनाणविरहेण ॥१९॥
एमेव अविरयम्मी सुरनारयगइविओगओ देसे ।
सत्तरस हुंति ति च्चिय तिरिगइअस्संजमाभावा ॥२०॥
पन्नरस पमत्तम्मी अपमत्ते आइलेसतिगविरहा ।
ति च्चिय वारस सुक्केगलेसओ दस अपुव्वम्मि ॥२१॥
एवं अनियट्टिम्मि वि सुहुमे संजलणलोभमणुयगई ।
अंतिमलेसअसिद्धत्तभावओ जाण चउभावा ॥२२॥
संजलणलोभविरहा उवसंतक्खीणकेवलीण तिगं ।
लेसाभावा जाणसु अजोगिणो भावदुगमेव ॥२३॥
अविरयसम्मा उवसंत जाव उवसमगखइयगा सम्मा ।
अनियट्टी उवसंतो जाव उवसामियं चरणं ॥२४॥
खीणम्मि खइयसम्मं चरणं च दुगं पि जाण समकालं ।
नव नव खइगा भावा जाण सजोगे अजोगे य ॥२५॥
जीवत्तमभव्वत्तं भव्वत्तं पि हु गुणेसु मिच्छम्मि ।
साणाई खीणंतो दुन्नि अभव्वत्तवज्जा उ ॥२६॥
सज्जोगिअजोगम्मि जीवत्तं चेव मिच्छमाईणं ।
ससभावमीऊणाणो भावं मुण सन्निवायं तु ॥२७॥

॥ इति सार्द्धशतकभाष्यम् ॥

इति

परिशिष्टद्वयं

॥ परिसमाप्तम् ॥

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२	३	०मुक्ता	०मुक्तो
२	२३	मूर्तं	मूर्त
२	३०	अम्य	अम्य
६	४	खड्गम्	खड्गम्
१०	२५-२५	अप्राप्प	अप्राप्य
११	२७	छुताचरणं	छुताचरणं
१३	२८	॥ ॥	॥१६॥
१४	२३	उक्ता०	उक्त०
१५	१०	०सामानं	०समानं
१५	१५	'शास्त्र'	'शास्त्रः'
१७	१९	०अक्कमणे	०अक्रमणे
१७	२७	संसि०	संसि०
१८	६	स्त्याद्धि०	स्त्यानर्द्धि०
१८	२६	केवलस्यकल्पस्यो	केवलस्योकल्पस्य
१९	६	खड्ग०	खड्ग०
१९	९	॥२८॥	॥२९॥
२१	२	प्रधान्या०	प्राधान्या०
२२	२१	०दलाक्यते	०दालोक्यते
२२	७	०मिथ्यात्व०	०मिथ्यात्व०
२४	१६	व्याख्या	व्याख्या
२५	१२	पस्य	टस्य
२७	२	अन्तानु०	अनन्तानु०
२७	८	'इह'	'इह'
२७	१६	०र्धौं	०र्धो
२७	१६	०कल्पवस्तु	०कल्पवस्तु
२८	२४	०माय०	०माया०
२९	११	अभिरत	अविरत
३०	१२	प्रत्याख्यान०	प्रत्याख्यानाव०
३४	७	सचित्ताश्चाचित्ताः	सचित्ताचित्ताः
३७	६	०भेदैः	०भेदैः
३९	३	०दृष्टा०	०दृष्टा०
३९	१३	बिम्बानिः	बिम्बानि
४०	६	०गान्तव्यम्	०गन्तव्यम्
४२	३	रेऽपि येने	रेऽपि येन
४२	१६	छ्वास०	छ्वास०
४२	१९	स्व०	स्व०
४२	२७	भंवति	भवति
४३	१६	दान'/कृत	दान'/कृतं
४४	१२	यत्ति"	य"त्ति
४४	२६	०पं'ङ्क०	०पाङ्क०
४५	१२	परघातम्	पराघातम्
४५	१५	०ति' आनुपूर्वी	'ति आनुपूर्वी
४८	१७	०रोक्या	०रोक्त्या
४९	२२	कर्मणाः	कर्मणः
५०	६	एकेन्द्रयो	एकेन्द्रियो
५१	६	वैक्रिया०	वैक्रियादि०
५१	१९	०क्कानि/०क्कनि	०क्कानि/०क्कानि
५२	१३	'नौ'	'नो'
५२	१६	शरीर०	शरीरा०
५२	२५	तत्त०	तत्तु०
५२	२९	एव०	एव०
५३	१२	०रापुर०	०त्पापु०
५३	२०	(पारमा)	(पारमा०)
५४	२	तत्०	नत्त०
५४	१६	पुद्गलले	पुद्गले
५६	२३	०ताां	०नां
५८	३०	पठमं	पढमं
६०	३	नाराया	नाराचा
६०	१७	सन्यत्व०	सन्तत्य०
६१	६	०उदारा०	०उदरा०
६३	१	०दि र्णनम्	०दिवर्णनम्
६५	३	साष्ठवं	सौष्ठवं
६६	५	अन्यत्रः	अन्यत्र
६६	२६	आपत्त०	आतप०
६७	२७	०सुमे	०सुममे०
७२	२१	पज्जत्तित्ति'	पज्जत्ति' त्ति
७२	२७	गृहित्वा	गृहीत्वा
७५	१२	०सिप्पत्तिः	०न्तिप्पत्तिः
७७	६	सच्च	सच्च
७९	२	वव्वय अस... 'पूहओ	वव्वय अस्स— 'पूहओ
८०	६	अह	अह
८१	६	भंघाव	भंवति

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
८१	२३/२५/२७	सघगो/सघणी	सघणो/सघणी
८२	२०	जइ	जह
९०	७	भवन्ति;	भवन्ति
९०	१२	०शुद्धिरेथं	०शुद्धिरर्थां
९१	१२	चद०	चंद०
९१	२१	०निर्वात्ति०	०निर्वत्ति
९३	६	०सङ्क्रम०	०सङ् क्रम०
९३	१७-१८	०न्युन्क्रृष्टा०	०न्युत्कृष्टा०
९४	२५	युगपद्वि०	युगपद्वृद्धि०
९४	२६	युगपद्धि०	युगपद्वृद्धि०
९५	१२	कृत्स्न०	कृत्स्न०
९५	१४	तत्र भग०	तत्र केवलिनो भग०
९५	१५	केवलिनो नेहाधिकारः	नेहाधिकारः
९६	१३	व्यवगत०	व्यपगत०
९७	१	०सङ्ख्या	०सङ्ख्या
१०१	२	०नाक०/०समव०	नरक०/०संभव
१०१	२१	यावद्वि०	यावद्वृद्धि०
१०२	१	०स्त्वा०	०स्तवा०
१०३	२१	०नाम०	०नामा०
१०५	२६	सक्लेश	संक्लेश
१०६	२०	०विशेषात्माके	०विशेषात्मके
१०७	७-८	केश-व०	केशश्मश्रु०
१०८	७-८	०देतषा०	०देनैषा०
१०८	२०	प्रधान्यं	प्राधान्यम्,
१०९	४	इत्युक्ता	इत्युक्ता
१०९	२६	०रोदाकादि	०रौदारिकादि-
१०९	२८	०वर्गण०	०वर्गणा०
११०	१२	वर्जर्पं	वर्जर्षं०
१११	२२	०नैकेन्द्रियाणां,	०नैकेन्द्रियाणाम्,
१११	२६	०क्त्या शङ्कास्यात्०	०क्त्याः शङ्का स्यात्
११३	१९	०शारी०	०शरीरे०
११५	९	चामूनिन्यमो-	चामूनि न्यमो-
११५	१२	दुस्वरं	दुःस्वरं
११८	११	०शरी०	०शरीर०
११९	१२	०द्वितिय०	०द्वितय०

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१२०	१	०स्त्रा०	०रात्रा०
१२३	२१	सन्निवि०	सन्नवि०
१२३	२५	स्त्यानद्धि	स्त्यानर्द्धि
१२५	११	०लघुाघा०	०लघूाघा०
१२८	७	सर्वसां सारिक०	सर्वसांसारिक०
१२८	९	'लेश्यः'	'लेश्याः'
१२८	१८	द्दष्टव्यम्	द्रष्टव्यम्
१२८	३१	,, (?) इ०	, इ०
१२९	१०।११	१३।१४	१२ १३
१२९	१९	तिणूणु०	०तिनणूणु०
१३१	२७	०दृष्टा	०दृशो
१३४	७	२७	१७
१३५	९	वोच्छिन्नाः॥२॥	वोच्छिन्ना॥१॥
३५	३०	०स्यानां	०स्यान
१३९	२२	मयतरेणं	मयंतरेणं
१४०	१०	त्रय	त्रस
१४०	२५	द्दष्टव्या	द्रष्टव्या
१४२	२३	०कायेनव	०कायेनैव
१४४	२०	मत्य ज्ञान०	मत्यज्ञान०
१४६	१६	सयोग्यन्तेपु।	सयोग्यन्तेषु
१४७	२१	चतुष्कं,	चतुष्कम्,
१४९	१	०स्त्र्यमित्वम	०स्त्र्यमित्वम्
१५०	८	०सयत०	०संयत०
१५०	११	०स्त्रओवसमं	खओवसमं
१५१	४	२६	६२
१५१	६	०श्रेणिस्व	०श्रेणिस्थ
१५२	५	कार्म०	कार्मण०
१५२	२०	प्रयरण	प्रकरण
१५४	२	ही	ही॑
१५५	७	किचि	किंचि
१५५	१७	प्रक्रन्त०	प्रक्रान्त०
१५६	१२	चव	चेव
१५७	१	मङ्गलादिकम	मङ्गलादिकम्
१५०	१७	०क्षणमोह	०क्षीणमोह
१५८	२७	०वास्तां भलं	०वास्ताम् भलं
१५८	२८	०भिधनं	०भिधानं

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१५६	१४	०नुपपत्तौः	०नुपपत्तोः
१५६	२५	०धारकत्त्व-	धारकत्वा-
१६०	२	भूननि	भूतानि
१६०	६	चिद्र पा०प्रसंगेन	चिद्रू पा०प्रसङ्गेन
१६०	८	गुणानां स्थानानि	जीवस्थानानि
१६०	११	गुणस्थानानि गुण०	गुणानां स्था० नानि गुण०
१६०	१३	उपज्यते । ०छदे	उपयुज्यते । छेदं
१६०	१६	पुंनाम्नीति	'पुंनाम्नी' ति
१६३	२८	व्याकारणे०	व्याकरणे
१६५	६	निनि०	धिनि०
१६५	२८	०मयथा०	मयथा०
१६६	५	पर्याप्त०	पर्याप्ताऽ०
१६६	१०	केवलिणी	केवलिणो
१६८	३०	बादर	बादर
१[illegible]	२२	०मिश्रकाय०	०मिश्रकार्मणकाय०
१७०	७	०सज्ञा	०सं ज्ञा
१७०	१६	पचेंदि०	पंचेंदि०
१७१	३	ज्ञानात्रिका०	ज्ञानत्रिका०
१७१	७	पर्याप्तष्विति	पर्याप्तेष्विति
१७१	१७	आगा	ओगा
१७१	२४	तेषा	तेषां
१७२	१०	बह्वयय:	बह्वयय:
१७२	१७	०संगादनं,	०संपादनम् ;
१७३	७	द्वन्द्व:	द्वन्द्वः
१७४	२५	सयम०/'संज्ञा ज्ञ्या)द्वार'	संयम /संज्ञा (ज्ञ्या)द्वारे
१७५	५	इन्द्रियः'	"इंद्रिय"
१७५	१९	०मोहीण०	०मोहीमण०
१७७	८	ज/०गथा०	जं/०गंथा०
१७८	२	०मुत्था०	[०मुत्था०] (०मुपस्था०)
१७९	३	ति	इति
१७९	२३	शेष	शेषं
१७९	३०	पाठ	पाठः
१८०	१५	चउरा	चउरो
१८०	२२	स्थावरपञ्चके'	'स्थावरपञ्चके'
१८०	२२	०सक्तानि	०सत्कानि
१८०	२९	स्थानानि	स्थानानि,
१८१	१	म र्गणा	मार्गणा
१८१	१६	पयाप्तो	पर्याप्तो
१८१	२८	मसंज्ञीनिर्दिष्ट	असंज्ञी निर्दिष्ट
१८२	१४	दर्शने	दर्शने
१८२	१६	स्थाना. न	स्थानानि
१८२	२८	इहकश्चित्पूर्व	इह च श्चित्पूर्वं
१८२	२९	पाठ	पाठः
१८३	११	०णोमुत्वा०	०णोमुत्वा०
१८६	८	वस्थायां कियत्	वस्थायां वियत्
१८६	१५	समुद्घाते	समुद्घाते
१८६	२६	समुद्घात	समुद्घात
१८७	५-६	नियट्टि ८ अनि-यट्टि ९ सुहुमु १०-सुहमुवसमखीण वसम० ११ खीण-सजोगिऽजोगिगुण १२ सजोगि १३ ॥२६॥ अजोगि १४ गुणा ॥२६॥	नियट्टिअनि-यट्टि
१८७	७	पदमु०	पदसम्०
१८७	१७	अणायरा	अण यरो
१८७	२४	सा/०करणा	सो/०करणो
१८८	६	अत०	अंत०
१८८	१२	०धाराद्धा०	धाराद्धा
१८९	५	न	नः
१९०	४	गठि/बीय	गंठि/बीयं
१९१	३	असजय०	असंजय०
१९१	१५	प्रर्व०	पूर्व०
१९२	३	०ह पूर्वा	०हापूर्वा
१९२	४	एवं	एष
१९२	१५	०तराणी	०तराणि
१९२	१८	प्रधि०	प्रजि०
१९२	२०	०जघ:या०	०जघन्या०
१९४	१८	उत्पृष्टा	उत्कृष्टा
१९४	२१	ऽनन्त०	ऽन्त०
१९४	३०	एमेव०	एवमे०

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१९६	३	०मागामात्रं	मागमात्र	२२६	७	नयनमते न	नयमतेन
१९६	२९	०व्यवच्छेदः।	व्यवच्छेदः[।]	२२६	२८	०द्वाया०	०द्वाथा०
१९७	७	विशेषाधिकः	विशेषाधिकः	२२७	२०	०समुद्वाता०	०समुद्घाता०
१९७	१९	ऽन्त्र०	ऽन्त्र०	२२७	२७	द्वन्द्वः इति	द्वन्द्वः षट्सु पदेसु
१९८	१६	बन्धाना०	बन्धना०				तथैकेन्द्रियभूरक-
२००	१५	वर्गगाः	वर्गणा				द्वकासंज्ञिषु इति द्वन्द्वः
२००	१८	उद्धूत्रेमे	उद्धूर्ध्वमे०	२२९	१९	०व्याकारा०	०व्याकाश०
२०२	२२	अस्याचा०	अस्यां चा०	२३०	१०	तावद्धनी	तावद्घनी
२११	१८	।न	। न विद्यते सत्यं यत्र	२३०	१७-१८	मात्रनासंख्येय०	मात्रनाऽसंख्येय०
			तद्धवत्यसत्यम्, न	२३१	४।११	२५७।०चतुस्त्रि०	२५६।०चतुस्त्रि०
२१७	७	तद्यथा-	तथा	२३२	४	तेइंदियाणं	तेइंदियाणं
२१७	१२	सुज्ञानात्वा०	सुज्ञानत्वा०	२३२	७	पचिंदिया	पंचिंदिया
२१७	१९	तया	तथा०	२३२	३०	पाठ।	पाठः।
२१७	२६	०क्स्वोगा०	३०क्स्वोता०	२३३	११	िया०	ह्रिया०
२१७	३०	दृश्यतेहस्त	दृश्यते हस्त	२३३	१५	मानिनो	मायिनो
२१८	११	ओदारिक	औदारिक	२३४	३	अन्ताम्र०	अन्तोम्र०
२१८	१४	समुद्धाते	समुद्घाते	२३५	१२	०चक्षतं०	०चक्षुर्दं०
२१९	४	समुद्धात	समुद्घात	२३५	२०	०चक्षदं०	०चक्षुर्दं०
२१९	७	इरि	इति	२३७	२१	०लब्धेकेक०	०लब्धेकेक०
२१९	८	ः	स	२३८	६	०क्रान्त०	०क्रान्ता०,
२१९	१२	०वक्छाम०	०वगाक्छाम०	२३८	१४-१६	०क्रान्ताद्धि०	०क्रान्ताद्वृद्धि०
२१९	१५	वैक्रिय कि	वैक्रियलब्धिमतां	२३८	२२	मर्वं	सर्वं
		मतां क्रि०	वैक्रि०	२४०	२	इत्येवं।	इत्येवं
२१९	२०	असञ्ज्ञिनि	असंज्ञिनि	२४०	५	निगाया"	निगोया"
२१९	२५	समुद्धाते	समुद्घाते	२४०	२२	स्त्रीन्	त्रीन्
२१९	२७	कुर्व०	कुर्व०	२४२	६	सम्यक्त्व ानां	सम्यक्त्ववतां
२२०	४-५	०यादी नामि०	०यादीनामि०	२४२	१०	तवसख०	तदसंख०
२२१	६	अर्थतस्तेिष्वेव	अर्थेनांस्तेष्वेव	२४२	१४	०समयोद्धूत०	समयोद्धृत०
२२१	७	सपयागाः	उपयोगाः	२४२	२४	संस्येया०	०संस्येय०
२२१	२५	चक्षुरर्दर्शन	चक्षुर्दर्शन	२४२	२५	०समुद्धात०	०समुद्घात०
२२४	१	नाम्नि	नाम्नि	२४३	१९	०सहित्स्यो०	०सहितस्यो०
२२४	३	०च्छेदा०	०च्छेदो०	२४४	१०	०दयादि०	०दृष्ट्यादि०
२२४	१२	०पणा०	०मणा०	२४५	१	हारि०)	(हारि०)
२२५	२१ २३	समुद्धाते	समुद्घाते	२४५	१०-११	०समुद्धाते०	०समुद्घाते०
२२६	४	०ज्ञ न०	०ज्ञान०	२४५	२०	०समुद्धाता०	०समुद्घाता०
२२६	७	०क्षिन्नाह	०क्षिपन्नाह	२४६	७	०समुद्धाते०	०समुद्घाते०

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२४६	१२	०दारिद्विकं	०द्दारिकद्विकं
२४६	१३-१४	०समुद्धाता	०समुद्घाता
२५०	१०	०वौक्तः	०वोक्तः
२५०	२२-२३	०स्वरूपोः	०स्वरूपाः
२५०	२६	आनामि०	अनामि०
२५०	२१	विर्णािद्दिट्ठं	विर्णिदिट्ठं
२५१	१४	०सम्यक्त्व०	०सम्यक्त्व०
२५३	२	०मि रूपे	मिश्ररूपे
२५३	२२	०वेनोप०	०वेनाप०
२५५	१४	हृतरि	हारि
२५५	२१	ज्ञाना०	ज्ञान०
२५५	३०	सुहुमो	सुहुमा
२५८	२०	पं । दो खी णा	पंच दो खीणो
२५८	३	गाए	गोए
२६०	१६	पेक्षमाण	प्रेक्षमाण
२६१	१	गुणस्थानकच्च	गुणस्थानकेष्व
२६१	२१	जतिः	जातिः

श्री यशोभद्रसूरिकृतवृत्तियुतषडशीतौ

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१	१४	०सुहृद्य	०सुहृद्य०
१	२०	०छेदो०	०च्छेदो०
१	२०	०छेदार्थं	०च्छेदार्थं
१	२१	द्रुवन्ध्य	०द्रुमावन्ध्य०
१	२२	०छद्म०	०च्छद्म०
१	२३	०रयाद्वि०	०रहाद्वि०
१	२३	०माव०	०माव०
१	२५	०-ऽक्षति"	०-ऽक्षता"
२	३	०छेद०	०च्छेद०
२	१५	बहुव्रीहीः	बहुव्रीहिः
२	२१	शोभनं रूपध्यानं	शोभनरूपं ध्यानं
३	११	सञ्ज्ञा" ति	सञ्ज्ञी" ति
३	१३	०म्यच्छा०	०म्यच्छा० मनस्त्वेन
३	२४	परिणामयति	परिणमयति
३	२६	सरीर०	शरीर०
४	१	ण्ह०	षह०
४	४	भापानु०	भाषानु०
४	५	०प्र योग्यं	प्रायोग्यं
४	५	०पाजन्म्य	पाजन्म्य
४	५	मन :०	मनः०
४	६	हृ राणां	हाराणां
४	६	०पिह पण अत०	०थिह पण अंत०
४	१८	०म्य.प्रथम०	०म्यः प्रथम०
५	५	एकादश सङ्गु०	एकादेशसमु०
५	५	०भ्यूह्यो	०भ्यूह्यौ
५	१५	०रंज्ञी०	सञ्ज्ञी०
५	२३	०कामयोन	कार्मयोन
६	४	०विपया०	०विजया०
६	५	०मनुष्योः	०मनुष्ययोः
६	११	०मौहूर्तिकी	०मौहूर्तिकी
६	१२	न त्थ	नत्थि
६	१८	पूरित०	पूरित०
७	४	ये गा	योगः
७	२२	०समुद्धाते	समुद्घाते
८	८	वचन:तं	वचनान्त
८	१२	'मणान णे'	'मणणाणे'
८	२०	पुढवी	'पुढवी
९	६	० ीरणाऽ	०वीरणा०
९	१०	वि ठाणाणि य	बिय तिन्नि य ठाणाणि
९	११	दो	। दो
९	१४	हेतुभिः	हेतुभिः
९	१६	०ऽऽवालिकायां	०वलिकायां
९	२०	०त्ताणा	०पत्ताणं
९	२३	करगेयो	करयोयो
१०	१३	माद्य	म्याद्य
१०	२२	सम्यक्त्वः	सम्यगक्त्वः
१०	२७	उत्तामार्थी	उत्तालार्थी
११	१२	प्रायोषा०	प्रायो जनेषा०
११	१६	शकल०	सकल०

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१२	१०	०चारद्वारा	०चाराद्वा
१२	१४	न,	नु
१२	२७	०प्रकाशो	०प्रकारो
१२	३०	०चारकर्म०	०चारककर्म०
१३	१	नंत्तर०	नोत्तर०
१३	६	०शेषण	०शेषेज
१३	१०	०कास्तदा से०	०कास्तदा-ऽऽसे०
१३	१०-११	निविष्ट०	निर्विष्ट०
१३	१२	०रिकाः । कल्पं	०रिकाः कल्प०
१३	२१	षाण्मा०	षण्मा०
१३	२४	गच्छमाना गच्छन्ति	गच्छमागच्छन्ति
१३	२७	०शमय०	०शमक०
१३	२९	शमय०	शमक०
१४	३	०मुइय/०क्खाय अह०	०मुइयं/०क्खायं अह.
१४	६	०वु०	०वु०
१४	६	०न्यस्या०	०न्यस्ना०
१४	१०	०नार्थं त ।	नार्थं तत्र यो०
१४	१४	०र्वजे०	र्वजे०
१४	२१	-नम हा	पसाहा
१५	२४	नीला०	नील०
१५	१६	सांप्र०	संप्र०
१५	२४	०भेद द्वयम्,	०भेदद्वयम्
१६	२	०न्यन्त्र	०न्यत्र
१६	१२	बादरा०	बादर०
१६	१५।१६	त्रिगल हुंति .. मझिको	१ त्रिगल—२ हुंति · ३ सझिको
१६	१७	पनेकदेशो	पदेकदेशो
१६	१९	पञ्चवचन	पञ्च वचन०
१६	२४	०ग्गे	ंग्गे
१६	२७	०निऊसम्मि"	०निअसम्मि०"
१७	२	क्षायो०	क्षायो०
१७	२२	तत्रैकपञ्चदयो	तत्रैकः पञ्चदयो
१७	२७	०२	०१-२२
१८	२९	०प्स्यपागम०	प्स्य पागम०
१९	१०	मर्थ०	मर्थे०
१९	११	०लोकादु०	०लोकादू०
१९	१२	नोढ्वें	नं दूर्ध्वे
१९	१३	०मते नाडी एषु	०मतेना ऽऽद्येषु
१९	१७	नाडी बहि०	नाडिबहि०
१९	१८	पञ्चमेत्वा	पञ्चमे त्वा
१९	२२	भूयनिर्जरणं	०भूय निर्जरणं
१९	२२	शानन मित्यर्थः	शातनमित्यर्थः
१९	२३	दूदूर्ध्वं	दूदूर्ध्वं
१९	२३	यदुक्तम	यदुक्तम
१९	२७	०द्गूहिः	०दूर्वहिः
१९	२८	क्षेत्र०	क्षेत्र०
१९	३१	हैम०	हैम०
१९	३१	मृत्य	मृत्य
२०	१०	०शरीरा०	०शरीर०
२०	१७	करणे	करण
२०	१९	शातयति	शातयति)
२०	२७	०ये पूरि०	०ये-ऽपूरि०
२१	२	चाष्टमामायिकः	च ष्टमामयिकः
२१	७	०द्य श्चत्वारः	०द्याः पञ्च
२१	१४	नियटा	नियटी
२१	२१	०दया	०दयाद्
२२	१	चतुर्थं कर्मग्रन्थ	चतुर्थे कर्मग्रन्थे
२२	२	न् निर्मि०	०न-ऽनिर्मि०
२२	३	प्राप्तामत्य०	प्राप्तमित्य०
२२	४	विशेपेण	विशेषेण
२२	४	सागरा	सागरो
२२	५	त्रिशतं	त्रिंशतं
२२	५	क्षागय	क्षायि
२२	७	कार्यानर्षं	कार्यनिर्षे
२३	२	सम्यग्दृष्ट०/मिथ्या	सम्यग्दृ०/मि या
२३	३	सम्यग्दृष्टि०	सम्यग्दृष्टि०
२३	३	भूत्वेत्र	भूत्वैव
२३	४	क्रमेणा	क्रमेणे
२३	६	सद्ब र्ण	सद्वर्णं
२३	२७/२८	मुंडुस दीर्घा	मु ूत्तो दीर्घा
२३	२९	० च पूर्वा	० चपूर्वा

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२३	३०	पृथीयर्सी	प्रथीयर्सी
२४	५	समनाया	शमनाया
२४	७	०सुमन्नां/कृना०	०सुमनां/कृत्वा०
२४	१२/१३	०स्थ.नं/०ऽनेति	०.थानम् ऽऽनेति
२५	२२	०देशकृति	देशकृति०
२५	२४	०कवलि०	०केवलि०
२५	२५	०यागो०	०योगो०
२५	३०	निवर्त्ति	निवृत्ति
२६	२	समुर्च्छिन्न	समुच्छिन्न
२६	२	सन्नि०	तन्नि०
२६	२	ह्रस्व	ह्रस्व
२६	२७	स्वास्व.दनं	सास्वादनं
२७	७/१०	०ह्राना०/तालो०	ह्रना०/तलो०
२७	१५	०तज्ञा०/	०ताज्ञा०/
२७	१८	ज्ञानानि	ज्ञानानि
२७	१९	ऽज्ञानात्रये	ऽज्ञानत्रये
२७	२२	सामाइय०	सामाइय०
२७	२८	०ङ्मिथ्या०	०ग्मिथ्या०
२८	६	वर्त्तिन	वर्त्तिन
२८	१६	ऽप्रमातान्तानि	ऽप्रमत्तान्तानि
२८	१८	सं ज्ञषु	संज्ञिषु
२८	२२	पठमा	पढमा
२८	२६	इत्याप	इत्यपि
२९	५/१४/१४	सपूर्व०/०यन्ते/ लपयते	पूर्व/०यते/ ०लप्यते
२९	२६	०वेसे	देशे
३०	२	वैक्रय०	वैक्रिय०
३०	११-१२	०मुद्रा०/लम्यते	०मुद्घा०/लभ्यते
३१	१६	०स्नु०	०म०
३१	२१	मिश्रो	मिश्री
३१	२२	षष्ट	षष्ठ
३१	२२/२६	पचमे स्र	पञ्चमे/म्न
३३	३	विशाषा०	विशेषा०
३३	६	०मेतवान्त	०मेतावन्त
३३	११	०ल्ये	०ल्ये
३३	२८	यम्व०	यस्व०
३४	२	केवलि०	केवल०
३४	१४	०त्र क्षी०	०शोपशान्तक्षी०
३४	१४	ऽन्त्यु०	ऽन्त्य०
३४	२०	सम्यग०/रू	सम्यग्०/रु०
३५	१	०यागानय०	०योगा नय०
३५	५	०लक्षणं	लक्षणं
३५	६	०नायप्राह	०नाय प्राह-
३५	१६	०यन्तरे-प्य	-ऽयन्तरेऽत्र
३५	२०	०त्येव थिवा०	०त्येवमविवा०
३५	२०	दर्शन	दर्शन
३५	२६	जां	जा
३६	१	षर्म	कम
३६	६	योंगे	यंगे
३६	८	०त्र०	०न्त्र०
३६	१४	एगिदि०	एगिंदि०
३६	१७	सुम०/०पर्याप्तना०	शुभ०/०पर्याप्ता०
३६	२३	०यनि०	०यव०
३६	२४	ि शति	रिंशति
३६	२७	लेश्या पद्०/रू /०गमंज०	लेश्यापद्०/रु, /०गभंज०
३७	७	नरा:	नरा:
३७	२०/२१/२३	०स्त्र०/ ०स्त्री०/ स्त्र०	०त्र० ०स्त्री०/०स्त्र०
३७	२१	०धास्नस०	०धान्त्रस०
३८	१	गन्थे	ग्रन्थे
३८	२	ऽनन्ता	ऽनन्ता.
३८	५	०पक्षिका०/	०पाक्षिका०
३८	६	प्रचरंतीति	प्रचरन्तीति
३८	१५	किंचद्	किंचित्
३८	१८	पुष्पावकीण०	पुष्पावकीर्ण०
३८	२२	बहव कृण	बहवः कृष्ण
३८	२१-२४	एना सू	एना-सू
३९	१	स्थानेषत्र	स्थानेष्व
३९	१६	हठ दि	हठादि
३९	२६	कार्याः	कार्या
४०	१९	मितिस्वरूप०	भिति स्वरूप०
४०	१४	काल०	काल०
४१	१२	०गुण स्था०	गुणस्था०
४२	१२	किंच	किंच
४३	२४	पञ्चकं षष्टं	पञ्चम षष्ठं
४४	३	०सर्णिया०	०सर्णिया०
४४	५	पृथक्त्वं	पृथक्त्वं
४४	८	मिश्रेभ्यः	मिश्रेभ्यः
४४	१७	(यशः)	(यशो०)
४५	८	०क्तोद्धिरितेषु	०क्तोद्धरितेषु
४६	१	०ऽप्रमत०	०ऽप्रमत्त०
४६	४	०रम्य०	०रम्य०

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
४६	५	आरम्भ०	आरम्भ०
४६	७	क्षेणा०	क्षीण०
४६	१६	०षष्ठ०	०षष्ठ०
४६	२४	०नायो०	०दायो०
४७	२	प्राचिना	प्राचीनाः
४८	८-९	निर्दे-ष्टम्	निर्दि-ष्टम्
४८	१८/२०	तदामि०	तदनामि०
४९	२	चनुरशीतेरः	चतुरशीतेः
४९	१३	एव	एव-
४९	१६	०रेनै०	०रैनै०
५०	१९ २४	०नां प्रा०। स बी०	०नां न प्रा०। सबी०
५०	२४	सक्त०	शक्त०
५०	२५	०ऽसति। ०वाच०	०ऽसेति। ०वाक्च०
५१	४	०श्चतुर्वि०	०श्चतुर्वि०
५१	२	प्रत्याना०	प्रत्याख्याना०
५१	२१	द्वययार०	द्वययोर०
५२	१०	अवयार्थ०	अवयगार्थ०
५२	१८	०राशा०	०रासा०

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
५२	२१	पुन्त्वे	पुंस्त्वे
५२	२७	सम्तऽ०	सत्तऽ०
५४	२	कम्मण्तु०	कर्माण्यु०
५४	७	०रून्दये	०रुन्दये
५४	२०	०देशनं	०दर्शन
५५	१६	समयेपु	समये [पु]
५५	२८	स्तोका	स्तोका.
५५	२८	०निघृत्तिभ०	०निवृ[त्तिभ०] (त्त्व०)
५६	२६	जघन्तोऽ-	जघन्यतोऽ-
५६	३०	०ध्यत्र०	०ण्यत्र०
५७	४	श्रोतृ०	श्रोतृ०
५७	८	मीलनेन	मीलनेन
५७	१६	वुध०	बुध०
५७	१६	०धव्याव०	०धाव्याय०
५७	२५	दैतेय निर्दय	द्वैतयनिर्दय
५८	१०	धर्मो पाथ	धर्मो-पाय
५८	१५	सदि	स दि
५८	२५	शादुंल	शार्दूल

श्रीरामदेवगणिकृतटीकायुतषडशीतौ

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२	१२	एगिंदिया	एगिंदिया
२	१९	पगयो	पगरणे
४	१२	भव	भवे
५	५	श्रोणित	शोणित
६	१८	सण्णिपज्ज०	सण्णिअपज्ज०
८	२०	अभ वा	अभावा
८	२१	ए ग०	एग०
९	३	ठण०	ठाण०
१३	११	।	॥२४॥
१३	२०	सजय०	संजय०
१६	११	पज्जुत्त	पज्जुत्त
१६	११	तेइंदिय	तेइंदिय
१६	२३	छेओ	छेओ
१६	२५	हास०	हारग०
१७	८	पुव्वत्ता	पुव्वुत्ता
१७	१८	सागरो०	सागरो०
१९	१	गुणस्थाना-	गुणस्थान-
२०	९	अहक्साय०	अहक्खाय०

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२०	१५	उक्त श्च	उक्तश्च
२३	१०	पंचेन्द्रिया	पंचेंदिया
२३	१८	पत्तयं	पत्तेयं
२३	२६	दंसणं	दंसणं
२४	११	नपुंसगवे	नपुंसगवेए
२५	१	मागणा	मार्गणा
२५	१७	चारित्र	चरित्त
२६	७	०अभव्व०	०अभव्व०
२६	२८	पणपीसं	पणतीसं
३०	२	चरित्रं	चरित्तं
३०	१४	।	॥७१॥
३१	२४	संक्रमति	संक्रमति
३२	१८	अप्रमत्तस्स	अपमत्तस्स
३३	१	०सत्त०	०सत्ता०
३३	२६	अघाइणो	अघाइणो
३३	२७	ताभ्यां	"ताभ्यां
३४	२२-२३	अनियट्ठी नियट्ठी	अनियट्टी नियट्टी

सप्ततिकाभिधषष्ठकर्मग्रन्थटिप्पनके

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
३	१५	अणि. ।	अणि.। सुहुम।
८	२४	२	२२
९	१३	३	२
१२	१९	२। २।	२। १।
१४	२-२८	७१-७९।	७०-७८ (गाथाङ्काः)
१५	२-१८	८०-८७	७९-८६ („)
१६	१२	१३२	१३३
१६	१४-२२	८८-९२	८७ ९१ (गाथाङ्काः)
२६	१९	एव	एवं
३१	५	गिंदिय	एगिंदिय
३१	५	९	६
३१	६	२	१२
३१	१२	१८१	१८०
३१	२४	१८२	१८१
३२	१८	"एत्तौ"	'एत्तो'
३३	२४	विगल ३)	त्रिगल (३)
३४	६	बा अ।.	बा. अप.
३५	५	[२]वो वो	[२]△वो वो
३७	२३	·ब.	बंध.
३८	१५	ठवणा	[६]ठवणा
४२	१३	चूर्णिकार॰	चूर्णि कारे॰
४३	९	पञ्चम॰	पञ्च॰
४३	२३	॰ज्य॰	संज्य॰
४३	३१	मुहुत्ता॰	मुहूर्ता॰
४४	१४	२७	३७
४५	३	२८	३८
४५	६	२२०	२४०
४८	७	ठ णा	ठाणा
४८	१८	१३९७	१३११७
४९	११	चउसता	चउसता
५०	९	चउर्वियाणं	चउरिंदियाणं
५२	१०	७५	२७५
५२	२८	पमाण	प्रमाण
५२	२९	दा–"ऽऽहारक-सप्तकोद्वलनं कृत्वैव" पुन॰	दा–ऽऽहारकसप्तकोद्व-लनं कृत्वैव पुनः
५३	२०	॰स्थितेष्वपि	॰स्थितिष्वपि
५३	२४	॥२०६॥ दय-स्थान (२५०)	॥२०६॥ (२५०)
५४	६	७२८	१७२८
५४	१३	१३७४५	१३९४५
५५	११	भग	भंग
५६	२०	को कम्स ।	[२] को कस्स ।
५६	२७	॥२९१॥ (३६३)	॥२९१॥ (३६५)
५७	१०	बंधविवज्ञा	[६] बंधविवज्जा
५७	१७	ठवण	ठवणा
५७	२२	दंसणारण	दंसणावरण
६२	२	।वज्ञा	धावज्ञा
६४	१५	१७ ८	१७२८
६५	१	नेपुमोह॰	नेपु मोह॰
६५	७	२३	४२३
६७	८	केवलीण	[१] केवलीण
६७	३१	भवो	भवौ
६९	२३	जो	जा
७२	१०	॥३८४॥ (४६४) [४४१]	॥३८४॥ [४४१]
७२	१२	॥३८५॥(४६५) [४४२]	॥३८४॥ [४४२]
७३	३	उठिव॰	वेउव्वि॰
७३	१४	॰नके) भगो	॰नके) इगतीस नव अहणा वीसं भेया। उ जो तिरिओ (५०४) भंगो
७३	१६	तेरस	वीसे
७७	५	४९०९	४९०६
८०	७	॥(५६३)	॥४०९॥ (५६३)
८१	९	॥(५६४)	॥४१०॥ (५६४)

सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणटिप्पनके

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
३	१	प्रकपम्	प्रकरणम्
३	८	पच्चक्खा	पच्चक्खाणा
३	१४	गध	गंध
५	७	त जहा	तं जहा
८	४	वेइय	वेइयं
८	८	समवे	संभवे
१०	२२	विवज्जइ	वि वज्जइ,
१०	२८	णामेवयिं	णामेवियं
१२	५	पज्जत्तगो	अपज्जत्तगो
१३	२६	३	२
१४	१६	वात	वा तं
१६	७	निरियपु०	निरियणुपु०
१६	११	चउरसं	चउरंसं
१६	२०	अपठम०	अपढम०
१९	१४	खअ-	खओव-
२०	२७	अविरमंमि	अविरयम्मि
२१	३	दसेमि	दंसेमि
२२	१३	० विक्खा	विक्खा
२३	२०	दुण्हं ॥	दुण्हं
२३	२२	पन्नरेस	पन्नरस
२४	४	इगसट्ठिसिक	इगसट्ठिवीसिक
२६	३०	जात	जाताः
३५	१	स्थन	स्थान
३५	१५	कालो	काले
३५	२०	मागरे;	मार्गः;
३६	१	वगणा	वग्गणा
३६	२२	मिठ	मिढ
३६	२३	अवाला०	अवले०
३८	१	सा	सार
३९	१	वगणा	वर्गणा
३९	४	दव्ववगणा	दव्ववग्गणा
३९	२४	ओर लिय	ओरालिय
४०	२७	०गोया पज्ज०	०गोयापज्ज०
४१	२	०वुट्ठो	०वुड्ढो।
४२	२	पए ।	पएसा
४३	३१	षट	षट्
४४	७	१०४	१०५
४५	१०	०लोगास०	०लोगागास०
४५	२१	"तक्काठिइ"	"तक्कायठिइ"
४६	२	० परियट्टी	परियट्टो
४७	२३	०णि। एक्के	०णि एक्के०
४७	२३	०ठायो तेण	०ठाणे। तेण
४८	९	कम्प	कम्मप्प
४८	१९	खेत्तं आगाससुहु-मकालाओ अद्धा०	खेत्तं=आगासं सुहुमं कालाओ=अद्धा०
४९	३	० निव ०	० निरुव ०
५०	३	विसेसहियाइं	[विसेसाहियाइं?]
५०	२२	कम्म	कम्मपर
५१	२५	रयणप्पहाए	रयणप्पहाए
५३	१३-१४	तत्तिअपमाणं अणवट्ठियपल्लं भरित्ता	(तओ परओ) [तत्तिअपमाणं(?)] अणवट्ठियपल्लं [भरित्ता ?)]
५४	१०	० सखेज्जो	० संखेज्जो
५५	२१	४१	१४१
५६	३	असख	असंख
५६	१२	पण्णाच्छे०	पण्णाछे०
५६	१३	दोह	दोण्ह
५६	२४	०णं तं / त	०णंतं /
५६	२६	०र्ण तं /	०णंतं /
५८	११	१४२	१४१
६०	५	कत्तका	कत्तृका

सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरणवृत्तौ

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१	१०/२१	०कत्तृ०	०कर्तृ०
२	७	गोढ०	गाढ०
२	१९	थूएमावे ।	थूलमावेण .
३	१३	वेउविय०	वेउव्विय०
४	३	चउविं	चउविहं
५	७	०विंसु	०विसुद्धं
५	२८	०आयमा०	०आयन०
६	९	०बाल धार०	०बाल धार०
७	८	अणा०	दुस्सरं, अणा०
७	१६	५	२
८	६	मणिय	मणियं
८	१४	०मुरो य [३]प०	०मुरोयर[३]प०
८	१९	आहारगं घणं	आहारगबंधणं
८	२५	नारायं	वज्जनारायं नारायं
९	१२	गध,	गधं,
९	२६	अतर०	अंतर०
१०	१८	त	तं
१०	२४	निरग्गर०	निरइयर०
१०	३०	लागम्मि	लोगम्मि
१३	१	बन्धानानि	बन्धनानि
१३	६	महु	मउ०
१३	१०	०रणारणां	०वरणारणां
१४	२७	आरभ्यः	आरभ्य
१४	२७	गाथा म०	गाथास०
१५	१०	विजय०	विजया०
१५	१९	०त्तणाइ	०त्तणाइ
१६	३	०विउव्यिय०	०विउव्विय०
१६	११	०समयं	०सयं
१७	६	०बधीर्णं	०बंधीर्णं
१८	१२	एवं ।	। एवं
२०	३	आबाइ०	अबाइ०
२०	१४	०पच०	०पंच०
२१	५	०यत्ता०	०यत्त०
२४	५	०वंच०	०पंच०
२५	७	हुंति मे	हुंतिमे
२५	१९	एव	एवं
२६	२५	दुगंध	दुगंधं
२७	१६	एगिदिया	एगिंदिया
२७	१६/१७	बंधति	बधंति
२७	२९	समाणु	सेमाणु
३१	१९	बायराणां	बायराणं
३२	४	असंगु०	असगु०
३२	२१	पंचिदि०	पचिंदि०
३३	५	०बधे	०बधे
३३	२२	बंधंति	बंधनि
३५	२९	चालवइ	चालवइ
३६	६	मुयंइ	मुयइ
३९	२	सत्तणहुय०	सत्तणहुण्णाय०
३९	२०	०आगस०	०आगास०
४०	१६	०बघ०	०बंघ०
४०	२७	विरिय	विरियं
४१	८	०दिस गं	दिसागं
४१	१८	आगासा०	आगास०
४१	३०	कम्मेण	कमेण
४२	२०	॥२१॥	॥१२०॥
४२	२८	मिद्धण्हं नि०	निद्धुण्हं निद्ध०
४३	४	इंति	इति
४३	१४	संतगुणे	णंतगुणे
४४	१६	पुणा	पुणा०
४५	३	जि पइ	जिए इ
४५	१४	यने	यं ने
४६	२८	य/होंति कमा	य होंति कमा ।
४७	२१	०मिस्त	०मिस्सो
४८	२४	आ	भी

प्रथमे परिशिष्टे

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१	३	यन्त्रकानि	यन्त्रकाणि	९	४	०द्विक	०द्विक
३	७	,,	प्रथमा· ४	९	४	अमव्य	अभव्यः
३	८	प्रथमा:४	,,	९	७	कामं	कार्मं
३	१५	तिय.	तिर्य०	९	१२	चक्ष	चक्षु
३	१९	सास्वादन च दशित	सास्वादनं च दर्शितं	९	१५	शष.	शेष० २
४	३	स्ख्या	ः ख्या	९	१८	सञ्ज्ञ	संज्ञ
४	१८-२१	द्ुविध	द्विविध	९	३०	कार्मेण	कार्मणं
४	२१	अस	असं०	११	५	वृतौ	वृत्तौ
४	२५	ऽभिप्रायणे	अभिप्रायेणे	११	८	अशुभा	अशुभाः
६/७	७-२४/२८	अस०	असं०	१२	७	असयम०	असंयम०
७	२४	सर्वा	सर्वाः	१२	१६	सर्वा	सर्वाः
८	६	अणंत	अनन्त	१५	१	दशि	दर्शि
८	७-८	अणन्त	अनन्त	१५	२	७-	७-८
८	१३	सर्वाल्पा	सर्वाल्पाः	१६	२	समविताः	संभविताः
९	२	कषाय	कषायः			असमविताः	असंभविताः
९	२	सर्वा	सर्वाः	१६	१७	ऽम-	ऽस-

द्वितीये परिशिष्टे

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२	८	समए	समए।	६१	१२	०वरिमं	०चरिमं
१०	८	०वययो	०वयवो	६५	२९	प्रतो	प्रतौ
१५	९	सीलस	सोलस	६६	२८	"अपि-	"अप-
१६	१	वाख्योः	वाख्यो	६६	३१	ऽति	ऽस्ति
२८	२०	मठस०	मठ्वस०	७४	१६	८६ अमी ८८	८६-८८ असी
३१	१७	सत्तट्ठ०	सत्तट्ठ०	८०	१९	नेइ०	नेर०
३९	२८	॥८॥	॥८९॥	८१	२७	धुंधु०	धंधु०
४०	२२	निंयट्टि	नियट्टि	८३	४	॥७ ॥	॥७२॥
४२	१८	प्रदशितः	प्रदर्शितः	८३	२२	अ ं	असं
४७	७	॥४३॥४९॥	॥४२॥४९॥	३	३०	२	६
४७	२९	चोयलं	चोयालं	४	४	॥५९॥	॥२९॥
४८	२६	०प्रस्तके	०पुस्तके०	४	२८	॥५०॥	॥२४॥५१॥
४९	३१	स्यपि	इत्यपि	७	१६	०बाहहया०	०बाहया०
५२	२५	कमो	क्रमो	८	१३	॥९८॥	॥७८॥९८॥
५३	१४	०सकस्या०	०सङ्ख्या०				